

મળવાનું ઠેકાણું
શ્રી અમ્મા શ્રવે સ્થાનકવાસી
જીન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
૩ ગરેડિયા કુવારોડ, શ્રીન લોજ
પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

પ્રથમ આવૃત્તિ પ્રત ૧૦૦૦

વીર સવત ૨૪૮૪

વિક્રમ સવત ૨૦૧૪

ઈ સ્વી સ ન ૧૯૫૮

*

મુદ્રક

મણિલાલ છગનલાલ શાહ
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ
ધીકાટા રોડ , અમદાવાદ-

श्री-वर्धमान-श्रमण-सधना आचार्यश्री

पूज्य आत्मारामजी महाराजश्रीये

आपेल

सुभमतिपत्र—

*

उपरात

पूज्य श्री धासीलालजी महाराज—रचित

धीन सूत्रानी टीका भाटे तेजोश्रीना मतव्ये

*

तेमज

अन्य महात्माज्यो, महासतीज्यो, अद्यतन-पद्धतिवाणा कोलेजना प्रोफेसरो

तेमज

शास्त्रज्ञ आवडोना अभिप्राये

ठे श्रीन बोज पासो
गरिडीया कुवारोठ
राजकोट सौराष्ट्र

}

श्री अणिल भारत प्रवे. स्था. जैन
शास्त्रोद्धार समिति

जैनागमचारिधि-जैनधर्मदिवाकर-प्रधानाचार्य-पण्डित-मुनि-
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् नन्दीसूत्रस्याचार-
चिन्तामणिटीकाया

सम्मत्तिपत्रम्

श्रीमल्लब्धसपर्याचार्यवर्यघासीलालजित्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र
प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्पेनोपयोगितापूर्वक कर्णकुह-
रीकृता, वृत्तिरिय न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च
प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्या याथातथ्येनाभासत एव,
अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषेण
प्रौढविषयाणा स्फुटतया गीर्वाणवाण्या प्रतिपादनम् अधिकतर मनो-
रञ्जकम् । अतः आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागम-
सिद्धान्तपीयूषं पाय पायं मनोमोदं विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन
चतुर्णामनुयोगाना परिचय प्राप्तुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया
एवमेवान्येषामपि जैनागमाना विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणा स्थानक-
वासिना महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनन्दप्रातान्तर्वर्ति - लुधियानामण्डल-स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-
रूपाध्याय आत्मरामः ।

विक्रमाब्द २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥



સ્વ શ્રીમાન્ છગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર

જન્મ તા ૧૫-૧૦-૧૮૮૦ * દિહાત્મર્ગ તા ૧૯-૧-૧૯૪૪

સ્મરણાન્વલિ

આપે જિનેશ્વરનો વર્મ આચરણમાં મુખને જીવનને ધનમ્ય બનાવ્યું અને તેનો શાશ્વત વારસો અમોને આપ્યો તે બદલ અમે આપના ઋણી છીએ આપે મિત્રોના સ્મરણના પ્રભાવે આજે શ્રી નદીસર આપના સ્મરણાર્થે ડાપાની આપના તરફનું અમારું ઋણ યત્કિચિત્ત અદા કરવાનો આ અમારો નમ પ્રયાસ છે

—અમે છીએ, આપના બાળકો
ભોગીલાલ વીગર

જૈનાગમવારિધિ-જૈનધર્મદિવાકર પ્રધાનાચાર્ય પશ્ચિત-
 મુનિશ્રી આત્મારામજી મહારાજ (પળખ) ના એ
 નન્દીસૂત્રની આચારચિન્તામણિ ટીકા પર આપેલ
સંમતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

એ પૂજ્ય આચાર્યવર ઘાસીલાલજી (મહારાજ)ની બનાવેલ શ્રીમદ્
 નન્દીસૂત્રના અધ્યયનની આચારચિન્તામણિ ટીકા અમ્પૂર્ણ ઉપયોગપૂર્વક સાલળી

આ ટીકા ન્યાયસિદ્ધાંતથી શુકત, વ્યાકરણના નિયમથી નિબદ્ધ છે તથા
 એમા પ્રસંગે પ્રસંગે કમઘી અન્ય સિદ્ધાંતોનો સંગ્રહ પણ ઉચિત રૂપથી
 જણાઈ આવે છે

ટીકાકારે અન્ય તમામ વિષયો અમ્યક્ પ્રકારથી સ્પષ્ટ કરેલ છે તેમજ
 પ્રૌઠ વિષયોનો વિશેષ રૂપથી સ્ફુટ ભાષામા સ્પષ્ટતાપૂર્વક પ્રતિપાદન અતિ
 મનોરંજક છે એ માટે આચાર્ય મહોદય ખરેખર ધન્યવાદને પાત્ર છે

હુ આશા રાખુ છુ કે જિજ્ઞાસુ મહોદયો એના સારી રીતે પઠન પાઠન
 દ્વારા જૈનાગમ ત્રિદ્વાતરૂપ અમૃત પીય પીયને મનને આનંદિત કરે અને તેના
 મનનથી દક્ષજનો ચાર અનુયોગોનુ સ્વરૂપજ્ઞાન મેળવે

તથા આચાર્યવર આવી જ રીતે બીજા પણ જૈનાગમોના સ્પષ્ટતાપૂર્વક
 વિવેચન દ્વારા સ્વેતાખર મ્યાનકવાસી સમાજ પર મહાન ઉપકાર કરીને
 યશસ્વી બને

વિ સ ૨૦૦૫

માગસર સુદિ ૧

જૈનમુનિ ઉપાધ્યાય આત્મારામ

લુધિયાના (પળખ)

શુભમસ્તુ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी
 महाराज तथा न्यायव्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७
 श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्त

सिरि-गीरनिव्वाण-सपच्छ २४५८ आसोई
 (पुण्णमासी) १५ सुत्तारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालधिणिम्मिया सिरिउवा-
 सगसुत्तस्स अंगारधम्मसजीवणीनामिया वित्ती पडियमूलचन्द्रनासाओ अज्जोवत
 सुया, समीईणं, इय वित्ती जहाणाम तथा गुणेवि धारेइ, सच्च अगाराण तु इमा
 जीवण (सजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिरुत्तुणा मूलसुत्तस्स भाओ उज्जु-
 सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, गयसियत्रायत्राओ,
 कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सि फुढरीइओ
 वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विसय-
 प्पयारेण चित्ते चित्थिय, पुणो सकयपाटीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणांमियाए भासाए
 भासीण य यरमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एय कज्ज
 परमप्पससणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अपलोयणमईव
 लाहप्पय, अवि उ सावयस्स तु (उ) इम सत्थ सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो
 अणेगकोडिसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमो-
 वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,
 जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ तथा भवियव्वयावाओ
 पुरिसकारपरकमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किं बहुणा इमीए वित्तीए पत्तेय-
 विसयस्स फुडसेहेहिं वण्णयं कय, जइ अन्नोवि एव अम्हाण पसुत्तप्पाए समाजे विज्ज
 भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तथा सबस्स य खिप्प उदयो भविस्सइ, एव
 इ मन्ने ॥

भवईओ-

उवज्जाय-जइणमुणि-आयाराम-पचनईओ,

सम्मत्तिपत्र

(भाषान्तर)

श्रीवीरनिर्वाण स० २४५८ आसोज

शुक्ल १५ (पूर्णिमा) शुकवार लुधियाना

मैंने और पण्डितमुनि हेमचन्द्रजी पण्डितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पण्डित मूलचन्द्रजी व्यास से आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथा गुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थों के जीवनदात्री-सायमरूप जीवन को देनेवाली-ही है। टीकाकार ने मूल सूत्र के भावको सरल रीति से वर्णन किया है, तथा श्रावक का सामान्य धर्म क्या है ? और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप, कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकोंको धर्म के अंदर द्रढता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयों का निरूपण इसमें भली भांति किया है। इससे टीकाकार की प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक द्रष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा इस विषय का तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालों को तथा हिन्दी भाषा के जाननेवालों को भी पूरा होगा, क्यों कि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ता की योग्यता का पता लगता है कि वृत्तिकारने समझाने का कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकार का यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्र को मध्यस्थ भावसे पढ़ने वालों को परम लाभ की प्राप्ति होगी। क्या कहे ! श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावक के बारह नियम प्रत्येक पुरुष के पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभाव से अथवा यथायोग्य ग्रहण करने से आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार पराक्रमवाद हरएक को अवश्य

देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीका में प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकार से यताये गये हैं। हमारी सुसंप्राय (मोर्ट हर्ट सी) समाज में अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्री संघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पजाबी

*

इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा ५० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराज के दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्र का हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज—कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र की संस्कृत टीका व भाषा का अवलोकन किया, यह टीका अति रमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है, सो आप धन्यवाद के पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियों की समाज में पूर्ण आवश्यकता है। आप की इस लेखनी से समाज के विद्वान् साधुवर्ग पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़ने से हम को अस्यानंद हुआ, और मन में ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाज में भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरव की बात है।

वि स १९८९ मा आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर

રૂ. ૧૦,૦૦૦) આપનાર આઘ મુરબી સમિતિના પ્રમુખ,
દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાતિલાલ મગજદારભાઈ
અમદાવાદ

श्री ज्ञाताधर्मकथाद्गमूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
 जैनधर्मदिवार साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रेष्ठेय
 जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराज का
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म० द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाद्गमूत्र का मुनिश्री रत्नचन्द्रजी से आद्योपान्त श्रयण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्य श्री घासीलालजी म० ने उड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रमाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर मार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को सरल बनाने में काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाभ्यायभेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बना कर शास्त्र में दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवन को शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्ष को प्राप्त करेंगे।



श्रीमान् जयवीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर ममाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाजे ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्ज कर सुखशाता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जी का लिखा हुआ (विपाकघूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजने की कृपा करें, फिर आपको वापिस भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहां से मिले वहां से १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देने की कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहूँ।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

जैनागमचारिधि-जैनधर्मदिशाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि
श्री आत्मारामजी महाराज (पञ्चाय) का आचाराङ्गसूत्र की
आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज) की बनाई हुई
श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययनकी आचारचिन्तामणि टीका
सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी ।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियमसे निषद्ध
है । तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का समग्र भी उचित
रूप से मालूम होता है ।

टीकाकार के अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा
प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन
अधिक मनोरञ्जक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र हैं ।

मैं आशा करता हूँ कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन-
द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और
इसके मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे । तथा
आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों के विशद विवेचन द्वारा
श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे ।

वि सं. २००२
मृगसर सुदि १

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
बुधियाना (पञ्चाय). शुभमस्तु



बीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठियाका अभिप्राय-



आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है ।
इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुँचेगा ।
(ता. २८-३-५६ के पत्रमे से)

॥ श्रीः ॥

जैनागमचारिणि-जैनधर्मदिगार-जैनाचार्य-पूज्यश्री आत्मारामजी-
महाराजना पञ्चनद-(पजाव) स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामरूटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-
बोधिनीनाम्नो सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वरु सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽथापि मया, इय
हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्य प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेय वृत्तिः
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सु-
भिर्निर्वाणपदमनुमगद्भिर्जन-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुभविनिर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोपाय
जैनागमसूत्राणा सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्य सरलाः सुस्पष्टाश्च
वृत्तीर्विधाय तास्तांन सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरला सुबोधिनीं चेमां सूत्रवृत्तिं
स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्ययस्य सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः ” इत्याशास्ते—
विक्रमान्द २००२

श्रावणकृष्णा प्रतिपदा

छोधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः



(श्री दशैकालिकपुत्रका सम्मतिपत्र)

॥ श्री धीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम्

मण पडितमुणि-हेमचदेण य पडिय-मलचन्दवामवारा पत्ता पडिय-रयण मुणि-घासीलालेण विग्इया मङ्कय-हिन्दी-भापारि जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आघारमणिमजूमा वित्ती अवलो-इया, इमा मणोहरा अत्थि, पत्थ मद्दाण अइमयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विज्जणाण पाययज्जणाण य परमोत्तरिय्या इमा वित्ती दीसइ । आघारविसण वित्तीरुत्तारेण अइमयपुव्व उन्लेहो कडो, तहा अहिंसाण सरूव जे जहा-तहा न जाणति तेसि इमाण वित्तीण परमलाहो भविस्सइ, रुत्तुणा पत्तेयविमयाण फुडरूवेण वण्णण कड, तहा मुणिणो अरहत्ता हमाण वित्तीण अवलोयणाओ अइसय-जुत्ता सिज्झइ । सकयछाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दइव्वा । अम्हाण समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाण सबभावो समाजस्स अहोभग्ग अत्थि, किं उत्तविज्जमुणिरयणाण कारणाओ, जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पाय अत्थि, तेसि पुणोवि उदओ भविस्सइ ? जस्स कारणाओ भवियप्या मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाण पाविहिइ । अओह आघारमणिमजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवाय देमि- ॥

वि स १९९० फाल्गुन

इइ-

शुक्लत्रयोदशी मङ्गले

उवज्जाय-जइण-मुणी, आघारामो

(अलवरस्टेट)

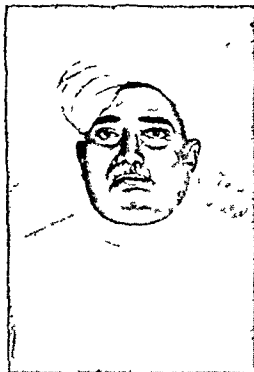
(पचनईओ)

ऐसे ही -

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि-

श्रीमान् की हुई टीकावाला उपासकदशाग सेवक के दृष्टिगत
हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्गसुन्दर
एवम् उच्च कोटि का उपकारक है ।

શ્રી. ૧૦૦૦) આપનારે આદ્ય સુરભીશ્રી



શ્રી ૬૨ખચ દ કાળીદાસ વારીયા
ભાણુ વડ.

निरयावल्लिम्ब का सम्मतिपत्र
 आगमवाराधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य पूज्यश्री
 आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुआ
 सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्द्रजी पानाचदजी ! मादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावल्लिका विषय पूज्यश्रीका स्वाम्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य प० श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावल्लिका की और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहे । !

भवदीय.

गुजरमल-पत्रतराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरगोविनीटीकया समलङ्कृत हिन्दी-गुर्जर-भाषानुवादसहित च श्रीनिरयावल्लिकासूत्र मेधाविनामल्पमेधसा चोपकारक भविष्यतीति सुदृढ मेऽभिमतम्, अस्कृतटीकेय सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-न्याल्यायुतत्वाच्च टीकैषा सस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञाना महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् सम्भावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर - पूज्यश्री-घासीलालजी - महाराजना परिश्रमोऽय प्रशसनीयो, धन्यवादाहार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्रीकन्हैयालालजी-मुनिवरेण्ययोर्भियोजनकार्यमपि श्लाघ्य तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमदिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्त स्यात्तर्हि वरतर स्यात् । यतोऽस्यावश्यकता सर्वेऽप्यन्वेपकविद्भासोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयाना परिश्रम सफलविष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकरदशाङ्ग सूत्र परत्ये जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण
महान् विद्वान् सतीए तेमज विद्वान् श्रायकोए सम्मतिओ समर्पा
छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियाना-सन्त् १९८९, आश्विन पूर्णिणाका पत्र, श्रुतज्ञान के
भडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तन्त्रिप्य
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज
- (२) लाहौर-वि० स० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री
१००८ श्री भागचन्द्रजी महाराज तथा तन्त्रिप्य पण्डितरत्न श्री १००७
श्री त्रिलोकचन्द्रजी महाराज.
- (३) खीचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८
श्री भारतरत्न श्री समर्थमलजी महाराज.
- (४) वालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री
१००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज
- (५) बम्बई-ता १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कविन्द्र श्री १००८ श्री
कवि नानचन्द्रजी महाराज
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत्-वल्लभ श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी
श्री प्यारचदजी महाराज
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचदजी महाराज, तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७
श्री सोभागमलजी महाराज
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, सप्रदाय के गौरवार्थक शत-
स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्द्रजी महाराज
- (९) अम्बाला-ता २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पजावकेशरी श्री
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान
रतनलालजी डोसी

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पण्डितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक
श्रीयुक् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहाँ विरा-
जित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचदजी महाराज पण्डित श्री
किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं
आपके वहाँ विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री
घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर
सुख शांति पूछें, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहाँ
विराजित मुनिवरों की सम्मति मगाई, उसके विषय में वक्ता
श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी
समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र
की वृत्ति रचनेका साहसा जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा
अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त
उपयोगी तो गों है ही, सस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने
से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज
में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े, यही शुभ कामना है। आशा है कि
स्थानकवासी सघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें जेप शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगदल्लभ मुनि श्री चोथमलजी
महाराज व पण्डितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी
महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पण्डितरत्न महाभाग्यवत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत मगाना की है,
वास्तव में ऐसे उत्तम व मयके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत
आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा
सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के
सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का
अनुभव करती हुई, महावीर के अमृत्य वचनों का पान करती हुई
अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पजाब)

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी मेजी हुई
उपासदशाङ्कसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई ।
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं ।
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ
सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

૩. ૫૨૫૧) આપના આઘ સુરઠીશી



ઠો ઠા ગી હર ગો વિ હ ભા ઈ જે ચ દ
રા જ ઠો ટ.

शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्त्ववारिधि, धैर्यवान् श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूनचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा । आपने फरमाया कि पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज ने उपासक दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखनेमे बड़ा ही परिश्रम किया है । इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रों की संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे भगवान् निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रसका लाभ मिलसकता है ।



बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोता मूलसूत्रनी सस्कृत टीकाओ रचवामा टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेबु छे, बळी कराचीना श्री सधे सारा कागळमा अने सारा टाईपमा पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा उजावी छे



बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है ।



खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पण्डित-रत्न मुनि श्री समर्थमलजी फरमाते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुरुषों का प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एव उस की सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी सुदरता से लिखी है ।



श्री धीतरागाय नमः ।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवारर जनागमरत्नाकर श्रीमज्जैना
चार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो
ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी
जैनाचार्यने नहीं किया ।

आपने स्थानकवासी जैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह
कदापि भूलाया नहीं जा सकता और नहीं भूलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना
करते हैं कि आप की इस वज्रमयी लेखनी को उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान
करे ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और
आप चिरञ्जीवी हो ।

हम हैं आपके मुनि तीन
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन

इतवारी-घाजार

नागपुर ता १९-१२-५६

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सचमुच महाराज श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कह मारमिक स्थलोंकी पढा, पढ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तवमें मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गाव और घर घरमें होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

અમણુ સઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતન્ત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

*

મે તથા પડિત મુનિ હેમચદ્રજીએ પડિત મુલચંદ વ્યાસ (નામૌર મારવાઢવાલા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ધામીનાલજી મુનિ વિરચિત સસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રની આચારમણિમબૂષા ટીકાનુ અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર ણની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજવવામા આવેલ છે

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉદ્દેશ્ય મારો કરેલ છે જે આધુનિક-મતાવલખી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, કયામા પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શુ વસ્તુ છે' તેનુ સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજવેલ છે આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક ખીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદરહેલ સુબોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનુ અવલોકન અવશ્ય કરવુ જોઈએ વધારે શું કહેવુ ? અમારી સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનુ હોવુ એ સમાજનુ અહોભાજ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને હુમપ્રાય એટલે લોપ પામેલુ સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે અમે વૃત્તિકારને વાર વાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુકલ
તેરસ મગળવાર
(અલવર સ્ટેટ)

ઈતિ
ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ
(પજ્ઞી)

કા. ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધાર્મીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર.

શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતન્ત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

*

મે તથા પડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પડિત મુલચંદ બ્યાસ (નામૌર મારવાડવાલા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ધામીલાલજી મુનિ વિરચિત સસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચાર્યમણિમજ્જુષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર ણની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામા આવેલ છે

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉદ્દેશ્ય મારો કરેલ છે જે આધુનિક-મતાવલ ણી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, ક્યામા ધાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શુ વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદ-એક સુબોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ વધારે શું કહેવું ? અમારી સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુસપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને હુમપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે અમે વૃત્તિકારને વાર વાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સવત ૧૯૬૦ શકાબ્દ શુકલ
તેરસ મગળવાર
(અલવર સ્ટેટ)

ઈતિ
ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ
(યજ્ઞી)

શ્રમણ સઘના પ્રચારમત્રી પલ્લભકેશરી મહારાજ શ્રી ત્રેમચદ્ર
મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમા પધારેલ હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને
માટે મળેલો અભિપ્રાય

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પડિતરાજ સ્વામીશ્રી
ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનુ જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ
તેમા ખામ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની
જડને મજબુત કરવાવાળુ છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમા
યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ લગીરથ કાર્ય જલદીથી
જલદી મ પૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

દરીયાપુર મ પ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઈશ્વરલલાલ મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીર ગિરિસારધીર

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ તથા પડિતશ્રી કનૈયાલાલજી
મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામા—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાગ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રશ્નિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમા હશેા નિરતર ધર્મધ્યાન ધર્મારા-
ધનામા લીન હશેા

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિંક તથા
આચારગ એક એક ભાગ અહી છે, ટીકા ખૂબ સુદર, સરળ અને અર્થ સાથે પ્રકા
શન થાય તો શ્રાવકગણુ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય શુરૂદેવને
આખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂ છે એજ

આસો સુદ ૧૦, મગળવાર, તા ૨૫-૧૦-૫૫

પુન પુન શાતા ઈચ્છતો

દયામુનિના પ્રશ્નિપાત

*



લોખંડી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થ કર-નામ-ગોત્ર બાધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામા સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂન્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપામના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમા પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશ ધન્યવાદના અધિકારી છે વદનીય છે તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂન્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમા મહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે માટે તેઓ પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે —

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પડિત અપ્રમાદી સત ધાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે તેમા સહાય કરવા માટે-પડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોચી વળવા માટે સાડુ સરખુ રૂઠ નોંધએ એના માટે મારી એ સુચના છે કે-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જે બની શકે તે પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ શુભગત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમા પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે

જે કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે વ્યાપારીઓ, ધધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે છતાં જો સભવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તેો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે પૂન્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ ન્યા સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યા સુધીમા એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમા વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઇચ્છા થતી હોય તેો શાન્તિલાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યા અનુકૂળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું નોંધએ

થોડા વખતમા જામનોંધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તેો ઠીક

દરિયાપુર સ પ્રદાયના પડિતરત્ન ભાઈચ દણ મહારાજનો અભિપ્રાય
શ્રી

રાણપુર તા ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપવર પડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ
મુનિવરોની સેવામા, આપ સર્વ સુખસમાધીમા હયો

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુદર થઈ રહ્યું છે તે બધી અત્યંત આનંદ આપના
પ્રકાશિત થયેલા કેટલાક સૂત્રો મેં જોયા સુદર અને ગૃહ્ય મિદ્ધાનના ન્યાયને પુષ્ટિ
વરતી ટીકા પડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ
ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામા સાધનભૂત
થાય એજ અભ્યર્થના

શ્રી પડિતરત્ન જાળખદ્વયારી
પૂ૦ શ્રી ભાઈચંદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવહન સ્વીકારયો

*

તા. ૧૧-૫-૫૬

વિરમગામ

ગજ્જાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સ પ્રદાયના
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

ખીચનથી આવેલ તા ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ભૂત

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુદર
અને સરળ ભાષામા થાય છે તે સાહિત્ય, પડિત મુનિશ્રી સરથમલજી મહારાજ
સમથ ઓછો મળવાને કારણે સ પૂર્ણ જોઈ શકાયા નથી છતા જેટલું સાહિત્ય
જોયું છે, તે બહુ જ સાફ અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને
અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાચવા યોગ્ય છે આમા
સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રફુલ્લા અને ફરસાણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે
આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

શ્રી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.
મુ ખીચન

*

દશવૈકલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો મસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમા હોવાને કાળે વિદ્વાન અને મામાન્ય જનોને ઘણો જ લાભદાયક છે તે વાચન ધાતુ જ સુદર અને મનોરજન છે આ કાર્યમા પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અગાધ પુરુષાર્થ કાર્ય કરે છે તે માટે વારવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી મમાજને ઘણો લાભ વધવા સભવ છે

હમ મમાન છુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોક કરશે તો આ માહિત્ય સ્વાનકવાસી મમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે દરેક લબ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂ છુ કે આ સૂત્રો પોત પોતાના ઘરમા વમાવવાની સુદર તકને ચૂકશે નહિ કારણુ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપર પરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યમા આપશ્રી તવા મમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમા મહાન નિર્જરાનુ કારણુ જોવામા આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ એ જ

લી ગારદાખાઈ સ્વામી

ખલાત સ પ્રદાય

*

ખગ્વાળા મ પ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી સ્વામીનો અભિપ્રાય

૪ ધુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગજદામભાઈ
પ્રમુખ અં ભાં શ્વેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
રાજકોટ

અત્રે ખીરાજતા ગું ગુંના ભ ઠાર મહાસતીજી વિદુષી મોઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિહાણા બન્ને સુખશાંતમા ખીરાજે છે આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ લાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશે એજ આશા છે વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સ્થેલા સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ અધીપાન્ત વાચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો મ્થાનકવાસી મમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખૂબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે તેમા આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે હ સ સમાન

ક્રી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને જોગની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે શામનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લોંગડી } લી
સ ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } મહાનદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સ પ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચ દ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમજ આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુદર છે સંસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુજ્ઞ છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો મહકાર આપવો જોઈએ

આ મહાન કાર્યમાં પડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એ જ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ

તા ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર
મહાવીર જ્યોતિ

મુનિ પુનમચ દ્રજી

ખલાત સ પ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મગજદાસભાઈ

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત ટ્રસ્ટ સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

સુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિ મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસકદશાગસૂત્ર, આચારાગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

મુખ્યની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુખ્ય તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મગળદાસ

પ્રમુખ શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,

રાજકોટ

પૂન્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રી ઉપર સસ્કૃતમાટીકા આપવામા આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામા આવ્યા છે મસ્કૃતટીકા અમે ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાતરો જોતા આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ત્રયોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજગતી તથા હિંદીમા થયેલા ભાષાતરમા ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે એથી વિદ્વજ્જન અને નાધારણ માણસ ભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમા અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમા સશય નથી આચાર્યશ્રીના આ મહાન કાર્યને જૈનસમાજનો વિશેષત સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે જોશા રાખીએ છીએ,

પ્રો રમણુલાલ ચીમનલાલ શાહ

સેટ એવિયર્સ કોલેજ, મુખ્ય.

પ્રો તારા રમણુલાલ શાહ

સોફીયા, કોલેજ, મુખ્ય

*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર માહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ

બગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂન્યાચાર્ય પ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમા વ્યાસ થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ ને જોયા

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાદીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું જ્ઞાન ગભ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમયે વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પૂર્ણ કરાવશે તેવી આશા છે.

એજ તિ ગરવાળા સપ્રદાયના વિદ્વંધી
મહાસતીજ મોઘીબાઈ સ્વામી
ના કરમાનથી લી જોડીદાસ ગણેશભાઈ-ધણુકા
સ્થાનકવામી જૈન સઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન
પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સસ્કૃત ટીકાખંડ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમા ભાષાતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમા વ્યાસ થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે એ એમનો ટુક પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સપાઠાન કરવામા તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વંતા, ઘણી ઓછી છે, તે દિગ્ગ્ગર મૂર્તિપૂજક શ્રેતાઘર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમા આવતા હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું પૂઠ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામા આવ્યા છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ

તથા અનેક અતુલવી મહાતુલાવોએ પોતાની પસ દગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામા છેલ્લા વડોદરા મુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ ઠામદાર એમ એ પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સમેલન તથા કેન્દ્રોરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના ઠામને ન્યા ન્યા અને જે જે જરૂર પડે-પડિતાની અને નાણાની તે તે પોતાની પામેના ફડમાથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને ન્યારે આટલી બધી પ્રશસાપૂર્વક પસ દગી મળી છે, ત્યારે તે ઠામને મદદ કરવાની આ કેન્દ્રોરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પ ૨ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમા જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ માહેબને લલામણુ કરે છે

(સ્વા જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્રવિચારક અને નિહર લેખક 'જૈનસિદ્ધાંત'ના તત્ત્વી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર મમિતિ સ્થાપીને પૂ ધાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમા જોલાવા તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતા હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમા મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસા શુદ્ધ કરી સસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમા મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મ સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામા આવતા નથી લાખી તપાસને અતે મે મુનિશ્રી ધાસીલાલજીને પસદ કરેલા છે ”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્યા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસદગી યથાર્થ જ હોય એમા

આ સૂત્રો જોતા પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો મસ્તૂત, અર્ધમાગધી, સિન્હી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાળુ જખાઈ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજણી નથી આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે તેની વસ્તુ ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તત્ત્વપૂર્ણ છે, એટલા ગહન અને સર્વબ્રાહ્મ સૂત્રોનું ભાષાતર પૂં ધામીલાવણ મહારાજનેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામા જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વળતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામા ભાષાતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક વર્ષ પડે તેમ છે જ્ઞાન અને જ્ઞાનેતર, વિદ્યાન અને સાધરણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવા સ્પષ્ટ સરળ અને શુદ્ધ ભાષામા સૂત્રો લખવામા અભ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમા સકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની ડહપના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમા વણાઈ ગયું છે મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહ કાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમા વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો રસીકલાલ કરતુરચ દ ગાધી
એમ એ એલ એલ બી
ધર્મેન્દ્રસિ હજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુખર્ષ અને ઘાટકોપરમા મળેલી સભાએ લિનાસર કોન્ફેરન્સ તથા સાધુસ મેલનમા મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી સુવેતાબર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત નીર્ધારિત થી પહેલી પોતાના મગજમા લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદહી અધિવેશનમા સર્વાનુમતે સાહિત્યમત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ લા શ્રવે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમત્રીશ્રી

શ્રુત-મહિત

(૫૦ આચાર્ય શ્રી ધાસીલાલજી મં માંગી આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય જ્ઞાનદિવાકર ૫૦ મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મં ચરમ તીર્થ કર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સ્કૃતાદિ અનેક લાખના પ્રખર પડિત છે, અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમા મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ, સાથે પ્રકાશમા લાવે છે

ભં મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજેએ શ્રુતપર પરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુતપર પરાથી સચવાતું જ્ઞાન ન્યારે વિસ્મૃત થવાનો મમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદ્વિંગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લીપુર-વળામા તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે તે અર્ધમાગધી લાખમા છે. અત્યારે આ લાખા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મલાખા છે તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુસુલુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણા શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે એ આપણી આખો છે તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી મૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે તેને મત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ધાસીલાલ મહારાજે સત્ મ કલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરખ વહેતી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમા સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમા વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભં મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શુ ફળ પ્રાપ્ત થાય ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને મ સાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતા મોક્ષના ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાનકાર્યમા મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગ બરો અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે હિંદુ ધર્મમા પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સે કડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ લાખાઓમા પ્રગટ થયા છે ઇસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રંથ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેલુ જગતની સર્વ

નવાઈ નથી અને પૂ થી ધાસીલાલણના ણનાવેવા સૂત્રો જોતા મો કોઈને ખાત્રી થાય તેમ તે કે ઠામોદરદાસબાઈએ તેમજ સ્થાનકનામી મમાજી જેવી આશા શ્રી ધાસીલાલણ મ પાસેથી રાખેલી તે ણરાગર ક્ષત્રીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામણ મદ્દારાજે શ્રી ધાસીલાલણ મદ્દારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રથંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ધાસીલાલણ મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું કામ આપણુ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે ખીન કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની ઢોકલાયામા (અર્ધમાગધી ભાયામા) સૂત્રો ણનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઠી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રો જ વાચવા,

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીન છ સૂત્રો લખા ચેલ પડ્યા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

“જૈનસિદ્ધાંતના” તત્ત્વીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમા પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાઠનારી આ એકની એક સ્થા છે, અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે-તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પડવા એ કાઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુક્યા છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જબૂદ્દીપત્રસિંહ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચંદ ભાઈચંદ સમિતિના કામમા જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમના ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પंडित મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સશોધન તથા સસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ધરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય

ભગવાને કહ્યું છે કે પદમ ગાળ તજો દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મ યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવા જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ

એટલા માટે શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ધરમા વસાવવા જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાચે એ ખાસ જરૂરનું છે

“જૈનસિદ્ધાંત” ડીસેમ્બર-૫૬

ભાષાઓમા ભાષાતર કરી તેને પડતર કરતાં પણ ધર્મી ઝોઠી દિંમને વેચી ધર્મ-
સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ધન્ય કુરાનનું
અનેક ભાષાઓમા ભાષાતર કરી મમાજમા પ્રચાર કરે છે આપણે પૈમા પરનો મોહ
ઉતારી ભગવાનના મિહાતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા
લેઈએ અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે ગક્રિય પ્રયત્નો
કરવા લેઈએ આવા પવિત્ર કાર્યમા માપદાયિક મતભેદો મૌએ ભૂલી જવા લેઈએ
અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું લેઈએ મમિતિના નિયમા
નુસાર ૩ ૨૫૧ ભરી સમિતિના મન્ય ધનવુ લેઈએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના
મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું મર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું લેઈએ

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ
મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહ મેશ તત્પર રહેવું લેઈએ જેથી
પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય (સ્થા જૈન તા ૫-૭-૫૬)

શ્રી અ ભા શ્રવે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર મમિતિના પ્રમુખ શ્રી વગેરે ગણપુર
પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ
પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધાર્મીલાલજી મહારાજના પુનીત પગલા ધયા છે ત્યારથી
ઘણા લાભા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ
થઈ રહ્યો છે, અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક
કાર્યમા તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને
એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાલ લે છે, મને તો સમજાય છે કે
સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ધાર્મીલાલજી મહારાજ તો બહુધા
સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાચ-સાત સાધુઓ જે
સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમા હોય તો સમાજનું શ્રેય થતા જરાએ વાર ન લાગે સમાજ
કાશમા સ્થા જૈન સ પ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકાર જળહળી નીકળે પણ વૈા દિન

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધા-
વસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા સુવાનોને શરમાશે તેવી છે તેમને ગામેગામ
વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમા ઘણા શારીરિક માનસિક અને
વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેડવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાના શ્રાવકો ભક્તિ
વાળા હોય વાડાના રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું
કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યા સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રમ ધ કરવો લેઈએ
ખીજ કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમહાવામા યોગ્ય સ્થળે
રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સાડ મહારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા
ફરી યાદ આપુ છું ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સતકાર્યના સહાયકોને
મારા અલિન દન પાઠવું તે સ્વીકારશે, હી સદાન હી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

“જૈનસિદ્ધાંતના” તત્ત્વીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવામીઓમા પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સ્થા છે, અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે-તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પડવા એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુક્યા છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જબૂદ્દીપત્રસભિ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચંદ લાઈચંદ સમિતિના કામમા જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમના ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો અદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ધરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઝણુ અદા કર્યું ગણાય

ભગવાને કહ્યું છે કે પદ્મ ણાણ તઓ દયા પડેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મ યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવા જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ

એટલા માટે શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ધરમા વસાવવા જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાચે એ ખાસ જરૂરનું છે

“જૈનસિદ્ધાંત” ડીસેમ્બર-૫૬

શ્રી ઉપાસકદશાંગમૂલને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને ધનાયેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક-અ બા શ્રવે સ્થાનકવાગી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારમંત્રિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ ખીજી આવૃત્તિ બેવડુ (મોટું) ૪૬ પાકુ પુકુ, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ ક્રિ મત ૩૧ ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ધાર અગ સૂત્રોમાનુ ઉપાસકદશાંગ એ સાતમુ અગ સૂત્ર છે એમા ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમા પહેલુ ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનુ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અગીકાર કર્યો અને ધાર મત ભગવાન મહાવીર પાસે અગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનુ સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનુ વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે ધાર મત લીધા તે ધાર મતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધુ આપેલુ છે તેજ પ્રમાણે ખીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્તચેદ્યાહ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહત્તનુ ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સબધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્તચેદ્યાહ નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચ્યુ જોઈએ, એટલુ જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમા વસાવ્યુ જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનુ સમતિપત્ર તથા ખીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“ જૈનસિદ્ધાંત ” જાન્યુઆરી-૫૭

સેક્ટો સર્ટિફિકેટો ઉપરાત હાલમા મળેલ
કેટલાક તાજ અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્ત્વીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમા અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમા ધિરાજમાન છે તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય ખૂબ જ ખત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતા પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમા તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રાની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સૂત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા જૈન સમાજમા શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સ પૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનુ કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખન્નકપીજી મહારાજે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સ પૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક જે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચગડાગસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સોભાજ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિંદી ટીકા લખેલ પણ સ પૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી ન્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામા સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ પૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા ૨૫૧૭ લરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને તમામ શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી લેટ મળે છે આ રીતે એક પ થ અને દો કાજ બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂા ૨૫૧ મા ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમા શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રલાવના કરવાનો ધર્મ લાભ પણ મળે છે

આ સાર્વે પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજના મુશિખ્ય ૫ મિુનશ્રી કૃતૈયા-
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ ગિરાળે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના
મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની મેવા બખવી રહ્યા છે અને
અત્યાર સુધીમા મુળઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુળઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે
ધ્વિષ્ટવા યોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ
મેમ્બરોશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની મેવા દરી ગણાશે
અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેતુ વાચન
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રાજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે



શતાવધાની મુનિશ્રી ન્ય તિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “ સ્થાનકવાસી જૈન ” તા ૫-૯-૫૭ ના અ કમા છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમા દેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૯-૫૭ના રોજ અત્રે ધિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ધામીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ મ મા સાથે જે વાતચીત થઈતે સમાજને જાણ કરાવા સારૂ લખુ છું

‘ શાસ્ત્રોત્ત ઠામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમા અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ સ પૂર્ણ શાસ્ત્રોત્ત જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ લાખાઓનુ જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનુ કાર્ય મદ્જતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરમપુર જૈન સ્થાનકમા ધિગજતા પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્રલેખનનુ આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમા અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શ કાઓ થાય છે તેમા શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમા દેરફાર થાય છે ? કરવામા આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિરાજને તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમા દેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમા પણ સમાજને શ કા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અલ્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ ઠામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રિ આપવામા આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અલ્યાર સુધીમા પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમા જરાપણ દેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને લવિધ્યમા જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમા દેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોધ લ્યે

લી

શતાવધાની શ્રી ન્ય ત મુનિ-અમદાવાદ

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા ,કોન્કરન્સ જેમ ખોટા બહુગ કુકનારી સ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહા રાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈ એ કયું નથી અને બીજી કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકા ભર્યું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને ખની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“ જૈનસિદ્ધાંત પત્ર ” ઝોકટોમ્બર ૧૯૫૭

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલા પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ તે વાચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બળવી શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે પરંતુ ‘કટપ શુ અને અકટપ શુ’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે, અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાય કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમથી બચી લાલનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવસ્થ ગૃહસ્થની ફરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મ શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં ૩૫૧ રીતે કરી રહ્યા છે અને ૩૫૧૫૫૫૫ લરી મેમ્બર થનારતે રૂા ૪૦૦-૫૦૦ ની લગભગ ક્ષીમતના બત્રીએ આગમો ક્ષી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૫૫૫૫ લરી મેમ્બર થઈ બત્રીએ આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ બત્રીએ શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત બે સૂત્રોની ક્ષીમત સમિતિ કઈકે ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી ક્ષીમતે, મક્ત અથવા પૂરી ક્ષીમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ-ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ આવા સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાચવા યોગ્ય છે ત ત્રી-

“સ્તન્યયોત” પત્ર

તા ૧-૧૦-૫૭

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં

બનાવેલાં સૂત્રો

કાશ્મીર . થી કન્યાકુમારી

તેમજ કરાંચી થી કલકત્તા

સુધી

દરેક સ્થળે હોગથી વચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય
હલુ સુધી કોઈ કરી શક્યું નથી

* * *

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાત

શ્રી દેરાવાસી સમ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી
તથા અન્ય સુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપ થી મહાસલા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યા છે

* * *

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો
લાભ લઈ રહ્યા છે

હમણાજ લડનની ઈન્ડિયા એઝીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મગાવ્યા છે

* * *

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોધાવી હપ્તે હપ્તે
લગભગ રૂપીઆ પાચસો સુધીની કિંમતના શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો

વધુ વિગત માટે લખો

૪ શ્રીન લોજ પાસે,
ગરેડીઆકુવા રોડ
રાજકોટ

મત્રી
શ્રી અખિલ ભારતે પ્રવે સ્થા જૈન
શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ

શ્રી

દક્ષિણ, મધ્યપ્રદેશ, ઉત્તરપ્રદેશ, રાજસ્થાન, દિલ્હી,
પંજાબ, ગુજરાત સૌરાષ્ટ્ર આદિ પ્રાંતોમાં
ઉચ્ચ વિહાર કરવાવાળા—

સતીશિરોમણિ પૂ. રભાકુવરજી મહાસતીજીનો તથા
પ્રસિદ્ધવ્યાખ્યાત્રી વિવિધભાષાવિશારદ શાસ્ત્રજ્ઞ, પૂજ્ય મહાસતી
શ્રીસુમતિકુવરજી મહાસતીજીનો પૂજ્યશ્રી ૧૦૦૮ શ્રી
ધાર્સીલાલજી મહારાજ માં નિર્મિત જૈનાગમોની સસ્કૃત ટીકા
તથા હિન્દી, ગુજરાતી, ભાષાતર પર—

— અભિપ્રાય —

ૐ નમો સિદ્ધાણ

શાસ્ત્રવિશારદ, શ્રદ્ધેય પરિતરત્ન પૂજ્ય આચાર્ય સુનીશ્રી
ધાર્સીલાલજી મહારાજ સાહેબ જૈનાગમોના એક વિદ્વાન વૃદ્ધ
વિચારક એવ ઉત્તમ લેખક છે

સાહિત્યસર્જન એ તેમના જીવનનો ઉત્તમ સકટપ છે
સામાજિક પ્રયત્નોથી દૂર રહી અથાગ પરિશ્રમ દ્વારા વિરચિત
સંપાદિત અને અનુવાદિત અનેક ગ્રંથો આજ તમામ જૈનોને
માટે ચિંતન, મનન, અને અધ્યયન, અધ્યાપન માટે એક અપૂર્વ
સાધન તૈયાર કરીને મહાન સાહિત્યસેવીના પદને દીપાવ્યું છે

આગમના રહસ્યોથી અનલિપ્ત (અનલખ્ય) આજની પ્રજા
માટે શ્રદ્ધેય શ્રીમહારાજ સાહેબનું સાહિત્ય અત્યંત ઉપયોગી છે
તેમ હું માનું છું

સરસપુર, અમદાવાદ—તા ૧-૫-૫૮

આચો—
સુમતિકુવર

શ્રી વીતનગાય નમઃ

આ અનતાનત મમારમા જન્મ અને મરણ પ્રાણિગાત્રને વગોલા છે માનવીઓ આવે છે અને જાય છે પણ અનતો સસાર, અનતાકાળની સાથે પગરવ માડતો એની અલૌકિક ગતિએ વધો જાય છે માનની પણ એની માથે સ્મૃતિ-શેષ થતો જાય છે માનવી આઠ્યો-કેટલું ધન વધાયું-કેટલું માન વધાયું અને કેટલી નામના વધારી ? તેની સાથે જગતને કાઈ જ નિસ્ખત નથી અનતાનત આઠ્યો અને અનતાનત કાળના ગર્ભમાં હુમ થયા પણ જેણે સ્વકાળે, પરકાળે, મમાજકાળે, ધર્મકાળે અને દેશકાળે પોતાના જીવનને ચક્રનની માફક ઘસીને અન્યને શાતા ઉપનવી છે તેવા ભદ્ર પુરુષોનું જીવન કાળની રેતી ઉપર પગલીઓ મુકતું જાય છે, જે ભવી જીવો માટે જીવનને ઉચ્ચ કક્ષાએ લઈ જવા માટે પ્રેરણાનું ચિરંતન સ્થાન બની ચૂકે છે

પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ સ્થાનકવાસી તથા સમગ્ર જૈન સપ્રદાયના ભવીજીવોના હિતાર્થે વયોવૃદ્ધ ઉમ્મર છતાં અ. ભા. ૧૯૦૦ સ્થા. ૧૯૦૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના સહકારથી જૈન આગ મોના-શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કેટલાક વર્ષોથી કર્યું જાય છે શાસ્ત્રોદ્ધારનું મોટા ભાગનું કાર્ય પૂર્ણતાની ટોચે પહોંચવા આઠ્યું છે છતાં હજી ઘણું કાર્ય બાકી છે જે પૂજ્ય શ્રી હાલ સરસપુર (અમદાવાદ)ના ઉપાશ્રયે ખીરાજી અથાગ કૃષ્ટ વેડીને પણ શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ કરવા અથાગ પરિશ્રમ ઢરી રહ્યા છે જે શાસનદેવની કૃપાથી પરીપૂર્ણ થશે, એવી આશા રાખીએ છીએ પૂજ્યશ્રીએ જે શાસ્ત્રોની ટીકા રચી છે તે પૈકીનું શ્રી-ન દીસૂત્ર આપના હસ્તક્રમણમાં આજે આવી રહ્યું છે

શ્રી-ન દીસૂત્ર સરસપુર સઘના સદ્ગત સઘપતિ શ્રી છગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર (માસ્તર) ના સ્મરણાર્થે છપાવી તેમના કુટુંબીજનોએ શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને સફળ બનાવવાની દિશામાં સારો એવો ટેકો આપ્યો છે અને એ માટે શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તેઓને આભાર સાથે ધન્યવાદ આપે છે

શ્રી છગનલાલનો જન્મ સને ૧૮૮૨ ની ૧૫ મી ડીસેમ્બરના રોજ કડી-ઉત્તરગુજરાત મુકામે થયો હતો તેમના પિતાનું નામ શામળદાસ તથા માતાનું નામ અથલા બહેન હતું આર્થિક પરીસ્થિતિ સાનુકુળ ન હોવાને કારણે શામળદાસે પોતાનું લાગ્યનિર્માણ કરવા મૂળ વતન કડી છોડીને પોતાના ત્રણ પુત્રો-હરગોવનભાઈ, છગનભાઈ તથા મનસુખભાઈને સાથે લઈને અમદાવાદ તરફ પ્રયાણ કર્યું તે વખતના સરસપુર શ્રી સઘના આઘ સઘપતિ શ્રી જીવાભાઈ ઘેલાભાઈ ભાવસારે સંપૂર્ણ સહકાર આપી તેમને સરસપુરમાં સ્થાયી બનાવ્યા

આહી રહીને છગનલાઇએ ગામઠી શાળામા અભ્યાસ કર્યો ત્યાર બાદ સુપ્રસિદ્ધ દાનવીર મર ચિનુલાઈની માધુલાઈ મીલમા મામિક ફક્ત ચાર રૂપી-આના પગારે નોકરીમા દાખલ થયા ધર્મનિષ્ઠતા, પ્રમાણિતતા અને કાર્યદક્ષતાને કારણે તેમણે શેઠશ્રી નર ચીનુલાઈને પ્રેમ સપાદન કર્યો અને સામાન્ય કામદારમાથી રૂા ૭૦૦૦ રૂપીયા સાતસોના માસીક પગારથી યુરોપીઅન વીવીગ માસ્તરની જગાએ તેમની નિમણૂક વઈ તેમની સરળતા અને કાર્યદક્ષતાને કારણે બીજી જગાએથી આવતી વધારે પગારની ઓફર તેમણે નકારી કાઢી અને જણાવ્યું કે નોકરી તો સર ચીનુલાઈનીજ કરીશ અને માધુલાઈ મીલમા ૩૩ વર્ષની એકધારી મરવાસ બાદ રાજનામુ આપી આત્મકલ્યાણના માર્ગ તરફ વળ્યા દરમ્યાન તેમના ભાઈ હરગોવીંદલાઈ સ્પીનીગ માસ્તર અને મન-સુખલાઈ વીવીગ માસ્તરની પદવી સુધી પહોંચ્યા એકવેળા તેઓ તેમના ગોરા ઓફીસર સાથે બેસીને વાત કરી રહ્યા હતા ત્યારે તેમના પિતાશ્રી શામ-જાડાસલાઈ તેમને મળવા આવ્યા પોતાના પુત્રને ગોરા ઓફીસરની હરોળમા બેઠેલો જોઈ એમની આખમા હર્ષના આસુ આવ્યા અને તેમને ખાત્રી થઈ કે પોતાના પુત્રોની ઉત્તતી પાછળ શાસનદેવની કૃપા છે ધર્મો રક્ષતિ રક્ષિત - જે ધર્મનું પાલન કરે છે તેનું રક્ષણ ધર્મ કરે છે એ પ્રમાણે જ બન્યું છે

જૈન ધર્મના પ્રતાપે તેમનામા દયાનો ભાવ ઘણો જ ખીંચ્યો હતો તે સમયમા રૂપીયા સાતસો માસીક કમાતો આ ઓફીસર જીવદયાના હેતુસર સવાર પડે ને હાથમા કુતરાના રોટલાની જોળી પઠી ઘેર ઘેર માગવા નીકળી પડે ગામમાથી રોટલા ઉઘરાવે, જોળી ખલે નાખી હાથમા ચકલા ક્યુતર, ખીસકોલી માટે ચણા અને કીડીઓના નઘરા પુરવા લોટ લઈ ને વગડામા નીકળી પડે પશુ પક્ષાઓ સમયસર તેમની રાહ જોતા ઉભા જ હોય આત્મવત્ સર્વમૂતેપુ ઉક્તિ સુજબ પ્રાણીઓ સાથે મેત્રી બાધી તેમની સેવા કર્યે જતા, અને યથાશક્ય ગરીબગરબાને પણ મદાય કરતા તેમા તેમની નિરભિમાનતા અને જીવદયા પ્રત્યેની ઉચી ભાવના જણાઈ આવે છે

એકવાર એક કુતરૂ માદુ હોવાથી ચાલી શકતુ નહોવાને કારણે તેની પાસે બેસીને તેનું મો ઉઘાડી તેને ખવડાવતા હતા ખવડાવતા જ પલે કુતરાના મોમા જતા આગળીએ પહેરેલી સોનાની વીટી કુતરાના મોમા સરી ગઈ તેઓ સમય પારખી ગયા કે જો હોહા ડરીશ તો સોનાની વીટીની લાલચે કોઈ કુતરાને મારી નાખશે તેથી મૌન સેવ્યું અને જીવનની આખરી સધ્યા સુધી એ જીવદયાનું કાર્ય યથાવત્ બરી રાખ્યું

સાતસોના વિવીગમાસ્તર બનવા છતાં તેમણે કહી પણ પાટણુન પહેર્યું જ ન હતું એકવાર કેઈ કારણસર મજુર મહાન તરફથી મીનને આપે ચલા ભરાઈ હતી પૂન્ય ગાધીજી અને અનસૂયા બહેન હાનર હતા મીટીગનુ કાર્ય શરૂ થતા ગાધીજીએ માસ્તરને બોલાવવા જણાવ્યું કારીગર વર્ગે જોતી ઉભે, “બાપુ! માસ્તર તો અમારાં વચમાજ બેઠેલા છે” સાબરમતિના એ મત માસ્તરનાં આ માહાઈ અને નીરભિમાનપણાને અને પોતાના કામદારો પ્રત્યેની મમતાને ભેઈ નવાઈ પામ્યા

રીટાયડ થયા બાદ તેમણે પોતાના મમત્ર જીવનનું વહેણ પાર્થિવ પ્રવૃત્તિમાર્ગ ખસેડી આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિમા વાળ્યું સરસપુરનો તે વખતનો જુનો ઉપાશ્રય ઘણો અગવડ ભર્યો હતો બારણા એટલા નોચા હતા કે સાધુ-સાધ્વી જીઓના માથા અથડાય છગનભાઈએ નિર્ણય ઠર્યો કે સાધુ-સાધ્વીજીઓને સારી રીતે રાખવા હોય તો ઉપાશ્રયનો જીર્ણોદ્ધાર જરૂરી છે પણ સઘ પાસે જરૂરીનાણા નહતા ખીજેથી મદદ મળે તેમ ન હતી તેથીગચ્છાધિપતિ પૂન્યશ્રી હાથીજી મહારાજ પાસે આશિર્વાદ માગી જીર્ણોદ્ધારનુ શુભ કાર્ય પોતાના ભાઈએ હરગોવિન્દન તથા મનસુખભાઈના સહકારથી સ્વખર્ચે શરૂ કર્યું તે વખતે એમના એક જ્યોતિષી મિત્રે આગાડી ઠરી કે “માસ્તર, ફર રહીને કામ લેજો માથે બારમો રાહું ગાળે છે” તેથી ફર રહીને ઉપાશ્રયના કાર્યની દેખરેખ રાખતા હતા લલાટના લેખ મિથ્યા થતા નથી તેમ કારણ ઉપસ્થિત થતા તેમને ઉપાશ્રયમા દાખલ થવું પડ્યું સીડી ચઢતા જ લોખંડની મોટી ઠાશ ઉપરથી સીધી તેમના માથા ઉપર ઘા કરવા ધસી આવી પણ જેને ધર્મનું શરણુ છે તેને મારનાર કેઈ નથી એ ઉક્તિ પ્રમાણે સાધારણ ઈબ્બ થઈ તેમના રક્તથી ઉપાશ્રયની ધરતીને તૃપ્તિ મળી અને તેઓ આ લયકર વિશ્વમાથી બચી ગયા એ દૈવા અમત્કાર જ કહેવાય

શાસનદેવની કૃપાથી ઉપાશ્રયનું કાર્ય પૂર્ણ થયું છગનભાઈ એક દિવસ પૂન્યશ્રી હાથીજી મહારાજને સુખશાતા પુછવા છી પાપોળના ઉપાશ્રયે ગયા પૂન્યશ્રીએ ઉપાશ્રય અંગે પુછપરછ કરી છગનભાઈએ શ્રી સઘની આર્થિક સ્થિતિ અને કેવા સ્નેહોમા ઉપાશ્રય બધાયો તેની વીતકકથા કહી પૂન્યશ્રીએ જણાવ્યું કે ફીકર ન કરશો શાસનદેવની કૃપાથી સૌ સારા વાના થશે આતુમોસ પૂરૂ થએ પૂન્યશ્રી સરસપુરના ઉપાશ્રયે પધાર્યા અને થોડા દિવસ બાદ સમાધિ પૂવક કાળધર્મ પામ્યા ઉછામણી સારી થઈ અને તેઓશ્રીના ધર્મોપદેશના મતાપે સરસપુર શ્રી સઘની ઉન્નતિ ઉત્તરોત્તર થતી ગઈ છે

છગનભાઈ સવારે કુતરાના રોટલા નાખ્યા પછી ઉપાશ્રયે વ્યાખ્યાનમાં જતા સાજના શહેરના ઉપાશ્રયોમા સાધુસાધ્વીજીની સુખશાતા પુછવા જતા તે પછી સાજનો સમય ગુજરાત કલબમા ગાળતા એ તેમનો નિત્યક્રમ થઈ પડ્યો હતો

મને ૧૯૪૪ ના મકરસંક્રાન્તિના દિવસે કુતરાને રોટલા નાખવા જઈ આવ્યા પછી તેમને એકાએક હાટ એટક થયો તેમાથી બચવાની સલાવના ઝોાઈ લાગી એટલે ધર્મપ્રણાલિકા મુજબ વ્રત પચ્ચખાણુ કરી લીધા પોતાના હાથે જે ઠાઈ દાનપુણ્ય કરવા જેવું હતું તે કરી લીધું તેઓશ્રી દેવલોક પામ્યા તે દિવસે સવારે યુવાચાર્ય શાતભૂર્તિ પૂજ્યશ્રી ભાઈચ દજી મહારાજ સાહેબ તેમની ખબર કાઢવા પધાર્યા તેમણે ફરીથી પ્રેમભાવે વ્રત પચ્ચખાણુ કરાવ્યા છગનભાઈએ કીધું કે “ મરણની મને ચિંતા નથી બીજા પોટલા સાથે તૈયાર છું આહી પણ સાધુ-સાધ્વીજીની સેવા મળી અને બીજી ગતિમા પણ કરીશ મારે તો બન્ને સ્થળે આનંદ જ આનંદ છે ” અને તેજ રાત્રે-તા ૧૯-૧-૧૯૪૪ ના રોજ વાત કરતા કરતા તેમણે નશ્વર દેહનો ત્યાગ કર્યો તેમના પરિચયમા આવનાર સૌ કોઈએ આઘાત અનુભવ્યો સઘાડાના મર્વ સાધુ સાધ્વીજીઓ અને સંઘોમા શોકની લાગણી છવાઈ ગઈ

છગનભાઈ તો ગયા પણ તે પછીની તેમની અધુરી રહેલી શાસન સેવા તેમના પત્ની જમનાબેન તથા તેમના સુપુત્રો ભોગીભાઈ, છોટાભાઈ, શકરાભાઈ તથા તેમના બહોળા કુટુંબે ઉપાડી લીધી પૂજ્ય શ્રી ઇન્દરલાલજી મહારાજ સાહેબની શુભાશિષ્યી શ્રી ભોગીભાઈએ સરસપુર સઘતું સુકાન સલાજ્યુ ગહેરની રોનક બદલાવા માડી તેની સાથે મ્યુનીસીપાલીટી તરફથી આકરા કાયદાઓ થવા માડ્યા રસ્તા ઉપર પાણી પણ ઢોળી ન શકાય તો ધર્મ કરણી કરનારાં ઓએ ધર્મકરણી કરવી શી રીતે ? સમસ્ત શહેરના મઘપતિઓને આ મુજબણુ ઉભી થવા માડી સરસપુર મઘના સદ્ભાગ્યે સદ્ગત સઘપતિ શ્રી છગનભાઈએ ધર્મકરણી કરનારાઓના ઉપયોગ માટે વાડા સહિતની ખુલ્લી જમીન દીર્ઘદષ્ટિ વાપરી અગાઉથી રાખેલી હતી આ જમીન ઉપર નજર મડાઈ આ જગામા ઉપાશ્રય બાધવામા આવે તો ધર્મકરણી કરતાં જીવોને કોઈ રીતે અગવડ ન પડે એ હેતુથી ઉપાશ્રય બાધવા માટે વિચાર કર્યો પણ શ્રી સઘ પાસે પુરતું ભડોળ ન હતું અને ઉપાશ્રય બાધ્યા વગર ચાલે તેમ ન હતું

વ્યાપારમા સાહસ વગર દ્રવ્યોપાજ્ઞન થતું નથી તેમા સૌ કોઈ સાહસ ખેડે પણ ધર્મના કાર્યમા પૈસા ખરચવાનું સાહસ કોણ ખેડે ? ક્ષત વિરલા

સાતસોના વિવીગમાસ્તર ખનવા છતાં તેમણે કહી પણ પાટલુન પહેયું જ ન હતું એકવાર કોઈ કારણમર મજુર મહાજન તરફથી મીવને એ ચખા ભરાઈ હતી પૂજ્ય ગાંધીજી અને અનસૂયા બહેન હાજર હતા મીટીંગનું કાર્ય શરૂ થતા ગાંધીજીએ માસ્તરને બોલાવવા જણાવ્યું કારીગર વર્ગ બોલી ઉઠ્યો, “બાપુ! માસ્તર તો અમારાં વચમાજ જેઠેલા છે” ગાળરમતિના એ સત માસ્તરની આ સાદાઈ અને નીરબિમાનપણાને અને પોતાના કામદારો પ્રત્યેની મમતાને જોઈ નવાઈ પામ્યા

રીટાયડ થયા બાદ તેમણે પોતાના ગમત્ર જીવનનું વહેણ પાર્થિવ પ્રતિમાથી ખસેડી આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિમા વાળ્યું સરસપુરનો તે વખતનો જુનો ઉપાશ્રય ઘણો અગવડ ભર્યો હતો ખારણા એટલા નીચા હતા કે સાધુ-સાધ્વી જીઓના માથા અથડાય છગનભાઈએ નિર્ણય કર્યો કે સાધુ-સાધ્વીજીઓને મારી રીતે રાખવા હોય તો ઉપાશ્રયનો જીર્ણોદ્ધાર જરૂરી છે પણ સઘ પાસે જરૂરીનાણા નહતા ખીજેથી મદદ મળે તેમ ન હતી તેથીગચ્છાધિપતિ પૂજ્યશ્રી હાથીજી મહારાજ પાસે આશિર્વાદ માગી જીર્ણોદ્ધારનુશુભ કાર્ય પોતાના ભાઈઓ હરગોવનદામ તથા મનસુખભાઈના સહકારથી સ્વખર્ચે શરૂ કર્યું તે વખતે એમના એક જ્યોતિષી મિત્રે આગાહી કરી કે “માસ્તર, દૂર રહીને કામ લેજો માથે ખારમો શહુ ગાજે છે” તેથી દૂર રહીને ઉપાશ્રયના કાર્યની દેખરેખ રાખતા હતા લલાટના લેખ મિથ્યા થતા નથી તેમ કારણ ઉપસ્થિત થતા તેમને ઉપાશ્રયમા દાખલ થવું પડ્યું સીડી ચઢતા જ લોખડની મોટી ક્રેશ ઉપરથી સોધી તેમના માથા ઉપર ઘા કરવા ધસી આવી પણ જેને ધર્મનું શરણ છે તેને મારનાર કોઈ નથી એ ઉક્તિ પ્રમાણે સાધારણ ઈજ્જત થઈ તેમના રક્તથી ઉપાશ્રયની ધરતીને તૃપ્તિ મળી અને તેઓ આ ભયકર વિશ્નમાથી ખચી ગયા એ દૈવી ચમત્કાર જ ડહોવાય

શાસનદેવની કૃપાથી ઉપાશ્રયનું કાર્ય પૂર્ણ થયું છગનભાઈ એક દિવસ પૂજ્યશ્રી હાથીજી મહારાજને સુખશાતા પુછવા છી પાપોળના ઉપાશ્રયે ગયા પૂજ્યશ્રીએ ઉપાશ્રય અગે પુછપરછ કરી છગનભાઈએ શ્રી સઘની આર્થિક સ્થિતિ અને કેવા સજ્જોગમા ઉપાશ્રય ખધાયો તેની વીતકકથા કહી પૂજ્યશ્રીએ જણાવ્યું કે ફીકર ન કરશો શાસનદેવની કૃપાથી સૌ સારા વાના થશે આતુમ્મસ પૂરૂ થએ પૂજ્યશ્રી સરસપુરના ઉપાશ્રયે પધાર્યા અને થોડા દિવસ બાદ સમાધિ પૂર્વક કાળધર્મ પામ્યા ઉછામણી સારી થઈ અને તેઓશ્રીના ધર્મોપદેશના પ્રતાપે સરસપુર શ્રી સઘની ઉત્તિ ઉત્તરોત્તર થતી ગઈ છે

સમિતિના સભ્યો અને શ્રી ભોગીલાઈ ભટ્ટિક અને સરળ સ્વભાવી પૂન્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજસાહેબ પામે વિનતિ કરવા ગયા અને પૂન્યશ્રીએ પૂન્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબનું મવત ૨૦૧૩નું ચાતુર્માસ સરસપુર મુકામે યાચ તેમા એમની સહુર્ષ સમતિ આપી, સરસપુરના શ્રી સઘ અને સમિતિ ઉપર મહાન ઉપકાર કયો ચાતુર્માસ નક્ષિ થતા મરસપુરના અને શહેરના અન્ય શ્રી સઘોમા અકથ્ય આનંદ વ્યાપી રહ્યો

પૂન્ય શ્રી અત્યારે સરમપુરના ઉપાશ્રયે બીરાજી વયોવૃદ્ધ ઉમ્મર હોવા છતા ભાવિ પ્રજના હીતાર્થે અવિરત પરિશ્રમ ઉઠાવી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરી રહ્યા છે ભાગ્યયોગે શ્રી છગનભાઈના કુટુંબીજનો તથા મરસપુરના શ્રી સઘને પૂન્યશ્રી તથા શાસ્ત્રની સેવાનો પરમયોગ પ્રાપ્ત થયો તે તેમના માટે ગૌરવનો વિષય છે

અ ભા શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,



એજ ખેડી શકે એક બાબુ સાધુ-સાધ્વીજીઓની સરસપુર ગ્રામ પ્રત્યેની ચાહના બીજી બાબુ તેમને રાખવા માટેના મ્યુ તરફથી થતા અતરાયો કાતો ધર્મ પ્રત્યેની મમતા કાતો ધન પ્રત્યેની મમતા બંનેમાથી એક સ્વીકારવાનું હતું તે પણ કોઈની સહાય વિના મધ્યમ વર્ગના એક માનવીને પોતાના ગભ ઉપરાતનુ સાહસ ખેડવાનું હતું સાહસ ખેડે તો જ આ કાર્ય થાય એમ હતું શ્રી ભોગીલાઈએ વિચાર્યું કે ભે કુદરતની ઇચ્છા આ ઉપાશ્રય બાધવામા અને નિમિત્ત બનાવવા માગતી હોય તો આ લાભ માટે શા માટે જતો કરવો ? ધન તો પુણ્યને આધીન છે પુણ્ય હોય ત્યાં સુધીજ લક્ષ્મી ટકે છે “ ધર્મ કરતા કોઈની લાજ ગઈ નથી બાણી રે ” એ ઉક્તિ મુજબ વિચાર કરી પોતે ઉપાશ્રય બધા વવા નિર્ણય કર્યો પરોપકાર ખાતર તન, મન અને ધનનું સમર્પણ કરનાર આવા વિરલા તો કોઈકજ હોય છે તેઓશ્રીના ત્રણ સુપુત્રો છે જ્યતીલાઈ, દીનેશલાઈ, અને રમણલાઈ તે ઉપરાત છોટાલાઈને લક્ષમણલાઈ તથા શકરાલાઈને અરવિન્દલાઈ નામે સુપુત્રો છે આ બધા ભાઈઓમા પણ તેમના પૂર્વજોનો વારસો અત્યારથી જ પ્રજ્વલિત દેખાય છે આજે પૂજ્ય આચાર્યશ્રી દ્વારા જે અપૂર્વ માહિત્ય-લેખનનું કાર્ય સરસપુર મુકામે સમિતિ કરાવે છે તેમા પણ શ્રી ભોગીલાઈનો સારો એવો હિસ્સો છે અતિથિ, તથા સ્વધર્મ બંધુઓ પ્રત્યે જે વાત્સલ્ય છે, તે અપૂર્વ છે, તેવો જ કાયમ માટે રહે તેમ પરમકૃપાલુ પરમાત્મા પ્રત્યે પ્રાર્થના છે આ ઉપરના કાર્યને સુદર બનાવવામા તેમના ભાઈ છોટાલાલભાઈ તથા શકરાલાઈ તેમજ રતિલાલભાઈ આદિ સરસપુર શ્રી સઘે પણ ખૂબ સહકાર આપ્યો છે ને આપી રહ્યા છે તે બદલ તે સૌને ધન્યવાદ ઘટે છે

શ્રી ભોગીલાઈએ આ ઉપાશ્રયના બાધકામનું સાહસ ખેડ્યું, અને શાસનદેવની કૃપાથી હેમજેમ કોઈ પણ જાતની અડચણ શીવાય ગર્વ પૂર્ણ થયું બાણેકે ઇગનલાઈનું અધુરું કાર્ય પૂર્ણ થયેલું ભેવાજ જીવ્યા હોય તેમ ઉપાશ્રયનું કામ આ બાબુ પૂર્ણ થયું અને શ્રી ભોગીલાઈના માતૃશ્રી જમનાબેન ૨૦૧૩ના રામનવમીના રોજ દેવલોક પામ્યા તેઓની સેવા સૌ ભાઈઓએ બનતા પ્રયાસે ઘણી સારી રીતે કરી

કુદરતની વાત ન્યારી છે એક બાબુ અનુકુળતાવાળો ઉપાશ્રય તૈયાર થયો બીજી બાબુ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ સાહેબને શાસ્ત્રોદ્ધારનું ભગીરથ કાર્ય અમદાવાદ મુકામે રહીને કરવા વિનંતિ કરી પૂજ્યશ્રીએ માન્ય રાખી સમિતિના સહઅહરથી આમ ત્રણ તો આપી આવ્યા પણ સ્થળની શોધમા પડ્યા ભોગાનુભોગ તેમની દષ્ટિ સરસપુરના ઉપાશ્રય ઉપર પડી,

श्री
श्री नन्दीसूत्रस्य
विषयानुक्रमणिका

	विषय-	पृष्ठाङ्कः-
	स्यविरावलि.	
१	मङ्गलाचरणम्	१-५
२	उपोद्घातः	६-९
३	ज्ञाननिरूपणम्	१०-६७०
१	पंचविधज्ञाननामानि	१०
२	आभिनिर्गोधिकज्ञानवर्णनम्	११-१४
३	श्रुतज्ञानवर्णनम्	१४-१५
४	अवधिज्ञानवर्णनम्	१५-१७
५	मनःपर्ययज्ञानशब्दार्थः.	१८-२०
६	केवलज्ञानशब्दार्थः	२२-२५
७	अवध्यादिज्ञानतः पूर्वं मतिश्रुत- ज्ञानवर्णने हेतुः	२६
८	मतिज्ञानानन्तरं श्रुतज्ञाननिर्देशहेतुः	२७
९	मतिश्रुतज्ञानानन्तरमवधिज्ञान- स्योपन्यासे हेतुकथनम्	२८-२९
१०	मनःपर्ययज्ञानानन्तरं केवलज्ञानो- पन्यासे हेतुकथनम्	३०
११	पञ्चविधज्ञानस्य सक्षेपतो द्वैविध्येन निर्देशः	३१
१२	प्रत्यक्ष शब्दार्थः	३२
१३	प्रत्यक्षलक्षणम्	३३-३५
१४	परोक्षशब्दार्थः	३६
१५	प्रत्यक्षभेदवर्णनम्	३६-३७
१६	इन्द्रियप्रत्यक्ष भेदवर्णनम्	३८-४३
१७	नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष भेदवर्णनम्	४४

	विषय—	पृष्ठाङ्कः—
४६	मनःपर्यायज्ञानभेदवर्णनम्	१७७-१९४
४६	केवलज्ञानवर्णनम्	१९४-२७४
४७	केवलज्ञान भेदस्य केवल शब्दस्य पर्यायाणां पर्यायार्थानां च वर्णनम्	१९४-१९८
४८	सभेदस्य भवस्थ केवलज्ञानस्य वर्णनम्	१९८-२०१
४९	सभेदस्य सिद्धकेवल ज्ञानस्य वर्णनम्	२०२
५०	तीर्थसिद्धादिपदानम् अर्थनिर्देशपूर्वकं क्वचित् क्वचित् तत्तत्पद सार्थक्य निर्देशः	२०३-२११
५१	स्त्रीमोक्षसमर्थनम्	२१२-२६५
५२	सभेदस्य परस्पर सिद्धकेवल ज्ञानस्य वर्णनम्	२६६-२६७
५३	प्रकारान्तरेण सभेदकेवल ज्ञान वर्णनम्	२६८-२७४
५४	परोक्षज्ञानवर्णनं, परोक्षज्ञान भेदस्यान्योन्यानुगतत्वेऽपि पार्थक्येन प्रतिपादनं, श्रुतज्ञानस्य मतिज्ञान पूर्वकत्ववर्णनम्, मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानपूर्वकत्वं निरसनं च	२७५-२९४
५५	मतिज्ञान मत्यज्ञानयोः श्रुतज्ञान श्रुताज्ञानयोश्च वर्णनम्	२९४-३००
५६	सभेदस्य आभिनिबोधिक ज्ञानस्य वर्णनम् आभिनिबोधिकज्ञान भेदस्याश्रुतनिश्चितस्य चातुर्विध्यं प्रतिपादनं च	३०१-३०६
५७	औत्पत्तिकबुद्धेर्लक्षणम्	३०५-३०६
५८	औत्पत्तिकव्याबुद्धे रूदाहरणानि	३०६-३०७
५९	वैनयिकबुद्धेर्लक्षणम्	३०७-३०९
६०	वैनयिक बुद्धेरुदाहरणानि	३०९

	विषय-	पृष्ठाङ्कः-
१८	अवधिज्ञानमत्यक्ष भेदवर्णनम्	४४-४७
१९	भ्रमप्रत्ययिक मत्यक्षवर्णनम्	४६-४७
२०	क्षायोपशमिक स्वरूपवर्णनम्	४८-५३
२१	स्नेहमत्यय स्पर्धरूपरूपणा	५५-५७
२२	सर्वघाति प्रकृतिभेदवर्णनम्	५७-५८
२३	देशघातिप्रकृति भेदवर्णनम्	५८-५९
२४	अघातिप्रकृतिवर्णनम्	५९-६३
२५	क्षायोपशमिकभाप्रदादुर्भाववर्णनम्	६३-६९
२६	स्पर्धरु भेदप्ररूपणा	७०-७५
२७	प्रसङ्गतः प्रकृतीनां भावकथनम्	७५-७६
२८	प्रकारान्तरेणावधिज्ञानवर्णनम्	७६-७८
२९	मनः पर्ययज्ञानप्ररूपणा	७८-८०
३०	अवधिज्ञान भेदवर्णनम्	८०-८२
३१	सभेदानुगमिकावधिज्ञानवर्णनम्	८२-९६
३२	अनानुगमिकावधिज्ञानस्वरूपवर्णनम्	९६-९७
३३	वर्धमानकावधिज्ञानवर्णनम्	९८-१३९
३४	अवधिज्ञानस्यजघन्यक्षेत्रवर्णनम्	१००-१०८
३५	अवधिज्ञानस्योत्कृष्टक्षेत्रवर्णनम्	१०८-१२२
३६	अवधिज्ञानस्य मध्यमक्षेत्रवर्णनम्	१२२-१३१
३७	द्रव्यक्षेत्रकाल भावना मध्ये यस्य वृद्धौ यस्य वृद्धिर्भवति, यस्य च न भवतीति वर्णनम्	१३१-१३७
३८	क्षेत्रस्य कालादसख्येयगुणता प्रतीतौ हेतुरुथनम्	१३८-१३९
३९	हीयमानावधिज्ञानवर्णनम्	१४०-१४१
४०	प्रतिपात्यवधिज्ञानवर्णनम्	१४१-१४४
४१	अप्रतिपात्यवधिज्ञानवर्णनम्	१४५-१४७
४२	द्रव्याद्यपेक्षया अवधिज्ञानस्य भेदकथनम्	१४८-१५३
४३	सप्रहगाथास्यामवधिज्ञानवर्णनम्	१५३-१५८
४४	मनःपर्ययज्ञान स्वरूपवर्णनम्	१५८-१७६

	विषय-	पृष्ठाङ्कः-
८९	स्थानाङ्गस्वरूपवर्णनम्	५७९-५८३
९०	समवायाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	५८३-५८७
९१	व्याख्याप्रज्ञप्ति स्वरूप वर्णनम्	५८८-५९२
९२	ज्ञाताधर्मरूपा स्वरूप वर्णनम्	५९२-६००
९३	उपासकदशाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	६००-६०५
९४	अन्तकृतदशाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	६०५-६०८
९५	अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	६०९-६१२
९६	प्रश्नव्याकरण स्वरूप वर्णनम्	६१३-६१६
९७	विपाकश्रुत स्वरूप वर्णनम्	६१७-६२२
९८	दृष्टिवादाङ्ग भेदवर्णनम्	६२२
९९	सिद्धश्रेणिकापरिकर्मवर्णनम्	६२३-६२४
१००	मनुष्यश्रेणिकापरिकर्मवर्णनम्	६२५
१०१	पृष्ठश्रेणिकापरिकर्मवर्णनम्	६२६
१०२	अवगाढश्रेणिका परिकर्म वर्णनम्	६२६
१०३	अवगाढश्रेणिकापरिकर्मण उपसम्पा- दन श्रेणिकापरिकर्मणो विप्रहाण श्रेणिकापरिकर्मण च्युताच्युत श्रेणि- कापरिकर्मणश्च निरूपणम्	६२७-६२९
१०४	मूत्रभेदवर्णनम्	६३०-६३३
१०५	पूर्वगत भेदवर्णनम्	६३४-६४२
१०६	मूलप्रथमानुयोगवर्णनम्	६४२-६४५
१०७	गण्डिकानुयोगवर्णनम्	६४५-६४७
१०८	चूलिकावर्णनम्	६४८
१०९	दृष्टिवादाङ्गस्य वाचनादिप्रमाण वर्णनम्	६४८-६५०
११०	द्वादशाङ्गगत भावाभावदि पदार्थ वर्णनम्	६५२-६५३
१११	द्वादशाङ्गविराधनाऽऽराधना जनित फल वर्णनम्	६५४-६५६

	विषय-	पृष्ठाङ्कः-
६१	कर्मजाया जुद्धे लक्षणम्	३१०
६२	कर्मजाया युद्धे रुदाहरणानि	३१०
६३	पारिणामिक्या युद्धे लक्षणम्	३११-३१४
६४	पारिणामिक्या युद्धेरुदाहरणानि	३१४-३१५
६५	श्रुतनिश्चितमतिज्ञानभेदकथनम्	३१५-३२४
६६	अग्रह भेदनिरूपणम्	३२५-३८२
६७	व्यञ्जनावग्रह भेदनिरूपणम्	३३३-३६१
६८	अर्थावग्रह भेदनिरूपणम्	३६२-३६४
६९	अवग्रहनामानि	३६५-३८२
७०	ईहायाः भेदानां पर्यायाणां च वर्णनम्	३८२-३८४
७१	अत्राप्यस्यभेदानापर्यायाणां च वर्णनम्	३८५-३८७
७२	धारणा भेद वर्णनम्	३८८-३९०
७३	अवग्रहादीनां स्थितिकाल प्ररूपणम्	३९२
७४	सदृष्टान्त व्यञ्जनावग्रहरूपणम्	३९२-४०१
७५	सदृष्टान्त अर्थावग्रहनिरूपणम्	४०२-४२२
७६	मतिज्ञान भेदनिरूपणम्	४२३-४३८
७७	श्रुतज्ञान परोक्ष भेदा	४३८
७८	अक्षरश्रुतानक्षरश्रुत० भेद वर्णनम्	४३९-४५७
७९	संज्ञिश्रुतासंज्ञिश्रुतभेदवर्णनम्	४५७-४७१
८०	सम्यक्श्रुतभेदवर्णनम्	४७२-४८३
८१	मित्याश्रुत भेदवर्णनम्	४८४-४८८
८२	सम्यक्श्रुतस्य सादिपर्यवसितत्वा नाद्यपर्यवसितत्व निरूपणम्	४८९-५२३
८३	गमिकागमिकश्रुतवर्णनम्	५२३-५२४
८४	अङ्गमविष्टाङ्गवाद्यश्रुतभेदवर्णनम्	५२४-५२८
८५	अङ्गवाद्य श्रुतभेदवर्णनम्	५२८-५४६
८६	अङ्गमविष्ट श्रुतभेद वर्णनम्	५३७
८७	आचाराङ्ग स्वरूप वर्णनम्	५४८-५७०
८८	सूत्रकृताङ्गसूत्रस्य स्वरूपवर्णनम्	५७०-५७८

	विषय-	पृष्ठाङ्कः-
८९	स्थानाङ्गस्वरूपवर्णनम्	५७९-५८३
९०	समवायाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	५८३-५८७
९१	व्याख्याप्रज्ञप्ति स्वरूप वर्णनम्	५८८-५९२
९२	नाताधर्मरूपा स्वरूप वर्णनम्	६०२-६००
९३	उपासकदशाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	६००-६०५
९४	अन्तकृतदशाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	६०५-६०८
९५	अनुचरोपपातिरदशाङ्ग स्वरूप वर्णनम्	६०९-६१०
९६	प्रश्नव्याकरण स्वरूप वर्णनम्	६१३-६१६
९७	विपाकश्रुत स्वरूप वर्णनम्	६१७-६२०
९८	दृष्टिमादाङ्ग भेदवर्णनम्	६२०
९९	सिद्धश्रेणिकापरिकर्मवर्णनम्	६२३-६२५
१००	मनुष्यश्रेणिकापरिकर्मवर्णनम्	६२५
१०१	पृष्ठश्रेणिकापरिकर्मवर्णनम्	६२६
१०२	अवगाढश्रेणिका परिकर्म वर्णनम्	६२६
१०३	अवगाढश्रेणिकापरिकर्मण उपसर्ग्या- दन श्रेणिकापरिकर्मणो विच्छाण श्रेणिकापरिकर्मण च्युताच्युत श्रेणि- कापरिकर्मणश्च निम्नणम्	६२६ ६२७
१०४	मृत्रभेदवर्णनम्	६३१-६३३
१०५	पूरुगन भेदवर्णनम्	६३५-६३६
१०६	मृत्रमयमातृयोगवर्णनम्	६३७-६३८
१०७	गण्डिकातृयोगवर्णनम्	६३९-६४१
१०८	चुष्टिकावर्णनम्	६४१
१०९	दृष्टिवादाङ्गस्य शान्तदिव्यप्रणमणीयम्	६४१ ६४०
११०	द्रावदाङ्गस्य शान्तदिव्यप्रणमणीय वर्णनम्	६४०-६४३
१११	द्रावदाङ्गस्य शान्तदिव्यप्रणमणीय वर्णनम्	६४३-६४३

विषय-

पृष्ठाङ्क-

११२	द्वादशाङ्गस्य ध्रुवत्मादि प्रतिपादनम्	६५७-६६१
११३	शास्त्रोपसंहारः	६६१-६७०
४	औत्पत्तिकबुद्धेदृष्टान्ताः	६७१-७०७
१	भरतशिलादृष्टान्तः	६७१-६८१
२	मेघदृष्टान्तः	६८२-६८४
३	कुक्कुटदृष्टान्तः	६८४-६८६
४	तिलदृष्टान्तः	६८६-६८७
५	वालुकादृष्टान्तः	६८८-६८९
६	इस्तिदृष्टान्तः	६८९-६९१
७	अगडदृष्टान्तः	६९२-६९३
८	वनखण्डदृष्टान्त	६९३-६९४
९	पायसदृष्टान्तः	६९४-६९५
१०	अजादृष्टान्तः	६९९-७००
११	पत्रदृष्टान्तः	७०१-७०२
१२	खाडहिलादृष्टान्तः	७०२-७०३
१३	पञ्चपितृकदृष्टान्तः	७०३-७०७
५	औत्पत्तिकबुद्धेर्वाचनान्तरेण दृष्टान्ताः	७०७-७०७
१	भरतशिलापणितेतिदृष्टान्तद्वयम्	७०७-७११
२	वृक्षदृष्टान्तः	७११-७१२
३	क्षुल्लकदृष्टान्तः	७१२-७२१
४	पटदृष्टान्त	७२२-७२३
५	सरदृष्टान्तः	७२३-७२५
६	काकदृष्टान्तः	७२५-७२६
७	उच्चारदृष्टान्त	७२६-७२७
८	गजदृष्टान्तः	७२८-७२९
९	मण्डनदृष्टान्तः	७२९-७३१
१०	गोलकदृष्टान्तः	७३२
११	स्तम्भदृष्टान्तः	७३३

विषय-

पृष्ठाङ्क-

१२	सुखरूढष्टान्तः	७३३-७३५
१३	मार्गदृष्टान्तः	७३६-७३८
१४	स्त्रीदृष्टान्तः	७३८-७३९
१५	पतिदृष्टान्तः	७४०-७४१
१६	पुत्रदृष्टान्तः	७४२-७४४
१७	मधुसिक्थदृष्टान्तः	७४४-७४६
१८	मुद्रिकादृष्टान्तः	७४६-७५०
१९	अङ्कदृष्टान्तः	७५०-७५२
२०	नाणरूढष्टान्तः	७५२-७५४
२१	मिक्षुरूढष्टान्तः	७५५-७५७
२२	वेटकनिधानदृष्टान्तः	७५७-७६१
२३	शिक्षादृष्टान्तः	७६२-७६४
२४	अर्थशास्त्रदृष्टान्तः	७६५-७६६
२५	इच्छामहद्दृष्टान्तः	७६७-७६८
२६	शतसहस्रदृष्टान्तः	७६८-७७०
६	वैनयिकबुद्धेर्दृष्टान्ताः	७७१-८००
१	निमित्तदृष्टान्तः	७७१-७७९
२	कल्पकमन्त्रिदृष्टान्तः	७७९
३	लिपिज्ञानदृष्टान्तः	७७९
४	गणितज्ञानदृष्टान्तः	७७९
५	कूपदृष्टान्तः	७७९-७८०
६	अश्वदृष्टान्तः	७८०
७	गर्दभदृष्टान्तः	७८१-७८३
८	लक्षणदृष्टान्तः	७८३-७८५
९	ग्रन्थिदृष्टान्तः	७८५-७८७
१०	अगददृष्टान्तः	७८८-७८९
११	रथिक दृष्टान्त गणिकादृष्टान्तौ	७९०
१२	शाटिकादि दृष्टान्तः	७९०-७९२
१३	नीत्रोदक दृष्टान्तः	७९२-७९४
१४	वृषभहरणादिकः पञ्चदशो दृष्टान्तः	७९४-८००
७	कर्मजाया बुध्धेर्दृष्टान्तः	८००-८०६
१	हैरण्यरूढष्टान्तः	८००
२	कर्परूढष्टान्तः	८०१-८०३

विषय-

पृष्ठाङ्क-

११२	द्वादशाङ्गस्य ध्रुवस्यादि प्रतिपादनम्	६५७-६६१
११३	शास्त्रोपसंहारः	६६१-६७०
४	औत्पत्तिरुद्युद्धेष्टान्ताः	६७१-७०७
१	भरतशिलादृष्टान्तः	६७१-६८१
२	मेघदृष्टान्तः	६८२-६८४
३	कुक्कुटदृष्टान्तः	६८४-६८६
४	तिलदृष्टान्तः	६८६-६८७
५	वालुकादृष्टान्तः	६८८-६८९
६	हस्तिदृष्टान्तः	६८९-६९१
७	अगडदृष्टान्तः	६९२-६९३
८	वनखण्डदृष्टान्तः	६९३-६९४
९	पायसदृष्टान्तः	६९४-६९५
१०	अजादृष्टान्तः	६९९-७००
११	पत्रदृष्टान्तः	७०१-७०२
१२	खाडहिलादृष्टान्तः	७०२-७०३
१३	पञ्चपितृकदृष्टान्तः	७०३-७०७
५	औत्पत्तिरुद्युद्धेर्वाचनान्तरेण दृष्टान्ताः	७०७-७०७
१	भरतशिलापणितेतिदृष्टान्तद्वयम्	७०७-७११
२	वृक्षदृष्टान्तः	७११-७१२
३	धुल्लकदृष्टान्तः	७१२-७२१
४	पटदृष्टान्तः	७२२-७२३
५	सरददृष्टान्तः	७२३-७२५
६	काकदृष्टान्तः	७२५-७२६
७	उच्चारदृष्टान्तः	७२६-७२७
८	गजदृष्टान्तः	७२८-७२९
९	मण्डनदृष्टान्तः	७२९-७३१
१०	गोलकदृष्टान्तः	७३२
११	स्तम्भदृष्टान्तः	७३३

विषय-

पृष्ठाङ्क-

१२	सुल्लरुदृष्टान्तः	७३३-७३५
१३	मार्गदृष्टान्तः	७३६-७३८
१४	स्त्रीदृष्टान्तः	७३८-७३९
१५	पतिदृष्टान्तः	७४०-७४१
१६	पुत्रदृष्टान्तः	७४२-७४४
१७	मधुसिक्थदृष्टान्तः	७४४-७४६
१८	मुद्रिकादृष्टान्तः	७४६-७५०
१९	अङ्कदृष्टान्तः	७५०-७५२
२०	नाणरुदृष्टान्तः	७५२-७५४
२१	मिक्षुरुदृष्टान्तः	७५५-७५७
२२	चेटकनिधानदृष्टान्तः	७५७-७६१
२३	शिक्षादृष्टान्तः	७६२-७६४
२४	अर्थशास्त्रदृष्टान्तः	७६५-७६६
२५	इच्छामहद्दृष्टान्तः	७६७-७६८
२६	शतसहस्रदृष्टान्तः	७६८-७७०
६	वैनयिकबुद्धेर्दृष्टान्ताः	७७१-८००
१	निमित्तदृष्टान्तः	७७१-७७९
२	कल्पकमन्त्रिदृष्टान्तः	७७९
३	लिपिज्ञानदृष्टान्तः	७७९
४	गणितज्ञानदृष्टान्तः	७७९
५	कूपदृष्टान्तः	७७९-७८०
६	अश्वदृष्टान्तः	७८०
७	गर्दभदृष्टान्तः	७८१-७८३
८	लक्षणदृष्टान्तः	७८३-७८५
९	ग्रन्थिदृष्टान्तः	७८५-७८७
१०	अगददृष्टान्तः	७८८-७८९
११	रथिक दृष्टान्त गणिकादृष्टान्तौ	७९०
१२	शाटिकादि दृष्टान्तः	७९०-७९२
१३	नीत्रोदक दृष्टान्तः	७९२-७९४
१४	वृषभहरणादिकः पञ्चदशो दृष्टान्तः	७९४-८००
७	कर्मजाया बुद्धेर्दृष्टान्तः	८००-८०६
१	हैरण्यरुदृष्टान्तः	८००
२	कर्पकदृष्टान्तः	८०१-८०३

विषय-

पृष्ठाङ्क-

३	कौलिकदृष्टान्तः	८०३
४	दर्बीकारदृष्टान्तः	८०४
५	मौक्तिक दृष्टान्तः	८०४
६	घृतदृष्टान्तः	८०४
७	प्लवकदृष्टान्तः	८०५
८	तुलगायदृष्टान्तः	८०५
९	वर्षकदृष्टान्तः	८०५
१०	आपूपिकदृष्टान्तः	८०५
११	घटकार दृष्टान्त	८०६
१२	चित्रकारदृष्टान्तः	८०६
८	पारिणामिकबुधेर्दृष्टान्ताः ।	
१	अभयकुमारदृष्टान्तः	८०७
२	श्रेष्ठिदृष्टान्तः	८०७-८०९
३	कुमारदृष्टान्तः	८०९
४	देवीदृष्टान्तः	८१०-८११
५	उदितोदय दृष्टान्तः	८११-८१२
६	साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः	८१२-८१३
७	धनदत्तदृष्टान्तः	८१३-८१४
८	श्रावकदृष्टान्तः	८१४
९	अमात्यदृष्टान्त	८१५
१०	क्षपकदृष्टान्तः	८१५-८१६
११	अमात्यदृष्टान्तः	८१६
१२	चाणक्यदृष्टान्तः	८१७
१३	स्थूलमद्रदृष्टान्तः	८१७
१४	नासिक्यसुन्दरीदृष्टान्त	८१८
१५	वज्रदृष्टान्तः	८१८-८२१
१६	चरणाहतदृष्टान्तः	८२२-८२३
१७	आमण्ड-दृष्टान्तः	८२३
१८	मणिदृष्टान्तः	८२४
१९	सर्पदृष्टान्तः	८२५
२०	खड्गिदृष्टान्तः	८२५-८२६
२१	स्तूपेन्द्रदृष्टान्तः	८२६-८२७
	शास्त्रमशस्तिः	८२८-८२९

अथ स्थविरावली

मूलम्—

जयइ जगजीवजोणी,^८—^१वियाणओ जगगुरु^२ जगणंदो^३ ।
जगणाहो जगवधू,^४ जयइ^५ जगप्पियामहो^६ भयवं^७ ॥ १ ॥

छाया—

जयति जगज्जीवयोनि,—विनायको जगद्गुरुर्जगदानन्दः ।
जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जयति जगत्पितामहो भगवान् ॥१॥

अर्थः—

जगत् (तीन लोक) के जीवों की योनि (उत्पत्तिस्थान) के जाननेवाले तथा जगद्गुरु, जगदानन्द—सपिपचेन्द्रियरूप जगतको मोक्षाभ्युदयसाधक अमृतवर्षिणी देशना से ऐहलौकिक पारलौकिक आनन्द देनेवाले तथा दर्शनमात्र से आनन्द उत्पन्न करनेवाले, जगन्नाथ (चराचररूप जगत् के स्वामी) जगद्बन्धु (जगत् के बन्धुवत्)—सर्व प्राणि समुदायरूप जगत् को अहिंसारूपका उपदेश करनेसे रक्षक होने के कारण बन्धुके समान, जगत्पितामह (जगत् के जनक के जनक) — अर्थात्—सकल प्राणियों के नारकादि कुगति—विनिपात भय और अनर्थ (अनिष्ट) से रक्षा करनेके कारण पिताके समान सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित मूलगुण और उत्तरगुणों का समुदायरूप वर्म है उसके अर्थतः उत्पादक, भगवान् (सर्वैश्वर्य १ सम्पत् २ यश ३ श्री ४ ज्ञान ५ वैराग्य ६ रूप भगवाले) सर्वोत्कर्षसे बारवार (सदा) विराजते है ॥ १ ॥

मूलम्—

जयइ सुयाण पभवो,^१ तिथथराण^२ अपच्छिमो जयइ^३ ।
जयइ गुरु^४ लोगाण,^५ जयइ^६ महप्पा^७ महावीरो^८ ॥ २ ॥

छाया—

जयति श्रुताना प्रभवः तीर्थकराणामपश्चिमोजयति ।
जयति गुरुलोकाना, जयति महात्मा महावीरः ॥ २ ॥

अर्थः—

द्वादशरूप श्रुत (शास्त्र) के प्रथम (उपत्तिकारण) अर्थात् अर्थरूप से निर्माता तथा तीर्थकरों के मध्य में अपश्चिम अपसर्पिणीयाल के २४ तीर्थकरों के मध्यमे अन्तिम, और तीनों लोक के गुरु, तथा निःस्पृहभावसे तत्त्वोपदेशक महात्मा श्री महावीरस्वामी सर्वोत्कर्ष से चार चार (सदा) निराजते हैं ॥ २ ॥

मूलम्—

६ भइं सव्वज गुज्जोयगस्स, भइं जिणस्स वीरस्स ।
१ ७ ५ ४

८ भइं सुरासुरनमसियस्स, भइ धूयरयस्स ॥ ३ ॥
२ ९ ३

छाया—

भद्र सर्वजगद्दुद्घोतकस्य, भद्र जिनस्य वीरस्य ।

भद्र सुरासुरनमस्यितस्य, भद्र धूतरजस ॥ ३ ॥

अर्थः—

सब जगत् के उद्घोतक-ज्ञानरूप नेत्र दे कर जगत् को प्रकाशित करनेवाले सुर और असुरों से वन्दित कर्मधूली को निवारण करनेवाले श्रीमहावीरस्वामी जिन का चार चार (सदा) कल्याण हो ॥ ३ ॥

मूलम्—

(श्री सङ्घस्तुति -)

गुण भवण गहणसुयरयण,—भरियदसण विमुद्धरत्थागा ।
१

३ संघनगर ! भइ ते, अखण्डचारित्तपागारा । ॥ ४ ॥
४ २

छाया—

गुणभवनगहनश्रुतरत्न,—भूतदर्शन विशुद्धरथ्याक ! ।

सङ्घनगर ! भद्र ते, अखण्डचारित्र्यमाकार ! ॥ ४ ॥

अर्थः—

गुणरूप घरोंसे गहन (दुर्गम) श्रुत (शास्त्र) रूप रत्नों से भरी हुई और

सम्यग्दर्शनरूप विशुद्ध (निर्मल) रथ्या (मार्ग) वाला और अखण्ड चारित्ररूप प्राकार (कोट) वाला हे सङ्घरूप नगर ! तेरा कल्याण हो ॥ ४ ॥

मूलम्—

सजम तव तुवारयस्स, नमो सम्मत्तपारियल्लस्स ।

अप्पडिचक्कस्स जओ, होउ सया संघचक्कस्स ॥ ५ ॥

छाया—

सयम तपस्तुम्भाऽऽरकस्य (क्राय) नमः सम्यक्त्वपरिकरस्य (राय) ।
अप्रतिचक्रस्य (क्राय) जयो भवतु सदा सङ्घचक्रस्य (क्राय) ॥ ५ ॥

अर्थः—

सयमरूप नाभि (मध्य भाग) और तपरूप आरा (चारो तरफ के काष्ठ) वाले सम्यक्त्व परिकर (उपर के भाग) वाले ऐसे शत्रुरहित सङ्घरूप चक्र को नमस्कार और उसकी जय सदा हो ॥ ५ ॥

मूलम्

भदं सील पडागू सियस्स, तव नियम तुरयजुत्तस्स ।

संघ रहस्स भगवओ सज्झाय सुनंदिघोसस्स ॥ ६ ॥

छाया—

भद्र शीलपताकोच्छ्रितस्य, तपो नियमतुरगयुक्तस्य ।
सङ्घरथस्य भगवतः स्वाध्यायमुनन्दि घोपस्य ॥ ६ ॥

अर्थः—

शील (सद्वृत्त) रूप पताका से उन्नत तप और नियमरूप दो घोड़ों से युक्त और पाच प्रकार के स्वाध्यायरूप माङ्गलिक शब्दवाले भगवान् (समस्तैश्वर्यादि पदकसम्पन्न) सङ्घरूप रथका कल्याण हो ॥ ६ ॥

मूलम्
 १ २
 कम्मरयजलोह विणिग्गयस्स, सुयरयणदीहनालस्स ।
 ३ ४
 पंचमहव्वय थिरकणिणयस्स, गुणकेसरालस्स ॥ ७ ॥

छाया—

कर्मरजोजलौघनिर्गतस्य, श्रुतरत्नदीर्घनालस्य ।
 पञ्चमहाव्रतस्थिरकर्णिकस्य, गुणकेसरप्रतः ॥ ७ ॥

मूलम्

५ ६
 सावगजणमहुयरपरिवुडस्स, जिणसूरतेयवुद्धस्स ।
 ८ ९ ७
 सघपउमस्स भद्द, समणगणसहस्रपत्तस्स ॥ ८ ॥ स्स

छाया—

श्रावकजन मधुकर परिवृतस्य, जिनसूर्यतेजोवुद्धस्य ।
 सङ्घपत्रस्य भद्रं, श्रमणगणसहस्रपत्रस्य ॥ ८ ॥ (युग्मम्)

अर्थः—

कर्मरूप रज (कीचड) और जलसमूहसे निकले हुए शस्त्ररूप रत्नमय लम्बायमान नालवाले अर्हिंसादि पाच महाव्रतरूप दृढ कर्णिकावाले, क्षमा-आर्जवादि उत्तरगुणरूप केसर (किञ्जल्क) वाले, श्रावक जनरूप भौरों से घेरे हुए तीर्थङ्कर-रूप सूर्यके तेज (किरण) से विकसित साधुसमूहरूप हजार पत्रवाले सङ्घरूप कमल का कल्याण हो ॥ ७-८ ॥

मूलम्

१ २ ५
 तव संजममयलछण, अकिरियराहुमुहदुद्धरिस । निच्चं ।
 ६ ४ ३
 जय संघचद्दि निम्मल,—सम्मत्तविसुद्धजोणहागा । ॥ ९ ॥

छाया—

तपः सयम मृगलाञ्छन ! अक्रियराहुमुखदुर्धर्ष ! नित्यम् ।
 जय सङ्घचन्द्र ! निर्मल,—सम्यक्त्व विशुद्धज्योत्स्नाक ! ॥ ९ ॥

अर्थः—

तपः प्रधान संयमरूप मृगचिह्नवाले अक्रिय (नास्तिकत्व) रूप राहुमुखसे दुर्जय निर्दोष सम्यक्त्वरूप स्वच्छ चन्द्रिकावाले हे सङ्घरूप चन्द्र ! तू सदा सर्वोत्कृष्ट हो ॥ ९ ॥

मूलम्

परति^१तिथय^२गहपहनासगस्स, तवतेयदित्तलेसस्स ।

नाणुज्जोयस्स^३ जए,^४ भदं^५ दमसंघसूरस्स^६ ॥ १० ॥

छाया—

परतीर्थिक ग्रहप्रभा नाशकस्य, तपस्तेजोदीप्तलेश्यस्य ।
ज्ञानोद्घोतस्य जगति, भद्रं दमसङ्घसूरस्य ॥ १० ॥

अर्थः—

परतीर्थिक (परदर्शनानुयायी) रूप ग्रहोंकी प्रभा को नाश करनेवाले तपस्तेजरूप चमकदार लेश्या (आत्मपरिणामविशेष) वाले ज्ञानरूप प्रकाशवाले, दम (इन्द्रियनिग्रह) प्रधानक सङ्घरूप सूर्यका जगत मे कल्याण हो ॥ १० ॥

मूलम्

भदं^७ धिइ^१ वेला परिगयस्स, सज्झाय योग मगरस्स ।

अक्खो हस्स^३ भगवओ,^४ संघसमुद्दस्स^६ रुदस्स^८ ॥ ११ ॥

छाया—

भद्रं धृतिवेलापरिगतस्य, स्वाध्याययोगमकरस्य ।
अक्षोभस्य भगवतः, सङ्घसमुद्रस्य विस्तीर्णस्य ॥ ११ ॥

अर्थः—

धैर्यरूप वेला (जलवृद्धि) से युक्त स्वाध्याययोग (स्वाध्याय रूप जलचरवाले) क्षोभरहित और विस्तृत विस्तारवाले भगवान् सङ्घरूप समुद्र का कल्याण हो ॥ ११ ॥

मूलम्

सम्महंसण वरवइर-दढरूढगाढावगाढपेढस्स ।^१

धम्मवर रयण मंडिय,-चामीयर मेहलागस्स ॥ १२ ॥^२

नियमूसियकणय,-सिलायलुज्जलजलंत चित्तकूडस्स ।^३

नदणवण मण हरसुरभि,-सीलगंधुद्धमायस्स ॥ १३ ॥^४

जीवदयासुंदरकंदरुद्धरिय, मणिवर मइंद इन्नस्स ॥^५

हेउसयधाउपलंगंत,-रयणदित्तो सहिगुहस्स ॥ १४ ॥^६

संवरवरजलपगलिय,-उज्जरप्पविरायमाण हारस्स ।^७

सावगजणपउररवंत-नच्चंतमोरकुहरस्स ॥ १५ ॥^८

विणयनयप्पवरमुणिवर,-कुरतविज्जुज्जलतसिहरस्स ।^९

विविहगुणकप्परुक्खग,-पलभरकुसुमाउलवणस्स ॥ १६ ॥^{१०}

नाण वर रयण दिप्पत,-कतवेरुलियविमलचूलस्स ।^{११}

वंदामि विणयपणओ,संधमहामंदरगिरिस्स ॥ १७ ॥ (कुलकं)^{१४ १३ १२}

छाया—

सम्यग्दर्शन वर वज्र,-दृढ रूढ गाढावगाढपीठस्य ।

धर्मवररत्नमण्डित चामीकर मेखला कस्य ॥ १२ ॥

नियमकनकशिलातलोच्छ्रितोज्ज्वलज्वलचित्त(त्र)कूटस्य ।

नन्दनवन मनोहरसुरभि,-शील गन्धोद्धुमायस्य ॥ १३ ॥

जीवदया सुन्दररुन्दरोद् दृप्त मुनिरमृगेन्द्राकीर्णस्य ।

हेतुशतधातु प्रगलद्रत्न दीप्तौपधिगुहस्य ॥ १४ ॥

संवरवरजलप्रगलितोज्जर प्रविराजमान हा (धा) रस्य ।

श्रावकजनमचुररवन्वृत्यन्मयूर कुहरस्य ॥ १५ ॥

विनयनत प्रवर मुनिवर स्फुरद्विद्युज्ज्वलच्छिवरस्य ।

विविधगुणकल्पवृक्षक भरकुसुमाकुलवनस्य ॥ १६ ॥

ज्ञानवररत्नदीप्यमान कान्तवैडूर्यविमल चूलस्य ।

वन्देविनयप्रणतः, सङ्गमहामन्दिरगिरेः ॥ १७ ॥ (कुलकम्)

अर्थः—

मैं सम्पददर्शनरूप उत्तम वज्रमय दृढ (स्थिर-चिरकालिक) अत्यन्त अव-
गाढ (भूमि में गडा हुआ) पीठ (आधारशिला) वाले तथा धर्मरूप उत्तम रत्नों से
शोभित सुवर्णमय मेखला (मध्यभाग) वाले नियमरूप सुवर्णमय शिलातल पर
उच्च उज्ज्वल (विमल) और भास्वर (चमकदार) चित्तरूप अद्भुत कूट (शिखर
-चोटी) वाले, सन्तोषरूप नन्दनवनसम्बन्धी चित्कार्णक सौरभ्य से युक्त शील
(सदाचार) रूप सुवास-(खूसबु) से सम्पन्न, जीवदयारूप सुन्दर (अच्छी)
कन्दरा (गुफा) में दृप्त (कर्मरूप शत्रु के प्रति और कुमतानुयायियों के प्रति
वादलब्धिसे सात्त्विक अभिमानवाले) मुनि शिरोमणिरूप सिंहासे व्याप्त (अधिष्ठित)
सैरुडों हेतुरूप धातु क्षायोपशमिकभाव से गिरते हुए शुभ विचाररूप रत्नों से
प्रकाशित आमर्षोपधि आदि औपधिवाली व्याख्यानशालारूप गुफा वाले पाच
आस्रवों का निरोधरूप संवररूप स्वच्छजलके गिरे हुए प्रशमादि विचारधारारूप
उन्नत झरनारूप धारावाले श्रावकजनरूप बहुत बोलते नाचते मोरवाली
कन्दरावाले, विनयसे नम्रीभूत उत्तम मुनिवररूप चमकती हुई विजलियों से शोभा-
यमान शिखरवाले, अनेक गुणरूप कल्पवृक्षके फलों के भर (समूह) और पुष्पोंसे
व्याप्त वनवाले, उत्तम ज्ञानरूप रत्नों से शोभायमान सुन्दर वैडूर्य मणिमय चोटी-
वाले सङ्गरूप महान् सुमेरु पर्वतको (मैं) विनय से प्रणत (अतिनम्र) हो वन्दन
करता हूँ ॥ १२-१७ ॥

मूलम्

गुणरयणुज्ज्वलकडय, सीलसुगधि तवमंडिउद्देस ।
 सुयवारसंगसिहर, संघमहामन्दर वन्दे ॥ १८ ॥

छाया—

गुणरत्नोज्ज्वलकटक, शील सुगन्धि तपोमण्डितोद्देशम् ।
 श्रुतद्वादशाङ्गशिखर, सहमहामन्दर वन्दे ॥ १८ ॥

अर्थः—

मैं गुणरूप रत्नमय स्वच्छ मध्य भागनाले तथा शील (सदाचार) रूप सुवास (सुसवू) से सुवासित, और तपस्या से शोभित, और उद्देश (अवयव) वाले द्वादशाङ्गशास्त्र वा शास्त्रके द्वादशाङ्गरूप शिखरवाले सहस्ररूपवडे सुमेरु पर्वतको वन्दता हू ॥ १८ ॥

मूलम्

नगर रह चक्र पउमे, चन्दे सूरि समुद्र मेरुम्भि ।
 जो उवमिज्जइ सघय, त सघ गुणाकर वन्दे ॥ १९ ॥

छाया—

नगरस्थचक्रपद्मे, चन्द्रे सूरि समुद्रे मेरौ ।
 य उपमीयते सतत, त सह गुणाकर वन्दे ॥ १९ ॥

अर्थः—

जो नगर, रथ, चक्र, कमल, चन्द्र, सूर्य, समुद्र और सुमेरु मे उल्लिखित किया जाता है अर्थात् नगरादियों की उपमा जिसमे दी जाती है उस गुणाकर (गुणकोखान) सघको मैं सदा वन्दन करता हू इसमे समुद्र और संघ इन दोनो शब्दमें प्राकृत होनेके कारण विभक्ति लोप हुआ है ॥ १९ ॥

मूलम्

(वदे) ^१उसभं ^२अजियं सभव-अभिनंदणसुमइ ^३सुप्पभसुपासं ।

^४ससिपुप्फदंतसीयल, ^५सिज्झस ^६वासुपूज्ज च ॥ २० ॥

^७विमलमणंत च ^८धम्म, ^९संति ^{१०}कुथु ^{११}अरं च ^{१२}महिं च ।

^{१३}मुनि ^{१४}सुव्वय ^{१५}नमिनेमि, ^{१६}पासं ^{१७}तह ^{१८}वद्धमाण च ॥ २१ ॥

छाया—

ऋषभमजितं सम्भय-मभिनन्दनसुमतिमुप्रभसुपार्श्वम् ।

शशिपुष्पदन्तशीतल-श्रेयास वासुपूज्य च ॥ २० ॥

विमलमनन्त च धर्म, शान्ति कुन्धुमर च महिं च ।

मुनिसुव्रत नमिनेमि, पार्श्वं तथा वर्द्धमानं च ॥ २१ ॥

अर्थः—

मैं श्री ऋषभदेवस्वामी श्री अजितनाथजी श्री सम्भरनाथजी श्री अभिनन्दजी श्री सुमतिजी श्री सुप्रभजी श्री सुपार्श्वनाथजी श्री चन्द्रप्रभजी श्री पुष्पदन्तजी (श्री सुविधिनाथजी) श्री शीतलनाथजी श्री श्रेयासनाथजी श्री वासुपूज्यजी श्री विमलनाथजी श्री अनन्तनाथजी श्री धर्मनाथजी श्री शान्तिनाथजी श्री कुन्धुनाथजी श्री अरनाथजी श्री महिनाथजी श्री मुनि सुव्रतजी श्री नमिनाथजी श्री नेमिनाथजी श्री पार्श्वनाथजी और श्री वर्द्धमान (श्री महावीर) स्वामी को मैं वन्दन करता हू ॥ २०-२१ ॥

मूलम्

^२पढमित्थ ^१इंदभूई, ^३वीए ^४पुण ^५होइ ^६अग्गिभूइत्ति ।

^९तइए ^८य ^{१०}वाउ ^{११}भूई, ^{१२}तओ ^{१३}वियत्ते ^{१४}सुहम्मो य ॥ २२ ॥

छाया—

प्रथमोऽत्र इन्द्रभूति द्वितीयः पुनर्भवत्यग्निभूतिरिति ।

तृतीयश्च वायुभूतिस्ततो व्यक्तः सुधर्मा च ॥ २२ ॥

अर्थः—

यहां (श्री महावीर स्वामीके शासनमें) प्रथम गणधर इन्द्रभृति (श्री गौतमस्वामी) हैं, फिर दूसरे अग्निभृति हैं और तीसरे पायुभृति हैं बाद चौथे व्यक्तस्वामी हैं पाचमे श्री सुधर्मास्वामी हैं ॥ २२ ॥

मूलम्

मंडियमोरियपुत्ते, अकंपिण् चैव अयलभाया य ।

मेयज्जे य पहासे गणहरा हुति वीरस्स ॥ २३ ॥

छाया—

मण्डित-मौर्यपुत्रावरुम्पितथैवाचल भ्राता च ।

मेतार्यश्च प्रभासो गणधराः सन्ति वीरस्य ॥ २३ ॥

अर्थः—

छट्टे मण्डित और सातमे मौर्यपुत्र गणधर हैं और ऐसे ही आठमे अरुम्पित और नवमे अचलभ्राता गणधर हैं । दशवे मेतार्यस्वामी और ग्यारवे प्रभास-स्वामी ये सब श्री महावीरस्वामी के गणधर हैं ॥ २३ ॥

मूलम्

निव्वुइपह सासणय, जयइ सयो सबभाव देसणय ।

कुसमय मय नासणय, जिणिद्वर वीर सासणय ॥ २४ ॥

छाया—

निर्वृत्तिपथ शासनक, जयति सदा सर्वभाव देशनकम् ।

कुसमय मद नाशनक, जिनेन्द्रवरवीरशासनकम् ॥२४॥

अर्थः—

मोक्षमार्ग का शासक सबपदार्यों का उपदेशक और कुसिद्धान्तों के अहङ्कार को नष्ट करने वाला जिनेन्द्रोंमें श्रेष्ठ श्री महावीर स्वामी का शासन सर्वोत्कर्ष से सदा विराजता है ॥२४॥

मूलम्

२ १ ५ ३ ४
सुहम्मं अग्निवेशाण, जवूनामं च कासवं ।

७ ६ ११ १० ९ ८
प्रभव कच्चायण वदे, वच्छं सिज्जंभवं तथा ॥ २५ ॥

छाया—

सुघर्माण मग्निवेश्यायन, जम्बूनामानं च काश्यपम् ।

प्रभव क्रात्यायन वन्दे, रात्स्य शय्यम्भव तथा ॥ २५ ॥

अर्थः—

मैं अग्निवेश्यायन गोत्र श्री सुघर्म स्वामी काश्यपगोत्र श्री जम्बूस्वामी कात्यायन गोत्र श्री प्रभमस्वामी आर वत्सगोत्रोत्पन्न श्री शय्यम्भवस्वामी को मैं वंदन करता हूँ ॥२५॥

मूलम्

२ १ १२ ४ ५ ३
जसभद्र तुंगिय वंदे, सभूय चैव माढरं ।

७ ८ ६ १० ११ ९
भद्रवाहुं च पाइन्न, स्थूलभद्र च गोयमं ॥ २६ ॥

छाया—

यशोभद्र तुङ्गिक वन्दे, सम्भूत चैव माढरम् ।

भद्रवाहु च प्राचीन, स्थूलभद्र च गौतमम् ॥२६॥

अर्थः—

मैं तुङ्गिकगोत्र श्री यशोभद्रस्वामी माढर गोत्र श्री सम्भूतस्वामी प्राचीन गोत्र श्री भद्रवाहुस्वामी और गौतमगोत्र श्री स्थूलभद्रस्वामी को वंदन करता हूँ, इन चारोंमें यशोभद्रस्वामी श्री शय्यम्भवस्वामी के शिष्य थे, श्री यशोभद्रस्वामी के शिष्य श्री सम्भूत (विजय) हैं श्री सम्भूतस्वामी के शिष्य श्री स्थूलभद्राचार्य हैं ॥२६॥

मूलम्

१ ५ २ ३ ४
एलावच्चसगोत्तं, वदामि महागिरि सुहृत्थि च ।

६ ७ ८ ९ १०
तत्तो कोसियगोत्त, बहुलस्स सरिच्चय वदे ॥ २७ ॥

अर्थः—

यहां (श्री महावीर स्वामीके शासनमें) प्रथम गणधर इन्द्रभूति (श्री गौतमस्वामी) है, फिर दूसरे अग्निभूति है और तीसरे वायुभूति है बाद चौथे व्यक्तस्वामी है पाचमे श्री सुधर्मास्वामी है ॥ २२ ॥

मूलम्

मंडियमोरियपुत्ते, अकंपिण् चैव अचलभाया य ।

मेयज्जे य पहासे गणहरा हुति वीरस्स ॥ २३ ॥

छाया—

मण्डित-मौर्यपुत्रावरुम्पितथैनाचल भ्राता च ।

मेतार्यश्च प्रभासो गणधरा सन्ति वीरस्य ॥ २३ ॥

अर्थः—

छट्टे मण्डित और सातमे मौर्यपुत्र गणधर है और ऐसे ही आठमे अकम्पित और नवमे अचलभ्राता गणधर है । दशवे मेतार्यस्वामी और ग्यारवे प्रभास-स्वामी ये सब श्री महावीरस्वामी के गणधर है ॥ २३ ॥

मूलम्

निव्वुइपह सासणय, जयइ सयो सब्बभाव देसणय ।

कुसमय मय नासणय, जिणिदवर वीर सासणय ॥ २४ ॥

छाया—

निर्वृतिपथ शासनक, जयति सदा सर्वभाव देशनकम् ।

कुसमय मद नाशनक, जिनेन्द्ररवीरशासनकम् ॥ २४ ॥

अर्थः—

मोक्षमार्ग का शासक सवपदार्यों का उपदेशक और कुसिद्धान्तों के अहङ्कार को नष्ट करने वाला जिनेन्द्रोमे श्रेष्ठ श्री महावीर स्वामी का शासन सर्वोत्कर्ष से सदा विराजता है ॥ २४ ॥

छाया—

त्रिसमुद्राख्यातकीर्ति, द्वीपसमुद्रेषु गृहीत [पेचालम्] प्रमाणम् ।
वन्दे आर्यसमुद्रम्, अक्षुभितसमुद्रगम्भीरम् ॥२९॥

अर्थः—

मैं पूर्वदक्षिण और पश्चिम इन तीन समुद्रपर्यन्त ख्यात कीर्तिवाले अनेक द्वीप और समुद्र के विषयमें इनके प्रमाण के जानकर अर्थाम् द्वीपसमुद्रप्रज्ञप्तिज्ञाता असुभित-सोभ रहित स्थिर समुद्र के समान गम्भीर श्री आर्यसमुद्राचार्यजी को बन्दन करता हूँ । ये आर्य समुद्र जी-शाण्डिल्यजी के शिष्य थे ॥ २९ ॥

मूलम्

१ २ ३ ५ ४
भणग करग झरग, प्रभावग णाणदंसणगुणाणं ।
९ ८ ६ ७
वदामि अज्जमगुं, सुयसागरपारगं धीरं ॥ ३० ॥

छाया—

भाणक कारक स्मारकं, प्रभावक ज्ञानदर्शनगुणानाम् ।
वन्दे आर्यमद्रगु, श्रुतसागरपाटक धीरम् ॥३०॥

अर्थः—

मैं कालिक आदि सूत्रों के पाठक [पढ़नेवाले] सूत्रोक्तक्रियाकलाप के कारक [करनेवाले] स्मारक धर्मके ध्यायक (ध्यान करनेवाले) इसी कारण से ज्ञान दर्शन और उपलक्षणतया चारित्ररूप गुणों के प्रभावक [प्रदीप्तकरने वाले] शास्त्र-रूप समुद्र के पारङ्गत और धीर [विकार कारण प्राप्त होने पर भी अक्षुब्धचित्तवाले] श्री आर्यमद्रगु-नामक आचार्य को बन्दन करता हूँ, ये आर्यमद्रगुजी श्री आर्यसमुद्रजीके शिष्य थे ॥३०॥

मूलम्

२ १ ३ ७ ४ ५ ६
वदामि अज्जधम्म, तत्तो वदे य भइगुत्त च ।
८ ९ १२ १० ११
तत्तो य अज्जवइर, तवनियमगुणेहि वइरत्तम ॥ ३१ ॥

छाया—

एलापत्यसगोत्र, वन्दे महागिरिं सुहस्तिनञ्च ।

ततः कौशिकगोत्र, बहुलस्य सहग्वस वन्दे ॥२७॥

अर्थः—

मैं एलापत्य गोत्र वाले श्रीमहागिरि और श्रीसुहस्त्याचार्यको वन्दन करता हूँ, उसके बाद कौशिक गोत्र [विश्वामित्र गोत्रोत्पन्न] श्री बहुलमुनिके समान-वयवाले बलिस्महजी को वन्दन करता हूँ । इनमें श्रीमहागिरिजी श्रीस्पूलभद्रजी के शिष्य थे, और श्रीसुहस्तीजी भी श्रीस्पूलभद्रजी के ही शिष्य थे, श्रीमहागिरिजी के श्रो बहुलजी और श्री बलिस्महजी ये दो प्रधान शिष्य थे ॥२७॥

मूलम्

१ २ ३ ७ ८ ५ ६
हारियुत्त साइ च, वदिमो हारिय च सामञ्ज ।

११ ८ ९ १०
वदे कौसियगोत्त, संडिहं अज्जजीय धरं ॥ २८ ॥

छाया—

हारीतगोत्र स्वीतिं च, वन्दामहे हारीत च श्यामार्यम् ।

वन्दे कौशिकगोत्र, शाण्डिल्यमार्यजीतधरम् ॥२८॥

अर्थः—

हम हारीतगोत्र श्री स्वात्याचार्य और हरीतगोत्र श्री श्यामार्यजी को वन्दन करता हूँ, मैं कौशिकगोत्र श्री शाण्डिल्याचार्य और श्रीआर्यजीतधराचार्यजी को वन्दन करता हूँ, इनमें श्री स्वातिजी बलिस्महजी के शिष्य थे, श्यामार्य श्रीस्वातिजी के शिष्य थे, किसीने श्यामार्य श्री शाण्डिल्यजी काही आर्यजीतधर यह विशेषण लगाकर वन्दन कहा है, उसका अर्थ—“मर्यादादर्शक सूत्रधारक है ॥२८॥

मूलम्

१ २ ३
तिसमुद्दखायकित्ति, दीवसमुद्देसु गहिय पेयालं ।

६ ५ ४
वदे अज्जसमुद्द, अक्खुभिय समुद्द गभीर ॥ २९ ॥

अर्थ —

मे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, च से सम्यक् चारित्र, तप और विनय मे सदा उद्यत (अप्रमादी) रागद्वेष रहित होने के कारण सदा मध्यस्थभाववाले आर्यश्री नन्दिल नामक क्षपण (तपस्वी) को मस्तरु से वन्दन करता हूँ। श्री नन्दिलजी श्री आर्यमहर्गुजी के शिष्य थे ॥३३॥

मूलम्

^५ वड्ढुड वायगवंसो, ^३ जसवतो ^४ अज्जनागहत्थीणं । ^२
^१
 वागरण करणभगिय, कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥ ३४ ॥

छाया—

वर्द्धता वाचकवशो, यशोवश आर्यनागहस्तिनाम् ।
 व्याकरण करण भाङ्गिरु-कर्मप्रकृतिप्रधानानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थः—

व्याकरण, करण (ज्योतिष), भङ्गजाल और कर्मप्रकृति आदि की प्ररूपणा मे सर्वश्रेष्ठ श्री आर्य नागहस्ती आचार्य की शिष्य परम्परा और यशपरम्परा सर्वदा बढे ॥ ३४ ॥

मूलम्

^१ जच्चञ्जणधाउ ^२ समप्पहाणं, ^३ मुदिय कुवलयनिहाणं ।
^५ वड्ढुड ^४ वायगवंसो, ^३ रेवड्ढणक्खत्तणामाण ॥ ३५ ॥

छाया—

जात्याञ्जन धातु समप्रभाणा, मृद्धीका कुवलयनिभानाम् ।
 वर्द्धता वाचकवशो, रेवतीनक्षत्रनाम्नाम् ॥ ३५ ॥

छाया—

वन्दे आर्यधर्म, ततो वन्दे च भद्रगुप्त च ।
ततश्चार्यवज्रं, तपोनियमगुणैर्वज्रं समम् ॥३१॥

अर्थ:—

मैं श्री आर्य धर्मनामक आचार्य को वन्दन करता हूँ, और उसके बाद श्री भद्रगुप्त नामक आचार्य को वन्दन करता हूँ, और उसके बाद तप नियम आदि गुणों से वज्र के समान बलवान् श्री आर्यवज्रस्वामी को वन्दन करता हूँ ॥३१॥

मूलम्

^७ वदामि ^६ अजरक्खिय, ^५ खवणे रक्खिय चारित्तं सव्वस्से ।
^२ रयणकरण्डगभूओ, ^३ अणुओगो ^४ रक्खिओ ^१ जेहि ॥ ३२ ॥

छाया—

वन्दे आर्य रक्षित क्षणान् रक्षित चारित्र सर्वस्वान् ।
रत्न करण्डक भूतोऽनुयोगो रक्षितो यैः ॥ ३२ ॥

अर्थ:—

मैं जिन्होंने रत्नमय पेट्टी के समान अनुयोग की उन चारित्र (सयम रूप सर्वस्व की) भूतकालमें रक्षा करने वाले श्री आर्य रक्षित क्षण (तपस्वी) को वन्दन करता हूँ ॥ ३२ ॥

मूलम्

^१ नाणम्मि ^२ दसणम्मि य, ^३ तव ^४ विणए ^५ णिच्चकाल ^६ मुज्जुत्त ।
^८ अज्जं ^९ नदिल ^{१०} खवण, ^{११} सिरसा ^७ वदे ^८ पसणमण ॥ ३३ ॥

छाया—

ज्ञाने दर्शने च, तपो विनये नित्यकालमुद्युक्तम् ।
आर्य नन्दिल क्षण, शिरसा वन्दे प्रसन्नमनसम् ॥३३॥

अर्थ —

मे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, च से सम्यक् चारित्र, तप और विनय में सदा उद्यत (अप्रमादी) रागद्वेष रहित होने के कारण सदा मध्यस्थभाववाले आर्यश्री नन्दिल नामक क्षपण (तपस्वी) को मस्तक से वन्दन करता हूँ। श्री नन्दिलजी श्री आर्यमहर्षिजी के शिष्य थे ॥३३॥

मूलम्

५ ३ ४ २

वड्ढउ वायगवसो, जसवंतो अज्जनागहत्थीणं ।

१

वागरण करणभंगिय, कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥ ३४ ॥

छाया—

वर्द्धता वाचकवशो, यशोवश आर्यनागहस्तिनाम् ।

व्याकरण करण भाङ्गिरु-कर्मप्रकृतिप्रधानानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ:—

व्याकरण, करण (ज्योतिष), भङ्गजाल और कर्मप्रकृति आदि की प्ररूपणा में सर्वश्रेष्ठ श्री आर्य नागहस्ती आचार्य की शिष्य परम्परा और यशपरम्परा सर्वदा वदे ॥ ३४ ॥

मूलम्

१

२

जच्चंजणधाउ समप्पहाणं, मुद्धिय कुवलयनिहाणं ।

५

४

३

वड्ढउ वायगवसो, रेवइणक्खत्तणामाणं ॥ ३५ ॥

छाया—

जात्याञ्जन धातु समप्रभाणा, मृद्धीका कुवलयनिभानाम् ।

वर्द्धता वाचकवशो, रेवतोनक्षत्रनाम्नाम् ॥ ३५ ॥

अर्थ:—

श्रेष्ठ जातिमान काले मणिके सहस्र वर्णवाले तथा पङ्क्ति द्वावा के समान काले वर्णवाले और नीलरूमल के समान नील शरीर वर्णवाले रेवती नक्षत्र नामक आचार्यका वाचकवश बढे । ये श्री रेवती नक्षत्रजी श्री आर्यनागहस्तीजीके शिष्य थे ॥ ३५ ॥

मूलम्

अयलपुरा ^१णिक्खन्ते, कालियसुय ^२आणुओगिण् ^३धीरे ।

^७वंभद्दीवगसीहे, वायगपयमुत्तमं ^४पत्ते ^५॥ ३६ ॥

छाया—

अचलपुरानिष्क्रान्तान् कालिकश्रुतानुयोगिकान् धीरान् ।

ब्रह्मदीपकसिंहान्, वाचकपदमुत्तमं माप्तान् ॥ ३६ ॥

अर्थ:—

मैं अचलपुर से निष्क्रान्त (प्रजित) कालिकमूत्ररूप शास्त्रके अनुयोग (व्याख्या) के ज्ञाता धीर उत्तमवाचकपदमाप्त ब्रह्मदीपकी शाखासे उपलक्षित श्री सिंहवाच्यको वन्दन करता हूँ । ये रेवति नक्षत्राचार्यके शिष्य थे ॥ ३६ ॥

मूलम्

जेसिं ^१इमो ^२अणुओगो, पयरइ ^५अज्जावि ^४अड्ढभरहम्मि ।

^७बहुनयरनिग्गायजसे, ते ^६वदे ^९खंदिलायरिण् ^८॥ ३७ ॥

छाया—

येपामयमनुयोग प्रचरत्यघाप्यर्द्धभरते ।

बहुनगरनिर्गतयशसः, तान् वन्दे स्कन्दिलाचार्यान् ॥ ३७ ॥

अर्थ:—

मैं जिनका यह (इस समय मे उपलभ्यमान) अनुयोग अर्द्धभरत (भरतक्षेत्र के अर्ध-दक्षिण भरतक्षेत्र) में आज भी प्रचलित है अनेक नगरों में अभ्युदित प्रसूत

यशवाले उन श्रीस्कन्दिलाचार्य को वन्दन करता हू, ये श्रीसिंहाचार्य के शिष्य थे ॥ ३७ ॥

मूलम्

१ ततो हिमवन्तमहन्त-विक्रमे २ धिङ्परक्कममणन्ते । ४

सज्ज्ञायमणन्तधरे, ५ हिमवते ६ वन्दिमो ७ सिरसा ८ ॥ ३८ ॥

छाया--

ततो हिमवन्महाविक्रमान् अनन्तधृतिपराक्रमान् ।

अनन्तस्वाध्यायधरान्, हिमवतो वन्दे सिरसा ॥ ३८ ॥

अर्थः—

मैं उन (श्रीस्कन्दिलाचार्य) के वाद हिमालयपर्वतके समान बहुत क्षेत्रोंमें विहार करनेवाले अपरिमित धैर्यपराक्रमवाले और अर्थ की दृष्टिसे अपरिमित स्वाध्यायको धारण करनेवाले श्री हिमवदाचार्य को गिर (मस्तक) से वन्दन करता हू । ये श्री स्कन्दिलाचार्य के शिष्य थे ॥ ३८ ॥

मूलम्

१ कालियसुयअणुओगस्स, २ धारए ५ धारए ४ य पुब्बाण । ३

हिमवतखमासमणे, ६ वन्दे ८ णागज्जुणायरिए ७ ॥ ३९ ॥

छाया—

कालिकश्रुतानुयोगस्य, धारमान् धारकाश्च पूर्वाणाम् ।

हिमवत्क्षमाश्रमणान्, वन्दे नागार्जुनाचार्यान् ॥ ३९ ॥

अर्थ —

मैं कालिकश्रुतके अनुयोग (व्याख्या) के धारण करनेवाले और उत्पात आदि पूर्वी के धारक श्री हिमवत् नामके क्षमाश्रमण और श्रीनागार्जुनाचार्य को वन्दन करता हू, यहा श्री हिमवदाचार्य का वन्दन दुहराया गया है, श्री हिमवदाचार्यके शिष्यश्री नागार्जुनाचार्य हुए ॥ ३९ ॥

मूलम्

१ २ ३ ४
मिउमहवसपन्ने, अणुपुठ्वि वायगत्तण पत्ते ।

५ ६ ७
ओहसुयसमायारे, नागज्जुणवायए वदे ॥ ४० ॥

छाया—

मृदुमार्दवसम्पन्नान्, आनुपूर्व्या वाचस्त्व प्राप्तान् ।

ओघश्रुतसमाचारान् नागार्जुनवाचकान् वन्दे ॥ ४० ॥

अर्थः—

मैं अतीव कोमलता गुणसे सम्पन्न, क्रमसे वाचकपद प्राप्त और ओघश्रुत (उत्सर्ग-विधिमार्ग) के सम्पर्क प्रकारसे आचरण करनेवाले श्रीनागार्जुनाचार्य को वन्दन करता हू ॥ ४० ॥

मूलम्—

८ ९ १० १ २
गोविदाण पि नमो, अणुओगे विउलधारणिदाणं ।

६ ३ ४ ५
णिच्च खातिदयाण परूवणे दुल्लभिदाण ॥ ४१ ॥

छाया—

गोचिन्देभ्योऽपि नमः, अनुयोगे विपुलधारणेन्द्रेभ्यः ।

नित्य क्षान्तिदयाना, परूपणे इन्द्रदुर्लभेभ्यः ॥ ४१ ॥

अर्थः—

अनुयोगकी अधिक धारण रखनेवालों में इन्द्रके समान, क्षमा और दया गुणों की परूपणामें इन्द्रों के भी सदा दुर्लभ श्रीगोवि द नामक आचार्य को भी मेरा नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

मूलम्

१ २ ८ ४ ३ ५
तत्तो य भूयदिन्न निच्च तवसजमे अनिठ्विण्णं ।

६ ९ ७
पडियजणसम्माण, वदामो सजमविहिण्णु ॥ ४२ ॥

छाया—

ततश्च भूतदिग्नि, नित्य तपःसयमेऽनिर्विण्णम् ।
पण्डितजनसमान्य, वन्दामहे सयमविधिज्ञम् ॥ ४२ ॥

अर्थः—

उसके बाद हम तपस्या और सयममें सदा ग्लानिरहित तथा पण्डितजनों के
खूब माननीय और सयमविधिके जाननेवाले श्रीभूतदिग्निनामक आचार्य को वन्दन
करते हैं ॥ ४२ ॥

मूलम्

वरकणगतवियचपग—विमउलवरकमलगवभसरिवन्ने ।^२

भविजणहिययदइए, दयागुणविसारए धीरे ॥ ४३ ॥^{३ ४ ५}

अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविहसज्जायसुमुणियपहाणे ।^{६ ७}

अणुओगियवरवसभे, नाइलकुलवसनदिकरे ॥ ४४ ॥^{८ ९}

भूयहियप्पगवभे, वदेह भूयदिन्नमायरिए ।^{१० १४ १}

भवभयवुच्छेयकरे, सीसे नागाज्जुणरिसीणं ॥४५॥ (विसेसय)^{११ १३ १२}

छाया—

वरतप्तकनकचम्पक—विमुकुलपरकमलगर्भसदृग्गणान् ।

भविरुजनहृदयदयितान्, दयागुणविशारदान् धीरान् ॥ ४३ ॥

अर्द्धभरतप्रधानान् सुविज्ञातबहुविधस्नाध्यायप्रधानान् ।

अनुयोजितपरवृषभान्, 'नागिल' कुलप्रशनन्दिकरान् ॥ ४४ ॥

भूतहितप्रगल्भान्, वन्देऽह भूतदिग्नाचार्यान् ।

भयभयव्युच्छेदकरान्, शिष्यान् नागार्जुनपीणाम् ॥४५॥ (विशेषकम्)

अर्थः—

तप्त (तपाया हुआ) कनक (सुवर्ण) तथा चम्पापुष्प, त्रिकमित उत्तमकमलगर्भ (अन्दरके भाग) के समान र्णनाले, भव्यजनों के हृदयके प्रिय तथा दयारूप गुण के स्वयं धारण करने में औरों को भी धारण कराने में त्रिगारद (निष्ण) तथा धीर, भरतक्षेत्र के दक्षिणार्द्ध भागमें प्रधान (श्रेष्ठ), तथा अनेक प्रकारके आचाराङ्ग आदि शास्त्रके स्वाध्याय को अच्छी तरहसे जाननेवाले, तथा अनेक पुरुष श्रेष्ठ साधुओं को स्वाध्याय में लगानेवाले, नागिलकुल-नामक वंशको समृद्ध करनेवाले, प्राणियों के कल्याण करनेमें निर्भीक, और भव (जन्ममरणरूप समार) के भयको मिटानेवाले नागार्जुनऋषि के शिष्य श्री भूतदिनाचार्यको वन्दन करता हू ॥ ४३-४५ ॥

मूलम्

सुमुणियनिच्चानिच्चं, सुमुणियसुत्तत्थधारयं वदे ।

सब्भावुब्भावणया, तत्थ लोहिच्चणामाण ॥ ४६ ॥

छाया—

सुज्ञातनित्यानित्य, सुज्ञातसूत्रार्थधारकं वन्दे ।

सद्भावोद्भावनया, तथ्य लौहित्यनामानम् ॥ ४६ ॥

अर्थः—

मै, नित्य और अनित्य पदार्थों को अच्छी तरह से जाननेवाले, सूत्रार्थों को अच्छी तरहसे धारण करनेवाले, तथा सद्भाव (यथावस्थित विद्यमान पदार्थ) की उद्भावना (प्रकाशना) से तथ्य—(सत्य-पदार्थ तत्त्वों को यथार्थ प्रतिपादन करने के कारण सत्यार्थभाषी) श्रीलौहित्य नामक आचार्य को वन्दन करता हू ॥ ४६ ॥

मूलम्—

अत्थमहत्थखाणि, सुसमणवक्खाणकहणानिच्चाणि ।

पयईए महुरवाणि, पयओ पणमामि दूसगणि ॥ ४७ ॥

छाया—

अर्थमहार्थखनि, सुश्रवणव्याख्यानकथननिर्वाणिनम् ।

प्रकृत्या मधुरवाणीक, प्रयतः प्रणमामि दूष्यगणिनम् ॥ ४७ ॥

अर्थः—

मै अर्थ (साधारण अर्थ) महार्थ (विशिष्ट अर्थ) खनि (आकर-खान) सुश्रवण (अच्छा श्रवणमाला - कर्णप्रिय) व्याख्यान और पृष्ट निपयों के कथन (उत्तर देने) में शान्तचित्त वाले और स्वभावसे मधुरभाषी श्री दूष्यनामकगणी (आचार्य) को यतनापूर्वक वन्दन करता हू ॥ ४७ ॥

मूलम्

१

तवनियमसच्चसंजम-विणयज्जवखंतिमहवरयाणं ।

२

३

शीलगुणगद्वियाण, अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥ ४८ ॥

६

४

११

७

सुकुमालकोमलतले, तेसि पणमामि लक्खणपसत्थे ।

१०

५

८

९

पाए पावयणीणं, पडिच्छयसयएहि पणिवइए ॥ ४९ ॥

छाया—

तपोनियमसत्यसयम, विनयार्जवक्षान्तिमार्दवरतानाम् ।

शीलगुणगर्वितानाम्, अनुयोगयुगप्रधानानाम् ॥ ४८ ॥

सुकुमारकोमलतलान्, तेषा प्रणमामि लक्षणप्रशस्तान् ।

पादान् प्रवचनिना, प्रतीच्छकशतकैः प्रणिपतितान् ॥ ४९ ॥

अर्थः—

मै तपस्या, नियम, सत्य, सयम, विनय, सरलता, क्षमा और कोमलता में रत (सलग्न-लगे हुए), शील (सदाचार) रूप गुण से गर्वित-सम्पन्न, अनुयोग (व्याख्यान) में युगप्रधान (युगप्रधान-पदप्राप्त) प्रशस्तप्रवचनसम्पन्न, (श्री-दूष्यगणी) के परम कोमलतलवाले, लक्षणों से प्रशस्त (सुलक्षण) और सैकड़ों प्रतीच्छकों (सूत्र और सूत्रार्थों के ग्रहण करनेवाले शिष्यों) से प्रणिपतित (अभिवन्दित) चरणों को नमस्कार करता हू ॥ ४८-४९ ॥

मूलम्—

२ १ ५ ३ ४
 जे अन्ने भगवते कालियसुयअणुओगिए धीरे ।
 ६ ८ ७ ९ १० ११
 ते पणामिऊण सिरसा, नाणस्स परूवणं वोच्छ ॥ ५० ॥

छाया—

येऽन्ये भगवन्तः कालिकथृतानुयोगिनो धीराः ।
 तान् प्रणम्य शिरसा, ज्ञानस्य प्ररूपणा वक्ष्ये ॥ ५० ॥

अर्थः—

मैं पूर्वोक्त आचार्यों से अतिरिक्त जो आचार्य कालिकथृत के व्याख्यान करनेवाले, धीर और भगवान् (ऐश्वर्य सम्पन्न) हैं, उन्हें मस्तरु से प्रणाम कर ज्ञान की प्ररूपणा करूंगा, अर्थात् ज्ञानविषयक रचना करूंगा । इस लेख से यह बात स्पष्ट होती है कि नदीसूत्र देवर्दिगणीने नहीं रचा है, उन्होंने किसी अन्य ज्ञानविषयक ग्रंथ की रचना की है । इसका खुलासा इसी नंदीसूत्र की टीका में किया गया है । जिज्ञासु वहा से देख लें ॥ ५० ॥

॥ इति स्थविरावली सम्पूर्णा ॥



श्री-नन्दीसूत्रम्

॥ श्रीचीतरागाय नमः ॥



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-
महाराजविरचित-ज्ञानचन्द्रिका-टीका-समलङ्कृतम्

श्री-नन्दीसूत्रम् ।

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

(मालिनी-छन्दः)

शिपसरणिविधान जीवरक्षैरुतान,
सुरनरकृतगानं केवलोल्लासमानम् ।
प्रशमरसनिदान ज्ञानदानप्रधान,
परमसुखनिधान नौम्यह र्धमानम् ॥ १ ॥
करणचरणधारं प्राप्तपूर्वाब्धिपार,
शुभतरगुणधार प्राप्तससारपारम् ।
कलितसकळलब्धि लब्धविज्ञानसिद्धि,
गणधरमभिराम गौतम त नमामि ॥ २ ॥

(अनुष्टुप्-वृत्तम्)

श्रीसुधर्मा महावीर-लब्धरत्नोज्ज्वलो गणी ।
निव्वन्ध तदुक्तार्थं, नमस्तस्मै दयालवे ॥ ३ ॥

(पृथ्वी-छन्दः)

सद्युत्तिसमिति समा, विरतिमादधान सदा,
क्षमावदखिलक्षम, कलितमञ्जुचारित्रकम् ।
सदोर-ध्रुववस्त्रिका-विलसिताननेन्दु शुभ,
प्रणौमि धिपणासय, गुरुमसु भवाब्धौ प्लवम् ॥ ४ ॥

(अनुष्टुप्-वृत्तम्)

जैनी सरस्वती नत्वा, नन्दीसूत्रार्थदर्शिका ।
घासीलालेन मुनिना, क्रियते ज्ञानचन्द्रिका ॥ ५ ॥

हिन्दीभाषानुवाद ।

मङ्गलाचरणका अर्थ—

(शिवसरणिविधानम्) मुक्तिमार्गके प्रणेता (जीवरक्षकतानम्) जीवों के अद्वितीय रक्षक (सुरनरकृतगानम्) देव एव मनुष्योंद्वारा स्तुत (केवलोद्भासमानम्) केवलज्ञानसे सदा प्रकाशित, (प्रशमरसनिदानम्) प्रशमरसके स्रोत (ज्ञानदानप्रधानम्) अपनी दिव्य देशनाद्वारा मनुष्यों के लिये सम्यक्ज्ञानके दाता, तथा—(परमसुरनिधानम्) अव्याबाध सुखके भण्डार ऐसे (वर्धमान नमामि) वर्धमान प्रभुको मैं मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूँ ॥

भावार्थ—टीकाकार ने इस श्लोकद्वारा मोक्षमार्गके प्रणेता, जीवोंको अभयके दाता, देव एव मनुष्योंद्वारा सदा स्तुयमान, केवलज्ञानरूप प्रखर प्रभासम्पन्न, प्रशम रसके अभिनेता ससारी प्राणियोंके लिये आत्मज्ञानरूप दिव्यनिधिके दाता, एव परमसुखके एक निधान, ऐसे वर्धमान स्वामीको नमस्कार किया है । इसमें प्रायः सभी विशेषण अन्ययोग-

गुजराती भाषानुवाद

भगवाचरत्नो अर्थ—

(शिवसरणिविधानम्) मुक्तिमार्गना प्रणेता (जीवरक्षकतानम्) लोकोना अनेक रक्षक (सुरनरकृतगानम्) देवो अने मनुष्योद्वारा जेनी स्तुति थाय छे जेवा (केवलोद्भासमानम्) केवलज्ञानधी सदा प्रकाशित, (प्रशमरसनिदानम्) शान्तरसनु अरथ, (ज्ञानदानप्रधानम्) पोटानी दिव्य देशना द्वारा मनुष्योने भाटे सम्यक्ज्ञानना दाता, तथा (परमसुरनिधानम्) अप्पार सुखना लडार जेवा (वर्धमान नमामि) वर्धमान प्रभुने हुँ माथु नभावीने नमन करे छु

भावार्थ—टीकाकारे आ श्लोक-द्वारा मोक्षमार्गना प्रणेता, लोकोने अलय देनारा, देवो तथा मनुष्यो द्वारा सदा जेनी स्तुति थाय छे जेवा, केवल ज्ञानरूप, भंडान, प्रभासुक्त, शान्त रसना अलिनेता, ससारमा गडेता प्राणी जेने भाटे आत्मज्ञानरूपी देवी लडारना दाता अने परम सुखनु अकेक निधान जेवा 'वर्धमान स्वामीने प्रणाम कर्यो छे तेमा भाटे लागे अथा विशेषे

व्यवच्छेदपरक हैं । “शिवसरणिविधान” इस पदसे जो ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा परमात्मा नहीं बन सकता है, ऐसे मीमांसक आदि मतका व्युदास किया है । आत्मा ही जीवन्मुक्त परमात्मा बन परमात्मा बननेका भव्य जीवोंको उपदेश दे कर स्वयं सिद्धिगतिका नेता बन जाता है । “जीवरक्षैकतान” इस पद द्वारा जो ऐसा मानते हैं कि ‘मनुष्यके उपयोगके लिये ही मनुष्यसे अतिरिक्त शेष प्राणियों का निर्माण हुआ है अतः स्वेच्छानुसार मनुष्य इनका अपने लिये उपयोग कर सकता है’ ऐसी मान्यताको दूर करते हुए यह बतलाया है कि प्रभुका आदेश समारके समस्त एकेन्द्रियादिक जीवोंके रक्षण करने का है, उनकी दृष्टिमें ऐसा अनुचित पक्षपात नहीं है । “सुरनरकृतगान” इस पदसे यह सूचित होता है कि-जो प्राणिमात्रके रक्षक होते हैं वे ही देव और मनुष्योंके स्तुतिपात्र होते हैं, अन्य नहीं । “केवलोद्भासमानम्” इस पद द्वारा वैशेषिक आदि मतकी मान्यता निरस्त की है । उनकी ऐसी कल्पना है कि-‘ज्ञान आत्माका स्वभाव नहीं, तथा बुद्ध्यादिक नौ गुणोंके नाशसे ही मुक्ति होती है ।’ इस पर ऐसा यहां कहा गया है कि ज्ञान आत्माका स्वभाव है और यही ज्ञान ज्ञानावर-

पक्षे अन्ययोगव्यवच्छेद वाणा छे “शिवसरणिविधान” आ पदधी ने जेवु माने छे के आत्मा परमात्मा भनी राउते नथी, जेवा भीमांसक वगेरे मतनु भउन ठर्यु छे आत्मा न् जेवन्मुक्त परमात्मा भनीने लव्य जेवने पर मात्मा भनवाने उपदेश दधने पोते सिद्धगतिने नेता भनी नथ छे “जीवरक्षैकतान” आ पद द्वारा ने जेवु माने छे के “मनुष्यना उपयोगने माटे न् मनुष्य सिवायना भाकीना प्राणीज्योनु निर्माण थयु छे तेथी पोतानी छेछा प्रभाजे मनुष्य तेभने पोताने माटे उपयोग करी शके छे” जेवी मान्यताने दूर करीने जे भतावायु छे के “प्रभुने आदेश ससारना सर्व जेडेन्द्रिय वगेरे जेवोनु रक्षण करवाने छे तेभनी दृष्टिजे जेवो अयोग्य पक्षपात नथी” “सुरनरकृतगान” आ पदधी जे सूचित थाय छे के ने प्राणीमात्रना रक्षक होय छे तेजो न् देवो तथा मनुष्योनी स्तुतिने पात्र होय छे भीन नडी “केवलोद्भासमानम्” आ पद द्वारा वैशेषिक वगेरे मतनी मान्यतानु भउन ठर्यु छे तेभनी जेवी कल्पना छे के “ज्ञान आत्मानो स्वभाव नथी, तथा बुद्धि वगेरे नव गुणोना नाशथी न् मोक्ष होय छे” ते भाषतमा अही जेवु कडेवायु छे के ज्ञान आत्मानो स्वभाव छे/अने जे न् ज्ञान ज्ञानावरणीय

णीय कर्मके अभावमें सर्वथा निर्मल हो कर केवलज्ञानरूप परिणत हो जाता है। नैयायिकोंने २१ इषीस प्रकारके दुःखोंके साथ सुखका भी मुक्तिमें अभाव माना है, अतः इस मान्यताको हटानेके लिये “परमसुखनिधानम्” यह विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

(करणचरणधारम्) करणसत्तरी एव चरणसत्तरी को धारण करनेवाले (सर्वपूर्वाब्धिपारम्) ग्यारह अंग एव चौदह पूर्वरूप समुद्रके पारगामी (शुभतरगुणधारम्) शुभतर सम्यग्दर्शनादिक गुणोंके धारक (प्राप्तससारपारम्) ससारके पारको पानेवाले (कलितसकललब्धिम्) सकल लब्धियोंके धारक (लब्धविज्ञानसिद्धिम्) मनःपर्ययज्ञानके धारी ऐसे (अभिरामम्) सर्वोत्तम (त गौतम गणधर नमामि) जगत्प्रसिद्ध गौतम गणधरको मैं नमन करता हूँ।

भावार्थ—इस श्लोकद्वारा वर्तमान भगवान्के प्रसिद्ध गौतम गणधर को नमस्कार किया है। गौतम गणधर ने करणसत्तरी एव चरणसत्तरी के सेवनसे अपने जीवनको बहुत अधिक श्रेष्ठतम बना लिया था। चौदहपूर्वके वे पूर्ण पाठी थे। सम्यग्दर्शनादिक गुणोंकी पूर्ण जागृति

कर्मना अभावमा सहा निर्माणं यद्यने केवणज्ञानना रूपमा परिष्णुमे छे नैयायिकेभ्ये अकवीस प्रकारना इषोनी साथे सुषणो पणु मुक्तिमा अभाव मान्ये छे, तेथी ते मान्यतानु षडन करवा भाटे “परमसुखनिधानम्” अे विशेषणु भूशायु छे ॥ १ ॥

(करणचरणधारम्) करणसत्तरी अने चरणसत्तरीने धारण करनारा (सर्वपूर्वाब्धिपारम्) अगीथार अंग तथा चौदह पूर्वरूप समुद्रने पार ननारा (शुभतरगुणधारम्) शुभतर सम्यग्दर्शन वगेरे गुणो धारण करनारा (प्राप्तससारपारम्) ससारने पार पाभनारा (कलितसकललब्धिम्) षधी लब्धिओ धारण करनारा (लब्धविज्ञानसिद्धिम्) मन पर्यय ज्ञान धरनारा ओवा (अभिरामम्) सर्वोत्तम (त गौतम गणधर नमामि) जगत्प्रसिद्ध गौतम गणधरने हुँ नमन करूँ छु

भावार्थ—आ श्लोक द्वारा वर्तमान भगवानना प्रसिद्ध गौतम गणधरने नमस्कार कराया छे गौतम गणधरने करणसत्तरी अने चरणसत्तरीना सेवनथी पोताना एवनने अत्यंत श्रेष्ठ अनानुषु इतु चौदहपूर्वना तेओ पूर्ण पाठी इता सम्यग्दर्शन वगेरे गुणोनी पूर्ण जागृतिथी तेभु अे न लवमा मुक्ति प्राप्त

से उन्होंने उसी भवसे मुक्ति प्राप्त कर ली थी । सकल लक्ष्मियोंकी एव मनःपर्यय ज्ञानकी सिद्धि उन्हें मुक्ति जानेसे पहिले हो चुकी थी ॥२॥

(महावीरलब्धरत्नोज्ज्वलो गणी) भ्रमण भगवान् महावीरसे प्राप्त रत्नत्रयसे प्रकाशमान गणवर (श्रीसुधर्मा) श्रीसुधर्मास्वामी ने (तदुक्तार्थ) भगवान्के द्वारा कथित अर्थको सकल जगज्जीवके उपकार के लिये (निरग्रन्थ) सूत्ररूप से गूया है । (नमस्तस्मै दयालवे) ऐसे परम उपकारी दयालु श्री सुधर्मास्वामीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

(समा सगुप्तिसमितिम्) सम्पूर्णरूपसे पाच समिति एव तीन गुप्तियोंका पालन करनेवाले (सदा विरतिम् आदधानम्) सर्वदा सर्वविरति को धारण करनेवाले (क्षमावद् अग्निलक्षमम्) पृथ्वीकी तरह सत्र प्रकारके परीपहोंको सहनेवाले (कलितमञ्जुचारित्रकम्) निरतिचार चारित्रके पालन करनेवाले (अपूर्वबोधप्रदम्) भव्य जीवोंको अपूर्व आत्मबोधको देनेवाले ऐसे (गुरुम्) गुरुदेवको कि जिनका (सदोरमुखवस्त्रिकाविलसिताननेन्दुम्) मुखचन्द्रमण्डल सदा सदोरकमुखवस्त्रिकासे सुशोभित होता रहता है, तथा (भववारिधिप्लवम्) ससाररूप समुद्रमे

धरी लीधी હતી અને લખિધયો તથા મન પર્યય જ્ઞાનની સિદ્ધિ તેમને મોક્ષ પામ્યા પહેલા થઈ ચુકી હતી ॥ ૨ ॥

(महावीरलब्धरत्नोज्ज्वलो गणी) भ्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्राप्त रत्नत्रयकी प्रकाशमान गणुधर (श्रीसुधर्मा) श्री सुधर्मा स्वामीसे (तदुक्तार्थ) भगवान्द्वारा कथित अर्थने जगतना सकल एवोना उपकारार्थे (निरग्रन्थ) सूत्र रूपकी गूथेले छे (नमस्तस्मै दयालवे) एवा परम उपकारी दयालु श्री सुधर्मा स्वामीने हुँ नमन करूँ छु ॥ ३ ॥

(समा सगुप्तिसमितिम्) पूर्णरूपसे पाच समिति तथा त्रय गुप्तिये पाणनारा (सदा विरतिम् आदधानम्) महा सर्वविरतिये धारण करना (क्षमावत् अग्निलक्षमम्) पृथ्वीनी जेम यथा प्रजारना परीपहो सहन करना (कलितमञ्जुचारित्रकम्) निरतिचार चारित्रना पाणनारा (अपूर्वबोधप्रदम्) भव्य एवोने अपूर्व आत्मबोध देनारा एवा (गुरुम्) गुरुदेवने के जेतु (सदोर मुखवस्त्रिकाविलसिताननेन्दुम्) मुखचन्द्रमण्डल सदा सदोरक मुखवस्त्रिकासे सुशोभित यनी रहे छे, तथा (भववारिधिप्लवम्) जे ससाररूप

इह खलु भगवतीर्थङ्करोपदिष्टमर्थरूपमागममुपादाय गणधराः मूर्तरूपेण जग्रन्धुः । उक्तञ्च—“ अथ भासइ अरिहा, सुत्त गथति गणहरा णिउणा ” इत्यादि । तत्र पूर्वापरविरोधरहितानि स्वतःप्रमाणभूतानि द्वानिश्च सूत्राणि संप्रति समुपलभ्यन्ते । इवते ह्येण जीवोंके लिये नौका जैसे हैं उनको म (प्रणौमि) मस्तकशुका कर नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

मैं मुनि घासीलाल (जैनी सरस्वती नत्वा) जिनेन्द्रदेवके मुखचन्द्रसे निर्गत दिव्यदेशनाको नमस्कार करके (नन्दीसूत्रार्थदर्शिका ज्ञानचन्द्रिका क्रियते) नन्दीसूत्रके अर्थको स्पष्ट करनेवाली यह ‘ ज्ञानचन्द्रिका ’ नामकी टीका बनाता हूँ ॥ ५ ॥

‘ इह खलु ’ इत्यादि—इस कालमें भगवान् तीर्थङ्करोंद्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगमको लेकर गणधरोंने उसका सूत्ररूपसे ग्रथन किया है । अन्यत्र भी यही बात कही गई है—“ अथ भासइ अरिहा, सुत्त गथति गणहरा निउणा ” इत्यादि ।

अर्हन्त प्रभु अर्थरूपसे सर्व प्रथम आगमकी रचना करते हैं, पश्चात् गणधर उसकी प्ररूपणा सूत्ररूपसे करते हैं । वर्तमान समयमें पूर्वापर विरोधरहित होनेके कारण स्वतःप्रमाणभूत ३२ वत्तीस सूत्र उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं—

सागरमा इभता एवोने भाटे नौकायमान છે તેમને હું (પ્રણૌમિ) માથુ નમાવીને પ્રણામ કરૂ છું ॥ ૪ ॥

હું મુનિ ઘામીલાલ (જૈની સરસ્વતી નત્વા) જિનેન્દ્ર દેવના મુખચન્દ્ર માથી નીકળેલી દિવ્ય દેશનાને નમન કરીને (નન્દીસૂત્રાર્થદર્શિકા જ્ઞાનચન્દ્રિકા ક્રિયતે) નન્દીસૂત્રના અર્થને સ્પષ્ટ કરનારી આ જ્ઞાનચન્દ્રિકા નામની ટીકા બનાવું છું ॥ ૫ ॥ ‘ ઇહ ચલુ ’ ઇત્યાદિ

આ કાળમાં તીર્થ કર ભગવાનો દ્વારા ઉપદેશાયેલ અર્થરૂપ આગમોને લઈને ગણધરોએ તેની સૂત્રરૂપે ગ્રથણી કરી છે અન્યત્ર પણ એ જ વાત કહેવાઈ છે—“ અથ ભાસઈ અરિહા, સુત્ત ગથતિ ગણહરા નિઉણા ” ઇત્યાદિ

અર્હન્ત ભગવાન સર્વ પ્રથમ અર્થરૂપે આગમની રચના કરે છે પછી ગણધરો સૂત્રરૂપે તેની પ્રરૂપણા કરે છે વર્તમાન કાળમાં પૂર્વાપરવિરોધ વિનાના હોવાને કારણે સ્વતઃ પ્રમાણભૂત (૩૨) બત્તીસ સૂત્રો ઉપલબ્ધ (પ્રાપ્ત) છે તે નીચે પ્રમાણે છે -

तत्राचाराद्वादीन्येकादशाङ्गसूत्राणि (११), औपपातिकीदीनि द्वादशोपाङ्गसूत्राणि (१२), नन्द्यादीनि चत्वारि मूलसूत्राणि (४) बृहत्कल्पादीनि चत्वारि छेदसूत्राणि (४) आवश्यकसूत्रमेक (१) चेति [३२] ।

तत्र “ नन्दीसूत्रनाम्ना प्रसिद्धस्य मूलसूत्रस्य रचयिता देववाचकाचार्यः ” इति केचिद् वदन्ति । केचित्तु “ स तस्य सङ्कलयिता, न तु रचयिता ” इति । एतत् पक्षद्वयमसंगतम्, गणधरसमये देववाचकाचार्यो नासीदिति सर्वसम्मतम्, गणधरकृते समवायाङ्गे (८८ स) भगवतीसूत्रे (८ श., २ उ) राजप्रश्नीयसूत्रे च “ जहा नदीए ” इति पाठस्योपलभ्यमानत्वात् नन्दीसूत्र गणधरसमये विद्यमानमासीदि-

आचाराङ्ग आदि ११ ग्यारह अङ्गसूत्र, औपपातिक आदि १२ ग्यारह उपाङ्गसूत्र, नन्दी आदिक ४ चार मूलसूत्र, बृहत्कल्पादिक ४ चार छेदसूत्र, तथा १ एक आवश्यकसूत्र (३२) ।

“ मूलसूत्ररूपसे प्रसिद्ध इम नदीसूत्रके रचयिता देववाचक आचार्य है ” ऐसा कितनेक कहते हैं । किन्तु ऐसा कहते हैं कि “ देववाचक आचार्य इम सूत्रके रचयिता नहीं है, किन्तु इसके सकलनकर्ता है ” परन्तु यह दोनों धारणाएँ ठीक नहीं हैं, कारण कि गणधरोके समयमे देववाचक आचार्य नहीं थे, यह तो सर्वविदित ही है । तथा यह नदीसूत्र तो गणधरो के समयमें भी था, क्यों कि गणधरकृत समवायाङ्गसूत्रमें (८८ स) भगवतीसूत्रमें (८श २उ) तथा राजप्रश्नीयसूत्रमें “ जहा नदीए ” ऐसा पाठ देखनेमे आता है । इस पाठसे गणधरोके समयमे नन्दीसूत्रका अस्तित्व स्पष्टरूपसे सिद्ध होता है ।

आथागग वगेरे अगियाग अगसूत्र ११, औपपातिक वगेरे आर उपागसूत्र १२, नदी आदि आर मूलसूत्र ४, बृहत्कल्पादिक आर छेद सूत्र ४, तथा एक आवश्यक सूत्र (३२)

“ मूलसूत्रउपथी प्रसिद्ध आ नन्दीसूत्रना उती देववाचक आचार्य छे ” अणु डेटलाक कडे छे डेटलाक अणु उडे छे डे “ देववाचक आचार्य आ सूत्रना ग्यनार नधी पणु तेनु सकलन उरनार छे ” पणु आ अन्ने मान्यताओ परापर नधी, कारण के गणधरेना समयमा देववाचक आचार्य हुता नहि, ते तो सर्वविदित व छे वणी न हीसूत्र तो गणधरेना समयमा पणु हुतु, कारण के गणधरकृत समवायाग सूत्रमा (८८ स) भगवतीसूत्रमा (८श २ उ) अने राज प्रश्नीयसूत्रमा “ जहा नदीए ” अणु पाठ लेवामा आवे छे, आ पाठथी गणधरेना समयमा न हीसूत्रनु अस्तित्व स्पष्टरूपे साणित थाय छे ले पूर्वोक्त

त्यवगम्यते। उक्तपक्षद्वयाङ्गीकारे तु गणधरसमये देववाचकस्यासद्भावेन तत्सकलितस्यापि नन्दीसूत्रस्याभावाद् “जहा नदीए” इति गणधरवाक्यं नोपपद्यते। तन्मते नन्दीसूत्रसकलन कर्तुमुद्यतस्य देववाचकस्य तत्प्रारम्भसमये—“ नाणस्स प्ररूवण वोच्छ ” इति वाक्येन ‘ नन्दीसूत्र वक्ष्ये ’ इत्यर्थो नोपलभ्यु शक्यते। नन्दीसूत्रातिरिक्तेन केनचिद् ग्रन्थान्तरेणापि ज्ञानप्ररूपणा भवितुमर्हति।

अथ ‘ नन्दीसूत्र ’-मित्यस्य कः शब्दार्थः?, उच्यते-नन्दन-नन्दी-‘दुनदि समृद्धौ’ इत्यस्माद्भातोः “ इकृष्णादिभ्यः ” इति शार्तिकेण भावे इकृप्रत्यये, यद्वा

पदि पूर्वोक्तं वात ही स्वीकार की जावे तो यह समझने जैसी बात है कि गणधरोके समयमें देववाचक आचार्यके न होनेसे फिर उनके द्वारा सकलित इस नदीसूत्रका सद्भाव भी कैसे उस समय माना जायगा? अतः इसके सद्भावके अभावमें “ जहा नदीए ” यह गणधरवचन सगत नहीं हो सकता है। तथा ‘ नन्दीसूत्रके सकलनकर्त्ता देववाचक आचार्य है ’ इस मान्यतामें “ नाणस्स प्ररूवण वोच्छ ” इस वाक्यसे “ नन्दीसूत्र वक्ष्ये ” यह अर्थ उपलब्ध नहीं हो सकता है, कारण कि नदीसूत्रातिरिक्त अन्य और भी किसी दूसरे ग्रन्थसे ज्ञानकी प्ररूपणा हो सकती है।

अब “ नन्दीसूत्र ” इस पदका क्या अर्थ है यह बात प्रदर्शित की जाती है—“दुनदि” धातु समृद्धि अर्थमें है। इसमें ‘दु’ और ‘इ’ ये दोनों इत्सङ्गक हैं। ‘नद्’से “इकृष्णादिभ्यः” इस सूत्रद्वारा

वात न स्वीकारवामा आवे तो समज्वा नवी वात ओ छे के गणधराना समयमा देववाचक आचार्य न थया होय तो पछी तेमना द्वारा सकलित आ नदीसूत्रनो अह्लाव (अस्तित्व) पणु केवी रीते ओ समयनो मानी शक्ये? तेथी तेना सद्भावना अभावमा “ जहा नदीए ” आ गणधरनु वचन सुसगत होछ शके नही तथा ‘ नदीसूत्रनु सकलन करनार देववाचक आचार्य छे ’ ओ मान्यतामा “ नाणस्स प्ररूवण वोच्छ ” आ वाक्यथी नदीसूत्र वक्ष्ये ” ओवो अर्थ प्राप्त थछ शकतो नथी जारणु छे नदीसूत्र सिवायना गीण पणु कोछ ग्रन्थथी ज्ञाननी प्ररूपणा थछ शके छे

हुवे “ नदीसूत्र ” ओ शब्दनो शो अर्थ छे ते वात दर्शावाय छे— “दुनदि” धातु समृद्धिना अर्थमा छे तेमा “दु” अने “इ” ओ अने इत्सङ्गक छे “नद्”थी “इकृष्णादिभ्यः” ओ सूत्र द्वारा “इक्” प्रत्यय, तथा “इदितो

“સર્વઘાતુભ્ય ઇન્” ઇત્યૌણાદિકસૂત્રેણ ભાવે ઇન્-પ્રત્યયે ‘ઇદિતોનુમ્ ઘાતોઃ’ ઇતિ સૂત્રેણ નુમાગમે નન્દિરિતિ । તતઃ “કૃદિકારાદક્તિનઃ” ઇતિ ડીપ્-પ્રત્યયેઽનુવન્ધલોપે ચ કૃતે “યસ્યેતિ ચ ” ઇતીકારલોપે ચ ‘નન્દી’ ઇતિરૂપ ભવતિ । ‘નન્દી-હર્ષઃ, પ્રમોદઃ’ ઇતિ પર્યાયાઃ । પશ્ચવિધજ્ઞાન સ્વર્ગાપવર્ગસુખજનકમિતિ નન્દીજનકત્વાન્નન્દીત્યુચ્યતો પશ્ચવિધજ્ઞાનમૂચકત્વાદિદ સૂત્ર નન્દીમૂત્રમુચ્યતે । તસ્યેદ શ્રીસુધર્મજમ્સનાદરૂપ-માદિસૂત્રમ્—‘સે કિં ત નાણ’ ઇત્યાદિ ।

“ઠક્” પ્રત્યય, તથા “ઇદિતો નુમ્ ઘાતોઃ” ઇસ સૂત્રદ્વારા ‘નુમ્’ કરને પર “નન્દિ” એસા શબ્દ નિષ્પન્ન હો જાતા હૈ । અથવા “સર્વઘાતુભ્યઃ ઇન્” ઇસ ઔણાદિક સૂત્રસે ભાવમે ‘ઇન્’-પ્રત્યય ઔર ‘ઇદિતો નુમ્ ઘાતોઃ’ ઇસ સૂત્રસે ‘નુમ્’ હોને પર ઔ “નન્દિ” રૂપ બન જાતા હૈ । પશ્ચાત્ “કૃદિકારાદક્તિનઃ” ઇસ સૂત્ર દ્વારા “ડીપ્” તથા “યસ્યેતિ ચ” ઇસ સૂત્રદ્વારા “ઠ” કા લોપ કરને પર “નન્દી” એસા રૂપ હો જાતા હૈ । “નન્દન-નન્દી=હર્ષઃ” નન્દી-શબ્દ કા અર્થ હર્ષ, પ્રમોદ હૈ । જીવકો પ્રમોદકે જનક મત્યાદિક પાચ જ્ઞાન હૈ, ક્યૌં કિ સ્વર્ગ ઔર મોક્ષકા સુખ જીવકો મત્યાદિક પાચ જ્ઞાનદ્વારા હી પ્રાપ્ત હોતા હૈ, અતઃ નન્દી-શબ્દસે ઇન પાંચ જ્ઞાનોકી સૂચના કરનેવાલા હોનેસે ઇસ સૂત્રકા નામ ‘નન્દીસૂત્ર’ એસા કહા ગયા હૈ । ઇસકા યહ સર્વ પ્રથમ સૂત્ર હૈ—‘સે કિં ત નાણ’ ઇત્યાદિ ।

નુમ્ ઘાતો” એ સૂત્ર દ્વારા “નુમ્” કરવાથી “નન્દિ” એવો શબ્દ સિદ્ધ થાય છે અથવા “સર્વઘાતુભ્ય ઇન્” એ ઔણાદિક સૂત્રથી ભાવ મા “ઇન્” પ્રત્યય અને “ઇદિતો નુમ્ ઘાતો” આ સૂત્રથી ‘નુમ્’ થતા પછી “નન્દિ” રૂપ બની બાક છે ત્યાર પછી “કૃદિકારાદક્તિન આ સૂત્ર દ્વારા ‘ડીપ્’ તથા “યસ્યેતિ ચ” એ સૂત્ર દ્વારા “ઠ” નો લોપ કરવાથી ‘નન્દી’ એવું રૂપ થાય છે ‘નન્દન નન્દી=હર્ષ’ નન્દી શબ્દનો અર્થ હર્ષ, પ્રમોદ છે જીવને પ્રમોદના દેનારા મત્યાદિક પાચ જ્ઞાન છે, કારણ કે સ્વર્ગ અને મોક્ષનું સુખ જીવને મત્યાદિક પાચ જ્ઞાન દ્વારા જ મળે છે તેથી ‘નન્દી’ શબ્દ એ પાચ જ્ઞાનનું સૂચક હોવાથી આ સૂત્રનું નામ ‘નન્દીસૂત્ર’ કહેવાયું છે તેનું આ સર્વ પ્રથમ સૂત્ર છે—‘સે કિં ત નાણ’ ઇત્યાદિ

त्यवगम्यते। उक्तपक्षद्वयाद्गीकारे तु गणधरसमये देववाचकस्यासद्भावेन तत्सकलितस्यापि नन्दीसूत्रस्याभावाद् “जहा नदीए” इति गणधरवाक्यं नोपपद्यते। तन्मते नन्दीसूत्रसकलन कर्तुमुद्यतस्य देववाचकस्य तत्प्रारम्भसमये—“ नाणस्स प्ररूवणं वोच्च ” इति वाक्येन ‘नन्दीसूत्र वक्ष्ये’ इत्यर्थो नोपलभ्युं शक्यते। नन्दीसूत्रातिरिक्तेन केनचिद् ग्रन्थान्तरेणापि ज्ञानप्ररूपणा भवितुमर्हति।

अथ ‘नन्दीसूत्र’—मित्यस्य कः शब्दार्थः?, उच्यते—नन्दन—नन्दी=‘दुनदि समृद्धौ’ इत्यस्माद्भातोः “इकूकृष्यादिभ्यः” इति वार्तिकेण भावे इकृत्यये, यद्वा यदि पूर्वोक्त वात ही स्वीकार की जावे तो यह समझने जैसी बात है कि गणधरोंके समयमें देववाचक आचार्यके न होनेसे फिर उनके द्वारा सकलित इस नदीसूत्रका सद्भाव भी कैसे उस समय माना जायगा? अतः इसके सद्भावके अभावमे “जहा नदीए” यह गणधरवचन सगत नहीं हो सकता है। तथा ‘नन्दीसूत्रके सकलनकर्त्ता देववाचक आचार्य है’ इस मान्यतामे “नाणस्स प्ररूवण वोच्च” इस वाक्यसे “नन्दीसूत्र वक्ष्ये” यह अर्थ उपलब्ध नहीं हो सकता है, कारण कि नदीसूत्रातिरिक्त अन्य और भी किसी दूसरे ग्रन्थसे ज्ञानकी प्ररूपणा हो सकती है।

अब “नन्दीसूत्र” इस पदका क्या अर्थ है यह बात प्रदर्शित की जाती है—“दुनदि” धातु समृद्धि अर्थमे है। इसमें ‘दु’ और ‘इ’ ये दोनों इत्सञ्ज्ञक हैं। ‘नद्’से “इकूकृष्यादिभ्यः” इस सूत्रद्वारा

वात न स्वाकारवाभा आवे तो समञ्वा ळेवी वात ओ छे के गणधराना समथमा देववाचक आचार्य न थया होय तो पछी तेभना द्वारा सकलित आ नदीसूत्रने सद्भाव (अस्तित्व) पणु केवी रीते ओ समथने मानी शक्य ? तेथी तेना सद्भावना अभावमा “जहा नदीए” आ गणधरतु वचन सुस गत होई शके नही तथा ‘नदीसूत्रनु सकलन करनार देववाचक आचार्य छे’ ओ मान्यतामा “नाणस्स प्ररूवण वोच्च” आ वाक्यथी नदीसूत्र वक्ष्ये” ओवे अर्थ प्राप्त थई शकती नथी णरणु के नदीसूत्र सिवायना भील पणु होई ग्रन्थथी ज्ञाननी प्ररूपणा थई शके छे

हुवे “नदीसूत्र” ओ शब्दने शो अर्थ छे ते वात दर्शावाय छे— “दुनदि” धातु समृद्धिना अर्थमा छे तेमा “दु” अने “इ” ओ णने इत्स ञ्ज्ञक छे “नद्”थी “इकू कृष्यादिभ्य” ओ सूत्र द्वारा “इक्” प्रत्यय, तथा “इदितो

(१) आभिनियोधिकज्ञानशब्दार्थ —

‘अभि’ इति-अभिमुखः-यो वस्तुनो योग्यदेशेऽवस्थानमपेक्षते स इत्यर्थः, तथा ‘नि’ इति नियतः-इन्द्रियमनः समाश्रित्य तत्तद् विषयमपेक्षते यो बोधः सोऽभिनियोधः ।

उन्हें समझानेके लिये श्री सुवर्मा स्वामी कहते हैं कि-जिससे वस्तु-स्वरूपका अवधारण-निर्णय होता है वह ज्ञान है। यह ज्ञान आत्मामे ज्ञाना-वरणीय कर्मके क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है। आगममे इस ज्ञानके ५ पांच भेद बतलाये गये हैं। ये पांच भेद ज्ञानके मूल भेद है, और इसी अपेक्षा ज्ञान पांच प्रकारका बतलाया गया है। सूत्रमे जो “पन्नत्त” शब्द आया है, उसका तात्पर्य ऐसा है कि तीर्थङ्कर भगवानने स्वय ही ऐसा कहा है। उसीलिये सूत्रकार इस पद द्वारा यह सूचित कर रहे हैं कि तीर्थङ्कर भगवानने ज्ञानमें जो पांच प्रकारता बतलाई है वह इस प्रकार है, यह वान “त जहा” पदसे समझाई गई है।

अब ‘आभिनियोधिक ज्ञान’ इत्यादि पदोंका विग्रहपूर्वक अर्थ लिखा जाता है—

(१) आभिनियोधिकज्ञान—

आभिनियोधिक ज्ञानका अर्थ इस प्रकार है- आभिनियोधिकरूप जो ज्ञान है उसका नाम आभिनियोधिक ज्ञान है। आभिनियोधिक

समन्वया भाटे श्री मुधर्मास्वामी उहे ७ के लेनाथी वस्तुवर्षणु अवधारण-निर्णय थाय छे ते ज्ञान छे अे ज्ञान आत्मामा ज्ञानावरणीय कर्मोना क्षयथी अथवा क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे आगममा अे ज्ञानना पाच लेद दर्शाव्या छे ते पाच लेद ज्ञानना भूण लेद छे अने अे ७ कारणे ज्ञान पाच प्रकारनु भताव्यु छे सूत्रमा ले ‘पन्नत्त’ शब्दनेो उपयोग थये छे तेनु तात्पर्य अेवु छे के तीर्थङ्क भगवाने पोते ७ अेवु उह्यु छे, तेथी सूत्रकार ते पद द्वारा अे सूचित करे छे के तीर्थङ्कर भगवाने ज्ञानना ले पाच प्रकार भताव्या छे ते आ प्रमाणे छे अे वात ‘त जहा’ पदथी समन्वयेद छे—

हुये “आभिनियोधिकज्ञान” वगैरे पदोनेो विग्रहपूर्वक अर्थ लभ वामा आवे छे -

(१) आभिनियोधिकज्ञान—

आभिनियोधिक ज्ञाननेो अर्थ आ प्रमाणे छे -आभिनियोधिकरूप ले ज्ञान छे तेनु नाम आभिनियोधिक ज्ञान छे, आभिनियोधिक ज्ञानमा कर्मधारय समास

મૂલમ્—સે કિ ત નાણ ? । નાણં પચવિહ પછત્ત, ત જહા—
આભિણિવોહિયનાણ, સુયનાણં, ઓહિનાણં, મણપજ્જવનાણં,
કેવલનાણં ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ઝાયા—અથ કિં તદ્ જ્ઞાનમ્ ? । જ્ઞાન પચ્ચવિહ પ્રત્ત, તદ્ યથા—૧ આભિ-
નિરોધિકજ્ઞાન, ૨ શ્રુતજ્ઞાનમ્, અવધિજ્ઞાન, ૪ મનઃપર્યયજ્ઞાન, ૫ કેવલજ્ઞાનમ્ ॥

ટીકા—જ્ઞાનપદાર્થસ્ય તચ્ચ જિજ્ઞામમાનઃ શ્રીજમ્બૂસ્વામી શ્રીસુધર્મસ્વામિનં
પૃચ્છતિ—‘સે કિં ત નાણ’ ઇતિ । યથ કિં તજ્ઞાનમ્ ? ‘અથ’ ઇતિ પ્રશ્નાર્થકઃ
તત્—પ્રસિદ્ધ જ્ઞાન કિમ્=કિંસ્વરૂપમ્ = હે મદન્ત ! જ્ઞાનમ્પ સ્વરૂપં કિમસ્તિ, તત્
કૃપયા વર્ણયતામિત્યર્થઃ । શ્રીસુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામિન પ્રત્યાહ—‘નાણ પચવિહ
પણત્ત’ ઇત્યાદિ । જ્ઞાનં—જ્ઞાનિર્ગસ્તુસ્વરૂપાવધારણમિત્યર્થઃ । જ્ઞાનાપરણીયકર્મક્ષયક્ષ-
યોપશમજનિતો વોધરૂપ આત્મપર્યાયઃ । તત્ પચ્ચવિહ=પચ્ચપ્રકારક મૂલભેદાપેક્ષયે-
ત્યર્થઃ, પ્રજ્ઞમ્=પરૂપિતમ્, તીર્થઙ્કરૈરિત્યર્થઃ ।

‘પચ્ચત્ત’ ઇતિ પદેન—‘યથા તીર્થઙ્કરૈ’ પ્રતિરોધિતસ્તથા કથયામિ’ ઇતિ સૂચિતમ્ ।
તદ્ યથેતિ । યથા—યેન પ્રકારેણ, તત્—પચ્ચવિહ ભવતિ, સ પ્રકાર પ્રદર્શયતે—
આભિનિવોધિકજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાનમ્, અવધિજ્ઞાનં, મનઃપર્યયજ્ઞાન, કેવલજ્ઞાન ચેતિ ।

સુ ઝર્માસ્વામી સે જમ્બૂસ્વામી પ્રઠ્થે હૈ કિ—હે મદન્ત ! જિન જ્ઞાનોં
કા હસ સૂત્રમે વર્ણન કિયા ગયા હૈ વે જ્ઞાન ક્રિતને ઓર કોન ૨ સે હૈ ।
હસકે ઉત્તરમે શ્રીસુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામીસે કહતે હૈ કિ—વે પાચ
પ્રકારકે હૈ ઓર અનેકે નામ હસ પ્રકાર હૈ—૧ આભિનિવોધિકજ્ઞાન,
૨ શ્રુતજ્ઞાન, ૩ અવધિજ્ઞાન, ૪ મનઃપર્યયજ્ઞાન, ૫ કેવલજ્ઞાન ।

ભાવાર્થ—જ્ઞાનપદાર્થકે સ્વરૂપકો જાનને કી હચ્છાસે શ્રી જમ્બૂસ્વામી
શ્રી સુધર્મા સ્વામીસે પૂઠ રહે હૈ કિ જ્ઞાનકા સ્વરૂપ કયા હૈ ? હસકે ઉત્તરમે

જમ્બૂસ્વામી સુધર્માસ્વામીને પૂછે છે—‘હે ભદન્ત ! જે જ્ઞાનોનુ આ
સૂત્રમા વર્ણન કરાયુ છે તે જ્ઞાન કેટલા અને કયા કયા છે ?’ તેના જવાબમા
શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—‘તે પાચ પ્રકારના છે અને તેમના
નામ આ પ્રમાણે છે—(૧) આભિનિવોધિકજ્ઞાન, (૨) શ્રુતજ્ઞાન (૩) અવધિ
જ્ઞાન (૪) મન પર્યયજ્ઞાન અને (૫) કેવલજ્ઞાન

ભાવાર્થ—જ્ઞાનપદાર્થના સ્વરૂપને બાણુવાની ઈચ્છાથી શ્રી જમ્બૂસ્વામી
શ્રી સુધર્માસ્વામીને પૂછે છે કે જ્ઞાનોનુ શુ સ્વરૂપ છે ? તેના જવાબમા- તેમને

क्षयोपशमे सति आत्मा रूपादिक जानातीत्यतः क्षयोपशम एवाभिनिबोधः, स एवाभिनिबोधिकम्, आभिनिबोधिक च यद् ज्ञान तत्तथा । ज्ञान प्रति ज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमस्य कारणत्वात् कार्यकारणयोरभेदाच्च सामानाधिकरण्यम् ।

यद्वा—अभिनिबुध्यते=जानातीत्यभिनिबोध, स चात्मा । स एवाभिनिबोधिकम्, आभिनिबोधिक च तज्ज्ञानं चेति पूर्ववत् । अस्मिन् पक्षे धर्मधर्मिणोरभेदादुपयोगरूपपरिणामादनन्यत्वमात्मनोऽस्तीति ज्ञानसामानाधिकरण्यम् । अस्यैव नामान्तर मतिज्ञानमिति । उक्तञ्च—

ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम होने पर ही आत्मा रूपादिक पदार्थोंको जानता है । ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम ही ज्ञानके प्रति कारण होता है, इस लिये कारणरूप ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशममे कार्यरूप ज्ञान का अभेदोपचार करनेसे आभिनिबोधिक पदकी ज्ञानके साथ समानाधिकरणता बन जाती है ।

अथवा—अभिनिबोध शब्दका अर्थ आत्मा भी है, क्योंकि आत्मा ही पदार्थों को जानता है अतः वही आभिनिबोधिक है । यद्वा जो आभिनिबोधिक-आत्मा-को ज्ञानस्वरूप प्रकट किया गया है वह धर्म और धर्मी में अभेद की अपेक्षा से जानना चाहिये । अपने उपयोगरूप परिणामसे अभिन्न होनेके कारण आत्मारूप आभिनिबोधिक पदकी इस पक्षमे भी ज्ञान पदके साथ समानाधिकरणता बननेमे कोई बाधा नहीं आती है । आभिनिबोधिक ज्ञानका अर्थ मतिज्ञान है । कहा भी है—

धर्मिणा क्षयोपशम यथा ~ आत्मा उपादिः पदार्थेन ननु ते ज्ञानावरणीय
धर्मिणा क्षयोपशम ~ ज्ञानं तु जगत्तु डोय ते, तेषां कारणरूप ज्ञानावरणीय
धर्मिणा क्षयोपशमना कार्यरूप ज्ञानेन अलेहोपचार उवाची आभिनिबोधिक पदानी
ज्ञाननी साथे समानाधिकरणता गनी नथ छे

अथवा आभिनिबोध गणनेन अर्थ आत्मा पणु ते, कारण ते आत्मा ~
पदार्थेन ननु छे तेषां ते ~ आभिनिबोधिक छे अस्मी ~ आभिनिबोधिक-
आत्माने ज्ञान स्वरूपे प्रकट करेलो छे ते धर्म अने धर्मीना अलेहनी अथे
साथी ननुवे नैष्ठये पोताना उपयोगरूप परिणामथी अलिन्न होवाने कारणे
आत्मरूप आभिनिबोधिक पदानी आ पक्षमा पणु ज्ञानपदनी साथे समाना-
धिकरणता गनवाना कोठ वाधे आवतो नथी आभिनिबोधिक ज्ञानेन अर्थ
मतिज्ञान छे उल्लु पणु छे—

यद्वा—अविपर्ययरूपत्वादर्थभिमुखः, असशयरूपत्वान्नियतो यो बोधः स अभिनिबोधः । स एवाभिनिबोधिकम्, इह विनयादित्वात् स्वार्थे ठक्, इन्द्रियपञ्च-
कमनोनिमित्तो बोध इत्यर्थः । आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं चाभिनिबोधिकज्ञानम् ।

यद्वा—अभिनिबुध्यते ज्ञायतेऽनेनेत्यभिनिबोधः, स एवाभिनिबोधिकं
तदावरणकर्मणः क्षयोपशमः । यद्वा—अभिनिबुध्यतेऽस्मिन्निति ज्ञानावरणीयकर्मणः

ज्ञानमे कर्मधारय समास हुआ है । योग्य देशमें वस्तुके अवस्थान की
अपेक्षा रखना इसका नाम अभि-अभिमुख है । 'नि'का अर्थ नियत
है । फलितार्थ इसका यह होता है कि पांच इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा
करके जो योग्य देशमें अवस्थित वस्तुका ज्ञान होता है वह
अभिनिबोध है ।

अथवा—ज्ञानमे सशयरूपता, अथवा विपर्ययरूपता का होना दोष
माना गया है । इस सशयरूप तथा विपर्ययरूप दोषसे रहित जो बोध
होता है वह अभिनिबोध है । अभिनिबोधका नाम ही आभिनिबो-
धिक है । 'आभिनिबोधिक' पद स्वार्थमें 'ठक्' प्रत्यय होनेसे निष्पन्न
होता है । इस तरह अभिनिबोधरूप ज्ञानका नाम ही आभिनिबोधिक
ज्ञान है, ऐसा जानना चाहिये ।

अथवा—जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाता है वह अभिनिबोध है ।
अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक है । यहा आभिनिबोधिक शब्दसे तदा-
वरण कर्मका—ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम ग्रहण हुआ है, कारण कि

थये छे योग्य देशमा वस्तुना अवस्थाननी अपेक्षा राखवी तेनु नाम अलि-
अलिभुष छे "नि" नो अर्थ नियत छे तेना इलितार्थ अे थाय छे के पाथ
इन्द्रियो अने मननी अपेक्षा करीने योग्य देशमा अवस्थित वस्तुनु ने ज्ञान
थाय छे ते अलिनिबोध छे

अथवा ज्ञानमा सशयरूपता अथवा विपर्ययरूपतानु छेनु ते दोष बनाये
छे आ सशयरूप तथा विपर्ययरूप दोषरहित ने बोध थाय छे ते अलिनिबोध
छे अलिनिबोधनु नाम न आलिनिबोधिक छे आलिनिबोधिक पद स्वार्थमा
'ठक्' प्रत्यय छेवाधी सिद्ध थाय छे आ रीते अलिनिबोधरूप ज्ञाननु
नाम न आलिनिबोधिक ज्ञान छे अेभ नल्लुनु नेछेअे

अथवा नेना वडे पदार्थनु ज्ञान थाय छे ते अलिनिबोध छे अलिनि-
बोध न आलिनिबोधिक छे अही आलिनिबोधिक शब्दही तदावरण कर्मनो
अेटले के ज्ञानावरण कर्मनो क्षयोपशम ग्रहण थये छे, नरण के ज्ञानावरणीय

ज्ञानसामानाधिकरण्यम् । श्रोत्रात्मन पर्यायतया ज्ञान तदभिन्नमिति । श्रुत च तज्ज्ञान चेति श्रुतज्ञानम् । अतमित्यत्रार्पत्वात् कर्तरि क्तप्रत्ययः क्लीबत्व च । इह हि ज्ञेयवक्ष्यति—“ सुणेड-त्ति सुय ” इति ।

(३) अवधिज्ञानशब्दार्थः—

अवधिज्ञानमिति । अवगानम्—आत्मनोऽर्थसाक्षात्करणव्यापारोऽवधिः । यद्वा—अव-शब्दोऽव्ययत्वेनानेकार्थत्वाद्धःशब्दार्थकः, अव-अधः, नीचप्रदेशे विस्तृतस्तु धीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः, अधोनिस्तृतप्रियकज्ञानम् । अवधिश्चासौ शब्द है । इस तरह श्रोतारूप ज्ञानका नाम श्रुतज्ञान हो जाना है । इस पक्षमें श्रवणात्मक उपयोगरूप परिणामसे आत्मामे अभिन्नता जापित की गई है, इस लिये श्रुत और ज्ञानमे समानाधिकरणता सुघटित हो जाती है, कारण कि श्रोता जो आत्मा है उसकी पर्याय होनेसे ज्ञान उससे भिन्न नहीं है । ‘श्रु’ यातु से आर्प होनेकी वजहसे कर्तामें ‘क्त’ प्रत्यय हो कर ‘श्रुतम्’ ऐसा नपुंसक लिङ्गमें शब्द बना है । श्रुतज्ञानके विषयमे आगे फिर स्पष्ट लिखा जायेगा ॥ २ ॥

(३) अवधिज्ञान—

अवधिज्ञान शब्दका अर्थ इस प्रकार है—अर्थको साक्षात्कार करने का आत्माका व्यापार होता है उसका नाम अवधि है । अथवा ‘अव’ शब्द अव्यय भी है । अव्ययके अनेक अर्थ होते हैं, अतः यहा ‘अव’ शब्दका अर्थ “ नीचे ” ऐसा जानना चाहिये । तात्पर्य इसका यह है कि

श्रोताउप ज्ञानतु नाम श्रुतज्ञान थाय छे आ पक्षमा श्रवणात्मक उपयोगउप परिष्ठा-मथी आत्माभा अलिप्तता सृष्टित करार्थ छे, तेथी श्रुत अने ज्ञानभा समानाधि-करणता अध जेसती थर्ध न्यथ छे, कारण उ श्रोता उ जे आत्मा उ तेनी पर्याय थवाथी ज्ञान तेनाथी भिन्न नथी, ‘श्रु’ यातुथी आर्प होवाने कारणे कर्ताभा “क्त” प्रत्यय लागीने ‘श्रुतम्’ जेवो नान्यतर नतिने शब्द अन्ये उ श्रुतज्ञानना विषयभा आगण करीथी स्पष्टतापूर्वक लभागे ॥२॥

(३) अवधिज्ञान—

“अवधिज्ञान” शब्दको अर्थ आ प्रमाणे छे—अर्थको साक्षात्कार होवाने आत्मानो जे व्यापार होय छे तेनु नाम अवधि छे अथवा ‘अव’ शब्द अव्यय पक्षे उ अव्ययना अनेक अर्थ थाय छे तेथी अही ‘अव’ शब्दको अर्थ “ नीचे ” जेवो लक्षणे जोधये तेना लावार्थ जे छे के जेना द्वारा नीचा प्रदेशमा

“મતિઃ, સ્મૃતિઃ, સજ્ઞા, ચિન્તા, અભિનિગ્રોધ ઇત્યનર્થાન્તરમ્ ઇતિ । ન અર્થાન્તરમ્ અનર્થાન્તરમ્, એ તે શબ્દા પર્યાયવાચકા ઇત્યર્થઃ ।

(૨) શ્રુતજ્ઞાનશબ્દાર્થ —

શ્રુતજ્ઞાનમિતિ । શ્રુત-શ્રુતિઃ શ્રવણ જ્ઞાનવિશેષઃ ઇદ્ શ્રુતશબ્દેન સ ણ્વ ગ્રાહઃ । સ જ્ઞાનવિશેષઃ કોદશઃ? ઇતિ ચેત્, અન્યતે-શબ્દાર્થપર્યાલોચનાનુસારી ઇન્દ્રિયમનો નિમિત્તો યો જ્ઞાનવિશેષઃ સ શ્રુતમિત્યુચ્યતે । શ્રુત ચ તજ્ઞાન ચેતિ શ્રુતજ્ઞાનમ્ ।

યદ્વા—શ્રુણોતીતિ શ્રુતમ્, ઇદ્ શ્રુતશબ્દાર્થઃ શ્રોતા, સ ચાત્મા, અસ્મિન્ પક્ષ ધર્મધર્મિણોરભેદવિગ્રહયા શ્રવણાત્મકોપયોગરૂપપરિણામાદનન્યત્પમાત્મનોઽસ્તીતિ-

“મતિઃ સ્મૃતિ, સજ્ઞા, ચિન્તા, અભિનિગ્રોધઃ” યે મન પર્યાયવાચી શબ્દ હૈ । પર્યાયવાચી શબ્દોં મે શબ્દકી અપેક્ષા અન્તર હોને પર મી અર્થકી અપેક્ષા અન્તર નહી હોતા હૈ—અક હી અર્થકે યે વાચક હોતે હે ॥ ૧ ॥

(૨) શ્રુતજ્ઞાન—

શ્રુતજ્ઞાન શબ્દકા અર્થ ઇસ પ્રકાર હૈ—શ્રુતજ્ઞાન શબ્દકા અર્થ શબ્દ શ્રવણસે ઉત્પન્ન જ્ઞાન હૈ । યદ્ પાચ ઇન્દ્રિય ઓર મનકે નિમિત્તસે ઉત્પન્ન હોતા હૈ । તયા ઇસમે શબ્દ ઓર ડસકે અર્થકી પર્યાલોચના હોતી હૈ । ઇસ તરહ શબ્દશ્રવણસે જો જ્ઞાન આત્મામેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ વદ્ શ્રુતજ્ઞાન હૈ ।

અથવા—“શ્રુણોતીતિ શ્રુતમ્” જો સુનતા હૈ વદ્ શ્રુત હૈ । ઇસ વિવક્ષાકે અનુસાર શ્રુતકા અર્થ શ્રોતા હૈ । શ્રોતા આત્માકા પર્યાયવાચી

‘મતિ સ્મૃતિ, સજ્ઞા, ચિન્તા, અભિનિગ્રોધ’ એ બધા પર્યાયવાચક શબ્દો છે પર્યાયવાચક શબ્દોમા શબ્દની અપેક્ષાએ અતર હોવા છતા અર્થની અપેક્ષાએ અતર હોતુ નથી એક જ અર્થના તે દર્શાવનારા હોય છે ॥૧॥

(૨) શ્રુતજ્ઞાન—

શ્રુતજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે છે—શ્રુતજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ—શબ્દ સાલજવાથી ઉત્પન્ન થતુ જ્ઞાન, આ જ્ઞાન પાચ ઇન્દ્રિય અને મનના નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થાય છે તથા તેમા શબ્દ અને તેના અર્થની પર્યાલોચના હોય છે આ ગીતે શબ્દના શ્રવણથી જે જ્ઞાન આત્મામા ઉત્પન્ન થાય છે તે શ્રુતજ્ઞાન છે અથવા—‘શ્રુણોતીતિ શ્રુતમ્’ જે સાલજે છે તે શ્રુત છે આ વિવક્ષા પ્રમાણે શ્રુતનો અર્થ શ્રોતા થાય છે શ્રોતા આત્માનો પર્યાયવાચી શબ્દ છે આ ગીતે

“ द्रव्याणि मूर्तिमन्त्येव, विषयो यस्य सर्वतः ।

नैयत्यरहितं ज्ञान, तत्स्यादवधिलक्षणम् ” ॥ १ ॥

अयमत्र-निष्कर्षः-नैयत्यरहितम्=इन्द्रियमनोऽपेक्षार्जितमित्यर्थः । अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषसमुद्भव भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं च रूपिद्रव्यविषयक ज्ञानमवधिज्ञानम् । तत्र भवप्रत्यय=भवहेतुक नारकाणा देवाना च । गुणप्रत्यय सम्यग्दर्शनादिगुणनिमित्तक तिरश्चा मनुष्याणा च भवति । अवधिज्ञानावरणीयकर्मणः क्षयोपशमविशेषः खलु भवप्रत्ययस्य गुणप्रत्ययस्य चावधिज्ञानस्य कारणम् । स हि क्षयोपशमस्तादृशमत्र प्रति तादृशगुण प्रति च साक्षात्कारणं अवधिज्ञान प्रति परपराकारणमिति । साक्षात्कारणापेक्षया भवप्रत्ययमित्युच्यते । गुणप्रत्ययमिति क्षायोपशमिक-शब्देन वक्ष्यते ।

“ द्रव्याणि मूर्तिमन्त्येव, विषयो यस्य सर्वतः ।

नैयत्यरहितं ज्ञान, तत्स्यादवधिलक्षणम् ” ॥ १ ॥

अर्थात्--जिस ज्ञानमें इन्द्रिय एव मनकी सहायता नहीं है, तथा जो रूपी पुद्गल द्रव्यको ही जानता है वह अवधिज्ञान है । यह अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे जीवको प्राप्त होता है । इसके दो भेद हैं-१ गुणप्रत्यय, २ भवप्रत्यय । गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य एव तिर्यञ्चों के होता है । इस अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें सम्यग्दर्शन आदि गुण निमित्त माने गये हैं । जिस अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें भव कारण होता है वह अवधिज्ञान भवप्रत्यय माना गया है । यह अवधिज्ञान देव एव नारकी जीवोंके होता है । इन दोनों प्रकारके अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम कारणभूत होता है

“ द्रव्याणि मूर्तिमन्त्येव, विषयो यस्य सर्वतः ।

नैयत्यरहितं ज्ञान, तत्स्यादवधिलक्षणम् ” ॥ १ ॥

अटले ठे ठे ज्ञानमा इन्द्रियो तथा मननी सहायता नहीं, तथा ठे रूपी पुद्गल द्रव्यने ज लले ठे ठे अवधिज्ञान छे आ अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरणीय ठर्मना क्षयोपशमथी एवने प्राप्त थाय ठे तेना ठे लेह ठे(१) गुणप्रत्यय (२) भव प्रत्यय गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य अने तिर्यञ्चोने थाय छे आ अवधि ज्ञाननी उत्पत्तिमा सम्यग्दर्शन वगेरे गुणो निमित्त रूप बनाया ठे ठे अव धिज्ञाननी उत्पत्ति भाटे भव ऽगुणउप होय छे ते अवधिज्ञान भवप्रत्यय बनाय छे आ अवधिज्ञान देव तथा नारदी एवोने थाय ठे ओ मनने अजरना अव धिज्ञानमा अवधिज्ञानावरणीय ठर्मना क्षयोपशम वगेरे कारणउप होय छे अरे

ज्ञान चेत्यवधिज्ञानम् । विषयस्य यद्गुणस्वीकृत्यैव व्युत्पत्तिरिति घोष्यम्, अन्यथा तिर्यग् ऊर्ध्वं वा विषय परिच्छिन्दानस्यावधिष्यपदेशो न स्यात् । यद्वा-अवधिर्मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलभितज्ञानमवधिज्ञानम् । यद्वा-अवधिना=मर्यादया=रूपिद्रव्याण्येव जानातीति व्यस्यया ज्ञानम् अवधिज्ञानम् । यद्वा-अत्र=मर्यादया='एतावत् क्षेत्र पश्यन एतावन्ति द्रव्याण्येतावन्तं कानं पश्यती'-त्यादिनियमितक्षेत्रादिलक्षणया, धीयते=परिच्छिद्यते रूपिवस्तुजातम् अनेनेत्यवधि', अवधिश्चासौ ज्ञान चेत्यवधिज्ञानम् । आत्मनो रूपिद्रव्यसाक्षात्कारणमिन्द्रियमनो-निरपेक्षो ज्ञानविशेषोऽवधिज्ञानम् । उक्तञ्च—

जिसके द्वारा नीचे प्रदेशमें विस्तृत वस्तुको आत्मा जानता है उसका नाम अवधि है । इस तरह अधोविस्तृत विषयको जाननेवाला ज्ञान अवधिज्ञान है, यह फलितार्थ निकलता है । विषयकी साहचर्यता की अपेक्षा से ही यह व्युत्पत्ति की गई जाननी चाहिये, नहीं तो जो विषय तिरछे व ऊँचे फैले हुए हैं उनको जाननेवाला ज्ञान अवधिज्ञान नहीं कहा जा सकेगा । अथवा-अवधि-शब्दका अर्थ मर्यादा भी होता है । इस ज्ञानमें मर्यादा यही है कि यह रूपी द्रव्योंको ही स्पष्ट जानता है, अरूपी द्रव्योंको नहीं । अथवा—द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भावकी मर्यादाको लेकर जो ज्ञान, रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है वह अवधि ज्ञान है । इस ज्ञानमें इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रहती है । इनकी अपेक्षा बिना किये ही यह ज्ञान द्रव्यादिक की मर्यादा को छे कर रूपी पदार्थ को जानता है, कहा भी है—

विस्तृत वस्तुमें आत्मा लक्ष्ये छे, तेषु नाम अवधि छे आ रीते अधोविस्तृत विषयमें लक्ष्यनाइ ज्ञान अवधिज्ञान छे, अथवा इदितार्थ नीकणे छे विषयनी साहचर्यतानी अपेक्षाअथे न आ व्युत्पत्ति उरैल छे, अथम मानवु लोभअथे, नडी तो ने विषय त्रासा, अथवा लये इलायेल छे तेमने लक्ष्यनाइ ज्ञान अवधिज्ञान कडी शकशे नडी

अथवा अवधि-शब्दमें अर्थ मर्यादा पणु थाय छे आ ज्ञाननी मर्यादा अथे छे ते ते रूपी द्रव्योंमें न स्पष्ट लक्ष्ये छे, अरूपी द्रव्योंमें नडी अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी मर्यादा लधने ने ज्ञानरूपी पदार्थोंमें स्पष्ट रीते लक्ष्ये छे ते अवधिज्ञान छे अथे ज्ञानमा इन्द्रिय अने मननी आवश्यकता रहेती नथी-तेनी अपेक्षा उथी बिना न अथे ज्ञान द्रव्यादिकनी मर्यादाने लधने इधी पदार्थमें लक्ष्ये छे कछु पणु छे—

विषयकः समन्तादवबोध इत्यर्थः । मनःपर्यवश्चासौ ज्ञान चेति मनःपर्यव ज्ञानम् । पर्यवः, पर्यय, पर्याय, एते शब्दा एकार्थवाचकाः । तत्र पर्यय इति 'अय'-धातोर्निष्पद्यते । अयन=गोचनमित्ययः, पर्ययन=समन्तात् परिच्छेदन पर्यय । पर्याय इति 'इण् गतौ' इत्यस्मान्निष्पद्यते । अयनम् आयः, परि-समन्तादायः पर्यायः । मनसः पर्यायो मनःपर्यायः । मनःपर्यायश्चासौ ज्ञान चेति मनःपर्याय-ज्ञानमिति । तथा मनःपर्यवज्ञानवद् मनःपर्यायज्ञानमित्यपि शास्त्रे प्रयुज्यते ।

यद्वा-पर्यवः, पर्ययाः, पर्यायाः, धर्माः, इत्येकार्थवाचकाः । मनसः पर्यवाः बाह्यवस्तुचितनानुगुणा ये धर्मा परिणामा अस्थायिगोपाः, बाह्यवस्तुमालोचनादि-यद्वा 'पर्यव' शब्दका वाच्यार्थ कदा गया है । इस तरह मनका-परकीय मनोगत पदार्थका जिसके द्वारा स्पष्टरूपसे बोध होता है वह मनःपर्यवज्ञान है । 'पर्यव, पर्यय तथा पर्याय' ये शब्द एकार्थवाचक हैं । 'पर्यय' यह शब्द "अय गतौ" गत्यर्थक अय धातुसे बना है । इसका अर्थ बोधन होता है । 'परि-समन्तात्'-सर्व प्रकारसे 'अयन'-परिच्छेदन जिसके द्वारा होता है वह पर्यय है, ऐसे इसका उक्त अर्थ हो जाता है । मनसवती जो पर्यय वह मनःपर्यय है । 'पर्याय' यह शब्द जब खरते हैं तब उसका अर्थ ऐसा होता है कि मनकी जो पर्याये हैं वे मनःपर्याय हैं । इस विवक्षामें "इण् गतौ" धातुसे यह 'आय' शब्द निष्पन्न हुआ है ।

अथवा--पर्यव, पर्यय, पर्याय, धर्म, ये शब्द एकार्थवाचक हैं, अर्थात् जो कोई व्यक्ति मनःपर्यवज्ञानसे बाह्य वस्तु के धर्मका विचार

अर्थात् पर्यव शब्दने वाच्यार्थ कहेल ठे आ गीते मननो अष्टके परतीय मनो गत पदार्थने नेना द्वारा स्पष्टरूपथी बोध थाय छे ते मन पर्यव ज्ञान छे 'पर्यव, पर्याय तथा पर्यय' अे शब्दो अेठ न् अर्थ दर्शावे छे 'पर्यय' आ शब्द 'अय गतौ' गतिवाचक 'अय' धातुमाथी लन्थो छे तेनो अर्थ बोधन थाय छे परि-समन्तात्-सर्व गीते अयन-परिच्छेदन नेना द्वारा थाय छे ते पर्यय छे अे रीते तेनो उपदेशत अर्थ थई नथ छे मनसमाथी ने पर्यय ते मन पर्यय छे 'पर्याय' आ शब्द न्यारे वपराय छे त्यारे तेनो अर्थ अेवो थाय छे ते मननी ने पर्याय छे ते मन पर्याय छे आ विवक्षामा 'इण् गतौ' धातुथी आ 'आय' शब्द सिद्ध थयो छे

अथवा—पर्यव, पर्यय, पर्याय, धर्म, अे शब्दो अेठ न् अर्थना वाचक छे अर्थात् ने कौं व्यक्ति मन पर्यवज्ञानथी बाह्य वस्तुना धर्मने विचार

(૪) મનઃપર્યવજ્ઞાનશબ્દાર્થઃ—

મનઃપર્યવજ્ઞાનમિતિ । અગ્નમ્ અગ્નઃ । અગ્ન-રક્ષણગતિકાન્તિપ્રીતિતૃપ્ત્યગ્ન-
માઘર્થેષુ પઠિતોઽસ્તિ, તન્નાગ્નમાર્થમાશ્રિત્ય નિષ્પન્ન । અગ્ન-અગ્નગમઃ, ગોષ્ઠ્યર્થઃ ।
પરિ-શબ્દઃ સર્વતોભાવે, પર્યગ્નઃ=સમન્તાદગ્નગોષ્ઠઃ । મનસઃ પર્યગ્નો મનઃપર્યગ્નઃ-મનો-
સહી, પરન્તુ વત્ પરપદારૂપસે હોતા હૈ । સાક્ષાત્કારણ ભવપ્રત્યય અવ-
ધિમે દેવ ઇવ નારકી ભવ, તથા ગુણપ્રત્યય અવધિમે સમ્યગ્દર્શન આદિ
ગુણ માને ગયે હૈ, કારણ કિ દેવ નારકીકે ભવકે લિયે વત્ અવધિ-
જ્ઞાનાવરણીય કર્મકા ક્ષયોપશમ્ હોતા હૈ, તથા સમ્યગ્દર્શન આદિ
ગુણોકે લિયે મનુષ્ય ઇવ તિર્યક્ષપર્યાયમે અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મકા
ક્ષયોપશમ્ હોતા હૈ । ગુણપ્રત્યય અવધિકા નામ ક્ષાયોપશમિક અવધિ-
જ્ઞાન મી હૈ । દેવ નારકીકી પર્યાયમે અવધિજ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ જન્મસિદ્ધ
અધિકાર હૈ, તન કિ મનુષ્ય તિર્યક્ષોમે નર્તી ॥ ૩ ॥

(૪) મનઃપર્યવજ્ઞાન—

મનઃપર્યવજ્ઞાન શબ્દકા અર્થે હસ પ્રકાર હૈ—‘અવ’ શબ્દ-રક્ષણ,
ગતિ, કાન્તિ, પ્રીતિ, તૃપ્તિ, અવગમ આદિ અર્થોમે પ્રયુક્ત હુઆ હૈ । યત્
હન અર્થોમે કે કેવલ ‘અવગમ’ અર્થે હસ શબ્દકા વ્રત્તણ કિયા ગયા હૈ ।
‘પરિ’ શબ્દકા અર્થે સર્વતોભાવ હૈ । સર્વતોભાવસે હુણ વોધકો

પણુ તે પરમ્પરારૂપથી હોય છે, સાક્ષાત્કારણુ અવધિમા દેવ અને
નારકીનો અવ માનવામા આવ્યો છે તથા ગુણુપ્રત્યય અવધિમા સમ્યગ્દર્શન
આદિ ગુણુ મનાયા છે તારણ કે દેવ-નારકીના અવને માટે ત્યા અવ-
ધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ થાય છે તથા સમ્યગ્દર્શન વગેરે ગુણુને
માટે મનુષ્ય અને તિર્યક્ષ પર્યાયમા અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપ-
શમ થાય છે ગુણુપ્રત્યય અવધિતુ નામ ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન પણુ છે
દેવ નારકીની પર્યાયમા અવધિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ જન્મસિદ્ધ અધિકાર છે, પણુ મનુષ્ય,
તિર્યક્ષોમા એવુ નથી ॥૩॥

(૪) મન પર્યવજ્ઞાન—

મન પર્યવજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ આ પ્રકારનો છે—‘અવ’ શબ્દ, રક્ષણ,
ગતિ, કાન્તિ, પ્રીતિ, તૃપ્તિ, અવગમ વગેરે અર્થોમા વપરાયો છે
અહીં તે અર્થોમાથી તે શબ્દનો કુલ ‘અવગમ’ અર્થ જ શ્રદ્ધણુ કરાયો છે
‘પરિ’ શબ્દનો અર્થ સર્વતોભાવ છે સર્વતોભાવથી થયેલ વોધને

(५) केवलज्ञानशब्दार्थ—

केवलज्ञानमिति । केवलम्=एकम्-असहायम् इन्द्रियादिसाहाय्यानपेक्षणात् १। यद्वा-केवल=शुद्धं-निर्मल-सरूलावरणमलव्यपगमसमुद्भूतत्वात् २ । यद्वा-केवल कौका भोक्ता है । यही भावमनकी पर्यायें है । तात्पर्य-जितनी भी विचारधाराएँ है वे सब ही भावमनकी पर्याये जानना चाहिये । ये भावमनकी पर्याये निजात्मगत नहीं किन्तु परमनोगत ही यहा मनःपर्यय-ज्ञानके प्रकरणमें गृहीत की गई है । बाह्यद्रव्योंकी पर्याये तो अनुमानसे ही जानी जा सकती हैं । निष्कर्ष केवल इतना ही है कि परमनोगत विचारधारारूप पर्यायों को स्पष्टरूपसे जाननेवाला ज्ञानका नाम ही मनःपर्ययज्ञान है ॥४॥

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञानका शब्दार्थ इस प्रकार है—जो एक-असहाय ज्ञान होता है उसका नाम केवलज्ञान है । यहां केवल शब्दका अर्थ एक-असहाय, ऐसा लिया गया है, क्यो कि इसमें इन्द्रिय आदिकोकी तथा अन्यज्ञान की अपेक्षा नहीं रहती है, इसी लिये इसे परकी सहायतासे रहित होने की वजहसे एक-असहाय माना गया है १। अथवा जो शुद्ध ज्ञान होता है वह केवलज्ञान है । यहा केवल शब्दका अर्थ 'शुद्ध' लिया गया है,

भावमनना पर्याये ऐ आरारा -नेटली पक्षु विचारधागओ ऐ ते अधी-भावमननी पर्याये नलुपी नेधओ ते भावमननी पर्याये न निजत्मगत नहीं पक्षु परमनोगत न अर्ही मन पर्ययज्ञानना प्रउरलुभा अडलु करार्थ ऐ भाह्य द्रव्योनी पर्याये तो अनुमानथी न नलुपी शकाय ऐ तात्पर्य इउत आटलु न ऐ के भीनना मनमा रडेती विचारधाराइप पर्यायेने स्पष्ट इपथी नलुनारा ज्ञाननु नाम न मन पर्ययज्ञान ऐ ॥४॥

(५) डेवणज्ञान—

डेवणज्ञानने शब्दार्थ आ प्रभाणे ऐ -ने ओक-असहाय ज्ञान डोय ऐ तेनु नाम डेवणज्ञान ऐ अर्ही डेवण-शब्दने अर्थ ओक-असहाय ओवे लीधे ऐ कारणु के तेमा इन्द्रिय वगेरेनी तथा अन्यज्ञाननी आवश्यकता रडेती नथी, तेथी तेने परनी सहायता विनानु डोवाना कारणे ओक-असहाय मनायु ऐ १ अथवा ने शुद्ध ज्ञान डोय ऐ ते डेवणज्ञान ऐ अर्ही 'डेवण शब्दने अर्थ

પ્રકારાસ્તેપા જ્ઞાનમ્ 'દ્વદમિત્યભૂતમનેન ચિન્તિતમ્' इत्येयरूप ज्ञान मनःपर्यव-
ज्ञानमिति ज्ञानशब्देन सह पष्ठीतत्पुरुषसमासः ।

इद चार्धवृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्गतिसङ्गिमनोगतद्रव्यालम्बनमेवेति भावः ।

इदमत्रાવગ્રેયમ્-મનો દ્વિવિધં-દ્રવ્યમનો ભાવમનશ્ચ । તત્ર દ્રવ્યમનો મનોવર્ગના, ભાવમનસ્તુ તા એવ વર્ગના જીવેન ગૃહીતાઃ સત્યો મન્યમાનાચિન્ત્યમાના ભાવમનો-
ઽભિધીયતે । તત્રેહ ભાવમનઃ પરિગૃયતે, તસ્ય ભાવમનસઃ-પર્યાયાસ્તે ચૈવત્રિધાઃ-
યદા કશ્ચિદેવ ચિન્તયેત્-‘કિં સ્વભાવ આત્મા ?, જ્ઞાનસ્વભાવો રૂપરહિતઃ કર્તા
સુખાદીનામનુભવિતા’ इत्यादयो ज्ञेयत्रिपयाभ्यवमायाः परगतास्तेषु तेषा वा
यज्ज्ञान तन्मन पर्यायज्ञानम् । तानेव मनःपर्यायान् परमार्थतः समग्रमुष्यते । वाद्यास्तु
अनुमानादेवेति ।

કરતા હૈ ઉસે ઉસ વસ્તુકા સ્પષ્ટ યોધ હોતા હૈ । ઇસમેં ઢી ઇન્દ્રિય ઓર
મનકી સહાયતા કી આવશ્યકતા નહીં હોની હૈ । મન-પર્યાયજ્ઞાની “ઇસને
ઘઠ તથા ઇસ પ્રકાર વિચાર ક્રિયા હૈ ” ઘઠ ઘાત ઘતલા દેતા હૈ ।

इसका विषय अर्द्ध द्वीप एव तदन्तर्गत समुद्रके भीतर रहे हुए सजी
पचेन्द्रिय जीवोंका मनोगत द्रव्य हैं। मन, द्रव्यमन और भाव मनके भेदसे
दो प्रकारका है। द्रव्यमन मनोवर्गणारूप है। यही वर्गणा जीवसे जब गृहीत
हो जाती है और जीव ^{के सहाय से} उनका विचार करने लगता है तो उस
विचारका नाम ही भावमन है, यहा मनसे भावमनका ग्रहण हुआ है ।
इस भावमनकी पर्याये इस प्रकार होती है -आत्माका क्या स्वभाव है ?
यह आत्मा ज्ञानस्वभाववाला है, रूपरहित एव कर्ता और सुखादि-

ઢરે છે તેને તે વસ્તુનો સ્પષ્ટ યોધ થાય છે તેમા પણ ઇન્દ્રિયો તથા મનની
સહાયતાની જરૂર રહેતી નથી “ આને આ વિચાર ડર્યો છે તથા આ રીતે
વિચાર ડર્યો છે ” તે વાત મન પર્યાયજ્ઞાની યતાવી દે છે

તેનો વિષય અર્ધ દ્વીપ અને તેની અદર આવેલા સમુદ્રની અદર રહેલા
સજી પચેન્દ્રિય જીવોનો મનોગત દ્રવ્ય છે દ્રવ્યમન અને ભાવમન એ ભેદથી મન
ને પ્રકારતુ છે દ્રવ્યમન મનોવર્ગણારૂપ છે આ જ વર્ગણા ન્યારે જીવથી
ગૃહીત થઈ બધ છે અને ન્યારે જીવ તેમને વિચાર કરવા લાગે છે ત્યારે એ
વિચારનો નામ જ ભાવમન છે અહીં મનથી ભાવમનનું ગ્રહણ થયું છે એ
ભાવમનની પર્યાયો આ પ્રમાણે હોય છે-આત્માનો કયો સ્વભાવ છે ? આ આત્મા
જ્ઞાન સ્વભાવવાળો છે, ઉપરહિત તથા કર્તા અને સખાદિનો ભોખતા છે એ જ

केवलज्ञानमत्यादिनिरपेक्ष भवति, केवलज्ञानमादुर्भावे मत्यादीनामसभवात् । ननु कथं तदा मत्यादीनामसभवाः ? यदि मतिज्ञानादीनि स्वस्वावरणक्षयोपशममेऽपि प्रादुर्भवन्ति, तर्हि सर्वथा स्वस्वावरणक्षये तु तानि सुतरां प्रादुर्भवन्ति चारित्र्यपरिणामात् । उक्तञ्च—

“ आवरणदेसविगमे, जाडं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणमच्चविगमे, कइ ताड न होति जीवस्स ” ॥ १ ॥

छाया—आवरणदेशविगमे यानि विद्यन्ते मतिश्रुतादीनि ।

आवरणसर्वविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्य ॥ १ ॥

इति चेत्, उच्यते—कथंचिन्मलसंपृक्तस्य मरुतादिमणेर्यावत् सर्वथा मला-

मानकालके समस्तपदार्थं हस्नामलकवत् इसमे प्रतिविम्बित होते रहते हैं । तथा यह केवलज्ञान मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानों से निरपेक्ष रहता है, क्यों कि इसकी उत्पत्ति होने पर मत्यादिक ज्ञान रहते नहीं हैं।

शङ्का—केवलज्ञानके सद्भावमे मत्यादिकोंका असद्भाव क्यों रहता है ? जब मत्यादिक ज्ञान अपने २ आवरणों के क्षयोपशम होने पर ही होते हैं तो यह बात मानने में और अधिक सरल पड़ जाती है कि जब अपने २ आवरणों का सर्वथा क्षय हो जायगा तो वे अपने आप ही प्रगट होने लगेगे जैसे चारित्र्यपरिणाम होता है । कहा भी है—

“ आवरणदेसविगमे, जाडं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणसच्चविगमे, कइ ताड न होति जीवस्स ” ॥ १ ॥

इस शङ्काका उत्तर इस प्रकार है—जिस प्रकार मलयुक्त मणिसे जब

भित थता रहे छे तथा ओ देवणज्ञान मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानोथी निरपेक्ष रहे छे, जण्ठ उ तेनी उत्पत्ति थता मत्यादिक ज्ञान रहेता नथी

शङ्का—देवणज्ञानना सद्वलावभा मत्यादिकेनो असद्वलाव उभे रहे छे ? न्यारे मत्यादिक ज्ञान पोतपोताना आवरणोना क्षयोपशम थता न थाय छे त्यारे ते वात मानवा वधु सरण पडे छे, के न्यारे पोत पोताना आवरणोना सद्वलाव क्षय थई नथे त्यारे तेजो आपो आप न प्रगट थवा लागे, नेवी रीते चारित्र्य परिणाम होय छे उल्लु पणु छे—

“ आवरणदेसविगमे, जाडं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणसच्चविगमे, कइ ताड न होति जीवस्स ॥ १ ॥

ओ शङ्कानो उत्तर आ प्रभाणु छे—ने रीते भेल वाणा मणुभाथी न्या

=સકલ-પરિપૂર્ણ, સપૂર્ણજ્ઞેયગ્રાહિત્વાત્ ૩। યદ્વા-કેવલમ્=અસાધારણમ્, અનન્ય-સદૃશ, તાદૃશાસ્પરજ્ઞાનાભાગાત્ ૪ । યદ્વા-કેવલમ્=અનતમ્ અપ્રતિપાતિત્વેન પર્યવસાનરહિતત્વાત્, જ્ઞેયાનન્તત્વાન્ચ ૫। ઇત્યેયમંગકાદિવ્યર્થેષુ કેવલશબ્દોઽપ્ર તર્ત્તે। કેવલ ચ તદ્જ્ઞાન ચેતિ કેવલનામમ્ । આત્યન્તિક-નિરવગ્રોપ-પાનાસનીયર્મક્ય-પ્રભવ કરતલકલિતનિસ્તુલસ્તૂલમુક્તાફલાયમાનયથાઽપ્રસ્થિતાઽગ્રંપભૂતભવદ્વાપિ ભાવસ્વભાગાસકા નાન કેવલનામમ્ ।

કારણ કિ યદ્ જ્ઞાન સકલ આવરણોં કેક્ષ્ય હોને પર હી હોતા હૈ ૨ । અથવા-જો જ્ઞાન સમ્પૂર્ણ હોતા હૈ વદ્ કેવલજ્ઞાન હૈ । યદ્ કેવલકા અર્થ સમ્પૂર્ણ એસા વતલાયા ગયા હૈ, કારણ કિ યદ્ જ્ઞાન સમ્પૂર્ણ પદાર્થોં કો રૂપી અરૂપી સમસ્ત ત્રિકાલવર્તી પદાર્થસમૂહ કો ગ્રહણ કરતા હૈ ૩ । અથવા-જો જ્ઞાન અસાધારણ હોતા હૈ ઉમ્કા નામ કેવલજ્ઞાન હૈ । યદ્ કેવલ શબ્દકા અર્થ અસાધારણ ક્રિયા ગયા હૈ, કારણ કિ ઇસકે જૈસા ઓર કોઈ દૂસરા જ્ઞાન નહી હોતા હૈ ૪ । અથવા જો જ્ઞાન અનત હોતા હૈ ઉમ્કા નામ કેવલજ્ઞાન હૈ । યદ્ કેવલકા અર્થ અનત ક્રિયા ગયા હૈ, કારણ કિ ઇક વાર આત્મામે ઇસ જ્ઞાનકે હો જાને પર ફિર ઇસકા પ્રતિ-પાત નહી હોતા હૈ । તથા અનત જ્ઞેયોં કે જાનને સે મી યદ્ અનત માના ગયા હૈ ૫। ઇસ તરહ ઇન પાચ અર્થોંવાલા જો જ્ઞાન હોતા હૈ વહી કેવલ જ્ઞાન હૈ, એસા જાનના ચાહિયે । તાત્પર્ય ઇસકા યહી હૈ કિ ઇસ જ્ઞાનમે જ્ઞાનાવરણીય કર્મકા સમૂલ ક્ષય હોતા હૈ । ભૂત ભવિષ્યત્ ણ્વ વર્ત-

‘શુદ્ધ’ ઈર્થોં છે કારણ કે આ જ્ઞાન સર્વેં આવરણોં નષ્ટ વતા જ થાય છે ૨ અથવા જે જ્ઞાન સમ્પૂર્ણ હોય છે તે કેવળજ્ઞાન છે અહીં કેવળનો અર્થ સમ્પૂર્ણ દર્શાવાયો છે, કારણ કે આ જ્ઞાન સમ્પૂર્ણ પદાર્થોંને-રૂપી, અરૂપી સમસ્ત ત્રિકાલવર્તી પદાર્થસમૂહને ગ્રહણ કરે છે ૩ અથવા જે જ્ઞાન અસાધારણ હોય છે તેનું નામ કેવળજ્ઞાન છે અહીં કેવળ શબ્દનો અર્થ અસાધારણ કરાયો છે, કારણ કે તેના જેવું બીજું કોઈ જ્ઞાન નથી ૪ અથવા જે જ્ઞાન અનત હોય છે તેનું નામ કેવળજ્ઞાન છે અહીં કેવળનો અર્થ અનત કરાયો છે, કારણકે આત્મામાં એક વખત આ જ્ઞાન થયા પછી તેનો નાશ થતો નથી તથા અનત જ્ઞેયોંને બાણવાથી પણ તે અનત મનાયુ છે ૫ આ રીતે એ પાચ અર્થોંવાળું જે જ્ઞાન થાય છે એ જ કેવળજ્ઞાન છે, એવું બાણવું જોઈએ તેનું તાત્પર્ય એ છે કે આ જ્ઞાનમાં જ્ઞાનાવરણીય ઈર્થોંનો મૂળમાથી જ ક્ષય થાય છે ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળના સર્વેં પદાર્થોં હસ્તામલકવત્ તેમાં

केवलज्ञान मत्यादिनिरपेक्ष भवति, केवलज्ञानप्रादुर्भावे मत्यादीनामसभवात् । ननु कथं तदा मत्यादीनामसभवाः ? यदि मतिज्ञानादीनि स्वस्वावरणक्षयोपशमेऽपि प्रादुर्भवन्ति, तर्हि सर्वथा स्वस्वावरणक्षये तु तानि सुतरा प्रादुर्भवन्ति चारित्र्यपरिणामवत् । उक्तञ्च—

“ आवरणदेसप्रिगमे, जाइं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणमच्चविगमे, कह ताइ न होति जीवस्स ” ॥ १ ॥

छाया—आवरणदेशप्रिगमे यानि विद्यन्ते मतिश्रुतादीनि ।

आवरणमर्वविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्य ॥ १ ॥

इति चेत्, उच्यते—कथंचिन्मलसंपृक्तस्य मरुतादिमणेर्यावत् सर्वथा मल-

मानकालके समस्तपदार्थ हस्नामलकवत् इसमें प्रतिबिम्बित होते रहते हैं । तथा यह केवलज्ञान मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानों से निरपेक्ष रहता है, क्यों कि इसकी उत्पत्ति होने पर मत्यादिक ज्ञान रहते नहीं हैं।

शङ्का—केवलज्ञानके सद्भावमें मत्यादिकोंका असद्भाव क्यों रहता है ?

जब मत्यादिक ज्ञान अपने २ आवरणों के क्षयोपशम होने पर ही होते हैं तो यह बात मानने में और अधिक सरल पड जाती है कि जब अपने २ आवरणों का सर्वथा क्षय हो जायगा तो वे अपने आप ही प्रगट होने लगेगे जैसे चारित्र्यपरिणाम होता है । कहा भी है—

“ आवरणदेसविगमे, जाइं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणसच्चविगमे, कह ताइ न होति जीवस्स ” ॥ १ ॥

इस शङ्काका उत्तर इस प्रकार है—जिस प्रकार मलयुक्त मणिसे जब

मित यता रहे छे तथा ये देवणज्ञान मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानार्थी निरपेक्ष रहे छे, काण्ड के तेनी उत्पत्ति यता मत्यादिक ज्ञान रहेता नथी

शङ्का—देवणज्ञानना सहलावमा मत्यादिकोंना असहलाव उभ गडे छे ? न्यारे मत्यादिक ज्ञान पोतपोताना आवरणोंना क्षयोपशम यता न थाय छे त्यारे ते पात मानवी वधु सरण पडे छे, के न्यारे पोत पोताना आवरणोंना सहलाव क्षय थक नगे त्यारे तेओ आपो आप न प्रगट थवा लागणे, नेवी रीते चारित्र्य परिणाम होय छे उहु पणु छे—

“ आवरणदेसविगमे जाइं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणसच्चविगमे, कह ताइ न होति जीवस्स ॥ १ ॥

ये शङ्काने उत्तर या प्रमाणे छे—ने रीते भेल वाणा मण्डीभाथी न्या

=સકલ-પરિપૂર્ણ, સપૂર્ણજ્ઞેયગ્રાહિત્વાત્ ૩। યદ્વા-કેવલમ્=અસાધારણમ્, અનન્ય-સદૃશ, તાદૃશાઽપરજ્ઞાનાભાગાત્ ૪ । યદ્વા-કેવલમ્=અનતમ્ અપ્રતિપાતિત્વેન પર્યવસાનરહિતત્વાત્, જ્ઞેયાનન્તત્વાન્ચ ૫। ઇત્યેયમેકાદિપ્યર્થેષુ કેવલશબ્દોઽન્યર્થતે। કેવલ ચ તજ્ઞાન ચેતિ કેવલજ્ઞાનમ્ । આત્યન્તિક-નિરયોગ-પાનાચરણીયર્મક્ષય-પ્રભવ કરતલકલ્પિતનિસ્તુલસૂલમુક્તાફલાયમાનયથાઽગમ્થિતાઽગ્રેષૂભૂતમમદ્વાધિભાગસ્વભાગામ્ભાસક જ્ઞાન કેવલજ્ઞાનમ્ ।

કારણ કિ યદ્ જ્ઞાન સકલ આવરણો કે ક્ષય હોને પર હી હોતા હૈ ૨ । અથવા-જો જ્ઞાન સમ્પૂર્ણ હોતા હૈ વહ કેવલજ્ઞાન હૈ । યદ્ કેવલકા અર્થ સમ્પૂર્ણ એસા વતલાયા ગયા હૈ, કારણ કિ યદ્ જ્ઞાન સમ્પૂર્ણ પદાર્થો કો રૂપી અરૂપી સમસ્ત ત્રિજાલવર્તી પદાર્થસમૂહ કો ગ્રહણ કરતા હૈ ૩ । અથવા-જો જ્ઞાન અસાધારણ હોતા હૈ ઉસકા નામ કેવલજ્ઞાન હૈ । યદ્ કેવલ શબ્દકા અર્થ અસાધારણ ક્રિયા ગયા હૈ, કારણ કિ ઇમકે જૈસા ઓર કોઈ દૂસરા જ્ઞાન નહી હોતા હૈ ૪ । અથવા જો જ્ઞાન અનત હોતા હૈ ઉસકા નામ કેવલજ્ઞાન હૈ । યદ્ કેવલકા અર્થ અનત ક્રિયા ગયા હૈ, કારણ કિ ઇક વાર આત્મામે ઇસ જ્ઞાનકે હો જાને પર ફિર ઇસકા પ્રતિ-પાત નહી હોતા હૈ । તથા અનત જ્ઞેયો કે જાનને સે મી યદ્ અનત માના ગયા હૈ ૫ । ઇસ તરહ ઇન પાચ અર્થોવાલા જો જ્ઞાન હોતા હૈ વહી કેવલ જ્ઞાન હૈ, એસા જાનના ચાહિયે । તાત્પર્ય ઇસકા યહી હૈ કિ ઇસ જ્ઞાનમે જ્ઞાનાવરણીય કર્મકા સમૂહ ક્ષય હોતા હૈ । ભૂત ભવિષ્યત્ એ વર્ત-

‘શુદ્ધ’ ઈર્થો છે કારણ કે આ જ્ઞાન સર્વે આવરણો નષ્ટ થતા જ થાય છે ૨ અથવા જે જ્ઞાન સપૂર્ણ હોય છે તે કેવળજ્ઞાન છે અહીં કેવળનો અર્થ સપૂર્ણ દર્શાવાયો છે, કારણ કે આ જ્ઞાન સપૂર્ણ પદાર્થોને-રૂપી, અરૂપી સમસ્ત ત્રિજાલવર્તી પદાર્થસમૂહને શ્રદ્ધ કરે છે ૩ અથવા જે જ્ઞાન અસાધારણ હોય છે તેનું નામ કેવળજ્ઞાન છે અહીં કેવળ શબ્દનો અર્થ અસાધારણ કરાયો છે, કારણ કે તેના જેવું બીજું કોઈ જ્ઞાન નથી ૪ અથવા જે જ્ઞાન અનત હોય છે તેનું નામ કેવળજ્ઞાન છે અહીં કેવળનો અર્થ અનત કરાયો છે, કારણ કે આત્મામાં એક વખત આ જ્ઞાન થયા પછી તેનો નાશ થતો નથી તથા અનત જ્ઞેયોને બાણવાથી પણ તે અનત મનાયુ છુ ૫ આ રીતે એ પાંચ અર્થોવાળું જે જ્ઞાન થાય છે એ જ કેવળજ્ઞાન છે, એવું બાણવું બોધ એ તેનું તાત્પર્ય એ છે કે આ જ્ઞાનમાં જ્ઞાનાવરણીય ઈર્થોનો મૂળભાગ જ ક્ષય થાય છે ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળના સર્વે પદાર્થો હસ્તામલકવત્ તેમાં પ્રતિ

केवलज्ञान मत्यादिनिरपेक्ष भवति, केवलज्ञानप्रादुर्भावे मत्यादीनामसभयात् । ननु कथं तदा मत्यादीनामसंभवः ? यदि मतिज्ञानादीनि स्वस्वावरणक्षयोपगमेऽपि प्रादुर्भवन्ति, तर्हि सर्वथा स्वस्वावरणक्षये तु तानि सुतरां प्रादुर्भवन्ति चारित्र्यपरिणामवत् । उक्तञ्च—

“ आवरणदेसविगमे, जाडं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणमच्चविगमे, कह ताड न होति जीवस्स ” ॥ १ ॥

छाया—आवरणदेशविगमे यानि विद्यन्ते मतिश्रुतादीनि ।

आवरणमर्वविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्व ॥ १ ॥

इति चेत्, उच्यते—कथञ्चिन्मलसंपृक्तस्य मरुतादिमणेर्यावत् सर्वथा मल-

मानकालके ममस्तपदार्यं हस्नामलकवत् इसमे प्रतिविम्बित होते रहते हैं । तथा यह केवलज्ञान मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानों से निरपेक्ष रहता है, क्यों कि इसकी उत्पत्ति होने पर मत्यादिक ज्ञान रहते नहीं हैं।

शङ्का—केवलज्ञानके सङ्घावमे मत्यादिकोका असङ्घाव क्यों रहता है ?

जब मत्यादिक ज्ञान अपने २ आवरणों के क्षयोपशम होने पर ही होते हैं तो यह बात मानने में और अधिक सरल पड जाती है कि जब अपने २ आवरणों का सर्वथा क्षय हो जायगा तो वे अपने आप ही प्रगट होने लगे गे जैसे चारित्र्यपरिणाम होता है । कहा भी है—

“ आवरणदेसविगमे, जाडं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणसच्चविगमे, कह ताड न होति जीवस्स ” ॥ १ ॥

इस शङ्काका उत्तर इस प्रकार है—जिस प्रकार मलयुक्त मणिसे जब

बिजित होता रहे ठे तथा ये डेवणज्ञान मत्यादिक क्षायोपशमिक ज्ञानोत्थी निरपेक्ष रहे छे, शङ्का डे तेनी उत्पत्ति थता मत्यादिक ज्ञान रहेता नथी

शङ्का—डेवणज्ञानना सहसावभा मत्यादिकोको असहसाव डेम गडे छे ? न्यारे मत्यादिक ज्ञान पोतपोताना आवरणोको क्षयोपशम थता न थाय छे त्यारे ते वात भानवी वधु सरण पडे छे, डे न्यारे पोत पोताना आवरणोको नदतण क्षय थथ नथे त्यारे तेओ आपो आप न प्रगट थवा लागणे, नेवी रीते चारित्र्य परिणाम होय छे उल्लु पणु छे—

“ आवरणदेसविगमे, जाडं विज्जति मइसुयाईणि ।

आवरणसच्चविगमे, कह ताड न होति जीवस्स ॥ १ ॥

ये शङ्को उत्तर आ प्रभाणे छे—ने रीते भेद वाणा भव्तीभाथी न्या

પગમો ન ભવતિ, તાવદ્ યથા યથા દશતો મલ્લ્યપગમસ્તથા તથા દેશતસ્તસ્વરૂપા ભિવ્યક્તિરુપજાયતે, સાડપિ ક્વચિત્ કદાચિદ્ કથચિત્ ભવતીત્યનેકગ્રિથા, તથા-
ડડત્મનોડપિ કાલત્રયવર્તિસકલપદાર્થસાક્ષાત્કારકૈરુપારમાર્થિકસ્વરૂપસ્યાપ્યનાદિકા-
લોપચિત્જ્ઞાનાવરણીયકર્મમલપટલતિરોહિતસ્ય યાવત્ સર્વથા કર્મમલ્લ્યપગમો ન
ભવતિ, તાવદ્ યથા યથા દેશતઃ કર્મમલ્લયો જાયતે, તથા તથા દેશતસ્વસ્ય જ્ઞપ્તિઃ
પ્રાદુર્ભવતિ । સાડપિ ક્વચિત્ કદાચિત્ કથચિદ્ ભવતીત્યનેકગ્રિથા ભવતિ। ઉક્તશ્ચ-

તક સર્વથા મૈલકા અભાવ નહીં હોતા હૈ તવ તરુ જૈસે ઉસસે થોડે ૨
રૂપમે મૈલકા અભાવ હોતા રહતા હૈ ઓર વહ મણિ ઉસ થોડે ૨ મૈલકે
વિગમસે થોડે ૨ રૂપમે અપને સ્વરૂપકી અભિવ્યક્તિ કરતા રહતા હૈ ।
યહ સ્વરૂપાભિવ્યક્તિ ઉસ મણિમે સર્વદેશમેં ન હો કર ક્વચિત્ કદા-
ચિત્ કથચિત્ રૂપસે હોતી હૈ અત યહ સ્વરૂપાભિવ્યક્તિ અનેકવિધ
માની જાતી હૈ, ઉસી પ્રકાર કાલત્રયવર્તી સકલ પદાર્થોં કો સાક્ષાત્
જાનનેકા જિસકા પારમાર્થિક સ્વભાવ હૈ, ઓર યહ સ્વભાવ જિમકા
અનાદિકાલસે લગે દુષ્ જ્ઞાનાવરણીય કર્મપટલસે તિરોહિત હો રહા હૈ
સો જવ તક આત્માસે સર્વથા કર્મમલકા વ્યપગમ નહીં હો જાતા હૈ તવ
તક ંક દેશસે જૈસા ૨ કર્મમલકા વિગમ હોતા રહતા હૈ વૈસે ૨ ઉસકે
સ્વરૂપકી જ્ઞપ્તિ હોતી રહતી હૈ । યહ આત્માકે સ્વરૂપકી જ્ઞપ્તિ મી જીવકી
ક્વચિત્ કદાચિત્ કથચિત્ રૂપમે હી હોતી હૈ, સર્વરૂપમે નહી, અત
યહ જ્ઞપ્તિ મી અનેકવિધ માની જાતી હૈ । કહા મી હૈ—

સુધી મેલનેા સદ્ તર અભાવ થતો નથી ત્યા સુધી જેમ તેનાથી થોડા થોડા પ્રમા
ણમા મેલનેા અભાવ થયા કરે છે અને તે મણી તે થોડા થોડા મેલના જવાથી
થોડા થોડા પ્રમાણમા પોતાના સ્વરૂપની અભિવ્યક્તિ કરતો રહે છે . આ સ્વરૂપા
ભિવ્યક્તિ તે મણિમા સર્વ દેશમા ન હોતા ક્વચિત્ (કોઈ કોઈ જગ્યાએ) કદાચિત્
(કોઈક વખતે) કથચિત્ રૂપથી (કોઈ કોઈ પ્રકારે) હોય છે તેથી તે સ્વરૂપા
ભિવ્યક્તિ અનેક પ્રકારે મનાય છે એજ પ્રમાણે ત્રિકાળવર્તી સર્વ પદાર્થોને
સાક્ષાત્ જાણવાને જેને પારમાર્થિક સ્વભાવ છે, અને જેને એ સ્વભાવ અનાદિ
કાળથી લાગેલા જ્ઞાનાવરણીય કર્મપટલથી તિરોહિત થઈ રહ્યો છે તે જ્યા
સુધી આત્મામાથી કર્મમળનેા સદ્ તર નાશ થઈ જતો નથી ત્યા સુધી એક
દેશથી જેમ જેમ કર્મમળ જતો જાય છે તેમ તેમ તેના સ્વરૂપની 'જ્ઞપ્તિ' (જાણ)
થતી રહે છે આ આત્માના સ્વરૂપની જાણ પણ જીવને ક્વચિત્, કદાચિત્ કથચિત્
રૂપથી જ થાય છે, સમસ્ત રૂપે નહીં તેથી આ જ્ઞપ્તિ—(જાણ) પણ અનેક પ્રકારે
મનાય છે કહ્યુ પણ છે -

“ मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः ।

कर्मविद्धाऽऽत्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः ” ॥१॥

तदनेकविधत्व मतिश्रुतादिभेदाद् भवति ।

यदा तु तस्य मरकतमणेर्निरवशेषमलव्यपगमस्तदा परिस्फुटरूपैकाभिव्यक्ति-
रूपजायते, तद्वदात्मनोऽपि ज्ञानदर्शनचाग्निप्रभावतो निरवशेषावरणक्षये सति
एकरूप परिस्फुट सर्ववस्तुपर्यायसाक्षात्कारक ज्ञानमाभिर्भवति । तथा चोक्तम्—

“ यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः ।

स्फुटैकरूपाभिव्यक्तिर्निवृत्तिस्तद्वदात्मन ” ॥ १ ॥

तस्मात् केवलज्ञान मत्यादिनिरपेक्ष भवतीति सिद्धम् ।

“ मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः ।

कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः ॥ १ ॥ ”

यह अनेकविध आत्मज्ञप्ति ही मत्यादिक चार ज्ञानस्वरूप है । जब उस
मरकतमणिसे समस्त रूपमें मलका अपगम हो जाता है तो जैसे उसके
रूपकी स्फुटरूपमें अभिव्यक्ति हो जाती है उसी तरह आत्माके भी ज्ञानद-
र्शनचारित्र्यके प्रभावसे सम्पूर्ण रूपमें आवरणके क्षय होने पर एक स्वरूपकी
कि जो सर्ववस्तुओं एवं उनकी समस्त पर्यायोंको विशदरूपसे साक्षा-
त्कार करनेवाला होता है अभिव्यक्ति हो जाती है । कहा भी है—

“ यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः ।

स्फुटैकरूपाभिव्यक्ति, -विज्ञप्तिस्तद्वदात्मन ” ॥१॥

इससे यह सिद्ध हुआ कि-केवलज्ञान मत्यादिनिरपेक्ष होता है ।

“ मलविद्धमणिव्यक्ति, -र्यथाऽनेकप्रकारतः ।

कर्मविद्धात्मविज्ञप्ति, -स्तथाऽनेकप्रकारतः ” ॥१॥

आ अनेकविध आत्मज्ञप्ति व मत्यादिक चार ज्ञान स्वरूप छे न्यारे ते
मरकतमणिमाथी स पूर्ण रीते भेलने नाश थाय छे त्यारे नेम तेना उपनी
स्पष्ट रीते अबिव्यक्ति थाय छे तेन प्रभावे ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य प्रभावथी
आत्माना आवरणयो पण स पूर्ण रीते क्षय थता ओक स्वरूपनी, ते ने सर्व वस्तुओ
तेमने तेमनी समस्त पर्यायोनो विशदरूपथी साक्षात्कार उरनार डोय छे, अबिव्य-
क्ति थर नथ छे कछु पण छे -

“ यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः ।

स्फुटैकरूपाभिव्यक्ति, -विज्ञप्तिस्तद्वदात्मन ” ॥१॥

आथी ओ सिद्ध थाय छे के-उपज्ञान मत्यादिनिरपेक्ष डोय छे

નન્વવ્યાદિજ્ઞાનતઃ પૂર્વં મતિશ્રુતજ્ઞાનનિર્દેશો યો હતઃ ? , અપ્રોચ્યતે—૩૬ સ્વામિકાલકારણવિષયપરોક્ષત્વસામ્યાત્ , તત્સત્ત્વે ચાપધ્યાદિજ્ઞાનસમપ્રાદાદાવેવ તયોરુપન્યાસ इति । તથાહિ—ય એ મતિજ્ઞાનસ્ય સ્વામી સ એ શ્રુતજ્ઞાનસ્યાપિ । તથા ચોક્તમ્—‘જત્ય મહનાણ તત્ય સુચનાણ ’ इति ।

તથા—યાવાન્ મતિજ્ઞાનસ્ય સ્થિતિકાલમ્તાવાનેન્ શ્રુતજ્ઞાનસ્ય । યથા મતિજ્ઞાન ક્ષયોપશમહેતુક તથા શ્રુતજ્ઞાનમપિ । યથા ચ—મતિજ્ઞાન દશતઃ સર્વદ્રવ્યાદિવિષય, તથા શ્રુતજ્ઞાનમપિ । યથા મતિજ્ઞાન પરોક્ષ, તથા શ્રુતજ્ઞાનમપિ । મતિજ્ઞાન-શ્રુતજ્ઞાનયોઃ સત્ત્વે એ ચાપધિજ્ઞાનાદીનિ ભવન્તિ ।

શરૂકા—અવધિ આદિ જ્ઞાનોં કે પહિલે જો મતિશ્રુતજ્ઞાનકા નિર્દેશ કિયા ગયા હૈ હસમેં કયા કારણ હૈ ? ।

ઉત્તર—હન દોનોમેં પહિલે જો મતિશ્રુત જ્ઞાનકા નિર્દેશ કિયા ગયા હૈ ઉસમે એક કારણ તો યહ હૈ કિ મતિજ્ઞાન એવ શ્રુતજ્ઞાન, હન દોનોંકે એક હી સ્વામી હોતે હૈ, ભિન્ન ૨ સ્વામી નહીં । તયા—હનકા કાલ મી એક હી હૈ, ભિન્ન ૨ કાલ નહીં હૈ । તયા વિષયકી અપેક્ષા મી હનમેં સમાનતા હૈ, અસમાનતા નહીં । તયા યે દોનોં જ્ઞાન પરોક્ષ હૈ । દૂસરા કારણ યહ હૈ કિ હનકે હોને પર હી અવધિ આદિ જ્ઞાન હોતે હૈ । કહા મી હૈ—“ જત્ય મહનાણ તત્ય સુચનાણ ” ।

જિસ આત્મામેં મતિજ્ઞાન હોતા હૈ ઉસી આત્મામેં શ્રુતજ્ઞાન હોતા હૈ । જિતના સ્થિતિકાલ મતિજ્ઞાનકા હૈ ઉતના હી સ્થિતિકાલ શ્રુતજ્ઞાનકા હૈ । મતિજ્ઞાન જિસ પ્રકાર મતિજ્ઞાનાવરણીય કર્મકે ક્ષયોપશમસે ઉત્પન્ન હોતા

શકા—અવધિ આદિ જ્ઞાનોમા પહેલા જે મતિ શ્રુત જ્ઞાનનો ઉલ્લેખ કરાયો છે તેનું શુ કારણ છે ?

ઉત્તર—એ જ્ઞાનોમા પહેલા જે મતિ શ્રુત જ્ઞાનનો નિર્દેશ કરાયો છે તેનું એક કારણ તો એ છે કે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન એ બન્નેનો એક જ સ્વામી હોય છે, અલગ અલગ સ્વામી હોતો નથી વળી તેનો કાળ પણ એક જ છે, બુદ્ધો બુદ્ધો કાળ નથી વળી વિષયની અપેક્ષાએ પણ એમા સમાનતા છે—અસમાનતા નથી તથા તે બન્ને જ્ઞાન પરોક્ષ છે બીજી કારણ એ છે કે એ હોય તો જ અવધિ આદિ જ્ઞાન થાય છે ઠણું પણ છે—

“જત્ય મહનાણ તત્ય સુચનાણ ” જે આત્મામા મતિજ્ઞાન થાય છે એ જ આત્મામા શ્રુતજ્ઞાન થાય છે જેટલો સ્થિતિકાળ મતિજ્ઞાનનો છે એટલો જ સ્થિતિકાળ શ્રુતજ્ઞાનનો છે મતિજ્ઞાન જે પ્રમાણે મતિજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયો-

ननु मतिज्ञानानन्तर श्रुतज्ञाननिर्देशे को हेतुः ? उच्यते—श्रुतज्ञानस्य मतिपूर्वकत्वाद् विशिष्टमत्यशरूपत्वाद् वा श्रुतज्ञान मतिज्ञानानन्तरमुपन्यस्तम् । उक्तञ्च—

“महपुत्र्व जेण सुय, तेणादीए मइविसिद्धो वा ।

मइभेओ चेव सुयं, तो मइसमणतर भणिय” ॥

छाया—मतिपूर्वं येन श्रुत, तेनादितो मतिविशिष्ट वा ।

मतिभेदश्चैव श्रुतं, ततो मतिसमनन्तर भणितम् ॥

है उसी प्रकार श्रुतज्ञान भी श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है । जिस प्रकार मतिज्ञान सर्व द्रव्योको परोक्षरूपसे विषय करता है उसी प्रकार श्रुतज्ञान भी विषय करता है । मतिज्ञान जिस प्रकार परोक्ष माना गया है । उसी प्रकार श्रुतज्ञान भी परोक्ष माना गया है । इन मतिज्ञान एव श्रुतज्ञानके सद्भावमे ही अवधिज्ञान आदि हुआ करते है ।

शका—मतिज्ञान के बाद श्रुतज्ञानका जो पाठ रक्खा गया है । उसमे क्या कारण है ? ।

उत्तर—मतिज्ञानके बाद श्रुतज्ञानके पाठ रखनेमे कारण यह है कि श्रुतज्ञान, मतिज्ञानपूर्वक होता है, अथवा वह मतिज्ञानका ही एक विशिष्ट अंश है । कहा भी है—

“महपुत्र्व जेण सुय, तेणादीए मइविसिद्धो वा ।

मइभेओ चेव सुय, तो मइसमणतर भणिय ॥ १ ॥”

पशमथी उत्पन्न थाय छे अथ प्रमाणे श्रुतज्ञान पणु श्रुतज्ञानावरणीय उर्ध्वना क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे ने प्रमाणे मतिज्ञान सर्वे द्रव्येने परोक्ष रूपथी विषय करे छे अथ प्रमाणे श्रुतज्ञान पणु विषय करे छे ने रीते मतिज्ञान परोक्ष भनायु छे अथ रीते श्रुतज्ञान पणु परोक्ष भनायु छे अथ मतिज्ञान तथा श्रुत ज्ञानना सहभावमा अथ अवधिज्ञान वगेरे थया करे छे

शका—मतिज्ञाननी, पछी श्रुतज्ञानने ने पाठ रखाये छे तेनु शु कारण छे ?

उत्तर—मतिज्ञाननी पछी श्रुतज्ञानने पाठ राखवानु कारण अथ छे के श्रुतज्ञान मतिज्ञान भाये थाय छे अथवा ते मतिज्ञानने अथ विशिष्ट अंश छे कहु पणु छे—

“महपुत्र्व जेण सुय, तेणादीए मइविसिद्धो वा ।

मइभेओ चेव सुय, तो मइसमणतर भणिय” ॥१॥

નનુ મતિશ્રુતજ્ઞાનાનન્તરમવધિજ્ઞાનસ્યોપન્યાસે કો હતુઃ?, ઉચ્યતે—કાલ-વિપર્યય-સ્વામિ-લાભતઃ સામ્યાદવધિજ્ઞાનસ્ય મતિશ્રુતાનન્તર કથનમિતિ તથાદિ-

एकजीवापेक्षया, नानाजीवापेक्षया च मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोर्यावान् स्थितिकालोऽस्ति, तावानवधिज्ञानस्यापि स्थितिकालोऽस्तीति काळतः साम्यम् । यथा च मिथ्यात्वोदये मतिश्रुतज्ञाने अज्ञानरूप विपर्यय प्रतिपद्येते, तथाऽवधिज्ञानमपीति विपर्ययसाम्यम् । तथा य एव मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः स्वामी स एवावधिज्ञानम्यापि स्वामी भवतीति स्वामिना साम्यम् । तथा विभङ्गज्ञाननिस्त्रिदशदशैः सम्यग्दर्शनप्राप्तौ युगपदेव ज्ञानत्रयलाभसमवात् लाभतः साम्यम् ।

શક્તી—મતિજ્ઞાન એવ શ્રુતજ્ઞાનકે વાદ અવધિજ્ઞાનકા જો કથન સૂત્રમેં કિયા ગયા હૈં ઉસકા ય્યા કારણ હૈં ?

ઉત્તર—इसका कारण—काल, विपर्यय, स्वामी एव लाभकी समानता है । इसका खुलासा इस प्रकार है—एक जीव अथवा नाना जीवोंकी अपेक्षा जितना मतिज्ञान एव श्रुतज्ञानका स्थितिकाल है उतना ही स्थितिकाल अवधिज्ञानका भी है । यह कालकी अपेक्षा मतिज्ञान श्रुतज्ञानके साथ अवधिज्ञानकी समानता है । मिथ्यात्वके उदय होने पर जिस प्रकार मतिज्ञान एव श्रुतज्ञान विपर्ययरूप हो जाते हैं उसी प्रकार अवधिज्ञान भी विपर्ययरूप हो जाता है । यह विपर्ययकी अपेक्षा इन दोनोंके साथ इसकी समानता है । मतिज्ञान एव श्रुतज्ञानका जो स्वामी होता है वही अवधिज्ञानका भी स्वामी होता है । इस प्रकार स्वामीकी अपेक्षा इसमें उनके साथ समानता घट जाती है । विभङ्गज्ञानी देव आदिको सम्यग्द-

શકા—મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની પછી અવધિ જ્ઞાનનું જે કથન સૂત્રમા કરાયું છે તેનું શું કારણ છે ?

ઉત્તર—એનું કારણ—કાળ, વિપર્યય, સ્વામી અને લાભની સમાનતા છે તેનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે—એક જીવ અથવા અનેક જીવોની અપેક્ષાએ જેટલો મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનનો સ્થિતિકાળ છે એટલો જ સ્થિતિકાળ અવધિજ્ઞાનનો પણ છે આ કાળની અપેક્ષાએ મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાનની સાથે અવધિજ્ઞાનની સમાનતા છે મિથ્યાત્વનો ઉદય થતા જે રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન વિપર્યયરૂપ થઈ જાય છે તે જ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન પણ વિપર્યયરૂપ થઈ જાય છે એ વિપર્યયની અપેક્ષાએ તે બન્નેની સાથે તેની સમાનતા છે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનનો જે સ્વામી હોય છે તે જ અવધિજ્ઞાનનો પણ સ્વામી હોય છે આ રીતે સ્વામીની અપેક્ષાએ તેમા તેમની સાથે સમાનતા બંધબેસતી થઈ જાય છે

तथा—छद्मस्थविषयभाजप्रत्यक्षत्वसाधर्म्यादवधिज्ञानानन्तर मनःपर्यवज्ञानस्य रूपनम् । तथाहि—यथाऽवधिज्ञान छद्मस्थस्य भवति, तद्वन्मनःपर्यवज्ञानमपि छद्मस्थस्यैवेति छद्मस्थसाम्यम् । तथा—यथाऽवधिज्ञान रूपिद्रव्यविषयम्, तथा मनःपर्यवज्ञानमपि सामान्येनेति विषयसाम्यम् । यथाऽवधिज्ञान क्षायोपशमिके भावे, तथा मनःपर्यवज्ञानमपीति भाजतः साम्यम् । यथाऽवधिज्ञान प्रत्यक्ष, तथा मनःपर्यवज्ञानमपीति प्रत्यक्षतया साम्यम् ।

ज्ञानकी प्राप्ति होने पर युगपत् उसे भूतिज्ञान, श्रुतज्ञान एव अवधिज्ञानका लाभ हो जाता है, यह लाभकी अपेक्षा समानता है ।

तथा—छद्मस्थ, विषय, भाव, प्रत्यक्षत्वकी समानता की अपेक्षाको लेकर अवधिज्ञानके बाद मनःपर्यवज्ञानका सूत्रमे निर्देश किया गया है । जिस प्रकार अवधिज्ञान छद्मस्थ जीवोको होता है उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञान भी उन्ही जीवोको होता है । यह अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञानकी छद्मस्थकी अपेक्षा समानता है । अवधिज्ञान जिस प्रकार रूपी द्रव्यको विषय करता है उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञान भी रूपी द्रव्योंको विषय करता है । यह विषयकी अपेक्षा दोनोंमें समानता है । क्षायोपशमिकभावमे जिस प्रकार अवधि ज्ञानको गिनाया गया है उसी प्रकार मनःपर्यवज्ञान को भी क्षायोपशमिक भावमे गिनाया गया है । यह भावकी अपेक्षा समानता है । अवधिज्ञान जिस प्रकार आत्मजन्य होनेसे प्रत्यक्ष माना जाता है उसी प्रकार इन्द्रिय और मनकी सहायता

विलग्नानी हेव आदिने सम्यग्दर्शननी प्राप्ति यथा युगपत् (એકીસાથે) તેને ભૂતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન અને અવધિજ્ઞાનનો લાભ થઈ જાય છે, આ લાભની અપેક્ષાએ સમાનતા છે

તથા—છદ્મસ્થ, વિષય, ભાવ, પ્રત્યક્ષત્વની સમાનતાની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાનની પછી મન પર્યવજ્ઞાનનો સૂત્રમા નિર્દેશ કરાયો છે જે ગીતે અવધિજ્ઞાન છદ્મસ્થ જીવોને ધાય છે એ જ રીતે મન પર્યવજ્ઞાન પણ એ જ જીવોને ધાય છે આ અવધિજ્ઞાન અને મન પર્યવજ્ઞાનની છદ્મસ્થની અપેક્ષાએ સમાનતા છે અવધિજ્ઞાન જે પ્રમાણે રૂપી દ્રવ્યોને વિષય કરે છે એ જ પ્રમાણે મન પર્યવજ્ઞાન પણ રૂપી દ્રવ્યોને વિષય કરે છે આ વિષયની અપેક્ષાએ બંનેમા સમાનતા છે ક્ષાયોપશમિક ભાવમા જે પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન ગણાયું છે એ જ પ્રમાણે મન પર્યવ જ્ઞાનને પણ ક્ષાયોપશમિક ભાવમા ગણાયું છે આ લાભની અપેક્ષાએ સમાનતા છે અવધિજ્ઞાન જે રીતે આત્મજન્ય હોવાથી પ્રત્યક્ષ મનાય છે એ જ રીતે મન પર્યવજ્ઞાન પણ ઈન્દ્રિય અને મનની સહાયતા વિના ફક્ત

તથા—અપ્રમત્તસયતસ્વામિસામ્યાત્ વિપર્યયામાપસામ્યાન્ચ, મન પર્યવજ્ઞાનાનન્તર કેવલજ્ઞાનમુપન્યસ્તમ્ । તથાદિ—યથા મનઃપર્યવજ્ઞાન પ્રમાદરહિતસ્યૈવ માનમુનેર્ભવતિ, તથા કેવલજ્ઞાનમપિ તાદૃશમ્યૈવ માનમુનેર્ભવતીતિ સ્યામિસામ્યમ્ । યથા ચ—મનઃપર્યવજ્ઞાન વિપર્યયજ્ઞાન ન ભવતિ, તથા કેવલજ્ઞાનમપીતિ વિપર્યયાભાવસામ્યમ્ ।

કિન્ચ—મત્યાદિજ્ઞાનચતુષ્ટયાપેક્ષયા ઉત્તમત્વાત્, અપ્રમાને લાભાચ કેવલજ્ઞાન ચરમમિતિ । કેવલજ્ઞાનસ્યાતીતાનાગતવર્તમાનનિઃશેષજ્ઞેયસ્વરૂપાપમાસિત્વાદુત્ત-
કે વિના કેવલ આત્માસે જન્ય હોનેકી વજહસે મન.પર્યવજ્ઞાન ભી પ્રત્યક્ષ માના ગયા હૈ । યદ્દ્વ ઇન દોનોમે પ્રત્યક્ષત્વકી અપેક્ષા સમાનતા હૈ ।

તથા—અપ્રમત્તસયતસ્વામી, તથા અવિપર્યયકી અપેક્ષાસે સમાનતા હોનેસે મનઃપર્યવજ્ઞાનકે ઘાદ કેવલજ્ઞાનકા પાઠ રમ્પા હૈ । મન.પર્યવજ્ઞાન જિસ પ્રકાર અપ્રમત્ત ભાવમુનિકે હોતા હૈ ઉસી તરહ કેવલજ્ઞાન ભી અપ્રમત્તભાવમુનિકે હોતા હૈ । યદ્દ્વ સ્વામીકી અપેક્ષા સમાનતા હૈ । મન.પર્યવજ્ઞાન જિસ પ્રકાર વિપર્યયસે રહિત હોતા હૈ ઉસી પ્રકાર કેવલજ્ઞાનમે ભી વિપર્યય નહી હોતા હે । યદ્દ્વ અવિપર્યયકી અપેક્ષાસે સમાનતા હૈ ।

દૂસરે—કેવલજ્ઞાનકો જો સવસે અન્તમે રહ્યા ગયા હૈ ઉસમે કારણ યદ્દ્વ હૈ કિ યદ્દ્વ જ્ઞાન મત્યાદિક ચાર જ્ઞાનોકી અપેક્ષા ઉત્તમ હૈ, તથા ઇન સવકે અન્તમે હી ઇસકી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । ડન જ્ઞાનોકી અપેક્ષા ઉત્તમતા ઇસમે ઇસલિયે હૈ કિ ઇસ જ્ઞાનમે અતીત, અનાગત, તથા વર્તમાનકાલીન સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થો કા અવભાસન હોતા હૈ । તથા જિસ જીવકો ચાર જ્ઞાન

આત્મજન્ય હોવાથી પ્રત્યક્ષ મનાય છે આ બન્નેમા પ્રત્યક્ષત્વની અપેક્ષાએ સમાનતા છે

તથા—અપ્રમત્તસયતસ્વામી, તથા અવિપર્યયની અપેક્ષાએ સમાનતા હોવાથી મન પર્યવ જ્ઞાનની પછી કેવળજ્ઞાનનો પાઠ રાખ્યો છે મન પર્યવજ્ઞાન જે પ્રમાણે અપ્રમત્ત ભાવમુનિને થાય છે એ જ રીતે કેવળજ્ઞાન પણ અપ્રમત્ત ભાવ મુનિને થાય છે આ સ્વામીની અપેક્ષાએ સમાનતા છે મન પર્યવજ્ઞાન જે રીતે વિપર્યયરહિત હોય છે એ જ રીતે કેવળજ્ઞાનમા પણ વિપર્યય થતો નથી આ અવિપર્યયની અપેક્ષાએ સમાનતા છે બીજુ કેવળજ્ઞાનને જે બધાની અતે રાખવામા આવ્યું છે તેનું કાળુ એ છે કે એ જ્ઞાન મત્યાદિક ચાર જ્ઞાનો કરતા ઉત્તમ છે અને એ બધાને અતે જ તેની પ્રાપ્તિ થાય છે એ જ્ઞાનો કરતા તેમા ઉત્તમતા એથી છે કે આ જ્ઞાનમા ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન

મત્વમ્ । તથા યઃ પશ્ચવિધ જ્ઞાન પ્રાપ્નોતિ સોઽપ્યન્ત એવેદં લભતે, इत्येव केवल ज्ञानमन्ते निर्दिष्टम् ॥ सू० १ ॥

મૂલમ્—ત સમાસઓ દુવિહં પળ્લત્તં, તં જહા—પચ્ચક્ષ્વં
ચ પરોક્ષ્વં ચ ॥ સૂ૦૨ ॥

છાયા—તત્ સમાસતો દ્વિવિધં પ્રજ્ઞસમ્ । તદ્ યથા—પ્રત્યક્ષં ચ પરોક્ષં ચ ॥૨॥

ટીકા—‘ત સમાસઓ’ઈત્યાદિ । તત્ પૂર્વોક્ત પશ્ચવિધ જ્ઞાન, સમાસતઃ=સક્ષેપેણ, દ્વિવિધ પ્રજ્ઞપ્ત=પરુપિતમ્ । તદ્ યથા—પ્રત્યક્ષ ચ પરોક્ષ ચા અયં ભાગઃ—તદેતત્ પશ્ચવિધમપિ જ્ઞાન દ્વે પ્રમાણે ભવતઃ, પ્રત્યક્ષ પરોક્ષ ચેતિ । પશ્ચવિધેષુ જ્ઞાનેષ્વવધિજ્ઞાનાદિક ત્રય પ્રત્યક્ષમ્, આમિનિગોધિકજ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન ચેતિ દ્વય પરોક્ષમિતિ ।

अथ प्रत्यक्षशब्दार्थः—

નન્નુ પ્રત્યક્ષમિત્યસ્ય કઃ શબ્દાર્થઃ ? , उच्यते—अश्रुते=ज्ञानात्मना सर्वानर्थान् प्राप्त हो चुके हैं उस जीवको ही अन्तमे केवलज्ञानका लाभ होता है ॥ सू० १ ॥

‘ત સમાસઓ’ ઈત્યાદિ ।

(તત્) વહ પૂર્વોક્ત પાચ પ્રકારકા જ્ઞાન (સમાસતઃ) સક્ષેપસે (દ્વિવિધ) દો પ્રકારકા (પ્રજ્ઞસમ્) ઋદ્ધા ગયા હૈ । (તદ્ યથા) વે દો પ્રકાર ચે હૈ—(પ્રત્યક્ષ ચ પરોક્ષ ચ) પ્રત્યક્ષ ઔર પરોક્ષ । ડનમે અવધિજ્ઞાન મન’પર્યવજ્ઞાન તથા કેવલજ્ઞાન, ચે પ્રત્યક્ષ હૈ । મતિજ્ઞાન ઔર શ્રુતજ્ઞાન ચે દો જ્ઞાન પરોક્ષ હૈ ।

प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ

શબ્દા—પ્રત્યક્ષ—શબ્દકા કયા અર્થ હૈ ? ।

કાળના સર્વે જ્ઞેય પદાર્થોના આભાસ થાય છે તથા જે જીવને આર જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ ચૂકયા છે તે જીવને જે છેવટે કેવળજ્ઞાનનો લાભ થાય છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

‘ત સમાસઓ’ ઈત્યાદિ

(તત્) પૂર્વોક્ત પાચ પ્રકારના તે જ્ઞાન (સમાસત) ટુકાણુમા (દ્વિવિધ) જે પ્રકારના (પ્રજ્ઞસમ્) ડહેવાયા છે (તદ્ યથા) તે જે પ્રકાર આ છે— (પ્રત્યક્ષ ચ પરોક્ષ ચ) પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ તેઓમા અવધિજ્ઞાન, મન પર્યવજ્ઞાન અને કેવળજ્ઞાન તે પ્રત્યક્ષ છે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન એ જે જ્ઞાન અપરોક્ષ છે

प्रत्यक्ष शब्दનો अर्थ

શકા—પ્રત્યક્ષ શબ્દનો શો અર્થ છે ?

व्याप्नोतीत्यक्षो जीवः । 'अशूद्र व्याप्तौ' इत्यस्मादीणादिकः सञ्-प्रत्ययः । अञ्-जीव प्रति साक्षाद् गतम्, अन्यनिरपेक्ष वर्तते यद् ज्ञान, तत्प्रत्यक्षम् । 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इति वार्तिकेन समासः । अवधि-मनःपर्यव-केवलानि त्रीणि प्रत्यक्षात्मकानि ज्ञानानि, अन्यानपेक्षतया साक्षादर्थबोधरूपेण तेषां जीव प्रति साक्षाद्वर्तित्वात् । इह 'च'-शब्दः स्वगताऽनेकभेदसङ्घचक्रः ।

उत्तर-प्रत्यक्ष-शब्दका अर्थ है जो इन्द्रियादिकोंकी सहायताके बिना केवल आत्माकी ही सहायतासे उत्पन्न होता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है । प्रत्यक्षमे प्रति + अक्ष, ऐसे दो शब्द हैं । 'अक्ष' यह शब्द "अशूद्र-व्याप्तौ" इस व्याप्त्यर्थक 'अशूद्र' धातुसे औणादिक 'सञ्'-प्रत्यय करने पर बनता है । "अक्ष प्रति वर्तते तत् प्रत्यक्षम्" अर्थात्-जो ज्ञान जीवके प्रति अन्य निरपेक्ष होकर रहता है वह प्रत्यक्ष है, ऐसा इसका फलितार्थ होता है । "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इस वार्तिकसे यहा द्वितीया विभक्तिके साथ समास हुआ है । अवधिज्ञान, मनःपर्यव-ज्ञान तथा केवलज्ञान, ये तीन ज्ञान प्रत्यक्षस्वरूप इस लिये कहे गये हैं कि इनमे इन्द्रियादिक अन्य पदार्थों की सहायता की अपेक्षा नहीं रहती है, तथा इनकी सहायताके बिना ही ये स्पष्टरूपसे अपने विषयभूत पदार्थ को ग्रहण करते हैं, इसलिये इन्हे जीवके प्रति साक्षाद्वर्ती कहा गया है । सूत्रमे जो "च" शब्द आया है वह प्रत्यक्षगत अनेक भेदोंका बोधक है ।

उत्तर-जे इन्द्रियोंनी मदद बिना केवल आत्मानी मददथी व उत्पन्न थाय छे ते ज्ञान प्रत्यक्ष छे प्रत्यक्षमा प्रति+अक्ष अे जे शब्दो छे 'अक्ष' आ शब्द "अशूद्र व्याप्तौ" आ व्याप्त्यर्थक "अशूद्र" धातुथी औणादिक सक् प्रत्यय करता अने छे "अक्ष प्रति वर्तते तत् प्रत्यक्षम्" अेटवे के जे ज्ञान लुपोमा अन्यनिरपेक्ष (भीजनी अपेक्षारहित) थअने रहे छे ते प्रत्यक्ष छे, अेवो तेनो अर्थ इक्षित थाय छे "अत्यादय क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" आ वार्तिकथी अहीं भील विभक्ति साथे समास थयो छे अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान, तथा केवलज्ञान अे त्रलु ज्ञान प्रत्यक्षस्वरूप अे भाटे कडेवाया छे के तेओमा इन्द्रियादिक भीज पदार्थोंनी सहायतानी आवश्यकता ग्हेती नथी, तथा तेमनी मदद बिना व ते पोताना विषयभूत पदार्थने स्पष्टरूपे अडलु ठरे छे, तेथी तेमने लुपना तरक् साक्षाद्वर्ती कडेवाया छे सूत्रमा जे 'च' शब्द आओयो ते प्रत्यक्षगत अनेक लेहोना बोधक छे

અથ પ્રત્યક્ષલક્ષણમ્—

इह प्रत्यक्षलक्षणमुच्यते—मतिश्रुताभ्या यदन्यत् त्रिभिर्ज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् । यत् प्राणिना ज्ञानदर्शनावरणयोः क्षयोपशमात् क्षयाच्च इन्द्रियानिन्द्रियनिरपेक्षमात्मानमेव केवलमाश्रित्योत्पद्यते तत् प्रत्यक्षमिति निष्कर्षः । तच्चावध्यादि । एतत्त्रय प्रत्यक्षं निश्चयनयेनेति बोध्यम् । व्यवहारतस्तु चक्षुरादीन्द्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्षम् । अस्मिन् पक्षे 'अक्ष'—शब्द इन्द्रियार्थकः, अक्षम्—इन्द्रिय प्रति गतं, प्रत्यक्षम्, इन्द्रियाधीनतया यदुत्पद्यते तत् प्रत्यक्षमिति ।

प्रत्यक्षका लक्षण

इस प्रकार प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ कह कर अब प्रत्यक्षका लक्षण स्पष्ट क्रिया जाता है, वह इस प्रकार है—मतिज्ञान और श्रुतज्ञानसे अन्य जो तीन प्रकारके ज्ञान है वे प्रत्यक्ष हैं । अर्थात्—जो ज्ञान प्राणियों के ज्ञानावरण एव दर्शनावरणके क्षयोपशमसे तथा क्षय से इन्द्रिय और अनिन्द्रिय निरपेक्ष होकर केवल आत्मा को आश्रित करके उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना चाहिये । यह प्रत्यक्ष अवधि आदि तीन ज्ञान है । इन तीन ज्ञानोंको जो प्रत्यक्ष कहा है वह निश्चयनयकी अपेक्षासे ही कहा है । व्यवहार की अपेक्षासे तो चक्षु आदि पांच इन्द्रियोंसे जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहा जाता है । व्यवहारनयकी अपेक्षासे जब इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है तो इस स्थितिमें अक्ष—शब्द इन्द्रिय अर्थका बोधक होता है । इसका तात्पर्य यह होता है कि जो ज्ञान इन्द्रियोंकी अधीनता से उत्पन्न है वह प्रत्यक्ष है ।

प्रत्यक्ष शब्दनु लक्षण

આ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષ શબ્દનો અર્થ કહીને હવે પ્રત્યક્ષનું લક્ષણ સ્પષ્ટ કરવામા આવે છે તે આ પ્રમાણે છે—મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન સિવાયના બે ત્રણ પ્રકારના જ્ઞાન છે તે પ્રત્યક્ષ છે એટલે કે જે જ્ઞાન પ્રાણીઓના જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણના ક્ષયોપશમ તથા ક્ષયથી ઈન્દ્રિય અને અનિન્દ્રિય નિરપેક્ષ થઈને ક્ષત આત્માને આશ્રિત કરીને ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રત્યક્ષ છે એમ માનવું જોઈએ આ પ્રત્યક્ષ અવધિ આદિ ત્રણ જ્ઞાન છે એ ત્રણ જ્ઞાનોને જે પ્રત્યક્ષ કહ્યા છે તે નિશ્ચયનયની અપેક્ષાએ જ કહ્યા છે વ્યવહારની અપેક્ષાએ તો ચક્ષુ વગેરે પાંચ ઈન્દ્રિયોથી જન્ય જે જ્ઞાન હોય છે તે પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે વ્યવહારનયની અપેક્ષાએ બ્યારે ઈન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનને પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે ત્યારે આ સ્થિતિમા 'અક્ષ' શબ્દ ઈન્દ્રિય અર્થનો બોધક હોય છે એનું તાત્પર્ય એ હોય છે કે જે જ્ઞાન ઈન્દ્રિયોની અધીનતાથી ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રત્યક્ષ છે

ननु प्रतिपूर्वादक्षिण-दात् 'प्रतिपरसमनुभ्योऽक्षण' इत्यव्ययीभावसमाप्तान्ते टचि प्रत्यये प्रत्यक्षमिति सिध्यति तदत्र किं तत्पुत्रसमासाश्रयणेन ?

न चैव स्पर्शनादिप्रत्यक्ष प्रत्यक्षशब्दभ्यार्वो न स्यादिति वाच्यम्, अत्र हि व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रप्रदर्शनार्थमक्षिण-दं प्रयुज्यते, प्रत्यक्षशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्त तु स्पर्शनादिप्रत्यक्षेऽप्यस्तीति तत्र प्रत्यक्षशब्दवान्यतोपपत्तेः । रुधमन्यथाऽस-
शब्दोपादानेऽप्यनिन्द्रियप्रत्यक्षस्य प्रत्यक्षशब्दवाच्यतोपपत्तिः स्यात् ।

न चाव्ययीभावसमासाङ्गीकारे 'प्रत्यक्षोऽय घटः, प्रत्यक्षा चैव लता' इत्या-
शका-जव प्रतिपूर्वक अक्षि शब्दसे "प्रति-पर-समनुभ्योऽक्षणः"
इस सूत्रसे अन्ययीभावसमाप्तान्तटच्-प्रत्यय होने पर प्रत्यक्ष शब्द
सिद्ध होता है तो यहा तत्पुत्रसमास करनेकी आवश्यकता ही क्या
है?। यदि इस पर ऐसा कहा जावे कि अक्षि-शब्दसे अव्ययीभाव-
समाप्तान्तटच्प्रत्यय करने पर जव प्रत्यक्ष शब्दकी सिद्धि की जावेगी तो
एसी हालतमें स्पर्शनादि प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष-शब्दके वाच्यार्थ नहीं हो सकेंगे
सो ऐसी आशका भी उचित नहीं है, कारण कि यहा केवल व्युत्पत्ति-
निमित्त दिखलाने के लिये ही अक्षि-शब्दका प्रयोग किया गया है।
प्रत्यक्ष शब्दका प्रवृत्तिनिमित्त तो स्पर्शनादिप्रत्यक्षमें भी है ही, इस-
लिये वहा प्रत्यक्ष-शब्दवाच्यता वन जावेगी। नहीं तो अक्षि शब्दके
उपादानमे भी अनिन्द्रियप्रत्यक्षमें प्रत्यक्षशब्दवाच्यता कैसे आ सकेगी।

यदि फिर ऐसी शका की जावे कि-जव अव्ययीभाव समास स्वीकृत

शका-न्यारे प्रतिपूर्वक अक्षि शब्दधी "प्रति-पर-समनुभ्योऽक्षण"
आ सूत्रधी अव्ययीभावसमाप्तान्त 'टच्' प्रत्यय होवाधी प्रत्यक्ष शब्द सिद्ध
थाय छे तो अर्धी तत्पुत्रसमास करवानी आवश्यकता न शी छे? ने अर्धी
ओपु कडेवाय के 'अक्षि' शब्दधी अव्ययीभावसमाप्तान्त 'टच्' प्रत्यय करवाधी
न्यारे प्रत्यक्ष शब्दनी सिद्धि करशे त्यारे ओवी हालतमा स्पर्शनादिप्रत्यक्ष
प्रत्यक्ष शब्दना वाच्यार्थ थछ शकशे नर्धी, तो ओवी आशका पणु योग्य
नथी, ङरणु के अर्धी इकत व्युत्पत्तिनिमित्त भताववाने माटे न अक्षि शब्दने
प्रयोग करथे छे प्रत्यक्ष शब्दनु प्रवृत्तिनिमित्त तो स्पर्शनादिप्रत्यक्षमा
पणु छे न, तेथी त्या प्रत्यक्षशब्दवाच्यता धनी नशे नर्धी तो अक्षि शब्दना
उपादानमा पणु अनिन्द्रियप्रत्यक्षमा प्रत्यक्षशब्दवाच्यता डेवी रीते आवी शकशे ?

ने इरीधी ओवी शका करवामा आवे के न्यारे अव्ययीभाव समास

दयः प्रयोगा न स्युः, अव्ययीभावस्य सदा नपुसकत्वादिति वाच्यम्, प्रत्यक्षम-
स्यास्तीत्यर्थेऽर्श आदित्वाच्च-प्रत्यये कृते तत्सिद्धिसम्भवादिति चेत् अत्रोच्यते—
एवमपि 'प्रत्यक्षो बोधः' 'प्रत्यक्षा बुद्धिः' इत्यादिप्रयोगाणा साधुत्व न स्यात्,
न ह्यत्र मत्वीयार्थो घटते, प्रत्यक्षात्मज्ञानस्यैव बोधबुद्धिशब्दाभ्यामभिधानादिह
तत्पुरुषसमासाश्रयणमेव श्रेय इति ।

किया जायगा तो "प्रत्यक्षोऽय घटः प्रत्यक्षा चैव लता" इत्यादिक
प्रयोग नहीं बन सकेगे, कारण कि जो अव्ययीभाव समास होता है
वह सदा नपुसकलिङ्ग होता है सो ऐसी आशका भी ठीक नहीं है,
कारण कि "प्रत्यक्षमस्यास्तीति" इस अर्थमे "अर्शआदिभ्योऽच्" इस
सूत्रद्वारा अच्-प्रत्यय होने पर "प्रत्यक्षः प्रत्यक्षा" इन शब्दों की सिद्धि
हो जाती है तो फिर तत्पुरुष समास की आवश्यकता नहीं रहती ।

उत्तर-अव्ययीभाव समास की सिद्धिके निमित्त ऐसा समाधान
देना ठीक नहीं है । कारण कि ऐसा मानने पर भी "प्रत्यक्षो बोधः"
"प्रत्यक्षा बुद्धिः" इत्यादि प्रयोगोंमें साधुता नहीं आ सकती है, क्यों
कि यहा मत्वीय अर्थ घटित ही नहीं होता है । यहा तो प्रत्यक्षात्मक
ज्ञानका ही बोध एव बुद्धि शब्दों के द्वारा कथन किया गया है, इस
लिये "प्रत्यक्ष" यहा तत्पुरुषसमास ही ठीक मानना चाहिये, अव्य-
यीभाव समास नहीं ।

स्वीकृत ऋषामा आवशे तो "प्रत्यक्षोऽय घट, प्रत्यक्षा चैव लता" वगैरे प्रयोग
अनी शक्ये नहीं, ऋषयु के वे अव्ययीभाव समास होय छे ते सदा नान्येतर
व्यक्तिमा होय छे तो ऐसी अशक्य पद्य अशक्य नहीं, ऋषयु के "प्रत्यक्षम
स्यास्तीति" आ अर्थमा 'अर्श आदिभ्योऽच्' आ सूत्रद्वारा 'अच्' प्रत्यय
होवाथी 'प्रत्यक्ष प्रत्यक्षा' अे शब्दोंनी सिद्धि अर्थ व्यय छे तो पछी तत्पुरुष
समासनी आवश्यकता ग्छेती नहीं

उत्तर—अव्ययीभाव समासनी सिद्धिना निमित्ते अेषु समाधान हेतु
अशक्य नहीं शक्यु के अेषु मानवा छता पद्य 'प्रत्यक्षो बोध' 'प्रत्यक्षा बुद्धि'
वगैरे प्रयोगोमा साधुता आवी शक्यती नहीं, ऋषयु के अर्हीं मत्वीय अर्थ
अधोसतो न शक्यती नहीं अर्हीं तो प्रत्यक्षात्मक ज्ञाननु बोध अने बुद्धि शब्दोंना
द्वारा कथन शक्यु छे तेथी 'प्रत्यक्ष' अर्हीं तत्पुरुषसमास न योग्य मानवे।
अधोअे, अव्ययीभाव समास नहीं

અથ પરોક્ષશબ્દાર્થઃ—

નતુ પરોક્ષમિત્યસ્ય કોઽર્થઃ ? , ઉચ્યતે—પરાણિ=અક્ષાપેક્ષયા મિત્રાનિ દ્રવ્યેન્દ્રિય દ્રવ્યમનાંસિ પુદ્ગલમયત્વેન રુપિત્વાત્, તેભ્યઃ પરેભ્યોઽક્ષસ્ય જીવસ્ય યદુત્પદ્યતે, તત્પરોક્ષમ્ । પરનિમિત્તતાત્ પરોક્ષમિતિ જિનમતં પરિભાષિતમ્ ॥સૂ૦૨॥

મૂલમ્—સે કિં ત પચ્ચક્ષ્વ ? । પચ્ચક્ષ્વ દુવિહ પત્રત્ત, તં જહા—ઈદિયપચ્ચક્ષ્વં, નોઈદિયપચ્ચક્ષ્વ ચ ॥ ૩ ॥

છાયા—અથ કિં તત્ પ્રત્યક્ષમ્ ? । પ્રત્યક્ષ દ્વિત્રિધ પ્રજ્ઞપ્તમ્ । તદ્ યયા—ઈન્દ્રિય-પ્રત્યક્ષં નોઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષં ચ ॥ ૩ ॥

‘સે કિં ત પચ્ચક્ષ્વ’ ઇત્યાદિ ।

ટીકા—‘સે’ ઇતિ મગપદેશપ્રસિદ્ધોઽધ્યશબ્દાર્થકઃ । તત્=પૂર્વમુપદિષ્ટ, પ્રત્યક્ષ કિમ્ ? પૂર્વોક્તસ્ય પ્રત્યક્ષસ્ય કિંસ્વરૂપમ્ ? ઇતિ શિષ્યસ્ય પ્રશ્નગામ્યમ્ । ઉત્તરમાદ—

પરોક્ષ શબ્દકા અર્થ—

પરોક્ષ શબ્દ કા અર્થ ઇસ પ્રકાર હૈ—આત્માસે મિત્ર દ્રવ્યેન્દ્રિય એવ દ્રવ્યમન હૈ, ક્યોં કિં યે પુદ્ગલમય હોનેસે રૂપી હૈં । આત્મા અપૌદ્ગલિક હોનેસે રૂપી નહીં હૈ । ઇસ અક્ષ-આત્મા-સે જો પર દ્રવ્યેન્દ્રિય એવ દ્રવ્યમન હૈં ડનસે જીવ કો-આત્મા કો-જો જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈં વહ પરોક્ષ હૈ, પ્રત્યક્ષમે પરનિમિત્તસે જ્ઞાન ઉત્પન્ન નહીં હોતા, કિન્તુ પરોક્ષમેં નિમિત્તસે જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈં ઇસલિયે ડસકા નામ પરોક્ષ હૈં । એસા જિનેન્દ્ર દેવકા આદેશ હૈં ॥સૂ૦૨॥

‘સે કિં ત પચ્ચક્ષ્વ’ ઇત્યાદિ ।

પૂર્વોક્ત પ્રત્યક્ષકા કયા સ્વરૂપ હૈં ? ઇસ પ્રકાર શિષ્યકા પ્રશ્ન સુન-

પરોક્ષ શબ્દનો અર્થ—

પરોક્ષ શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે છે —દ્રવ્યેન્દ્રિય અને દ્રવ્યમન આત્માથી ભિન્ન છે કારણ કે તેઓ પુદ્ગલમય હોવાથી રૂપી છે આત્મા અપૌદ્ગલિક હોવાથી રૂપી નથી આ અક્ષ-આત્માથી પર જે દ્રવ્યેન્દ્રિય અને દ્રવ્યમન છે આવા જીવ-આત્માને જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે પરોક્ષ છે પ્રત્યક્ષમા ધીળના નિમિત્તથી જ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી પણ પરોક્ષમા ધીળના નિમિત્તથી જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તેથી તેનું નામ પરોક્ષ છે એવો જિનેન્દ્ર દેવનો આદેશ છે ॥સૂ ૨॥

“સે કિં ત પચ્ચક્ષ્વ” ઇત્યાદિ

પૂર્વોક્ત પ્રત્યક્ષનું શું સ્વરૂપ છે ? આ પ્રકારનો શિષ્યનો પ્રશ્ન ૨

—‘पञ्चकल दुविहं पन्नतं’ इत्यादि । प्रत्यक्ष द्विविध=द्विप्रकारक, प्रज्ञप्तं=प्ररूपित तीर्थद्वैरिति भावः । तद् यथा=तद्-द्वैविध्य यथाऽस्ति तथा कथयामीत्यर्थः । इन्द्रियप्रत्यक्ष, नोइन्द्रियप्रत्यक्ष चेति भेदद्वयेन प्रत्यक्ष द्विविधमित्यर्थः । इह द्रव्यमावरूप द्विविधमिन्द्रिय गृह्यते, एकरूपाप्यभावे इन्द्रियप्रत्यक्षत्वाऽनुपपत्ते । तत्रेन्द्रियस्य प्रत्यक्षमिन्द्रियप्रत्यक्षम्, इन्द्रियनिमित्तकम् इन्द्रियसम्बन्धि वा यत् प्रत्यक्ष, तदिन्द्रियप्रत्यक्षम् । नोइन्द्रियप्रत्यक्षम् यद् इन्द्रियप्रत्यक्ष न भवति, तत् नोइन्द्रियप्रत्यक्षम् । नोशब्दः सर्गनिषेधवाची, तेन मनसोऽपि कथञ्चिदिन्द्रियत्वाङ्गीकारात् तन्निमित्तक यद् ज्ञान तत् परमार्थतः प्रत्यक्ष न भवतीति सिद्धम् ॥सू० ३॥
इन्द्रियप्रत्यक्षस्य पञ्चविप्रत्यमाह—‘से किं त इदियपञ्चकल’ इत्यादि ।

कर गुरु महाराज अब उसका उत्तर देनेका उपक्रम करते हुए कहते हैं कि हे शिष्य! तीर्थरूपीने प्रत्यक्ष दो प्रकार का बतलाया है वह इस प्रकार है—

१ इन्द्रियप्रत्यक्ष और २ नोइन्द्रियप्रत्यक्ष । इन्द्रियप्रत्यक्ष वह है जो द्रव्य-इन्द्रिय और भाव-इन्द्रिय के द्वारा होता है । द्रव्यइन्द्रिय एव भाव इन्द्रिय इन दोनोंमे से किसी एक के अभावमे इन्द्रियप्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता है । जिसमें इन इन्द्रियों की सहायता की अपेक्षा नहीं होती है वह नोइन्द्रियप्रत्यक्ष है । नोइन्द्रियमे ‘नो’ शब्द सर्व इन्द्रियोंके निषेध का वाचक है । इससे यह सिद्ध हुआ कि अगर मनको भी कयचित् इन्द्रियस्वरूप मान लिया जाय तो भी तज्जन्य ज्ञान परमार्थसे प्रत्यक्ष नहीं है ॥सू० ३॥

अब इन्द्रियप्रत्यक्ष को कहते हैं—‘से किं त इन्द्रियपञ्चकल’ इत्यादि ।

शुद्धमहाराज तेना उत्तर देवानो उपक्रम करता ऊहे छे के छे शिष्य! तीर्थ-कराये ‘प्रत्यक्ष’ के प्रकारना बताव्या छे ते आ प्रमाणे छे—(१) इन्द्रिय प्रत्यक्ष अने (२) नोइन्द्रियप्रत्यक्ष इन्द्रियप्रत्यक्ष अने छे के के द्रव्य इन्द्रिय अने लावइन्द्रियना द्वारा थाय छे द्रव्यइन्द्रिय अने लावइन्द्रिय, अने अन्नेमाथी अकेना अलावमा इन्द्रियप्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न थछे शस्तु नहीं केमा अने इन्द्रियेानी सहायतानी अपेक्षा रहेती नहीं ते नोइन्द्रियप्रत्यक्ष छे नो इन्द्रियमा ‘नो’ शब्द सर्वे इन्द्रियेानी निषेधने वाचक छे, आथी अने साभित थयु के के मनने पणु उथयित् इन्द्रियस्वरूप मानवामा आवे तो पणु तज्जन्य ज्ञान परमार्थेथी प्रत्यक्ष नहीं ॥ सू० ३ ॥

इवे इन्द्रियप्रत्यक्षने उहे छे—‘से किं त इदियपञ्चकल’ इत्यादि.

મૂલમ્—સે ફિ ત ઇન્દિયપચ્ચક્કલં ? ઇન્દિયપચ્ચક્કલ પંચવિહ
પણ્ણત્ત, તં જહા—સોઇન્દિયપચ્ચક્કલ ૧, ચન્નિંણ્ણદિયપચ્ચક્કલ ૨,
ઘાણિદિયપચ્ચક્કલ ૩, જિઠ્ઠિભદિયપચ્ચક્કલ ૪, ફાસિદિય-
પચ્ચક્કલ ૫, સે ત ઇન્દિયપચ્ચક્કલ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

છાયા—અથ ફિં તદિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમ્ ? । ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ પચ્ચવિધ પ્રજ્ઞસ, તદ્ યથા—શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ ૧, ચતુરિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ ૨, ઘાણેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ ૩, જિહ્વેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ ૪, સ્પર્શેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ ૫, તદેતદ્ ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમ્ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ટીકા—‘ સે-અય ’ ઇતિ પ્રશ્નમુચ્ચકઃ । તત્-પૂર્વોક્તમ્ ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ, ફિમ્ ૧, પૂર્વોક્તસ્ય ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષસ્ય ફિં સ્વરૂપમિતિ । ઉત્તરમાહ—ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ પચ્ચવિધ પ્રજ્ઞસમ્ । તદ્ યથા—શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમિત્યાદિ । શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ, શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ=શ્રોત્રેન્દ્રિયનિમિત્તક્રમિત્યર્થઃ । શ્રોત્રેન્દ્રિય નિમિત્તીકૃત્ય યદુત્પન્ન જ્ઞાન તત્ શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમિતિ માનઃ । એવ ચતુરિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષાદિપુ મામનીયમ્ । તત્-

શિષ્ય ગુરુ મહારાજ સે પ્રશ્ન કર રહા હૈ ફિ હે ગુરુ મહારાજ । ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષકા કયા સ્વરૂપ હૈ । ઉત્તરમે ગુરુ મહારાજ કહતે હ ફિ ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ પાચ પ્રકારકા કહા હૈ વહ ઇસ પ્રકાર હૈ—જો પ્રત્યક્ષ શ્રોત્રેન્દ્રિયકે નિમિત્તસે હોતા હૈ વહ શ્રોત્રેન્દ્રિય-પ્રત્યક્ષ હૈ, અર્થાત્ શ્રોત્રેન્દ્રિયકો નિમિત્ત કરકે જો જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ વહ શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રત્યક્ષ હૈ ૧ । ઇસી પ્રકાર ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિયોસે હોને વાલે જ્ઞાનમે તત્તદિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષતા સમજ લેની ચાહિયે, અર્થાત્ ચક્ષુ-ઇન્દ્રિયસે ઉત્પન્ન હુણ જ્ઞાનકો ચક્ષુ-ઇન્દ્રિય-પ્રત્યક્ષ ૨, ઘ્રાણ-ઇન્દ્રિયસે ઉત્પન્ન હુણ જ્ઞાનકો ઘ્રાણેન્દ્રિય-પ્રત્યક્ષ ૩, જિહ્વા-ઇન્દ્રિયસે ઉત્પન્ન જ્ઞાનકો જિહ્વેન્દ્રિય-પ્રત્યક્ષ ૪,

શિષ્ય ગુરુમહારાજને પ્રશ્ન કરે છે કે હે ગુરુમહારાજ ! ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષનુ શુ સ્વરૂપ છે ? ઉત્તરમા ગુરુમહારાજ કહે છે કે ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ પાચ પ્રકારના કહ્યા છે તે આ પ્રમાણે છે—(૧) જે શ્રોત્રેન્દ્રિયના નિમિત્તથી પ્રત્યક્ષ થાય છે તે શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે એટલે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયને નિમિત્ત કરીને જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે શ્રોત્રેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે એ જ પ્રમાણે ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિયથી થનારા જ્ઞાનમા તે તે ઇન્દ્રિયની પ્રત્યક્ષતા સમજ લેવી જોઈએ એટલે કે—(૨) ચક્ષુ ઇન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલા જ્ઞાનને ચક્ષુ-ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ (૩) ઘ્રાણેન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલા જ્ઞાનને ઘ્રાણેન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ (૪) જિહ્વા ઇન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલા જ્ઞાનને

अनन्तरोक्तम्, एतत्-पञ्चमि, प्रत्यक्षम् इन्द्रियप्रत्यक्ष भवतीति शेषः । एतच्च पञ्चमि प्रत्यक्षम् व्यवहारादुच्यते न तु परमार्थतः ।

नन्वेतत् पञ्चमि प्रत्यक्ष न्याहारिकमित्यत्र किं प्रमाणम्? इति चेत् उच्यते-अस्त्यत्रागमप्रमाणम् तथाहि-इहैवाग्रे प्रत्यक्षभेदाभिधानानन्तरं वक्ष्यते । 'परोक्षं दुर्विहं पण्णत्त, त जहा-आभिणिणोहियणाणपरोक्खं च सुयणाणपरोक्खं च' इति ।

तत्राभिनिणोधिकज्ञानमग्रहादिस्पृष्टम्, अवग्रहादयश्च श्रोत्रेन्द्रियाद्याश्रितास्तत्र वर्णिताः, तद् यदि श्रोत्रादीन्द्रियाश्रितं ज्ञानं परमार्थतः प्रत्यक्षं, तत् इत्यवग्रहादयः

तथा स्पर्शन-इन्द्रियोसे उत्पन्नं ह्युक्तं ज्ञानको स्पर्शनेन्द्रिय-प्रत्यक्षं ५ जानना चाहिये । इस प्रकार इन पांच इन्द्रियोसे जो भी ज्ञान होता है वह सब इन्द्रियप्रत्यक्ष है, ऐसा व्यवहारकी अपेक्षा जानना चाहिये, परमार्थकी अपेक्षासे नहीं ।

शका-इन्द्रियोसे उत्पन्न यह पांच प्रकार का प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रत्यक्ष है, पारमार्थिक प्रत्यक्ष नहीं है, इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर-इन्द्रियोसे होनेवाला ज्ञान वास्तवमें प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु परोक्ष है, उस कथनमें आगमप्रमाण है । उही पर आगे प्रत्यक्ष के भेद कथन के बाद सूत्रकार ऐसा सूत्र कहेंगे-"परोक्खं दुर्विहं पण्णत्त तजहा-आभिणिणोहियणाणपरोक्खं सुयणाणपरोक्खं च" परोक्षज्ञान दो प्रकार है-एक आभिनिणोधिकज्ञान और दूसरा श्रुतज्ञान । अवग्रह, ईहा आदि रूप आभिनिणोधिक ज्ञान होता है । अवग्रहादिक ज्ञान श्रोत्र आदि

७७वेन्द्रियप्रत्यक्ष तथा (५) स्पर्शनेन्द्रियोसे उत्पन्न थयेला जानने स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष लक्षण लोभये आ प्रमाणे ते पाच इन्द्रियोधी ले जाध ज्ञान थाय छे ते सर्वे इन्द्रियप्रत्यक्ष छे अथ व्यवहारनी अपेक्षाये लक्षण लोभये परमार्थनी अपेक्षाये नहीं ।

श. ४ - इन्द्रियोधी उत्पन्न थतु आ पाच प्रकारनु प्रत्यक्ष व्यवहारिक प्रत्यक्ष छे पारमार्थिक प्रत्यक्ष नहीं तेनी भाषिती शी छे ?

उत्तर - इन्द्रियो वडे थनाउ ज्ञान वास्तवमा प्रत्यक्ष नहीं पणु परोक्ष छे आ कथनमा आगम प्रमाणउप छे अही आगम प्रत्यक्षना लेह उह्या पछी सूत्रकार आवु सूत्र उडेशे-"परोक्खं दुर्विहं पण्णत्त त जहा-आभिणिणोहियणाणपरोक्खं सुयणाणपरोक्खं च" परोक्ष ज्ञान मे प्रकारनु छे (१) आभिनिणोधिक ज्ञान अने भीणु श्रुतज्ञान अवग्रह, ईहा आदिउप आभिनिणोधिक ज्ञान होय छे अवग्रहादिके ज्ञान श्रोत्र आदि इन्द्रियोने आश्रित छे ले अ

પરોક્ષત્વેનાગ્રે વર્ણિતાઃ ? । તસ્માદુત્તરત્રેન્દ્રિયાશ્રિતજ્ઞાનસ્ય પરોક્ષત્વેન વર્ણનાદિદ
નિશ્ચીયતે—' ઇન્દ્રિયાશ્રિતજ્ઞાન સવ્યવહારમધિકૃત્ય પ્રત્યક્ષમુત્ત ન તુ પરમાર્થત ડતિ ।
કિન્ચ—ઇન્દ્રિયમનોનિમિત્તક મતિશ્રુતાભ્યામન્યત્ કિમપિ જ્ઞાન મયતીતિ ચેત્
તર્હિ પ્થજ્ઞાનપ્રસગાદાગમવિરોધઃ સ્યાદિતિ પરમાર્થતઃ પરોક્ષમેવેદમિતિ ।

નનિહ લોકે વાહ્યધૂમાદિહેતુક યજ્ઞજ્ઞાન, તદ્વેય પરોક્ષમિતિ પ્રસિદ્ધ, નત્વિન્દ્રિય
જન્ય, કય તર્હિ પરમાર્થતોડસ્ય પરોક્ષત્વ મન્યસે ? ડતિ ચેત્ ,

ઇન્દ્રિયોંકે આશ્રિત હૈ । યદિ યે શ્રોત્ર આદિ ઇન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાન પરમાર્થતઃ
પ્રત્યક્ષ માને ગયે હોતે તો ફિર ઇન અવગ્રહાદિકોંકે આગે જો પરોક્ષરૂ-
પસે વર્ણિત કિયા ગયા હૈ વહ ઋયોં કરતે ? પ્રત્યક્ષરૂપસે હી ઉનકા વર્ણન
કરના ચાહિયે થા, સો એમા નહી હૈ, ઇસલિયે આગે આનેવાલે ઇસ
ઇન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાનકે પરોક્ષરૂપસે વર્ણન હોનેકી વજહસે યહ નિશ્ચિત્ત હો
જાતા હૈ કિ ઇન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાનમે જો પ્રત્યક્ષતા માની જાતી હે વહ વ્યવ-
હારકી અપેક્ષાસે હી માની જાતી હૈ, પરમાર્થકી અપેક્ષાસે નહીં ।

ફિરમી—ઇન્દ્રિય ઓર મનકે નિમિત્તસે હોને વાલા જ્ઞાન મતિજ્ઞાન
એવ શ્રુતજ્ઞાનસે ભિન્ન ઓર દૂસરા કોઈ જ્ઞાન માના જાય તો છ પ્રકારકા
જ્ઞાન માનના પહેગા, ઓર છ પ્રકાર કા જ્ઞાન માનના આગમવિરુદ્ધ
હોગા, ઇસલિયે યહ જ્ઞાન વસ્તુત પરોક્ષ જ્ઞાન હી હૈ, પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન નહી ।

શકા—લોકમે તો એસી વાત દેહી જાતી હૈ કિ જો જ્ઞાન વાહ્ય
ધૂમાદિક ચિહ્નોકી સહાયતાસે હોતા હૈ વહી પરોક્ષ માનાજાતા હૈ, ઇન્દ્રિય-

શ્રોત્ર આદિ ઇન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાન પરમાર્થત પ્રત્યક્ષ મનાયા હોત તો પછી તે
અવગ્રહાદિકોને આગળ જે પરોક્ષરૂપથી વર્ણિત કરાયા છે તે શા માટે કહેત ?
પ્રત્યક્ષરૂપથી જ તેમનું વર્ણન કરવું જોઈતું હતું પણ એવું નથી તેથી આગળ
આવનાર આ ઇન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાનના પરોક્ષ રૂપે વર્ણન થવાના કારણે આ ચોક્કસ
થઈ ગય છે કે ઇન્દ્રિયાશ્રિત જ્ઞાનમા જે પ્રત્યક્ષતા મનાય છે તે વ્યવહારની
અપેક્ષાએ જ મનાય છે, પરમાર્થની અપેક્ષાએ નહીં

વળી ઇન્દ્રિય અને મનના નિમિત્તથી થતું જ્ઞાન, મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન
થી ભિન્ન કરી બીજું કોઈ જ્ઞાન માનવામા આવે તો જ્ઞાન છ પ્રકારનું માનવું
પડશે, પણ છ પ્રકારનું જ્ઞાન માનવું તે આગમવિરુદ્ધનું ગણાશે, તેથી આ જ્ઞાન
વસ્તુત પરોક્ષજ્ઞાન જ છે, પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન નથી

શકા—લોકમા તો એવી વાત જોવામા આવે છે કે જે જ્ઞાન વાહ્ય
ધૂમાદિક ચિહ્નોની સહાયતાથી થાય છે એજ પરોક્ષ છે ઇન્દ્રિયવન્ય જ્ઞાનને

ઉચ્યતે—ઇન્દ્રિયમનોભિર્વાહ્યધુમાદિનિમિત્તક યદુત્પદ્યતે જ્ઞાનં, તદેકાન્તે નૈવેન્દ્રિયાણામાત્મનશ્ચ પરોક્ષ, પરનિમિત્તત્વાત્, ધુમાદ્ વહ્નિજ્ઞાનવત્, અતસ્તત્ પરોક્ષતયા લોકે પ્રસિદ્ધમસ્તિ, યત્તુ સાક્ષાદિન્દ્રિયમનોનિમિત્તક, તદિન્દ્રિયાણામેવ પ્રત્યક્ષમ્, ઇન્દ્રિયાશ્રિતમેન (ઇન્દ્રિયમેવાશ્રિત્ય) પ્રત્યક્ષમ્, ન ત્વાત્મનઃ, યથાઽપ્રધ્યાદિકં જ્ઞાન સાક્ષાદાત્મનિમિત્તકમ્ । તત્ર હિ અન્યાનપેક્ષણાદાત્મૈવ સાક્ષાત્કારણમ્ભવતિ । તથેન્દ્રિયાણા ગ્રાહ્યધુમાદિપદાર્થોઽપેક્ષયા યત્ પ્રત્યક્ષ મ્ભવતિ તદિન્દ્રિયાણામેન, ન ત્વાત્મનઃ, આત્મનસ્તુ તત્ પરોક્ષમેવ, પરનિમિત્તત્વાત્ અનુમતિજ્ઞાનવત્, ઇન્દ્રિયાણામપિ તત્ પ્રત્યક્ષ ન પરમાર્થતઃ, કિન્તુ વ્યવહારાદેવ । કથમ્ ? ઇન્દ્રિયાણામચેતનત્વાત્ ।

જન્ય જ્ઞાન પરોક્ષ નહીં માના જાતા, તો ફિર આપ ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનકો પરમાર્થતઃ પરોક્ષ કૈસે માનતે હૈ ? ।

ઉત્તર—ઇન્દ્રિય ઓર મનકે ઢારા જો જ્ઞાન વાહ્ય ધૂમાદિક ચિહ્નોકો નિમિત્ત કરકે ઉત્પન્ન હોતા હૈ વહ પરકે નિમિત્તસે હોનેવાલા હોને કે કારણ ઇકાન્તરૂપસે પરોક્ષ માના ગયા હૈ, કારણ કિ ડસ જ્ઞાનમેં ન તો સાક્ષાત્કારણ ઇન્દ્રિયાં હૈ ઓર ન આત્મા, ધૂમાદિક વાહ્ય સાધન હી ડસમેં સાક્ષાત્કારણ હૈ । જિસ જ્ઞાનમે ઇન્દ્રિયાં ઇવ મન નિમિત્ત હોતે હૈ વહ જ્ઞાન ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ માના ગયા હૈ, કારણ કિ ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમેં ઇન્દ્રિયા હી સાક્ષાત્કારણ હોતી હૈ । યત્પિ પરોક્ષજ્ઞાનમે હી ઇન્દ્રિયા નિમિત્ત હોતી હૈ પરન્તુ વે પરપરારૂપસે નિમિત્ત હોતી હૈ, સાક્ષાત્ રૂપસે નહી । ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમે ઇન્દ્રિયા હી સાક્ષાત્કારણ હોતી હૈ । ડસ-

પરોક્ષ મનાય, નહી તો પછી આપ ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનને પરમાર્થત પરોક્ષ કેવી રીતે માને છે ?

ઉત્તર — ઇન્દ્રિય અને મનના દ્વારા જે જ્ઞાન બાહ્ય ધૂમાદિક ચિહ્નોને નિમિત્ત કરીને ઉત્પન્ન થાય છે તે પરના નિમિત્તથી થનાર હોવાને કારણે એકાન્તરૂપથી પરોક્ષ મનાયુ છે, કારણ કે આ જ્ઞાનમા સાક્ષાત્કારણ ઇન્દ્રિયો પણ નથી અને આત્મા પણ નથી

ધૂમાદિક બાહ્ય સાધન જે તેમા સાક્ષાત્ કારણ છે જે જ્ઞાનમા ઇન્દ્રિયો અને મન નિમિત્તરૂપ હોય છે તે જ્ઞાન ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ મનાયુ છે, કારણ કે ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમા ઇન્દ્રિયો જે સાક્ષાત્કારણ હોય છે જે કે પરોક્ષ જ્ઞાનમા પણ ઇન્દ્રિયો નિમિત્ત હોય છે પણ તેઓ પરપરારૂપથી નિમિત્ત થાય છે, સાક્ષાત્રૂપથી નહી ઇન્દ્રિય પ્રત્યક્ષમા ઇન્દ્રિયો જે સાક્ષાત્કારણ હોય છે

લિયે વહ ઇન્દ્રિયો કા હી પ્રત્યક્ષ માના જાતા હૈ, આત્મા કા નહી । આત્મા હી જિસ જ્ઞાન કી ઉત્પત્તિમેં સાક્ષાત્કારણ હોતા હૈ વહ જ્ઞાન હી આત્માકા પ્રત્યક્ષ માના ગયા હૈ, જૈસે અવધિજ્ઞાન આદિ । આત્મા કે પ્રત્યક્ષમેં આત્માકે સિવાય અન્ય ઇન્દ્રિયાદિક સાક્ષાત્ ગા પર પરાસ્વરૂપે ભી કારણ નહી હોતે હૈ, કેવલ આત્મા હી સાક્ષાત્કારણ હોતા હૈ । ઇસી તરહ બાહ્ય ધૂમાદિક ચિહ્ન જિસ જ્ઞાનમેં સાક્ષાત્કારણ નહી હોતે હૈ, કેવલ ઇન્દ્રિયા હી સાક્ષાત્કારણ હોતી હૈ વહ ઇન્દ્રિયોંકા પ્રત્યક્ષ હૈ-ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ હૈ, આત્મપ્રત્યક્ષ નહીં । આત્મા કે લિયે તો વહ પરોક્ષ હી હૈ, ક્યોંકિ યહાં પરનિમિત્તતા હૈ, આત્મનિમિત્તતા નહી, અર્થાત-આત્માસે ભિન્ન જો ઇન્દ્રિયાદિક હૈં વે આત્માસે પર હૈ, ઓર ઇ-હી પરસ્વરૂપ ઇન્દ્રિયોંસે વહ પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન ઉત્પન્ન હુઆ હૈ અતઃ વહ પરોક્ષ હી હૈ, જિસ પ્રકાર અનુ-માનજ્ઞાન બાહ્ય લિહ્નાદિકોં સે હોતા હૈ, ઓર ઇસીલિયે વહ પરોક્ષ માના જાતા હૈ । યહા જો ઇન્દ્રિયોંકે સાક્ષાત્કારણ હોને કી વજહસે હોને વાલે જ્ઞાન કો પ્રત્યક્ષ કહા હૈ વહ પરમાર્થત' નહી, કિન્તુ વ્યવહાર કી અપેક્ષા સે હી કહા ગયા હૈ, એસા જાનના ચાહિયે, ક્યોં કિ ઇન્દ્રિયા અચેતન હૈ ।

તેથી તે ઇન્દ્રિયોનું પ્રત્યક્ષ મનાય છે આત્માનું નહી આત્મા જ જે જ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં સાક્ષાત્કારણ હોય છે તે જ્ઞાન જ આત્માનું પ્રત્યક્ષ મનાયુ છે, જેવાકે અવધિજ્ઞાન આદિ આત્માના પ્રત્યક્ષમાં આત્મા સિવાય અન્ય ઇન્દ્રિયાદિક સાક્ષાત્કે પરપરા રૂપથી પણ કારણ હોતા નથી, કેવળ આત્મા જ સાક્ષાત્કારણ હોય છે આ રીતે બાહ્ય ધૂમાદિક ચિહ્ન જે જ્ઞાનમાં સાક્ષાત્કારણ હોતા નથી કેવળ ઇન્દ્રિયો જ સાક્ષાત્કારણ હોય છે તે ઇન્દ્રિયોનું પ્રત્યક્ષ છે-ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ છે, આત્મપ્રત્યક્ષ નહી આત્માને માટે તો તે પરોક્ષ જ છે, કારણ કે અહીં પરનિમિત્તતા છે, આત્મનિમિત્તતા નથી એટલે કે આત્માથી ભિન્ન જે ઇન્દ્રિયાદિક છે તે આત્માથી પર છે અને એજ પરરૂપ ઇન્દ્રિયોથી તે પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયુ છે, તેથી તે પરોક્ષ જ છે જે રીતે અનુમાન જ્ઞાન બાહ્ય લિગાદિકોથી થાય છે, અને તેથી તે પરોક્ષ મનાય છે અહીં જે ઇન્દ્રિયોના સાક્ષાત્કારણ હોવાને કારણે થનારા જ્ઞાનને પ્રત્યક્ષ કહ્યુ છે તે પરમાર્થત નહી પણ વ્યવહારની અપેક્ષાએ જ કહેવાયુ છે, એમ માનવુ જોઈએ, કારણ કે ઇન્દ્રિયો અચેતન છે.

ननु स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणीति क्रमः, अयमेव च समीचीन, पूर्वपूर्वलाभे सत्येवोत्तरोत्तरलाभसम्भवात्, ततः किमर्थमुत्क्रमोपन्यास कृतः? इति चेत्, उच्यते—“अस्ति पूर्वानुपूर्वी, अस्ति पश्चानुपूर्वी” इति न्यायप्रदर्शनार्थोऽयमुत्क्रमोपन्यासः कृतः । अपि च—श्रोत्रेन्द्रियापेक्षया श्रोत्रेन्द्रिय प्रधानं, श्रोत्रेन्द्रियस्य हि यत्प्रत्यक्ष तदितरेन्द्रियप्रत्यक्षापेक्षया स्पष्टमवेदनं भवति । स्पष्टसवेदनचोपवर्ण्यमानं शिष्यः सुखेनावबुध्यते, ततः स्पष्टसवेदनद्वारेण सुखपूर्वभावबोध-प्राप्तिहेतुत्वादिह श्रोत्रेन्द्रियादिक्रम उक्तः ॥ सू० ४ ॥

शका—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, इस प्रकार इन्द्रियों का क्रम है और यही समीचीन है, कारण कि पूर्व पूर्व इन्द्रियोंके लाभ होने पर ही उत्तरकी इन्द्रियोंका लाभ होता है, तो फिर सूत्रमें इस प्रकारका क्रम न रखकर व्युत्क्रमरूपसे उपन्यास क्यों किया गया है? ।

उत्तर—“पूर्वानुपूर्वी है तथा पश्चानुपूर्वी भी है” इस न्याय को दिखाने के लिये सूत्रकारने सूत्रमें यह व्युत्क्रमरूपसे उपन्यास किया है । अर्थात्—पूर्वानुपूर्वीरूप तथा पश्चानुपूर्वीरूपसे क्रम दो प्रकार का होता है । दोनों प्रकारसे वर्णन करनेमें क्रमका विघात नहीं होता है । फिर यह कि समस्त इन्द्रियोंमें श्रोत्र इन्द्रिय प्रधान है, कारण कि श्रोत्रेन्द्रियका जो प्रत्यक्ष होता है वह इतर इन्द्रियोंसे होनेवाले प्रत्यक्षकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है । शिष्यजन वर्ण्यमान विषय को श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा सुनकर ही उस विषयको अच्छी तरह जानते हैं । इसलिये स्पष्ट सवेदन द्वारा

शका —स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, अने श्रोत्र, आ प्रमाणे इन्द्रियोने क्रम छे अने अने समीचीन छे कारण के पूर्व पूर्व इन्द्रियोना लाभ तथाथी न उत्तर, उत्तरी इन्द्रियोना लाभ थाय छे, तो पछी सूत्रमा आ प्रकारने क्रम न राखता उलटा क्रमथी उपन्यास केम कराये छे ?

उत्तर —“पूर्वानुपूर्वी छे तथा पश्चानुपूर्वी पणु छे” आ न्यायने दशां पवा भाटे सूत्रकारे सूत्रमा आ व्युत्क्रम (अवणा) रूपथी उपन्यास क्यो छे, अटके के पूर्वानुपूर्वीरूप तथा पश्चानुपूर्वीरूपथी के प्रकारने क्रम थाय छे अने रीते वर्णन करवाभा क्रमने विघात यतो नहीं करीये के सवे इन्द्रियोमा श्रोत्रेन्द्रिय मुख्य छे, कारण के श्रोत्रेन्द्रियनु के प्रत्यक्ष होय छे ते भी छे इन्द्रियोथी यनारा प्रत्यक्षनी अपेक्षाये वधारे स्पष्ट होय छे शिष्यजन वर्ण्यमान विषयने ‘श्रोत्र’ इन्द्रिय द्वारा सावधानीने न ते विषयने सारी रीते लखे छे तेथी स्पष्ट

મૂલમ્—સે કિ તં નોઙ્ઙિયપચ્ચક્કમ્ ? નોઙ્ઙિયપચ્ચક્કમ્
તિવિહ પ્પણત્ત, ત જહા—ઓહિનાણપચ્ચક્કમ્, મ્મણપ્પજ્જવનાણ-
પચ્ચક્કમ્ કેવલનાણપચ્ચક્કમ્ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—અથ કિં તત્ત નોઙ્ઙિયપ્રત્યક્ષમ્ ? નોઙ્ઙિયપ્રત્યક્ષમ્ ત્રિવિધ પ્રત્ત-
ત્તમ્ । તદ્ યથા—અવધિજ્ઞાનપ્રત્યક્ષ ૧, મનઃપર્યવજ્ઞાનપ્રત્યક્ષ ૨, કેવલજ્ઞાન-
પ્રત્યક્ષમ્ ૩ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

‘સે કિં ત નોઙ્ઙિયપચ્ચક્કમ્’ ઇત્યાદિ ।

ટીકા—‘સે-અથ’ ઇતિ પ્રશ્નાર્થક । તત્-પૂર્વોક્ત, નોઙ્ઙિયપ્રત્યક્ષમ્ =
ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમિન્ન પ્રત્યક્ષ, કિમ્? = ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષમિન્નસ્ય પ્રત્યક્ષસ્ય સ્વરૂપ કિમસ્તિ? ।
ઉત્તરમાઠ—‘નોઙ્ઙિયપચ્ચક્કમ્ તિવિહ પ્પણત્ત’ ઇત્યાદિ । એતત્ત સુગમમ્ ॥ મૃ૦ ૫ ॥

મૂલમ્—સે કિ ત ઓહિનાણપચ્ચક્કમ્ ? ઓહિનાણપચ્ચક્કમ્
દુવિહ પ્પણત્ત, ત જહા—ભવપચ્ચદ્દય ચ્ચ સ્સાઓવસમિય ચ્ચ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

છાયા—અથ કિં તદવધિજ્ઞાનપ્રત્યક્ષમ્ ? અવધિજ્ઞાનપ્રત્યક્ષં દ્વિવિધ પ્રત્તત્તમ્ ।
તદ્ યથા—મનપ્રત્યયિક ચ્ચ, ક્ષાયોપશમિક ચ્ચ ॥ ૬ ॥

સુખપૂર્વક અવબોધની પ્રાપ્તિકા હેતુ હોનેસે યહા સૂત્રમે શ્રોત્રેન્દ્રિયાદિકા
ક્રમ રચ્યા ગયા હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

‘સે કિ ત નોઙ્ઙિયપચ્ચક્કમ્’ ઇત્યાદિ ।

પૂર્વોક્ત નોઙ્ઙિયપ્રત્યક્ષ કા કયા સ્વરૂપ હૈ, ૧ ઉત્તર—નોઙ્ઙિય-
પ્રત્યક્ષ—જો ઈન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ સે સર્વથા મિન્ન માના ગયા હૈ ઉસકા સ્વરૂપ
અવધિજ્ઞાન, મન પર્યવજ્ઞાન એવ કેવલજ્ઞાન રૂપ હૈ । યહા નો—શબ્દ
ઈન્દ્રિયોંકી સહાયતાસે સર્વથા રહિત અર્થકા વોધક હૈ । ઈન્દ્રિયોંકી
સહાયતા—અવધિજ્ઞાન, મન પર્યવજ્ઞાન એવ કેવલજ્ઞાનમે ચિલકુલ નહી
હોતી હૈ, ઇસલિયે યે હીત્રીન જ્ઞાન નોઙ્ઙિયપ્રત્યક્ષ કહે ગયે હૈ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

સ વેદનદ્વારા સુખપૂર્વક અવબોધની પ્રાપ્તિને હેતુ હોવાથી અહીં સૂત્રમા શ્રોત્રેન્દ્રિ-
યાદિકને ક્રમ રાખવામા આવેલ છે ॥ સૂ૦ ૪ ॥

“સે કિ ત નોઙ્ઙિયપચ્ચક્કમ્” ઇત્યાદિ

પૂર્વોક્ત ‘નોઙ્ઙિયપ્રત્યક્ષ’ નુ શુ સ્વરૂપ છે? ઉત્તર—‘નોઙ્ઙિય
પ્રત્યક્ષ’ ને ઇન્દ્રિયપ્રત્યક્ષથી સદતર ભિન્ન મનાયુ છે, તેનુ સ્વરૂપ અવધિજ્ઞાન,
મન પર્યવજ્ઞાન અને ઉવેણજ્ઞાન રૂપ છે અહીં ‘નો’ શબ્દ ઇન્દ્રિયોંની સહાયતાથી
સદતર રહિત અર્થને બોધક છે અવધિજ્ઞાન, મન પર્યવજ્ઞાન અને ઉવેણજ્ઞાનમા
ઈન્દ્રિયોંની સહાયતા બિલકુલ હોતી નથી તેથી જ તે ત્રણ જ્ઞાનને નોઙ્ઙિય
પ્રત્યક્ષ કહેલ છે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

‘સે કિં ત ઓહિનાણપચ્ચક્કલ’ ઇત્યાદિ ।

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—અવ કિં તદવધિજ્ઞાનપ્રત્યક્ષમ્ ? , પૂર્વનિર્દિષ્ટસ્યાવધિજ્ઞાનપ્રત્યક્ષસ્ય કિં સ્વરૂપમિતિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરમાહ—‘ ઓહિનાણપચ્ચક્કલ દુવ્વિહ પ્પણ્ણત્ત ’ ઇત્યાદિ । અગ્નિજ્ઞાનપ્રત્યક્ષ દ્વિવિગ્ન પ્રજ્ઞમ્ । તદ્ દ્વૈવિધ્ય પ્રદર્શયિતુમાહ—‘ત જહા’ ઇત્યાદિ, ‘તદ્ યથા—ભગ્નપ્રત્યયિક ચ ક્ષાયોપશમિક ચેતિ । ભવન ભગ્નઃજન્મ, સ પ્રત્યયઃ કારણ યસ્ય તદ્ ભગ્નપ્રત્યયમ્ ।

યદ્વા—ભગ્નન્તિ—વર્તન્તે કર્મવશગર્તિનઃ પ્રાણિનોઽસ્મિન્નિતિ ભગ્નઃ=નરકાદિજન્મ, ભવ એવ પ્રત્યયઃ=કારણ યસ્ય તદ્ ભગ્નપ્રત્યયમ્ । પ્રત્યયશબ્દશ્ચેહ કારણેઽર્થે વર્તતે । ઉક્તશ્ચ—‘ પ્રત્યયઃ શપથ-જ્ઞાન-હેતુ-વિશ્વાસ-નિશ્ચયે ’ ઇતિ ।

તદેવ ભગ્નપ્રત્યયિક જન્મહેતુકમિત્યર્થઃ । ચકાર. પૂર્વવત્ સ્વગતદેવનારકાશ્રિત-ભેદદ્વયમ્ચક્ર. । તથા—ક્ષયશ્ચોપશમશ્ચ ક્ષયોપશમૌ, તાભ્યા નિર્વૃત્ત ક્ષાયોપશમિક ચેતિ ।

‘સે કિં ત ઓહિનાણપચ્ચક્કલ’ ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય યદ્વા પ્રશ્ન કરતા ટુઆ પૂછ રહા હૈ કિ હે ભદન્ત ! જિસ અવધિ જ્ઞાન કો આપને અમ્હી નોઽન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ કહા હૈ ઉસકા કયા સ્વરૂપ હૈ ? ઉત્તરમે ગુરુમહારાજ કહતે હૈ કિ વહ અવધિજ્ઞાન દો પ્રકાર કા હૈ—૧ ભવપ્રત્યયિક, ૨ ક્ષાયોપશમિક । જિસ અવધિજ્ઞાન કી ઉત્પત્તિમેં જન્મ કારણ હોતા હૈ વહ ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન હૈ । યહ અવધિજ્ઞાન દેવ ઓર નારકિયોં કે હોતા હૈ, કારણ કિ વહા જન્મ લેતે હી જીવ કો અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન હો જાતા હૈ । ક્ષય ઓર ઉપશમ સે જો અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ વહ ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન હૈ । યહ અવધિ જ્ઞાન તિર્યક ઓર મનુષ્યગતિ કે જીવોં કો હોતા હૈ । ક્ષયોપશમ—શબ્દકા અર્થ ‘ક્ષયસહિત ઉપશમ’ એસા હૈ । ઉદયપ્રાપ્ત કર્મ કા વિનાશ ક્ષય હૈ,

“સે કિં ત ઓહિનાણપચ્ચક્કલ” ઇત્યાદિ

શિષ્ય અહીં પ્રશ્ન કરે છે કે હે ભદન્ત ! જે અવધિજ્ઞાનને આપે હમણા જ ‘નોઽન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ’ કહ્યું છે તેનું શું સ્વરૂપ છે ? ઉત્તરમા ગુરુ મહારાજ કહે છે કે તે અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારનું છે (૧) ભવપ્રત્યયિક (૨) ક્ષાયોપશમિક જે અવધિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમા જન્મ ડારણરૂપ હોય છે તે ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન છે આ અવધિજ્ઞાન દેવ અને નારકીઓને થાય છે, કારણ કે ત્યા જન્મ લેતા જીવને અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થઈ જાય છે ક્ષય અને ઉપશમથી જે અવધિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે ક્ષાયોપશમિક અવધિજ્ઞાન છે આ અવધિજ્ઞાન તિર્યક અને મનુષ્યગતિના જીવોને થાય છે ક્ષયોપશમ શબ્દનો અર્થ “ક્ષયસહિત ઉપશમ” એવો છે ઉદયપ્રાપ્ત કર્મનો વિનાશ ક્ષય છે, ઉદયનો નિરોધ ઉપશમ છે

यद्वा—क्षयेण=उदयमाप्तकर्मणो विनाशेन सहितः क्षयसहितः, उपशमः=उदय-
निरोधः, क्षयसहितश्चासावुपशमः क्षयोपशमः । इह मध्यमपदलोपी समासः शाक-
पार्थिवदिवत् । यद्वा—विवक्षितज्ञानादिगुणविघातकस्य कर्मण उदयप्राप्तस्य क्षयः=
सर्वथाऽपगमः, अनुदीर्णस्य तु तस्यैव उपशमः=विपाकत उदयाभावः । तयोपलक्षित
उपशमः क्षयोपशमः । क्षयोपशमे भव क्षायोपगमिकम् ॥ सू०६ ॥

मूलम्—से किं त भवपच्चइय ? भवपच्चइय दुण्ह, तं
जहा—देवाण य, नेरइयाण य ॥ सू० ७ ॥

छाया--अय किं तद् भवप्रत्ययिकम् ? । भवप्रत्ययिक द्वयोः, तद् यया-
देवाना च नेरयिकाणा च ॥ सू०७ ॥

‘से किं त भवपच्चइय’ इत्यादि ।

टीका—शिष्यः पृच्छति—अथ किं तद् भवप्रत्ययिकम् ?=पूर्वनिर्दिष्टस्य भव-
प्रत्ययिकस्य किं स्वरूपमिति । उत्तरमाह—‘भवपच्चइय दुण्ह’ इत्यादि । भवप्रत्य-

उदय का निरोध उपशम है । क्षयसहितउपशममे मध्यमपदलोपी समास
हुआ है, जैसे शाकपार्थिवमे होता है । अथवा—विवक्षित ज्ञानादिक गुण
के विघातक कर्म का कि जो उदयागत है सर्वथा विनाश होना, एव
उसी का जो जितना अनुदीर्ण—उदयमे प्राप्त नहीं हुआ—है उसका उपशम
होना—विपाक की अपेक्षा उदय का अभाव होना इसका नाम क्षयोपशम
है । इस क्षयोपशम के होने पर जो अवधिज्ञान होता है वह क्षायोपश-
मिक अवधिज्ञान है ॥सू०६॥

‘से किं त भवपच्चइय’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता है—हे गुरुमहाराज ! भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान का क्या
स्वरूप है ? उत्तरमे गुरुमहाराज कहते हैं कि—यह भवप्रत्ययिक अवधि-

क्षयसहित उपशममा मध्यमपदलोपी समास थयो छे नेवी रीते शाकपार्थिवमा
थाय छे अथवा विवक्षित ज्ञानादिक गुणुना विघातक कर्म के ने उदयागत छे,
तेनो सहतर विनाश थयो अने नेटला अनुदार्ण—उदय पाभ्या नथी—तेनो उप-
शम थयो—विपाकनी अपेक्षाये उदयनो अभाव होयो अने नाम क्षयोपशम छे आ
क्षयोपशमना होवार्थी ने अवधिज्ञान थाय छे ते क्षायोपशमिक अवधिज्ञान छे ॥सू०६॥

‘से किं त भवपच्चइय’ इत्यादि

शिष्य पूछे छे—हे गुरु महाराज ! भवप्रत्ययिक अवधिज्ञानतु शु स्वरूप
छे ? अथवा गुरु महाराज कहे छे के—आ भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान मे एवने

यिरु द्वयो = जीवसमूहयोर्भवति । कयोर्द्वयोरिति जिज्ञासायामाह—‘तजहा’ इत्यादि ।
तद् यथा—देवाना च नैरयिकाणा च । भवनिमित्तकमग्रधिज्ञान देवाना नार-
काणा चेत्युभयेषा भवतीत्यर्थः । चकार उभयत्र स्वगताऽनेकभेदसमूचकः ।

नन्वग्रधितान क्षायोपशमिके भावे वर्तते, नारकादिभ्रवश्चौदयिके, तत् कथ
देवादीनामग्रधिज्ञान भ्रप्रत्ययिकमिति व्यपदिश्यते ? । नैप दोषः समग्रति, अग्रधि-
ज्ञान हि परमार्थतः क्षायोपशमिकमेव, किन्तु अग्रधिज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमो
देवनारकभ्रवयोरवश्यंभावीत्यग्रधिज्ञान देवनारकाणामग्रश्य भ्रवत्येव, पक्षिणात्माका-
शगमनलब्धिवत्, तस्माद् भ्रप्रत्ययमिति व्यपदिश्यते । यद्वा—अग्रधिज्ञान प्रति यो
भवः साक्षात्कारण तमधिकृत्य भ्रप्रत्ययिकमिति भेदोपन्यासः कृतः ॥ सू०७ ॥

शिष्यः पृच्छति—‘ से किं त खाओवसमिय ’ इत्यादि ।

ज्ञान दो जीवोंके होता है । वे दो जीव ये हैं—देव और नारकी । भ्रप्रत्य-
यिक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ।

शका—अवधिज्ञान क्षायोपशमिक भावमे गिनाया गया है, तथा
नारकादिकभ्रव औदयिक भावमें, तब फिर देवादिकोंका अवधिज्ञान
भ्रप्रत्ययिक कैसे कहला सकता है ? वह तो क्षायोपशमिक ही कहलावेगा ।

उत्तर—अवधिज्ञान परमार्थतः क्षायोपशमिक ही होता है, किन्तु
‘ अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम देव और नारकियों के भ्रवमें
अवश्य ही होता है ’ इस अपेक्षा से उस अवधिज्ञानावरणीय कर्म के
क्षयोपशम मे भ्रव साक्षात्कारण होने से उसको भ्रप्रत्ययिक कहा है,
जैसे पक्षियों मे उडना भ्रप्रत्ययिक कहा जाता है, शिक्षा आदि गुण-
निमित्तक नहीं । इसी प्रकार देव नारकियों का अवधिज्ञान तपस्या आदि
द्वारा होनेवाले अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमनिमित्तक नहीं

थाय छे ते जे लव आ छे—देव अने नारकी लवप्रत्ययिक अवधिज्ञान देव अने
नारकीअने थाय छे

शका—अवधिज्ञान क्षायोपशमिक लवभा गणुअवु छे तथा नारकादिक
लव औदयिक लवभा गणुवेद छे ते पछी देवादिकेअनु अवधिज्ञान लवप्र-
त्ययिक केवी रीते कही शकाय ? ते तो क्षायोपशमिक के कडेवाशे

उत्तर—अवधिज्ञान परमार्थतः क्षायोपशमिक के होय छे, पणु “ अवधि
ज्ञानावरणीय कर्मने क्षायोपशम देव अने नारकीअने लवभा अवश्य थाय छे के ”
आ अपेक्षाअे ते अवधिज्ञानावरणीय कर्मने क्षायोपशमभा लव साक्षात्कारण
होवाथी तेने लवप्रत्ययिक कह्यु छे, केवी रीते पक्षीअेभा ‘ उडवु ’ ते लवप्रत्य-
यिक कडेवाय छे शिक्षा आदि गुणनिमित्तक नहीं अे प्रभाअे देव, नारकी
अेअनु अवधिज्ञान तपस्या आदि द्वारा थनारा अवधिज्ञानावरणीय कर्मने

मूलम्—से किं त खाओवसमियं ? । खाओवसमियं दुण्ह ।

त जहा—मणुस्साण य, पचेदियतिरिक्खजोणियाण य । को हेऊ खाओपसमिय ? । खाओवसमिय तयावरणिज्जाणं कम्माण उदिण्णाण खएणं, अणुदिण्णाणं उवसमेण ओहिनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—अथ किं तत् क्षायोपशमिकम् ? । क्षायोपशमिकं द्वयोः । तद् यथा—मनुष्याणां च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां च । को हेतुः क्षायोपशमिकः ? क्षायोपशमिकं तदारणीयानां कर्मणाम् उदीर्णानां क्षयेण, अनुदीर्णानामुपशमेन, अवधिज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू० ८ ॥

टीका—‘अथ किं तत् क्षायोपशमिकम्’ इति । क्षायोपशमिकस्यावधिज्ञानस्य किं स्वरूपं ? मिति । उत्तरमाह—‘खाओवसमियं दुण्ह’ इत्यादि । क्षायोपशमिकं=क्षायोपशमनिमित्तकं द्वयोः=जीवसमूहयोः । कयोर्द्वयोः ? इति जिज्ञासायामाह—‘त जहा’ इत्यादि । तद् यथा—मनुष्याणां च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां च । क्षायोपशमिकमवधिज्ञानं मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिरश्चात्चेतुभयेषां भवतीत्यर्थः ।

पुनरपि शिष्यः पृच्छति—‘को हेऊ’ इत्यादि । को हेतुः क्षायोपशमिकम् ? इति । अत्रधिज्ञानं क्षायोपशमिकं भवतीत्यत्र किं कारणमिति प्रश्नः । उत्तरमाह—होता है, किन्तु वहाके भवनिमित्तक ही होता है, अतः इस अपेक्षा वह भवप्रत्ययिक कहा जाता है ॥ सू० ७ ॥

‘से किं त खाओवसमियं’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता है—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ? गुरु कहते हैं—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मनुष्यों के तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च जीवों के होता है ।

प्रश्न—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ?

क्षायोपशमनिमित्तकं होतुं नथी, येषु त्यानां लवनिमित्तकं च थायं छे, तेथी ओ अपेक्षाओ ते लवप्रत्ययिकं उडेवायं छे ॥ सू० ७ ॥

“से किं त खाओवसमियं” इत्यादि

शिष्य पूछे छे—“क्षायोपशमिक अवधिज्ञाननु शु स्वरूप छे ? गुरु कहे छे—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मनुष्यो तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च लवोने थायं छे

प्रश्न—क्षायोपशमिक अवधिज्ञाननु शु स्वरूप छे ?

' ग्वाओवसमियं ' इत्यादि । नदावरणीयानाम्=तस्य-अवधिज्ञानस्य, यानि आव-
रणीयानि-आवरकाणि, तेषा कर्मणा मध्ये, उदीर्णानाम्=उदयापलिका प्राप्ताना
कर्मदलिकाना क्षयेण=क्षयकरणेन, तथा-अनुदीर्णानाम्-अवधिज्ञानावरणीयकर्मसु
यान्यनुदितानि आत्मनि स्थितानि कर्मदलिकानि तेषाम्, उपशमेन=उपशमनकरणेन
विपाकोदयनिरोधेन, यदवधिवान समुत्पद्यते, तदवधिज्ञान क्षायोपशमिकमित्युच्यते।
अनेन क्षायोपशमिकमवधिज्ञान प्रति अवधिज्ञानावरणीयकर्मणा क्षयोपशमरूपो हेतु-
रुक्तः । क्षयोपशमश्च देशघातिरसस्पर्धकानामुदये सति भवति न तु सर्वघाति-
रसस्पर्धकानाम् ।

मनुष्याणा पञ्चेन्द्रियतिरश्चा चावधिज्ञान नावश्यंभावि, तस्मात् समानेऽपि,
क्षायोपशमिकरूपे भवप्रत्ययिकादिदं भिद्यते । परमार्थतस्तु सकलमप्यवधिज्ञान

उत्तर--अवधिज्ञान के आवारक जितने कर्म हैं उनके उदीर्ण
दलिकों का क्षय होता है, तथा अनुदीर्ण दलिकों का सदवस्थारूप उपशम
रहता है, इस स्थितिमें जो अवधिज्ञान होता है वह क्षायोपशमिक अव-
धिज्ञान है । इस तरह अवधिज्ञान के प्रति अवधिज्ञानावरणीय कर्म का
क्षयोपशम हेतुरूपसे कहा गया है । अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणीय कर्म
के देशघातिरसस्पर्धकों (कर्मांशों) का उदय तथा सर्वघातिरसस्पर्धकों
का कुछ का क्षय और कुछ का सदवस्थारूप उपशम रहता है । मनुष्यों के
तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के अवधिज्ञान अवश्यभावी नहीं होता है, अर्थात्
क्षायोपशमिक अवधिज्ञान समस्त मनुष्य एव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के होता
ही है, ऐसा नियम नहीं है किन्तु जिनके अवधिज्ञानावरणीय कर्म का
क्षयोपशम होता है उन्हीं के यह होता है, ऐसा नियम है, अतः भव-
प्रत्ययिक अवधिज्ञान जो समस्त देव और नारकियों के अवश्यभावी

आवाङ्क जेटला कर्म छे तेमना उदीर्ण दलिकेनो क्षय थाय छे अने अनुदीर्ण दलि
केनो सदवस्थाइप उपशम रहे छे आ स्थितिमा जे अवधिज्ञान थाय छे ते क्षयो
पशमिक अवधिज्ञान छे आ शीते अवधिज्ञाननी प्रति अवधिज्ञानावरणीय कर्मनो
क्षयोपशम हेतुरूपे कहेवाये छे अवधिज्ञानमा अवधिज्ञानावरणीयना देशघाति
स्पर्धको (कर्मांशो) नो उदय तथा सर्वघातिरसस्पर्धकोमाना जेटलाकेनो क्षय
तथा जेटलाकेनो सदवस्थाइप उपशम रहे छे मनुष्येनो तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्य-
ञ्चोनो अवधिज्ञान अवश्यभावी होतु नथी, जेटले के क्षयोपशमिक अवधि
ज्ञान भवे मनुष्ये तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोने थाय न छे जेवो नियम नथी,
पण जेने अवधिज्ञानावरणीय कर्मनो क्षयोपशम थाय छे तेमने ते थाय न छे
जेवो नियम छे तेथी भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान जे समस्त देव अने नारकीयाने

क्षायोपशमिर्मेव । तत्रानधिज्ञानावरणकर्मप्रकृतीना तथात्रिधविशुद्धायमायतः
 प्रचुरीभूताग्ग्यान्नेकणेन सर्वपाठिषु रसस्पर्धकेषु देशघातिरूपतया परिणमितेषु,
 देशघातिरसस्पर्धकेष्वपि यानि अतिस्निग्धानि रसस्पर्धकानि सन्ति तेषु अल्प-
 रसीकृतेषु उदयानधिक्राप्राप्तम्यांगम्य क्षयेऽनुदीर्णस्य चोपशमे-विपाकोदयविक-
 म्मरूपे तीव्रम्यानभ्यादयो गुणाः प्रादुर्भवन्ति ।

होता है उससे इसमें भिन्नता है । यद्यपि भ्रमप्रत्यय अग्रधिज्ञानमें और
 क्षायोपशमिक अग्रधिज्ञान में अग्रधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की
 समानता है, फिर भी भ्रमप्रत्यय अग्रधितो समस्त देव और नारकियों के
 अग्रद्वयभारी है, तब कि मनुष्य और निर्यज्ञों का अग्रधिज्ञान ऐसा नहीं
 है, अर्थात् होता भी है और नहीं भी होता है । अग्रधिज्ञान चाहे क्षायो-
 पशमिक हो चाहे भ्रमप्रत्ययिक हो वह परमार्थन क्षायोपशमिक ही है ।
 उसमें कारण यह है कि अग्रधिज्ञान के आचारक जितने भी अग्रधिज्ञाना-
 वरणीय कर्म के रसस्पर्धक हैं उनमें प्रचुरीभूत जो रस है वह तथाविध
 शुभ अध्यवसाय के वशसे अल्प कर दिया जाता है, एवं सर्वघातिरस
 स्पर्धकों को देशघातिरसस्पर्धकरूप परिणमा दिया जाता है, तथा उदित
 देशघातिरसस्पर्धकों में भी जो अतिस्निग्ध रसस्पर्धक हैं वे अल्प रसवाले
 कर दिये जाते हैं, ऐसी स्थितिमें उदयावलिमें प्राप्त जो अश होता है
 उम के क्षय होने पर, तथा अनुदीर्ण अश के उपशम होने पर जीवके
 अग्रधि आदि गुण प्रादुर्भूत हुआ करते हैं ।

अवश्य बावी होय छ तेशी तेभा लिखता छ जे डे लवप्रत्यय अवधिज्ञानभा
 आने क्षायोपशमिक अवधिज्ञानभा अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमनी समा
 नता छ तो पणु लवप्रत्यय अवधि तो समस्त देव आने नारकीओने अवश्य
 बावी छ त्यारे मनुष्य आने तिर्यगोनु अवधिज्ञान ओवु नथी, ओटले डे होय
 छ पणु भद्र आने नथी पणु होतु अवधिज्ञान लले क्षायोपशमिक होय डे लले
 लवप्रत्ययिक होय पणु ते परमार्थत क्षायोपशमिक न छ तेनु कारणु ओ छे डे
 अवधिज्ञानना आचारक ओटला पणु अवधिज्ञानावरणीय कर्मना रसस्पर्धक छे
 तेओभा प्रचुरीभूत ले रस छे ते, ते प्रकारना शुभ अध्यवसायना वशथी अल्प
 कर देवाय छे, आने सर्वघातिरसस्पर्धकने देशघातिरसस्पर्धकरूप परिणमा
 केभा पणु ले अतिस्निग्ध रस
 छे, ओवी स्थितिभा उदयावलिभा
 १- अशने उपशम यता

कदाचिद् विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण कदाचिद् विशिष्टगुणप्रतिपत्तितश्च सर्वघातीनि रसस्पर्शकानि देशघातीनि भवन्ति ।

तत्र विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण कथम् ? इति चेत्, उच्यते—यथाऽऽकाशे जलदपटलाच्छादितस्य सूर्यमण्डलस्य कथंचिद् विस्त्रसापरिणामेन जलदपटलैकदेशे पुद्गलाना निःस्नेहीभूय व्यपगमे सति सजातेन तेन त्रिद्रेण निर्गतास्तिमिरनिकर-
रोपसंहारहेतवो रश्मयः स्यावपातदेशावस्थित वस्तु विद्योतयन्ति, तथा मिथ्यात्वा विरतिप्रमादादिहेतुपचयोपजनिताप्रधिज्ञानावरणकर्ममलपटलाच्छादितस्थानादिससारे

शका—सर्वघातिरसस्पर्शक देशघातिरसस्पर्शकरूप कैसे होते हैं ?

उत्तर—कदाचित् विशिष्ट गुण की प्रतिपत्ति से, तथा कदाचित् इसके बिना भी वे उसरूप हो जाते हैं । विशिष्टगुण की प्रतिपत्ति के बिना सर्वघातिस्पर्शक देशघातिस्पर्शकरूप हो जाते हैं, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जैसे आकाशमे जय सूर्यमण्डल मेघपटल से घिर जाता है—ढक जाता है तब उसका प्रकाश रुक जाता है, और जय वही मेघ-
पटल विस्त्रसापरिणामस्वभाव से एकदेशरूपमे—योडे २ रूपमे उसके ऊपर से जैसे २ हटने लगता है वैसे २ उनके भीतर से सूर्य की तिमिर निकर (अन्धकारसमूह) का संहार करनेवाली किरणे छिटकने लगती हैं, और अपने द्वारा प्रकाशित स्थानमे स्थित पदार्थों को वे प्रकाशित करती हैं, इसी तरह मिथ्यात्व, अविरति एव प्रमाद आदि हेतु के उपचय से जनित जो अवधिज्ञानावरणीयरूप कर्ममल उससे आच्छादित तथा

शका—सर्वघातिरसस्पर्शक देशघातिरसस्पर्शकरूप केवी राने थाय छे ?

उत्तर—क्यारेऽ विशिष्ट गुणुनी प्रतिपत्तिथी तथा क्यारेऽ तेना बिना पषु तेजो जे रूप थछ नय छे विशिष्टगुणुनी प्रतिपत्ति बिना सर्वघातिस्पर्शक देशघातिस्पर्शकरूप थछ नय छे तेनु स्पष्टीकरणु आ प्रमाणु छे—जेम आकाशमा न्यारे सूर्यमण्डल मेघपटलथी आच्छादित थछ नय छे (ढकाथ नय छे) त्यारे तेना प्रकाश रोकथ छे, अने न्यारे जेमे मेघपटल विस्त्रसापरिणाम स्वभाव-
थी एकदेशरूपमा थोडा थोडा प्रमाणुमा तेना उपरथी जेमे जेमे दूर थवा लागे छे तेम तेम तेमनी अस्थी सूर्यनी तिमिरनिकर (अधकारसमूह)नो संहार करनारी दिखेला निठणवा लागे छे, अने पोताना द्वारा प्रकाशित स्थानमा रहेला पदार्थाने तेजो प्रकाशित करे छे, जेमे रीते मिथ्यात्व, अविरति अने प्रमाद आदि हेतुना उपचयथी पैदा थयेल जे अवधिज्ञानावरणीयरूप कर्ममल तेनाथी

क्षायोपशमिकमेव । तत्रावधिनानावरणकर्मप्रकृतीना तथात्रिधविशुद्धायमायतः
प्रचुरीभूतरसस्याल्पीकरणेन सर्वघातिषु रसस्पर्धकेषु देशघातिरूपतया परिणमितेषु,
देशघातिरसस्पर्धकेष्वपि यानि अतिस्निग्धानि रसस्पर्धकानि सन्ति तेषु अल्प-
रसीकृतेषु उदयावलिक्लाप्राप्तस्याशस्य क्षयेऽनुदीर्णस्य चोपशमे-त्रिपाकोदयत्रिक्-
म्मरूपे जीवस्यावध्यादयो गुणाः प्रादुर्भवन्ति ।

होता है उससे इसमें भिन्नता है । यद्यपि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें और
क्षायोपशमिक अवधिज्ञान में अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की
समानता है, फिर भी भवप्रत्यय अवधितो समस्त देव और नारकियों के
अवश्यभावी है, तब कि मनुष्य और तिर्यञ्चों का अवधिज्ञान ऐसा नहीं
है, अर्थात् होता भी है और नहीं भी होता है । अवधिज्ञान चाहे क्षायो-
पशमिक हो चाहे भवप्रत्ययिक हो वह परमार्थतः क्षायोपशमिक ही है ।
उसमें कारण यह है कि अवधिज्ञान के आवारक जितने भी अवधिज्ञाना-
वरणीय कर्म के रसस्पर्धक हैं उनमें प्रचुरीभूत जो रस है वह तथाविध
शुभ अध्यवसाय के वशसे अल्प कर दिया जाता है, एवं सर्वघातिरस
स्पर्धकों को देशघातिरसस्पर्धकरूप परिणामा दिया जाता है, तथा उदित
देशघातिरसस्पर्धको में भी जो अतिस्निग्ध रसस्पर्धक हैं वे अल्प रसवाले
कर दिये जाते हैं, ऐसी स्थितिमें उदयावलिमें प्राप्त जो अश होता है
उम के क्षय होने पर, तथा अनुदीर्ण अश के उपशम होने पर जीव के
अवधि आदि गुण प्रादुर्भूत हुआ करते हैं ।

अवश्यभावी होय छे तेही तेमा भिन्नता छे जे डे लवप्रत्यय अवधिज्ञानमा
अने क्षायोपशमिक अवधिज्ञानमा अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमनी समा-
नता छे ते पण लवप्रत्यय अवधि तो समस्त देव अने नारकीयाने अवश्य
भावी छे त्यारे मनुष्य अने तिर्यञ्चोतु अवधिज्ञान जेवु नथी, जेटले डे होय
छे पण थडू अने नथी पण होतु अवधिज्ञान लले क्षायोपशमिक होय डे लले
लवप्रत्ययिक होय पण ते परमार्थतः क्षायोपशमिक न छे तेनु कारण जे छे डे
अवधिज्ञानना आवारक जेटला पण अवधिज्ञानावरणीय कर्मना रसस्पर्धक छे
तेजोमा प्रचुरीभूत जे रस छे ते, ते प्रकारना शुभ अध्यवसायना वशथी अल्प
करी देवाय छे, अने सर्वघातिरसस्पर्धकाने देशघातिरसस्पर्धकरूप परिणामा
वाय छे, तथा उदित देशघातिरसस्पर्धकाना पण जे अतिस्निग्ध रस
स्पर्धक छे तेजोने अल्प रसवाणा करी देवाय छे, जेवी स्थितिमा उदयावलिमा
प्राप्त जे अश होय छे तेने क्षय यथा तथा अनुदीर्ण अशने उपशम यथा
अवधिआदि शुभ प्रादुर्भूत यथा करे छे,

નનુ યદુક્ત—“ ક્ષયોપશમઃ સ્વલુ દેશઘાતિરસસ્પર્ધકાનામુદયે સતિ ભવતિ, ન તુ સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકાનામ્ ” ઇતિ, તત્ત રસસ્પર્ધકશબ્દસ્ય કોઽર્થઃ ? ।

ઉચ્યતે—કર્મપુદ્ગલાના પરસ્પરસંશ્લેષહેતુર્યઃ સ્નેહસ્તન્નિમિત્તક સ્પર્ધક રસસ્પર્ધકમિત્યુચ્યતે । રસસ્પર્ધક, સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકમિત્યેક एव पदार्थः । સ્નેહઃ=ચિક્ષણતા પ્રત્યયો=નિમિત્ત યસ્ય તત્ સ્નેહપ્રત્યયમ્ । સ્નેહપ્રત્યય યત્ સ્પર્ધક તત્ સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકમ્ । સ્પર્ધન્તે ઇવોત્તરોત્તરવૃદ્ધ્યા કર્મવર્ગણા અત્રેતિ સ્પર્ધક=વર્ગણાના સમુદાયઃ ।

પુદ્ગલદ્રવ્યાણા પરસ્પર સમ્બન્ધઃ સ્નેહતો ભવતિ તતોઽવશ્ય સ્નેહપ્રરૂપણા કર-

શકા—યહા જો કહા ગયા હૈ કિ-દેશઘાતિરસસ્પર્ધકો કે ઉદય હોને પર હી ક્ષયોપશમ કહલાતા હૈ, સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકોં કે ઉદયમે નહી, સો યહા પર રસસ્પર્ધક શબ્દ કા કયા અર્થ હૈ ?

ઉત્તર—કર્મપુદ્ગલોમે જો પરસ્પર મેં વધ કા હેતુ સ્નેહ હોતા હૈ વહ સ્નેહ જિન સ્પર્ધકોં કા નિમિત્ત હોતા હૈ ઉસકા નામ રસસ્પર્ધક હૈ । યહી રસસ્પર્ધક શબ્દ કા અર્થ હૈ । રસસ્પર્ધક ઓર સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક, યે દોનોં શબ્દ પર્યાયવાચી શબ્દ હૈ । શબ્દભેદ હોને પર મી इनके अर्थमे कोई भेद नहीं है । સ્નેહ શબ્દ કા અર્થ ચિક્ષણતા-ચિકનાઈ હૈ । યહ ચિકનાઈ જિસ સ્પર્ધકમે નિમિત્ત હોતી હૈ વહ સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક હૈ । ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ-રૂપ સે કર્મવર્ગણા જહાં પરસ્પરમેં સ્પર્ધા-ઈર્ષ્યા જૈસે કરે વહ સ્પર્ધક હૈ । યહ સ્પર્ધક કર્મવર્ગણાઓં કા एव समुदाय ह॥

પુદ્ગલ દ્રવ્યોં કા પરસ્પર મે વધ સ્નેહગુણ સે હોતા હૈ અતઃ સ્નેહ કી

શકા—અહીં જે ડહેવામા આવ્યુ છે કે દેશઘાતી રસસ્પર્ધકોને ઉચ્ય થતા જ ક્ષયોપશમ ડહેવાય છે, સર્વઘાતી રસસ્પર્ધકોના ઉદયમા નહીં તે અહીં રસસ્પર્ધક શબ્દનો અર્થ શો છે ?

ઉત્તર—કર્મપુદ્ગલોમા પરસ્પરમા બ વનો હેતુ જે સ્નેહ હોય છે તે સ્નેહ જે સ્પર્ધકોનુ નિમિત્ત હોય છે તેનુ નામ રસસ્પર્ધક છે આ જ રસસ્પર્ધક શબ્દનો અર્થ છે રસસ્પર્ધક અને સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક એ બન્ને પર્યાયવાચી શબ્દ છે શબ્દ ભેદ હોવા છતાં પણ તેમના અર્થમા કોઈ ભેદ નથી સ્નેહ શબ્દનો અર્થ ચિક્ષણતા (ચિકાશ) છે આ ચિકાશ જે સ્પર્ધકમા નિમિત્ત હોય છે તે સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક છે ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિરૂપથી કર્મવર્ગણા ન્યા પરસ્પરમા સ્પર્ધા-ઈર્ષ્યા જેવી ઢરે તે સ્પર્ધક છે આ સ્પર્ધક કર્મવર્ગણાઓને એક સમુદાય છે પુદ્ગલ દ્રવ્યોનો પરસ્પરમા બધ સ્નેહશુભથી થાય છે, તેથી સ્નેહની પ્રરૂપણા

આમ્યમાણસ્ય ભાસ્વરસ્વરૂપસ્યાત્મનઃ કથચિદેવ યથાપ્રવૃત્ત્યાજ્નાદિકાન્તો-
 જ્નાદિસસિદ્ધપ્રકારેઽર્જ કર્મક્ષપણપ્રવૃત્તાધ્યયમાયવિશેષરૂપયા તથાવિધશુભાધ્યયમાય-
 પ્રવૃત્તિતોડપ્રવિજ્ઞાનાવરણસમ્પન્થિના મર્વઘાતિરસસ્પર્ધકાના દેશઘાતિરસસ્પર્ધક-
 તયા જાતાનામુદયાવલિકાપ્રાપ્તસ્યાંશસ્ય પરિક્ષયતોજ્નુદયામલિકાપ્રાપ્તસ્યોપશમતઃ
 સમુદ્ભૂતેન ક્ષયોપશમરૂપેણ રન્ધ્રેણાવધિજ્ઞાનરૂપઃ પ્રકાશઃ પ્રાદૂર્ભવતિ । યેનેન્દ્રિય-
 મનોનિરપેક્ષાઃ સન્તો દેવા નારકાશ્ચ રૂપિદ્રવ્ય વિજ્ઞાનન્તિ । તદેતદવધિજ્ઞાન મઞ
 પ્રત્યયિકમિત્યુચ્યતે । વિશિષ્ટગુણપ્રતિપત્તિસ્તુ મૂલગુણાદિપ્રતિપત્તેર્ભવતીત્યનન્તર-
 સૂત્ર એવ વક્ષ્યતે ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણ સે અનાદિ સસારમે ભ્રમણ કરનેવાલે સૂર્યતુરય ઠસ
 આત્માકે કથચિત્ કર્મક્ષપણ મે પ્રવૃત્ત જો શુભાધ્યયમાયવિશેષ હે ઉનમે
 પ્રવૃત્તિ કરને સે જીવ અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મો કે સર્વઘાતિરસસ્પર્ધકો
 કો દેશઘાતિરસસ્પર્ધકરૂપ પરિણમા દેતા હે । એવ જો ઉનકા અશ ઉદ-
 યાવલીમે પ્રાપ્ત હોતા હે ઉસે ક્ષય કર દેતા હે, તથા જો અશ ઉદયાવલીમે
 પ્રાપ્ત નહી હોતા હે ઉસે ઉપશમિત કર દેતા હે, ઇસ તરહ ઇસ ક્ષાયોપશ-
 મિકરૂપ છિદ્ર સે અવધિજ્ઞાનરૂપ પ્રકાશ ઠિટકરને લગતા હે । ઇસકે દ્વારા
 દેવ એવ નારકી ઇન્દ્રિય ઓર મનકી સહાયતા કે વિના હી રૂપી દ્રવ્યકો
 જાનતે હે । ઇસ તરહ યહ અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યયિક કહા જાતા હે । મૂલ
 ગુણાદિક કી પ્રતિપત્તિ સે હી જીવ કો વિશિષ્ટગુણો કી પ્રતિપત્તિ હોતી
 હે, યહ યાત સ્વય સૂત્રકાર અનન્તર સૂત્રમે કહેગે ।

આમ્બાહિત તથા યથાપ્રવૃત્તિકરણથી આનાદિ સસારમા ભ્રમણ કરનારા સૂર્યતુરય
 આ આત્માના કથચિત્ કર્મક્ષપણમા પ્રવૃત્ત શુભાધ્યયમાયવિશેષ છે તેઓમા
 પ્રવૃત્તિ કરવાથી એવ અવધિજ્ઞાનાવરણીય કર્મોના સર્વઘાતી રસસ્પર્ધકોને દેશઘાતી
 રસસ્પર્ધકરૂપ પરિણમા દે છે અને તેમનો જે અશ ઉદયાવલીમા પ્રાપ્ત હોય
 છે તેનો ક્ષય કરી નાખે છે, તથા જે અશ ઉદયાવલીમા પ્રાપ્ત હોતો નથી તેને
 ઉપશમિત કરી નાખે છે આ રીતે આ ક્ષાયોપશમિકરૂપ છિદ્રમાથી અવધિજ્ઞાન
 રૂપી પ્રકાશ વેરાવા લાગે છે તેના દ્વારા દેવ અને નારકી ઇન્દ્રિય અને મનની
 સહાયતા વિના જ રૂપી દ્રવ્યને જાણે છે આ રીતે આ અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્ય
 યિક ઠહેવાય છે મૂલગુણાદિકની પ્રતિપત્તિથી જ એવને વિશિષ્ટ ગુણોની પ્રતિપત્તિ
 થાય છે, આ વાત સ્વય સૂત્રકાર આગળના સૂત્રમા ઠહેશે

इह स्नेहप्रत्ययस्पर्धकस्याधिकारात् तत्प्ररूपणा क्रियते—

स्नेहप्रत्ययस्पर्धकम्— स्नेहप्रत्यय=स्नेहनिमित्तम् एकैकस्नेहाविभागवृ-
द्धाना पुद्गलवर्णाना समुदायरूप यत् स्पर्धक तत् स्नेहप्रत्ययस्पर्धकम् ।
तद् एकं भवति । तस्मिंश्च स्पर्धके अविभागवर्णणाः=एकैकस्नेहाविभागाधिकरू-
परमाणुसमुदायरूपा वर्णणा अनन्ता द्रष्टव्याः । तासु वर्णणासु अल्पस्नेहयुक्ताः पुद्गला
बहवः सन्ति, प्रभूतस्नेहयुक्तास्तु पुद्गलाः स्वल्पाः ।

योगके निमित्त से जो पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं उन के स्नेहगुण को लेकर स्पर्धक की प्ररूपणा की जाती है वह प्रयोगप्रत्ययस्पर्धक प्ररूपणा है ३।

यहां स्नेहप्रत्ययस्पर्धकका अधिकार है अतः उसकी प्ररूपणा की जाती है ।

एक २ स्नेहगुण के अविभाग से वर्धित जो पुद्गलवर्णणाओं का समुदायरूप स्पर्धक होता है वह स्नेहप्रत्ययस्पर्धक है, और वह एक है। इस एक स्पर्धक में अविभागवर्णणाँ—एक २ स्नेहगुण के अविभाग की अधिकतावाले परमाणुओं के समुदायरूप वर्णणाँ अनन्त होती हैं। इन वर्णणाओं में अल्पस्नेहगुणयुक्त पुद्गल बहुत होते हैं, तथा प्रभूतस्नेहगुण-युक्त पुद्गल बहुत थोड़े होते हैं।

इપ અતાવાયુ છે આ યોગના નિમિત્તથી જે પુદ્ગલો પ્રહણ કરાય છે, તેમના સ્નેહશુભુને લઈને સ્પર્ધકની પ્રરૂપણા કરાય છે, તે પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધક પ્રરૂપણા છે

અહીં સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકનો અધિકાર છે તેથી તેની પ્રરૂપણા કરવામા આવે છે

એક એક સ્નેહશુભુના અવિભાગથી વર્ધિત જે પુદ્ગલવર્ણણાઓના સમુદાયરૂપ સ્પર્ધક હોય છે તે સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક છે, અને તે એક છે આ એક સ્પર્ધકમા અવિભાગ વર્ણણાઓ—એક એક સ્નેહશુભુના અવિભાગની અધિકતા વાળા પરમાણુઓના સમુદાયરૂપ વર્ણણાઓ અનન્ત હોય છે એ વર્ણ-ણાઓમા અલ્પસ્નેહશુભુવાળા પુદ્ગલ ઘણા જ હોય છે, તથા વધારે સ્નેહ શુભુવાળા પુદ્ગલો ઘણા થોડા હોય છે

(૧) સ્નેહાવિભાગ =રસાણુ ।

ળીયા । સા ચ ત્રિધા ભવતિ-સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા ૧, નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા ૨, પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા ૩ ચ ।

તત્ત્વ સ્નેહપ્રત્યયસ્ય=સ્નેહનિમિત્તસ્ય સ્પર્ધકસ્ય પ્રરૂપણા સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા ૧ ।

તથા-શરીરબન્ધનનામકર્મોદયતઃ પરસ્પર વદ્ધાના શરીરપુદ્ગલાના સ્નેહમધિકૃત્ય સ્પર્ધકપ્રરૂપણા નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા । શબ્દાર્થશ્ચાયમ્-નામપ્રત્યયસ્ય=વચનનામનિમિત્તસ્ય શરીરપુદ્ગલસ્પર્ધકસ્ય પ્રરૂપણા નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા ૨ ।

તથા-પ્રકૃષ્ટો યોગઃ પ્રયોગઃ=વાહમનઃકાયવ્યાપારઃ, તેન પ્રત્યયભૂતેન-કારણભૂતેન યે ગૃહીતા પુદ્ગલાસ્તેષા સ્નેહમધિકૃત્ય સ્પર્ધકપ્રરૂપણા પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા ૩ ।

પ્રરૂપણા કી જાતી હૈ । સ્નેહ કી પ્રરૂપણા ત્રીન તરહ સે હોતી હૈ-(૧) સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક પ્રરૂપણા (૨) નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા, (૩) પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધક પ્રરૂપણા ।

જિસ સ્પર્ધક કા કારણ સ્નેહ હોતા હૈ ઉસ સ્પર્ધકકી પ્રરૂપણા કા નામ સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા હૈ ૧ । જિસ સ્પર્ધક કા કારણ બન્ધન નામકર્મ હોતા હૈ ઉસ સ્પર્ધકકી પ્રરૂપણા કા નામ નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા હૈ । અર્થાત્ શરીરબન્ધનનામકર્મ કે ઉદય સે પરસ્પર વદ્ધ જો શરીરપુદ્ગલ હૈં ઉનકે સ્નેહગુણ કો લેકર જો સ્પર્ધકકી પ્રરૂપણા કી જાતી હૈ વહ નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા હૈ । શરીરપુદ્ગલોંકા કારણ વધનનામકર્મ હૈ । ઇસ શરીરરૂપ પુદ્ગલસ્પર્ધક કી પ્રરૂપણા કા નામ નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા હૈ, ઇસા જાનના ચહિયે ૨ । તથા પ્રકૃષ્ટ યોગ કા નામ પ્રયોગ હૈ । વહ મન વચન ઇવ કાય કા વ્યાપારરૂપ બતલાયા ગયા હૈ । ઇસ

કરવામા આવી છે સ્નેહની પ્રરૂપણા ત્રણ રીતે થાય છે -(૧) સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધક પ્રરૂપણા (૨) નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા (૩) પ્રયોગપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા

(૧) જે સ્પર્ધકનું કારણ સ્નેહ હોય છે તે સ્પર્ધકની પ્રરૂપણાનું નામ સ્નેહપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા છે (૨) જે સ્પર્ધકનું કારણ બન્ધન નામકર્મ હોય છે તે સ્પર્ધકની પ્રરૂપણાનું નામ નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા છે એટલે કે શરીરબન્ધનનામકર્મના ઉદયથી પરસ્પર બદ્ધ જે શરીર-પુદ્ગલ છે તેમના સ્નેહગુણને લઈને જે સ્પર્ધકની પ્રરૂપણા કરવામા આવે છે તે નામપ્રત્યયસ્પર્ધક પ્રરૂપણા છે શરીરપુદ્ગલોનું કારણ બધનનામકર્મ છે આ શરીરરૂપ પુદ્ગલ સ્પર્ધકની પ્રરૂપણાનું નામ નામપ્રત્યયસ્પર્ધકપ્રરૂપણા છે, એવું બાણુ બોધે એ (૩) તથા પ્રકૃષ્ટ યોગનું નામ પ્રયોગ છે તે મન, વચન, અને કાયાના વ્યાપાર

लाना समुदायस्त्रयन्ता वर्गणा भवन्ति । आभिः सर्वाभिर्वर्गणाभिरैक स्पर्धक भवति । तानि च स्पर्धकानि अभव्येभ्योऽनन्तगुणानि, सिद्धेभ्योऽनन्तभागहीनानि भवन्ति ।

॥ इति स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा ॥

नामप्रत्ययस्पर्धक २ प्रयोगप्रत्ययस्पर्धक ३ चान्यत्र प्ररूपितम्, इहानुपयुक्तत्वाद् विस्तरभयाच्च विरम्यते ।

इह रसभेदतः प्रकृतीना सर्वघातित्व देशघातित्वं च भवति, अतः सर्वघाति-देशघाति-प्रकृतयः प्रोच्यन्ते । तत्र सर्वघातिन्यः प्रकृतयो विंशतिसंख्यका भवन्ति,

पुद्गलों के समुदायरूप अनन्तवर्गणाँ हो जाती हैं । इन समस्तवर्गणाँ से एक स्पर्धक बनता है । अर्थात् एक स्पर्धक में सख्यान् असख्यात् एव अनन्तवर्गणाँ तक रहती हैं । ये वर्गणाँ अभव्यराशि से अनन्तगुणी और सिद्धराशि के अनन्तवे भाग बतलाई गई हैं ॥१॥

यह स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा हृई ॥ १ ॥

नामप्रत्ययस्पर्धक एव प्रयोगप्रत्ययस्पर्धक, इन दोनों का यह प्रकरण नहीं है अतः इनका कथन यह विस्तारभय से नहीं किया गया है, वह ग्रन्थान्तर से समझछेवे ।

कर्मप्रकृतियोंमें जो सर्वघातिपना एव देशघातिपना है वह रसभेद की अपेक्षा से ही है, इसलिये सर्वघाती प्रकृतिया कौन २ सी हैं और देशघातीप्रकृतिया कौन २ सी हैं यह बतलाया जाता है—सर्वघातिप्रकृतिया २० बीस है और वे इस प्रकार हैं—केवलज्ञानावरणीय १, केवल-

ज्ञाना अविबाल्य लागोथी युक्त पुद्गलोना समुदायरूप अनन्त वर्गणाँये थर्धक्ये छे ये समस्त वर्गणाँये वडे अेक स्पर्धक अने छे अेटदे के अेक स्पर्धकमा सज्यात, असज्यात अने अनन्त वर्गणाँये पणु रडे छे ये वर्गणाँये अलव्यराशीथी अनेक गणुी अने सिद्धराशीना अनन्तमा लागनी अताववामा आवी छे ॥१॥

॥ आ स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा थर्ध ॥१॥

नामप्रत्ययस्पर्धक अने प्रयोगप्रत्ययस्पर्धक अे अन्नेनु प्रकरणु अही नही डोवाथी तेमनु वणुन अही विस्तारलयथी करायु नथी ते थील अथेमाथी समल देवु

धर्मप्रकृतियोमा ने सर्वघातिपणु अने देशघातिपणु छे ते रसभेदनी अपेक्षाये न छे, तेथी सर्वघाती प्रकृतियो धर्ध धर्ध छे, अने देशघाती प्रकृतियो धर्ध धर्ध छे ते अताववामा आवे छे—सर्वघाती प्रकृतियो बीस छे अने ते आ प्रमाणु छे—

इयमत्र भावना—इह यः सर्वोत्कृष्टः स्नेहः स केरलिपद्मात्रेनकेन त्रिघते, त्रिचत्वा छिचत्वा च निर्भिभागा भागाः पृथक् पृथक् व्यस्थाप्यन्ते । तत्र जगति ये केचित् परमाणव एकेन स्नेहस्य निर्भिभागेन भागेन युक्ता सन्ति, तेषां समुदायः प्रथमा वर्गणा । ये तु द्वाभ्यां स्नेहाभिभागाभ्यां युक्ताः परमाणव सन्ति तेषां समुदायो द्वितीया वर्गणा । एव त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिश्च स्नेहाभिभागैर्युक्तानां पुद्गलानां समुदायस्तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी च वर्गणा । एव सरयेयैः स्नेहाभिभागैर्युक्तानां पुद्गलानां समुदायः संख्येया वर्गणा वाच्याः। असरयेयैः स्नेहाभिभागैर्युक्तानां पुद्गलानां समुदायस्तु असंख्येया वर्गणा भवन्ति । अनन्तैः स्नेहाभिभागैर्युक्तानां पुद्ग-

इसका अभिप्राय इस प्रकार है—इन वर्गणाओं में जो सर्वोत्कृष्ट स्नेह है उसके, केवली की प्रज्ञारूप छैनी से छेद—रु ड—करो, छेद करते २ जो अतमे अविभाग रु ड निकले उन्हें पृथक् एक तरफ रख दो। इस तरह जगतमे जो कोई परमाणु एकस्नेहगुण के अविभाग भागवाले है, उनके समुदायरूप यह प्रथम वर्गणा निकल आती है। इसी तरह जो पुद्गलपरमाणु दो स्नेहगुण के अविभाग भाग से युक्त है उनके समुदायरूप द्वितीयवर्गणा स्थापित हो जाती है। इसी तरह तीन, चार पांच स्नेहगुण के अविभाग भागो से युक्त पुद्गलपरमाणुओं के समुदायरूप तृतीय चतुर्थ, पंचम वर्गणाएँ हो जाती हैं। इसी प्रकार सरयात स्नेहगुण के अविभागभागों से विशिष्ट पुद्गलों के समुदायरूप संख्यातवर्गणाएँ, असख्यात स्नेहगुण के अविभागभागों से युक्त पुद्गलों के समुदायरूप असख्यात वर्गणाएँ, एवं अनन्त स्नेहगुण के अविभागभागों से युक्त

तेन तात्पर्यं आ प्रमाणे छे—ये वर्गणाओमा ने सर्वोत्कृष्ट स्नेह छे तेना केवलीना प्रज्ञाईपी छैनी (छीछी) थी छेह (भ ड) करे, छेह करता करता छेवटे ने अविबालन्य निकले तेने बुद्धो अेक भाणु भूकी हो आ रीते जगतमा ने काई परमाणु अेक स्नेहगुणना अविबालन्य लागवाणा छे अेभना समुदायइय आ पडेकी वर्गणा निरणी आवे छे आ रीते ने पुद्गलपरमाणु ने स्नेह गुणना अविबालन्य लागथा युक्त छे तेभना समुदायइय भीछ वर्गणा स्थापित थई नय छे अे न प्रमाणे त्रणु, चार पांच स्नेहगुणना अविबालन्य लागोथी युक्त पुद्गल परमाणुओना समुदायइय त्रौछ, चोथी, पांचमी वर्गणाओ थई नय छे अे न रीते सभ्यात स्नेह गुणना अविबालन्य लागोथी विशिष्ट पुद्गलोना समुदायइय सभ्यात वर्गणाओ, असभ्य स्नेहगुणना अविबालन्य लागोथी युक्त पुद्गलोना समुदायइय असभ्यवर्गणाओ, अने अनन्त स्नेहगु-

अवलुर्दर्शनावरणीयम् २, अवधिदर्शनावरणीयम् ३ । सज्वलनरूपाश्वत्वारः क्रोधादि-
कषायाः ४ । नोक्तपाया नय-हास्य १-रत्य २-रति ३-शोक ४-मय ५-जुगु-
प्सा ६-स्त्रीवेद ७-पुवेद ८-नपुसकवेद ९-स्वरूपाः । पञ्चविधमन्तरायम्-दान १-
लाभ २-भोगो ३-पभोग ४-वीर्य ५-रूपम् । एव देशघातिन्यः पञ्चविंशतिस-
रूपकाः प्रकृतयो भवन्ति । देशघातिप्रकृतीना देशघातीनि सर्वघातीनि च
रसस्पर्धकानि भवन्ति ।

तत्प्रतिपक्षभूता अघातिन्यः प्रकृतयो भवन्ति । एताः पञ्चसप्ततिसरूपकाः प्रकृ-
तयो न कश्चिद् गुण घातयन्ति तस्मादघातिन्य उच्यन्ते । एता अघातिन्योऽपि सर्व-
दर्शनावरणीय ६, अवधिदर्शनावरणीय ७, सज्वलन-क्रोध ८, मान ९,
माया १०, लोभ ११, हास्य १२, रति १३, अरति १४, शोक १५,
मय १६, जुगुप्सा १७, स्त्रीवेद १८, पुवेद १९, नपुसकवेद २०, दाना-
न्तराय २१, लाभान्तराय २२, भोगान्तराय २३, उपभोगान्तराय २४,
वीर्यान्तराय २५ । इस प्रकार ये पच्चीस हो जाती हैं ।

देशघातिप्रकृतियों के रसस्पर्धक देशघाती एव सर्वघाती दोनों
प्रकार के होते हैं । ये २५ पच्चीस प्रकृतिया देशघाती इसलिये कही
गई हैं कि ये अपने द्वारा आवार्य ज्ञानादिक गुणों का सर्वरूप से घात
नहीं करती हैं किन्तु एकदेशरूप से घात करती हैं । ये प्रवोक्त भेद
घातिया कर्मों की प्रकृतियोंमें होते हैं ।

अब इनके प्रतिपक्षभूत जो अघातिया कर्म हैं उनकी प्रकृतिया ७५
पचहत्तर हैं । ये पचहत्तर प्रकृतिया किसी गुणका घात नहीं करती हैं

पशुीय, (६) अवधिदर्शनावरणीय, (७) सज्वलन (८) क्रोध, (९) मान, (१०) माया,
(११) लोभ, (१२) हास्य, (१३) रति, (१४) अरति, (१५) शोक, (१६) मय,
(१७) जुगुप्सा, (१८) स्त्रीवेद, (१९) पुवेद, (२०) नपुसकवेद, (२१) दानान्तराय,
(२२) लाभान्तराय, (२३) भोगान्तराय, (२४) उपभोगान्तराय, (२५) वीर्यान्तराय,
आ शीते ते पञ्चीश डोय छे

देशघाती प्रकृतियोंना रसस्पर्धक देशघाती अने सर्वघाती अने अन्ने प्रकारना
डोय छे ते पञ्चांग प्रकृतियोंने देशघाती अटला भाटे डडेवाग आपी छे ते
तेओ पोताना वडे आवार्य ज्ञानादिक शुद्धोना सर्वरूपे घात करती नथी पण अेक
देश रूपे घात करे छे प्रवोक्त ते लेद घातिया कर्मोनी प्रकृतियोंमा डोय छे

डवे तेमना प्रतिपक्षभूत ने अघातिया कर्म छे तेमनी प्रकृतियों ७५
पचोतेर छे ते पचोतेर प्रकृतियोंे डोई शुद्धोना घात करती नथी, तेथी अघाती

तथाहि-केवलारणद्धिकम्-केवलज्ञानारणीयम् १, केवलदर्शनारणीयम् २ । निद्रा-
पञ्चकम्-निद्रा १, निद्रा-निद्रा २, प्रचला ३, प्रचला-प्रचला ४, स्त्यानद्धिः ५ ।
द्वादश कपायाः-क्रोधमानमायालोमानां चतुर्णां प्रत्येकमनन्तानुगन्ध्य १, प्रत्याख्यान-
वरण २-प्रत्याख्यानावरण ३-नामत्रयेण द्वादशविधत्वम् । तथा-मिथ्यात्वमोहनीय
चेति २० । एता विंशतिः प्रकृतयः-सर्वमपि स्वाऽऽचार्यगुण घातयन्तीत्येवशीलाः
सर्वघातिन्य उच्यन्ते । सर्वघातिप्रकृतीनां सर्वघातीन्येषु रसस्पर्धकानि भवन्ति ।

अथ देशघातिन्यः प्रकृतय उच्यन्ते-देशघातिरसस्पर्धकयुक्ताः प्रकृतयो मति-
ज्ञानावरणादिरूपाः पञ्चविंशतिसरयुक्ता देशघातिन्यो व्यप्रियन्ते, तथाहि-ज्ञाना-
वरणीयचतुष्टयम्-मतिज्ञानारणीयम् १, श्रुतज्ञानावरणीयम् २, अवधिज्ञानारणी-
यम् ३, मनःपर्ययज्ञानारणीयम् ४ । दर्शनारणीयत्रिन्म-चक्षुर्दर्शनारणीयम् १,
दर्शनारणीय २, निद्रा ३, निद्रानिद्रा ४, प्रचला ५, प्रचलाप्रचला ६,
स्त्यानद्धि ७, अनतानुबधी ८, क्रोध-मान ९, माया १०, लोभ ११, अप्रत्या-
ख्यानावरण-क्रोध १२, मान १३, माया १४, लोभ १५, प्रत्याख्यानावरण-
क्रोध १६, मान १७, माया १८, लोभ १९, तथा मिथ्यात्वमोहनीय २० ।
ये सर्वघातिप्रकृतिया इस लिये रुही जाती हैं कि ये अपने द्वारा आचार्य
ज्ञानादिक गुणों का सर्वरूप से घात करती हैं । इनके रसस्पर्धक भी
सर्वघातिरूप ही हुआ करते हैं ।

देशघाति प्रकृतिया २५ पच्चीस होती हैं । इनके रसस्पर्धक देश-
घाती हुआ करते हैं । मतिज्ञानावरणीय १, श्रुतज्ञानावरणीय २, अवधि-
ज्ञानावरणीय ३, मन पर्ययज्ञानावरणीय ४, चक्षुर्दर्शनारणीय ५, अचक्षु-

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा (४) निद्रानिद्रा
(५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानद्धि, अनतानु-बधी-(८) क्रोध,
(९) मान (१०) माया, (११) लोभ, अप्रत्याख्यानावरण-(१२) क्रोध, (१३) मान,
(१४) माया, (१५) लोभ, प्रत्याख्यानावरण-(१६) क्रोध, (१७) मान, (१८) माया,
(१९) लोभ, तथा (२०) मिथ्यात्वमोहनीय तेजो सर्वघाती प्रकृतियो झटला भाटे
कहेवाय छे के तेजो पोताना वडे आचार्य ज्ञानादिक गुणोना सर्वरूपधी घात करे
छे तेमना रसस्पर्धक पणु सर्वघातिरूप न थया करे छे

देशघाती प्रकृतियो पच्चाश ह्याय छे तेमना रसस्पर्धक देशघाती थया
करे छे —(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावर-
णीय, (४) मन पर्ययज्ञानावरणीय, (५) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (६) अचक्षुर्दर्शना

इह रसभेदतः प्रकृतीना सर्वघातित्व देशघातित्व च भवतीत्युक्तम् । रसः सर्वघातित्वेन देशघातित्वेन च प्ररूप्यते । तत्र प्रथम सर्वघातिरसस्वरूपमुच्यते—

जो घाण्ड सविसय, सयल सो होइ सव्वघाइरसो ।

निच्छिद्रो निद्रो तणु, फलिह्वम्हारअइविमलो ॥ १ ॥

छाया—यः घातयति स्वविषय सकल स भवति सर्वघातिरसः ।

निच्छिद्रः स्निग्धस्तनु, स्फटिकाभ्रहारातिविमलः ॥ १ ॥

यः स्वविषय ज्ञानादिक सकलमपि घातयति=स्वकार्यसाधनं प्रत्यसमर्थं करोति, स रसः सर्वघाती भवति । स च ताम्रभाजनवत् निच्छिद्रो, घृतमिवातिगयेन स्निग्धः, तथा—तनुः=द्राक्षावत् तनुप्रदेशोपचितः, तथा—स्फटिकाभ्रहारप्रच्छातीव

विहायोगति २ (३९), आनुपूर्वी ४ (४३), आयु ४ (४७), त्रस १० (५७), स्थावर १० (६७), गोत्र २ (६९), वेदनीय २ (७१), वर्णादिक ४ (७५) ।

रस के भेद से प्रकृतियों में सर्वघातिपना एव देशघातिपना होता है, यह घात समझा दी गई, अब सर्वघाती एव देशघाती रसों में से प्रथम सर्वघाती रसका स्वरूप कहते हैं—

“ जो घाण्ड सविसय, सयल सो होइ सव्वघाइरसो ।

निच्छिद्रो निद्रो तणु, फलिह्वम्हारअइविमलो ” ॥१॥

जो अपने विषयभूत ज्ञानादिकों का सम्पूर्णरूप से घात करता है वह सर्वघाती रस कहलाता है । यह ताम्रभाजन के समान निच्छिद्र होता है । घृतके समान अतिशय स्निग्ध होता है । द्राक्षा की तरह तनु-प्रदेशों से उपचित होता है । तथा स्फटिक, शरद ऋतु का मेघ एव हार

आयु ४ (४४थी४७), त्रस १० (४८थी५७), स्थावर १० (५८थी६७), गोत्र २ (६८थी६९), वेदनीय २ (७०, ७१), वर्णादिक ४ (७२थी७५)

रसना लेदधी प्रकृतियोभा सर्वघातिपणु अने देशघातिपणु थाय छे ये वात समजणी देवामा आवी छे हवे सर्वघाती अने देशघाती रसोभाथी पडेला सर्वघाती रसनु स्वउप कडे छे—

“ जो घाण्ड सविसय, सयल सो होइ सव्वघाइरसो ।

निच्छिद्रो निद्रो तणु, फलिह्वम्हारअइविमलो ” ॥१॥

ये पोताना विषयभूत ज्ञानादिकोने स पूर्ण रूपथी घात करे छे ते सर्वघातिरस कडेवाय छे आ ताम्रपात्रनी नेम निच्छिद्र (छेदरहित) डोय छे धीना नेपु अतिशय स्निग्ध डोय छे द्राक्षनी नेम तनुप्रदेशथी उपचित डोय छे तथा

घातिनीभिः सह वेद्यमानाः सर्वघातिरसविपाक दर्शयन्ति । देशघातिनीभिः सह-
वेद्यमानास्तु देशघातिरसविपाक दर्शयन्ति । यथा म्रयमचौरधौरैः सह वर्तमानश्चौर
इवावभासते ।

आसा नामानि-प्रत्येकनामकर्मप्रकृतयोऽष्टौ-पराघातो १-उच्छ्वास २-ऽऽतपो ३-
उद्योता ४-अगुरुलघु ५-तीर्थकर ६-निर्माणो ७-उपघात ८-रूपाः। शरीराष्टकम्-
औदारिक १-वैक्रिया २-ऽऽहारक ३-तैजस ४-कर्मण ५-शरीराणि पञ्च, उपादानि
त्रीणि-औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारकादोपाद्गरूपाणि, एतान्यष्टौ । सस्थानानि षट् ।
सहनानि षट् । जातयः पञ्च । गतपथतस्रः । विद्यायोगती द्वे । आनुपूर्व्यश्चतस्र ।
आयूपि चत्वारि । त्रसदशकम् । स्थावरदशकम् । गोत्रद्विकम् । वेदनीयद्वयम् ।
वर्णादयश्चतस्रः । इति पञ्चसप्ततिः ७५ ।

अत अघाती कहलानी हैं । ये अघाती प्रकृतिया सर्वघाती प्रकृतियों के
साथ जब वेद्यमान होती हैं तब सर्वघाती रसविपाक को दिखलाती हैं ।
और जब देशघाती प्रकृतियों के साथ वेद्यमान होती हैं तब देशघाती
रसविपाक को दिखलाती हैं । जैसे कोई स्वयं चोर नहीं होते हुए भी
चोरों के साथमें रहने से चोर जैसा हो जाता है वैसे ही ये प्रकृतिया हैं ।

वे ७५ पचहत्तर प्रकृतिया इस प्रकार हैं—पराघात १, उच्छ्वास २,
आतप ३, उद्योत ४, अगुरुलघु ५, तीर्थकर ६, निर्माण ७, उपघात ८,
औदारिक ९, वैक्रियिक १०, आहारक ११, तैजस १२, कर्मण १३,
औदारिक अगोपाग १४, वैक्रियिक अगोपाग १५, आहारक अगो-
पाग १६, सस्थान ६ (२२), सहनन ६ (२८), जाति ५ (३३), गति ४ (३७),

उडेवाथ छे अे अघाती प्रकृतियो सर्वघाती प्रकृतियोनी साथे न्यारे वेद्यमान
थाय छे त्यारे सर्वघाती रसविपाकने दर्शावे छे, अने न्यारे देशघाती प्रकृति-
योनी साथे वेद्यमान थाय छे त्यारे देशघाती रसविपाकने दर्शावे छे नैवी
रीते कोष्ठ पोते थार न होवा छता पणु थारोनी साथे रहेवाथी थार नैवो
अनी नथ छे अेवी न अे प्रकृतियो छे

ते ७५ पथोतेर प्रकृतियो आ प्रमाणे छे—(१) पराघात, (२) उच्छ्-
वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण,
(८) उपघात, (९) औदारिक, (१०) वैक्रियिक, (११) आहारक, (१२) तैजस, (१३)
कर्मण, (१४) औदारिक अगोपाग, (१५) वैक्रियिक अगोपाग, (१६) आहारक
अगोपाग, सस्थान ६ (१७थी२२), सहनन ६ (२३थी२८), जाति ५ (२६थी३३),
गति ४ (३४थी३७), विद्यायोगति २ (३८थी३९), आनुपूर्वी ४ (४०थी४३),

णपञ्चमदतीवसूक्ष्मत्रिरसट्टतो भवतीत्यर्थः । तथा-अल्पस्नेहः—स्वरूपतोऽल्पस्नेहः, स्तोक्स्नेहाऽविभागसमुदायरूप इत्यर्थः । तथा अविमलश्च नैर्मल्यरहितश्च भवति ॥१॥

कर्मणामुदये क्षायोपशमिकभावस्य प्रादुर्भावः ।

ननु क्षायोपशमिको भावः कर्मणामुदये सति भवत्यनुदये वा ? न तावदुदये, विरोधात् । तथाहि-क्षायोपशमिको भाव उदयावलिक्लामप्रविष्टस्याशस्य क्षये सति, अनुदितस्य चोपशमे विपाकोदयनिरोधलक्षणे प्रादुर्भवति, नान्यथा । ततो यद्युदयः, कथं क्षयोपशमः ? क्षयोपशमश्चेत् कथमुदयः, तम प्रकाशयत तयोर्विरोधादिति ? ।

वाला होता है । कोई२ चिकने वस्त्र की तरह अत्यंत सूक्ष्म छिद्रों से युक्त होता है । इसमें स्नेहगुण अल्परूपमें रहता है अर्थात् यह थोड़े से स्नेह-गुण के अविभागवाले समुदायरूप होता है । तथा निर्मलता से रहित होता है ॥१॥

कर्मों के उदयमें क्षायोपशमिक भाव का प्रादुर्भाव—

शका—क्षायोपशमिक भाव कर्मों के उदय होने पर होता है या अनुदयमें होता है ? उदयमें तो हो नहीं सकता, क्यों कि क्षायोपशमिक और उदय का विरोध है । उदयावलिमें प्रविष्ट अश के क्षय होने पर, अनुदित अश के उपशम होने पर—विपाकोदय के निरोध होने पर—क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है, अन्यरूप से क्षायोपशमिक भाव नहीं होता है, इसलिये यदि क्षायोपशमिक को उदयजन्य माना जायगा तो वह क्षायोपशमिक कैसे कहलावेगा ? अर्थात् वह तो औदयिक भाव रूप ही कहलावेगा । यदि उस को औदयिक माना जाय तो क्षायोपश-

नेम अत्यंत सूक्ष्म छिद्रोंवाणो डोय उ आमा स्नेहशुभ्र अल्परूपमा रहे छे अटले उ ते शोका प्रमाणुमा स्नेहशुभ्रना अविभागवाणा समुदायउप डोय छे तथा निर्मलताथी रहित डोय उ (१)

कर्मोंना उदयमा क्षायोपशमिक भावने प्रादुर्भाव—

शका—क्षायोपशमिक भाव कर्मोंना उदय थता थाय छे उ अनुदयमा थाय छे ? उदयमा तो थध गभतो नथा, कारणु उ क्षायोपशमिक अने उदयने विरोध डोय उ उदयावलिमा प्रविष्ट अशने क्षय थता, तथा अनुदित अशने उपशम थता—विपाकोदयने निरोध थता—क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न थाय उ, अन्यरूपथी क्षायोपशमिक भाव थतो नथी, तेथी ने क्षायोपशमिकने उदयजन्य माननामा आवे तो ते क्षायोपशमिक उवी रीते कडेवाय ? अटले उ ते तो औदयिकभावरूप उ उडेवाशे ने औदयिक माननामा आवे तो तेमा क्षायो

નિર્મલો ભવતિ । ઇહ રસઃ કેવલો ન ભવતિ, તસ્માદ્રસસ્પર્ધકમગ્રાત એવલ્પો
ભવતીતિ જ્ઞેયમ્ । અથ દેશઘાતિરસસ્વરૂપગુન્યતે—

દેશવિઘાટ્તણઓ, ડયરો કડકવલસુમકાસો ।

વિવિદ્વદ્વહુચ્છિદ્ધભરિઓ, અપ્પસિણેહો અવિમલો ય ॥ ૧ ॥

છાયા—દેશવિઘાતિત્વાત્, ઇતર કટ-કમ્પલા-શુકસંમાગ' ।

વિવિધ-વહુચ્છિદ્ધ-મૃત', અલ્પસ્નેહ અગ્નિમન્થ ॥ ૧ ॥

વ્યાખ્યા—ઇતરઃ દેશઘાતી રસઃ, દેશઘાતિત્વાત્=સ્વવિપયૈકદેશઘાતિત્વાત્,
વિવિધવહુચ્છિદ્ધમૃતો ભવતિ । તત્ર દૃષ્ટાન્તમાદ—'કઠકવલસુસકાસો' ઇતિ ।
કટ-કમ્પલા-શુકસકાશઃ=કટો યશદલનિર્મિત્ત., 'ચટાઈ' ઇતિ માપાપ્રસિદ્ધ. ।
કમ્પલ ઝર્ણામયઃ, અશુકં=વસ્ત્ર, તત્સદાશ'=તત્સદશ । કથિત્-કટવટ્ અતિસ્થૂ
લચ્છિદ્ધશતસકુલ., કથિત્ કવલ ઇમ મધ્યમવિવરશતસકુલ., કથિતુ તથાવિવમ્સ-
કી તરહ અત્યત નિર્મલ્ હોતા હૈ । ઇસ રસકા સ્વતત્ર અસ્તિત્વ નહી
પાયા જાતા હૈ । ઇસ લિયે યહા રસ સે રસસ્પર્ધકરૂપ સઘાત કા ગ્રહણ
કરના ચાહિયે ઓર વહ રસસ્પર્ધક સઘાત પૂર્વોક્ત સ્વરૂપ વાલા હૈ ।

અવ દેશઘાતી રસકા સ્વરૂપ કહતે હૈ—

“દેશવિઘાટ્તણઓ, ડયરો કડકવલસુમકાસો ।

વિવિદ્વદ્વહુચ્છિદ્ધભરિઓ, અપ્પસિણેહો અવિમલો ય” ॥૧॥

અપને વિષયમૃત જ્ઞાનાદિક ગુણો કા ઇકદેશરૂપ સે ઘાત કરને કે
કારણ વહ રસ દેશઘાતી કહલાતા હૈ । યહ વિવિધ વહુચ્છિદ્ધો સે યુક્ત
હોતા હૈ । કોઈ ૨ દેશઘાતી રસ ચટાઈ કે સમાન સૈકડો અતિસ્થૂલ
ચ્છિદ્ધો સે યુક્ત હોતા હૈ । કોઈ ૨ કવલ કે સમાન સૈકડો મધ્યમ હેદો

સ્ફટિત, શરદઋતુના મેઘ અને હારના જેવું અત્યત નિર્મળ હોય છે આ રસનું
સ્વતત્ર અસ્તિત્વ જણાતું નથી, તેથી અહીં રસથી રસસ્પર્ધકરૂપ સઘાતને ગ્રહણ
કરવો જોઈએ, અને તે રસસ્પર્ધકરૂપ ઘાત પૂર્વકથિત સ્વરૂપવાળો છે
હવે દેશઘાતી રસનું સ્વરૂપ કહે છે—

“દેશવિઘાટ્તણઓ, ડયરો કઠ-કવલ-સુ-સકાસો ।

વિવિદ્-વહુચ્છિદ્ધભરિઓ, અપ્પસિણેહો અવિમલો ય” ॥૧॥

પોતાના વિષયમૃત જ્ઞાનાદિક ગુણોના એક દેશરૂપથી ઘાત કરવાને કારણે
તે રસ દેશઘાતી કહેવાય છે તે વિવિધ બહુ ચ્છિદ્ધવાળો હોય છે ઠોઈ ઠોઈ
દેશઘાતી રસ ચટાઈના જેવા સે કડો અતિસ્થૂલ ચ્છિદ્ધોવાળો હોય છે ઠોઈ ઠોઈ
ગમળાના જેવા સે કડો મધ્યમ ચ્છિદ્ધોવાળો હોય છે ઠોઈ ઠોઈ ચિત્થા વસ્ત્રની

व्याख्या—इह यानि ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि सर्वथाक्षयात् प्राग् ध्रुवोदयानि, तेषामुदयावस्थायामेव क्षयोपशमो भवितुमर्हति, नानुदये । उदयाभावे तेषां ज्ञानावरणीयादिकर्मणामेवासम्भवात् । तस्मादुदयाऽविरुद्धः क्षायोपशमिको भावः ।

यत्तु विरोधोद्भावन 'यद्युदय ऋय क्षयोपशमः' इत्यादि, तदप्ययुक्तम्, देशघाति-स्पर्धकानामुदयेऽपि ऋतिपयदेशघातिस्पर्धकापेक्षया यथोक्तक्षयोपशमाविरोधात् ।

स च क्षयोपशमो नैकभेदः, किं तु तत्र द्रव्यक्षेत्रकालादिसामग्रीतो वैचित्र्य-सम्भवाद्नेकभेद इति । अयमुदयाऽविरुद्धः क्षायोपशमिको भावो यदि भवति, तर्हि त्रयाणामेव कर्मणा ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-न्तरायणाम्, न तु सर्वप्रकृतीनाम् ।

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—क्षय होने से पहिले ज्ञानावरणीय आदि कर्म ध्रुवोदयवाले माने गये हैं इसलिये उदयावस्थामें ही इनका क्षयोपशम होता है, अनुदय अवस्थामें नहीं, अतः जब उदयावस्थामें ही इनका क्षयोपशम होता है और अनुदयावस्थामें नहीं होता है तो ऐसी स्थितिमें क्षायोपशमिक भाव कर्मों के उदय के साथ विरुद्ध नहीं हो सकता है । उदय के साथ जो इसका विरोधोद्भावन किया गया है सो वह इसलिये युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता है कि क्षायोपशमिक-भावमें देशघाती स्पर्धकों का ही उदय रहता है, तथा सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावरूप क्षय एव कितनेक सर्वघाती स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम रहता है, अतः देशघातिस्पर्धकों के उदय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव में कर्मों का क्षयोपशम विरुद्ध नहीं पडता है । यह क्षयोपशम अनेक प्रकार का होता है, कारण कि इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि

आ गाथानो अर्थ आ प्रमाणे छे—क्षय तथा पडेला ज्ञानावरणीय आदि कर्म ध्रुवोदयवाला बनाया छे, तेथी उदयावस्थामा न तेमनो क्षयोपशम थाय छे, अनुदय अवस्थामा नही तेथी न्यारे उदयावस्थामा न तेमनो क्षयोपशम थाय छे अने अनुदयावस्थामा थतो नथी त्यारे अेवी स्थितिमा क्षायोपशमिक भाव कर्मोना उदयनी साथे विरुद्ध होई शकतो नथी उदयनी साथे न तेनु विरोधोद्भावन ठरवामा आब्यु छे ते आ ठारणे युक्तियुक्त प्रतीत थतु नथी ते क्षायोपशमिक भावमा देशघातिस्पर्धकोनो न उदय रहे छे, तथा सर्वघाति-स्पर्धकोनो उदयाभावरूप क्षय अने केटलाक सर्वघातिस्पर्धकोना सदवस्थाउप उपशम रहे छे, तेथी देशघातिस्पर्धकोना उदयनी अपेक्षाअे क्षायोप-शमिक भावमा कर्मोना क्षयोपशम विरुद्ध पडतो नथी आ क्षयो-पशम अनेक प्रकारनु होय छे, कारण के तेमा द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि समशीनी

અથાનુદયે ભવતીતિ પશ્ચ; તથા સતિ કિં તેન ક્ષાયોપશમિક્ષેન ભાવેન, ઉદયાભાવાદેવ વિવક્ષિતફલસિદ્ધિસમગાત્। તથાહિ—મતિજ્ઞાનાદીનિ જ્ઞાનાવરણાદુદયાભાવાદેવ સેત્સ્યન્તિ, કિં ક્ષાયોપશમિક્ષમાપરિકલ્પનેન ? ।

ઉચ્ચતે—કર્મણામુદયે ક્ષાયોપશમિક્ષો ભાવઃ પ્રાદુર્ભવતિ । ન ચ તત્ર વિરોધોઽસ્તિ । ઉક્તञ्च—

उदये वि य अविर्द्वो, खाउवसम्मो अणेगभेउत्ति ।

જહ મવહ તિણ્હ एसो, पदेसउदयम्मि मोहस्स ॥ १ ॥

छाया—उदयेऽपि च अविर्द्व, क्షायोपशमोऽनेकभेद इति ।

यदि भवति त्रयाणाम् एषः, प्रदेशोदये मोहस्य ॥ १ ॥

મિકતા ઉસમે કૈસે આસકેગી, ઇસલિયે જૈસે અધકાર ંવ પ્રકાશમે વિરોધ રહા કરતા હૈ ઁસી પ્રકાર ઉદય ંર ક્ષાયોપશમમે ંી વિગેધ હૈ ।

યદિ કહો કિ કર્મોં કૈ અનુદયમેં હોતા હૈ તો ંેસી માન્યતામેં ક્ષાયોપશમિક ભાવ સે મતલબ હી કયા સધ સકતા હૈ, કારણ કિ કર્મોં કૈ ઉદય કૈ અભાવ સે હી વિવક્ષિત ફલ કી સિદ્ધિ સધ જાયગી, અર્થાત્ મતિજ્ઞાન આદિ જ્ઞાન જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોં કૈ ઉદય કૈ અભાવ સે હી ઉત્પન્ન હોને લગેંગે ફિર ંન્હે ક્ષાયોપશમિક ભાવરૂપ સે માનને કી કયા આવશ્યકતા હૈ ? ।

ઉત્તર—ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મોં કૈ ઉદયમેં હોતા હૈ ંસમેં કોઈ વિરોધ નહીં હૈ । કરા ંી હૈ—

“उदये वि य अविर्द्वो, खाउवसम्मो अणेगभेउत्ति ।

જહ મવહ તિણ્હ एसो, पणसउदयम्मि मोहस्स ” ॥ १ ॥

પશમિકતા ઁવી રીતે આવશે ? તેથી ંેમ અધકાર અને પ્રકાશમા વિરોધ રહ્યા ઁરે છે, એજ પ્રમાણે ઉદય અને ક્ષયોપશમમા વિરોધ છે

ંે એમ કહો કે કર્મોના અનુદયમા થાય છે તો એવી માન્યતામા ક્ષાયોપશમિક ભાવથી મતલબ જ શી સધાય છે ? કારણ કે કર્મોના ઉદયના અભાવથી જ વિવક્ષિત ફળની સિદ્ધિ સધાશે, એટલે કે મતિજ્ઞાન આદિ જ્ઞાન જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના ઉદયના અભાવથી જ ઉત્પન્ન થવા લાગશે, તો પછી તેમને ક્ષાયોપશમિકભાવ રૂપે માનવાની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર—ક્ષાયોપશમિક ભાવ કર્મોના ઉદયમા થાય છે આમા કોઈ વિરોધ નથી કહ્યું પણ છે—

“उदये वि य अविर्द्वो, खाउवसम्मो अणेगभेउत्ति ।

જહ મવહ તિણ્હ एसो, पणसउदयम्मि मोहस्स ” ॥ १ ॥

व्याख्या—इह यानि ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि सर्वाक्षयात् प्राग् ध्रुवोदयानि, तेषामुदयावस्थायामेव क्षयोपशमो भवितुमर्हति, नानुदये । उदयाभावे तेषां ज्ञानावरणीयादिकर्मणामेवासम्भवात् । तस्मादुदयाऽविरुद्धः क्षायोपशमिको भावः।

यत्तु विरोधोद्भावन 'यद्युदय ऋय क्षयोपशमः' इत्यादि, तदप्ययुक्तम्, देशघाति-स्पर्धकानामुदयेऽपि कतिपयदेशघातिस्पर्धापेक्षया यथोक्तक्षयोपशमाविरोधात् ।

स च क्षयोपशमो नैऋभेदः, किं तु तत्र द्रव्यक्षेत्रकालादिसामग्रीतो वैचित्र्य-सम्भवाद्नेकभेद इति । अयमुदयाऽविरुद्धः क्षायोपशमिको भावो यदि भवति, तर्हि त्रयाणामेव कर्मणां वानावरण-दर्शनारण-न्तरायाणाम्, न तु सर्वप्रकृतीनाम् ।

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—क्षय होने से पहिले ज्ञानावरणीय आदि कर्म ध्रुवोदयवाले माने गये हैं इसलिये उदयावस्थामे ही इनका क्षयोपशम होता है, अनुदय अवस्थामे नहीं, अतः जब उदयावस्थामे ही इनका क्षयोपशम होता है और अनुदयावस्थामे नहीं होता है तो ऐसी स्थितिमें क्षायोपशमिक भाव कर्मों के उदय के साथ विरुद्ध नहीं हो सकता है । उदय के साथ जो इसका विरोधोद्भावन किया गया है सो वह इसलिये युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता है कि क्षायोपशमिक-भावमे देशघाती स्पर्धकों का ही उदय रहता है, तथा सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावरूप क्षय एव कितनेक सर्वघाती स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम रहता है, अतः देशघातिस्पर्धकों के उदय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव मे कर्मों का क्षयोपशम विरुद्ध नहीं पडता है । यह क्षयोपशम अनेक प्रकार का होता है, कारण कि इसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि

आ गाथानो अर्थ आ प्रमाणे छे—क्षय यता पडैला ज्ञानावरणीय आदि कर्म ध्रुवोदयवाणा मनाया छे, तेथी उदयावस्थामा न तेमनो क्षयोपशम थाय छे, अनुदय अवस्थामा नही तेथी न्यारे उदयावस्थामा न तेमनो क्षयोपशम थाय छे अने अनुदयावस्थामा थतो नथी त्यारे जेवी स्थितिमा क्षायोपशमिक भाव कर्मोना उदयनी साथे विरुद्ध होई शकते नथी उदयनी साथे न तेनु विरोधोद्भावन करवामा आव्यु छे ते आ जखे युक्तियुक्त प्रतीत थतु नथी ते क्षायोपशमिक भावमा देशघातिस्पर्धकोनो न उदय रहे छे, तथा सर्वघाति-स्पर्धकोनो उदयाभावउप क्षय अने उदयाक सर्वघातिस्पर्धकोना सदवस्थाउप उपशम रहे छे, तेथी देशघातिस्पर्धकोना उदयनी अपेक्षाजे क्षायोप-शमिक भावमा ज्मोना क्षयोपशम विरुद्ध पडतो नथी आ क्षयोपशम अनेक प्रकारनु होय छे, काण्डे तेमा द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि समशीनी

ननु तर्हि मोहनीयस्य कर्मणः क्षयोपशमः न्य भवतीति जिज्ञासायामाह—
'पदेसउदयमि मोहस्त' इति । मोहस्य=मोहनीयस्य प्रदेशोदये क्षयोपशमिक-
भावस्य नास्ति विरोधः, किन्तु विपाकोदय एव । किमत्र कारणमिति चेत् ?

सामग्री की अपेक्षा से अनेकविधता आ जानी है । क्षयोपशमिक भाव में जो कर्मों के उदय के साथ अविरोधता यतलाई गई है वह ज्ञानावरण दर्शनावरण एव अन्तराय, इन तीन कर्मों के उदय के साथ ही जाननी चाहिये, अन्य सर्व प्रकृतियों के उदय के साथ नहीं । तात्पर्य इसका यह है कि क्षयोपशमिक भाव इन तीन कर्मों के उदयमें ही होता है अन्य कर्मों के उदयमें नहीं । इन तीन कर्मों के उदय का तात्पर्य होता है देशघातिरसस्पर्धकों का उदय ।

शका—मोहनीय कर्म का क्षयोपशम कैसे होता है ? शकाकार का पूछने का तात्पर्य यह है कि जब क्षयोपशम इन तीन कर्मों का ही होता है तो फिर मोहनीय कर्म का क्षयोपशम कैसे होता है ?

उत्तर—मोहनाय कर्म का क्षयोपशम प्रदेशोदय की अपेक्षा से होता है, विपाकोदय की अपेक्षा से नहीं, इसलिये क्षयोपशमिक भाव मोहनीय कर्म के प्रदेशोदयमें विरुद्ध नहीं पड़ता है । अर्थात् मोहनीय कर्म का प्रदेशोदय भी हो और उसके साथ क्षयोपशमिक भाव भी हो, इसमें विरोध के लिये कोई गुजाइश नहीं है । हाँ, विरोध विपाकोदयमें ही है ।

अपेक्षासे अनेकविधता आवी न्य छे क्षयोपशमिक भावमा कर्मोना उदयनी साथे जे अविरोधता गताववामा आवी छे ते ज्ञानावरणु दर्शनावरणु, अने अन्तराय, जे त्रणु कर्मोना उदयनी साथे न् नालुवी जेठे जे, भीणु सर्वे प्रकृति जेना उदयनी साथे नही तेनु तात्पर्य जे छे के क्षयोपशमिक भाव जे त्रणु कर्मोना उदयमा न् थाय छे, भीणु कर्मोना उदयमा नही जे त्रणु कर्मोना उदयनु तात्पर्य देशघातिरसस्पर्धकोना उदय, जेनु थाय छे

शका—मोहनीय कर्मोना क्षयोपशम केवी रीते थाय छे ? शकाकरनारनी शकानु तात्पर्य जे छे के जे जे त्रणु कर्मोना न् क्षयोपशम थतो डोय तो पछी मोहनीय कर्मोना क्षयोपशम केवी रीते थाय छे ?

उत्तर—मोहनीय कर्मोना क्षयोपशम प्रदेशोदयनी अपेक्षासे थाय छे, विपाकोदयनी अपेक्षासे नही तेथी क्षयोपशमिक भाव मोहनीय कर्मोना प्रदेशोदयमा विरुद्ध पडतो नही जेटले के मोहनीय कर्मोना प्रदेशोदय पणु डोय अने तेनी साथे क्षयोपशमिक भाव पणु डोय, तेमा विरोधने भाटे केठे

उच्यते—यतोऽनन्तानुग्रहादिप्रकृतयः सर्वघातिन्यः सन्ति, सर्वघातिनीना च रसस्पर्धकानि सर्वाण्यपि सर्वघातीन्येव, न तु देशघातीनि भवन्ति । सर्वघातीनि च रसस्पर्धकानि स्वघात्य गुण सर्वथा ध्वन्ति, न तु देशतः, अतस्तेषा विपाकोदये क्षयोपशमसम्भवो नास्ति, किन्तु प्रदेशोदये क्षयोपशमो भवितुमर्हति ।

ननु प्रदेशोदयेऽपि ऋय क्षयोपशमिक्रमानस्य सम्भनः, सर्वघातिरसस्पर्धक-प्रदेशाना सर्व-स्वघात्यगुणघातकत्वादिति चेत् ? तदयुक्तम्—पस्तुतच्चापरिज्ञानात् ।

इसका कारण यह है कि अनन्तानुवधी आदि प्रकृतियां सर्वघाती ही हैं । सर्वघाती प्रकृतियों के समस्त रसस्पर्धक सर्वघाती ही होते हैं, देशघाती नहीं होते हैं, अतः सर्वघाती जो रसस्पर्धक होते हैं वे अपने द्वारा घात करने योग्य गुण का सर्वथा रूपमें ही घात करते हैं, देशरूपमें नहीं, इस लिये सर्वघाती रसस्पर्धकों के विपाकोदयमें क्षयोपशम की सभावना ही नहीं होती है, किन्तु यह सभावना प्रदेशोदयमें ही होती है, इसलिये मोहनीय कर्म के प्रदेशोदयमें क्षयोपशम हो सकता है ।

शका—प्रदेशोदयमें भी क्षयोपशमिक भाव कैसे हो सकता है ? कारण कि जो सर्वघातिरसस्पर्धकों के प्रदेश हैं वे अपने द्वारा घात करने योग्य ज्ञानादिक गुणों का सर्वरूप से ही घात करनेवाले होते हैं फिर इनके प्रदेशोदयमें क्षयोपशमिक भावकी सत्ता अविरोद्ध कैसे मानी जावेगी ।

स्थान नहीं है, विरोध विपाकोदयमा व छे तेनु ङारण्ये छे के अनन्तानुवधी आदि प्रकृतियो सर्वघाती व छे सर्वघातीप्रकृतियोना मभस्त रसस्पर्धको सर्वघाती व डोय छे, देशघाती होता नहीं, तेथी ने सर्वघातिरसस्पर्धको डोय छे तेष्वा पोताना द्वारा घात करवा लायक गुणोना सहतरव घात करे छे, देशरूपमा नहीं, तेथी सर्वघातिरसस्पर्धकोना विपाकोदयमा क्षयोपशमनी शक्यता व डोती नहीं, पणु ते शक्यता प्रदेशोदयमा व डोय छे, तेथी मोहनीय कर्मना प्रदेशोदयमा क्षयोपशम धर्ष शके छे

शका—प्रदेशोदयमा पणु क्षयोपशमिक लाव केवी रीते डोर्ष शके छे ? कारण के ने सर्वघातिरसस्पर्धकोना प्रदेश छे ते पोताना द्वारा घात करवा लायक ज्ञानादिक गुणोनु सर्वरूपे व घात करनारा डोय छे, तो पछी तेमन प्रदेशोदयमा क्षयोपशमिक लावनी सत्ता अविरोद्ध केवी रीते मानी शक्ये ?

ते हि सर्वघातिरसस्पर्धरूपदेशास्तथाविधविशुद्धाऽध्यवमायप्रिशेषेण मनाग् मन्दा-
नुभावीकृत्य विरल-विरलतया वेद्यमानदेशघातिरसस्पर्धेरान्तः प्रवेशिता न
यथावस्थितं स्वमाहात्म्यं प्रकटयितुं समर्था भवन्ति, ततो न ते क्षयोपशमहन्तार इति
न विरुध्यते प्रदेशोदये क्षायोपशमिको भावः ।

‘ अणेगभेउत्ति ’ इत्यत्रेति—शब्दस्याधिकस्याधिकार्थसमूचनादयमर्थः
सूच्यते—मोहनीयप्रकृतिषु मिथ्यात्वमोहनीय तथाऽनन्तानुबन्ध्यादिद्वादशरूपा-
याश्च सर्वघातिप्रकृतयः सन्ति, तन्निदानां सञ्चलनरूपायनोक्तपायप्रकृतीनां त्रयो-

उत्तर—यह शक्ति ठीक नहीं है क्योंकि कि जो सर्वघातिरसस्पर्धकों
के प्रदेश होते हैं वे तथाविध विशुद्ध अध्यवमायप्रिशेष से धीरे २
मन्दरसवाले बना दिये जाते हैं, और इस तरह वे थोड़े २ रूपमें करके
वेद्यमानदेशघातिरसस्पर्धकोंमें मिला दिये जाते हैं । इस तरह उनकी
सर्वघातिरूप शक्ति मन्द कर दी जाती है और इसी कारण वे अपने
प्रभाव को प्रकट करनेमें असमर्थ बन जाते हैं । यही कारण है कि वे
क्षयोपशम के विघातरूप नहीं हो सकते हैं । इसीलिये इनके प्रदेशोदयमें
क्षायोपशमिक भाव का होना विरुद्ध नहीं पड़ता है । यही बात “अणे-
गभेउत्ति” इस गाथाश द्वारा प्रकट की गई है । इसमें यह बतलाया
गया है कि मोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंमें मिथ्यात्व मोहनीय, अनन्तानु-
बन्धी आदि द्वादश कषाय, ये सब सर्वघाती प्रकृतियां हैं । इनसे भिन्न
सञ्चलनकषाय तथा नोकषाय (नव नो कषाय) इन तैरह १३ प्रकृतियों

उत्तर—आ शक्ति अशक्त नहीं, कारण के, सर्वघातिरसस्पर्धकोंका वे
प्रदेश होय है तेजो तथाविधविशुद्धअध्यवमायविशेषधी धीमे धीमे म ह
रसवाणा अनावी देवाय है, अने अे रीते तेजो थोडा थोडा रूपमा करीने वेद्यमान
देशघाति स्पर्धकोंमा भेजवी देवामा आवे है आ रीते तेमनी सर्वघातिरूप
शक्ति मन्द करी नाभवामा आवे है अने अेज कारणे तेजो पोताना प्रभावने
प्रकट करवाने असमर्थ अनी अय है आज कारणे तेजो क्षयोपशमना विघातरु-
धर्ध शक्तता नहीं, तेथी तेमना प्रदेशोदयमा क्षायोपशमिक भावनु होयु ते
विशुद्ध पडतु नहीं अेज बात “अणेगभेउत्ति” आ गाथाश द्वारा प्रकट
कराई है, तेमा अे अतावायु है के मोहनीयकर्मनी प्रकृतियोंमा मिथ्यात्व
मोहनीय, अनन्तानुबन्धी आदि अार कषाय, अे अधी सर्वघाती प्रकृतियों
तेमनाथी भिन्न सञ्चलन कषाय तथा नोकषाय (नव नोकषाय) अे तैर प्रकृतियोंमा ।

दशाना प्रदेशोदयो वा विपाकौदयो वा भवेत्, तदा क्षयोपशमो भवति, तासां प्रकृतीनां देशघातित्वात् ।

सप्तविंशतिः प्रकृतयो ध्रुवोदयाः सन्ति । तद् यथा—द्वादश नामकर्माणि—
१निर्माण, २स्थिरम्, ३अस्थिरम्, ४अगुरुलघु, ५शुभनाम, ६अशुभनाम, ७तैजस,
८कर्मण, वर्णादीनि चत्वारि—९वर्ण, १०गन्ध, ११रस, १२स्पर्शरूपाणि, तथा—
ज्ञानावरणपञ्चकम् १७, अन्तरायपञ्चकम् २२, दर्शनचतुष्कम् २६, मिथ्यात्वमिति २७ ।
एताः सप्तविंशतिः प्रकृतयो नित्योदयाः । आसा सर्वासामपि सर्वथाक्षयात् प्राग्
अव्यवच्छिन्नोदयत्वादिति ।

का चाहे प्रदेशोदय हो, चाहे विपाकौदय हो उसमें क्षयोपशम भाव होना है, क्यों कि ये प्रकृतियां देशघाती हैं ।

सत्ताईस २७ प्रकृतियां ध्रुवोदयवाली हैं और वे इस प्रकार हैं—
चारह १२ नामकर्म की—(१) निर्माण, २ स्थिर, ३ अस्थिर, अगुरुलघु ४,
शुभनाम ५, अशुभनाम ६, तैजस ७, कर्मण ८, वर्णादिचार-वर्ण,
रस, गन्ध, स्पर्श (१२), ज्ञानावरण की ५, (१७) अन्तरायकी ५ (२२),
दर्शनचतुष्क-चक्षुर्दर्शन १, अचक्षुर्दर्शन २, अवधिदर्शन ३, केवलदर्शन ४
(२६), और १ मिथ्यात्व (२७) । इस प्रकार ये सत्ताईस २७ प्रकृतियां
सुख प्रकृतियां हैं। जब तक इन सबका क्षय नहीं हो जाता है उस के
पहिले इनका उदय व्यवच्छिन्न नहीं होता है, अर्थात् उदय रहता ही है ।

आहे प्रदेशोदय थाय, के आहे विपाकौदय थाय पणु तेभा क्षयोपशम भाव डोर छे,
कारणु के ते प्रकृतियो देशघाती छे

सत्तावीश (२७) प्रकृतियो ध्रुवोदयवाणी छे अने ते आ प्रमाणे छे—

आर (१२) नामकर्मनी—(१) निर्माण, (२) स्थिर, (३) अस्थिर, (४)
अशुलघु, (५) शुभनाम, (६) अशुभनाम, (७) तैजस, (८) कर्मण, वर्णादिचार-
वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श (१२), ज्ञानावरणनी ५ (१७), अन्तरायनी ५
(२२), दर्शनचतुष्क-चक्षुर्दर्शन १, अचक्षुर्दर्शन २, अवधिदर्शन ३, केवलदर्शन ४
(२६), अने मिथ्यात्व (२७) आ प्रमाणे ते सत्तावीश (२७) प्रकृतियो
सुखप्रकृतियो छे न्या सुधी ते अधीना क्षय थतो नथी तेना पडेला उदय
व्यवच्छिन्न थतो नथी अष्टवे डे उदय रहे छे न

अथ स्पर्धकभेदप्ररूपणा—

प्रकृतीनामौदयिको भावो द्विधा भवति, तद् यथा—शुद्धः, क्षयोपशमानुविद्धश्च ।
एतत्स्पष्टप्रतिपत्तये स्पर्धकभेदप्ररूपणा वाच्या, अतस्तावत् स्पर्धकभेदप्ररूपणा
क्रियते । उक्तञ्च—

चउत्तिट्टाण-रसाड, सव्वघाईणि होति फट्टाड ।

दुट्टाणयाणि मीसाणि, देसघाईणि सेसाणि ॥ १ ॥

छाया—चतुस्त्रिस्थानरसानि, सर्वातीनि भवन्ति स्पर्धकानि ।

द्विस्थानकानि मिश्राणि, देशघातीनि शेषाणि ॥ १ ॥

अन्वयः—(यानि) चतुस्त्रिस्थानरसानि द्विस्थानकानि स्पर्धकानि (सन्ति)
तानि (सर्वघातिप्रकृतीना) सर्वातीनि भवन्ति । (देशघातिप्रकृतीना तु)
मिश्राणि भवन्ति । शेषाणि देशघातीनि भवन्ति ।

व्याख्या—स्पर्धकानि=रसस्पर्धकानि चतुर्धा भवन्ति । तद् यथा—एकस्थान-
कानि द्विस्थानकानि, त्रिस्थानकानि, चतुःस्थानकानि च ।

॥ स्पर्धकभेदप्ररूपणा ॥

प्रकृतियों का औदयिक भाव दो प्रकार का होता है—(१) शुद्ध, (२) क्षयोपशमानुविद्ध । इस बात को स्पष्टरूप से समझाने के लिये अब स्पर्धकों के भेद की प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है—

“चउत्तिट्टाणरसाड, सव्वघाईणि होति फट्टाड ।

दुट्टाणयाणि मीसाणि देसघाईणि सेसाणि ॥१॥”-

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—रसस्पर्धक चार प्रकार के होते
हैं—१ एकस्थानक, २ द्विस्थानक, ३ त्रिस्थानक, ४ चतुःस्थानक । शुभ-

स्पर्धकभेदप्ररूपणा—

प्रकृतियों का औदयिक भाव दो प्रकार का होता है—(१) शुद्ध, (२) क्षयोपशमा-
नुविद्ध आ वातने स्पष्टरूपे समझवाने भाटे छवे स्पर्धकाना लेहनी प्ररूपणा
करना आवे छे ते आ प्रभाण्णु छे—

“चउत्तिट्टाणरसाड, सव्वघाईणि होति फट्टाड ।

दुट्टाणयाणि मीसाणि देस घाईणि सेसाणि ॥१॥”

आ गाथानो अर्थ आ प्रभाण्णु छे—रसस्पर्धक चार प्रकार का होता है (१)
एकस्थानक, (२) द्विस्थानक, (३) त्रिस्थानक, (४) चतुःस्थानक शुभ प्रकृतियों का

अथ किमिदं रसस्यैकस्थानकत्व-द्विस्थानकत्वादि ?। उच्यते—इह शुभ-
प्रकृतीना रसः क्षीरखण्डादिरसोपमो भवति । अशुभप्रकृतीना तु निम्ब-कोपात-
क्यादिरसोपमः । क्षीरादि-रसश्च-एककर्मपरिमितः 'एकतोला' इति भाषाप्रसिद्धः,
स्वाभाविक एकस्थानक उच्यते । स एव मन्दरस इत्यभिधीयते । द्वयोस्तु कर्मयो-
र्वह्नितापैरुत्कालने कृते सति योऽप्रशिष्यते एकः कर्मः, स द्विस्थानकः । स तीव्र-
रस इत्युच्यते । त्रयाणां कर्मणां तथैवोत्कालने कृते सति य एव कर्मोऽप्रशिष्टः
स त्रिस्थानकः । स तीव्रतररस इत्युच्यते । चतुर्णां कर्मणामावर्तने कृते सति
योऽप्रशिष्ट एकः कर्मः, स चतुःस्थानकः । स तीव्रतमरस इत्युच्यते । एकस्थानकोऽपि

प्रकृतियों का रस खीर खाड आदि के रस के समान होता है । तथा
अशुभ प्रकृतियों का रस नीम एव कोपातकी (कडवी तुरई) आदि के रस
के समान होता है । दूधआदिमें जो एक तोला प्रमाण स्वाभाविक रस
होता है वह एकस्थानिक रस जानना चाहिये । इसी का दूसरा नाम मन्द
रस भी है १ । दो तोला प्रमाण रस जब अग्नि द्वारा उकाला जाता है
और इस तरह उकालते २ जब वह दो तोला का १ तोला प्रमाणमें रह
जाता है तो उसे द्विस्थानिक रस समझना चाहिये । इसका दूसरा नाम
तीव्र रस भी है २ । तीन तोला प्रमाण रस जब उकालते २ एक तोला
रह जाता है तो इसे त्रिस्थानिक रस जानना चाहिये । इसका दूसरा
नाम तीव्रतर रस भी है ३ । इसी तरह चार तोला प्रमाण दुग्धादि का रस
उकालते २ जब एक तोला प्रमाणमें बच जाता है तो वह चतुस्थानिक
रस समझना चाहिये । इसका दूसरा नाम तीव्रतम रस भी है ४ । एक स्था-

रस भीर, षाड वगेरेना रस जेवो डोय छे तथा अशुभ प्रकृतियोना रस
लीमडो अने कोपातकी (कडवु तुरीयु) वगेरेना रस जेवो डोय छे दूध
आदिमा जे अेक तोला प्रमाण स्वाभाविक रस डोय छे ते अेकस्थानिक रस
जखुवो जेधअे तेनु भीनु नाम मन्दरस पखु छे जे तोला भाषना रसने
न्यारे अग्निवडे उकाणवामा आवे अने आ रीते उकाणता उकाणता न्यारे ते
जे तोलाभाथी अेक तोलाना प्रमाणमा रही जय त्यारे तेने द्विस्थानिक रस
जखुवो जेधअे तेनु भीनु नाम तीव्र रस पखु छे त्रयु तोला वजनने
रस न्यारे उकाणता उकाणता अेक तोलाज रही जय त्यारे तेने त्रिस्थानिक
रस जखुवो जेधअे तेनु भीनु नाम तीव्रतर पखु छे अे ज रीते आर
तोला वजनने दुग्धादिक रस उकाणता उकाणता न्यारे अेक तोला भाकी रहे
त्यारे ते चतुस्थानिक रस जखुवो जेधअे तेनु भीनु नाम तीव्रतम पखु छे

ચ રસો જલ-લપ-વિન્દુ-ચુલ્ક-પ્રમત્પ-હ્રલિ-ક્રમ-(લોટા)-કુમ્મ-ટ્રોપ્યા-
 (કુડા) વિપુ પ્રક્ષેપાદ્ મદ-મન્દતરાધનેકભેદ પ્રતિપદ્યતે । एवं द्विस्थानाद्विष्वपि
 रसेष्वनेकभेदत्व वाच्यम् । तथा कर्मणामपि रसेष्वनेकस्थानादित्यादिक स्वप्रिया
 भावनीयम् । प्रत्येकमनन्तभेदभिन्नाथ कर्मणा चैकस्थानादरसात् द्विस्थानादादयो रसा
 यथोत्तरमनन्तगुणा प्राच्याः । तत्र सर्वघातिनीना देशघातिनीना वा प्रकृतीना यानि
 चतुःस्थानकरसानि, त्रिस्थानकरसानि, द्विस्थानकरसानि वा स्पर्शकानि, तानि
 सर्वघातिनीना सर्वघातीन्येव । देशघातिनीना तु मिश्राणि=कानिचिन् सर्वघातीनि
 नवाला रस भी जय हम जल के अङ्गमें, विन्दुओंमें, चुल्कमें, पसलमें,
 अजलिमें, लोटा, कुम्भ, कुड आदिमें डालते हैं तो वह भी मन्द मन्दतर
 आदि अनेक भेदवाला घन जाता है । इसी तरह द्विस्थानक आदि रस
 भी मन्द मन्दतर आदि अनेक भेदवाला घन जाता है । जिस प्रकार
 दुःधातिक के रसमें यह एकस्थानिक द्विस्थानिक आदि रस की व्यवस्था
 समझाई गई है उसी प्रकार कर्मों के रसोंमें भी एकस्थानिक आदि की
 और उनमें भी तीव्र तीव्रतर आदि अनेक भेदोंकी कल्पना अपनी बुद्धि
 से कर लेना चाहिये । इस तरह एकस्थानिक रस से द्विस्थानिक रस,
 द्विस्थानिक रस से त्रिस्थानिक रस, एवं त्रिस्थानिकरस से चतुःस्थानिक
 रस अनन्तान्त भेदवाले बन जाते हैं । इनमें जो सर्वघाती अथवा
 देशघाती प्रकृतियों के चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक एवं द्विस्थानिक रस-
 वाले स्पर्धक हैं वे सर्वघाती प्रकृतियों के तो सर्वघाती ही हैं । देशघाती
 प्रकृतियों के मिश्र होते हैं । इनमें कितनेक सर्वघाती होते हैं और कित-

એક સ્થાનવાળો રસ પણ બ્યારે આપણે જળના અશમા, ણિન્દુઓમા,
 પસલીમા, અજલિમા, લોટા, કુલ, કુડ આદિમા નાખીએ છીએ તો
 તે પણ મન્દ, મન્દતર વગેરે અનેક ભેદવાળો થઈ બન્ય છે જે રીતે દૂધ
 વગેરેના રસમા આ એકસ્થાનિક, દ્વિસ્થાનિક વગેરે રસની વ્યવસ્થા સમજ
 વવામા આવી છે એ જ પ્રમાણે કર્મોના રસોમા પણ એકસ્થાનિક આદિની
 અને તેઓમા પણ તીવ્ર, તીવ્રતર આદિ અનેક ભેદોની કલ્પના પોતાની બુદ્ધિથી
 કરી લેવી જોઈએ આ રીતે એકસ્થાનિક રસમાથી દ્વિસ્થાનિક રસ, દ્વિસ્થા-
 નિક રસમાથી ત્રિસ્થાનિક રસ અને ત્રિસ્થાનિક રસમાથી ચતુ સ્થાનિક રસ,
 અનન્તાન્ત ભેદવાળા બની બન્ય છે તેમનામા જે સર્વઘાતી અથવા દેશઘાતી
 પ્રકૃતિયોના ચતુ સ્થાનિક, ત્રિસ્થાનિક અને દ્વિસ્થાનિક રસવાળા સ્પર્ધક છે
 તેઓ સર્વઘાતી પ્રકૃતિયોના તો સર્વઘાતી છે દેશઘાતી પ્રકૃતિયોના મિશ્ર હોય છે

कानिचिदेशघातीनि स्पर्धकानि भवन्तीत्यर्थः । शेषाणि=एकस्थानकरसानि स्पर्धकानि तु सर्वाण्यपि देशघातीन्वेव । तानि च देशघातिनीनां सभवन्ति, न तु सर्वघातिनीनामिति कृता स्पर्धकभेदप्ररूपणा ।

अथौदयिकभावस्य द्वैत्रिय प्ररूप्यते । उक्तञ्च—

निहणसु सव्वघाई, -रसेसु फड्डेसु देसघाईण ।

जीवस्स गुणा जाय, -ति ओहिमणचक्खुमाई य ॥ १ ॥

छाया—निहतेषु सर्वघातिरसेषु, स्पर्धकेषु देशघातिनाम् ।

जीवस्य गुणा जायन्ते, अग्रिमनश्चक्षुरादयश्च ॥ १ ॥

व्याख्या—देशघातिनाम्=अग्रिज्ञानावरणप्रभृतीनां कर्मणा सम्बन्धिषु सर्वघातिरसेषु=सर्वघाती रसो यत्र स सर्वघातिरसस्तेषु सर्वघातिरसत्सु स्पर्धकेषु निह-

नेक देशघाती होते हैं । शेष जो एकस्थानिक रसवाले स्पर्धक होते हैं वे तो देशघाती ही होते हैं, क्यों कि एकस्थानिक रसवाले ये स्पर्धक देशघाती प्रकृतियोंमें ही सम्बन्धित होते हैं, सर्वघातिप्रकृतियोंमें नहीं । इस तरह यह स्पर्धकभेदप्ररूपणा जाननी चाहिये ।

अब औदयिकभाव के शुद्ध और क्षयोपशमानुबिद्ध, इन दो भेदों की प्ररूपणा की जाती है, वह इस प्रकार है—

“ निहणसु सव्वघाई, -रसेसु फड्डेसु देसघाईण ।

जीवस्स गुणा जाय -ति ओहिमणचक्खुमाई य ” ॥ १ ॥

इस गायी का अर्थ इस प्रकार है—

सर्वघाती रसवाले स्पर्धकों को तथाविध विशुद्ध अध्यवसाय के बल

तेशोभा डेटलाक सर्वघाती होय ते अने डेटलाक देशघाती होय ते आकीना के ऐकस्थानिक रसवाणा स्पर्धक होय छे तेओ ते देशघाती न होय छे, कारण ते ऐकस्थानिक रसवाणा ते स्पर्धको देशघाती प्रकृतियोभा न सम्बन्धित होय छे सर्वघातिप्रकृतियोभा नहीं आ रीते आ स्पर्धकभेदप्ररूपणा नालुवी जेई अ

हुवे औदयिक भावना शुद्ध अने क्षयोपशमानुबिद्ध, ओ ओ लेहोनी प्ररूपणा करवाभा आवे छे ते आ प्रभाणे छे—

“ निहणसु सव्वघाई, -रसेसु फड्डेसु देसघाईण ।

जीवस्स गुणा जाय - ति ओहि-मण चक्खु-माई य ” ॥ १ ॥

आ गायानो अर्थ आ प्रभाणे छे—

सर्वघातीरसवाणा स्पर्धकोने तथाविध विशुद्ध अध्यवसायना यणथी

च रसो जल-लव-पिन्दु-चुलक-पल्लव-अलि-कर- (लोटा)-कुम्भ-ट्रोण्या-
 (कुडा) द्विपु प्रक्षेपाद् मन्द-मन्दतराद्यनेकभेद एव प्रतिपद्यते । एवं द्विस्थानकादिष्वपि
 रसेष्वनेकभेदत्व वान्यम् । तथा कर्मणामपि रसेष्वेकस्थानकत्वात्किञ्च स्वधिया
 भावनीयम् । प्रत्येकमनन्तभेदभिन्नाश्च कर्मणा चैकस्थानकरसात् द्विस्थानकादयो रसा
 यथोत्तरमनन्तगुणा प्राच्याः । तत्र सर्वघातिनीना देशघातिनीना वा प्रकृतीना यानि
 चतुःस्थानकरसानि, त्रिस्थानकरसानि, द्विस्थानकरमानि वा स्पर्शकानि, तानि
 सर्वघातिनीना सर्वघातीन्येव । देशघातिनीना तु मिश्राणि=कानिचित् सर्वघातीनि
 नवाला रस भी जव हम जल के अशमें, पिन्दुओंमें, चुल्हमें, पसलमें,
 अजलिमें, लोटा, कुभ, मुड आदिमें डालते हैं तो वह भी मन्द मन्दतर
 आदि अनेक भेदवाला बन जाता है । इसी तरह द्विस्थानक आदि रस
 भी मन्द मन्दतर आदि अनेक भेदवाला बन जाता है । जिस प्रकार
 दुःघादिक के रसमें यह एकस्थानिक द्विस्थानिक आदि रस की व्यवस्था
 समझाई गई है उसी प्रकार कर्मों के रसोंमें भी एकस्थानिक आदि की
 और उनमें भी तीव्र तीव्रतर आदि अनेक भेदोंकी कल्पना अपनी बुद्धि
 से कर लेना चाहिये । इस तरह एकस्थानिक रस से द्विस्थानिक रस,
 द्विस्थानिक रस से त्रिस्थानिक रस, एवं त्रिस्थानिकरस से चतुःस्थानिक
 रस अनन्तानन्त भेदवाले बन जाते हैं । इनमें जो सर्वघाती अथवा
 देशघाती प्रकृतियों के चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक एवं द्विस्थानिक रस-
 वाले स्पर्शक हैं वे सर्वघाती प्रकृतियों के तो सर्वघाती ही हैं । देशघाती
 प्रकृतियों के मिश्र होते हैं । इनमें कितनेक सर्वघाती होते हैं और कित-

येक स्थानवाणी रस पणु न्याये आपणु नृणा अशमा, पिन्दुशोभा,
 पसलीभा, अजलिभा, लोटा, कुभ, कुड आदिभा नाभीये धीये तो
 ते पणु मन्द, मन्दतर वगेरे अनेक लेहवाणी थध नय छे ने रीते ह्द
 वगेरेना रसमा आ येकस्थानिक, द्विस्थानिक वगेरे रसनी व्यवस्था समज
 ववामा आनी छे ये नृ प्रभाणु कर्मोना रसोभा पणु येकस्थानिक आदिनी
 अने तेओभा पणु तीव्र, तीव्रतर आदि अनेक लेहोना कल्पना पोतानी बुद्धिथी
 करी देवी नेधये आ रीते येकस्थानिक रसमाथी द्विस्थानिक रस, द्विस्था-
 निक रसमाथी त्रिस्थानिक रस अने त्रिस्थानिक रसमाथी चतुःस्थानिक रस,
 अनन्तानन्त लेहवाणा अनी नय छे तेमनामा ने सर्वघाती अथवा देशघाती
 प्रकृतियोना चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक अने द्विस्थानिक रसवाणा स्पर्शक छे
 तेओ सर्वघाती प्रकृतियोना तो सर्वघाती छे देशघाती प्रकृतियोना मिश्र डोय छे

शेषस्य चानुदितम्योपशमे ऋयोपशमिक इति क्षयोपशमानुविद्ध औदयिकभावः २।
मतिश्रुतावरणचक्षुर्दर्शनावरणप्रकृतीना तु मदैव देशप्रातिनामेव रसस्पर्धकानामुदयो,
न सर्वघातिनाम्, तेन सर्वदापि तासामौदयिक-क्षयोपशमिकौ भावो सन्मिश्रौ
प्राप्येते, न तु केवल औदयिक इति ।

अथ प्रसङ्गवशात् प्रकृतीना भावा उच्यन्ते—

मोहनीयस्य क्षायिक-क्षायोपशमिकौ-पशमिकौ-दयिक-पारिणामिकलक्षणाः पञ्चापि
भावाः सम्भवन्ति । ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-न्तरायणामौपशमिककर्जा' शेषाश्व-
त्वारी भावा । नाम-गोत्र-वेदनीया-गुणा क्षायिकौ-दयिक-पारिणामिकलक्षणा-
द्वयो भावा सम्भवन्ति ॥ सू० ८ ॥

शिष्टका-जो उदित नहीं है-उपशम होने पर क्षायोपशमिक भाव होता
है । इस तरह औदयिक भाव क्षयोपशमानुविद्ध माना गया है २ । जैसे
-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षुर्दर्शन की उत्पत्तिमें मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञा-
नावरण, चक्षुर्दर्शनावरण प्रकृतियोंके देशप्राति-रसस्पर्धकों का ही सदा
उदय रहा करता है, सर्वघातिरसस्पर्धकोंका नहीं, इसलिये सर्वदा
इनके उदयमें औदयिक एव क्षायोपशमिक ये दोनों भाव मिले हुए होते
हैं, केवल औदयिक भाव नहीं । इस तरह औदयिक भाव क्षयोपशमा-
नुविद्ध सिद्ध हो जाना है ।

प्रसङ्गवश अथ प्रकृतियों के भाव बतलाये जाते हैं—

मोहनीयकर्मके क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक, औदयिक एव
पारिणामिक, ये पाचो ही भाव होते हैं । ज्ञानावरण, दर्शनावरण एव
अन्तराय, इन तीन कर्मों के औपशमिक भावको छोड़कर शेष चार

शिष्टेना तेने उदित नहीं तेने उपशम यथा क्षायोपशमिक भाव थाय छे आ रीते
औदयिकभाव क्षयोपशमानुविद्ध भनाये छे (२) जेभ-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,
चक्षुर्दर्शननी उत्पत्तिमा मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुर्दर्शनावरण प्रकृति
योना देशघातिरसस्पर्धकोना ए मदा उदय रह्या उरे छे, सर्वघातिरसस्पर्ध-
कोना नही तेथी हभेशा तेना उदयमा औदयिक अने क्षायोपशमिक, जे अन्ने
भाव भजेला होय ते, इत औदयिक भाव नही आ रीते औदयिकभाव
क्षयोपशमानुविद्ध सिद्ध यत्त लाय छे

प्रसङ्गवश हुवे प्रकृतियोना भाव बताववामा आवे छे—

मोहनीयकर्मना क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक, औदयिक अने पारिणामिक,
जे पाच ए भाव छे ज्ञानावरण, दर्शनावरण अने अन्तराय, जे त्रय

तेषु=तथाधिधविशुद्धाध्यवसायप्रियेपवलेन देशघातिरूपतया परिणमितेषु, देश-
घातिरसस्पर्धकेष्वपि च अतिस्निग्धेषु अल्परमीकृतेषु, तेषां मध्ये कृतिपयरसस्पर्धक-
गतस्योदयावलिक्लाप्रविष्टस्याशस्य क्षये, शेषस्य चोपशमं विपाकोदयप्रिष्मरूपे
सति जीवस्यावधिजनपर्ययानचक्षुर्दर्शनादयो गुणाः=क्षायोपशमिका, जायन्ते
=प्रादुर्भवन्ति ।

अयं भावः—यदाऽवधिज्ञानावरणीयादीनां देशघातिनां कर्मणा सर्वत्रातीनि
रसस्पर्धकानि विपाकोदयमागतानि वर्तन्ते, तदा तद्विषयः केवल एक एव शुद्ध औद-
यिकभावो भवति १। यदा तु देशघातिरसस्पर्धकानामुदयस्तदा तदुदयादौदयिको भावः
कृतिपयानां च देशघातिरसस्पर्धकानां सम्बन्धिन उदयावलिक्लाप्रविष्टस्याशस्य क्षये,
सं देशघातीरूप परिणमाने पर, तथा अतिस्निग्ध देशघाती के रसस्पर्ध-
कों को भी अल्परसरूप करने पर, और इनके शीघ्रमें भी जो किननेक रस-
स्पर्धकों का अंश है कि जो उदयावलिमें प्रविष्ट हो चुका है वह जब नष्ट
हो जाता है, तथा अवशिष्ट उपशम अवस्थामें रहता है, ऐसी स्थितिमें
जीव के क्षायोपशमिक अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन
आदि गुण प्रकट होते हैं ।

फलितार्थ इसका यह है कि—जिस समय अवधिज्ञानावरणीय
आदि देशघाती कर्मों के सर्वत्रातिरसस्पर्धक, विपाकोदय वाले होते हैं
तो उस समय तद्विषयक केवल एक ही शुद्ध औदयिकभाव होता है १।
तथा—जिस समय उनके देशघातीरसस्पर्धकों का उदय होता है उस
समय उनके उदयसे औदयिक भाव, तथा किननेक देशघातिरसस्पर्ध-
कों के सम्बन्धी उदयावलिक्लाप्रविष्ट अंश का क्षय होने पर और अव-

देशघातिरूप परिणमाता, तथा अतिस्निग्ध देशघातीनां रसस्पर्धकोने पक्ष अल्परस
रूप करता, अने तेमनी वर्ये पक्ष ने डेटलाक रसस्पर्धकोने। अश छे उ ने
उदयावलिक्ला प्रवेश करी चूक्या छे, ते न्यारे नष्ट थाय छे, तथा अवशिष्ट उप
शम अवस्थामा रहे छे, अवी स्थितिमा लवने क्षायोपशमिक अवधिज्ञान,
मन पर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन आदि गुण प्रकट थाय छे (१)

तेनु तात्पर्य अे उ के न्यारे अवधिज्ञानावरणीय आदि देशघाती कर्मोना
सर्वघातिरसस्पर्धक विपाकोदयवाणा थाय छे त्यारे ते विषयना इकत अेक व
शुद्ध औदयिक भाव डोय उे (१) तथा ने सभये तेमना देशघातिरसस्पर्ध
कोने उदय थाय छे ते सभये तेना उदयधी औदयिक भाव, तथा डेटलाक
देशघातिरसस्पर्धकोना सम्बन्धी उदयावलिक्लाप्रविष्ट अंशना क्षय यता अने अव-

शेषस्य चानुदितम्योपशमे क्षायोपशमिक इति क्षयोपशमानुविद्ध औदयिकभावः २।
मतिश्रुतावरणचक्षुर्दर्शनावरणप्रकृतीना तु सदेव देशप्रातिनामेव रसस्पर्शकानामुदयो,
न सर्वघातिनाम्, तेन सर्वदापि तासामौदयिक-क्षायोपशमिका भावो सम्मिश्रौ
प्राप्येते, न तु केवल औदयिक इति ।

अथ प्रसङ्गवशात् प्रकृतीना भावा उच्यन्ते—

मोहनीयस्य क्षायिक-क्षायोपशमिकौ-पशमिकौ-दयिक-पारिणामिकलक्षणाः पञ्चापि
भावः सम्भवन्ति । ज्ञानावरण-दर्शनावरणा-न्तरायाणामौपशमिकप्रजाः शेषाश्च-
त्वारो भावाः । नाम-गोत्र-वेदनीया-युषा क्षायिकौ-दयिक-पारिणामिकलक्षणा-
स्तयो भावा सम्भवन्ति ॥ ४० ८ ॥

शिष्टका-जो उदित नहीं है-उपशम होने पर क्षायोपशमिक भाव होता
है । इस तरह औदयिक भाव क्षयोपशमानुविद्ध माना गया है २। जैसे
-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षुर्दर्शन की उत्पत्तिमे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञा-
नावरण, चक्षुर्दर्शनावरण प्रकृतियों के देशप्राति-रसस्पर्शकों का ही सदा
उदय रहा करता है, सर्वघातिरसस्पर्शकों का नहीं, इसलिये सर्वदा
इनके उदयमें औदयिक एव क्षायोपशमिक ये दोनो भाव मिले हुए होते
हैं, केवल औदयिक भाव नहीं । इस तरह औदयिक भाव क्षयोपशमा-
नुविद्ध सिद्ध हो जाना है ।

प्रसङ्गवश अथ प्रकृतियों के भाव बनलाये जाते हैं—

मोहनीयकर्मके क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक, औदयिक एव
पारिणामिक, ये पाचों ही भाव होते हैं । ज्ञानावरण, दर्शनावरण एव
अन्तराय, इन तीन कर्मों के औपशमिक भावको छोड़कर शेष चार

शिष्टनो दे वे उदित नयी तेनो उपशम यथा क्षायोपशमिः भाव भाव्ये ये आ रीते
औदयिकभाव क्षयोपशमानुविद्ध भवत्ये छे (२) जेम-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,
चक्षुर्दर्शननी उत्पत्तिमा मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुर्दर्शनावरण प्रकृति
थोना देशघातिरसस्पर्श दोनो न सदा उदय रह्या करे छे, सर्वघातिरसस्पर्श-
दोनो नही तेथी हुमेगा तेना उदयमा औदयिक अने क्षायोपशमिः, ये गन्ने
भाव भणेलो छेय रे, इत औदयिक भाव नही आ रीते औदयिकभाव
क्षयोपशमानुवि ध सिद्ध थर्ष नय छे

प्रसङ्गवश हुवे प्रकृतिथोना भाव भताववामा आवे छे—

मोहनीयकर्मना क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक, औदयिक अने पारिणामिक,
ये पाच न भाव छे ज्ञानावरण, दर्शनावरण अने अन्तराय, ये त्रय

મૂલમ્—અહવા ગુણપટ્ટિવન્નસ્સ અણગારસ્સ ઓહિનાણ સમુ-
પ્પજ્જઇ। તં સમાસઓ છવ્વિહ પન્નત્તં। તં જહા—આણુગામિય૧,
અણાણુગામિય૨, વડ્ઢમાણયં૩, હીયમાણય૪, પટ્ટિવાડય૫,
અપ્પટ્ટિવાડય૬ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ઝાયા—અથવા ગુણપ્રતિપન્નમ્યાનગારમ્પાવધિજ્ઞાન મમુત્પયત્તે । તત્ સમાસત્
પટ્ટવિધ પદ્ધત્તમ્ । તદ્ યથા—આનુગામિકમ્ ૧, અનાનુગામિકમ્ ૨, વર્ધમાનક૩,
હીયમાનક૪, પ્રતિપાતિકમ્ ૫, અપ્રતિપાતિકમ્ ૬ ॥ મૃ૦ ૧ ॥

ટીકા—‘અહવા’ ઇત્યાદિ—‘અથવા’ ઇતિ પ્રકારાન્તર પ્રતિરોધયતિ । વિશિ-
ષ્ટગુણપ્રતિપત્તિમન્તરેણાવધિજ્ઞાનાવરણક્ષયોપશમો મત્તોત્યસ્માદન્યોઽય પ્રકાર-

ભાવ હોતે છે । નામ, ગોત્ર, વેદનીય તથા આયુ, ઇન ચાર કર્મો કે
ક્ષાયિક, ઔદયિક ઓર પારિણામિક, યે ત્રીન ભાવ હોતે છે ॥ સૂ૦ ૮ ॥

‘અહવા’ ઇત્યાદિ । અથવા ગુણપ્રતિપન્ન અનગાર કે અવધિજ્ઞાન હોતા
હૈ, વહ છહ પ્રકારકા હોતા । આનુગામિક ૧, અનાનુગામિક ૨, વર્ધમાનક
૩, હીયમાનક ૪, પ્રતિપાતિક ૫, ઓર અપ્રતિપાતિક ૬, ।

વિશેષાર્થ—સૂત્રમે રહા હુઆ “અહવા” શબ્દ યહ વત્તલાતા હૈ કિ
વિશિષ્ટગુણપ્રતિપત્તિ કે વિના મી અવધિજ્ઞાનાવરણ કા ક્ષયોપશમ હોતા
હૈ ઇસ કારણ ડસ કે ક્ષયોપશમ કે લિયે ઓર મી દૂસરા પ્રકાર હૈ જો
ઇસ તરહ હૈ—મૂલગુણ ઇવ ઉત્તરગુણો કો યહા ગુણ—શબ્દ સે ગ્રહણ કિયા

કર્મોના ઓપશમિક લાવને છોડતા યાકી ચાર લાવ હોય છે નામ, ગોત્ર,
વેદનીય તથા આયુ, એ ચાર કર્મોના ક્ષાયિક, ઔદયિક અને પારિણામિક, એ
ત્રણ લાવ હોય છે ॥ સૂ૦ ૮ ॥

‘અહવા’ ઇત્યાદિ અથવા ગુણપ્રતિપન્ન અણુગારને અવધિજ્ઞાન થાય છે
તે છ પ્રકારનુ હોય છે—(૧) આનુગામિક (૨) અનાનુગામિક (૩) વર્ધમાનક (૪)
હીયમાનક (૫) પ્રતિપાતિક (૬) અપ્રતિપાતિક

વિશેષાર્થ—સૂત્રમા આવતો “અહવા” શબ્દ એ દર્શાવે છે કે વિશિષ્ટગુણ
પ્રતિપત્તિના વિના પણ અવધિજ્ઞાનાવરણને ક્ષયોપશમ થાય છે, તે કારણે તેના
ક્ષયોપશમને માટે એક ખીજો પ્રકાર પણ છે જે આ પ્રમાણે છે—મૂળગુણ અને
ઉત્તરગુણને અહીં ગુણ શબ્દથી અહણ કરેલ છે એ મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણને

પ્રદર્શ્યતે, ઇતિ માત્રઃ । ગુણપ્રતિપન્નસ્ય=ગુણાઃ-મૂલોત્તરરૂપાસ્તાન્ પ્રતિપન્નો ગુણ-
પ્રતિપન્નઃ । અથવા-ગુણૈ પ્રતિપન્નઃ, 'અયમનગારોઽસ્માકમગસ્થાનપાત્ર'મિતિ કૃત્વા
ગુણૈરાશ્રિત ઇત્યર્થઃ । અનેન પાત્રતાયા મત્યા સ્વયમેવ ગુણા આયાન્તીતિ
મૂચિતમ્ । ઉક્તञ्च—

“નોદન્વાનર્થિતામેતિ, ન ચામ્મોભિર્ન પૂર્યતે ।

આત્મા તુ પાત્રતા નેયઃ, પાત્રમાયાન્તિ સપદઃ ” ॥ ૧ ॥

હૈ । જન મૂલગુણ ઔર ઉત્તરગુણો કો જો ધારણ કરતે હે વે ગુણપ્રતિપન્ન
હૈ । અથવા જો ગુણો કે દ્વારા આશ્રિત ક્રિયે ગયે હૈ વે ગુણપ્રતિપન્ન હૈ ।
“યદ્ સાધુ દ્વારે ઠહરને કા સ્થાન હૈ” જેસા વિચાર કર માનોગુણ સ્વય
ઉસમેં આકર નિવાસ કરને લગ જાતે હૈ, ક્યો કિ જવ પાત્રતા આજાતી
હૈ તો ગુણો કા જેસા સ્વ ભાવ હોતા હૈ કિ વે વિનાબુલાયે હી સ્વયમેવ આકર
ઉસ પાત્ર આત્મા કો અપના નિવાસસ્થાન બના લિયા કરતે હે, કહા મી હૈ—

“નોદન્વાનર્થિતામેતિ, ન ચામ્મોભિર્ન પૂર્યતે ।

આત્મા તુ પાત્રતા નેય , પાત્રમાયાન્તિ સપદઃ ” ॥૧॥

સમુદ્ર જલ સે યદ યાચના નહી કરતા હૈ કિ તુમ દ્વામે આકર ભરદો
કિન્તુ સમુદ્રમેં પાત્રતા દેગ્વકર જલ સ્વય ઉસમે આકર ભર જાતા હૈ ।
અતઃ પ્રાણી કા કર્તવ્ય હૈ કિ વદ મર્વ પ્ર પ્રમ અપને આપકો પાત્ર બનાવે ।
પાત્રતા આને પર ગુણ-રૂપ સપત્તિયા સ્વય હી ઉસે અપના નિવાસ સ્થાન
બના લેની હે ॥ ૧ ॥

જે ધારણ કર છે તેઓ ગુણપ્રતિપન્ન છે અથવા જે ગુણોવડે આશ્રિત ડરાયા
હોય તેઓ ગુણપ્રતિપન્ન છે 'આ સાધુ અમારે રહેવાનુ સ્થાન છે' એવો
વિચાર કરીને બહુ કે ગુણ બતે જ આવીને તેનામા નિવાસ કરવા માટે છે,
ઢારણ કે બ્યારે યોગ્યતા આવા બય છે ત્યારે ગુણનો એવો અભાવ કે તે
વગર ઘોલાવ્યે બતે જ આવીને તે લાયક (પાત્ર) આત્માને પોતાનુ નિવાસ
સ્થાન બનાવી દે છે કહ્યુ પણ છે—

“નોદન્વાનર્થિતામેતિ, ન ચામ્મોભિર્ન પૂર્યતે ।

આત્મા તુ પાત્રતા નેય, પાત્રમાયાન્તિ સપદ ॥૧॥ ”

સમુદ્ર જળને એ યાચના કરતો નથી કે તુ આવીને મને ભરી દે, પણ
સમુદ્રમા પાત્રતા બેઠીને જળ બતે જ આવીને તેમા ભગઈ બય છે તેથી
પ્રાણીની કરજ કે તેણે મોથી પહેલા પોતાની બતને લાયક બનાવવી બેઠએ
પાત્રતા આપતાજ ગુણરૂપ સ પત્તિ પોતેજ તેને પોતાનુ નિવાસસ્થાન બનાવી લે છે

तस्य गुणप्रतिपन्नस्य अनगारम्प=न गच्छन्तीत्यगाः=ऋष्टपापाणादयस्तान्
 ऋच्छति=समाश्रयति, इत्यगार=गृह, न विद्यते अगार यम्यागाअनगारः-परित्यक्त-
 द्रव्यभाअगृह इत्यर्थः । तस्य प्रशस्तेरअध्यवसायेषु वर्तमानस्य सर्वघातिरसस्पर्धकेषु
 देशघातिरसस्पर्धकतया जातेषु पूर्वोक्तक्रमेण अवधिमानावरणकर्मक्षयोपशममे मति,
 अवधिज्ञानमुत्पद्यते ।

अथ मनःपर्ययज्ञानप्ररूपणा ।

मनःपर्ययज्ञानावरणीयस्य तु विशिष्टसयमाप्रमादादिप्रतिपत्तावेव सर्वघा-
 तीनि रसस्पर्धकानि देशघातीनि भवन्ति, तथास्याभाव्यात् । तच्च तथास्वाभाव्य,

जिनके अगार (घर) नहीं है वे अनगार है । ऋष्ट पापाण
 आदि काजो आश्रय करता है-अर्थात् लकड़ी पत्थर आदि की सहायता
 से जिसका निर्माण होता है उसका नाम अगार-ग्र है । इस अगार का
 जि-होने परित्याग कर दिया है वे अनगार है । अनगार के द्रव्य और
 भावरूप दोनो प्रकार के अगार-घर का परित्याग होता है । इस तरह
 प्रशस्त अध्यवसायोमे लवलीन उस अनगार के सर्वघाती जो रसस्पर्धक
 होते है वे देशघातिरसस्पर्धकरूपसे परिणमिन हो जाते हैं, तब पूर्वोक्त
 क्रम से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर उसके अवधिज्ञान
 उत्पन्न हो जाता है ।

अथ मनःपर्ययज्ञान की प्ररूपणा की जाती है—

मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म के सर्वघातिरसस्पर्धक, विशिष्ट सयम
 अप्रमाद आदि गुणों की प्रतिपत्ति होने पर ही देशघातिरूप होते हैं, क्यो

नेओने अगार (घर) नहीं तो अनगार छे ऋष्ट, पापाणु आदिने ने
 आश्रय ले छे-अटले के लाकडु, पत्थर वगेरेनी सहायताथी नेनु निर्माणु घाय
 छे तेनु नाम अगार (घर) छे आ अगारने नेले त्याग उर्थे छे ते अनगार
 छे अनगारने द्रव्य अने लावण्य अने प्रकारना अगार-घरने परित्याग डोय छे
 आ रीते प्रशस्त अध्यवसायोमा लवलीन ते अनगारना ने सर्वघातिरसस्पर्धक
 डोय छे, ते देशघातिरसस्पर्धकनाइपे परिणमित थर्ध जाय छे, त्तारे पूर्वोक्त कर्मथी
 अवधिज्ञानावरणु कर्मने क्षयोपशम थता तेने अवधिज्ञान उत्पन्न थर्ध जाय छे

डुवे मन पर्ययज्ञाननी प्ररूपणा उरवाभा आवे छे -

मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्मना सर्वघातिरसस्पर्धक, विशिष्ट सयम,
 अप्रमाद आदि गुणोनी प्रतिपत्ति थता न देशघातिरूप थाय छे, कारणु के आ

बन्धकाले तथारूपाणामेव तेषा बन्धनात् । ततो मनःपर्ययज्ञान विशिष्टगुणप्रति-
पन्नस्यैव वेदितव्यम् ।

मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणाञ्जतरायप्रकृतीना तु सर्वघातीनि रसस्पर्शकानि
येन केनचित् तथारूपविशुद्धाध्यवसायेन तदध्यवसायानुरूप देशघातीनि भवन्ति,
तेषा तथास्याभाव्यात् । ततो मतिज्ञानावरणादीना सदैव देशघातिनामेव रसस्पर्श-
कानामुदयः, सदैव च क्षयोपशमः । उक्तञ्च पञ्चसंग्रह टीकायाम्—(द्वा. ३ गा २९)

कि इस अवस्थामें उनका ऐसा ही स्वभाव होता है । इसका भी कारण
यह है कि बन्धकालमें इनका जो बन्ध होता है वह इसी प्रकार के ही
सर्वघातिरसस्पर्शको का बन्ध होता है । इसलिये मनःपर्ययज्ञान विशिष्ट-
गुणाश्रित अनगार के ही होता है, ऐसा जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञान
की उत्पत्तिमें अवधिज्ञानकी उत्पत्ति की तरह उसमें विशिष्टगुणप्रतिप-
न्नताका अभाव नहीं होता है ।

मतिश्रुतावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अन्तराय, इन प्रकृतियों के
सर्वघातिरसस्पर्शक जिस किसी भी तथारूप विशुद्ध अध्यवसाय से
उसी के अनुसार देशघातिरूपमें परिणमित हो जाते हैं, क्योंकि इनका
ऐसा ही स्वभाव होता है । इसलिये मतिज्ञानावरणादिकों के सदा ही
देशघातिरसस्पर्शको का ही उदय रहता है और सदा ही उनका क्षयो-
पशम होता है । पञ्चसंग्रहटीकामें (त्रा० ३ गा० २९) यही बात कही है—

अवस्थामा तेना एवो न स्वभावो ङोय छे तेनु ङारणु पणु एवो न छे डे अथ
ङाणमा तेमनो न्ने अथ ङोय छे ते एवो प्रङारना न् सर्वघातिरसस्पर्शङोना
अथ ङोय छे, तेथी मन पर्ययज्ञान विशिष्टगुणाश्रित अनगारने न् थाय छे
एवम मानवु न्नेअं मन पर्ययज्ञाननी उत्पत्तिमा अवधिज्ञाननी उत्पत्तिनी न्नेम
विशिष्टगुणप्रतिपन्नतानो अभावो ङोतो नशी

मतिश्रुतावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अन्तराय, ये प्रकृतियोंना सर्व
घातिरसस्पर्शङो डोर्ष पणु एवो उपना विशुद्ध अव्यवसायथी तेना प्रमाणे
देशघातिरूपमा परिणमित थं नय छे, ङारणु डे तेमनो एवो न स्वभावो ङोय
छे, तेथी मतिज्ञानावरणादिकोना देशघातिरसस्पर्शङोना न् हुमेशो उदय रडे छे, अने
हुमेशो तेमनो न् क्षयोपशम थाय छे पञ्चसंग्रह टीकामा (द्वा ३ गा २९)
आन व न उही छे—

“मतिश्रुतावरणाऽक्षुर्दर्शनावरणान्तरायमकृतीनां च सदैव दशाघातिरसस्पर्ध-
कानामेवोदयः । ततस्तासा सदैवौदयिकधायोपशमिकौ भावौ” इति ।

‘त समासओ’ इत्यादि । तत्=अवधिज्ञानं, समासत=सदोषेण पद्विध=
पदप्रकारकं, प्रज्ञप्त=प्ररूपितम् । तद् यथा-आनुगामिकम् १, अनानुगामिकम् २,
वर्धमानक ३, हीयमानक ४, प्रतिपातिकम् ५, अप्रतिपातिकम् ६, इति ।

तत्रानुगामिकम्—अनुगमनशीलम्, यदवधिज्ञानं गच्छन्तमवधिज्ञानिनं लोच-
नवदनुगच्छति, तदिति भावः १। अनानुगामिकम्—यद् गच्छन्तमवधिज्ञानिनं नानु-
गच्छति शृङ्खलामतिप्रदीपयत्, तदित्यर्थः २। वर्धमानकम्—वर्धते, इति वर्धमान,

“मतिश्रुतावरण, अक्षुर्दर्शनावरण एव अन्तराय प्रकृतियों के
देशघातिरसस्पर्धको का ही मदा उदय रहता है अतः उनके सदा ही
औदयिक एव धायोपशमिक भाव होते हैं।”

वह अवधिज्ञान सदोष से वह प्रकार का बनलाया गया है—(१) आनु-
गामिक, (२) अनानुगामिक, (३) वर्धमानक, (४) हीयमानक, (५) प्रतिपा-
तिक, (६) अप्रतिपातिक । जिस प्रकार दूसरे क्षेत्रमें जाते हुए मनुष्य के
साथ उसकी आखे साथ जाती हैं उसी प्रकार जो अवधिज्ञान अवधि-
ज्ञानी के साथ दूसरी जगह चले जाने पर साथ जाता है उसका नाम
आनुगामिक अवधिज्ञान है १। साकलसे जकड़े हुए दीपककी तरह जो
अवधिज्ञान अपने उत्पत्तिस्थान को छोड़ देने पर जीव के साथ नहीं
जाता है वह अनानुगामिक है २। जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमण्डल प्रतिदिन
बढ़ता रहता है उसी प्रकार जो अवधिज्ञान उत्पत्ति कालमें अल्पविष-
यक होनेपर भी परिणामशुद्धि बढ़ने के साथ ही क्रमशः अधिक २

“मतिश्रुतावरण, अक्षुर्दर्शनावरण, अने अन्तराय प्रकृतियोंका देशघाति
रसस्पर्धकोना व सदा उदय रहे छे, तेथी तेमनामा ह भेरा व औदयिक अने
साधोपशमिक भाव होय छे

ते अवधिज्ञान संक्षिप्तमा छ प्रकारनु भतावायु छे—(१) आनुगामिक,
(२) अनानुगामिक, (३) वर्धमानक, (४) हीयमानक, (५) प्रतिपातिक अने (६)
अप्रतिपातिक (१) के रीते भील क्षेत्रमा जाता मनुष्यनी साथे तेनी साथे
जाय छे अने रीते के अवधिज्ञान, अवधिज्ञानीनी साथे भील जग्याये जाता
पहु साथे व जाय छे तेनु नाम आनुगामिक अवधिज्ञान छे (२) साकलनी
साथे जकडेला दीपानी जेभ के अवधिज्ञान पोताना उत्पत्तिस्थानने छोडी
देवाता लवनी साथे जतु नथी ते अनानुगामिक छे (३) जेभ शुक्लपक्षनु अ-६

तदेव वर्धमानकम्, उत्पत्तिजलतः समागम्य प्रवर्धमान शुक्लपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ३ ।
 तथा हीयमानकम्-हीयते इति हीयमान, तदेव हीयमानकम्, उदयसमयसमन-
 न्तरमेव हीयमान कृष्णपक्षचन्द्रवदित्यर्थः ४ । तथा-प्रतिपातिकम्-प्रतिपतनशील
 प्रतिपाति, तदेव प्रतिपातिकम्, यत्कृत्वा जलप्रदीपवत् सर्वथा विनश्यति तदित्यर्थः ५ ।
 तथा-अप्रतिपातिकम्-न प्रतिपाति, अप्रतिपाति, तदेव-अप्रतिपातिकम्, यत्
 केवलज्ञानात्पूर्वं न विनश्यति तदित्यर्थः ६ ।

नवानुगामिज्ञानानुगामिभेदद्वये शेषभेदा वर्धमानमादयोऽन्तर्भूताः
 सन्ति, कथं तर्हि शेषभेदानां वर्धमानतादीनां पृथगुपन्यासः ? इति ।

विषयक होता जाना है वह वर्धमानक है ३ । जिस प्रकार कृष्णपक्ष का
 चंद्रमा प्रतिदिन ऋता जाना है उसी प्रकार जो अवधिज्ञान उत्पत्ति के
 समय अविकविषयवाला होने पर भी परिणामशुद्धि कम हो जाने से
 क्रमशः अल्पविषयक होता जाना है वह हीयमानक है ४ । जिस प्रकार
 जलता हुआ दीपक फूक से बुझ जाता है उसी प्रकार जो अवधिज्ञान
 विलकुल हूट जाता है वह प्रतिपातिक है ५ । केवलज्ञान जयतक आत्मामें
 न हो जावे तबतक जो बना रहे वह अप्रतिपातिक है ६ ।

शका—आनुगामिक अनानुगामिक, ये जो अवधिज्ञान के दो भेद
 बनलाये गये हैं उनमें ही वर्धमानक आदि अन्वशिष्ट अवधिज्ञान के भेद
 अन्तर्भूत हो जाते हैं फिर क्यों इन का पृथक् रूप से निरूपण किया
 गया है ? ।

मरण प्रतिदिन वधतु न्ये छे ओ न प्रभासे ने अवधिज्ञान उत्पत्तिना वधते
 अल्पविषयक होवा छता परिणामशुद्धि वधवानी आवे न कृमे कृमे वधारे ने वधारे
 विषयक थतु न्ये छे ते वर्धमानक छे (४) ने रीते वृष्णुपक्षना अन्द्रमा द्विसे
 द्विसे क्षय पावतो न्ये छे न रीते ने अवधिज्ञान उत्पत्तिने वधते वधारे
 विषयवाणु होवा छता पक्ष परिणामशुद्धि ओधी थवाथी कृमे कृमे अल्पविषयक
 थतु न्ये छे ते हीयमानक छे (५) ने रीते णतो हीवे कृके भारवाथी ओल
 वाध न्ये छे ते न प्रभासे ने अवधिज्ञान तदन छूटी न्ये छे ते प्रतिपातिक
 छे (६) देवणान न्या सुधी आत्माना पेन न थाय ला सुवी ने टके ते
 अप्रतिपातिक छे

शका—आनुगामिक अने अनानुगामिक ये जो अवधिज्ञानना ने वेद
 पताव्या छे तेमनामा न वर्धमानक आदि अन्वशिष्ट अवधिज्ञानना वेदने
 समावेश थछ न्ये छे तो पनी तेमन न्द न निउपल शा भाटे वरायु छे ?

उच्यते—आनुगामिकादिभेदद्वये शेषभेदानामन्तर्मात्रे सत्यपि तद्भेदद्वया-
देव शेषभेदाना परिच्छेदो न भवति । तथाहि—आनुगामिकमनानुगामिकं चेति
द्वयमेव यद्युक्तं स्यात्, तर्हि वर्धमानकादयो भेदा नारगम्यन्ते, इत्यन्ततज्ञापनायं
शास्त्रे तेषां पृथगुपन्यासोऽस्तीति ॥ सू० ९ ॥

मूलम्—से किं तं आणुगामिय ओहिनाण ? । आणुगामियं
ओहिनाणं दुविहं पणत्तं । तं जहा—अंतगयं च मज्झगयं च ।
से किं तं अतगयं ? । अतगयं तिविहं पणत्तं । तं जहा—
पुरओअतगयं १, मग्गओअतगयं २, पासओअंतगयं ३ ।

से किं तं पुरओअंतगयं ? । पुरओअतगयं—से जहानामए
केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा,
जोइं वा, पुरओकाउ पणोह्हेमाणे २, गच्छेज्जा, से तं पुरओअतगयं १ ।

से किं तं मग्गओअतगयं ? । मग्गओअतगयं से जहा
नामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा,
पईवं वा, जोइं वा, मग्गओकाउ अणुकड्ढेमाणे २, गच्छिज्जा, से तं
मग्गओअतगयं २ ।

से किं तं पासओअंतगयं ? । पासओअतगयं से जहा
नामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा,

उत्तर—इनके पृथक् रूप से निरूपण करने का कारण केवल एक यही
है कि इन दोनों से शेष भेदों का परिच्छेद—ज्ञान नहीं हो सकता है।
यदि आनुगामिक तथा अनानुगामिक ये दो ही अवधिज्ञान के भेद कहे
जाते तो वर्धमानकादिक दूसरे भेद नहीं जाने जा सकते। इसलिये
अल्पबुद्धिवालों को समझाने के लिये शास्त्रमे इन भेदों का पृथक् रूप से
प्रतिपादन करनेमे आया है ॥ सू० ९ ॥

उत्तर—तेमनु बुद्धि निरूपण करवानु करणु इकत ओकं न्ने के ते
अन्नेथी शेष (भाकीना) लेहोनु ज्ञान (परिच्छेद) थर्ध शकतु नथी ले
आनुगामिक अने अनानुगामिक ओ लेण अवधिज्ञानना लेह कहेवाथा होत तो
वर्धमानकादिक भीण लेहो न्णथी शकत न्ही तेथी अल्पबुद्धिवाणोने समभववा
भाटे शास्त्रमा ओ लेहोनु अलग रूपथी प्रतिपादन करवाभा आणु छे ॥ सू० ९ ॥

पर्इवं वा, जोइं वा, पासओ काउ परिकड्डेमाणेर गच्छिजा, से त पासओअंतगय ३, से त्तं अंतगयं ।

से कि त मज्झगय ? । मज्झगय से जहा नामए केइ पुरिसे उक्क वा चडुलिय वा, अलायं वा, मणि वा, पर्इव वा, जोइ वा, मत्थए काउ समुव्वहमाणेर, गच्छिजा, से त मज्झगय ।

अतगयस्स मज्झगयस्स य को पडविसेसो ? । गोयमा । पुरओअंतगएणं ओहिनाणेणं पुरओ चेव संखेज्जाणि वा असखेज्जाणि वा जोयणाइ जाणइ पासइ, मग्गओ अंतगएणं ओहिनाणेण मग्गओ चेव सखेज्जाणि वा असखेज्जाणि वा जोयणाइ जाणइ पासइ, पासओअंतगएण ओहिनाणेण पासओ चेव सखेज्जाणि वा असखेज्जाणि वा जोयणाइ जाणइ पासइ, मज्झगएणं ओहिनाणेण सव्वओ समता सखेज्जाणि वा असखेज्जाणि वा जोयणाइ जाणइ पासइ । से त आणुगामियं ओहिनाणं ॥ सू० १० ॥

छाया—अथ किं तद् आनुगामिकमवधिज्ञानम् ? आनुगामिकमवधिज्ञान द्विविधं ब्रह्मपत्, तद्यथा—अन्तगतं च मध्यगतं च । अथ किं तदन्तगतम् ? अन्तगतं त्रिविधं ब्रह्मपत्, तद्यथा—पुरतोऽन्तगतं १, मार्गतोऽन्तगतं २, पार्श्वतोऽन्तगतं ३ ।

अथ किं तत् पुरतोऽन्तगतं ? स यथानामकः कश्चित् पुरुषः—उल्का वा, चडुलिका वा, अलात वा, मणि वा, प्रदीप वा, ज्योतिर्वा, पुरतः कृत्वा प्रणुदन् २ गच्छेत्, तदेतत् पुरतोऽन्तगतम् १ ।

अथ किं तन्मार्गतोऽन्तगतं ? मार्गतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः—उल्का वा, चडुलिका वा, अलात वा, मणि वा, प्रदीप वा, ज्योतिर्वा, मार्गतः कृत्वाऽनुकर्षन् २ गच्छेत्, तदेतन्मार्गतोऽन्तगतम् २ ।

अथ किं तत् पार्श्वतोऽन्तगतं ? पार्श्वतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः—उल्का वा, चडुलिका वा, अलात वा मणि वा, प्रदीप वा, ज्योतिर्वा, पार्श्वतः कृत्वा परिकर्षन् २ गच्छेत्, तदेतत् पार्श्वतोऽन्तगतं ३, तदेतदन्तगतम् ।

अथ किं तन्मध्यगतं ? मध्यगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः—उल्का वा,

ચટુલિકા વા, અલાત વા, મર્ણિ વા, પ્રતીપ વા, ઝ્યોતિર્વા, ગમ્નકં કૃત્વા સમુદ્રહનૃ, ગચ્છેત્, તદેતન્મધ્યગતમ્ ।

અન્તગતસ્ય મધ્યગતસ્ય ચ ક્રઃ પ્રતિપિગેવ ? ગૌતમ ! પુન્તોઽન્તગતેનાઽવધિજ્ઞા-
નેન પુરતથૈવ સરયેયાનિ વા, અમરુચેયાનિ વા યોજનાનિ જાનાનિ પશ્યતિ, માર્ગતોઽ-
ન્તગતેનાઽવધિજ્ઞાનેન માગતથૈવ સરયેયાનિ વા, અમરુચેયાનિ વા યોજનાનિ જાનાતિ
પશ્યતિ, પાર્શ્વતોઽન્તગતેનાઽવધિજ્ઞાનેન પાર્શ્વતથૈવ સરયેયાનિ વા, અમરુચેયાનિ વા
યોજનાનિ જાનાતિ પશ્યતિ, મધ્યગતેનાઽવધિજ્ઞાનેન સર્પત' સમન્તાત્ સરયેયાનિ વા
અમરુચેયાનિ વા યોજનાનિ જાનાતિ પશ્યતિ, તદતદાનુગામિકમવધિજ્ઞાનમ્ ॥૬૦ ૧૦॥

ટીકા—‘સે કિં ત આણુગામિય’ ઇત્યાદિ । શિષ્યઃ પુન્તિ—અથ કિં
તદાનુગામિકમવધિજ્ઞાનમ્ ? યદવધિજ્ઞાન પૂર્માનુગામિકમિતિ નામ્ના નિર્દિષ્ટ,
તસ્ય કિં સ્વરૂપમિત્યર્થઃ । ઉત્તરમાહ—જાનુગામિકમવધિજ્ઞાન ટિપિથ પ્રશ્નમ્ ।
તદ્ યથા—અન્તગત ચ મધ્યગત ચ । ઇદાન્ત-શબ્દઃ પર્યન્તવાચી, વનાન્તવત્,
દેશાન્તવત્, વસ્ત્રાન્તવત્ । અન્તે=પર્યન્તે ગત=વ્યવસ્થિતમ્, અન્તગતમ્ । આત્મ-
પ્રદેશાના પર્યન્તે સ્થિતમિત્યર્થઃ ।

‘સે કિં ત આણુગામિય’ ઇત્યાદિ । શિષ્ય પૂજ્ઞતા હૈ કિ-હે ભદન્ત !
આનુગામિક અવધિજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ હે ? ।

ઉત્તર—અવધિજ્ઞાનકા પ્રથમ ભેદ જો આનુગામિક વનલાયા ગયા
હૈ ઉમકે દો પ્રકાર હ । ૧ અન્તગત, ૨ મધ્યગત । વનાન્ત કી તરહ,
દેશાન્ત કી તરહ, તયા વસ્ત્રાન્ત કી તરહ તદા અન્ત-શબ્દ પર્યન્ત કા
અર્થાત્ અન્ત ભાગ કા વાચક હૈ કિન્તુ નાશ આદિ અર્થકા વાચક નહીં
હૈ । પર્યન્તમે જો વ્યવસ્થિત હો ઉસકા નામ અન્તગત આનુગામિક અવધિ-
જ્ઞાન હૈ । યદ અવધિજ્ઞાન આત્મપ્રદેશો કે પર્યન્તમે વ્યવસ્થિત હોતા હૈ ।

“સે કિં ત આણુગામિય” ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે કે હે ભદન્ત ! આનુગામિક અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ શું છે ?

ઉત્તર—અવધિજ્ઞાનનો પહેલો ભેદ જે આનુગામિક બતાવવામાં આવ્યો

છે તેના બે પ્રકાર છે (૧) અન્તગત (૨) મધ્યગત વનાન્તની જેમ, દેશાન્તની

જેમ અને વસ્ત્રાન્તની જેમ અહીં ‘અન્ત’ શબ્દ પર્યન્ત એટલે કે અન્તભાગનો

વાચક છે પણ નાશ વગેરે અર્થનો વાચક નથી પર્યન્તમાં જે વ્યવસ્થિત હોય

તેનું નામ અન્તગત આનુગામિક અવધિજ્ઞાન છે આ અવધિજ્ઞાન આત્મપ્રદેશોના

પર્યન્તમાં વ્યવસ્થિત હોય છે તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—

इयमत्र भावना—उत्पद्यमानः क्रोडयत्रिः स्पर्धकरूपानुसारेण जायते । इह स्पर्धकानि नाम—गवाक्षजालभ्रन्तरस्थितप्रदीपप्रभानिर्गमरयानानीर अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमजन्यानि छिद्ररूपाणि—जर्माज्ञाननिर्गमस्थानानि । तानि स्पर्धकानि चैकजीवस्य अग्रेयानि जसग्रेयानि वा भवन्ति । तानि च पिचित्ररूपाणि भवन्ति । तथा हि—कानिचित् स्पर्धकानि पर्यन्तवर्तिप्रात्मप्रदेशेषु क्षयोपशमानुविद्धमुदयप्राप्नुवन्ति । तथापि कानिचित् पुरुषः, कानिचित् पृष्ठतः, कानिचित् अधोभागे, कानिचिदुपरितनभागे, कानिचिन्मध्यवर्तिप्रात्मप्रदेशेषु क्षयोपशमानुविद्धमुदयप्राप्नुवन्ति । यत्र यथा स्पर्धकानि भवन्ति, तत्र तथाऽत्रिज्ञानमुपजायते । तदा-

तात्पर्यं उक्तं उक्त प्रकार हे—तोई २ अवधिज्ञान स्पर्धको के अनुसार उत्पन्न होता है । जिस प्रकार ज्ञान के भीतर से प्रदीप की प्रभा को बाहर निकलने के लिये गवाक्षजाल होते हैं उसी प्रकार अवधिज्ञान के निर्गमस्थान भी होते हैं । ये अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमजन्य होते हैं । इन्हीं का नाम स्पर्धक है । ये स्पर्धकरूप छिद्र एक जीव के सख्यात जयवा जसग्रेयान तक होते हैं और विविध प्रकार के होते हैं । कितनेक स्पर्धक तो ऐसे होते हैं जो पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशोंमें क्षयोपशमसे मिश्रित उदयावस्थापन्न होते हैं । इनमें भी कितने ऐसे होते हैं जो आत्मा के आगेके प्रदेशोंमें क्षयोपशमानुविद्ध उदय को प्राप्त करते हैं, कितनेक ऐसे होते हैं जो आत्मा के पीछे के प्रदेशोंमें क्षयोपशम से युक्त उदय को पाते हैं । कितनेक अधोभागमें, कितनेक उपरितनभागमें, कितनेक मध्यवर्ती आत्मप्रदेशोंमें क्षयोपशमानुविद्ध उदय को प्राप्त करते हैं । जहां जैसे स्पर्धक होते हैं वहां वैसा अवधिज्ञान उत्पन्न होता है ।

तोई कोइ अवधिज्ञान मध्यवर्ती प्रमाणे उपरि थाय २ के प्रमाणे भजाननी अदरधी दीवाना प्रकाशने षड्भ्रान्तिक्षणत्रा माटे गवाक्षजाली डोय छे अथ प्रमाणे अवधिज्ञानना निर्गमस्थानो पण डोय छे तेओ अवधिज्ञाना परपु कर्मना क्षयोपशमजन्य डोय छे तेमनु व नाम स्पर्धक छे अथ स्पर्धकरूप छिद्र अथ उपरि सख्यात के अग्रेयान सुभी डोय छे अने विविध प्रकारना डोय छे डेटलाड स्पर्धक तो अथो डोय छे के अने पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशोमा क्षयोपशमधी मिश्रित उदयावस्थापन्न डोय छे तेमनामा पण डेटलाड अथो डोय छे के अने आत्माना आगणना प्रदेशोमा क्षयोपशमानुविद्ध उदय प्राप्त करे छे डेटलाड अथो डोय छे के अने आत्माना पाछणना प्रदेशोमा क्षयोपशमधी युक्त उदय प्राप्त करे छे, डेटलाड नीचेना भागमा, डेटलाड उपरना भागमा, डेटलाड मध्यवर्ती आत्मप्रदेशोमा क्षयोपशमधी युक्त उदय प्राप्त करे छे अथो अथो स्पर्धक डोय छे अथो अथो अवधिज्ञान उत्पन्न थाय छे अथो ते स्पर्धको

स्मनोऽन्ते पर्यन्ते स्थितमिति कृत्वा—अन्तगतमित्युच्यते, तेरे पर्यन्तवर्तिभिरात्म-
प्रदेशैः साक्षादवधिरूप ज्ञान जायते, न त्वशेषैरात्मप्रदेशैः ? इति प्रथमोऽर्थः ।

अथवा—औदारिकशरीरस्य अन्ते गत-स्थितमन्तगतम्, कयाचिदेकदिशयो-
पलम्भात् । इदमपि स्पर्धकानुरूपमवधिज्ञानम् । सर्वेषामप्यात्मप्रदेशाना क्षयोपशम-
भावेऽपि औदारिकशरीरान्ते कयापि दिशया यद्दशादुपलभ्यते, तदप्यन्तगतम् २ ।

ननु यदि सर्वात्मप्रदेशाना क्षयोपशमस्ततः सर्वतः किं न पश्यति ? उच्यते—

यदि ये स्पर्धक आत्मा के प्रदेशों के अन्तमें स्थित हैं तो इन पर्यन्तवर्ती
आत्मप्रदेशोंसे ही साक्षान् अवधिरूप ज्ञान उत्पन्न होगा, आत्मा के
समस्तप्रदेशोंसे नहीं । इस प्रकार यह अन्तगत आनुगामिक अवधिज्ञान
का भाव है । यह प्रथम अर्थ १ ।

अथवा—अन्तगत—गब्द का दूसरा अर्थ “जो औदारिक शरीर के
अन्तमें स्थित हो ” ऐसा भी होता है । औदारिक शरीर के अन्तमें
स्थित रहनेवाला यह अवधिज्ञान भी स्पर्धकों के अनुरूप ही होता है,
और किसी एक दिशामें स्थित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है । यद्यपि
अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम समस्त आत्मप्रदेशोंमें होता है तो
भी यह औदारिक शरीर के अन्तमें स्थित होकर ही किसी एक दिशामें
व्यवस्थित रूपी पदार्थों को विषय करता है ।

शका—यदि अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम समस्त आत्म-
प्रदेशोंमें होता है तो समस्त आत्मप्रदेशोंसे ही यह अवधिज्ञान रूपी
पदार्थों को क्यों नहीं जानता देखता है ? ।

आत्माना प्रदेशाना अन्तमा रडेल होय तो ये पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशोभाथी न
साक्षात् अवधिरूप ज्ञान उत्पन्न थशे, आत्माना समस्त प्रदेशोभाथी नही आ
प्रमाणे आ अन्तगत आनुगामिक अवधिज्ञानने लाव छे आ पडेलो अर्थ

अथवा—अन्तगत शब्दने धीने अर्थ “जे औदारिक शरीरना अन्तमा
स्थित होय ” जेवा पणु थाय छे औदारिक शरीरना अन्तमा स्थित रडेनाइ
अवधिज्ञान पणु स्पर्धकाने अनुरूप न होय छे, अने कोठ कोठ दिशाभा रडेला
इपी पदार्थोंने स्पष्ट लले छे जे के अवधिज्ञानावरण कर्मने क्षयोपशम समस्त
आत्मप्रदेशोभा थाय छे तो पणु ते औदारिक शरीरना अन्तमा स्थित थधने न
कोठ कोठ दिशाभा व्यवस्थित इपी पदार्थोंने विषय करे छे

शका—जे अवधिज्ञानावरण कर्मने क्षयोपशम समस्त आत्मप्रदेशोभा
थाय छे तो समस्त आत्मप्रदेशोपडे न आ अवधिज्ञान इपी पदार्थोंने केम
लणुते हेणु नथी ?

एकदिशयैव वस्तुनो ज्ञानसंभवात् । विचित्रो हि क्षयोपशमस्ततः सर्वेषामप्यात्म-
प्रदेशानामित्यंभूत एव स्वसामग्रीवशात् क्षयोपशमः सम्भवति, यदौदारिकशरीरम-
पेक्ष्य कयाचिद् विवक्षितया एकदिशया पश्यतीति द्वितीयोऽर्थः २ ।

अथा—एकदिग्भाविनाऽवधिज्ञानेन यदुद्धोतित क्षेत्र तस्या दिशि तदवधि-
ज्ञान वर्तते, अवधिज्ञानतस्तदन्ते वर्तमानत्वात् । ततोऽन्ते=एकदिगरूपस्यावधिज्ञान-
विषयस्य पर्यन्ते, व्यवस्थित तस्मादवधिज्ञानमन्तगतमित्युच्यते । इति तृतीयोऽर्थः ३ ।

इदमत्र तत्त्वम्—अन्तगतमवधिज्ञान त्रिधा व्याख्येयम्—आत्मप्रदेशान्ते, वा
औदारिकशरीरान्ते वा तदुद्धोतितक्षेत्रान्ते वा व्यवस्थित भवति । सर्वात्मप्रदेश-

उत्तर—वस्तु का ज्ञान एक दिशाको लेकर ही होता है इसलिये
यद्यपि अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षायोपशम समस्त आत्मप्रदेशोंमें
होता है फिर भी वह क्षयोपशम स्वसामग्री के वश से इसी ढग का
होता है कि वह औदारिक शरीर की अपेक्षा करके किसी एक विवक्षित
दिशा के सहारे उसी दिशामें स्थित रूपी पदार्थों को जानता देखता है ।
यह दूसरा अर्थ २ ।

अन्तगत का तीसरा अर्थ ऐसा भी होता है कि—यह अवधिज्ञान
एकदिग्भावी होता है अतः उस के द्वारा जितना भी क्षेत्र प्रकाशित
किया जाता है उस प्रकाशित क्षेत्र के एकदिगरूप विषय के अन्तमें यह
व्यवस्थित होता है इसलिये यह अन्तगत कहलाता है । यह तीसरा अर्थ ३ ।

तात्पर्य इसका इस प्रकार जानना चाहिये कि अन्तगत अवधिज्ञान
आत्मप्रदेशान्तमे १, औदारिकशरीरान्तमे २, तथा अपने द्वारा प्रकाशित

उत्तर—वस्तुनु ज्ञान ओऽ दिशाने लधने न थाय छे तेथी जे के अव-
धिज्ञानावरण कर्मने क्षयोपशम समस्त आत्मप्रदेशोमा थाय छे तो पणु ते
क्षयोपशम स्वसामग्रीना वशथी जेवा प्रकारने थाय छे के ते औदारिक शरीरनी
अपेक्षा करीने कोऽ ओऽ विवक्षित दिशानी भददथी जेऽ दिशाभा रडेल इयी
पदार्थीने नणु छे तथा हेजे छे आ थीने अर्थ

अन्तगतनी त्रीने अर्थ जेवा पणु थाय छे के आ अवधिज्ञान ओऽ
दिग्भावी होय छे तेथी तेना द्वारा जेटलु पणु क्षेत्र प्रकाशित कराय छे ते प्रकाशित
क्षेत्रना ओऽ दिग्ऽ विषयना अन्तमा ते व्यवस्थित होय छे तेथी ते अन्त-
गत कहेवाय छे आ त्रीने अर्थ

तेनु तात्पर्य आ रीते नमजु जेधजे के अन्तगत अवधिज्ञान—

(१) आत्मप्रदेशान्तमा, (२) औदारिकशरीरान्तमा अने (३) पेताना द्वारा

त्मनोऽन्ते पर्यन्ते स्थितमिति कृत्वा—अन्तगतमित्युच्यते, तैरेव पर्यन्तवर्तिभिरात्म-
प्रदेशैः साक्षादवधिरूप ज्ञान जायते, न तत्रोपैरात्मप्रदेशैः ? इति प्रथमोऽर्थः ।

अथवा—औदारिकशरीरस्य अन्ते गत—स्थितमन्तगतम्, कयाचिदेकदिशयो-
पलम्भात् । इदमपि स्पर्धकानुरूपमवधिज्ञानम् । सर्वापामप्यात्मप्रदेशाना क्षयोपशम-
भावेऽपि औदारिकशरीरात्ते कयापि दिशया यद्गशादुपलभ्यते, तदप्यन्तगतम् २ ।

ननु यदि सर्वात्मप्रदेशाना क्षयोपशमस्ततः सर्वतः किं न पश्यति ? उच्यते—

यदि ये स्पर्धक आत्मा के प्रदेशों के अन्तमें स्थित हैं तो इन पर्यन्तवर्ती
आत्मप्रदेशोंसे ही साक्षात् अवधिरूप ज्ञान उत्पन्न होगा, आत्मा के
समस्तप्रदेशोंसे नहीं । इस प्रकार यह अन्तगत आनुगामिक अवधिज्ञान
का भाव है । यह प्रथम अर्थ १ ।

अथवा—अन्तगत—शब्द का दूसरा अर्थ “जो औदारिक शरीर के
अन्तमें स्थित हो ” ऐसा भी होता है । औदारिक शरीर के अन्तमें
स्थित रहनेवाला यह अवधिज्ञान भी स्पर्धकों के अनुरूप ही होता है,
और किसी एक दिशामें स्थित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है । यद्यपि
अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम समस्त आत्मप्रदेशोंमें होता है तो
भी यह औदारिक शरीर के अन्तमें स्थित होकर ही किसी एक दिशामें
व्यवस्थित रूपी पदार्थों को विषय करता है ।

शका—यदि अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम समस्त आत्म-
प्रदेशोंमें होता है तो समस्त आत्मप्रदेशोंसे ही यह अवधिज्ञान रूपी
पदार्थों को क्यों नहीं जानता देखता है ? ।

आत्माना प्रदेशाना अन्तमा रडेल होय तो ये पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशोभाथी न
साक्षात् अवधिर्ूप ज्ञान उत्पन्न थये, आत्माना समस्त प्रदेशोभाथी नडी आ
प्रभाणु आ अन्तगत आनुगामिक अवधिज्ञानेना लाव छे आ पडेलो अर्थ

अथवा—अन्तगत शब्दने अर्थ “ने औदारिक शरीरना अन्तमा
स्थित होय ” अवेो पणु थाय छे औदारिक शरीरना अन्तमा स्थित रडेनाइ
अवधिज्ञान पणु स्पर्धकाने अनुरूप न होय छे, अने कोछ अेक दिशामा रडेला
इपी पदार्थोने स्पष्ट नालु छे अे के अवधिज्ञानावरण कर्मने क्षयोपशम समस्त
आत्मप्रदेशोमा थाय छे तो पणु ते औदारिक शरीरना अन्तमा स्थित थधने न
कोछ अेक दिशामा व्यवस्थित इपी पदार्थोने विषय करे छे

शका—ने अवधिज्ञानावरण कर्मने क्षयोपशम समस्त आत्मप्रदेशोमा
थाय छे तो समस्त आत्मप्रदेशोवडे न आ अवधिज्ञान इपी पदार्थोने केम
आणुत डेअतु नथी ?

मध्यगत चेति । इह मध्यः प्रसिद्ध एव जम्बूद्वीपमध्यवत् । मन्वे गत मध्यगतं मध्ये स्थितमित्यर्थः । तच्च सर्वत्र स्पर्धरुचिशुद्धेरात्ममन्वे-सर्वात्मप्रदेशमध्ये, यद्वा-सर्वात्मप्रदेशाना क्षयोपशमयोगानिशेषेऽप्यौदारिकशरीरमध्योपलब्धेस्तन्मध्ये, यद्वा-सर्वदिगुपलम्भात् तत्प्रकाशितक्षेत्रमध्ये गतमवधिज्ञान मध्यगतम् ।

इदमत्र तत्रम्—मध्यगतमपि त्रिधा न्यायेयम्—आत्ममध्यगतम् १, औदारिकशरीरमन्वेगतं २, तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगतमिति । आत्मप्रदेशाना मध्येमध्यवर्तिषु आत्मप्रदेशेषु गत स्थितम् आत्ममन्वेगतम्, इदं च

मध्यगत जो आनुगामिक अवधिज्ञान का भेद है वह भी तीन प्रकार का बतलाया गया है—आत्ममध्यगत १, औदारिकशरीरमध्यगत २ तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत ३ । यहा मध्यशब्द जम्बूद्वीप के मध्य की तरह बीच का वाचक है । जो बीचमे स्थित होता है वह मध्यगत का वाच्यार्थ है । स्पर्धको की विशुद्धि से समस्त आत्मप्रदेशों के मध्यमे होने के कारण आत्ममन्वेगत कहलाता है १ । तथा सर्वात्मप्रदेशोमे क्षयोपशम की अविशेषता होने पर भी औदारिक शरीर के मध्यमे ही उपलब्धि होने के कारण यह औदारिकशरीरमध्यगत कहा जाता है २ । तथा समस्तदिशारूप अर्थ की इस ज्ञान से उपलब्धि होती है फिर भी अवधिज्ञानद्वारा प्रकाशित उनके क्षेत्र के मध्यमे ही यह अवधिज्ञान व्यवस्थित होता है अतः यह तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत माना जाता है ३ । तात्पर्य इसका इस प्रकार है—मध्यगत अवधिज्ञान के जो ये तीन प्रकार बतलाये गये हैं उनमे आत्ममध्यगत अवधिज्ञान आत्मा के मध्यवर्ती

मध्यगत आनुगामिक अवधिज्ञानना के लोके छे ते पञ्च त्रय प्रारणा छे—

(१) आत्ममध्यगत, (२) औदारिकशरीरमध्यगत, (३) तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत अही “मध्य” शब्द जम्बूद्वीपनी मध्येनी जेम “वन्वे” जेवा अर्थना वाच्य छे जे वन्वे रहैल होय छे ते मध्यगतना वाच्यार्थ छे स्पर्धकोनी विशुद्धिथी समस्त आत्मप्रदेशोनी वन्वे होवाने कारणे ते आत्ममध्यगत कहवाय छे १ तथा सर्वात्मप्रदेशोमा क्षयोपशमनी अविशेषता होवा छता पञ्च औदारिक शरीरनी मध्यमा जे उपलब्धि होवाने कारणे या औदारिकशरीर मध्यगत कहवाय छे २ तथा समस्तदिशा रूप अर्थनी या ज्ञानथी उपलब्धि थाय छे तो पञ्च अवधिज्ञानद्वारा प्रकाशित तेमना क्षेत्रनी मध्यमा जे या अवधिज्ञान व्यवस्थित थाय छे तेथी या अवधिज्ञान तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत मानवामा आवे छे उ तेनु तात्पर्य या प्रमाणे छे—मध्यगत अवधिज्ञानना या जे त्रय प्रकार थताण्या छे तेजोमा आत्ममध्यगत अवधिज्ञान आत्माना

क्षयोपशमात् सकलजीवोपयोगे सत्प्रपि गाथापेक्षेणैव दर्शनात्प्रदेशान्तगत यदप्रधिज्ञान तत्प्रगतगुण्यते, इति प्रथमम् । अथवा—औदारिकशरीरक- देशेनैव दर्शनादौदारिकशरीरात्ते गत यदधिज्ञान तत्प्रगतगुण्यते, औदारिक- शरीरस्यैवदेशे एतस्या दिशि तदधिज्ञानगुण्यते, इति द्वितीयम् । क्षेत्रान्तगत तु अपधिज्ञानोद्द्योतितक्षेत्रदिग्भागे अपधिमतो जीवस्य वर्तमानत्वादेकदिग्रूपस्य क्षेत्रस्य पर्यन्ते व्यवस्थितमपधिज्ञानमन्तगत भवतीति व्यपदिश्यते, इति तृतीयम् ।

क्षेत्र के अन्तमे ३, व्यवस्थित होने की उज्ज से तीन प्रकार का घतलाया गया है ।

यद्यपि अवधिज्ञानावरण कर्म वा क्षयोपशम सर्व आत्मप्रदेशोंमें होता है, और इस अपेक्षा उसका उपयोग सर्व आत्मप्रदेशों के साथ ही होता है, फिर भी साक्षात् उसकी उत्पत्ति जीवदे एकदेश से ही होती देखी जाती है, इसलिये वह आत्मप्रदेशान्तगत कहा गया है १ । यह प्रथम भेद १ ।

अथवा औदारिक शरीर की अपेक्षा कर के उसके एक देश से ही यह उत्पन्न होता देखा जाता है इसलिये भी यह अन्तगत कहा गया है । औदारिक शरीर के एक देशमें एक दिशामें वह अवधिज्ञान उत्पन्न होता है यह अन्तगत का द्वितीय प्रकार है २ । तृतीय प्रकार ऐसा है कि-अवधिज्ञान से उद्योतित क्षेत्र के दिग्भागमें अवधिज्ञान से युक्त जीवमें वर्तमान होने के कारण एकदिग्रूप अर्थ के अन्तमें यह व्यवस्थित होता है, अतः यह अवधिज्ञान अतगत कहा जाता है ३ ।

प्रकाशित क्षेत्रना अन्तमा व्यवस्थित होवाधी त्रण प्रजारतु णताववामा आन्वु छे
ने के अवधिज्ञानावन्वु उर्भने क्षयोपशम सर्व आत्मप्रदेशोमा थाय छे
अने अे अपेक्षाअे तेना उपयोग सर्व आत्मप्रदेशोनी साथे न थाय छे छता
पण तेना साक्षात् उत्पत्ति एवना अेक देशथी न थती देभाय छे, तेथी ते
आत्मप्रदेशान्तगत कहेवाथेस छे १ आ पहेलो लेद

अथवा औदारिक शरीरनी अपेक्षा करीने तेना अेक देशथी न ते उत्पन्न
थतु देभाय छे तेथी पण ते अन्तगत कहेवायु छे औदारिक शरीरना अेक देशमा,
अेक दिशामा ते अवधिज्ञान उत्पन्न थाय छे आ अन्तगततेना भीजे प्रजार छे २

त्रीजे प्रजार अेवा छे ३ अवधिज्ञानथा उद्योतित क्षेत्रना दिग्भागमा
अवधिज्ञानवाणा एवमा वर्तमान होवाने कारणे अेकदिग्रूप अर्थना अन्ते
ते व्यवस्थित थाय छे, ते अवधिज्ञानने अतगत कहेवामा आवे छे ३

इत्यादि । अन्तगत त्रिविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-पुरतोऽन्तगत १, मार्गतोऽन्तगत २, पार्श्वतोऽन्तगतम् ३ ।

पुनरपि शिष्यः पृच्छति—‘से किं त’ इति । अथ किं तत् पुरतोऽन्तगतम् ? इति । उत्तरमाह—‘पुरओ अतगय से जहा नामए’ इत्यादि । पुरतोऽन्तगत स यथा-नामक = विवक्षितः कश्चित् पुरुषः उल्का = प्रज्वलज्वाला रूपा वा ‘मसाल’ इति प्रसिद्धा, चटुलिकाम् = अग्रभागप्रज्वलिततृणपूलिका वा, अलातम् = उल्मुकम्-अग्रभागप्रज्वलत्काष्ठ वा, मणि = पद्मरागादिक वा, प्रदीप = दीपक वा, ज्योतिः = प्रज्वलद्दर्शन ‘चिजली, वेदरी’ इत्यादिभाषाप्रसिद्ध प्रकाशोत्पादक यत्रविशेष वा पुरतः कृत्वा = अग्रतो हस्तदण्डादौ गृहीत्वा, ‘पणोल्ले-माणे २’ प्रणुदन् २ = प्रेरयन् २ गच्छति, तदेतत् पुरतोऽन्तगतम् । विवक्षितः कश्चित्

गत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ? आचार्य कहते हैं—“अतगय त्रिविह पणत्त” अतगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—पुरतोऽन्तगत १, मार्गतोऽन्तगत २ और पार्श्वतोऽन्तगत ३ । फिर शिष्य पूछता है—“से किं त पुरओअतगय” इति । पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ?

अथ गुरुमहाराज पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञानका स्वरूप दृष्टान्तपूर्वक समझाते हैं—‘पुरओ अतगय से जहानामए’ इत्यादि । जैसे कोई (विवक्षित) पुरुष उल्काको—जाज्वल्यमान ज्वाला-मसाल को, चटुलिकाको जिसके अग्रभागमें अग्नि जलती है ऐसे तृण के पूलाको, अलातको—अग्रभागमें अग्निवाले काठ को, मणिको—पद्मराग आदि मणि को, प्रदीपको, ज्योति को—सामान्यजलती हुई अग्नि को आगे कर के उन्हे सँभालता हुआ २ उनसे प्रकाशित मार्गमें चलता है यही पुरतोऽन्तगत

अवधिज्ञानतु शु स्वरूप छे ? आचार्य कहे छे—“अतगय त्रिविह पणत्त” अतगत अवधिज्ञान त्रय प्रकारतु कहेवायु छे ते आ प्रभाछे छे—(१) पुरतोऽन्तगत (२) मार्गतोऽन्तगत (३) पार्श्वतोऽन्तगत इरीने शिष्य पूछे छे “से किं त पुरओअतगय ?” पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञानतु शु स्वरूप छे ? डवे गुरुभडा राय “पुरतोऽन्तगत” अवधिज्ञानतु स्वरूप द्ध्यात साथे समझवे छे—“पुरओ अतगय से जहा नामए” जेभे कौर्ष (विवक्षित) पुरुष उल्काने—प्रकाशित ज्वाला-मसालने, चटुलिकाने—जेना आगणना लागभा अग्नि सणगती होय तेवा पूणाने, अलातने—आगणना लागभा अग्निवाणा लाकडाने, मणुीने—पद्मराग आदि मणुीने, दीवाने, ज्योतिने—सामान्य अणगती अग्निने, आगण धरीने तेने सलाणतो सलाणतो तेमनाथी प्रकाशित मार्गभा याद्वे छे जेअ पुरतोऽन्तगत

स्पर्धकानुरूपमवधिज्ञानं सर्वदिगुपलम्भकारण मध्यप्रतिनामात्मप्रदेशानामवसेयम् ।
 सर्वात्मोपयोगे सत्यपि मध्ये एव स्पर्धकमद्वाप्राप्त साक्षान्मध्यभागेनोपलब्धेः १ ।
 तथा-सर्वेषामप्यात्मप्रदेशाना क्षयोपशमभावेऽप्यौदारिकशरीरमयमागेनोपलब्धेस्त-
 न्मध्ये गतम् औदारिकशरीरमयगतम् २ । तथा-तेनावधिज्ञानेन यदुद्घोतितं
 क्षेत्र सर्वासु दिक्षु, तस्य मध्ये=मध्यभागे गत । स्थित तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगतम् ।
 अवधिज्ञानिनस्तदुद्घोतितक्षेत्रमध्यप्रतिस्वात् ३ ।

शिष्यः पृच्छति—‘ से किं त अतगय ’ इति । अयं किं तद् अन्तगतम् ?,
 पूर्वनिर्दिष्टस्यान्तगतस्य किं स्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह—‘ अतगय तिग्रिह पण्णत् ’

प्रदेशोंमें स्थित रहा करता है । यह मध्यगत अवधिज्ञान स्पर्धकों के अनु-
 सार होता है, इससे समस्त दिग्स्वरूप अर्थ की उपलब्धि होती है । यद्यपि
 इसका उपयोग पूर्ण आत्मा में होता है तो भी उस के मध्यमें ही
 स्पर्धकों का सद्भाव रहा करता है इससे वह साक्षात् मध्यभाग से ही
 उपलब्ध होता है १ । तथा-समस्त आत्मप्रदेशोंमें क्षयोपशमका सद्भाव
 होता है तो भी औदारिक शरीर के मध्यभाग से इसकी उपलब्धि होती
 है इसलिये औदारिकशरीरमध्यगत यह कहा जाता है २ । तथा उस
 अवधिज्ञान द्वारा समस्त दिशाओमें जो क्षेत्र प्रकाशित किया जाता है
 उस क्षेत्र के मध्यमें इस की उपलब्धि होती है अतः यह तत्प्रद्योतित-
 क्षेत्रमध्यगत कहलाता है, कारण कि वह अधिज्ञानी उस अवधिज्ञान
 द्वारा प्रकाशित क्षेत्र के मध्यमें ही रहा करता है, उससे बाहर नहीं ३ ।

फिर शिष्य पूछता है—‘ से किं त अतगय ’ इति । पूर्वनिर्दिष्ट अन्त-

मध्यवर्ती प्रदेशोंमें स्थित रहना करे छे आ मध्यगत अवधिज्ञान स्पर्धकोंमें अनुसार
 होय छे तेनाथी समस्त दिग्स्वरूप अर्थनी प्राप्ति थाय छे जे के तेना उपयोग पूर्ण
 आत्मामें थाय छे तो पणु तेनी मध्यमा न स्पर्धकोंमें सद्भाव रह्या करे छे
 तेथी ते साक्षात् मध्यभागथी न प्राप्त थाय छे १ । तथा समस्त आत्मप्रदेशोंमें
 क्षयोपशममें सद्भाव होय छे तो पणु औदारिक शरीरना मध्यभागथी तेनी
 प्राप्ति थाय छे, तेथी ते औदारिकशरीरमध्यगत मानवामें आवे छे २ ।
 तथा ते अवधिज्ञानद्वारा समस्त दिशाओंमें जे क्षेत्र प्रकाशित कराय छे ते
 क्षेत्रनी मध्यमा तेनी प्राप्ति थाय छे, तेथी ते तत्प्रद्योतितक्षेत्रमध्यगत कहे-
 वाय छे, कारण के ते अवधिज्ञानी ते अवधिज्ञान वडे प्रकाशित क्षेत्रनी मध्यमा न
 रह्या करे छे, तेनाथी बाहर नहीं ३ ।

वणी शिष्य पूछे छे—‘ से किं त अतगय ’ जे, पूर्वनिर्दिष्ट

शिष्यः पृच्छति—‘से किं त पासओ अतगयं’ इति । अथ किं तत् पार्श्वतो-
ऽन्तगतम्’ इति । यत् पार्श्वतोऽन्तगत, तस्य किंस्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह—‘पासओ-
अंतगय से जहानामए’ इत्यादि । पार्श्वतोऽन्तगत, स यथानामरुः कश्चित् पुरुषः
उल्का वा, चटुलिका वा, अलात वा मणि वा, प्रदीपं वा ज्योतिर्वा पार्श्वतः कृत्वा
परिकर्षणं गच्छति, तदेतत् पार्श्वतोऽन्तगतम् । यथा—प्रियक्षितः कश्चित् पुरुषः
उल्कादिक स्वपार्श्वभागे कृत्वा पार्श्वप्रदेशस्थित वस्तु प्रकाशयन् गच्छति, तद्वत्,
तत्-पूर्वनिर्दिष्टम्, एतत् पार्श्वतोऽन्तगतम् । अयं भावः—यस्मादवधिज्ञानात् पार्श्व-
गतान् पदार्थान् पश्यति, तत् पार्श्वतोऽन्तगतमवधिज्ञानम् । ‘तदेतदन्तगतम्’
इति, एवमेतत् पूर्वनिर्दिष्टमन्तगत वर्णितमित्यर्थः ।

देखता है उसी प्रकार अवधिज्ञानी भी जिस अवधिज्ञान से पृष्ठभाग-
वर्ती क्षेत्र को देखता है वह पृष्ठगामी अवधिज्ञान मार्गतोऽन्तगत अव-
धिज्ञान है । फिर शिष्य पूछता है—“ से किं त पासओ अतगय ”
पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तरमे आचार्य कहते
हैं—“ से जहानामए ” इत्यादि । जैसे कोई व्यक्ति उल्का को चटुलिका
को, अलात को, मणि को, प्रदीप को, ज्योति को पसवाडेमे करके आजू-
बाजूमें प्रकाश को करता हुआ चलता है उसी तरह यह पार्श्वतोऽन्तगत
अवधिज्ञान है । अर्थात् उल्कादिक प्रकाशमय पदार्थ को अपने पार्श्व-
भागमें करके मार्गमें चलनेवाला व्यक्ति जिस तरह आजूबाजू के पदार्थोंका
निरीक्षण करता चलता है उसी प्रकार जिस अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी
पार्श्वगत पदार्थों का निरीक्षण करता है वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान है ।

ज्ञानी पणु ने अवधिज्ञानधी पाछणना लागमा रडेला क्षेत्रने टोपे छे ते पृष्ठगामी
अवधिज्ञान मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञान छे २ ।

पणी शिष्य क्षरीधी पूछे छे—“ से किं त पासओअतगय ” पार्श्वतोऽन्तगत
अवधिज्ञानतु शु स्वरूप छे ?

जवाभमा आचार्य ठडे छे—“ से जहा नामए ” इत्यादि जेभ कोई व्यक्ति
उटकाने, चटुलिकाने, अलातने, मणीने, दीवाने ठे ज्योतिने पडपे करीने
आनुआनुमा प्रकाश करतो थाले छे जेना जेवु आ पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान
छे जेटले के उटकाने प्रकाशमय पदार्थने पोतानी आनुमा रापीने थालनार
व्यक्ति जे रीते आनुआनुना पदार्थोनु निरीक्षण करतो करतो थाले छे जेज
प्रमाणे जे अवधिज्ञानधी अवधिज्ञानी आनुआनुना पदार्थोनु निरीक्षण करे छे
ते पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान छे ३

પુરુષ: ઉલ્કાદિક પ્રકાશ હસ્તાદિના ગૃહીત્વાડ્યગ્રે નયન યથા ગચ્છતિ તદ્વત્ ।
 એતાવતા અશેન દૃષ્ટાન્ત ઉક્તઃ । અય ભાવઃ—સ દિ ગચ્છન્ ઉલ્કાદિભ્યઃ સકાશાત્
 પુરત એ પશ્યતિ, નાન્યત્ર, એમગ્રગામિપ્રકાશનુલ્યાદ્ યન્માદ્યધિજ્ઞાનાદેપ પુરત એ
 પશ્યતિ, નાન્યત્ર તત્ પુસ્તોઽન્તગતમિત્યુચ્યતે । એ સર્વત્ર દૃષ્ટાન્તો યોજનોય ।

શિષ્ય. પૃચ્છતિ—‘સે કિં ત મગ્ગઓઅતગય’ ઇતિ । અથ કિં તન્માર્ગતોઽન્ત-
 ગતમ્ ૧, માર્ગતો યદન્તગત ભવતિ, તસ્ય કિં સ્વરૂપમિતિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરમાહ—‘મગ્ગઓ
 અતગય સે જહા નામએ’ ઇત્યાદિ । માર્ગતોઽન્તગત સ યથાનામકઃ કથિત્ પુરુષઃ,
 ઉલ્કા વા ચટુલિકા વા અલાત વા મણિ વા પ્રદીપ ગા જ્યોતિર્મા માર્ગતઃ=પૃષ્ઠઃ
 કૃત્વાઽનુરૂપન્ ૨=પશ્ચાદ્ભાગે પ્રકાશ નયન્ ગચ્છતિ, તદ્વત્ । તદેતન્માર્ગતોઽન્ત-
 ગતમ્ । અય ભાવ —યસ્માદ્યધિજ્ઞાનાદાત્મા પૃષ્ઠમાગરતિન ક્ષેત્ર પશ્યતિ તત્ પૃષ્ઠ-
 ગામ્યધિજ્ઞાન માર્ગતોઽન્તગતમિત્યુચ્યતે ।

અવધિજ્ઞાન છે । અર્થાત્—જેવે કોઈ પુરુષ રાત્રિ કે સમય ઉલ્કાદિક પ્રકા-
 શકો હાથમે લેકર ઉન્હે આગે કરકે ચલતા છે ઓર ઉનસે પ્રકાશિત
 આગેકે માર્ગકી ઓર હી દેખતા છે અન્યત્ર નહીં, ઉસી પ્રકાર અગ્રગામી
 પ્રકાશ કે સમાન જિસ અવધિજ્ઞાન સે આગે કી ઓર હી અવધિજ્ઞાની
 દેખતા છે અન્યત્ર નહી, વહ પુરતોઽન્તગત અવધિજ્ઞાન છે ૧ । અવ શિષ્ય
 પૂછતા છે—માર્ગતોઽન્તગત અવધિજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ છે ? । ઉત્તરમે
 આચાર્ય કહતે હે—‘મગ્ગઓઅતગય સે જહાનામએ’ ઇત્યાદિ । જેવે કોઈ
 વ્યક્તિ ઉલ્કા કો, ચટુલિકા કો, અલાતકો, મણિકો, પ્રદીપકો, જ્યોતિકો
 પીછે કર કે ચલતા છે, યહ માર્ગતોઽન્તગત અવધિજ્ઞાન છે । અર્થાત્—જિસ
 પ્રકાર પીઠ કે પીછે પ્રકાશકો કર કે ચલને વાલા વ્યક્તિ પીછે કે પદાર્થોકો

અવધિજ્ઞાન છે એટલે કે રાત્રે જેમ કોઈ પુરુષ ઉલ્કાદિક પ્રકાશને હાથમા લઇને
 તેને આગળ ધરીને ચાલે છે અને તેમનાથી પ્રકાશિત થયેલા આગળના માર્ગની
 તરફ જ દેખે છે, બીજે નહી, એજ પ્રમાણે આગળ જતા પ્રકાશની જેમ જે
 અવધિજ્ઞાનથી આગળના તરફ જ અવધિજ્ઞાન દેખે છે બીજે નહી, તે પુરતોઽન્ત
 ગત અવધિજ્ઞાન છે ૧ ।

વળી શિષ્ય પૂછે છે—‘માર્ગતોઽન્તગત’ અવધિજ્ઞાનનુ શુ સ્વરૂપ છે ? આચાર્ય
 જવાબ આપે છે—‘મગ્ગઓઅતગય સે જહા નામએ’ ઇત્યાદિ જેમ કોઈ વ્યક્તિ
 ઉલ્કાને, ચટુલિકાને, અલાતને, મણીને, દીવાને, કે જ્યોતિને પાછળ રાખીને
 ચાલે છે તે ‘માર્ગતોઽન્તગત’ અવધિજ્ઞાન છે, એટલે કે જે રીતે પીઠની પાછળ
 પ્રકાશ કરીને ચાલનારી વ્યક્તિ પાછળના પદાર્થોને દેખે છે, એ

अन्तगतस्य मध्यगतस्य च कः प्रतिविशेषः ? =को भेदः ? इति । उत्तरमाह—पुरतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पुरतश्चैव=अग्रवर्तीन्येव वस्तूनि सरयेयानि वा, असख्येयानि वा योजनानि=सरयातयोजनपर्यन्त, तथा—असरयातयोजनपर्यन्त वा जानाति पश्यति । मार्गतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन मार्गतश्चैव=पृष्ठतश्चैव सख्येयानि वा असरयेयानि वा योजनानि जानाति पश्यति । पार्श्वतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पार्श्वतश्चैव सख्येयानि वा असख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति । मध्यगतेनाऽवधिज्ञानेन तु—आत्मा सर्वतः=सर्वासु दिक्षु समन्तात्=सर्वासु विदिक्षु विशुद्धस्पर्धकैः, 'सखिज्जाणि वा' 'सरयेयानि वा' इति, सख्यायन्ते, इति सरयेयानि, एकादीनि शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तानि गृह्यन्ते, तत ऊर्ध्वमसख्येयानि, तदाह—

जो तीन भेद किये गये हैं उनमें और मध्यगत अवधिज्ञानमें क्या भेद है ? इसका उत्तर इस प्रकार है—'पुरओअतगण' इत्यादि । पुरतोऽन्तगतअवधिज्ञानद्वारा अवधिज्ञानी अग्रवर्ती वस्तुओं को ही सख्यात योजनपर्यन्त अथवा असरयातयोजन पर्यन्त जानता और देखता है । मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञान द्वारा अवधिज्ञानी पृष्ठगत पदार्थों को ही सरयात तथा असख्यात योजन पर्यन्त जानता देखता है । पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञानद्वारा अवधिज्ञानी आजूबाजू के सख्यात अथवा असख्यात योजन पर्यन्त रहे हुए पदार्थों को जानता और देखता है परन्तु मध्यगत अवधिज्ञान के द्वारा अवधिज्ञानी आत्मा समस्त दिशाओंमें तथा समस्त विदिशाओंमें स्थित पदार्थों को विशुद्ध स्पर्धकों से सख्यात—एकादिक शीर्षप्रहेलिका योजन पर्यन्त, अथवा असख्यात योजन

के त्रयु लेह कहेल छे तेभा अने मध्यगत अवधिज्ञानभा शेा लेह छे ? तेभा जवाण आ प्रभाणे छे—'पुरओअतगण' इत्यादि

पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञान वडे अवधिज्ञानी अग्रवर्ती वस्तुओंने ज सभ्यात योजन सुधी अथवा अमभ्यात योजन सुधी नल्ले छे अने हेजे छे मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञान वडे अवधिज्ञानी पृष्ठगत पदार्थोंने सभ्यात अथवा असभ्यात योजन सुधी नल्ले छे तथा हेजे छे पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान वडे अवधिज्ञानी आनुष्णानुना सभ्यात अथवा असभ्यात योजन सुधी रहेला पदार्थने नल्ले छे अने हेजे छे पणु मध्यगत अवधिज्ञान वडे अवधिज्ञानी आत्मा समस्त दिशाओंभा तथा समस्त विदिशाओंभा रहेल पदार्थोंने विशुद्ध स्पर्धकों सभ्यात—एकादिक शीर्षप्रहेलिका योजन पर्यन्त, अथवा

एवमन्तगतस्यावधिज्ञानस्य स्वरूप विज्ञाय शिष्यः पृच्छति—‘से किं तं मज्झगय’ इति । अथ किं तन्मध्यगतम् ? इति । यदवधिज्ञानं मध्यगतमिति नाम्ना पूर्वं निर्दिष्टं तस्य किं स्वरूपमित्यर्थः ? । उत्तरमाह—‘मज्झगय से जहानामए’ इत्यादि । ‘मज्झगय’ इति । मध्यगत कथयामीत्यर्थः । स यथानामरुः=विप्रक्षितः कश्चित् पुरुषः उल्का वा चटुलिका वा अशत वा मणि वा प्रदीप वा ज्योतिर्नामकाशकारक वस्तु मस्तके कृत्वा=शिरसि निधाय, समुद्रगहनर=गरयनर गच्छति, तद्वत् । तदेतन्मध्यगतम्=तत्-पूर्वनिर्दिष्टम्, मध्यगत-मध्यगतनामन्म्, एतत्-अवधिज्ञानमिति । अयं भावः—यथा कश्चित् पुरुषो गच्छन् मस्तकस्थेनोल्का दिना सर्वत्र तत्प्रकाशितमर्थं पश्यति, एवमात्मा यस्मादावधिज्ञानात् तत्प्रद्योतित चतसृषु दिक्षुवस्थित वस्तु पश्यति, तन्मध्यगतमिति ।

पुनरपि शिष्यः पृच्छति—‘अतगयस्स मज्झगयस्स य को पइमिसेसो?’ इति ।

फिर शिष्य पृच्छता है—“से किं तं मज्झगय” इति ।

उत्तर—“से जहानामए” इत्यादि । जैसे कोई पुरुष उल्का को अथवा चटुलिका से लेकर ज्योतिर्पर्यन्त के प्रकाशात्मक पदार्थ को मस्तक ऊपर धर कर मार्गमें चलता है वह मध्यगत अवधिज्ञान है । अर्थात् उल्कादिक प्रकाशात्मक पदार्थों को अपने मस्तक ऊपर धरकर चलनेवाला पुरुष जिस प्रकार सर्वत्र फैले हुए प्रकाशगत पदार्थों को देखना चलता है उसी प्रकार जिस अवधिज्ञान के द्वारा जीव चारों दिशाओं के प्रकाशित पदार्थों को देखता है वह मध्यगत अवधिज्ञान है । शिष्य पृच्छता है—‘अतगयस्स य’ इत्यादि । अन्तगत अवधिज्ञानमें और मध्यगत अवधिज्ञानमें क्या अन्तर है ? अभिप्राय यह है कि अतगत अवधिज्ञान के

इसीथी शिष्य पूछे छे—“से किं तं मज्झगय” इति ।

उत्तर —“से जहानामए” इत्यादि

जैसे कोई पुरुष उल्काने अथवा ‘चटुलिका’ थी लधने ‘ज्योति’ सुधीना प्रकाशित पदार्थने साथे धरीने भागभा खावे छे अथ प्रकाशित आ मध्यगत अवधिज्ञान छे अटवे के उल्कादिकथी प्रकाशित पदार्थोंने पोताना साथे उपर धरने आवनार पुरुष जे रीते सर्वत्र इलायेवा प्रकाशभा आवता पदार्थोंने जेतो जेतो खावे छे अथ रीते जे अवधिज्ञान वडे अथ आरे दिशाओना प्रकाशित पदार्थोंने जेवे छे ते ‘मध्यगत अवधिज्ञान छे’

शिष्य पूछे छे—‘अतगयस्स य’ इत्यादि अन्तगत अवधिज्ञानभा अने मध्यगत अवधिज्ञानभा शो लेद छे ? सावार्थ अे छे के अतगत अवधिज्ञानना

पुरुषः, एक महत्=विशाल, ज्योतिःस्थान=अग्निस्थान कृत्वा, तस्यैव ज्योतिः-
स्थानस्य 'परिपेरतेहि' परिपर्यन्तेपुर=परि-सर्वतः पर्यन्तेषु, न त्वेकदिग्गतेषु,
'परिघोलेमाणे २' परिघूर्णन् २=परिभ्रमन् २, तदेव ज्योतिः स्थान=ज्योतिः
प्रकाशित क्षेत्र पश्यति, अन्यत्र गतो न पश्यति । तथैव-अनानुगामिकमवधिज्ञान
यत्रैव क्षेत्रे व्यवस्थितस्याऽऽत्मनः समुत्पद्यते, तत्रैव व्यवस्थित सन् सख्येयानि वा
असख्येयानि वा योजनानि, सबद्धानि वा असबद्धानि वा जानाति पश्यति, अन्यत्र
गतो न पश्यति, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य क्षेत्रसम्प्रसापेक्षत्वात् । तदेतत्
अनानुगामिकमवधिज्ञानम् । इति द्वितीयो भेदः ॥ सू० ११ ॥

एक बड़ा भारी अग्नि का स्थान बनावे और उसमें खूब अग्नि जलावे
तो जैसे अग्निका प्रकाश जब उस अग्निस्थानसे बाहर इधर उधर निकल
कर फैले, और फैले हुए उस प्रकाशमे इधर उधर परिभ्रमण करता हुआ
वह पुरुष वहा के चारों तरफके पदार्थों को देखता है और वहां से हट
जाने पर अन्यत्र पहुच कर वह नहीं देखता है, उसी तरह अनानुगामिक
अवधिज्ञान जिस क्षेत्रमे स्थित जीवात्मा को उत्पन्न होता है वह
जीवात्मा वही रह कर सबद्व अथवा असबद्व सख्यात अथवा असख्यात
योजन के भीतर रहे हुए पदार्थों को जानता और देखता है । वहां से
हटते ही फिर वह दूसरी जगह जाकर उन पदार्थों को न देखता है और
न जानता है । इस अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम
क्षेत्रसापेक्ष होता है । इस प्रकार यह अनानुगामिक अवधिज्ञान का
स्वरूप है ॥ सू० ११ ॥

रीते कोष्ठ पुरुष ओक धनु भोटु अग्निनु स्थान बनावे अने तेमा भूष
अग्नि सणगावे तो जेभ अग्निने प्रकाश त्यारे ते अग्निस्थाननी षडार आभ
तेम इलाय छे अने ते इलायेला प्रकाशमा आभ तेम परिभ्रमणु उरतो ते
पुश्य त्याना आरे तरशना पदार्थीने जेवे छे, अने त्याथी भसीने भीजे नवाथी
ते तेभने जेतो नथी जेज प्रभाणु अनानुगामिक अवधिज्ञान जे क्षेत्रमा रहेला
लवने उत्पन्न थाय छे ते लवात्मा त्याज रहीने सपंध असपंध, सप्यात
के असप्यात जेजनी अहर रहेला पदार्थीने जाणु अने हेजे छे त्याथी
भसीने वणी भीलु नग्याये नवाथी ते ते पदार्थीने जेतो नथी अने जाणुतो
पणु नथी आ अवधिज्ञानमा अवधिज्ञानावरणीय कर्मने क्षयोपशम क्षेत्र-सापेक्ष
हाय छे, आ प्रकारनु आ अनानुगामिक अवधिज्ञाननु स्वइय छे ॥ सू ११ ॥

‘ અસખિજ્ઞાણિ વા ’ इति, असख्येयानि वा योजनानि । सखातयोजनमध्यर्तीनि, असखातयोजनमध्यवर्तीनि यस्तुनि जानाति पश्यति । अनयोरयमेव भेदोऽस्तीति । तदेतदानुगामिकमवधिज्ञानम् । इत्यत्रेः प्रथमो भेदः १॥ ॥ सू० १०॥

મૂલમ્—સે કિ ત અણાણુગામિયં ઓહિનાણં ? । અણાણુગામિય ઓહિનાણ સે જહાનામણ કેઈ પુરિસે ઇગં મહતં જોઈદ્દાણં કાઠ તસસેવ જોઈદ્દાણસ્સ પરિપેરતેહિં ॥ પરિઘોલેમાણે ૨ તમેવ જોઈદ્દાણ જાણઈ પાસઈ, અન્નત્થગણ ન જાણઈ ન પાસઈ, ઇવામેવ અણાણુગામિય ઓહિનાણ જત્થેવ સમુપ્પજ્જઈ, તત્થેવ સસખેજ્ઞાણિ વા અસસખેજ્ઞાણિ વા સવહ્હાણિ વા અસંવહ્હાણિ વા જોયણાઈ જાણઈ પાસઈ, અન્નત્થગણ ણ જાણઈ ણ પાસઈ, સે ત અણાણુગામિય ઓહિનાણ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

છાયા—અથ કિં તદનાનુગામિકમવધિજ્ઞાનમ્ ? અનાનુગામિકમવધિજ્ઞાન સ યથાનામકઃ કશ્ચિત્પુરુષઃ એક મહત્—જ્યોતિઃસ્થાન કૃત્વા તસ્યૈવ જ્યોતિઃસ્થાનસ્ય પરિપર્યન્તેપુર પરિઘૂર્ણન્ ૨ તદેવ જ્યોતિઃસ્થાન જાનાતિ, પશ્યતિ, અન્યત્ર ગતો ન જાનાતિ ન પશ્યતિ, ઇવમેવાઽનાનુગામિકમવધિજ્ઞાન યત્રૈવ સમુપ્પચ્ચતં તત્રૈવ સસખેય્યાનિ વા અસસખેય્યાનિ વા સમ્મદ્ધાનિ વાઽસમ્મદ્ધાનિ વા યોજનાનિ જાનાતિ પશ્યતિ, અન્યત્ર ગતો ન જાનાતિ ન પશ્યતિ, તદેતદનાનુગામિકમવધિજ્ઞાનમ્ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૂછતિ—‘ સે કિં ત અણાણુગામિય ઓહિનાણ ’ इति । अथ किं तदनानुगामिकमवधिज्ञानम् ? । उत्तरमाह—‘ अणाणुगामिय ओहिनाण ’ इत्यादि । अनानुगामिकमवधिज्ञान कथयामीति शेषः । स यथानामकः—चित्रक्षितः, कश्चित् पर्यन्त जानता देखता है । यही अतगत और मध्यगत अवधिज्ञानमें भिन्नता है ॥सू० १०॥

‘ સે કિ ત અણાણુગામિય ’ इत्यादि ।

શિષ્ય પૂછતા હૈ—અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ હૈ ? આચાર્ય કહતે હૈ—અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાન ઇસ પ્રકાર હૈ—જૈસે કોઈ પુરુષ

અસખ્યાત યોજન સુધી બાણે તથા દેખે છે અતગત અને મધ્યગત અવધિ જ્ઞાનમા આજ ભિન્નતા છે ॥ સૂ ૧૦ ॥

“ સે કિં ત અણાણુગામિય ” इत्यादि

શિષ્ય પૂછે છે—અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાનનુ કેલુ સ્વરૂપ હોય છે ?

આચાર્ય બતાવે આપે છે—અનાનુગામિક અવધિજ્ઞાન આ પ્રકારનુ

प्टेरपि भवतीति भावः। इहाध्ययसायस्थान शब्देन जोघतो द्रव्यलेश्योपरञ्जित चित्त-
मुच्यते, तस्य चानवस्थितत्वात् तत्तद्द्रव्यसाचिव्ये सति बहुभेदत्वाद् बहुत्वम् । अत्र
प्रशस्तेष्वितिप्रशेषणेन अप्रशस्तकृष्णनीलकापोतद्रव्यलेश्योपरञ्जित चित्त नामधिज्ञान
योग्यमिति सूचितम् । 'वर्धमानचारित्रस्य' वर्धनशील चारित्रसपन्नस्येत्यर्थः । इहापि
'सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते' इत्यन्वयः। देशविरतस्य सर्वविरतस्य च वर्धमानमवधिज्ञान
भवतीति भावः। अवधिज्ञान विशुद्धिजन्यमित्याह—'विमुञ्जमाणस्स' इत्यादि । 'विशु-
ध्यमानस्य' =अवधिज्ञानावरणीयकर्ममलापगमादुत्तरोत्तरा शुद्धिमनुभवतः, अविरत-
सम्यग्दृष्टेरित्यर्थः । ' विशुध्य मानचारित्रस्य ' परिणामविशुद्ध्या निर्मलचारित्र-
वतः, देशविरतस्य सर्वविरतस्य चेति शेषः, सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते । इदमुक्त

शब्द से ओघ (सामान्य) की अपेक्षा करके द्रव्यलेश्या से अनुरजित
चित्त लिया गया है। यह चित्त अनवस्थित होने के कारण उस उस
द्रव्य के सभध से बहुत भेद वाला माना गया है। यहा प्रशस्तपदरूप
विशेषण से सूत्रकार यह बात बतलाते ह कि अप्रशस्त जो कृष्णनील
एव कापोत लेश्या से अनुरजितचित्त अवधिज्ञान के योग्य नहीं होता
है। " विमुञ्जमाणचारित्तस्स " यह पद पचमगुणस्थानवर्ती एव
षष्ठगुणस्थानवर्ती जीव का सूचक है। इसका अर्थ " निर्मलचारित्र
शाली जीव " ऐसा होता है। " सव्वओ समता " यह दोनों पद अवि-
रतसम्यग्दृष्टि के तथा देशविरत एव सर्वविरत के साथ सबध रखतेहैं ।
तात्पर्य इस सूत्रका इस प्रकार है—परिणामों की विशुद्धि के द्वारा

(सामान्य) ना अपेक्षा करीने द्रव्यलेश्याथी अनुरजित चित्त देवाथेव छे आ
चित्त अनवस्थित होवाने कारणे ते ते द्रव्यना सभधथी धल्लु व लेहवाणु
भनायु छे अही प्रशस्त-पदइय विशेषणथी सूत्रकार ओ वात भतावे छे के अप्र
शस्त के दृष्टु, नील अने कापोत लेश्याथी अनुरजित चित्त अवधिज्ञानने
योग्य होतु नथी

" विमुञ्जमाणचरित्तस्स " आ यह पचमगुणस्थानवर्ती अने षष्ठगुणस्था-
नवर्ती एवतु सूचक छे तेना अर्थ " निर्मल चारित्रवाणे एव " ओवे।
थाय छे " सव्वओ समता " आ अने पच अविरत सम्यग्दृष्टिनी तथा देशविरत
अने सर्वविरतनी साथे सभध राणे छे आ सूत्रतु तात्पर्य आ प्रमाणे छे—
परिष्काराणी विशुद्धि वडे अवधिज्ञानी एवतु के अवधिज्ञान आरे दिशाओभा

मूलम्—से कि त वद्दमाणय ओहिनाणं ? । वद्दमाणय ओहिनाणपसत्थेसु अज्झवसायट्ठाणेषु वद्दमाणस्स, वद्दमाणचरित्तस्स, विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वंओ समता ओहीवड्ढइ ॥

छाया—अथ किं तद् व मानरुमवधिज्ञानम् ? वर्धमानरुमवधिज्ञान प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्धमानचारित्रस्य विशुद्धयमानस्य विशुद्धयमान चारित्रस्य सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते ॥

टीका—‘से किं त वद्दमाणय’ इत्यादि । शिष्यः पृच्छति—अथ किं तद् वर्धमानरुमवधिज्ञानम्? = पूर्वनिर्दिष्टस्य वर्धमानावधिज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः ? । उत्तरमाह—‘वद्दमाणय’ इत्यादि । वर्धमानरुमित्यत्र स्वार्थे ‘क’ प्रत्ययः । वर्धमानरुमवधिज्ञान कथयामीत्यर्थः । ‘प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य’=प्रशस्ता यवसाययत इत्यर्थः, सर्वतः समन्तादवधिर्वर्धते, इत्यन्वयः । वर्धमानमवधिज्ञानमविरतसम्यग्द-

‘से किं त वद्दमाणय’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता है—वर्धमानक अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर—‘वद्दमाणय ओहिनाण’ इत्यादि । वर्धमान अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरणीयकर्मरूप मल के अपगम से उत्तरोत्तर शुद्धिका अनुभव करने वाले ऐसे प्रशस्त अध्यवसायसपन्न चतुर्थगुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दण्डिजीव के होता है । तथा देशविरत अथवा सर्वविरत—पचमगुणस्थानवर्ती, अथवा षष्ठगुणस्थानवर्ती जीव के होता है । चतुर्थगुणस्थानवर्ती पचमगुणस्थानवर्ती एव षष्ठगुणस्थानवर्ती जीव के यह वर्धमान अवधिज्ञान चारो दिशाओंमें प्रवर्धमान होता रहता है । यहा अध्यवसायस्थान

‘से किं त वद्दमाणय’ इत्यादि

शिष्य पूछे छे—वर्धमानक अवधिज्ञानतु केषु स्वरूप छे ?

उत्तर—‘वद्दमाणय ओहिनाण’ इत्यादि

वर्धमान अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण कर्म रूप भणना अपगमथी उत्तरोत्तर शुद्धिने अनुभव करनार जेवा प्रशस्त अध्यवसाय सपन्न चतुर्थशुभ स्थानवर्ती अविरत सम्यग्दण्डि एवने थाय छे तथा देशविरत अथवा सर्व विरत—पचमशुभस्थानवर्ती अथवा षष्ठशुभस्थानवर्ती एवने थाय छे चतुर्थशुभ स्थानवर्ती, अने षष्ठशुभस्थानवर्ती एवने आ वर्धमान अवधिज्ञान चारि दिशाओमा प्रवर्धमान थतु रहे छे अही अध्यवसायस्थान—शुद्धमाथी ओष-

અયમર્થઃ—યઃ કિલ યોજનસહસ્રાયામમાનો મત્સ્યો મૃત્વા સ્વશરીરૈરુદેજ સલગ્નપનકે સમુત્પદ્યમાનઃ પ્રથમસમયે સ્વાત્મપ્રદેશાનામાયામ સહત્ય સ્વાત્મપ્રદેશ વિષ્કમ્ભતુલ્ય કરોતિ, તેનાયામતો વિષ્કમ્ભતથ તુલ્યપ્રમાણઃ પ્રતરઃ સપદ્યતે । તત્ર-આયામો-દૈર્ઘ્યમ્, વિષ્કમ્ભો=વિસ્તારઃ । વાહલ્યતથાઙ્ગુલાસખ્યેયભાગપ્રમાણો ભવતિ । તેન સ્થૂલત્વ સંક્ષિપ્ય તનુત્વમાપાદિતમ્ ।

‘એવમ્ભૂત પ્રતર પ્રથમસમયે કૃત્વા દ્વિતીયસમયે તમેવ પ્રતર સૂચી કરોતિ । તત્ર સ્વાત્મપ્રદેશવિષ્કમ્ભ સક્ષિપ્યાગુલાસખ્યેયભાગપ્રમાણ કરોતિ । તેનાઽઽયામતઃ સ્વાત્મપ્રદેશવિષ્કમ્ભપ્રમાણા, વિષ્કમ્ભતસ્તુ-અગુલાસખ્યેયભાગપ્રમાણા સૂચી ભવતિ ।

इसका खुलाशा अर्थ इस प्रकार है—एक हजार योजन की अवगाहनावाला महामत्स्य मरकर अपने शरीरके एक प्रदेशमे लगे हुए पनक (शेवाल)में उत्पन्न होता हुआ प्रथम समयमें अपने आत्मप्रदेशों के आयाम को सङ्कुचित करता है, और सङ्कुचित करके उस आयाम को वह आत्मप्रदेशों के विष्कम्भके बराबर बनाता है । इस प्रकार यह प्रथम समयमे ही आयाम और विष्कम्भ की अपेक्षा तुल्यप्रमाणवाला बन जाता है । इसका नाम ही प्रतर है । आयाम शब्दका अर्थ दीर्घता (लवाई) और विष्कम्भ का अर्थ विस्तार (चौड़ाई) है । इस समय यह अगुल से असख्यातवे भागप्रमाण अवगाहना वाला होता है, क्योंकि इसमे स्थूलताका सकोच होकर तनुता आजाती है । अर्थात् पहिले की स्थूलता सङ्कुचित होकर तनुतारूपमे परिणत हो जाती है । इस प्रकार प्रथम समयमे प्रतर करके फिर वह द्वितीय समयमे उस प्रतर को सूची रूप करता है । इस सूची अवस्थामे वह जीव अपने आत्मा के विष्कम्भ

तेનો ખુલાસાવાર અર્થ આ પ્રમાણે છે—એક હજાર યોજનની અવગાહના વાળો મહામત્સ્ય મરીને પોતાના શરીરના એક દેશમા લાગેલા પનકમા ઉત્પન્ન થતા પહેલા સમયમા પોતાના આત્મપ્રદેશોના આયામને સકુચિત કરે છે અને સકુચિત કરીને તે આયામને તે આત્મપ્રદેશોના વિષ્કમ્ભની બરાબર છે આ રીતે આ પ્રથમ સમયમા જ આયામ અને વિષ્કમ્ભની અપેક્ષાએ તુલ્યપ્રમાણવાળો બની જાય છે આતુ નામ જ પ્રતર છે આયામ શબ્દનો અર્થ દીર્ઘતા (લવાઈ) અને વિષ્કમ્ભનો અર્થ પહોળાઈ છે આ સમયે તે અગુલના અસખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણ અવગાહનાવાળો હોય છે કારણ કે તેમા સ્થૂળતાનો સુત્યન થઈને તનુતા આવી જાય છે એટલે કે પહેલાની સ્થૂળતા સકુચિત થઈને તનુતા રૂપમા પરિણમે છે આ પ્રમાણે પહેલા સમયમા પ્રતર કરીને ફરીથી તે બીજા સમયમા તે પ્રતરને સૂચીરૂપ કરે છે આ સૂચી અવ-

भवति-परिणामविशुद्ध्याऽप्रधिज्ञानिनो यद् वधिज्ञानं चतस्रु दिक्षु प्रवर्धमानं भवति, तदवधिज्ञानं वर्धमानमिति ॥

अथावधेर्जघन्यः क्षेत्रमाह—

मूलम्—जावइया तिसमया—हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स ।

ओगाहणा जहन्ना, ओही—खित्तं जहन्नं तु ॥ १ ॥

छाया—यावती तिसमया,—ऽऽहारकस्य सूक्ष्मस्य पनरुजीवस्य ।

अवगाहना जघन्या, अग्रधिक्षेत्र जघन्यं तु ॥१ ॥

टीका—‘जावइया’ इत्यादि । तिसमयाऽऽहारकस्य=त्रयः समया यस्यासौ तिसमयः, स चासौ अविग्रहगत्या समुत्पन्नत्वादाहारकश्च=तिसमयाहारकः, तस्य-उत्पत्तिसमयादारभ्य तृतीयसमये वर्तमानस्येत्यर्थः, सूक्ष्मस्य-सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्मस्तस्य, पनरुजीवस्य=निगोदजीवस्य वनस्पति विशेषस्य, यावती=यत्प्रमाणा, जघन्या=सर्वतोऽल्पा, अवगाहना=अवगाहन्ते यस्या प्राणिन साऽवगाहना, शरीर-मानं भवति, जघन्यं=सर्वतोऽल्पं तु अग्रधिक्षेत्रम्-अवधिज्ञानस्य क्षेत्र तावदेव भवति । इह ‘तु’-शब्द एवार्थे, इति गायार्थः ।

अवधिज्ञानी जीव के जो अवधिज्ञान चारों दिशाओंमें प्रवर्धमान होता रहता है वह वर्धमान अवधिज्ञान है ।

अब सूत्रकार अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र बतलाते हैं—

‘जावइया’ इत्यादि गाया । उत्पत्ति समय से लेकर तृतीय समयमें वर्तमान ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निगोदिया जीव की जितनी जघन्य अवगाहना हांती है उतना ही जघन्य क्षेत्र अवधिज्ञान का होता है ।

भावार्थ—अपने उत्पत्ति समय से लेकर तृतीय समयमें आहारक बने हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय निगोदिया पनक जीव के शरीर का जितना प्रमाण होता है उतना ही अवधिज्ञान के जघन्य क्षेत्र का प्रमाण होता है ।

प्रवर्धमान यत्तु रडे छे ते वर्धमान अवधिज्ञान छे डवे सूत्रकार अवधिज्ञानतु जघन्य क्षेत्र अतावे छे—

“जावइया” इत्यादि गाया—उत्पत्ति काण्ठी शर् करीने तृतीय समयमा वर्तमान अेषा सूक्ष्म अकेन्द्रिय अणुनी नेटली जघन्य अवगाहना डोय छे अेटलु जघन्य क्षेत्र अवधिज्ञानतु डोय छे

भावार्थ—पौताना उत्पत्ति काण्ठी लईने तृतीय समयमा आहारक अनेला सूक्ष्म अकेन्द्रिय निगोदिया पनक अणुना शरीरतु नेटलु प्रमाणु डोय छे अेटलु ज अवधिज्ञानना जघन्य क्षेत्रतु प्रमाणु डोय छे

सहृत्य चाद्यसमये, स ह्यायाम करोति च प्रतरम् ।
 संख्यातीतारव्यागुल-विभागवाहल्यमान तु ॥ २ ॥
 स्वतनुपृथुत्वमात्र, दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात् ।
 तमापि द्वितीयसमये, सहृत्य करोत्यसौ सृचिम् ॥३॥
 संख्यातीताङ्गुल-वि-भागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम् ।
 निजतनुपृथुत्वदीर्घा, तृतीयसमये तु सहृत्य ॥ ४ ॥
 उत्पद्यते च पनरुः, स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिमाणः ।
 समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥
 तावज्जघन्यमवधे-रालम्बनवस्तुभाजन क्षेत्रम् ।
 इदमित्थमेव मुनिगण-सुसम्प्रदायात् समवसेयम् ॥६॥

सहृत्य चाद्यसमये, महायाम करोति च प्रतरम् ।
 संख्यातीताख्याङ्गुलविभागवाहल्यमान तु ॥ २ ॥
 स्वतनुपृथुत्वमान, दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात् ।
 तमपि द्वितीयसमये, सहृत्य करोत्यसौ सृचिम् ॥३॥
 संख्यातीताङ्गुलवि भाग विष्कम्भ मान निर्दिष्टाम् ।
 निजतनुपृथुत्वदीर्घा, तृतीयसमये तु सहृत्य ॥ ४ ॥
 उत्पद्यते च पनरुः स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिमाणः ।
 समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥
 तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजन क्षेत्रम् ।
 इदमित्थमेव मुनिगण सुसप्रदायात्समवसेयम् ॥६॥

इन श्लोकों का भाव ऊपर प्रमाण ही है ।

सहृत्य चाद्यसमये, स ह्यायाम करोति च प्रतरम् ।
 संख्यातीतारयाङ्गुलविभागवाहल्यमान तु ॥ २ ॥
 स्वतनुपृथुत्वमान, दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात् ।
 तमपि द्वितीयसमये, सहृत्य करोत्यसौ सृचिम् ॥३॥
 संख्यातीताङ्गुलविभागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम् ।
 निजतनु पृथुत्व दीर्घा, तृतीयसमये तु सहृत्य ॥४॥
 उत्पद्यते च पनरु, स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिमाण ।
 समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥
 तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजन क्षेत्रम् ।
 इदमित्थमेव मुनिगण, सुसप्रदायात्समवसेयम् ॥६॥

ये श्लोकानो भाव ऊपर प्रमाणे न छे

વાહ્યતથા પૂર્વદંડગુલાઽસખ્યેયભાગપ્રમાણૈ૨। દ્વિતીયસમયે દંડભૂતા સૂચી કૃત્વા તૃતીયસમયે તત્ર પનકત્વેન સમુત્પયતે। પનકજીવસ્યોત્પત્તિસમયાદારમ્ય તૃતીય-સમયે શરીરમાન યાવદ્ ભવતિ તાત્પરિમિત ક્ષેત્ર જગન્યમવધિજ્ઞાનસ્ય ભવતી'—તિ વૃદ્ધાઃ। ઉક્તશ્ચ—

યોજનસહસ્રમાનો, મત્સ્યો મૃત્વા સ્વકાયદેશે યઃ।

ઉત્પદ્યતે હિ સૂક્ષ્મઃ, પનકત્વેનેહ સ ગ્રાહ્યઃ ॥ ૧ ॥

કો સક્ષિપ્ત કર કે ડસે અગુલ કે અસરયાતવે ભાગપ્રમાણ વના લેના હૈ । આયામ કી અપેક્ષા અપને આત્મા કે પ્રદેગોં કે વિષ્કમ પ્રમાણ, તયા વિષ્કમ કી અપેક્ષા અગુલ કે અસરયાતવે ભાગ પ્રમાણ યહ સૂચી હોતી હૈ । તયા વાહ્ય કી અપેક્ષા પહિલે કી તરહ યહ સૂચી અગુલ કે અસ-રયાતવે ભાગ પ્રમાણ હી રહતી હૈ । ઇસ પ્રકાર દ્વિતીય સમયમેં એસી સૂચી કર કે વહ જીવ તૃતીય સમયમે પનકરૂપ પર્યાય સે ઉત્પન્ન હોતા હૈ । ઇસ પનક જીવ કા ઉત્પત્તિ કે સમય સે લેકર તૃતીય સમયમેં શરીર કા પ્રમાણ જિતના હોતા હૈ ઉતના હી ક્ષેત્ર જગન્યરૂપ સે અવધિ-જ્ઞાન કા હોતા । એસા વૃદ્ધસમ્પ્રદાય કહતે હૈ । કહા ખી હૈ—

“ યોજનસહસ્રમાનો, મત્સ્યો મૃત્વા સ્વકાયદેશે યઃ।

ઉત્પદ્યતે હિ સૂક્ષ્મઃ, પનકત્વેનેહ સ ગ્રાહ્યઃ ॥ ૧ ॥

સ્થામા તે જીવ પોતાના આત્માના વિષ્કલને ટુ કાવીને તેને અશુલના અસ ખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણ બનાવી લે છે આયામની અપેક્ષાએ પોતાના આત્માના પ્રદેશેાનુ વિષ્કલ પ્રમાણ, તથા વિષ્કલની અપેક્ષાએ અશુલના અસ ખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણ આ સૂચી થાય છે તથા બહુતાની અપેક્ષાએ પહેલાની જેમ આ સૂચી અશુલવના અસ ખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણ જ રહે છે આ રીતે ખીજ સમયે એવી સૂચી કરીને તે જીવ ત્રીજ સમયમા પનકરૂપ પર્યાયે ઉત્પન્ન થાય છે આ પનક જીવના ઉત્પત્તિના સમયથી લઈને તૃતીય સમયમા શરીરનુ પ્રમાણ બેટલુ હોય છે એટલુ જ ક્ષેત્ર જગન્યરૂપથી અવધિજ્ઞાનનુ હોય છે એવુ વૃદ્ધલોકો કહે છે કહુ પણ છે—

યોજનસહસ્રમાનો, મત્સ્યો મૃત્વા સ્વકાયદેશે યઃ।

ઉત્પદ્યતે હિ સૂક્ષ્મઃ, પનકત્વેનેહ સ ગ્રાહ્યઃ ॥૧॥

સ પનકજીવ ઉત્પત્તિકાલાદારમ્ય પ્રથમે દ્વિતીયે ચ સમયેડતિસૂક્ષ્મો ભવતિ, ચતુર્થાદિપુ સમયેપુ ચાતિસ્થૂલો ભવતિ, તૃતીયસમય એવ જઘન્યાનધિક્ષેત્રયોગ્યાવગાહનાપાન્ મન્યતસ્ત્રિસમયાહારકત્વ કલ્પ્યતે ।૩।

અવિગ્રહગત્યા સ્વશરીરૈકદેશ એવ સમુત્પન્નત્વેન સ પનકજીવઃ સૂક્ષ્મો ભવત્યતઃ સૂક્ષ્મગ્રહણમ્ । અન્યથા-યદિ સ્વશરીરાદ્દૂરે ગત્વાડન્યત્ર પનકત્વેન સમુત્પદ્યેત, વિગ્રહગત્યા ચ ગચ્છેત્ તદા જીવપ્રદેશા વિસ્તરત્વ પ્રાપ્ત્યુરિત્યગાહના સ્થૂલતરા સ્યાત્ ।૪।

પનક જીવ ઉત્પત્તિસમય સે લેકર પ્રથમ ઓર દ્વિતીય સમયમે અતિસૂક્ષ્મ રહતા હૈ, ચતુર્થ આદિ સમયમે અતિસ્થૂલ હો જાતા હૈ, ડસલિયે ડન સમયમે કી ડસ કી અવગાહના ગ્રહણ ન કર કે જો તૃતીય સમય કી અવગાહના ગ્રહણ કી ગઈ હૈ ડસકા કારણ કેવલ યહી હૈ કિ યહ ડસ તૃતીય સમયમે હી જઘન્ય અવધિજ્ઞાન કે ક્ષેત્રયોગ્ય અવગાહના વાલા હોતા હૈ । ડસલિયે “ ઉત્પત્તિ કે સમય સે લેકર તૃતીય સમયમે વર્તમાન ” એસા કહા હૈ ।૩।

અવિગ્રહગતિ સે અપને શરીર કે એકદેશમે હી ઉત્પન્ન હોને કે કારણ વહ પનક જીવ સૂક્ષ્મ હોતા હૈ । ડસ વાત કો ચતલને કે લિયે હી સૂક્ષ્મપદ રખા ગયા હૈ । યદિ વહ અપને શરીર સે કિસી ઓર ડૂસરી જગહ ડૂર જાકર પનક કી પર્યાય સે ઉત્પન્ન હોતા ઓર વિગ્રહગતિ સે જાતા તો જીવકે પ્રદેશ અવઙ્ચ વિસ્તાર કો પ્રાપ્ત કરતે, ડસ તરહ ડસકી અવગાહના સ્થૂલતર હો જાતી ।૪।

(૩) પનક જીવ ઉત્પત્તિસમયથી લઈને પહેલા અને બીજા સમયમાં અતિસૂક્ષ્મ રહે છે ચતુર્થ આદિ સમયમાં અતિસ્થૂળ થઈ જાય છે તેથી તે સમયોની તેની અવગાહના ગ્રહણ ન કરીને જે ત્રીજા સમયની અવગાહના ગ્રહણ કરેલ છે તેનું કારણ ક્રૂપા એટલું જ છે કે તે આ તૃતીય સમયમાં જ જઘન્ય અવધિજ્ઞાનના ક્ષેત્રને યોગ્ય અવગાહનાવાળો થાય છે તેથી “ઉત્પત્તિના સમયથી શરૂ કરીને તૃતીય સમયમાં વર્તમાન” એવું કહેલ છે

(૪) અવિગ્રહગતિથી પોતાના શરીરના એક દેશમાં જ ઉત્પન્ન થવાને કારણે તે પનક જીવ સૂક્ષ્મ હોય છે આ વાતને બતાવવા માટે જ સૂક્ષ્મ પદ રાખવામાં આવેલ છે બે તે પોતાના શરીરથી ડોઈ બીજી જ જગ્યાએ ડૂર જઈને પનકની પર્યાયથી ઉત્પન્ન થતો અને વિગ્રહ ગતિથી જતો તો જીવના પ્રદેશ જરૂર વિસ્તારને પામત, આ રીતે તેની અવગાહના સ્થૂળતર થઈ જત

નનુ કિમિતિ મહાન્ મત્સ્યઃ કલ્પ્યતે ? (૧), કિં વા તૃતીયસમયે મત્સ્યજી-
 વીવસ્ય સ્વદેહદેશે સમુત્પત્તિઃ સ્વીક્રિયતે ? (૨), અપિ ચ ત્રિસમયાદારમ્ત્વ વા
 તસ્ય કેન કારણેન કલ્પ્યતે ? (૩), કિં વા સૂક્ષ્મો ગૃહ્યતે ? (૪) કિં વા પનક ડત્યુ-
 ચ્યતે ? (૫), કિં વા જઘન્યાવગાહના ગૃહ્યતે ? (૬) इति पट प्रश्नाः । अत्राच्यते-
 યોજનસહસ્રપ્રમાણ एव हि महामत्स्यजीवस्त्रिभिः समयैरात्मप्रदेशान् सक्षिपन्
 प्रयत्नविशेषतः सूक्ष्मावगाहनायान् भवति नान्यः, इति महामत्स्यग्रहणम् । १।

સ ચ મહામત્સ્યજીવઃ પ્રથમસમયે પ્રતર કરોતિ, દ્વિતીયસમયે સૂચીં કરોતિ,
 તૃતીયસમયે પનકભવં પ્રાપ્નોતિ, અતસ્તૃતીયસમયે સમુત્પત્તિં સ્વીક્રિયતે ।૨।

શકા—ઇતને લવે ચૌઢે મત્સ્ય કી કલ્પના ક્યોં કરતે હેં ? ૧, ક્યોં
 ઉસકી અપને દેહ પ્રદેશમે હી તૃતીય સમયમે ઉત્પત્તિ માનતે હેં ? ૨ ક્યોં
 ઉસકો ઉત્પત્તિસમય સે લેકર તૃતીય સમયમે વર્તમાન કહતે હેં ? ૩,
 ક્યોં ઉસકો સૂક્ષ્મરૂપ સે ગ્રહણ કરતે હેં ? ૪, ક્યોં ઉસકો 'પનક' ઇસ
 સજ્ઞા સે સવોધિત કરતે હેં ? ૫, ઓર ક્યોં યહા ઉસકી જઘન્ય અવગાહના
 લેતે હેં ? ૬ । ઇસ પ્રકાર યહાં યે છહ પ્રશ્ન હેં । ઇનકા ઉત્તર ઇસ પ્રકાર હે—

एक हजार योजन की अवगाहना वाला महामत्स्य ही तीन समयों
 मे आत्मप्रदेशों को सङ्कुचित करता हुआ प्रयत्नविशेष से सूक्ष्म अवगा-
 हना वाला होता है, अन्यजीव नहीं, इसलिये उसी का ग्रहण किया है । १।

यह महामत्स्य प्रथम समयमे प्रतर करता है । द्वितीय समयमें सूची
 करता है । तृतीय समयमे पनक की पर्याय से उत्पन्न होता है । इस
 लिये तृतीय समयमें ही पनकरूप पर्याय की उत्पत्ति मानी गई है । २।

શકા—(૧) આટલા લાખા-પહોળા મત્સ્યની કલ્પના શા માટે કરે છે ?
 (૨) શા માટે તેની પોતાના દેહ પ્રદેશમા જ ત્રીજા સમયમા ઉત્પત્તિ માને છે ?
 (૩) શા માટે તેને ઉત્પત્તિ સમયથી લઈને તૃતીય સમયમા વર્તમાન કહો છે ?
 (૪) શા માટે તેને સૂક્ષ્મરૂપે ગ્રહણ કરે છે ? (૫) શા માટે તેને 'પનક' આ
 સજ્ઞાથી સવોધિત કરે છે ? (૬) અને શા માટે તેની જઘન્ય અવગાહના લે
 છે ? આ પ્રમાણે અહીં એ છ પ્રશ્નો છે તેનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે—

(૧) એક હજાર યોજનની અવગાહનાવાળો મહામત્સ્ય જ ત્રણ સમયોમા
 આત્મપ્રદેશોને સકુચિત કરતો પ્રયત્નવિશેષથી સૂક્ષ્મ અવગાહનાવાળો થાય છે,
 બીજા જીવ નહીં તેથી જ તેને ગ્રહણ કરેલ છે

(૨) આ મહા મત્સ્ય પ્રથમ સમયમા 'પ્રતર' કરે છે બીજા સમયમા
 સૂચી કરે છે ત્રીજા સમયમા પનકની પર્યાયથી ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તૃતીય
 સમયમા જ પનકરૂપ પર્યાયની ઉત્પત્તિ માનેલી છે

मयाहारकः सूक्ष्मः पनरुजीवो जघन्यावगाहनानान् भवति, अतस्तच्छरीरप्रमाण
जघन्यमवधिक्षेत्र-मिति वदन्ति ।

तदुक्तम्—त्रिसमयाहारकत्व हि पनरुजीवप्रिशेषणतया प्रोक्त मत्स्यभ्र-
स्यायामप्रतर-सहरणममयद्वय च पनरुभवसम्बन्धि न समरतीति त्रिसमयाहारक-
त्वरूप प्रिशेषण पनरुजीवस्य नोपपद्यते ॥

अत्रेद गोध्यम्—एतात्प्रमाणस्य जघन्यक्षेत्रस्य तैजसप्रायोग्यवर्गणापान्तराल-
वर्ति द्रव्य भाषाप्रायोग्यवर्गणापान्तरालवर्ति च द्रव्यमालम्ब्यावधिः प्रवर्तते । तदपि
चालम्ब्यमान द्रव्य द्वित्रियम्-गुरुलघु, अगुरुलघु च । तत्र तैजसप्रत्यासन्न गुरुलघु,

सूक्ष्म पनरु जीव जघन्य अवगाहना वाला होता है । इस तरह उस के
शरीर का जो प्रमाण होता है तत्प्रमाण जघन्यक्षेत्र अवधिज्ञान का बत-
लाया गया है ।

ऐसा कहना उनका ठीक नहीं है कारण कि “ त्रिसमयाहारकत्व ”
यह विशेषण पनरु जीव का ही कहा है । इसलिये प्रथम समयमें मत्स्य-
भ्र के शरीर के आग्राम के सहरण तथा द्वितीय समयमें प्रतर के सह-
रण करनेमें जो दो समय लगते हैं वे पनरुभवसवधी नहीं है, अतः
त्रिसमयाहारकत्वरूप विशेषण पनरु जीव का नहीं बनता है ।

यहाँ यह समझना चाहिये—पूर्वोक्तप्रमाणपरिमित जघन्य क्षेत्र के
तैजसप्रायोग्यवर्गणा के मध्यवर्ती द्रव्य का और भाषाप्रायोग्यवर्गणाके
मध्यवर्ती द्रव्य का अवलम्बन करके अवधिज्ञान प्रवृत्त होता है । वह
अवलम्ब्यमान द्रव्य गुरुलघु और अगुरुलघु के भेद से दो प्रकार का है ।
उनमें तैजसप्रत्यासन्न द्रव्य गुरुलघु है और भाषाप्रत्यासन्न द्रव्य अगुरु

सूक्ष्म पनरु एव जघन्य अवगाहनावाणो डोय छे आ गीते तेना शरीरनु
के प्रमाण डोय छे ते प्रमाण न जघन्यक्षेत्र अवधिज्ञाननु अताव्यु छे

तेमनु ऐवु कथन अणणर नथी अण्णु ते “ त्रिसमयाहारकत्व ” आ
विशेषण पनरु एवतु न कडेव छे, तेथी प्रथम समयमा मत्स्यभवना गरी-
रना आग्रामनु सहरण, तथा भीन समयमा प्रतरनु सहरण करवामा के जे
समय लागे छे ते पनरुभवसवधी नथी तेथी त्रिसमयाहारकत्व इप विशेषण
पनरु एवतु अतनु नथी

अही अेभ समज्जु लेध अे-पूर्वोक्तप्रमाणपरिमित जघन्य क्षेत्रना
तैजसप्रायोग्यवर्गणा मध्यवर्ती द्रव्यतु, अने भाषाप्रायोग्यवर्गणा मध्यवर्ती
द्रव्यतु अवलम्बन करीने अवधिज्ञान प्रवृत्त थाय छे ते अवलम्ब्यमान द्रव्य
गुरुलघु अने अगुरुलघुना लेदथी जे प्रकारनु छे तेअेमा तैजसप्रत्यासन्न द्रव्य

પનકજીવ એવ પૃથિવ્યાઘન્યજીવાપેક્ષયા સૂક્ષ્મઃ સૂક્ષ્મતરઃ સુક્ષ્મતમશ્ચ મગ્ની-
ત્યત્ પનકગ્રહણમ્ ।૫।

પનકજીવ એવ ચ સર્વજઘન્યદેહો ભવતીતિ જઘન્યાવગાહનાગ્રહણમ્ ।૬।

કેચિત્તુ--' ત્રિસમયાહારકસ્ય ' ઇતિ-આયામસહરણપ્રતરકરણરુપઃ પ્રથમઃ
સમયઃ ૧, પ્રતરસહરણસૂચીકરણરુપો દ્વિતીયઃ સમયઃ ૨, તૃતીયસ્તુ સૂચીસહ-
રેણ પનકત્વેનોત્પત્તિસમયઃ ૩, તતશ્ચ ત્રયઃ સમયા યસ્યાસૌ ત્રિસમયઃ, વિગ્રહગ-
ત્યભાવાદાહારકશ્ચ एतेषु त्रिष्वपि समयेव्वाहाररुस्तस्मादुत्पत्तिसमय एव त्रिस-

इस पनक सज्ञासे सवोधन करने का प्रयोजन यह है कि अन्य
पृथिवी आदि जीवों की अपेक्षा पनक जीव ही सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और
सूक्ष्मतम होता है । ५।

इसकी जघन्य अवगाहना का ग्रहण इसलिये किया गया है कि पनक
जीव ही सर्व जीवों की अपेक्षा जघन्य शरीर वाला होता है । ६।

कोई २ आचार्य ऐसा कहते हैं कि पनक जीव की पर्यायमें उत्पन्न
होने वाला वह महामत्स्य का जीव प्रथम समयमें अपने शरीर के
आयाम का सहरण करता है और यह आयाम का सहरण ही प्रतર का
करना है । द्वितीय समयमें प्रतर का सहरण और सूची का करना होता
है । तृतीय समयमें सूची के सहार से और पनकरूप पर्याय से उत्पन्न
होता है । इस तरह तीन समय लगते हैं । तथा विग्रहगति के अभाव से
यह आहारक हो जाता है । इस प्रकार तीनों समयोंमें यह आहारक
होता है । इसलिये उत्पत्तिसमयमें ही तीन समय वाला वह आहारक

(૫) આ પનકસજ્ઞાથી સવોધન કરવાનું પ્રયોજન એ છે કે ખીલ પૃથિવી
આદિ જીવોની અપેક્ષાએ પનક જીવજ સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર અને સૂક્ષ્મતમ હોય છે

(૬) તેની જઘન્ય અવગાહના એ માટે ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે કે
પનક જીવ જ સર્વજીવોની અપેક્ષાએ જઘન્ય શરીરવાળો હોય છે

કોઈ કોઈ આચાર્ય એવું કહે છે કે પનક જીવની પર્યાયમાં ઉત્પન્ન થનારા
તે મહામત્સ્યનો જીવ પ્રથમ સમયમાં પોતાના શરીરના આયામનું સહરણ
કરે છે અને આ આયામનું સહરણ જ પ્રતરનું કરવું છે ખીલ સમયમાં
પ્રતરનું સહરણ અને સૂચીનું કરવું થાય છે ત્રીજા સમયમાં સૂચીનું સહરણ
કરીને પનકરૂપ પર્યાયથી ઉત્પન્ન થાય છે આ રીતે ત્રણ સમય લાગે છે તથા
વિગ્રહગતિના અભાવથી તે આહારક થઈ બંધ છે આ રીતે ત્રણ સમયોમાં
તે આહારક હોય છે તેથી ઉત્પત્તિ સમયે જ ત્રણ સમયવાળો તે

मयाहारकः सूक्ष्मः पनकजीवो जघन्यावगाहनानान् भवति, अतस्तच्छरीरप्रमाण जघन्यमवधिक्षेत्र-मिति वदन्ति ।

तदयुक्तम्—त्रिसमयाहारकत्व हि पनकजीवविशेषणतया प्रोक्त मत्स्यभव-स्यायामप्रतर-सहरणसमयद्वय च पनकभवसम्बन्धि न सम्भतीति त्रिसमयाहारक-त्वरूप विशेषण पनकजीवस्य नोपपद्यते ॥

अत्रेदं गोच्यम्—एतान्प्रमाणस्य जघन्यक्षेत्रस्य तैजसप्रायोग्यवर्गणापान्तराल-वर्ति द्रव्य भाषाप्रायोग्यवर्गणापान्तरालवर्ति च द्रव्यमालम्ब्याग्निः प्रवर्तते । तदपि चालम्ब्यमान द्रव्य द्विविधम्—गुरुलघु, अगुरुलघु च । तत्र तैजसप्रत्यासन्न गुरुलघु,

सूक्ष्म पनक जीव जघन्य अवगाहना वाला होता है । इस तरह उस के शरीर का जो प्रमाण होता है तत्प्रमाण जघन्यक्षेत्र अवधिज्ञान का बत-लाया गया है ।

ऐसा कहना उनका ठीक नहीं है कारण कि “ त्रिसमयाहारकत्व ” यह विशेषण पनक जीव का ही कहा है । इसलिये प्रथम समयमे मत्स्य-भव के शरीर के आयाम के सहरण तथा द्वितीय समयमे प्रतर के सह-रण करनेमे जो दो समय लगते हैं वे पनकभवसंबन्धी नहीं हैं, अतः त्रिसमयाहारकत्वरूप विशेषण पनक जीव का नहीं बनता है ।

यहाँ यह समझना चाहिये—पूर्वोक्तप्रमाणपरिमित जघन्य क्षेत्र के तैजसप्रायोग्यवर्गणा के मध्यवर्ती द्रव्य का और भाषाप्रायोग्यवर्गणाके मध्यवर्ती द्रव्य का अवलम्बन करके अवधिज्ञान प्रवृत्त होता है । वह अवलम्ब्यमान द्रव्य गुरुलघु और अगुरुलघु के भेद से दो प्रकार का है । उनमे तैजसप्रत्यासन्न द्रव्य गुरुलघु है और भाषाप्रत्यासन्न द्रव्य अगुरु

सूक्ष्म पनक एव जघन्य अवगाहनावाणो डोय छे आ रीते तेना शरीरनु ने प्रमाणु डोय छे ते प्रमाणु न जघन्यक्षेत्र अवधिज्ञाननु अताण्यु छे

तेमनु ऐवु कथन अगणर नहीं करणु डे “ त्रिसमयाहारकत्व ” आ विशेषणु पनक एवनु न कडेल छे, तेथी प्रथम समयमा मत्स्यभवना शरी-रना आयामनु सहरणु, तथा जीव समयमा प्रतरनु सहरणु करवामा ने जे समय लागे छे ते पनकभवसंबन्धी नहीं तेथी त्रिसमयाहारकत्व रूप विशेषणु पनक एवनु अतनु नहीं

अही अम समयनु जेठ अ-पूर्वोक्तप्रमाणपरिमित जघन्य क्षेत्रना तैजसप्रायोग्यवर्गणा मध्यवर्ती द्रव्यनु, अने भाषाप्रायोग्यवर्गणा मध्यवर्ती द्रव्यनु अवलम्बन करीने अवधिज्ञान प्रवृत्त थाय छे ते अवलम्ब्यमान द्रव्य गुरुलघु अने अगुरुलघुना लेखी जे प्रकारनु छे तेओमा तैजसप्रत्यासन्न द्रव्य

ભાષાપ્રત્યાસન્ન ચાગુરુલઘુ । તદ્વતાથ પર્યાયાન્ ચતુઃસરયાનેત્ર ઝર્ણગન્ત્રસસ્પર્શલ-
ક્ષણાન્ જઘન્યાવધિજ્ઞાની પશ્યતિ, ન શેપાનિતિ ।

અયમત્ર સારાશઃ—અગુલાસરયેયમાગપ્રમાણ જઘન્ય ક્ષેત્રમવધિજ્ઞાનસ્ય
ભવતિ । અર્થાત્—અગુલપ્રમાણસ્ય ક્ષેત્રસ્ય અસરયેયાનિ 'સ્વઠ્ઠાનિ કૃતસ્ય ઇકસ્મિન્
અસહ્યેયમાગે યાત્રન્તિ દ્રવ્યાણિ સમવસ્થિતાનિ તાનિ જઘન્યાવધિજ્ઞાની
પશ્યતિ ॥ ગા૦૧ ॥

एव जघन्यमवधिक्षेत्रमुक्त्वा, उत्कृष्टमवधिक्षेत्रमाह—

मूलम्—सव्व—बहु—अगणिजीवा, निरतरं जत्तियं भरिज्जंसु ।

खित्त सव्वदिसागं, परमोही खित्तनिदिट्ठो ॥ २ ॥

छाया—सर्ववह्वभिजीवा,—निरन्तर यावद् भृतान्तः ।

क्षेत्र सर्वदिक्कं, परमावधिः क्षेत्रनिदिष्टः ॥ २ ॥

टीका—'सव्वबहुअगणिजीवा' इत्यादि । सर्ववह्वभिजीवाः—इह सर्व-

લઘુ હૈ । इनमे रहे हुए वर्ण रस गध स्पर्शरूप चार पर्यायों को ही जघन्य
अवधिज्ञानी देखता है, शेष को नहीं । इसका साराश यह है—

अगुलका असख्यातवा भाग क्षेत्र अवधिज्ञान का जघन्य विषय है,
इस का तात्पर्य यह है कि अगुलप्रमाण क्षेत्र के असख्यात टुकड़े करो,
अत का जो असख्यातवा टुकड़ा बचे उसमें जितने रूपी द्रव्य अवस्थित
हों उन्हें जघन्य अवधिज्ञानी जानता और देखता है ।

इस प्रकार अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र कह कर अब उत्कृष्ट क्षेत्र
कहते हैं—'सव्व-बहु-अगणि जीवा' इत्यादि ।

શુરુલઘુ છે અને ભાષાપ્રત્યાસન્ન દ્રવ્ય અશુરુલઘુ છે તેમનામા રહેલ વર્ણ, ગ ધ,
સ્પર્શરૂપ ચાર પર્યાયોને જ જઘન્યઅવધિજ્ઞાની જુએ છે, બીજાને કોઈ નહીં
તેનો સારાશ આ છે—

અગુલનો અસખ્યાતમો ભાગ ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનો જઘન્ય વિષય છે
તેનું તાત્પર્ય એ છે કે અગુલના માપના ક્ષેત્રના અસખ્ય ટુકડા કરો એવટનો
જે અસખ્યાતમો ટુકડો બચે તેમા જેટલા રૂપી દ્રવ્યો રહેલ હોય તેમને
જઘન્ય અવધિજ્ઞાની જાણે અને દેખે છે

આ રીતે અવધિજ્ઞાનનું જઘન્ય ક્ષેત્ર કહીને હવે ઉત્કૃષ્ટ ક્ષેત્ર કહે છે—

“સવ્વબહુઅગણિજીવા” ધત્યાદિ

शब्देन विवक्षितकालवर्तिनो वह्निजीवा यावन्तः सन्ति, त एव सर्वे गृह्यन्ते । ततश्च ये भूत-भविष्यत्कालवस्थायि वह्निजीवाः, ये च शेषजीवास्तेषां ग्रहण नास्ति, असम्भवात् । सर्वेभ्यः=विवक्षितकालवर्तिभ्योऽग्निजीवेभ्य एव ये वह्नस्ते सर्ववह्नः, अग्नयश्च ते जीवाः, अग्निजीवाः, सर्ववह्नश्च तेऽग्निजीवा सर्ववह्नः अग्निजीवाः, सर्वदिग्ग-सर्वदिग्गभावावस्थित क्षेत्रम्-आकाश, निरन्तर-अन्तररहित, क्रियाविशेषणमेतत्, विगिष्टमूचीरचनया रचिताः सन्तः, यावत्=यत्परिमाण भूतवन्तः=व्याप्तवन्तः, परमावधिः-परमश्चासावधिः स तथा, क्षेत्रनिर्दिष्टः-क्षेत्रम्=अनन्तरोक्त प्रभूताग्निजीवप्रमितमङ्गीकृत्य निर्दिष्टः=प्रतिपादितो गणधरादिभिरिति । ततश्चावधेः पर्यायेण एतावत् क्षेत्रमुत्कृष्टतो विषय इति भावः ।

‘भूतवन्तः’ इति भूतकालनिर्देशश्च ‘अजितस्वामिकाल एव प्रायः सर्ववहवोऽग्निजीवा भवन्ति स्म’ इति सूचयितुम्-‘सर्ववह्नु’ इति विशेषणम् । ‘अस्यामवसर्पिण्या’-मित्य-

इस गाथामे सर्वशब्द से विवक्षित कालवर्ती अग्निजीव जितने हैं वे ही सब ग्रहण किये गये हैं । भूत-भविष्यत्-कालवर्ती अग्निजीव तथा और जो शेष जीव हैं वे ग्रहण नहीं किये गये हैं । इस तरह विवक्षितकालवर्ती अग्निजीवों से और भी जो अग्निजीव हैं वे सर्ववह्नु अग्नि जीव समस्त दिग्गवस्थित जितने आकाशरूपी क्षेत्र को निरन्तर रूपमे-अन्तर न रहे इस रूपमे-भरते हैं-उसे व्याप्त करते हैं उतना क्षेत्र उत्कृष्ट अवधिज्ञान का विषय है । ऐसा गणधरादिकों ने कहा है ।

इस गाथामे “भूतवन्तः” ऐसा जो भूतकालिक निर्देश किया है वह इस बात की सूचना के लिए है कि अजित स्वामी के समयमे ही प्रायः सर्ववह्नु अग्निजीव थे । “सर्ववह्नु” यह विशेषण इस अवस-

आ गाथामा ‘सर्व’ शब्दधी विवक्षितकालवर्ती अग्निजीव नेटला छे ते यथा अहंशु करेव छे भूत-भविष्यत्कालवर्ती अग्निजीव तथा भीन्त ने पाकीना छेवे छे ते अहंशु करेव नहीं आ रीते विवक्षितकालवर्ती अग्निजीवो सिवायना भीन्त पणु ने अग्निजीवो छे ते यथा-अहुअग्निजीव नमस्त दिग्गवस्थित नेटला आकाशरूप क्षेत्रने निरन्तर रूपमा (अन्तर न रहे ते रूपमा) भरे छे, तेने व्याप्त करे छे, अहंशु क्षेत्र उत्कृष्ट अवधिज्ञानने विषय छे अबु गणधरादिकेअे कह्यु छे

आ गाथामा ‘भूतवन्त’ अवेने ने भूतकालने निर्देश करेव छे ते आ यातनी सूचनाने माटे छे के अजितस्वामीना समयमा न प्राय सर्ववह्नुअग्निजीव छेता ‘सर्ववह्नु’ आ विशेषण आ अवसर्पिणी कालनु सूच्य छे तथा

ર્થસ્ય રૂપાપનાર્થમ્ । 'સર્વદિક્ષમ્' ડત્યનેન સર્વતઃ સૂચીપરિભ્રમણ પ્રમિતમેવ સૂચિતમ્ ।

અથવા—સર્વવહ્નિગ્નિજીવા નિરન્તર યાવત્ સર્વદિક્ષ ક્ષેત્ર મૃતમન્તઃ, एतान्તિ ક્ષેત્રે યાન્યવસ્થિતાનિ દ્રવ્યાણિ, તત્પરિચ્છેદસામર્થ્યયુક્તઃ પરમાવધિઃ, ક્ષેત્રમત્ક્રીઠૃત્ય નિર્દિષ્ટઃ, ઇતિ । અથ સામ્પ્રદાયિકોઽર્થ ઉચ્યતે—

અગ્નિજીવોત્પત્તેર્મહાવૃષ્ટિઆદિના વ્યાપ્તાભાવે સમસ્તભરતૈરપતપ્રિદેહલક્ષણામ્ પચ્ચદશમ્ કર્મભૂમિપુ સર્વવહ્નો વાદરાગ્નિજીવા મનન્તિ । અવસર્પિણ્યા દ્વિતીય-તીર્થંકરકાલે યે મનન્તિ સ્મ, ત एव ગૃહ્યન્તે । તત્ર હિ વાદરાગ્નિજીવાના સધુક્ષણ-

ર્પિણી કાલ કા સૂચક હૈ । તથા—“સર્વદિક્ષમ્ ” યદ્ વિશેષણ સૂચિપરિ-ભ્રમણપરિમિત ક્ષેત્ર કા હી સૂચક હૈ ।

અથવા—સર્વવહ્નિઅગ્નિજીવ નિરન્તર સત્ર દિગ્ગાઓમેં રહે જુગ જિતને ક્ષેત્ર કો વ્યાપ્ત કરતે હેં જિતને ક્ષેત્રમેં જિતને દ્રવ્ય અવસ્થિત હોતે ઉતને દ્રવ્યોં કો જાનને કી શક્તિ વાલા યદ્ પરમાવધિજ્ઞાન, ક્ષેત્રકી અપેક્ષા સે કહા ગયા હૈ ।

અવ સામ્પ્રદાયિક અર્થ જ્યા હૈ સો વતલાયા જાતા હૈ—

અગ્નિ જીવો કી ઉત્પત્તિ કા મહાવૃષ્ટિ આદિ કે ઢારા મ્હી વ્યાઘાત નહી હોતા હૈ ઇસલિયે પાચ ભરત, પાચ ઁરવત, एव પાચ મહાવિદેહ, યે જો પન્દ્રહ્ કર્મભૂમિયા હૈ ઇનમે સર્વવહ્નિવાદરઅગ્નિજીવ હોતે હૈ ।

અવસર્પિણી કાલમે દ્વિતીય તીર્થંકર કે સમયમે જો અગ્નિ જીવ હોતે હૈ વે હી યદ્ ગ્રહણ કિયે ગયે હૈ, કારણ કિ ઉસ સમય વાદર અગ્નિ

‘સર્વદિક્ષમ્’ આ વિશેષણ સૂચીપરિભ્રમણપરિમિત ક્ષેત્રનુ જ સૂચક છે

અથવા—સર્વબહુઅગ્નિજીવ નિરન્તર બધી દિશાઓમા રહેલ જેટલા ક્ષેત્રને વ્યાપ્ત કરે છે એટલા ક્ષેત્રમા જેટલા દ્રવ્ય રહેલા હોય છે એટલા દ્રવ્યોને બાણવાની શક્તિવાળું આ પરમાવધિજ્ઞાન ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ કહેલ છે હવે સામ્પ્રદાયિક અર્થ શો છે તે બતાવે છે—

અગ્નિજીવોની ઉત્પત્તિને મહાવૃષ્ટિ આદિ વડે પણ વ્યાઘાત થતો નથી તેથી પાચ ભરત, પાચ ઁરવત, અને પાચ મહાવિદેહ, તે પદર જે કર્મભૂ-મિઓ છે તેઓમા સર્વબહુઆદરઅગ્નિજીવ હોય છે અવસર્પિણી કાળમા ખીબ તીર્થંકરના સમયમા જે અગ્નિજીવ હોય છે તેમને જ અહી ગ્રહણ કરેલ છે, કારણ કે તે સમયે આદર અગ્નિજીવોની સધુક્ષણ અને જ્વાલન આદિ

ज्वालाधारम्भपराः सर्वेभ्योऽप्यतीताऽनागतेभ्यः प्रचुरा गर्भजमनुष्याः स्वभा-
वादेव भवन्ति स्म ।

यदोत्कृष्टाश्च सूक्ष्माग्नि जीवाः स्वभागत एव कथमपि सभवन्ति, तदैव
एतेर्वादिराग्निजीवैः सह सर्वग्रहग्निजीवाना परिमाण भवति । इदमत्र हृदयम्-
अनन्तानन्तास्त्वसर्पिणीषु मध्ये स एव कश्चित् तीर्थंकरकालो गृह्यते, यत्र सूक्ष्माग्नि
जीवा उत्कृष्टपदिन प्राप्यन्ते । ततश्च तैर्वादरैः सूक्ष्मैश्चाग्निजीवैस्तकृष्टपदिभि-
र्मिलितैः सर्वग्रहग्निजीवाना परिमाण भवति ।

तच्च सभ्रमात्रमाश्रित्य बुद्ध्या पदविधरचनयाऽग्निजीवान् व्यग्रस्थापयितु
रचनाया पद् भेदाः घनद्वय-प्रतरद्वय-श्रेणिद्वय-रूपाः कल्प्यन्ते । तत्र पष्ठो भेदो
जीवों की सजुक्षण एव ज्वालन आदि आरम्भक्रियाद्वारा उत्पत्ति कर-
नेमें तत्पर गर्भज मनुष्य अतीतअनागतकालोद्भूत गर्भज मनुष्यों की
अपेक्षा प्रचुर मात्रामें स्वभाव से ही थे ।

जब उत्कृष्ट सूक्ष्मअग्निजीव स्वभावतः किसी निमित्तद्वारा
उत्पन्न होते हैं तब ही इन वादराग्नि जीवों के साथ सर्ववहुअग्निजीवों
का परिमाण आता है । तात्पर्य यह है कि अनन्तानत अवसर्पिणियों के
बीच वही कोई एक तीर्थंकरकाल ग्रहण किया जाता है कि जिसमें
सूक्ष्मअग्निजीव उत्कृष्ट पद को प्राप्त होते हैं । इस तरह उत्कृष्टपदप्राप्त
ये वादर और सूक्ष्मअग्नि जीवों को मिलाने पर सर्ववहुअग्निजीवो
का परिमाण होता है ।

सर्ववहुअग्निजीवों का परिमाण निकालने के लिये अपनी बुद्धि
से छद् प्रकार की रचना की कल्पना करो, वे छद् प्रकार ये हैं-(१)दो

आरम्भक्रियावडे उत्पत्ति उरवाभा तत्पर गर्भज मनुष्य अतीत अनागत
कागना नन्मेदा गर्भज मनुष्योनी अपेक्षाये मोटी मात्राभा स्वभावथी न डता

न्यारे उत्कृष्ट सूक्ष्म अग्निजव स्वभावत डोष निमित्त वडे पेदा थाय
छे त्यारे न अये भादाराग्निजवोनी साथे सर्ववहु अग्निजवोनु परिमाण
आवे डे भावार्थ अये डे अनतानत अवसर्पिणीयोनी वर्ये डोष अयेड तीर्थ
करनेा समय ग्रहण कराय छे डे नेभा सूक्ष्माग्निजव उत्कृष्ट पदने भेणवे छे
आ रीते उत्कृष्ट पद प्राप्त करनाग ते भादर अने सूक्ष्म अग्निजवोने भेणवता
सर्ववहु अग्निजवोनु परिमाण थाय छे

सर्ववहु अग्निजवोनु परिमाण जाठवाने माटे पोतानी बुद्धिथी छ
प्रकारनी रचनानी कल्पना उरे ते छ प्रकार आ प्रमाणे छे-(१) जे घन (२) जे प्रतर

વહુતરક્ષેત્રપૂરણ કરોતિ । અન્યે પન્ન અનાદેગાઃ, પ્પ્ષ્ટસ્તુ શ્રુતાદેશ
 ઇતિ । તથાહિ-સર્વૈરપ્યગ્નિજીવૈઃ સમચતુરસ્રો ઘનો દ્વિપ્રકારઃ
 સ્થાપ્યતે । તત્ર એકૈકાકાશપ્રદેશે એકૈકાગ્નિજીવ સ્થાપનયા
 પ્રથમો ઘનઃ । સ્વાવગાહે ચ દેહાસરયેયાકાશપ્રદેશ લક્ષણે
 એકૈકાગ્નિજીવસ્થાપનયા દ્વિતીયો ઘનઃ । ઘનરચનાયા નવાગ્નિ-
 જીવાઃ અસત્કલ્પનયા સ્થાપ્યન્તે ।

અત્ર સ્થાપના—

○	○	○
○	○	○
○	○	○

એતેપા નવાનામગ્નિજીવાના પ્રત્યેકમેકૈકાકાશપ્રદેશે વ્યવસ્થાપિતાના-

ઘન, (૨) દો પ્રતર (વર્ગ), (૩) દો ત્રેણિ ઠ । इनमें उठवा त्रेणीरूप भेद ही
 વહુતર ક્ષેત્ર કો પૂરણ કરતા હૈ । અન્ય પાચ ભેદ અનાદેશશાસ્ત્રસમત
 નહી હૈ । ઊઠવાં હી શ્રુતાદેશ-શાસ્ત્રસમત હૈ ।

इस का खुलाशा इस प्रकार से है-समस्त अग्निजीवों का जो घन
 बनाया गया है वह समचतुरस्र-समचतुष्कोण है, और उस की दो प्रकार
 से स्थापना की गई है-प्रथम प्रकारमें एक एक आकाश
 के प्रदेशमें एक एक अग्निजीव स्थापित किया गया
 है । द्वितीय प्रकारमें जितने असख्यातप्रदेशरूप आका
 शक्षेत्र को एक अग्निजीवके शरीर ने रोक रखा है उस
 स्वावगाहित देहरूप आकाश के असख्यात प्रदेशमें एक
 एक अग्निजीव की स्थापना की गई है । इस तरह इस
 घनरचनामें असत्कल्पना द्वारा नौ अग्निजीव स्थापित किये जाते हैं ।

સ્થાપના યત્ર—

○	○	○
○	○	○
○	○	○

(વર્ગ) (૩) બે ત્રેણિ તેઓમા છઠ્ઠી ત્રેણીરૂપ લેદ જ બહુતર ક્ષેત્રને પૂર્ણ કરે
 છે અન્ય પાચ લેદ અનાદેશ-શાસ્ત્રસ મત નથી છઠ્ઠો શ્રુતાદેશ જ શાસ્ત્રસમત છે

तेना खुलासा या प्रमाण्ये छे—समस्त अग्निजीवोना जे घन बनाववामा
 आवेल छे ते समचतुरस्र-समचतुष्कोण छे, अने तेनी जे रीते स्थापना करेल छे
 (१) पड़ेला प्रकारमा ओक ओक आकाशना प्रदेशमा ओक ओक
 अग्निजीव स्थापित करेल छे (२) भील प्रकारमा जेटला
 असख्यातप्रदेशरूप आकाश क्षेत्रने ओक अग्निजीवशरीर देकी
 शोषेल छे ते स्वावगाहित देहरूप आकाशना अग्रख्यात
 प्रदेशमा ओक ओक अग्निजीवनीस्थापना करेल छे या रीते या
 घनरचनामा असत्कल्पना वडे नव अग्निजीव स्थापित कराय छे

○	○	○
○	○	○
○	○	○

मधस्तात् उपरिष्टाच्च अन्येऽपि नव नव जीवा इत्यमेव स्थाप्यन्ते । एष कल्पनया सप्तविंशत्या प्रथमो घनो भवति ।

स्थापना चैयम्

○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○

सद्भासतस्तत्र सरयेरैरग्नि जीवैरेकैकाकाशप्रदेशव्यवस्थापितैर्घनो भवति । द्वितीयोऽपि घन इत्यमेव द्रष्टव्यः, किन्तु इह देहासख्येयाकाशप्रदेशेष्वेकैक जीवो व्यवस्थाप्यते २ ।

एव वृत्ताकारः प्रतरोऽपि द्वित्रिभो भवति । तथा हि-एकैकाकाशप्रदेशे एकैकाग्निजीवस्थापनया प्रथम, देहासख्ये-

इन नौ अग्नि जीवों के भी प्रत्येक अग्नि जीव के ऊपर नीचे और भी नौ नौ अग्नि जीव स्थापित किये जाते हैं । स्थापना—

○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○

इस तरह वी स्थापना से सत्ताईस २७ जीवों का यह प्रथम घन बन जाता है । इससे यह तात्पर्य निकलता है कि एक एक आकाश के प्रदेशमें व्यवस्थापित हुए असख्यात अग्नि जीवों का एक घन बन जाता है । द्वितीय घन भी इस तरह से होता है । किन्तु इस घनमें देहरूप असख्येय आकाशप्रदेशमें एक एक

जीव ही स्थापित किया जाता है । इसी प्रकार वृत्ताकार प्रतर भी दो तरह से होता है—एक २ आकाश के प्रदेशमें एक एक अग्निजीवकी स्थापना से प्रथम प्रतर, और आकाश के असख्यात प्रदेशरूप स्वावगा-

ते नव अग्निज्ज्वोना पञ्च प्रत्येक अग्निज्ज्वोनी उपर नीचे जीवत पञ्च नव नव अग्निज्ज्व स्थापित कराय छे

स्थापना—

○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○
○	○	○

आ प्रतारनी स्थापनाणी सत्यावीम (२७) ज्ज्वोना आ प्रथम घन जनी जय छे तेथी जे तात्पर्य निकले छे छे जेक जेक आकाशना प्रदेशमा व्यवस्थापित थयेल असख्यात अग्निज्ज्वोना जेक घन जनी जय छे थिजे घन पञ्च जेन रीते थाय छे पञ्च आ घनमा देहरूप असख्येय आकाश प्रदेशमा जेक जेक ज्ज्वोना स्थापित कराय छे आन रीते वृत्ताकार प्रतर पञ्च जे रीते थाय छे जेक जेक आकाशना प्रदेशमा जेक जेक अग्निज्ज्वोनी स्थापना वडे प्रथम प्रतर जने आकाशना

बहुतरक्षेत्रपूरण करोति । अन्ये पञ्च अनादेशाः, पृष्ठस्तु श्रुतादेश इति । तथाहि—सर्वैरप्यग्निजीवैः समचतुरस्रो घनो द्विभकारकः स्थाप्यते । तत्र एकैकाकाशप्रदेशे एकैकाग्निजीव स्थापनया प्रथमो घनः । स्वावगाहे च देहासरयेयाकाशप्रदेश लक्षणो एकैकाग्निजीवस्थापनया द्वितीयो घनः । घनरचनाया नयाग्निजीवाः असत्कल्पनया स्थाप्यन्ते ।

अत्र स्थापना—

○	○	○
○	○	○
○	○	○

एतेषा नवानामग्निजीवाना प्रत्येकमेकैकाकाशप्रदेशे व्यपस्थापिताना-

घन, (२) दो प्रतर (वर्ग), (३) दो श्रेणि ६ । इनमें छठवा श्रेणीरूप भेद ही बहुतर क्षेत्र को पूरण करता है । अन्य पांच भेद अनादेशशास्त्रसमत नहीं है । छठवा ही श्रुतादेश-शास्त्रसमत है ।

इस का खुलाशा इस प्रकार से है—समस्त अग्निजीवों का जो घन बनाया गया है वह समचतुरस्र-समचतुष्कोण है, और उस की दो प्रकार से स्थापना की गई है—प्रथम प्रकारमें एक एक आकाश के प्रदेशमें एक एक अग्निजीव स्थापित किया गया है । द्वितीय प्रकारमें जितने असख्यातप्रदेशरूप आकाशक्षेत्र को एक अग्निजीवके शरीर ने रोक रखा है उस स्वावगाहित देहरूप आकाश के असख्यात प्रदेशमें एक एक अग्निजीव की स्थापना की गई है । इस तरह इस घनरचनामें असत्कल्पना द्वारा नौ अग्निजीव स्थापित किये जाते हैं ।

स्थापना यत्र—

○	○	○
○	○	○
○	○	○

(वर्ग) (३) ये श्रेणि तेभ्योभा छद्मी श्रेणीरूप लेद न बहुतर क्षेत्रने पूर्ण करे छे अन्य पाय लेद अनादेश-शास्त्रसमत नहीं छद्मी श्रुतादेश न शास्त्रसमत छे

तेनो खुलासा आ प्रभावे छे—समस्त अग्निजीवोना के घन बनाववामा आवेद छे ते समचतुरस्र-समचतुरस्र छे, अने तेनी ये रीते स्थापना करेद छे

(१) पहिला प्रकारमा एक एक आकाशना प्रदेशमा एक एक अग्निजीव स्थापित करेद छे (२) पीला प्रकारमा नेटला असख्यातप्रदेशरूप आकाश क्षेत्रने एक अग्निजीवशरीर रेडी राभेद छे ते स्वावगाहित देहरूप आकाशना असख्यात प्रदेशमा एक एक अग्निजीवनीस्थापना करेद छे आ रीते आ घनरचनामा असत्कल्पना वडे नव अग्निजीव स्थापित कराव छे

○	○	○
○	○	○
○	○	○

प्रदेशावगाहोऽप्यस्तु, इति चेन्नैत्रम्, कल्पनाऽपि सति सभवेऽविरोधिन्येव कर्तव्या, किं विरोधेन ? तस्मात्-असख्येयाकाशप्रदेशलक्षणस्वावगाहे श्रेण्यामेकैरुजीव स्थापनेन यः श्रेणिलक्षणः पृष्ठः पक्षः स एव श्रुते आदिप्टत्वात् ग्राह्यः। शेषास्तु से एक एक प्रदेशमे एक एक जीवका अवगाह मान लिया जावे तो आगम विरुद्धता कैसे आसकेगी ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये, कारण कि कल्पना भी वही की जानी चाहिये कि जो वहां सभवित होती हो, और जिसमे कोई विरोध नहीं आता हो। पूर्वोक्त कल्पना तो अविरोधिनी नहीं है। उसमें आगम से दोष आता है, आगममे एक जीव का आवारक्षेत्र लोकाकाश के असख्यातवे भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाशतक हो सकने का बतलाया गया है। यद्यपि लोकाकाश असख्यातप्रदेश परिमाण है तथापि असख्यात सख्या के भी असख्य प्रकार होने से लोकाकाश के ऐसे असख्यात भागों की कल्पना की जा सकती है, जो अगुलासख्येयभाग परिमाण हों। इतना छोटा एक भाग भी असख्यात प्रदेशात्मक ही होता है। उस एक भागमे कोई एक जीव रह सकता है, उतने दो भागमे भी रह सकता है। इसी तरह एक २ भाग बढ़ते २ आखिरकार सर्वलोकमे भी एक जीव रह सकता है, अर्थात् जीवद्रव्य का छोटे से छोटा आधारक्षेत्र अगुलासख्येय भाग

એક જીવની અવગાહના માનવામા આવે તો આગમવિરુદ્ધતા કેવી રીતે આવી શકશે ?

ઉત્તર—એવું ન ડહેવું જોઈ એ કારણ કે કલ્પના પણ એવી જ કરવી જોઈ એ કે જે ત્યા સભવિત થતી હોય, અને જેમા કોઈ વિરોધ આવતો ન હોય. પૂર્વોક્ત કલ્પના તો અવિરોધિની નથી તેમા આગમથી દોષ આવે છે. આગમમા એક જીવનું આધારક્ષેત્ર લોકાકાશના અસખ્યાતમા લાગથી લઈને સંપૂર્ણ લોકાકાશ સુધી હોઈ શકવાનું બતાવ્યું છે. જો કે લોકાકાશ અસખ્યાત પ્રદેશપરિમાણ છે તો પણ અસખ્યાત સખ્યાના પણ અસખ્યાત પ્રકાર હોવાથી લોકાકાશના એવા અસખ્યાત ભાગોની કલ્પના કરી શકાય છે કે જે આગળના અસખ્યેયભાગપરિમાણ હોય આવડો નાનો એક ભાગ પણ અસખ્યાત પ્રદેશાત્મક જ હોય છે તે એક ભાગમા કોઈ એક જીવ રહી શકે છે, એટલા જ ભાગમા પણ રહી શકે છે, આ રીતે એક એક ભાગ વધતા વધતા છેવટે સર્વલોકમા પણ એક જીવ રહી શકે છે, એટલે કે જીવદ્રવ્યનું નાનામા નાનું

याकाशप्रदेशात्मके स्वावगाहे एकैकाग्नि जीवस्थापनया च द्वितीयः २। एवमा-
यता सूच्याकारा श्रेणिरपि द्विमेदा । तत्र चत्वारो घनप्रतरपक्षाः, पञ्चमश्च-एकैकाका-
शप्रदेशस्थापितैकैरुजीवलक्षणः श्रेणिपक्षः, एते पञ्चापि न ग्राह्या, दोषद्वयानुपपन्नात् ।
तथाहि-पञ्चविधयाऽप्यनया स्थापनया स्थापिता अग्निजीवा अवधिज्ञानधरस्य
पट्टस्वपि दिक्षु असत्कल्पनया भ्राम्यमाणाः स्तोत्रमेव क्षेत्रं स्पृशन्तीत्येको दोषः ।
एकैकाकाशप्रदेशे एकैरुजीवस्थापनायामागमविरोधश्च द्वितीयो दोषः ।

ननु असख्येयाकाशप्रदेशान् विना आगमे जीवावगाहनिषेधादसत्कल्पनया

हित देहमे एक २ अग्नि जीव की स्थापना से द्वितीय प्रतर चनता है ।
इसी तरह सूची के आकार जैसी लयी श्रेणि भी दो प्रकार की है । इनमें
घन और प्रतर के दोर भेदरूप चार पक्ष, तथा एक २ आकाशप्रदेशमें
स्थापित एक एक जीवरूप पांचवा श्रेणिपक्ष, ये पांचो पक्ष ग्राह्य नहीं हुए
हैं, कारण कि ये दो दोषों से दूषित हैं ? इन दोनों दोषों का खुलाशा
इस प्रकार है-जब पांच प्रकार की इस स्थापना से स्थापित किये गये ये
अग्निजीव अवधिज्ञानी की छहों दिशाओंमें असत्कल्पना से इधर से
उधर घुमाये जावेगे तब ये स्तोत्र क्षेत्र का ही स्पर्श करेगे एक तो यह
दोष आता है १, दूसरा-एक २ आकाशप्रदेश के ऊपर एक २ जीव की
स्थापना करना यह आगम से विरुद्ध पडता है २ ।

शका—यद्यपि असख्यात आकाश प्रदेशों के विना आगममें एक
जीव के अवगाह का निषेध बतलाया गया है फिर भी असत्कल्पना

असख्यात प्रदेशरूप स्वावगाहित देहमा एक एक अग्निज्वली स्थापना वडे
भीजे प्रतर घने छे आठ प्रमाणे सूचीना आकार जेवी लापी श्रेणी पक्ष जे
प्रकारनी छे तेमनामा घन अने प्रतरना जे जे लेहइय आर पक्ष तथा एक
एक आकाश प्रदेशमा स्थापित एक एक ज्वलरूप पांचवा श्रेणीपक्ष, जे पांचे
पक्ष ग्राह्य तथा नहीं, कारण के ते जे दोषो वडे दूषित छे जे अने दोषोना
भुलासे आ प्रमाणे छे—ज्यारे पांच प्रकारनी आ स्थापनाथी स्थापित करैल
जे अग्निज्वल अवधिज्ञानीनी छजे दिशाओमा असत्कल्पनाथी अडीथी तडी
घुमावारे त्यारे जे स्तोत्र क्षेत्रना ज स्पर्श करै जे एक तो आ दोष आवशे (१)

भीजे—एक एक आकाश प्रदेशनी ऊपर एक एक ज्वली स्थापना करवी
ते आगमनी विरुद्ध गणुशे (२)

शका—जे के असख्यात आकाश प्रदेशोना विना आगममा एक ज्वली
अवगाहना निषेध बताव्यो छे ते छता असत्कल्पनाथी एक एक

असंख्येयाकाशखण्डानि स्पृशति, अत एताप्रदुत्कृष्टक्षेत्रमवधेर्विषयः, इत्युक्तं भवतीत्यादि स्वयमेव वक्ष्यतीति ॥

ननु पदभेदानां कल्पनं किमर्थं क्रियते, अयुक्तमेतत्, तथाहि—एकैकाकाशप्रदेशाणां जीवानां घनो यावत् एव जाकाशप्रदेशान् आक्रामति, प्रतरोऽपि तेषां तावत् एव आकाशप्रदेशान् आक्रामति, श्रेणिरपि तेषां तावत् एव तान् स्पृशति। सत्त्वप्रसारितनेत्रपट्टाक्रान्ताकाशप्रदेशप्रदित्येवमसंख्येयाकाशप्रदेशावगाहजीवघन-प्रतर-श्रेण्याक्रान्ताकाशप्रदेशानामपि स्वस्थाने सत्या तुल्यैव भावनीयेत्यतोऽवगाहभेदद्वयवान् घन एवास्तु, प्रतरो वा श्रेणिरेव वाऽस्तु, इति चेत्,

क्षेत्र अवधिज्ञान का विषयभ्रत निर्दिष्ट किया गया है। इत्यादि सब बातें सूत्रकार आगे स्वयं ही स्पष्ट करेगे।

शका—यह जो छह भेदों की कल्पना की गई है—वह अयुक्त है, क्योंकि एक एक आकाश के प्रदेशों में अवगाही जीवों का घन जितने आकाश के प्रदेशों की छूता है उतने ही प्रदेशों को उनका प्रतर भी छूता है और श्रेणि भी उनकी उतने ही प्रदेशों को छूती है। जिस प्रकार सकुचित अवस्थामें रक्खा हुआ नेत्रपट्ट जय पसार दिया जाता है तो वह जैसे सकुचित अवस्थामें जितने आकाशप्रदेशों को घेरे हुए या उतने ही प्रदेशों को वह पसार देने पर भी घेरता है। इस तरह असंख्य आकाश प्रदेशोंमें अवगाही जीव का घन, प्रतर एव श्रेणी ये सब अपने-२ द्वारा आक्रान्त हुए आकाश प्रदेशों को उतना ही छुंगे कि जितने आकाश प्रदेशों को एक दूसरेने छूआ है, कारण अपने-२ स्थानमें आकाशप्रदेशों

अवधिज्ञाननु विषयभूत निर्दिष्ट करवामा व्याज्यु छे धत्यादि षधी वातो सूत्रकार आगण वतते न स्पष्ट उरशे

ग का—आ ने छलेहोनी कल्पना करेल छे ते अयोग्य छे, कारण के अके अके आकाशना प्रदेशमा अवगाही जीवोना घन नेटला आकाशना प्रदेशने स्पर्श छे अटला न प्रदेशने तेना प्रतर पणु स्पर्श छे, अने तेमनी श्रेणि पणु अटला न प्रदेशने स्पर्श छे ने रीते सकुचित अवस्थामा राणेल नेत्रपट्ट न्यारे विस्तारवामा आवे छे त्यारे ते नेम सकुचित अवस्थामा नेटला आकाश प्रदेशोने घेरल हुतो अटला न प्रदेशने ते विस्तारवाधी पणु घेरे छे, अने रीते असंख्य आकाश प्रदेशोमा अवगाही जीवना घन प्रतर अने श्रेणी अे सौ पोत पोताना वडे आक्रान्त धयेल आकाश प्रदेशोने अटला न स्पर्श के नेटला आकाश प्रदेशोने अके पीना अे स्पर्श छे कारण के पोत पोताना स्थानमा आकाश प्रदेशोनी सभ्या तुल्य न छे

પશ્ચાનાદેશાઃ, સમગ્રોપદર્શનમાત્રેણોક્તત્વાત્ પરિહાર્યાઃ । इयं हि यथोक्तश्रेणिः एकैरुजीवस्या सख्येयाकाशप्रदेशावगाहे व्यवस्थापितत्वाद् बहुतर क्षेत्र स्पृशती त्येको गुणः, अग्गाहविरोधाभास्तु द्वितीयः । ततश्च-एपाऽग्निजीवश्रेणिरवधि-ज्ञानिन पदस्वपि दिक्षु असत्कल्पनया भ्रामिता सती अलोके लोकरप्रमाणानि

પરિમાણ કા સ્વરૂપ હોતા હૈ જો સમગ્ર લોકાકાશ કા ઇક અસપ્યાતવાં હિસ્તા હોતા હૈ ।

અવ ઇક ઇક પ્રદેશમેં અસત્કલ્પના સે જીવ કા અવગાહ-માનના આગમવિરોધ સે વિહીન કૈસે હો સકતા હૈ । અતઃ અસપ્યાત-પ્રદેશરૂપ સ્વાવગાહિત શ્રેણીમેં ઇક ૨ જીવ કી સ્થાપના સે જો શ્રેણીરૂપ છઠવા પક્ષ હૈ વહી આગમમે આદિષ્ટ હોને સે ગ્રાહ્ય માના ગયા હૈ । બાકી કે પાચ પક્ષ આદિષ્ટ ન હોને કી વજહ સે પરિહાર્ય વતલાયે ગયે હૈ । વહા જો ડનકા કથન ક્રિયા ગયા હૈ વહ કેવલ સમાવનામાત્ર કો દિખલાને કે લિયે હી ક્રિયા ગયા હૈ । યહ યથોક્ત શ્રેણિ ઇક ઇક જીવ કો અસલ્યેય આકાશપ્રદેશરૂપ આધારમે વ્યવસ્થાપિત હોનેકી વજહ સે ઇક તો ઘટુત અધિક ક્ષેત્ર કા સ્પર્શ કર લેતી હૈ । ડૂસરે-ઈસ માન્યતામે અવગાહ કા વિરોધ ખી નહી આતા હૈ । ઇસ તરહ યહ અગ્નિજીવોં કી શ્રેણિ અવધિ જ્ઞાની કી છઠોં દિશાઓમે અસત્કલ્પના સે ઘુમાને પર અલોકમેં લોક પ્રમાણ અસલ્યેય આકાશસ્વરૂપો કો સ્પર્શ કરતી હૈ, ઇસલિયે ઇતના ઉત્કૃષ્ટ

આધારક્ષેત્ર આગળના અસખ્યેયભાગપરિમાણુનેા ખડ હોય છે જે સમગ્ર લોકાકાશનેા એક અસખ્યાતમે ભાગ હોય છે

હવે એક એક પ્રદેશમા અસત્કલ્પનાથી જીવની અવગાહના માનવી તે આગમવિરોધ વિનાનુ ડેવી રીતે થઈ શકે છે, તેથી અસખ્યાત પ્રદેશરૂપ સ્વાવગાહિત શ્રેણીમા એક એક જીવની સ્થાપનાથી જે શ્રેણિરૂપ છઠો પક્ષ છે એ જ આગમમા આદિષ્ટ હોવાથી ગ્રાહ્ય (સ્વીકારવા યોગ્ય) મનાયો છે બાકીના પાચ પક્ષ આદિષ્ટ ન હોવાને કારણે પરિહાર્ય બતાવ્યા છે અહીં જે તેમનુ કથન કરેલ છે તે ક્રૂતા સભાવનામાત્રને જ દર્શાવવા માટે કરેલ છે આ યથોક્ત શ્રેણિ એક એક જીવને અસખ્યેય આકાશપ્રદેશરૂપ આધારમા વ્યવસ્થાપિત હોવાને કારણે એક તો ઘણા જ અધિક ક્ષેત્રનેા સ્પર્શ કરી લે છે ખીલુ આ માન્યતામા અવગાહનાનેા વિરોધ પણ આવતો નથી આ રીતે આ અગ્નિજીવોની શ્રેણિ અવધિજ્ઞાનીની છબ્બે દિશાઓમા અસત્કલ્પનાથી ધૂમાવવાથી અલોકમા લોકપ્રમાણુ અસખ્યેય આકાશ ખડોનેા સ્પર્શ કરે છે તેથી આટલું વિસ્તૃત ક્ષેત્ર

स्पृशति, स एव इह ग्राह्यः । एवं च सति तेषां भेदः स्वीकरणीयः । तथाहि-
 एकैरुप्रदेशावगाढजीवघनो भ्राम्यमाणो यावत् क्षेत्रं स्पृशति, तस्मादसंख्येयप्रदे-
 शावगाढजीवघनोऽसरयेयगुणं स्पृशति । ततोऽप्येकैरुप्रदेशावगाढजीवप्रतरोऽसंख्ये-
 यगुणं स्पृशति । तस्मादप्यसंख्येयप्रदेशावगाढजीवप्रतरोऽसरयेयगुणं स्पृशति ।
 तस्मादप्येकैरुप्रदेशावगाढजीवश्रेणिरसंख्येयगुणं स्पृशति । तस्मादप्यसंख्येयाकाशप्र-
 देशावगाढैकैरुप्रदेशावगाढजीवश्रेणिरसरयेयगुणं क्षेत्रं स्पृशति । तच्चा लोके लोकरूपमाणान्यसं-
 रयेयाकाशखण्डानि स्पृशति । अत एव एतावत् उत्कृष्टक्षेत्रमवप्रेर्विषय इत्युक्तम् ।

धूमता हुआ बहुतर क्षेत्र का स्पर्श करता है वही ग्राह्य माना है । इस प्रकार मानने पर यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि इन छह प्रकारोंमें भेद है । जैसे-एक एक आकाश के प्रदेशमें अवगाढ-रहा हुआ जो एक जीव का घन है वह धूमता हुआ जितने क्षेत्र का स्पर्श करता है उसकी अपेक्षा असरयात आकाश प्रदेशोंमें अवगाढ हुआ जीव का घन अस-रयात गुणित क्षेत्र का स्पर्श करने वाला होगा । उस की अपेक्षा भी एक एक प्रदेशमें अवगाढ जीव प्रतर असरयात गुण क्षेत्र का स्पर्श करेगा, उससे भी असख्यातगुणित क्षेत्र का स्पर्श असरयेयप्रदेशावगाढ जीव-प्रतर करेगा, इस की अपेक्षा भी जो एकएकप्रदेशावगाढ जीव श्रेणि होगी वह असरयात गुणित क्षेत्र को स्पर्श करेगी, और इस की अपेक्षा भी जो असरयातआकाश प्रदेशावगाढ एकएकअग्नि जीवश्रेणि होगी वह असख्यात गुणित क्षेत्र का स्पर्श करेगी । इस तरह एक एक प्रदेशा-वगाढ जीव घन से लेकर असख्यात आकाशप्रदेशावगाढ एक-एक

(स्वीकारवा योग्य) मान्यु छे आ रीते मानवाधी अे वात स्वत सिद्ध थर्ष न्य छे के ते छ प्रकारेमा लेठ छे नेम-अेक अेऽ आकाशना प्रदेशमा अवगाढ (रडेल) ने अेऽ एवने घन छे ते धूमता धूमता नेटला क्षेत्रने स्पर्श करे छे तेना करता असख्यात आकाश प्रदेशेमा अवगाढ (गडेल) एवने घन असख्यातगुण क्षेत्रने स्पर्श करनार डशे तेना करता पषु अेऽ अेक प्रदेशमा अवगाढ एवने प्रतर असख्यात गुण क्षेत्रने स्पर्श करशे, तेना करता पषु असख्यात गुण क्षेत्रने स्पर्श असख्येय प्रदेशावगाढ एव प्रतर करशे, तेना करता पषु ने अेक-अेक-प्रदेशावगाढ एवश्रेणि डशे ते असख्यात गुण क्षेत्रने स्पर्श करशे, अने तेना करता पषु ने असख्यातआकाशप्रदेशावगाढ अेक अेक अग्नि एव श्रेणि डशे ते असख्यात गुण क्षेत्रने स्पर्श करशे आ रीते अेऽ-अेक-प्रदेशावगाढ एव घनथी लधने असख्यात आकाशप्रदेशावगाढ

उच्यते—अस्याः पञ्चविधरूपनाया भेदोऽप्रश्य मन्तव्यः । घनाद्यक्रान्ता ये आकाशप्रदेशास्तेषां सख्या समत्वविषमत्वेन चिन्त्ये, किंतु घनादीनां मध्याद् यः कश्चिद् रचनाविशेषोऽधिज्ञानिनः सर्वासु दिक्षु भ्राम्यमाणो बहुतर क्षेत्र की सख्या तुल्य ही है । यद्यपि सवृत्त अवस्थामें रसग्या हुआ नेत्रपट्ट पसारने पर जगह अधिक घेरता है, इस तरह वह पहिले की अपेक्षा अधिक प्रदेशों को घेरने वाला मानना चाहिये, परन्तु सवृत्त अवस्थामें जितने स्थान को उसने घेर रखा है उतने स्थानमें भी असरग्यात प्रदेश हैं और जिनने स्थान को बादमें उसने पसारने पर घेरा है उतनेमें भी असख्यात ही प्रदेश हैं । इस अपेक्षा से यहा स्वस्थानमें प्रदेशों की सख्या तुल्य बतलाई गई है । इस अपेक्षा को लेकर ऐसा कहना है कि या तो अवगाह के दो भेदो वाला घन मानो, प्रतर मानो या श्रेणि मानो । इन छह भेदों की कल्पना करना व्यर्थ है । कारण इनमें कोई भेद नहीं बनता है ।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है । कारण इस छह प्रकार की कल्पनामें भेद तो अवश्य मानना चाहिये । यहा यह विचार नहीं किया गया है कि घनादि द्वारा आक्रान्त जितने आकाश के प्रदेश हें वे सम हैं या विषम हैं । यहा तो यह प्रकट किया जा रहा है कि इन घन आदि कों में से जो कोई रचनाविशेष अवधिज्ञानी की समस्त दिशाओमें

ने के सवृत्त अवस्थामा राणेल नेत्रपट्ट विस्तारवाधी जग्या वधारे घेरे छे, आ शीते ते पडेवा करता वधारे प्रदेशोने घेरनार मानवो नोछये, पणु सवृत्त अवस्थामा नेटला स्थानने तेछे घेरी राणेल छे अेटला स्थानमा पणु असख्यात प्रदेश छे, अने नेटला स्थानने त्यार पछी तेछे विस्तार पाभता घेरेव छे अेटलामा पणु असख्यात ज प्रदेश छे आ अपेक्षाये अही स्वस्थानमा प्रदेशोनी सख्या तुल्य पातावेल छे आ अपेक्षाने लधने अेषु कडेवु नोछये के कातो अवगाहनाने छे लेहोवाणो घन मानो, प्रतर मानो के श्रेणि मानो अे छ लेहोनी कल्पना करवी ते व्यर्थ छे, कारण के तेओमा कोर्ध लेह अनतो नथी

उत्तर—अेभ कडेवु ते परापर नथी कारण के ते छ प्रकारनी कल्पनामा लेह तो जर मानवो नोछये अही आ विचार करवामा आव्यो नथी के घनादि वडे आक्रान्त नेटला आकाशना पहार्थ छे तेओ सम छे के विरम छे ? अही तो आ प्रगट कराय छे के अे घन आदिकोमाधी ने डोछ रचनाविशेष अवधि ज्ञानीनी समस्त दिशाओमा धुभता बहुतर क्षेत्रनो स्पर्श करे छे अेज आद्य

મેવોચ્યતે । યદ્યેતાવતિ ક્ષેત્રે દ્રષ્ટવ્ય કિમપિ દ્રવ્યં ભવેત્, તત્ તદાઽવધિજ્ઞાની પશ્યેત્, ન ચ તદ્ દ્રષ્ટવ્ય તત્રાલોકે કિમપિ સમપતિ, યતોઽયમવધિસ્તીર્થકરાદિભિઃ 'રુપિદ્રવ્યમાત્રવિપયકો ભવતી'—ત્યુક્તમ્, તત્ત્વ રુપિદ્રવ્યમલોકે નાસ્તીતિ ।

નનુ યદ્યેવમવધિલોકપ્રમાણો ભૂત્વા વિશુદ્ધિવશેન લોકાદ્ વહિરપ્યસૌ વર્ધતે તત્ર તદ્દૃષ્ટેઃ કિં ફલમ્ ? લોકાદ્ વહિર્દ્રષ્ટવ્યાભાવાદિતિ ચેત્,

વહ તો અમૂર્ત છે, વહ उसका विषय भी कैसे हो सकता है ? परन्तु 'इतना क्षेत्र अवधिज्ञान का विषय है' ऐसा जो कहा जाता है इससे केवल उसका सामर्थ्य ही दिखलाया जाता है, और इसका तात्पर्य यह निकलता है कि यदि इतने क्षेत्रमें द्रष्टव्य ज्ञातव्य यदि कोई भी द्रव्य हो, तो अवधिज्ञानी उस को देख सकता है, परन्तु अलोकाकाशरूप क्षेत्रमें तो कोई ऐसा द्रव्य द्रष्टव्य है ही नहीं कि जिस को यह देख सके, यदि वहा ऐसा कोई द्रव्य होता तो उस को यह देख लेता । इसीलिये तीर्थकरादिकोंने—'अवधिज्ञान का विषय रूपी द्रव्य है' ऐसा कहा है । आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य अलोकाकाशमें नहीं है ।

જાંકા—इस तरह से अवधिज्ञान, लोकप्रमाण होकर यदि विशुद्धि के वश से लोक के बाहिर भी बढ़ जाता है तो फिर इसकी वहा पर वृद्धि से क्या फल निकल सकता है ? वहां पर तो इसकी वृद्धि केवल निष्फल ही मानी जावेगी, कारण—वहा द्रष्टव्य तो कोई द्रव्य है ही नहीं कि जिस को देखकर यह अपनी वृद्धिमें सफलित हो सके ?

છે, તે તેના વિષય પણ કેવી રીતે હોઈ શકે ? પણ “આટલું ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનો વિષય છે” એવું જો કહેવાય છે તેના વડે શક્ત તેની શક્તિ જ બતાવવામા આવે છે, અને તેનું તાત્પર્ય આ નિકળે છે કે જો આટલા ક્ષેત્રમા દ્રષ્ટવ્ય-જ્ઞાતવ્ય જો કોઈ પણ દ્રવ્ય હોય તો અવધિજ્ઞાની તેને જોઈ શકે છે પણ અલોકાકાશરૂપ ક્ષેત્રમા તો એવું કોઈ દ્રવ્ય દ્રષ્ટવ્ય છે જ નહીં કે જેને તે જોઈ શકે, જો ત્યાં એવું કોઈ દ્રવ્ય હોત તો તેને તે જોઈ લેત તેથી જ તીર્થ કરાદિકેાએ એવું કહ્યું છે કે ‘અવધિજ્ઞાનનો વિષય, રૂપી દ્રવ્ય છે’ આકાશના સિવાય ખીનું કોઈ દ્રવ્ય અલોકાકાશમા નથી

શકા—આ રીતે અવધિજ્ઞાન, લોકપ્રમાણ થઈને જો વિશુદ્ધિના વશવડે લોકની બહાર પણ વધી જાય છે તો પછી તેની ત્યાં વૃદ્ધિથી કયું પરિણામ આવી શકે છે ? ત્યાં તો તેની વૃદ્ધિ તદ્દન નિષ્ફળ જ મનાશે, કારણ કે ત્યાં દ્રષ્ટવ્ય તો કોઈ દ્રવ્ય છે જ નહીં કે જેને જોઈને તે પોતાની વૃદ્ધિમા સફળ થઈ શકે ?

ननु रूपिद्रव्याण्येवावधि पश्यति, क्षेत्र त्वमूर्तत्वात् कथं तद्विषयः?, इति चेत्, उच्यते—‘एतावत् क्षेत्रमध्येर्विषयः’ इति यदुच्यते, तदे तत् तस्य सामर्थ्यमात्र-
अग्नि जीवश्रेणितक क्रमशः आकाशप्रदेश असरयातगुणित होता जाता है, और यह अलोकमें लोकप्रमाण असरुयेय आकाशखडों तक बढ़ जाता है। इस तरह छठवा भेदरूप जो श्रेणि है वह अलोकमें लोक-
प्रमाण असरयात आकाशखडों को स्पर्श करने वाली घन जाती है, और इतना ही अवधिज्ञान का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र सिद्ध होता है।

शका—अवधिज्ञान का विषय तो शास्त्रकारोंने रूप, गंध, रस, और स्पर्शवाला रूपी पदार्थ ही घतलाया है फिर आप उसका विषय अरूपी पदार्थ क्यों घतला रहे हैं? क्षेत्र तो अमूर्त है और वह अवधिज्ञान का जब विषयभूत होगा तब ‘अवधिज्ञान अरूपी पदार्थ को जाननेवाला है’ यह बात माननी पड़ेगी जो सिद्धान्त की मान्यता से प्रतिकूल पड़ती है। इस प्रतिकूलता के वारण करने के लिये यदि कहा जाय कि अरूपी पदार्थ अवधिज्ञान का विषय नहीं होता है तो फिर क्षेत्र अमूर्त होने से उसका विषय कैसे माना जा सकता है?।

उत्तर—यह शका विना समझे की गई है, क्यों कि—सूत्रकार यह कहा कहते हैं कि—‘इतना आकाशरूप क्षेत्र अवधिज्ञान का विषय है’।

એક એક અગ્નિજીવશ્રેણિ સુધી ક્રમશઃ આકાશપ્રદેશ અસરયાત ગણેા થતો બન્ય છે, અને આ અલોકમા લોકપ્રમાણ અસરયેય આકાશખડો સુધી વધી બન્ય છે આ રીતે છઠ્ઠા ભેદરૂપ જે શ્રેણિ છે તે અલોકમા લોકપ્રમાણ અસરયાત આકાશખડોને સ્પર્શ કરનારી બની બન્ય છે, અને એટલુ જ અવધિજ્ઞાનનુ ઉત્કૃષ્ટ વિષયક્ષેત્ર સિદ્ધ થાય છે

શકા—અવધિજ્ઞાનનો વિષય તો શાસ્ત્રકારોએ વર્ણુ, ગંધ, રસ, અને સ્પર્શવાળો રૂપી પદાર્થ જ બતાવ્યો છે તો પછી આપ તેનો વિષય અરૂપી પદાર્થ શા માટે બતાવો છે? ક્ષેત્ર તો અમૂર્ત છે અને તે બ્યારે અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત થશે ત્યારે ‘અવધિજ્ઞાન અરૂપી પદાર્થને બળુનારૂ છે’ આ વાત માનવી પડશે કે જે સિદ્ધાંતની માન્યતાથી પ્રતિકૂળ છે આ પ્રતિકૂળતાનુ નિવારણ કરવા માટે જે એમ કહેવાય કે અરૂપી પદાર્થ અવધિજ્ઞાનનો વિષય હોતો નથી તો પછી ક્ષેત્ર અમૂર્ત હોવાથી તેનો વિષય કેવી રીતે માની શકાય?

ઉત્તર—આ શકા સમન્યા વિના કરેલ છે, કારણ કે સૂત્રકાર એવુ કયા કહે છે કે “આટલુ આકાશરૂપ ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાનનો વિષય છે” તે તો અમૂર્ત

मूलम्—अंगुलमावलियाणं, भागमसंखेज्ज दोसु सखेज्जा ॥

अगुलमावलियंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्त ॥ ३ ॥

छाया--अगुलावलिकयोः, भागमसखेय द्वयोः सखेयम् ।

अगुलमावलिकान्तः, आवलिकामगुलपृथक्त्वम् ॥ ३ ॥

टीका—‘अगुलमावलियाण’ इत्यादि । अगुलमिह क्षेत्राधिकारात् प्रमाणा-
गुल गृह्यते । अर्ध्यधिकारादुत्सेयागुलमिति च केचिदाहुः । असंखेयसमय-
सघातात्मकः कालविशेष आवलिका । अगुल चावलिका च अगुलावलिके, तयो-
गुलावलिकयोर्भागमसखेय पश्यति अवधिज्ञानी ।

यहा तक अवधिज्ञान का जघन्य और उत्कृष्ट विषयभूत क्षेत्र वत-
लाया गया है । इन दोनों के बीच का जो क्षेत्र है वह सब मध्यमक्षेत्र
है, इस मध्यम क्षेत्रविशेषमें जो कालका मान होता है, और जितने
कालमें वह मध्यमक्षेत्र होता है इस बात को सूत्रकार चार गाथाओं
द्वारा स्पष्ट करते हैं—

‘अगुलमावलियाण’ इत्यादि ।

क्षेत्र का अधिकार होने से यहा अगुल-शब्द से प्रमाणांगुल ग्रहण
किया है । कोई ० ऐसा भी कहते हैं कि अवधिज्ञान का अधिकार होने
से अगुल-शब्द से उत्सेयांगुल लिया गया है । असख्यात समय का
समुदायरूप कालविशेष है उसका नाम आवलिका है । अवधिज्ञानी
अगुल एव आवलिका के असख्यातवें भाग को जानता है, देखता है ।

अही सुधी अवधिज्ञाननु जघन्य अने उत्कृष्ट विषयभूत क्षेत्र यताव्यु
छे ते अन्नेनी वख्येनु जे क्षेत्र छे ते णधु मध्यम क्षेत्र छे आ मध्यम क्षेत्र
विशेषभा जे काणनु मान डोय छे, अने जेटला काणभा ते मध्यमक्षेत्र थाय
छे ते वातने सूत्रकार चार गाथाओ वडे स्पष्ट करे छे—“अगुलमाव-
लियाण” इत्यादि

क्षेत्रको अधिकार होवाधी अही ‘अगुल’ शब्दधी प्रमाणांगुल ग्रहण
करैल छे कांठ कांठ एवु पणु कडे छे के अवधिज्ञानको अधिकार होवाधी
अगुल-शब्दधी उत्सेयांगुल लेवायु छे अस ज्घ्यात समयना समुदायरूप जे
काणविशेष छे, तेनु नाम आवलिका छे अवधिज्ञानी अगुल अने आवलिकाना
अस ज्घ्यातभा भागने लखे छे, देखे छे तेनु तात्पर्य आ प्रमाणे छे—न्यारे

ઉચ્ચતે—વિશુદ્ધિવશેન લોકાદ ગ્રહિર્વર્ધમાનોઽવધિર્લોકસ્થમેગાધિકતર
પશ્યતિ । સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતરં, સૂક્ષ્મતમ ચ યાવત્ સર્વતઃ સૂક્ષ્મ પરમાણુમપિ પરમાવધિઃ
પશ્યતિ । એતદેવ તદ્દૃષ્ટેસ્તાત્ત્વિક ફલમિતિ । અલોકે તુ તસ્ય લોકપ્રમાણા સરણ્યે-
યાકાશાક્ષણદેષુ દ્રવ્યદર્શનસામર્થ્યમેગાસ્તીતિ ॥ ગા૦ ૨ ॥

જઘન્યમુત્કૃષ્ટ ચાવધિક્ષેત્રમુક્તમ્, અથ એતસ્માદન્યત્ સર્વં મન્યમં ક્ષેત્રમિતિ
પરિશેપાદવગમ્યત એન । યસ્મિન્ મન્યમક્ષેત્રનિશેપે યત્ કાલમાન મગતિ, યાતિ ચ
કાલે યદ્ મધ્યમ ક્ષેત્રં ભવતિ, તત્પદર્શનાય ગાથાચતુષ્ટયમાહ—

ઉત્તર—હસ કી વૃદ્ધિ કા યદ્ ફલ ધોડે હી હૈ કિ યદ્ અલોકાકા-
શમૈં ભી યદિ દ્રવ્ય હોવે તો ઉસે દેખકર અપની વૃદ્ધિ કી સફલતા સાર્થક
કરે, ઓર વહા પર જવ દ્રવ્ય દ્રવ્ય હૈ નહીં તો ઉસકે અભાવમૈં યદ્
અપની વૃદ્ધિમૈં અસફલિત માના જાવે । વૃદ્ધિ કા તાત્પર્ય તો કેવલ હતના
હી હૈ કિ વિશુદ્ધિ કે વશ સે લોક સે ભી વાહિર ગ્રહિત હુઆ યદ્ અવ-
ધિજ્ઞાન અપને વિષયભૂત લોકસ્થ રૂપી દ્રવ્ય કો હી અધિકતર રૂપમૈં
વિશુદ્ધ દેખતા હૈ । પરમાવધિ જો અવધિજ્ઞાન હોતા હૈ વદ્ સૂક્ષ્મ,
સૂક્ષ્મતર, સૂક્ષ્મતમ દ્રવ્ય કો દેખતા હુઆ સવ સે સૂક્ષ્મ પરમાણુ કો ભી
દેખને વાલા હોતા હૈ । યહી અવધિજ્ઞાન કી વર્દમાનતા કા તાત્વિક ફલ
હૈ । અલોકાકાશમૈં તો લોકપ્રમાણ અસરણ્યેય આકાશાક્ષણમૈં દ્રવ્યદર્શન
કી હસમે સામર્થ્ય હી હૈ । વહા કોઈ ભી દૂસરા દ્રવ્ય હૈ નહીં અતઃ વદ્
ઉસ અપેક્ષા વહા અનભિવ્યક્ત હૈ ॥ ગા. ૨ ॥

ઉત્તર—તેની વૃદ્ધિનું આ ક્ષણ થોડું જ છે કે તે અલોકાકાશમા પણ બે
દ્રવ્ય હોય તો તેને બેઈને પોતાની વૃદ્ધિની સફળતા સાર્થક કરે, અને ત્યા
બે દ્રવ્ય દ્રવ્ય નથી તો તેના અભાવમા તે પોતાની વૃદ્ધિમા નિષ્ફળ મનાય !
વૃદ્ધિનું તાત્પર્ય તો ફક્ત એટલું જ છે કે વિશુદ્ધિવશથી લોકસ્થ પણ બહાર
વધેલ તે અવધિજ્ઞાન પોતાના વિષયભૂત લોકસ્થ રૂપી દ્રવ્યને જ અધિકતરરૂપે
વિશુદ્ધ બોલે છે જે પરમાવધિ અવધિજ્ઞાન હોય છે તે સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર, અને
સૂક્ષ્મતમ દ્રવ્યને બેતા બેતા બધા કરતા સૂક્ષ્મ પરમાણુને પણ બોનાર હોય
છે આજ અવધિજ્ઞાનની વૃદ્ધિનું તાત્વિક ક્ષણ છે અલોકાકાશમા તો લોકપ્રમાણ
અસરણ્યેય આકાશાક્ષણમા દ્રવ્યદર્શનની તેનામા શક્તિ છે જ ત્યા કોઈ પણ
બીજું દ્રવ્ય નથી તેથી તે અપેક્ષાએ ત્યાં અનભિવ્યક્ત છે ॥ ગા ૨ ॥

तथा—‘ अगुलमावलिजतो ’ इति । यदा क्षेत्रतोऽगुलं पश्यति तदा कालत आवलिकान्तः=आवलिकाया अन्तरे, न तु बहिः, किचिन्न्यूनामावलिकां पश्यतीत्यर्थः । तथा—‘ आवलिया अगुलपुहुत्त ’ इति, यदा कालत आवलिका पश्यति तदा क्षेत्रतोऽगुलपृथक्त्वम्—अङ्गुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र पश्यति । पृथक्त्व च—शास्त्रपरिभाषया ‘द्विप्रभृति नवपर्यन्ता संख्या’ इति सर्वत्र द्रष्टव्यम् ॥गा.३॥

तथा क्षेत्र की अपेक्षा जिस समय वह एकअगुलप्रमाण क्षेत्र को देखता है उस समय वह काल की अपेक्षा किञ्चित् न्यून आवलिकाप्रमाण काल को भी देखता है । जिस समय काल की अपेक्षा एक आवलिका प्रमाण काल को देखता है उस समय वह क्षेत्र की अपेक्षा अगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र को देखता है । ‘पृथक्त्व’ यह दो से लेकर नौ पर्यन्त की संख्या का नाम शास्त्रीय परिभाषामें बतलाया गया है ।

भावार्थ—इस गाथामें क्षेत्र और काल को विषय करने की बात सूत्रकार ने कही है । यद्यपि क्षेत्र और काल, ये दोनों अभूर्तिक हैं, इन्हें अवधिज्ञानी नहीं जान सकता है, कारण अवधिज्ञान का विषय मूर्तिक पदार्थ ही बतलाया गया है । इसलिये जहां ऐसा कहा गया है कि अवधिज्ञानी क्षेत्र और काल को इतने २ रूपमें जानता है वहां ऐसा ही जानना

तथा क्षेत्रनी अपेक्षाये न्यारे ते अेकअगुलप्रमाण क्षेत्रने देणे छे ते समये ते काणनी अपेक्षाये काधठ ओछा आवलिजा प्रमाण काणने पणु देणे छे जे समये काणनी अपेक्षाये अेक आवलिका प्रमाण काणने देणे छे ते समये ते क्षेत्रनी अपेक्षाये अगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्रने देणे छे “ पृथक्त्व ” आ जेथी लधने नव सुधीनी सभ्यानु नाम शास्त्रीयपरिभाषामा जताव वामा आंयु छे

भावार्थ—आ गाथामा क्षेत्र अने काणने विषय करवानी बात सूत्रकारे कही छे जे के क्षेत्र अने काण अे अने अभूर्तिक छे, तेमने अवधिज्ञानी नाली शकतो नथी, नारणु के अवधिज्ञानने विषय मूर्तिक पदार्थ, जे जतावाये छे. तेथी न्या अेवु कडेवायु छे के अवधिज्ञानी क्षेत्र अने काणने आटला इभमा नाले छे त्या अेम जे नालवु जेध अे के आटला क्षेत्रगत अने काणगत इपी

एतदुक्तं भवति—अवधिज्ञानी यदा क्षेत्रतोऽगुलस्यासख्येयभागमात्रं पश्यति तदा कालतः—आवलिकायां अप्यसख्येयमेव भागमतीतमनागतं च पश्यतीति । क्षेत्रकालदर्शने चोपचारेणोच्यते । यतः क्षेत्रतः क्षेत्रव्यवस्थितानि दर्शनयोग्यानि द्रव्याणि पश्यति, कालतस्तु द्रव्यपर्यायान् विवक्षितकालान्तर्वर्तिनः पश्यत्यवधिर्न तु क्षेत्रकालौ, तस्य रूपिद्रव्यालम्बनत्वात् । एवमग्रेऽपि सर्वत्र द्रष्टव्यम् । इह गाथात्रयेऽपि 'जानाति, पश्यति' इति क्रियापदमध्याहार्यम् ।

तथा—'दोसु सखिज्जा' इति—द्वयोः=अगुलावलिकयोः सरयेय भाग पश्यति । यदाऽवधिज्ञानी—अगुलस्य सख्येयभागमात्रं पश्यति तदा—आवलिकाया अपि सख्येयमेव भाग पश्यतीत्यर्थः ।

इस का तात्पर्य इस प्रकार से है—जब अवधिज्ञानी क्षेत्र की अपेक्षा अगुल के असख्येयभागमात्र क्षेत्र को देखता है उस समय वह काल की अपेक्षा आवलिका के असख्यातवे भागमात्र ही अतीत अनागत काल को भी देखता है । क्षेत्र और काल को अवधि देखता है, यह तो उपचार से कहा जाता है, कारण कि क्षेत्र की अपेक्षा क्षेत्रव्यवस्थित दर्शनयोग्य द्रव्यों को ही अवधिज्ञानी देखता है, और काल की अपेक्षा विवक्षित कालान्तर्वर्ती पुद्गलद्रव्य की पर्यायों को ही देखता है, क्षेत्र और काल को नहीं देखता है, क्योंकि ये अमूर्त्तिक हैं, और अवधिज्ञान का विषय मूर्त्तिक द्रव्य है । “जानाति पश्यति” इन क्रियापदों का अध्याहार आगेकी तीन गाथाओंमें और लगा लेना चाहिये । अवधिज्ञानी जीव जिस समय अगुल के असख्येयभागमात्र क्षेत्र को देखता है, उस समय वह आवलिका के सख्येयभाग मात्र काल को भी देखता है ।

अवधिज्ञानी क्षेत्रની અપેક્ષાએ આગળના અસખ્યેય ભાગમાત્ર ક્ષેત્રને દેખે છે તે વખતે તે કાળની અપેક્ષાએ આવલિકાના અસખ્યાતમા ભાગમાત્ર જ અતીત (ભૂત) અનાગત (ભવિષ્ય) કાળને પણ દેખે છે ક્ષેત્ર અને કાળને અવધિ 'દેખે છે' એ તો ઉપચારથી કહેવાય છે, કારણ કે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રવ્યવસ્થિત દર્શનયોગ્ય દ્રવ્યોને જ અવધિજ્ઞાની દેખે છે, અને કાળની અપેક્ષાએ વિવક્ષિત કાલાન્તર્વર્તી પુદ્ગલ દ્રવ્યની પર્યાયોને જ બાંધે છે, ક્ષેત્ર અને કાળને બાંધતા નથી, કારણ કે તેઓ અમૂર્તિક છે અને અવધિજ્ઞાનનો વિષય મૂર્તિક દ્રવ્ય છે “જાનાતિ, પશ્યતિ” આ ક્રિયાપદોનું અધ્યાહાર આગળની ત્રણ ગાથાઓમા વધુમા લગાડી લેવું જોઈએ અવધિજ્ઞાની જીવ જે સમયે આગળના અસખ્યાતમા ભાગમાત્ર ક્ષેત્રને દેખે છે, તે સમયે તે આવલિકાના સખ્યેયભાગમાત્ર કાળને પણ દેખે છે

विषयोऽवधिः कालतो मुहूर्तान्तिः=किञ्चिन्न्यून मुहूर्तं पश्यतीत्यर्थः । अवध्यवधिम-
 तोरभेदोपचारादवधिः पश्यतीत्युच्यते । 'दिवसतो गाउयम्मि वोद्धवो' इति, यदा
 कालतः दिवसान्तः=किञ्चिन्न्यून दिवस पश्यति तदा-क्षेत्रतो गव्यूते-गव्यूतविष-
 योऽवधिर्द्वयः, क्रोशपरिमितक्षेत्र पश्यतीत्यर्थः । 'जोयणदिवसपुहुत्तं' योजन-
 दिवसपृथक्त्वम् ' इति, क्षेत्रतः-योजनक्षेत्रविषयोऽवधिः, कालतो दिवसपृथक्त्व
 पश्यति । ' पस्वतो पन्नमीमाओ ' ' पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ' इति । यदा कालतः
 पक्षान्तः=किञ्चिन्न्यून पक्ष पश्यति तदा क्षेत्रतः पञ्चविंशतिः=पञ्चविंशतियोजनानि
 पश्यति ॥ गा. ४ ॥

मूलम्-भरहम्मि अड्डमासो, जवुदीवामि साहिओ मासो ।

वासं च मणुयलोए, वासपुहुत्त च रुयगम्मि ॥५॥

त्रया-भस्तेऽर्धमामो, जम्बुद्वीपे-सायिको मास' ।

वर्षं च मनुष्यलोक, वर्षपृथक्त्व च रुचके ॥ ५ ॥

काल की अपेक्षा किञ्चित् न्यून एक मुहूर्त को देखता है । सूत्रमें जो
 ऐसा कहा है कि अवधि देखता है वह अवधिज्ञानीमे अभेद के उपचार
 से ही कहा गया है । जिस समय काल की अपेक्षा अवधिज्ञान कुछ कम
 एक दिवसरूप काल को जानता है उस समय क्षेत्र की अपेक्षा वह गव्यू-
 निपरिमित क्षेत्र को-एक क्रोश प्रमाण क्षेत्रस्थित द्रव्य को जानता है ।
 क्षेत्र की अपेक्षा एक योजन क्षेत्रविषयक अवधि काल की अपेक्षा से
 दिवसपृथक्त्व को जानता है । तथा काल की अपेक्षा जिस समय अव
 धिज्ञान किञ्चिन्न्यून एक पक्षको जानता है उस समय वह क्षेत्रकी अपेक्षा
 पचीसयोजनपरिमित क्षेत्र को जानता है ॥गा ४॥

अपेक्षाके कारण न्यून ओऽ मुहूर्तने हेजे छे सूत्रमा के ओपु उल्लु छे के
 'अवधि हेजे छे' ते अवधिज्ञान अने अवधिज्ञानीमा असेहना उपचारथी न
 कहेल छे के समये डाणनी अपेक्षाके अवधिज्ञान थोडा ओछा ओक दिवसउप
 डाणने लहे छे ते समये क्षेत्रनी अपेक्षाके ते गव्यूतिपरिमित क्षेत्रने-ओक डाय
 प्रमाण क्षेत्रस्थित द्रव्यने-लहे छे क्षेत्रनी अपेक्षाके ओकयोजनक्षेत्रविषयक
 अवधि डाणनी अपेक्षाके दिवसपृथक्त्वने लहे छे तथा डाणनी अपेक्षाके के
 समये अवधिज्ञान कारण ओछु ओऽ पक्षने लहे छे ते समये क्षेत्रनी अपे
 क्षाके पचीसयोजनपरिमित क्षेत्रने लहे छे ॥गा ४॥

मूलम्—हृत्थम्मि मुहुत्ततो दिवसतो गाउयम्मि वोद्धव्वो ॥

जोयणदिवसपुहुत्तं, पक्खतो पन्नवीसाओ ॥ ४ ॥

छाया--हस्ते मुहूर्तान्तो, दिवसान्तो गन्धूते वोद्धव्यः ।

योजनदिवसपृथक्त्व, पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥ ४ ॥

टीका—‘ हृत्थम्मि मुहुत्ततो ’ इत्यादि । हस्ते=क्षेत्रतो हस्तप्रमाणक्षेत्र-

चाहिये कि उतने क्षेत्रगत और कालगत रूपी द्रव्य को ही वह जानता है । जिस समय यह अगुल के असग्यातवे भागमात्रगत द्रव्य को जानेगा, उस समय यह आवलिका के असग्यातवे भाग गत द्रव्यपर्यायों को भी जानेगा, इससे अधिक कालगत द्रव्यपर्यायों को नहीं जान सकेगा । तथा-जिस समय यह अगुल के सग्यातवे भाग गत द्रव्य को जानेगा, उस समय यह आवलिका के सग्यातवे भागगत ही द्रव्यपर्यायों को जानेगा । इसी तरह जब यह क्षेत्र की अपेक्षा अगुलपरिमित क्षेत्रान्तर्गत वस्तु-द्रव्य-को जानेगा उस समय यह काल की अपेक्षा किञ्चिन्म्यून आवलिकान्तर्गत द्रव्यपर्यायों को भी जानेगा । तथा जब यह काल की अपेक्षा आवलिकाप्रमाण काल का जाननेवाला होगा तो उस समय यह अगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र का जानने वाला होगा ॥ गा ३ ॥

‘ हृत्थम्मि मुहुत्ततो ’ इत्यादि ।

क्षेत्र की अपेक्षा-हस्तप्रमाण क्षेत्र को विषय करने वाला अवधिज्ञान

द्रव्यने ञ ते ळु छे ने समये ते अगुलना असग्यातभागागमात्रगत द्रव्यने ळुशे ते समये ते आवलिकाना असग्यातभागागत द्रव्यपर्यायाने पणु ळुशे तेनाथी वधारे कालगत द्रव्यपर्यायाने नही ळुशे शके तथा -ने समये ते अगुलना असग्यातभागागत द्रव्यने ळुशे ते समये ते आवलिकाना सग्यातभागागत ञ द्रव्यपर्यायाने ळुशे अेण शीते न्यारे ते क्षेत्रनी अपेक्षाअे अगुलपरिमितक्षेत्रान्तर्गत वस्तु-द्रव्यने ळुशे ते समये ते क्षाणनी अपेक्षाअे थोडा थोडा आवलिकान्तर्गत द्रव्यपर्यायाने पणु ळुशे तथा न्यारे ते क्षाणनी अपेक्षाअे आवलिकाप्रमाणु क्षाणनो ज्ञाता थशे त्यारे ते समये ते अगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्रनो पणु ज्ञाता थशे ॥गा ३॥

“ हृत्थम्मि मुहुत्ततो ” इत्यादि

क्षेत्रनी अपेक्षाअे हस्तप्रमाणु क्षेत्रने विषय करनाइ अवधिज्ञान क्षाणनी

टीका—‘सखेज्जमि उ काले’ इत्यादि । ‘संख्येये’ इति । सख्यायते, इति संख्येयः, स च सवत्सरमासादिरूपोऽपि भवति, अत इह ‘तु’ शब्दो विशेषणार्थः कृतः । कथंभूतकाले ? संख्येये=वर्षसहस्रात् परोऽत्र संख्येय-शब्देन गृह्यते, तस्मिन् वर्षसहस्रात् परतोवर्तिनि काले-असख्येयकालात् प्राक्, कालत = संख्येयकालविषयकेऽग्रधौ जाते सति, क्षेत्रतः संख्येया द्वीपसमुद्रास्तस्यावधेर्विषया भवन्ति । अपि-शब्दान्महानेकोऽपि तदेकदेशोऽप्यवधेर्विषयो भवति । अयमर्थः—असख्येययोजनप्रमाणस्वयभूरमणद्वीपसमुद्रात्मक महान्तमेक पश्यति, तथा स्वयंभूरमणद्वीपसमुद्रसमुत्पन्नतिरश्चोऽवधिस्तदेकदेश योजनप्रमाण पश्यतीति ।

तथा—‘कालमि असखिज्जे’ इत्यादि । कालतोऽसख्येये=पल्योपमादि-

‘सखेज्जमि उ काले’ इत्यादि ।

इस गाथा मे संख्येय-शब्द से एक हजार वर्ष के घाद का और असख्यात वर्ष से पहिले का काल ग्रहण किया गया है । जो अवधिज्ञान काल की अपेक्षा संख्येय काल को विषय करनेवाला होगा वह अवधिज्ञान क्षेत्र की अपेक्षा संख्यात द्वीप और समुद्रों को विषय करनेवाला होगा । इसी तरह जो अवधिज्ञान काल की अपेक्षा संख्यात काल को विषय करनेवाला होगा, वह अवधिज्ञान असख्यातयोजनप्रमाण अन्तिम स्वयभूरमण द्वीप और स्वयभूरमणसमुद्ररूप एक महान क्षेत्र को भी जाननेवाला होगा । तथा स्वयभूरमण द्वीप और समुद्र मे उत्पन्न हुए तिर्यश्च का अवधिज्ञान उसके योजनप्रमाण एकदेश को विषय करनेवाला होता है ।

तथा काल की अपेक्षा जो अवधिज्ञान पल्योपम आदि असख्येय

“सखेज्जमि उ काले” इत्यादि

आ गाथाभा सभ्येय शब्द वडे ओक डलर वर्ष पछीने। अने अस भ्यात वर्ष पछेलेने। काण ग्रहण करेले छे जे अवधिज्ञान काणनी अपेक्षाओ सभ्येय काणने विषय करनाइ छे जे अने अने अवधिज्ञान काणनी अपेक्षाओ सभ्यात काणने विषय करनाइ छे ते अवधिज्ञान असभ्यात योजन प्रमाण अन्तिम स्वयभूरमणद्वीप अने स्वयभूरमण समुद्ररूप ओक महान क्षेत्रने पणु नालुनाइ छे, तथा स्वयभूरमण द्वीप अने समुद्रमा उत्पन्न थयेले तिर्यश्च अवधिज्ञान तेना योजनप्रमाण ओक देशने विषय करनाइ छे।

तथा काणनी अपेक्षाओ जे अवधिज्ञान पल्योपम आदि असभ्येय काणने

टीका--' भरहम्मि अड्ढमामो ' इत्यादि । क्षेत्रत -भरते=भरतक्षेत्रविषयेऽ-
वधौ जाते सति कालतोऽर्धमासस्तद्विषयत्वेन नोद्भव्यः। 'जनुदीवम्मि साहियो मासो'
इति, क्षेत्रतो-जम्बूद्वीपविषये तु अवधौ, कालतः साधिको मासः=किञ्चिदधिकमास-
विषयकोऽवधिर्भवति । 'वास च मणुयलोए ' इति, क्षेत्रतो मनुष्यलोके=अर्धवृत्तीय-
द्वीपसमुद्रपरिमाणमनुष्यलोकविषयेऽवधौ जाते सति कालतो वर्ष=सप्तत्सरपर्यन्तं
पश्यतीत्यर्थः । तथा--' वासपुहुत्त च रुयगम्मि ' इति, क्षेत्रतो रुचकारयवाद्यद्वीप-
विषयकेऽवधौ जाते सति कालतः वर्षपृथक्त्व पश्यतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

मूलम्—सखेज्जम्मि उ काले, दीवसमुद्दा वि हुत्ति सखेज्जा ।

कालम्मि असखेज्जे, दीवसमुद्दा उ भइयव्वा ॥६॥

छाया—सख्येये तु काले, द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति सख्येयाः ।

काले असख्येये, द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः ॥ ६ ॥

' भरहम्मि अड्ढमासो ' इत्यादि ।

क्षेत्र की अपेक्षा--भरतक्षेत्र को विषय करनेवाले अवधिज्ञान के उत्पन्न होने पर काल की अपेक्षा वह अवधिज्ञान अर्धमास को-पन्द्रह दिन को विषय करनेवाला होगा । जो अवधिज्ञान क्षेत्र की अपेक्षा जम्बूद्वीप को विषय करनेवाला उत्पन्न होगा वह अवधिज्ञान काल की अपेक्षा कुछ अधिक एक मास को विषय करनेवाला होगा । इसी तरह जो अवधिज्ञान अढाई द्वीप को विषय करनेवाला उत्पन्न होगा वह काल की अपेक्षा एक वर्ष पर्यन्त के काल का ज्ञाता होगा । तथा क्षेत्र की अपेक्षा जो रुचक नाम के द्वीप को विषय करनेवाला अवधि होगा वह काल की अपेक्षा वर्षपृथक्त्व का जाननेवाला होगा ॥ गा० ५ ॥

“ भरहम्मि अड्ढमासो ” इत्यादि

क्षेत्रनी अपेक्षाये भरत क्षेत्रने विषय करनाइ अवधिज्ञान उत्पन्न थता
काणनी अपेक्षाये ते अवधिज्ञान अर्धा मासने (पहर दिनने) विषय करनाइ
हुशे अवधिज्ञान क्षेत्र नी अपेक्षाये जम्बूद्वीपने विषय करनाइ उत्पन्न थशे ते
अवधिज्ञान काणनी अपेक्षाये अेक मास करता ठर्धक वधु काण विषय करनाइ
हुशे अेज प्रभाषे जे अवधिज्ञान अढर्धद्वीपने विषय करनाइ उत्पन्न थशे ते
काणनी अपेक्षाये अेक वर्ष सुधीना काणनु ज्ञाता हुशे तथा क्षेत्रनी अपेक्षाये
जे इयक नामना द्वीपने विषय करनाइ अवधि हुशे ते काणनी अपेक्षाये वर्ष
पृथक्त्वनु लक्ष्यनार हुशे ॥गा ५॥

क्षेत्रवर्धित्विनः स्वयभूरमणसमुद्रोत्पन्नस्य तिरश्चोऽवधेस्तदेकदेशो विषयः । क्षेत्रपरिमाणं तु योजनापेक्षया सर्वत्रापि जम्बूद्वीपादारभ्य असख्येयद्वीपसमुद्रपरिमाणमवसेयम् । अपि च—स्वयभूरमणभिन्ना ये मनुष्यक्षेत्रवर्धित्विनो द्वीपसमुद्रास्तत्र समुत्पन्नस्य तिरश्चोऽप्यवधिस्तदेकदेशविषयको भवति ॥ गा० ६ ॥

तदेव क्षेत्रवृद्धौ कालवृद्धिरनियता, कालवृद्धौ तु क्षेत्रवृद्धिर्भवत्येवेति कथितम्, तदानीं द्रव्यक्षेत्रकालभावानां मध्ये यम्य वृद्धौ यस्य वृद्धिर्भवति, यस्य च न भवति, तमर्थं बोधयित्तुमाह—

मूलम्—काले चउण्ह वुड्ढी, कालो भइयव्वु खेत्तवुड्ढीए ॥

वुड्ढीए दव्वपज्जव, भइयव्वा खेत्तकालो उ ॥ ७ ॥

छाया—काले चतुणां वृद्धिः, कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्धयै ।

वृद्धये द्रव्यपर्याययोः भाज्यौ क्षेत्रकालौ तु ॥ ७ ॥

करनेवाला होगा मनुष्यक्षेत्र से बहिर्वर्ती तिर्यञ्च के कि जो स्वयंभूरमण समुद्र में उत्पन्न हुआ है उसके अवधिज्ञान का विषय स्वयभूरण समुद्र का एक देश होगा । क्षेत्र का परिमाण तो योजन की अपेक्षा सर्वत्र जम्बूद्वीप से लेकर असख्यातद्वीपसमुद्रपर्यंत जानना चाहिये । और स्वयभूरमण समुद्र से भिन्न जितने भी मनुष्यक्षेत्रवर्धित्वी द्वीप और समुद्र हैं उनमें उत्पन्न हुए तिर्यञ्च का अवधिज्ञान उनके एक देश को विषय करनेवाला होता है ॥ गा० ६ ॥

इस तरह क्षेत्र की वृद्धि में काल की वृद्धि अनियमित है, परन्तु काल की वृद्धि होनेसे क्षेत्रकी वृद्धि नियमित है—बढ़ होती ही है, यह बात यहां प्रकट की गई है । जब यह बात है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन के बीच में जिसकी वृद्धि होने पर जिसकी वृद्धि होती है, और जिसकी

तथा मनुष्य क्षेत्रनी अकारना तीर्थञ्च डे ले स्वयभूरमण समुद्रमा उत्पन्न थयेल छे, तेमना अवधिज्ञाननो विषय स्वयभूरमण समुद्रनो अेक देश डेशे क्षेत्रनु परिमाणं तो योजनानी अपेक्षाये सर्वत्र जम्बूद्वीपथी लधने असख्यात द्वीप समुद्र सुधी अणुपु लेधये अने स्वयभूरमण समुद्रथी भिन्न लेटला मनुष्य क्षेत्र अकारना द्वीप अने समुद्र छे तेअोभा उत्पन्न थयेल तीर्थञ्चनु अवधिज्ञान तेमना अेक देशने विषय कण्णाउ होय छे ॥ गा ६ ॥

आ रीते क्षेत्रनी वृद्धिमा अणानी वृद्धि अनियमित छे पणु अणानी वृद्धि यता क्षेत्रनी वृद्धि नियमित छे—ते होय छे ज आ बात अही प्रकट करेल छे जे आ बात छे तो द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भाव, तेमनी वञ्चे लेनी वृद्धि

लक्षणोऽग्रविषये सति, तस्यैवासख्येयकालपरिच्छेदकस्याप्रेः क्षेत्रतः परिच्छेद्य-
तया द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः=विकल्पितव्याः । कस्यचिद्-असरयेयाः २, कस्य-
चित् संख्येयाः २, कस्यचिद् एकदेशः ३ इत्यर्थः । अयं भावः—

यदा इह मनुष्यस्य असरयेयकालविषयोऽग्रविरूपयते, तदानामख्येया
द्वीपसमुद्रास्तस्य विषयः । १। यदा तु बहिर्द्वीपे समुद्रे वा वर्तमानस्य कस्यचित्
तिर्यञ्चः असख्येयकालविषयोऽग्रविरूपयते, तर्हि तस्य सरयेया द्वीपसमुद्रास्तस्य
विषयो भवति । २। तथा—यस्य मनुष्यस्य असख्येयकालविषयोऽग्रविर्जायते, तदानीं
तस्य क्षेत्रत स्वयभूरमणस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा एकदेशोऽग्रविर्जायते, तथा मनुष्य-

काल को विषय करनेवाला होगा उस अवधिज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा को
लेकर द्वीप और समुद्र विषयतया भजनीय होंगे—किसी का वह असख्यात
द्वीप समुद्रों को, किसी का वह सख्यात द्वीप समुद्रों को और किसी का
वह उनके एक देश को जाननेवाला होगा । इसका तात्पर्य इस प्रकार
है—जिस समय यहा मनुष्य के असख्यातकालविषयक अवधिज्ञान
उत्पन्न होगा उस समय उस अवधिज्ञान के असख्यात द्वीप और समुद्र
विषयभूत होंगे, परन्तु जब बाहिर द्वीप समुद्र में वर्तमान किसी तिर्यञ्च
के असख्यात काल को विषय करनेवाला अवधिज्ञान उत्पन्न होगा तो
वह उसका अवधिज्ञान सख्यात द्वीप और समुद्रों को विषय करनेवाला
होगा । तथा जिस मनुष्य के असख्यात काल को विषय करनेवाला
अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है उसका वह अवधिज्ञान उस समय क्षेत्र की
अपेक्षा अन्तिम स्वयभूरमण द्वीप के और समुद्र के एक देश को विषय

विषय करना इति ते अवधिज्ञानना क्षेत्रनी अपेक्षाने लक्षणे द्वीप अने समुद्र
विषयतया लक्षणीय इति—कोष्ठानु ते असख्यात द्वीप समुद्राने, कोष्ठानु ते सख्यात
द्वीप समुद्राने, अने कोष्ठानु ते तेभना अेक देशने लक्षणान् इति तेनु तात्पर्यं
आ प्रमाणे छे—ने समये अही मनुष्यने असख्यातकालविषयक अवधिज्ञान
उत्पन्न थये ते वपते ते अवधिज्ञानना असख्यात द्वीप अने समुद्र विषयभूत
थये, पण अह्मर द्वीप समुद्रमा वर्तमान कोष्ठ तिर्यञ्च अने असख्यातकालने विषय
करना इति अवधिज्ञान उत्पन्न थये त्परे तेनु ते अवधिज्ञान सख्यात द्वीप अने
समुद्राने विषय करना इति तथा ने माणसने असख्यात कालने विषय कर
ना इति अवधिज्ञान उत्पन्न थये छे तेनु ते अवधिज्ञान ते समय क्षेत्रनी अपेक्षा अ
अन्तिम स्वयभूरमण द्वीपना अने समुद्रना अेक देशने विषय करना इति

ननु यद्येव काले वर्धमाने शेषस्य क्षेत्रादित्रयस्य वृद्धिर्भवेतीत्येवमेव वक्तुमुचित, कथं चतुर्णामपि वृद्धिरित्युक्तम् ? इति चेत्, सत्यम्—किन्तु सामान्यवचनमेतत् । यथा 'देवदत्ते भुञ्जाने सर्वोऽपि कुटुम्बो भुङ्क्ते' इत्यादि । अन्यथा हि—तत्रापि 'देवदत्त विहाय शेषोऽपि कुटुम्बो भुङ्क्ते' इति वक्तव्यं स्यादित्यदोषः ।

भी सिद्ध हो जाता है कि पर्यायों भी वर्धित हो जाती हैं, क्यो कि प्रत्येक द्रव्य मे पर्यायों की घट्टलता रही हुई है ।

शका—काल की वृद्धि होने पर तो इस तरह से द्रव्य, क्षेत्र और भाव की वृद्धि होना सावित होता है, काल की नहीं, फिर ऐसा सूत्रकार क्यों कह रहे हैं कि काल की वृद्धि होने पर द्रव्यादि चार की वृद्धि होती है । यहां तो ऐसा ही कहना चाहिये था कि काल की वृद्धि होने पर द्रव्यादि तीन की ही वृद्धि होती है ?

उत्तर—शका तो ठीक है, परन्तु ऐसा जो सूत्रकारने कहा है वह सामान्यरूप से ही कहा है । जैसे—देवदत्त के खा लेने पर "सब कुटुम्ब खा रहा है" ऐसा व्यवहार में कह दिया जाता है । नहीं तो ऐसा कहना चाहिये था, कि देवदत्त को छोड़कर शेष कुटुम्ब खा रहा है । कुटुम्ब के अन्तर्गत तो देवदत्त भी आ जाता है परन्तु वह तो उस समय खा नहीं रहा है—वह तो खा चुका है फिर भी 'सब कुटुम्ब खा रहा है' ऐसा व्यवहार में कहा ही जाता है, इसी तरह काल के वर्धमान होने

तेनार्थी आपो आप ते पशु सिद्ध यथ न्यथे के पर्यायो पशु वर्धित यथ न्यथे, कारण्य के द्वरेक द्रव्यमा पर्यायोनी पुष्कणता रहेली डोय छे

शका—काणनी वृद्धि थवाथी तो आ रीते द्रव्य, क्षेत्र अने भावनी न वृद्धि थवानु साभित थाय छे, काणनी नही तो पछी सूत्रकार जेवु केम कहे छे के काणनी वृद्धि थता द्रव्यादि चारनी वृद्धि थाय छे ? अही तो जेवु न कहेवु नेधजे के काणनी वृद्धि थवाथी द्रव्यादि त्रणुनी न वृद्धि थाय छे

उत्तर—शका तो भराभर छे पशु सूत्रकारे जेवु ने कहे छे ते सामान्य इपथी कहे छे नेम—देवदत्ते भाध लीधाथी "आपु कुटुम्ब आप छे" जेवु पडेवारमा कहेवाय छे नही तो जेवु कहेवु नेधजे के देवदत्त सिवायनु आपु कुटुम्ब आप छे कुटुम्बनी अहर तो देवदत्त पशु आपी न्यथे छे, ते तो जे समये भातो डोतो नथी तेहे तो, भाध लीधु छे, छता पशु "आपु कुटुम्ब आप छे" जेवु व्यवहारमा कहेवाय छे जेन प्रमाणे काणनी वृद्धि थवाथी द्रव्यादि

ટીકા—‘કાલે ચઠ્ઠ્ઠુદ્ધી’ ઇત્યાદિ । કાલે=અવધિત્રિપયે વર્ધમાને સત્તિ ચતુર્ણા વૃદ્ધિઃ=દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવાના ચતુર્ણામપિ નિયમતો વૃદ્ધિર્ભવતિ । તત્ર ભાવઃ પર્યાયરૂપઃ । કાલાત્-સૂક્ષ્મ-સૂક્ષ્મતર-ઘૃક્ષ્મતમાત્ ક્ષેત્રદ્રવ્યપર્યાયાણા વૃદ્ધિર્ભવતિ । તથાહિ-કાલસ્ય સમયેઽપિ વર્ધમાને ક્ષેત્રસ્ય પ્રભૂતપ્રદેશ વર્ધન્તે, તદ્વૃદ્ધૌ ચાવશ્યભાવિની દ્રવ્યવૃદ્ધિઃ, પ્રત્યાકાશપ્રદેશ દેશદ્રવ્યપ્રાચુર્યાત્, દ્રવ્યવૃદ્ધૌ ચ પર્યાયવૃદ્ધિર્ભવતિ, પ્રતિદ્રવ્ય પર્યાયવાહુલ્યાદિતિ ।

નહીં होती है इस अर्थ को समझाने के लिये अब सूत्रकार गाथा कहते हैं—

‘काले चउण्ह घुट्ठी’ इत्यादि ।

કાલ કી વૃદ્ધિ હોને પર દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ, ઓર ભાવ, ઇન ચારોં કી ખી નિયમતઃ વૃદ્ધિ હોતી હૈ । યદા ‘ભાવ’ યદ શબ્દ પર્યાય કા યોગ્યક હૈ । ‘કાલ કી વૃદ્ધિ હોને પર ચારોં કી વૃદ્ધિ હોતી હૈ’ ઇસ કા તાત્પર્ય ઇસ પ્રકાર સે હૈ—જય સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર ઓર સૂક્ષ્મતમ રૂપ સે અવધિજ્ઞાન કા વિષયભૂત કાલ વર્ધિત હોતા હૈ તવ ઈસી સ્થિતિ મેં ઇસ કાલ સે ક્ષેત્ર કી, દ્રવ્ય કી ઈવ દ્રવ્યપર્યાયોં કી વૃદ્ધિ હોતી હૈ । કાલ કા જય ઈક ખી સમય વર્ધમાન હો જાતા હૈ—તવ ઇસ સમય ક્ષેત્ર કે પ્રભૂત પ્રદેશ વધ જાતે હૈ, ઓર પ્રભૂતપ્રદેશ વધને પર દ્રવ્ય કી ખી વૃદ્ધિ હો જાતી હૈ, કારણ આકાશરૂપ ક્ષેત્ર કે પ્રત્યેક પ્રદેશ પર દ્રવ્ય કી પ્રચુરતા રહી હુઈ હૈ । જબ દ્રવ્ય કી પ્રચુરતારૂપ વૃદ્ધિ હો જાતી હૈ તો ઇસ સે સ્વતઃ યદ

થતા જેની વૃદ્ધિ થાય છે અને જેની થતી નથી, એ અર્થને સમજાવવા માટે હવે સૂત્રકાર આ ગાથા કહે છે—

“કાલે ચઠ્ઠ્ઠુ વુટ્ઠી” ઇત્યાદિ

કાળની વૃદ્ધિ થવાથી દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવ, એ ચારેની પણ નિયમિત વૃદ્ધિ થાય છે, અહીં “ભાવ” આ શબ્દ પર્યાયનો યોગ્યક છે “કાળની વૃદ્ધિ થવાથી ચારેની વૃદ્ધિ થાય છે” તેનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—ન્યારે સૂક્ષ્મ, સૂક્ષ્મતર અને સૂક્ષ્મતમ રૂપથી અવધિજ્ઞાનનો વિષયભૂત કાળ વર્ધિત થાય છે ત્યારે એવી સ્થિતિમા તે કાળથી ક્ષેત્રની, દ્રવ્યની, અને દ્રવ્યપર્યાયની વૃદ્ધિ થાય છે કાળનો ન્યારે એક પણ સમય વર્ધિત થઈ નય છે ત્યારે એ સમયે ક્ષેત્રનો પ્રભૂત પ્રદેશ વધી નય છે, અને પ્રભૂત પ્રદેશ વધતા જ દ્રવ્યની પણ વૃદ્ધિ થઈ નય છે, કારણ કે આકાશરૂપ ક્ષેત્રના પ્રત્યેક પ્રદેશ પર દ્રવ્યની પ્રચુરતા રહેલ હોય છે ન્યારે દ્રવ્યની પ્રચુરતારૂપ વૃદ્ધિ થઈ નય છે ત્યારે

ध्येत । तस्मात् क्षेत्रवृद्धौ कालवृद्धिर्भजनीयैव । द्रव्यपर्यायौ तु क्षेत्रवृद्धौ नियमाद् वर्धते एवेति स्वयमेव बोध्यमिति ।

‘बुद्धीए द्रव्य-पञ्जवे’ इत्यादि । द्रव्यपर्याययोर्वृद्धौ सत्या क्षेत्रकालौ भक्तव्या= भजनीयौ कदाचिद् न वा वर्धते कदाचिद् वर्धते इत्यर्थः । द्रव्यपर्यायापेक्षया क्षेत्रकालयोः परिस्थूलत्वात् । यतो द्रव्य क्षेत्रादपि सूक्ष्मम्, एकस्मिन्नपि नभःप्रदेशेऽनन्तस्कन्धा-

समय काल की अपेक्षा अवधिज्ञानी एक-आवलिकारूप काल को देखता है तब वह अगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र को देखता है” सो वह विरुद्ध पड़ेगा, क्योंकि अगुलपृथक्त्वपरिमित क्षेत्र के विषय होने पर असख्येय अवसर्पिणी रूप में काल वर्द्धित है अतः आवलिकारूप काल को न देखकर असख्येय अवसर्पिणीरूप काल को ही देखना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं है, कारण यहा प्रभृतरूप मे क्षेत्र की वृद्धि नहीं हुई है, अन क्षेत्र की वृद्धि में काल की वृद्धि भजनीय ही माननी चाहिये । जब क्षेत्र की वृद्धि होती है तब द्रव्य और पर्याय, ये दोनों ही नियमतः वर्धित होते हैं, यह स्वयं समझने जैसी बात है ।

जब द्रव्य और पर्याय में वृद्धि होती है उस समय क्षेत्र और काल में वृद्धि भजनीय होती है—ये कभी बढ़ते भी हैं और कभी नहीं भी बढ़ते हैं, क्यों कि द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा क्षेत्र और काल स्थूल हैं । एक ही नभःप्रदेशरूप क्षेत्र में अनन्त स्क्वों का अवगाह हो रहा है,

मभय ज्ञानी अपेक्षाये अवधिज्ञाने एक आवलिकारूप ज्ञाने हेतु छे त्यारे ते अगु-
लपृथक्त्वपरिमित क्षेत्रने हेतु छे” ते विद्ध पडशे कारण के अगुलपृथक्त्वप-
रिमितक्षेत्रने विषय होवाधी असख्य अवसर्पिणीरूपमा काण वद्धित छे तेथी आ-
वलिकारूप ज्ञाने न लेता असख्येयवसर्पिणीरूप ज्ञाने न लेवे लेछे, पण्ये
पण्ये नथी, कारण के अही प्रभृतरूपमा क्षेत्रनी वृद्धि थछे नथी, तेथी क्षेत्रनी
वृद्धिमा ज्ञानी वृद्धि भजनीय न मानवी लेछे न्यारे क्षेत्रनी वृद्धि थाय
छे त्यारे द्रव्य अने पर्याय, ये जन्ने न नियमथी न वर्द्धित थाय छे, आ
जते न मभश्वा लेवी वात छे

न्यारे द्रव्य अने पर्यायमा वृद्धि थाय छे ते समये क्षेत्र अने ज्ञानमा
वृद्धि भजनीय होय छे—ते क्यारेक वधे पण्ये छे क्यारेक नथी पण्ये वधता,
कारण के द्रव्य अने पर्यायनी अपेक्षाये क्षेत्र अने काण अण्ये छे एक न
नभःप्रदेशरूप क्षेत्रमा अनन्त स्क्वोंको अवगाह थछे रक्षी छे तेथी अ

‘કાલો મહ્યવ્યુ સ્વિત્તુદ્ધવીળ’ इति-क्षेत्रवृद्धौ=क्षेत्रम्य-अवधेर्निपयस्य
 वृद्धौ=आधिपये सति कालो भक्तव्यः=भजनीयः, वर्धते वा, न वा वर्धते इत्यर्थः ।
 क्षेत्रं हि अत्यन्त सूक्ष्म, कालस्तु तद्रपेक्षया परिस्थूलः । प्रभूते क्षेत्रे वृद्धिगते कालो
 वर्धते, न तु स्वल्पे क्षेत्रे इति भावः । अन्यथा हि यदि क्षेत्रस्य प्रदेशादिवृद्धौ कालस्य
 नियमेन समयादिवृद्धिः स्यात्, तदाऽगुलमात्रे त्रेणिरूपेऽपि वर्धिते क्षेत्रे कालस्य
 असख्येयावसर्पिणीरूपस्य वृद्धिः स्यात् । तथा च उच्यते-‘अगुलसेढीमित्ते, ओसप्पि-
 णीओ असखेज्जा’ इति, तत्र-‘आवलिया अगुलपुहुत्त’ इति तृतीयगाथोक्तं त्रि-
 पर द्रव्यादि चारों की वृद्धि होती है यह कथन भी व्यावहारिक है कारण
 कि तीनकी ही वृद्धि होती है, काल तो स्वयं वर्धमान है ही ।

अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल में वृद्धि
 भजनीय है-होती भी है और नहीं भी होती है । क्षेत्र अत्यन्त सूक्ष्म है
 और काल उसकी अपेक्षा स्थूल है । जब अवधिज्ञान का प्रभूत क्षेत्र बढ़
 जाता है तब तो उसके काल में भी वर्धमानता आ जाती है, परन्तु जब
 क्षेत्र अल्प रहता है उस समय काल में वृद्धि नहीं होती है । यदि ऐसा
 न माना जावे तो जब क्षेत्र में प्रदेश आदि रूप से वृद्धि होगी तो उस
 समय में काल की भी नियम से समयादिरूप से वृद्धि होगी ही, ऐसी
 स्थिति में क्षेत्र के अगुलमात्र-त्रेणिरूप में भी बढ़ने पर असख्येय
 अवसर्पिणीरूप से काल में वृद्धि होने लगेगी-“अगुलसेढीमित्ते ओस-
 प्पिणीओ असखिज्जा” ऐसा सिद्धान्त वचन है तब तृतीय गाथा
 में जो ऐसा कहा है कि-“आवलिया अगुलपुहुत्त” अर्थात्-जिस

ચારેની વૃદ્ધિ થાય છે આ કથન પણ વ્યાવહારિક છે, કારણ કે ત્રણની જ વૃદ્ધિ
 થાય છે, કાળ તો બાકે જ વૃદ્ધિ પામેલો જ છે અવધિજ્ઞાનના વિષયભૂત ક્ષેત્રની
 વૃદ્ધિ થવાથી કાળમાં વૃદ્ધિ લવનીય છે-થાય પણ છે અને નથી પણ થતી ક્ષેત્ર
 અત્યન્ત સૂક્ષ્મ છે, અને કાળ તેની અપેક્ષાએ સ્થૂળ છે જ્યારે અવધિજ્ઞાનનું પ્રભૂત
 ક્ષેત્ર વધી બાય છે ત્યારે તે એના કાળમાં પણ વૃદ્ધિ આવી બાય છે, પણ જ્યારે
 ક્ષેત્ર અલ્પ રહે છે તે સમયે કાળમાં વૃદ્ધિ થતી નથી જો એવું માનવામાં ન
 આવે તો જ્યારે ક્ષેત્રમાં પ્રદેશ આદિ રૂપે વૃદ્ધિ થશે ત્યારે તે સમયે કાળની
 પણ નિયમથી સમયાદિરૂપથી વૃદ્ધિ થશે જ, એવી સ્થિતિમાં ક્ષેત્રના
 અગુલમાત્ર-ત્રેણિરૂપમાં વધવાથી અસખ્યેય અવસર્પિણીરૂપથી કાળમાં વૃદ્ધિ
 થવા લાગશે-“અગુલસેઢીમિત્તે ઓસપ્પિનીઓ અસખિજ્જા” આવી સિદ્ધાન્ત વચન
 છે તે ત્રીજી ગાથામાં જો એવું કહ્યું છે કે-“આવલિયા અગુલપુહુત્ત” અર્થાત્-જે

નનુ 'અંગુલમાવલિયાણ ભાગમસલ્લેજ્જ' ઇત્યાદિના પરસ્પરસમ્બન્ધત્વેનાવધિ વિષયતયા પ્રોક્તયોર્જઘન્યયોર્મધ્યમયોસ્તકૃષ્ટયોશ્ચ ક્ષેત્રકાલયોરગુલાવલિકાઽસલ્લેય-ભાગાદિરૂપયોઃ સમ્પન્થિના પરસ્પરત પ્રદેશાના સમયાના ચ સલ્લયામાશ્રિત્ય કિં તુલ્યત્વમ્ ? , ઉત હીનાધિકત્વમ્ ? , ઉન્યતે-હીનાધિકત્વમ્, તથાહિ-આવલિકાયા અસલ્લેયભાગે જઘન્યાવધિવિષયે યે અસરયાઃ સમયાસ્તદપેક્ષયા અહ્ગુલસ્યા-મરયેયભાગેજઘન્યાવધિવિષયે ઇવ યે અસરયેયા નભઃપ્રદેશાસ્તે અસલ્લેયગુણાઃ, ઇવ સર્વત્રાપ્યવધિવિષયાત્ કાલાદસલ્લેયગુણત્વમવધિવિષયસ્ય ક્ષેત્રસ્યાવગન્તવ્યમ્।ગા.૭।

સે કાલ કી વૃદ્ધિ મે દ્રવ્યાદિકોં મે નિયમતઃ વૃદ્ધિ કા, ક્ષેત્રવૃદ્ધિ હોને પર કાલવૃદ્ધિ મેં ભજનીયતા કા, તથા દ્રવ્યપર્યાયોં મેં નિયમતઃ વૃદ્ધિ કા, દ્રવ્યપર્યાયોં કી વૃદ્ધિ મે ક્ષેત્ર ઓર કાલ કી ભજનીયતા કા, દ્રવ્યવૃદ્ધિ મેં પર્યાયોં કી નિયમતઃ વૃદ્ધિ કા ઓર પર્યાયવૃદ્ધિ મેં દ્રવ્યવૃદ્ધિ કી ભજનીયતા કા સ્પષ્ટીકરણ કિયા ગયા હૈ ।

જાકા—“ અગુલમાવલિયાણ ભાગમસલ્લેજ્જ ” ઇત્યાદિગાથાદ્વારા પરસ્પર સમ્બન્ધ હોને સે અવધિજ્ઞાન કે વિષયમૂત પ્રકટ કિયે ક્ષેત્ર ઓર કાલ કિ-જો જઘન્ય મધ્યમ, ઇવ ઉત્કૃષ્ટ રૂપ મે વર્ણિત હુએ હેં તથા જો અગુલ ઇવ આવલિકા કે અસલ્લેય ભાગ આદિ રૂપ સે પ્રકટ કિયે ગયે હૈ એસે ક્ષેત્રકે પ્રદેશોં કી, ઓર કાલકે સમયોં કી સલ્લયા મેં આપસ મેં તુલ્યતા હૈ યા હીનાધિકતા હૈ ?

ઉત્તર—હીનાધિકતા હૈ, વહ્ હમ પ્રકાર સે હૈ-જગન્ય અવધિજ્ઞાન કા વિષયમૂત જો આવલિકા કા અસલ્લયાતવાં ભાગરૂપ કાલ હૈ ઉસમેં

કેમા નિયમત વૃદ્ધિનુ, ક્ષેત્ર વૃદ્ધિ યતા કાળવૃદ્ધિમા ભજનીયતાનુ, તથા દ્રવ્ય પર્યાયોમા નિયમત વૃદ્ધિનુ, દ્રવ્ય-પર્યાયોની વૃદ્ધિમા ક્ષેત્ર અને કાળની ભજની યતાનુ, દ્રવ્યવૃદ્ધિમા પર્યાયોની નિયમત વૃદ્ધિનુ અને પર્યાયવૃદ્ધિમા દ્રવ્ય વૃદ્ધિની ભજનીયતાનુ સ્પષ્ટીકરણ કરાયુ છે

૨૧ કા—“ અગુલમાવલિયાણ ભાગમસલ્લેજ્જ ” ઇત્યાદિગાથાદ્વારા પરસ્પર સબધ હોવાથી અવધિજ્ઞાનના વિષયમૂત પ્રગટ કરેલ ક્ષેત્ર અને કાળના કે-જે જઘન્ય મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટ રૂપે વર્ણવેલા છે તથા જે અગુલ અને આવલિકાના અસખ્યેય ભાગ આદિ રૂપે પ્રગટ કરેલ છે એવા ક્ષેત્રના પ્રદેશોની અને કાળના સમયોની સખ્યામા અદરો-અદર તુલ્યતા છે કે હીનાધિકતા છે ?

ઉત્તર—હીનાધિકતા છે, તે આ પ્રમાણે છે-જઘન્ય અવધિજ્ઞાનના વિષય મૂત જે આવલિકાનો અસખ્યાતમા ભાગરૂપ કાળ છે તેમા જેટલા અસખ્યાત

વગાહનાત્ । દ્રવ્યાદપિ સૂક્ષ્મઃ પર્યાયઃ, એકસ્મિન્નેય દ્રવ્યેऽનન્તપર્યાયસંભ્રાત્ । તસ્માદ્ દ્રવ્યપર્યાયવૃદ્ધૌ ક્ષેત્રકાલૌ ભજનીયાવેવ ભ્રમતઃ । તયાદિ-અગ્નિસ્થિતયોરપિ ક્ષેત્રકાલયોસ્તથાવિધશુભાધ્યવસાયતઃ ક્ષયોપશમવૃદ્ધૌ દ્રવ્ય વર્ધતે એ, અધિક-દ્રવ્યદર્શનાદિતિ ભાવઃ । દ્રવ્યવૃદ્ધૌ ચ પર્યાયા નિયમતો વર્ધન્તે । પ્રતિદ્રવ્ય સંરચે-યાનામસંખ્યેયાના વા પર્યાયાણામવધિના પરિચ્છેદસમ્રાત્ । પર્યાયવૃદ્ધૌ ચ દ્રવ્ય-વૃદ્ધિર્માજ્યા=ભવતિ ન વા ભ્રમતીતિ ભજનીયા । એકસ્મિન્નપિ દ્રવ્યે પર્યાયત્રિપયાત્રિ-વૃદ્ધિસમ્ભવેન તત્તત્પર્યાયવિશિષ્ટદ્રવ્યવૃદ્ધિર્ભ્રમતિ । અગ્નિસ્થિતેઽપિ દિ દ્રવ્યે તથાવિધ-ક્ષયોપશમવૃદ્ધૌ પર્યાયા વર્ધન્તે, પર્યાયવૃદ્ધૌ ન દ્રવ્યવૃદ્ધિરિતિ ભાવઃ ॥

હસસે યહ નિશ્ચિત હૈ કિ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા દ્રવ્ય સૂક્ષ્મ હૈ, ઓર દ્રવ્ય કી અપેક્ષા ક્ષેત્ર સ્થૂલ હૈ । હસી તરહ દ્રવ્ય કી અપેક્ષા પર્યાય સૂક્ષ્મ હૈ, કારણ એક હી દ્રવ્ય મેં અનન્ત પર્યાયોં કા હોના સમ્ભવિત હૈ, હસી લિયે દ્રવ્ય ઓર પર્યાય કી વૃદ્ધિ મેં ક્ષેત્ર ઓર કાલ કી વૃદ્ધિ ભજનીય વતલાઈ ગઈ હૈ । ક્ષેત્ર ઓર કાલ, યે અવસ્થિત હૈં તો હી જવ તથાવિધ શુભ અધ્ય-સાય કે વશ સે અવધિજ્ઞાન મેં અવધિજ્ઞાનાવરણ કર્મ કે ક્ષયોપશમ કી વૃદ્ધિ હોતી હૈ તવ વહ અધિક દ્રવ્ય કો વિપય કરનેવાલા હોતા હૈ, હસ તરહ ક્ષેત્ર ઓર કાલ મેં અવસ્થિતતા હોને પર હી દ્રવ્ય વહ હી જાતા હૈ । જવ દ્રવ્ય કી વૃદ્ધિ હોતી હૈ તવ પર્યાયોં હી નિયમત વહ જાતી હૈ, ક્યોં કિ પ્રત્યેક દ્રવ્ય મેં સંખ્યેય અથવા અસંખ્યેય પર્યાયોં કા પરિચ્છેદ હોના અવધિજ્ઞાન દ્વારા હોતા હૈ । પર્યાયોં કી વૃદ્ધિ મેં દ્રવ્ય કી વૃદ્ધિ ભજનીય હૈ-વહ હોતી હી હૈ ઓર નહીં હી હોતી હૈ । હસ તરહ

ચોક્કસ છે કે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ દ્રવ્ય સૂક્ષ્મ છે અને દ્રવ્યની અપેક્ષાએ ક્ષેત્ર સ્થૂળ છે એજ પ્રમાણે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ પર્યાય સૂક્ષ્મ છે, કારણ કે એક જ દ્રવ્યમા અનેક પર્યાયોનું હોવું સમ્ભવિત છે, તેથી દ્રવ્ય પર્યાયની વૃદ્ધિમા ક્ષેત્ર અને કાળની વૃદ્ધિ ભજનીય બતાવી છે ક્ષેત્ર અને કાળ, એ અવસ્થિત છે, તો પણ ત્યારે તે પ્રમાણેના શુભ અધ્યવસાયવશથી અવધિજ્ઞાનમા અવધિજ્ઞાનાવરણ કરના ક્ષયોપશમની વૃદ્ધિ થાય છે ત્યારે તે વધારે દ્રવ્યને વિધય કરનારૂં થાય છે આ ગીતે ક્ષેત્ર અને કાળમા અવસ્થિતતા હોવા છતાં પણ દ્રવ્ય વધી જ નાય છે ત્યારે દ્રવ્યની વૃદ્ધિ થાય છે ત્યારે પર્યાયો પણ નિયમથી જ વધી નાય છે, કારણ કે પ્રત્યેક દ્રવ્યમા સંખ્યેય અથવા અસંખ્યેય પર્યાયોનો પરિચ્છેદ થવાનું અવધિજ્ઞાન દ્વારા થાય છે પર્યાયોની વૃદ્ધિમા દ્રવ્યની વૃદ્ધિ ભજનીય છે-તે થાય પણ છે અને નથી પણ થતી આ પ્રમાણે કાળની વૃદ્ધિમા

सूक्ष्मत्वेन ते पृथग् विभाव्यन्ते । 'ततो सुहृमयर हृद खिच' इति-तस्मादपि कालात् सूक्ष्मतर क्षेत्र भवति । कुतः ?- 'अगुलसेटीमिचे ओसपिणिओ असखिज्जा' इति, यस्माद् अगुलश्रेणिमात्रे प्रमाणाद् अगुलैरुमात्रे श्रेणिरूपे नभःखण्डे क्षेत्रे प्रति-प्रदेश समयगणनया तत्प्रदेशपरिमाणमवसर्पिण्योऽसख्येयास्तीर्थरुरैरुक्ताः । अयं भावः-प्रमाणागुलैरुमात्रे एकैरुप्रदेशश्रेणिरूपेनभःखण्डे यावन्तोऽसख्येयासु अव-सर्पिणीषु समयास्तावत्प्रमाणाः प्रदेशा वर्तन्ते, तस्मात् कालादसख्येयगुण क्षेत्र, क्षेत्रादपि चानन्तगुण द्रव्य, द्रव्यादपि चावधित्रिपयाः पर्यायाः सख्येयगुणा असख्येयगुणा वा । तस्माद्-अगुलश्रेणिमात्रक्षेत्रप्रदेशाग्रमग्व्येयावसर्पिणीसमय-राशिपरिमाणमिति सिद्धम् । "सेत" इत्यादि । तदेतद् वर्धमानरुमवधिज्ञान वर्णितम् ॥ गा ८ ॥ सू० १२ ।

के भेदन करने पर एक २ पत्र के छेदने में असख्यात समय लग जाते हैं, ऐसा आगम मे प्रतिपादित किया है । समय इतना अतिसूक्ष्म है कि जिससे वे असख्यात समय भिन्न २ रूप से विभाजित नहीं किये जा सकते हैं । इस काल से क्षेत्र सूक्ष्मतर होता है, क्योंकि एक प्रमाणाद् अगुल-मात्र श्रेणिरूप आकाशखण्ड क्षेत्र मे प्रत्येक प्रदेश के उपर समयकी गणना से असख्यात अवसर्पिणियों मे जितने समय होते हैं उतने प्रमाण प्रदेश रहते हैं । इस लिये काल से असख्यात गुणा क्षेत्र होता है । क्षेत्र से भी असख्यात गुण द्रव्य होता है । तथा द्रव्य की अपेक्षा, अवधिज्ञान की विषयभूत पर्याय सख्यातगुणी अथवा असख्यातगुणी होती है, अतः अगुल श्रेणि मात्र क्षेत्र मे प्रदेशों का प्रमाण असख्यात अवसर्पिणियों के समयों की राशिप्रमाण सिद्ध हो जाता है । इस तरह वर्धमान अव-धिज्ञान का वर्णन हुआ ॥ गा० ८ ॥ सू० १२ ॥

उपर ओऽ राषेला से पानने लेहता ओक ओक पानना लेहनमा असख्यात समय लागे छे, ओवु आगममा प्रतिपादित उरायु छे समय ओटला अधे सूक्ष्म छे के जेथी ते असख्यात समय भिन्न-भिन्न-रूपे विभाजित करी शकता नथी आ जणथी क्षेत्र सूक्ष्मतर होय छे, उरषु के ओक प्रमाणागुलमात्र श्रेणि-रूप नभ भउ क्षेत्रमा प्रत्येक प्रदेशनी उपर समयनी गणनीथी असख्यात अवसर्पिणीओमा ओटला समय होय छे ओटला प्रमाणा प्रदेश रहे छे, तेथी जणथी असख्यात गाऽ क्षेत्र होय छे क्षेत्र करता पषु असख्यात गाऽ द्रव्य होय छे तथा द्रव्यना उता अवधिज्ञाननी विषयभूत पर्याये सख्यात गणी अथवा असख्यात गाऽ होय छे, तेथी अगुलश्रेणिमात्र क्षेत्रमा प्रदेशोनु प्रमाणा असख्यात अवसर्पिणीओमा राशिप्रमाणा सिद्ध वाय छे आ प्रमाणा वर्धमान अवधिज्ञाननु वर्धन थयु ॥ गा ८ ॥ सू १२ ॥

નન્વેવ ક્ષેત્રસ્ય કાલાદમગ્વ્યેયગુણતા કથમગસીયતે? તત્રાઢ—

મૂલમ્—સુહુમો ય હોઢ કાલો, તત્તો સુહુમયરં હવઢ રેત્ત ।

અંગુલસેઢીમેત્તે, ઓસપ્પિણિઓ અસંપેજા ॥ ૮ ॥

સે ત્ત વઢ્ઢમાણયં ઓહિનાણ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

છાયા—સૂક્ષ્મશ્ચ મગતિ કાલઃ, તતઃ સૂક્ષ્મતર મગતિ ક્ષેત્રમ્ ।

અઢગુલશ્રેણિમાત્રે, અવસર્પિણ્યઃ અસરયેયા. ॥ ૮ ॥

તદેતદ્ ઝઢ્ઢમાનરૂમ્ અવધિજ્ઞાનમ્ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

ટીકા—“ સુહુમો ય ’ ઇત્યાદિ ।

‘ સુહુમો ય હોઢ કાલો ’ ડતિ—યથા સૂક્ષ્મસ્ત્રાત્ કાલો મગતિ, યથા ઉત્પલ-
પત્રશતભેઢે પ્રતિપત્રભેઢમસરયેયાઃ સમયા લગન્તીત્યાગમે પ્રતિપાઢયતે । ન ચાતિ

જિતને અસર્યાત સમય હૈં ડનકી અપેક્ષા જઢન્ય અવધિજ્ઞાન કે વિષય-
મૂત હુપ અગુલ કે અસર્યાતવેં મારૂપ ક્ષેત્ર મે ઢી જો અસર્યાત
પ્રઢેશ હૈં વે અસર્યાત ગુણે હૈં । ડસી તરહ સે સર્વત્ર અવધિ કે વિષયમૂત
કાલ કી અપેક્ષા અવધિ કે વિષયમૂત ક્ષેત્ર મેં અસર્યેય ગુણે પ્રઢેશ
જ્ઞાનને ચાહિવે ॥ ગા૦ ૭ ॥

ડસ તરહ કે વર્ણન સે કાલ કી અપેક્ષા ક્ષેત્ર મેં અસર્યેયગુણતા
કૈસે જાની જાતી હૈં? સો કહતે હૈં—‘ સુહુમો ય હોઢ કાલો ’ ઇત્યાદિ ।

કાલ સૂક્ષ્મ હોતા હૈં, ઓર ડસકી અપેક્ષા ક્ષેત્ર સૂક્ષ્મ હોતા હૈં ।
અગુલશ્રેણિમાત્ર ક્ષેત્ર મે અસર્યાત અવસર્પિણીકાલ સ્થિત હૈં । ડસ
ગાથા કા ખુલાશા અર્થ ડસ પ્રકાર હૈં—કાલ ડતના સૂક્ષ્મ હોતા હૈં કિ
કમલ કે તરા ડપર રખે હુપ અર્થાત્ ડક ડપર—ડક રખે હુપ સૌ પત્રોં

સમય છે તેમની અપેક્ષાએ જઢન્ય અવધિજ્ઞાનના વિષયમૂત થયેલ અગુલના
અસર્યાતમા લાગ ડપ ક્ષેત્રમા જ જે અસર્યાત પ્રઢેશ છે તેઓ અસર્યાત
ગણા છે આ પ્રમાણે સર્વત્ર અવધિના વિષયમૂત કાળની અપેક્ષાએ અવધિના
વિષયમૂત ક્ષેત્રમા અસર્યેય ગણા પ્રઢેશ જાણવા જોઈએ

આ પ્રમાણેના વર્ણનથી કાળની અપેક્ષાએ ક્ષેત્રમા અસર્યેયગુણતા કેવી
રીતે જાણાય છે? તો કહે છે—“ સુહુમો ય હોઢ કાલો ” ઇત્યાદિ ડાળ સૂક્ષ્મ
હોય છે અને તેના કરતા ક્ષેત્ર સૂક્ષ્મ હોય છે અગુલશ્રેણિમાત્ર ક્ષેત્રમા
અસર્યાત અવસર્પિણી કાળ સ્થિત છે આ ગાથાને ખુલાસાવાર અર્થ આ પ્રમાણે
છે—કાળ એટલો સૂક્ષ્મ હોય છે કે કમળના તરા ડપર રાખેલા એટલે કે એક

વર્તમાનસ્ય=અપ્રશસ્તાધ્યવસાયવત્ इत्यर्थः 'सर्वतः समन्तादवधिः परिहीयते' इत्यन्वय ।
 शुभाध्यवસાયવશાત્ પ્રાપ્ત સદવધિજ્ઞાનમવિરતસમ્યગ્દષ્ટેર્હીયમાન ભવતીતિ ભાવઃ ।
 તથા-વર્તમાનચારિત્રસ્ય=ચારિત્રસમ્પન્નસ્યેત્યર્થઃ, इहापि-'सर्वतः समन्तादवधिः परि-
 हीयते' इत्यन्वयः। देशविरतस्य सर्वविरतस्य च हीयमानमवधिज्ञानं भवतीति भावः।

તથા—' સકલિચ્ચમાનસ્ય ' વધ્યમાનકર્મમંસર્ગાદુત્તરોત્તરં સક્લેશમાસાદયતઃ,
 અવિરતસમ્યગ્દષ્ટેરિત્યર્થ , અપ્રશસ્તલેશ્યોપરજિતં ચિત્તમ્ , અર્થાત્-અનેકશુભાર્થચિ-
 ન્તનપર ચિત્ત સંકલિષ્ટમુચ્યતે । તથા—સકલિચ્ચમાનચારિત્રસ્ય=અપ્રશસ્તલેશ્યોપર-
 જિતસ્ય અનેકાડશુભાર્થચિન્તનપરસ્ય અવિશુદ્ધચારિત્રવતો દેશવિરતસ્ય, સર્વવિરતસ્ય
 ચેતિ શેષઃ, સર્વતઃ સમન્તાદવધિઃ પરિહીયતે=પરિહીયતે। તદેતદ્ હીયમાનવધિજ્ઞાન
 વર્ણિતમ્ । ઇતિ ચતુર્થો ભેદઃ ૪૧ ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

ક્રમશઃ ઘટતા રહતા હૈ । शुभ अध्यवसाय के वश से प्राप्त किया गया
 અવધિજ્ઞાન અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ કે હીયમાન હોતા જાતા હૈ । ચારિત્ર-
 સપન્ન અવધિજ્ઞાની કા મી અવધિજ્ઞાન હીયમાન હોતા હૈ । અર્થાત્-ચાહે
 દેશવિરતિ શ્રાવક હો ચાહે સર્વવિરતિસપન્ન અનગાર હો ઉસકા મી
 અવધિજ્ઞાન હીયમાન હોતા જાતા હૈ । સક્રિચ્ચમાન જીવ કા-વધ્યમાન
 કર્મ કે સસર્ગ સે ઉત્તરોત્તર સક્લેશ ભાવ કો પ્રાપ્ત હુણ જીવ કા તથા
 અપ્રશસ્તલેશ્યા સે ઉપરજિત હુણ અનેક અશુભ અર્થ કે ચિન્તન કરને
 મેં તત્પર બને હુણ ણેસે અવિશુદ્ધચારિત્રસપન્ન દેશવિરતિ ગૃહસ્થ કા ણવ
 સર્વવિરતિસપન્ન સાધુ કા મી અવધિજ્ઞાન સર્વતઃ સમન્તાત્ હીયમાન
 હોતા હૈ । હસ પ્રકાર હીયમાન અવધિજ્ઞાન કા સ્વરૂપ હૈ । ભાવાર્થ
 હસકા કેવલ હતના હી હૈ કિ જિસ પ્રકાર પરિમિત દાહ્ય વસ્તુઓ મે લગી
 હુઈ અગ્નિ નવા દાહ્ય પદાર્થ ન મિલને સે ક્રમશઃ ઘટતી જાતી હૈ, ઉસી

રહે છે શુભ અધ્યવસાયના વશથી પ્રાપ્ત કરાયેલું અવધિજ્ઞાન અવિરત સમ્યગ્દ-
 ષ્ટિનું હીયમાન થતું બન્યું છે ચારિત્રસ પન્ન અવધિજ્ઞાનીનું અવધિજ્ઞાન પણ
 હીયમાન હોય છે એટલે કે આહું દેશવિરતિ શ્રાવક હોય કે આહું સર્વવિરતિ
 સ પન્ન સાધુગાર હોય, તેનું પણ અવધિજ્ઞાન હીયમાન થતું બન્યું છે સક્રિલચ્ચ-
 માન જીવનું-વધ્યમાન કર્મના સ સર્ગથી ઉત્તરોત્તર સ કલેશ ભાવને પામેલ જીવનું,
 તથા અપ્રશસ્તલેશ્યાથી ઉપરજિત થયેલ અનેક અશુભ અર્થનું ચિન્તન કરવામા
 તત્પર બનેલ એવા અવિશુદ્ધ ચારિત્રસ પન્ન દેશવિરતિ ગૃહસ્થનું અને સર્વવિ-
 રતિસ પન્ન સાધુનું પણ અવધિજ્ઞાન સર્વત સમન્તાત્ હીયમાન હોય છે આ
 પ્રકારનું હીયમાન અવધિજ્ઞાનનું સ્વરૂપ છે તેના ભાવાર્થે ક્રમશઃ એટલે જ છે કે
 જે રીતે પરિમિત દાહ્યવસ્તુઓમા લાગેલી અગ્નિ નવા દાહ્ય પદાર્થ ન મળવાથી

અથ હીયમાનવધિજ્ઞાનં વર્ણયતિ—

મૂલમ્—સે કિં ત હીયમાણયં ઓહિનાણ ? । હીયમાણયં ઓહિનાણં અપ્પસત્થેહિ અજ્ઞવસાણદ્વાણેહિં વટ્ટમાણસ્સ વટ્ટમાણચરિત્તસ્સ સકિલિસ્સમાણસ્સ સકિલિસ્સમાણચરિત્તસ્સ સબ્બઓ સમતા ઓહી પરિહાયઙ્, સે ત હીયમાણયં ઓહિનાણં ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

છાયા—અથ કિં તદ્ હીયમાનક્રમવધિજ્ઞાન ? હીયમાનક્રમવધિજ્ઞાનમ્—અપ્રશસ્તે-
ષ્વધ્યવસાયસ્થાનેષુ વર્તમાનસ્ય વર્તમાનચારિત્રસ્ય સક્લિશ્યમાનસ્ય સક્લિશ્યમાન-
ચારિત્રસ્ય સર્વતઃ સમન્તાદવધિ. પરિહીયતે, તદેતદ્ હીયમાનક્રમવધિજ્ઞાનમ્ ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

ટીકા—‘સે કિં ત હીયમાણય ’ ઇત્યાદિ । શિષ્ય. પૂચ્છતિ—હે ભદન્ત !
અથ કિં તદ્ હીયમાનક્રમવધિજ્ઞાનમ્ ? = પૂર્વનિર્દિષ્ટસ્ય હીયમાનાવધિજ્ઞાનસ્ય કિં
સ્વરૂપમિત્યર્થ ? । ઉત્તરમાદ—‘હીયમાણય ’ ઇત્યાદિ । હે શિષ્ય ! હીયમાન=પૂર્વા-
વસ્થાપેક્ષયાડધોડધોહાસમુપગચ્છદવધિજ્ઞાન વર્ણયતે । અપ્રશસ્તેષુ અધ્યવસાયસ્થાનેષુ

અથ સૂત્રકાર હીયમાન અવધિજ્ઞાન કા વર્ણન કરતે હૈ —

‘સે કિં ત હીયમાણય ઓહિનાણ ’ ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય પૂછતા હૈ—હે ભદન્ત ! પૂર્વનિર્દિષ્ટ હીયમાન અવધિજ્ઞાન કા
કયા સ્વરૂપ હૈ ? ઉત્તર—હે શિષ્ય ! યદ્ અવધિજ્ઞાન જવ ઉત્પન્ન હોતા
હૈતવ અધિક વિષયવાલા હોતા હૈ પરન્તુ પરિણામશુદ્ધિ કમ હો જાને
સે ક્રમશઃ અલ્પવિષયક હોતા જાતા હૈ, યદી વાત ટીકાકારને
“પૂર્વાવસ્થાપેક્ષયાડધોડધો હાસમુપગચ્છત્” ઇસ વાક્ય દ્વારા પ્રકટ કી
હૈ । અપ્રશસ્ત અધ્યવસાય સ્થાનો મે વર્તમાન જીવ કા અવધિજ્ઞાન
સર્વતઃ—ચારોં દિશાઓં મે વર્તમાન પદાર્થોં કે જાનને રૂપ ક્રિયા કરને સે

હવે હીયમાન અવધિજ્ઞાનનુ વર્ણન કરે છે—

‘સે કિં ત હીયમાણય ઓહિનાણ’ ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત ! પૂર્વ નિર્દિષ્ટ હીયમાન અવધિજ્ઞાનનુ શુ સ્વરૂપ
છે ? ઉત્તર—હે શિષ્ય ! આ અવધિજ્ઞાન જ્યારે ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે વધારે
વિષયવાળુ હોય છે પણ પરિણામશુદ્ધિ ઓછી થઈ જવાથી ક્રમશઃ અલ્પ-અલ્પ
વિષયક થતુ બાક છે એ જ વાત ટીકાકારે “પૂર્વાવસ્થાપેક્ષયાડધોડધો હાસમુપગચ્છત્”
આ વાક્ય દ્વારા પ્રગટ કરી છે

અપ્રશસ્ત અધ્યવસાય સ્થાનોમા વર્તમાન જીવનુ અવધિજ્ઞાન સર્વત-
ત્યારે દિશાઓમા વર્તમાન પદાર્થોને જાણવારૂપ ક્રિયા કરવાથી ક્રમશઃ ઘટતુ

टीका—‘से किं त पडिवाड’ इत्यादि । शिष्यः पृच्छति—अथ किं तत् प्रतिपाति अवधिज्ञानम् ? = हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्टस्य प्रतिपात्यवधिज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह—‘पडिवाड ओहिनाण’ इत्यादि । हे शिष्य ! प्रतिपाति=फूत्कारेण दीपकप्रकाश इव नश्वरम्, अविज्ञान वर्णयामि । यत्-अविज्ञानं जघन्येन=सर्वस्तोक्तया, अगुलस्यासख्येयभागमात्रसख्येयभागमात्र वा बालाग्र वा, बालाग्रपृथक्त्व वा, लिक्षा वा=बालाग्राष्टकप्रमाणा, लिक्षापृथक्त्व वा, यूका वा=लिक्षाष्टकमाना, यूकापृथक्त्व वा, यव वा=यूकाष्टकमान वा, यवपृथक्त्व वा, अगुल वा=यवाष्टकमान वा, अगुलपृथक्त्व वा, एवमगुलपट्टकमानात् पादादारभ्य यावदु-

‘से किं त पडिवाड ओहिनाण’ इत्यादि ।

शिष्यकाप्रश्न-प्रतिपाति अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर-प्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप इस प्रकार है—

जो अवधिज्ञान जघन्य से अद्गुल के असख्यातवें भाग को अथवा सरयातवें भागको, बालाग्र को अथवा बालाग्रपृथक्त्व को, लिक्षा को अथवा लिक्षापृथक्त्व को, यूका को अथवा यूकापृथक्त्व को, यवमध्य को अथवा यवमध्यपृथक्त्वको, अद्गुल को अथवा अद्गुलपृथक्त्व को, पाद को अथवा पादपृथक्त्व को, वितस्ति को अथवा वितस्तिपृथक्त्व को रलि को अथवा रलिपृथक्त्व को, कुक्षि को अथवा कुक्षिपृथक्त्व को, धनुष को अथवा धनुषपृथक्त्व को, गव्यूत को अथवा गव्यूतपृथक्त्व को, योजन को अथवा योजनपृथक्त्व को, योजनशत को अथवा योजनशतपृथक्त्व को, योजनसहस्र को अथवा योजनसहस्रपृथक्त्व को, योजनलक्ष को अथवा योजनलक्षपृथक्त्व को, योजनकोटि को अथवा

“से किं त पडिवाड ओहिनाण” इत्यादि

शिष्येनो प्रश्न—“प्रतिपाति अवधिज्ञाननु गु स्वरूप छे ?”

उत्तर—प्रतिपाति अवधिज्ञाननु स्वरूप आ प्रमाणे छे—जे अवधिज्ञान नधन्यथी अगुलना असख्यातमा लागने अथवा सख्यातमा लागने, बालाग्रने अने बालाग्रपृथक्त्वने, लिक्षाने अथवा लिक्षापृथक्त्वने, यूकाने अथवा यूकापृथक्त्वने, यवमध्यने अथवा यवमध्यपृथक्त्वने, अगुलने अथवा अगुलपृथक्त्वने, पादने अथवा पादपृथक्त्वने, कुक्षिने अथवा कुक्षिपृथक्त्वने, धनुषने अथवा धनुषपृथक्त्वने, गव्यूतने अथवा गव्यूतपृथक्त्वने, योजनने अथवा योजनपृथक्त्वने, योजनशतने अथवा योजनशतपृथक्त्वने, योजनसहस्रने अथवा योजनसहस्रपृथक्त्वने, योजनलक्षने, अथवा योजनलक्षपृथक्त्वने योजनकोटीने अथवा योजनकोटीपृथक्त्वने, योजनसभ्येथने अथवा योजनसभ्येयपृथक्त्वने,

मूलम्—से कि तं पडिवाइ ओहिनाण ? । पडिवाइ ओहिनाणं जहणणेण अंगुलस्स असरिज्जभागं वा सखिज्जभाग वा, वालग्ग वा वालग्गपुहत्तं वा, लिख्ख वा लिख्खपुहत्तं वा, ज्यूं वा ज्यूपुहत्त वा, जव वा जवपुहत्त वा, अंगुल वा अंगुलपुहत्त वा, पाय वा पायपुहत्त वा, विहरिंथ वा विहरिंथपुहत्त वा, रयणिं वा रयणिपुहत्त वा, कुच्छि वा कुच्छिपुहत्तं वा, धणु वा धणुपुहत्तं वा, गाउय वा गाउयपुहत्त वा, जोयणं वा जोयणपुहत्त वा, जोयणसयं वा जोयणसयपुहत्त वा, जोयणसहस्स वा जोयणसहस्सपुहत्त वा, जोयणलक्ख वा जोयणलक्खपुहत्त वा, जोयणकोडि वा जोयणकोडिपुहत्त वा, जोयणकोडाकोडि वा जोयणकोडाकोडिपुहत्त वा, जोयणसखिज्ज वा जोयणसखिज्जपुहत्त वा, जोयणअसखेज्ज वा जोयणअसखेज्जपुहत्तं वा, उक्कोसेण लोग वा पासित्ता ण पडिवइज्जा, से त पडिवाइ ओहिनाण॥सू०१४॥

छाया—अथ किं तत्प्रतिपाति-अधिज्ञानं ? प्रतिपाति-अधिज्ञान जघन्येनाऽगुलस्याऽसख्येयभाग वा, संख्येयभाग वा, गालाग्र वा, बालाग्रपृथक्त्वं वा, लिखा वा, लिखापृथक्त्व वा, यूका वा, यूकापृथक्त्व वा, यव वा, यवपृथक्त्व वा, अगुल वाऽअगुलपृथक्त्व वा, पाद वा, पादपृथक्त्व वा, वितस्ति वा वितस्तिपृथक्त्व वा, रत्नि वा, रत्निपृथक्त्व वा, कुक्षिं वा, कुक्षिपृथक्त्व वा, धनुर्वा, धनुःपृथक्त्वं वा, गव्यूत वा गव्यूतपृथक्त्व वा, योजन वा, योजनपृथक्त्व वा, योजनशत वा, योजनशतपृथक्त्व वा, योजनसदस्र वा, योजनसहस्रपृथक्त्व वा, योजनलक्षं वा, योजनलक्षपृथक्त्व वा, योजनकोटिं वा, योजनकोटिपृथक्त्व वा, योजनकोटीकोटिं वा, योजनकोटीकोटिपृथक्त्व वा, योजनसख्येय वा, योजनसख्येयपृथक्त्व वा, योजनाऽसरयेय वा, योजनाऽसख्येयपृथक्त्वं वा, उत्कर्षेण लोक वा दृष्ट्वा प्रतिपतेत्, तदेतत्प्रतिपात्यधिज्ञानम् ॥ सू० १४ ॥

प्रकार जो अधिज्ञान परिणामो की विशुद्धि के अभाव से क्रमशः घटता जाता है वह हीयमान है ॥ सू० १३ ॥

क्रमश घटती जाय छे ओर प्रमाणे के अधिज्ञान परिष्कारोनी विशुद्धिना अभावसे क्रमश घटतु जाय छे ते हीयमान छे ॥ सू० १३ ॥

મૂલમ્—સે કિં તં અપડિવાઈ ઓહિનાણં ? । અપડિવાઈ ઓહિનાણં જેણ અલોગસ્સ એગમવિ આગાસપએસ જાણઈ પાસઈ, તેણ પરં અપડિવાઈ ઓહિનાણં, સે તં અપડિવાઈ ઓહિનાણંદ ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

ઝાયા—અથ કિં તદપ્રતિપાત્યવધિજ્ઞાનમ્ ? અપ્રતિપાત્યવધિજ્ઞાન યેન અલો-
કસ્ય એકમપિ આકાશપ્રદેશ જાનાતિ પશ્યતિ, તેન પરમ્ અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનમ્,
તદેતત્ પ્રતિપાત્યવધિજ્ઞાનમ્ ૬ ॥ સૂ૦ ૧૬ ॥

ટીકા—સે કિં તં અપડિવાઈ ઓહિનાણ ' ઇત્યાદિ । શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—અથ
કિં તદ્ અપ્રતિપાત્યવધિજ્ઞાનમ્—હે ભદન્ત ! પૂર્વનિર્દિષ્ટસ્ય અપ્રતિપાત્યવધિજ્ઞાનસ્ય
કિં સ્વરૂપમિત્યર્થઃ ? । ઉત્તરમાહ—'અપડિવાઈ ઓહિનાણ ' ઇત્યાદિ । હે શિષ્ય !
અપ્રતિપાત્યવધિજ્ઞાનં ણ્યતે । યેનાવધિજ્ઞાનેન, અલોકસ્ય=અલોકાકાશસ્ય સમ્બ-
ન્ધિનમેકમપ્યાકાશપ્રદેશમ્, અપિ શબ્દાત્ બહૂન્ વા—આકાશપ્રદેશાન્ જાનાતિ, પશ્યતિ,

'સે કિં ત અપડિવાઈ ઓહિનાણ' ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય પ્રશ્ન કરતા હૈ—અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ હૈ ?

ઉત્તર—અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન કા સ્વરૂપ હિસ પ્રકાર હૈ—જિસ
અવધિજ્ઞાન કી સહાયતા સે અવધિજ્ઞાની આત્મા અલોકાકાશતક કે
એક મી આકાશપ્રદેશ કો અથવા વહુત સે આકાશપ્રદેશોં કો જાનતા
ઔર દેખતા હૈ વહ અપ્રતિપાતી અવધિજ્ઞાન હૈ । ઘઠી ઘાત—“જેણ અલો-
ગસ્સ એગમવિ આગાસપએસ જાણઈ પાસઈ” ઇત્યાદિ પક્તિયોં દ્વારા
ચતલાઈ ગઈ હૈ । યદ્યપિ અલોકાકાશ મેં અવધિજ્ઞાન કે દ્વારા દૃષ્ટવ્ય
કોઈ વસ્તુ નહીં હૈ ફિર મી જો એસા કહા ગયા હૈ કિ—“અવધિજ્ઞાની
અલોકાકાશ કે એક અથવા અનેક પ્રદેશોં કો જાનતા દેખતા હૈ” વહ

“સે કિં ત અપડિવાઈ ઓહિનાણ ” ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે—“અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનનુ શુ સ્વરૂપ છે ?”

ઉત્તર—અપ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાનનુ સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—એ અવધિ
જ્ઞાનની સહાયતાથી અવધિજ્ઞાની આત્મા અલોકાકાશ સુધીના એક પણ આકાશ
પ્રદેશને અથવા ઘણા આકાશપ્રદેશોને જાણે અને દેખે છે તે અપ્રતિપાતિ અવ-
ધિજ્ઞાન છે એજ વાત “જેણ અલોગસ્સ એગમવિ આગાસપએસ જાણઈ પાસઈ”
ઇત્યાદિ પક્તિઓ દ્વારા બતાવવામા આવી છે એ કે અલોકાકાશમા અવધિ
જ્ઞાન વડે દ્રષ્ટવ્ય કોઈ વસ્તુ નથી તે પણ જે એવુ કહ્યું છે કે “અવધિજ્ઞાની
અલોકાકાશના એક અથવા અનેક પ્રદેશોને જાણે દેખે છે” તે માત્ર તેની

ત્કર્ષણે=સર્વપ્રચુરતયા યાવત્ લોક દૃષ્ટા=લોકમુપલભ્ય પ્રતિપતેત્=ન મપેત્, પ્રદીપ
 દ્ય નાશમુપગચ્છેત્, તસ્ય તથાવિધક્ષયોપશમજન્યત્યાત્, તદે તત્ પ્રતિપાત્યમધિજ્ઞાનમ્!
 શેષ સુગમમ્। નવર યય ઇતિ યયમધ્યમ્, પાદ ઇતિ પાદમધ્યતલપ્રદેશઃ,
 કુક્ષિર્દિહસ્તપ્રમાણઃ, ધનુશ્ચતુર્દસ્તપ્રમાણ, પૃથક્ત્વ=સર્વત્રાપિ દ્વિમમૃતિ આનયમ્ય ડતિ
 સિદ્ધાન્તપરિભાષયા દ્રષ્ટવ્યમ્। ઇતિ પચ્ચમો ભેદ.૫ ॥ સૂ.૦ ૧૪ ॥

યોજનકોટિપૃથક્ત્વ કો, યોજનકોટીકોટિ કો અથવા યોજનકોટીકોટિ
 પૃથક્ત્વ કો, યોજનસરખ્યેય કો, અથવા યોજનસરખ્યેયપૃથક્ત્વ કો, યોજન-
 અસરખ્યેયકો, અથવા યોજન-અસરખ્યેય પૃથક્ત્વ કો, ઉત્કૃષ્ટરૂપ સે સમસ્ત-
 લોક કો દેવકર મી તથાવિધ-ક્ષયોપશમજન્ય હોને સે પ્રદીપ કી તરહ
 નષ્ટ હો જાતા હૈ, વહ પ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન હૈ ।

ઘઠૉ પર ઘહ જાનના ઘારિયે-આઠ ઘાલાગ્રોં કી ંક લિક્ષા હોતી
 હૈ, આઠ લિક્ષાંઠોં કી ંક યુકા, આઠ યુકાંઠોં કા ંક યવમધ્ય, આઠ
 યવમધ્યોં કા ંક અહ્ગુલ, છ અહ્ગુલ કા ંક પાદ (પાદમધ્યતલ પ્રદેશ),
 ઢો પાદોં કી ંક વિતસ્તિ-(વેત), ઢો વિતસ્તિયોં કી ંક રત્નિ (હાય),
 ઢો રત્નિયોં કી ંક કુક્ષિ, ઢો કુક્ષિયોં કા ંક ઘનુપ, ઢો હજાર ઘનુપોં કા
 ંક ગવ્યૂત (કોસ) ંર ઘાર ગવ્યૂતોં (કોસોં) કા ંક યોજન હોતા હૈ ।
 યોજનસરખ્યા કી ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ હોને સે યોજનશત, યોજનસહસ્ર,
 યોજનલક્ષ, યોજનકોટિ, યોજનકોટીકોટિ, યોજનસરખ્યેય ંર યોજન-
 અસરખ્યેય હોતા હૈ । ઢો સે લેકર નૌ તક કો પૃથક્ત્વ કહતે હૈં ઘહ
 જ્ઞાન કા પાચવા ભેદ હુઆ ૫ ॥ સૂ.૦ ૧૪ ॥

યોજનઅસ ખ્યેયને અથવા યોજનઅસ ખ્યેયપૃથક્ત્વને, ઉત્કૃષ્ટ રૂપથી સમસ્ત
 લોકને દેખીને પણ તેવા પ્રકારના ક્ષયોપશમજન્ય હોવાથી પ્રદીપની ભેમ નષ્ટ
 થઈ નય છે તે પ્રતિપાતિ અવધિજ્ઞાન છે

અહીં એ બધાંજુ બેઈ એ કે આઠ બાલાઓની એક લિક્ષા થાય છે, આઠ
 લિક્ષાઓની એક યુકા, આઠ યુકાઓનો એક યવમધ્ય, આઠ યવમધ્યોનો એક
 અગુલ, છ અગુલનો એક પાદ (પાદનો મધ્યતલ પ્રદેશ), બે પાદની એક વિતસ્તિ
 (વેત) બે વિતસ્તિઓની એક રત્નિ (હાય) બે રત્નિઓની એક કુક્ષિ, બે કુક્ષિઓની
 એક ઘનુપ, બે હજાર ઘનુપોનું એક ગવ્યૂત (કોસ) અને ચાર ગવ્યૂતોનો એક
 યોજન થાય છે યોજનસ ખ્યાની ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ થવાથી યોજનશત, યોજનસહસ્ર,
 યોજનલક્ષ, યોજનકોટી, યોજનકોટીકોટી, યોજનસ ખ્યેય અને યોજનઅસ ખ્યેય
 થાય છે બેથી લઇને નવ સુધીનાને પૃથક્ત્વ કહે છે આ જ્ઞાનનો પાચમો ભેદ
 થયો ॥ સૂ. ૧૪ ॥

अयं भावः—यथा प्राभातिकः प्रकाशः सूर्योदय विना नैव निवर्तते, यथा वा कुसुम फलमनुत्पाद्यन निवर्तते तथा यदवधिज्ञान केवलप्राप्तिं विना न निवर्तते इति । यथा वा नृप. प्रतिपक्षनायके निहते सति तदितरैः प्रतिपक्षैर्न पुनः परिभूयते शेषमपि शत्रुस्य विनिर्जित्य राज्यश्रिय लभते, तथा तादृशः क्षयोपशमो लभ्यते, यतः—कर्मशत्रुनायक मोहनीयारयं कर्मशत्रु निहत्यावधिज्ञानी तदितरैः कर्मशत्रुभिर्न पुनः परिभूयते, किं तु शेषमपि कर्मशत्रु विनिर्जित्यावधिज्ञानी केवलप्राप्तोत्येवेति । तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञान वर्णितमूडत्यवधेः पण्डो भेदः ६ ॥ सू० १५ ॥

इसका भाव यह है कि—जिस प्रकार प्राभातिक प्रकाश सूर्योदय हुए बिना नहीं हटता है, अथवा जिस प्रकार फलवाले वृक्ष का फूल, बिना नहीं जाता है उसी तरह जो अवधिज्ञान केवलज्ञान की प्राप्ति किये बिना फल उत्पन्न किये जीव से नहीं छूटता है वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है । अथवा—जिस प्रकार प्रतिपक्ष शत्रुसेना के नायक के निहत होने पर उसकी सेना के अन्यव्यक्तियों द्वारा विजयशील नरेश पराभव को प्राप्त नहीं होता है, तथा अवशिष्ट शत्रुदलको परास्त कर वह जैसे राज्यश्री का भोक्ता बनता है उसी तरह अवधिज्ञानी आत्मा में कोई ऐसे कर्मोंका—अवधिज्ञानावरणीय कर्मों का—क्षयोपशम होता है कि जिसके प्रभाव से वह कर्म शत्रुओं के नायकस्वरूप मोहनीय कर्म को नाश कर, और उसके अभाव में अन्य कर्म-शत्रुओं से अजेय होकर पराभूत नहीं होता है, किन्तु अवशिष्ट शेष-कर्मशत्रुओं को भी जीतकर अवश्य ही केवलज्ञान को प्राप्त करता है । यही अप्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप है ॥ सू० १५ ॥

तेना लावार्थं आ छे के जेम प्राभातिक प्रकाश सूर्योदय तथा विना छूटते नथी अथवा जेम इणवाणा वृक्षना फूल विना इण उत्पन्न उरता नथी ओ ज प्रभाण्णे जे अवधिज्ञान केवणज्ञाननी प्राप्ति कर्या विना छुवथी छूटतु नथी ते अप्रतिपाति अवधिज्ञान छे अथवा जेम सामा पक्षने नायक छण्णता तेनी सेनानी अन्य व्यक्तियो द्वारा विजयशील राज पराभव पामते नथी, तथा भाकाना शत्रु दणने डरावीने ते जेम सन्त्यश्रीने लोक्ता भने छे ओज प्रभाण्णे अवधिज्ञानी आत्माना डोछ ओवा कर्मेने अवधिज्ञानावरणीय कर्मेने क्षयोप-शम छाय छे के जेना प्रलावधी ते कर्मशत्रुओना नायक इपी मोहनीय कर्मेने नाश उरीने अने तेना अलावभा अन्य कर्मशत्रुओ वडे अविजित थर्धने परा लव पामते नथी, पण्ण भाकी रडेल शेषकर्मशत्रुओने पण्ण छतीने अवश्य ज केवणज्ञान प्राप्त करे छे आज अप्रतिपाति अवधिज्ञानतु स्वइप छे ॥ सू १५ ॥

तथाविधक्षयोपशमजनितसामर्थ्यमद्भावादिति भावः । एतच्च सामर्थ्यमात्रं वर्णयते, अलोके हि अवधिज्ञानस्य द्रष्टव्यं वस्तु किमपि नास्ति, अप्रधिज्ञानस्य रूपि द्रव्यमात्रविषयकतयाऽऽकाशप्रदेशोऽपि नास्ति द्रष्टव्यः, अरूपित्वात्, अन्यस्य कस्यापि द्रव्यस्य तत्राभावान्च । अप्रधिज्ञानमलोकानाशस्यैक प्रदेशं बहून् वा प्रदेशान् व्याप्तुं शक्नोतीति भावः । लोकालोकविभागस्त्वेवमगन्तव्यः धर्मादीनां द्रव्याणां वृत्तिर्भवति यत्र तत् क्षेत्रं लोकः । तद्विपरीतं हि क्षेत्रमलोकः । तत्र पर-तदनन्तरं तदवधिज्ञानमप्रतिपाति भवति, केवलज्ञानमनुत्पाद्यं न निवर्तते ।

केवलइसकी शक्तिमात्र को बतलाने के लिये कहा गया है । अर्थात् इस अप्रतिपाति अवधिज्ञान में इतनी शक्ति है कि वह अलोकाकाशतक के भी एक अथवा अनेक प्रदेशों को जान सकता है, देख सकता है ऐसी शक्ति भी इस में तथाविध क्षयोपशम से जनित सामर्थ्य से ही होती है । अवधिज्ञान सिर्फ रूपी द्रव्य को ही विषय करता है, अरूपी द्रव्य को नहीं । आकाश के प्रदेश भी इस तरह अरूपी ही हैं, वे इसका विषय हो नहीं सकते हैं, तथा और अन्य द्रव्य अलोकाकाश में हैं नहीं । ऐसी स्थिति में सूत्र में जो 'अलोकाकाश के एक प्रदेश को अथवा बहुत प्रदेशों को वह जानता देखता है' ऐसा कहा है वह केवल इसके सामर्थ्य को प्रकट करने के लिये कहा गया जानना चाहिये । धर्मादिक द्रव्यों का जितने आकाश में निवास है वह लोकाकाश, तथा इससे बहिर्भूत आकाश का नाम अलोकाकाश है । अप्रतिपानी अवधिज्ञान केवलज्ञान को उत्पन्न किये बिना नहीं छूटता है ।

शक्तिमात्रने न अताववा माटे कडेले छे अटले के आ अप्रतिपाति अवधिज्ञानमा अटली शक्ति छे के ते अलोकाकाश सुधीना पणु अेक अथवा अनेक प्रदेशोने लणुी शके छे अेवी शक्ति पणु तेमा तेवा प्रकारना क्षयोपशमधी पेदा थयेले सामर्थ्यधी न डोय छे अवधिज्ञान इक्त इधी द्रव्यने न विषय करे छे अइधी द्रव्यने नही आकाशना पदाथी पणु आ रीते अइधी न छे, ते आ तेना विषय थध शकता नथी तथा भील डोय द्रव्य अलोकाकाशमा नथी आवी स्थितिमा सूत्रमा ने "अलोकाकाशना अेक प्रदेश प्रदेशने अथवा धणुा प्रदेशोने ते लणुे हेणे छे" अेयु ठडेले छे ते इक्त तेना समर्थ्यने प्रगट करवाने माटे न कडेले छे अेम मानु जेध अे धर्मादिक द्रव्योने अटला आकाशमा निवास छे ते लोकाकाश तथा तेनी पहार आवेल आकाशनु नाम अलोकाकाश छे अप्रतिपाति अवधिज्ञान केवणज्ञानने उत्पन्न कर्था विना छूटतु नथी

टीका—‘ त समासओ ’ इत्यादि । तद् अवधिज्ञान, समासतः=सक्षेपेण, चतुर्विध प्रज्ञप्तम्=प्ररूपितम् । तद् यथा-द्रव्यत क्षेत्रतः कालतो भावतश्च । तत्र द्रव्यतः खलु अधिज्ञानी जघन्येन अनन्तानि रूपिद्रव्याणि=तैजसभाषाप्रायोग्यवर्गणान्तरालवर्तीनि द्रव्याणि जानाति=विशेषाकारेण जानाति । पश्यति=सामान्याकारेण बुधते । इह-ज्ञान विशेषग्रहणात्मकम्, दर्शन-सामान्यग्रहणात्मकमिति भावः । उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि=वादरसूक्ष्माणि जानाति पश्यति । ज्ञान दर्शन च पूर्ववत् ।

ननु प्रथमं दर्शनं भवति, ततो ज्ञानमिति क्रमः, तर्हि किमर्थं क्रम परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युक्तम् ?

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा वह अवधिज्ञान सक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है । यही बात इस सूत्र द्वारा प्रकट की जा रही है—वह अवधिज्ञान सक्षेप से चार प्रकार का प्ररूपित किया गया है । वे चार प्रकार उसके इस प्रकार हैं—द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा से । इनमे द्रव्य की अपेक्षा से अवधिज्ञानसपन्न आत्मा जघन्य अवस्था में अनन्त रूपी द्रव्यो को—तैजस और भाषा के प्रायोग्य वर्गणाओं के अन्तरालवर्ती द्रव्यों को—विशेषरूप आकार से जानता है, और सामान्यरूप आकार से देखता है । वस्तु का विशेषरूप से जानना ज्ञान है और सामान्यरूप से उसका ग्रहण करना दर्शन है । तथा उत्कृष्ट रूप से वह अवधिज्ञानी आत्मा समस्तरूपी द्रव्यो को—वादर सूक्ष्म रूपी पदार्थों को—जानता है और देखता है ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल અને ભાવની અપેક્ષાએ તે અવધિજ્ઞાન સક્ષેપથી ચાર પ્રકારનું કહેલ છે એ જ વાત આ સૂત્ર દ્વારા પ્રકટ કરવામા આવે છે—તે અવધિજ્ઞાન સક્ષેપમા ચાર પ્રકારનું પ્રરૂપિત કરાયું છે તે ચાર પ્રકાર આ છે—દ્રવ્યકી અપેક્ષાએ, ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ, કાળની અપેક્ષાએ અને ભાવની અપેક્ષાએ તેઓમા દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાનવાળો આત્મા જઘન્ય અવસ્થામા અનેક રૂપી દ્રવ્યોને, તૈજસભાષાની પ્રાયોગ્ય વર્ગણાઓના અન્તરાલવર્તી દ્રવ્યોને વિશેષ રૂપ આકારથી જાણે છે અને સામાન્ય રૂપ આકારથી દેખે છે વસ્તુને વિશેષ રૂપથી જાણવી તે જ્ઞાન છે અને સામાન્યરૂપથી તેને ગ્રહણ કરવી તે દર્શન છે તથા ઉત્કૃષ્ટ રૂપે તે અવધિજ્ઞાની આત્મા સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોને—વાદર સૂક્ષ્મ રૂપી પદાર્થોને જાણે છે અને દેખે છે

अवधिज्ञानस्य पडपि भेदा उक्ताः, सम्प्रति द्रव्यात्प्रपेक्षयाऽवधिज्ञानस्य भेदा उच्यन्ते—

मूलम्—त समासओ चउच्चिहं पणत्त, त जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहन्नेण अणताइ रूविदव्वाइ जाणइ पासइ । उक्कोसेण सव्वाइं रूविदव्वाइ जाणइ पासइ । खित्तओ ण ओहिनाणी जहन्नेण अगुलस्स असखिज्जइभाग जाणइ पासइ । उक्कोसेण असंखिज्जाइ अलोगे लोणप्पमाणमित्ताइ खंडाइ जाणइ पासइ । कालओ ण ओहिनाणी जहन्नेण आवलियाए असखिज्जइभाग जाणइ पासइ । उक्कोसेण असखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ, ओसप्पिणीओ अईयमणागयं च काल जाणइ पासइ । भावओ ण ओहिनाणी जहन्नेण अणंते भावे जाणइ पासइ । उक्कोसेण वि अणते भावे जाणइ पासइ । सव्वभावानमणंतभाग जाणइ पासइ ॥सू०१६॥

छाया—तत् समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—द्रव्यत', क्षेत्रत., कालतो भावत । तत्र द्रव्यत. अवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति । उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति । क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येनागुलस्याऽसख्येयभागं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽसख्येयानि अलोके लोकप्रमाणमात्राणि खण्डानि जानाति, पश्यति । कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येन आवलिकाया असख्येयभागं जानाति पश्यति । उत्कर्षेण असख्येया उत्सर्पिणीरव-सर्पिणी—अतीतमनागतं च कालं जानाति, पश्यति । भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तान् भावान् जानाति, पश्यति, उत्कर्षेणापि अनन्तान् भावान् जानाति, पश्यति । सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति ॥ सू० १६ ॥

इस प्रकार अवधिज्ञान के छह भेदों का कथन कर अब द्रव्य आदि की अपेक्षा से उसके भेद बतलाते हैं—'त समासओ चउच्चिह' इत्यादि ।

आ शीते अवधिज्ञानना छ लेटोनु कथन कर्गिने उवे द्रव्य आदिनी अपेक्षाये तेना लेह पतावे छे—“ त समासओ चउच्चिह ” इत्यादि—

टीका—‘ त समासओ ’ इत्यादि । तद् अवधिज्ञान, समासतः=सक्षेपेण, चतुर्विध प्रज्ञसम्=प्ररूपितम् । तद् यथा-द्रव्यत क्षेत्रतः कालतो भावतश्च । तत्र द्रव्यतः खलु अग्रधिज्ञानी जघन्येन अनन्तानि रूपिद्रव्याणि=तैजसभाषाप्रायोग्यवर्गणान्तरालवर्तीनि द्रव्याणि जानाति=विशेषाकारेण जानाति । पश्यति=सामान्याकारेण बु-यते । उद्भ-तान विशेषग्रहणात्मकम्, दर्शन-सामान्यग्रहणात्मकमिति भावः । उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि=वादरमक्ष्माणि जानाति पश्यति । ज्ञानं दर्शनं च पूर्ववत् ।

ननु प्रथमं दर्शनं भवति, ततो ज्ञानमिति क्रमः, तर्हि किमर्थं क्रम परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युक्तम् ?

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा वह अवधिज्ञान सक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है । यही बात इस सूत्र द्वारा प्रकट की जा रही है—वह अवधिज्ञान सक्षेप से चार प्रकार का प्ररूपित किया गया है । वे चार प्रकार उसके इस प्रकार हैं—द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा से । इनमे द्रव्य की अपेक्षा से अवधिज्ञानसपन्न आत्मा जघन्य अवस्था मे अनन्त रूपी द्रव्यो को—तैजस और भाषा के प्रायोग्य वर्गणाओ के अन्तरालवर्ती द्रव्यों को—विशेषरूप आकार से जानता है, और सामान्यरूप आकार से देखता है । वस्तु का विशेषरूप से जानना ज्ञान है और सामान्यरूप से उसका ग्रहण करना दर्शन है । तथा उत्कृष्ट रूप से वह अवधिज्ञानी आत्मा समस्तरूपी द्रव्यो को—वादर सूक्ष्म रूपी पदार्थों को—जानता है और देखता है ।

द्रव्य, क्षेत्र, जगण अने लावनी अपेक्षाओ ते अवधिज्ञान सक्षेपथा चार प्रकारनु कहेल छे ओ न पात आ सूत्र द्वारा पत्रट उरवामा आवे छे—ते अवधिज्ञान सक्षेपमा चार प्रभरनु प्ररूपित करायु छे ते चार प्रभर आ छे—द्रव्यकी अपेक्षाओ, क्षेत्रनी अपेक्षाओ, जगणी अपेक्षाओ अने लावनी अपेक्षाओ तेओमा द्रव्यनी अपेक्षाओ अवधिज्ञानवाणे आत्मा जघन्य अवस्थामा अनेक रूपी द्रव्येने, तैजसलाषानी प्रायोग्य वर्गणुओना अन्तरालवर्ती द्रव्येने विशेष रूप आकारथी नल्ले छे अने सामान्य रूप आकारथी हेणे छे वस्तुने विशेष रूपथी नल्लुपी ते ज्ञान छे अने सामान्यरूपथा तेने ग्रहण करवी ते दर्शन छे तथा उत्कृष्ट रूपे ते अवधिज्ञानी आत्मा समस्त रूपी द्रव्येने—पादर सूक्ष्म रूपी पदार्थेने नल्ले छे अने हेणे छे

ઉચ્યતે—इह सर्वा लब्धयः साकारोपयोगतः प्रजायन्ते, अयिगपि लब्धि-
विशेषतया प्रोच्यते, अतोऽसौ प्रथममुत्पद्यमानो ज्ञानरूप एव जायते, न तु दर्शन-
रूप, तत्र हि क्रमेणोपयोगः प्रवर्तते, ज्ञानोपयोगानन्तरं दर्शनरूपोऽपि, तस्मात्
प्रथमतो ज्ञानमुत्त, पश्चाद्दर्शनम् ।

अथवा—इहाध्ययने सम्यग्ज्ञान प्ररूपयितुमुपक्रान्तम् । यतोऽनुयोगप्रार-
म्भेऽवश्य मङ्गलाय ज्ञानपञ्चरूपो भावनन्दिर्नक्तव्य इति तत्प्ररूपणार्थमिदमध्यय-

शका—ज्ञान के पहिले दर्शन होता है घाट में ज्ञान, फिर क्या कारण
है जो ऐसे क्रम का उल्लघन करके सूत्रकारने सूत्र में पहिले “ जानता है ”
ऐसा कहा और पश्चात् “ देखता है ” ऐसा कहा ? ।

उत्तर—इस प्रकार के कहने का भाव सूत्रकार का यह है—जितनी
भी लब्धिया होती हैं वे सब साकार उपयोग वाले जीव के होती हैं—
निराकार उपयोग वाले जीव के नहीं, अतः अवधि भी एक लब्धि-
विशेष है । इस कारण जब यह प्रथम उत्पन्न होती है तो ज्ञानरूप ही
उत्पन्न होती है, दर्शनरूप नहीं । इस में क्रमशः उपयोगों की प्रवृत्ति
होती है । ज्ञानोपयोग के बाद दर्शनरूप भी उपयोग होता है, इसलिये
सूत्रकारने सूत्र में पहिले ज्ञान कहा और इसके बाद में दर्शन कहा है ।

अथवा—इस अध्ययन में सम्यग्ज्ञान की प्ररूपणा ही मुख्यतः करनी
है, इसी लिये अनुयोग के प्रारम्भ में मङ्गलनिमित्त ज्ञानपञ्चकरूप
भावनदी वक्तव्य है, और इसी भावनदी की प्ररूपणा के लिये इस

शका —ज्ञानની પહેલા દર્શન હોય છે પછી જ્ઞાન તો પછી શા માટે
એવા ક્રમનું ઉલ્લઘન કરીને સૂત્રકારે સૂત્રમાં પહેલા “ જાણે છે ” એવું કહ્યું
અને પછી “ દેખે છે ” એવું કહ્યું છે ?

ઉત્તર—આ પ્રમાણે સૂત્રકારના ડથનનો ભાવ આ છે—જેટલી પણ લબ્ધિઓ
હોય છે તે બધી સાકાર ઉપયોગવાળા બધને હોય છે, નિરાકાર ઉપયોગવાળા
બધને નહી કારણ કે અવધિ પણ એક ખાસ લબ્ધિ છે તે કારણે તે ન્યારે
પ્રથમ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે જ્ઞાનરૂપે જ ઉત્પન્ન થાય છે દર્શન રૂપે નહી તેમાં
ક્રમશઃ ઉપયોગની પ્રવૃત્તિ થાય છે જ્ઞાનોપયોગની પછી દર્શનરૂપે પણ ઉપયોગ
હોય છે તેથી સૂત્રકારે સૂત્રમાં પહેલું જ્ઞાન કહ્યું છે અને પછી દર્શન કહ્યું છે

અથવા—આ અધ્યયનમાં સમ્યગ્જ્ઞાનની પ્રરૂપણા જ મુખ્યત્વે કરવાની છે
તેની અનુયોગની શરૂઆતમાં મંગળ નિમિત્ત જ્ઞાન પચ્ચકરૂપ ભાવનદી વક્તવ્ય
છે અને એજ ભાવનદીની પ્રરૂપણાને માટે આ અવ્યયનનો પ્રારંભ થયો છે

नमारब्धम्, तस्मात् सम्यग्ज्ञानमिह प्रधान, न तु मिथ्याज्ञानं, तस्य माद्गल्यहेतुत्वा-
भावात् । दर्शन तु अविज्ञानविभङ्गसाधारणमिति तदप्रधानम्, प्रधानानुयायी च
लौकिको लोकोत्तरश्च मार्गः । तथा च प्रधानत्वात् प्रथम ज्ञानमुक्तपश्चाद् दर्शनमिति ।

क्षेत्रतोऽविज्ञानी जघन्येन=सर्वतः स्तोकतया, जघन्येनेति भावप्रधानो निर्देशः।
अगुलस्यासख्येयभाग जानाति पश्यति । उत्कर्षेण=उत्कर्षतः, असख्येयानि=अस-
रयातसख्यकानि, अलोके=अलोकाकाशे लोकरूपमाणानि=चतुर्दशरज्ज्वात्मकानि
खण्डानि जानाति, पश्यति, अलोके यदि असंख्यातानि लोकरूपमाणानि खण्डानि-

अध्ययन का प्रारम्भ हुआ है, अतः इस स्थिति में सम्यग्ज्ञान यहा
प्रधान माना गया है, मिथ्याज्ञान नहीं, क्यों कि मिथ्याज्ञान में मगल
के प्रति हेतुरूपता नहीं है । यह हेतुरूपता सम्यग्ज्ञान मे ही है, क्यों कि
वह मिथ्यादर्शन के साथ नहीं रहता है । दर्शन मे ऐसी बात नहीं है—
वह जिस प्रकार अविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान के साथ रहता है उसी
प्रकार मिथ्याज्ञानरूपविभङ्गावधि के भी साथ रहता है, इसलिये
दर्शन में प्रधानता नहीं है । जो प्रधान हुआ करता है उसका ही अनुयायी
लौकिक और लोकोत्तर मार्ग होता है, इसलिये प्रधान होने से सूत्र में
प्रथम ज्ञान कहा गया है और बाद में दर्शन ।

क्षेत्र की अपेक्षा अविज्ञानी जघन्यरूपसे अगुल के असख्यातवें
भाग क्षेत्र को जानता है और देखता है । उत्कृष्टरूप से अलोकाकाश
में यदि लोकप्रमाण असख्यात खड सभविता होजावें तो उन्हें भी
अविज्ञानी जान सकता है और देख सकता है । लोक का प्रमाण चौदह

तेथी आ स्थितिमा सम्यग् ज्ञान अडी मुष्य मानेन छे, मिथ्याज्ञान नडी
जरखु के मिथ्याज्ञानमा भगणनी तरङ्ग हेतुत्पता तथी आ हेतुत्पता सम्यग्
ज्ञानमा न छे डारखु के मिथ्यादर्शननी साथे रहेतु नथी दर्शनमा ज्येवी वात नथी
ते न प्रमाणे अविज्ञान इप सम्यग्ज्ञाननी साथे रहे छे ते न प्रमाणे मिथ्या
ज्ञानइप-विभगावधिनी साथे पखु रहे छे तेथी दर्शन मुष्य नथी न प्रधान
(मुष्य) होय छे तेना न अनुयायी लौकिके अने लोकोत्तर मार्ग होय छे आ रीते
प्रधान होवाथी सूत्रमा प्रथम ज्ञान कखु छे अने पछी दर्शन कखु छे

क्षेत्रनी अपेक्षाजे अविज्ञानी जघन्य इपथी अगुलना असख्यातमा
भागना क्षेत्रने नखे छे अने देखे छे उत्कृष्टइपथी अलोकाकाशमा नने असख्यात
अड सभविता थर नय तो तेमने पखु अविज्ञानी नखी शके छे अने देखी
शके छे लोकोत्तर प्रमाणे चौदह रज्जु अताखु छे काणनी अपेक्षाजे अविज्ञानी

સમવેયુસ્તહિ તાન્યપિ અગ્નિજ્ઞાની પશ્યેદિત્યર્થઃ । કાલતોડગ્નિજ્ઞાની જગન્યેન આવલિકાયા અસખ્યેયમાગ જાનાતિ પશ્યતિ । ઉત્કર્ષતોડમરપ્રેયા ઉત્સર્પિણીઃ= અસખ્યાતોત્સર્પિણીપ્રમાણમ્, અમખ્યેયા અગ્નિજ્ઞાની=અમગ્ન્યાતાગ્નિજ્ઞાનીપ્રમાણમ્, અતીતમનાગત ચ કાલ જાનાતિ પશ્યતિ । ચ શબ્દાત્ વર્તમાનમપિ કાલ જાનાતિ પશ્યતીતિ ।

ભાવતોડગ્નિજ્ઞાની જગન્યેન અનન્તાન્ ભાવાન્=પર્યાયાન્, જાનાતિ, પશ્યતિ । इदं च-पर्यायाधारद्रव्यानन्तत्वादुक्तम्, न तु प्रतिद्रव्यापेक्षया, एकद्रव्यमाश्रित्य हि सख्येयानसख्येयान् वा पर्यायानेव अग्निज्ज्ञानी जानाति पश्यति । उत्सर्पेणाऽपि अनन्तान् भावान् जानाति, पश्यति । तत्र जघन्यापेक्षया उत्कृष्टमनन्तगुणम् भवती-

રાજૂ ઘતલાયા ગયા હૈ । કાલ કી અપેક્ષા અવધિજ્ઞાની જગન્ય સે આવલિકા કે અસખ્યાતવે ભાગ કો જાનતા ઔર દેખતા હૈ, ઔર ઉત્કૃષ્ટ કી અપેક્ષા સે અસરયાત ઉત્સર્પિણીપ્રમાણ ઔર અસરયાત અવસર્પિણીપ્રમાણ અતીત એવ અનાગતકાલ કો જાનતા ઔર દેખતા હૈ । તથા વર્તમાનકાલ કો ણી જાનતા દેખતા હૈ । ભાવ કી અપેક્ષા અવધિજ્ઞાની જગન્યરૂપ સે અનતપર્યાયો કો જાનતા ઔર દેખતા હૈ । પર્યાયો કો આધારભૂત દ્રવ્ય અનત હૈ, અતઃ ઇસ અપેક્ષા અનતપર્યાયો કો જાનને દેખને કી વાત અવધિજ્ઞાની કે ભાવ કી અપેક્ષા સે કહી ગઈ હૈ, એક દ્રવ્ય કી અપેક્ષા નહીં । એક દ્રવ્ય કી અપેક્ષા તો અવધિજ્ઞાની સખ્યાત અથવા અસખ્યાત પર્યાયો કો હી જાનતા દેખતા હૈ । ઉત્કર્ષ સે અવધિજ્ઞાની જીવ અનતપર્યાયો કો જાનતા ઔર દેખતા હૈ । જગન્યરૂપ સે ણી અવધિજ્ઞાની અનતપર્યાયો કો જાનતા હૈ ઔર

જગન્યથી આવલિકાના અમખ્યાતમા લાગને જાણુ છે અને દેખે છે અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ અસખ્યાત ઉત્સર્પિણી પ્રમાણ અને અસખ્યાત અવસર્પિણી પ્રમાણ ભૂત અને ભવિષ્યકાળને જાણુ છે અને દેખે છે તથા વર્તમાનકાળને પણ જાણુ છે અને દેખે છે ભાવની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાની જગન્યરૂપથી અનેક પર્યાયને જાણુ છે અને દેખે છે પર્યાયના આધારભૂત દ્રવ્ય અનત છે તેથી તે અપેક્ષાએ અનત પર્યાયને જાણુવા દેખવાની વાત અવધિજ્ઞાનીના ભાવની અપેક્ષાએ કહેલ છે, એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નહી એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તે અવધિજ્ઞાની સખ્યાત અથવા અસખ્યાત પર્યાયને જ જાણુ છે તથા દેખે છે ઉત્કર્ષથી અવધિજ્ઞાની જીવ અનત પર્યાયને જાણુ અને દેખે છે જગન્ય રૂપથી પણ અવધિજ્ઞાની અનત પર્યાયને જાણુ છે અને ઉત્કૃષ્ટથી પણ અનત

त्याभयेनाधिज्ञानी जघन्येन सर्वरूपिद्रव्यापेक्षया पर्यायाणामनन्तभाग जानाति पश्यति । तदुच्यते—‘सर्वभाषाण’ इत्यादि । सर्वभाषाणामनन्तभाग जानाति पश्यति॥

तदेतमवधिज्ञानं द्रव्यादिभेदतोऽप्यभिधाय सप्रति सग्रहगाथामाह—

मूलम्—ओही भवपच्चइओ, गुणपच्चइओ य वणिणओ दुविहो ।

तस्स य वहू विकप्पा, दव्वे खित्ते य काले य ॥ १ ॥

उया—अवधिर्भवप्रत्ययिको, गुणप्रत्ययिकश्च वर्णितो द्विविधः ।

तस्य च वहू विकल्पाः, द्रव्ये क्षेत्रे च काले च ॥ १ ॥

टीका—‘ओही’ इत्यादि । भवप्रत्ययिकगुणप्रत्ययिकश्चेति द्विविधोऽवधिर्वर्णित ।

तस्य द्विविधस्य च गृहो विकल्पा भवन्ति । द्रव्ये इति-द्रव्यविषयाः, परमाणुस्कन्धादि-

उत्कृष्ट से भी अनन्तपर्यायों को जानता है । उसमें जघन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट अनन्तगुणा होता है, अतः अवधिज्ञानी जघन्य से सर्व रूपी द्रव्यों की अपेक्षा पर्यायों के अनन्तवें भाग को जानता और देखता है ॥

इस प्रकार अवधिज्ञान का द्रव्यादिक भेदों का अपेक्षा वर्णन करके सूत्रकार अब इस विषयमें सग्रह गाथा का कथन करते हैं—‘ओही भवपच्चइओ’ इत्यादि ।

भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है । इन दोनों प्रकार के अवधिज्ञान के अनेक भेद हैं । द्रव्य, क्षेत्र और काल, तथा “च” शब्द से भाव को विषय करने के कारण अवधिज्ञान के और भी चार भेद होते हैं । परमाणु तथा स्कन्ध आदि द्रव्य को विषय करनेवाला अवधिज्ञान द्रव्य-अवधिज्ञान है । अगुल के

येने ज्ञेये छे तेमा जघन्यना करता उत्कृष्ट अनन्तगुणु होय छे, तेथी अवधि-
ज्ञानी जघन्यथी सर्व रूपी द्रव्येनी अपेक्षाये पर्यायेना अनन्तमा लागने ज्ञेये
अने हेजे छे

आ शीते अवधिज्ञानतु द्रव्यादिऽलेहोनी अपेक्षाये वर्णन करीने सूत्रकार
हुये आ विषयमा सग्रह गाथानु कथन करे छे—

“ओही भव पच्चइओ” इत्यादि—

भावप्रत्ययिक अने गुणप्रत्ययिकना लेहथी अवधिज्ञान जे प्रकारतु होय छे
आ लन्ने प्रकारना अवधिज्ञानना अनेऽ भेद छे द्रव्य, क्षेत्र येने काण तथा
“च” शब्दथी भावको विषय करवाना कारणे अवधिज्ञानना भीला पणु यार
लेह थाय छे परमाणु अने स्कन्ध आदि द्रव्येने विषय करनाइ अवधिज्ञान
न० २०

સમવેયુસ્તહિ તાન્યપિ અગ્નિજ્ઞાની પશ્યેદિત્યર્થઃ । કાલતોઽગ્નિજ્ઞાની જઘન્યેન આવલિકાયા અસખ્યેયભાગ જાનાતિ પશ્યતિ । ઉત્કર્ષતોઽમર્યાયા ઉત્સર્પિણીઃ= અસખ્યાતોત્સર્પિણીપ્રમાણમ્, અમર્યાયા અગ્નિજ્ઞાની=અમર્યાયાત્ત્વમ્, અતીતમનાગત ચ કાલ જાનાતિ પશ્યતિ । ચ શન્દાત્ વર્તમાનમપિ કાલ જાનાતિ પશ્યતીતિ ।

ભાવતોઽગ્નિજ્ઞાની જઘન્યેન અનન્તાન્ ભાવાન્=પર્યાયાન્, જાનાતિ, પશ્યતિ । ઇદ ચ-પર્યાયાધારદ્રવ્યાનન્તત્વાદુક્તમ્, ન તુ પ્રતિદ્રવ્યાપેક્ષયા, એકદ્રવ્યમાશ્રિત્ય હિ સખ્યેયાનસખ્યેયાન્ વા પર્યાયાનેવ અગ્નિજ્ઞાની જાનાતિ પશ્યતિ । ઉત્કર્ષેનાઽપિ અનન્તાન્ ભાવાન્ જાનાતિ, પશ્યતિ । તત્ત જઘન્યાપેક્ષયા ઉત્કૃષ્ટમનન્તગુણમ્ મરતી-

રાજૂ વતલાયા ગયા હૈ । કાલ કી અપેક્ષા અવધિજ્ઞાની જઘન્ય સે આવલિકા કે અસખ્યાતવે ભાગ કો જાનતા ઓર દેખતા હૈ, ઓર ઉત્કૃષ્ટ કી અપેક્ષા સે અસર્યાત ઉત્સર્પિણીપ્રમાણ ઓર અસર્યાત અવસર્પિણીપ્રમાણ અતીત એવ અનાગતકાલ કો જાનતા ઓર દેખતા હૈ । તથા વર્તમાનકાલ કો મી જાનતા દેખતા હૈ । ભાવ કી અપેક્ષા અવધિજ્ઞાની જઘન્યરૂપ સે અનતપર્યાયો કો જાનતા ઓર દેખતા હૈ । પર્યાયો કે આધારભૂત દ્રવ્ય અનત હૈ, અતઃ ઇસ અપેક્ષા અનતપર્યાયો કો જાનને દેખને કી યાત અવધિજ્ઞાની કે ભાવ કી અપેક્ષા સે કહી ગઈ હૈ, એક દ્રવ્ય કી અપેક્ષા નહીં । એક દ્રવ્ય કી અપેક્ષા તો અવધિજ્ઞાની સખ્યાત અથવા અસખ્યાત પર્યાયો કો હી જાનતા દેખતા હૈ । ઉત્કર્ષ સે અવધિજ્ઞાની જીવ અનતપર્યાયો કો જાનતા ઓર દેખતા હૈ । જઘન્યરૂપ સે મી અવધિજ્ઞાની અનતપર્યાયો કો જાનતા હૈ ઓર

જઘન્યથી આવલિકાના અમર્યાયાતમા ભાગને જાણે છે અને દેખે છે અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ અસખ્યાત ઉત્સર્પિણી પ્રમાણ અને અસખ્યાત અવસર્પિણી પ્રમાણ ભૂત અને ભવિષ્યકાળને જાણે છે અને દેખે છે તથા વર્તમાનકાળને પણ જાણે છે અને દેખે છે ભાવની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાની જઘન્યરૂપથી અનેક પર્યાયોને જાણે છે અને દેખે છે પર્યાયોના આધારભૂત દ્રવ્ય અનત છે તેથી તે અપેક્ષાએ અનત પર્યાયોને જાણવા દેખવાની વાત અવધિજ્ઞાનીના ભાવની અપેક્ષાએ કહેલ છે, એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ નહીં એક દ્રવ્યની અપેક્ષાએ તો અવધિજ્ઞાની સખ્યાત અથવા અસખ્યાત પર્યાયોને જ જાણે છે તથા દેખે છે ઉત્કર્ષથી અવધિજ્ઞાની જીવ અનત પર્યાયોને જાણે અને દેખે છે જઘન્ય રૂપથી પણ અવધિજ્ઞાની અનત પર્યાયોને જાણે છે અને ઉત્કૃષ્ટથી પણ અનત પર્યાયોને

त्याशयेनावधिज्ञानी जघन्येन सर्वरूपिद्रव्यापेक्षया पर्यायाणामनन्तभाग जानाति पश्यति । तदुच्यते—‘सञ्चभाषण’ इत्यादि । सर्वभाषाणामनन्तभागं जानाति पश्यति ॥

तदेवमवधिज्ञानं द्रव्यादिभेदतोऽप्यभिधाय सप्रति सग्रहगाथामाह—

मूलम्—ओही भवपच्चइओ, गुणपच्चइओ य वणिणओ दुविहो ।

तस्स य वहू विकप्पा, दव्वे खित्ते य काले य ॥ १ ॥

उाया—अधिर्भवप्रत्ययिको, गुणप्रत्ययिकश्च वर्णितो द्विविधः ।

तस्य च बहवो विकल्पाः, द्रव्ये क्षेत्रे च काले च ॥ १ ॥

टीका—‘ओही’ इत्यादि । भवप्रत्ययिकगुणप्रत्ययिकश्चेति द्विविधोऽधिर्वर्णितः ।

तस्य द्विविधस्य च बहवो विकल्पा भवन्ति द्रव्ये इति-द्रव्यविषयाः, परमाणुस्कन्धादि-

उत्कृष्ट से भी अनन्तपर्यायों को जानता है । उसमें जघन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट अनन्तगुणा होता है, अतः अवधिज्ञानी जघन्य से सर्व रूपी द्रव्यों की अपेक्षा पर्यायों के अनन्तवें भाग को जानता और देखता है ॥

इस प्रकार अवधिज्ञान का द्रव्यादिक भेदों का अपेक्षा वर्णन करके सूत्रकार अब इस विषयमें सग्रह गाथा का कथन करते हैं—‘ओही भवपच्चइओ’ इत्यादि ।

भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है । इन दोनों प्रकार के अवधिज्ञान के अनेक भेद हैं । द्रव्य, क्षेत्र और काल, तथा “च” शब्द से भाव को विषय करने के कारण अवधिज्ञान के और भी चार भेद होते हैं । परमाणु तथा स्कन्ध आदि द्रव्य को विषय करनेवाला अवधिज्ञान द्रव्य-अवधिज्ञान है । अगुल के

थोने जणु छे तेभा जघन्यना उरता उत्कृष्ट अनन्तगणु डोय छे, तेथी अवधिज्ञानी जघन्यथी सर्व रूपी द्रव्योनी अपेक्षाये पर्यायोना अनन्तभा भागने जणु अने हेजे छे

आ रीते अवाधिज्ञाननु द्रव्यादिभेदोनी अपेक्षाये वर्णन करीने सूत्रकार उवे आ विषयभा सग्रह गाथानु कथन करे छे—

“ओही भव पच्चइओ” इत्यादि—

भावप्रत्ययिक अने गुणप्रत्ययिकना लेहथी अवधिज्ञान जे प्रकारनु डोय छे आ लन्ने प्रारना अवधिज्ञानना अनेक लेह छे द्रव्य, क्षेत्र अने काल तथा “च” शब्दथी भावको विषय करवाना कारणे अवधिज्ञानना भील पणु आर लेह थाथ छे परमाणु अने स्कन्ध आदि द्रव्यने विषय करनाइ अवधिज्ञान

सभवेयुस्तहि तान्यपि अग्रधिज्ञानी पश्येदित्यर्थः । कालतोऽग्रधिज्ञानी जघन्येन आवलिकाया असख्येयभाग जानाति पश्यति । उत्कर्षतोऽमरयेया उत्सर्पिणीः= असख्यातोत्सर्पिणीप्रमाणम्, अमख्येया अग्रसर्पिणी=अमग्न्यात्तानसर्पिणीप्रमाणम्, अतीतमनागत च काल जानाति पश्यति । च शब्दात् वर्तमानमपि काल जानाति पश्यतीति ।

भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तान् भावान्=पर्यायान्, जानाति, पश्यति । इदं च-पर्यायाधारद्रव्यानन्तत्वादुक्तम्, न तु प्रतिद्रव्यापेक्षया, एकरुद्रव्यमाश्रित्य हि सख्येयानसख्येयान् वा पर्यायानेव अग्रधिज्ञानी जानाति पश्यति । उत्कर्षेणाऽपि अनन्तान् भावान् जानाति, पश्यति । तत्र जघन्यापेक्षया उत्कृष्टमनन्तगुणम् मन्ती-

राजू बतलाया गया है । काल की अपेक्षा अवधिज्ञानी जघन्य से आवलिका के असख्यातवें भाग को जानता और देखता है, और उत्कृष्ट की अपेक्षा से असख्यात उत्सर्पिणीप्रमाण और असख्यात अवसर्पिणीप्रमाण अतीत एवं अनागतकाल को जानता और देखता है । तथा वर्तमानकाल को भी जानता देखता है । भाव की अपेक्षा अवधिज्ञानी जघन्यरूप से अनन्तपर्यायों को जानता और देखता है । पर्यायों के आधारभूत द्रव्य अनन्त हैं, अतः इस अपेक्षा अनन्तपर्यायों को जानने देखने की बात अवधिज्ञानी के भाव की अपेक्षा से कही गई है, एक द्रव्य की अपेक्षा नहीं । एक द्रव्य की अपेक्षा तो अवधिज्ञानी सख्यात अथवा असख्यात पर्यायों को ही जानता देखता है । उत्कर्ष से अवधिज्ञानी जीव अनन्तपर्यायों को जानता और देखता है । जघन्यरूप से भी अवधिज्ञानी अनन्तपर्यायों को जानता है और

जघन्यथी आवलिकाना असख्यातमा लागने लखे छे अने हेजे छे अने उत्कृष्टनी अपेक्षाअे असख्यात उत्सर्पिणी प्रमाण अने असख्यात अवसर्पिणी प्रमाण लूत अने लविध्यकाणने लखे छे अने हेजे छे तथा वर्तमानकाणने पखे लखे छे अने हेजे छे लावनी अपेक्षाअे अवधिज्ञानी जघन्यरूपथी अनेक पर्यायाने लखे छे अने हेजे छे पर्यायाना आधारभूत द्रव्य अनन्त छे तेथी ते अपेक्षाअे अनन्त पर्यायाने लखेवा हेभवानी बात अवधिज्ञानीना लावनी अपेक्षाअे कडेल छे, अेक द्रव्यनी अपेक्षाअे नही अेक द्रव्यनी अपेक्षाअे तो अवधिज्ञानी सख्यात अथवा असख्यात पर्यायाने जे लखे छे तथा हेजे छे उत्कर्षथी अवधिज्ञानी एव अनन्त पर्यायाने लखे अने हेजे छे जघन्य रूपथी पखे अवधिज्ञानी अनन्त पर्यायाने लखे छे अने उत्कृष्टथी पखे अनन्त पर्याय

त्याशयेनावधिज्ञानी जघन्येन सर्वरूपिद्रव्यापेक्षया पर्यायाणामनन्तभागं जानाति पश्यति । तदुच्यते—‘सर्वभाषाण’ इत्यादि । सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति॥

तदेवमवधिज्ञानं द्रव्यादिभेदतोऽप्यभिधाय सप्तति सग्रहगाथामाह—

मूलम्—ओही भवपञ्चइओ, गुणपञ्चइओ य वणिणओ दुविहो ।

तस्स य वहू विकप्पा, दव्वे खित्ते य काले य ॥ १ ॥

उया—अवधिर्भवप्रत्ययिको, गुणप्रत्ययिकश्च वर्णितो द्विविधः ।

तस्य च वहसो विकल्पाः, द्रव्ये क्षेत्रे च काले च ॥ १ ॥

टीका—‘ओही’ इत्यादि । भवप्रत्ययिकगुणप्रत्ययिकश्चेति द्विविधोऽवधिर्णित । तस्य द्विविधस्य च महसो विकल्पा भवन्ति । द्रव्ये इति-द्रव्यविषयाः, परमाणुस्कन्धादि-

उत्कृष्ट से भी अनन्तपर्यायों को जानता है । उसमें जघन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट अनन्तगुणा होता है, अतः अवधिज्ञानी जघन्य से सर्व रूपी द्रव्यों की अपेक्षा पर्यायों के अनन्तवें भाग को जानता और देखता है ॥

इस प्रकार अवधिज्ञान का द्रव्यादिक भेदों का अपेक्षा वर्णन करके सूत्रकार अब इस विषयमें सग्रह गाथा का कथन करते हैं—‘ओही भवपञ्चइओ’ इत्यादि ।

भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है । इन दोनों प्रकार के अवधिज्ञान के अनेक भेद हैं । द्रव्य, क्षेत्र और काल, तथा “च” शब्द से भाव को विषय करने के कारण अवधिज्ञान के और भी चार भेद होते हैं । परमाणु तथा स्कन्ध आदि द्रव्य को विषय करनेवाला अवधिज्ञान द्रव्य-अवधिज्ञान है । अगुल के

येने न्हाणे छे तेभा जघन्यना उरता उत्कृष्ट अनन्तगुणु डोय छे, तेथी अवधि-ज्ञानी जघन्यथी सर्व इपी द्रव्येनी अपेक्षाये पर्यायेना अनन्तभा लागने न्हाणे अने हेणे छे

आ रीते अवधिज्ञानतु द्रव्यादिउ लेहोनी अपेक्षाये वणुन उरीने सूत्रकार डुये आ विषयभा सग्रह गाथानु कथन करे छे—

“ओही भव पञ्चइओ” इत्यादि—

भावप्रत्ययिक अने गुणप्रत्ययिकना लेहथी अवधिज्ञान जे प्रकारतु डोय छे आ लन्ने प्रकारना अवधिज्ञानना अनेक भेद छे द्रव्य, क्षेत्र येने काण तथा “च” शब्दथी भावके विषय करवाना उरखे अवधिज्ञानना भीज पणु थार लेह थाय छे परमाणु अने स्कन्ध आदि द्रव्यने विषय करनाइ अवधिज्ञान

દ્રવ્યભેદાત્ । ક્ષેત્રે ઇતિ-ક્ષેત્રવિષયયાઃ અગુલાઽસરયેયભાગાદિવિશિષ્ટક્ષેત્રભેદાત્ । કાલે ઇતિ કાલવિષયયાઃ આલિકાઽસરયેયભાગાદ્યુપલક્ષિતકાલભેદાત્ । ચ-શ્ચ દાત્ ભાવવિષયયાથ વર્ણાધનેરુપકારત્વાદ્ ભાવાનામિત્યર્થઃ ॥ ૧ ॥

एवमधिज्ञानमुक्त, समति ये नियतावधिकाः, ये चानियतावधिका भवन्ति तान् प्राह—

मूलम्—नेरइय—देव—तित्थकरा य, ओहिस्सऽवाहिरा हुति ।

पासति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासति ॥२॥

से त्तं ओहिनाणपच्चम्वं ॥

छाया—नैरयिक—देव—तीर्थकराश्च, अपघेरजाक्षा भवन्ति ।

पश्यन्ति सर्वतः खलु, शेपा देशेन पश्यन्ति ॥ २ ॥

तदेतदवधिज्ञानप्रत्यक्षम् ॥

असख्यातवें भाग आदि विशिष्ट क्षेत्र के भेद से क्षेत्र को विषय करने-वाला अवधिज्ञान क्षेत्र-अवधिज्ञान है । आवलिका के असख्येयभाग आदि से उपलक्षित काल के भेद से काल को विषय करनेवाला अवधिज्ञान काल-अवधिज्ञान है । वर्ण आदि की अपेक्षा अनेक २ प्रकार के होने से भावो को-पर्यायों को-विषय करनेवाला अवधिज्ञान भाव-अवधिज्ञान है ॥ १ ॥

इस प्रकार अवधिज्ञान का वर्णन करके अब सूत्रकार नियत अवधिवालों का और अनियत अवधिवालों का वर्णन करते हैं—‘नेरइय-देव-तित्थकरा’ इत्यादि ।

દ્રવ્ય અવધિજ્ઞાન છે અશુભના અસખ્યાતમા ભાગ આદિ વિશિષ્ટ ક્ષેત્રના લેહથી ક્ષેત્રને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન ક્ષેત્ર અવધિજ્ઞાન છે આલિકાના અસખ્યેય ભાગ આદિથી ઉપલક્ષિત કાળના લેહથી કાળને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન કાળ અવધિજ્ઞાન છે

વર્ણ આદિની અપેક્ષાએ અનેક અનેક પ્રકારનું હોવાથી ભાવોને-પર્યાયોને વિષય કરનારૂં અવધિજ્ઞાન ભાવ અવધિજ્ઞાન છે ॥ ૧ ॥

આ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાનનું વર્ણન કરીને હવે સૂત્રકાર નિયત અવધિવાળાનું અને અનિયત અવધિવાળાનું વર્ણન કરે છે—“નેર ઇય દેવ તિત્થકરા ” ઇત્યાદિ

ટીકા—‘નૈરઙ્ગ-દેવ૦’ ઇત્યાદિ । નૈરયિક-દેવ-તીર્થકરાશ્ચ-નૈરયિકાશ્ચ દેવાશ્ચ તીર્થકરાશ્ચ, નૈરયિકદેવતીર્થકરાઃ, ચ-ગબ્દોઽવધારણે, સ ચ ભિન્નક્રમસ્તેન નૈરયિક-દેવતીર્થકરાઃ, અવધેઃ=અવધિજ્ઞાનસ્ય, અવાહ્યા એવ મવન્તિ, કદાપિ વાહ્યા ન મવન્તિ, એપામગ્નિર્નિયમેન મગ્નીત્યર્થઃ । તેન ચાવધિના સર્વત એવ પશ્યન્તિ, ન તુ દેશતઃ । ‘તીર્થઙ્કરાઃ’ ઇત્યત્ર ‘તીર્થાચ્ચૈકે’ ઇતિ વચનાત્ ‘સ્વ’ પ્રત્યયે તીર્થ-શબ્દાત્ ‘મમ’ મવતિ ।

નતુ ‘પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ’ ઇત્યેવાસ્તુ ‘અવધેરવાહ્યા મવન્તી’-ત્યેતત્કથન ત્વનર્થકમ્, નિયતાવધિકત્વરૂપાર્થસ્ય સુતરા લાભાત્, તથાદિ-‘દોષ્ઠ મવપન્ચઙ્ગય,

નારકી જીવ, દેવ ઓર તીર્થકર યે નિયમતઃ અવધિજ્ઞાન સે યુક્ત હોતે હૈ । ઇસ અવધિજ્ઞાન કે ઢારા વે સર્વ પદાર્થો કો સર્વદેશ સે જાનતે હૈ ઓર દેખતે હૈ, એક દેશ સે નહી । તાત્પર્ય ઇસકા કેવલ ઘરી હૈ કિ અવધિજ્ઞાન કા વિષય કુઠ્ઠ પર્યાયોસહિત રૂપી દ્રવ્ય હૈ । તીર્થકર દેવ ઓર નારકી, યે લોક મે રહે હુણ પદાર્થો કો સર્વદેશ સે જાનતે ઓર દેખતે હૈ । મનુષ્ય ઓર તિર્થશ્ચ કુઠ્ઠ પર્યાયોસહિત રૂપી પદાર્થ કો એકદેશ સે જાનતે હૈ । ઇનમેં મનુષ્ય સર્વદેશ સે મી જાનતે હૈ ।

શકા—ગાથા મે જો “પાસતિ સન્વઓ સ્વલુ” એસા પદ રચા હૈ ડસસે હી “ઓઠ્ઠિસ્સઽગાહિરા હુતિ” ઇસ ગાથાશ કા અર્થ ગૃહીત હો જાતા હૈ । અતઃ ઇસકી કોઈ સાર્થકતા નહીં હૈ । કારણ કિ “અવધેઃ અવાહ્યાઃ મવન્તિ” ઇસસે જો નૈરયિક દેવ, તથા તીર્થકરોં મેં નિયતા-વધિકત્વરૂપ અર્થ પ્રકટ કિયા જાતા હૈ ડસકા લાભ “પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ” ઇસ કથન સે સર્વથા હો જાતા હૈ । અન્યત્ર મી એસા હી કહા હૈ—

નારકી જીવ, દેવ અને તીર્થ કર એ નિયમત અવધિજ્ઞાનવાળા હોય છે આ અવધિજ્ઞાન વડે તેઓ મર્વ પદાર્થોને સર્વદેશથી જાણે છે અને દેખે છે, એક દેશથી નહીં તેનુ તાત્પર્ય ડક્ત એજ છે કે અવધિજ્ઞાનનો વિષય કેટલીક પર્યાયો સહિત ડૂપી દ્રવ્ય છે તીર્થ કર, દેવ અને નારકી એ, લોકમા રહેલા પદાર્થોને સર્વદેશથી જાણે છે અને દેખે છે મનુષ્ય અને તીર્થચ કેટલીક પર્યાયો સહિત ડૂપી પદાર્થને એક દેશથી જાણે છે તેમનામા મનુષ્યો સર્વદેશથી પણ જાણે છે

શકા—ગાથામા જે “પશ્યન્તિ સર્વત સ્વલુ” એવુ પદ રાખ્યુ છે તેથી જ “અવધે અવાહ્યા મવન્તિ” આ ગાથાશનો અર્થ અહુષ્ઠ થઈ જાય છે તેથી તેની કોઈ સાર્થકતા નથી કારણુ કે “અવધે અવાહ્યા મવન્તિ” તેનાથી જે નારકી, દેવ તથા તીર્થ કરોમા નિયતાવધિકત્વ ડૂપ અર્થ પ્રગટ ડરાયો છે તેનો લાભ

ત જહા-દેવાણ નેરઙ્યાણ ચ' ઈતિ । દેવાના નારકાણા ચાર્ધિર્ભવપ્રત્યયિકો ભવતિ, જન્મતુ ઇવ તેગામરધિજ્ઞાન સિદ્ધમ્ । તીર્થંકરાણામપિ પરમસમુત્પન્નારધિજ્ઞાનસ્ય પ્રાપ્તિર્જન્મતઃ સુતરા સિદ્ધા ? ।

ઉચ્યતે—'પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ' ઈત્યેતાવન્માત્રોક્તો નૈરયિકદેવાદીનાં નિયતાવધિત્વે સિદ્ધેઽપિ તદવધિજ્ઞાનસ્ય ન મર્ત્તકાગમમ્થાયિત્વસિદ્ધિન્તસ્માત્ 'નૈરયિકદેવ-તીર્થંકરાઃ સદાઽવધિજ્ઞાનવન્તો ભવન્તી'—તિ ગપનાર્થમ્ 'અપ્પેરવાહ્યા ભવન્તી'—ત્યુક્તમિતિ ।

દેવ તથા નારકિયોં કે ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન હોતા હૈ । ઇસ કથન સે ઇસ વાત કી પુષ્ટિ હોને મેં કોઈ યાથા નહી આતી હૈ ફિ દેવ ઓર નારકિયોં કે અવધિજ્ઞાન જન્મ સે હી હોતા હૈ । તથા તીર્થંકરોં કે મી જો જન્મતઃ અવધિજ્ઞાન હોતા હૈ વહ ઉન્હેં પરભવ સે હી પ્રાપ્ત હુઆ રહતા હૈ અતઃ પરભવ મે સમુત્પન્ન અવધિજ્ઞાન કી પ્રાપ્તિ જન્મતઃ ડનમેં સહજ હી સિદ્ધ હો જાતી હૈ ।

ઉત્તર—યદપિ “પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ” ઇતનામાત્ર કહનેપર નૈરયિક તથા દેવાદિકોં મે નિયતાવધિકતા સિદ્ધ હો જાતી હૈ ફિર મી 'ડનમે અવધિજ્ઞાન સર્વકાલાવસ્થાયી હોતા હૈ' ઇમકી સિદ્ધિ “પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ” ઇતને માત્ર કહને સે નહી હોતી હૈ ઇસલિયે 'નૈરયિક, દેવ તથા તીર્થંકર સદા અવધિજ્ઞાન વાલે હોતે હૈ' ઇસ વાત કો વતલારને કે કે લિયે “અવધે અવાહ્યાઃ ભવન્તિ” ઇસા કહા હૈ । અતઃ યહ કહના સાર્થક હી હૈ, નિરર્થક નહી ।

“પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ” આ ગાથાશથી ળરાણર થઈ બય છે ળીને પણ એવુ કહ્યુ છે—દેવ તથા નારડીએને ભવપ્રત્યયિક અવધિજ્ઞાન થાય છે આ કથનથી આ વાતને સમથન મળવામા કોઈ મુશ્કેલી પડતી નથી કે દેવ અને નારડી-એને અવધિજ્ઞાન જન્મથી જ હોય છે તથા તીર્થંકરોને પણ બે જન્મથી જ અવધિજ્ઞાન હોય છે તે તેમને પરભવથી જ મળેલુ હોય છે તેથી પરભવમા સમુત્પન્ન અવધિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ જન્મથી જ તેઓમા સ્વાભાવિક રીતે જ સિદ્ધ થાય છે

ઉત્તર—બે કે “પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ” માત્ર એટલુ જ કહેવાથી નારડી તથા દેવાદિકોમા નિયતાવધિકતા સિદ્ધ થઈ બય છે તેા પછી “તેઓમા અવધિજ્ઞાન સર્વકાળ અવસ્થાયી હોય છે” તેની સિદ્ધિ “પશ્યન્તિ સર્વતઃ સ્વલુ” એટલુ માત્ર કહેવાથી થતી નથી તેથી નારડી, દેવ તથા તીર્થંકર સદા અવધિજ્ઞાનવાળા હોય છે એ વાતને બતાવવાને માટે “અવધે અવાહ્યા ભવન્તિ” એવુ કહ્યુ છે તેથી આ ગાથાશ સાર્થક જ છે નિરર્થક નથી

यद्येवं, तर्हि तीर्थकराणामवधेः सर्वकालवस्थायित्वं विरच्यते, इति चेन्न,
छद्मस्थकालस्यैव विवक्षितत्वात् ।

यद्वा—तदेवमधिज्ञानमुक्तम्, सप्रति ये बाह्यावधिकाः, ये चाग्नाह्यावधिका
भवन्ति, तान् प्रदर्शयति—‘नेरइय’ इत्यादि । नैरयिक देवतीर्थकराः, अवधेः=अव-
धिज्ञानस्य, अग्नाह्याः भवन्ति, ग्नाह्या न भवन्तीत्यर्थः । अवभ्युपलब्ध क्षेत्रस्यान्तराले
वर्तन्ते इति भावः । तथा—सर्वत=सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च, ग्वलु-शब्दोऽन्यारणा-
र्थकः, सर्वास्वेव दिक्षु विदिक्षु पश्यन्ति ।

शका—‘तीर्थकरों में अवधिज्ञान सर्वकाल रहता है’ यह कथन
आप का विरुद्ध पडता है, क्यों कि केवलज्ञान होने पर उनसे अवधि-
ज्ञान छूट जाता है ।

उत्तर—‘तीर्थकरों के अवधिज्ञान सर्वकाल अवस्थायी रहता है’ यह
कथन उनमे छद्मस्थकाल की अपेक्षा से ही जानना चाहिये, और उम्मी
काल की गहा विवक्षा है ।

इस गाथाका अर्थ अवतरणासहित दूसरे प्रकारसे किया जाता है—
अथवा—इम तरह अवधिज्ञान कह दिया गया है, अव जो बाह्याव-
धिक होते हैं तथा जो ग्नाह्यावधिक नहीं होते हैं उन्हें बतलाया जाता
है—‘नेरइयदेव०’ इत्यादि ।

नैरयिक, देव, तथा तीर्थकर ये अवधिज्ञान के अवाह्य होते हैं अर्थात्
उससे ग्राहिर नहीं होते हैं, अर्थात्—अवधिज्ञान से उपलब्धक्षेत्र के
अन्तरालवर्ती होते हैं, तथा सर्वतः समस्त ही दिशाओं में विदिशाओं
में देखते हैं ।

शका—तीर्थ उशेमा अवधिज्ञान सर्वकाल रहते छे आ कथन आपनी विद्द
पडे छे, नरयु के देवणज्ञान थता तेओमाथी अवधिज्ञान छूटी नय छे

उत्तर—तीर्थ उशेनु अवधिज्ञान सर्वकाल अवस्थायी रहते छे आ कथन तेओमा
छद्मस्थ जणनी अपेक्षाओ न नरयु नोई ओ अने ओन जणनी अही विवक्षा छे

आ गाथाने अर्थ अवतरणु सहित णीणु रीते उराय छे—अथवा आ
रीते अवधिज्ञान उही देवायु छे—इवे न ग्नाह्यावधिक डोय छे तथा न ग्नाह्या
वधिक नहीं डोता तेमने अताववामा आवे छे—“नेरइय-देव०” इत्यादि

नैरयिक, देव तथा तीर्थ उर तेओ अवधिज्ञानथी अवाह्य डोय छे ओटले
के तेओ तेनाथी अहार डोता नहीं ओटले के अवधिज्ञानथी प्राप्त क्षेत्रने
अन्तरालवर्ती डोय छे तथा सर्वत समस्त न दिशाओमा अने विदिशा-
ओमा हेओ छे

ननु—अधेरमाया भवन्तीत्यत ऽप्य ' सर्वतः ' इत्यस्य सिद्धत्वात् ' सर्वतः ' इति पुनः कथन व्यर्थम् ?

अत्रोच्यते—अधेरभ्यन्तरत्नाभिधानेऽपि न सर्व सर्वतः पश्यन्ति, कस्यचिद् दिगन्तरालादर्शनादभिज्ञानमप्य विचित्ररूपत्वादिति ' सर्वतः ' इति कथनन व्यर्थमिति । शेषाः=तिर्यञ्चो मनुष्याश्च, देशेन=एकदेशेन पश्यन्ति ॥२॥ तदेतद्विज्ञानप्रत्यक्ष वर्णितम् ॥ सू० १६ ॥

मूलम्—से कि त मणपञ्जवनाण ?, मणपञ्जवनाणे णं भंते । कि मणुस्साणं उप्पज्जड, अमणुस्साण ?, गोयमा । मणुस्साणं उप्पज्जइ नो अमणुस्साण ॥

छाया—अथ किं तन्मनःपर्ययान ? मनःपर्ययज्ञान खलु भदन्त ! किं मनुष्याणामुत्पद्यते, अमनुष्याणाम् ? । गौतम ! मनुष्याणामुत्पद्यते, नो अमनुष्याणाम् ॥

शका—“अवधे अवाह्याः भवन्ति” इतने से ही “सर्वतः” इसके अर्थ की सिद्धि हो जाती है, फिर “सर्वतः” यह कथन क्यों किया जाता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं है, अवधिज्ञान के सद्भाव में भी समस्त अवधिज्ञानी सर्व तरफ के पदार्थों को नहीं देखते हैं । कोई २ अवधिज्ञानी ऐसे भी होते हैं जो दिगन्तराल को भी नहीं देख सकते हैं । अवधिज्ञानकी यह विचित्रता है, इसलिये “सर्वतः” यह कथन व्यर्थ नहीं पड़ता है ॥२॥ यह प्रत्यक्ष प्रमाणरूप अवधिज्ञान का वर्णन हुआ ॥ सू० १६ ॥

शका—‘ अवधे अवाह्या भवन्ति ’ अटलाथी ज “सर्वत ” आना अर्थनी सिद्धि थध न्य छे तो पछी “सर्वत ” आ कथन निरर्थक थध न्य छे ?

उत्तर—अधु नथी अवधिज्ञानना सद्भावमा पणु समस्त अवधिज्ञानी सर्व तरफना पदार्थाने जेतो नथी कोछ कोछ अवधिज्ञानी जेवा पणु डोय छे जेभने दिगन्तरालतु पणु दर्शन थतु नथी अवधिज्ञाननी आ विचित्रता छे तेथी “सर्वत ” आ कथन व्यर्थ जतु नथी ॥२॥ आ प्रत्यक्ष प्रमाणु इय अवधिज्ञानतु वर्णन थथु ॥ सू० १६ ॥

दुवे सूत्रकार मन पर्ययज्ञानतु वर्णन करे छे—“ से किं त मण पञ्जवनाण ” इत्यादि

टीका—जम्बूस्वामी सुधर्मस्वामिन पृच्छति—‘ से किं त मणपज्जवनाण ’ इति। पूर्वनिर्दिष्ट यन्मनःपर्यवज्ञान तस्य किं स्वरूपमिति। एव जम्बूस्वामिना पृष्टः सुधर्मा स्वामी मनःपर्यवज्ञानविषये भगवद्गौतमयोः संवादप्रदर्शनपूर्वकमुत्तरमाह— ‘ मणपज्जवनाणे ’ इत्यादि। गौतमः पृच्छति—हे भदन्त ! मनःपर्यवज्ञान किं मनुष्याणामुत्पद्यते, उत अमनुष्याणाम् ? भगवानाह—हे गौतम ! मनुष्याणा मनः—पर्यवज्ञानमुत्पद्यते, न तु अमनुष्याणा, मनुष्यजातिभिन्नाना देवनारकतिरश्चा मनःपर्यवज्ञानोत्पद्यते इत्यर्थः, तेषां विशिष्टचारित्रप्रतिपत्यभावादिति भावः। भगवता श्रीवर्धमानस्वामिना गौतम प्रति यथा मनःपर्यवज्ञान वर्णित तथा वर्णितेन जम्बू—शिष्यः सम्यग् विज्ञास्यतीत्याशयेन सुधर्मा स्वामी भगवद्गौतमयोः सवाद प्राह—

अत्र सूत्रकार मनःपर्यवज्ञान का वर्णन करते हैं—‘ से किं त मणपज्जवनाण इत्यादि।

जम्बूस्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं—हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट मनःपर्यवज्ञान का क्या स्वरूप है। उत्तरमें सुधर्मा स्वामी, भगवान् महावीर और गौतमस्वामी का मनःपर्यवज्ञान के विषय में जो सवाद हुआ उसको कहते हैं—गौतमस्वामी पूछते हैं—‘ मणपज्जवनाणे ण ’ इत्यादि’ हे भदन्त ! मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है कि अमनुष्यों को ? प्रत्युत्तर में भगवान् ने कहा—हे गौतम ! मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है, अमनुष्यों को नहीं। मनुष्यजाति से भिन्न देव नारकी एव तिर्यञ्च गति के जीवों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, क्यों कि मनःपर्यवज्ञान की उत्पत्ति का कारण विशिष्ट चारित्र की पालना है। विशिष्ट चारित्र की पालना इन गति के जीवों के नहीं होती है। इस प्रकार का जो इस सूत्र में भगवान् श्री वर्धमानस्वामी और गौतम का सवाद मनःपर्यवज्ञान के विषय में श्री सुधर्मास्वामीने

७५५ स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे—हे भदन्त ! पूर्व निर्दिष्ट मन पर्यवज्ञानतु शु स्वरूप छे ? उत्तरमा सुधर्मास्वामी, भगवान् महावीर, अने गौतमस्वामीने मन पर्यवज्ञानता विषयमा जे सवाद थयो ते कहे छे गौतम स्वामी पूछे छे “ मणपज्जवनाणेण इत्यादि हे भदन्त ! मन पर्यवज्ञान मनुष्येने उत्पन्न थाय छे के अमनुष्येने ?

७५५५५ भगवाने कहुं—“ हे गौतम ! मन पर्यवज्ञान मनुष्येने उत्पन्न थाय छे अमनुष्येने नही मनुष्य जतिथी सिद्ध देव, नारकी अने तिर्यञ्च गतिना छेवने मन पर्यवज्ञान उत्पन्न थनु नथी, कारण के मन पर्यवज्ञाननी

ननु गौतमोऽपि चतुर्दशपूर्वधरः सर्वाक्षरसनिपाती सभिन्नश्रोताः सरूपप्रज्ञा-
पनीयभावपरिज्ञानकुशलः प्रवचनस्य प्रणेता सर्वज्ञरूप एव, तर्हि किमर्थं पृच्छति?,
उच्यते—हितमर्थं स्वशिष्येभ्यः प्ररूप्य, शिष्यश्रद्धादृढीकरणार्थं तत्समस्तं भूयोऽपि
भगवन्तं पृच्छति । अथवा—इत्यमेव सूत्ररचनामर्यादा ततो न रुचिदोष इति ॥

प्रकट किया है उसके प्रकट करने का उनका अभिप्राय यह है कि इस
वर्णन से जम्बूस्वामी मनःपर्यवज्ञान के विषय में सम्यक् रूप से अव-
बुद्ध हो जावें ।

शका—श्री वर्धमानस्वामी से गौतमस्वामीने मनःपर्यवज्ञान के
विषय में क्यों पूछा ? कारण कि वे स्वयं भी चतुर्दशपूर्व के धारी थे,
सर्वाक्षरसनिपाती थे, सभिन्नश्रोतोलब्धि के धारक थे, समस्त प्रज्ञा-
पनीय पदार्थों के परिज्ञान में कुशल थे, प्रवचन के प्रणेता और सर्वज्ञरूप थे ।

उत्तर—यद्यपि गौतम स्वामी स्वयं मनःपर्यवज्ञान के विषय में
अच्छी जानकारी रखते थे फिर भी भगवान से जो इस विषय में पूछा
उसका कारण यह है कि वे अपने शिष्यों को हितकारी शिक्षा देते
रहने पर भी शिष्यों की श्रद्धा में दृढता लाने के लिये उनके सामने फिर
पूछते हैं । अथवा—सूत्र रचने की मर्यादा इसी पद्धति से चलनी है इसलिये
भी गौतमस्वामी का प्रभु से इस प्रकार पूछना कोई दोषावह नहीं है ॥

उत्पत्तिनु कारणु विशिष्ट आश्रितनु पालन छे विशिष्ट आश्रितनु पालन अये
गतिना एवोधी यतु नथी आ प्रभाणेनो लगवान श्री वर्धमान स्वामी अने
गौतमनेो मन पर्यवज्ञानना विषयमा सवाद ले आ सूत्रमा सुधर्मास्वामीअये
प्रगट कर्ये छे तेने प्रगट करवानो तेमनेो हेतु अये छे के आ वरुणनथी न थू
स्वामी मन पर्यवज्ञानना विषयमा सारी रीते लक्षणुकार थाय

शका—श्री वर्धमान स्वामीने गौतम स्वामीअये मन पर्यवज्ञानना
विषयमा शा भाटे पूछ्यु ? कारणु के तेअो पोते न थौद पूर्वना धारणु करनारा
हुता, सर्वाक्षरसनिपाता हुता, सभिन्नश्रोतोलब्धिना धारक हुता, समस्त
प्रज्ञापनीय पदार्थोना परिज्ञानमा दुशण हुता, प्रवचनना प्रणेता अने सर्वज्ञरूप हुता

उत्तर—अये के गौतम स्वामी पोते न मन पर्यवज्ञानना विषयमा साइ
ज्ञान धरावता हुता तो पणु लगवानने आ विषयमा ले पूछ्यु तेनु कारणु अये
छे के तेअो पोताना शिष्योने हितकारी शिक्षा देता छता पणु शिष्योनी श्रद्धामा
दृढता लाववाने भाटे तेमनी सामे करीथी पूछे छे अथवा—सूत्र रचवानी मर्यादा
आ न पद्धतिथी आवे छे तेथी पणु गौतमस्वामीअये प्रभुने अये प्रभाणे पूछ्यु
ते केई रीते दोषपात्र नथी

मूलम्—जइ मणुस्साण, उप्पज्जइ कि संमुच्छिममणुस्साणं ?
गव्भवकतियमणुस्साणं ? गोयमा । गव्भवकतियमणुस्साणं
उप्पज्जइ नो संमुच्छिममणुस्साण ॥

छाया—यदि मनुष्याणामुत्पद्यते किं समूर्च्छिममनुष्याणां ? गर्भव्युत्क्रान्तिकमनु-
ष्याणाम् ? , गौतम ! गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते, नो समूर्च्छिममनुष्याणाम् ॥

टीका—‘जइ मणुस्साण’ इत्यादि । गौतमः पृच्छति—यदि मनुष्याणामेव
मनःपर्यवज्ञानमुत्पद्यते, तर्हि तत् किं समूर्च्छिममनुष्याणामुत्पद्यते, उत गर्भव्युत्क्रा-
न्तिकमनुष्याणाम् ? , भगवानाह—हे गौतम ! समूर्च्छिममनुष्याणां नोत्पद्यते, किंतु
गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्—गर्भजमनुष्याणामेव मन पर्यवज्ञानमुत्पद्यत इत्यर्थः ।
संमूर्च्छनं—संमूर्च्छः, भावे घञ्, तेन निर्वृत्ताः समूर्च्छिमाः, स्त्रीपुरुषयोः सयोगेन विना
ये प्राणिनः समुत्पद्यन्ते, ते समूर्च्छिमाः, उच्चारणसमुद्भवाः । समूर्च्छिमत्रिपयेऽधिक
जिज्ञासुभिरावश्यकमुत्रस्य मत्कृताया मुनितोषिणीटीकाया विलोकनीयम् । ये तु

‘जइ मणुस्साण उप्पज्जइ’ इत्यादि ।

फिर गौतम पूछते हैं—हे भदन्त ! यदि मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों के ही
उत्पन्न होता है तो क्या समूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न होता है अथवा
गर्भज मनुष्यों को ? भगवान् कहते हैं—हे गौतम ! यह मनःपर्यवज्ञान
गर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, समूर्च्छिम मनुष्यों को नहीं ।
स्त्री और पुरुष के सयोग के विना जिनकी उत्पत्ति होती है वे समूर्च्छिम
कहलाते हैं । जैसे—उच्चारण प्रसवण आदि में जीवों की उत्पत्ति होती
है । यह जन्म एकेन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पचेन्द्रियतक के जीवों

“जइ मणुस्साण उप्पज्जइ” इत्यादि

इरीथी गौतम स्वामी पूछे थे—“हे भदन्त ! जे मन पर्यवज्ञान मनु-
ष्याने न् उत्पन्न थाय छे तो शु ममूर्च्छिममनुष्याने उत्पन्न थाय छे के
गर्भज मनुष्याने ?” भगवान् कहे छे—“हे गौतम ! आ मन पर्यवज्ञान
गर्भज मनुष्याने न् उत्पन्न थाय छे, समूर्च्छिम मनुष्याने नहीं ” श्री अने
पुरुषना सयोग विना जेमनी उत्पत्ति थाय छे ते समूर्च्छिम कहेवाय छे
जेभके उच्चारण प्रसवण आदिमा लवोनी उत्पत्ति थाय छे आ जन्म अकेन्द्रिय
लवोथी लधने असंज्ञी पचेन्द्रिय सुधीना लवोने होय छे आ विषयमा विशेष
लक्ष्यु होय तो आवश्यक सूत्रनी अमारी जनावेदी मुनितोषिणी टीका जेवी

ગર્ભાશયે સમુત્પન્નન્તે તે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકાઃ, ગ્રન્થાર્થસ્ત્વેત્સુ=ગર્ભે-ગર્ભાશયે, વ્યુત્ક્રાન્તિઃ=ઉત્પત્તિર્યેષા તે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકાઃ, વ્યુત્ક્રાન્તિ-ગ્રન્થોડગ્રોત્પત્તિગ્રાચી। યદ્વા-ગર્ભાદ્-ગર્ભાવાસાદ્ વ્યુત્ક્રાન્તિર્નિષ્ક્રમણં યેષા તે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકાઃ । તે દ્વિધા-મનુષ્યાઃ ૧, પચ્ચેન્દ્રિયતિર્યગ્યોનિકાઃ ૨થેતિ । ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકમનુષ્યાસ્ત્રિગા ભવન્તિ-કર્મભૂમિજાઃ, અકર્મભૂમિજાઃ, અન્તર્દ્વીપજાથેતિ ॥

મૂલમ્-જઈ ગવ્ભવક્રતિયમણુસ્સાણં, ઉપ્પજ્જઈ કિં કમ્મ-ભૂમિય-ગવ્ભવક્રતિયમણુસ્સાણ ? અકમ્મભૂમિય-ગવ્ભવક્રતિય-મણુસ્સાણ ?, અતરદીવગગવ્ભવક્રતિયમણુસ્સાણ ?, ગોયમા । કમ્મભૂમિય-ગવ્ભવક્રતિય-મણુસ્સાણં ઉપ્પજ્જઈ, નો અકમ્મ-ભૂમિય-ગવ્ભવક્રતિય-મણુસ્સાણં, નો અંતરદીવગ-ગવ્ભવક્ર-તિય-મણુસ્સાણં ॥

કે હોતા હૈ । હસ વિષય મેં યદિ વિશેષ જાનના હો તો આવશ્યકસૂત્ર કી હમારી ચનાઈ મુનિતોપિણી ટીકા દેરના ચાહ્યે । જિન જીવોં કી ઉત્પત્તિ ગર્ભાશય સે હોતી હૈ વે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક હૈં । ગર્ભ-ગર્ભાશય-મેં જિન જીવોં કી વ્યુત્ક્રાન્તિ-ઉત્પત્તિ હોતી હૈં વે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક હૈં, યહ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક કા શબ્દાર્ય હૈ । અથવા ગર્ભ સે જિનકા વ્યુત્ક્રાન્તિ-નિષ્ક્રમણ-નિકલના-હોતા હૈ વે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક હૈં । ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક જીવ દો પ્રકાર કે હોતે હૈં-એક મનુષ્ય, દસરે પચેન્દ્રિય તિર્યચ્યોનિક । ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્ય મી કર્મભૂમિજ, અકર્મભૂમિજ, એવઅન્તરદ્વીપજ, હસ તરહ ત્રીન પ્રકાર કે હોતે હૈ । પ્રન્દ્રહ કર્મભૂમિયોં મે, જો ઉત્પન્ન હોતે હૈ વે કર્મભૂમિજ મનુષ્ય કહલાતે હૈ । ત્રીસ અકર્મભૂમિયોં મેં જો ઉત્પન્ન હોતે હૈ વે અકર્મભૂમિજ મનુષ્ય કહલાતે હૈ, એવ છપ્પન અતરદ્વીપોં મેં જો ઉત્પન્ન હોતે હૈં વે અન્તરદ્વીપજ મનુષ્ય કહલાતે હૈં ॥

જેઈએ જે જીવોની ઉત્પત્તિ ગર્ભાશયમાથી થાય છે તેઓ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક છે ગર્ભાશયમા જે જીવોની વ્યુત્ક્રાન્તિ (ઉત્પત્તિ) થાય છે તેઓ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક છે, આ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકનો શબ્દાર્થ છે અથવા ગર્ભમાથી જેમની વ્યુત્ક્રાન્તિ (નિષ્ક્રમણ, નિકળવાનું) થાય છે તેઓ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક છે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક જીવ એ પ્રકારના હોય છે-એક મનુષ્ય, બીજા પચેન્દ્રિયતિર્યચ્યોનિક ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યો પણ કર્મભૂમિજ, અકર્મભૂમિજ એટલે કે ભોગભૂમિજ, અને અન્તરદ્વીપજ, આ રીતે ત્રણ પ્રકારના હોય છે પદર કર્મભૂમિઓમા, ત્રીસ અકર્મભૂમિઓમા અને છપ્પન અતરદ્વીપોમા જે ઉત્પન્ન થાય છે, તેઓ કર્મભૂમિજ, અકર્મભૂમિજ અને અન્તરદ્વીપજ મનુષ્યો કહેવાય છે

છાયા—યદિ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણામુત્પદ્યતે, કિં કર્મભૂમિજગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણા ? , અકર્મભૂમિજગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણામ્ ? , અન્તર્દ્વીપજગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણામ્ ? , ગૌતમ ! કર્મભૂમિજગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણામુત્પદ્યતે, નોઅકર્મભૂમિજગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણામ્ , નો અન્તર્દ્વીપજ-ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણામ્ ॥

ટીકા—‘ જહ્ ગન્મવચ્ચક્રતિયમણુસ્સાણ ’ ઇત્યાદિ । યદિ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણા મનઃપર્યયજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, તર્હિ તત્ કિં કર્મભૂમિજ-ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણામ્ ? , કૃપિવાણિજ્યતપઃસંયમાનુષ્ઠાનાદિકર્મપ્રયાના ભૂમયઃ કર્મભૂમયઃ, ધરતપશ્ચકૈરવતપશ્ચકમહાવિદેહપશ્ચકલક્ષણાઃ પશ્ચદશ કર્મભૂમયઃ, તૂત્ર સમુત્પન્નાઃ કર્મભૂમિજાઃ, યે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રાઃ=ગર્ભજાઃ મનુપ્યાસ્તેપા મનઃપર્યયજ્ઞાનમુત્પદ્યતે કિમ્ , ઉત અકર્મભૂમિજગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક્રમનુપ્યાણા=કૃપ્યાદિકર્મરહિતાઃ કલ્પપાદપફલોપભોગપ્રદાના ભૂમયો હૈમવતપશ્ચકૈ-રણ્યવતપશ્ચકૈ-હરિવર્ષપશ્ચકૈ-રમ્યકર્વર્ષપશ્ચકૈ-દેવકુરુપશ્ચકૈ-ત્તરકુરુપશ્ચકૈ રૂપાસ્તિગત્ અકર્મભૂમયસ્તત્ર સમુત્પન્ના અકર્મભૂ-

‘ જહ્ ગન્મવચ્ચક્રતિયમણુસ્સાણ ’ ઇત્યાદિ ।

યદિ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યો કો મનઃપર્યયજ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ તો વહ કયા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યો કો ઉત્પન્ન હોતા હૈ, અથવા અકર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યો કો ઉત્પન્ન હોતા હૈ યા અન્તરદ્વીપગર્ભજ મનુષ્યો કો ઉત્પન્ન હોતા હૈ । જિન ભૂમિયોં મેં કૃપિ, વાણિજ્ય, તપઃસયમ આદિ કા અનુષ્ઠાન પ્રવાનરૂપ સે ક્રિયા જાતા હૈ વે કર્મભૂમિયા હૈ । યે કર્મભૂમિયા પાચ ધરત પાચ પેરવત ઓર પાચ મહાવિદેહ કે ભેદ સે પ્રન્દ્રહ વતલાઈ ગઈ હૈં । ડનમે જો ગર્ભ સે ઉત્પન્ન હોતે હૈં વે કર્મભૂમિજગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્ય હે । જિન ભૂમિયો મે પૂર્વોક્ત કૃપ્યાદિકર્માનુષ્ઠાન નહીં હોતા હૈ કિન્તુ કત્પવૃક્ષો સે હી જહા જીવોં કો ભોગ ઓર ઉપભોગ કી સામગ્રી પ્રાપ્ત હોતી રહતી હૈ વે અકર્મ ભૂમિયા હૈ, યે પાચ હૈમવત

“ જહ્ ગન્મવચ્ચક્રતિયમણુસ્સાણ ” ઇત્યાદિ

જે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને મન પર્યયજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે તે શુ કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે, અથવા અકર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે, કે અન્તરદ્વીપ ગર્ભજ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે ? જે ભૂમિયોમા કૃપિ, વેપાર તપ સયમ આદિનુ અનુષ્ઠાન મુખ્યત્વે ડરાય છે તે કર્મભૂમિયો છે તે કર્મભૂમિયો પાચ ધરત, પાચ ઐરાવત અને પાચ મહાવિદેહના લેહથી યદર યતાવેલ છે તેઓમા જે ગર્ભથી ઉત્પન્ન થાય છે તે કર્મભૂમિજ-ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્ય છે જે ભૂમિયોમા પૂર્વકથિત કૃપિ વગેરે કર્માનુષ્ઠાન હોતા નથી પણ કત્પવૃક્ષો વડે જ ન્યા જીવોને ભોગ અને ઉપભોગની સામગ્રી મળતી રહે છે

મિજાઃ, યે ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકા મનુષ્યાસ્તેષાં યા, ઉત ત્રિમ્ અન્તરદ્વીપજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકમનુષ્યાણામ્ ?=અન્તરે=લવણસમુદ્રસ્ય મધ્યે દ્વીપાઃ અન્તરદ્વીપાઃ, તે ચ-હિમવત્પર્વતપાદપ્રતિષ્ઠિતા ઇકોરુકાઘાઃ પદ્મપ્લાસતસપ્કા મયન્તિ, તત્ર યે સમુત્પન્ના ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકા મનુષ્યાસ્તેષા યા મનઃપર્યયજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, કિમિતિ પ્રશ્નઃ । મગત્રાનાહ-‘ ગોયમા ! ’ ઇત્યાદિ । હે ગૌતમ ! કર્મભૂમિજ-ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક-મનુષ્યાણામેત્ર મનઃ પર્યયજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, ન તુ અકર્મભૂમિજાના ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકમનુષ્યાણાં નાપિ ચાન્તરદ્વીપજાના ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકમનુષ્યાણામિતિ ।

ક્ષેત્ર, પાચ ણેરણ્યવત ક્ષેત્ર, પાંચ દરિવર્ષ ક્ષેત્ર, પાચ રમ્યક ક્ષેત્ર, પાચ દેવકુરુ, પાચ ઉત્તરકુરુ, હસ પ્રકાર તીસ હિં । જમ્દ્વીપ મેં ભરતક્ષેત્ર કી સીમાપર સ્થિત હિમવાન્ પર્વત કે દોનોં છોર-કિનારે-પૂર્વપશ્ચિમ લવણ સમુદ્ર મેં ફેલે હુણ હિં । ડસી પ્રકાર ણેરવતક્ષેત્ર કી સીમાપર સ્થિત શિખરીપર્વત કે દોનોં છોર મી લવણસમુદ્ર મેં ફેલે હુણ હિં । પ્રત્યેક છોર દો ભાગ મેં વિભાજિત હોને કે કારણ કુલ મિલાકર દોનોં પર્વતોં કે આઠ ભાગ લવણસમુદ્ર મે આયે હુણ હિં । યે ભાગ દાઢકે આકાર કે હિં । પ્રત્યેક ભાગ પર યુગલિયોં કી વસ્તીવાલે સાત ૨ દ્વીપ હોને સે સબ છપ્પન હિં । યે લવણસમુદ્ર મે આયે હુણ હોને કે કારણ અન્તરદ્વીપ કહલાતે હિં । યે ઇકોરુકાદિ નામ સે પ્રસિદ્ધ હિં । ડનમે અકર્મભૂમિ (ભોગભૂમિ) કી રચના હૈ । હસ પ્રકાર ગૌતમ કા પ્રશ્ન સુનકર પ્રશ્નને કહા-હે ગૌતમ ! મનઃ-પર્યયજ્ઞાન કર્મભૂમિજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોં કે હી હોતા હૈ । અકર્મ-ભૂમિજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોં કે નહીં ઓર ન અન્તરદ્વીપજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોં કો ॥

તે અકર્મભૂમિયો છે તેઓ પાચ હૈમવત ક્ષેત્ર, પાચ ઐરાણ્યવત ક્ષેત્ર, પાચ હરિવર્ષક્ષેત્ર, પાચ રમ્યકવર્ષ, પાચ દેવકુરુ, પાચ ઉત્તરકુરુક્ષેત્ર, આ પ્રમાણે ત્રીસ છે જ બુદ્ધીપમા ભસ્તક્ષેત્રની સીમા પર રહેલ હિમવાન પર્વતની બન્ને કોર (છેડા) પૂર્વપશ્ચિમ લવણસમુદ્રમા ફેલાયેલી છે આ રીતે ઐરવત ક્ષેત્રની સીમા પર રહેલ શિખરી પર્વતના બન્ને છેડા પણ લવણસમુદ્રમા ફેલાયેલા છે પ્રત્યેક છેડા બે ભાગમા વિભાજિત હોવાને કારણે કુલ મળીને બન્ને પર્વતોના આઠ ભાગો લવણસમુદ્રમા આવેલા છે તે ભાગો દાઢના આકારના છે પ્રત્યેક ભાગ પર યુગલિયોના વસ્તીવાળા સાત, સાત, દ્વીપ હોવાથી કુલ મળીને છપ્પન છે તેઓ લવણસમુદ્રમા આવેલા હોવાથી અન્તરદ્વીપ કહેવાય છે તેઓમા અકર્મ-ભૂમિ (ભોગભૂમિ)ની રચના છે ગૌતમનો એવો પ્રશ્ન સાલળીને પ્રભુએ કહ્યું - “હે ગૌતમ ! મન પર્યય જ્ઞાન કર્મભૂમિજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને જ થાય છે, અકર્મભૂમિજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને નહીં અને અન્તરદ્વીપજ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક મનુષ્યોને પણ નહીં ”

मूलम्—जइ कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण, उप्प-
ज्जइ किं संखिज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतियमणुस्साण ?
असखिज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साणं ?
गोयमा । सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साणं
उप्पज्जइ, नो असखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय-
मणुस्साणं ॥

छाया—यदि कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणामुत्पद्यते किं सख्येय-
वर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम् ? असख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-
गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम् ? गौतम ! सरयेयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्ति-
क-मनुष्याणामुत्पद्यते, नो असख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम् ।

टीका—‘जइ कम्मभूमिय०’ इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा । नर-सरये-
यवर्षायुष्काः=पूर्वकोट्यादिजीविनः, असख्येयवर्षायुष्काः=पल्योपमादिजीविन इति ।

‘जइ कम्मभूमिय०’ इत्यादि ।

अब पुनः गौतमस्वामी प्रश्न से पूछते हैं—हे भदन्त ! यदि मन पर्यय-
ज्ञान कर्मभूमिगर्भज मनुष्यो को होता है तो क्या सख्यात वर्ष की
आयुवाले कर्मभूमिगर्भज मनुष्य है उनको होता है अथवा जो असख्यात
वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिगर्भज मनुष्य है उनको होता है । एककोटि
पूर्व आदि आयुवालों का नाम सख्यातवर्षायुष्क और गणना से परे
पल्योपम आदि आयुवालो का नाम असख्यातवर्षायुष्क है । गौतम के
इस प्रश्न को सुनकर भगवान् ने कहा—हे गौतम ! मनःपर्ययज्ञान सख्यात-
वर्ष की आयुवाले ऐसे कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है
असख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को नहीं ॥

“जइ कम्मभूमिय०” इत्यादि

इसे गौतम स्वामी द्वितीय प्रश्नसे पूछे थे—“हे भदन्त । जे मन पर्ययज्ञान
कर्मभूमिगर्भज मनुष्येने थाय छे तो थु सख्यात वर्षना आयुष्यवाणा उर्भ-
भूमिगर्भज मनुष्ये छे तेभने थाय छे के ने असख्यात वर्षना आयुष्यवाणा
उर्भभूमिगर्भज मनुष्ये छे तेभने थाय छे ?” अक कोटि पूर्व आदि आयुवा
णाओनु नाम सख्यातवर्षना आयुवाणा, अने गणनाथी पर पल्योपम आदि
आयुवाणाओनु नाम असख्यात वर्षना आयुवाणा छे गौतमने अे प्रश्न
सालणीने लगवाने उहुं “हे गौतम ! मन पर्ययज्ञान सख्यात वर्षना
आयुष्यवाणा अेवा उर्भभूमिगर्भज मनुष्येने जे उत्पन्न थाय छे असख्यात
वर्षना आयुष्यवाणा कर्मभूमिगर्भज मनुष्येने नही ”

मूलम्—जइ सखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गवभवकतिय-मणु-
स्साण उप्पज्जइ कि पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय-
गवभवकतियमणुस्साणं ?, अपज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्म-
भूमिय-गवभवकतिय-मणुस्साणं ?, गोयमा । पज्जत्तग-सखेज्जवा-
साउय—कम्मभूमिय—गवभवकतिय-मणुस्साण, उप्पज्जइ, नो अ-
प्पज्जत्तग-सखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गवभवकतियमणुस्साण॥

छाया—यदि सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्प-
द्यते, किं पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?, अ-
पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ?, गौतम !
पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, नो
अपर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ॥

टीका—‘जइ सखेज्जवासाउय’ इत्यादि । वपरया निगदसिद्धा । नवर-
पर्याप्तकनामकर्मोदयान्निष्पन्नपर्याप्तमन्तः पर्याप्ताः ‘अर्शआदिभ्योऽच्’ इति
मत्वर्थीयोऽच् । त एव पर्याप्तकनामकर्मोदयान्निष्पन्नपर्याप्तियोगादपर्याप्तास्त
एवापर्याप्तका इति ॥

‘जइ सखेज्जवासाउय०’ इत्यादि ।

प्रभु से कथित इस उत्तर को सुनकर गौतमने पुनः प्रभु से पूछा-
हे भदत ! यदि मन.पर्ययज्ञान सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों
को उत्पन्न होता है तो क्या वह पर्याप्त सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज
मनुष्यों को होता है अथवा अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज
मनुष्यों को होता है ? । गौतम के इस प्रश्न को सुनकर प्रभुने कहा—हे
गौतम ! मन.पर्ययज्ञान, पर्याप्त सख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिगर्भज

“ जइ सखेज्जवासाउय० ” इत्यादि

प्रभुએ ઠહેલ તે ઉત્તર સાભળીને ગૌતમે ફરીથી પ્રભુને પૂછયુ —“ હે ભદન્ત ।
એ મન પર્યયજ્ઞાન સખ્યાત વર્ષના આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન
થાય છે તો તે શુ પર્યાપ્તક સખ્યાત વર્ષના આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુ
ષ્યોને થાય છે અથવા અપર્યાપ્તક સખ્યાત વર્ષના આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ
મનુષ્યોને થાય છે ? ” ગૌતમને આ પ્રશ્ન સાભળીને પ્રભુએ ઠહુ—“ હે ગૌતમ ।
મન પર્યયજ્ઞાન પર્યાપ્તક સખ્યાત વર્ષના આયુવાળા કર્મભૂમિગર્ભજ મનુષ્યોને

मूलम्—जइ पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण उप्पज्जइ, कि सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण ? , मिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण ? , सम्ममिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय मणुस्साण ? , गोयमा ! सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण उप्पज्जइ, नो मिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण, नो सम्ममिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—सखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण ॥

श्रया—यदि पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, किं सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणा ? , मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणा ? , सम्यग्मिथ्यादृष्टि—पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ? , गौतम ! सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, नो मिथ्यादृष्टिपर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम्, नो सम्यग्मिथ्यादृष्टि—(मिश्रदृष्टि)—पर्याप्तक—सखेयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ॥

मनुष्यों को ही होता है । अपर्याप्त सख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमि-गर्भज मनुष्यों को नहीं । पर्याप्त नामकर्म के उदय से जिनकी छह पर्याप्तिया निष्पन्न हो चुकी हैं वे पर्याप्त मनुष्य हैं, अपर्याप्त नामकर्म के उदय से जिनकी पर्याप्तिया निष्पन्न नहीं हुई हैं वे अपर्याप्त मनुष्य हैं ।

७ थाय छे, अपर्याप्तक सख्यात वर्षना आयुवाणा कर्मभूमि गर्भज मनुष्येने नही ” पर्याप्तक नाम—उर्ध्वना उदयथी जेमनी छ पर्याप्तियो पूर्ण थर्ध थुकी छे ते पर्याप्तक मनुष्यो छे अने अपर्याप्त—नामकर्मना उदयथी जेमनी पर्याप्तियो पूर्ण थर्ध नथी ते अपर्याप्तक मनुष्यो छे

टीका—‘जइ पज्जत्तग-सग्गेज्जयासाउय’ इत्यादि । ज्याग्या निगदसिद्धा । नवरं-सम्यग्दृष्टयः-सम्यक्=अविपरीता दृष्टिर्येषा ते तथा, मिथ्या=विपरीता दृष्टिर्येषा ते तथा, सम्यग्मिथ्यादृष्टयस्तु प्रतिपत्त्यभिमुखा अन्तर्मुहूर्तमात्रं भवन्ति, न तु परित्यागाभिमुखा इति ॥

‘जइ पज्जत्तग०’ इत्यादि ।

प्रभुद्वारा इस पूर्वोक्त उत्तर को सुनकर पुनः गौतमने पूछा-हे भदन्त ! यदि मनःपर्ययज्ञान, पर्याप्तक सरयातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमि गर्भज मनुष्यों को ही होता है तो क्या सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सरयात-वर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? अथवा पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? या पूर्वोक्त विशेषण सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? । गौतम के इस प्रश्न को सुनकर प्रभुने कहा-हे गौतम ! वह मनःपर्ययज्ञान पर्याप्तक सरयात-वर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है । पर्याप्तक, सरयातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को, तथा पर्याप्तक आदि विशेषण विशिष्ट मिथ्यादृष्टिसपन्न मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता है । तत्त्वों में अविपरीत जिनकी दृष्टि-रुचि-होती है वे सम्यग्दृष्टि हैं, तथा तत्त्वों में जिनकी रुचि विपरीत होती है वे मिथ्यादृष्टि हैं । अन्तर्मुहूर्तक प्रतिपत्ति के अभिमुख जो हों वे मिथ्यादृष्टि हैं । अर्थात् जिसके उदय समय में चर्यायता की रुचि या अरुचि न होकर दोलायमानस्थिति रहे वह मिथ्यादृष्टि है ॥

“जइ पज्जत्तग०” इत्यादि

प्रभुद्वारा पूर्वोक्त उत्तरने सालणीने श्री गौतमे पूछ्यु-“हे भदन्त ! जे मन पर्ययज्ञान, पर्याप्तक सख्यात वर्षना आयुवाणा कर्मभूमिगर्भजमनुष्योने ज थाय छे तो शु सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्योने उत्पन्न थाय छे ? के पूर्वोक्तविशेषण विशिष्टमिथ्यादृष्टि मनुष्योने उत्पन्न थाय छे ? के पूर्वोक्तविशेषणसहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योने उत्पन्न थाय छे ? ” गौतमने आ प्रश्न सालणीने प्रलुब्धे कहु-“ते मन पर्ययज्ञान कर्मभूमिगर्भज, पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क (सख्यात वर्षना आयुवाणा) सम्यग्दृष्टि मनुष्योने ज उत्पन्न थाय छे पर्याप्तक, सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिगर्भज मिथ्यादृष्टि मनुष्योने तथा पर्याप्तक आदिविशेषण विशिष्ट मिथ्यादृष्टिसपन्न मनुष्योने उत्पन्न थतु नथी ” तत्त्वोभा अविपरीत जेमनी दृष्टि-रुचि होय छे तेओ सम्यग्दृष्टि छे, तथा तत्त्वोभा जेमनी रुचि विपरीत होय छे तेओ मिथ्यादृष्टि छे अन्तर्मुहूर्त सुधी प्रतिपत्तिने अलिमुष जे होय तेओ मिथ्यादृष्टि छे अटवे के जेना उदयसमयमा यथार्थतानी रुचि अथवा अरुचि न थता होवायमान स्थिति रहे ते मिथ्यादृष्टि छे

मूलम्—जड सम्मद्विट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्म-
भूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साणं उप्पज्जइ, कि सजय—सम्मद्विट्ठि-
पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणु-
स्साणं ?, असजय—सम्मद्विट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउ य-
कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साणं ?, सजयासजय—समद्विट्ठि-
पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साणं ?
गोयमा । सजय—सम्मद्विट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमि-
य—गवभवक्कतिय—मणुस्साण उप्पज्जइ, नो असजय—सम्मद्विट्ठि-
पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—कम्मवक्कतिय—मणुस्साण,
नो सजयासजय—सम्मद्विट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभू-
मिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साण ॥

झाया—यद्वि सम्यग्दृष्टिपर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रा-
न्तिक—मनुष्याणामुत्पद्यते, किं सयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्म-
भूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम्?, असयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायु-
ष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणा ?, संयतासयतसम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—
संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ?, गौतम ! सयत—सम्य-
ग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणामुत्पद्यते, नो
असयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनु-
ष्याणा, नो संयतासयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्यु-
त्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ॥

टीका—‘जड सम्मद्विट्ठि’ इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा । नवर सयताः
=सर्वविरतिमन्तः, असयताः=अविरतसम्यग्दृष्टयः, सयतासंयता =देशविरतिमन्तः
श्रावका इति ॥

‘जड सम्मद्विट्ठि०’ इत्यादि ।

फिर गौतम पूछते हैं—हे भदन्त ! यदि यह मनःपर्ययज्ञान पर्याप्तक,
सख्यातवर्ष की आयुवाले, कर्मभूमिगर्भवज सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को
उत्पन्न होता है तो क्या जो पूर्वोक्तविशेषणसहित सयत—सम्यग्दृष्टि

“जड सम्मद्विट्ठि०” इत्यादि

वर्षी गौतम स्वामी पूछे थे—“हे भदन्त ! आ मन पर्यय ज्ञान पर्याप्तक,
सख्यात वर्षना आयुवाला, कर्मभूमिगर्भवज सम्यग्दृष्टि मनुष्योने उत्पन्न
थाय छे तो शु पूर्वोक्तविशेषणसहित सयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योने उत्पन्न

મનુષ્યોં કો ઉત્પન્ન હોતા હૈ અથવા પૂર્વોક્તવિશેષણમહિત અસંયત સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યોં કો ઉત્પન્ન હોતા હૈ ? યા પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટ સયતાસયત (પચમગુણસ્થાનવર્તી શ્રાવક) સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યોં કો ઉત્પન્ન હોતા હૈ ? । ગૌતમ કે ઇસ પ્રશ્ન કો સુનકર પ્રશ્નને કહા-હે ગૌતમ ! યહ મનઃપર્યયજ્ઞાન જો સમ્યગ્દષ્ટિ સયત હૈ પર્યાસક હૈ સરખ્યાતવર્ષ કી આયુવાલે હૈં કર્મભૂમિ મેં ઉત્પન્ન હુણ હૈં, ગર્ભ સે જિનકા જન્મ હુઆ હૈં ડનકે હી ઉત્પન્ન હોતા હૈ, જો સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્ય સયત નહીં હૈં ષાહે ભલે વે પર્યાસક હૈં, સરખ્યાતવર્ષ કી આયુવાલે હૈં, કર્મભૂમિ મેં જન્મે હૈં, ગર્ભ સે ઉત્પન્ન હુણ હૈં ડનકો મનઃપર્યયજ્ઞાન નહીં હોતા હૈ, ઓર જો સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્ય સયતાસયત હૈં, પચમગુણસ્થાનવર્તી હૈં, પર્યાસક હૈં, સરખ્યાતવર્ષ કી આયુવાલે હૈં કર્મભૂમિજ હૈં, ગર્ભજન્મવાલે હૈં તો હી ડનકે ઉત્પન્ન નહીં હોતા હૈ । સયત કા તાત્પર્ય સર્વવિરતિમપન્ન મુનિજનોં સે હૈ । અસયતકા તાત્પર્ય ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી અવિરત સમ્યગ્દષ્ટિ સે ઓર સયતાસયત સે પચમગુણસ્થાનવર્તી દેશસયમી શ્રાવક સે હૈ ।

ભાવાર્થ-યહ મનઃપર્યયજ્ઞાન મુનિજનોં કે હી હોતા હૈ । ચતુર્થગુણ-સ્થાનવર્તી યા પચમગુણસ્થાનવર્તી જીવોં કે નહી હોતા હૈ ॥

થાય છે કે પૂર્વોક્તવિશેષણસહિત અસયત-સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે? કે પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટ સયતાસયત (પચમગુણસ્થાનવર્તી શ્રાવક) સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યોને ઉત્પન્ન થાય છે? ” ગૌતમને આ પ્રશ્ન સાલ ળીને ભગવાને કહ્યું-“હે ગૌતમ ! આ મન પર્યયજ્ઞાન જે સમ્યગ્દષ્ટિ સયત છે, પર્યાસક છે, સખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા છે, કર્મભૂમિમા ઉત્પન્ન થયા છે, અને ગર્ભમાથી જેનો જન્મ થયો છે તેમને જ ઉત્પન્ન થાય છે જે સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્ય સયત નથી ભલે તેઓ પર્યાસક હોય, સખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા હોય, કર્મભૂમિમા જન્મ્યા હોય, ગર્ભથી ઉત્પન્ન થયા હોય, છતા તેમને મન-પર્યયજ્ઞાન થતુ નથી, તથા જે સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યો સયતાસયત છે, (પચમગુણસ્થાનવર્તી છે), પર્યાસક છે, સખ્યાત વર્ષના આયુષ્યવાળા છે, કર્મભૂમિમા જન્મેલા છે ગર્ભથી જન્મેલા છે તો પણ તેમને ઉત્પન્ન થતુ નથી સયતતુ તાત્પર્ય સર્વવિરતિવાળા મુનિજનો છે અસયતતુ તાત્પર્ય ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી અવિરત સયમદષ્ટિ, અને સયતાસયતથી પચમગુણસ્થાનવર્તી દેશવિરતિ શ્રાવક છે તાત્પર્ય એ છે કે આ મન પર્યયજ્ઞાન મુનિજનોને જ થાય છે ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી કે પચમગુણસ્થાનવર્તી જીવોને થતુ નથી

मूलम्—जइ संजयसम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्म-
भूमिय—गवभवक्कतिय मणुस्साणं उप्पज्जइ, किं पमत्तसंजय—
सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय — कम्मभूमिय — गवभव-
क्कतिय—मणुस्साणं ? अपमत्तसंजय — सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—
संखेज्जवासाउय — कम्मभूमिय — गवभवक्कतिय—मणुस्साणं ?,
गोयमा । अपमत्तसजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय-
कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय—मणुस्साणं उपज्जइ, नो पमत्तसजय-
सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय - कम्मभूमिय—गवभवक्कतिय-
मणुस्साणं ॥

छाया—यदि सयतसम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—सख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्यु-
त्क्रान्तिरु—मनुष्याणामुत्पद्यते, किं प्रमत्तसंयतसम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—सख्येयवर्षायुष्क
—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिरु—मनुष्याणाम् ?, अपमत्तसयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—
सख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक—मनुष्याणाम् ? गौतम ! अपमत्त—सयत
सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक—सख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्याणामुत्पद्यते,
नो प्रमत्त—संयत—सम्यग्दृष्टि—पर्याप्तक सख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिक-
मनुष्याणाम् ॥

टीका—‘जइ सजय—सम्मदिट्ठि’ इत्यादि । व्याख्या निगदसिद्धा । नर-
प्रमत्तसयताः—प्रमाद्यन्ति—मोहनीयादिकर्मप्रभावतः सज्वलन रूपायनिद्राद्यन्यतमप्रमा-
दयोगतः सयमयोगेषु सीदन्तीति प्रमत्ताः, ‘कर्तरि क्तः,’ प्रमत्ताश्च ते सयताः प्रमत्त-

‘जइ सजयसम्मदिट्ठि०’ इत्यादि ।

फिर गौतम पूछते हैं—हे भदन्त ! यदि मनःपर्ययज्ञान सयत
सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है जैसा कि ऊपर आपने कहा है कि जो
मनुष्य पर्याप्तक है, सख्यातवर्ष की आयुवाला है, कर्मभूमि में जन्मा
है और गर्भ से उत्पन्न हुआ है ऐसे सकलसयमी सम्यग्दृष्टि मनुष्य

“जइ सजयसम्मदिट्ठि इत्यादि

वणी गौतम पूछे छे—“हे लहन्त ! जे मन पर्ययज्ञान सयत—सम्यग्-
दृष्टि मनुष्येने थाय छे जेभ के आपे उपर कहु के जे मनुष्यो पर्याप्तक छे,
सख्यात वर्षना आयुष्यवाणा छे, कर्मभूमिमा जन्म्या छे, अने गर्भमाथी
उत्पन्न थया छे जेवा सकलसयमी सम्यग्दृष्टि मनुष्येने मन पर्ययज्ञान थाय

सयतास्ते च प्रायो गच्छवासिनः, तेषां अचिदनुपयोगमभ्यात् । अप्रमत्तसयतास्तु प्रायो जिनकल्पिकाः परिहारविशुद्धिकाः, यथाल्पकल्पिकाः, प्रतिमाप्रतिपन्नास्तेषां सततोपयोगात् । इह तु ये गच्छवासिनः प्रमादग्रहितास्तेऽप्यप्रमत्ता द्रष्टव्याः । गच्छनिर्गता अपि प्रमादरहिता अप्रमत्ता बोध्याः ॥

के मनःपर्ययज्ञान होता है, तो क्या पूर्वोक्त विशेषणवाले प्रमत्त-सयत सम्यग्दृष्टि को होता है? अथवा इन विशेषणोंवाले अप्रमत्त सयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है?

भावार्थ—गौतम का प्रश्न—यह मनःपर्ययज्ञान उठवें गुणस्थानवर्ती मुनिजनो के होता है या सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिजनों के होता है? भगवान् कहते हैं—हे गौतम ! यह मनःपर्ययज्ञान उन्हीं सम्यग्दृष्टि मनुष्यों के होता है जो पर्याप्तक आदि विशेषणोंवाले होते हुए अप्रमत्त धनकर सयम का पालन करते हैं, अर्थात्—सप्तमगुणस्थानवर्ती होते हैं । जो सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक आदि विशेषणों से सुशोभित होते हुए भी प्रमाद-युक्त हो सयम का पालन करते हैं—पष्ठगुणस्थानवर्ती होते हैं—उनको मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है । मोहनीय आदि कर्म के प्रभाव से जो मुनिजन सज्वलन रूपाय एव निद्रा आदिरूप किसी एक प्रमाद में पतित होकर सयममें शिथिलता करते हैं वे प्रमत्तसयत हैं । ऐसे सायुजन प्रायः गच्छवासी होते हैं । इनका सयमस्थान में कहीं अनुपयोग भी हो सकता है । जो अप्रमत्तसयत होते हैं वे प्रायः जिनकल्पी होते हैं ।

ये, तो शु पूर्वोक्तविशेषणवाणा प्रमत्त-सयत-सम्यग्दृष्टिने धाय छे ? अथवा ये विशेषणैश्चैथी युक्त अप्रमत्त-सयत-सम्यग्दृष्टि मनुष्येने धाय छे ? ”

लावार्थ—गौतमने प्रश्न—आ मन पर्ययज्ञान छट्ठा शुष्णस्थानवर्ती मुनिज नोने धाय छे के सातमा शुष्णस्थानवर्ती मुनिज नोने धाय छे ? भगवान् कहे छे—“ हे गौतम ! आ मन पर्ययज्ञान जे सम्यग्दृष्टि मनुष्येने धाय छे के जे जे पर्याप्तक आदि विशेषणवाणा डाय छे, अ प्रमत्त धनीने सयमनु पालन करे छे, अटले के सप्तमशुष्णस्थानवर्ती डाय छे, जे जे सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक आदि विशेषणैश्चैथी सुशोभित डोवा छता पणु प्रमादवाणा यधने सयमनु पालन करे छे—छट्ठाशुष्णस्थानवर्ती डाय छे—तेमने मन पर्ययज्ञान थतु नथी ” मोहनीय आदि कर्मना प्रभावथी जे मुनिजन सज्वलन कषाय अने निद्रा आदि रूप डोई जेक प्रमादमा पडीने सयममा शिथिलता करे छे तेजो प्रमत्तसयत छे जेवा साधुजन प्राय गच्छवासी डाय छे तेमना सयम स्थानमा कयाक अनुपयोग पणु डोई शके छे जे जे अप्रमत्त-सयत डाय छे

મૂલમ્—જઈ અપ્પમત્ત સંજય-સમ્મદિટ્ઠિ-પજ્જત્તગ સખેજ્જવાસા-
 યયકમ્મભૂમિય-ગઠ્ઠભવકકતિય-મણુસ્સાણ ઉપ્પજ્જઈ, કિ ઇડ્ઠિ-
 પત્ત-અપ્પમત્ત-સંજય-સમ્મદિટ્ઠિ પજ્જત્તગ - સંખેજ્જવાસાઉય-કમ્મભૂ-
 મિય ગઠ્ઠભવકકતિય-મણુસ્સાણ?, અણિડ્ઠિપત્ત-અપ્પમત્ત-સજય-
 સમ્મદિટ્ઠિ-પજ્જત્તગ - સખેજ્જવાસાઉય-કમ્મભૂમિય-ગઠ્ઠભવકકતિય-
 મણુસ્સાણં ?, ગોયમા । ઇડ્ઠિપત્ત-અપ્પમત્ત-સજય-સમ્મદિટ્ઠિ-
 પજ્જત્તગ-સંખેજ્જવાસાઉય - કમ્મભૂમિય-ગઠ્ઠભવકકતિય -મણુસ્સાણં
 ઉપ્પજ્જઈ, નો અણિડ્ઠિપત્ત અપ્પમત્ત સંજય-સમ્મદિટ્ઠિપજ્જત્તગ-
 સખેજ્જવાસાઉય--કમ્મભૂમિય- ગઠ્ઠભવકકતિય -મણુસ્સાણં મણપ
 જ્જવનાણં સમુપ્પજ્જઈ ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

ઝાયા—યદિ અપ્રમત્તસયત-સમ્યગ્દષ્ટિ-પર્યાપ્તક-સંખ્યેયવર્પાયુષ્ક-કર્મભૂમિજ
 -ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક-મનુષ્યાણામુત્પદ્યતે, કિ ઋદ્ધિપ્રાપ્તાઽપ્રમત્ત-સયત સમ્યગ્દષ્ટિ-પર્યા-
 પ્તક-સંખ્યેયવર્પાયુષ્ક-કર્મભૂમિજ-ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક-મનુષ્યાણામ્ ?, અનૃદ્ધિપ્રાપ્તાપ્ર-
 મત્ત-સયત સમ્યગ્દષ્ટિ-પર્યાપ્તક-સંખ્યેયવર્પાયુષ્ક-કર્મભૂમિજ-ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક-મનુ-
 ષ્યાણામ્?, ગૌતમ! ઋદ્ધિપ્રાપ્તાઽપ્રમત્ત-સયત-સમ્યગ્દષ્ટિ-પર્યાપ્તક-સંખ્યેયવર્પાયુષ્ક-
 કર્મભૂમિજ-ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક-મનુષ્યાણામુત્પદ્યતે, નો અનૃદ્ધિપ્રાપ્તાઽપ્રમત્તસયત-
 સમ્યગ્દષ્ટિ-પર્યાપ્તક-સંખ્યેયવર્પાયુષ્ક-કર્મભૂમિજ - ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિક-મનુષ્યાણા
 મનઃપર્યવજ્ઞાન સમુત્પદ્યતે ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

પરિહાર વિશુદ્ધિ નામક ચારિત્ર કા પાલન કરતે હૈ । યથાલદકતિપક
 હોતે હૈ । પતિમાપ્રતિપત્ર હોતે હૈ । સયમ મે ઇનકા સતત ઉપયોગ રહતા
 હૈ । વહા પર જો ગચ્છવાસી સાધુજન હૈ વે યદિ પ્રમાદરહિત હોકર
 સયમ કા પાલન કરતે હૈ તો વે ખી અપ્રમત્તસયત હૈ । તયા ગચ્છ સે
 નિકલે હુણ ખી પ્રમાદરહિત સાધુજન અપ્રમત્ત હી જાનના ચાહિયે ।

તેઓ સામાન્ય રીતે જિનહત્તી હોય છે, પરિહાર વિશુદ્ધિ નામના ચારિત્રનું પાલન
 કરે છે યથાલદકતિપક હોય છે, પ્રતિમાપ્રતિપત્ર હોય છે, સયમમા તેમનો
 હમેશા ઉપયોગ રહે છે અહીં જે ગચ્છવાસી સાધુજન છે તેઓ જે પ્રમાદ
 રહિત થઈને સયમનું પાલન કરે છે તો તેઓ પણ અપ્રમત્ત સયત છે તથા
 ગચ્છમાથી નીકળી ગયેલ પ્રમાદરહિત સાધુજનોને પણ અપ્રમત્ત જ
 બધુવા બેઈએ.

टीका—‘जइ अप्पमत्तसजय०’ इत्यादि । व्याख्या स्पष्टा, नारम्-ऋद्धीः-
आमर्शोपध्यादिलक्षणा प्राप्ता ऋद्धिप्राप्ताः, तद्विपरीताः अनृद्धिप्राप्ताः । त्रिसि
ष्टमुत्तरोत्तरपूर्वार्थमतिपादक श्रुतमवगाहमानाः श्रुतसामर्थ्यतस्तीना तीव्रतरा शुभभा-
वनामधिरोहन्तोऽप्रमत्तसयता ऋद्धीः प्राप्नुवन्ति । आमर्शोपध्यादीनामन्यतमाऽऽदि-
भवधिऋद्धिं वा प्राप्तस्य मनःपर्ययज्ञानमुत्पद्यते. नत्वृद्धिमाप्तस्येति भावः ।

‘जइ अप्पमत्तसजय०’ इत्यादि ।

गौतम मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति का यह पूर्वोक्त सूत्र निमित्त सुनकर
प्रश्न से पुनः पूछते हैं कि-हे भदन्त ! यदि यही बात है कि मनःपर्यय
ज्ञान पर्याप्तक, सख्येयवर्षायुष्क, कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक अप्रमत्त-
सयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है तो क्या जो ऋद्धि
प्राप्त-ऋद्धिवाले उक्तविशेषणविशिष्ट मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? अथवा
अनृद्धिप्राप्त ऋद्धिरहित पूर्वोक्त विशेषणवाले मनुष्यों को उत्पन्न होता
है ? भगवान् ने कहा-हे गौतम ! यह मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिप्राप्त पूर्वोक्त
विशेषणवाले मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है किन्तु अनृद्धिप्राप्त-ऋद्धि
रहित को नहीं होता है ।

भावार्थ—प्रश्नुने गौतम को इस सूत्र द्वारा यह समझाया है कि
जो अप्रमत्त सयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य ऋद्धिप्राप्त-आमर्श-औषधि आदि
लब्धिसपन्न होते हैं उन्हीं को यह मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है । जिनके
आमर्श-औषधि आदि लब्धिया प्राप्त नहीं हुई हैं उनके नहीं होता है ।

“जइ अप्रमत्तसजय०” इत्यादि

गौतम मन पर्यय ज्ञानकी प्राप्तिना पूर्वकथित सर्व निमित्त सालपीने
प्रश्नुने इरीथी पूछे छे—“हे भदन्त ! जे आळ वात छे के मन पर्ययज्ञान
पर्याप्तक, सख्येय वर्षना आयुवाणा, कर्मभूमिज, गर्भव्युत्क्रान्तिक अप्रमत्त-सयत
सम्यग्दृष्टि मनुष्यने जे उत्पन्न थाय छे तो शु जे ऋद्धिवाणा, उपर कहेल
विशेषणवाणा मनुष्येने उत्पन्न थाय छे के ऋद्धिरहित पूर्वोक्तविशेषणवाणा
मनुष्येने उत्पन्न थाय छे ? ” भगवाने कछु—“हे गौतम ! आ मन पर्यय ज्ञान
ऋद्धिवाणा पूर्वोक्तविशेषणवाणा मनुष्येने जे उत्पन्न थाय छे पण ऋद्धिरहित
मनुष्येने प्राप्त थतु नथी

भावार्थ—प्रश्नुने गौतमने आ सूत्र द्वारा जे समज्जु के जे अप्रमत्त
सयत सम्यग्दृष्टि मनुष्ये ऋद्धिवाणा आमर्श-औषधि आदि लब्धिवाणा होय
छे तेमने जे आ मन पर्ययज्ञान उत्पन्न थाय छे जेमने आमर्श-औषधि
आदि लब्धिया प्राप्त थथ नथी तेमने थतु नथी केटलाक अप्रमत्त-सयत-सम्यग्

ननु—अस्यैव सूत्रस्य प्रारभे 'मनःपर्ययज्ञान मनुष्याणामुत्पद्यते' इत्युक्ते सामर्थ्याद् 'अमनुष्याणा नोत्पद्यते' इत्यर्थो ज्ञातुं शक्यते, ततः कथमुच्यते—
'नो अमणुस्साण उप्पज्जइ' इत्यादि ? ।

उच्यते—इह शिष्यास्त्रिविधा भवन्ति, उद्घटितज्ञाः, मध्यमज्ञाः, प्रपञ्चित-
ज्ञाश्च । तत्र ये उद्घटितज्ञास्ते गुरुणा यथोक्तसामर्थ्यम् तदवबुध्यन्ते, तथैव मध्य

कितनेक अप्रमत्त सयत सम्यग्दृष्टि जीव विशिष्ट तथा उत्तरोत्तर अपूर्व २
अर्थ के प्रतिपादक आगमों के सम्यक् अभ्यास से उनके पूर्ण ज्ञाता
बन जाते हैं । इससे उनके चित्त में तीव्र तीव्रतर शुभ भावनाएँ जाग्रत
होती रहती हैं, अतः इन भावनाओं के बल पर वे आमर्श-औषधि
आदि लब्धियाँ को प्राप्त कर लिया करते हैं । जिन अप्रमत्त सयतों के
आमर्श-औषधि आदि लब्धियों में से कोड़ एक लब्धि भी प्राप्त हो
चुकी हैं, अथवा अवधिज्ञानलब्धि के वे धारक बन चुके हैं तो उनको
मनःपर्ययज्ञान अवश्य होता है, परन्तु अप्रमत्त, सयत के धारक होने
पर भी यदि वे ऋद्धिप्राप्त नहीं हैं तो ऐसी स्थिति में उनको मनःपर्यय-
ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है ।

शका—इसी सूत्र के प्रारभ मे मनःपर्ययज्ञान मनुष्यों के उत्पन्न
होता है ऐसा कहने पर सामर्थ्य से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि
अमनुष्यों के मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, तब फिर "अमनुष्याणां
नोत्पद्यते" ऐसा क्यों कहा ?

दृष्टि एव विशिष्ट तथा उत्तरोत्तर अपूर्व अपूर्व अर्थना प्रतिपादक आगमोना
सम्यग् अभ्यासथी तेमना पूर्ण लक्षणकार थर्ध न्य छे, तेथी तेमना चित्तमा
तीन अने तीव्रतर शुभ लावनाओ लक्ष्यत थती रडे छे, तेथी ओ लावनाओना
प्रभावथी तेओ आमर्श-औषधि आदि लब्धिओने प्राप्त कर्या करे छे ओ
अप्रमत्त सयतोने आमर्श-औषधि आदि लब्धिओमाथी डेअ ओक लब्धि पणु
प्राप्त थर्ध गध होय, अथवा अवधिज्ञानलब्धिना तेओ धारनारा बनी गया होय
तो तेमने मन पर्ययज्ञान जर उत्पन्न थाय छे, पणु अप्रमत्त सयतना धारण
करनारा होवा छता पणु ओ तेओने ऋद्धि प्राप्त थर्ध न होय तो ओवी
स्थितिमा तेमने मन पर्ययज्ञान उत्पन्न थतु नथी

शका—आज सूत्रनी शङ्कातमा 'मन पर्यय ज्ञान मनुष्योने उत्पन्न थाय छे'
ओम कडेवा मात्रथी न ओ वात स्पष्ट थर्ध न्य छे के अमनुष्योने मन पर्यय
ज्ञान उत्पन्न थतु नथी छता पणु "अमनुष्याणां नोत्पद्यते" ओषु शा भाटे कहुं ?

મજ્ઞા અપિ । યે તુ શિષ્યા અન્યુત્પન્નદ્વારા યથોક્તસામર્થ્યાનુગમકુગલાસ્તે પ્રપન્ચિ-
તમેવાથં જ્ઞાતુ સમર્થા ભવન્તિ, તતસ્તેપાનુગ્રહાય સામર્થ્યન્યપ્રમપ્યથં યોગ્યિતુ શુભઃ
યતન્તે । મહાપુન્પાઃ સ્વલુ પરમદયાલુત્વાદવિશેષેણ સર્વેપામનુગ્રહાય પ્રવર્તન્તે, તતો
ન કથિદ્ દોષઃ ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

ઉત્તર—ઇસકા કારણ ઇસ પ્રકાર છે—શિષ્ય ત્રીન પ્રકાર કે હોતે હૈ
૧ ઉદ્વટિતજ્ઞ, ૨ મધ્યમજ્ઞ, ૩ પ્રપન્ચિતજ્ઞ । ઇનમૈં જો પ્રથમ ઓર ઢિતીય નવર
કે શિષ્ય હુઆ કરતે હૈ વે ગુરુ કે દ્વારા કથિત અર્થકે સામર્થ્ય સે લભ્ય
અર્થ કો જાન લિયા કરતે હૈ । પરન્તુ જો તીસરે નવર કે શિષ્ય હોતે
હૈં વે ગુરુ કે દ્વારા કથિત અર્થ કે સામર્થ્ય સે લભ્ય અર્થ કો જાનને મૈં
અકુશલમતિ હુઆ કરતે હૈં । ક્યૌં કિ ઇનકી ઘુદ્ધિ ઇતની વ્યુત્પન્ન
નહીં હોતી હૈ, અતઃ ઇનકે સમક્ષ જવતક વિસ્તારપૂર્વક વાત નહીં કહી
જાવે તવતક વે નહીં સમજ સકતે હૈ, અતઃ ઇનકે ડુપર અનુગ્રહ કી
ભાવના સે પ્રેરિત વને હુણ ગુરુ મહારાજ સામર્થ્યલભ્ય મી અર્થ કો ડુનૈં
સમજાને કે લિયે પ્રવૃત્તિશીલ હોતે હૈ, ઓર ઇસીલિયે વે ડુસકો ફિર
શબ્દોં દ્વારા પ્રકટ કર દિયા કરતે હૈ । મહાપુરુષ પરમ દયાલુ હોતે હૈં,
અતઃ સવ જીવોં કે અનુગ્રહ કી ભાવના સે વે વિના પક્ષપાત કે
સામાન્યરૂપ સે ‘સવ કો વોધ હો’ ઇસી ઇક અભિલાપા કે વશવર્તી
વનકર અર્થ કા પ્રતિપાદન કિયા કરતે હૈ ઓર ઇસીકે અનુરૂપ ડુનકી
પ્રવૃત્તિ હુઆ કરતી હૈ ॥ સૂ૦ ૧૭ ॥

ઉત્તર—તેનુ કારણ આ પ્રમાણે છે—શિષ્ય ત્રણ જાતના હોય છે (૧) ઉદ્ધ
ટિતજ્ઞ, (૨) મધ્યમજ્ઞ, (૩) પ્રપન્ચિતજ્ઞ તેઓમા પહેલા અને બીજા નખરના
ને શિષ્યો હોય છે તેઓ ગુરુ વડે કહેવાયેલા અર્થના સામર્થ્યથી લભ્ય અર્થને
જાણી લે છે, પણ તે ત્રીજા નખરના શિષ્યો હોય છે તેઓ ગુરુના દ્વારા કહે
વાયેલા અર્થના સામર્થ્યથી લભ્ય અર્થને જાણવામા અકુશળ મતિવાળા હોય છે,
કારણ કે તેમની યુદ્ધિ એટલી બધી કુશળ હોતી નથી, તેથી તેમની સામે જ્યા
સુધી વિસ્તારપૂર્વક વાત કહેવામા ન આવે ત્યા સુધી તેઓ સમજ શકતા નથી
તેથી જ તેના ઉપર કૃપા કરવાની ભાવનાથી પ્રેરાયેલા ગુરુ મહારાજ સામર્થ્ય લભ્ય
અર્થ પણ તેમને સમજાવવાને માટે પ્રવૃત્તિશીલ રહે છે, અને તેથી તેઓ
તેને ફરીથી શબ્દો દ્વારા પ્રકટ કરે છે, મહાપુરુષ ઘણા દયાળુ હોય છે તેથી
બધા જીવો પર કૃપા કરવાની ભાવનાથી પક્ષપાત વિના સામાન્યરૂપે બધાને
બોધ થાય, એવી એક અભિલાપાને તાબે થઈને અર્થનું પ્રતિપાદન કર્યા કરે છે
અને તેને અનુગ્રહ તેમની પ્રવૃત્તિ થયા કરે છે ॥ સૂ ૧૭ ॥

ऋद्धिमाप्तानामप्रमत्तसयतानामुत्पद्यमान मनःपर्ययज्ञानं द्विधा भवति, तदाह-
मूलम्—त च दुविह उपज्जइ, तं जहा—उज्जुमई य, विउल-
मई य । त समासओ चउव्विहं पन्नत्त, त जहा—दव्वओ,
खित्तओ, कालओ, भावओ ।

तत्थ दव्वओणं उज्जुमई अणते, अणंतपएसिए खंधे
जाणइ पासइ । ते चेवविउलमई अब्भहियतरगं विउलतरगं
विसुद्धतरग, वितिमिरतरग जाणइ पासइ ।

खित्तओ ण उज्जुमई य जहन्नेण अंगुलस्स असखेज्जइभागं,
उक्कोसेण अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्टिल्ले
खुड्डुगपयरे, उड्ढ जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव
अतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देशु, पन्नरससु कम्म-
भूमिसु, तीसाए अकम्मभूमिसु, छप्पन्नाए अतरदीवगेषु, सन्नि-
पचिदियाण पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ । त चेव
विउलमई अड्ढाइज्जेहिमगुलेहि अब्भहियतरगं विउलतरगं
विसुद्धतरग वितिमिरतरग खेत्त जाणइ पासइ ।

छाया—तच्च द्वित्रिधमुत्पद्यते, तद्यथा—ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च । तत् समा-
सतश्चतुर्विध प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः ।

तत्र द्रव्यतः खलु ऋजुमतिरनन्तान् अनन्तप्रदेशिकान् स्कन्धान् जानाति
पश्यति । तान् चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरान् विपुलतरक विशुद्धतरक विति-
मिरतरक जानाति पश्यति,

क्षेत्रतः खलु ऋजुमतिश्च जघन्येनाङ्गुलस्याऽसंरयेयभागम् । उत्कर्षेणाऽथो
यावदस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरितनानधस्तनान् क्षुल्लकप्रतरान्, उर्ध्वं याव-
ज्ज्योतिष्कस्योपरितनतलम्, तिर्यग्यावदन्तोमनुष्यक्षेत्रे—अर्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु,
पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, त्रिंशदकर्मभूमिषु, पद्पञ्चाशदन्तरद्वीपेषु सङ्घिषव्चेन्द्रियाणा
पर्याप्तकाना मनोगतान् भावान् जानाति पश्यति । तच्चैव विपुलमतिरर्धतृतीयैरङ्गु-
लैरभ्यधिकतरक विपुलतरक विशुद्धतरक वितिमिरतरक क्षेत्र जानाति पश्यति ।

કાલઓ ણં ઉજ્જુમઈ જહન્નેણ પલિઓવમસ્સ અસંખિજ્જ-
યભાગ, ઉક્કોસેણાવિ પલિઓવમસ્સ અસંખિજ્જયભાગં અઈયમ
ણાગય વા કાલ જાણઈ પાંસઈ । તચેવ વિઝલમઈ અબ્ભહિયતરગં
વિઝલતરગ વિસુદ્ધતરગ વિતિમિરતરગ કાલ જાણઈ પાસઈ ।

ભાવઓ ણં ઉજ્જુમઈ અણંતે ભાવે જાણઈ પાસઈ । સવ્વ-
ભાવાણં અણંતભાગ જાણઈ પાસઈ । ત ચેવ વિઝલમઈ અબ્ભ-
હિયતરગ વિઝલતરગ વિસુદ્ધતરગ વિતિમિરતરગ ભાવ
જાણઈ પાસઈ ॥

કાલતઃ સ્વલ્લ ઋજુમતિર્જઘન્યેન પલ્યોપમસ્પાસરયેયભાગમ્, ઉત્કર્ષેણાપિ પલ્યો
પમસ્પાસલ્યેયભાગમતીતમનાગત વા કાલ જાનાતિ પશ્યતિ । તચ્ચૈવ વિપુલમતિ-
રમ્યધિકતરક વિપુલતરક વિસુદ્ધતરક વિતિમિરતરક કાલ જાનાતિ પશ્યતિ ।

ભાવતઃ સ્વલ્લ ઋજુમતિરનન્તાન્ ભાવાન્ જાનાતિ પશ્યતિ, સર્વભાવાનામનન્તભાગ
જાનાતિ પશ્યતિ । તચ્ચૈવ વિપુલમતિરમ્યધિકતરક વિપુલતરક વિસુદ્ધતરક વિતિ-
મિરતરક જાનાતિ પશ્યતિ ॥

ટીકા—‘ત ચ દુવિહ ઉપ્પજ્જઈ’ ઇત્યાદિ । તન્મનઃપર્યયજ્ઞાન દ્વિવિધમુત્પદ્યતે ।
તદ્ યથા—ઋજુમતિશ્ચ વિપુલમતિશ્ચ । તત્ર—મનન મતિઃ સવેદનમિત્યર્થઃ, ઋજ્વી-
સામાન્યગ્રાહિણી મતિ ઋજુમતિ, ‘ઘટોડનેન ચિન્તિતઃ’ ઇત્યધ્યવસાયહેતુભૂતા

ઋદ્ધિપ્રાપ્ત અપ્રમત્ત સયતો કે ઉત્પદ્યમાન મનઃપર્યયજ્ઞાન દો પ્રકાર કા
હોતા હૈં સો સૂત્રકાર કહતે હૈં—‘ત ચ દુવિહ’ ઇત્યાદિ ।

વહ મન.પર્યયજ્ઞાન દો પ્રકાર સે ઉત્પન્ન હોતા હૈં । યે દો પ્રકાર યે હૈં-
પ્રથમ ઋજુમતિ ઓર દૂસરા વિપુલમતિ । મતિ-શબ્દ કા અર્થ સવેદનજ્ઞાન
હૈં । ઋજુમતિ-શબ્દ કા અર્થ સામાન્ય હૈં । હિસ પ્રકાર વિષય કો સામાન્ય
રૂપ સે ગ્રહણ કરનેવાલા જ્ઞાન ઋજુમતિ, ઓર વિષય કો વિશેષરૂપ સે

ઋદ્ધિવાણા અપ્રમત્ત સયતોને ઉત્પન્ન થતુ મન પર્યયજ્ઞાન યે પ્રકારતુ
હોય છે, તે સૂત્રકાર કહે છે—“ત ચ દુવિહ” ઇત્યાદિ—

તે મન પર્યયજ્ઞાન યે રીતે ઉત્પન્ન થાય છે તે યે પ્રકાર આ છે—પહેલુ
ઋજુમતિ અને ધીણુ વિપુલમતિ મતિ-શબ્દનો અર્થ સવેદન—“જ્ઞાન” છે
‘ઋણુ’ શબ્દ સામાન્ય છે આ રીતે વિષયને સામાન્યરૂપથી ગ્રહણ
કરનાર જ્ઞાન વિષયને વિશેષરૂપથી ગ્રહણ કરનાર જ્ઞાન વિષુ

કતિપયપર્યાયવિશિષ્ટમનોદ્રવ્યપ્રતિપત્તિરિત્યર્થઃ । વિપુલા=વિશેષગ્રાહિણી મતિર્વિપુ-
લમતિઃ । ‘ઘટોડનેન ચિન્તિતઃ, સ ચ સૌર્ણઃ સ્થૂલો નૂતનોઽપ્વરકસ્થિતઃ પયઃ-
પૂર્ણઃ’ इत्यादिविशेषाध्यवसायहेतुभूता मनोद्रव्यप्रतिपत्तिरित्यर्थः । यद्वा-विपुल-
मतिः-विपुल=बहु विशेषसंख्योपेतं वस्तु मन्यते=गृह्णातीति विपुलमतिः । बाहुलकात्
कर्तरि क्ति-प्रत्ययः । यदि वा-विपुला=पर्यायशतोपेता चिन्तितघटादिवस्तुविशेष-
ग्राहिणी मति-विपुलमतिः । तद् द्विविधमपि मनःपर्ययज्ञान समासतः=सक्षेपेण,
चतुर्विधं प्रज्ञप्तं=प्ररूपितम् । तद् यथा-द्रव्यतः=द्रव्यमाश्रित्य, क्षेत्रतः=क्षेत्रमाश्रित्य,
कालतः=कालमाश्रित्य, भावतः=भावमाश्रित्य ।

ત્ર ઋજુમતિર્દ્રવ્યમાશ્રિત્યાનન્તાન્ અનન્તપ્રદેશિકાન્=અનન્તપરમાણુકાન્,
સ્ફુગાન્=વિશિષ્ટૈરુપરિણતાન્ પરસ્પરસયુક્તપુદ્ગલસમૂહાન્ અર્ધતૃતીયદ્વીપસમુ-
દ્રાન્તર્ગતિપર્યાપ્તસન્નિપજ્ઞેન્દ્રિયૈર્મનસ્ત્વેન પરિણમિતાન્ જાનાતિ=મનઃપર્યયજ્ઞાનાપ-
ર્ણીયક્ષયોપશમસામર્થ્યવગાત્ સાક્ષાત્કરોતિ પશ્યતિ=તન્મનોગ્રાહ્ય વાહ્યમર્થમનુમાનતો
જાનાતીત્યર્થઃ ।

ग्रहण करनेवाला ज्ञान विपुलमति है । जैसे-“इसने घटका चिन्तवन
किया है” इस तरह की अध्यवसाय की हेतुभूत जो कतिपय पर्याय
विशिष्ट मनोद्रव्य की प्रतिपत्ति है वह ऋजुमति-मनःपर्ययज्ञान है । तथा
“इसने जो घटका चिन्तवन किया है, वह सोने के बने हुए घट का
चिन्तवन किया है, तथा वह स्थूल है नवीन है, कोठे में रक्खा हुआ है।”
इस तरह जो विशेष ज्ञान की हेतुभूत मनोद्रव्य की प्रतिपत्ति है वह
विपुलमति-मनःपर्यय ज्ञान है । अथवा-जो ज्ञान विपुल-बहुत विशेष-
संख्यासंपन्नवस्तु को ग्रहण करता है, अथवा-अनेक पर्याय से युक्त
चिन्तित घटादिवस्तुविशेष को जानता है वह विपुलमति-मनःपर्ययज्ञान
है यह दोनों प्रकार का मनःपर्यय ज्ञान सक्षेप से चार प्रकार का चत-

લમતિ છે જેમકે-“તેણે ઘડાને વિચાર કર્યો” આ પ્રકારની અધ્યવસાયની
હેતુભૂત જે ડેટલીક પર્યાયવિશિષ્ટ મનોદ્રવ્યની પ્રાપ્તિ છે તે ઋજુમતિ મન પર્યાય
જ્ઞાન છે તથા “તેણે જે ઘડાને વિચાર કર્યો છે તે સોનાના બનેલા ઘડાને
વિચાર કર્યો છે, તથા તે સ્થૂળ છે, નવીન છે, અને ડોટડીમાં રાખેલો છે”
આ રીતે જે વિશેષ જ્ઞાનની હેતુભૂત મનોદ્રવ્યની પ્રાપ્તિ છે તે વિપુલમતિ
મન પર્યાય જ્ઞાન છે અથવા-જે જ્ઞાન વિપુલ-બહુ-વિશેષ-સખ્યામય-વસ્તુને
બ્રહ્મ કહે છે, અથવા અનેક પર્યાયવાળી ધારેલી ઘટાદિ વસ્તુવિશેષને બાંહે છે તે
વિપુલમતિ મન પર્યાય જ્ઞાન છે એ બંને પ્રકારના મન પર્યાય જ્ઞાનને સંક્ષિપ્તમા

મનસ્વપરિણતસ્કન્ધૈરાલોચિત ગાંઠઃ ઘટાદિરૂપમર્થ મનઃપર્યયજ્ઞાની ન પ્રત્યક્ષ-
તયા જાનાતિ કિન્તુ મનોદ્રવ્યમેવ । ગાંઠઃ ઘટાદિરૂપ ચિન્તિતમર્થ ત્વનુમાનતોઽવ-
ગચ્છતિ, તન્મનસસ્તયાપિધપરિણામાન્યથાનુપપત્યા તદનુમાનસમવાત્ । યતો
મનઃપર્યયજ્ઞાન મૂર્તદ્રવ્યાલમ્બનમેવ ભવતિ, અનુમાનેન તુ અમૂર્તમપિ ધર્માસ્તિકાયા
દિક દ્રવ્ય જાનાતિ । ન ચ તન્મનઃપર્યયજ્ઞાનિના સાથાત્કર્તુ શક્યતે, અતસ્તચ્ચિ-
ન્તિતમર્થ ઘટાદિકરૂપમનુમાનાદેવ જાનાતીતિ ચોદ્યમ્ । તતસ્ત ગાયમર્થમાશ્રિત્ય
પશ્યતીત્યુચ્યતે ।

લાયા ગયા હૈ, वह इस प्रकार—द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल
की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा लेकर । इनमें द्रव्य की अपेक्षा लेकर
मनःपर्ययज्ञान अनत और अनत प्रदेशवाले स्कन्धो को जानना और
देखता है । पुद्गलपरमाणुओं की विशिष्ट एक अवस्थारूप हुई परिणति
का नाम स्कन्ध है । अर्थात् द्वीपवर्ती मनवाले सजी पचेन्द्रिय पर्याप्त किसी
भी वस्तु का चिन्तवन मन से करते हैं, चिन्तवन के समय चिन्तनीय
वस्तु के भेद के अनुसार चिन्तनकार्यमें प्रवृत्त मन भिन्न २ आकृतियों
को धारण करता है, ये आकृतिया ही मन की पर्याये हैं । इन मानसिक
आकृतियों को मनःपर्ययज्ञानी साक्षात् जानता है, और चिन्तनीय
वस्तु को मन पर्ययज्ञानी अनुमान से जानता है । जैसे कोई मानस
शास्त्र का अभ्यासी किसी का चहेरा देखकर या चेष्टा प्रत्यक्ष देखकर
उसके आधार से व्यक्ति के मनोगत भावों को अनुमान से जान लेता है
उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान से किसी के मन की आकृतियों को प्रत्यक्ष

આર પ્રકારનુ બતાવ્યુ છે, તે આ પ્રમાણે છે—દ્રવ્યની અપેક્ષાએ, ક્ષેત્રના અપેક્ષાએ,
કાળની અપેક્ષાએ અને ભાવની અપેક્ષાએ તેમનામા દ્રવ્યની અપેક્ષાએ
લઈને મન પર્યયજ્ઞાન અનતાનત પ્રદેશવાળા સ્કન્ધોને બાણે અને દેખે છે
પુદ્ગલપરમાણુઓની એક વિશિષ્ટ અવસ્થારૂપ પરિણતિનુ નામ સ્કન્ધ છે
અર્થાત્ દ્વીપવર્તી મનવાળા સજી પચેન્દ્રિય પર્યાપ્ત કોઈ પણ વસ્તુનુ ચિન્તવન
મનથી કરે છે, ચિન્તવનના સમયે ચિન્તનીય વસ્તુના ભેદ પ્રમાણે ચિન્તન
કાર્યમા પ્રવૃત્ત મન ભિન્ન ભિન્ન આકૃતિયોને ધારણ કરતુ રહે છે, એ આકૃતિયો
જ મનની પર્યાયો છે એ માનસિક આકૃતિયોને મન પર્યયજ્ઞાની સાક્ષાત્ બાણે
છે, અને ચિન્તનીય વસ્તુને મન પર્યયજ્ઞાની અનુમાનથી બાણે છે જેમ કોઈ
માનસશાસ્ત્રના અભ્યાસી કોઈનો ચહેરા બોધને અથવા ચેષ્ટા પ્રત્યક્ષ બોધને
તેના આધારે વ્યક્તિના મનોગત ભાવોને અનુમાનથી બાણી લે છે, એજ રીતે
મન પર્યયજ્ઞાની મન પર્યયજ્ઞાનથી કોઈના મનની આકૃતિયોને પ્રત્યક્ષ બોધને

देखकर बादमें अभ्यासवश ऐसा अनुमान कर लेता है कि इस व्यक्तिने अमुक वस्तु का चिन्तन किया है। इस तरह मनरूप से परिणत स्कंधों द्वारा आलोचित बाह्य घटादिकरूप अर्थ मनःपर्यय ज्ञानी प्रत्यक्षरूप से नहीं जानता है, उस को तो वह अनुमानद्वारा ही जानता है। प्रत्यक्षरूप से तो वह मनोद्रव्य को ही जानता है, क्यों कि वह ऐसा विचार करता है कि इसने अमुक वस्तु का चिन्तन किया है, कारण कि इसका मन उस वस्तु के चिन्तन के समय अवश्य होने वाले अमुक प्रकार की परिणति-आकृति-से युक्त है, यदि ऐसा नहीं होता तो इस प्रकार की आकृति नहीं होती। इस तरह चिन्तनीय वस्तु का अन्यथानुपपत्ति द्वारा जानना ही अनुमान से जानना है। जैनदर्शनने अन्यथानुपपत्ति को अनुमान से भिन्न नहीं माना है, उसका अन्तर्भाव अनुमानप्रमाणमें किया है इस तरह यद्यपि मनःपर्ययज्ञानी मूर्तद्रव्य को ही जानना है परन्तु अनुमानद्वारा वह धर्मास्तिकाय आदि अमूर्तद्रव्यों को भी जानता है। इन अमूर्तद्रव्यों का उस मनःपर्ययज्ञानधारीद्वारा साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है। निष्कर्ष इसका यही है कि मनःपर्ययज्ञानी चिन्तन किये गये घटादिरूप पदार्थको अनुमान से ही जानता है। यही बात प्रकट करनेके लिये सूत्रमें सूत्रकारने "पश्यति" इस क्रियाका प्रयोग किया है।

त्यार पछी अब्यासने कारणे ओवु अनुमान करी दे छे ते आ व्यक्तिये अमुक वस्तुनु चिन्तन क्युं छे आ गीते मनःपर्ययी परिणत स्कंधो द्वारा जेथेला बाह्य घटादिक रूप अर्थ मन पर्ययज्ञानी प्रत्यक्षरूपे जणुतो नथी, तेने तो ते अनुमानथी न जणु छे प्रत्यक्ष रूपे तो ते मनोद्रव्यने न जणु छे, अरणु ते ते ओवा विचार करे छे के ओवु अमुक वस्तुनु चिन्तन क्युं छे अणु के तेनु मन ओ वस्तुना चिन्तन समये अरु थनागी अमुक प्रकारनी परिणति-आकृतिवाणु छे जे ओम न होत तो आ प्रकारनी आकृति होत नही, आ रीते चिन्तनीय वस्तुने अन्यथानुपपत्तिद्वारा जणुवु ओअ अनुमानथी जणुयु गणुय छे जैनदर्शने अन्यथानुपपत्तिने अनुमानथी सिन्न मानेल नथी, तेने अन्तर्भाव अनुमान प्रमाणमा ज्ये छे आ रीते जे के मन पर्ययज्ञानी मूर्त द्रव्यने न जणु छे, पणु अनुमानद्वारा ते धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त द्रव्येने पणु जणु छे ओ अमूर्त द्रव्येना ओ मन पर्ययज्ञानीद्वारा साक्षात्कार करी शकते। नथी तेनु तात्पर्य ओ छे ते मन पर्ययज्ञानी चिन्तन करायेला घटादिरूप पदार्थने अनुमानथी न जणु छे आ वात प्रकट करवाने भाटे सूत्रमा सूत्रकारे "पश्यति" आ क्रियाने प्रयोग क्ये छे

અથવા સામાન્યતઃ એકરૂપેડપિ જ્ઞાને ક્ષયોપશમસ્ય તત્તદ્રવ્યાધપેક્ષયા વૈચિત્ર્ય-સમગ્રાદનેકપિઘ ઉપયોગઃ સંભવતિ । યથાજ્ઞૈયઃ ઋજુમતિ-ત્રિપુલમતિરુપઃ । તત્તો વિશિષ્ટતરમનોદ્રવ્યાકારપરિચ્છેદાપેક્ષયા જાનાતીત્યુચ્યતે । સામાન્યમનોરૂપદ્રવ્યાકાર પરિચ્છેદાપેક્ષયા તુ પશ્યતીતિ ।

સામાન્યતઃ એકરૂપેડપિ ક્ષયોપશમલક્ષ્યપાન્તરાલે દ્રવ્યાધપેક્ષયા ક્ષયોપશમસ્ય વિપમસંભનાદ્ વિવિધોપયોગસમયો ભવતીતિ, તદંય ત્રિશિષ્ટતરમનોદ્રવ્યાકારપરિ-

અથવા—સામાન્ય સે એકરૂપજ્ઞાનમેં ધી, ઉસ દ્રવ્યાદિકની અપેક્ષા સે ક્ષયોપશમની વિચિત્રતા સંભવિત હોને સે અનેક પ્રકારકા ઉપયોગ સંભવિત હોતા હૈ । જૈસે ઇસી મનઃપર્યયજ્ઞાનમેં ઋજુમતિ ંવ વિપુલમતિરૂપ ઉપયોગ કા સંભવ હોતા હૈ, ઇસીલિયે ત્રિશિષ્ટતર મનોદ્રવ્ય કે આકારોં કે જાનને કે કારણ સૂત્રકાર ને સૂત્રમેં “જાનાતિ” યહ ક્રિયા રહી હૈ । તાત્પર્ય કહને કા યહી હૈ કિ મનઃપર્યયજ્ઞાની સામાન્યરૂપ સે મનોદ્રવ્ય કે આકારોં કા પરિચ્છેદ જવ કરતા હૈ તવ ઇસ અપેક્ષા વહ “ઉન્હેં દેખતા હૈ” એસા કહા જાતા હૈ, ંર જવ ઉન્હોં મનોદ્રવ્યોં કે આકારોં કા વિશેષરૂપ સે પરિચ્છેદ કરતા હૈ તવ ઇસ અપેક્ષા વહ “ઉન્હે જાનતા હૈ” એસા કહા જાતા હૈ । ઇસ તરહ એક હી જ્ઞાનમેં ઉસઉસ દ્રવ્યાદિકની અપેક્ષા ક્ષયોપશમની વિચિત્રતા હોને સે ઉપયોગની વિવિધતા કા સંભવ હૈ ।

યદ્યપિ સામાન્યરૂપ સે ઉનર કર્મોંકા ક્ષયોપશમ અપને ૨ જ્ઞાનાદિક રૂપ કાર્યોંની પ્રકટતામે વિવિધરૂપ ન હોકર એકરૂપ હોતા હૈ ફિર ધી

અથવા—સામાન્ય રીતે એકરૂપજ્ઞાનમા પશુ દ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાએ ક્ષયોપશમની વિચિત્રતા સંભવિત હોવાથી અનેક પ્રકારના ઉપયોગ સંભવિત હોય છે જેમ કે તેજ મન પર્યયજ્ઞાનમા ઋજુમતિ અને વિપુલમતિરૂપ ઉપયોગનો સંભવ હોય છે, તેથી વિશિષ્ટતર મનોદ્રવ્યોના આકારોને જાણવાને તરણે સૂત્રકારે સૂત્રમા “જાનાતિ” આ ક્રિયા રાખી છે એમ કહેવાતુ તાત્પર્ય એજ છે કે મન પર્યયજ્ઞાની સામાન્યરૂપથી મનોદ્રવ્યોના આકારોના પરિચ્છેદ જવારે કરે છે ત્યારે તે અપેક્ષાએ “તે તેમને જુવે છે” એમ કહેવાય છે, અને જ્યારે એજ મનોદ્રવ્યોના આકારોતુ વિશેષરૂપથી પરિચ્છેદ કરે છે ત્યારે તે અપેક્ષાએ “તે તેમને જાણે છે” એવુ કહેવાય છે આ રીતે એક જ જ્ઞાનમા દ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાએ ક્ષયોપશમની વિવિધતા હોવાથી ઉપયોગની વિવિધતાનો સંભવ છે

જે કે સામાન્યરૂપથી તે તે કર્મોંનો ક્ષયોપશમ યોગ-યોગના જ્ઞાનાદિકરૂપ કાર્યોંની પ્રકટતામા વિવિધરૂપ ન હોતા એકરૂપ હોય છે તે પશુ વચ્ચે

ચ્છેદાપેક્ષયા સામાન્યરૂપમનોદ્રવ્યાકારપરિચ્છેદો વ્યવહારતો દર્શનરૂપ ઉક્ત । પર-
માર્થતસ્તુ સોઽપિ જ્ઞાનમેવ, યતઃ સામાન્યરૂપમપિ મનોદ્રવ્યાકાર પ્રતિનિયતમેવ
પશ્યતિ, પ્રતિનિયતવિશેષગ્રહણાત્મક ચ જ્ઞાન, ન તુ દર્શનમ્, અત એવ સૂત્રેઽપિ દર્શન
ચતુર્વિધમેવોક્ત, ન પશ્ચવિધમપિ, મનઃપર્યયદર્શનસ્ય પરમાર્થતોઽસમભવાત્ ।

અન્તરાલમેં દ્રવ્યાદિકોં કી અપેક્ષા ક્ષયોપશમમે વિચિત્રતા આ જાતી હૈ,
હસ લિયે વિવિધ ઉપયોગ કી ખી સમભાવના હો જાતી હૈ । હસ તરહ
વિશિષ્ટતર મનોદ્રવ્ય કે આકારોં કે પરિચ્છેદ કી અપેક્ષા સામાન્યરૂપ
મનોદ્રવ્યોં કે આકારોં કે પરિચ્છેદ કો વ્યવહાર કી અપેક્ષા સે “દેખતે હું”
એસા કહ દિયા ગયા હૈ । પરમાર્થ કી અપેક્ષા તો વહ સામાન્યાકાર કા
પરિચ્છેદરૂપ ઋજુમતિ જ્ઞાન ખી જ્ઞાન હી હૈ । તાત્પર્ય હસકા કેવલ યહી
હૈ કિ જવ ઋજુમતિ સામાન્યગ્રાહી હૈ તવ તો વહ દર્શનરૂપ હી હુઆ,
ઉસ કો જ્ઞાન ક્યોં કહા ?-તો હસ શકા કા યહ સમાધાન હૈ કિ ઠીક
વહ-ઋજુમતિ સામાન્યગ્રાહી હૈ પરન્તુ હસકા તાત્પર્ય યહ નહીં હૈ-કેવલ
સામાન્યગ્રાહી હી હૈ, હસકા પ્રયોજન કેવલ હતના હી હૈ કિ વહ-ઋજુ-
મતિ વિશેષો કો જાનતા અવઝય હૈ પરન્તુ વિપુલમતિ જિતને વિશેષો
કો જાનતા હૈ ઉતને વિશેષો કો ઋજુમતિ નહી જાનતા । યહી વાત
ટીકાકારને “યતઃ સામાન્યરૂપમપિ મનોદ્રવ્યાકાર પ્રતિનિયતમેવ પઠ્યતિ”
હસ પક્તિ દ્વારા સ્પષ્ટ કી હૈ । જહા પ્રતિનિયત કા ગ્રહણ હૈ વહી જ્ઞાન હૈ,

દ્રવ્યાદિકોની અપેક્ષાએ ક્ષયોપશમમા વિચિત્રતા આવી જાય છે, તેથી વિવિધ
ઉપયોગની પણ સભાવના રહે છે આ રીતે વિશિષ્ટતર મનોદ્રવ્યના આકારોના
પરિચ્છેદની અપેક્ષાએ સામાન્યરૂપ મનોદ્રવ્યોના આકારોના પરિચ્છેદને વ્યવહાર-
ની અપેક્ષાએ “બુવે છે” એમ કહેલ છે પરમાર્થની અપેક્ષાએ તો તે
સામાન્યાકારતુ પરિચ્છેદરૂપ ઋજુમતિજ્ઞાન પણ જ્ઞાન જ છે તેતુ તાત્પર્ય ફક્ત
એટલુ જ છે કે જ્યારે ઋજુમતિ સામાન્યગ્રાહી છે તો પછી તે દર્શનરૂપ જ
થયુ, તેને જ્ઞાન કેમ કહુ ? તો આ શકાનુ સમાધાન એ છે કે તે ઋજુમતિ
સામાન્યગ્રાહી છે તે બરાબર છે પણ તેતુ તાત્પર્ય એલુ નથી કે તે વિશેષગ્રાહી નથી,
ફક્ત સામાન્યગ્રાહી જ છે એનો આશય ફક્ત એટલો જ છે કે તે ઋજુમતિ
વિશેષોને અવશ્ય જાણે છે પણ વિપુલમતિ જેટલા વિશેષોને જાણે છે તેટલા
વિશેષોને ઋજુમતિ જાણતુ નથી એજ વાત ટીકાકારે “યત સામાન્યરૂપમપિ
મનોદ્રવ્યાકાર પ્રતિનિયતમેવ પશ્યતિ” આ પક્તિ દ્વારા સ્પષ્ટ કરી છે જ્યા
પ્રતિનિયતતુ શ્રદ્ધુ છે એજ જ્ઞાન છે, દર્શન નથી તેથી સૂત્રમા પણ દર્શનો-

તથા તાનેય મનસ્ત્રેન પરિણમિતાન્ સ્કન્ધાન્ વિપુલમતિઃ અભ્યધિક્કરત્કમ્= અર્ધવૃત્તીયાદ્ગુલપ્રમાણભૂમિક્ષેત્રવર્તિનઃ સ્કન્ધાનાદાયાઽધિક્કરત્કમ્, સા ચાધિક્કરતા દેશતોઽપિ ભવતિ, તતઃ મર્ગાસુ દિશુ અધિક્કરતાપ્રતિપાટનાર્થમાદ- 'વિપુલતરકમ્'=પ્રભૂતતરકમ્, તથા-વિશુદ્ધતરક= નિર્મલતરકમ્, ઋજુમત્યપેખયાઽતીવ સ્ફુટતરકમ્કાગમિત્યર્થઃ । સ્ફુટપ્રતિભાસો વિપર્યયરૂપોઽપિ ભવતિ, યથા દ્વિચન્દ્રપ્રતિભાસઃ, અતન્મત્તદ્વારણાય વિશેષણાન્તરમાદ- 'વિતિમિગ્તરકમ્' ઇતિ । વિગત વિમિર-વિમિરસપાદ્યો ભ્રમો યસ્મિન્ તત્ત વિતિમિરમ્, પ્રકૃષ્ટ વિતિમિર વિતિમિરતરકમ્, દર્શન નહીં છે । ઇસી લિપે સૂત્રમેં મી દર્શનોપયોગ ચાર પ્રકાર કા હી વતલાયા ગયા છે, પાંચ પ્રકાર કા નહીં, કારણ કિ મનઃપર્યય દર્શન કા પરમાર્થતઃ સભવ નહીં છે ।

વિપુલમતિ-અહીં મનરૂપ સે પરિણત કિયે હુણ અઢાઈ દ્વીપક્ષેત્રવર્તી સ્કન્ધોં કો કુઠ અધિક અર્થાત્-અઢાઈ અગુલપ્રમાણ ભૂમિરૂપ ક્ષેત્રમેં રહે હુણ સ્કન્ધોં કો લેકર અધિક દેવતા છે । ઇસ કા અભિપ્રાય યહ છે કિ-વિપુલમતિ ડસ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા અઢાઈ અગુલ અધિક જાનતા છે ઓર દેવતા છે । અધિકતરતા દેશ કી અપેક્ષા મી હો સકતી છે, અતઃ દેશ કી અપેક્ષા સે હુઈ ઇસ અધિકતરતા કો દૂર કરને કે લિપે સૂત્રકારને સૂત્રમે વિપુલતર પદ રક્વા છે । ઇસકા તાત્પર્ય યહ હોતા છે કિ વિપુલમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની ચારોં દિશાઓં કે રૂપી પદાર્થોં કો ઋજુમતિ મનઃપર્યયજ્ઞાની કી અપેક્ષા વિપુલતરરૂપ સે જાનતા ઓર દેવતા છે । ડન પદાર્થોં કા જાનના ઓર દેવના ઋજુમતિ કી અપેક્ષા અતીવસ્ફુટતર હોતા છે, યહ વાત વિશુદ્ધતર શબ્દ સે સ્પષ્ટ હોતી છે । સ્ફુટ પ્રતિભાસ

પયોગ ચાર પ્રકારનાજ બતાવ્યા છે, પાચ પ્રકારના નહીં કારણ કે મન પર્યય દર્શનને પરમાર્થત સભવ નથી

વિપુલમતિ-એજ મનરૂપથી પરિણત કરેલ અહીં દ્વીપ ક્ષેત્રવર્તી સ્કન્ધને કઈક વધારે એટલે કે અહીં આગળ માપના ભૂમિરૂપક્ષેત્રમા રહેલ સ્કન્ધને લઈને વધારે દેખે છે તેના ભાવાર્થ એ છે કે વિપુલમતિ તે ક્ષેત્રના કરતા અહીં આગળ વધારે બાહ્ય છે અને દેખે છે અધિકતરના દેશની અપેક્ષાએ પણ હોઈ શકે છે, તેથી દેશની અપેક્ષાએ થયેલ એ અધિકતરતાને દૂર કરવાને માટે સૂત્ર કારે સૂત્રમા વિપુલતર પદ સુક્યુ છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે વિપુલમતિ મન પર્યયજ્ઞાની ચારે દિશાઓના રૂપી પદાર્થોને ઋજુમતિ મન પર્યયજ્ઞાની કરતા વિપુલતરરૂપે બાહ્ય અને દેખે છે તે પદાર્થોને બાહ્યવા અને દેખવાનું ઋજુમતિના કરતા અતિશય સ્ફુટતર હોય છે, એ વાત વિશુદ્ધતર શબ્દથી સ્પષ્ટ થાય

‘द्वयोः प्रकृष्टे तरप्’ इति तरप्-प्रत्ययः। त एव वितिमिरतरकाः, स्वार्थे क प्रत्ययः। एव सर्वत्र व्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या। तत् वितिमिरतरकम् = सर्वथाभ्रमरहितमित्यर्थः जानाति, पश्यति। अथवा-‘अभ्यधिकतरकम्’ त्रिपुलतरकम्’ इत्युभे पदे एकार्थके, तथा-‘त्रिपुलतरकम्’ ‘वितिमिरतरकम्’ इत्यपि द्वे पदे एकार्थके। शिष्या हि नानादेशजा भवन्ति, यस्य देशे यत् प्रसिद्धं, तदेव तदनुग्रहार्थं प्रयुक्तमिति गोध्यम्।

तथा-क्षेत्रत खलु ऋजुमतिश्च जघन्येनाऽङ्गुलस्यास्य येभाग जानाति पश्यति। उत्कर्षेणाधस्तलेऽस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरितनान् अधस्तनान् क्षुल्लकप्रतरान् यावत् जानाति पश्यति च।

विपर्ययरूप भी हो सकता है, जैसे एक चन्द्रमा में द्विचन्द्रज्ञान होता है। ऐसे भ्रान्त स्फुटप्रतिभास का निराकरण करने के लिये सूत्रकारने सूत्रमे “वितिमिरतरक” ऐसा पद रक्खा है। अथवा अभ्यधिकतरक एव त्रिपुलतरक ये दोनों शब्द एकार्थवाची भी हैं, इन दोनों का प्रयोग सूत्रकारने नानादेश के शिष्यों को समझाने की अपेक्षा यहां रक्खा है। जिन शिष्यों के देशमें जो शब्द प्रसिद्ध होगा उससे उन्हें दूसरे शब्द का अर्थबोध हो जावेगा।

क्षेत्र की अपेक्षा ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जघन्यरूप से अंगुल के असरघातवें भागमे स्थित रूपी पदार्थों को जानता और देखता है। तथा उत्कृष्टरूप से इस पृथ्वी के नीचे रत्नप्रभापृथिवी के उपरितन एव अधस्तन क्षुल्लकप्रतरोंतक को जानता और देखता है।

छे स्फुट प्रतिभास विपर्ययरूप पणु ढोछ गढे छे, जेभ अेक अ-न्द्रमाभा जे अ-न्द्रोनेा लाग थाय छे अेवा भ्रान्त स्फुट प्रतिभासनु निवारणु उरवाने भाटे सूत्रकारे सूत्रमा “वितिमिरतरक” अेलु पढ राण्यु छे अथवा अभ्यधिकतरक अने त्रिपुलतरक अे ज-ने शब्दो अेकार्थवाची पणु छे अे ज-नेनेा प्रयोग सूत्रकारे विविध देशना शिष्येने समझववानी अपेक्षाअे अही राण्ये छे जे शिष्येना देशमा जे शब्द प्रसिद्ध छे तेनाथी तेना जीन शब्दनेा अर्थ समझछे जे

क्षेत्रनी अपेक्षाअे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जघन्यरूपे अंगुलना असरघातमा लागमा रडेल रूपी पदार्थेनेा जेणु अने देणे छे, तथा उत्कृष्ट रूपे आ पृथ्वीनी नीचे रत्नप्रभा पृथ्वीना उपरितन अने अधस्तन क्षुल्लक प्रतरनेा पणु जेणु अने देणे छे

નનુ કોડ્ય ક્ષલ્કપતર ડતિ ? , ઉન્યતે— ૩૪ લોકાકાશપદેશ ઉપરિતનાષ-
સ્તનપ્રદેશરહિતતયા પ્રિપક્ષિતા મળ્ડલાડ્ધકારતયા વ્યમ્થિતાઃ પ્રતર ડત્યુન્યતે । તત્ર
તિર્યગ્લોકસ્ય ઉર્ધ્વાધોડપેક્ષયા અષ્ટાદશયોજનશતપ્રમાણસ્ય મધ્યમાગે ઢ્ઠૌ સર્વલઘુ-
ક્ષુલ્કપતરૌ, તયોર્મધ્યમાગે જમ્વઢ્ઠીપે રત્નપ્રમાયા ઝહુમમે ભૂમિમાગે મેરુમધ્યેષ્ટ-
પ્રાદેશિકો રુચકઃ । તત્ર ગોસ્તનાકારાશ્ચત્વાર ઉપરિતનાઃ પ્રદેશાશ્ચત્વારશ્ચાષસ્તનાઃ ।
એપ એવ ચ રુચકઃ સર્વાસાં ઢિશા વિદિશા યા પ્રવર્તકઃ । એતદેવ ચ સઠ્ઠતિર્યગ્-
લોકમધ્યમ્ । તૌ ચ ઢ્ઠૌ સર્વલઘુ પતરાવગુલાડ્ધસરચેયમાગઝાહલ્યૌ પુનરલોકાડ્ધધિ-
ગર્તૌ રજ્જુપ્રમાણૌ ।

શકા—યહ ક્ષુલ્કપતર કયા હૈ ?

ઉત્તર—લોકાકાશ કે પ્રદેશ ઉપરિતન ઓર અધસ્તન પ્રદેશોં સે
રહિત ઘતલાયે ગયે હૈં । ડનકી વ્યવસ્થા મળ્ડલાકાર સે હૈં । યે લોકાકાશ
કે પ્રદેશ હી પ્રતર હૈં । ઉર્ધ્વ એવ અધોલોક કી અપેક્ષા અઠારસૌ (૧૮૦૦)
યોજન પ્રમાણવાલે તિર્યગ્લોક કે મધ્યમાગ મેં ઢો સર્વલઘુક્ષુલ્ક પ્રતર
હૈં । ડનકે મધ્યમાગ મે જમ્વઢ્ઠીપ મેં રત્નપ્રમાપૃથિવી કે ઘહુસમભૂમિમાગ
મે મેરુ કે વીચ અષ્ટપ્રાદેશિક રુચક હૈં । ઘહા ગોસ્તનાકાર ચાર પ્રદેશ
ઉપર ઓર ચાર પ્રદેશ નીચે હૈં । યહી રુચક સમસ્ત ઢિશાઓં અથવા
વિદિશાઓં કા પ્રવર્તક માના ગયા હૈં, ઓર યહી સમસ્ત તિર્યગ્લોક કા
મધ્યમાગ હૈં । યે ઢો સર્વલઘુક્ષુલ્કપતર અગુલ કે અસખ્યાતવેં માગ
વિસ્તારવાલે હૈં । અલોકાકાશતક ફૈલે હુપ હૈં ઓર એક રાજૂ ડનકા
પ્રમાણ હૈં ।

શકા—આ ક્ષુલ્ક પ્રતર શુ છે ?

ઉત્તર—લોકાકાશના પ્રદેશ ઉપરિતન અને અધસ્તન પ્રદેશો વિનાના
ખતાવવામા આગ્યા છે તેમની વ્યવસ્થા મડળાકારે છે એ લોકાકાશના પ્રદેશ જ
પ્રતરો છે ઉર્ધ્વ અને અધોલોકની અપેક્ષાએ અઠારસૌ (૧૮૦૦) યોજન પ્રમાણ
વાળા તિર્યગ્લોકના મધ્ય ભાગમા એ સૌથી નાના ક્ષુલ્ક પ્રતર છે તેમના
મધ્યભાગમા જમ્વઢ્ઠીપમા રત્નપ્રમા પૃથ્વીના બહુસમભૂમિ ભાગમા મેરુની વચ્ચે
અષ્ટપ્રાદેશિક રુચક છે ત્યા ગાયના આચળના આકારના ચાર પ્રદેશ ઉપર
અને ચાર પ્રદેશ નીચે છે એજ રુચક સઘળી ઢિશાઓ અથવા વિદિશાઓને
પ્રવર્તક મનાયો છે, અને એજ સમસ્ત તિર્યગ્લોકને મધ્યભાગ છે તે એ
સૌથી નાના ક્ષુલ્ક પ્રતર અગુલના અસખ્યાતમા ભાગના વિસ્તારવાળા છે, અલો
કાકાશ સુધી ફેલાયેલા છે અને નેમનુ પ્રમાણ એક રાજૂ છે

तत एतयोरुपरि अन्येऽन्ये प्रतराः तिर्यग् अगुलासरयेयभागवृद्ध्या वर्धमाना-
स्तावद् द्रष्टव्याः, यावद्धर्ध्वलोकमध्यम् । तत्र पञ्चरज्जुप्रमाणः प्रतरः । तत उपरि
अन्येऽन्ये प्रतरास्तिर्यग् अगुलासख्येयभागहान्या हीयमानास्तावद् द्रष्टव्याः, याव-
ल्लोकान्ते एकरज्जुप्रमाण प्रतरः । इहोर्ध्वलोकमध्यवर्तिन सर्वोत्कृष्ट पञ्चरज्जुप्रमाण
प्रतरमभिधीकृत्य अन्ये उपरितना अधस्तनाश्च क्रमेण हीयमाना हीयमानाः सर्वेऽपि
प्रतराः क्षुल्लकप्रतरा इति व्यवहियन्ते, यावल्लोकान्ते तिर्यग्लोके च रज्जुप्रमाणः
प्रतर इति ।

तथा—तिर्यग्लोकमध्यवर्तिसर्वलघुक्षुल्लकप्रतरस्य अधस्तिर्यगगुलासरयेयभाग-
वृद्ध्या वर्धमानाः प्रतरास्तावद्वक्तव्याः, यावदधोलोकान्ते सर्वोत्कृष्टः सप्तरज्जु-
प्रमाणः प्रतरः । त च सप्तरज्जुप्रमाण प्रतरमपेक्ष्यान्ये उपरितनाः सर्वेऽपि क्रमेण
हीयमानाः क्षुल्लकप्रतरा अभिधीयन्ते, यावत् तिर्यग्लोकमध्यवर्ती सर्वलघुः क्षुल्लकः
प्रतरः । एषा क्षुल्लकप्रतरप्ररूपणा ।

इसके बाद इन दोनों सर्वलघु क्षुल्लक प्रतरों के ऊपर और और
प्रतर तिर्यक् अगुल के असख्यातवें भाग की वृद्धि से तबतक बढ़ते हुए
चले जाते हैं कि जबतक उर्ध्वलोक का मध्यभाग नहीं आ जाता है ।
यहा प्रतर का प्रमाण पाच राजू का होता है । इस प्रतर के ऊपर भी
और और प्रतर तिर्यक् अगुल के असख्यातवें भाग की हानि से घटते
हुए चले जाते हैं और इस तरह ये तबतक घटते जाते हैं कि जबतक
लोक के अन्तमें एक राजू प्रमाण वाला प्रतर नहीं आ जाता है । इस
तरह उर्ध्वलोक के मध्यवर्ती सर्वोत्कृष्ट पाच राजू प्रमाण वाले प्रतर से
लगाकर अन्य उपरितन और अधस्तन प्रतर क्रम २ से घटते घटते
बतलाये गये हैं । ये सब क्षुल्लक प्रतर हैं । ये क्षुल्लक प्रतर लोक के
अन्तमें और तिर्यग्लोक में एक २ राजू प्रमाण वाले हैं ।

त्यार षाड ते णन्ने सर्वलघु क्षुल्लक प्रतरानी उपर बूढा बूढा प्रतर तिर्यक्
अगुलना असख्यातमा लागनी वृद्धिथी त्या सुधी वधता नय छे के न्या
सुधी उर्ध्वलोकना मध्य लाग आवी जता नथी अही प्रतरनु प्रमाण पाच
राजूनु यध नय छे आ प्रतरनी उपर पञ्च बूढा बूढा प्रतर तिर्यक् अगुलना
असख्यातमा लागनी हानिथी घटता नय छे न्या सुधी लोकना अते अेक
राजू प्रमाणवाणु प्रतर आवतु नथी आ रीते उर्ध्वलोकना मध्यवर्ती सर्वोत्कृष्ट
पाच राजू प्रमाणवाणा प्रतरथी माडीने पील उपरितन अने अधस्तन प्रतर
क्रमे क्रमे घटता जता जताव्या छे अे षषा क्षुल्लक प्रतर छे अे क्षुल्लक प्रतर
लोकना अतमा अने तिर्यग्लोकमा अेक अेक राजू प्रमाणवाणा छे

तत्र—तिर्यग्लोकमध्यवर्तिनः सर्वलघुरज्जुप्रमाणात् क्षुद्रकप्रतरादारभ्य या
 यदधो नवयोजनशतानि ताम्रदस्या रत्नप्रमाया पृथिव्या ये प्रतराः, ते उपरितन
 क्षुल्लकप्रतरा उच्यन्ते । तेषामपि चाधस्ताद् ये प्रतराः यादधोलौकिकग्रामेषु सर्वा
 न्तिमाः प्रतराः, तेऽधस्तनक्षुल्लकप्रतरा उच्यन्ते ।

तत्र—मनःपर्ययज्ञानी उपरितनात् क्षुल्लकप्रतरान् नवयोजनशतानि यावत्,
 अधस्तात् सहस्रयोजनानि यावत् अधस्तनक्षुल्लकप्रतरान् जानाति, पश्यति च ।

तथा—तिर्यग्लोक के मध्यवर्ती जो सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर है उसके
 नीचे और २ प्रत्तर तिर्यग् अगुल के असरयानवे भाग की वृद्धि से तब
 तक बढ़ते हुए चले गये हैं कि जनतर अधोलोक के अन्तमें सर्वोत्कृष्ट
 सातराजू प्रमाणवाला प्रतर नहीं आ जाता है । इस सर्वोत्कृष्ट सातराजू
 प्रमाणवाले प्रतर से लेकर दूसरे जी ऊपर के क्रम से हीयमान प्रतर है
 वे सब क्षुल्लक प्रतर हैं । और इन सब क्षुल्लक प्रतरों की अपेक्षा तिर्यग्लोक
 के मध्यमे रहा हुआ जो प्रतर है वह सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर है । इस
 प्रकार यह क्षुल्लक प्रतर की प्ररूपणा है ।

तिर्यग्लोक के मध्यमें रहे हुए एक राजू प्रमाणवाले सर्वलघु क्षुल्लक
 प्रतर से लेकर नौ सौ योजन नीचे तक इस रत्नप्रभापृथिवी मे जितने
 प्रतर हैं वे उपरितन क्षुल्लक प्रतर हैं । इनके भी नीचे जहातक अधो-
 लौकिक ग्रामोंमे सर्वान्तिम प्रतर है तबतक के जितने प्रतर हैं वे सब

तथा—तिर्यग्लोकना मध्यवर्ती के सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर छे तेनी नीचे
 गूढा गूढा प्रतर तिर्यग् अगुलना असप्यातमा लागनी वृद्धिथी त्या सुधी
 पथता नथ छे के न्या सुधी अधोलोकने अते सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाणा
 प्रतर आपता नथी आ सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाणा प्रतरथी माडीने पीन
 के उपरना कभथी हीयमान प्रतर छे ते पथा क्षुल्लक प्रतर छे, अने ते सधणा
 क्षुल्लक प्रतर छे उरता तिर्यग्लोकनी मध्यमा रडेल के प्रतर छे ते सर्वलघु
 क्षुल्लक प्रतर छे आ प्रमाणे आ क्षुल्लक प्रतरनी प्ररूपणा छे

तिर्यग्लोकनी मध्यमा रडेल ओक राजू प्रमाणवाणा सर्वलघु प्रतरथी लडने
 नवसौ योजन नीचे सुधी आ रत्नप्रभा पृथ्वीमा नेटला प्रतर छे ते उपरितन
 क्षुल्लक प्रतर छे तेमनी पथ नीचे न्या सुधी अधोलौकिक ग्रामोमा सर्वान्तिम
 प्रतर छे त्या सुधीना नेटला प्रतर छे ते पथा अधस्तन क्षुल्लक प्रतर छे

उक्तञ्च—“इहाधोलौकिकग्रामान् तिर्यग्लोकविवर्तिनः ।

मनोगतास्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वर्तिनामपि” ॥१॥

असौ=मनः पर्ययज्ञानी भावान्=पर्यायान् वेत्ति=जानाति । शेषं सुगमम् ।

‘उड्ड जाव’ इत्यादि । ऊर्ध्वं यावत् ज्योतिश्चक्रस्य उपरितनस्तलः तिर्यग् यावदन्तोमनुष्य क्षेत्रे=मनुष्यलोकान्त इत्यर्थः । अस्य व्याख्यामाह—

अर्धवृत्तीयेषु द्वीपसमुद्रेषु, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, त्रिंशति वा अकर्मभूमिषु, पट्ट-पञ्चाशत्सख्येषु चान्तरद्वीपेषु सङ्गिना, ते चापान्तरालगतानपि तदायुष्कसंवेदना-दभिधीयन्ते एव, न च तैरिहाधिकारः, अतो विशेषणमाह—‘पर्चिदियाणं’ इत्यादि, पञ्चेन्द्रियाणामिति । पञ्चेन्द्रियाश्रोपपातक्षेत्रमागता इन्द्रियपर्याप्तिपरि-समाप्तौ मनःपर्याप्त्या अपर्याप्ता अपि भवन्ति । न च तैः प्रयोजनमिति विशेष-णान्तरमाह—पर्याप्तानामिति ।

अधस्तन क्षुल्लक प्रतर है । मन पर्ययज्ञानी उपरितन क्षुल्लक प्रतरो को नौ सौं योजन तक, नीचे अधस्तन क्षुल्लक प्रतरो को एक हजार योजन तक जानता और देखता है । कहा भी है—

“इहाधोलौकिकग्रामान्, तिर्यग्लोकविवर्तिनः ।

मनोगतास्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वर्तिनामपि” ॥ १ ॥

इस प्रकार प्रकट करके कि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जघन्य से अङ्गुल के असरयातवें भाग को, तथा उत्कृष्ट से नीचे इस रत्नप्रभा-पृथिवी के उपरितन और अधस्तन क्षुल्लक प्रतरों तक को जानता है और देखता है । अब सूत्रकार ऊर्ध्वं मे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी कहातक जानता और देखता है वह चनलाते है—‘उड्ड जाव’ इत्यादि ।

मन पर्ययज्ञानी उपरितन क्षुल्लक प्रतराने नवमे योजन सुधी, नीचे अधस्तन क्षुल्लक प्रतराने एक हजार योजन सुधी नाले छे अने हेजे छे—कहु पणु छे—

“इहाधोलौकिकग्रामान्, तिर्यग्लोकविवर्तिनः ।

मनोगतास्त्वसौ भावान्, वेत्ति तद्वर्तिनामपि” ॥१॥

आ प्रभाहे “ऋजुमति मन पर्ययज्ञानी जघन्यथी अणुलना अस ष्या तमा लागने तथा उत्कृष्टथी नीचे आ रत्नप्रभा पृथ्वीना उपरितन अने अधस्तन क्षुल्लक प्रतराने पणु नाले छे अने हेजे छे ते प्रगट करीने हवे सूत्रकार ऋजुमति मन पर्ययज्ञानी ऊर्ध्वं भा कया सुधी नाले छे अने हेजे छे ते अतावे छे—“उड्ड जाव” इत्यादि

तत्र—तिर्यग्लोकमध्यवर्तिनः सर्वलघुरज्जुप्रमाणात् शुद्धरूपतरादारभ्य यावदधो नययोजनगतानि तान्मदस्या रत्नप्रमाया पृथिव्या ये प्रतगाः, ते उपरितन क्षुद्ररूपतरा उच्यन्ते । तेषामपि चाधस्ताद् ये प्रतराः यावदधोलीकिग्रामेषु सर्वान्तिमाः प्रतराः, तेऽधस्तनक्षुद्ररूपतरा उच्यन्ते ।

तत्र—मनःपर्ययज्ञानी उपरितनात् क्षुद्ररूपतरान् नययोजनगतानि यावत्, अधस्तात् सहस्रयोजनानि यावत् अधस्तनक्षुद्ररूपतरान् जानाति, पश्यति च ।

तथा—तिर्यग्लोक के मध्यवर्ती जो सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर है उसके नीचे और २ प्रत्तर तिर्यगू अगुल के असख्यातवें भाग की वृद्धि से तबतक बढ़ते हुए चले गये हैं कि जवतरु अधोलोक के अन्तमें सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाला प्रतर नहीं आ जाता है । इस सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाले प्रतर से लेकर दूसरे जी ऊपर के क्रम से हीयमान प्रतर हैं वे सब क्षुल्लक प्रतर हैं । और इन सब क्षुल्लक प्रतरों की अपेक्षा तिर्यग्लोक के मध्यमें रहा हुआ जो प्रतर है वह सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर है । इस प्रकार यह क्षुल्लक प्रतर की प्ररूपणा है ।

तिर्यग्लोक के मध्यमें रहे हुए एक राजू प्रमाणवाले सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर से लेकर नौ मौ योजन नीचे तक इस रत्नप्रभापृथिवी में जितने प्रतर हैं वे उपरितन क्षुल्लक प्रतर हैं । इनके भी नीचे जहातक अयोलौकिक ग्रामोंमें सर्वान्तिम प्रतर है तबतक के जितने प्रतर हैं वे सब

तथा—तिर्यग्लोकना मध्यवर्ती के सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर छे तेनी नीचे षूढा षूढा प्रतर तिर्यगू अगुलना असख्यातमा लागनी वृद्धिथी त्या सुधी वधता नय छे के न्या सुधी अधोलोकने अते सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाणा प्रतर आवता नथी आ सर्वोत्कृष्ट सातराजू प्रमाणवाणा प्रतरथी भाडीने थीन के उपरना कमथी हीयमान प्रतर छे ते अधा क्षुल्लक प्रतर छे, अने ते सधणा क्षुल्लक प्रतर करता तिर्यग्लोकनी मध्यमा रडेल के प्रतर छे ते सर्वलघु क्षुल्लक प्रतर छे आ प्रमाणे आ क्षुल्लक प्रतरनी प्ररूपणा छे

तिर्यग्लोकनी मध्यमा रडेल अक राजू प्रमाणवाणा सर्वलघु प्रतरथी लछने नवसेा योजन नीचे सुधी आ रत्नप्रभा पृथ्वीमा नेटला प्रतर छे ते उपरितन क्षुल्लक प्रतर छे तेमनी पणु नीचे न्या सुधी अधोलौकिक ग्रामोमा सर्वान्तिम प्रतर छे त्या सुधीना नेटला प्रतर छे ते अधा अधस्तन क्षुल्लक प्रतर छे

अथवा—आयामविष्कम्भाभ्यामभ्यधिकतर, वाहल्यमाश्रित्य विपुलतरम्—
अधिकतरम् । अतिशुद्धतर, वितिमिरतरम्, इति प्राग्व्याख्यातम्, जानाति, पश्यति
'तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेशः' इति । तावत्क्षेत्रगतानि मनोद्रव्याणि जानाति
पश्यतीत्यर्थः । 'कालत' खलु' इत्यादि सुगमम् ।

अथवा—आयाम और विष्कम्भ की अपेक्षा क्षेत्र में अधिकतरता
एव वाहल्य की अपेक्षा विपुलतरता जाननी चाहिये । "क्षेत्र को जानता
है" इसका तात्पर्य यह है कि—विपुलमति इतने प्रमाण क्षेत्रमें रहे हुए
सजी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोभावों को अधिकतर आदि रूप से
जानता और देखता है ।

'कालओ ण' इत्यादि । काल की अपेक्षा ऋजुमति जघन्य से
पत्योपम के असरयातवें भागरूप, तथा उत्कर्ष से भी पत्योपम के
असरयातवें भागरूप अतीत अनागत काल को जानता और देखता है ।
विपुलमति उसी काल को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर एव विति-
मिरतररूप से जानता और देखता है ।

'भावओ ण' इत्यादि ।

भाव से ऋजुमति अनन्त भावों को जानता और देखता है, तथा
सब भावों के अनन्त भाग को जानता और देखता है । और विपुलमति
उन्हीं अनन्त भावों को तथा सब भावों के अनन्त भाग को अधिकतर,
विपुलतर, विशुद्धतर और वितिमिरतररूप से जानता और देखता है ॥

अथवा—आयाम अने विष्कम्भनी अपेक्षाये क्षेत्रमा अधिकतरता अने
पुष्कणतानी अपेक्षाये विपुलतरता ननुषी नेर्धये "क्षेत्रने ननुषे छे" तेनु
तात्पर्यं अये छे के विपुलमति अटला प्रमाणमा क्षेत्रमा रडेल मरी पचेन्द्रिय
पर्याप्तक एवोना मनोभावोने अधिकतर आदि रूपे ननुषे अने हेजे छे

"कालओ" इत्यादि जाननी अपेक्षाये ऋजुमति जघन्यथी पत्योपमना
असभ्यातमा लागरूप, तथा उत्कर्षथी पत्योपमना असभ्यातमा लागरूप
भूत अने लविष्य कारणे ननुषे अने हेजे छे विपुलमति अने जानने अधिकतर,
विपुलतर, विशुद्धतर, अने वितिमिरतर रूपे ननुषे अने हेजे छे

"मात्रओण" इत्यादि

लावथी ऋजुमति अनन्त भावोने ननुषे अने हेजे छे तथा पथा भावोना
अतलागने ननुषे अने हेजे छे अने विपुलमति अने अनन्त भावोने तथा
पथा भावोना अनन्तलागने अधिकतर विपुलतर, विशुद्धतर अने वितिमिरतर
रूपे ननुषे अने हेजे छे

यदा—सञ्चिना पञ्चेन्द्रियाणा पर्याप्तकानामिति म्यरूपरुथनम् । तेषा मनो-
गतान् भावान् ऋजुमतिर्जानाति पश्यति ।

विपुलमतिस्तु तदेव, इह तन् उच्येन मनोलब्धिसमन्वितजीवाधारक्षेत्रं परामृ-
श्यते, इह क्षेत्राधिकारस्यैव प्राधान्यात् । अर्धतृतीयैरंगुलैः—अर्धं तृतीय येषु तानि
अर्धतृतीयानि अगुलानि, तानि च ज्ञानाधिकारादुच्यंत्यांगुलानि द्रष्टव्यानि । तैरर्ध-
तृतीयैरंगुलैरभ्यधिकतर जानाति पश्यतीत्यन्यः । तन्चैकदेशमपि भवति, अत
आह—विपुलतरमिति—विस्तीर्णतरमित्यर्थः ।

ऋजुमति मनःपर्यग्रजानी उर्ध्वमें जहातक ज्योतिश्चक्र का उपरितन
तल है वहा तक के—अर्थात् वहातक के सजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के
मनोभावों को जानता और देखता है । तथा तिर्यग्रूप से ढाई द्वीपतक
के सञ्चेन्द्रिय पर्याप्त के प्राणियों के मनोभावों को जानता और देखता
है । ढाईद्वीप में पन्द्रह कर्मभूमिया, तीस अकर्मभूमिया तथा छप्पन
अन्तरद्वीप है । जवूद्वीप, घातकीरुड तथा पुष्करार्थ, ये ढाईद्वीप हैं ।
इनमे ये पूर्वोक्त कर्मभूमि एव अकर्मभूमि तथा अन्तर द्वीप हैं । अतर-
द्वीप लवणसमुद्र मे आये हुए हैं । यही घात सूत्रकारने “अद्वाइज्जेसु
दीवसमुद्देषु” इत्यादि सूत्रपदों द्वारा प्रकट की है । विपुलमति मनःपर्य-
ग्रजानी पर्याप्तक सजी पंचेन्द्रिय जीवों के आधारभूत क्षेत्र को—जिसको
ऋजुमति देखता है उसी क्षेत्र को अढाई अगुल प्रमाण अधिक जानता
और देखता है । एव विपुलतर विशुद्धतर और वितिभिरतर अत्यन्त
स्पष्ट रूपमें जानता और देखता है । यहा अगुल से ज्ञान का प्रकरण
होने के कारण उच्छ्रयाद्गुल समझना चाहिये ।

ऋजुमति मनःपर्यग्रजानी उर्ध्वमा न्या सुधी न्योतिश्चक्रनु उपरितनतल
छे त्या सुधीना—अटले के त्या सुधीना सजी पंचेन्द्रिय पर्याप्त लवोना मनो
भावोने नल्ले छे अने देजे छे तथा तिर्यग्रूपधी अढीद्वीप सुधीना सजी पंचेन्द्रिय
पर्याप्त प्राणियोंना मनोभावोने नल्ले छे अने देजे छे अढीद्वीपमा पहर
कर्मभूमियो, तीस अकर्मभूमियो तथा छप्पन अन्तरद्वीप छे जवूद्वीप, घातकी
रुड तथा पुष्करार्थ, ये अढीद्वीप छे, तेमा ये पूर्वोक्त कर्मभूमि, अकर्मभूमि
अने अन्तरद्वीप छे अन्तर द्वीप लवणसमुद्रमा आवेला छे अेज वात सूत्रकारे
“अद्वाइज्जेसु दीवसमुद्देषु” इत्यादि सूत्रपदोंद्वारा प्रकट करी छे विपुलमति
मनःपर्यग्रजानी पर्याप्तक सजी पंचेन्द्रिय लवोना आधारभूत क्षेत्रने—नेने ऋजु
मति देजे छे अेज क्षेत्रने अढी अगुल प्रमाणमा वधारे नल्ले अने देजे छे
अने विपुलतर, विशुद्धतर तथा वितिभिरतर—अत्यत स्पष्ट रूपे नल्ले अने देजे
छे अढी अगुलधी ज्ञाननु प्रकरणे होवाथी उच्छ्रयाद्गुल समझवु नैर्ध अे

દ્રવ્યવિપયમ્, મન પર્યયજ્ઞાન તુ દ્રવ્યતઃ સંજ્ઞિમનોદ્રવ્યવિપયકમિતિ ભેદઃ ૨ ।
 અવધિજ્ઞાન ક્ષેત્રતઃ-લોકવિપય, કૃતિવિપયલોકપ્રમાણક્ષેત્રાપેક્ષયા સામર્થ્યવગાદ્ અલો-
 કવિપય ચ, અલોકે યદિ રૂપિદ્રવ્ય સ્યાત્ તદા તદપિ દ્રષ્ટુ શક્નોતિ, મનઃ-
 પર્યયજ્ઞાન તુ ક્ષેત્રતઃ તિર્યગ્લોકાપેક્ષયા મનુષ્યક્ષેત્ર વિપયકમ્ ૩ । અવધિજ્ઞાન
 કાલતોઽતીતાનાગતાઽસરયેયોત્સર્પિણ્યસર્પિણીવિપયકમ્, મનઃપર્યયજ્ઞાન તુ
 કાલતોઽતીતાનાગતપલ્યોપમાઽસરયેયભાગવિપયકમ્ ૪ । અવધિજ્ઞાન ભાવતોઽશે
 પેષુ રૂપિદ્રવ્યેષુ પ્રતિદ્રવ્યમસરયાતપર્યાયવિપયમ્, મનઃપર્યયજ્ઞાન તુ
 ભાવતો-મનો દ્રવ્યગતાનન્તપર્યાયવિપયમ્ ૫ । અવધિજ્ઞાન-ભવપ્રત્યય ગુણપ્રત્યય ચ

કરતા હૈ તથા કિ મનઃપર્યયજ્ઞાન સિર્ફા ઉસકે અનતવૈ ભાગ કો હી વિપય
 કરતા હૈ, અર્થાત માત્ર મનોદ્રવ્ય કો હી જાનતા હૈ ।૨। ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા-
 અવધિજ્ઞાન કા વિપય અગુલ કૈ અસરયાતવે ભાગ સે લેકર સમ્પૂર્ણ
 લોક હૈ । તથા કૃતિવિપય લોકપ્રમાણ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા સે સામર્થ્યવગા
 અલોક કો ભી જાન મકતા હૈ, યદિ અલોક મૈ રૂપી દ્રવ્ય હો તો વહ
 ઉસકો ભી ગ્રહણ કરને કી શક્તિ રખતા હૈ । મનઃપર્યયજ્ઞાન કા વિપય
 ક્ષેત્ર તિર્યગ્લોક કી અપેક્ષા ઢાઢઢીપ પર્યત હી હૈ ।૩। કાલ કી અપેક્ષા
 અવધિજ્ઞાન અતીત અનાગત અસરયાત ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણી કાલ કો
 જાનતા હૈ । મનઃપર્યયજ્ઞાન કાલ કી અપેક્ષા અતીત અનાગત પલ્યોપમ
 કૈ અસરયાતવે ભાગ કો વિપય કરતા હૈ ।૪। ભાવ કી અપેક્ષા અવધિ
 જ્ઞાન સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યો મૈ સે પ્રત્યેક રૂપી દ્રવ્યો કી અસરયાત પર્યાયો
 કો વિપય કરતા હૈ, તથા મનઃપર્યયજ્ઞાન મનોદ્રવ્ય કી અનતપર્યાયો કો
 વિપય કરતા હૈ ।૫। અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યય ઓર ગુણપ્રત્યય ઢોનો રૂપ

ત્યારે મન પર્યયજ્ઞાન કૃષ્ટા તેના અનતમા ભાગને જ વિપય કરે છે, એટલે કે
 માત્ર મનોદ્રવ્યને જ બાંધે છે (૩) ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ અવધિજ્ઞાનનો વિપય
 અગુલના અસખ્યાતમા ભાગથી લઈને સપૂર્ણ લોક છે તથા કેટલાક લોકપ્રમાણ
 ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ સામર્થ્યવશ અલોકને પણ બાંધી શકે છે જે અલોકમા રૂપી
 દ્રવ્ય હોય તો તે તેને પણ ગ્રહણ કરવાની શક્તિ ધરાવે છે મન પર્યય જ્ઞાનતુ
 વિપયક્ષેત્ર તિર્યગ્લોકની અપેક્ષાએ અઢી ઢીપ સુધી જ છે (૪) કાળની અપેક્ષાએ
 અવધિજ્ઞાન ભૂત, ભવિષ્ય અસખ્યાત ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણી કાળને બાંધે છે
 મન પર્યય જ્ઞાન કાળની અપેક્ષાએ ભૂત, ભવિષ્ય પલ્યોપમના અસખ્યાતમા
 ભાગને વિપય કરે છે (૫) ભાવની અપેક્ષાએ સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોમાથી પ્રત્યેક રૂપી
 દ્રવ્યની અસખ્યાત પર્યાયોને વિપય કરે છે, તથા મન પર્યયજ્ઞાન મનોદ્રવ્યની
 અનત પર્યાયોને વિપય કરે છે (૬) અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યય અને ગુણપ્રત્યય એ

अधोपसहरन् गाथामाह—

मूलम्—मणपञ्जवनाण पुण, जणमणपरिचिन्तिअत्थपागडणं ।

माणुसखित्तनिवद्ध, गुणपच्चइय चरित्तवओ ॥ १ ॥

से त्त मणपञ्जवनाण ॥ सू० १८ ॥

छाया—मनः पर्ययनानपुन, —र्जनमनःपरिचिन्तितार्थमऋतनम् ।

मानुषक्षेत्रनिवद्ध, गुणप्रत्ययिक चारित्रगत. ॥ १ ॥

तदेतन्मनःपर्ययज्ञानम् ॥ सू० १८ ॥

टीका—‘ मणपञ्जवनाण ’ इत्यादि । मनःपर्ययनान पुन—उह पुनः—शब्दो-
ऽवधिज्ञानाद् भेद सूचयति । इद मनःपर्ययज्ञानमवधिज्ञानतो रूपिद्रव्यविषयकत्व-
क्षायोपशमिकत्व-प्रत्यक्षत्वादिभिः साम्येऽपि स्वाम्यादिभेदाद् भिन्नमिति भावः ।
तद्यथा—अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि भवति, मन पर्ययज्ञान तु सयतस्या
प्रमत्तस्य ऋद्धिप्राप्तस्यैव भवतीति भेदः १ । अवधिज्ञान द्रव्यतोऽशेषरूपि

अथ सूत्रकार उपसहार करते हुए गाथा कहते हैं—‘मणपञ्जवनाण’
इत्यादि । गाथा में जो “पुनः” शब्द आया है वह इस मनःपर्ययज्ञान
की अवधिज्ञान से भिन्नता प्रदर्शित करता है । इसका तात्पर्य यह है
कि—यद्यपि अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान में रूपी द्रव्य को विषय करने
की, क्षायोपशमिक होने की तथा प्रत्यक्षत्व आदि की अपेक्षा समानता
है तो भी इन दोनों में स्वामी आदि के भेद से भिन्नता है । वह इस
प्रकार से—अवधिज्ञान का स्वामी अविरतसम्यग्दृष्टि भी होता है तब
कि मनःपर्ययज्ञान का स्वामी अप्रमत्त सयत सम्यग्दृष्टि ही होता है ।
उसमें भी जिसको कोई न—कोई—ऋद्धि—लब्धि प्राप्त हो चुकी हो वही
होता है । १। द्रव्य की अपेक्षा—अवधिज्ञान समस्त रूपी द्रव्यों को विषय

इसे सूत्रकार उपसहार करता गाथा कहे छे—“मणपञ्जवनाण ” इत्यादि
गाथामा जे “पुन ” शब्द आये छे ते आ मन पर्यय ज्ञाननी अवधिज्ञानथी
भिन्नता दर्शावे छे तेनु तात्पर्य जे छे के—जे के अवधिज्ञान अने मन पर्यय
ज्ञानमा इपी द्रव्यने विषय करवानी, क्षायोपशमिक होवानी तथा प्रत्यक्षत्व
आदिनी अपेक्षासे समानता छे ते पणु जे अ—नेमा स्वामी आदिना तक्षवतने
कारणु भिन्नता छे ते आ प्रमाणु छे—(१) अवधिज्ञानने स्वामी अविरत सम्यग्दृष्टि
पणु होय छे, त्यारे मन पर्यय ज्ञानने स्वामी अप्रमत्त सयत सम्यग्दृष्टि न होय
छे तेमा पणु जेने कोधने कोध ऋद्धि—लब्धि प्राप्त थई चूकी होय जे होय
छे (२) द्रव्यनी अपेक्षासे अवधिज्ञान समस्त इपी द्रव्यने विषय करे छे,

छाया—अथ किं तत् केवलज्ञानम्?, केवलज्ञान द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा भवस्थकेवलज्ञान च, सिद्धकेवलज्ञान च ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त केवलनाण’ इति । अथ किं तत् केवलज्ञानम्? हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्टस्य केवलज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह ‘केवलनाण दुग्धिं पण्णत्त’ इत्यादि । केवलज्ञान, तत्र केवलं—१ परिपूर्णम् २ समग्रम्, ३ असाधारणम्, ४ निरपेक्षम्, ५ विशुद्धम्, ६ सर्वभावप्रज्ञापकम्, ७ सम्पूर्णलोकालोकविषयकम्, ८ अनन्तपर्याय चेत्यर्थः, तथाविधं यद् ज्ञान तत् केवलज्ञानम् । तत्र—

१-परिपूर्णम्—सकल द्रव्यभावपरिच्छेदकत्वात् ।

२-समग्रम्—एकस्य जीवपदार्थस्य यथा सर्वथा परिच्छेदक, तथाऽपरस्यापीत्याशयात् ।

मन.पर्ययज्ञान के स्वरूप सुन चुकने बाद अब जब शिष्य केवलज्ञान के स्वरूप को पूछता है—हे भदन्त । पूर्वनिर्दिष्ट केवलज्ञान का क्या स्वरूप है? उत्तर—केवलज्ञान दो प्रकार का प्ररूपित किया है, वे दो प्रकार ये हैं—एक भवस्थ-केवलज्ञान और दूसरा सिद्ध केवलज्ञान । केवल—अर्थात्—१ परिपूर्ण, २ समग्र, ३ असाधारण, ४ निरपेक्ष, ५ विशुद्ध, ६ सर्वभाव-प्रज्ञापक, ७ सम्पूर्णलोकालोकविषयक, ८ अनन्तपर्याय, ये सब केवल के अर्थ हैं । ऐसा जो ज्ञान है वह केवलज्ञान है ।

१ परिपूर्ण—यह ज्ञान सकल द्रव्य और उनकी समस्त त्रिकालवर्ती पर्यायों को जानता है इसलिये इसको ‘परिपूर्ण’ कहा है ।

मन पर्ययज्ञाननु स्वरूप साबणी वीधा पछी हुवे शिष्य केवणज्ञाननु स्वरूप पूछे छे—हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट केवणज्ञाननु केवु स्वरूप छे ?

उत्तर—केवणज्ञान जे प्रकारनु प्ररूपित करेल छे ते जे प्रकार आ प्रमाणे छे—(१) भवस्थ-केवणज्ञान अने (२) सिद्ध-केवणज्ञान केवण अटके के—(१) परिपूर्ण, (२) समग्र, (३) असाधारण, (४) निरपेक्ष, (५) विशुद्ध, (६) सर्वभावप्रज्ञापक, (७) सम्पूर्णलोकालोकविषयक, (८) अनन्तपर्याय, आ जधा “केवण” ना अर्थो छे आबु जे ज्ञान होय ते केवणज्ञान छे

(१) परिपूर्ण—आ ज्ञान समस्त द्रव्य अने तेमनी समस्त त्रिकाणवर्ती पर्यायाने लखे छे तेथी तेने परिपूर्ण कहल छे

भवति, मनःपर्ययज्ञान तु गुणप्रत्ययमेवेति भेदः ६ । तस्मादप्रज्ञानान्मनः-
पर्ययज्ञान भिन्नम् । एतदेव सक्षेपेण सूत्रकारः प्राह—‘जणमण०’ इत्यादि । जनमनः-
परिचिन्तितार्थप्रकटन=जनाना मनासि=जनमनासि, तैः परिचिन्तितशासारथ्यश्च
जनमनःपरिचिन्तितार्थस्त प्रकटयतिप्रकाशयतीति तथा भवति । तथा—मनुष्य-
क्षेत्रनिबद्ध भवति, न तु तद्बहिर्व्यग्रस्थितमाणिमनोद्रव्यविषयकमित्यर्थः । तथा—
चारित्र्यवतः=अर्थात्—अप्रमत्तसयतस्य आमशौषध्यादिक्लृप्तिप्राप्तस्य च मनः-
पर्ययज्ञान गुणप्रत्ययिक भवति । तत्र गुणाःक्षान्त्यादयः, प्रत्ययःकारण यस्य तद्
गुणप्रत्यय, तदेव गुणप्रत्ययिकम् । तदेतन्मनःपर्ययज्ञान वर्णितम् ॥ सू० १८ ॥

मूलम्—से किं तं केवलनाणं?, केवलनाणं दुविह पणत्त ।
त जहा—भवत्थकेवलनाणं च, सिद्धकेवलनाणं च ॥

होता है । मनःपर्ययज्ञान केवल गुणप्रत्यय ही होता है । इन्हीं निमित्तों
से अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में भिन्नता है । इसी को सूत्रकार इस
गाथा में सक्षेपरूप से कहते हैं—“जणमण०” इत्यादि । मनुष्यों के मनद्वारा
चिन्तित अर्थ को प्रकाशित करनेवाला, तथा मनुष्य क्षेत्र में ही रहे हुए
सजी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोद्रव्यों को विषय करनेवाला—इसके
बाहिर के प्राणियों के मनोद्रव्यों को विषय नहीं करनेवाला, ऐसा यह
मनःपर्ययज्ञान आमशौषध्यादिलब्धिप्राप्त अप्रमत्तसयमी सम्यग्दृष्टि
जीव के होता है, और वह क्षान्त्यादिगुणकारण वाला है । इस तरह
यहां तक यह मनःपर्ययज्ञान का कथन हुआ ॥ सू० १८ ॥

अब सूत्रकार केवलज्ञान का प्रकरण प्रारंभ करते हैं—‘से किं तं
केवलनाणं’ इत्यादि ।

अने रूप होय छे, पणु मन पर्ययज्ञान इकत गुणप्रत्यय रूप न होय छे आ
निमित्तोर्था अवधिज्ञान अने मन पर्ययज्ञान वर्ये तक्षवत छे तेने सूत्रकार आ
गाथाभा सक्षिप्त रूपे कहे छे—“जणमण०” इत्यादि

मनुष्येना मनद्वारा चिन्तित अर्थने प्रकाशित करनार तथा मनुष्यक्षेत्रभा
न रहेल सजी पचेन्द्रिय पर्याप्तक एवोना मनोद्रव्येने विषय करनार—तेनी अहा
रना प्राणीओना मनोद्रव्येने विषय नही करनार अणु आ मन पर्ययज्ञान
आमशौषध्यादिलब्धिप्राप्त अप्रमत्त सयत सम्यग्दृष्टि एवने थाय छे
अने ते क्षान्त्यादिगुणकारणवाणु होय छे आ प्रभाणु अही सुधी आ
मन पर्ययज्ञाननु वणुन थयु ॥ सू० १८ ॥

हुवे सूत्रकार केवलज्ञाननु प्रकरण शरु करे छे—“से किं तं केवलनाणं” इत्यादि

૭-સમ્પૂર્ણલોકાલોકવિપયકમ્—ધર્માદીના દ્રવ્યાણા વૃત્તિર્યત્ર ભવતિ તત્ ક્ષેત્ર લોકઃ, તદ્વિપરીતમનન્તાકાશાસ્તિકાયરૂપ ક્ષેત્રમલોકઃ । યત્ કિંચિત્ જ્ઞેય લોકેઽલોકે વાઽસ્તિ, તસ્ય સર્વસ્ય દર્શકત્વાત્ ।

૮-અનન્તપર્યાયમ્—સ્વાપેક્ષયા જ્ઞેયાપેક્ષયા વાઽનન્તપર્યાયત્વાત્ ।

ઉત્તર—યહ વાત ઉપચાર સે ઉસમે સિદ્ધ હોતી હૈ, અતઃ ઉસે પ્રરૂપક કહા હૈ, કયો કિ સમસ્ત જીવાદિક ભાવોં કા સર્વરૂપ સે યથાર્થ દર્શી કેવલજ્ઞાન હૈ, ઓર શબ્દ, કેવલજ્ઞાન ઢારા દેખે હુણ પદાર્થોં કી હી પ્રરૂપણા કરતા હૈ, ડસલિયે ઉપચાર સે ંસા માન લિયા જાતા હૈ કિ કેવલજ્ઞાન હી ઉનકા પ્રરૂપક હૈ ।

૭ સમ્પૂર્ણલોકાલોકવિપયક—ધર્માદિક દ્રવ્યોં કી જહા વૃત્તિ હૈ ઉસકા નામ લોક હૈ । ડસસે વિપરીત અલોક હૈ । ડસમેં આકાશ કે સિવાય ઓર કોઈ દ્રવ્ય નહીં હૈ । યહ અનંત ઓર અસ્તિકાયરૂપ હૈ । લોક ઓર અલોક મે જો કુઝ જ્ઞેય પદાર્થ હોતા હૈ ઉસકા સર્વરૂપ સે પ્રકાશક હોને સે યહ ‘સમ્પૂર્ણલોકાલોકવિપયક’ કહા જાતા હૈ ।

૮ અનન્તપર્યાય—મત્યાદિકજ્ઞાન જિસ પ્રકાર સર્વ દ્રવ્યોં કો ઉનકી કુઝ પર્યાયોં કો પરોક્ષ પ્રત્યક્ષરૂપ સે જાનતે હૈ ડસ પ્રકાર યહ જ્ઞાન નહી જાનતા હૈ કિન્તુ યહ તો સમસ્ત દ્રવ્યોં કો ઓર ઉનકી સમસ્ત પર્યાયોં કો યુગપત્ પ્રત્યક્ષ જાનતા હૈ ડસલિયે યહ અનન્તપર્યાય કહા ગયા હૈ ।

ઉત્તર—આ વાત ઉપચારથી તેમા સિદ્ધ થાય છે, તેથી તેને પ્રરૂપક કહેલ છે, ડરણુ ડે સમસ્ત જીવાદિક ભાવોતુ સર્વરૂપે યથાર્થદર્શી કેવળજ્ઞાન છે અને શબ્દ, કેવળજ્ઞાન ઢારા બેચેલ પદાર્થોનીજ પ્રરૂપણા કરે છે તેથી ઔપચારિક રીતે એવુ માની લેવાય છે ડે કેવળજ્ઞાન જ તેનુ પ્રરૂપક છે

(૭) સમ્પૂર્ણલોકાલોકવિપયક—ધર્માદિક દ્રવ્યોની ન્યા વૃત્તિ છે એનુ નામ લોક છે તેનાથી ઉલટો અલોક છે તેમા આકાશના સિવાય બીજુ કોઈ દ્રવ્ય નથી તે અનંત અને અસ્તિકાયરૂપ છે લોક અને અલોકમા જે કોઈ જ્ઞેય પદાર્થ હોય છે, તેનુ સર્વરૂપથી પ્રકાશક હોવાથી તે સપૂર્ણલોકાલોક વિપયક કહેવાય છે

(૮) અનંતપર્યાય—મત્યાદિક જ્ઞાન જેમ સર્વે દ્રવ્યોને અને તેમની કેટલીક પર્યાયોને પરોક્ષ-પ્રત્યક્ષરૂપથી બાણુ છે, એજ પ્રમાણુ આ જ્ઞાન બાણુતુ નથી પણ આ (જ્ઞાન) તો સમસ્ત દ્રવ્યોને અને તેમની સમસ્ત પર્યાયોને યુગપત્ પ્રત્યક્ષ બાણુ છે, તેથી આ જ્ઞાનને અનંત પર્યાય કહેલ છે

- ૩-અસાધારણમ્—મત્યાદિજ્ઞાનૈરતુલ્યત્વાત્ ।
 ૪-નિરપેક્ષમ્—ઇન્દ્રિયાઘપેક્ષાયા અમાગાત્ ।
 ૫-વિશુદ્ધમ્—નિરપેક્ષજ્ઞાનદર્શનાવરણાયકર્મમલક્ષ્યાત્ ।
 ૬-સર્વભાવપ્રજ્ઞાપકમ્—સર્વજીવાદિભાવમરૂપમત્ત્વાત્ ।

નનુ કેવલજ્ઞાન મૂક, તત્ કથં પ્રરૂપમ્ મુચ્યતે ? શત્રો હિ પ્રરૂપણા મ્નું શક્તા તીતિ ચેત્ ? , ઉચ્યતે—ઉપચારાત્ પ્રરૂપમ્ત્વ કેવલજ્ઞાનસ્ય સિયતિ । યતઃ કેવલ-જ્ઞાનદૃષ્ટસર્વભાવાન્ શત્રુઃ પ્રરૂપયતિ, તસ્માત્ કેવલજ્ઞાનમેવ પ્રરૂપકમિતિ મન્યતે ।

૨ સમગ્ર—યહ જિસ પ્રકાર ઁક-જીવ પદાર્થ કો સર્વથા રૂપસે જાનતા હૈ ઁસી પ્રકાર વહ દુસરે પદાર્થો કો ઁી સર્વથા રૂપ સે જાનતા હૈ । કિસી ઁી પદાર્થ કે જાનને મેં ઁમમેં ન્યૂનાધિકતા નહીં હૈ । ઁસલિયે યહ ‘સમગ્ર’ હૈ ।

૩ સાધારણ—મત્યાદિક જો ઁર જ્ઞાન હેં ઁનકી અપેક્ષા યહ વિગિષ્ટ હૈ, અદ્વિતીય હૈ ઁસલિયે યહ ‘અસાધારણ’ હૈ ।

૪ નિરપેક્ષ—ઇન્દ્રિયાદિકોં કી સહાયતા સે યહ રહિત હૈ ઁસલિયે ‘નિરપેક્ષ’ હૈ ।

૫ વિશુદ્ધ—સમસ્ત જ્ઞાનાવરણ ઁવ દર્શનાવરણ કર્મ કે વિગમ (ક્ષય) સે યહ હોતા હૈ અતઃ ઁસે ‘વિશુદ્ધ’ કહા હૈ ।

૬ સર્વભાવજ્ઞાપક—યહ સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થોં કા પ્રરૂપક હૈ ઁસલિયે યહ ‘સર્વભાવપ્રજ્ઞાપક’ હૈ ।

શકા—કેવલજ્ઞાન કો તો મૂક બતલાયા ગયા હૈ, ફિર યહ જીવાદિક પદાર્થોં કા પ્રરૂપક કૈસે હો સકતા હૈ ?

(૨) સમગ્ર—એમ એક જીવ પદાર્થને સર્વથા રૂપથી જાણે છે એજ રીતે આ જ્ઞાન ખીજ પદાર્થને પણ સર્વથારૂપથી જાણે છે કોઈપણ પદાર્થને જાણવામા તેમા એછા-વધુ પણ નથી, તેથી તે સમગ્ર છે

(૩) અસાધારણ—મત્યાદિક જે ખીજ જ્ઞાન છે તેમના કરતા આ જ્ઞાન વિશિષ્ટ છે, અદ્વિતીય છે, માટે તે અસાધારણ છે

(૪) નિરપેક્ષ—ઇન્દ્રિયાદિકોની સહાયતા વિનાજી હોવાથી તે નિરપેક્ષ છે

(૫) વિશુદ્ધ—સમસ્ત જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણ કર્મના વિગમ (ક્ષય) થી તે ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તેને વિશુદ્ધ કહેલ છે

(૬) સર્વભાવપ્રજ્ઞાપક—તે સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થોંનુ પ્રરૂપક છે તેથી તે સર્વભાવપ્રજ્ઞાપક છે

શકા—કેવલજ્ઞાનને તો મૂક દર્શાવ્યું છે તો તે જીવાદિક પદાર્થોંનુ પ્રરૂપક કેવી રીતે હોઈ શકે ?

मूलम्—से कि त सजोगि-भवत्थ-केवलनाणं ? । सजोगि-भवत्थ-केवलनाण दुविहं पणत्त । तजहा—पढमसमयसजोगि-भवत्थ-केवलनाण च, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाण च । अहवा—चरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाण च अचरमसमय-सजोगिभवत्थकेवलनाणं च । से त्त सजोगिभवत्थकेवलनाणं ॥

छाया—अथ किं तत् सयोगिभगस्थकेवलज्ञानम् ? । सयोगिभगस्थकेवल-ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—प्रथमसमयसयोगिभगस्थकेवलज्ञानं च, अपथम-समयसयोगिभगस्थकेवलज्ञानं च । अथवा—चरमसमयसयोगिभगस्थकेवलज्ञानं च, अचरमसमयसयोगिभवत्थकेवलज्ञानं च । तदेतत् सयोगिभगस्थकेवलज्ञानम् ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘ से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ? ’ इति । उत्तरमाह—‘ सजोगिभवत्थकेवलनाण ’ इत्यादि । सयोगिभवत्थकेवलज्ञानम्—

‘ से किं त सजोगि-भवत्थ-केवलनाण ’ इत्यादि ।

प्रश्न—सयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर—मन, वचन, और कायकी क्रिया का नाम योग है । यह योग जिसके होता है वह सयोगी कहलाता है । सयोगी होकर जो भवत्थ होता है वह सयोगि-भवत्थ है । उसका जो केवलज्ञान होता है उसका नाम सयोगिभवत्थ-केवलज्ञान है । वह दो प्रकार का बतलाया गया है—एक प्रथमसमय-सयोगि-भवत्थकेवलज्ञान और दूसरा अप्रथमसमय-सयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान । जिस सयोगी भवत्थ आत्मा को केवलज्ञान उत्पन्न होने में एक समय हुआ हो उसका केवलज्ञान प्रथमसमय सयोगि-भवत्थ-केवल-

“ से किं त सजोगि-भवत्थ-केवलनाण ” इत्यादि

प्रश्न—सयोगि-भवत्थ-केवलज्ञाननु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—मन, वचन अने कायानी क्रियातु नाम योग छे, आ योग नेने थाय छे ते सयोगी कहेवाय छे सयोगी थछे ने ने भवत्थ छेय छे ते सयोगि-भवत्थ छे तेनु ने केवलज्ञान छेय छे तेने सयोगि भवत्थ केवलज्ञान कहे छे ते ने प्रज्ञप्तु भताव्यु छे—(१) प्रथमसमय-सयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान अने (२) अप्रथमसमय सयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान ने सयोगी भवत्थ आत्माने केवलज्ञान उत्पन्न थवामा ओके समय लाव्ये छेय तेनु केवलज्ञान

તત્ કેવલજ્ઞાન દ્વિવિધ પ્રજાતમ્-તદ્યથા-ભવસ્થ કેવલજ્ઞાન, સિદ્ધ-કેવલજ્ઞાન ચા।
 મૂલમ્-સે કિં ત ભવત્થ-કેવલનાણં ? । ભવત્થ-કેવલનાણં
 દુવિહંપણ્ણત્ત । તજહા-સજોગિ-ભવત્થ-કેવલનાણં ચ, અજોગિ-
 ભવત્થ કેવલનાણં ચ ॥

છાયા—અથ કિં તદ્ ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાનમ્ ? । ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન દ્વિવિધ પ્રજા
 પ્તમ્ । તદ્ યથા-સયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન ચ અયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન ચ ॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૂઞ્ઞતિ-‘ સે કિં ત ભવત્થ-કેવલનાણ ’ ઇતિ, પૂર્વનિર્દિષ્ટસ્ય
 ભવસ્થકેવલજ્ઞાનસ્ય કિં સ્વરૂપ ? મિત્યર્થઃ । ઉત્તરમાહ-‘ ભવત્થ-કેવલનાણ દુવિહ
 પ્ણત્ત ’ ઇત્યાદિ । ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન-ભવો=મનુષ્યજન્મ, તત્ર તિષ્ઠતીતિ ભવસ્થઃ,
 તસ્ય કેવલજ્ઞાનમિતિ વિગ્રહઃ । તદ્ દ્વિવિધ પ્રજાતમ્=તીર્થકરૈઃ કથિતમ્ । તદ્ યથા-
 સયોગિ-ભવસ્થકેવલજ્ઞાનમ્, અયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાનમિતિ ॥

યદ્ કેવલજ્ઞાન દો પ્રકાર કા હૈ-૧ ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન ઓર ૨ સિદ્ધ-
 કેવલજ્ઞાન ॥

‘ સે કિં ત ભવત્થકેવલનાણ ’ ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય પૂછતા હૈ-હે ભદન્ત ! ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ હૈ ?
 ઉત્તર-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન દો પ્રકાર કા વતલાયા ગયા હૈ, વદ્ ઇસ પ્રકાર-
 એક સયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન દૂસરા અયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન । મનુષ્ય
 જન્મ કા નામ યદા ભવ હૈ । ઇસ ભવ મે રહનેવાલે કા જો કેવલજ્ઞાન હૈ વદ્
 ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન હૈ । વદ્ ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન દો પ્રકાર કા વતલાયા ગયા
 હૈ । સયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન ઓર દૂસરા અયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન ।

આ કેવલજ્ઞાન યે પ્રકારતુ છે-(૧) ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન અને (૨) સિદ્ધ
 કેવલજ્ઞાન

“ સે કિં ત ભવત્થકેવલનાણ ” ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે-હે ભદન્ત ! ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાનતુ શુ સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન યે પ્રકારતુ બતાવેલ છે તે આ પ્રમાણે છે
 (૧) સયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન અને (૨) અયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન અહીં
 મનુષ્યજન્મતુ નામ ભવ છે આ ભવમા રહેનારતુ જે કેવલજ્ઞાન છે તે ભવસ્થ
 કેવલજ્ઞાન કહેવાય છે તે ભવસ્થ કેવલજ્ઞાન યે પ્રકારતુ છે-સયોગિ-ભવસ્થ-
 કેવલજ્ઞાન અને ધીણુ અયોગિ-ભવસ્થ-કેવલજ્ઞાન

अहवा—चरमसमय-अजोगिभवत्थकेवलनाण च, अचरमसमय-
-अजोगिभवत्थकेवलनाणं च । से तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं,
से तं भवत्थकेवलनाण ॥ सू० १९ ॥

छाया—अथ किं तद् अयोगिभवत्थकेवलज्ञानम् ? । अयोगिभवत्थकेवलज्ञान
द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—प्रथमसमयाऽयोगिभवत्थकेवलज्ञान च, अप्रथमसम-
याऽयोगिभवत्थकेवलज्ञान च । अथवा—चरमसमयाऽयोगिभवत्थकेवलज्ञान च,
अचरमसमयाऽयोगिभवत्थकेवलज्ञान च । तदेतदयोगिभवत्थकेवलज्ञानम्, तदेतद्
भवत्थकेवलज्ञानम् ॥ सू० १९ ॥

टीका—‘से किं त अजोगिभवत्थकेवलनाण’ इत्यादि । न योगी इत्ययोगी,
शैलेश्यवस्थामुपगतः । स चासौ भवत्थश्च—अयोगिभवत्थः तस्य केवलज्ञानम् ।
अयोगिभवत्थकेवलज्ञानम् । शेष सुगमम् ॥ १९ ॥

इस प्रकार सयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान का स्वरूप घतलाया, अथ
अयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान का स्वरूप कहते हैं—‘से किं त अजोगिभवत्थ-
केवलनाण’ इत्यादि ।

शैलेशी अवस्था को जो प्राप्त हो चुके हैं वे अयोगी हैं, अयोगी
होकर भी जो भवत्थ हैं वे अयोगीभवत्थ हैं । इनका जो केवलज्ञान है
वह अयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान है । वह दो प्रकार का है, जैसे—प्रथमसमय-
अयोगि-भवत्थ केवलज्ञान और अप्रथमसमय-अयोगिभवत्थ-केवलज्ञान ।
उनमें जिन भवत्थ आत्मा को शैलेशी अवस्था प्राप्त करने में एक समय
हुवा हो, उनका केवलज्ञान प्रथमसमय-अयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान कह-
लाता है, और जिनको शैलेशी अवस्था प्राप्त करने में द्वितीयादि समय

आ प्रमाणे सयोगि-भवत्थ-केवलज्ञाननु स्वरूप अताव्यु, इवे अयोगि-
भवत्थ-केवलज्ञाननु स्वरूप कडे छे—‘से किं त अजोगि भवत्थ केवलनाण’ इत्यादि

शैलेशी अवस्थाने ने पामी गया छे ते अयोगी छे अयोगी डावा छता
पणु ने भवत्थ छे तेओ अयोगि भवत्थ छे तेभनु ने केवलज्ञान छे ते अयोगि-
भवत्थ-केवलज्ञान छे ते भे प्रकारनु छे—(१) प्रथमसमय-अयोगि-भवत्थ-
केवलज्ञान अने (२) अप्रथमसमय-अयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान छे तेमा ने भवत्थ
आत्माने शैलेशी अवस्था प्राप्त करवामा ओक समय लाग्यो होय, तेभनु
केवलज्ञान प्रथमसमय-अयोगि-भवत्थ-केवलज्ञान कडेवाय छे अने नेभने शैलेशी

तत्र-योगाः-व्यापाराः । तै मह वर्तन्ते ये, ते मयोगाः सन्यापारामनोराकायाः, ते विद्यन्ते यस्य स सयोगी । स चासौ भवस्थश्च मयोगिभवस्थस्तस्य केवलज्ञानमिति विग्रहः । तद् द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद् यथा-प्रथमममयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च । प्रथमं समयः सयोगित्वे यस्य स प्रथमममय', केवलज्ञानप्राप्तौ प्रथमः समयो यस्य स इत्यर्थः । स चासौ सयोगिभवस्थश्चेति प्रथमममयसयोगिभवस्थ', तस्य केवलज्ञानमित्यर्थः । एवमप्रथमः=द्वितीयादिः समयो यस्य सोऽप्रथमसमय, शेषं प्राग्वत् । अथवेत्यादि । चरमः=अन्त्यः समयो यस्य सयोग्यस्याया', स तथा, शेषं प्राग्वत् । एवमचरमः=चरमादन्यः समयो यस्य सोऽचरमसमय', पश्चानुपूर्व्यां चरमादारभ्य सर्वे एव आकेवलप्राप्तेरचरमा इति । शेषं प्राग्वत् ॥

मूलम्—से कि त अजोगिभवत्थकेवलनाणं ? । अजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पणत्त । त जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च, अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च ।

ज्ञान है । तथा जिस केवलज्ञान के उत्पन्न होने में द्वितीयादि समय हो गये हो वह अप्रथमसमय-सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान है । अथवा इस तरह से भी केवलज्ञान के दो भेद होते हैं—चरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान एवं अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान । सयोगी-अवस्था के अन्त्यसमय का जो केवलज्ञान है वह चरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान है । इससे विपरीत, अर्थात् पश्चानुपूर्वी की अपेक्षा सयोगी अवस्था के चरमसमय से लेकर जितने समय केवलज्ञान की प्राप्ति पर्यन्त हो गये हैं वे सब अचरमसमय हैं । उन समयों का केवलज्ञान अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान कहलाता है ॥

प्रथमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान छे तथा जे केवलज्ञान उत्पन्न थवामा जे वगेरे समय लाया होय ते अप्रथमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान छे अथवा केवलज्ञानना आ प्रमाणे पणु जे लेह पडे छे-अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान अने अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान सयोगी अवस्थाना अत्य समयनु जे केवलज्ञान छे ते अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान छे तेथी उलटु ओटले के पश्चानुपूर्वीनी अपेक्षाजे सयोगी अवस्थाना अचरम समयथी लहने केवलज्ञाननी प्राप्ति सुधी जेटला समयो थर्गया होय ते जथा अचरम समयो छे ते समयोनु केवलज्ञान अचरमसमय-सयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान कहैवाय छे

मूलम्—से किं तं अणतरसिद्धकेवलनाणं ? । अणंतरसिद्ध-
केवलनाण पन्नरसविहं पणत्तं । त जहा—तित्थसिद्धा १, अति-
त्थसिद्धा २, तित्थयरसिद्धा ३, अतित्थयरसिद्धा ४, सयवुद्धसिद्धा
५, पत्तेयवुद्धसिद्धा ६, बुद्धवोहियासिद्धा ७, इत्थिलिगसिद्धा ८,
पुरिसलिगसिद्धा ९, नपुंसकलिगसिद्धा १०, सलिगसिद्धा ११,
अन्नलिगसिद्धा १२, गिहिलिगसिद्धा १३, एगसिद्धा १४, अणे-
गसिद्धा १५, से त अणतरसिद्धकेवलनाणं ॥ सू० २१ ॥

छाया—अथ किं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ?, अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान पञ्च
दशविध प्रज्ञम् । तद् यथा—तीर्थसिद्धाः १, अतीर्थसिद्धाः २, तीर्थकरसिद्धाः ३,
अतीर्थकरसिद्धाः ४, स्वयवुद्धसिद्धाः ५, प्रत्येकबुद्धसिद्धाः ६, बुद्धवोधितसिद्धाः ७,
स्त्रीलिङ्गसिद्धाः ८, पुरुषलिङ्गसिद्धाः ९, नपुंसकलिङ्गसिद्धाः १०, स्वलिङ्गसिद्धाः
११, अन्यलिङ्गसिद्धाः १२, गृहिलिङ्गसिद्धाः १३, एकसिद्धाः १४, अनेकसिद्धाः १५,
तदेतदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ॥ सू० २१ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त अणतरसिद्धकेवलनाणं?’ इति । अथ किं तद्
अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ? । पूर्वनिर्दिष्टस्य अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानस्य किं स्वरूपमिति
प्रश्नः । उत्तरमाह—‘अणतरसिद्धकेवलनाण ’ इत्यादि । अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम्
न विद्यतेऽन्तर=व्यनधानम् अर्थात्—समयेन येषां तेऽनन्तराः ते च ते सिद्धाश्चानन्तर-
सिद्धाः=सिद्धत्वप्राप्ताः प्रथमसमयेवर्तमानाः सिद्धाअनन्तरसिद्धा इत्यर्थः । तेषां
केवलज्ञान पञ्चदशविध प्रज्ञम्, अनन्तरसिद्धाः पञ्चदशविधा भवन्ति, अतस्तेषां

ज्ञान । सिद्ध का शैलेणी अवस्था के चरमसमय मे प्राप्त सिद्धत्व अवस्था
का जो केवलज्ञान है वह सिद्ध-केवलज्ञान है । यह अनन्तर और परम्पर
के भेद से दो प्रकार का है ॥ सू० २० ॥

‘से किं त अणतरसिद्ध-केवलनाण’ ? इत्यादि ।

प्रश्न—अनन्तरसिद्ध-केवलज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर—अनन्तरसिद्ध
केवलज्ञान पन्द्रह प्रकार का है । वे प्रकार ये हैं—१ तीर्थसिद्ध, २ अतीर्थ-

छे ते सिद्ध-केवलज्ञान छे ते अनन्तर अने परम्परना लेहथी जे प्रकारनु
छे ॥ सू० २० ॥

“ से किं त अणतर-सिद्ध-केवलनाण ? ” इत्यादि

प्रश्न—अनन्तर-सिद्ध-केवलज्ञाननु शु स्वरूप छे ? उत्तर—अनन्तर-सिद्ध
केवलज्ञान पन्द्रह प्रकारनु छे ते आ प्रमाणे छे—(१) तीर्थसिद्ध, (२) अतीर्थ-

मूलम्—से किं तं सिद्धकेवलनाणं ? । सिद्धकेवलनाणं द्विविहं पण्णत्तं । त जहा—अणतरसिद्धकेवलनाणं च, परंपरासिद्धकेवलनाणं च ॥ सू० २० ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानम् ? । सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रपत्तम् । तद् यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च, परम्परसिद्धकेवलज्ञानं च ॥ सू० २० ॥

टीका—शिष्य पृच्छति—‘से किं तं सिद्धकेवलनाणं’ इति । अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानमिति । उत्तरमाह—सिद्धकेवलज्ञानं—मिदस्य—शैलेश्यस्याचरमसमय-प्राप्तसिद्धत्वस्य केवलज्ञानं, द्विविधं प्रपत्तम् । तद् यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च, परंपरसिद्धकेवलज्ञानं च ॥ सू० २० ॥

हो गये हैं उनके केवलज्ञान को अप्रथमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान कहते हैं । अथवा चरम अचरम के भेद से यह फिर दो प्रकार का है—१ मोक्ष पहुँचने के अन्तिम समय का जो केवलज्ञान है चरमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान है, और २ जो मोक्ष पहुँचने के अन्तिम समय के पहले पश्चानुपूर्वी से शैलेशी अवस्था की प्राप्ति के समय तक का जो केवलज्ञान है वह अचरमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान है इस प्रकार अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान की तथा भवस्थकेवलज्ञान की प्ररूपणा हुई ॥ सू० १९ ॥

‘से किं तं सिद्धकेवलनाणं’ इत्यादि ।

प्रश्न—सिद्ध-केवलज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर—सिद्ध-केवलज्ञान दो प्रकार का है । १ अनन्तरसिद्ध-केवलज्ञान और २ परम्परसिद्ध-केवल

अवस्था प्राप्त करवाना जे वगेरे समयो लाग्या छाय तेमना केवलज्ञानने अप्रथम-समय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान उडे छे अथवा चरम-अचरमना लेदधी वणी ते प्रकारनु छे—(१) मोक्ष पहुँचवाना अतिम समयनु जे केवलज्ञान छे ते चरम समय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान छे, अने (२) जे मोक्ष पहुँचवाना अतिम समयना पहुँचा पश्चानुपूर्वींशी शैलेशी अवस्थानी प्राप्तिना समय सुधीनु जे केवल-छे ते अचरमसमय-अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञान छे आ प्रमाणे अयोगि-भवस्थ-केवलज्ञाननी तथा भवस्थ केवलज्ञाननी प्ररूपणा थर्ध ॥ सू. १६ ॥

“से किं तं सिद्धकेवलनाणं” इत्यादि

प्रश्न—सिद्ध-केवलज्ञाननु शु स्वरूप छे ? उत्तर—सिद्ध-केवलज्ञान जे प्रकारनु छे (१) अनन्तर-सिद्ध-केवलज्ञान अने (२) परम्पर-सिद्ध-केवलज्ञान सिद्धनु शैलेशी अवस्थाना चरम समयमा प्राप्त सिद्धत्व अवस्थानु जे केवलज्ञान

अतीर्थसिद्धाः=तीर्थस्याभावोऽतीर्थ, तीर्थस्याभावश्च-अनुत्पत्तिरूपः, अपा
न्तराले व्यवच्छेदो वा, तस्मिन् ये सिद्धास्तेऽतीर्थसिद्धाः । तत्र मरुदेव्यादयोऽतीर्थ-
सिद्धा उच्यन्ते, तदा तीर्थानुत्पत्तेः । तथा तीर्थस्य व्यवच्छेदश्चन्द्रप्रभस्वामि-सुवि-
धिस्वाम्यपान्तराले, तत्र ये जातिस्मरणादिना मोक्षमार्गं प्राप्य सिद्धास्तेतीर्थव्यव-
च्छेदसिद्धा अतीर्थसिद्धा उच्यन्ते २ । तीर्थकरसिद्धाः-तीर्थकरा एव ३ । अतीर्थ-
करसिद्धा अन्ये सामान्यकेवलिनः ४ । स्वयबुद्धसिद्धाः-ये स्वयम्=आत्मनैव
बुद्धास्तत्र ज्ञातवन्तः । परोपदेशं विना सम्यग्बोधवोधिप्राप्त्या मिथ्यात्वनिद्रापग-
मेन सम्यग्बोध प्राप्तास्ते स्वयंबुद्धाः, तथापिधाः सन्तो ये सिद्धास्ते स्वयंबुद्ध-

कर होते हैं । यह प्रवचनरूप तीर्थ निराधार नहीं होता है । इसके
आधार-या तो गणधर होते हैं या चतुर्विध सद्य होता है । इसतीर्थ के
प्रवृत्त होने पर, अर्थात् तीर्थकर के शासनकाल के चालू रहने पर जो
सिद्ध होते हैं-निर्वाणपद पाते हैं-वे तीर्थसिद्ध हैं । जैसे वृषभसेन गण-
धर आदि ? ।

तीर्थ का अभाव-अनुत्पत्ति अथवा अन्तरालकाल में तीर्थ का
व्यवच्छेद अतीर्थ है । इस अतीर्थ में जो सिद्ध हुए हैं वे अतीर्थसिद्ध
हैं, जैसे मरुदेवी आदि । इनके समय तीर्थ की उत्पत्ति नहीं थी । तथा
तीर्थ का व्यवच्छेद चन्द्रप्रभस्वामी एवं सुविधि स्वामी के अन्तराल में
हुआ था । ऐसे समय में जो जातिस्मरण आदि के द्वारा मोक्षमार्ग को
प्राप्तकर सिद्ध हुए हैं वे तीर्थव्यवच्छेदसिद्ध अतीर्थसिद्ध कहे गये हैं २ ।
तीर्थकरसिद्ध तीर्थकर ही हैं ३ । सामान्यकेवली अतीर्थकरसिद्ध हैं ४ ।
जो स्वयं ही तत्त्वों के ज्ञाता बने हैं, अर्थात् पर के उपदेश विना ही

करे। डोय छे आ प्रवचनरूप तीर्थ निराधार डोतु नहीं तेना आधार डोते।
गणधर डोय छे के चतुर्विध सद्य डोय छे आ तीर्थ प्रवृत्त थता, अटके के
तीर्थ करेना शासनकाल आलु रहेता जे सिद्धो थाय छे-निर्वाणपद पाभे छे
तेओ तीर्थसिद्ध छे-जेवा के वृषभसेन गणधर वगेरे (१) तीर्थने अभाव-अनु-
त्पत्ति अथवा पयगाणाना जणमा तीर्थने व्यवच्छेद अतीर्थ छे आ अतीर्थमा
जे सिद्ध थया तेओ अतीर्थसिद्ध छे, जेवा के मरुदेवी वगेरे तेभना समयमा
तीर्थनी उत्पत्ति थर्न हुती तथा तीर्थने व्यवच्छेद चन्द्रप्रभस्वामी अने सुविधि
स्वामीना पयगाणाना समयमा थयो हुतो जेवा समयमा जेओ जातिस्मरण
वगेरे द्वारा मोक्षमार्गने प्राप्त करीने सिद्ध थया छे, तेभने तीर्थव्यवच्छेदसिद्ध
अतीर्थसिद्ध कडेवाय छे (२) तीर्थ करसिद्ध तीर्थ कर जे छे (३) सामान्य केवली
अतीर्थ करसिद्ध छे (४) जेओ जते जे तत्त्वोना जणकार थन्या छे, अटके के

કેવલજ્ઞાનં પञ्चदशविधं भवतीति भावः । के ते पञ्चदश भेदाः ? इत्याह—‘ त जहा ’ इत्यादि । तद् यथा—‘ तीर्थसिद्धाः ’ इत्यादि । तत्र तीर्थसिद्धाः—यदाश्रित्य जीवा अनन्तससारसागर तरन्ति तत् तीर्थम्, तच्च यथावस्थितसकलजीवाणीयादिपदार्थ-सार्थप्ररूपक चतुर्विंशदतिशयसमन्वितपरमगुरुतीर्थकरमणीत प्रयत्नम्, एतच्च निराधार न भवतीति गणधरा या चतुर्विंशसर्गो वा तदाधारो वेदितव्यः । ततश्च तस्मिन् तीर्थे—तीर्थपरशासने प्रवृत्ते सति ये सिद्धाः=निर्धृताः=निर्माण प्राप्तास्ते तीर्थसिद्धाः, यथा वृषभसेनगणधरादयः १ ।

સિદ્ધ, ૩ તીર્થકરસિદ્ધ, ૪ અતીર્થકરસિદ્ધ, ૫ સ્વયંબુદ્ધસિદ્ધ, ૬ પ્રત્યેક-બુદ્ધસિદ્ધ, ૭ બુદ્ધબોધિતસિદ્ધ, ૮ સ્ત્રીલિંગસિદ્ધ, ૯ પુરુષલિંગસિદ્ધ, ૧૦ નપુસ-કલિંગસિદ્ધ, ૧૧ સ્વલિંગસિદ્ધ, ૧૨ અન્યલિંગસિદ્ધ, ૧૩ ગૃહલિંગસિદ્ધ, ૧૪ એકસિદ્ધ, ૧૫ અનેકસિદ્ધ, યદ અનન્તરસિદ્ધ કેવલજ્ઞાન છે ।

માર્વાર્થ—સિદ્ધત્વ કો પ્રાપ્ત હુઆ સિદ્ધ આત્મા પ્રથમ સમય મેં જય તક વર્તમાન છે વહ અનન્તરસિદ્ધ છે । સિદ્ધત્વ પદ પ્રાપ્ત આત્મા એક સમય કે ખીતર ૨ હી સિદ્ધ બન જાતા છે ંક સમય કા ખી યદા અન્તર-વ્યવધાન નહીં પડતા છે । ઇસ અનન્તરસિદ્ધ આત્મા કા જો કેવલજ્ઞાન છે વહ અનન્તરસિદ્ધ—કેવલજ્ઞાન છે । યદ પન્દ્રહ પ્રકાર કા વતલાયા ગયા છે । વે પન્દ્રહ ભેદ વે છે—જિસકા આશ્રય કર જીવ અનન્ત સસાર કો પાર કર દેતે છે વહ તીર્થ છે । યદ તીર્થ યથાવસ્થિત સકલ જીવાદિક પદાર્થોં કે યથાર્થ સ્વરૂપ કા પ્રરૂપક જો પ્રવચન છે તત્સ્વરૂપ માના ગયા । ઇસ પ્રવચન કે પ્રણેતા ૩૪ ચૌતીસ અતિશયોં સે વિરાજમાન પરમગુરુ તીર્થ-

સિદ્ધ, (૩) તીર્થકરસિદ્ધ, (૪) અતીર્થકર-સિદ્ધ, (૫) સ્વયંબુદ્ધસિદ્ધ, (૬) પ્રત્યેકબુદ્ધસિદ્ધ, (૭) બુદ્ધબોધિતસિદ્ધ, (૮) સ્ત્રીલિંગસિદ્ધ, (૯) પુરુષલિંગસિદ્ધ, (૧૦) નપુસકલિંગસિદ્ધ, (૧૧) સ્વલિંગસિદ્ધ, (૧૨) અન્યલિંગસિદ્ધ, (૧૩) ગૃહલિંગસિદ્ધ, (૧૪) એકસિદ્ધ, (૧૫) અનેકસિદ્ધ આ અનન્તર સિદ્ધ કેવલજ્ઞાનનુ સ્વરૂપ છે

માર્વાર્થ—સિદ્ધત્વ પામેલ સિદ્ધ આત્મા પ્રથમ સમયમા જ્યા સુધી વર્ત માન છે તે અનન્તરસિદ્ધ છે સિદ્ધત્વ પદ પામેલ આત્મા એક સમયની અદર જ સિદ્ધ બની જાય છે એક સમયનુ પણ ત્યા અન્તર-વ્યવધાન પડતુ નથી આ અનન્તર સિદ્ધ આત્માનુ જે કેવલજ્ઞાન છે તે અનન્તરસિદ્ધ—કેવલજ્ઞાન છે એ પદર પ્રકારનુ બતાવ્યુ છે તે પદર ભેદ આ પ્રમાણે છે—જેનો આશ્રય લઈને જીવ અનત સસારને પાર કરી નાખે છે તે તીર્થ છે આ તીર્થ યથાવસ્થિત સઘળા જીવા દિક પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપનુ પ્રરૂપક જે પ્રવચન છે તત્સ્વરૂપ માનેલ છે આ પ્રવચનના પ્રણેતા ૩૪ ચૌત્રીસ અતિશયોથી વિરાજમાન પરમગુરુ તીર્થ-

करकण्डवादीना प्रत्येकबुद्धानां बोधिर्नाशकप्रभादिज्ञानसापेक्षा । प्रत्येकबुद्धाश्च बाह्यनिमित्तमपेक्ष्य बुद्धाः सन्तो नियमतः प्रत्येकमेव विहरन्ति, न तु गच्छवासिन इव संहताः । उपधिः स्वयंबुद्धाना द्वादशविध एव पात्रादिः । प्रत्येकबुद्धाना तु द्विधा-जघन्यतउत्कर्षतश्च, तत्र जघन्यतो द्विविधः, उत्कर्षतो नवविधः प्रावरणवर्जः ६ ।

तथा—स्वयंबुद्धाना पूर्वाधीत श्रुतं भवति वा, न वा भवति । यदि भवति, ततो लिङ्ग देवता वा प्रयच्छति, गुरुसनिधौ गत्वा वा प्रतिपद्यते । यदि चैकाकी विहर्तुं समर्थः, इच्छाऽपि तादृशी भवेत्, तदा एकाकी विहरति, अन्यथा गच्छानासेऽवतिष्ठते ।

होती है । करकण्ड आदि प्रत्येकबुद्धों के जीवनचरित्र में इस बात का कथन मिलता है । प्रत्येकबुद्ध बाह्य निमित्त के प्रभाव से बुद्ध होकर नियमतः प्रत्येक-अकेले २ ही विहार करते हैं-गच्छवासी साधुओं की तरह समुदायरूप में नहीं । स्वयंबुद्धों की उपधि पात्र आदि बाहर प्रकार की है । प्रत्येकबुद्धों की दो प्रकार की उपधि होती है-प्रथम जघन्य की अपेक्षा और दूसरी उत्कृष्ट की अपेक्षा । जघन्य की अपेक्षा इनके दो प्रकार की उपधि होती है, तथा उत्कर्ष की अपेक्षा नौ प्रकार की । इसमें प्रावरण छूट जाता है ।

तथा स्वयंबुद्धों में जो श्रुत होता है वह पूर्व में अधीत किया हुआ भी होता है अथवा नहीं भी होता है । पूर्वाधीतश्रुत इनमें जब होता है तब इनके लिये वेप की प्राप्ति या तो देवता से होती है या वे स्वयं गुरु के निकट जाकर उनसे प्राप्त कर लिया करते हैं । इनमें यदि अकेले

आदि प्रत्येकबुद्धोना लवनचरित्रमा आ वातनो उत्तरेण भवे छे प्रत्येकबुद्ध बाह्यनिमित्तना प्रभावधी बुद्ध यधने नियमत प्रत्येकमे कला न विहार करे छे- गच्छवासी साधुओनी जेभ समुदायमा नही स्वयंबुद्धोनी उपधि पात्र आदि भार प्रदान्ती छे प्रत्येक बुद्धोनी उपधि जे प्रदान्ती होय छे-पडेली जघन्यनी अपेक्षाओ अने जील उत्कृष्टनी अपेक्षाओ जघन्यनी अपेक्षाओ तेभने जे प्रकारनी उपधि होय छे, तथा उत्कृष्टनी अपेक्षाओ नव प्रकारनी तेभा प्रावरण छूटी जय छे

तथा स्वयंबुद्धोभा जे श्रुत होय छे ते पूर्वे अधीत करेल पणु होय छे अथवा नहीं पणु होतु तेभनाभा न्यारे पूर्वाधीत श्रुत थाय छे त्यारे तेभने भाटे वेपनी प्राप्ति कातो देव वडे थाय छे के ते जते न शुरुनी पासे जधने तेभनी पासधी जेजवी दे छे तेभनाभा ओकला विहार करवानी जे शक्ति होय

સિદ્ધાઃ ૫ । પ્રત્યેકયુગ્મસિદ્ધાઃ—યે તુ એક કિંચિદનિત્યત્વાદિમાત્રનામરણ
વૃષભાદિકં પ્રતીત્ય યુદ્ધાઃ—પરમાર્થ જ્ઞાતવન્તસ્તે પ્રત્યેકયુદ્ધાઃ । યે પ્રત્યેકયુદ્ધાઃ
સિદ્ધાસ્તે પ્રત્યેકયુગ્મસિદ્ધાઃ ૬ ।

નતુ સ્વયંયુદ્ધ—પ્રત્યેકયુદ્ધાના કો ભેદઃ ?, ઉચ્યતે—ગો યુપાધિશ્રુતલિઙ્ગ-
કૃતો ભેદસ્તત્રાસ્તિ । તથાદિ—સ્વયયુદ્ધાના ગાહ્યનિમિત્ત વિનેય નિજજ્ઞાતિસ્મરણા-
દિના ગોધિરૂપજાયતે, પ્રત્યેકયુદ્ધાના તુ ગાહ્યનિમિત્તાપેક્ષયા ગોધિઃ, શ્રૂયતે ચ-
જિન્હેં સમ્યક્ વરવોધિ કી પ્રાપ્તિ હૃદૈ હૈ, ઓર ઇસીકે પ્રભાવ સે જિન્હેંને
મિથ્યાત્વરૂપ નિદ્રા કા અભાગ ક્રિયા હૈ, ઓર ઇસી કારણ જિન્હેં સમ્યક્
વોધ પ્રાપ્ત હો ચુકા હૈ વે સ્વયયુદ્ધ હૈ । ઇસ સ્વયયુદ્ધ અવસ્થા મેં
જો સિદ્ધ હુએ હૈ વે સ્વયયુદ્ધસિદ્ધ હૈ ૫ । જો કિસી અનિત્યત્વાદિ ભાવના
કે કારણભૂત વાહ્ય કિસી વસ્તુ—વૃષભ આદિ કા નિમિત્ત પાકર યુદ્ધ હો
જાતે હૈ—પરમાર્થ કે જ્ઞાતા ઘન જાતા હૈ વે પ્રત્યેકયુદ્ધ હૈ । જો પ્રત્યેક
યુદ્ધ હોકર સિદ્ધ બન જાતે હૈ વે પ્રત્યેકયુદ્ધસિદ્ધ હૈ ૬ ।

શકા—સ્વયયુદ્ધ ઓર પ્રત્યેકયુદ્ધ મેં કયા ભેદ હૈ ?

ઉત્તર—વોધિ, ઉપધિ, શ્રુત એવ લિઙ્ગ કી અપેક્ષા ભેદ રહતા હૈ ।
જો સ્વયયુદ્ધ હુઆ કરતે હૈં ઉન્હેં વાહ્ય નિમિત્ત કે વિના હી વોધિ પ્રાપ્ત
હો જાતી હૈ । ઇસમેં અન્તરગ નિમિત્ત જાતિસ્મરણ આદિ પડતે હૈ । પ્રત્યેક
યુદ્ધોં મેં એસા નહીં હોતા હૈ । ઉન્હેં વોધિ કી પ્રાપ્તિ વાહ્યનિમિત્તાધીન

બીજાના ઉપદેશ વિના જ જેમને સમ્યક્વરવોધિની પ્રાપ્તિ થઈ છે, અને તેનાજ
પ્રભાવથી જેમણે મિથ્યાત્વરૂપ નિદ્રાને નાશ કર્યો છે, અને એજ કારણે જેમને
સમ્યક્ વોધ પ્રાપ્ત થઈ ગયો છે તેઓ સ્વયયુદ્ધ છે આ સ્વયયુદ્ધ અવસ્થામાં
જેઓ સિદ્ધ થયા છે તેઓ સ્વયયુદ્ધ સિદ્ધ છે (૫) જે કોઈ અનિત્યત્વાદિ ભાવનાના
કારણભૂત કોઈ વસ્તુ—વૃષભ આદિનું નિમિત્ત મેળવીને યુદ્ધ થઈ ગય છે—પર-
માર્થના બહુકાર બની ગય છે, તેઓ પ્રત્યેકયુદ્ધ છે જેઓ પ્રત્યેકયુદ્ધ થઈને
સિદ્ધ થાય છે તેઓ પ્રત્યેકયુદ્ધ સિદ્ધ છે (૬)

શકા—સ્વયયુદ્ધ અને પ્રત્યેકયુદ્ધ વચ્ચે શો તફાવત છે ?

ઉત્તર—બોધિ, ઉપધિ, શ્રુત અને લિંગની અપેક્ષાએ ભેદ રહે
છે જેઓ સ્વયયુદ્ધ થાય છે તેમને બાહ્ય નિમિત્ત વિના જ બોધિ પ્રાપ્ત થઈ
ગય છે તેમાં અન્તરગ નિમિત્ત જાતિસ્મરણ આદિ હોય છે “પ્રત્યેક યુદ્ધોમા”
એવું થતું નથી—તેમને બોધિની પ્રાપ્તિ બાહ્ય નિમિત્તાધીન હોય છે કરકરૂ

स्वलङ्गसिद्धाः=स्वलङ्ग-जिनशासनवेपः सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणादिरूपस्तत्र
-तस्मिन् वेपे ये सिद्धास्ते स्वलिङ्गसिद्धाः ११। अन्यलिङ्गसिद्धाः-परिव्राज-
कादिलिङ्गे सिद्धाः १२। गृहलिङ्गसिद्धाः १३। एकसिद्धा-एकस्मिन् समये
एके एव सिद्धाः। एवभूता ये सिद्धास्ते एकसिद्धाः १४। अनेकसिद्धाः
एकस्मिन् समये अनेके सिध्यन्ति स्म, ते अनेकसिद्धाः १५। उत्कर्षतोऽष्टोत्तर-
शतसरयका सिद्धा भवन्ति। उक्तञ्च—

वत्तीसा अडयाला, सट्टी वावत्तरी य वोद्धव्वा ।

चुलमीई छन्नउई, दुरहिय अट्टुत्तर सयं च ॥ १ ॥ १५ ॥

सिद्ध वे हैं कि जिनके पास जिनशासनकथित मुनिवेप होता है, जैसे-
सदोरकमुखवस्त्रिका का होना, रजोहरण आदि का होना। इस वेप
में रहकर जो सिद्धि प्राप्त करते हैं ११। परिव्राजक आदि के वेप में
रहकर जो सिद्ध होते हैं वे अन्यलिङ्गसिद्ध कहलाते हैं १२। गृही के
लिङ्ग में-गृहस्थ की पर्याय में-रहकर ही सिद्ध जो होते हैं वे गृहलिङ्गसिद्ध
हैं १३। तथा एक समय में जो एक ही जो सिद्ध होते हैं वे एकसिद्ध कहे
गये हैं १४। एक समय में अनेक सिद्ध होते हैं वे अनेक सिद्ध हैं १५।
अनेकसिद्ध उत्कृष्ट की अपेक्षा एक समय में एक सौ आठ (१०८)
होते हैं, कहा भी है—

“वत्तीसा अडयाला, सट्टी वावत्तरी य वोद्धव्वा ।

चुलसीई छन्नउई, दुरहिय अट्टुत्तर सयं च” ॥१॥

जेमनी पासे जिन शासन उचित मुनिवेप होय छे—जेभके द्वारा साथेनी
मुडपत्ति, रणेडरण आदिनु डोपु-तेमने स्वलिङ्ग सिद्ध कहे छे आ वेपमा
रहीने जे सिद्धि प्राप्ति करे छे ते स्वलिङ्ग सिद्ध छे ॥११॥ परिव्राजक आदिना
वेपमा रहीने जे सिद्ध थाय छे ते अन्यलिङ्ग सिद्ध कहेवाय छे ॥१२॥ गृहीना
लिङ्गमा-गृहस्थनी पर्यायमा-रहीने जे जे सिद्ध थाय छे तेज्यो गृहीलिङ्ग सिद्ध
छे ॥१३॥ तथा जेठ समयमा जे जेकसिद्ध थाय छे तेज्यो जेकसिद्ध कहेवाय
छे ॥१४॥ जेक समयमा अनेक सिद्ध थाय छे तेज्यो अनेकसिद्ध छे ॥१५॥
अनेकसिद्ध उत्कृष्टनी अपेक्षाज्ये जेक समयमा जेकसो आठ (१०८) थाय छे
कहेल पद्य छे—

“वत्तीसा अडयाला, सट्टी वावत्तरी य वोद्धव्वा ।

चुलसीई छन्नउई, दुरहिय अट्टुत्तर सयं च” ॥१॥

યદિ પૂર્વાધીત શ્રુત ન ભવતિ, તર્હિ નિયમાદ્ ઘુરમનિર્ધો ગત્વા લિન્ઙ પ્રતિ પદ્યતે, ગચ્છ વાડય ન મુચ્ચતિ ।

પ્રત્યેકબુદ્ધાના તુ પૂર્વાધીત શ્રુત નિયમતો ભવતિ, તન્ચ જઘન્યતઃ પ્કાદ શાઙ્ગાનિ, ઉત્કર્પતઃ કિંચિન્ન્યૂનાનિ દગ પૂર્વાણિ । તેમ્યો દેવતા લિન્ઙ પ્રયચ્છતિ । લિન્ઙવર્જિતા વા મ્દાચિદ્ ભવન્તિ ૬ ।

બુદ્ધબોધિતસિદ્ધાઃ-બુદ્ધા=આચાર્યદયસ્તૃપોધિતાઃ સન્તો યે સિદ્ધાન્તે તથા ૭ । સ્ત્રીલિન્ઙસિદ્ધાઃ ૮ । પુલિન્ઙસિદ્ધાઃ ૯ । નપુસકલિન્ઙસિદ્ધાઃ ૧૦ । તથા હોકર વિહાર કરને કી શક્તિ હોતી હૈ, ઓર ઇચ્છા ધી યદિ ઇસી પ્રકાર કી ઇનકી હો તો યે અકેલે હી વિહાર કરતે હૈ, નહીં તો ગચ્છાવાસ મૈ રહતે હૈ । ઇનકા શ્રુત જગ પૂર્વાધીત નહીં હોતા હૈ તો યે નિયમત' ગુરુ કે નિકટ જાકર સાધુવેપ અગીકાર કરતે હૈ, ઓર ગચ્છ કો નહીં ઓઢતે હૈ ।

પ્રત્યેકબુદ્ધો કા શ્રુત નિયમ સે પૂર્વાધીત હોતા હૈ । જઘન્ય સે યે ગ્યારહ અગ પર્યન્ત પદે દુપ હોતે હૈ, તથા ઉત્કૃષ્ટરૂપ સે કુઠ્ર કમ દશ પૂર્વતક । ઇનકે લિયે સાધુવેપ દેવતા પ્રદાન કરતે હૈ । અથવા યે કમી ૨ સાધુવેપ સે વર્જિત ધી રહતે હૈ । ૬ ।

બુદ્ધબોધિતસિદ્ધ વે હૈ કિ જિન્હે આચાર્ય આદિ બોધ દેતે હૈ । ઓર ડનસે પ્રતિબોધિત હોકર હી જો સિદ્ધ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરતે હૈ ૭ । સ્ત્રીલિન્ઙ સે, પુલિન્ઙ સે તથા નપુસકલિન્ઙ સે યુક્ત હોકર જો સિદ્ધ હોતે હૈ વે સ્ત્રીલિન્ઙ પુલિન્ઙ ઓર નપુસકલિન્ઙ, સિદ્ધ ૮-૯-૧૦ કહલાતે હૈ । સ્વલિન્ઙ-

અને તેમની એવી ઈચ્છા પણ હોય તો તેઓ એકલા જ વિહાર કરે છે, નહીં તો ગચ્છવાસમા રહે છે જે તેમનું શ્રુત પૂર્વાધીત ન હોય તો તેઓ નિયમત ગુરુની પાસે જઈને સાધુ-વેપ સ્વીકારે છે અને ગચ્છને છોડતા નથી

પ્રત્યેકબુદ્ધોતુ શ્રુત નિયમથી જ પૂર્વાધીત હોય છે જઘન્યથી તેઓ અગિયાર અગ સુધી ભણેલ હોય છે અને ઉત્કૃષ્ટરૂપથી દશ પૂર્વાધી કઈક એાણુ ભણેલ હોય છે તેમને માટે દેવ સાધુવેપ આપે છે અથવા તેઓ કથારેક ઠ્યારેક સાધુવેપથી વર્જિત પણ રહે છે ॥૬॥

જેમને આચાર્ય વગેરે બોધ આપે છે, અને તેમના દ્વારા પ્રતિબોધિત થઈને જેઓ સિદ્ધ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે, તેઓ બુદ્ધબોધિત સિદ્ધ છે ॥૭॥

નારીભતિ, નરભતિ અને નાન્યેતર ભતિથી યુક્ત થઈને જે સિદ્ધ થાય છે તેઓ સ્ત્રીલિન્ઙ, પુલિન્ઙ અને નપુસકલિન્ઙ સિદ્ધ કહેવાય છે ॥૮-૯-૧૦॥

तथा—त्रिसप्तत्यादय उत्कर्षतश्चतुरशीतिपर्यन्ता निरन्तर सि-यन्तश्चतुरः
समयान् यावत् प्राप्यन्ते । तत ऊर्ध्वमन्तरम् । तथा—पञ्चाशीत्यादय उत्कर्षतः
पण्णवृत्तिपर्यन्ता निरन्तर सिध्यन्तस्त्रीन् समयान् यावदाप्यन्ते । परतोऽयमन्तरम् ।

तथा—सप्तनवत्यादय उत्कर्षतो द्व्युत्तरशतपर्यन्ता निरन्तरं सिध्यन्तो द्वौ
समयौ यावदाप्यन्ते । परतो नियमादन्तरम् ।

तथा—त्र्युत्तरशतादय उत्कर्षतोऽष्टोत्तरशतपर्यान्ताः सि-यन्तो नियमादेकमेव
समयं यावदाप्यन्ते, न तु द्विवाद्रिसमयानिति १५ ।

उनचास ४९ से लेकर उत्कृष्ट साठ जीवों तक निरन्तर सिद्ध होते हैं ।
ये छह समय तक सिद्ध होते हैं । इसके बाद अन्तर अवश्य हो जाता
है । तथा इकसठ ६१ से लेकर उत्कृष्ट त्तर ७२ जीव निरन्तर सिद्ध
होते हैं, ये पाच समय तक सिद्ध होते हैं, बाद में नियम से अन्तर
पड़ जाता है । तथा तेत्तर ७३ से लगाकर उत्कृष्ट चौरासी ८४ जीव
निरन्तर सिद्ध होते हैं, ये ^{चार} पाच समयों तक पाये जाते हैं । इसके बाद
नियमतः अन्तर हो जाता है । पचामी ८५ से लेकर उत्कृष्ट त्रयानवे
तक जीव निरन्तर सिद्ध होते हैं । ये तीन समय तक पाये जाते हैं ।
इसके बाद अन्तर हो जाता है । मन्तानवे ९७ से लेकर उत्कृष्ट एकसौ
दो १०२ तक निरन्तर सिद्ध होते हैं, ये दो समयों तक पाये जाते हैं ।
इसके बाद अन्तर पड़जाता है । एकसौ तीन १०३ से लेकर उत्कृष्ट
एकसौ आठ १०८ तक सिद्ध होते हैं, ये एक ही समय तक पाये जाते
हैं, दो तीन आदि समय तक नहीं । इस प्रकार इस गाथा का अर्थ है ।

पचास (४९) थी लक्ष्मिने उत्कृष्ट साठ जीवो सुधी निरन्तर सिद्ध होय छे ओ छ
समय सुधी सिद्ध थाय छे, त्तर गार अतर अपस्थ पडी नय छे तथा ओकसठ
(६१)वी लक्ष्मिने उत्कृष्ट गौतेर (७२) एव निरन्तर सिद्ध थाय छे तेओ पाच
समय सुधी सिद्ध थाय छे, पछी नियमथी अतर पडी नय छे तथा तोतेर
(७३) थी लक्ष्मिने उत्कृष्ट चौरासी (८४) निरन्तर सिद्ध थाय छे ओ पाच समयो
सुधी प्राप्त थाय छे त्तर गार नियमथी अतर पडी नय छे पचाशी (८५)
थी लक्ष्मिने उत्कृष्ट छानु (६६) सुधी एव निरन्तर सिद्ध थाय छे ते त्रय
समय सुधी प्राप्त थाय छे त्तर गार अतर पडी नय छे सत्ताएथी (९७)
लक्ष्मिने उत्कृष्ट ओकसो ओ (१०२) सुधी निरन्तर सिद्ध थाय छे ते ओ समयो
सुधी प्राप्त थाय छे त्तर गार अतर पडी नय छे ओकसो त्रय (१०३) वी
लक्ष्मिने उत्कृष्ट ओकसो आठ (१०८) सुधी सिद्ध थाय छे, ओ ओक ए समय
सुधी प्राप्त थाय छे, ओ त्रय आदि समय सुधी नही आ प्रमाणे आ
गाथाने अर्थ छे

છાયા—દ્વાત્રિંશત્ અષ્ટચત્વારિંશત્, પષ્ટિ' દ્વામસતિથ શોદ્યન્વા ।

ચતુરશીતિઃ પ્ણતિઃ, દ્વયધિકૃ (દ્વયધિયશત) અટોત્તર શત ચ ॥૧॥

વ્યાख्या—પ્રથમસમયે જઘન્યત ઇકો દ્વૌ વા, ઉત્કર્ષતો દ્વાત્રિંશત્ સિધ્યન્તઃ પ્રાપ્યન્તે । દ્વિતીયસમયે જઘન્યત ઇકો દ્વૌ વા, ઉત્કર્ષતો દ્વાત્રિંશત્ । એવ તૃતીય-સમયેઽપિ । એવ ચતુર્થસમયેઽપિ । એવ ચાષ્ટકયેઽપિ સમયે જઘન્યત ઇકો દ્વૌ વા ઉત્કર્ષતો દ્વાત્રિંશત્ । તત્ પરમવચ્ચમન્તરમ્ ।

તથા—ત્રયહિંશદાદય ઉત્કર્ષતોઽષ્ટચત્વારિંશત્પર્યન્તા' નિરન્તર સિધ્યન્તઃ સપ્ત સમયાન્ યાવત્ પ્રાપ્યન્તે । તથાહિ—પ્રથમસમયે જઘન્યતઘયસ્ત્રિંશત્ચતુસ્ત્રિંશદ્ વા, ઉત્કર્ષતોઽષ્ટચત્વારિંશત્ સિધ્યન્તઃ પ્રાપ્યન્તે, ક્ષતિ રીત્યા સપ્તમસમયાત્રધિ ભાવના કાર્યો

તથા—એકોનપચ્ચાદશદાદય ઉત્કર્ષત' પષ્ટિપર્યન્તા નિરન્તર સિધ્યન્ત ષટ્સમ-મયાન્ યાવદવાપ્યન્તે । પરતોઽષ્ટમન્તરમ્ । તથા—એકપષ્ટકાદય ઉત્કર્ષતો દ્વિસ-પ્તિપર્યન્તા નિરન્તર સિધ્યન્તઃ—પચ્ચસમયાન્ યાવદવાપ્યન્તે । તતઃ પરમન્તરમ્ ।

પ્રથમ સમય મેં જઘન્ય સે ઁક યા દો જીવ, તથા ઉત્કૃષ્ટ સે વત્તીસ જીવ સિદ્ધ હોતે હૈ । દ્વિતીય સમય મેં ઁી જઘન્ય સે ઁક યા દો જીવ, તથા ઉત્કૃષ્ટ સે વત્તીસ જીવ સિદ્ધ હોતે હૈ । ઇસી તરહ તૃતીય, ચતુર્થ, પચમ, પષ્ટ, સપ્તમ ઔર અષ્ટમ સમય મેં ઁી જઘન્ય ઔર ઉત્કૃષ્ટ કી અપેક્ષા સિદ્ધ હોનેવાલે જીવોં કા પ્રમાણ જાનના ચાહિયે । ઇસકે બાદ નિયમત. અન્તર હો જાતા હૈ । તથા તેતીસ સે લેકર ઉત્કૃષ્ટ અડતાલીસ પર્યન્ત જીવ નિરન્તર સિદ્ધ હોતે રહતે હૈ, ઔર યે સાત સમય તક સિદ્ધ હોતે હૈ । જૈસે—પ્રથમ સમય મેં જઘન્ય સે તેતીસ અથવા ચોતીસ, ઉત્કર્ષ સે અડતાલીસ સિદ્ધ હોતે હૈ, ઇસ રીતિ સે સાત સમય પર્યન્ત ભાવના કર લેની ચાહિયે । બાદમેં નિયમતઃ અન્તર હો જાતા હૈ । તથા

પ્રથમ સમયમા જઘન્યથી એક કે બે જીવ, તથા ઉત્કૃષ્ટથી બત્રીસ જીવ સિદ્ધ થાય છે ખીજ સમયમા પણ જઘન્યથી એક કે બે જીવ અને ઉત્કૃષ્ટથી બત્રીસ જીવ સિદ્ધ થાય છે એજ પ્રમાણે ત્રીજ, ચોથા, પાચમા, છઠ્ઠા, સાતમા, અને આઠમા સમયમા જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ સિદ્ધ થનાર જીવોનુ પ્રમાણ બધુવુ જોઈએ ત્યાર પછી નિયમથી જ અતર પડી બન્ય છે તથા તેત્રીસથી લઈને ઉત્કૃષ્ટ અડતાલીસ સુધી જીવ નિરન્તર સિદ્ધ થતા રહે છે, અને એ સાત સમય સુધી સિદ્ધ હોય છે જેમકે પ્રથમ સમયમા જઘન્યથી તેત્રીસ અથવા ચોત્રીસ, ઉત્કૃષ્ટથી અડતાલીસ સિદ્ધ હોય છે, આ રીતે સાત સમય સુધી સમજી લેવુ જોઈએ પછી નિયમથી અતર પડી બન્ય છે

तु न्यूनता पक्षस्य, विवादास्पदीभूतेति विशेषणं विना नियतस्त्रीलाभाभावात् ।
यदि तदुपादीयते, तदा तत्प्रतियोगार्थं किंचिदुच्यते—स्त्रियो मुक्त्यर्हाः, मुक्ति-
कारणावैकल्यात्, यथा पुमांसः, यत्र हि यस्य नास्ति सभयस्तत्र तत्कारणवैकल्य,
यथा सिद्धशिलाया शाल्यङ्कुरस्य । इमास्तु मुक्तिकारणवैकल्यरहिताः, तस्मा-
न्मुक्त्यर्हा इति ।

हो सकती है, अतः इस बात को स्पष्ट करने के लिये यदि ऐसा कहा
जाय कि हम उन्हें ही मुक्ति की प्राप्ति निषिद्ध करते हैं जिन्हें आप मुक्ति
प्राप्ति के योग्य गिनते हो, तो इस पर भी हमारा यही कहना है कि
जिन्हें तुम मुक्तिप्राप्ति के योग्य नहीं कहते हो उन्हें ही हम इस प्रकार
से मुक्तिप्राप्ति के योग्य सिद्ध करते हैं—“स्त्रियो मुक्त्यर्हाः, मुक्तिकार-
णावैकल्यात्, यथा पुमांसः” जैसे पुरुषों में मुक्ति के कारणों की अवि-
कलता देखी जाती है उसी प्रकार से स्त्रियों में भी मुक्ति के कारणों की
अविकलता होने से वे भी मुक्तिप्राप्ति के योग्य हैं । जहाँ पर जिसकी
संभवता नहीं होती है वही पर उसके कारणों की विकलता रहती है,
जैसे सिद्धशिला में शाल्यङ्कुर की संभवता नहीं है, अतः वहाँ पर उसके
कारणों की भी विकलता है, परन्तु विवक्षित स्त्रियाँ ऐसी नहीं हैं,
उनमें तो मुक्ति के सब कारणों का सद्भाव है, अतः वे मुक्ति के योग्य

श्रीपद्मिणी ज्ञानी शकती नहीं, तेथी आ वातने स्पष्ट ठरवाने माटे जे जेभ
कडेवाभा आवे के जेभ तेमने न मुक्तिनी प्राप्ति निषिद्ध ठरीजे छीजे जेने
तमे मुक्तिप्राप्तिने योग्य गछे छे, ते जे जाणतभा पणु जेमाइ जेन
कडेवु छे के जेभने तमे मुक्तिप्राप्तिने योग्य ठडेटा नहीं तेमने न जेभे आ
रीते मुक्ति प्राप्त करवाने लायक सिद्ध करीजे छीजे—“स्त्रियो मुक्त्यर्हा,
मुक्तिकारणवैकल्यात् यथा पुमांस” जेभ पुरुषोभा मुक्तिना कारणोनी अवि-
कलता जेवाभा आवे छे तेभ श्रीजोभा पणु मुक्तिना कारणोनी अविकलता
छेवाधी तेजो पणु मुक्ति प्राप्त करवाने योग्य छे जेन जेनी संभवता छेती
नहीं त्याज तेना कारणोनी विकलता रहे छे, जेभ सिद्धशिलाभा शाल्यङ्कुरनी
संभवता छेती नहीं तेथी त्या आगण तेना कारणोनी पणु विकलता छे, पणु
विवक्षित श्रीजो जेवी नहीं, तेमनाभा तो मुक्तिना जथा कारणोनी सद्भाव छे
तेथी तेजो मुक्तिने योग्य छे जे आ विषे करी पणु जेवु न कडेवाय के

स्त्रीमोक्षसमर्थनम्—

इह स्त्रीलिङ्गसिद्धा इति यदुच्यते, तत् केचिन्न मन्यन्ते । एव हि ते प्रलपन्ति—‘स्त्रीणां न मोक्षः, पुरुषेभ्यो हीनत्वात्, नपुंसकादिनात्’ इति ।

अत्र ब्रूमः—सामान्येनात्र धर्मित्तेनोपात्ताः स्त्रियो निमादास्पदीभूता वा ? । आद्यपक्षे पक्षैकदेशसिद्धसाध्यता, असख्यातवर्षाप्युक्तदुःपमादिकालोत्पन्न तिर्यक्ती—देव्य-मव्यादिस्त्रीणा भूयसीनामस्माभिरपि मोक्षामावस्याभिधानात्, द्वितीयं

स्त्रीमोक्षसमर्थनम्—

यहा पर “स्त्रीलिङ्गसिद्धाः” यह जो कहा है इस बात को कई एक नहीं मानते हैं, वे इस प्रकार कहते हैं—‘स्त्रियों को मुक्ति नहीं होती है, कारण कि वे पुरुष की अपेक्षा हीन हैं, जैसे नपुंसक आदि’ । इसपर यह पूछना है कि आप किन स्त्रियों में मोक्ष का अभाव सिद्ध करते हैं ? क्या सामान्य स्त्रियों में, अथवा किन्हीं विशेष स्त्रियों में ? । यदि सामान्य स्त्रियों में मुक्तिप्राप्ति का अभाव आप सिद्ध करते हो तो यह बात हम भी मानते हैं कि असख्यात वर्षकी आयुवाली अकर्म-भूमिज स्त्रियों को, दुष्पमादिकालोत्पन्न तिर्यक्त्रिनियों को, एव देवियों को, तथा अभव्य स्त्रियों को मुक्ति प्राप्त नहीं होती है, अतः पक्षैकदेश में यह हेतु सिद्धसाध्यवाला होने से यदि कहो कि कोई विशिष्ट स्त्रिया मुक्ति प्राप्ति के योग्य नहीं हैं तो यह बात पक्षभूत स्त्रीपद से ज्ञात नहीं

स्त्रीमोक्षसमर्थनम्—

अही आगण “स्त्रीलिङ्गसिद्धा ” आम जे कहेल छे जे वातने डेटलाक मानता नथी, तेज्यो आ प्रमाखे कहे छे—“ स्त्रीज्योने मुक्ति मणती नथी, कारण छे तेज्यो पुरुषो करता हीन छे जेभ नपुंसक आदि ” आ जाणतमा जे पूछ वानु छे के आप कथ स्त्रीज्योने मोक्ष नथी मणतो जेभ सिद्ध करे छे ? शु सामान्य स्त्रीज्योने के कोथ विशिष्ट स्त्रीज्योने ? जे सामान्य स्त्रीज्योने मुक्ति प्राप्त थती नथी जेपु आप सिद्ध करता हो तो जे वात जेभे पक्ष मानिये छीजे के असख्यात वर्षना आयुवाणी अकर्मभूमिज स्त्रीज्योने, दुष्पमादि दावे। त्पन्न तिर्यक्त्रिनियोने जेभे देवीज्योने तथा अव्यव्य स्त्रीज्योने मुक्ति प्राप्त थती नथी तेथी पक्षैकदेशमा आ हेतु सिद्धसाध्यवाणे होवाथी जे आप जेहा के कोथ विशिष्ट स्त्रीज्यो मुक्ति प्राप्त करवाने योग्य नथी तो जे वात पक्षभूत

तत्र यदुच्यते स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति तदयुक्तम्-सम्यग्दर्शनादीनि पुरुषाणा-
मिव स्त्रीणामप्यविकलानि दृश्यन्ते । तथाहि-दृश्यन्ते स्त्रियोऽपि सकलमपि प्रवच-
नार्थं श्रद्धावानाः, जानते च षडावश्यककालिकोत्कालिकादिभेदभिन्नं श्रुतम्,
परिपालयन्ति सप्तदशविधं सयमम्, धारयन्ति च देवासुराणामपि दुर्धरं ब्रह्मचर्यम्,
तप्यन्ते च तपासि मासक्षपणादीनि ततः कथमिव न तासां मोक्षसम्भवं । किं च-
स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति यदुच्यते, तत् किं रत्नत्रयस्य अवशिष्टस्य तत्राभावो वि-
वक्षितः, किं वा प्रकर्षपर्यन्तप्राप्तस्य रत्नत्रयस्य तत्राभावः ? ।

अवश्य हैं ? ३, या स्मरण आदि ज्ञान उनमें नहीं रहता है ? ४, या उनमें
कोई स्त्री महर्दिक नहीं है ? ५, अथवा मायादिक की उनमें प्रकर्षता
पाई जाती है ? ६ । यदि इन छह विकल्पों में से यह विकल्प माना जाय
कि स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव है अतः उनमें पुरुषों की अपेक्षा
हीनता है सो ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं माना जाता है, क्यों कि
सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय पुरुषों की तरह उनमें भी अविकल देखे जाते
हैं । स्त्रियां भी सकल प्रवचन के अर्थ की श्रद्धा करनेवाली, षडावश्यक
कालिक उत्कालिक आदि के भेद से भिन्न श्रुत को जानने वाली, तथा
सत्रह प्रकार के सयम को पालने वाली देखी जाती है । देव और
असुरों द्वारा भी दुर्धर ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत वे पालती हैं । मासक्षपण आदि
विविध प्रकार की तपस्या वे करती हैं, इसलिये उनमें मुक्ति का सम्भव
कैसे नहीं हो सकता है ? । तथा आप जो स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव
कहते हो सो इनमें रत्नत्रय का अभाव कैसे विवक्षित है ? , क्या सामा-

के तेजोमाथी डोई स्त्री महर्दिक नहीं ? (६) अथवा मायादिकनी तेमनामा
अधिकता होय छे ? ने आ छ विकल्पोमाथी आ विकल्प मानी लछये के
स्त्रीजोमा रत्नत्रयने अभाव छे तेथी तेमनामा पुरुषो करता हीनता छे, तो
ज्येभ कहेवु ते युक्ति युक्त मानी शक्य नही कारण के सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय
पुरुषोनी ज्येभ तेमनामा पण्य अविकल नजरे पडे छे स्त्रीजो पण्य सकल
प्रवचनना अर्थनी श्रद्धा करनारी छ आवश्यक कालिक-उत्कालिक आदिना लेदर्थी
श्रुतने लक्षणारी, तथा सत्तर प्रकारना सयमने पाणनारी जेवामा आवे छे
देव अने असुरे पडे पण्य दुर्धर ज्येवु ब्रह्मचर्यव्रत तेजो पाणे छे मासक्षपण्य आदि
विविध प्रकारनी तपस्या तेजो करे छे, तो पछी तेमनामा मुक्तिना संभव केवी
रीते होई शकै नही ? , तथा आप जे स्त्रीजोमा रत्नत्रयने अभाव कहेता हो
ते तेमनामा रत्नत्रयने अभाव केवी रीते कि कि ते तेमनामा रत्नत्रयने अभाव कहेता हो

નવુ સ્ત્રીપુ મુક્તિકારણાનામમદ્વાયાત્ તત્રાય હેતુનાસ્તીત્યમિદ્વોડ્યં હેતુરિતિ ચેદ્ ?
 ઉચ્યતે—ઉક્તહેતોરસિદ્ધત્વં યદસિ, તત્ કિં સ્ત્રીણા પુરુષેભ્યોડપહૃષ્ટત્વેન ૧,
 કિમુત નિર્વાણસ્થાનાઘપ્રસિધ્ધત્વેન ૨, કિં યા મુક્તિસાધકપ્રમાણાભાવેન ૩ ?

તત્ર યદિ તાવત્ પુરુષેભ્યોડપહૃષ્ટત્વેન સ્ત્રીપુ મુક્તિકારણાનામસદ્વાય ઇતિ વદસિ,
 તર્હિ ઇદ્ બ્રહ્મિ—ત્યદક્ત્રીઠત્ પુરુષેભ્યોડપહૃષ્ટત્ સ્ત્રીપુ કિં સમ્યગ્દર્શનાદિરત્નત્રયામા
 વેન ૧, કિં યા વિશિષ્ટસામર્થ્યાભાવેન ૨, કિં યા પુરુષાનભિવન્ત્રત્વેન ૩, કિં યા
 સ્મરણાઘર્કૃત્વેન ૪, કિં યા અમહર્દ્ધિકૃત્વેન ૫, કિમુત માયાદિપ્રકર્યત્ત્વેન ૬,
 ઇતિ ચિક્ષ્ણાઃ ।

હૈં । યદિ ઇસ પર ફિર મી ણેસા હી કહા જાવે કિ મ્ત્રિયોં મેં મુક્તિ કે
 કારણોં કી અસદ્ભાવતા હૈ અતઃ ડનમેં ઇસ હેતુ કે અસદ્ભાવ સે હેતુ મેં
 અસિદ્ધતા આતી હૈ, સો ણેસા કહના મી ઠીક નહોં હૈ, કારણ કિ હમારા
 ઇસ પર ણેસા પૂઠના હૈ કિ આપ જો સ્ત્રિયોં મેં ઇસ હેતુ કી અસિદ્ધતા
 પ્રકટ કર રહે હો સો કિસ કારણ સે ? કયા વે પુરુષોં કી અપેક્ષા હીન
 હૈં ઇસલિયે, અથવા નિર્વાણરૂપ સ્થાન કી અપ્રસિદ્ધિ હૈ ઇસલિયે, યા
 મુક્તિ કે સાધક પ્રમાણ નહી હૈ ઇસલિયે ? । યદિ ણેસા કહા જાય કિ
 સ્ત્રિયા પુરુષોં કી અપેક્ષા હીન હૈ ઇસલિયે ડનમેં મુક્તિ કે કારણોં કા
 સદ્ભાવ નહી હૈ સો પુનઃ ઇસપર હમ યહ પૂછતે હૈ કિ આપ જિન સ્ત્રિયોં
 કો પુરુષોં કી અપેક્ષા હીન વતલાતે હૈ વહ કિસ કારણ સે વતલાતે હૈં ?
 કયા ડનમેં સમ્યગ્દર્શનાદિકરૂપ જો રત્નત્રય હૈ ડસકા અભાવ રહતા હૈ ? ૧,
 યા ડનમે વિશિષ્ટ સામર્થ્ય કા અભાવ હૈ ? ૨, અથવા વે પુરુષોં દ્વારા

શ્રીઓમા મુક્તિના કારણોની અસદ્ભાવતા છે તેથી તેમનામા તે હેતુના અસદ્-
 ભાવથી હેતુમા અસિદ્ધતા આવે છે તો એમ કહેવુ તે પણ સાચુ નથી, કારણ
 કે અમારે એ બાબતમા એવુ પૂછવાનુ છે કે આપ શ્રીઓમા આ હેતુની જે
 અસિદ્ધતા પ્રગટ કરી રહ્યા છો તે કયા કારણે ? શુ તેઓ પુરુષો કરતા હીન છે
 તેથી, અથવા નિર્વાણરૂપ સ્થાનની અપ્રસિદ્ધિ છે તેથી, કે મુક્તિના સાધક પ્રમાણ
 નથી તેથી ? જે એમ કહેવામા આવે કે શ્રીઓ પુરુષો કરતા હીન છે તેથી
 તેમનામા મુક્તિના કારણોને સદ્ભાવ નથી તો ફરી તે વિષે અમારે એ પ્રશ્ન
 છે કે આપ જે શ્રીઓને પુરુષો કરતા હીન બતાવો છો તે શા કારણે બતાવો છો ?
 (૧) શુ તેમનામા સમ્યગ્દર્શનાદિક રૂપ જે રત્નત્રય છે તેનો અભાવ રહેલ
 છે ? કે (૨) શુ તેમનામા વિશિષ્ટ સમર્થ્યનો અભાવ છે ? (૩) અથવા તેઓ
 પુરુષો દ્વારા અવધ છે ? કે સ્મરણ આદિ જ્ઞાન તેમનામા રહેતુ નથી ? (૫)

तत्र यदुच्यते स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति तदयुक्तम्-सम्यग्दर्शनादीनि पुरुषाणा-
मिव स्त्रीणामप्यविकलानि दृश्यन्ते । तथाहि-दृश्यन्ते स्त्रियोऽपि सकलमपि प्रवच-
नार्थं श्रद्धधानाः, जानते च पडावश्यककालिकोत्कालिकादिभेदभिन्न श्रुतम्,
परिपालयन्ति सप्तदशविध सयमम्, धारयन्ति च देवासुराणामपि दुर्धर ब्रह्मचर्यम्,
तप्यन्ते च तपासि मासक्षपणादीनि ततः कथमिव न तासा मोक्षसम्भव । किं च-
स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति यदुच्यते, तत् किं रत्नत्रयस्य अवशिष्टस्य तत्राभायो वि-
वक्षितः, किं वा प्रकर्षपर्यन्तभाप्तस्य रत्नत्रयस्य तत्राभावः ?

अवद्य हैं ? ३, या स्मरण आदि ज्ञान उनमें नहीं रहता है ? ४, या उनमें
कोई स्त्री महर्द्धिक नहीं है ? ५, अथवा मायादिक की उनमें प्रकर्षता
पाई जाती है ? ६ । यदि इन छह विकल्पों में से यह विकल्प माना जाय
कि स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव है अतः उनमें पुरुषों की अपेक्षा
हीनता है सो ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं माना जाता है, क्यों कि
सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय पुरुषों की तरह उनमें भी अविकल देखे जाते
हैं । स्त्रियां भी सकल प्रवचन के अर्थ की श्रद्धा करनेवाली, पडावश्यक
कालिक उत्कालिक आदि के भेद से भिन्न श्रुत को जानने वाली, तथा
सत्रह प्रकार के सयम को पालने वाली देखी जाती है । देव और
असुरों द्वारा भी दुर्धर ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत वे पालती हैं । मासक्षपण आदि
विविध प्रकार की तपस्या वे करती है, इसलिये उनमें मुक्ति का सम्भव
कैसे नहीं हो सकता है ? । तथा आप जो स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव
कहते हो सो इनमें रत्नत्रय का अभाव कैसे विवक्षित है ?, क्या सामा-

के तेजोभायी कोई स्त्री महर्द्धिक नहीं ? (६) अथवा मायादिकनी तेमनामा
अधिकता होय छे ? ने आ छ विकल्पोभायी आ विकल्प मानी लधये के
स्त्रीजोभा रत्नत्रयने अभाव छे तेथी तेमनामा पुरुषो करता हीनता छे, तो
येम कडेवु ते युजित युक्त मानी शक्य नहीं करवु के सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय
पुरुषोनी नेम तेमनामा पणु अविकल नकरे पडे छे स्त्रीजो पणु सकण
प्रवचनना अर्थनी श्रद्धा करनारी छ आवश्यक कालिक-उत्कालिक आदिना भेदथी
श्रुतने लक्षणारी, तथा सत्तर प्रकारना सयमने पाणनारी नेवामा आवे छे
देव अने असुरे वडे पणु दुर्धर जेवु ब्रह्मचर्यव्रत तेजो पाणे छे मासक्षपण आदि
विविध प्रकारनी तपस्या तेजो करे छे, तो पछी तेमनामा मुक्तिने सलव देवी
रीते होई शके नहीं ?, तथा आप ने स्त्रीजोभा रत्नत्रयने अभाव उहेता हो
तो तेमनामा रत्नत्रयने अभाव देवी रीते विवक्षित छे, शु सामान्यरूप रत्न

ननु स्त्रीषु मुक्तिकारणानामसद्भावत्वात् तत्राय हेतुर्नास्तीत्यमिद्वोऽयं हेतुरिति चेत्
 उच्यते—उक्तहेतोरसिद्धत्वं यदसि, तत् किं स्त्रीणां पुरुषभ्योऽपहृष्टत्वेन १,
 किमुत निर्वाणस्थानाद्यप्रसिद्धत्वेन २, किं वा मुक्तिसाधकप्रमाणाभावेन ३ ?

तत्र यदि तावत् पुरुषभ्योऽपहृष्टत्वेन स्त्रीषु मुक्तिकारणानामसद्भाव इति वदसि,
 तर्हि इदं ब्रूहि—त्वदङ्गीकृत पुरुषभ्योऽपहृष्टत्वं स्त्रीषु किं सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयामा
 वेन १, किं वा विशिष्टसामर्थ्याभावेन २, किं वा पुराणभिनन्द्यत्वेन ३, किं वा
 स्मरणाद्यर्कत्वेन ४, किं वा अमर्हद्विकल्पेन ५, किमुत मायादिप्रकरणात्त्वेन ६,
 इति विकल्पाः ।

हैं। यदि इस पर फिर भी ऐसा ही कहा जाये कि स्त्रियों में मुक्ति के
 कारणों की असद्भावता है अतः उनमें इस हेतु के असद्भाव से हेतु में
 असिद्धता आती है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि हमारा
 इस पर ऐसा पूटना है कि आप जो स्त्रियों में इस हेतु की असिद्धता
 प्रकट कर रहे हो सो किस कारण से? क्या वे पुरुषों की अपेक्षा हीन
 हैं इसलिये, अथवा निर्वाणरूप स्थान की अप्रसिद्धि है इसलिये, या
 मुक्ति के साधक प्रमाण नहीं है इसलिये? । यदि ऐसा कहा जाय कि
 स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा हीन है इसलिये उनमें मुक्ति के कारणों का
 सद्भाव नहीं है सो पुनः इसपर हम यह पूछते हैं कि आप जिन स्त्रियों
 को पुरुषों की अपेक्षा हीन बतलाते हैं वह किस कारण से बतलाते हैं?,
 क्या उनमें सम्यग्दर्शनादिकरूप जो रत्नत्रय है उसका अभाव रहता है? १,
 या उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है? २, अथवा वे पुरुषों द्वारा

स्त्रीभ्यां मुक्तिना कारणानां असद्भावता चे तेथी तेभनामा ते हेतुना असद्-
 भावथी हेतुमा असिद्धता आवे चे तो अम कहेवु ते पणु सायु नथी, कारण
 के अभावे अणभतमा अणु पूछवानु छे के आप स्त्रीभ्यां आ हेतुनी ने
 असिद्धता प्रकट करी रह्या छे ते कथा कारणे? शु तेभो पुरुषो करता हीन छे
 तेथी, अथवा निर्वाणरूप स्थाननी अप्रसिद्धि छे तेथी, के मुक्तिना साधक प्रमाण
 नथी तेथी? ने अम बडेवामा आवे के स्त्रीभ्यां पुरुषो करता हीन छे तेथी
 तेभनामा मुक्तिना कारणानां असद्भाव नथी तो करी ते विषे अभावे अे प्रश्न
 छे के आप ने स्त्रीभ्यां पुरुषो करता हीन भतावे छे ते सा कारणे भतावे छे?
 (१) शु तेभनामा सम्यग्दर्शनादिक रूप ने रत्नत्रय छे तेना अभाव रहेल
 छे? के (२) शु तेभनामा विशिष्ट सामर्थ्याभावे अभाव छे? (३) अथवा तेभो
 पुरुषो द्वारा अवध छे? के स्मरणे आदि ज्ञान तेभनामा रहेतु नथी? (५)

तत्र यदुच्यते स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति तदयुक्तम्-सम्यग्दर्शनादीनि पुरुषाणा-
मिव स्त्रीणामप्यविकलानि दृश्यन्ते । तथाहि-दृश्य-ते स्त्रियोऽपि सकलमपि प्रवच-
नार्थं श्रद्धाणाः, जानते च षडावश्यककालिकोत्कालिकादिभेदभिन्न श्रुतम्,
परिपालयन्ति सप्तदशविधं सयमम्, धारयन्ति च देवासुराणामपि दुर्धर ब्रह्मचर्यम्,
तप्यन्ते च तपासि मासक्षपणादीनि ततः कथमिव न तासा मोक्षसम्भवं । किं च-
स्त्रीषु रत्नत्रयाभाव इति यदुच्यते, तत् किं रत्नत्रयस्य अवशिष्टस्य तत्राभावो वि-
वक्षितः, किं वा प्रकर्षपर्यन्तप्राप्तस्य रत्नत्रयस्य तत्राभावः ? ।

अवद्य हैं ? ३, या स्मरण आदि ज्ञान उनमें नहीं रहता है ? ४, या उनमें
कोई स्त्री महर्दिक नहीं है ? ५, अथवा मायादिक की उनमें प्रकर्षता
पाई जाती है ? ६ । यदि इन छह विकल्पों में से यह विकल्प माना जाय
कि स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव है अतः उनमें पुरुषों की अपेक्षा
हीनता है सो ऐसा कहना युक्तियुक्त नहीं माना जाता है, क्यों कि
सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय पुरुषों की तरह उनमें भी अविकल देखे जाते
हैं । स्त्रिया भी सकल प्रवचन के अर्थ की श्रद्धा करनेवाली, षडावश्यक
कालिक उत्कालिक आदि के भेद से भिन्न श्रुत को जानने वाली, तथा
सत्रह प्रकार के सयम को पालने वाली देखी जाती है । देव और
असुरों द्वारा भी दुर्धर ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत वे पालती हैं । मासक्षपण आदि
विविध प्रकार की तपस्या वे करती हैं, इसलिये उनमें मुक्ति का सम्भव
कैसे नहीं हो सकता है ? । तथा आप जो स्त्रियों में रत्नत्रय का अभाव
कहते हो सो इनमें रत्नत्रय का अभाव कैसे विवक्षित है ? , क्या सामा-

के तेजोमाधी कोई स्त्री महर्दिक नहीं ? (६) अथवा मायादिकनी तेजनामा
अधिकता होय छे ? जे आ छ विकल्पोमाधी आ विकल्प मानी लछये के
स्त्रीजोमा रत्नत्रयनो अभाव छे तेथी तेजनामा पुरुषो करता हीनता छे, तो
जेम कहेवु ते युक्ति युक्त मानी शक्य नही करण के सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय
पुरुषोनी जेम तेजनामा पण्य अविकल नकरे पडे छे स्त्रीजो पण्य सकण
प्रवचनना अर्थनी श्रद्धा करनारी छ आवश्यक कालिक-उत्कालिक आदिना लेदथी
श्रुतने लक्षणारी, तथा सत्तर प्रकारना सयमने पाणनारी जेवामा आवे छे
देव अने असुरे वडे पण्य दुर्धर जेवु ब्रह्मचर्यव्रत तेजो पाणे छे मासक्षपण्य आदि
विविध प्रकारनी तपस्या तेजो करे छे, तो पछी तेजनामा मुक्तिने सलव केवी
रीते कोई शके नही ? , तथा आप जे स्त्रीजोमा रत्नत्रयनो अभाव कहेता हो
नेना अभाव केवी रीते विवक्षित छे, शु सामान्यरूप रत्न

ननु स्त्रीषु मुक्तिकारणानामसद्भावत्वात् तत्राय हेतुनां स्त्रीत्वमिद्वोऽयं हेतुगिति चेत्? उच्यते—उक्तहेतोरसिद्धत्वं यदसि, तत् किं स्त्रीणां पुरुषभ्योऽपहृष्टत्वेन १, किमुत निर्वाणस्थानाद्यप्रसिद्धत्वेन २, किं वा मुक्तिसाधकप्रमाणभावेन ३ ?

तत्र यदि तावत् पुरुषभ्योऽपहृष्टत्वेन स्त्रीषु मुक्तिकारणानामसद्भाव इति वदसि, तर्हि इदं हृदि-त्वदङ्गीकृतं पुरुषभ्योऽपहृष्टत्वं स्त्रीषु किं सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयमावेन १, किं वा विशिष्टसामर्थ्याभावेन २, किं वा पुरुषानभिपन्नत्वेन ३, किं वा स्मरणाय कर्तृत्वेन ४, किं वा अमर्हद्विकृतत्वेन ५, किमुत मायादिप्रकर्षनत्वेन ६, इति विकल्पाः ।

हैं। यदि इस पर फिर भी ऐसा ही कहा जाये कि स्त्रियों में मुक्ति के कारणों की असद्भावता है अतः उनमें इस हेतु के असद्भाव से हेतु में असिद्धता आती है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि हमारा इस पर ऐसा पूछना है कि आप जो स्त्रियों में इस हेतु की असिद्धता प्रकट कर रहे हो सो किस कारण से? क्या वे पुरुषों की अपेक्षा हीन हैं इसलिये, अथवा निर्वाणरूप स्थान की अप्रसिद्धि है इसलिये, या मुक्ति के साधक प्रमाण नहीं है इसलिये?। यदि ऐसा कहा जाय कि स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा हीन हैं इसलिये उनमें मुक्ति के कारणों का सद्भाव नहीं है सो पुनः इसपर हम यह पूछते हैं कि आप जिन स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हीन बतलाते हैं वह किस कारण से बतलाते हैं?, क्या उनमें सम्यग्दर्शनादिकरूप जो रत्नत्रय है उसका अभाव रहता है? १, या उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है? २, अथवा वे पुरुषों द्वारा

श्रीश्रीमा मुक्तिना कारणेणानी असद्भावता छे तेथी तेमनामा ते डेतुना असद्भावता डेतुमा असिद्धता आवे छे तो अम कडेवु ते पणु साथु नथी, कारणु के अमारे अे आमतमा अेवु पूछवानु छे के आप श्रीश्रीमा आ डेतुनी के असिद्धता प्रकट करी रखा छे ते कथा कारणु? शु तेअो पुरुषो करता डीन छे तेथी, अथवा निर्वाणरूप स्थाननी अप्रसिद्धि छे तेथी, के मुक्तिना साधक प्रमाणु नथी तेथी? ने अेम उडेवामा आवे के श्रीश्री पुरुषो करता डीन छे तेथी तेमनामा मुक्तिना कारणेणो सदभाव नथी तो इरी ते विषे अमारे अे प्रश्न छे के आप के श्रीश्रीने पुरुषो करता डीन अतावो छे ते शा कारणु अतावो छे? (१) शु तेमनामा सम्यग्दर्शनादिक रूप के रत्नत्रय छे तेनो अभाव रहेल छे? के (२) शु तेमनामा विशिष्ट समर्थनो अभाव छे? (३) अथवा तेअो पुरुषो द्वारा अवध छे? के अमरणु आदि ज्ञान तेमनामा रहेतु नथी? (५)

तत्र यदि परिभोगमात्रेण चैव चारित्र्याभावहेतुरिति मन्यसे तर्हि वद तानद्, अयं चैवपरिभोगः स्त्रीणां किं तत्परित्यागाशक्तत्वेन १, किं वा गुरुपदिष्टत्वेन २, चारित्र्याभावहेतुर्विवक्षितः ? ।

तत्र यदि स्त्रीणां चैवपरित्यागाशक्तत्वेन चैवपरिभोगश्चारित्र्याभावहेतुरिति स्वीकरोषि, नैतद् युक्तम्, यतः-यद्यपि 'प्राणेभ्यो नापर प्रिय प्राणिनाम्' तथापि-प्राणा नपि त्यजन्त्यः काश्चित् स्त्रियः प्रदृश्यन्ते किं पुनश्चल परित्यक्तुमशक्तास्ता इतिसभावना

अत्र गुरुपदिष्टत्वेन चैवपरिभोगः स्त्रीणाम्, इत्यङ्गीकरोषि, तर्हि कथय तावत् -किं चैवस्य चारित्र्योपकारित्वेन गुरुमिस्तासां चैवपरिभोगोपदेशः कृतः किं वा अन्यथा ? ।

हेतुता होती है ? अथवा परिग्रहरूप होने से होती है ? यदि परिभोग मात्र से चैव (वस्त्र) चारित्र्याभाव का हेतु होता है, ऐसा माना जाय तो कहो यह चैव का परिभोग स्त्रियों के उसके परित्याग करने की अशक्ति होने से है ? अथवा गुरुपदिष्ट होने से है ? यदि इसमें ऐसा कहा जाय कि स्त्रियों में वस्त्र का त्याग करने की अशक्ति होने से चैवपरिभोग होता है, और यह चैवपरिभोग उनमें चारित्र्याभाव का हेतुहोता है, सो ऐसा कहना उचित नहीं है, कारण कि प्राणियों को सब से अधिक प्यारे प्राण होते हैं, जब स्त्रियां प्राणों को भी छोड़ देती देखी जाती हैं तो फिर उनके लिये वस्त्रों को छोड़ने की बात कौन कठिन है ? इसलिये यह बात तो मानी नहीं जा सकती है कि वे वस्त्र के छोड़ने में असमर्थ हैं । यदि यह कहा जाय कि गुरु से उपदिष्ट होकर वे वस्त्र का परिभोग करती हैं तो इसपर भी हम पूछते हैं कि

अथवा परिग्रहरूप होवार्थी होय छे ? नो परिभोगमात्रार्थी चैव चारित्र्याभावना हेतु होय छे, जेवु मानी लछजे तो कहे गु आ चैवना परिभोग स्त्रीओनी तेना परित्याग करवानी अशक्ति होवानी लीये छे ? अथवा गुरुपदिष्ट होवार्थी छे ? नो ते विधे जेवु उडेवामा आवे के स्त्रीओमा वस्त्रना त्याग करवानी अशक्ति होवार्थी चैव परिभोग थाय छे अने ते चैवपरिभोग तेमनामा चारित्र्याभावना हेतु होय छे, तो जेम कहेवु उचित नथी, कारण के प्राणीओने सोथी वधारे वडावो प्राणु होय छे, नो स्त्रीओ प्राणु पणु अविदान देती नजरे पडे छे तो पछी तेमने माटे वस्त्रो छोडवानी बात शी गीते कठिन कही शकय ? तेथी जे बात तो मानी शकय तेम नथी के तेओ वस्त्रना त्याग करवानी असमर्थ छे नो जेम कहेवामा आवे के गुरुपडे उपदिष्ट थनि तेओ वस्त्रना परि

तत्र यदि अग्रशिष्टस्य रत्नत्रयस्य स्त्रीषु अभाव इत्युच्यते भवता, तर्हि कथय, अयं रत्नत्रयाभावचारित्रागमभावात् किम् ? उत मानदर्शनयोर्द्वयोरभावात् ?, किं वा सम्यग्दर्शनादीना प्रयाणामभावात् ? ।

अथ—चारित्रागमभवेन रत्नत्रयाभाव इति पक्षस्य निराकरणम्—तत्र—यदि चारित्रस्या सभवाद् रत्नत्रयाभावो विवक्षितस्तर्हि सोऽपि चारित्रासंभव किं मचेच्छ्वेन ? १, किं वा स्त्रीत्वस्यचारित्र विरोधित्वेन ? २, किं वा मन्दसत्प्रतया ? ३,

॥ चेलस्य चारित्राभावेतुल्यनिराकरणम्—

तत्र यदि सचेलत्वेन चारित्रासंभव इत्युच्यते भवता, तर्हि तावत् कथय त्व दक्षीकृतमिदं चेलस्पापि चारित्राभाव हेतुत्व किं चेलस्य परिभोगमात्रेण भवति ? १, किं वा चेलस्य परिग्रहस्त्वत्वेन ? २, ।

न्यरूप रत्नत्रय का अथवा प्रकर्षपर्यन्तप्राप्त रत्नत्रय का ? । यदि प्रथम पक्ष स्वीकार किया जाय तो हम इस पर पुनः यह पूछते हैं कि सामान्यतया रत्नत्रय का अभाव चारित्र के अभाव से कहते हो ? अथवा ज्ञानदर्शन, दोनों के अभाव से कहते हो ? अथवा सम्यग्दर्शनादिक तीनों के अभाव से कहते हो ? ।

यदि कहो कि चारित्र के असंभव से रत्नत्रय का अभाव है, ऐसा हम कहते हैं सो इसपर पुनः यह विकल्प होता है कि उनमें चारित्र की असंभवता क्या सब्र होने से आती है ? या स्त्रीपने के चारित्र विरोधी होने से आती है ? अथवा मन्दसामर्थ्य होने की वजह से आती है ? । यदि कहा जाय कि वे सब्रसहित रहती है इसलिये उनमें चारित्र की असंभवता है सो क्या सब्र के परिभोगमात्र से चारित्राभाव के प्रति

त्रयने के प्रकर्षपर्यन्तप्राप्त रत्नत्रयने ? ने पड़ेले पक्ष स्वीकारवाभा आवे तो अमे ते भागतभा अे प्रश्न पूछीअे छीअे के सामान्यरीते रत्नत्रयने अभाव अरित्रना अभावथी कडे छे अथवा ज्ञानदर्शन अे अन्नेना अभावथी कडे छे ? अथवा सम्यग्दर्शनादिके त्रयेना अभावथी नडे छे ?

ने आप अेम कडेता डे के अरित्रना असंभवथी रत्नत्रयने अभाव छे अेबु अमे कडीअे छीअे तो ते भागतभा वणा अे विकल्प डोय छे के तेमनाभा अरित्रनी असंभवता शु सब्र डोवाथी आवे छे ? के श्रीपणु अरित्रनु विशेषो डोवाथी आवे छे ? अथवा मंद सामर्थ्य डोवाने करखे आवे छे ? ने अेम कडेवाभा आवे के तेअे वस्त्रसहित रहे छे तेथी तेमनाभा अरित्रनी असंभवता छे तो शु वस्त्रना परिभोगमात्रथी अरित्राभाव तरके डेतुला छे ?

अथ 'अन्यथा' इति पक्षस्तत्रसमतः?, नायमपि युक्तिसहः, यतः 'अन्यथा' इत्यनेन पक्षद्वयमिहोपस्थित भवति । किं-चारित्र्य प्रति चैलमुदासीन, बाधकं वा? इति । अयमर्थः-उदासीन नाम नास्ति चारित्र्यस्य साधकं, नास्ति वा तस्य बाधकमिति । किं वा-चारित्र्यस्य बाधकमेवेति । चारित्र्य प्रति औदासीन्य वा बाधकत्व वा उभयमपि नात्र वर्तते । पुरुषकृताभिभवरक्षकतया चैल स्त्रीणां चारित्र्योपकारकमस्तीत्यनन्तरमेवोक्तत्वादिति ।

अतः जो जिसका उपकारी होता है वह उसके अभाव का हेतु नहीं होता है, जैसे मृत्पिंडादिक घटके अभाव का हेतु नहीं होता है । उक्त रीति से चैल भी चारित्र्य का उपकारी होता है अतः वह उसके अभाव का हेतु नहीं होता है । यदि "अन्यथा" यह पक्ष स्वीकार किया जाय तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि "अन्यथा" इस पद से दो पक्ष उपस्थित होते हैं-क्या चारित्र्य के प्रति चैल उदासीन है? अथवा बाधक है? यदि उदासीन है तो उदासीन का तात्पर्य होता है कि वह न तो चारित्र्य का साधक होता है और न उसका बाधक ही होता है, अतः यह पक्ष मान्य नहीं है । यदि कहो कि वह चारित्र्य का बाधक है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि जब वह चारित्र्य के प्रति उपकारी है तो फिर न उदासीन ही हो सकता है, न बाधक ही हो सकता है अतः पुरुषकृत पराभव से रक्षा करनेवाला होने के कारण चैल चारित्र्य का उपकारी है, ऐसा ही मानना चाहिये । अब जो कहा जाय कि चैल

पुत्र कारण होता नहीं, जेभ मृत्पिंडादिक घडाना अभावतु कारण होता नहीं कहेल रीत प्रभावे चैल पक्ष चारित्र्यतु उपकारी होय छे तेथी ते तेना अभावतु कारण होता नथी जे "अन्यथा" आ पक्ष स्वीकार करवाभा आवे तो ते पक्ष भराभर नहीं, कारण के 'अन्यथा' पदथी जे पक्ष रणु थाय छे-गु चारित्र्य प्रत्ये चैल उदासीन छे? अथवा बाधक छे?, जे उदासीन होय तो उदासीनने लावार्थे जे छे के ते चारित्र्यतु साधक पक्ष थतु नहीं अने तेतु बाधक पक्ष होता नहीं तेथी जे पक्ष स्वीकारी शक्य नही

जे जेभ कहे के ते चारित्र्यतु बाधक छे तो जेभ कहेतु ते पक्ष भराभर नहीं, कारण के जे ते चारित्र्यने भाटे उपकारी छे ते पक्ष उदासीन पक्ष होथ शकतु नहीं अने बाधक पक्ष होथ शकतु नहीं तेथी पुरुषकृत पराभवार्थी रक्षा करवावे होवने कारणे चैल चारित्र्यने भाटे उपकारी न छे, जेभ मानतु जेभजे छे जे जेभ कहेवाभा आवे के चैल परिभ्रक्ष्य होवार्थी चारित्र्यना

यदि चारित्र्योपकारित्येन तदुपदेशस्तर्हि किं न पुरुषाणामपि तदुपदेशो गुरुभिः क्रियते । अपैता अवला ण्य, यतो ग्लादपि पुरुषैः परिभुज्यन्ते इति चैल विना तासा चारित्र्यभङ्गसम्भव, न तु पुरुषाणामिति न तेषा तदुपदेशः ।

एव सति न चैलाचारित्र्याभावः, चैत्र्य चारित्र्योपकारितात् । तथाहि—यद् यस्योपकारि, न तत् तस्याभावहेतुः, यथा घटस्य मृत्पिण्डादि, उपकारि चोक्तरीत्या चारित्र्यस्य चैलम्, तस्मान्चैल न चारित्र्याभाव हेतुरिति ।

गुरुओंने उन्हें चारित्र्य में उपकारी जानकर वस्त्र के परिभोग का आदेश किया था और कोई रूप से जानकर वस्त्र के परिभोग करने का उपदेश दिया है ? । यदि यह कहा जाय कि गुरुओं ने वस्त्र पहिरने का उपदेश उन्हें इसलिये दिया है कि वह चारित्र्य का उपकारी है तो फिर उन्होंने वह उपदेश पुरुषों को क्यों नहीं दिया । यदि कहा जाय कि ये अवला है, यदि नग्न रहें तो पुरुष उनपर ग्लात्कार कर सकते हैं इसलिये चैल के विना चारित्र्यभंग होने की उनमें सम्भावना रहती है अतः गुरुओंने उन्हें चारित्र्य का उपकारी जानकर चैलपरिभोग की आज्ञा दी है । पुरुषों को नहीं दी । तो फिर इस प्रकार की मान्यता से यह बात तुम्हारे ही मुख से सिद्ध हो जाती है कि वस्त्र का उपभोग चारित्र्य का उपकारी है, इसके सद्भाव से चारित्र्य का अभाव सिद्ध नहीं होता है । “यद् यस्योपकारि न तत् तस्याभावहेतुः, यथा घटस्य मृत्पिण्डादि, उपकारि च उक्तरीत्या चारित्र्यस्य चैलम् तस्मान्न तत् चारित्र्याभावहेतुः”

लोग उर्रे छे तो ते विषे पणु अमे पूछीये छीये के गुरुओंये चारित्र्यमा उपकारी गणुनि तेमने वस्त्रना परिभोगने आदेश आप्थे के केछ छील करणु वस्त्रने परिभोग करवाने उपदेश आप्थे छे ? ने अमे कडेवामा आवे के गुरुओंये तेमने वस्त्र पहरेवाने उपदेश अे करणु आप्थे छे के ते चारित्र्य माटे उपकारी छे, तो पछी तेमणु ते उपदेश पुत्रोने केम न छीये ? ने अमे कडेवामा आवे के तेओ अणण छे, तेथी ने नग्न रहे तो पुत्रो तेमना उपर णणात्कार करी शके छे तेथी थैव विना तेमना चारित्र्यल ग थवानी सलावना रहे छे तेथी गुरुओंये तेमने चारित्र्यने उपकारी गणुनि थैलपरिभोगनी आज्ञा आप्थी छे पुत्रोने आप्थी नथी तो पछी आ प्रजरनी मान्यताथी तमारे मुजे न् अे वान सिद्ध थछ लय छे के वस्त्रने उपभोग चारित्र्यने माटे उपकारी छे, तेना सद्भावथी चारित्र्यने अलाव सिद्ध थतो नथी “यद् यस्योपकारि न तत् तस्याभावहेतुः, यथा घटस्य मृत्पिण्डादि, उपकारि च उक्तरीत्या चारित्र्यस्य चैलम्, तस्मान्न तत् चारित्र्याभावहेतुः” ने नेन उपकारी डोय छे ते तेना अला

अथ 'अन्यथा' र्ज्ञात पक्षस्तवसमतः?, नायमपि युक्तिसहः, यतः 'अन्यथा' इत्यनेन पक्षद्वयमिहोपस्थित भवति । किं-चारित्र प्रति चैलमुदासीन, बाधक वा ? इति । अयमर्थः-उदासीनं नाम नास्ति चारित्रस्य साधक, नास्ति वा तस्य बाधकमिति । किं वा-चारित्रस्य बाधकमेवेति । चारित्र प्रति औदासीन्य वा बाधकत्व वा उभयमपि नात्र वर्तते । पुरुषकृताभिभवरक्षकतया चैल स्त्रीणां चारित्रोपकारकमस्तीत्यनन्तरमेवोक्तत्वादिति ।

अतः जो जिसका उपकारी होता है वह उसके अभाव का हेतु नहीं होता है, जैसे मूर्तिपिंडादिक घटके अभाव का हेतु नहीं होता है । उक्त रीति से चैल भी चारित्र का उपकारी होता है अतः वह उसके अभाव का हेतु नहीं होता है । यदि "अन्यथा" यह पक्ष स्वीकार किया जाय तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि "अन्यथा" इस पद से दो पक्ष उपस्थित होते हैं-क्या चारित्र के प्रति चैल उदासीन है ? अथवा बाधक है ? यदि उदासीन है तो उदासीन का तात्पर्य होता है कि वह न तो चारित्र का साधक होता है और न उमका बाधक ही होता है, अतः यह पक्ष मान्य नहीं है । यदि कहो कि वह चारित्र का बाधक है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि जब वह चारित्र के प्रति उपकारी है तो फिर न उदासीन ही हो सकता है, न बाधक ही हो सकता है अतः पुरुषकृत पराभव से रक्षा करनेवाला होने के कारण चैल चारित्र का उपकारी है, ऐसा ही मानना चाहिये । अब जो कहा जाय कि चैल

पुनः कारणं डोतु नथी, जेम मूर्तिपिंडादिके घडाना अभावपुनः कारणं डोतु नथी कडेव रीत प्रभावे चैल पणु चारित्रपुनः उपकारी डोय छे तेथी ते तेना अभावपुनः कारणं डोतु नथी जे "अन्यथा" आ पक्ष स्वीकार करवामा आवे तो ते पणु भराभर नथी, कारण के 'अन्यथा' पदथी जे पक्ष रणु थाय छे-शु चारित्र प्रत्ये चैल उदासीन छे? अथवा बाधक छे?, जे उदासीन डोय तो उदासीनने लोवाथी जे छे के ते चारित्रपुनः साधक पणु थतु नथी अने तेनु बाधक पणु डोतु नथी तेथी जे पक्ष स्वीकारी शकय नडा

जे जेम कडे के ते चारित्रपुनः बाधक छे तो जेम कडेपु ते पणु भराभर नथी, कारण के जे ते चारित्रने भाटे उपकारी छे ते पणु उदासीन पणु डोय शकतु नथी अने बाधक पणु डोय शकतु नथी तेथी पुरुषकृत परालवथी रक्षा करवामे डोवामे कारणे चैल चारित्रने भाटे उपकारी न छे, जेम मानपु जेथजे डवे जे जेम कडेवामा आवे के चैल परिग्रहणु डोवथी चारित्रना

नापि चैत्यस्य परिग्रहरूपत्वेन चारित्र्याभावहेतुन्य सभगति, यतो 'मुञ्जा परिगृहो वुत्तो' इत्यादिप्रचनेन 'मूर्च्छा परिग्रहः' इति दशवैकालिके षष्ठेऽध्यायने निर्णीतम् । मूर्च्छारहितो भरतचक्रवर्ती सान्तःपुरोऽप्यादर्शकृद्देऽतिष्ठमानो निष्परिग्रहो गीयते । अन्यथा तस्य केवलोत्पत्तिर्नस्यात् । यदि च चैलस्य परिग्रहरूपत्व स्यात्, तदा तथाविधरोगादिषु पुरुषाणामपि चैत्यमभवे चारित्र्याभावेन मुक्त्यभावः स्यात् । उक्तञ्च—

'अर्शोभगन्दरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुन्येत' । इति ।

किञ्च—यदि मूर्च्छाया अभावेऽपि उत्तमसर्गमात्र परिग्रहो भवेत् ततो जिनकल्पप्रतिपन्नस्य कस्यचित् सायोस्तुपारम्णानुपमते प्रपतति शीते केनापि धर्मार्थिना परिग्रहरूप होने से चारित्र्य के अभाव का हेतु है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्यों कि परिग्रह का लक्षण मूर्च्छाभाव कहा गया है । यह दशवैकालिक के छठवें अध्यायन में "मुञ्जा परिगृहो वुत्तो" इस वाक्य से भगवान् ने फरमाया है । आदर्शधर में अन्तःपुरसहित भी बैठे हुए भरतचक्रवर्ती मूर्च्छाभावरहित होने के कारण ही परिग्रहरहित माने गये हैं । यदि ऐसी बात नहीं होती तो उन्हें केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । यदि चैल को परिग्रहरूप माना जाय तो तथाविध रोगादिकों में पुरुषों के भी चैल के सङ्काव में चारित्र्याभाव होने की प्रसक्ति से मुक्ति के अभाव की प्रसक्ति माननी पड़ेगी । कहा भी है—

"अर्शोभगन्दरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुन्येत" इति ।

और भी—मूर्च्छा के अभाव में भी वस्त्र का मात्र ससर्ग यदि परिग्रह माना जाय तो ऐसी हालत में किसी जिनकल्पी साधु के ऊपर तुषारपात

अभावतु कारणु छे तो अम कडेवु ते पणु अराअर नथी, कारणु के परिअडतु लक्षणु मूर्च्छाभाव कडेवायु छे आ दशवैकालिकना छट्टा अध्यायनमा "मुञ्जा परिगृहो वुत्तो" आ वाक्यथी लगवाने इरमाअयु छे आदर्शधरमा अत पुर सडित भेटेल भरत चक्रवर्ती मूर्च्छाभावरहित होवाने कारणु न परिअडरडित मनाया छे ने अम न डोत तो तेमने केवणज्ञान उत्पन्न थर शकत नडी ने चैलने परिअडरूप मानवामा आवे तो तथाविध रोगादिकेमा पुरुषेना चैलना सङ्कावमा चारित्र्याभाव होवाना प्रसगथी मुडितना अभावने प्रसग मानवे पडसे कहु पणु छे

"अर्शोभगन्दरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुन्येत" इति

वणी मूर्च्छाना अभावमा पणु वस्त्रने मात्र ससर्ग ने परिअड मनायतो अथी डालतमा केर जिनकल्पी साधुना उपर तुषारपात पडता केर धर्मात्मापुरुष

शिरसि वस्त्रे प्रक्षिप्ते तस्य सपरिग्रहता भवेत् । न चैतदिष्ट, तस्मान्न वस्त्रससर्गमात्र परिग्रहः, किंतु मूर्च्छा । सा च स्त्रीणा वस्त्रादिषु न विद्यते, धर्मोपकरणमात्रतया तस्योपादानात् । न खलु ता वस्त्रमतरणेत्मान रक्षयितुमीशते, ततो दीर्घतरसयम परिपालनाय यतनया वस्त्र परिभुञ्जानास्ताः परिग्रहवत्यः कथं भवेयुः ? ।

किञ्च—चैलस्य परिग्रहरूपत्वे—“णो कप्पड णिग्गथीण पक्के तालपलवे—अभिन्ने परिग्गहित्तए” इत्येयरूपो निर्ग्रन्थ्या व्यपदेशश्चागमे न श्रूयेत । अतो न सचैलत्वेन चारित्रासभवः ।

पढने पर धर्मात्मापुरुषद्वारा डाला गया वस्त्र भी परिग्रहरूप माना जाना चाहिये, परन्तु वह ऐसा नहीं माना जाता है । इसलिये वस्त्र का केवल ससर्ग परिग्रहरूप नहीं माना जा सकता है, किन्तु मूर्च्छा ही परिग्रह है । जब परिग्रह का यह सुनिश्चित लक्षण मान्य हो जाता है तो यह बात माननी पड़ेगी कि वह मूर्च्छा वस्त्रादिको के विषय में साध्वी स्त्रियों को नहीं होती है । केवल वे तो उसे धर्म का उपकरण जानकर ही धारण करती हैं । वस्त्रके विना वे अपना रक्षण भी नहीं कर सकती हैं, इसलिये दीर्घतरसयम पालने के लिये यतना से वस्त्र का परिभोग करती हुई वे परिग्रहवाली कैसे मानी जा सकती हैं ? । तथा—चैल के परिग्रहरूप मानने पर “णो कप्पड णिग्गथीण पक्के तालपलवे अभिन्ने परिग्गहित्तए” इस प्रकार से जो निर्ग्रन्थियों का व्यपदेश आगम में सुनने में वा देखने में आता है वह नहीं आना चाहिये और आया है, अतः इस शास्त्रीयव्यपदेश से ऐसा ही ज्ञात होता है कि सचैल होने से चारित्र

द्वारा नाणेलु वस्त्र पणु परिग्रहइरूप मानवु लेधये पणु अेम मनातु नथी तेथी वस्त्रने इठत ससर्ग ए परिग्रहइरूप मानी शकते नथी, पणु मूर्च्छा ए परिग्रह छे न्यारे परिग्रहनु आ थोळस लक्षण मान्य थाय छे त्यारे अे वात स्वीकारवी पडशे डे ते मूर्च्छा वस्त्रादिकेना विषयमा साध्वी स्त्रीअेने थती नथी तेअे तो इठत तेने धर्मनु उपकरण मानीने ए धारणु ठरे छे वस्त्र विना तेअे पोतानु रक्षणु पणु करी शकती नथी, शीतकाण आदिमा स्वाध्याय पणु करी शकती नथी, तेथी दीर्घतर सयम पाणवाने माटे यतनापूर्वठ वस्त्रने परिभोग करती अेवी तेअे परिग्रहवाणी डेवी रीते मानी शकाय ?

तथा—चैलने परिग्रहइरूप मानवाथी “णो कप्पड णिग्गथीण पक्के तालपलवे अभिन्ने परिग्गहित्तए” आ प्रकारने निर्ग्रन्थिअेनेने ए व्यपदेश आगममा साक्षणवाना अने लेवामा आवे छे ते न आववे लेधये, अने आये छे, तेथी आ शास्त्रीय व्यपदेशथी अेयु ए नणुवा भणे छे डे सचैल डोवाथी

एव च—“ नास्ति स्त्रीणां मोक्षः, परिग्रहवत्त्वात्, गृहस्थान् ” इत्यनुमानं निराकृत धर्मोपकरणवत्त्वस्यापरिग्रहत्वेन प्रसाधितत्वादिति ।

॥ इति चैलस्य चारित्राभावहेतुत्वनिराकरणम् ॥ १ ॥

स्त्रीत्वमेव चारित्रिरोधीत्यस्त्रीकृत्य स्त्रीषु चारित्रासमत्र इत्यपि कथनं न युक्तम् । यतो—यदि स्त्रीत्वस्य चारित्रिरोधः स्यात्, तदा तासामविशेषणैः प्रप्राजनं निषिध्येत् ‘ इत्थीओ पञ्चावेउ न कप्पइ ’ इत्येव वदेत्, न तु विशेषणं, यथोन्यते—“ गर्भिणी बालवच्छा य पञ्चावेउ न कप्पइ ” इति ।

॥ इति स्त्रीत्वमेव चारित्रिरोधीति पक्षस्य निराकरणम् ॥ २ ॥

का अभाव नहीं होता है, अतः जय वस्त्र में परिग्रहरूपता नहीं आती है तब ऐसा बोलना कि “स्त्रीणां न मोक्ष परिग्रहवत्त्वात् गृहस्थवत्” “गृहस्थ की तरह परिग्रहयुक्त होने से स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता है” बहुरूपिण्डित हो जाता है, क्यों कि वस्त्र धर्म का उपकरण है अतः वह परिग्रहरूप नहीं है ।

इसी तरह ऐसा कि “स्त्रीत्वमेव चारित्रिविरोधि” अर्थात् “स्त्रीपणा ही चारित्र का विरोधी है” सो ठीक नहीं है, कारण कि इस तरह यदि स्त्रीपने के साथ चारित्र का विरोध होता तो उन्हें बिना किसी विशेषता के दीक्षा देना ही निषिद्ध होता, परन्तु ऐसा तो है नहीं । शास्त्र में तो केवल ऐसा ही लिखा मिलता है कि “गर्भिणी बालवच्छा य पञ्चावेउ न कप्पइ”—गर्भिणी को बालवत्सा को अर्थात् छोटे बच्चे वाली को दीक्षा नहीं देनी चाहिये । यदि सामान्यतः स्त्रियों के लिये दीक्षा का निषेध करना होता तो “इत्थीओ पञ्चावेउ न कप्पइ” ऐसा कहते !

चारित्र्येनो अभाव यतो नथी, तेथी जे वस्त्रमा परिग्रहइपता आपती नथी तो ओवु ओलवु के “स्त्रीणां न मोक्ष परिग्रह वत्त्वात् गृहस्थवत्” “गृहस्थानी जेम परिग्रहयुक्त होवाथी स्त्रीओने मोक्ष भणतो नथी ” ओ युक्तिनु भउन थर्धंनय छे, डारणु के वस्त्र धर्मनु उपकरण छे, तेथी ते परिग्रहइप नथी

आ रीते ओम डडेवु के “स्त्रीत्वमेव चारित्रिविरोधि” ओटले के स्त्रीपणु न चारित्र्यु विरोधी छे” ते पणु भराभर नथी, डारणु के आ प्रमाणु जे स्त्रीपणुनी साथे चारित्र्येनो विरोध होत तो तेभने डोधं पणु विशेषता बिना दीक्षा आपवानु न निषिद्ध होत, पणु ओवु तो छे नही शास्त्रमा तो इकत ओवु न लपेलु भणे छे के “गर्भिणी बालवच्छा य पञ्चावेउ न कप्पइ” सगलाने तथा बालवत्साने ओटले के नाना भागडवाणीने दीक्षा न आपवी जेधंओ जे सामान्यत स्त्रीओने दीक्षाने निषेध करवे होत तो “इत्थीओ पञ्चावेउ न कप्पइ”

स्त्रियो मन्दसत्त्वा भवन्तीति मत्वा स्त्रीषु चारित्रासम्भव इति वदसि चेत् ? तदप्ययुक्तम्, इह सत्त्वं खलु व्रततपोधारणविषयकमेव वाच्यम्, अन्यविधस्य सत्त्वस्यानुपयोगित्वात्, तच्च दुर्धर्पशीलप्रतीषु स्त्रीषु अनल्पं सम्भवति । तथाचोक्तम्—

“ब्राह्मी सुन्दर्यायां राजीमती चन्दना गणधराद्याः ।

अपि देवमनुजमहिताः, विख्याता शीलसत्त्वाभ्याम्” ॥ १ ॥

॥ इति स्त्रियो मन्दसत्त्वा भवन्तीति पक्षस्य निराकरणम् ॥३॥

इत्येव चारित्रा सम्भवेन रत्नत्रयाभाव इति तत्रपक्षो निराकृतो भवतीति ॥

परन्तु शास्त्रकारने ऐसा कहा नहीं, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्त्रियों के लिये दीक्षा देनेका निषेध नहीं है । अतः स्त्रीत्व चारित्र का विरोधी नहीं है ।

इसी प्रकार यदि ऐसा कहा जाय कि स्त्रिया मन्द शक्ति वाली होती हैं अतः स्त्रियों में चारित्र की असम्भवा है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि यहा व्रत, तप धारण करने योग्य ही शक्ति का ग्रहण किया गया है, उसके सिवाय और शक्ति का नहीं, कारण कि अन्य शक्ति अनुपयोगी मानी गई है । जिसके द्वारा व्रत एव तपो को धारण एव उनका अनुष्ठान किया जाता है वह शक्ति दुर्धर्प शील वाली स्त्रियों में खूब होती है । जैसे कहा भी है—

“ब्राह्मी सुन्दर्यायां, राजीमती चन्दना गणधराद्याः ।

अपि देवमनुजमहिता, विख्याता शीलसत्त्वाभ्याम्” ॥१॥

એમ જ કહેત પણ શાસ્ત્રગરે તેમજ કહ્યુ નથી જેથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે સ્ત્રીઓને સામાન્યત દીક્ષાનો નિષેધ નથી એટલે કે સ્ત્રીત્વ એ ચારિત્રનુ વિરોધી નથી

એજ પ્રમાણે જો એમ કહેવામા આવે કે સ્ત્રીઓ મદ શક્તિવાળી હોય છે તેથી સ્ત્રીઓમા ચારિત્રની અસંભવતા છે, તે એમ કહેવુ તે પણ અસંભવ નથી, કારણ કે અહીં વ્રત, તપ કરવા લાયક શક્તિ એવો અર્થ અહીં ઉપયોગ છે, તેના સિવાયની બીજી શક્તિનો નહી, કારણ કે બીજી શક્તિ અનુપયોગી મનાયેલ છે જેના દ્વારા વ્રત, અને તપ ધારણ કરાય છે અને તેમનુ અનુષ્ઠાન કરાય છે તે શક્તિ દુર્ધર્પ શીલવાળી સ્ત્રીઓમા ખૂબ હોય છે, જેમકે કહ્યુ પણ છે—

“બાહ્મી સુન્દર્યાયાં રાજીમતી ચન્દના ગણધરાદ્યા ।

અપિ દેવ-મનુજ-મહિતા, વિખ્યાતા શીલસત્ત્વાભ્યામ્” ॥૧॥

एव च—“ नास्ति स्त्रीणा मोक्षः, परिग्रहत्वात्, गृहस्थान् ” इत्यनुमानं निराकृत धर्मोपकरणमस्त्वस्यापरिग्रहत्वेन प्रसाधितत्वादिति ।

॥ इति चैतस्य चारित्राभासहेतुत्पनिगकरणम् ॥ १ ॥

स्त्रीत्वमेव चारित्रविरोधीत्यङ्गीकृत्य स्त्रीषु चारित्रासम इत्यपि यद्यन न युक्तम् । यतो—यदि स्त्रीत्वस्य चारित्रविरोधः स्यात्, तदा तासामविशेषणैः प्रज्ञान निषिध्यन्त ‘ इत्थीओ पच्वावेउ न कप्पइ ’ इत्येव वदन्त, न तु विशेषण, यद्योन्यते—“ गर्भिणी बालवच्छा य पच्वावेउ न कप्पइ ” इति ।

॥ इति स्त्रीत्वमेव चारित्रविरोधीति पक्षस्य निराकरणम् ॥ २ ॥

का अभाव नहीं होता है, अतः जय वस्त्र में परिग्रहरूपता नहीं आती है तब ऐसा बोलना कि “स्त्रीणा न मोक्षः परिग्रहत्वात् गृहस्थवत्” “गृहस्थ की तरह परिग्रहयुक्त होने से स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता है” वह स्वच्छिन्न हो जाता है, क्योंकि वस्त्र धर्म का उपकरण है अतः वह परिग्रहरूप नहीं है ।

इसी तरह ऐसा कि “स्त्रीत्वमेव चारित्रविरोधि” अर्थात् “स्त्रीपना ही चारित्र का विरोधी है” सो ठीक नहीं है, कारण कि इस तरह यदि स्त्रीपने के साथ चारित्र का विरोध होता तो उन्हें बिना किसी विशेषता के दीक्षा देना ही निषिद्ध होता, परन्तु ऐसा तो है नहीं । शास्त्र में तो केवल ऐसा ही लिखा मिलता है कि “गर्भिणी बालवच्छा य पच्वावेउ न कप्पइ”—गर्भिणी को बालवत्सा को अर्थात् छोटे बच्चे वाली को दीक्षा नहीं देनी चाहिये । यदि सामान्यतः स्त्रियों के लिये दीक्षा का निषेध करना होता तो “इत्थीओ पच्वावेउ न कप्पइ” ऐसा कहते !

આરિત્રનો અભાવ થતો નથી, તેથી જો વસ્ત્રમાં પરિગ્રહરૂપતા આવતી નથી તો એવું બોલવું કે “સ્ત્રીણાં ન મોક્ષ પરિગ્રહ વત્વાત્ ગૃહસ્થાન્” “ગૃહસ્થાની જેમ પરિગ્રહયુક્ત હોવાથી સ્ત્રીઓને મોક્ષ મળતો નથી” એ યુક્તિનું ખડન થઈ જાય છે, કારણ કે વસ્ત્ર ધર્મનું ઉપકરણ છે, તેથી તે પરિગ્રહરૂપ નથી

આ રીતે એમ કહેવું કે “સ્ત્રીત્વમેવ ચારિત્રવિરોધિ” એટલે કે સ્ત્રીપણ જ ચારિત્રનું વિરોધી છે” તે પણ ખરાબર નથી, કારણ કે આ પ્રમાણે જો સ્ત્રીપણની સાથે ચારિત્રનો વિરોધ હોત તો તેમને કોઈ પણ વિશેષતા વિના દીક્ષા આપવાનું જ નિષિદ્ધ હોત, પણ એવું તો છે નહીં શાસ્ત્રમાં તો કહ્યું છે એવું જ લખેલું મળે છે કે “ગર્ભિણી બાલવચ્છા ય પચ્વાવેઉ ન કપ્પઈ” સગર્ભાને તથા બાલવત્સાને એટલે કે નાના બાળકવાળીને દીક્ષા ન આપવી જોઈએ જો સામાન્યતઃ સ્ત્રીઓને દીક્ષાનો નિષેધ કરવો હોત તો “ઇત્થીઓ પચ્વાવેઉ ન કપ્પઈ”

तथाचोक्तम्—

“जानीते जिनवचन, श्रद्धते चरति चार्थिकाऽशवलम्” इति ।

नन्वस्तु नाम स्त्रीणामपि सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रयम्, पर तु न तत् संभ्र-
मात्रेण मुक्तिपदप्रापक भवति, किं तु प्रकृष्यमाप्तम्, अन्यथा दीक्षानन्तरमेव सर्वेषा-
मप्यविशेषेण मुक्तिपदप्राप्तिप्रसक्तिः, सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयप्रकृष्य स्त्रीणा न
संभवति, तथा च—प्रकृष्यपर्यन्तस्य रत्नत्रयस्याभाव इति मत्वा स्त्रियः पुरुषेभ्योऽप-
कृष्टा इति चेत्, तदयुक्तम्—स्त्रीषु हि रत्नत्रयासंभवग्राहक प्रमाण नास्ति, देश-

अपकृष्ट—हीन है, सो यह कथन केवल एक प्रलापमात्र है । इस समय भी
स्त्रिया सम्यग्दर्शनादिक त्रय का अभ्यास करती हुई देखने में आती है, जैसे
कहा भी है—“जानीते जिनवचन श्रद्धते चरति चार्थिकाऽशवलम् ।”

प्रश्न—स्त्रियों में सम्यग्दर्शनादिक त्रिकके सद्भावमात्र से मुक्ति
प्राप्ति संभवित नहीं होती है, अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक का त्रिक केवल
संभवमात्र से उन्हें मुक्तिपद का प्रापक नहीं बनता है किन्तु प्रकृष्य प्राप्त
ही सम्यग्दर्शनादिक का त्रिक मुक्तिपद की प्राप्ति का हेतु होता है । यदि
ऐसा न माना जाय तो दीक्षा लेने के बाद ही सब को मुक्ति की प्राप्ति
हो जानी चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है । इससे यही मानना पड़ता
है कि सम्यग्दर्शनादिक त्रिक जब प्रकृष्यवस्था को प्राप्त हो जाता है
तभी मुक्ति की प्राप्ति जीव को होती है, यह इनका प्रकृष्य स्त्रियों में नहीं
है—पुरुषों में ही होता है, इससे सम्यग्दर्शनादिक के प्रकृष्य का अभाव
होने से स्त्रिया पुरुषों की अपेक्षा अपकृष्ट मानी गई हैं ? ।

छे आ समयमा पणु श्रीओ सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रयना अख्याम करती जेवामा
आवे छे जेम के उल्लु पणु छे—जानीते जिनवचन श्रद्धते चरति चार्थिकाऽशवलम्”

प्रश्न—श्रीओमा सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रयना सद्भावथी मुक्तिनी प्राप्ति
संभवित होती नथी, अटवे के सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रयना संभवमात्रथी
ज तेमने मुक्तिपदनी प्राप्ति थती नथी पणु प्रकृष्यप्राप्त ज सम्यग्दर्शनादिक
रत्नत्रय ज मुक्तिपदनी प्राप्तिनु कारण होय छे जे जेम न मानवामा आवे
तो दीक्षा लीधा पछी ज संवेने मुक्ति प्राप्त थवी जेधजे, पणु जेवु थतु
नथी तेथी जेम मानवु पडे छे के सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय न्यारे प्रकृष्यव-
स्थाने पावे छे त्यारे ज एवने मुक्ति प्राप्त थाय छे तेमने आ प्रकृष्य
श्रीओमा होतो नथी—पुरुषोमा ज होय छे, तेथी सम्यग्दर्शनादिकना प्रकृष्यना
अभाव होवाथी श्रीओ पुरुषो करता अपकृष्ट—हीन बनाय छे

इत्य च स्त्रीषु चारित्रस्य समा इति निश्चिते सति ज्ञानदर्शनयोरपि सम्भवः सुतरा निश्चितो भवति. ज्ञानदर्शनपूर्वकत्वाच्चारित्रस्य । ज्ञानदर्शनाभ्या विना चारित्र न भवितुमर्हति । तथा चोक्तम्—

“पूर्वद्वयलाभः पुनरुत्तरलाभे भवति सिद्धः” इति ।

इत्येव ‘स्त्रीषु ज्ञानदर्शनयोरभावः’ इति पयोऽपि निराकृतो भवति । ततश्च सम्यग्दर्शनादीना प्रयाणा मिद्धी सत्या ‘रत्नत्रयाभावात् स्त्रियः पुरुषेभ्योपकृष्टा’ इति प्रहापमात्रम् । दृश्यन्ते हि सप्रत्यपि ता’ सम्यग्दर्शनादिप्रितयमभ्यस्यन्ति ।

अर्थात् इस श्लोक में कही हुई ब्राह्मी, सुन्दरी, राजीमती, चन्दन-
घाला आदि साध्वियां देव मनुष्यों से पूजित होकर शील और सत्त्व
से विख्यात हैं । इस तरह “स्त्रिया मन्द शक्ति वाली होने से रत्नत्रय
का अभाव स्त्रियों में है” ऐसा तुम्हारा पक्ष निराकृत हो गया है ॥

इस तरह जब स्त्रियों में चारित्र की सम्भवता निश्चित हो जाती
है तब ज्ञानदर्शन की भी सम्भवता सुतरा निश्चित हो जाती है । क्यों
कि चारित्र, ज्ञान एव दर्शनपूर्वक होता है, उनके विना चारित्र नहीं
होता है । “पूर्वद्वयलाभः पुनरुत्तरलाभे भवति सिद्धः” उत्तर के लाभ
में चारित्र की प्राप्ति में—पूर्वद्वय का लाभ सिद्ध होता है, अर्थात् चारित्र
के लाभ में सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन का लाभ सिद्ध होता है, अतः स्त्रियों
में ज्ञानदर्शन का अभाव है, ऐसा कथन भी ठीक नहीं है, इसलिये ऐसा
कहना कि सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय का अभाव होने से स्त्रिया पुरुषों से

એટલે કે આ શ્લોકમાં કહેલ બ્રાહ્મી, સુન્દરી, રાજીમતી, ચન્દનબાળા આદિ સાધ્વીઓ દેવ મનુષ્યો વડે પૂજાને શીલ અને સત્ત્વ વડે વિખ્યાત છે આ પ્રમાણે “સ્ત્રીઓ મદ શક્તિવાળી હોવાથી સ્ત્રીઓમાં રત્નત્રયનો અભાવ છે” એવા તમારા પક્ષનું ખંડન થઈ બંધ છે

આ પ્રમાણે જો સ્ત્રીઓમાં ચારિત્રની સંભવતા નિશ્ચિત થઈ બંધ છે તો જ્ઞાન દર્શનની પણ સંભવતા સારી રીતે નિશ્ચિત થઈ બંધ છે કારણ કે ચારિત્ર જ્ઞાન અને દર્શન સહિત હોય છે તેમના વિના ચારિત્ર હોતું નથી “પૂર્વદ્વયલાભ પુનરુત્તરલાભે ભવતિ સિદ્ધ” ઉત્તરના લાભમાં—ચારિત્રની પ્રાપ્તિમાં—પૂર્વદ્વયનો લાભ સિદ્ધ થાય છે, એટલે કે ચારિત્રના લાભ સાથે જ સમ્યગ્દર્શનનો લાભ પ્રાપ્ત થાય છે તેથી “સ્ત્રીઓમાં જ્ઞાનદર્શનનો અભાવ છે” એવું કથન પણ બરાબર નથી તેથી એવું કહેવું કે “સમ્યગ્દર્શનાદિક રત્નત્રયનો અભાવ હોવાથી સ્ત્રીઓ પુરુષો કરતા અપકૃષ્ટ-હીન છે” એ કથન પણ કૃષ્ટ એ

—रत्नत्रयाभ्यास एव प्रकर्षपर्यन्तप्राप्त्यन्तर्गतस्य प्राप्तिकारणमितिशास्त्रे प्ररूपितम्, रत्नत्रयाभ्यासः स्त्रीषु वर्तते इति समर्थितमेव । स्त्रीत्व रत्नत्रयप्रकर्षस्य विरोधीत्यपि न वक्तुं युक्तम्, तथाहि—रत्नत्रयप्रकर्षः स उच्यते, यतोऽनन्तर मुक्तिपदप्राप्तिः, स च रत्नत्रयप्रकर्षः खलु अयोगिनोऽवस्थाया भवति, स हि चरमसमयभावी । अयोगिनोऽस्था च छद्मस्थानामप्रत्यक्षा, तर्हि स्त्रीत्वं रत्नत्रयप्रकर्षस्य विरोधीति ज्ञान कथं त्वया प्राप्तम् । न हि अदृष्टेन सह विरोधो ज्ञातुं शक्यते । अदृष्टविरोधकल्पने तु पुरुषेष्वपि रत्नत्रयप्रकर्षनिरोधापत्तिस्तत्र मते प्रसज्येत । एव च न रत्नत्रयाभावेन स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वम् ॥ १ ॥

प्रकर्ष को नहीं होने देता ? या रत्नत्रय का विरोधी वहा स्त्रीपना है ? प्रथम पक्ष तो इसलिये उचित नहीं माना जा सकता कि जब वे अभ्यास करती रहती हैं तो यही अभ्यास उनके प्रकर्ष की प्राप्ति का कारण उन्हें बन जाता है, ऐसा शास्त्रों में कहा है । रत्नत्रय का अभ्यास स्त्रियों में वर्तता है इसमें तो विवाद ही नहीं है ।

स्त्रीत्व रत्नत्रय के प्रकर्ष का विरोधी है, यह भी ठीक नहीं है, रत्नत्रय का प्रकर्ष वही है कि जिसके अनन्तर मुक्तिपद की प्राप्ति हो जावे । ऐसा वह प्रकर्ष अयोगी अवस्था में होता है, और यह चरमसमय भावी है । अयोगी की अवस्था छद्मस्थों के अप्रत्यक्ष होती है तब 'स्त्रीत्व रत्नत्रय के प्रकर्ष का विरोधी है' यह कैसे जाना जा सकता है ? क्यों कि वह परमप्रकर्ष प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता है । जो दृष्ट नहीं है उसके साथ विरोधी की कल्पना करना ठीक नहीं होता है । यदि

अथवा शु स्त्रीभ्योना स्वभाव न भवेत्ते तेभ्यो प्रकर्षं यथा हेतो नर्ही ? के रत्नत्रयनु विरोधी त्या स्त्रीपणु छे ? पडेवो पक्ष तो भे ढारणु न उचित भानी न शक्य के न्यारे तेभ्यो अभ्यास उरती रहे छे तो भेन अभ्यास तेभना प्रकर्षनी प्राप्तिनु ढारणु तेभने भाटे भनी नय छे, भेवु शास्त्रेभा उडेल छे रत्नत्रयने अभ्यास स्त्रीभ्योभा डोय छे ते पाणतभा तो विवाद छे न नडी

स्त्रीत्व रत्नत्रयना प्रकर्षनु विरोधी छे, भे पणु भगभर नधी रत्नत्रयने प्रकर्ष भेन छे के नेना पछी मुक्तिपदनी प्राप्ति थर्ष नय भेवो ते प्रकर्ष अयोगी गुणस्थान अवस्थामा डोय छे, अने ते चरमसमयभावी छे अयोगीगुणस्थान अवस्था छद्मस्थाने अप्रत्यक्ष डोय छे तो "स्त्रीत्व रत्नत्रयना प्रकर्षनु विरोधी छे" भेकेवी रीते नधुी शक्य छे ? ढारणु के ते परम प्रकर्ष प्रत्यक्षने विषय नधी न् डश्यमान नधी तेनी साथे विरोधीनी कल्पना करवी ते भगभर नधी न्

कालविप्रकृष्टेषु प्रत्यक्षस्याप्रवृत्तेः, तदप्रवृत्तौ च अनुमानस्याप्यसम्भवात् । नापि तासु रत्नत्रयप्रदर्पासमायप्रतिपादकः षोऽप्यागमो विद्यते, प्रत्युत संभवप्रतिपादक एव स्थाने स्थानेऽस्ति. यथा—‘इत्थोपुरिससिद्धाय य’ इति प्रमृतेषु गाथा, ततो न तासां रत्नत्रयप्रदर्पासमायः । किंच—यथय तावत्—स्त्रीषु उक्तरूपस्य रत्नत्रयस्याभावात्; किं कारणामाघेन, किं स्वभावात् एव किं वा स्त्रीत्वस्य रत्नत्रयप्रकर्षप्रतिरोधित्वेन, तव समतोऽस्तीति । तत्र न तावत् कारणामाघेन प्रकर्षपर्यन्तमात्ररत्नत्रयाभावः, यतः

उत्तर—ऐसा भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि कि ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जो स्त्रियों में सम्यग्दर्शनादिक त्रिक के प्रकर्ष की असम्भवात् सिद्ध कर सके । देशविप्रकृष्ट एव कालविप्रकृष्ट पदार्थों में प्रत्यक्षप्रमाण की अप्रवृत्ति होने से वह तो इस ध्यान का समर्थक होता नहीं । इसी तरह प्रत्यक्ष की अप्रवृत्ति होनेके कारण अनुमान की भी वही प्रवृत्ति नहीं होती है, अर्थात् अनुमान भी यह नहीं बतला सकता है कि स्त्रियों में सम्यग्दर्शनादिक के प्रकर्ष की असम्भवात् है । रहा आगम, सो वह भी तो वहीस्थान स्थान पर प्रकट करता है कि स्त्रियों में इनका प्रकर्ष हो सकता है “इत्थोपुरिससिद्धाय” यह गाथा ही इसके लिये प्रमाणभूत है । इसलिये रत्नत्रय के प्रकर्ष की असम्भवात् से जो स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा हीनता बतलाई जाती है वह ठीक नहीं है ।

और भी आप जो स्त्रियों में रत्नत्रय के प्रकर्ष का अभाव प्रतिपादन करते हो सो क्यों करते हो ? कहो, क्या उनमें उनके प्रकर्ष होने के कारणों का अभाव है ? अथवा स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा है जो उनके

उत्तर—ऐम कडेवु पणु भराभर नथी ऐवु कोरि प्रभाषु नथी के ले स्त्रीओमा सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रयना प्रकर्षनी असम्भवात् सिद्ध करी शके देशविप्रकृष्टि अने कालविप्रकृष्ट पदार्थोमा प्रत्यक्ष प्रमाणुनी अप्रवृत्ति होवाथी ते तो आ वातना समर्थक थता नथी ऐव प्रमाणु प्रत्यक्षनी अप्रवृत्ति होवाने कारणे त्या अनुमाननी पणु प्रवृत्ति होती नथी, ऐठवे के अनुमान पणु ऐ भतावी शकतु नथी के स्त्रीओमा सम्यग्दर्शनादिकना प्रकर्षनी असम्भवात् छे भाकी रह्या आगम, तो ते स्थणे स्थणे ऐव प्रकट करे छे के स्त्रीओमा तेमने प्रकर्ष होरि शके छे “इत्थो पुरिस सिद्धाय” आ गाथा न ते भाटे प्रमाणभूत छे तेथी रत्नत्रयना प्रकर्षनी असम्भवात् वडे स्त्रीओमा पुत्रो करता ले हीनता दर्शावाय छे ते भराभर नथी वणी—आप स्त्रीओमा रत्नत्रयना प्रकर्षने ले अभाव सिद्ध करे छे ते केम करे छे ? कडे के शु तेमनामा तेमने प्रकर्ष होवाना कारणेने अभाव छे ?

—रत्नत्रयाभ्यास एव प्रकर्षपर्यन्तमाप्तरत्नत्रयस्य प्राप्तिकारणमितिशास्त्रे प्ररूपितम्, रत्नत्रयाभ्यासः स्त्रीषु वर्तते इति समर्थितमेव । स्त्रीत्व रत्नत्रयप्रकर्षस्य विरोधीत्यपि न वक्तुं युक्तम्, तथाहि—रत्नत्रयप्रकर्षः स उच्यते, यतोऽनन्तर मुक्तिपदप्राप्तिः, स च रत्नत्रयप्रकर्षः खलु अयोगिनोऽपस्थाया भवति, स हि चरमसमयभागी । अयोगिनोऽस्था च छद्मस्थानामप्रत्यक्षा, तर्हि स्त्रीत्व रत्नत्रयप्रकर्षस्य विरोधीति ज्ञान कथ त्वया प्राप्तम् । न हि अदृष्टेन सह विरोधो ज्ञातुं शक्यते । अदृष्टविरोधकल्पने तु पुरुषेष्वपि रत्नत्रयप्रकर्षविरोधापत्तिस्तव मते प्रसज्येत । एव च न रत्नत्रयाभावेन स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वम् ॥ १ ॥

प्रकर्ष को नहीं होने देता ? या रत्नत्रय का विरोधी वहा स्त्रीपना है ?

प्रथम पक्ष तो इसलिये उचित नहीं माना जा सकता कि जब वे अभ्यास करती रहती है तो यही अभ्यास उनके प्रकर्ष की प्राप्ति का कारण उन्हें बन जाता है, ऐसा शास्त्रों में कहा है । रत्नत्रय का अभ्यास स्त्रियों में वर्तता है इसमें तो विवाद ही नहीं है ।

स्त्रीत्व रत्नत्रय के प्रकर्ष का विरोधी है, यह भी ठीक नहीं है, रत्नत्रय का प्रकर्ष वही है कि जिसके अनन्तर मुक्तिपद की प्राप्ति हो जावे । ऐसा वह प्रकर्ष अयोगी अवस्था में होता है, और यह चरम-समय भावी है । अयोगी की अवस्था छद्मस्थों के अप्रत्यक्ष होती है तब 'स्त्रीत्व रत्नत्रय के प्रकर्ष का विरोधी है' यह कैसे जाना जा सकता है ? क्यों कि वह परमप्रकर्ष प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता है । जो दृष्ट नहीं है उसके साथ विरोधी की कल्पना करना ठीक नहीं होता है । यदि

अथवा शु स्त्रीयोना स्वभाव न् अवेो छे के ने तेमने प्रकर्षं थवा देतो नथी ? के रत्नत्रयनु विरोधी त्या स्त्रीपणु छे ? पडेवो पक्ष तो अे कारणु न् उचित भागी न शक्य के न्यारे तेओ अभ्यास करती रहे छे तो अेन अभ्यास तेमना प्रकर्षनी प्राप्तिनु करणु तेमने भाटे णनी नय छे, अेवु शास्त्रोभा उडेव छे रत्नत्रयनेो अभ्यास स्त्रीयोभा डोय छे ते णाणतभा तो विवाद छे न् नडी

स्त्रीत्व रत्नत्रयना प्रकर्षंनु विरोधी छे, अे पणु णाणर नथी रत्नत्रयनेो प्रकर्षं अेन छे के नेना पछी मुक्तिपदनी प्राप्ति थर्ष नय अेवो ते प्रकर्षं अयोगी शुष्णस्थान अवस्थाभा डोय छे, अने ते चरमसमयभावी छे अयोगीशुष्णस्थान अवस्था छद्मस्थोने अप्रत्यक्ष डोय छे तो "स्त्रीत्व रत्नत्रयना प्रकर्षंनु विरोधी छे" अेकेवी रीते न्छी शक्य छे ? करणु के ते परम प्रकर्षं प्रत्यक्षनेो विषय नथी ने दृश्यमान नथी तेनी आथे विरोधीनी कल्पना करवी ते णाणर नथी ने

अथ विशिष्टसामर्थ्यामत्त्वेन स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति चेत्-नृणु, स्त्रीणां कथमिदं विशिष्टसामर्थ्यासत्त्वं भवति ? किं तावत् अगस्तमनरकपृथ्वीगमनत्वेन १, आहोभिद्वादादिलब्धिरहितत्वेन २, किं वा अल्पश्रुतत्वेन ३, किं वा-अनुपस्थाप्यता-पाराश्रिता-शून्यत्वेन ४, इति ।

नन्वसप्तमनरकपृथिवीगमनत्वेन स्त्रीणां विशिष्टसामर्थ्याभावात्, तथाहि-इह जगति सर्वोत्कृष्टपदप्राप्तिः सर्वोत्कृष्टेनाभ्यगसायेन भवति नान्यथेति द्वयोरप्यावयो रागमप्रामाण्यमलात् सिद्धं सर्वोत्कृष्टदुःखस्थानं, सर्वोत्कृष्टसुखस्थानं च । तत्र अदृष्ट प्रकर्ष के साथ विरोध मानते हो तो फिर पुरुषों के साथ भी इसका विरोध मान लेना चाहिये। इस तरह रत्नत्रय के अभाव से स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा हीनता नहीं मानी जा सकती है ।

यदि कहो कि विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव होने से स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अपकृष्ट हैं ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, सुनो-उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का असत्त्व है, यह किस कारण से आप कहते हैं ? क्या वे सप्तम नरक में नहीं जाती हैं इसलिये ?, अथवा वादादि लब्धि से वे रहित हैं इसलिये ?, अथवा अल्पश्रुतज्ञान उन्हें होता है इसलिये ?, अथवा अनुपस्थाप्यता पाराश्रित से शून्य होती है इसलिये ? ।

यदि कहो कि वे सप्तम पृथिवी में नहीं जाती हैं इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है, जगत में सर्वोत्कृष्ट-पद-प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट अध्यवसाय से होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती है । ऐसी मान्यता

अदृश्य प्रकर्षनी साथे विरोध मानता हो तो पक्षी पुरुषोनी साथे पक्ष तेना विरोध मानी लेवो जेधञ्जे आ प्रभाण्णु रत्नत्रयना अलावे श्रीओमा पुरुषो करता हीनता मानी शक्या नही

जे ओम कडो डे विशिष्ट सामर्थ्यने अलाव होवाथी श्रीओमा पक्ष पुरुषा जस्ता हीन छे तो ओम कडेषु ते पक्ष पशपनर नथी शा भाटे ? साभणे तेमनामा विशिष्ट सामर्थ्यने अलाव छे ओम आप क्या कारणु कडो छे ? शु तेओमा सातमी नरके नथी जती भाटे ?, अथवा वादादिलब्धिरहित होवाने कारणु ? अथवा तेमने अल्प श्रुतज्ञान थाय छे ते भाटे ? अथवा अनुपस्थाप्यता पाराश्रित रहित होय छे ते कारणु ?

जे कडो डे तेओमा सप्तम पृथ्वीमा जती नथी तेथी तेमनामा विशिष्ट सामर्थ्यने अलाव छे जगतमा सर्वोत्कृष्टपदप्राप्ति सर्वोत्कृष्ट अध्यवसायथी थाय छे जीञ्छे रीते थती नथी ओवी आपनी तथा अमारी मान्यता छे कारणु

सर्वोत्कृष्टदुःखस्थान सप्तमनरकपृथ्वी, अतः परं परमदुःखस्थानस्याभावात् । सर्वोत्कृष्ट सुखस्थान तु नि श्रेयसम् । तत्र स्त्रीणां सप्तमनरकपृथ्वीगमन श्रुते निषिद्धम् । निषेधस्य च कारणं तद्गमनयोग्यतथाविधसर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावः । ततः सप्तमनरकपृथ्वीगमनवत्त्वाभावात् समूर्च्छिमादिवत् स्त्रीणां सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावः, इतिचेत्,

तदयुक्तम्—यदि स्त्रीणां सप्तमनरकपृथ्वीगमन प्रति सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावास्तदैतत् कथमवसीयते निःश्रेयस प्रत्यपि तासां सर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभावाः?, न हि यो भूमिर्कृपादिक कर्म कर्तुं न शक्नोति, स शास्त्राण्यप्यवगन्तु न शक्नोतीति प्रत्येतु शक्यं, प्रत्यक्षविरोधात्, नापि वा हस्ती मूचीमुत्थापयितु न शक्नोतीति वृक्षशाखामपि त्रोटयितु न शक्नोतीति मन्तव्य भवति प्रत्यक्षविरोधात् ।

आपकी और हमारी है, क्यों कि इस विषय को बतलाने वाला आगम प्रमाण अपन दोनो को मान्य है । सर्वोत्कृष्ट दुःख का स्थान सप्तमनरक है क्यों कि इससे आगे ओर कोई दुख का स्थान नहीं है । तथा सर्वोत्कृष्ट सुख का स्थान मोक्ष है । शास्त्र बतलाता है कि स्त्रियां सप्तमनरक में नहीं जाती हैं, कारण कि सप्तमनरक में जाने के योग्य तथाविध सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणति का उनमें अभाव है । इसलिये सप्तमनरक में जाने का अभाव होने से समूर्च्छिम आदि की तरह स्त्रियों में सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणति का अभाव सिद्ध होता है ।

ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि यदि उनमें सप्तमनरक में जाने के योग्य सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्य परिणति का अभाव है तो यह कैसे आप जानते हे कि उनमें निःश्रेयस के प्रति सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप

हे ये बात दर्शावना आगम प्रमाण आपणुने अपने मान्य छे सर्वोत्कृष्ट दुःखु स्थान सातमी नरक छे वरषु के तेनाथी आगण भीणु केहे दुःखु स्थान नहीं तथा सर्वोत्कृष्ट सुखु स्थान मोक्ष छे शास्त्रो जतावे छे के स्त्रीओ सातमी नरके जाती नहीं, कारण के सातमी नरके जाने योग्य तथाविध सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणतिने तेमनामा अभाव छे आ रीते सातमी नरकमा जाने अभाव होवाथी समूर्च्छिम आदिनी जेम स्त्रीओमा सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणतिने अभाव सिद्ध थाय छे

जेम कहेणु ते पणु जराणर नहीं कारण के जे तेमनामा सातमी नरकमा जाने योग्य सर्वोत्कृष्ट परिणतिने अभाव छे तो आप जेम केवी रीते जणु छे के तेमनामा निःश्रेयस प्रत्ये सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप परिणतिने पणु

अथ समूर्च्छिमादिषु सर्वोत्कृष्टदुःखस्थाने सर्वोत्कृष्टसुखस्थाने चैत्युभयत्रापि तद्गमनयोग्यतयाविषसर्वोत्कृष्टमनोवीर्यपरिणत्यभासो दृष्टमन्तोऽत्रापि तादृशमनो-
वीर्यपरिणत्यभावो निश्चितव्य इति चेत्, समूर्च्छिमादिषु प्रतिगन्धयलेन तादृश-
मनोवीर्यपरिणत्यभासः, न त्वत्र प्रतिबन्धो विद्यते, न ग्वलुसप्तमपृथिवीगमन निर्वाण-
गमनस्य कारणम्, नापि सप्तमपृथिवीगमनाग्निनामापि निर्वाणगमनम्, चरमश-
रीरिणा सप्तमपृथिवीगमनमन्तरंगेण निर्वाणगमनदर्शनात् ।

परिणति का भी अभाव है । यह तो कोई घान नहीं है कि जो पुरुष भूमिकर्षणादिक कार्य करने में असमर्थ हों वे शास्त्रों के भी पढ़ने में अथवा जानने में समर्थ नहीं हों ? क्यों कि इसमें प्रत्यक्ष से विरोध आता है । जो हाथी एक सूची को नहीं उठा सकता है क्या वह वृक्ष की शाखाओं के तोड़ने में असमर्थ होता है ? नहीं होता है । यदि ऐसा माना जाय तो इसमें प्रत्यक्ष से विरोध आता है ।

यदि कहा जाय कि समूर्च्छिम आदिकोमें सर्वोत्कृष्ट दुःख के स्थान में तथा सर्वोत्कृष्ट सुख के स्थान में जाने योग्य तथाविध सर्वोत्कृष्ट मनो-
वीर्यरूप परिणति का अभाव देखा जाता है उसी तरह स्त्रियों में भी तादृश-
मनोवीर्यरूप परिणति का अभाव निश्चित होता है सो ऐसा कहना ठीक इसलिये नहीं बैठता है कि समूर्च्छिम आदिकों में जो तादृश
मनोवीर्यरूप परिणति का अभाव है इसका कारण वहां प्रतिबन्ध है, यहाँ
ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है । तथा सप्तम पृथिवी में गमन कोई निर्वाण-

अभाव छे अथवा तो केछ वात नथी के के पुरुषो भूमिकर्षणादिक कार्य कर
वाने असमर्थ होय तेओ शास्त्रो ललुवाना अथवा ललुवामा पणु असमर्थ
होय ? कारण के तेमा प्रत्यक्षथी विरोध आवे छे के हाथी अेक सोयने उठावी
न शकतो होय ते शु वृक्षनी शाखाओने तोडवाने असमर्थ होय छे ? होतो
नथी के अेम मानवामा आवे तो अेमा प्रत्यक्षथी विरोध आवे छे

के अेम मानी लछअे के समूर्च्छिम आदिओमा सर्वोत्कृष्ट दुःखना स्थानमा
तथा सर्वोत्कृष्ट सुखना स्थानमा जवाने योग्य तथाविध सर्वोत्कृष्ट मनोवीर्यरूप
परिणतिना अभाव जेवामा आवे छे अे अे प्रभाषे श्रीओमा पणु तादृशमनो-
वीर्यरूप परिणतिना अभाव निश्चित थाय छे तो अेम उडेवु ते अे कारणे अेराअर
लागतु नथी के समूर्च्छिम आदिमा के तादृश मनोवीर्यरूप परिणतिना अभाव
छे तेतु कारणे त्या प्रतिबन्ध छे, अही अेवे केछ प्रतिबन्ध नथी तथा
सातमी पृथ्वीमा गमन थपु अे केछ निर्वाण गमनना प्रति कारणे तो छे

किञ्च—यदि असप्तमनरकपृथिवीगमनत्वेन स्त्रीषु विशिष्टसामर्थ्याभावः, अतस्ताः पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति वदसि, तर्हि ब्रूहि स सप्तमनरकगमनाभावः किं यत्रैव जन्मनि स्त्रियो मुक्तिगामिन्यस्तत्रैव विवक्षितः?, किं वा सामान्येन ? ।

तत्राद्यपक्षाङ्गीकारे पुरुषाणामपि मुक्त्यभावप्रसङ्गः, तेषामपि हि यत्र जन्मनि मुक्तिगामिता, न तत्रैव सप्तमपृथिवीगमनमिति ।

अथ सामान्येन सप्तमनरकपृथिवीगमनाभाव इति विवक्षितः, अत्रायमाशयः— “ छट्ठिं च इत्थियाओ, मच्छ मणुया य सत्तमिं पुढविं ” इत्यागमवचनात् पुरुषाणामेव सप्तमनरकपृथिवीगमनयोग्यकर्मोपार्जनसामर्थ्यं, न तु स्त्रीणाम् । एव चाधोगतौ पुरुषतुल्यसामर्थ्याभावाद्दूर्जगतावपि स्त्रीणां पुरुषतुल्यसामर्थ्याभाव इत्यनुमीयते ।

गमन के प्रति कारण तो है नहीं, और न निर्वाणगमन सप्तमपृथिवी गमन—अविनाभावी है, क्यों कि चरमशरीरी जो व्यक्ति हुआ करते हैं वे सप्तमपृथिवी गमन के बिना ही निर्वाण में जाते हुए देखे जाते हैं ।

तथा यदि तुम्हारी यही बात मानली जावे कि स्त्रियां सप्तम नरक में नहीं जाती हैं इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है और इसीलिये वे पुरुषों से हीन मानी गई हैं सो इस पर हमारा तुम से ऐसा पूछना है कि यह जो उनमें सप्तम नरक में गमन का अभाव है सो वह क्या जिस भव में उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है उसी भव की अपेक्षा से विवक्षित है ? या सामान्यरूप से विवक्षित है ?, यदि इसमें प्रथम पक्ष अङ्गीकार किया जाय तो इस तरह पुरुषों को भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है, क्यों कि जिस जन्म में उन्हें मुक्ति जाना होता है उस जन्म में वे सप्तमनरक में नहीं जाते हैं ।

नही, અને ન નિર્વાણગમન સપ્તમપૃથ્વીગમનઅવિનાભાવી છે, કારણ કે ચરમ શરીરી જે વ્યક્તિઓ હોય છે તેઓ સપ્તમપૃથ્વીગમન વિના જ મોક્ષે જતા જોવામાં આવે છે

તથા તમારી આ વાત જો માની લઈએ કે સ્ત્રીઓ સાતમી નરકમાં જતી નથી તેથી તેમનામાં વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ છે અને તેથી જ તેઓને પુરુષો કરતા હીન માનવામાં આવી છે તો એ બાબતમાં અમારો આપને એ પ્રશ્ન છે કે આ જે તેમનામાં સાતમી નરકે ગમનનો અભાવ છે તે શું જે ભવમાં તેમને મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે એજ ભવની અપેક્ષાએ વિવક્ષિત છે ? કે સામાન્યરૂપે વિવક્ષિત છે ? જે તેમનો પહેલો પક્ષ સ્વીકાર્ય ગણાય તો એ ગીતે પુરુષોને પણ મુક્તિ મળી શકતી નથી, કારણ કે જે જન્મમાં તેમને મોક્ષે જવાનું થાય છે તે જન્મમાં તેઓ સાતમી નરકમાં જતા નથી

અતસ્તાઃ પુરુષેભ્યોઽપઋષ્ટા ઇતિ ચૈત્ ? શૃણુ ।

અધોગતૌ યેપામતુલ્ય સામર્થ્યં, તેપામૃર્ધ્વગતાયપિ સામર્થ્યમતુલ્યમેવ ભવતીતિ નિયમો નાસ્તિ । તથા ચોક્તમ્—

સમુચ્ચિન્નમ-શ્રુયગ-સ્વગ, -ચડપ્પય-સપ્પિ-ત્થિ-જલચરેહિંતો ।

સ નરેહિંતો સત્તમ્, કમોવવજ્જતિ નરણ્ણુ ॥ ૧ ॥

યદિ કહો કિ યદ ઘાત સામાન્ય સે કહી હૈ કિ સ્ત્રિયોં મેં સસમ નરક મેં જાને કા અભાવ હૈ, અર્થાત્ ઇસકા આશય યદ હૈ કિ—“ઈદિં વ્વ ઇત્થિયાઓ મચ્છા મણુયા ય સત્તમિં પુઢવિં” છઠ્ઠી નરક તક સ્ત્રિયાં જાતી હૈં તથા મચ્છા ણવ મનુયા સસમ નરક તક જાતે હૈં, અતઃ સસમ નરક મેં જાને કે યોગ્ય કર્મોંકે ઉપાર્જન કરને કી શક્તિ પુરુષોં મેં હી હૈ સ્ત્રિયોં મેં નહી હૈ, ઇસ પ્રકાર જવ સ્ત્રિયોં મેં અધોગમન કે લિયે પુન્પ-તુલ્ય સામર્થ્ય કા અભાવ હૈ તો ઊર્ધ્વગમન મેં ણી પુન્પતુલ્ય સામર્થ્ય કા અભાવ ડનમેં હૈ, યદ ઘાત ણી અનુમતિ હોતી હૈ । ડસીસે વે પુરુષોં કી અપેક્ષા હીન માની ગઈ હૈં ।

એસા કહના ણી ઠીક નહીં હૈ । કારણ કિ એસા કોઈ નિયમ નહીં હૈ કિ જિનમે અધોગતિ મે જાને કા સામર્થ્ય નહીં હૈ ડનમેં ઊર્ધ્વગતિ મેં ણી જાને કા સામર્થ્ય નહીં હૈ । ફિર કહા ણી હૈ—

“સમુચ્ચિન્નમ૧શ્રુયગ૨, સ્વગ૩-ચડપ્પય૪સપ્પિ૫-ત્થિ૬-જલચરેહિંતો ।

સનરેહિંતો૭ સત્તમ્, કમોવવજ્જતિ નરણ્ણુ ॥ ૧ ॥”

જે એમ કહો કે આ વાત સામાન્યરૂપે કહી છે કે સ્ત્રીઓમા સાતમી નરકે જવાને અભાવ છે એટલે કે તેનો આશય આ પ્રમાણે છે—“ઈદિં વ્વ ઇત્થિયાઓ મચ્છા મણુયા ય સત્તમિં પુઢવિં” છઠ્ઠી નરક સુધી સ્ત્રીઓ જાય છે, તથા મચ્છા અને માણસ સાતમી નરક સુધી જાય છે, તેથી સાતમી નરકમા જવાને યોગ્ય કર્મોંતુ ઉપાર્જન કરવાની શક્તિ પુરુષોમા જ છે સ્ત્રીઓમા નથી આ પ્રમાણે જે સ્ત્રીઓમા અધોગમનને માટે પુરુષ જેટલા સામર્થ્યનો અભાવ છે તે ઊર્ધ્વગમનમા પણ પુરુષ જેટલા સામર્થ્યનો અભાવ તેમનામા છે, એ વાતનુ પણ અનુમાન કરી શકાય છે, તેથી તેમને પુરુષો કરતા હીન ગણાવ છે

એમ કહેવુ તે પણ ખરાખર નથી કારણ કે એવો કોઈ નિયમ નથી કે જેમનામા અધોગતિમા જવાનુ સામર્થ્ય ન હોય તેમનામા ઊર્ધ્વગતિમા જવાનુ પણ સામર્થ્ય ન હોય વળી કહુ પણ છે—

“સમુચ્ચિન્નમ૧-શ્રુયગ૨-સ્વગ૩-ચડપ્પય૪-સપ્પિ૫-ત્થિ૬-જલચરેહિંતો ।

સનરેહિંતો, સત્તમ્, કમોવવજ્જતિ નરણ્ણુ” ॥ ૧ ॥

छाया-समूर्च्छिम-भुजग-खग-चतुष्पद-सर्प-स्त्री-जलचरेभ्यः ।

सनरेभ्यः सप्तसु, क्रमश उपपद्यन्ते नरकेषु ॥ इति ॥

समूर्च्छिम (१),-भुजग (२),-खग (३),-चतुष्पद (४),-सर्प (५),-स्त्री (६),
-जलचर (७)-नराणाम योगतौ नास्ति तुल्यं सामर्थ्यम्, ऊर्ध्वगतौ तु तुल्यमेव
सामर्थ्यम् । तदुक्तम्—

सन्नि-तिरिक्खेहिंतो, सहस्सारतिणसु देवेषु ।

उप्पज्जति परेषु वि, सन्वेसु वि माणुसेहिंतो ॥ २ ॥

छाया-सन्नि-तिर्यग्भ्यः, सहस्रारान्तिकेषु देवेषु ।

उत्पद्यन्ते परेष्वपि, सर्वेष्वपि मनुष्येभ्यः ॥ २ ॥

तथा चोर्ध्वगतौ स्त्रीणा पुरुषतुल्यसामर्थ्यसद्भावात् विशिष्टसामर्थ्यासत्त्वम् ।
ततश्च पुरुषवत् स्त्रीणामप्यूर्ध्वगतियोग्यताऽस्त्येवेति ।

अर्थात् समूर्च्छिम १, भुजग २, खग ३, चतुष्पद ४, सर्प ५, स्त्री ६,
जलचर और मनुष्य ७ । इनकी अधोगति प्राप्ति में एक सी शक्ति नहीं
है, फिर भी उर्ध्वगति प्राप्ति में एक सी शक्ति है । कहा भी है—

“ सन्नितिरिक्खेहिंतो, सहस्सारतिणसु देवेषु ।

उप्पज्जति परेषु वि, सन्वेसु वि माणुसेहिंतो ” ॥ २ ॥

अर्थात्-सन्नितिर्यंच से निकल कर जीव सहस्रार नामके आठवे
देवलोक तक जाता है । मनुष्यसे निकला हुआ जीव उससे आगे सब
देवलोकों में जा सकता है । इसलिये ऊर्ध्वगतिमें स्त्रियों के पुरुषतुल्य
सामर्थ्यका सद्भाव होनेसे उनमें विशिष्ट सामर्थ्यका असत्त्व नहीं है,
अतः पुरुषकी तरह स्त्रियों में ऊर्ध्वगमनकी योग्यता है ही ।

ओटवे ३ (१) समूर्च्छिम, (२) भुजग, (३) खग, (४) चतुष्पद, (५) सर्प,
(६) स्त्री, (७) जलचर अने मनुष्य, अथनामा अधोगति प्राप्तिनी अत्र मरणी
शक्ति नथी, ते पण उर्ध्वगतिनी प्राप्तिनी अत्र मरणी शक्ति छे कहु पण छे—

“ सन्नितिरिक्खेहिंतो, सहस्सारतिणसु देवेषु ।

उत्पज्जति परेषु वि, सन्वेसु वि माणुसे हिंतो ॥ २ ॥

ओटवे ३ सन्नि तिर्यग्भ्याथी नीकणीने एव सहस्रार नामना आठमा
देवलोक सुधी नथ छे मनुष्यभाथी नीकणेले एव तेनाथी आगण थथा देवलो-
कमा अर्थ शके छे, तेथी उर्ध्वगतिमा अथिआने पुरुषतुल्य सामर्थ्यने सदृशाव
डावाथी तेमनामा विशिष्ट सामर्थ्यने अलाव नथी, तेथी पुरुषनी नेम अथिआमा
उर्ध्वगमननी योग्यता छे अ

અતસ્તાઃ પુરુષેભ્યોઽપરુષ્ટા ઇતિ ચેત્ ? ગૃણુ ।

અધોગતૌ ચેપામતુલ્ય સામર્થ્યં, તેપામૂર્ધગતાવપિ સામર્થ્યમનુલ્યમેવ ભવતીતિ નિયમો નાસ્તિ । તથા ચોક્તમ્—

સમુચ્ચિત્તમ-ભુયગ-સ્વગ,-ચઉપ્પય-સપ્પિ-સ્થિ-જલચરેહિંતો ।

સ નરેહિંતો સત્તમ્, કમોવવજ્જતિ નરણ્ણુ ॥ ૧ ॥

યદિ કહો કિ યદ્દ ઘાત સામાન્ય સે કહી હૈ કિ સ્ત્રિયોં મેં સસમ-નરક મેં જાને કા અભાવ હૈ, અર્થાત્ ઇસકા આશય યદ્દ હૈ કિ—“છટ્ઠિં ચ ઇત્થિયાઓ મચ્છા મણુયા ય સત્તમિં પુઢવિં” છટ્ઠીં નરક તક સ્ત્રિયાં જાતી હેં તથા મચ્છા ણવ મનુણ્ય સસમ નરક તક જાતે હેં, અતઃ સસમ નરક મેં જાને કે યોગ્ય કર્મોંકે ઉપાર્જન કરને કી શક્તિ પુરુષોં મેં હી હૈ સ્ત્રિયોં મેં નહી હૈ, ઇસ પ્રકાર જવ સ્ત્રિયોં મેં અધોગમન કે લિયે પુરુષ-તુલ્ય સામર્થ્ય કા અભાવ હૈ તો ઊર્ધ્વગમન મેં મી પુરુષતુલ્ય સામર્થ્ય કા અભાવ ઉનમેં હૈ, યદ્દ ઘાત મી અનુમતિ હોતી હૈ । ઇસીસે લે પુરુષોં કી અપેક્ષા હીન માની ગઈ હૈ ।

એસા કહના મી ઠીક નહીં હૈ । કારણ કિ એસા કોઈ નિયમ નહીં હૈ કિ જિનમે અધોગતિ મે જાને કા સામર્થ્ય નહીં હૈ ઉનમેં ઊર્ધ્વગતિ મેં મી જાને કા સામર્થ્ય નહી હૈ । ફિર કહા મી હૈ—

“સમુચ્ચિત્તમ ૧-ભુયગ ૨, સ્વગ ૩-ચઉપ્પય ૪-સપ્પિ ૫-સ્થિ ૬-જલચરેહિંતો ।

સનરેહિંતો ૭ સત્તમ્, કમોવવજ્જતિ નરણ્ણુ ॥ ૧ ॥”

ને એમ કહેા કે આ વાત સામાન્યરૂપે કહી છે કે સ્ત્રીઓમા માતમી નરકે જવાને અભાવ છે એટલે કે તેને આશય આ પ્રમાણે છે—“છટ્ઠિં ચ ઇત્થિ યાઓ મચ્છા મણુયા ય સત્તમિં પુઢવિં” છટ્ઠી નરક સુધી સ્ત્રીઓ જાય છે, તથા મચ્છા અને માણસ સાતમી નરક સુધી જાય છે, તેથી સાતમી નરકમા જવાને યોગ્ય કર્મોંતુ ઉપાર્જન કરવાની શક્તિ પુરુષોમા જ છે સ્ત્રીઓમા નથી આ પ્રમાણે ને સ્ત્રીઓમા અધોગમનને માટે પુરુષ જેટલા સામર્થ્યને અભાવ છે તો ઉર્ધ્વગમનમા પણ પુરુષ જેટલા સામર્થ્યને અભાવ તેમનામા છે, એ વાતતુ પણ અનુમાન કરી શકાય છે, તેથી તેમને પુરુષો કરતા હીન ગણેલ છે

એમ કહેવુ તે પણ ખરાબર નથી કારણ કે એવો કોઈ નિયમ નથી કે જેમનામા અધોગતિમા જવાતુ સામર્થ્ય ન હોય તેમનામા ઉર્ધ્વગતિમા જવાતુ પણ સામર્થ્ય ન હોય વળી કહ્યું પણ છે—

“સમુચ્ચિત્તમ ૧-ભુયગ ૨-સ્વગ ૩-ચઉપ્પય ૪-સપ્પિ ૫-સ્થિ ૬-જલચરેહિંતો ।

સનરેહિં તો, સત્તમ્, કમોવવજ્જ તિ નરણ્ણુ” ॥ ૧ ॥

यत्र यत्राल्पश्रुतत्व, तत्र तत्र विशिष्टमामर्ष्यभाव इति नियमो नास्ति । समितिपञ्चकमात्रस्य गुप्तित्रयमात्रस्य च ज्ञानसद्भावेऽपि चारित्रप्रकर्षणत्वात् केवलोत्पत्तिर्भूतयेवेति प्रवचने प्रसिद्धम् । तथा चाल्पश्रुतत्वेऽपि विशिष्टमामर्ष्यं समनतीति तदभावो नोपपद्यते ॥

सकता है कि जहा २ वादलब्धिभक्ता है वही २ विशिष्ट सामर्थ्य है, अतः जब ऐसा नियम नहीं बन सकता है तो फिर ऐसा कहना कि वादादिलब्धियोंसे रहित होनेके कारण स्त्रियोंमें विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव है, यह कैसे उचित माना जा सकता है ।

फिर भी वादादिलब्धिके अभावकी तरह यदि मोक्षका अभाव भी स्त्रियोंमें होता तो शास्त्रकार सिद्धान्तमें ऐसा ही कहते कि स्त्रियोंको मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है । परन्तु ऐसा तो वे शास्त्रकार कहते नहीं हैं, अतः इससे यही जानना चाहिये कि स्त्रियोंको निर्वाणकी प्राप्ति होती है ।

तथा—जहा २ अल्पश्रुत ज्ञान है वहा २ विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव है, ऐसा भी कोई नियम नहीं है । समितिपञ्चक मात्र तथा गुप्तित्रय मात्रके ज्ञानके सद्भावमें भी चारित्रके प्रकर्षके बलसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है, ऐसा प्रवचनमे सिद्ध है । इसलिये अल्पश्रुतज्ञान होने पर भी विशिष्ट सामर्थ्य स्त्रियोंमें समवित हो सकता है, अतः उस विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव उनमे नहीं बनता है ।

वादादिलब्धिभक्ता उ त्या त्या विशिष्ट सामर्थ्य उ तेथी जे आवो नियम थर् शब्दो नथी तो पजी जेवु उडेवु उ वादादिलब्धियेथी उद्धिन डोवाने कारणे श्रीज्योभा विशिष्ट सामर्थ्येनो अभाव छे, जे उंची गीते उचित मानी थजय ? वणी वादादिलब्धिना अभावनी जेम जे श्रीज्योभा मोक्षेनो अभाव पणु डोत तो शास्त्रकार सिद्धान्तमा जेवु व उडेते डे 'श्रीज्योने मोक्ष भणने नथी' पणु जेवु तो ते शास्त्रकारो उडेता नथी, तेथी जेम व मानवु जेथजे डे श्रीज्योने मोक्षनी प्राप्ति थाय छे

तथा न्या न्या अल्पश्रुत ज्ञान छे त्या त्या विशिष्ट सामर्थ्येनो अभाव छे, जेवो पणु डोर्ध नियम नथी पाथ समिति मात्र तथा त्रय गुप्ति मात्रना ज्ञानना महलावमा पणु चारित्रना प्रकर्षेना भणथी डेवणज्ञान पेदा थाय छे, जेवु प्रवचनमा सिद्ध थयेत छे तेथी अल्पश्रुत ज्ञान डोवा छता पणु श्रीज्योभा विशिष्ट सामर्थ्यं समवित डोर्ध थडे छे, तेथी ते विशिष्ट सामर्थ्येनो अभाव तेभनामा डोर्ध शके नडी

અથ ઘાદાદિલઙ્ઘિરહિતત્વેન વિશિષ્ટ સામર્થ્યમત્રમ્, સ્ત્રીણાં હિ વાદલઙ્ઘી
 વિકુર્વણત્વાદિલઙ્ઘી પૂર્વગતશ્રુતાધિગતો ન ન સામર્થ્યગતિરસ્તીત્ય તસ્તામા
 મોક્ષગમનસામર્થ્યમપિ ન સમચતિ, ઇતિ ચેત્, ઘાદાદિલઙ્ઘિરહિતમ્યાપિ ક્વચિદ્
 વિશિષ્ટસામર્થ્ય દૃશ્યતે, ગાદવિકુર્વણત્વાદિલઙ્ઘિરિરહેડપિ વિશિષ્ટપૂર્વગતશ્રુતામા-
 વેડપિ મનુષ્યાદીના નિઃશ્રેયસપદપ્રાપ્તિશ્રવણાત્ । તથા-જિનકલ્પ-મન'પર્યયવિરહેડપિ
 ન સિદ્ધિવિરહોડસ્તિ । તથા ચ યત્ર યત્ર ગાદાદિલઙ્ઘિમત્ત્વ તૈત્ર વિશિષ્ટસામર્થ્ય-
 મિતિ નિયમો નાસ્તિ, કય તર્હિ વાદાદિલઙ્ઘિરહિતત્વેન વિશિષ્ટસામર્થ્યામાવ
 ઇતિ વક્તુ પ્રભવસીતિ । અપિ ઘ-ગાદાદિલઙ્ઘ્યમાવદ્ યદિ નિ'શ્રેયસામાવોડપિ
 સ્ત્રીણામભવિવ્યત્ તતસ્તૈવેન ગાદૈ પ્રત્યપાદયિવ્યત્, ન ચ પ્રતિપાદ્યતે, તસ્માદુ-
 પપદ્યતે સ્ત્રીણા નિર્માણમિતિ ।

યદિ કહા જાય કિ વાદાદિલઙ્ઘિરહિત હોનેસે ડનમેં વિશિષ્ટ શક્તિ
 કા અભાવ હૈ । સ્ત્રિયોમેં વાદલઙ્ઘિકા સામર્થ્ય, વૈક્રિય આદિ લઙ્ઘિકા
 સામર્થ્ય, પૂર્વગત શ્રુતાવધિગમકા સામર્થ્ય નહીં હોતા હૈ, ડસ લિયે મોક્ષ-
 ગમન સામર્થ્ય ડી ડનમેં સમચિત નહીં હોતા હૈ । સો ગેમા કહના ડી ટીક
 નહીં હૈ । કારણ કિ વાદાદિલઙ્ઘિરહિતકે ડી વિશિષ્ટ સામર્થ્ય દેલા જાતા
 હૈ । શાસ્ત્રોમેં ંસી કઈ કથાઁ આતી હૈં જો ડસ વાતકો વતલાતી હૈં કિ
 વાદલઙ્ઘિ વિકુર્વણત્વ આદિ લઙ્ઘિકે અભાવમેં ડી, વિશિષ્ટ પૂર્વગત શ્રુતકે
 અભાવમે ડી મનુષ્ય આદિકોં કો મોક્ષપદકી પ્રાપ્તિ હુઈ હૈ । તથા જિનકલ્પ
 ંવ મન પર્યયકે અભાવમેં ડી સિદ્ધિકા અભાવ નહીં હોતા હૈ । ડસલિયે
 ડસ પૂર્વોક્ત કથનસે ંહ વાત સિદ્ધ હો જાતી હૈ કિ ંસા નિયમ નહીં બન

ને ંમ કહેવામા આવે કે વાદાદિલઙ્ઘિરહિત હોવાથી તેમનામા
 વિશિષ્ટ શક્તિને અભાવ છે, સ્ત્રીઓમા વાદલઙ્ઘિનુ સામર્થ્ય, વૈક્રિય આદિ
 લઙ્ઘિનુ સામર્થ્ય, અને પૂર્વગતશ્રુતાધિગમનુ સામર્થ્ય હોતુ નથી તેથી મોક્ષ-
 ગમનનુ સામર્થ્ય તેમનામા સભવિત હોતુ નથી, તો ંમ કહેલુ તે પણ
 બરાબર નથી કારણ કે વાદાદિલઙ્ઘિરહિતમા પણ વિશિષ્ટ સામર્થ્ય ંવામા
 આવે છે શાસ્ત્રોમા ંવી કેટલીં કથાં આવે છે જે ં વાત દર્શાવે છે
 કે વાદલઙ્ઘિ, વિકુર્વણત્વ આદિ લઙ્ઘિના અભાવમા અને વિશિષ્ટ પૂર્વગતશ્રુતના
 અભાવમા પણ મનુષ્ય આદિને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ છે તથા જિનકલ્પ અને
 મન પર્યવના અભાવમા પણ સિદ્ધિને અભાવ હોતો નથી, તેથી ંા પૂર્વોક્ત
 કથનથી ં વાત સાબીત થઈ જાય છે કે ંવો નિયમ થઈ શકતો નથી કે ંયા

तथा च स्त्रीणा विशिष्टसामर्थ्याभावः गुरुतरप्रायश्चित्तानधिकारित्वादिति कथन न युक्तमिति ॥ २ ॥ ॥ इति स्त्रीणाविशिष्टसामर्थ्याभावनिराकरणम् ॥

अथ पुरुषानभिवन्द्यत्वेन स्त्रिय पुरुषेभ्योऽपकृष्टा इति चेत्, तदप्ययुक्तम्-यतः-तत् पुरुषानभिवन्द्यत्व किं सामान्येन किं वा गुणाधिकपुरुषापेक्षया त्रिवक्षितम्? , यदि सामान्येन तदा सामान्यतः सर्वासु स्त्रीषु पुरुषानभिवन्द्यत्व नास्तीत्यतोऽसिद्धत्वदोषप्रसङ्गः । तीर्थंकरस्य जननी शक्रादयोऽपि प्रणमन्ति, अन्ये प्रणमन्तीति किं पुनर्वाच्यम् ।

वह जिस प्रकार पुरुषों का उपकारक होता है उसी तरह स्त्रियों का भी उपकारक होता है, क्यों कि दोनों का वहा अधिकार है । रहा प्रायश्चित्त का विधान सो वह योग्यता की अपेक्षा रखता है । इसी अपेक्षा को लेकर उसका विधान हुआ है । अतः गुरुतर प्रायश्चित्त की अधिकारिणी नहीं होने से स्त्रियों में विशिष्ट सामर्थ्य का अभाव है, यह कहना युक्ति युक्त नहीं है ।

यदि कहो कि पुरुषों से ये अनभिवन्द्य है इसलिये ये उनसे अपकृष्ट हैं, सो ऐसा भी कथन उचित प्रतीत नहीं होता है । कारण कि यह अनभिवन्द्यता किस रूप से आप कहते हैं-क्या सामान्य पुरुषों की अपेक्षा से या गुणाधिक पुरुषों की अपेक्षासे यदि कहो कि यह अनभिवन्द्यता सामान्य पुरुषों की अपेक्षा से उनमें है सो ऐसा कहना उचित नहीं है, क्यों कि सामान्य पुरुष उन्हें वन्दन करते हैं । तीर्थंकर की माता को तो शक्रादिक भी नमस्कार करते हैं, फिर दूसरे व्यक्ति की तो बात ही क्या कहना ।

वे रीते पुरुषोंने उपकारक थाय छे, जेव गीते स्त्रीओने पणु उपकारक थाय छे, कारणु जे भन्नेने त्वा अधिकार छे डवे रणु प्रायश्चित्तनु विधान तो ते योग्यतानी अपेक्षा राखे छे जे अपेक्षाने लधने ज तेनु विधान थयु छे तेथी गुरुतर प्रायश्चित्तनी अधिकारिणी न होवाथी श्रीओमा विशिष्ट सामर्थ्यने अभाव छे, जेम जडेवु ते युक्तियुक्त नथी जे जेम जडेा के पुरुषो वडे तेओ अनभिवन्द्य छे तेथी तेओ तेमना करता डीन छे, तो जेवु ज्थन पणु उचित लागतु नथी, कारणु जे आप कथा इपे तेने अनभिवन्द्यता कडेा छे ? शु सामान्य पुरुषोनी अपेक्षाजे के गुणाधिक पुरुषोनी अपेक्षाजे ? जे जेम कडेता हो के ते सामान्य पुरुषोनी अपेक्षाजे ते अनभिवन्द्यता तेमनामा छे तो जेम कडेवु ते योग्य नथी, कारणु जे सामान्य पुरुषो तेमने वन्दन करे जे तीर्थंकरनी माताने तो शक्रादिक पणु नमस्कार करे छे, तो भीण व्यक्तिओनी

અનુપસ્થાપ્યતા પારાશ્રિત્તા-શૂન્યત્વેન સ્ત્રીણાં વિશિષ્ટમામર્થાસત્ત્વમિતિવેત્-
તદપ્યયુક્તમ્-યતસ્તન્નિષેધાત્ વિશિષ્ટસામર્થ્યામાનો ન નિષ્પેદ્ય શક્યતે । કથમ્ ?,
અધિકારિણા યોગ્યતાસ્પેક્ષયા શાસ્ત્રે નાનામકારકપ્રાયશ્ચિત્તોપદેઙ્. શૂયતે । ઇત્
પુરુષા પેક્ષયાઽપિ યોગ્યતાનુસારેણ ગુરુલ્લઘુપ્રાયશ્ચિત્તોપદેઙ્. ઠૃત' । તત્ત્વ લઘુપ્રાય-
શ્ચિત્તવતા પુરુષાણામપિ ચારિત્રમર્કર્ષે કેવલોત્પત્તિર્ભવત્યેવ, ગુરુપ્રાયશ્ચિત્તવતામપિ
ચારિત્રમર્કર્ષાભાવે કેવલોત્પત્તિર્ન ભવતિ । કિન્ચ-નાનાગ્નિ તપમોવિધાનં શાસ્ત્રે
શૂયતે તત્ત્વપુરુષાણામિવ સ્ત્રીણામપ્યુપકારક, તત્ત્વોમયેપામધિકારાત્ પ્રાયશ્ચિત્ત વિધાન
તુ યોગ્યતાસ્પેક્ષયા કથિતમ્ ।

યદિ કહો કિ સ્ત્રિયોંમેં અનુપસ્થાપ્યતા ંવ પારાશ્રિત પ્રાયશ્ચિત્તની
શૂન્યતા હૈ ડસસે ડનમેં વિશિષ્ટ સામર્થ્યકા અભાવહૈ સો યહ્ ભી કહના
ઠીક નહીં હૈ, કારણ કિ ડનકે નિષેધ હોનેસે ભી વિશિષ્ટ સામર્થ્યકા
અભાવ-નિશ્ચિત નહીં હો સકતા હૈ, ક્યોં કિ અધિકારિયોં કો યોગ્યતા
કી અપેક્ષા સે શાસ્ત્રોં મેં નાના પ્રકાર કે પ્રાયશ્ચિત્તોં કા ઉપદેશ સુના
જાતા હૈ । પુરુષોં કી અપેક્ષા ભી યોગ્યતા કે અનુસાર ગુરુ ંવ લઘુ પ્રાય
શ્ચિત્તોં કા વહા ઉપદેશ હુઆ હૈ । જિન્હે લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત દેને કી વાત
કહી ગઈ હૈ એસે પુરુષોં કો ભી ચારિત્ર કે પ્રકર્ષ મેં કેવલજ્ઞાન કી ઉત્પત્તિ
હોતી હૈ । તથા જિન્હે ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત કા અધિકારી વતલાયા ગયા હૈ
ડનકે ભી યદિ ચારિત્ર કા પ્રકર્ષ નહીં હૈ તો કેવલજ્ઞાન કી ઉત્પત્તિ
નહીં હોતી હૈ ।

તથા-અનેક પ્રકાર કે તપોં કા વિધાન શાસ્ત્ર મે સુના જાતા હૈ ।

જો એમ કહો કે સ્ત્રીઓમા અનુપસ્થાપ્યતા અને પારાશ્રિત પ્રાયશ્ચિત્ત
નો અભાવ છે તેથી તેમનામા સામર્થ્યનો અભાવ છે, તો એમ કહેવું તે પણ
બરાબર નથી કારણ કે તેમનો નિષેધ હોવાથી પણ વિશિષ્ટ સામર્થ્યનો અભાવ
નિશ્ચિત થઈ શકતો નથી, કારણ કે અધિકારીઓની યોગ્યતાની અપેક્ષાએ
શાસ્ત્રોમા વિવિધ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિતોનો ઉપદેશ સાલળવામા આવે છે
પુરુષોની અપેક્ષાએ પણ યોગ્યતા પ્રમાણે મોટા અને નાના પ્રાયશ્ચિતોનો તેમા
ઉપદેશ અપાયો છે જેમને નાના પ્રાયશ્ચિત દેવાની વાત ડહેલ છે એવા પુરુષોને
પણ ચારિત્રના પ્રકર્ષમા કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થાય છે તથા જેમને મોટા પ્રાય
શ્ચિત્તના અધિકારી બતાવ્યા છે તેમને પણ જો ચારિત્રનો પ્રકર્ષ હોતો નથી તો
કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતું નથી

તથા-શાસ્ત્રોમા અનેક પ્રકારના તપોતુ વિધાન સાલળવામા આવે છે તે

अमहर्द्विऋत्वेनापि स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्व न गुच्यते, यद्येव स्यात् तर्हि कथय तावत्, आध्यात्मिकीमृद्धिमाश्रित्य तदमहर्द्विकत्व मन्यसे, किं वा बाह्याम् ? , आद्यपक्षस्तत्र निराकृत एव स्त्रीणां रत्नत्रयरूपाया आध्यात्मिक्याः ऋद्धे' समर्थितत्वात् । नापि बाह्यामृद्धिमाश्रित्यामहर्द्विऋत्वेन स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वान्मुक्ति कारणवैकल्यमिति वान्यम्, या मद्गती तीर्थकरादीनामृद्धि' सा गणधरादीना नास्ति, चक्रधरादीनामपि या ऋद्धिः सा तदितरेषा क्षत्रियादीना नास्तीत्येव तेषामप्यमहर्द्विऋत्वेनापकृष्टत्वान्मुक्ति कारणवैकल्यप्रसङ्गात् ।

आदि को कराते हैं, शिष्य उन्हें नहीं कराते हैं, परन्तु आगम में ऐसी बात तो सुनी नहीं जाती है कि गुरुओं को ही मुक्ति होती है, शिष्यों को नहीं होती है । चण्डरुद्र आदि आचार्य के शिष्यों को मुक्ति हुई सुनी गई है ।

इसी तरह अहमर्द्विक होनेसे भी स्त्रियां पुंरूपोंसे हीन हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं जचना कारण कि आप किस ऋद्धिका अभाव उनमें बतलाते हैं ? आध्यात्मिक ऋद्धिका या बाह्य ऋद्धिका ? । आध्यात्मिक ऋद्धिका तो उनमें अभाव है नहीं, क्यों कि रत्नत्रयरूप जो आध्यात्मिक ऋद्धि है वह उनमें समर्थित की ही जा चुकी है । इसी तरह बाह्य ऋद्धिको आश्रित करके जो यह कहा जाय कि बाह्य ऋद्धि उनमें नहीं है अतः वे अमहर्द्विक होनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा हीन हैं, और इसी लिये उनमें मुक्तिके कारण की विकलता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि देखो जो बाह्यऋद्धि तीर्थकरों को होती है वह गणधरोंको नहीं होती है, इसी तरह चक्रधरों की जो ऋद्धि होती है वह

करावे छे, शिष्यो तेभने करावता नथी पण आगमभा जेवी भात सालणवामा आवती नथी के गुरुजोने न मोक्ष भणे छे, शिष्योने भणतो नथी अउर आदि आचार्यना शिष्योने मोक्ष भण्यानु सालणवामा आण्यु छे

जेण प्रभाणु अमहर्द्विक होवाथी ज्ञो पुरुषोथी हीन छे जेम उडेवु ते पण उचित लागतु नथी, कारण के आप तेमनामा कथं ऋद्धिने अभाव भतावे छे ? आध्यात्मिक ऋद्धिने के बाह्य-ऋद्धिने ? आध्यात्मिक ऋद्धिने तो तेमनामा अभाव नथी, कारण के रत्नत्रयउप ने आध्यात्मिक ऋद्धि छे ते तेमनामा होवानु सिद्ध कगथ गयु छे जेण प्रभाणु बाह्यऋद्धिने आधार लभने जे जेम उडेवामा आवे के बाह्यऋद्धि तेमनामा नथी तेथी तेजो अमहर्द्विक होवाथी पुरुषो उरता हीन छे, अने तेथी न तेमनामा मोक्षना कारणनी विकलता छे, तो जेम उडेवु ते पण योग्य नथी, कारण के ने बाह्यऋद्धि तीर्थ करेने होय छे ते गणधरने होती नथी, जेण प्रभाणु अकवर्तिजोने ने ऋद्धि

यदि गुणाधिकपुरुषापेक्षया नदित्युच्यते-तदा तीर्थं गग अपि गणधरान्
नाभिगन्धन्ते इति गणधरा अपि पुरुषानभिगन्धन्तया मुक्तयनदां भययुरिति । एवं
गणधरा अपि स्वशिष्यान्नाभिगन्धन्ते, ततश्च तेषामपि न मोक्षः स्यात्, इति ।

अथ स्मरणाद्यकर्तृत्वेन स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपक्रुष्टा इति चेत्, तत्र युक्तम्-
तथाहि-एव सति गुरुशिष्ययोः सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रये समानेऽप्याचार्यस्यैव
मुक्तिः स्यान्न तु शिष्यस्य, तस्य स्मरणाद्यकर्तृत्वेन पुरुषेभ्योऽपक्रुष्टत्वात् । न चागमे
शिष्यस्य मोक्षधरण नास्तीति तान्यम्, चण्डमूढाद्याचार्यशिष्याणामागमे मोक्ष
श्रवणात् ।

यदि कहो कि गुणों से जो अधिक होते हैं वे स्त्रियों को नमन नहीं
करते हैं, उनकी अपेक्षा वहां अनभिगम्यता होने से वे उनकी अपेक्षा
हीन मानी जाती है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है । गणधरों में भी
गुणाधिक पुरुषों को अपेक्षा अनभिगम्यता आजाने से मुक्ति की प्राप्ति
का अभाव मानना पड़ेगा । इसी तरह गणधर भी अपने शिष्यों को
नहीं वदते हैं अतः उन शिष्यों को भी मोक्ष प्राप्ति नहीं होना मानना पड़ेगा ।

यदि कहो कि स्मरणा आदि की अकर्ता होने से स्त्रिया पुरुषों की
अपेक्षा हीन मानी गई है सो यह भी कोई युक्ति युक्त नहीं है, क्यों कि
यदि इस तरह उनमें हीनता मानी जायगी तो गुरु को ही मुक्ति होगी,
ऐसा मानने का प्रसंग आवेगा, शिष्यों को नहीं, कारण कि उनके
सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रय समान होने पर भी आचार्य ही उन्हें स्मरणा

तो बात न शी करवी ? ने जेवां दलाल करे के जेजो अधिक शुष्वावाणा होय छे
तेजो श्रीजोने नमन करता नथी, तेमनी अपेक्षाजे त्या अनलिखतता होवाथी
तेमने ते पुरुषो करता हीन मानवामा आवे छे, तो जेभ कडेवु ते पणु
उचित नथी कारण के जे गीते तो तीर्थ करे पणु गणधरने नमन करता नथी
गणधरामा पणु शुष्वाधिक पुरुषोनी अपेक्षाजे अनलिखतता आवी न्वाथी
मोक्ष प्राप्तवानो अभाव मानवो पडे जेभ प्रमाणे गणधर पणु पोताना
शिष्योने वदन करता नथी तो ते शिष्योने पणु मोक्षप्राप्ति थर् शके नडी
जेभ मानवु पडे वणी जे जेवी दलाल करे के स्मारणा आदिनी अकर्ता होवाथी
श्रीजो पुरुषो करता हीन मानवामा आवी छे, तो जे पणु कडे रीते उचित
नथी, कारण के जे जे रीते जेभनामा हीनता मानी लथजे तो श्रुते न
मोक्ष प्राप्त थाय छे, जेवु मानवु पडजे शिष्योने नडी, कारण के तेमना
सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रय समान होवा छता पणु आचार्य न तेमने स्मारणा आदि

अमहर्द्धिकत्वेनापि स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्व न युज्यते, यद्येव स्यात् तर्हि कथय तावत्, आध्यात्मिकीमृद्धिमाश्रित्य तदमहर्द्धिकत्व मन्यसे, किं वा बाह्याम् ? आद्यपक्षस्तत्र निराकृत एव स्त्रीणां रत्नत्रयरूपायाः आध्यात्मिक्याः ऋद्धेः समर्थितत्वात् । नापि बाह्यामृद्धिमाश्रित्यामहर्द्धिकत्वेन स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वान्मुक्ति कारणवैकल्यमिति वान्यम्, या महती तीर्थकरादीनामृद्धिः सा गणधरादीना नास्ति, चक्रधरादीनामपि या ऋद्धिः सा तदितरेषा क्षत्रियादीना नास्तीत्येव तेषामप्यमहर्द्धिकत्वेनापकृष्टत्वान्मुक्ति कारणवैकल्यप्रसङ्गात् ।

आदि को कराते हैं, शिष्य उन्हें नहीं कराते हैं, परन्तु आगम में ऐसी बात तो सुनी नहीं जाती है कि गुरुओं को ही मुक्ति होती है, शिष्यों को नहीं होती है । चण्डरुद्र आदि आचार्य के शिष्यों को मुक्ति हुई सुनी गई है ।

इसी तरह अहमर्द्धिक होनेसे भी स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं जचता कारण कि आप किस ऋद्धिका अभाव उनमें बतलाते हैं ? आध्यात्मिक ऋद्धिका या बाह्य ऋद्धिका ? आध्यात्मिक ऋद्धिका तो उनमें अभाव है नहीं, क्यों कि रत्नत्रयरूप जो आध्यात्मिक ऋद्धि है वह उनमें समर्थित की ही जा चुकी है । इसी तरह बाह्य ऋद्धिको आश्रित करके जो यह कहा जाय कि बाह्य ऋद्धि उनमें नहीं है अतः वे अमहर्द्धिक होनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा हीन हैं, और इमी लिये उनमें मुक्तिके कारण की विकलता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि देखो जो बाह्यऋद्धि तीर्थकरों को होती है वह गणधरों को नहीं होती है, इसी तरह चक्रधरो की जो ऋद्धि होती है वह

उरावे छे, शिष्यो तेभने करावता नथी पण आगममा जेवी भात साभणवामा आवती नथी के गुरुज्जोने न भोक्ष भणे छे, शिष्योने भणतो नथी य उरुद्र आदि आचार्यना शिष्योने भोक्ष भण्यानु साभणवामा आव्यु छे

जेण प्रभाण्णे अमहर्द्धिक डोवाथी ज्जो पुरुषोथी हीन छे जेम कडेवु ते पण उचित लागतु नथी, कारण के आप तेभनामा उध ऋद्धिनो अभाव भतावे छे ? आध्यात्मिक ऋद्धिनो के बाह्य-ऋद्धिनो ? आध्यात्मिक ऋद्धिनो तो तेभनामा अभाव नथी, कारण के रत्नत्रयउप ने आध्यात्मिक ऋद्धि छे ते तेभनामा डोवानु सिद्ध कराध गयु छे जेण प्रभाण्णे बाह्यऋद्धिनो अधार लधने जे जेम कडेवामा आवे के बाह्यऋद्धि तेभनामा नथी तेथी तेजो अमहर्द्धिक डोवाथी पुरुषो उरता हीन छे, अने तेथी न तेभनामा भोक्षना कारणनी विकलता छे, तो जेम कडेवु ते पण योग्य नथी, कारण के ने बाह्यऋद्धि तीर्थ करेने डोय छे ते गणधरने डोती नथी, जेण प्रभाण्णे उक्वतिज्जोने ने ऋद्धि

यदि गुणाधिकपुरुषापेक्षया तदित्युच्यते-तदा तीर्थरुग् अपि गणधरान्
नाभिनन्दन्ते इति गणधरा अपि पुरुषानभिनन्दन्तया मृत्यवर्ता भवेयुरिति । एव
गणधरा अपि स्वशिष्यान्नाभिनन्दन्ते, ततश्च तेषामपि न मोक्षः स्यात्, इति ।

अथ स्मारणाद्यर्तृत्वेन स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपहृष्टा इति चेत्, तत्र युक्तम्-
तथाहि-एव सति गुरुशिष्ययोः सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रये समानेऽप्याचार्यस्यैव
मुक्तिः स्यान्न तु शिष्यस्य, तस्य स्मारणाद्यर्तृत्वेन पुरुषेभ्योऽपहृष्टत्वात् । न चागमे
शिष्यस्य मोक्षधरण नास्तीति शान्यम्, चण्डन्द्राद्याचार्यशिष्याणामागमे मोक्ष
श्रवणात् ।

यदि कहे कि गुणों से जो अधिक होते हैं वे स्त्रियों को नमन नहीं
करते हैं, उनकी अपेक्षा बड़ा अनभिनन्द्यता होने से वे उनकी अपेक्षा
हीन मानी जाती हैं, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है । गणधरों में भी
गुणाधिक पुरुषों को अपेक्षा अनभिनन्द्यता आजाने से मुक्ति की प्राप्ति
का अभाव मानना पड़ेगा । इसी तरह गणधर भी अपने शिष्यों को
नहीं बढते हैं अतः उन शिष्यों को भी मोक्ष प्राप्ति नहीं होना मानना पड़ेगा ।

यदि कहे कि स्मारणा आदि की अकर्त्ता होने से स्त्रिया पुरुषों की
अपेक्षा हीन मानी गई है सो यह भी कोई युक्ति युक्त नहीं है, क्यों कि
यदि इस तरह उनमें हीनता मानी जायगी तो गुरु को ही मुक्ति होगी,
ऐसा मानने का प्रसंग आवेगा, शिष्यों को नहीं, कारण कि उनके
सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रय समान होने पर भी आचार्य ही उन्हें स्मारणा

तो बात न शी करवी ? जे श्री दलाल करे के जेओ अधिऽ गुणोवाणा होय छे
तेओ श्रीओने नमन करता नथी, तेमनी अपेक्षाओ त्या अनलिवधता होवाथी
तेमने ते पुरुषो करता हीन मानवामा आवे छे, तो ओम कडेवु ते पणु
उचित नथी कारण के ओ रीते तो तीर्थ करे पणु गणधराने नमन करता नथी
गणधरामा पणु गुणाधिक पुरुषोनी अपेक्षाओ अनलिवधता आवी नवाथी
भोक्ष प्राप्तवाने अभाव मानवो पडे ओज प्रभावे गणधर पणु पोताना
शिष्योने वदन करता नथी तो ते शिष्योने पणु भोक्षप्रप्ति थर् शके नडी
ओम मानवु पडे वणी जे श्री दलाल करे के स्मारणा आदिनी अकता होवाथी
श्रीओ पुत्रो करता हीन मानवामा आवी छे, तो ओ पणु ओध रीते उचित
नथी, कारण के जे ओ रीते ओमनामा हीनता मानी लधओ तो शुद्धे न
भोक्ष प्राप्त थाय छे, ओवु मानवु पडसे शिष्योने नडी, कारण के तेमना
सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रय समान होवा छता पणु आचार्य न तेमने स्मारणा आदि

अमहर्द्धिकत्वेनापि स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्व न युज्यते, यद्येव स्यात् तर्हि कथय तावत्, आध्यात्मिकीमृद्धिमाश्रित्य तदमहर्द्धिकत्व मन्यसे, किं वा बाह्याम् ? आद्यपक्षस्तत्र निराकृत एव स्त्रीणां रत्नत्रयरूपाया ' आध्यात्मिक्या ' ऋद्धेः समर्थितत्वात् । नापि बाह्यामृद्धिमाश्रित्यामहर्द्धिकत्वेन स्त्रीणां पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वान्मुक्ति कारणवैकल्यमिति वाच्यम्, या महती तीर्थंशरादीनामृद्धिः सा गणशरादीना नास्ति, चक्रधरादीनामपि या ऋद्धिः सा तदितरेषां शत्रियादीना नास्तीत्येव तेषामप्यमहर्द्धिकत्वेनापकृष्टत्वान्मुक्ति कारणवैकल्यप्रसङ्गात् ।

आदि को कराते हैं, शिष्य उन्हें नहीं कराते हैं, परन्तु आगम में ऐसी बात तो सुनी नहीं जाती है कि गुरुओं को ही मुक्ति होती है, शिष्यों को नहीं होती है । चण्डरुद्र आदि आचार्य के शिष्यों को मुक्ति हुई सुनी गई है ।

इसी तरह अहमर्द्धिक होनेसे भी स्त्रियां पुंश्रियोंसे हीन हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं जचता कारण कि आप किम् ऋद्धिका अभाव उनमें बतलाते हैं ? आध्यात्मिक ऋद्धिका या बाह्य ऋद्धिका ? । आध्यात्मिक ऋद्धिका तो उनमें अभाव है नहीं, क्यों कि रत्नत्रयरूप जो आध्यात्मिक ऋद्धि है वह उनमें समर्थित की ही जा चुकी है । इसी तरह बाह्य ऋद्धिको आश्रित करके जो यह कहा जाय कि बाह्य ऋद्धि उनमें नहीं है अतः वे अमहर्द्धिक होनेसे पुरुषोंकी अपेक्षा हीन हैं, और इसी लिये उनमें मुक्तिके कारण की विकलता है, मोएमा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि देखो जो बाह्यऋद्धि तीर्थकरों को होती है वह गणधरों को नहीं होती है, इसी तरह चक्रधरों की जो ऋद्धि होती है वह

उरावे छे, शिष्यो तेभने उरावता नथी पण आगमभा ज्येवी णात् सालणवामा आवती नथी डे गुरुज्जोने न भोक्ष भणे छे, शिष्योने भणतो नथी य उरुद्र आदि आचार्यना शिष्योने भोक्ष भज्यानु सालणवामा आव्यु छे

जेन प्रभाण्णे अमहर्द्धिक ढोवाथी श्रीज्जो पुरुषोथी हीन छे जेम डडेपु ते पणु उचित लागतु नथी, उरुद्र डे आप तेभनामा कथं ऋद्धिनो अलाव णतावे छे ? आध्यात्मिक ऋद्धिनो डे बाह्य-ऋद्धिनो ? आध्यात्मिक ऋद्धिनो तो तेभनामा अलाव नथी, उरुद्र डे रत्नत्रयउप जे आध्यात्मिक ऋद्धि छे ते तेभनामा ढोवानु सिद्ध करारु गयु छे जेन प्रभाण्णे बाह्यऋद्धिनो आधार लधने जे जेम डडेवामा आवे डे बाह्यऋद्धि तेभनामा नथी तेथी तेज्जो अमहर्द्धिक ढोवाथी पुरुषो करता हीन छे, अने तेथी न तेभनामा भोक्षना उरुद्रनी विकलता छे, तो जेम डडेपु ते पणु योज्य नथी, उरुद्र डे जे बाह्यऋद्धि तीर्थ करेने होय छे ते गणधरने होती नथी, जेन प्रभाण्णे उक्कवर्तिज्जोने जे ऋद्धि

यदि गुणाधिरुत्पत्तापेभया तदित्युच्यते-तदा तीर्थरुग अपि गणधरान्
नाभियन्दन्ते इति गणधरा अपि पुरूपानभियन्त्रतया मृत्युना भवेयुरिति । एवं
गणधरा अपि शिष्यान्नाभियन्दन्ते, तत्र तेषामपि न मोक्षः स्यात्, इति ।

अथ स्मरणाद्यर्तुत्वेन स्त्रियः पुरुषेभ्योऽपरुष्टा इति चेत्, तत्र युक्तम्-
तथाहि-एव सति गुरुशिष्ययोः सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रये समानेऽप्याचार्यस्यैव
मुक्तिः स्यान्न तु शिष्यस्य, तस्य स्मरणाद्यर्तुत्वेन पुरुषेभ्योऽपरुष्टत्वात् । न चागमे
शिष्यस्य मोक्षश्रयण नास्तीति सान्यम्, चण्डहृदाद्याचार्यशिष्याणामागमे मोक्ष
श्रयणात् ।

यदि कहो कि गुणों से जो अधिक होते हैं वे स्त्रियों को नमन नहीं
करते हैं, उनकी अपेक्षा वहाँ अनभियन्त्रता होने से वे उनकी अपेक्षा
हीन मानी जाती हैं, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है । गणधरों में भी
गुणाधिक पुरुषों को अपेक्षा अनभिव्यक्ता आजाने से मुक्ति की प्राप्ति
का अभाव मानना पड़ेगा । इसी तरह गणधर भी अपने शिष्यों को
नहीं वदते हैं अतः उन शिष्यों को भी मोक्ष प्राप्ति नहीं होना मानना पड़ेगा ।

यदि कहो कि स्मरणा आदि की अकर्त्ता होने से स्त्रिया पुरुषों की
अपेक्षा हीन मानी गई है सो यह भी कोई युक्ति युक्त नहीं है, क्यों कि
यदि इस तरह उनमें हीनता मानी जायगी तो गुरु को ही मुक्ति होगी,
ऐसा मानने का प्रसंग आवेगा, शिष्यों को नहीं, कारण कि उनके
सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रय समान होने पर भी आचार्य ही उन्हें स्मरणा

तो वात न शी करवी ? ने ऐवी हलाल करे के नेओ अधिक गुणोवाणा होय छे
तेओ स्त्रीओने नमन करता नथी, तेमनी अपेक्षाओ त्या अनलिवधता होवाथी
तेमने ते पुरुषो करता हीन मानवाभा आवे छे, तो ऐम ठडेवु ते पणु
उचित नथी कारण के ऐ रीते तो तीर्थ करे पणु गणधरने नमन करता नथी
गणधरनेमा पणु गुणुधिक पुरुषोनी अपेक्षाओ अनलिवधता आवी नवाथी
मोक्ष प्राप्तवाने अलाव मानवो पडे ऐन प्रभाणु गणधरने पणु पेताना
शिष्योने वदन करता नथी तो ते शिष्योने पणु मोक्षप्राप्ति थर् शके नही
ऐम मानवु पडे वणी ने ऐवी हलाल करे के स्मारणा आदिनी अकर्ता होवाथी
स्त्रीओ पुष्पो करता हीन मानवाभा आवी छे, तो ऐ पणु केछ रीते उचित
नथी, कारण के ने ऐ रीते ऐमनामा हीनता मानी लछे तो श्रुने न
मोक्ष प्राप्त थाय छे, ऐवु मानवु पडसे शिष्योने नही, कारण के तेमना
सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रय समान होवा छता पणु आचार्य न तेमने स्मारणा आदि

ननु स्त्रीणा मुक्तिस्थानादिप्रसिद्धिर्नास्ति, अतः स्त्रीणा मुक्तिर्नभवतीति । यदि स्त्रीणा मुक्तिकारणावैकल्यमभविष्यत् तदा मुक्तिरप्युदपत्स्यत, तथा च-मुक्तिस्थानादिप्रसिद्धिरपि स्यात्, इति यदुक्तं, तन्न, यत्र यत्र मुक्तिस्थानादिप्रसिद्धिस्तत्रैव मुक्तिरितिचेत्तर्हि पुरुषाणामपि मुक्तिस्थानाद्यप्रसिद्धिः, 'इदं पुरुषाणामेव मोक्षस्थानम्', इति विशेष्यं नोक्तं, किं तु 'भव्या मोक्षार्हा' इति प्रतिपादितम्, ततश्च त्वन्मते पुरुषाणामपि मोक्षो न स्यादिति ।

दोनों ही समानरूप से मायादिक के प्रकर्षवाले देखे जाते हैं । आगम भी ऐसा ही कहता है कि चरमशरीरी नारदादिकों के भी मायादिक प्रकर्षता है । इसलिये पुरुषों से अपकृष्ट होने से स्त्रियों के मुक्ति के कारणों की विकलता नहीं सधनी है, अर्थात् मुक्ति के कारणों का स्त्रियों में सद्भाव है ।

यदि कहे कि स्त्रियों के मुक्तिस्थान आदि की प्रसिद्धि नहीं है इसलिये उसके अभाव से यही मालूम होता है कि उन्हें मोक्ष नहीं मिलता है । यदि स्त्रियों में मुक्ति के कारणों की अविकलता होती तो उन्हें मुक्ति भी होती, और इस कारण से उनके मुक्ति के स्थानों की भी प्रसिद्धि होती, अतः यह कुछ नहीं है, इससे साफ स्पष्ट मालूम होता है कि इन्हें मुक्ति प्राप्त नहीं होती है । सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि ऐसी कोई यह व्याप्ति तो है नहीं कि जिनके मुक्तिस्थानों की प्रसिद्धि है उन्हें ही मुक्ति प्राप्त हुई हो । ऐसा तो शास्त्रों में विशेषरूप से कहा नहीं है कि यह पुरुषों का मोक्ष स्थान है, किन्तु ऐसा ही

इये मायाना प्रकर्षणा देष्याय छे आगम पणु अणु न कडे छे के अरमशरीर नारदादिकेभा पणु मयादिकेनी प्रकर्षता डोय छे तेथी पुरुषो करवा डीन डोवाथी श्रीओना मोक्षना कारखोना विकलता सिद्ध थती नथी अटले के मोक्षना कारखोना श्रीओना सद्भाव छे

वणी तमे अेवी हलील करे के मुक्तिस्थान आदिनी प्रसिद्धि नडी डोवाथी तेना अभावे अेव नणुवा भणे छे के तेमने मोक्ष भणतो नथी जे श्रीओना मोक्षना कारखोनी अविकलता डोत तो तेमने मोक्ष पणु डोय शकत, अने अे अरणुथी तेमना मुक्तिना स्थानोनी पणु प्रसिद्धि थात, अेवु कर्ष पणु न डोवाथी स्पष्ट समजय छे के तेमने मोक्ष भणतो नथी तो अेभ कडेवु ते पणु उचित नथी, कारण के अेवी डोय आ व्याप्ति तो छे नडी के जेमना जेमना मुक्तिस्थानोनी प्रसिद्धि छे तेमने न मोक्ष भण्ये डोय छे ? अेवु तो शास्त्रेभा विशेषइये कडेल नथी के आ पुरुषोनु मोक्ष स्थान छे पणु अेवु न

अथ याज्ञौ पुरुपरगस्य महती समृद्धिस्तीर्णवत्त्वत्पुण्या सा स्त्रीषु नाम्नीत्य-
महर्द्धिकमासा विनश्यते, तदानीमप्यसिद्धता, स्त्रीणामपि परमपुण्यपात्रभूताना का
साचित् तीर्थकरत्वाविरोधात् तद्विरोधसाधकप्रमाणस्य वस्याप्यमाणात् ।

यदपि मायादिप्रकर्षवत्त्वेन पुरुषेभ्योऽपकृष्टत्वमित्युच्यते, तदप्यसत्-स्त्रियः
पुरुषा अपि तुल्यत्वेन मायादि प्रकर्षन्त इति लोके लक्ष्यते, आगमेऽपि श्रूयते-
चरमशरीरिणामपि नारदादीना मायादिप्रकर्षवत्त्वम्, अतो न स्त्रीणा पुरुषेभ्यो-
ऽपकृष्टत्वेन मुक्तिकारणावैक्यरूपस्य हेतोरसिद्धत्वमिति ।

उनसे भिन्न अन्य क्षत्रियादिकों में नहीं होती है । इस लिये इनमें भी
एक की अपेक्षा अमहर्द्धिकपना आनेसे अपकृष्टता आ जायेगी । इस
तरह इनके भी मुक्तिकारणोंकी विकलता होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

यदि कहो कि पुम्परग की जो घड़ी भागी तीर्थकरत्वरूप महाकृद्धि
है वह उनमें नहीं है, इस अपेक्षा उनमें अमहर्द्धिकता पाई जाती है,
सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि कितनीक परम पुण्य की
भाजन स्त्रियों को तो तीर्थकरविभूति की भी प्राप्ति हुई है । इसकी प्राप्ति
होने में वहा कोई विरोध नहीं आता है, कारण उसके विरोध के साधक
कोई भी प्रमाण नहीं है ।

तथा जो ऐसा तुम कहते हो कि स्त्रियों में मायादिक की प्रकर्षता
है अतः इस प्रकर्षता वाली होने से वे पुम्पों की अपेक्षा हीन हैं, सो
ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि इस लोक में स्त्री और पुरुष

होय छे ते तेनाथी जुद्ध न प्रकारना जीन क्षत्रियादिकोभा होती नथी, तेथी
तेओभा पण्य ओकना करता अमहर्द्धिकपण्य आववाथी अपकृष्टता आवी नय
आ रीते तेभने पण्य मोक्षप्राप्तिना कारणेनी विकलता होवानो प्रसंग मण्ये

जे ओवी हलील करे के पुरुषवर्गनी जे घण्टी न भारे तीर्थ करत्वर्ष
महाकृद्धि छे ते तेओभा नथी, आ अपेक्षाजे तेभनाभा अमहर्द्धिकता गण्यथ
छे ते ओभ कहेवु ते पण्य उचित नथी, कारण के केटलीक महापुण्यशाणी
स्त्रीओने तो तीर्थ करविभूतिनी पण्य प्राप्ति थर्छ छे तेनी प्राप्ति थवाभा त्या
कोई विरोध नउते नथी, कारण के तेना विरोधने सिद्ध करनार कोछ पण्य
प्रमाण नथी

तथा तमे ओवी जे हलील करे छे के स्त्रीओभा मायादिकनी प्रकर्षता
छे तेथी जे प्रकर्षतावाणी होवाने कारणे तेओ पुरुषो करता हीन छे, तो ओभ
कहेवु ते पण्य उचित नथी, कारण के आ लोकभा स्त्री अने पुरुष अने समान

आद्यपक्षस्तव समतश्चेत्, नासौ युक्तः, स्त्रीष्वपि यथोक्तप्रतिलेखनादे सर्वथा दर्शनात् । यदि द्वितीयः पक्षस्तदा छद्मस्था पुरुषेष्वपि चारित्र्यादिपरिणामं प्रत्यक्षतया न पश्यन्तीति त्वन्मते पुरुषस्यापि मोक्षो न स्यात् ।

अथ सर्वसम्बन्धिनः प्रत्यक्षस्याभाव इति त्वत्समतश्चेत्, सोऽप्यसगत एव । तथाहि—असर्वज्ञजनेन सकलजनसम्बन्धि प्रत्यक्षात्मक ज्ञानं क्वचिदपि भवितुमशक्यम्, तथा सति पुरुषस्यापि मोक्षो न स्यादिति ।

अथानुमानस्याभावात् प्रमाणाभाव इत्युच्यते, तर्हि अनुमानाभावस्य पुरुषेष्वपि तुल्यत्वेन मुक्तिकारणवैकल्यप्रसङ्गः स्यात् ।

यदि इसमें प्रथमपक्ष स्वीकार किया जाय तो यह युक्त नहीं है, क्यों कि स्त्रियो में भी यथोक्त प्रतिलेखनादि सर्वथा देखे जाते हैं—वे भी प्रतिलेखनादिक करती हैं । यदि द्वितीय पक्ष माना जाय तो छद्मस्थ प्राणी पुरुषों में भी चारित्र्यादि परिणाम को प्रत्यक्षरूप से नहीं देख सकते हैं, अतः तुम्हारे मतमें पुरुषों को भी मुक्ति नहीं होनी चाहिये ।

यदि कहो कि सर्वसवधी प्रत्यक्ष का अभाव है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि असर्वज्ञ को ऐसा ज्ञान ही नहीं हो सकता है कि सर्वसवधी प्रत्यक्ष का अभाव है । ऐसा होने पर पुरुष को भी मोक्ष नहीं हो सकता है ।

यदि कहो कि अनुमान का अभाव होने से प्रमाण का अभाव है सो अनुमान का अभाव पुरुषों में भी तुल्य है, इसलिये वहा भी मुक्ति कारणवैकल्य का प्रसंग प्राप्त होगा ।

जे तेभा पडेलेो पक्ष स्वीकारवाभा आवे तो ते उचित नथी, कारणु के स्त्रीआभा पणु यथोक्त प्रतिलेखनादि सर्वथा जेवाभा आवे छे—तेआ पणु प्रतिलेखनादिक करे छे जे थीजे पक्ष मानवाभा आवे तो छद्मस्थप्राणी पुरुषोभा पणु चारित्र्यादि परिणामने प्रत्यक्षरूपे जेई शकता नथी, तेथी तभारा मत प्रभाजे पुरुषोने पणु मुक्ति न भणवी जेई जे

जे जेम कडेो के सर्वसवधी प्रत्यक्षने अभाव छे तो जेम कडेवु ते पणु योग्य नथी, कारणु के असर्वज्ञने जेवु ज्ञान न होई शकतु नथी के सर्वसवधी प्रत्यक्षने अभाव छे जेवु होय तो पुरुषोने पणु मोक्ष भणी शके नथी

जे जेम कडेो के अनुमानने अभाव होवाथी प्रमाणने अभाव छे तो अनुमानने अभाव पुरुषोभा पणु तुल्य छे तेथी त्या पणु मुक्तिकारणवैकल्यने प्रसंग उत्पन्न थसे

अथ स्त्रीविषये मुक्तिसाधकप्रमाणामायेन मुक्तिकारणावैकल्यरूपस्य हेतोरसिद्धि स्वमिति चेत्, तर्हि तावत् हृदि-मुक्तिसाधकप्रमाणाभावा इत्यत्र यस्य प्रमाणस्या भावस्त्वया विवक्षितः ? किं प्रत्यक्षस्य, किं वाऽनुमानस्य, किं वा-आगमस्येति ? ।

तत्र यदि प्रत्यक्षस्याभावा इति मन्यसे, तर्हि वद, किं स्वसम्बन्धिनः, किं वा सर्वसम्बन्धिनः ? यदि स्वसम्बन्धिनस्तदा किं बाह्य यथाविहितप्रतिलेखनादिरूप कारणवैकल्य तद्विषयस्य ?, किं वाऽन्तर चारित्र्यादिपरिणामस्य तद्विषयस्येति ? ।

कहा है कि भव्य ही मोक्ष के योग्य होते हैं, अतः मुक्तिस्थान आदि की अप्रसिद्धि से जो स्त्रियों को मोक्ष न माना जावे तो तुम्हारे मन से पुरुषों को भी मोक्ष नहीं होना चाहिये ।

अब यदि कहो कि स्त्री के विषय में मुक्तिसाधक प्रमाण का अभाव होने से मुक्तिकारणाऽवैकल्यरूप हेतु की असिद्धि है, सो हम तुमसे यही पूछते हैं कि कहे कौन से प्रमाण का अभाव आप को विवक्षित है ? क्या प्रत्यक्ष का किं वा अनुमान का अथवा आगम का ? ।

यदि कहो कि प्रत्यक्ष का अभाव है सो इस पर पुनः यह पूछा जाता है कि स्वसंबन्धी प्रत्यक्ष का अभाव है अथवा सर्वसंबन्धी प्रत्यक्ष का अभाव है ? । यदि कहो कि स्वसंबन्धी प्रत्यक्ष का अभाव है, तो इस पर भी यह प्रश्न होता है कि यथाविहित प्रतिलेखनादिरूप बाह्य कारणकी अविकलताको देखनेवाले प्रत्यक्षका अभाव है ? अथवा अंतरचरित्र आदि परिणामरूप कारणकी अविकलताको देखनेवाले प्रत्यक्ष का अभाव है ? ।

कहेले छे के लव्य न मोक्षने माटे योज्य होय छे तेथी मुक्तिस्थान आदिनी अप्रसिद्धिनी ले स्त्रीजोने मोक्ष मानवामा न आवे तो तमाश भत प्रभाषे तो पुशोने पणु मोक्ष भणवे न लेधजे

हुवे ले तमे जेम कहेता हो के स्त्रीजोनी भागतमा मुक्तिसाधक प्रमाणो अभाव होवाथी मुक्तिकारणाऽवैकल्यरूप हेतुनी असिद्धि छे, तो तमाशे आपने जे प्रश्न छे के कया प्रमाणोने अभाव आपने विवक्षित छे ? शु प्रत्यक्षने के अनुमानने के आगमने ?

ले तमे प्रत्यक्षने अभाव कहेता हो तो जे भागतमा तमाशे वणी जे पूछवानु छे के स्वसंबन्धी प्रत्यक्षने अभाव छे अथवा सर्वसंबन्धी प्रत्यक्षने अभाव छे, ? ले आप जेम कहेता हो के स्वसंबन्धी प्रत्यक्षने अभाव छे, तो जे विषे पणु तमाशे जे प्रश्न छे के यथाविहित प्रतिलेखनादिऽप बाह्य कारणनी अविकलताने हेतुनाऽप्रत्यक्षने अभाव छे ? अथवा अंतर चरित्र आदि परिणामरूप कारणनी अविकलता हेतुनाऽप्रत्यक्षने अभाव छे ?

न चेह स्त्रीशब्दस्यान्यार्थकत्व परिकल्पनीयम्, तद्विलोकरूढितः, आगमपरिभाषातो वा भवेत् । तत्र लोकरूढितस्तावदन्यार्थकत्व न सम्भवति, लोके हि यस्मिन्नर्थे यः शब्दोऽन्वयव्यतिरेकाभ्या वाचकत्वेन दृश्यते, स तस्यार्थः, यथा गजादिशब्दाना सास्नादिविशिष्टादयः, स्त्रीशब्दस्य लोकप्रसिद्धमर्थमन्तरेणान्यस्य न वाच्यत्वेन लोके शास्त्रे वा प्रतीतिरस्ति ।

मे आगम प्रमाणका भी अभाव नहीं है, देखो—“ इत्थीपुरिससिद्धाय ” यह वाक्य स्वय आगम प्रमाण है । इससे साक्षात् स्त्रीके मोक्षकी सिद्धि होती है, क्यों कि यह वाक्य स्त्रियोंमें अर्थतः मोक्षके कारणोंकी अविकलताको सिद्ध करता है ।

यदि कहो कि यहा “ स्त्री ” शब्द अन्यार्थक है सो ऐसा भी कथन ठीक नहीं है, कारण कि यह ‘स्त्री शब्द अन्यार्थक है’ यह बात आप क्या लोकरूढिसे या आगमकी परिभाषासे कहते हो ? किससे कहते हो ? सो कहो, यदि लोकरूढिसे कहते हो सो यह मान्यता आपकी ठीक नहीं है, कारण कि लोकमें तो यही माना जाता है कि जिस अर्थ में जो शब्द अन्वय-व्यतिरेक स्वयद्वारा सकेतित होता है वह शब्द उसी अर्थ को कहता है, भिन्न अर्थको नहीं । “ स्त्री ” यह शब्द अन्वय-व्यतिरेक द्वारा स्त्रीरूप साध्य अर्थमें ही प्रयुक्त किया गया मिलता है, अत स्त्री रूप पदार्थ ही इस स्त्री-शब्दका वाच्य है । जैसे गो आदि शब्दोंका वाच्य सास्ना (गलकचल) आदिसे विशिष्ट पदार्थ होता है । इस स्त्री

शुभो—“ इत्थीपुरिससिद्धाय ” आ वाक्य पोते न आगमप्रमाण्ये, तेथी साक्षात् स्त्रीना मोक्षनी सिद्धि थाय छे कारण्यु के आ वाक्य श्रीश्रीमा अर्थत मोक्षना कारण्युनी अविकलताने सिद्ध करे छे

ने आप्ये अर्थ कहेता हो के अर्धी “ स्त्री ” शब्द अन्यार्थक छे तो अर्थ कथन पण्यु परापर नथी कारण्यु के आ “ स्त्री शब्द अन्यार्थक छे ” अर्थ वात आप्यु शु लोकरूढिथी के आगमनी परिभाषाथी कहे छे ? शाथी कहे छे ते अतावे ने लोकरूढिथी कहेता हो तो आपनी अर्थ मान्यता परापर नथी, कारण्यु के लोकाभा तो अर्थ मनाय छे के ने अर्थमा ने शब्द अन्वयव्यतिरेक स्वयद्वारा सकेतित होय छे, ते शब्द अर्थ दर्शावे छे, लुहो नर्धी “ स्त्री ” आ शब्द अन्वयव्यतिरेकद्वारा स्त्रीरूप साध्य अर्थमा न परायेल भये छे, तेथी स्त्रीरूप पदार्थ न आ “ स्त्री ” शब्दने वाच्य छे नेम “ गो ” आदि शब्दने वाच्य सास्ना (गलकचल) आदिथी विशिष्ट पदार्थ छे आ

अथ पुरुषेण्येवानुमानप्रमाणमस्ति, तथाहि-गदृत्कर्णापकर्षाभ्यामपकर्षोत्कर्षा, तस्यात्यन्तापकर्षे तदत्यन्तोत्कर्षश्च दृष्टम्, यथाऽभ्रपटलापगमे मूर्धपक्षात् । एवं रागाद्युत्कर्षापकर्षाभ्यामपकर्षोत्कर्षश्च चारित्रादिक भवति । रागादेरत्यन्तापकर्षा, स्त्रीषु न भवतीत्यतस्तत्र नास्ति चारित्रोत्कर्ष इति चेत्, तत्सद्व-पुरुषेण रागादरत्यन्तापकर्षो भवति, न तु स्त्रीषु, इति नियमो नास्ति, प्रयश्चिरोधात्, दृश्यते हि स्त्रीष्वपि रागादेरत्यन्तापकर्षः ।

नाप्यागमप्रमाणस्याभावा इति शक्यं, तस्यैव 'इत्थीपुरिसमिद्धाय' इत्यादिना प्रस्तुतस्यापि साक्षात् स्त्रीमोक्षाभिधायक्येनार्थतन्त्रकारणात्प्रत्ययमाधकत्वात् ।

यदि कहो कि पुरुषों में तो अनुमान प्रमाण है और वह इस प्रकार है-जिसके उत्कर्ष एवं अपकर्ष में जिसका अपकर्ष और उत्कर्ष देगा जाना है वह उसके अत्यन्त अपकर्ष में अत्यन्त उत्कर्ष वाला होता है । जैसे-अभ्रपटल के अपगम होने पर सूर्य प्रकाश का उत्कर्ष होता देखा जाता है । इसी तरह रागादिकों के उत्कर्ष में चारित्रादिकों का अपकर्ष और उनके अपकर्ष में उनका उत्कर्ष होता है । अतः इस अनुमान से पुरुषों में ही रागादिकों के अपकर्षसे चारित्र आदि गुणोंका उत्कर्ष स्थापित होता है, स्त्रियोंमें नहीं, क्यों कि उनमें रागादिकोंका अत्यन्त अपकर्ष सम्बन्धित नहीं होता है, सो ऐसा कहना भी ठीकनहीं, कारण कि ऐसा कोई नियम नहीं है जो पुरुषों में ही रागादिकका अत्यन्त अपकर्ष हो, तथा स्त्रियोंमें न हो, क्यों कि ऐसा मानना प्रत्यक्षसे बाधित होता है । प्रत्यक्ष प्रमाण इस बातका समर्थक है कि रागादिकोंका अत्यन्त अपकर्ष स्त्रियोंमें भी होता है, इस

ने जेभ कडे के पुरुषोभा तो अनुमान प्रमाण छे अने ते आ प्रकार छे-जेना उत्कर्ष अने अपकर्षमा जेना अपकर्ष अने उत्कर्ष जेवामा आवे छे ते तेना अत्यन्त अपकर्षमा अत्यन्त उत्कर्षवाणु डोय छे जेभ-अभ्रपटलने अपगम यथा सूर्यप्रकाशने उत्कर्ष थतो नजरे पडे छे जेभ प्रमाणे रागादि केना उत्कर्षमा चारित्रादिकेना अपकर्ष अने तेमना अपकर्षमा तेमने (चारित्रादिकेना) उत्कर्ष थाय छे, तेथी आ अनुमानथी पुरुषोभा न रागादिकेना अपकर्षथी चारित्र आदि गुणोना उत्कर्ष साधित थाय छे, स्त्रीओभा नही, कारण के तेओभा रागादिकेना अत्यन्त अपकर्ष सलवित डोतो नथी, तो जेभ कडेपु ते पणु उचित नथी, कारण के जेवो केाई नियम नथी के पुरुषोभा न रागादिकेना अत्यन्त अपकर्ष डोय, तथा स्त्रीओभा न डोय कारण के जेभ मानपु ते प्रत्यक्षथी बाधित थाय छे प्रत्यक्ष प्रमाणे जे वातपु समर्थक छे के रागादिकेना अत्यन्त अपकर्ष स्त्रीओभा पणु डोय छे, जेभा आगमना प्रमाणेना अलाप पणु नथी,

न चेह स्त्रीशब्दस्यान्यार्थकत्वं परिकल्पनीयम्, तद्विलोकरूढितः, आगमपरिभाषातो वा भवेत् । तत्र लोकरूढितस्तावदन्यार्थकत्वं न सम्भवति, लोके हि यस्मिन्नर्थे यः शब्दोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां वाचकत्वेन दृश्यते, स तस्यार्थः, यथा गणादिशब्दानां सास्नादिविशिष्टादयः, स्त्रीशब्दस्य लोकप्रसिद्धमर्थमन्तरेणान्यस्य न वाच्यत्वेन लोके शास्त्रे वा प्रतीतिरस्ति ।

मैं आगम प्रमाणका भी अभाव नहीं है, देखो—“ इत्थीपुरिससिद्धाय ” यह वाक्य स्वयं आगम प्रमाण है । इससे साक्षात् स्त्रीके मोक्षकी सिद्धि होती है, क्यों कि यह वाक्य स्त्रियोंमें अर्थतः मोक्षके कारणोंकी अविकलताको सिद्ध करता है ।

यदि कहो कि यहाँ “ स्त्री ” शब्द अन्यार्थक है सो ऐसा भी कथन ठीक नहीं है, कारण कि यह ‘स्त्री शब्द अन्यार्थक है’ यह बात आप क्या लोकरूढिसे या आगमकी परिभाषासे कहते हो ? किससे कहते हो ? सो कहो, यदि लोकरूढिसे कहते हो सो यह मान्यता आपकी ठीक नहीं है, कारण कि लोकमें तो यही माना जाता है कि जिस अर्थ में जो शब्द अन्वय-व्यतिरेक सवधद्वारा सकेतित होता है वह शब्द उसी अर्थ को कहता है, भिन्न अर्थको नहीं । “ स्त्री ” यह शब्द अन्वय-व्यतिरेक द्वारा स्त्रीरूप साध्य अर्थमें ही प्रयुक्त किया गया मिलता है, अतः स्त्रीरूप पदार्थ ही इस स्त्री-शब्दका वाच्य है । जैसे गो आदि शब्दोंका वाच्य सास्ना (गलकवल) आदिसे विशिष्ट पदार्थ होता है । इस स्त्री

बुझो—“ इत्थीपुरिससिद्धाय ” आ वाक्य पोते न आगमप्रमाण छे, तेथी साक्षात् स्त्रीना मोक्षनी सिद्धि थाय छे कारण के आ वाक्य स्त्रीमोक्ष अर्थतः मोक्षना कारणानी अविकलताने सिद्ध करे छे

जे आप जेभ कहेता हो के अही “ स्त्री ” शब्द अन्यार्थक छे तो जेवु कथन पणु परापर नथी कारण के आ “ स्त्री शब्द अन्यार्थक छे ” जे बात आप शु लोकरूढिथी के आगमनी परिभाषाथी कहेता छे ? शाब्दी कहेता छे ते भतावे। जे लोकरूढिथी कहेता हो तो आपनी जे मान्यता परापर नथी, कारण के लोकाभा तो जेभ बनाय छे के जे अर्थमा जे शब्द अन्वयव्यतिरेक सवधद्वारा सकेतित होय छे, ते शब्द जेभ अर्थ दर्शावे छे, बुझे नही “ स्त्री ” आ शब्द अन्वयव्यतिरेकद्वारा स्त्रीरूप साध्य अर्थमा न परायेव भजे छे, तेथी स्त्रीरूप पदार्थ न आ “ स्त्री ” शब्दना वाच्य छे जेभ “ गो ” आदि शब्दना वाच्य सास्ना (गलकवल) आदिथी विशिष्ट पदार्थ छे आ

નાપ્યાગામપરિભાષાતોડન્યાર્થત્વ સ્ત્રી-શબ્દમ્ય સંમયતિ, ક્વચિદપ્યાગમે દિ સ્ત્રીશબ્દસ્ય પરિભાષિતોડ્યો નામ્નોતિ । યથા-ન્યાકરણે “વૃદ્ધિરાદૈચ્” ૧૧, ૧, ૧ ।” ઇતિ વૃદ્ધિ-શબ્દમ્યાદૈચ્નો । દૃશ્યતે નાગમેડપિ લોકરુદ્ધ પ્યાર્થ સ્ત્રીશબ્દઃ પ્રયુક્તઃ । ‘ઇત્યીઓ જતિ છદ્ધિ’ ઇત્યાદી ।

ન ચ તત્રાપ્યર્થાન્તરકલ્પના કવૃં શક્યેતિ ગાન્યમ્, વાધક વિના તદનુપપત્તેઃ ।

ઉક્તશ્ચ—પરિભાષિતો ન શાસ્ત્રે, મનુજી-શબ્દોડથ લૌકિકોડધિગતઃ ।

અસ્તિ ચ ન તત્ર વાધા, સ્ત્રી-નિર્વાણ તતો ન કુત્ ॥ ૧ ॥

શબ્દકા લોક પ્રસિદ્ધ અર્થકે સિવાય અન્ય અર્થ છે, યદ્ વાત ન તો લોક મેં પ્રસિદ્ધ છે ઓર ન આગમમેં પ્રસિદ્ધ છે ।

હસી તરહ આગમની પરિભાષાસે ‘સ્ત્રી શબ્દ અન્ય અર્થકા વાચક છે’ ંસા કહના ઠીક નહીં છે, કારણ કિ કિસી મી આગમમેં કહી પર મી સ્ત્રી શબ્દકા અન્ય અર્થ કથિત નહીં હુઆ છે । જિસ પ્રકાર વ્યાકરણમેં વૃદ્ધિ શબ્દકા અર્થ ‘આત્ એચ્’ (આ એ ઓ) હોતા છે । ટમી પ્રકાર આગમમે મી લોકરુદ્ધ હી અર્થ મેં સ્ત્રી-શબ્દ પ્રયુક્ત હુઆ છે । જંસે— “ ઇત્યીઓ જતિ છદ્ધિ’ ઇત્યાદિકી તરહ ।

યદિ કહો કિ હમ યદા મી અન્ય અર્થકી કલ્પના કર લેંગે, સો ંસા કહના મી ડચિત નહીં છે, કારણ કિ યદ્ વાત વાધકકે વિના નહીં વન સકતી છે । કહા મી છે—

“ પરિભાષિતો ન શાસ્ત્રે, મનુજી-શબ્દોડથ લૌકિકોડધિગત ।

અસ્તિ ચ તત્ર ન વાધા, સ્ત્રી-નિર્વાણ તતો ન કુત્ ” ॥ ૧ ॥

“સ્ત્રી” શબ્દનો લોકપ્રસિદ્ધ અર્થના સિવાય ખીલો અર્થ છે, એ વાત લોકમા પ્રસિદ્ધ નથી, અને આગમમા પણ પ્રસિદ્ધ નથી

આ રીતે આગમની પરિભાષાથી “ સ્ત્રી શબ્દ અન્ય અર્થ દર્શાવનાર છે ” એમ કહેવું તે ઉચિત નથી, કારણ કે કોઈ પણ આગમમા કયા ય પણ સ્ત્રી શબ્દનો ખીલો અર્થ કહેલ નથી જે પ્રકારે વ્યાકરણમા વૃદ્ધિ શબ્દનો અર્થ આત્ એચ્ (આ એ ઓ) થાય છે, એજ પ્રકારે આગમમા પણ લોકરુદ્ધ અર્થમા જ સ્ત્રી શબ્દ વપરાયો છે જેમડે— “ ઇત્યીઓ જતિ છદ્ધિ ” ઇત્યાદિની જેમ જો આપ એમ કહો કે અમે યાહી પણ અન્ય અર્થની કલ્પના કરી લેશું, તો એમ કહેવું તે પણ ઉચિત નથી, કારણ કે આ વાત કોઈ પણ મુશ્કેલી વિના નિશ્ચિત થઈ શકે છે કહ્યું પણ છે—

“ પરિભાષિતો ન શાસ્ત્રે, મનુજી-શબ્દોડથ લૌકિકોડધિગત ।

અસ્તિ ચ તત્ર ન વાધા, સ્ત્રીનિર્વાણ તતો ન કુત્ ” ॥૧॥

ननु पुरुषाभिलाषात्मनि वेदाख्ये भावे स्त्रीशब्द आगमे प्रयुक्तो दृश्यते, इति शास्त्रेऽर्थान्तरदर्शनादन्योऽर्थस्तत्र कल्पनीयः इति चेत्, शृणु, पुरुषाभिलाषरूपो वेदः स्त्री-शब्दस्यार्थ इति त्वया कथं निश्चितम् ? किं 'स्त्रीवेदः' इति शब्दश्रवणमात्रादेव सोऽर्थो निश्चितः ? किं वा-स्त्रीत्वस्य पत्युशतपृथक्त्वावस्थानाभिधानात् ? ।

तात्पर्यं यह कि-मनुजी-शब्द अर्थात् स्त्री-शब्द पारिभाषिक नहीं है, अतः व्याकरणमे वृद्धि शब्दके समान स्त्री-शब्दका कोई आगम-परिभाषित अर्थ नहीं हो सकता । रहा लोकरूढिपक्ष । उममें भी स्त्री शब्दका लोकप्रसिद्ध 'स्त्री' अर्थसे भिन्न अर्थ नहीं हो सकता । क्योंकि ऐसा अर्थ उसी स्थलमें होता है जहा कि मुख्य अर्थ बाधित होता हो । जैसे- ' गङ्गाया घोष ' यहा पर गङ्गाके मुख्य अर्थ प्रवाहमें घोषकी स्थिति असंभव है, इसी लिये वहा पर ' गङ्गा ' शब्दका अर्थ लक्षणासे तीर होता है । उमी प्रकार यहा पर स्त्री-शब्दके मुख्यार्थ में कोई बाधा नहीं है, इस लिये मुख्यार्थको छोड कर गौण अर्थ नहीं लिया जा सकता, तब स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्तिमे बाधा क्या ? उन्हें मोक्ष क्यों नहीं मिलेगा ? वस्तुतः वे भी मोक्षके अधिकारवाली है ।

यदि कहो कि पुरुषाभिलाषात्मक भाववेदमें स्त्री शब्द आगममे प्रयुक्त हुआ है अतः स्त्री-शब्दका यह भाववेदरूप स्त्री-अर्थ हम मान लेंगे, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि ' स्त्री-शब्दका पुरु

तात्पर्यं ये के मनुजी शब्द अर्थात् स्त्री-शब्द पारिभाषिक नहीं तेथी व्याकरणमा 'वृद्धि' शब्दना जेवो 'स्त्री' शब्दना केरि आगमपरिभाषित अर्थ होई शके नही हुवे रह्यो लोकरूढ पक्ष । तेमा पक्ष 'स्त्री' शब्दना लोकप्रसिद्ध 'स्त्री' अर्थथी भिन्न अर्थ होई शके नही कारण के जेवो अर्थ जेन स्थले थाय छे के जेना मुख्य अर्थ व्याधित थतो होय जेभके- " गङ्गाया घोष " अर्थात् गङ्गाया मुख्य अर्थ प्रवाहमा घोषनी स्थिति असंभवित छे, तेथी ते स्थाने " गङ्गा " शब्दना अर्थ लक्षणाथी 'तीर' थाय छे जे प्रकारे अर्थात् स्त्री शब्दना मुख्यार्थमा केरि बाधा नथी, तेथी मुख्यार्थने जतो करीने गौण अर्थ लक्षणाथी नही तो स्त्रियोने मोक्ष प्राप्तिमा सुक्केली शी ? तेभने था भाटे मोक्ष न भणे ? भरी रीते तो तेजो पक्ष मोक्षनी अधिकारी छे

जे आप जेभ कहे के पुरुषाभिलाषात्मक भाववेदमा स्त्री-शब्द आगममा वपराये छे तेथी स्त्री-शब्दना आ भाववेदरूप स्त्री-अर्थ जेभे मानी लक्ष्य तो जेभ कहेवु ते पक्ष ज्यो नथी, कारण के " स्त्री-शब्दना पुरुषाभिलाषरूप

नाप्यागामपरिभाषातोऽन्यार्थत्व स्त्री-शब्दस्य सम्भवति, अविद्विष्यागम हि स्त्रीशब्दस्य परिभाषितोऽर्थो नाम्नीति । यथा-न्याकरणे “ वृद्धिरादेन् ” ११, १, १ । ” इति वृद्धि-शब्दभ्यादैर्चा । दृश्यते चागमोऽपि लोकरूढ पणार्थे स्त्रीशब्द-प्रयुक्तः । ‘ इत्थीओ जति छट्टि ’ इत्यादौ ।

न च तत्राप्यर्थान्तरकल्पना कर्तुं शक्येति शक्यम्, बाधकं विना तदनुपपत्तेः ।
उक्तञ्च—परिभाषितो न शास्त्रे, मनुजी-शब्दोऽथ लौकिकोऽधिगतः ।

अस्ति च न तत्र बाधा, स्त्री-निर्वाण ततो न कुतः ॥ १ ॥

शब्दका लोक प्रसिद्ध अर्थके सिवाय अन्य अर्थ है, यह बात न तो लोक में प्रसिद्ध है और न आगममें प्रसिद्ध है ।

इसी तरह आगमकी परिभाषासे ‘स्त्री शब्द अन्य अर्थका वाचक है’ ऐसा कहना ठीक नहीं है, कारण कि किसी भी आगममें कहीं पर भी स्त्री शब्दका अन्य अर्थ कथित नहीं हुआ है । जिस प्रकार व्याकरणमें वृद्धि शब्दका अर्थ ‘आत् ऐच्’ (आ ऐ औ) होता है । उसी प्रकार आगममें भी लोकरूढ ही अर्थ में स्त्री-शब्द प्रयुक्त हुआ है । जैसे—
“ इत्थीओ जति छट्टि ’ इत्यादिकी तरह ।

यदि कहो कि हम यहाँ भी अन्य अर्थकी कल्पना कर लेंगे, तो ऐसा कहना भी उचित नहीं है, कारण कि यह बात बाधकके बिना नहीं बन सकती है । कहा भी है—

“ परिभाषितो न शास्त्रे, मनुजी-शब्दोऽथ लौकिकोऽधिगतः ।

अस्ति च तत्र न बाधा, स्त्री-निर्वाण ततो न कुतः ” ॥ १ ॥

“स्त्री” शब्दको लोकप्रसिद्ध अर्थना सिवाय भीले अर्थ है, ये बात लोकमा प्रसिद्ध नहीं, अने आगममा पणु प्रसिद्ध नहीं

आ रीते आगमनी परिभाषाथी “ स्त्री शब्द अन्य अर्थ दर्शावनार छे ”
अम कडेपु ते उचित नहीं, कारण के कोछ पणु आगममा क्या य पणु स्त्री शब्दको भीले अर्थ कडेल नहीं जे प्रकारे व्याकरणमा वृद्धि शब्दको अर्थ आत् ऐच् (आ ऐ औ) थाय छे, अने प्रकारे आगममा पणु लोकरूढ अर्थमा ज स्त्री शब्द वपराथे छे जेमके—“ इत्थीओ जति छट्टि ” इत्यादिनी जेम ले आप अम कडे के अने अडी पणु अन्य अर्थनी कल्पना करी देखु, तो अम कडेपु ते पणु उचित नहीं, कारण के आ बात कोछ पणु मुश्कली विना निश्चित थर् शके छे कहु पणु छे—

“ परिभाषितो न शास्त्रे, मनुजी-शब्दोऽथ लौकिकोऽधिगतः ।

अस्ति च तत्र न बाधा, स्त्रीनिर्वाण ततो न कुतः ” ॥१॥

ननु पुरुषाभिलाषात्मनि वेदाख्ये भावे स्त्रीशब्द आगमे प्रयुक्तो दृश्यते, इति शास्त्रेऽर्थान्तरदर्शनादन्योऽर्थस्तत्र कल्पनीयः इति चेत्, शृणु, पुरुषाभिलाषरूपो वेदः स्त्री-शब्दस्यार्थ इति त्वया कथं निश्चितम् ? किं 'स्त्रीवेदः' इति शब्दश्रवणमात्रादेव सोऽर्थो निश्चितः ? किं वा-स्त्रीत्वस्य पत्युशतपृथक्त्वावस्थानाभिधानात् ? ।

तात्पर्य यह कि-मनुजी-शब्द अर्थात् स्त्री-शब्द पारिभाषिक नहीं है, अतः व्याकरणमे वृद्धि शब्दके समान स्त्री-शब्दका कोई आगम-परिभाषित अर्थ नहीं हो सकता । रहा लोकरूढिपक्ष ! उसमे भी स्त्री शब्दका लोकप्रसिद्ध 'स्त्री' अर्थसे भिन्न अर्थ नहीं हो सकता । क्योंकि ऐसा अर्थ उसी स्थलमें होता है जहा कि मुख्य अर्थ बाधित होता हो । जैसे-'गङ्गाया घोष' यहां पर गङ्गाके मुख्य अर्थ प्रवाहमें घोषकी स्थिति असंभव है, इसी लिये वहा पर 'गङ्गा' शब्दका अर्थ लक्षणासे तीर होता है । उसी प्रकार यहां पर स्त्री-शब्दके मुख्यार्थ में कोई बाधा नहीं है, इस लिये मुख्यार्थको छोड़ कर गौण अर्थ नहीं लिया जा सकता, तब स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्तिमे बाधा क्या ? उन्हें मोक्ष क्यों नहीं मिलेगा ? वस्तुतः वे भी मोक्षके अधिकारवाली हैं ।

यदि कहो कि पुरुषाभिलाषात्मक भाववेदमें स्त्री शब्द आगममे प्रयुक्त हुआ है अतः स्त्री-शब्दका यह भाववेदरूप स्त्री-अर्थ हम मान लेंगे, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि 'स्त्री-शब्दका पुरु

तात्पर्य' ये के मनुजी शब्द अटले के स्त्री-शब्द पारिभाषिक नहीं तेथी व्याकरणमा 'वृद्धि' शब्दना जेवे 'स्त्री' शब्दना केरि आगमपरिभाषित अर्थ होई शके नही हवे रह्यो लोकरूढ पक्ष । तेमा पणु 'स्त्री' शब्दना लोकप्रसिद्ध "स्त्री" अर्थथी भिन्न अर्थ होई शके नही कारण के जेवे अर्थ जेन स्थणे थाय छे के जेना मुख्य अर्थ व्याधित थतो होय जेभके-"गङ्गाया घोष" अही गङ्गाना मुख्य अर्थ प्रवाहमा घोषनी स्थिति अम लपित छे, तेथी ते स्वाने "गङ्गा" शब्दना अर्थ लक्षणाथी 'तीर' थाय छे जे प्रकारे अही स्त्री शब्दना मुख्यार्थमा केरि बाधा नहीं, तेथी मुख्यार्थने जतो करीने गौण अर्थ लक्षणाय नही तो स्त्रीजाने मोक्ष प्राप्तिमा मुश्किली शी ? तेभने शा भाटे मोक्ष न भजे ? परी शीते तो तेजो पणु मोक्षनी अधिकारी छे

जे आप जेभ कडे के पुरुषाभिलाषात्मक भाववेदमा स्त्री-शब्द आगममा वपराये छे तेथी स्त्री-शब्दना आ भाववेदरूप स्त्री-अर्थ अमे भानी लक्ष्य तो जेभ कडेवु ते पणु जेज्य नहीं, कारण के "स्त्री-शब्दना पुरुषाभिलाषप

न तात् 'स्त्रीवेदः' इति शब्दश्रवणमात्रात् सोऽर्थो निश्चेतुं शक्यते, यत्र स्त्री चासौ वेदश्च स्त्रीवेद इति समानाधिकरणसमासो भवेत् तदा स्त्रीशब्दस्यार्थान्तरे वृत्तिर्भवेत् । स च समानाधिकरणसमासः किं बाधकाभावेन कल्पनीयः ? किं वा समासान्तराऽसम्भवेन ? ।

न तात् बाधकाभावेन समानाधिकरणसमासः कल्पनीय इति यत्तुं युक्तम्, तत्र हि स्त्रीशब्दस्य पुरुषाभिलाषात्मको भाव एवार्थो भवेत्, तन् किं न एव साक्षादर्थः ?, किं वा तदपलक्षितं शरीरम् ? ।

पाभिलाषरूप भाववेद 'यह अर्थ है, यह बात आप कैसे निश्चित करते हैं ? क्या 'स्त्रीवेद' इस शब्दके श्रवणमात्रसे ही, अथवा स्त्रीत्वके पत्यशतपृथक्त्वपर्यन्त अवस्थाके अभिधानसे ? ।

यदि प्रथमपक्ष अगीकार करो सो ठीक नहीं है, कारण कि "स्त्रीवेद" इस शब्दके श्रवणमात्रसे भाववेदरूप स्त्री-अर्थ निश्चित नहीं होता है । हा यदि "स्त्री चासौ वेदः-स्त्रीवेद" ऐसा समानाधिकरण समास होता तो स्त्री-शब्दकी अन्य अर्थमें वृत्ति हो सकती । यहा ऐसा समानाधिकरण समास बाधकाभावसे कल्पनीय हुआ है या अन्य समासके यहा अभावसे हुआ है । यदि कहो कि बाधकके अभावसे समानाधिकरण समास कल्पनीय हुआ है सो इस समासमें स्त्री शब्दका अर्थ पुरुषाभिलाषरूप भाववेद ही होगा सो यही अर्थ क्या इसका साक्षात् अर्थ होगा या इससे उपलक्षित 'शरीर' उसका अर्थ होगा । यदि कहो कि पुरुषा

भाववेद " ये अर्थ छे, ये बात आप ठेवी रीते नकरी करे छे ? शु "स्त्रीवेद" आ शब्दना श्रवणमात्रथी न अथवा स्त्रीत्वना पत्यशतपृथक्त्वपर्यन्त अवस्थानना अभिधानथी ?

जे पड़ेलेो पक्ष स्वीकारे तो ते उचित नथी, कारण के "स्त्रीवेद" आ शब्दना श्रवणमात्रथी भाववेदरूप 'स्त्री' अर्थ नकरी थतो नथी छे, जे "स्त्री चासौ वेद-स्त्रीवेद" जेवे समानाधिकरण समास छे तो स्त्री-शब्दनी पीछे अर्थमा वृत्ति छे शकत अर्द्धी जेवे समानाधिकरण समास बाधकना अभावथी कल्पनीय थये छे के अन्य समासना अर्द्धी अभावथी थये छे ? जे जेम् कहे के बाधकना अभावथी समानाधिकरण समास कल्पनीय थये छे तो आ समासमा स्त्री-शब्दने अर्थ पुरुषाभिलाषरूप भाव वेद न छे, तो जे अर्थ शु तेना साक्षात् अर्थ थये के तेना वडे उपलक्षित शरीर तेना अर्थ

यदि पुरुषाभिलापरूपो भाव एव साक्षादर्थ इति मन्यसे, तदा ब्रूहि-किं तदैव तद्भावस्तत्र समतः, किं भूतपूर्वगत्या वा ? तत्र यदि तदैव स पुरुषाभिला-
लापात्मको भाव', स्त्रीशब्दार्थस्तदा भवदभिमत पुरुष निर्वाणावस्थायामपि
वेदसमयः स्यात् । न चेतदागमप्रसिद्धमिति तादृशार्थस्वीकारे आगमनिरोधः ।

यदि भूतपूर्वगत्या पुरुषाभिलापरूपो भाव' स्त्रीशब्दार्थः, इति ममतस्तर्हि देवादी-
नामपि निर्वाणप्राप्तिसमयः स्यात् । तथा च-“सुरणारण्यसु चत्वारि ह्येति” सुर-
नारकेषु चत्वारि भवन्ति 'गुणस्थानानि' इत्याद्यागमविरोधः, तेष्वपि भूतपूर्वगत्या
चतुर्दशगुणस्थानमभवात् ।

भिलापरूप भाव ही साक्षात् स्त्री शब्दका अर्थ होगा तो हम पृच्छते हैं
कि क्या उसी समय यह भाव तुम्हें समत है या भूतपूर्वगतिसे यह भाव
तुम्हें समत है । यदि कही स्त्री-शब्दका अर्थ उसी समय-उस पर्यायमें
ही पुरुषाभिलापरूप भाववेद है, ऐसा हमें समत है, सो ऐसी अवस्थामें
आपके अभिमत पुरुषनिर्वाणमे भी वेदका सभव माना जायेगा । परन्तु
निर्वाण अवस्थामे तो वेदकी सभवता होती ही नहीं है, यह बात
आगममे प्रसिद्ध है, अतः स्त्री शब्दका अर्थ भाववेद स्त्री मानना यह
ठीक नहीं है ।

यदि कहो कि भूतपूर्व गतिसे पुरुषाभिलापरूप भाव, स्त्री-शब्दका
वाच्य है तो ऐसी स्थितिमें देवादिकोंके भी निर्वाणकी प्राप्ति होने का
प्रसंग आता है, जो “सुरणारण्यसु चत्वारि ह्येति” अर्थात् देव और

थगे ? ने ऐम कहेता हो के पुरुषाभिलापरूप भाव न साक्षात् स्त्री शब्दने
अर्थ थगे तो अमे पृथीये छीये के शु ऐन समये आ भाव तमने कपूल छे
के भूतपूर्वगतिथी आ भाव तमने कपूल छे ? ने आप ऐम कहेता हो के
स्त्री-शब्दने अर्थ ऐन समये-ये पर्यायभा-न पुरुषाभिलापरूप भाव वेद छे
ऐषु अमने मजूर छे तो ऐवी अवस्थामा आपना अभिमत पुरुषनिर्वाणमा
पपु वेदने सभव मनाशे पणु निर्वाण-अवस्थामा तो वेदनी अभावितता
होती न नथी, ऐ वात आगममा प्रसिद्ध छे, तथी स्त्री-शब्दने अर्थ भाववेद
स्त्री मानवे उचित नथी

ने ऐम कहेता हो के भूतपूर्व गतिथी पुरुषाभिलापरूप भाव, स्त्री-शब्दने
वाच्य छे तो ऐवी स्थितिमा देवादिकोंने पणु निर्वाणनी प्राप्ति थवाने प्रसंग
आवे छे, ऐम “सुरणारण्यसु चत्वारि ह्येति” अर्थात् देव अने नारकीमा थार
न० ३२

अथ तदुपलक्षित पुरुषशरीरं स्त्रीशब्दार्थ इति चेत्, तदा कथय, पुरुषाभिलाष रूपो भावः पुरुषशरीरोपलक्षणतया यदि विवक्षितस्तत्रामौ वि नियतवृत्तिः ? किं वा अनियतवृत्ति ? रिति ।

यदि नियतवृत्तिस्तदाऽऽगमविरोधः ? परिवर्तमानतया पुरुषशरीरे वेदोदयस्य तत्राभिधानात्, नियतवृत्तिताया अनुभवोऽपि न भवति ।

अथानियतवृत्तिश्चेत्, तदैवं यद्-कथमसौ तदुपलक्षणम्? अर्थरूपमपि गृहादिषु काकाद्युपलक्षण दृश्यते इत्यत्रापि तयोच्यते,

नारकी में चार गुणस्थान होते हैं, इस आगमवाक्यका विरोधक होता है, कारण कि भूतपूर्वगतिकी अपेक्षासे तो देव नारकों में भी चतुर्दश गुणस्थानों की सम्भावना होगी ।

यदि 'स्त्री-शब्दका अर्थ भाववेदसे उपलक्षित पुरुषका शरीर है' ऐसा कहो तो कन्वे-पुरुषाभिलाषरूप भावपुरुष शरीरके उपलक्षणपनेसे यदि विवक्षित है तो यह क्या कहा नियत-वृत्तिवाला है कि अनियत वृत्तिवाला है ? ।

यदि नियत-वृत्तिवाला माना जाय तो आगमसे विरोध आता है, क्यों कि परिवर्तनपनेसे ही पुरुषशरीरमें वेदका उदय आगममें कहा है । तथा नियतवृत्तिरूपसे तो अनुभव भी नहीं होता है ।

यदि यह कहा "कौआवाला देवदत्त का घर है" इसके समान अनियत-वृत्तिवाला है, ऐसा कहते होते स्त्री-शरीरमें भी कभीर पुरुष-वेदका उदय-सम्भवित होता है, अतः तुम्हारे मतमें भी स्त्रियोंको निर्वाण

गुणस्थान डोय छे, ओ आगमवाक्यनु विरोधक थाय छे, कारण के भूतपूर्व गतिनी अपेक्षासे तो देव-नारकोभा पण्य औदगुण्यस्थानोनी सम्भावना छे

जे "स्त्री शब्दनेो अर्थ भाववेदथी उपलक्षित पुरुषनु शरीर छे" ओम कहेो तो पुरुषाभिलाषरूप भावपुरुष-शरीरना उपलक्षणपण्यथी जे विवक्षित छे तो ते शु त्या नियतवृत्तिवाणो छे के अनियतवृत्तिवाणो छे ?

जे नियतवृत्तिवाणो मानवामा आवे तो आगमथी विरुद्ध गण्यथ, कारण के परिवर्तनपण्यथी न पुरुषशरीरमा वेदनेो उदय आगममा कहेल छे तथा नियतवृत्तिरूपथी तो अनुभव पण्य थतो नथी

जे आ त्या "कौआवाला देवदत्तनु घर छे" ओना जेवो अनियत-वृत्तिवाणो छे, ओम कहेता छे तो स्त्री-शरीरमा क्यारैक क्यारैक पुत्रवेदनेो उदय सम्भवित डोय छे, तेथी तभारा मत प्रमाणे पण्य स्त्रीओने निर्वाणप्रति

एवं सति स्त्रीशरीरेऽपि रुदाचित् पुरुषवेदस्योदयसंभवात् स्त्रीणामपि तत्रमते-
निर्वाणापत्तिः, यथा हि पुरुषाणां भावतः स्त्रीत्वम्, एव स्त्रीणामपि भावतः पुरु-
षत्वसंभवोऽस्ति, भाव एव च मुख्यमुक्तिकारणम् । तथा च-यद्यपकृष्टेनापि
स्त्रीत्वेन पुरुषाणां निर्वाणम्, एवमुत्कृष्टेन भावपुरुषत्वेन स्त्रीणामपि कृतो निर्वाण
न स्यात् इति ।

न च समासान्तरासभवेन 'स्त्रीवेद.' इत्यत्र समानाधिकरणसमासकल्पन,
स्त्रियावेदः स्त्रीवेद इति पृष्ठी समासस्यापि संभवात् न चास्य स्त्रीशरीर-पुरुषाभि-
लापात्मकवेदयोः सम्बन्धाभावेनायुक्तत्वमिति वाच्यम्, यतस्तयोः सम्बन्धाभावः
किं भिन्नरुमोदय रूपत्वेन किं वा पुरुषत्वं स्त्रिया अपि स्त्रिया प्रवृत्तिदर्शनेन ? ।

प्राप्ति होनेकी आपत्ति आती है । जैसे पुरुषोंके भावकी अपेक्षा स्त्रीत्व
है इसी तरह स्त्रियोंके भी भावकी अपेक्षा पुस्त्व संभव है । तथा मुक्ति
का कारण मुख्यतासे भाव ही बतलाया गया है, अतः जब अपकृष्टभाव
स्त्रीपनेसे युक्त पुरुषोंको निर्वाण होता है तब स्त्रियोंको भी उत्कृष्ट भाव
पुरुषत्वकी अपेक्षासे निर्वाण प्राप्त क्यों नहीं हो सकेगा ? अवश्य
हो सकेगा ?

तथा समासान्तर के असंभव होने से "स्त्रीवेद" यहा 'समाना-
धिकरण समास हुआ है' ऐसा नहीं मानना चाहिये, क्यों कि "स्त्रियो
वेद" इस तरह यहा पृष्ठीनत्पुरुष समास भी बन सकता है ।

यदि कहो कि स्त्री-शरीर और पुरुषाभिलापात्मक वेद, इन दोनों
का संबन्ध नहीं बन सकता है इसलिये यह समास अयुक्त है, सो इन

डोवानी आपत्ति आवे छे जेभ पुरुषोने भावनी अपेक्षाये स्त्रीत्व डोय छे जेभ
प्रमाणे स्त्रीओने पणु भावनी अपेक्षाये स्त्रीत्व डोय छे जेभ प्रमाणे स्त्रीओने
पणु भावनी अपेक्षाये पुरुषत्व न लवित छे, तथा मोक्षनु कारण मुख्यत्वे
भाव न दर्शावामा आवेल छे, तेथी जे अपकृष्टभाव स्त्रीत्वथी युक्त पुरुषोने
निर्वाण भजे छे तो स्त्रीओने पणु उत्कृष्ट भाव पुरुषत्वनी अपेक्षाये निर्वाण
प्राप्त केम न थर्छ शके ? अवरय थर्छ शके

तथा समानान्तरनी असंभवितता डोवानी "स्त्रीवेद" अही "समाना
धिकरण समास थये छे" जेवु मानवु जेथंजे नही, जगणु के "स्त्रीयो वेद"
जे रीते अही पृष्ठीनत्पुरुष समास भनी शके छे

जे जेभ उडो के स्त्री अने पुरुषाभिलापात्मकवेद, जे भन्नेने स भध
भनी शकते नथी तेथी आ समास अयोग्य छे तो जे विधे अभावे जे प्रश्न

न तावद् भिन्न कर्मोद्दयरूपत्वेन, भिन्नकर्मोद्दयरूपाणामपि पञ्चेन्द्रियजात्या दीना च सदा सम्बन्धदर्शनात् ।

नापि पुरुषवत् स्त्रिया अपि स्त्रिया प्रवृत्तिदर्शनेन तयोः सम्बन्धात्मात्र इति वक्तुं युक्तम्, इयं हि पुरुषाप्राप्ती स्ववेदोदयादपि सम्भवति । उक्तञ्च—

“सा स्वकवेदात् तिर्यग्बदलाभे मत्तकामिन्या” इति ।

अथ स्त्रीत्वस्य पत्यगतपृथक्त्वावस्थानाभिधानात् पुरुषाभिगमपरूपे वेदाग्नभावे स्त्रीशब्द आगमे प्रयुक्त इत्यपि न वक्तुं युक्तम्, उिमग्यामारभ्य पृथक्त्वमिपर इम यह पृच्छते किं इममे परस्पर मे मयघ का अभाव क्यों है? क्या ये भिन्नर कर्मोद्दयरूप है इमलिये? अथवा पुन्य की तरह स्त्रियों के भी स्त्रियों में प्रवृत्ति देग्री जानी है इमलिये । यदि प्रथम पक्ष अगीकार किया जावे तो इमसे भिन्नता मिद्ध नहीं होती है, क्योंकि भिन्न कर्मोद्दयरूप भी पञ्चेन्द्रिय जाति आदि का, तथा देवगति आदि का सदा सवय देखा जाता है । द्वितीय पक्ष भी उचित नहीं, कारण कि स्त्रीकी स्त्रीमे प्रवृत्ति, पुरुष की प्राप्ति न होने पर वेदोदय के कारण ही होती है । कहा भी है—

“सा स्वकवेदात् तिर्यग्बदलाभे मत्तकामिन्या” अर्थात् यह प्रवृत्ति स्त्रीवेद के उदय से पुरुष की प्राप्ति न होने पर तिर्यचनी मे तिर्यचनी की तरह कामोन्मत्त स्त्रीकी स्त्रीमे होती है । “स्त्रीत्वका पत्यशतपृथक्त्वतक अवस्थान कहा गया है, इससे यह पता चलता है कि पुरुष की अभिलाषारूप भाववेद में स्त्री-शब्द का प्रयोग आगम मे प्रयुक्त हुआ है” सो ऐसा कहना भी युक्तियुक्त नहीं है । द्वि-सख्या से लेकर नव

छे छे तेभनामा परस्परना सम्बन्धने अभाव शा माटे छे ? शु तेओ भिन्न भिन्न कर्मोद्दयरूप छे तेथी ? अथवा पुरुषनी नेम स्त्रीओनी पणु स्त्रीओमा प्रवृत्ति नेवामा आवे छे तेथी ? ने पडेवो पक्ष स्वीकारवामा आवे तो तेथी भिन्नता सिद्ध थती नथी, कारण छे भिन्नकर्मोद्दयरूप पणु पञ्चेन्द्रिय जाति आदिना, तथा देवगति आदिना सम्बन्ध नेवामा आवे छे भीजे पक्ष पणु उचित नथी, कारण छे स्त्रीनी स्त्रीमा प्रवृत्ति, पुरुषनी प्राप्ति न थता वेदोद्दयने कारणे न थाय छे कणु पणु छे—“सा स्वकवेदात् तिर्यग्बदलाभे मत्तकामिन्या” अटवे छे आ प्रवृत्ति आवेदना उद्दयथी पुरुषनी प्राप्ति न थता तिर्यचनीमा तिर्यचनीनी नेम कामोन्मत्त स्त्रीनी स्त्रीमा थाय छे “स्त्रीत्वनु पत्यशतपृथक्त्व सुधि अवस्थान कडेवायु छे, तेथी अे नणुवा मणे छे छे पुरुषनी अभिलाषारूप भाववेदमा स्त्री-शब्दने प्रयोग आगममा प्रयुक्त थथे छे” तो अेम कडेवु ते पणु उचित नथी द्वि-सख्याथी लधने नव सख्या सुधी पृथक्त्व कडेवाय

त्यनेन नवसंख्यापर्यन्त मुच्यते । नवशतपत्योपमपर्यन्त स्त्रीत्वजात्यवस्थान स्त्री शरीरे जन्म भवतीत्यर्थः । स्त्रीशरीरप्राप्तौ पुरुषाभिलाषात्मको वेदो न हेतुः, किं तु स्त्रीत्वप्राप्तिकारणभूतकर्मोदय एव कारणम् । पुरुषाभिलाषरूपस्य वेदस्य स्त्रीत्व-प्राप्तिहेतुत्वाभावात् स स्त्रीशब्दार्थो न भवितुमर्हति । तत्र पत्युशतपृथक्त्वावस्थाने स्त्रीत्वानुबन्ध एव हेतुत्वेन विवक्षितः, न तु वेदारयो भावः । सम्भवति हि मृत्युकाले स्त्र्याकारविच्छेदेऽपि तत्कारणकर्मोदयविच्छेदो न भवति, तदविच्छेदान्च पुंस्त्वा अव्यवधानेन पुनः स्त्रीग्रहणमिति ।

किञ्च—‘ मणुयगर्हण चउदस गुणठाणाणि ह्येति । ’

सख्यानक प्रथमत्र कथलाता है । इसका तात्पर्य यह है कि नौ नौ पत्यनक स्त्रीत्व जाति मे—स्त्री के शरीर मे जन्म होता है । पुरुषाभिलाषात्मक भाववेद स्त्रीशरीर की प्राप्ति मे हेतु नहीं है, किन्तु स्त्रीत्व की प्राप्ति मे कारणीभूत मायादिकर्म का उदय ही कारण है, पुरुषाभिलाषरूप वेद स्त्री की प्राप्ति मे हेतु नहीं है इसलिये वह स्त्री-शब्द का अर्थ नहीं होता है । वहा पत्यशतपृथक्त्वतक स्त्रीशरीर मे जन्म लेने मे स्त्रीत्व का अनुबन्ध ही हेतुरूप से विवक्षित हुआ है, किन्तु वेद नामका भाव नहीं, अर्थात् भाववेद नहीं । मृत्यु के समय स्त्री-आकार का विच्छेद होनेपर भी स्त्रीत्व की प्राप्तिमें कारणीभूत कर्मका विच्छेद नहीं होता है । कर्मके विच्छेद नहीं होने के कारण पुस्त्व आदि के अव्यवधान से पुनः स्त्री-शरीरका ही ग्रहण होता है । तथा—“ मणुयगर्हण चउदसगुण ठाणाणि ह्येति ” मनुष्य गति में चौदह गुणस्थान होते ह, तथा—“ पचे

छे तेनु तात्पर्यं ओ छे उ नव नो पत्य सुधी आत्व जतिमा—स्त्रीना शरीरमा जन्म थाय छे पुरुषाभिलाषात्मक भाववेद आ-शरीरनी प्राप्तिमा हेतु नथी, पद्य स्त्रीत्वनी प्राप्तिमा मायादि कर्मनो उच्य न कारणरूप छे पुरुषाभिलाषरूप वेद स्त्रीत्वनी प्राप्तिमा कारण नथी, तेथी ते स्त्री-शब्दनो अर्थं थतो नथी त्या पत्यशत पृथक्त्व सुधी शरीरमा जन्म लेवामा स्त्रीत्वनो अनुबन्ध न हेतुरूपे विवक्षित थयो छे, पद्य वेद नामनो भाव नही, अटले टे भाववेद नहीं मृत्यु समये स्त्रीना आकारनो विच्छेद थवा छता पद्य स्त्रीत्वनी प्राप्तिने माटे कारणभूत कर्मनी विच्छेद थतो नथी कर्मनो विच्छेद नहीं थवाने काण्ठे पुरुषत्व आदिना अव्यवधानथी शरीरथी स्त्री-शरीर न ग्रहण थाय छे तथा— “ मणुयगर्हणचउदस गुणठाणाणि ह्येति ” मनुष्यगतिमा चौदह गुणस्थान होय छे

न तावद् भिन्न कर्मोद्गम्यत्वेन, भिन्नकर्मोद्गम्यत्वाणामपि पञ्चेन्द्रियजात्या दीना च सदा सम्बन्धदर्शनात् ।

नापि पुरुषवत् स्त्रिया अपि स्त्रिया प्रवृत्तिदर्शनेन तथा सम्बन्धात्मान इति वक्तुं युक्तम्, इयं हि पुरुषाप्राप्ती मयवेदोदपादपि समस्तयेव । उक्तञ्च—

“ सा स्वरुवेदात् तिर्यग्बलाभे मत्तकामिन्या ” इति ।

अथ स्त्रीत्वस्य पत्यशतपृथक्त्वायम्यानाभिधानात् पुण्याभिलाषरूपे वेदाग्रे भावे स्त्रीशब्द आगमे प्रयुक्त इत्यपि न वक्तुं युक्तम्, जिमान्यामारम्य पृथक्त्वमि पर इमं यह पृच्छते किं इतमें परस्पर में मयघ का अभाव क्यों है? क्या ये भिन्न कर्मोद्गम्यरूप हैं इमलिये? अत्रा पुन्य की तरह स्त्रियों के भी स्त्रियों में प्रवृत्ति देखी जाती है इमलिये । यदि प्रथम पक्ष अगीकार किया जावे तो इमसे भिन्नता मिट्ट नहीं होती है, क्यों कि भिन्न कर्मोद्गम्यरूप भी पञ्चेन्द्रिय जानि आदि का, तथा देवगति आदि का सदा सबध देखा जाता है । द्वितीय पक्ष भी उचित नहीं, कारण कि स्त्रीकी स्त्रीमें प्रवृत्ति, पुरुष की प्राप्ति न होने पर वेदोदय के कारण ही होती है । कहा भी है—

“ सा स्वरुवेदात् तिर्यग्बलाभे मत्तकामिन्या ” अर्थात् यह प्रवृत्ति स्त्रीवेद के उदय से पुन्य की प्राप्ति न होने पर तिर्यचनी मे तिर्यचनी की तरह कामोन्मत्त स्त्रीकी स्त्रीमे होती है । “स्त्रीत्वका पत्यशतपृथक्त्व तक अवस्थान कहा गया है, इससे यह पता चलता है कि पुन्य की अभिलाषारूप भाववेद में स्त्री-शब्द का प्रयोग आगम में प्रयुक्त हुआ है” सो ऐसा कहना भी युक्तियुक्त नहीं है । द्वि-सग्या से लेकर नव

छे के तेमनामा परस्परना सभधने अलाव शा भाटे छे ? शु तेओ भिन्न भिन्न कर्मोद्गम्यरूप छे तेथी ? अथवा पुरुषनी जेन स्त्रीओनी पणु स्त्रीओमा प्रवृत्ति जेवामा आवे छे तेथी ? जे पछेदे पक्ष स्वीकारवामा आवे तो तेथी भिन्नता सिद्ध थती नथी, कारण के भिन्नकर्मोद्गम्यरूप पणु पञ्चेन्द्रिय जति आदिने, तथा देवगति आदिने सभध जेवामा आवे छे भीजे पक्ष पणु उचित नथी, कारण के स्त्रीनी स्त्रीमा प्रवृत्ति, पुरुषनी प्राप्ति न थता वेदोद्गमने कारणे न थाय छे कहु पणु छे—“ सा स्वरुवेदात् तिर्यग्बलाभे मत्तकामिन्या ” ओटवे के आ प्रवृत्ति स्त्रीवेदना उद्गथी पुरुषनी प्राप्ति न थता तिर्यचनीमा तिर्यचनीनी जेम कामोन्मत्त स्त्रीनी स्त्रीमा थाय छे “ स्त्रीत्वनु पत्यशतपृथक्त्व सुधि अवस्थान कहेवायु छे, तेथी जे जणुवा भजे छे क पुरुषनी अभिलाषारूप भाववेदमा स्त्री-शब्दने प्रयोग आगममा प्रयुक्त थयो छे ” तो जेम कहेवु ते पणु उचित नथी द्वि-सग्याथी लधने नव सग्या सुधी पृथक्त्व कहेवाय

नास्तीति वक्तु न युक्तम्, तेषा मनुष्यगतिविशेषरूपत्वात् । अथ पुरुषा-
णामपि विशेषरूपताऽस्तीति चेत्, तथा सति पुरुषेष्वपि कथमेतत् प्रवचन प्रमाणम् ?
यथा च पुरुषेषु प्रमाणं तथा स्त्रीष्वपि प्रमाण म्यादिति ।

अथ पुरुषेष्वेव तच्चरितार्थमिति स्त्रीषु तस्याप्रगृप्ति ऋत्पनीया स्यादिति चेन्न,
एव सति विपर्ययऋत्पनाऽपि किं न स्यात् ।

नन्वेव तत्प्रवचनस्य सामान्यविषयकत्वे अपर्याप्तकमनुष्यादीना देवनारक-
तिरश्वा च निर्गणप्रसङ्ग, इति चेन्न, तेषामेतन् प्रवचनमाक्याविषयत्वात्, एतद-
विषयत्व चापवादविषयत्वात् । उक्त हि—

कहा नहीं जा सकता है, कारण कि उनमें मनुष्यगति आदिरूप विशेष-
पता है ही । यदि कहो कि पुरुषों में मनुष्यगति आदिरूप विशेषता है,
तो पुरुषों में भी यह प्रवचन कैसे प्रमाण होगा?, क्यों कि पुरुष भी
विशेषरूप ही है । फिर भी यदि आप कहें कि यह प्रवचन पुरुषों में
प्रमाण है, तो समान न्यायसे हमको स्त्रियों में भी प्रमाण मानना
ही चाहिये ।

यदि कहो कि पुरुषों में ही हम प्रवचन की चरितार्थता है अतः यह
वहा ही प्रमाण माना जायगा, स्त्रियों में नहीं, ऐसे कहने में प्रमाण नहीं
है सिर्फ कहना मात्र है । जिस प्रकार तुम ऐसा कहते सो हम भी ऐसा
कह सकते हैं कि यह प्रवचन पुरुषों में चरितार्थ नहीं है स्त्रियों में ही
चरितार्थ है । अतः इस प्रवचन को सामान्य विषयक मानना चाहिये ।

शका—यदि इस प्रवचन को सामान्यविषयक माना जावे तो

नहीं, कारण कि तेमनामा मनुष्यगति आदिरूप विशेषता छे न ले आप
ऐम उठेता छे के पुरुषोमा मनुष्यगति आदिरूप विशेषता छे, तो पुरुषोमा
पणु आ प्रवचन केवी रीते प्रमाण गणेशे ? कारण के पुरुष पणु विशेषरूप न
छे छता पणु आप ले ऐम उठे के आ प्रवचन पुरुषोमा प्रमाण छे, तो
समान न्यायथी तेने स्त्रीओमा पणु प्रमाण मानवु लेछे

ले ऐम उठे के पुरुषोमा न आ वचननी चरितार्थता छे तेथी ते त्या न
प्रमाण मानी शकय, स्त्रीओमा नहीं तो ऐवु उठेवामा प्रमाण नहीं पणु
इकत वचन न छे ले रीते तमे ऐम उठे छे ऐ रीते अमे पणु ऐम उठी
शकीये के आ प्रवचन पुरुषोमा चरितार्थ नहीं, स्त्रीओमा न चरितार्थ छे
तेथी आ प्रवचनने सामान्यविषयक मानवु लेछे

शका—ले आ प्रवचनने सामान्यविषयक मानवामा आवे तो अपर्याप्त

तथा—' पंचिदिपसु गुणठाणाणि हृति चउदस । '

तथा—' चउदस तसेसु गुणठाणाणि हृति । '

तथा—' भवसिद्धिया य सच्चदृष्टाणेषु ह्यंति । '

इत्यादि प्रवचन स्त्रीशब्दग्रहितमपि स्त्रीनिर्वाणप्रमाणमस्ति, स्त्रीणामपि पृव
मनुष्यगत्यादिधर्मयोगात् ।

अथ सामान्यविषयस्त्वादिद प्रवचन स्त्रीरूपं विषयविशेष प्रमाण न स्या
दिति चेत्, शृणु ।

यद्येत्त् प्रवचन स्त्रीविषयक नास्तीति उदसि, तर्हि कथय तावत् पुरुषाणामपि
कि मनुष्यगतिविशेषरूपत्व, पञ्चेन्द्रियविशेषरूपत्व वा प्रसविशेषरूपत्व वा नास्ति,
अस्ति चेति ?

दिपसु गुणठाणाणि हृति चउदस" पञ्चेन्द्रियोमं चौदह गुणस्थान होते हैं,
तथा "चउदस तसेसु गुणठाणाणि हृति" त्रसोमं चौदह गुणस्थान होते
हैं, तथा—" भवसिद्धिया य सच्चदृष्टाणेषु ह्यंति " सभी स्थानोंमें भवसिद्धिक
होते हैं । यह पूर्वोक्त समस्त सामान्य प्रवचन भी स्त्रीनिर्वाण
का समर्थक है, क्यों कि स्त्रियों में भी पुरुष की तरह मनुष्यगति आदि
धर्मका सवध रहता है ।

यदि इस पर यों कहा जाय कि यह प्रवचन तो सामान्यरूप से वस्तु
का प्रतिपादक है अतः स्त्रीरूप विशेष का नहीं । सुनो—

यदि 'यह प्रवचन स्त्रीरूप विशेषविषयक नहीं है' ऐसा माना
जाय तो हम पृच्छते हैं कि पुरुषों में मनुष्यगतिरूप विशेषता, पञ्चेन्द्रिय-
रूप विशेषता अथवा त्रसरूप विशेषता है या नहीं ? 'नहीं है' ऐसा तो

तथा—"पंचिदिपसु गुण ठाणाणि हृति चउदस" पञ्चेन्द्रियोमा यौद गुणस्थान
डोय छे, तथा "चउदस तसेसु गुणठाणाणि हृति" त्रसोमा यौद गुणस्थान
डोय छे, तथा—" भवसिद्धिया य सच्चदृष्टाणेषु ह्यंति " त्रधणा स्थानोमा लवसिद्धिक
डोय छे आ पूर्वोक्त समस्त सामान्य प्रवचन यद्य स्त्रीनिर्वाणतु समर्थक छे,
कारण के श्रीशोभा यद्य पुरुषनी जेम मनुष्यगति आदि धर्मने सवध रहै छे
जे ते विषे जेम कडेवाभा आवे के आ प्रवचन तो सामान्यरूपे वस्तुतु
प्रतिपादक छे, तेथी श्रीरूप विशेषतु नथी सालणो—

जे "आ प्रवचन श्रीरूप विशेष विषयक नथी" जेम मानवाभा आवे
तो अभाशे जे प्रश्न छे के पुरुषोभा मनुष्यगतिरूप विशेषता, पञ्चेन्द्रियरूप
विशेषता अथवा त्रसरूप विशेषता छे क नथी ? "नथी" जेम तो कही शक्य

तथाचाय निष्कर्षः—

मनुष्यस्त्री काचिन्निर्वाण प्राप्नोति, अविकलतत्कारणवच्चात् पुरुषवत् । निर्वाणस्य हि कारणमविकल सम्यग्दर्शनादित्रय, तच्च तासु विद्यते एवेति पूर्वमेव प्रोक्तम् । अपि च—मनुष्यस्त्री काचिद् मुक्त्यविकलकारणविशिष्टा मोक्ष प्राप्नोति, प्रव्रज्याधिकारित्वात् पुरुषवत् । न चैतदसिद्ध साधनम्, “ गुन्विणी बालवच्छा य पच्चावेउं न कप्पइ ” इति सिद्धान्तेन तासा तदधिकारित्वप्रतिपादनाद् विशेषस्य शेषाभ्यनुज्ञानानन्तरीयकत्वात् ।

इस तरह इसका निष्कर्ष यह है—कोई २ मनुष्यस्त्री निर्वाण को पाती है कारण कि पुरुष की तरह वहा मुक्ति के कारणों की अविकलता रहती है । निर्वाण का कारण अविकल सम्यग्दर्शनादित्रय है यह अविकल सम्यग्दर्शनादिकों का त्रिक उनमे विद्यमान रहता ही है, यह बात हमने पहिले सिद्ध करदी है । इसलिये कोई २ मनुष्यस्त्री मुक्ति के कारणों की अविकलता से युक्त होने के कारण मुक्ति को प्राप्त करती है” यह हमारा कथन सर्वथा निर्दोष है ।

तथा जिस प्रकार प्रव्रज्या ग्रहण करने के अधिकारी पुरुष हैं उसी तरह वे भी हैं, अतः इससे भी यही बात पुष्ट होती है । कोई २ मनुष्यस्त्री प्रव्रज्या की अधिकारिणी है यह हमारा कथन असिद्ध नहीं है, कारण कि—“ गुन्विणी बालवच्छा य पच्चावेउ न कप्पइ ” इस सिद्धान्त वाक्यसे गर्भिणी एवं बालवत्सा को दीक्षा देने का निषेध है, अतः जद्य

आ प्रभाणु तेनु तात्पर्यं अे छे के केडि केडि मनुष्य स्त्री निर्वाणु पाभे छे कारणु के पुरुषणी नेम त्या मोक्षना कारणुनी अविकलता रहे छे निर्वाणुतु कारणु अविकल सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय छे आ अविकल सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय तेमनामा विद्यमान रहे छे, अे वात अमे पडेला सिद्ध करी छे तेथी केडि मनुष्य स्त्री मोक्षना कारणुनी अविकलताथी युक्त होवाने कारणु मोक्ष प्राप्त करे छे, अभाइ अे कथन तदन निर्दोष छे

तथा नेम पुरुषे प्रव्रज्या (दीक्षा) ग्रहणु करवाना अधिकारी छे अेअ प्रभाणु तेअो पणु छे, तेथी ते वडे पणु अेअ वातने पुथी भणे छे केडि केडि मनुष्य स्त्री प्रव्रज्यानी अधिकारिणी छे आ अभाइ कथन सिद्ध थया विनानु नथी, कारणु के “ गुन्विणी बालवच्छा य पच्चावेउ न कप्पइ ” आ सिद्धान्त वाक्यथी गर्भिणी तथा बालवत्साने दीक्षा देवाने निषेध छे, तेथी अे तेमने

“अपवाद परिहृत्य, उत्सर्गश्च प्रवर्तते” इति ।

अपवादश्च—“मिच्छादिद्वी अपज्जत्तगे” ।

तथा—“सुरनारणसु होति चत्तारि तिरिणसु जाण पचेव” इत्यादिरागमः ।

तथा चोक्तम्—

“मनुजगतौ सन्ति गुणाश्चतुर्दशेत्याद्यपि प्रमाणं स्यात् ।

पुनत् स्त्रीणां सिद्धौ, नापर्यासादिवद्वाधा” ॥ १ ॥ इति ।

अपर्यासक मनुष्यादिकों में तथा देव नारक एवं निर्यन्त्रों में भी निर्वाणपद प्राप्त होने का प्रसंग मानना पड़ेगा । जो इस प्रकार की शका करना भी ठीक नहीं है । कारण कि अपर्यास मनुष्य आदि इस प्रयत्न के विषय नहीं है । वे तो अपवाद के विषय हैं । और अपवाद को छोड़कर उत्सर्ग की प्रवृत्ति होती है, कहा भी है—“अपवाद परिहृत्य, उत्सर्गश्च प्रवर्तते” इति । यह अपवाद “मिच्छादिद्वी अपज्जत्तगे” तथा—“सुरनारणसु होति चत्तारि तिरिणसु जाण पचेव” इस प्रकार है । इन मिथ्यादृष्टि, अपर्यासक, देव, नारक और निर्यन्त्रको छोड़कर उपरोक्त आगमवाक्य चरितार्थ होता है । अर्थात्—इनको छोड़कर सब-मनुष्य मात्र मुक्ति के अधिकारी हैं । कहा भी है—

“मनुजगतौ सन्ति गुणाश्चतुर्दशेत्याद्यपि प्रमाणं स्यात् ।

पुनत् स्त्रीणां सिद्धौ, नापर्यासादिवद्वाधा” ॥ १ ॥ इति ।

मनुष्यादिकोभा तथा देव नारक अने तिर्यकोभा पक्ष निर्वाणपद प्राप्त थवाने प्रसंग मानवे पडथे तो या प्रकारनी शका करवी ते पक्ष योग्य नहीं कारण के अपर्यास मनुष्य आदि या प्रयत्नने विषय नहीं ते तो अपवादना विषयो छे अने अपवादने जतो करीने उत्सर्गनी प्रवृत्ति थाय छे, कहु पक्ष छे— “अपवाद परिहृत्य उत्सर्गश्च प्रवर्तते” इति ते अपवाद “मिच्छादिद्वी अपज्जत्तगे” तथा “सुर नारणसु होति चत्तारि तिरिणसु जाण पचेव” या प्रकारे छे ये मिथ्यादृष्टि, अपर्यासक, देव, नारक अने तिर्यकने छोडीने उपरोक्त आगमवाक्य चरितार्थ थाय छे अथवे के अने छोडीने यथा मनुष्यो मुक्तिना अधिकारी छे कहेल पक्ष छे—

“मनुजगतौ सन्ति गुणाश्चतुर्दशेत्याद्यपि प्रमाणं स्यात् ।

पुनत् स्त्रीणां सिद्धौ नापर्यासादिवद्वाधा” ॥ १ ॥ इति

तथाचाय निष्कर्षः—

मनुष्यस्त्री काचिन्निर्वाण प्राप्नोति, अविकलतत्कारणवच्चात् पुरुषवत् । निर्वाणस्य हि कारणमविकलं सम्यग्दर्शनादित्रय, तच्च तासु विद्यते एवेति पूर्वमेव प्रोक्तम् । अपि च—मनुष्यस्त्री काचिद् मुक्त्यविकलकारणविशिष्टा मोक्ष प्राप्नोति, प्रव्रज्याधिकारित्वात् पुरुषवत् । न चैतदसिद्ध साधनम्, “ गुण्विणी बालवच्छा य पच्चावेउं न कप्पइ ” इति सिद्धान्तेन तासा तदधिकारित्वमतिपादनाद् विशेषस्य शेषाभ्यनुज्ञाननान्तरीयकत्वात् ।

इस तरह इसका निष्कर्ष यह है—कोई २ मनुष्यस्त्री निर्वाण को पाती है कारण कि पुरुष की तरह वहा मुक्ति के कारणों की अविकलता रहती है । निर्वाण का कारण अविकल सम्यग्दर्शनादित्रय है यह अविकल सम्यग्दर्शनादिकों का त्रिक उनमे विद्यमान रहता ही है, यह बात हमने पहिले सिद्ध करदी है । इसलिये कोई २ मनुष्यस्त्री मुक्ति के कारणों की अविकलता से युक्त होने के कारण मुक्ति को प्राप्त करती है” यह हमारा कथन सर्वथा निर्दोष है ।

तथा जिस प्रकार प्रव्रज्या ग्रहण करने के अधिकारी पुरुष हैं उसी तरह वे भी हैं, अतः इससे भी यही बात पुष्ट होती है । कोई २ मनुष्यस्त्री प्रव्रज्या की अधिकारिणी है यह हमारा कथन असिद्ध नहीं है, कारण कि—“ गुण्विणी बालवच्छा य पच्चावेउ न कप्पइ ” इस सिद्धान्त वाक्यसे गर्भिणी एवं बालवत्सा को दीक्षा देने का निषेध है, अतः जय

आ प्रभाणु तेतु तात्पर्यं अये छे के कोर्ध कोर्ध मनुष्य श्री निर्वाणु पाये छे कारणु के पुरुषणी जेम त्या मोक्षना कारणुनी अविकलता रहे छे निर्वाणुतु कारणु अविकल सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय छे आ अविकल सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय तेमनामा विद्यमान रहे छे, अये वात अये पडेवा सिद्ध करी छे तेथी कोर्ध मनुष्य श्री मोक्षना कारणुनी अविकलताथी युक्त होवाने कारणु मोक्ष प्राप्त करे छे, अभाइ अये कथन तदन निर्दोष छे

तथा जेम पुरुषो प्रव्रज्या (दीक्षा) ग्रहणु करवाना अधिकारी छे अये प्रभाणु तेयो पणु छे, तेथी ते वडे पणु अये वातने पुष्टी भणे छे कोर्ध कोर्ध मनुष्य श्री प्रव्रज्यानी अधिकारिणी छे आ अभाइ कथन सिद्ध यथा विनातु नथी, कारणु के ‘ गुण्विणी बालवच्छा य पच्चावेउ न कप्पइ ’ आ सिद्धान्त वाक्यथी गर्भिणी तथा बालवत्साने दीक्षा देवाने निषेध छे, तेथी जे तेमने

किञ्च—स्त्रीणामपि तद्भव ण्य संभारक्षयो भवति । स्त्रियो हि उत्तमधर्मसाधिकाः, ततश्च केवलज्ञानमाप्ति संभारस्तामाम् । सति च केचले नियमान्मोक्ष इति । तया चोक्तम्—

“ णो खलु इत्थी अजीवो, ण यासु अभव्वा, ण यावि दंमणविरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारिउप्पत्ती, णो असखेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसत्तमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोदी, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरणविरोहिणी, णो णवगुणट्ठाणरहिया, कइ न उत्तमधम्मसाहि गत्ति” ।

इन्हें दीक्षा देने का निषेध है तो इससे यह ज्ञान होता है कि इसके अतिरिक्त स्त्रियों को दीक्षित होने का अधिकार है, विशेष का निषेध अवशिष्ट में समति का पोषक होता है ।

तथा—स्त्रियों का भी तद्भव में ही सत्कार का क्षय हो जाता है, क्यों कि—वे भी उत्तमधर्म को साधन करने वाली होती हैं । इसलिये इससे उनमें केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है । केवलज्ञान के होने पर नियम से मुक्ति का लाभ होता ही है । कदा भी है—

“ णो खलु इत्थी अजीवो, ण यासु अभव्वा ण यावि दसणविरोहिणी, णो अमाणुसा णो अणारिउप्पत्ती, णो असखेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसत्तमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोदी, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरणविरोहिणी, णो णवगुणट्ठाणरहिया कइ न उत्तमधम्मसाहि गत्ति”

दीक्षा देवानो निषेध छे तो तेथी ओ नक्षुवा भणे छे के ते सिवाधनी श्रीआनी दीक्षा देवानो अधिकार छे, विशिष्टने निषेध अविशिष्टमा स भतिने चोषक डोय छे तथा श्रीआने पणु ते लवभा स सारने क्षय थछ नय छे, कारणु के तेओ पणु उत्तम धर्मे साधनारी डोय छे तेथी ते वडे तेभनाभा डेवणज्ञान पेदा थाय छे डेवणज्ञान थता नियम प्रभाणु मुक्तिने लाभ भणे न छे कहु पणु छे—

“ णो खलु इत्थी अजीवो, ण यासु अभव्वा ण यावि दसणविरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारिउप्पत्ती, णो असखेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसत्तमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोदी, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरणविरोहिणी, णो णवगुणट्ठाणरहिया, कइ न उत्तमधम्म साहि गत्ति”

छाया—न खलु स्त्री अजीवः, न चासु अभव्या, न चापि दर्शनविरोधिनी, नो अनार्योत्पत्तिः, नो असख्येयायु, नो अतिक्रूरमति, नो न उपशान्तमोहा, नो न शुद्धाचारा, नो न अशुद्धशरीरा, नो व्यवसायवर्जिता, नो अपूर्वकरणविरोधिनी, नो नवगुणस्थानरहिता, कथ न उत्तमधर्मसाधिकेति ॥

व्याख्या—स्त्री खलु न अजीव. किं तु जीव एव, जीवस्य चोत्तमधर्मसाधकत्वेन सह विरोधो नास्ति तथैव लोके दर्शनादिति भावः ।

ननु सर्वोऽपि जीव उत्तमधर्मसाधको न भवति, अभव्यजीवानामुत्तमधर्मसाधकत्वाभावादत आह—‘ण यासु अभव्या’ इति, न चाऽऽसु अभव्येति । यद्यपि स्त्रीषु काचिदभव्या, तथापि सर्वेषामभव्या न भवति, ससारनिर्वेद-निर्वाधधर्माद्वैपशुश्रूपादिदर्शनादिति भावः ।

छाया—न खलु स्त्री अजीवः, न चासु अभव्या न चापि दर्शनविरोधिनी, नो अमानुषी, न अनार्योत्पत्तिः, नो असख्येयायुष्का, नो अतिक्रूरमतिः, नो न उपशान्तमोहा, नो न शुद्धाचारा, नो अशुद्धशरीरा, नो व्यवसायवर्जिता, नो अपूर्वकरणविरोधिनी, नो नवगुणस्थानरहिता कथ न उत्तमधर्मसाधिकेति ।

तात्पर्य इसका इस प्रकार है—“नो खलु स्त्री अजीवः” स्त्री अजीव नहीं है किन्तु जीव ही है । अतः उसका उत्तमधर्मसाधन करने के साथ कोई विरोध नहीं है लोक में भी इसी तरह से देखा जाता है ।

शका—जीव-मात्र को यदि उत्तमधर्म साधक माना जाय तो फिर अभव्यों को भी जीव होने से उत्तमधर्म का साधक मानना पड़ेगा । परन्तु उनमें तो उत्तमधर्मसाधकता मानी नहीं जाती है । इस प्रकार की आशका की निवृत्ति के लिये सूत्रकार कहते हैं कि—“न चासु

छाया—न खलु स्त्री अजीवः, न चासु अभव्या, न चापि दर्शनविरोधिनी, नो अमानुषी, नो अनार्योत्पत्तिः, नो असख्येयायुष्का, नो अतिक्रूरमतिः, नो न उपशान्तमोहा, नो न शुद्धाचारा, नो अशुद्धशरीरा, नो व्यवसायवर्जिता, नो अपूर्वकरणविरोधिनी, नो नवगुणस्थानरहिता कथ न उत्तमधर्मसाधिकेति ।

तेषु तात्पर्यं आ प्रभाषे छे—“न खलु स्त्री अजीव” स्त्री अजीव नहीं पशु एव न छे तेथी तेना उत्तमधर्मसाधन करवा साथे डोर्ध विरोधनथी डोडभा पशु अये प्रभाषे न नेवा भणे छे शका—ने एव मात्रने उत्तमधर्म साधक मानवाभा आवे तो पधी अलव्योने पशु एव डोवाथी उत्तमधर्म साधक मानवा पडे, पशु तेभनाभा तो उत्तमधर्मसाधकता मनाती नथी आ प्रकारनी आशका निवारवा भाटे सूत्रकार कडे छे के “न चासु अभव्या” अलव्य नथी

કિન્ન—છીણામપિ તદ્વચ ણ્ય સંસારક્રયો ભવતિ । સ્ત્રિયો દિ ઉત્તમધર્મમાધિકાઃ, તતથ કેવલજ્ઞાનપ્રાપ્તિ સમયસ્તાગામ્ । મતિ ચ કેવલે નિયમાન્મોક્ષ ઇતિ । તથા ચોક્તમ્—

“ ણો સ્વલુ ઇત્યી અજીવો, ણ યાસુ અમન્વા, ણ યાવિ દસણવિરોહિણી, ણો અમાણુસા, ણો અણારિ ઉપ્પત્તી, ણો અમંવેજ્જાડયા, ણો અદ્દૂરમદ્દ, ણો ણ ઉવસતમોહા, ણો ણ સુદ્ધાચારા, ણો અસુદ્ધવોદી, ણો વવસાયવજ્જિયા, ણો અપુવ્વકરણવિરોહિણી, ણો ણવગુણદ્વાણરહિયા, કહ ન ઉત્તમધમ્મસાહિ ગત્તિ” ।

ઈન્હો દીક્ષા દેને કા નિષેધ છે તો ઇસલે યદ્ જ્ઞાત હોતા છે કિ ઇસકે અતિરિક્ત સ્ત્રિયો કો દીક્ષિત હોને કા અધિકાર છે, વિશેષ કા નિષેધ અવશિષ્ટ મેં સમતિ કા પોષક હોના છે ।

તથા—સ્ત્રિયો કા ભી તદ્વચ મેં હી સસાર કા ક્ષય હો જાના છે, ક્યો કિ-વે ભી ઉત્તમધર્મ કો સાધન કરને વાલી હોતી હેં । ઇસલિયે ઇસલે ડનમેં કેવલજ્ઞાન કી ઉત્પત્તિ હોતી છે । કેવલજ્ઞાન કે હોને પર નિયમ સે મુક્તિ કા લાભ હોતા હી છે । કહા ભી છે—

“ ણો સ્વલુ ઇત્યી અજીવો, ણ યાસુ અમન્વા ણ યાવિ દસણવિરોહિણી, ણો અમાણુસા ણો અણારિઉપ્પત્તી, ણો અસલેજ્જાડયા, ણો અદ્દૂરમદ્દ, ણો ણ ઉવસતમોહા, ણો ણ સુદ્ધાચારા, ણો અસુદ્ધવોદી, ણો વવસાયવજ્જિયા, ણો અપુવ્વકરણવિરોહિણી, ણો ણવગુણદ્વાણરહિયા કહં ન ઉત્તમધમ્મસાહિ ગત્તિ”

દીક્ષા દેવાને નિષેધ છે તો તેથી એ બાણુવા મળે છે કે તે સિવાયની સ્ત્રીઓની દીક્ષા દેવાને અધિકાર છે, વિશિષ્ટને નિષેધ અવિશિષ્ટમા સ મતિને પોષક હોય છે

તથા સ્ત્રીઓને પણ તે ભવમા સસારને ક્ષય થઈ બચ છે, કારણ કે તેઓ પણ ઉત્તમ ધર્મને સાધનારી હોય છે તેથી તે વડે તેમનામા કેવળજ્ઞાન પેદા થાય છે કેવળજ્ઞાન થતા નિયમ પ્રમાણે મુક્તિને લાભ મળે જ છે કહ્યું પણ છે—

“ ણો સ્વલુ ઇત્યી અજીવો, ણ યાસુ અમન્વા ણયાવિ દસણવિરોહિણી, ણો અમાણુસા, ણો અણારિઉપ્પત્તી, ણો અસલેજ્જાડયા, ણો અદ્દૂરમદ્દ, ણો ણ ઉવસતમોહા, ણો ણ સુદ્ધાચારા, ણો અસુદ્ધવોદી, ણો વવસાયવજ્જિયા, ણો અપુવ્વકરણવિરોહિણી, ણો ણવગુણદ્વાણરહિયા, કહ ન ઉત્તમધમ્મ સાહિ ગત્તિ”

नन्वार्यकुलोत्पन्नाऽप्यसरयेयायुष्का न भवति निर्वाणयोग्येत्यत आह—‘णो असखेज्जाउया’ इति, ‘नो असख्येयायुष्का’ इति, या तु असख्येयायुष्का युगलजन्मा न भवति, किं तु सख्येयायुष्का तथाविधा निर्वाणयोग्या भवत्येवेति भावः।

ननु सख्येयायुष्काऽपि क्रूरमतिर्नाधिकारिणी निर्वाणस्येति तन्निराकरणार्थमाह—‘णो अहकूरमई’ इति, ‘नो अतिक्रूरमतिः’ इति । अतिक्रूरमतिर्न भवति, सप्तमनरकायुर्निवन्धनरौद्रध्यानाभावात् । न तु तद्वत् प्रकृष्टशुभध्यानाभावोऽपि न स्यात्तस्या इति चेत्, न, तेन तस्य प्रतिबन्धाभावात् ।

कुलों में उत्पन्न नहीं हुई हैं किन्तु आर्यकुलोद्भव हैं । इसी तरह “नो असख्येयायुष्का” ये आर्यकुलोत्पन्न होकर फिर असख्यात वर्ष की आयुवाली नहीं हैं, क्यों कि असख्यात वर्ष की आयुवाले भोग भूमिया जीव होते हैं, वे मोक्ष के अधिकारी नहीं होते हैं । ये सख्यात वर्ष की आयुवाली हैं, अतः निर्वाणयोग्य हैं । सरयात वर्ष की आयुवाली भी कितनीक अतिक्रूर मतिवाली स्त्रिया निर्वाण की अधिकारिणी नहीं होती हैं अतः इस दोषको दूर करनेके लिये ऐसा कहा है कि ये अतिक्रूर मतिवाली नहीं हैं, इसलिये ये सप्तमनरक की आयु के वध के कारणभूत रौद्र यान से रहित होती हैं । जिस तरह इनमें सप्तमनरक की आयु के वध के कारणभूत रौद्रध्यान का अभाव है उसी तरह इनमें प्रकृष्ट शुभध्यान का भी अभाव मानना चाहिये सो यह बात नहीं है, कारण अशुभ रौद्रध्यान के साथ इसका कोई अविनाभाव—सवधरूप

तेजो अनार्यकुलोत्पन्ना उत्पन्न थयेल नथी पणु आर्यकुलोत्पन्ना उत्पन्न थयेल छे जेज प्रभावे “नो असख्येयायुष्का” ते आर्यकुलोत्पन्न थयने असख्यात वर्षना आयुध्याणी नथी, कारण के असख्यात वर्षना आयुवाणा लोगभूमिया एव डोय छे ते मोक्षना अधिकारी होता नथी तेजो तोसख्यात वर्षना आयुवाणी छे, तेथी निर्वाणने योग्य छे सख्यात वर्षना आयुवाणी पणु केटलीक अतिक्रूरमतिवाणी श्रीजो निर्वाणनी अधिकारिणी होती नथी तेथी जे दोषने हर करवा माटे जेवु कडेल छे तेजो “नो अतिक्रूरमति” अतिक्रूरमतिवाणी नथी, तेथी तेजो सातमी नरकना आयुधने कारणभूत रौद्रध्यानथी रहित डोय छे जेभ तेमनामा सातमी नरकना आयुधना कारणरूप रौद्रध्यानना अभाव छे जेज प्रभावे तेमनामा प्रकृष्ट शुभध्यानना पणु अभाव मानवा जेधजे जेवी आ वात नथी, कारण के अशुभ रौद्रध्याननी साथे तेना कोई अविनाभाव सवधरूप प्रतिबंध नथी ते ध्यानना

મનુષ્યોઽપિ કથિત્ દર્શનવિરોધી સિદ્ધો ન મત્તિ, इत्यत आह—‘णयापि वैसव-
विरोधिणी’ इति, न चापि दर्शनविरोधिनी’ इति । दर्शनमिह सम्यग्दर्शन-
तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं परिगृह्यते, न खलु तद्वિरोधिनी, आस्तिक्यादिदर्शनादिति भावः।

ननुमानुष्यपि दर्शनाविरोधिनी, सा तु निर्वाणाय नो कल्पते, तस्मादाह-
‘णो अमाणुसा’ इति । ‘नो अमानुषी’ इति, मनुष्यजातौ भया मानुषी, तत्र
विशिष्टकरचरणोरुग्रीवाघययसनिवेशदर्शनादिति भावः ।

ननु मानुष्यपि अनार्योत्पत्त्याऽनिष्टा तदपनोદાર્થમાह—“णो अणारिउप्पत्ती”
इति ‘नो अनार्योत्पत्तिः’ अनार्येषु=अनार्यकुलेषु, उत्पत्तिर्यस्याः सा तथाविधा
नास्तीति ।

અમવ્યા” સ્ત્રી અમવ્ય નહીં છે । યત્પિ સ્ત્રિયોં મેં મી કિતનીક સ્ત્રિયાં
અમવ્ય હોતી છે તથાપિ સર્વ અમવ્ય હી હે જેસી યાત નહીં છે । સસાર
સે નિવેદ, ધર્મ સે અદ્વેષ તથા શુશ્રૂષા આદિ ગુણ ઉનમેં દેખે જાતે હે,
“ન ચાપિ દર્શનવિરોધિની” મવ્ય હોતે હુણ યે સમ્યગ્દર્શન કી વિરોધિની
મી નહીં હોતી છે । કિતનેક પ્રાણી તો જેસે હોતે હે જો મવ્ય હોનેપર મી
સમ્યગ્દર્શન સે વિરોધ રખતે હે, પરન્તુ યે જેસી નહીં હે, કયોં કિ
હનમેં આસ્તિક્ય આદિ ગુણ દેખે જાતે હે । “ન અમ્મનુષી” મનુષ્યજાતિમેં
યે ઉત્પન્ન હોતી છે, કયોં કિ હનમેં મનુષ્ય જાતિ કી રચના કે અનુસાર
વિશિષ્ટ-કર, ચરણ, ઉરુ, એવ ગ્રીવા આદિ અવયવોં કી રચના દેખી
જાતી છે । ઇસ લિયે યે “અમાનુષી” નહીં હેં અર્થાત્ મનુષ્ય હેં ।
“ન અનાર્યોત્પત્તિઃ” કિતનીક માનુષી મી હોતી હેં પરન્તુ યદિ જે
અનાર્યા હેં તો નિર્વાણ કે યોગ્ય નહીં માની જાતી હેં અતઃ યે અનાર્ય-

ને કે સ્ત્રીઓમા પણ કેટલીક સ્ત્રીઓ અલભ્ય હોય છે તો પણ સર્વે અલભ્યજ
છે એવી વાત નથી સસારથી નિવેદ, ધર્મથી અદ્વેષ, તથા સેવા આદિ ગુણ
તેમનામા નજરે પડે છે “ન ચાપિ દર્શનવિરોધિની” લભ્ય હોઇને તેઓ
સમ્યગ્દર્શનની વિરોધિની હોતી નથી કેટલાક પ્રાણીઓ એવા હોય છે કે તેઓ
લભ્ય હોવા છતા પણ સમ્યગ્દર્શનથી વિરોધ રાખે છે, પણ તેઓ એવી નથી
કારણ કે તેમનામા આસ્તિકતા આદિ ગુણ નેવા મળે છે “ન અમાનુષી”
મનુષ્યજાતિમા તેઓ ઉત્પન્ન થાય છે કારણ કે તેમનામા મનુષ્યજાતિની રચના
પ્રમાણે વિશિષ્ટ-હાથ, પગ, છાતી, અને ગ્રીવા વગેરે અવયવોની રચના નેવામા
આવે છે માટે તેઓ “અમાનુષી” નથી “નો અનાર્યોત્પત્તિ” કેટલીક માનુષી પણ
હોય છે પણ ને તેઓ અનાર્યા હોય તો નિર્વાણને યોગ્ય મનાતી નથી તેથી

शुद्धशरीराऽपि व्यवसायवर्जिता निन्दितैवेत्यत आह—“णो व्यवसायवर्जिता” इति, ‘नो व्यवसायवर्जिता’ । शास्त्रोक्तार्थे श्रद्धालुतया काचित् परलोकव्यवसायिनी भवति, परलोकार्थं तत्प्रवृत्तिदर्शनादिति भावः ।

ननु काचिद् व्यवसायसहिताऽपि अपूर्वकरणविरोधिन्वेव दृश्यते, इत्यत आह “णो अपुष्पकरणविरोधिणी” इति, ‘नो अपूर्वकरणविरोधिनी’ इति स्त्रीजातावप्य-पूर्वकरणसम्भवस्य प्रतिपादितत्वात् ।

पर भी कितनीक स्त्रियां शरीर से अशुद्ध रहा करती हैं अतः वे निर्वाण प्राप्ति की अधिकारिणी नहीं होती हैं सो इस शका के समाधान निमित्त सूत्रकार कहते हैं कि यह एकान्त नियम नहीं है, कितनीक स्त्रियां ऐसी भी होती है कि जो शुद्ध आचारसपन्न होने पर भी शरीर से अशुद्ध नहीं भी रहती हैं । जिनके वज्र्यभनाराच सहनन नहीं होता है वे ही अशुद्ध शरीर होती हैं और मोक्ष प्राप्ति के योग्य नहीं होती है । समस्त स्त्रियां ऐसी ही होती है सो बात नहीं है, कितनीक शुद्ध शरीर वाली भी होती है । “नो व्यवसायवर्जिता” शुद्ध शरीर होने पर भी कितनीक नारिया व्यवसाय से वर्जित होती हैं अर्थात् निन्दित होती है सो यह भी नियम नहीं बन सकता, कारण कि शास्त्रोक्त अर्थ में श्रद्धालु होने के कारण कितनीक स्त्रिया परलोक सुधारने में व्यवसाय से विहीन नहीं भी होती हैं, इसीलिये उनकी प्रवृत्ति परलोक के निमित्त देखी जाती है । ‘नो अपूर्वकरणविरोधिनी’ व्यवसायसहित होने पर भी

स्त्रीऽऽ शरीरे अशुद्ध रहा करे छे तेथी तेऽऽ निर्वाण प्राप्त करवानी अधि करिणी होती नथी, तो आ शकतु समाधान करवाने माटे सूत्रकार कहे छे ते आ एकान्त नियम नथी कटलीक स्त्रीऽऽ अेवी पणु डोय छे के ने शुद्धा शरवाणी यधने शरीरे अशुद्ध पणु रहती नथी नेभने वज्र्यभ नाराच सहनन होतु नथी तेऽऽ अशुद्ध शरीरवाणी डोय छे अने मोक्ष पाभवाने पात्र होती नथी सधणी स्त्रीऽऽ अेवी अ डोय छे अेवी वात नथी, कटलीक शुद्ध शरीर वाणी पणु डोय छे

“नो व्यवसायवर्जिता” शुद्ध शरीर होवा छता पणु कटलीक स्त्रीऽऽ व्यवसायथी वर्जित डोय छे अेटले के निन्दित डोय छे, तो अे पणु नियम गनी शकतो नथी, कारणु के शास्त्रोक्त अर्थमा श्रद्धालु होवाने कारणु कटलीक स्त्रीऽऽ परलोक सुधारवामा व्यवसायथी विहीन होती नथी, तेथी तेभनी प्रवृत्ति परलोकतु निमित्त लेवामा आवे छे “नो अपूर्वकरणविरोधिनी” व्यवसाययुक्त होवा छता पणु कटलीक स्त्रीऽऽ अेवी पणु डोय छे के ने

અકૂરમતિરપિ યા રતિલાલસા સા ન ભવતિ નિર્વાણયોગ્યેન્યત આહ-‘જો જ ઉવસતમોહા’ ઇતિ, ‘નો ન ઉપશાન્તમોહા’ ઇતિ । યાચિદુપશાન્તમોહાઽપિ સમ યતિ, તથાદર્શનાદિતિ ભાવઃ ।

ઉપશાન્તમોહાઽપિ યા સ્વન્વશુદ્ધાચારા ગર્હિતા, સા ન ભવતિ નિર્વાણયોગ્યેત્યત આહ-“જો જ શુદ્ધાચારા” ઇતિ, ‘નો ન શુદ્ધાચારા’ ઇતિ । યાચિન્ શુદ્ધાચારાઽપિ ભવતિ, અતિચારવર્જનેન શુદ્ધાચારદર્શનાદિતિ ભાવઃ ।

શુદ્ધાચારાઽપિ યાચિદશુદ્ધોન્દિર્ન નિર્વાણાધિકારિણીત્યત આહ-“જો અશુદ્ધમોહી” ઇતિ, ‘નો અશુદ્ધશરીરા’ ઇતિ । યા વચ્ચર્પમનાગચસદ્દનનરહિતા સા અશુદ્ધશરીરા, સા ન ભવતિ મોક્ષયોગ્યા સર્વેર તથાગ્રિધા ન ભવતીત્યર્થઃ । યાચિન્ શુદ્ધશરીરાઽપિ ભવતીતિ ભાવઃ ।

પ્રતિવધ નહીં છે । ઉસ ધ્યાન કે અભાવ મેં ખી પ્રકૃષ્ટ શુભ ધ્યાન હો સકના છે । “નો ન ઉપશાન્તમોહા” કિનનીક સ્ત્રિયા અનિકૂર મતિવાલી નહીં ખી હોતી હું પરન્તુ ઉનમેં રતિ ક્ષી લાલસા રહતી હું અતઃ. ંસી સ્ત્રિયા નિર્વાણયોગ્ય નહીં માની ગઈ હું સો હસ ઘાઘાકી નિવૃત્તિ કે લિયે સૂત્રકાર કહતે હું કિ યે વિવક્ષિત સ્ત્રિયા અકૂરમતિવાલી હોકર ઉપશાન્ત મોહવાલી હું । હનકી રતિલાલસારૂપ મોહપરિણતિ ઉપશાન્ત હો ચુકી છે । “નો ન શુદ્ધાચારા” કિનનીક સ્ત્રિયા ંસી ખી હોતી હું જો ઉપશાન્તમોહપરિણતિ વિશિષ્ટ હોને પર ખી અશુદ્ધ આચારવાલી હોતી છે પરન્તુ જિન્હેં મુક્તિ પ્રાપ્ત કરની હું વે શુદ્ધ આચાર વિશિષ્ટ નહીં હોતી હું, યહ યાત નહીં છે અપિ તુ શુદ્ધાચાર વિશિષ્ટ હી હોતી છે, ક્યોં કિ યે અપને આચાર મેં દોષો કો નહી લગને દેતી છે, તથા લગને પર ઉનકી શુદ્ધિ કરતી હું । “નો અશુદ્ધશરીરા” શુદ્ધાચાર વિશિષ્ટ હોને

અભાવમા પણ પ્રકૃષ્ટ શુભધ્યાન હોઈ શકે છે “નો ન ઉપશાન્ત મોહા” કેટલીક સ્ત્રીઓ અકૂરમતિવાળી હોતી પણ તેઓમા રતિની લાલસા રહે છે, તેથી એવી સ્ત્રીઓ નિર્વાણને પાત્ર મનાયેલ નથી તેા એ યાધાના નિવારણ માટે સૂત્રકાર કહે છે કે તે વિવક્ષિત સ્ત્રીઓ અકૂરમતિવાળી થઈને ઉપશાન્ત મોહવાળી છે તેમની રતિલાલસારૂપ મોહપરિણતિ ઉપશાન્ત થઈ ગયેલ છે “નો ન શુદ્ધાચારા” કેટલીક સ્ત્રીઓ એવી પણ હોય છે કે ઉપશાન્તમોહપરિણતિ યુક્ત હોવા છતાં અશુદ્ધ આચારવાળી હોય છે, પણ જેને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવો છે તે શુદ્ધ આચારયુક્ત હોતી નથી એવી કોઈ યાત નથી, પણ શુદ્ધાચાર યુક્ત જ હોય છે, ઝરણ તેઓ યોતાના આચારમા દોષો લાગવા દેતી નથી અને લાગે તેની શુદ્ધિ કરે છે “નો અશુદ્ધ શરીરા” શુદ્ધ આચાર”

યત એવમ્ભૂતા સા, અતઃ 'કથ નોત્તમધર્મસાધિકા' ઇતિ, ઉત્તમધર્મસાધિકૈ વેત્યર્થઃ । અયં ભાવઃ—તત્તત્કાલાપેક્ષયા પુરુષવદ્ એતાવદ્ગુણસયમસમન્વિતૈવોત્તમધર્મસાધિકા, તથા ચેય કેવલસાધિકા ભવતિ । સતિ ચ કેવલે નિયમાન્ મોક્ષ ઇતિ ॥

॥ ઇતિ સ્ત્રીમોક્ષસમર્થનમ્ ॥

નનુ સર્વ એવૈતે ભેદાસ્તીર્થસિદ્ધેષ્વતીર્થસિદ્ધેષુ ચૈવાન્તર્ભૂતાઃ સન્તિ । તથાહિ—યે તીર્થકરસિદ્ધાસ્તે તીર્થસિદ્ધા એવ, યે તુ તદ્વિનાસ્તે સર્વેઽપ્યતીર્થસિદ્ધા એવેતિ ક્રિમેતાવદ્વિભેદૈરિતિ ચેત્—

અત્રોચ્યતે=અન્તર્ભાવે સત્યપિ તીર્થસિદ્ધા તીર્થસિદ્ધભેદદ્વાયાદેવ તદુત્તરોત્તરભેદાનાં જ્ઞાન ન સ્યાત્, તસ્માદજ્ઞાતભેદજ્ઞાપનાર્થં તત્તદ્ભેદસ્ય વિગ્નિપ્ય કથનમિતિ ॥

તદેતદનન્તરસિદ્ધકેવલજ્ઞાન ઘર્ણિતમ્ ॥

હૈ—તત્તત્કાલ કી અપેક્ષા સે પુરુષ કી તરહ્ ઇતને ગુણ ઓર સયમ સે સમન્વિત સ્ત્રી ભી ઉત્તમધર્મ કી સાધિકા હોતી હૈ । જવ યહ્ ઉત્તમધર્મ કી સાધિકા હોતી હૈ તો કેવલજ્ઞાન કો પ્રાપ્ત કરતી હૈ, ઓર કેવલજ્ઞાન કે હોને પર નિયમ સે મોક્ષ ઇસકો પ્રાપ્ત હો જાતા હૈ ।

॥ ઇસ તરહ્ યહાં તક સ્ત્રીમુક્તિ કા સમર્થન કિયા ગયા હૈ ॥

શકા—યે સમસ્ત ભેદ તીર્થસિદ્ધ ઓર અતીર્થસિદ્ધ, ઇન દોનોં મેં હી અન્તર્ભૂત હો જાતે હૈ, ક્યોં કિ જો તીર્થકરસિદ્ધ હૈં વે તીર્થસિદ્ધ હી હૈં તથા ઇનસે ભિન્ન જો સિદ્ધ હૈ વે સવ અતીર્થસિદ્ધ હૈં ફિર ઇતને ભેદોં સે ક્યા મતલબ ? ।

એ છે કે—તે તે કાળની અપેક્ષાએ પુરુષની જેમ આટલાં શુભ અને સયમથી સમન્વિત સ્ત્રી પણ ઉત્તમધર્મની સાધિકા હોય છે એ તે ઉત્તમ ધર્મની સાધિકા હોય છે તેા કેવળજ્ઞાન પામે છે અને કેવળજ્ઞાન થતા તેને નિયમ પ્રમાણે મોક્ષ મળે છે

॥ આ પ્રમાણે અહીં સુધી સ્ત્રી મુક્તિનું સમર્થન કરાયું છે ॥

શકા—એ સઘળા લેદનેા તીર્થસિદ્ધ અને અતીર્થસિદ્ધ એ બન્નેમા સમાવેશ થઈ જાય છે, કારણ કે જે તીર્થ કરેા સિદ્ધ છે તેઓ તીર્થસિદ્ધ જ છે તથા એમનાથી ભિન્ન જે સિદ્ધો છે તે સર્વે અતીર્થસિદ્ધ છે તેા પછી આટલા બધા લેદનેા ઉદ્દેશ શે ?

નન્યપૂર્વકરણત્યપિ નવગુણસ્થાનરહિતા નિરાંણયોગ્યા ન મ્યાદિત્યત આદ-
 “જો નવગુણદ્વાણરહિયા” ઇતિ, ‘નો નવગુણમ્યાનરહિતા’ ઇતિ । પપ્તુગુણમ્યાનમાદાય
 ચતુર્દશગુણસ્થાનપર્યન્તાનિ નવસમ્પક્રાનિ ગુણસ્થાનાનિ, તદ્રહિતાઃ સર્ગાઃ સ્ત્રિયો ન
 ભવન્તિ, કાચિત્ નવગુણસ્થાનપૃક્તાપિ ભવતીત્યર્થઃ ।

કિતનીક સ્ત્રિયા જેસી મી હોતી છે જો અપૂર્વકરણ કી વિરોધિની હોતી
 હૈં સો યહ ઘાત મી ંક્રાન્તતઃ માન્ય નહીં હો સકની, કારણ કિ કિતનીક
 સ્ત્રિયા જેસી મી તો હોતી છે જો અપૂર્વકરણ કી વિરોધિની નહીં મી
 હોતી હૈં, ક્યોં કિ સ્ત્રી-જાતિ મેં મી અપૂર્વકરણ કા સમ્ભવ પ્રતિપાદિત
 હુઆ હૈ, અતઃ યે અપૂર્વકરણ કી વિરોધિની નહીં હોતી હૈ । “નો નવ-
 ગુણસ્થાનરહિતા” ઇસી તરહ અપૂર્વકરણ-ગુણસ્થાનવાલી હોકર મી
 કિતનીક નૌ ગુણસ્થાનવાલી નહીં મી હોતી હૈં સો ઇસ આગકા કી
 નિવૃત્તિ કે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ યહ ઘાત મી ંક્રાન્તતઃ નિયમિત
 નહીં હૈ । કારણ કિ છઠવેં ગુણસ્થાન સે હેકર નૌ ગુણસ્થાનતક અર્થાત્
 ચૌદહ ગુણસ્થાનતક-સાતવા, આઠવા, નૌ વા, દસવા, ગ્યારવા, વારહવા,
 તેરહવાં ંવ ચૌદહવા, યે નૌ ગુણસ્થાન મી સ્ત્રિયોં મેં હોતે હૈં-ઇન નૌ
 ગુણસ્થાનોં સે વે રહિત નહીં હોતી હૈ । અર્થાત્ કિતનીક સ્ત્રિયાં નવ ગુણ-
 સ્થાન યુક્ત મી હોતી હૈં । જવ યે સ્ત્રિયા ઇસ તરહ કી હોતી હૈં તો ફિર
 યે ઉત્તમ ઘર્મકી સાધિકા ક્યોં નહીં હો સકતી હૈં । સારાશ ઇસકા યહ

અપૂર્વકરણની વિરોધિની હોય છે, તો આ વાત પણ એકાન્તત માન્ય થઈ
 શકતી નથી કારણ કે કેટલીક સ્ત્રીઓ એવી પણ હોય છે જે અપૂર્વકરણની
 વિરોધિની હોતી નથી, કારણ કે સ્ત્રીજાતિમા પણ અપૂર્વકરણનો સંભવ
 સાબિત થયેલ છે, તેથી તેઓ અપૂર્વકરણની વિરોધિની હોતી નથી “નો નવ
 ગુણસ્થાનરહિતા” આ રીતે અપૂર્વકરણ ગુણસ્થાનવાળી હોવા છતા પણ કેટલીક
 નવ ગુણસ્થાનવાળી નથી પણ હોતી, તો આ શકાના નિવારણ માટે સૂત્રકાર
 કહે છે કે આ વાત પણ એકાન્તત નિયમિત નથી કારણ કે છઠા ગુણસ્થાનથી
 લઈને નવગુણસ્થાન સુધી એટલે કે ચૌદ ગુણસ્થાન સુધી-સાતમા, આઠમા,
 નવમા, દસમા, અગીયારમા, બારમા, તેરમા અને ચૌદમા, એ નવ ગુણસ્થાન
 પણ સ્ત્રીઓમા હોય છે એ નવગુણસ્થાનોથી તેઓ રહિત હોતી નથી એટલે
 કે કેટલીક સ્ત્રીઓ નવગુણસ્થાનયુક્ત પણ હોય છે જે તે સ્ત્રીઓ આ પ્રકારની
 હોય છે તો પછી તેઓ ઉત્તમધર્મની સાધક કેમ ન હોઈ શકે ? તેનો સારાશ

यत् एवभूता सा, अतः 'कथं नोत्तमधर्मसाधिका' इति, उत्तमधर्मसाधिकैवेत्यर्थः । अयं भावः—तत्कालापेक्षया पुरुषवद् एतावद्गुणसयमसमन्वितैवोत्तमधर्मसाधिका, तथा चैव केवलसाधिका भवति । सति च केवले नियमान् मोक्ष इति ॥

॥ इति स्त्रीमोक्षसमर्थनम् ॥

ननु सर्व एवैते भेदास्तीर्थसिद्धेः तीर्थसिद्धेः चैवान्तर्भूताः सन्ति । तथाहि—ये तीर्थकरसिद्धास्ते तीर्थसिद्धा एव, ये तु तद्धिन्नास्ते सर्वेऽप्यतीर्थसिद्धा एवेति किमेतावद्धिर्भेदैरिति चेत्—

अत्रोच्यते—अन्तर्भावे सत्यपि तीर्थसिद्धा तीर्थसिद्धभेदद्वयादेन तदुत्तरोत्तरभेदानां ज्ञानं न स्यात्, तस्मादज्ञातभेदज्ञापनार्थं तत्तद्भेदस्य विशिष्यं कथनमिति ॥

तदेतदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानवर्णितम् ॥

है—तत्काल की अपेक्षा से पुष्प की तरह इतने गुण और सयम से समन्वित स्त्री भी उत्तमधर्म की साधिका होती है । जब यह उत्तमधर्म की साधिका होती है तो केवलज्ञान को प्राप्त करती है, और केवलज्ञान के होने पर नियम से मोक्ष इसको प्राप्त हो जाता है ।

॥ इस तरह यहाँ तक स्त्रीमुक्ति का समर्थन किया गया है ॥

शका—ये समस्त भेद तीर्थसिद्ध और अतीर्थसिद्ध, इन दोनों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं, क्यों कि जो तीर्थकरसिद्ध हैं वे तीर्थसिद्ध ही हैं तथा इनसे भिन्न जो सिद्ध हैं वे सब अतीर्थसिद्ध हैं फिर इतने भेदों से क्या मतलब ? ।

ओ छे के—ते ते काणनी अपेक्षाओ पुरुषनी जेम आटलो शुषु अने सयमथी समन्वित स्त्री पषु उत्तमधर्मनी साधिका होय छे जे ते उत्तम धर्मनी साधिका होय छे ते केवलज्ञान पावे छे अने केवलज्ञान यता तेने नियम प्रमाणे मोक्ष भजे छे

॥ आ प्रमाणे अहाँ सुधी स्त्री मुक्तिनु समर्थन करायु छे ॥

शका—ओ सधणा लेहने तीर्थसिद्ध अने अतीर्थसिद्ध ओ अन्नेमा समावेश यर्थ नय छे, कारण के जे तीर्थ करे सिद्ध छे तेओ तीर्थसिद्ध न छे तथा ओभनाथी भिन्न जे सिद्धा छे ते सर्वे अतीर्थसिद्ध छे ते पछी आटला पधा लेहाने उद्देश शो ?

नन्वपूर्वकरणवत्यपि नवगुणस्थानरहिता निर्माणयोग्या न स्यादित्यत आह—
 “नो नवगुणद्वानरहिया” इति, “नो नवगुणस्थानरहिता” इति । पञ्चगुणस्थानमादाय
 चतुर्दशगुणस्थानपर्यन्तानि नवसंख्यकानि गुणस्थानानि, तद्रहिताः सर्गाः स्त्रियो न
 भवन्ति, काचित् नवगुणस्थानयुक्तापि भवतीत्यर्थः ।

कितनीक स्त्रिया ऐसी भी होती हैं जो अपूर्वकरण की विरोधिनी होती
 हैं सो यह बात भी एकान्ततः मान्य नहीं हो सकती, कारण कि कितनीक
 स्त्रिया ऐसी भी तो होती है जो अपूर्वकरण की विरोधिनी नहीं भी
 होती हैं, क्यों कि स्त्री-जाति में भी अपूर्वकरण का सभब प्रतिपादित
 हुआ है, अतः ये अपूर्वकरण की विरोधिनी नहीं होती हैं । “नो नव-
 गुणस्थानरहिता” इसी तरह अपूर्वकरण-गुणस्थानवाली होकर भी
 कितनीक नौ गुणस्थानवाली नहीं भी होती हैं सो इस आशका की
 निवृत्ति के लिये सूत्रकार कहते हैं कि यह बात भी एकान्ततः नियमित
 नहीं है । कारण कि छठवें गुणस्थान से लेकर नौ गुणस्थानतक अर्थात्
 चौदह गुणस्थानतक—सातवा, आठवां, नौ वा, दसवा, ग्यारवां, बारहवा,
 तेरहवा एव चौदहवा, ये नौ गुणस्थान भी स्त्रियों में होते हैं—इन नौ
 गुणस्थानों से वे रहित नहीं होती हैं । अर्थात् कितनीक स्त्रिया नव गुण-
 स्थान युक्त भी होती हैं । जब ये स्त्रिया इस तरह की होती हैं तो फिर
 ये उत्तम धर्मकी साधिका क्यों नहीं हो सकती हैं । साराश इसका यह

अपूर्वकरणकी विरोधिनी होय छे, तो आ बात पणु एकान्तत मान्य थय
 शकती नथी कारण के केटलीक श्रीओ अेवी पणु होय छे ने अपूर्वकरणकी
 विरोधिनी होती नथी, कारण के श्रीअन्तिमा पणु अपूर्वकरणने सभब
 साभित थयेल छे, तेथी तेओ अपूर्वकरणकी विरोधिनी होती नथी “नो नव-
 गुणस्थानरहिता” आ रीते अपूर्वकरण शुष्स्थानवाणी होवा छता पणु केटलीक
 नव शुष्स्थानवाणी नथी पणु होती, तो आ शकाना निवारणु भाटे सूत्रकार
 कहे छे के आ बात पणु एकान्तत नियमित नथी कारण के छुटा शुष्स्थानथी
 लधने नवशुष्स्थान सुधी अेटले के चौद शुष्स्थान : सुधी-सातमा, आठमा,
 नवमा, दसमा, अगीथारमा, बारमा, तेरमा अने चौदमा, अे नव शुष्स्थान
 पणु श्रीओमा होय छे अे नवशुष्स्थानथी तेओ रहित होती नथी अेटले
 के केटलीक श्रीओ नवशुष्स्थानयुक्त पणु होय छे ने ते श्रीओ आ प्रकारनी
 होय छे तो पछी तेओ उत्तमधर्मनी साधक केभ न होय शके ? तेने साराश

परंपरसिद्धकेवलज्ञानमिति-परंपरे च ते सिद्धाश्च परंपरसिद्धाः । सिद्धत्वप्राप्ति समयाद् द्व्यादिसमयवर्तिनः, तेषां केवलज्ञान परंपरसिद्धकेवलज्ञानम्, तदनेकविधमज्ञसम् । तद् यथा-अप्रथमसमयसिद्धाः=प्रथमः समयो येषां ते प्रथमसमयाः, त एव सिद्धाः, प्रथमसमयसिद्धाः, न प्रथमसमयसिद्धाः अप्रथमसमयसिद्धाः । इत्येतत् सामान्यतोऽभिधाय विशेषतस्तदर्थमाह-‘दुसमयसिद्धा’ इत्यादि । तथा-द्विसमयसिद्धाः, द्वौ समयौ येषां ते द्विसमयाः, ते सिद्धाः द्विसमयसिद्धाः, शेष सुगमम् ॥ सू० २१ ॥

प्रश्न—पूर्वकथित परंपरसिद्ध केवलज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—परंपरसिद्ध केवलज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है । सिद्धत्वप्राप्ति के समय से दो आदि समयवर्ती सिद्ध परंपरसिद्ध कहलाते हैं । इनका जो केवल ज्ञान है वह परंपरसिद्ध केवलज्ञान है । प्रथम समय में जो सिद्ध नहीं हुए हैं वे अप्रथमसमयसिद्ध हैं । इस प्रकार सामान्यरूप से परंपरसिद्ध केवलज्ञान का स्वरूप बतलाकर सूत्रकार उसे विशेषरूप से समझाने के अभिप्राय से “दुसमयसिद्धा” इत्यादि पदों द्वारा स्पष्ट करते हैं—जिनके सिद्ध होने के दो समय हैं वे द्विसमयसिद्ध हैं, इसी तरह त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध से दशसमयसिद्ध तक, एव सख्यातसमयसिद्ध असख्यातसमयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध जानलेना चाहिये । यह परंपरसिद्ध केवलज्ञान का वर्णन हुआ । इसके वर्णन से सिद्धकेवलज्ञान का पूरा वर्णन हुआ ॥ सू० २१ ॥

प्रश्न—पूर्वकथित परंपरसिद्धकेवलज्ञानतु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—परंपरसिद्धकेवलज्ञान अनेक प्रकारतु कहेल छे सिद्धत्वप्राप्तिना समयथी जे आदि समयवर्ती सिद्धपरंपरसिद्ध ठेकेवाय छे तेमनु जे केवल ज्ञान छे ते परंपरसिद्धकेवलज्ञान छे, प्रथम समयभा जे सिद्ध छे आ प्रभाञ्जे सामान्यरूपे परंपरसिद्धकेवलज्ञानतु स्वरूप अतावीने सूत्रकार तेने विशेष रूपे समझववाना हेतुथी “दुसमयसिद्धा” इत्यादि पदे द्वारा स्पष्ट करे छे—जेमने सिद्ध थवाना जे समय छे तेओ द्विसमयसिद्ध छे जेज प्रभाञ्जे त्रिसमयसिद्ध, अतु समय सिद्धथी दससमयसिद्ध सुधी, अने अख्यातसमय सिद्ध असख्यातसमयसिद्ध अने अनन्तसमयसिद्ध समल्लेवा जेधजे

आ परंपरसिद्धकेवलज्ञानतु वषुंन थयु तेना वषुंनथी सिद्ध केवलज्ञानतु सपूषुं वषुंन थयु ॥ सू० २१ ॥

मूलम्—से किं तं परपरसिद्धकेवलनाण ? । परंपरसिद्धकेवलनाणं अणेगविह पणत्त । त जहा—अपढमसमयसिद्धा, दुसमयसिद्धा, तिसमयसिद्धा, चउसमयसिद्धा, जाव ढससमयसिद्धा । सखिज्जसमयसिद्धा, असखिज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा । से तं परंपरसिद्धकेवलनाणं । से तं सिद्धकेवलनाणं ॥२॥

छाया—अथ किं तत् परंपरसिद्धकेवलज्ञानम् ? । परंपरसिद्धकेवलज्ञानमनेकविप्रमज्ञप्तम् । तद् यथा—अप्रथमसमयसिद्धाः, द्विसमयसिद्धाः, त्रिसमयसिद्धाः, चतुःसमयसिद्धाः, यावद्दशसमयसिद्धाः । सरयेयसमयसिद्धाः । अमरयेयसमयसिद्धाः । अनन्तसमयसिद्धाः । तदेतत् परंपरसिद्धकेवलज्ञानम् । तदेतत् सिद्धकेवलज्ञानम् ॥२॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘ से किं त परंपरसिद्धकेवलनाण ’ इति । अथ किं तत् परंपरसिद्धकेवलज्ञानम् ?, पूर्वनिर्दिष्टस्य परंपरसिद्धकेवलज्ञानस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः । उत्तरमाह—‘ परंपरसिद्धकेवलनाण अणेगविह पणत्त ’ इत्यादि ।

उत्तर—यद्यपि इस तरह से इन सब का अन्तर्भाव हो जाता है फिर भी जो इनका पृथक् २ निर्देश किया है वह उत्तरोत्तर भेदों के समझाने के लिये ही किया है । तीर्थसिद्ध अतीर्थसिद्ध कहने मात्र से ही इन भेदों का ज्ञान नहीं हो सकता है, इसलिये अज्ञातभेदों के समझाने के लिये विशेषरूप से इन सब भेदों को पृथक् पृथक् उपादान करके समझाया गया है । यह अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान का वर्णन हुआ ॥

अब परंपरसिद्धकेवलज्ञान का वर्णन किया जाता है—‘ से किं त परंपरसिद्धकेवलनाणं ’ ? इत्यादि ।

उत्तर—जे के आ रीते जे अधाने सभावेश थर्ध जय छे छता पञ्च तेमने जे अलग अलग निर्देश कर्यो छे ते उत्तरोत्तर लेहोने सभभववा भाटे जे कर्यो छे तीर्थसिद्ध के अतीर्थसिद्ध कहेवा मात्रथी ते लेहोनु ज्ञान थर्ध शकतु नथी, तेथी अज्ञात लेहोने सभभववाने भाटे विशेषरूपे जे अधा लेहोने अलग अलग उपादान करीने सभभववा छे आ अनन्तर सिद्धकेवलज्ञाननु वण्णं थयु

हुवे परंपरसिद्धकेवलज्ञाननु वण्णं कराय छे—‘ से किं त परंपरसिद्धकेवलनाणं ’ इत्यादि

छद्मानी सर्वं क्षेत्र-सपूर्णं लोकरुमलोकं च साक्षाज्जानाति पश्यति । इह यद्यपि सर्व-द्रव्यग्रहणेन आकाशास्तिकायोऽपि गृह्यते, तथापि तस्य क्षेत्रत्वेन प्रसिद्धत्वाद् पृथक् कथनम्, एवमग्रेऽपि कालविषये बोध्यम् । कालतः केवलज्ञानी सर्वकालम्=अतीतानागतवर्तमानभेदभिन्नं जानाति पश्यति । भावतः केवलज्ञानी सर्वान् जीवादिगतान् भावान्=पर्यायान्-गतिकपायागुरुलघुप्रभृतीन् जानाति पश्यति ।

‘अहं’ इत्यादि । अथ-मनःपर्यायज्ञानानन्तरं केवलज्ञानं तीर्थकरैर्वर्णितम्, इति शेषः । तत् कीदृशम् ? इत्याह-‘सर्वद्रव्यं’ इत्यादि । सर्वद्रव्य-परि-

क्षेत्र की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त लोकाकाश और अलोकाकाशरूप क्षेत्र को साक्षात् जानता और देखता है । यद्यपि “द्रव्य की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त द्रव्यों को जानता और देखता है” ऐसा कहने से ही आकाशास्तिकाय आदि का जानना देखना सिद्ध हो जाता है फिर भी यहाँ जो क्षेत्र की अपेक्षा उसका जानना देखना कहा है वह क्षेत्ररूप से उसकी पृथक् प्रसिद्धि का होना है । अर्थात् ‘लोक का क्षेत्र अलग है और अलोक का क्षेत्र अलग है, इस बात को समझाने के लिये ऐसा कहा है । इसी तरह काल-द्रव्य के विषयमें भी यही समझना चाहिये । काल की अपेक्षा केवलज्ञानी भूत, भविष्यत् और वर्तमान, इन तीनों कालों को जानता और देखता है । भाव की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त जीवादिक पदार्थगत गति, कषाय, अगुरुलघु आदि पर्यायों को जानता और देखता है । “अहं सर्वद्रव्यं” इत्यादि गाथा का अर्थ—

इस गाथामें अथ-शब्द यह बात प्रदर्शित करने के लिये रखा गया है कि मनःपर्याय ज्ञान के बाद ही तीर्थकरों ने इस केवलज्ञान का वर्णन

समस्त लोकाकाशं च अलोकाकाशं च क्षेत्रं साक्षात् ज्ञेयं च देहे च ज्ञेयं च “द्रव्यं अपेक्ष्य केवलज्ञानी समस्त द्रव्येभ्यो ज्ञेयं च देहे च ज्ञेयं च” अथ उभेवाथी च आकाशास्तिकाय आदिषु ज्ञेयेषु देहेषु सिद्धं यत् ज्ञेयं च छत्वा पञ्च अहो च क्षेत्रं अपेक्ष्य तेन ज्ञेयेषु देहेषु कश्चिद् क्षेत्ररूपे तेन अलग प्रसिद्धितुं शक्यं च “लोकं क्षेत्रं अलगं च अलोकाकाशं क्षेत्रं अलगं च” आ वातने समभववाने भाटे ज्ञेयं कश्चिद् ज्ञेयं प्रमाणात् कालं च द्रव्यं विषयमा पञ्च ज्ञेयं समञ्जसु जेधं च काणोनी अपेक्ष्य केवलज्ञानी भूत, भविष्यत् च वर्तमान, ये त्रयो काणोने ज्ञेयं च देहे च ज्ञेयं च ज्ञेयं अपेक्ष्य केवलज्ञानी समस्त पदार्थगत गति, कषाय, अगुरु लघु आदि पर्यायाने ज्ञेयं च देहे च, “अहं सर्वद्रव्यं” इत्यादि गाथानो अर्थ-आ गाथामा ‘अथ’ शब्दं च वात दर्शाववाने भाटे भूक्तयो च देहे च मन-

एत भवस्थकेवलज्ञान मिद्वैकेवलज्ञान चेति भेदद्वयमभिधाय पुनः प्रकारान्तर
रेण केवलज्ञानस्य भेदमाह—

मूलम्—त समासओ चउव्विह पणत्तं । त जहा—दव्वओ,
खित्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओणं केवलनाणी
सव्वदव्वाइ जाणइ पासइ । खित्तओ णं केवलनाणी सव्वं
खित्तं जाणइ पासइ। कालओ णं केवलनाणी सव्व कालं जाणइ
पासइ । भावओ ण केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ ।
गाथा—“अह सव्वदव्वपरिणाम भावविण्णात्तिकारणमणत्तं ।

सासयमप्पडिवाइ, एगविह केवल नाण”॥१॥सू०२२॥

छाया—तत् समासतश्चतुर्विध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—द्रव्यत, क्षेत्रतः, कालतो,
भावतः । तत्र द्रव्यतः खलु केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति । क्षेत्रतः
खलु केवलज्ञानी सर्व क्षेत्र जानाति पश्यति । कालत. खलु केवलज्ञानी सर्व काल
जानाति पश्यति । भावतः खलु केवलज्ञानी सर्वान् भावान् जानाति पश्यति ।

गाथा—अथ सर्वद्रव्यपरिणामभाविज्ञप्तिकारणमनन्तम् ।

शाश्वतममतिपाति, एरुविध केवलज्ञानम् ॥ सू० २२ ॥

टीका—‘ त समासओ ’ इत्यादि । सामान्यतः केवलज्ञानं, समासतः=सक्षेपेण
चतुर्विध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—द्रव्यतः क्षेत्रत. कालतो भावतश्च । तत्र द्रव्यतः खलु
केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिक्कायादीनि साक्षाज्जानाति पश्यति । क्षेत्रतः केव

इस प्रकार भवस्थसिद्ध केवलज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान के भेद से
केवलज्ञान के दो भेदों का निरूपण कर सूत्रकार अब प्रकारान्तर से
केवलज्ञानके भेदोंका निरूपण करते हैं—‘त समासओ चउव्विह’ इत्यादि ।

वह केवलज्ञान सक्षेप से चार प्रकारका कहा गया है । जैसे—द्रव्य
की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा ।
द्रव्य की अपेक्षा केवलज्ञानी समस्त द्रव्यो को जानता और देखता है ।

આ રીતે ભવસ્થસિદ્ધકેવળજ્ઞાન અને સિદ્ધકેવળજ્ઞાનના ભેદથી કેવળ
જ્ઞાનના બે ભેદોતુ નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર પ્રકારાન્તરથી કેવળજ્ઞાનના ભેદોતુ
નિરૂપણ કરે છે—“ ત સમાસઓ ચઉવ્વિહ ” ઇત્યાદિ

તે કેવળજ્ઞાનને સક્ષેપમા ચાર પ્રકારતુ કહ્યું છે જેવા કે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ
ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ, કાળની અપેક્ષાએ અને ભાવની અપેક્ષાએ દ્રવ્યની અપેક્ષાએ
કેવળજ્ઞાની સર્વે દ્રવ્યોને જાણે છે અને દેખે છે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાની

विधम्=एकप्रकारक, क्षायिकत्वात्, तदावरणक्षयस्यैकरूपत्वात् । यद्यपि केवलज्ञानस्य स्वाम्यपेक्षया भवस्थसिद्धभेदमाश्रित्य भेदोऽस्ति, तथापि-ज्ञानापेक्षया नास्ति भेदः, मतिज्ञानादीनां चतुर्णां तु क्षायोपशमिकत्वात्, क्षयोपशमस्य च वैचित्र्यादनेकविधत्वमिति बोध्यम् ॥ सू० २२ ॥

ननु तीर्थकरः केवलज्ञाने समुत्पन्ने सति तीर्थकरनामकर्मोदयात् सर्वजीवानुपहार्यं देशना करोति, तत्र केपाचिदेवमाशङ्का भवेत्-भगवतोऽपि तीर्थकृतस्तावत् द्रव्यश्रुतमक्षरध्वनिरूपं वर्तते, द्रव्यश्रुतं च भावश्रुतं पूर्वकं, तस्माद् भगवानपि श्रुतज्ञानीति चेत्, तत्राह—

इस शाश्वतमे इतनी विशेषता प्रदर्शित करता है कि केवलज्ञान ऐसा शाश्वत नहीं है किन्तु अप्रतिपाति शाश्वत है, अर्थात् किसी भी कालमें इसका पतन नहीं होता है । निरन्तररूप से सर्वकालमें केवलज्ञान रहता है । केवलज्ञान क्षायिक है, ज्ञानावरण कर्म के क्षय से होता है, और ज्ञानावरण कर्मका क्षय एकरूप होता है, अतः वह भी एकरूप ही है । यद्यपि स्वामी की अपेक्षा भवस्थसिद्ध का आश्रय करके इसके भी भेद बतलाये गये हैं फिर भी ज्ञान की अपेक्षा इसमें कोई भेद नहीं है । मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं, इसलिये उनमें क्षयोपशमकी विचित्रता रहती है, और इसी कारण उनमें अनेकविधता बतलाई गई है ॥ सू० २२ ॥

तीर्थकर भगवान् केवलज्ञान उत्पन्न होने पर तीर्थकरनामकर्म के उदय होने से समस्त जीवों के अनुग्रह के लिये-कल्याण के लिये देशना

अटवी विशेषता दर्शावे छे के केवणज्ञान अेषु शाश्वत नथी पषु अप्रतिपाति शाश्वत छे, अटवे के केाई पषु काणे तेतु पतन थतु नथी निरतर इये सर्वा-काणे देवणज्ञान रहे छे केवणज्ञान क्षायिक छे, ज्ञानावरण कर्मना क्षयथी थाय छे, अने ज्ञानावरण कर्मना क्षय अेकइप डोय छे, तेथी ते पषु अेकइप न छे अे के स्वामीनी अपेक्षाअे भवसिद्धना आधार लधने तेना पषु लेद अताववामा आवेल छे तो पषु ज्ञानथी तेमा केाई लेद नथी मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक छे, तेथी तेमनामा क्षयोपशमनी विचित्रता रहे छे, अने अेक कारणे तेमनामा अनेकविधता अताववामा आवेल छे ॥ सू २२ ॥

तीर्थ कर भगवान् केवणज्ञान उत्पन्न थता तीर्थ कर नामकर्मना उदय डोवाथी समस्त जिवोना अनुग्रहने माटे देशना आवे छे, ते विषे केाई अेवी आश का

ગામભાવવિજ્ઞાપિકારણમ્=સર્ગાણિ ચ તાનિ દ્રવ્યાણિ સર્વદ્રવ્યાણિ જીવાજીવરૂપાણિ,
તેષા પરિણામાઃ-પ્રયોગવિમ્ભસારૂપા ઉત્પાદાદયઃ પર્યાયાઃ સર્વદ્રવ્યપરિણામાઃ, તેષા
ભાવઃ-સત્તા, સ્વલક્ષણ સ્વં સ્વમસાધારણ સ્વરૂપં, તસ્ય વિજ્ઞપ્તિઃ-વિશેષેણ જ્ઞાનમ્,
તસ્યાઃ કારણં=હેતુઃ, તથા જ્ઞેયાનામનન્તરનાદનન્ત, તથા=શાશ્વત-નિન્યમ્, નિરન્ત-
રોપયોગયુક્તમિત્યર્થઃ । તયા-અપ્રતિપાતિ-ન પ્રતિપતન શીલ, સદાઽવસ્થાયીત્યર્થઃ ।

નન્તુ યત્ સ્વલ્પ શાશ્વત, તદપ્રતિપાત્યેન સ્યાત્ કિં પુનરંતેન વિશેષણેને ?તિ,
ઉન્યતે-શાશ્વતં હિ નામ અનરત મમદુચ્યતે, તદ્ સ્વલ્પકાલેઽપિ નૈરન્તર્યેણ ભવ-
નાદ્ ભવતિ, અપ્રતિપાતિવિશેષણોપાદાન તુ સર્વકાલે કેવલજ્ઞાનમપ્રતિષ્ઠત, ઇતિ
વોધનાર્થમિતિ । નૈરન્તર્યેણ સર્વસ્મિન્ કાલે કેવલજ્ઞાન મપતીતિ ભાવઃ । તયા-૧૬

ક્રિયા છે । યદ્ કેવલજ્ઞાન “ સર્વદ્રવ્યપરિણામભાવવિજ્ઞાપિકારણમ્ ”
અર્થાત્ સમસ્ત જીવ ઓર અજીવરૂપ દ્રવ્યોર્મિં જો ઉત્પાદાદિક પરિણામ
સ્વનિમિત્ત ઇવ પરનિમિત્ત સે હોતે રહતે હેં ડનકે અપને ૨ અસાધારણ-
રૂપ કી વિજ્ઞાપિકા કારણ છે । અનત ઇવ શાશ્વત છે । અપ્રતિપતનશીલ
હે-સદા અવસ્થાયી છે । ડસરે જ્ઞાનોં કી તરહ્ ડસકે ભેદ પ્રભેદ નહીં હેં ।

શકા—જો શાશ્વત હોગા વહ અપ્રતિપાતી હી હોગા તો ફિર ગાથામ્
“ અપ્રતિપાતિ ” યદ્ વિશેષણ સ્વતન્ત્રરૂપ સે ક્યોં રલા ?

ઉત્તર—શાશ્વત-શબ્દ કા અર્થ નિરન્તર હોતે રહના છે । જો પદાર્થ
સ્વલ્પકાલાવસ્થાયી હોતા છે વહ મી ડતને સમય તક યદિ નિરન્તર હોતા
રહતા છે તો વહ મી શાશ્વત કહા જાતા છે । “ અપ્રતિપાતિ ” વિશેષણ

પર્યયજ્ઞાનના પછી જ તીર્થ કરોએ આ કેવળજ્ઞાનતુ વર્ણન કર્યું છે આ કેવ
ળજ્ઞાન “ સર્વદ્રવ્યપરિણામભાવવિજ્ઞાપિકારણમ્ ” એટલે કે સમસ્ત જીવ અને
અજીવ ૩૫ દ્રવ્યોમા જે ઉત્પાદાદિક પરિણામ સ્વનિમિત્ત અને પરનિમિત્તથી થતાં
રહે છે તેમના પોત-પોતાના અસાધારણ ૩૫ની વિજ્ઞાપિતુ કારણ છે અનત અને
શાશ્વત છે અપ્રતિપતનશીલ છે-સદા અવસ્થાયી છે ખીલ જ્ઞાનોની જેમ તેના
ભેદ પ્રભેદ નથી

શકા—જે શાશ્વત હોય તે અપ્રતિપાતી જ હોય તો પછી ગાથામા
“ અપ્રતિપાતિ ” એ વિશેષણ સ્વતન્ત્ર રૂપે શા માટે રાખ્યું છે ?

ઉત્તર—શાશ્વત શબ્દનો અર્થ “ નિરન્તર થતુ રહેવું ” એવો થાય છે જે
પદાર્થ સ્વલ્પકાલાવસ્થાયી હોય છે તે પણ એટલા સમય મુધી જે નિરન્તર થતો
રહે છે તો તે પણ શાશ્વત કહેવાય છે “ અપ્રતિપાતિ ” વિશેષણ આ શાશ્વતમા

तीर्थंकरः केवलज्ञानेनैव तच्च जानातीति भावः । तत्र-तेषामर्थानां मध्ये, ये प्रज्ञापनयोग्याः=प्ररूपणायोग्याः, तान् भापते नेतरान् । प्रज्ञापनीयेष्वपि न सर्वान् प्रज्ञापनीयान् भापते, तेषामनन्तत्वेन सर्वेषां भापितुं शक्यत्वात्, आयुपरिमितत्वात् । किं तु कतिपयानेव अनन्तभागमात्रान् ग्रहीतृशक्त्यपेक्षया योग्यानेवार्थान् भापते, यो ग्रहीता यावतामर्थानां ग्रहणे योग्य इति बुद्ध्वा देशना करोतीति भावः । 'वइजोगसुय ह्वइ सेसं' इति । 'वाग्योगः श्रुतं भवति शेषम्' इतिच्छाया, अत्र वाग्योगशब्देन भगवतो वाग्योगो गृह्यते ।

क्षायोपशमिक ज्ञान है । इस केवलज्ञान की प्राप्ति जीव को तभी होती है कि जब समस्त ज्ञानावरण आदि चार घाति कर्मों का नाश हो चुकता है । क्षायोपशमिक ज्ञान की प्राप्ति में तत्तत्कर्मों का देशतः विनाश होता है । इस तरह केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जान कर भी केवली उन समस्त पदार्थों की प्ररूपणा नहीं करते हैं, किन्तु इनमें जो प्रज्ञापनीय पदार्थ होते हैं उन्हीं की प्ररूपणा करते हैं, अप्रज्ञापनीय पदार्थों की नहीं । प्रज्ञापनीय पदार्थों में भी सब की नहीं, किन्तु कितनेक ही पदार्थों की प्ररूपणा करते हैं, कारण वे अनन्त होने से वचन द्वारा कहे नहीं जा सकते, और आयु परिमित है, परिमित आयुमें समस्त प्रज्ञापनीय पदार्थों की प्ररूपणा नहीं हो सकती है, इसलिये प्रज्ञापनीयोंमें से कितनेक अनन्तभागमात्र की-जो ग्रहीता (ग्रहण करनेवाले) की शक्ति की अपेक्षा ग्रहण के योग्य होते हैं, अर्थात् ग्रहीता जितने अर्थों के ग्रहण करनेमें योग्य हो उतने अर्थों की वे देशना करते हैं । वाग्योग का

डेवणज्ञान क्षायिक ज्ञान छे आ डेवणज्ञाननी प्राप्ति लवने त्तारे न थाय छे के न्तारे समस्त ज्ञानावरण आदि चार घाति कर्मोना नाश थछ नय छे क्षायोपशमिक ज्ञाननी प्राप्तिमा ते ते कर्मोना देशत विनाश थाय छे आ रीते डेवणज्ञानवडे समस्त पदार्थोने न्छीने पछु डेवणी समस्त पदार्थोनी प्ररूपणा करता नथी, पछु तेभनामा ने प्रज्ञापनीय पदार्थो होय छे तेभनी न प्ररूपणा करे छे, अप्रज्ञापनीय पदार्थोनी न्छी, प्रज्ञापनीय पदार्थोमा पछु अधानी न्छी, पछु डेटलाक पदार्थोनी न प्ररूपणा करे छे, कारण के ते अनन्त होवाथी वचन द्वारा कही शकता नथी अने आयुपरिमित आयुमा समस्त प्रज्ञापनीय पदार्थोनी प्ररूपणा थछ शकती नथी, तेथी प्रज्ञापनीयोमाथी डेटलाक अनन्तभाग मात्रनी, ने अडीता (अडछु करनार) नी शक्तिनी अपेक्षाअे अडछुने योग्य होय छे अेटले के अडीता नेटला अथोने अडछु करवाने योग्य होय अेटला अथोनी तेआ देशना करे छे "वाग्योग" नु तात्पर्य अडी डेवणज्ञानथी प्राप्त अथोनी

મૂલમ્-ગાહા-કેવલનાણેણસ્થે, નાહં જે તત્થ પળ્લવળજોગા ।
 તે માસહ તિત્થયરો, વહજોગમુઅ હવહ સેસ ॥૧॥
 સે ત કેવલનાણ, સે ત નોહટિયપચ્ચમ્મ । સે ત
 પચ્ચમ્મનાણં ॥ સૂ૦ ૨૩ ॥

છાયા-કેવલજ્ઞાનેનાર્થાન, જ્ઞાત્યા યે તત્ર પ્રાપાપનયોગ્યાઃ ।

તાન્ માપતે તીર્થન્નરો, વાગ્યોગશ્રુત મતિ શ્રેષ્ઠમ્ ॥ ૧ ॥

તદેતત્ કેવલજ્ઞાન, તદેતન્નોહટિયમત્યક્ષ, તદેતત્ પ્રત્યખજ્ઞાનમ્ ॥ સૂ૦ ૨૩ ॥

ટીકા-‘કેવલનાણેણસ્થે૦’ ઇત્યાદિ । તીર્થન્નરઃ અર્થાન=પ્રમાન્તિકાયાદીન્, મૂર્તામૂર્તાન્ માપાન્ કેવજ્ઞાનેન જ્ઞાત્યા ન તુ શ્રુતજ્ઞાને નેત્યર્થઃ, શ્રુતજ્ઞાનસ્ય ક્ષાયો-પશમિકત્વાત્, કેવલ્લિન્શ્ચ જ્ઞાનાવરણીયાદેઃ સર્વથા ક્ષયે સતિ દેશત ક્ષયાભાવાત્

દેતે હૈં । ઇસ પર કોઈ પેસી આઠાકા કર મરુના હૈ કિ ભગવાન્ કી વહ દેશના અક્ષરધ્વનિરૂપ દ્રવ્યશ્રુત હૈ, ઓર દ્રવ્યશ્રુત ભાવશ્રુતપૂર્વક હોતા હૈ, ઇસલિયે ઇસ અક્ષરધ્વનિરૂપ દેશના કે સદ્ભાવ સે ઊનમૈં ભી શ્રુતજ્ઞાનીપનેકા પ્રસંગ પ્રાપ્ત હોના હૈ । ઇસ પર સૂત્રકાર કહતે હૈ-‘કેવલ-નાણેણસ્થે૦’ ઇત્યાદિ ।

તીર્થંકર પ્રભુ ધર્માસ્તિકાયાદિક સમસ્ત મૂર્ત અમૂર્ત પદાર્થોં કો કેવલજ્ઞાન સે જાન કરકે ઊનમૈં જો પ્રરૂપણા કરને યોગ્ય હોતે હૈં ઊન પદાર્થોં કો કહતે હૈં । ઇસ તરફ કેવલી ભગવાન્ કા વહ વાગ્યોગ-અર્થા-ભિધાયક શબ્દસમૂહ-ભાવશ્રુતસ્વરૂપ નહીં હૈ કિન્તુ દ્રવ્યશ્રુત સ્વરૂપ હૈ ।

માવાર્થ-તીર્થંકર પ્રભુ કેવલજ્ઞાન કે દ્વારા હી સમસ્ત રૂપી ઓર અરૂપી પદાર્થોં કો જાનતે હૈં, શ્રુતજ્ઞાન કે દ્વારા નહીં, કારણ કિ શ્રુતજ્ઞાન

કરી શકે છે કે ભગવાનની તે દેશના અક્ષરધ્વનિરૂપ દ્રવ્ય શ્રુત છે અને દ્રવ્ય શ્રુત, ભાવશ્રુતપૂર્વક હોય છે, તેથી આ અક્ષરધ્વનિરૂપ દેશનાના સફલાવથી તેમનામા પણ શ્રુતજ્ઞાનીપણાને પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે, તો તે વિષે સૂત્રકાર કહે છે-“કેવલનાણેણસ્થે૦” ઇત્યાદિ

તીર્થં કર ભગવાન ધર્માસ્તિકાયાદિક સમસ્ત મૂર્ત અમૂર્ત પદાર્થોંને કેવળજ્ઞા નથી જાણીને તેઓમા જે પ્રરૂપણા કરવા લાયક હોય છે તે પદાર્થોંને કહે છે આ રીતે કેવળી ભગવાનને તે વાગ્યોગઅર્થાભિધાયક શબ્દસમૂહ-ભાવશ્રુતસ્વરૂપ નથી પણ દ્રવ્યશ્રુતસ્વરૂપ છે

ભાવાર્થ-તીર્થંકર પ્રભુ કેવળજ્ઞાન દ્વારા જ સમસ્ત રૂપી અને અરૂપી પદાર્થોંને જાણે છે, શ્રુતજ્ઞાન દ્વારા નહીં, કારણ કે શ્રુતજ્ઞાન ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાન છે,

तीर्थकरः केवलज्ञानेनैव तच्च जानातीति भावः । तत्र-तेषामर्थानां मध्ये, ये प्रज्ञापनयोग्याः=प्ररूपणायोग्याः, तान् भापते नेतरान् । प्रज्ञापनीयेष्वपि न सर्वान् प्रज्ञापनीयान् भापते, तेषामनन्तत्वेन सर्वेषां भापितुं शक्यत्वात्, आयुपरिमितत्वात् । किं तु कतिपयानेव अनन्तभागमात्रान् ग्रहीतृशक्त्यपेक्षया योग्यानेवार्थान् भापते, यो ग्रहीता यावतामर्थानां ग्रहणे योग्य इति बुद्ध्वा देशना करोतीति भावः । 'वइजोगसुय हवइ सेसं' इति । 'वाग्योगः श्रुतं भवति शेषम्' इतिच्छाया, अत्र वाग्योगशब्देन भगवतो वाग्योगो गृह्यते ।

क्षायोपशमिक ज्ञान है । इस केवलज्ञान की प्राप्ति जीव को तभी होती है कि जब समस्त ज्ञानावरण आदि चार घाति कर्मों का नाश हो चुकता है क्षायोपशमिक ज्ञान की प्राप्ति में तत्तत्कर्मों का देशतः विनाश होता है । इस तरह केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जान कर भी केवली उन समस्त पदार्थों की प्ररूपणा नहीं करते हैं, किन्तु इनमें जो प्रज्ञापनीय पदार्थ होते हैं उन्हीं की प्ररूपणा करते हैं, अप्रज्ञापनीय पदार्थों की नहीं । प्रज्ञापनीय पदार्थों में भी सब की नहीं, किन्तु कितनेक ही पदार्थों की प्ररूपणा करते हैं, कारण वे अनन्त होने से वचन द्वारा कहे नहीं जा सकते, और आयु परिमित है, परिमित आयुमें समस्त प्रज्ञापनीय पदार्थों की प्ररूपणा नहीं हो सकती है, इसलिये प्रज्ञापनीयोंमें से कितनेक अनन्तभागमात्र की-जो ग्रहीता (ग्रहण करनेवाले) की शक्ति की अपेक्षा ग्रहण के योग्य होते हैं, अर्थात् ग्रहीता जितने अर्थों के ग्रहण करनेमें योग्य हो उतने अर्थों की वे देशना करते हैं । वाग्योग का

केवणज्ञान क्षायिक ज्ञान छे आ केवणज्ञानणी प्राप्ति छवने त्तारे न् थाय छे के त्तारे समस्त ज्ञानावरण आदि चार घाति कर्मोने नाश थछे न् थ छे क्षायोपशमिक ज्ञानणी प्राप्तिमा ते ते कर्मोने देशत विनाश थाय छे आ रीते केवणज्ञानवडे समस्त पदार्थोने न्छेने पण् केवणी समस्त पदार्थोनी अरूपण् करता नथी, पण् तेभनामा ने प्रज्ञापनीय पदार्थो होय छे तेभनी न् अरूपण् करे छे, अप्रज्ञापनीय पदार्थोनी न्छी, प्रज्ञापनीय पदार्थोमा पण् अधानी न्छी, पण् केटलाक पदार्थोनी न् अरूपण् करे छे, कारण् के ते अनन्त होवाधी वचन द्वारा कही शकता नथी अने आयुपरिमित आयुमा समस्त प्रज्ञापनीय पदार्थोनी अरूपण् थछे शकती नथी, तेथी प्रज्ञापनीयोमाथी केटलाक अनन्तलाग मात्रनी, ने अहीता (अरूपण् करनार) नी शक्तिनी अपेक्षाअे अरूपण्ने योग्य होय छे अेटले के अहीता नेटला अथोने अरूपण् करवने योग्य होय अेटला अथोनी तेअे देशना करे छे "वाग्योग" तु तात्पर्य अही केवणज्ञानथी प्राप्ति अथोनी

મૂલમ્-ગાહા-કેવલનાણેણસ્થે, નાહં જે તત્થ પળ્લવણજોગા ।
 તે ભાસહ તિત્થયરાં, વહજોગમુઅ હવહ સેસ ॥૧॥
 સે તં કેવલનાણ, સે ત નોહદિયપચ્ચમ્પ । સે ત
 પચ્ચવરનાણ ॥ સૂ૦ ૨૩ ॥

છાયા—કેવલજ્ઞાનેનાર્યાન, પાત્વા યે તત્ર પ્રગાપનયોગ્યાઃ ।

તાન્ ભાપતે તીર્થંકરો, વાગ્યોગશ્રુત મગતિ શેપમ્ ॥ ૧ ॥

તદેતત્ કેવલજ્ઞાન, તદેતન્નોહદિયપ્રત્યક્ષ, તદેતત્ પ્રત્યક્ષજ્ઞાનમ્ ॥ સૂ૦ ૨૩ ॥

ટીકા—‘કેવલનાણેણસ્થે૦’ ઇત્યાદિ । તીર્થંકરઃ અર્યાન=ધર્માસ્તિકાયાદીન્, મૂર્તામૂર્તાન્ ભામાન્ કેવલજ્ઞાનેન જ્ઞાત્વા ન તુ શ્રુતજ્ઞાને નેત્યર્થઃ, તત્ત્વજ્ઞાનસ્ય ક્ષાયો-
 પશમિકત્વાત્, કેવલિનશ્ચ જ્ઞાનાવરણીયાદેઃ સર્વથા ક્ષયે સતિ દેશત ક્ષયાભાવાત્

દેતે હૈં । ઇસ પર કોઈ જેસી આશંકા કર મકના હૈં કિ ભગવાન્ કી વહ દેશના અક્ષરધ્વનિરૂપ દ્રવ્યશ્રુત હૈં, ઓર દ્રવ્યશ્રુત ભાવશ્રુતપૂર્વક હોતા હૈં, ઇસલિયે ઇસ અક્ષરધ્વનિરૂપ દેશના કે સદ્ભાવ સે ડનમેં ખી શ્રુતજ્ઞાનીપનેકા પ્રસંગ પ્રાપ્ત હોના હૈં । ઇસ પર સૂત્રકાર કહતે હૈં—‘કેવલ-
 નાણેણસ્થે૦’ ઇત્યાદિ ।

તીર્થંકર પ્રમુ ધર્માસ્તિકાયાદિક સમસ્ત મૂર્ત અમૂર્ત પદાર્થોં કો કેવલજ્ઞાન સે જાન કરકે ડનમેં જો પ્રરૂપણા કરને યોગ્ય હોતે હૈં ડન પદાર્થોં કો કહતે હૈં । ઇસ તરહ કેવલી ભગવાન્ કા વહ વાગ્યોગ-અર્થા-
 ભિધાયક શબ્દસમૂહ-ભાવશ્રુતસ્વરૂપ નહીં હૈં કિન્તુ દ્રવ્યશ્રુત સ્વરૂપ હૈં ।

ભાવાર્થ—તીર્થંકર પ્રમુ કેવલજ્ઞાન કે દ્વારા હી સમસ્ત રૂપી ઓર અરૂપી પદાર્થોં કો જાનતે હૈં, શ્રુતજ્ઞાન કે દ્વારા નહીં, કારણ કિ શ્રુતજ્ઞાન

કરી શકે છે કે ભગવાનની તે દેશના અક્ષરધ્વનિરૂપ દ્રવ્ય શ્રુત છે અને દ્રવ્ય શ્રુત, ભાવશ્રુતપૂર્વક હોય છે, તેથી આ અક્ષરધ્વનિરૂપ દેશનાના સહભાવથી તેમનામા પણ શ્રુતજ્ઞાનીપણાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે, તો તે વિષે સૂત્રકાર કહે છે—‘કેવલનાણેણસ્થે૦’ ઇત્યાદિ

તીર્થંકર ભગવાન ધર્માસ્તિકાયાદિક સમસ્ત મૂર્ત અમૂર્ત પદાર્થોંને કેવલજ્ઞા નથી બાણીને તેઓમા જે પ્રરૂપણા કરવા લાયક હોય છે તે પદાર્થોંને કહે છે આ રીતે કેવળી ભગવાનનો તે વાગ્યોગઅર્થાભિધાયક શબ્દસમૂહ-ભાવશ્રુતસ્વરૂપ નથી પણ દ્રવ્યશ્રુતસ્વરૂપ છે

ભાવાર્થ—તીર્થંકર પ્રમુ કેવલજ્ઞાન દ્વારા જ સમસ્ત રૂપી અને અરૂપી પદાર્થોંને બાણી છે, શ્રુતજ્ઞાન દ્વારા નહીં, કારણ કે શ્રુતજ્ઞાન ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાન છે.

મૂલમ્-સે કિ ત પરોક્ષનાણં? પરોક્ષનાણં દુવિહ પળ્ણત્તં ।
ત જહા-આભિણિવોહિયનાણપરોક્ષં ચ, સુયનાણપરોક્ષં ચ ।
જત્થ આભિણિવોહિયનાણં, તત્થ સુયનાણ, જત્થ સુયનાણં તત્થ
આભિણિવોહિયનાણ, ટોઽવિ ણ્યાઙ્ગ અપ્પણમપ્પણમણુગચાઈં, તહવિ
પુણ ઇત્થ આચરિયા નાણત્ત પપ્પણવયંતિ । અભિણિવુઙ્ગઙ્ગ ઇત્તિ
આભિણિવોહિયં, સુણેઙ્ગ-ત્તિ સુય, મઙ્ગપુવ્વ જેણ સુયં ન મઙ્ગ
સુયપુવ્વિયા ॥ સૂ૦ ૨૪ ॥

છાયા—અથ કિં તત્ પરોક્ષજ્ઞાનમ્ ? પરોક્ષજ્ઞાનં દ્વિવિધ પ્રજ્ઞસમ્ । તદ્ યયા-
આભિનિયોધિકૃત્ત્વાનપરોક્ષ ચ, શ્રુતજ્ઞાનપરોક્ષ ચ । યત્ આભિનિયોધિકૃત્ત્વાન તત્
શ્રુતજ્ઞાન, યત્ શ્રુતજ્ઞાન તત્ આભિનિયોધિકૃત્ત્વાનમ્, દ્વે અપ્યેતે અન્યોન્યમનુગતે, તથાપિ
પુનરત્રાચાર્યા નાનાત્વ પ્રજ્ઞાપયન્તિ-અભિનિયુ-ચ્યત ઇત્યાભિનિયોધિકૃત્ત્વા । શૃણોતિ-
ઈતિ શ્રુતમ્ । મતિપૂર્વં યેન શ્રુત, ન મતિઃ શ્રુતપૂર્વિકા ॥ સૂ૦ ૨૪ ॥

‘ સે કિં તં પરોક્ષનાણં ’ ઇત્યાદિ ।

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—‘ સે કિં ત પરોક્ષનાણ ’ ઇતિ । અથ કિં તત્
પરોક્ષજ્ઞાનમિતિ । પૂર્વનિર્દિષ્ટસ્ય પરોક્ષજ્ઞાનસ્ય કિં સ્વરૂપમિતિ પ્રશ્નઃ । ઉત્તરમાહ-
‘ પરોક્ષનાણ દુવિહ પળ્ણત્તં ’ ઇત્યાદિ । પરોક્ષજ્ઞાન દ્વિવિધ પ્રજ્ઞસમ્ । તત્ પરોક્ષ-
જ્ઞાનશબ્દાર્થ ઉચ્યતે—પરેભ્યોઽક્ષસ્ય યજ્ઞાયતે, તત્ પરોક્ષમ્ । અપૌદ્ગલિકૃત્યાદરૂપી
જીવઃ, પૌદ્ગલિકૃત્વાત્ તુ રૂપીણિ દ્રવ્યેન્દ્રિયમનાસિ, તત્તશ્ચ જીવાપેક્ષયા પરાણિ=

શિષ્ય પૃચ્છતા હૈ—હે ભદ્રન્ત ! પૂર્વનિર્દિષ્ટ પરોક્ષજ્ઞાન કા કયા સ્વરૂપ
હૈ ? ઉત્તર—પરોક્ષજ્ઞાન દો પ્રકાર કા ચનલાયા ગયા હૈ ! વે દો પ્રકાર ચે
હૈ—આભિનિયોધિક જ્ઞાન ઓર શ્રુતજ્ઞાન । આત્મા સે ભિન્ન દ્રવ્ય ઇન્દ્રિય
ઓર મન સે જો જીવ કો જ્ઞાન હોતા હૈ વહ પરોક્ષજ્ઞાન કહલાતા હૈ ।
જીવ સે ઇન્દ્રિયાં ઓર મન ઇસલિયે પર—ભિન્ન માની ગઈ હૈ કિ જીવ
અરૂપી હૈ ઓર દ્રવ્ય—ઇન્દ્રિયા તયા મન, રૂપી હૈ । જીવ અરૂપી ઇસલિયે

શિષ્ય પૂઠે ઠે —હે ભદ્રન્ત ! પૂર્વનિર્દિષ્ટ પરોક્ષ જ્ઞાનનુ ડેવુ સ્વરૂપ છે ?
ઉત્તર—પરોક્ષજ્ઞાન બે પ્રકારનુ બતાવ્યુ છે, તે બે પ્રકાર આ પ્રમાણે છે—
આભિનિયોધિક જ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન આત્માથી ભિન્ન દ્રવ્ય ઇન્દ્રિય અને મનથી
ભવને જે જ્ઞાન થાય છે તે પરોક્ષજ્ઞાન કહેવાય છે ભવથી ઇન્દ્રિયો અને મન
તે કારણે ભિન્ન માનવામા આવેલ છે કે ભવ અરૂપી છે, તથા દ્રવ્ય ઇન્દ્રિયો

અર્થ-ભગવતઃ કેવલજ્ઞાનોપગમર્થાભિધાયકઃ શબ્દરાશિઃ પ્રોચ્યમાનસ્તસ્ય ભગવતો વાગ્યોગ एव भवति, न तु श्रुतम्, वाग्योगम्य भाषापर्याप्त्यादिनामकर्मोद्य हेतुत्वात्, श्रवस्य तु क्षायोपशमिन्त्वादिति । स च वाग्योग । शेष श्रुत मव तीत्यन्वयः । शेषम्=अप्रधान श्रुत द्रव्यश्रुतमित्यर्थः । श्रोतृणा भावश्रुतकारणत्वात् तदङ्गत्वादप्रधानतया द्रव्यश्रुतमिति व्यपश्रियते, इति भावः ॥

તદેતત્ કેવલજ્ઞાન વર્ણિતમ્ । તદેતત્-અવિગ્નજ્ઞાન-મનઃપર્યયજ્ઞાન-કેવલજ્ઞાન રૂપ નોદન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ વર્ણિતમ્ । તદેતત્ પ્રત્યક્ષજ્ઞાન-પ્રત્યક્ષાત્મક જ્ઞાન વર્ણિતમિત્યર્થઃ ॥ સૂ० ૨૩ ॥

અથ પરોક્ષજ્ઞાન વર્ણયતે—‘સે કિં ત પરોક્ષજ્ઞાન૦ ઇત્યાદિ ।

તાત્પર્ય યદા કેવલજ્ઞાન સે ઉપલબ્ધ અર્થો કી અભિધાયિકા-કથન કર નેવાલી-ભગવાન્ કે દ્વારા ઉચ્ચારિત હુઈં ઉસ શબ્દરાશિ સે હૈં । વહ શબ્દસમૂહ ભગવાન્ કા વાગ્યોગ હોતા હૈ, શ્રુતજ્ઞાન નહીં । ઇસ વાગ્યોગ કા કારણ ભાષાપર્યાપ્તિ આદિ નામકર્મ કા ઉદય હૈ । યદ વાગ્યોગ ભાવશ્રુતરૂપ ઇસલિયે નહીં માના જાતા હૈ કિ ભાવશ્રુત ક્ષાયોપશમિક હોતા હૈ । દ્રવ્યશ્રુત કા ઇસમેં ન્યવહાર ઇસલિયે ક્રિયા જાતા હૈ કિ યદ શ્રોતાઓં કે ભાવશ્રુત કા કારણ હોતા હૈ, અતઃ ભાવશ્રુત કા કારણ હોને સે ઇસમેં દ્રવ્યશ્રુતતા હૈ । યદ કેવલજ્ઞાન કા વર્ણન હુવા । ઇસ તરદ યદા તક અવધિજ્ઞાન, મનપર્યયજ્ઞાન ઓર કેવલજ્ઞાન રૂપ નોદન્દ્રિય પ્રત્યક્ષ કા વર્ણન હુવા । યે ત્રીનોં જ્ઞાન હી પ્રત્યક્ષજ્ઞાન હૈં । ઇસલિયે પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન કા વર્ણન હો જુકા હૈ ॥ સૂ० ૨૩ ॥

અથ પરોક્ષજ્ઞાન કા વર્ણન કિયા જાતા હૈ—‘સે કિં ત પરોક્ષ જ્ઞાન ?’ ઇત્યાદિ ।

અભિધાયિકા-કથન કરનારી-ભગવાન દ્વારા ઉચ્ચારવામા આવેલ તે શબ્દરાશિ છે તે શબ્દરાશિ ભગવાનને વાગ્યોગ હોય છે, શ્રુતજ્ઞાન નહીં આ વાગ્યોગનું કારણ ભાષાપર્યાપ્તિ આદિ નામ-કર્મને ઉદય છે આ વાગ્યોગ તે કારણે ભાવશ્રુતરૂપ નથી મનાતો કે ભાવશ્રુત ક્ષાયોપશમિક હોય છે દ્રવ્યશ્રુતને તેમા વહેવાર તે કારણે ઠરાય છે કે તે શ્રોતાઓના ભાવશ્રુતનું કારણ હોય છે, તેથી ભાવશ્રુતનું કારણ હોવાથી તેમા દ્રવ્યશ્રુતતા છે આ કેવળજ્ઞાનનું વર્ણન થયું આ રીતે અહીં સુધી અવધિજ્ઞાન, મન પર્યયજ્ઞાન, અને કેવળજ્ઞાન નોદન્દ્રિય પ્રત્યક્ષનું વર્ણન થયું એ ત્રણેજ્ઞાન જ પ્રત્યક્ષજ્ઞાન છે-તેથી પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનનું વર્ણન પૂરું થયું ॥ સૂ ૨૩ ॥

હવે પરોક્ષ જ્ઞાનનું વર્ણન કરવામા આવે છે—‘સે કિં ત

નનુ 'યત્રાભિનિવોપિકજ્ઞાન તત્ર શ્રુતજ્ઞાનમ્' ઇત્યુક્તે સતિ 'યત્ર શ્રુતજ્ઞાન તત્રાભિનિવોપિકજ્ઞાન'—મિતિ જ્ઞાત મત્યેવ કિં પુનસ્તદુપાદાનેનેતિ ચેત્, અત્રો વ્યતે—નિયમતો ન જ્ઞાયતે તસ્માન્નિયમાવપારણાથં 'યત્ર શ્રુતજ્ઞાન તત્રાભિનિવોપિકજ્ઞાન'—મિત્યુચ્યતે । નિયમાવધારણમેવ સ્પષ્ટયતિ—'દોવિ ઇયાટ૦' ઇત્યાદિ । દ્વે અપ્યેતે આભિનિવોધિકશ્રુતે અન્યોન્યમનુગતે=પરસ્પર સવદ્ધે, અનયોર્નિયમેન સહભાવોઽસ્તીતિ ભાવઃ ।

નનુ યદ્યનયોઃ પરસ્પર નિયમેન સહભાવસ્તર્હિં અનયોરભેદ ઇવાસ્તુ, કથ મેદેન વ્યવહારો ભવતીત્યત આહ—'તહ વિ૦' ઇત્યાદિ । યદ્યપ્યેતે ઉભે જ્ઞાને અન્યોન્યાનુગતે

શકા—“જત્ય આભિનિવોહિયાનાણ તત્ય સુચનાણ ” “જહા આભિનિવોધિકજ્ઞાન હોતા હૈ વહા શ્રુતજ્ઞાન હોતા હૈ, ઓર જહા શ્રુતજ્ઞાન હોતા હૈ વહા આભિનિવોધિકજ્ઞાન હોતા હૈ તો ફિર સૂત્રકાર કો ડસ વાતકો પ્રકટ કરને કે લિયે સૂત્રમે “જત્ય સુચનાણ તત્ય આભિનિવોહિયાનાણ ” ફિર ડન પદોં કે રચને કી વ્યા આવઠયકતા થી ? ।

ઉત્તર—નિયમ સે યહ વાત નહીં જાની જાતી હૈ ડસલિયે ડસ પ્રકાર કે નિયમ કે નિર્ણય કે લિયે “જત્ય સુચનાણ તત્ય આભિનિવોહિયાનાણ ” ઇસા કહા હૈ । ડસી નિયમકા નિર્ણય વે 'દોઽવિ ઇયાઙ્ અણ્ણમણ્ણમણુગયાઙ્' ડન પદોં સે કરતે હૈં । ડસમે વતલાયા ગયા હૈ કિ યે દોનોં જ્ઞાન પરસ્પર સવદ્ધ હૈં, અર્થાત્ નિયમત. ડનકા સહયોગ હૈ ।

શકા—યદિ ડનકા પરસ્પર મેં નિયમતઃ સહભાવ હૈ તો ફિર ડનમેં કોઈ ભેદ નહીં રહના ચાહિયે, ઓર ભેદ સે જો ડનકા વ્યવહાર હોતા હૈ

શકા—“જત્ય આભિનિવોહિયાનાણ તત્ય સુચનાણ ” ન્યા આભિનિવોધિક જ્ઞાન હોય છે ત્યા શ્રુતજ્ઞાન હોય છે” આટલુ કહેવાથી જ ન્યારે એ વાત બાણી શકાય છે કે ન્યા શ્રુતજ્ઞાન હોય છે ત્યા આભિનિવોધિકજ્ઞાન હોય છે તો પછી સૂત્રકારને આ વાત પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રમા “જત્ય સુચનાણ તત્ય આભિનિવોહિયાનાણ ” એ પદોને મૂકવાની જરૂર શી હતી ?

ઉત્તર—નિયમથી આ વાત બાણી શકાતી નથી તેથી આ પ્રમાણેના નિયમના નિષ્ક્રમ માટે “જત્ય સુચનાણ તત્ય આભિનિવોહિયાનાણ ” એમ કહ્યું છે એજ નિયમનો નિષ્ક્રમ તેઓ “દોઽવિ ઇયાઙ્ અણ્ણમણ્ણમણુગયાઙ્ ” એ પદોથી કરે છે તેમા બતાવ્યું છે કે એ બંને જ્ઞાન પરસ્પર સવદ્ધ છે, એટલે કે નિયમત તેમનો સહયોગ છે

શકા—એ તેમનો પરસ્પરમા નિયમત સહભાવ છે તો પછી તેમનામા કોઈ ભેદ રહેવા બેધએ નહી, અને ભેદથી જે તેમનો વ્યવહાર થાય છે તે નષ્ટ

અન્યાનિ દ્રવ્યેન્દ્રિયમનાસિ, તેભ્યઃ પૌઙ્ગલિકેભ્યઃ દ્રવ્યેન્દ્રિયમનોમ્યઃ અક્ષરસ્ય= જોડસ્ય યદ્ જ્ઞાનમુપજાયતે તદ્ પરોક્ષજ્ઞાનમ્ । તદ્ દ્વિવિધં મત્ત્વં=તીર્થકરૈઃ પ્રરુપિ તમ્ । તદ્ યથા—આભિનિવોધિકજ્ઞાનપરોક્ષ ચ, શ્રુતજ્ઞાનપરોક્ષં ચ , ઇદ્ ચકારદ્વય સ્વાગતાનેરુમેદસુચક પરસ્પરસહયોગ સૂચકં ચ, અનયોરેય ક્રમંગ નિર્દેશ કારણ ' નાળ પંચવિદ્ પળ્ણત્ત ' ઇતિ સૂત્રસ્ય ટીકાયા માગેત્યુક્તમ્ । સંપ્રતિ સ્વામ્યપણ્યા અભેદમતિવોધનાર્થમાહ—' જત્ય આભિનિવોધિયનાળ૦ ' ઇત્યાદિ । યદ્વા-અનયોઃ પરસ્પરસહયોગ દર્શયતિ—' જત્ય૦ ' ઇત્યાદિ । યન્ન પુરુષે આભિનિવોધિકજ્ઞાન, તૈવ શ્રુતજ્ઞાનમપિ, તથા-યત્ર શ્રુતજ્ઞાન તત્રાભિનિવોધિકજ્ઞાનમ્ ।

હૈ કિ વહ અપૌઙ્ગલિક હૈ, તથા દ્રવ્ય-ઇન્દ્રિયા ઓર મન પૌઙ્ગલિક હૈ ઇસલિયે વે રૂપી હૈં । ઇસલિયે પર-જો દ્રવ્યેન્દ્રિય ઓર મન, ઇનસે જીવ કો જો જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ વહ પરોક્ષજ્ઞાન હૈ । વહ દો પ્રકાર કા હોતા હૈ ૧-આભિનિવોધિકજ્ઞાન ઓર ૨-શ્રુતજ્ઞાન । સૂત્રમેં દો ચકાર વહ સૂચિત કરતે હૈં કિ ઇન દોનોં જ્ઞાનોં કે ઓર મી ભેદ હૈં, તથા ઇનકા પરસ્પરમેં સહયોગ હૈ । ઇનદોનોં કા ઇસ ક્રમ સે નિર્દેશ કરને કા કારણ " નાળ પચવિદ્ પળ્ણત્ત " ઇસ સૂત્ર ફી ટીકામેં પહિલે પ્રદર્શિત કર દિયા હૈ । અવ ઇન દોનોંમેં સ્વામીકી અપેક્ષા સૂત્રકાર અભેદ પ્રદર્શિત કરને કે અભિપ્રાય સે કહતે હૈં કિ જિસ આત્મામેં આભિનિવોધિક જ્ઞાન હોતા હૈ ઉસ આત્મામેં શ્રુતજ્ઞાન હોતા હૈ, તથા જિસ આત્મામેં શ્રુતજ્ઞાન હોતા હૈ ઉસ આત્મામેં આભિનિવોધિકજ્ઞાન હોતા હૈ । ઇસ કથન સે ઇન દોનોંમેં સહયોગ હૈ ઘહ વાત મી જાની જાતી હૈ ।

અને મન, રૂપી છે એ કારણે અરૂપી છે કે તે અપૌઙ્ગલિક છે, તથા દ્રવ્ય-ઇન્દ્રિયો અને મન પૌઙ્ગલિક છે તે કારણે તે રૂપી છે તેથી જે દ્રવ્યઇન્દ્રિય અને મન વડે એવને જે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે તે પરોક્ષ જ્ઞાન છે તે જે પ્રકારનું હોય છે (૧) આભિનિવોધિક જ્ઞાન અને (૨) શ્રુતજ્ઞાન સૂત્રમા જે 'અકાર' એ સૂચિત કરે છે કે આ બંને જ્ઞાનના ખીન્ન પણ ભેદ છે, તથા તેમને પરસ્પરમા સહયોગ છે, એ બંનેને આ પ્રકારે નિર્દેશ કરવાનું કારણ " નાળ પચવિદ્ પળ્ણત્ત " આ સૂત્રની ટીકામા પહેલા પ્રદર્શિત કરાઈ ગયું છે હવે એ બંનેમા સ્વામીની અપેક્ષાએ અભેદ પ્રદર્શિત કરવાના ઉદ્દેશથી સૂત્રકાર કહે છે- જે આત્મામા આભિનિવોધિક જ્ઞાન હોય છે તે આત્મામા શ્રુતજ્ઞાન હોય છે તથા જે આત્મામા શ્રુતજ્ઞાન હોય છે તે આત્મામા આભિનિવોધિક જ્ઞાન હોય છે આ કથનથી એ બંનેમા સહયોગ છે તે વાત પણ બહુવા મળે છે

रवेयप्रदेशात्मको रूपरहितो धर्मास्तिकायः, तथा यः स्थितिपरिणामपरिणतयोर्जीव-
पुद्गलयोरेवस्थित्युपपत्तमभेदतुः श्रान्तपथिकस्य छायेव, स खलु असरयेयप्रदेशात्म
को रूपरहित एवाधर्मास्तिकायः, इति लक्षणभेदाद् भेदो भवति । एवमाभिनिवोधिक
श्रुतयोरपि लक्षणभेदाद् भेदो विज्ञेयः । लक्षणभेदमेव दर्शयति—‘अभिणिवुज्जइ०’
इत्यादि । अभि=अभिमुखयोग्यदेशावस्थित नियतमर्थमिन्द्रियमनोद्वारेण बुध्यते=
परिच्छिनत्ति, आत्मा येन परिणाम विशेषेण स परिणामविशेषो ज्ञानापरपर्यायः—अभि-
निवोधः, स एव=आभिनिवोधिसम्, तथा—शृणोति—वाच्यवाचकभावपुरःसर श्रवण
विषयेण शब्देन सह सस्पृष्टमर्थं परिच्छिनत्ति आत्मा येन परिणामविशेषेण,
स परिणामविशेषः श्रुतम् ।

करने की शक्तिसपन्न जीव और पुद्गल को जो चलने में सहायक होता
है वह धर्मास्तिकाय है । यह द्रव्य अरूपी एव असरयातप्रदेशी माना
गया है । स्थितिक्रिया करने में स्वयं उपादानभूत जीव पुद्गल को स्थित
करने में जो पथिक को छाया की तरह सहायक होता है वह अधर्मा
स्तिकाय है । यह द्रव्य भी असख्यातप्रदेशी और अरूपी माना गया
है । इस प्रकार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्य का लक्षण
शास्त्रकारोंने माना है । इस लक्षण की भिन्नता से ही उन दोनों द्रव्यों
में भिन्नता मानी गई है । इसी प्रकार आभिनिवोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान
में भी लक्षणभेद से भिन्नता मानी हुई है । अभिमुख एव योग्यदेशामे
स्थित नियत अर्थको इन्द्रिय और मन द्वारा आत्मा जिस परिणाम
विशेष से जानता है वह परिणाम विशेष ही आभिनिवोधिक ज्ञान है ।

पुद्गलने आलवामा ले सहायक थाय छे ते धर्मास्तिकाय छे आ द्रव्य अरूपी
अने असख्यात प्रदेशी बनाय छे स्थितिक्रिया करवामा स्वयं उपादान भूतलव
अने पुद्गलने स्थित करवामा ले मुसाइरने छायानी जेभ सहायक थाय छे ते
अधर्मास्तिकाय छे आ द्रव्य पणु असख्यात प्रदेशी अने अरूपी बनाय छे आ
प्रमाणे धर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकायना लक्षणो शास्त्रकारोंने मान्या छे आ
लक्षणुनी भिन्नतां नारणु ते जन्ने द्रव्येमा भिन्नता मानवामा आवी छे जेव
प्रमाणे आभिनिवोधिक ज्ञान अने श्रुतज्ञानमा पणु लक्षणभेदशी भिन्नता मान-
वामा आवी छे आभिमुख अने योग्य देशमा रहैल नियत अर्थने इन्द्रिय
अने मन द्वारा आत्मा ले परिष्णामविशेषशी लणु छे, ते परिष्णामविशेष जे
आभिनिवोधिक ज्ञान छे श्रवण इन्द्रियना विषयभूत थयेल शब्दनी साथे सस्पृष्ट

સ્તઃ તથાપિ પુનરગ્ર=ભ્રામિનિચોધિશ્રુતયોઃ, આચાર્યા.-તીર્થચરગણધરાઃ, નાના-
ત્વ ભેદ પ્રજ્ઞાપયન્તિ=પ્રરૂપયન્તિ । કથમિતિ ચેત્, ઉચ્યતે-પરસ્પરગ્મનુગતયોરપિ લક્ષ-
ણભેદાદ્ ભેદો દૃશ્યતે । યથા-एकाकाशस्थयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोः, તથાદિ-धर्मास्ति
कायाधर्मास्तिकायां परस्पर लोलीभावेन एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे स्थितौ, તથાપિ
યો ગતિપરિણામપરિણતયોર્જીવપૃદ્ભલયોર્ગત્યુપદ્મ્મહેતુર્જગમિત્ મન્સ્યમ્ય, સગલુ અસ-
ચત્ લુપ્ત ઠો જાના ચાહિયે, પરન્તુ એસા નહી ઠોતા છે, ભેદવ્યવહાર ઠો
इनमे होता ही है सो यह भेदव्यवहार कैसे होना है ?

સમાધાન—इसका समाधान—“तह वि पुण इत्य” इत्यादि सूत्राश
द्वारा सूत्रकार करते हैं, वे इसमें यह बतलाते हैं कि-यद्यपि ये दोनों
ज्ञान अन्योन्यानुगत हैं-परस्पर मग्न हैं फिर आचार्य-तीर्थकर गणधर
इनमें भिन्नता की प्ररूपणा करते हैं । इस प्ररूपणा का कारण यह है कि
परस्पर अनुगत होने पर भी इन दोनों में लक्षण की अपेक्षा भेद है,
अतः लक्षणभेद से इनमें भेद आजाता है । जैसे एक आकाशरूप आधार
में स्थित धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में-परस्पर अनुगत होने
पर भी लक्षणभेद से भेद माना जाता है । ये दोनों द्रव्य एक आकाश-
प्रदेश में परस्पर लोलीभाव से स्थित माने गये हैं फिर भी इनमें लक्षण
भेद से भिन्नता मानी जाती है । जिस प्रकार स्वयं गमन करने की शक्ति-
सपन्न मडली को चलने में जल सहायक होता है उसी प्रकार स्वयं गमन

થવો જોઈએ, પણ એમ થતુ નથી લેદવ્યવહાર ઠો તેમનામા થાય છે જ ઠો તે
લેદવ્યવહાર કેવી રીતે થાય છે ?

સમાધાન—तेनु समाधान “तह वि पुण इत्य” इत्यादि सूत्राश द्वारा
सूत्रकार करे છે તેઓ તેમા એમ બતાવે છે કે-જો કે એ બન્ને જ્ઞાન અન્થોન્થા
નુગત છે-परस्पर सणद्ध છે तो પણ आचार्य-तीर्थकर गणधर તેમનામા
ભિન્નતાની પ્રરૂપણા કરે છે આ પ્રરૂપણાનુ કારણ એ છે કે પરસ્પર અનુગત
હોવા છતા પણ એ બન્નેમા લક્ષણની અપેક્ષાએ ભેદ છે, તેથી લક્ષણભેદથી
તેમનામા ભેદ આવી બાય છે જેમ એક આકાશરૂપ આધારમા રહેલ ધર્માસ્તિકાય
અને અધર્માસ્તિકાયમા પરસ્પર અનુગત હોવા છતા લક્ષણ-ભેદથી ભેદ મનાય
છે તેમ તે બન્ને જ્ઞાન વિષે પણ ભેદ છે એ બન્ને દ્રવ્ય એક આકાશપ્રદેશમા
પરસ્પર લોલીભાવથી રહેલ મનાય છે તો પણ તેમનામા લક્ષણભેદથી ભિન્નતા
માનવામા આવે છે જે પ્રકારે બંને ચાલવાની શક્તિવાળી માછલીને ચાલવામા
જળ સહાયક થાય છે, એજ પ્રમાણે બંને ગમન કરવાની શક્તિવાળા એવ અને

अत्रोच्यते-इह हि तावदेकेन्द्रियाणामाहारादिसज्ञा विद्यते, तथा सूत्रेऽनेक-
शोऽभिधानात् । सज्ञा चाभिलाप उच्यते । उक्तञ्च—

“आहारसंज्ञा आहाराभिलापः क्षुद्धेदनीयप्रभवः खलु आत्मपरिणामविशेषः”
इति, अभिलापश्च ‘ममैवरूप वस्तु पुष्टिकारि, तद् यदीदमवाप्यते, ततः समी-
चीन भवती’-त्येव शब्दार्थोल्लेखानुविद्धः स्वपुष्टिनिमित्तभूत-प्रतिनियतवस्तु-
प्राप्त्यध्यवसायः, स च श्रुतमेव, तस्य शब्दार्थपर्यालोचनात्मकत्व च-‘ममैवरूपं वस्तु

इनमें श्रुतकी सभावना हो सकती ? सो फिर इस प्रकार की मान्यतामें
यह पूर्वकथित श्रुतका लक्षण नहीं बनता है ।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है, कारण कि एकेन्द्रिय जीवों के
आहार आदिचार सजाएँ हैं, यह बात सूत्रमें अनेक बार बतलाई गई है ।
जो सज्ञा है वही अभिलापा है । कहा भी है—

“आहारसज्ञा आहाराभिलापः क्षुद्धेदनीयप्रभवः खलु आत्मपरिणाम
विशेषः” । आहारसज्ञा का तात्पर्य है आहार की अभिलापा, यह जीवों
के क्षुधावेदनीय के उदय से होती है । यह आत्मा का एक परिणाम
विशेष है । ‘मेरे लिये इस प्रकार की वस्तु पुष्टिकारक है, वह वस्तु यदि
मुझे मिल जाय तो अच्छा है’ इस प्रकार अपनी पुष्टि को निमित्त
कर के जो शब्द और उसके अर्थ के उल्लेख से अनुविद्ध प्रतिनियत
वस्तु की प्राप्ति का अध्यवसाय होता है यही तो अभिलापा है, और यह
अभिलापा ही श्रुत है । इस श्रुतमें शब्द और उसके अर्थ की पर्यालोच-

पछी तेमनामा श्रुतनी सभावना केवी दीते होई शके ? ने अम कहे के शास्त्रमा
तो तेमना पण श्रुतने सदभाव गतावये छे तेथी अने अम कहीअे छीअे तो
पछी अे प्रकारनी मान्यतामा आ पूर्वकथित श्रुतनु लक्षण बनतु नथी

उत्तर—अम कहेतु ते अज्ञानर नथी कारण के अेकेन्द्रिय एवोने आहार
आदि आर सज्ञाअे छे, अे बात सूत्रमा अनेकवार गताववामा आवेल छे
ने सज्ञा छे अेअ अभिलापा छे कहु पण छे—“आहारसज्ञा आहाराभिलाप
क्षुद्धेदनीयप्रभव खलु आत्मपरिणामविशेषः” आहार सज्ञातु तात्पर्य छे आहा
रनी अभिलापा, ते एवोने क्षुधावेदनीयना उदयथी थाय छे आ आत्मानु अेक
परिष्ठाभविशेष छे, “मेरे भाटे आ प्रकारनी वस्तु पुष्टिकारक छे, ते वस्तु ने
भने भणी नय तो सारु ” आ प्रमाणे पेतानी पुष्टिने निमित्त बनायीने ने
शब्द अने तेना अर्थना उल्लेखथी अनुविद्ध प्रतिनियत वस्तुनी प्राप्तिने ने
न० ३६

નનુ યદ્યેવં શ્રુતસ્ય લક્ષણ મ્યાન્ તર્હિ ય એવ શ્રોત્રેન્દ્રિયલલ્લિધિમાન ભાપાલલ્લિધિમાન્ યા, તસ્યેવ શ્રુતમુત્પદ્યેત, ન તુ તદન્યસ્યૈકેન્દ્રિયસ્ય । તથાપિ-ય' શ્રોત્રેન્દ્રિયલલ્લિધિમાન્ ભવતિ, સ એવ વિવક્ષિત શબ્દ શ્રુતયા તેન શબ્દેન વાન્યાયં તાતુ શ્ચનોતિ, ન તુ તદન્યઃ, તાદૃશશક્ત્યભાગાત્ । યોઽપિ ય ભાપાલલ્લિધિમાન્ ભવતિ, મોઽપિ દ્વીન્દ્રિયાદિરપિ પ્રાયઃ સ્વચેતમિ કિમપિ વિરુલ્પ્ય (તદનુમાસ્ત') તદમિયાનાન્નુ માનવઃ શબ્દમુચારયતિ, નાન્યથા, તતસ્તસ્યાપિ શ્રુત મમાલ્લયતે । યસ્તુ એકેન્દ્રિયઃ, સ ન શ્રોત્રેન્દ્રિયલલ્લિધિમાન્, નાપિ ભાપાલલ્લિધિમાન્, તતઃ કય તસ્ય શ્રુતસમવઃ ? । અથ પ્રવચને તસ્યાપિ શ્રુતમિત્યુચ્યતે ડતિ ષેત્, તર્હિ પ્રાગુક્ત શ્રુતલક્ષણ ન સગચ્છતે ? ।

શ્રવણ ઇન્દ્રિય કે ચિપયભૂત દ્રુષ્ટ શબ્દ કે સાથ સ્પૃષ્ટ અર્થ કો આત્મા વાચ્ય વાચક સવધપૂર્વક જિસ પરિણામવિશેષ કે ઠારા જાનતા હૈ વહ આત્મા કા પરિણામવિશેષ હી શ્રુતજ્ઞાન હૈ ।

શકા—શ્રુત કા જો આપને ઇસ પ્રકાર લક્ષણ કિયા હૈ વહ લક્ષણ જો શ્રોત્ર-ઇન્દ્રિય લલ્લિધિવાલા હૈ અથવા ભાપાલલ્લિધિવાલા હૈ ઉસીમેં ઘટિત હોતા હૈ, એકેન્દ્રિયમેં નહીં, કારણ કિ જો શ્રોત્રેન્દ્રિયલલ્લિધિવાલા હોતા હૈ, વહી વિવક્ષિત શબ્દ સુનકર ઉસ શબ્દ સે ઉસકે વાચ્ય અર્થ કો જાન સકતા હૈ, ડસરા નહી, ક્યોં કિ ઉસમેં ણેસી શક્તિ કા અભાવ હૈ ? । તથા જો ભાપાલલ્લિધિસપન્ન દ્વીન્દ્રિયારિક જીવ હૈં વે ભી પ્રાય' કરકે અપને ચિત્તમેં કુછ ભી વિકલ્પ કરકે ઉસી કે અનુસાર શબ્દોં કા ઉચ્ચારણ કરતે હૈં, ઇસસે ઉનમેં ભી શ્રુત કી સભાવના હોતી હૈ । જો એકેન્દ્રિય જીવ હૈં વે ન તો શ્રોત્રેન્દ્રિય લલ્લિધિવાલે હૈં ઓર ન ભાપાલલ્લિધિવાલે હી, તો ફિર કૈસે

અર્થને આત્મા વાચ્ય-વાચકસબધપૂર્વક જે પરિણામવિશેષદ્વારા જાણે છે તે આત્માને પરિણામવિશેષ જ શ્રુતજ્ઞાન છે

શકા—આપે શ્રુતનુ જે આ પ્રમાણે લક્ષણ કહ્યું છે તે લક્ષણ જ શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય લલ્લિધિવાળો છે અથવા ભાપાલલ્લિધિવાળો છે તેમા જ ઘટાવી શકાય છે, એકેન્દ્રિયમા નહી, કારણ કે જે પ્રાણી શ્રોત્રેન્દ્રિય લલ્લિધિવાળું હોય છે એજ વિવક્ષિત શબ્દ સાંભળીને તે શબ્દથી તેના વાચ્ય અર્થને જાણી શકે છે, બીજો નહી, કારણ કે તેનામા એવી શક્તિનો અભાવ છે ? તથા જે ભાપાલલ્લિધિસપન્ન દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ છે તેઓ પણ સામાન્ય રીતે પોતાના ચિત્તમા કોઈ પણ વિકલ્પ કરીને તેના અનુસાર શબ્દોનું ઉચ્ચારણ કરે છે, તેથી તેમનામા પણ શ્રુતની સભાવના હોય છે જે એકેન્દ્રિય જીવ છે તે શ્રોત્રેન્દ્રિય લલ્લિધિવાળા પણ નથી અને ભાપાલલ્લિધિવાળા પણ નથી, તો

किञ्च—एकेन्द्रियाणां श्रुतज्ञान नाप्यनिर्वचनीय, तथारूपक्षयोपशमजन्यत्वात्, अन्यथा—आहारादिसंज्ञानुपपत्तेः ।

यदप्युच्यते—यद्येव श्रुतस्य लक्षणं स्यात्, तर्हि य एव श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् भापालब्धिमान् वा, तस्यैव श्रुतमुत्पद्यते, न तु तदन्यस्यैकेन्द्रियस्येति, तदप्यसमीक्षितार्थकथनम्, सम्यक्प्रवचनार्थाऽपरिज्ञानार्थाऽपरिज्ञानात्, तथाहि—ऋकुलादीनां स्पर्शनेन्द्रियातिरिक्तद्रव्येन्द्रियलब्ध्यभावेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानमभ्युपगम्यते, तथा भापाश्रोत्रेन्द्रियलब्धिविकलत्वेऽपि तेषां किमपि सूक्ष्मं श्रुतं भवति, अन्यथाऽऽहारादिसंज्ञानुपपत्तेः ।

तथा—एकेन्द्रिय जीवो का श्रुतज्ञान अनिर्वचनीय भी नहीं है क्यों कि वह इसी प्रकार के क्षयोपशम से जन्य माना गया है । अन्यथा—यदि वहाँ श्रुतज्ञान का सद्भाव न माना जावे तो इनमें आहार आदि सजाएँ उत्पन्न नहीं हो सकती ।

जो ऐसा कहा है कि—‘श्रुत का लक्षण ऐसा माना जावे तो जो श्रोत्रेन्द्रियलब्धिवाले एव भापालब्धिवाले प्राणी हैं उन्हीं के श्रुत की उत्पत्ति होगी, उनसे भिन्न एकेन्द्रिय जीव के नहीं’ सो ऐसा कथन भी बिना विचारे ही कहा गया है, क्यों कि इस कथन से यही मालूम होता है कि कहने वाले को प्रवचन के अर्थका सम्यक् परिज्ञान नहीं है । बकुल आदि वृक्षों के स्पर्शन इन्द्रिय से अतिरिक्त अन्य द्रव्येन्द्रियलब्धि का यद्यपि अभाव है तो भी उनमें सूक्ष्म भावेन्द्रियपञ्चकरूप विज्ञान माना गया है । इससे भापा और श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि की विकलता होने पर भी

तथा—एकेन्द्रिय जीवोऽनु श्रुतज्ञान अनिर्वचनीयं पण्यं नथी, ऽरक्षु के ते अे न प्रकारना क्षयोपशमथी उत्पन्न थयेल मनायु छे अन्यथा—जे त्या श्रुतज्ञानेना सद्भाव मनाय नडी तो तेमनाभा आहारादि सज्ञाये उत्पन्न थथे शके नडी

जे अेम उडेवामा आवे के—“ श्रुतलक्षणं अेषु मानवामा आवे तो जे श्रोत्रेन्द्रिय लब्धिवाणा अने भापालब्धिवाणा प्राणी छे तेमने श्रुतनी उत्पत्ति थथे, तेमनाथी भिन्न अेकेन्द्रिय ल्धिवने नडी ” तो अेषु कथन पण्यं विचार्या बिना कसयु छे, ऽरक्षु के आ कथनथी अेम न लागे छे के कडेनारने प्रवचनना अर्थनु अभ्यङ्ग परिज्ञान नथी अकुल आदि वृक्षोमा स्पर्शन इन्द्रिय सिवायनी भी अे द्रव्येन्द्रियलब्धिनो जे के अभाव छे तो पण्य तेमनाभा सूक्ष्म भावेन्द्रिय पञ्चक रूप विज्ञान मानवामा आव्यु छे ते ऽरक्षु भापा अने श्रोत्रेन्द्रिय लब्धिनी

पुष्टिकारि, तद् यदीदमग्राप्यते ' इत्येवमादीना ग्रन्थानामान्तरूपनिरूपणामपि
विवक्षितार्थवाचकतया प्रवर्तमानत्वात्, श्रुतस्यैव लक्षणम् । उक्तञ्च—

इदियमणोनिमित्त, ज विज्ञानं सुयाणुसारेण ।

निययत्यो-त्ति समत्थ, त भावसुय मई सेम ॥ १ ॥

छाया—इन्द्रियमनो निमित्त, यद् विज्ञानं श्रुतानुसारेण ।

नियतार्थ इति समस्त, तद् भावश्रुत मतिः श्रेयम् ॥ १ ॥

' सुयाणुसारेण ' इति । श्रुतानुसारेण=शब्दार्थपर्यालोचनानुसारेण, शब्दार्थ
पर्यालोचनं च नाम प्राच्यवाचकभावपूर्वकं शब्दसस्पृष्टस्यार्थस्य प्रतिपत्तिः, केवल-
मेकेन्द्रियाणामव्यक्तमेव ।

नात्मकता यही है कि उसके चित्तमें जो यह आन्तरध्वनि उठ रही है
कि—“ मुझे यह वस्तु पुष्टिकारक होगी, और वह यदि मुझे मिल जाय तो
अच्छा हो ” वह शब्दस्वरूप है, एवं इस ध्वनि का जो विवक्षित अभिल-
षित अर्थ है वह उसका वाच्य है । यही श्रुत का लक्षण है । कहा भी है—

“ इदियमणोनिमित्त, ज विज्ञानं सुयाणुसारेण ।

निय यत्यो त्ति समत्थ, त भावसुय मई सेम ” ॥१॥

श्रुत के अनुसार—शब्द और अर्थ की पर्यालोचना के अनुसार अर्थात्
शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचक संबन्ध है और ' इस शब्द का यह
अर्थ है ' इस प्रकार वाच्य-वाचकभावपूर्वक शब्दसस्पृष्ट अर्थ के ज्ञान
के अनुसार जो कि केवल एकेन्द्रिय जीवोंमें अव्यक्त है इन्द्रिय और
मन के द्वारा जो अपने अर्थ के कथन करनेमें समर्थ ज्ञान होता है वह
भावश्रुत है । इससे श्रेय मतिज्ञान है ॥ १ ॥

प्रयत्न थाय छे ओन् अलिखाया छे, अने ओ अलिखाया ञ श्रुत छे आ श्रुतमा
शब्द अने तेना अर्थनी पर्यालोचनात्मकता ओन् छे के तेना चित्तमा ने
आन्तरध्वनि नीकणी रह्यो छे के “ मने आ वस्तु पुष्टिकारक थये अने ते ने
मने मणी जाय तो सारु ” ते शब्द स्वरूप छे अने आ ध्वनिने ने विवक्षित
अभिलषित अर्थ छे ते तेना वाच्य छे ओन् श्रुतनु लक्षण छे कहु पद्य छे—

“ इदिय-मणो-निमित्त, ज विज्ञानं सुयाणुसारेण ।

निययत्यो-त्ति समत्थ, त भावसुय मईसेम ॥ १ ॥ ”

श्रुतना प्रमाणे—शब्द अने अर्थनी पर्यालोचना प्रमाणे ओटवे के शब्द अने
अर्थने वाच्य, वाचक संबन्ध छे “ आ शब्दने आ अर्थ छे ” आ प्रकारे
वाच्य-वाचक-भावपूर्वक शब्दसस्पृष्ट अर्थना ज्ञान प्रमाणे ने केवल ओकेन्द्रिय
जीवोमा अव्यक्त छे, एन्द्रिय अने मन द्वारा ने पीताना अर्थनु कथन करवाने
समर्थ ज्ञान होय छे ते भावश्रुत छे ते सिवायनु मतिज्ञान छे

कार्यं येन तत् पूर्व=कारण-मित्यर्थः, मतिःपूर्वं यस्य तद् मतिपूर्वम्, श्रुत-श्रुतज्ञान, तथाहि-श्रुतज्ञान मत्या पूर्यते=प्राप्यते पाल्यते वा । मतिज्ञानाभावे श्रुतज्ञान विनश्यतीत्यर्थः । 'न मतिः श्रुतपूर्विका' इति । मतिः श्रुतपूर्विकानास्तीत्यर्थः, तस्मान्मतिश्रुतयोर्महान् भेदः ॥ १ ॥

यच्च यदुत्कर्षापकर्षवशादुत्कर्षापकर्षभाक्, तत् तस्य कारणम् । यथा घटस्य मृत्पिण्डः । एव मत्युत्कर्षापकर्षवशाच्च श्रुतस्योत्कर्षापकर्षा, तस्मान्मतिज्ञान श्रुतज्ञानस्य कारणम् । किञ्च-मत्या श्रुतं पाल्यतेऽवस्थितिं प्राप्यते, इति श्रुतस्य कारण मतिः, यथा घटस्य मृत्तिका । तथाहि-श्रुतेष्वपि बहुषु शास्त्रेषु यद्विषयक स्मरणम् ऊहापोहादिना अधिकतर भगति, तत् शास्त्र स्फुटतर प्रतिभाति, न त्वन्यत् । एतच्च स्वानुभवसिद्ध सर्वेषा प्राणिनाम् । ततो यथा घटो मृत्तिकाया अभावे न भगति, मृत्तिकाया तिष्ठन्त्याभवतिष्ठते इति मृत्तिका घटस्य कारणम्, एव श्रुतस्यापि मतिः कारणम् ।

शब्द निष्यन्न टुआ है । मतिज्ञान है कारण जिसका ऐसा श्रुतज्ञान होता है, इस प्रकार "मतिपूर्वं श्रुतम्" इस पदका अर्थ होता है । श्रुतज्ञान मतिज्ञान के द्वारा पूरा किया जाता है, अर्थात् प्राप्त किया जाता है, अथवा पाला जाता है । तात्पर्य यह है कि मतिज्ञान के अभावमे श्रुतज्ञान नष्ट हो जाता है । मतिज्ञान के अभावमे श्रुतज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है । जिस प्रकार यह नियम है उस प्रकार यह नियम नहीं है कि श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान होता है, इसलिये मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मे बड़ा भारी अन्तर है ॥ १ ॥

श्रुतज्ञान को जो मतिज्ञानकारणवाला माना गया है उसका कारण यह है कि मतिज्ञान की उत्कर्षता से श्रुतज्ञानमे उत्कर्षता एव अपकर्षता आती है । जैसे कारणभूत मृत्पिण्ड की उत्कर्षता एवं अपकर्षता से कार्यरूप घटमे उत्कर्षता एव अपकर्षता आती है । इस कारण की अपेक्षा से

औष्ण्डिकि षक् प्रत्यय आवता पूर्व शब्द अन्ये छे तेनु कारण मतिज्ञान छे, जेवु श्रुतज्ञान, मतिज्ञान द्वारा पूरे कराय छे जेवु के प्राप्त कराय छे, अथवा पालन कराय छे तेनु तात्पर्य जे छे के मतिज्ञानना अभावे श्रुतज्ञान नाश पावे छे मतिज्ञानना अभावे श्रुतज्ञाननी उत्पत्ति थती नहीं जे रीते आ नियम छे ते रीते जेवे नियम नहीं के श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान डोय छे तेथी मतिज्ञान अने श्रुतज्ञान वच्चे धरुा भोटो तक्षवत छे ॥१॥

श्रुतज्ञानने जे मतिज्ञानकारणवाणु मानेछु छे तेनु कारण जे छे के मति ज्ञाननी उत्कर्षता अने अपकर्षताथी श्रुतज्ञानमा उत्कर्षता अने अपकर्षता आवे छे जेवी रीते कारणभूत भाटीना पिंडनी उत्कर्षता अने अपकर्षताथी कार्यरूप धरुाभा उत्कर्षता अने अपकर्षता आवे छे तेवी रीते मतिज्ञाननी

ઉક્તञ્—જહ સુદ્દમ ભાવેદિય, —નાણં દર્વેન્દિયાપરોહે વિ ।

તહ દન્વસુયામાવે, માવસુય પત્થિચાર્ણ ॥ ૧ ॥

છાયા—યથા સૂક્ષ્મ માવેન્દ્રિય-જ્ઞાન દ્રવ્યેન્દ્રિયાપરોપેપિ ।

તથા દ્રવ્યશ્રુતામાવે માવશ્રુતં પાર્થિવાદીનામ્ ॥ ૧ ॥

તસ્માત્ પૂર્વોક્તમેવ શ્રુતલક્ષણ સમીચીન નાન્યદિતિ ।

તદેવં લક્ષણભેદાદ્ ભેદમભિધાય, સપ્રતિ પ્રકાગન્તરેણ ભેદમાહ—‘ મહપુવ્વ૦ ’
 इत्यादि । ‘ मतिपूर्वं येन श्रुत, न मतिः श्रुतपूर्विका ’ इति । इह पूर्वशब्दार्थः
 कारणम्, ‘ ष्ट पालनपूरणयो ’—रित्यस्मादौणादिको ऋप्रत्ययः, पूर्वते=प्राप्यते

उनमें सूक्ष्म श्रुत ज्ञान का सद्भाव सिद्ध होता है। जो ऐसा न हो तो
 उनमें आहार आदि सजाएँ नहीं बन सकती। कहा भी है—

“ जह सुदुम भावे दिय, —नाण दर्वेदियापरोहे वि ।

तह दन्वसुयाभावे, भावसुय पत्थिचार्ण ” ॥१॥

इसलिये पूर्वोक्त ही श्रुत का लक्षण समीचीन है, इससे अन्य, श्रुत
 का लक्षण समीचीन नहीं है ।

इस प्रकार सूत्रकार लक्षण के भेद से मतिज्ञान और श्रुतज्ञानमें
 भेद का प्रतिपादन करके अब प्रकारान्तर से इन दोनोंमें भेद का प्रति
 पादन करते हैं—“ महुपुव्व जेण सुय, न मई सुयपुव्विया ” (मतिपूर्व-
 येन श्रुत, न मतिः श्रुतपूर्विका) यहा पूर्व शब्द का अर्थ कारणपरक है ।
 “ ष्ट पालनपूरणयोः ” ष्ट धातु से औणादिक वरू प्रत्यय होने पर पूर्व

વિકલતા હોવા છતાં પણ તેમનામાં સૂક્ષ્મ શ્રુતજ્ઞાનનો સદ્ભાવ સિદ્ધ થાય છે
 જો એમ ન હોય તો તેમનામાં આહાર આદિ સજાઓ સભવેજ નહીં કહ્યું પણ છે—

“ જહ સુદુમ ભાવેદિય, —નાણ દર્વે દિયાવરોહે વિ ।

તહ દન્વસુયામાવે, માવસુય પત્થિચાર્ણ ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્—જેમ દ્રવ્યેન્દ્રિયના સ્વભાવમાં સૂક્ષ્મ ભાવેન્દ્રિયજ્ઞાન હોય છે તેમજ
 પૃથ્વા આદિ ભુવોમાં પણ દ્રવ્યશ્રુતના અભાવમાં ભાવશ્રુત હોય છે (૧)

તેથી પૂર્વોક્ત જ શ્રુતનું લક્ષણ સમીચીન છે, તેથી બુદ્ધ શ્રુતનું લક્ષણ
 સમીચીન નથી

આ પ્રમાણે લક્ષણના લેહથી મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમાં લેહને સિદ્ધ કરીને
 હવે સૂત્રકાર ખીલ પ્રકારે એ બંનેના લેહનું પ્રતિપાદન કરે છે—“ મહપુવ્વ
 જેણ સુય, ન મઈ સુયપુવ્વિયા ” (મતિપૂર્વં એન શ્રુત, ન મતિ શ્રુતપૂર્વિકા)
 અહીં પૂર્વ શબ્દનો અર્થ કારણપરક છે “ ષ્ટ પાલન-પૂરણયો ” ‘ ષ્ટ ’ ધાતુથી

कार्यं येन तत् पूर्व=कारण-मित्यर्थः, मतिःपूर्वं यस्य तद् मतिपूर्वम्, श्रुत-श्रुतज्ञान, तथाहि-श्रुतज्ञान मत्या पूर्णते=प्राप्यते पाल्यते वा । मतिज्ञानाभावे श्रुतज्ञान विनश्यतीत्यर्थः । 'न मतिः श्रुतपूर्विका' इति । मतिः श्रुतपूर्विकानास्तीत्यर्थः, तस्मान्मतिश्रुतयोर्भेदान् भेदः ॥ १ ॥

यच्च यदुत्कर्षापरुषवशादुत्कर्षापरुषभाक्, तत् तस्य कारणम् । यथा घटस्य मृत्पिण्डः । एव मत्युत्कर्षापरुषवशाच्च श्रुतस्योत्कर्षापरुषापरुषा, तस्मान्मतिज्ञान श्रुतज्ञानस्य कारणम् । किञ्च-मत्या श्रुतं पाल्यतेऽवस्थितिं प्राप्यते, इति श्रुतस्य कारण मतिः, यथा घटस्य मृत्तिका । तथाहि-श्रुतेष्वपि बहुषु शास्त्रेषु यद्विषयक स्मरणम् ऊहापोहादिना जविकृतर भवति, तत् शास्त्र स्फुटतर प्रतिभाति, न त्वन्यत् । एतच्च स्वानुभवसिद्ध सर्वेषा प्राणिनाम् । ततो यथा घटो मृत्तिकाया अभावे न भवति, मृत्तिकाया तिष्ठन्त्याभवतिष्ठते इति मृत्तिका घटस्य कारणम्, एव श्रुतस्यापि मतिः कारणम् ।

शब्द निप्यन्न हुआ है । मतिज्ञान है कारण जिसका ऐसा श्रुतज्ञान होता है, इस प्रकार "मतिपूर्वं श्रुतम्" इस पदका अर्थ होता है । श्रुतज्ञान मतिज्ञान के द्वारा पूरा किया जाता है, अर्थात् प्राप्त किया जाता है, अथवा पाला जाता है । तात्पर्य यह है कि मतिज्ञान के अभावमें श्रुतज्ञान नष्ट हो जाता है । मतिज्ञान के अभावमें श्रुतज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है । जिस प्रकार यह नियम है उस प्रकार यह नियम नहीं है कि श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान होता है, इसलिये मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में बड़ा भारी अन्तर है ॥ १ ॥

श्रुतज्ञान को जो मतिज्ञानकारणवाला माना गया है उसका कारण यह है कि मतिज्ञान की उत्कर्षता से श्रुतज्ञानमें उत्कर्षता एव अपकर्षता आती है । जैसे कारणभूत मृत्पिण्ड की उत्कर्षता एव अपकर्षता से कार्य रूप घटमें उत्कर्षता एव अपकर्षता आती है । इस कारण की अपेक्षा से

औष्ण्यदिग् वक् प्रत्यय आवता पूर्व शब्द अन्ये छे तेनु उरषु मतिज्ञान छे, अेषु श्रुतज्ञान, मतिज्ञान द्वारा पूरु कराय छे अेटवे के प्राप्त कराय छे, अथवा पालन कराय छे तेनु तात्पर्य अे छे डे मतिज्ञानना अभावे श्रुतज्ञान नाश पावे छे मतिज्ञानना अभावे श्रुतज्ञाननी उत्पत्ति थती नथी छे रीते आ नियम छे ते रीते अेवे नियम नथी डे श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान डोय छे तेथी मतिज्ञान अने श्रुतज्ञान वन्थे धलो मोटे तक्षवत छे ॥१॥

श्रुतज्ञानने जे मतिज्ञानकारणवाणु मानेडु छे तेनु उरषु अे छे डे मति ज्ञाननी उत्कर्षता अने अपकर्षताथी श्रुतज्ञानमा उत्कर्षता अने अपकर्षता आवे छे जेवी रीते उरषुभूत माटीना पिडनी उत्कर्षता अने अपकर्षताथी कार्यरूप धडाभा उत्कर्षता अने अपकर्षता आवे छे तेवी रीते मतिज्ञाननी

નવુ મતિશ્રુતયોર્યુગપદેવ સમ્યક્ત્વમાત્રી સમુત્પત્તિઃ, તદ્જ્ઞાનયોર્વિગમોઽપિ યુગપદેવ ભવતિ, કથ તર્હિ મતિપૂર્વં શ્રુત? મિતિ તિશ્ચ-શ્રુતજ્ઞાનમ્ય મતિપૂર્વકસ્વ સ્વીકારે મતિજ્ઞાને સમુત્પન્ને તત્કાલ શ્રુતજ્ઞાનેઽન્યપુગમ્યમાને શ્રુતાજ્ઞાન જીવસ્ય પ્રસજ્યતે, શ્રુતજ્ઞાનાનુત્પાદંઽથાપિ તદનિષ્ટોઃ । ન ચૈતદિષ્ટમિતિ ।

શ્રુતજ્ઞાનમેં મતિપૂર્વકતા યતલાઈ છે. “મત્યા પાત્યતે” ઇમ અપેક્ષા શ્રુતમેં મતિપૂર્વકતા ઇસ પ્રકાર છે-જિમ પ્રકાર ઘટ મૃત્તિકા કે અભાવમેં નહીં હોતા છે, કિન્તુ મૃત્તિકા કે સદ્ભાવમેં હી હોતા છે, અતઃમૃત્તિકા ઘટ કા કારણ છે. ડસી તરહ શ્રુતજ્ઞાન મી મતિ કે હોને પર હી હોતા છે, ડસકે અભાવમેં નહીં. યદ યાત પ્રત્યેક પ્રાણીકો મ્વાનુભવ સે સિદ્ધ છે કિ-અનેક શાસ્ત્રોં કે સુનને પર મી જિસ શાસ્ત્ર કે વિષય કા સ્મરણ રહતા છે, અથવા જિસકા અધિકતર ડહાપોહ આદિ હોતા રહતા છે વહી શાસ્ત્ર સ્ફુટતર પ્રતિભાસિત હોતા છે, અન્ય શાસ્ત્ર નહીં. ડસસે યદ વાત સિદ્ધ હો જાતી છે કિ શાસ્ત્ર કા-તદ્ગતવિષય કા-સ્ફુટતર પ્રતિભાસરૂપ શ્રુતજ્ઞાન સ્મરણાદિરૂપ મતિજ્ઞાન કે આધીન છે, જૈસે ઘટ કી સ્થિતિ મૃત્તિકા કે આધીન છે, ડસસે શ્રુતમેં મતિપૂર્વકતા સ્પષ્ટ છે.

પ્રશ્ન-જવ જીવ કો સમ્યક્ત્વ કી પ્રાપ્તિ હોતી છે તવ મતિજ્ઞાન ઓર શ્રુતજ્ઞાન કી ઉત્પત્તિ ઁકસાથ હોતી છે, ત્યોં કિ સમ્યક્ત્વોત્પત્તિ સે

ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતાથી શ્રુતજ્ઞાનમા ઉત્કર્ષતા અને અપકર્ષતા આવે છે આ કારણની અપેક્ષાએ શ્રુતજ્ઞાનમા મતિપૂર્વકતા દર્શાવી છે “મત્યા પાત્યતે” એ અપેક્ષાએ શ્રુતમા મતિપૂર્વકતા આ પ્રકારે છે-જેમ માટીને અભાવે ઘડા ઢોધ શકતો નથી, પણ માટીના સફલાવમા જ થાય છે, તેથી માટી ઘડાનુ કારણ છે એજ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન પણ મતિજ્ઞાનના સફલાવમા જ થાય છે, તેના અભાવમા નહીં એ વાત પ્રત્યેક પ્રાણીને સ્વાનુભવથી સિદ્ધ છે કે અનેક શાસ્ત્રોને સાલજવા છતાં જે શાસ્ત્રના વિષયનુ સ્મરણ રહે છે, અથવા જેનો વધારે ડહાપોહ આદિ થતો રહે છે, એજ શાસ્ત્ર અધિક સ્પષ્ટતાથી પ્રતિભાસિત થાય છે, અન્ય શાસ્ત્ર નહીં, તેથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે શાસ્ત્રના-તેમા રહેલ વિષયના સ્પષ્ટપ્રતિભાસરૂપ શ્રુતજ્ઞાન સ્મરણાદિરૂપ મતિજ્ઞાનને આધીન છે, જેમ ઘડાની સ્થિતિ માટીને આધીન છે તે પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાનની સ્થિતિ મતિને આધીન છે આ કારણે શ્રુતમા મતિપૂર્વકતા સ્પષ્ટ છે

પ્રશ્ન-ન્યારે જીવને સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ એક સાથે થાય છે, કારણ કે સમ્યક્ત્વની ઉત્પત્તિના પહેલા

अत्रोच्यते—लब्धिं प्रति मतिश्रुते युगपद् भवतः, न तु तयोरुपयोगो युगपद् भवतीति मतिपूर्वं श्रुतम् । अयं भावः—श्रुतोपयोगो मत्या जन्यते, यदि मत्या न चिन्त्यते तदा श्रुतोपयोगो न जायते ।

पहिले जो जीव के मतिअज्ञान एव श्रुतअज्ञान थे वे उसकी उत्पत्ति होने से एक ही साथ नष्ट हो जाते हैं। जब ऐसी स्थितिमें श्रुतमे मतिपूर्वकता कैसे आसकती है? दूसरी बात एक यह भी है कि जब श्रुतज्ञान को मतिपूर्वक माना जाय तो मतिज्ञान के उत्पन्न होने पर उसके समकाल में श्रुतज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ तो उस अवस्था में जीव को श्रुतअज्ञान का प्रसङ्ग आवेगा, क्यों कि जबतक श्रुतज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है तबतक श्रुत अज्ञान का विगम भी नहीं हुआ है तो उस हालत में जीवको ज्ञान और अज्ञान की एक साथ उपस्थिति रहेगी, और ऐसा होना इष्ट नहीं है, क्यों कि अन्धकार और प्रकाश की तरह ज्ञान और अज्ञान एक साथ नहीं रह सकते ? ।

उत्तर—लब्धि की अपेक्षा मति और श्रुत ये दोनों एक साथ होते हैं, उपयोग की अपेक्षा नहीं, उपयोग की अपेक्षा तो ये दोनों भिन्न-भिन्न समय में होते हैं, इसलिये श्रुतज्ञान मतिपूर्वक माना जाता है । तात्पर्य यह है कि यदि मतिज्ञान के द्वारा विचार न किया जावे तो श्रुतोपयोग उत्पन्न नहीं हो सकता है, अतः श्रुतोपयोग का जनक मतिज्ञान है ।

एवमा ज्ञे मतिअज्ञान अने श्रुतअज्ञान उता ते तेनी उत्पत्ति थवार्थी अेक साथे नाश पावे छे तो अेवी स्थितिमा श्रुतमा मतिपूर्वकता केवी रीते आवी शके छे? जीअ अेक बात अे पणु छे के जे श्रुतज्ञानने मतिपूर्वक मानवामा आवे तो न्यारे मतिज्ञान उत्पन्न थता तेना समकाले श्रुतज्ञान उत्पन्न न थाय तो ते अवस्थामा एवने श्रुतज्ञानने प्रसङ्ग आवेशे, कारणु के न्या सुधी श्रुतज्ञान उत्पन्न थयु नथी त्या सुधी श्रुतअज्ञानने विगम पणु थयो नथी, तो अे स्थितिमा एवने ज्ञान अने अज्ञाननी अेक साथे उाजरी रहेशे, पणु अेम थयु ते छिष्ट नथी, कारणु के अघटार अने प्रकाशनी जेम ज्ञान अने अज्ञान अेक साथे रही शकता नथी ?

उत्तर—लब्धिनी अपेक्षाअे मति अने श्रुत अे जन्ने अेक साथे थाय छे, उपयोगनी अपेक्षाअे नही उपयोगनी अपेक्षाअे तो ते जन्ने भिन्न भिन्न समये थाय छे, तेथी श्रुतज्ञान मतिपूर्वक बनाय छे तात्पर्य अे छे के जे मति ज्ञान द्वारा विचार न कराय तो श्रुतोपयोग उत्पन्न थर्ष शकतो नथी, तेथी श्रुतोपयोगनु जनक मतिज्ञान छे

नन्वेव मतिरपि श्रुतपूर्वा भवत्येव । तथाहि-शब्द श्रुता या मतिकल्पयते, सा श्रुतपूर्वेति प्रसिद्धम् । अतो नास्ति विशेषः, यथा मतिपूर्वा श्रुत, तथा मतिरपि श्रुतपूर्वे ?-ति चेत्,

अत्रोच्यते—मतिः खलु शब्दात्मकेन द्रव्यश्रुतेन जन्यते, इह तु—' न मतिः श्रुतपूर्वा ' इत्यस्यायमर्थः—उपयोगरूपात् भावश्रुतात् मतिर्न भवतीति । यद्वा-मतिर्भावश्रुतकार्यतया निषिध्यते, न तु क्रमेण, क्रमेण तु श्रुतोपयोगाच्च्युतस्य मत्पक्ष-स्थानमिष्यते एवेति ।

शका—इस तरह तो मतिज्ञान भी श्रुतपूर्वक होता है, शब्द को सुन कर जो मतिज्ञान उत्पन्न होता है वह श्रुतपूर्वक मतिज्ञान है, यह बात प्रसिद्ध है, इसलिये जैसे मतिपूर्वक श्रुत होता है वैसे ही श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान भी होता है फिर कार्य कारण आदि की अपेक्षा जो इनमें भेद का प्रदर्शन कर रहे हैं वह नहीं बनता है ।

उत्तर—यह मतिज्ञान से श्रुतज्ञान की उत्पत्ति होती है" ऐसा जो कहा जाता है वह भावश्रुत की अपेक्षा लेकर कहा जाता है । भाव-श्रुतज्ञान उपयोगरूप माना गया है । वह उपयोगरूप भावश्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, अथवा रही बात श्रुत से मति के उत्पन्न होने की, सो शब्दात्मक द्रव्यश्रुत से वह उत्पन्न होती ही है, परन्तु जहाँ ऐसा कहा जाता है कि " न मतिः श्रुतपूर्वा " उसका तात्पर्य यह है कि उपयोगरूप भावश्रुत से मतिज्ञान उत्पन्न नहीं होता है । अथवा " भाव श्रुत का कार्य मति है " यह बात निषिद्ध की गई है । इन दोनों के क्रम

शका—आ रीते तो मतिज्ञान पक्ष श्रुतपूर्वक होय छे, शब्दने साक्षणीने ने मतिज्ञान उत्पन्न थाय छे ते श्रुतपूर्वक मतिज्ञान छे, ओ बात प्रसिद्ध छे तेथी नेम मतिपूर्वक श्रुत थाय छे ओव रीते श्रुतपूर्वक मतिज्ञान पक्ष थाय छे, तो पछा कार्यकारण आदिनी अपेक्षाओ तेमनामा लेखनु प्रदर्शन करे छे ते सलवे नडी

उत्तर—अडी " मतिज्ञानथी श्रुतज्ञाननी उत्पत्ति थाय छे " ओम ने कडेवाय छे ते भावश्रुतनी अपेक्षाओ कडेवाय छे भावश्रुतज्ञान उपयोगरूप मनायु छे ते उपयोगरूप भावश्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक व होय छे ह्ये श्रुतथी मति उत्पन्न थवानी बात भाडी रडी, तो शब्दात्मक द्रव्यश्रुतथी ते उत्पन्न थाय छे व पक्ष तथा ओम कडेवामा आवे छे के " मति श्रुतपूर्वा " तेनु तात्पर्य ओ छे के उपयोगरूप भावश्रुतथी मतिज्ञान उत्पन्न थतु नथी अथवा " भावश्रुतनु कार्य मति छे " ओ बात निषिद्ध करायेल छे ओ अन्नेना उमनेा नि - यो

इतथापि मतिश्रुतयोर्भेदः, भेदभेदात् । तथाहि—अग्रहादिभेदादष्टाविंशतिविधं मतिज्ञानम्, अग्रप्रविष्टाद्यनेकभेदभिन्नं च श्रुतज्ञानम् । २ ।

इन्द्रियोपलब्धिविभागादपि मतिश्रुतयोर्भेदः । तथा चोक्तम्—

“सोऽदियोऽलब्धी, होऽ सुय सेसय तु महनाण ।

मोत्तूण दव्वसुय, अक्खरलभो य सेसेसु” ॥ १ ॥

छाया—श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः, भवति श्रुत शेषक तु मतिज्ञानम् ।

मुक्त्वा द्रव्यश्रुतम्, अक्षरलाभश्च शेषेषु ॥ १ ॥

व्याख्या—श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिः श्रुत भवति, सर्वं वाक्य सावधारणमिति न्यायाश्रयणात् । इह श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धिरपि या श्रुताऽनुसारिणी सैव श्रुतमुच्यते, या तु अग्रहेहावायरूपा सा मतिः । यदि श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिः श्रुतमेवेत्युच्यते, तर्हि मतेरपि श्रुतत्वमापद्यते, तच्चानिष्टम्, अतः श्रोत्रेन्द्रियेणोपलब्धिरेव श्रुतमित्यगन्तव्यम् ।

का निषेध नहीं किया गया है, क्यों कि श्रुतोपयोग से च्युत हुए जीव का क्रम से मति में अवस्थान माना ही जाता है ।

भेदों की भिन्नता की अपेक्षा को लेकर भी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में भिन्नता आती है, क्यों कि अग्रह, ईहा, अवाय और धारणा आदिके भेद से मतिज्ञान अठारह प्रकार का है, तथा अग्रप्रविष्ट और अगवाह्य आदिके भेद से श्रुतज्ञान अनेक प्रकार का माना गया है ॥ २ ॥

इन्द्रियों के द्वारा जो उपलब्धि होती है सो उस उपलब्धि के विभाग से भी मति और श्रुत में भेद है । कहा भी है—

“सोऽदियोऽलब्धी, होऽ सुय सेसय तु महनाण ।

मोत्तूण दव्वसुय, अक्खरलभो य सेसेसु” ॥ १ ॥

नथी, कारणु के श्रुतोपयोगथी श्रुत थयेल एवना कभथी मतिभा अवस्थान मनाथ छे ७

लेहोनी भिन्नतानी अपेक्षाये गणुता पणु मतिज्ञान अने श्रुतज्ञानभा भिन्नता आवे छे कारणु के अवग्रह ईहा, अवाय अने धारणा आदिना वेदथी मतिज्ञान अठारह प्रकारनु, तथा अग्रप्रविष्ट अने अगवाह्य आदिना वेदथी श्रुतज्ञान अनेक प्रकारनु मनाथ छे ॥ २ ॥

इन्द्रियो द्वारा ७ उपलब्धि थाय छे ते उपलब्धिना विभागाथी पणु मति अने श्रुतना वेद छे कहु पणु छे—

“सोऽदियोऽलब्धी, होऽ सुय सेसय तु महनाण ।

मोत्तूण दव्वसुय, अक्खरलभो य सेसेसु” ॥१॥

नन्वेन मतिरपि श्रुतपूर्वा भवन्त्येव । तथाहि-शब्द श्रुत्वा या मतिरुत्पद्यते, सा श्रुतपूर्वेति प्रसिद्धम् । अतो नास्ति विरोधः, यया मतिर्प्रां श्रुत, तथा मतिरपि श्रुतपूर्वे ?-ति चेत्,

अत्रोच्यते—मतिः खलु शब्दात्मकेन द्रव्यश्रुतेन जन्यते, इह तु-‘ न मतिः श्रुतपूर्वा ’ इत्यस्यायमर्थः—उपयोगरूपात् भावश्रुतात् मतिर्न भवतीति । यद्वा-मतिर्भावश्रुतकार्यतया निषिध्यते, न तु क्रमेण, क्रमेण तु श्रुतोपयोगाच्च्युतस्य मत्यन्व-स्थानमिष्यते एवेति ।

शका—इस तरह तो मतिज्ञान भी श्रुतपूर्वक होता है, शब्द को सुन कर जो मतिज्ञान उत्पन्न होता है वह श्रुतपूर्वक मतिज्ञान है, यह बात प्रसिद्ध है, इसलिये जैसे मतिपूर्वक श्रुत होता है वैसे ही श्रुतज्ञानपूर्वक मतिज्ञान भी होता है फिर कार्य कारण आदि की अपेक्षा जो इनमें भेद का प्रदर्शन कर रहे हैं वह नहीं बनता है ।

उत्तर—यह मतिज्ञान से श्रुतज्ञान की उत्पत्ति होती है” ऐसा जो कहा जाता है वह भावश्रुत की अपेक्षा लेकर कहा जाता है । भाव-श्रुतज्ञान उपयोगरूप माना गया है । वह उपयोगरूप भावश्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, अब रही बात श्रुत से मति के उत्पन्न होने की, सो शब्दात्मक द्रव्यश्रुत से वह उत्पन्न होती ही है, परन्तु जहाँ ऐसा कहा जाता है कि “न मतिः श्रुतपूर्वा” उसका तात्पर्य यह है कि उपयोगरूप भावश्रुत से मतिज्ञान उत्पन्न नहीं होता है । अथवा “भाव-श्रुत का कार्य मति है” यह बात निषिद्ध की गई है । इन दोनों के क्रम

शका—आ रीते तो मतिज्ञान पणु श्रुतपूर्वक होय छे, शब्दने सालणीने ने मतिज्ञान उत्पन्न थाय छे ते श्रुतपूर्वक मतिज्ञान छे अथे वात प्रसिद्ध छे तेथी अथे मतिपूर्वक श्रुत थाय छे अथे रीते श्रुतपूर्वक मतिज्ञान पणु थाय छे, तो पछी कार्यकारण आदिनी अपेक्षाअथे तेमनाभा बेदनु प्रदर्शन करे छे ते स भवे नही

उत्तर—अही “ मतिज्ञानथी श्रुतज्ञाननी उत्पत्ति थाय छे” अथे ने कडेवाय छे ते भावश्रुतनी अपेक्षाअथे कडेवाय छे भावश्रुतज्ञान उपयोगरूप भनायु छे ते उपयोगरूप भावश्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक न होय छे हवे श्रुतथी मति उत्पन्न थवानी वात आकी रही, तो शब्दात्मक द्रव्यश्रुतथी ते उत्पन्न थाय छे न पणु नथा अथे कडेवाभा आवे छे के “मति श्रुतपूर्वा” तेनु तात्पर्य अथे के उपयोगरूप भावश्रुतथी मतिज्ञान उत्पन्न थनु नथी अथवा “ भावश्रुतनु प मति छे” अथे वात निषिद्ध करायेल छे अथे अन्वेषण केमने निषेध

તદેવ ચક્ષુરાદીન્દ્રિયોપલબ્ધેઃ સામાન્યતો મતિજ્ઞાનરૂપત્વ પ્રાપ્તમિત્યતસ્તદપવા-
દમાહ—‘મોત્સૂળ દવ્વસુય’ ઇતિ । મુક્ત્વા દ્રવ્યશ્રુતમિતિ । અય માનઃ—દ્રવ્યશ્રુત
મુક્ત્વા=વિદ્યાય, યઃ શેપેષુ—ચક્ષુરાદીન્દ્રિયેષુ અક્ષરલાભઃ—શબ્દાર્થપર્યાલોચનાત્મકઃ
સોઽપિ શ્રુતમ્, ન તુ કેવલોઽક્ષરલાભઃ, ઈદાદિરૂપાયા મતાવપિ કેવલસ્યાક્ષર-
લાભસ્ય સમગ્રાત્ ।

નનુ યદિ શેપેન્દ્રિયેષુ અક્ષરલાભઃ શ્રુત, તર્હિં યદવધારણ પૂર્વમુક્ત—‘શ્રોત્રેન્દ્રિ-
યોપલબ્ધિરેવ શ્રુત’—મિતિ તદ્વિરુદ્ધયતે, શેપેન્દ્રિયોપલબ્ધેરપિ સમતિ શ્રુતત્વેન
પ્રતિપન્નત્વાદિતિચેત્, ઉચ્યતે—દહ શેપેન્દ્રિયાક્ષરલાભઃ સ એવ ટૂણતે યઃ—સ્વલુ શબ્દા-
ર્યપર્યાલોચનાનુસારી ચાક્ષરલાભઃ શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિકલ્પ ઇતિ ન કશ્ચિદ્દોષઃ ॥૩॥

આયા હુઆ ‘તુ’ શબ્દ યદ્ વતલાતા હૈ કિ શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય સે જન્ય મી
કોઈર ઉપલબ્ધિ જો અવગ્રહ, ઈદા એવ અવાયરૂપ હોતી હૈ વદ્ મતિજ્ઞાન
હૈ । ઇસ પ્રકાર ચક્ષુરાદિ ઇન્દ્રિયજન્ય ઉપલબ્ધિ મે સામાન્યરૂપ સે મતિ-
જ્ઞાનરૂપતા પ્રાપ્ત હોને પર સૂત્રકાર ઇસમે મી સશોધન ઉપસ્થિત કરતે
હુણ કહતે હે કિ—‘મોત્સૂળ દવ્વસુય’—‘મુક્ત્વા દ્રવ્યશ્રુતમ્’ દ્રવ્યશ્રુત
કો ઝોડકર શેપ ઇન્દ્રિયો મે જો અક્ષરલાભ હોતા હૈ—શબ્દ ઓર ઉસકે
અર્થકો પર્યાલોચના હોતી હૈ—વદ્ મી શ્રુતજ્ઞાન હૈ, મતિજ્ઞાન નહી હૈ ।
માત્ર અક્ષર કા લાભ શ્રુતજ્ઞાન નહી હૈ કિન્તુ શબ્દ ઓર ઉસકે અર્થકી
પર્યાલોચનાત્મકતારૂપ જો અક્ષરલાભ હૈ વહી શ્રુત હૈ, કારણ કેવલ
અક્ષરલાભ તો ઈદાદિરૂપ મતિજ્ઞાન મે મી સભવિત હોતા હૈ ।

શકા—યદિ શેપ ઇન્દ્રિયો મે અક્ષરલાભ શ્રુત હૈ તો પૂર્વ મે જો
એસા અવધારણ કિયા હૈ કિ—‘શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિરેવ શ્રુતમ્’ વદ્ ઠીક

શબ્દ એ બતાવે છે કે શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયથી જન્ય પણ કોઈ કોઈ ઉપલબ્ધિ જે
અવગ્રહ, ઈદા, અને અવાયરૂપ હોય છે તે મતિજ્ઞાન છે આ પ્રમાણે અક્ષુ
વગેરે ઇન્દ્રિયજન્ય ઉપલબ્ધિમા સામાન્યરૂપે મતિજ્ઞાનરૂપતા પ્રાપ્ત હોવાથી
સૂત્રકાર તેમા પણ સશોધન રહ્યુ ડગ્તા કહે છે કે—‘મોત્સૂળ દવ્વસુય’—‘મુક્ત્વા,
દ્રવ્યશ્રુતમ્’ દ્રવ્યશ્રુતને છોડીને બાકીની ઇન્દ્રિયોમા જે અક્ષરલાભ થાય છે—શબ્દ
અને તેના અર્થની પર્યાલોચના થાય છે તે પણ શ્રુતજ્ઞાન છે મતિજ્ઞાન નથી
માત્ર અક્ષરનો લાભ શ્રુતજ્ઞાન નથી પણ શબ્દ અને તેના અર્થની પર્યાલોચનાત્મ
કતારૂપ જે અક્ષરલાભ છે એજ શ્રુત છે, કારણ કે કેવળ અક્ષરલાભતો ઈદાદિરૂપ
મતિજ્ઞાનમા પણ સભવિત હોય છે

શકા—જે બાકીની ઇન્દ્રિયોમા અક્ષરલાભ શ્રુત છે તો પહેલા જે એવુ
અવધારણ કર્યુ છે કે ‘શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિરેવ શ્રુતમ્’ તે યોગ્ય લાગતુ નથી.

તથા-શેષ યત્ ચક્ષુગદીન્દ્રિયોપલબ્ધિરુપ જ્ઞાન તન્મતિજ્ઞાન મતીત્યન્યથઃ ।
તુ-શબ્દોઽનુક્તસમુચ્યાર્થઃ । તતથ—શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિરપિ યાચિદ્ અગ્રહેદાવાપ
રૂપા મતિજ્ઞાનમ્, ડતોઽન્યત્ સલ્લુ ચક્ષુરાદીન્દ્રિયોપલબ્ધિરુપ મતિજ્ઞાનમન્યેવેતિ ભાવઃ ।

હમ ગાથા કા તાત્પર્યં હમ પ્રકાર ઈ-જિતને મી વાચ્ય રીતે હૈં વે
સપ અવધારણ સહિત રીતે ઈં, હમ ન્યાય કે અનુમાર યદા જો ઉપલબ્ધિ
શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ, અવગ્રહ, ઈંહા ઓર અવાચ્યરુપ હો વદ શ્રુત નહીં હૈ,
વદ તો મતિજ્ઞાનરુપ હી હૈ, કારણ કિ અવગ્રહાદિરુપ શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ
શ્રુતાનુસારણી નહીં રીતી હૈ । યદિ ંેમા કહા જાવે કિ “શ્રોત્રેન્દ્રિયોપ-
લબ્ધિઃ શ્રુતમેવ” શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ શ્રુત હી હૈ તો હમ પ્રકાર કે કથન
સે મતિજ્ઞાન મેં મી શ્રુતજ્ઞાનપને કા પ્રસંગ પ્રાપ્ત હો સકતા હૈ, અતઃ ંેમા
ન કહકર જો ંેમા કહા હૈ કિ “શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિરેવ શ્રુતમ્” શ્રોત્ર
ઈન્દ્રિય સે ઉત્પન્ન હુઆ જ્ઞાન હી શ્રુત હૈ, યહી નિર્દોષ હૈ । હમ કથન સે
યદ વાત મી સિદ્ધ હો જાતી હૈ કિ જન શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ શ્રુતાનુસારણી
નહી રીતી હૈ તથ તો વદ મતિજ્ઞાનરુપ રીતી હૈ, ઓર જન વદ શ્રુતાનુ-
સારણી રીતી હૈ તથ વદ શ્રુતજ્ઞાનરુપ રીતી હૈ ।

(શેષક તુ મતિજ્ઞાનમ્) જો ઉપલબ્ધિ ચક્ષુ આદિ ઈન્દ્રિયોં સે ઉત્પન્ન
રીતી હૈ વદ ઉપલબ્ધિરુપજ્ઞાન મતિજ્ઞાન હૈ, શ્રુતજ્ઞાન નહીં હૈ । ગાથા મેં

આ ગાથાને ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે-એટલા વાચ્યો હોય છે તે બધા
અવધારણુસહિત હોય છે આ ન્યાયાનુસાર અહીં જે ઉપલબ્ધિ શ્રોત્રેન્દ્રિયથી
ઉત્પન્ન થઈ છે એજ ઉપલબ્ધિ શ્રુતજ્ઞાન માનવામા આવેલ છે શ્રોત્રેન્દ્રિયો
પલબ્ધિ પણ અહીં એજ શ્રુતજ્ઞાનરૂપ સમજવી કે જે શ્રુતાનુસારિણી હોય જે
શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ અવગ્રહ, ઈંહા, અને અવાચરૂપ હોય તે શ્રુત નથી, તે તો
મતિજ્ઞાનરૂપ જ છે, કારણ કે અવગ્રહાદિરૂપ શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ શ્રુતાનુસારિણી
હોતી નથી જે એમ કહેવામા આવે કે “શ્રોત્રેન્દ્રિયોપલબ્ધિ શ્રુતમેવ” શ્રોત્રેન્દ્રિ-
યોપલબ્ધિ શ્રુત જ છે તો આ પ્રકારના કથનથી મતિજ્ઞાનમા પણ શ્રુતજ્ઞાનપણાને
પ્રસંગ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે તેથી એમ ન કહેતા એમ જે કહેલ છે કે “શ્રોત્રેન્દ્રિ-
યોપલબ્ધિરેવ શ્રુતમ્” શ્રોત્ર ઈન્દ્રિયથી ઉત્પન્ન થયેલ જ્ઞાન જ શ્રુત છે એજ
નિર્દોષ છે આ કથનથી એ વાત પણ સિદ્ધ થઈ બચ છે કે ત્યારે શ્રોત્રેન્દ્રિયો-
પલબ્ધિ શ્રુતાનુસારિણી હોતી નથી ત્યારે તો તે મતિજ્ઞાનરૂપ હોય છે, અને
ત્યારે તે શ્રુતાનુસારિણી હોય છે ત્યારે તે શ્રુતજ્ઞાનરૂપ હોય છે

(શેષક તુ મતિજ્ઞાનમ્) જે ઉપલબ્ધિ ચક્ષુ આદિ ઈન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થાય
છે તે ઉપલબ્ધિરૂપ જ્ઞાન મતિજ્ઞાન છે, શ્રુતજ્ઞાન નથી ગાથામા અ “ન”

पुनरप्यय मतिश्रुतयोर्भेदः-मूकवत् स्वप्रत्यायक मतिज्ञान, अमूकवत् स्वपरप्रत्यायक श्रुतज्ञानम् ॥ ६ ॥

ज्ञान तो अनक्षरात्मक है, क्योंकि इसमें जो वस्तु का प्रतिभास होता है वह सामान्यरूप से ही होता है, इसलिये इस ज्ञान में किसी भी प्रकार का विकल्प उत्पन्न नहीं होता है। ईहा आदि ज्ञान अक्षरात्मक है, क्योंकि कि अवग्रह से गृहीत पदार्थका ही इसमें परामर्श आदि होता है। "श्रुतज्ञान साक्षर ही है" इसका तात्पर्य यह है कि जबतक शब्द का श्रवण नहीं होता है तबतक उस शब्द और उसके अर्थ के विषय में पर्यालोचन नहीं हो सकता है। शब्द और अर्थ के पर्यालोचनस्वरूप ही तो श्रुतज्ञान माना गया है, इसलिये 'श्रुतज्ञान साक्षर ही है' ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वप्रत्यायक एव स्व-परप्रत्यायक की अपेक्षा भी मति एव श्रुत में भेद है। मतिज्ञान मूक की तरह स्वप्रत्यायक ही है। जिस प्रकार वचन का अभाव होने से मूक परप्रत्ययक नहीं होता है उसी प्रकार मतिज्ञान भी द्रव्य श्रुतरूप वचनात्मक नहीं होने से परप्रत्यायक नहीं होता है। अपने प्रत्यय के हेतुभूत वचनों के सद्भाव होने से श्रुत में स्व और पर-प्रत्यायकता बोलनेवाले की तरह सिद्ध ही होती हैं। इस तरह से भी मति और श्रुतज्ञान में भेद है ॥ ६ ॥

अनक्षरात्मक छे, ङारणु के तेभा के वस्तुना प्रतिभास थाय छे ते सामान्यरूपे थाय छे, तेथी ते ज्ञानभा केरु पणु प्रकारना विकल्प उत्पन्न थतो नथी ईहा आदि ज्ञान अक्षरात्मक छे, ङारणु के अवग्रहथी अडणु थयेल पदार्थना न तेभा परामर्श आदि थाय छे, "श्रुतज्ञान साक्षर न छे" तेतु तात्पर्य अये छे के न्या सुधी शब्द सलजाते नथी त्या सुधी ते शब्द अने तेना अर्थना विषयभा पर्यालोचनना थर्ध शकती नथी शब्द अने अर्थना पर्यालोचनस्वरूप श्रुतज्ञान भनायु छे, ते ङारणु "श्रुतज्ञान साक्षर न छे" अयेम समनपु अर्थ अये ॥ ५ ॥

स्वप्रत्यायक अने स्व-पर-प्रत्यायकनी अपेक्षाअये पणु मति अने श्रुतभा लेद छे मतिज्ञान मूक (मूगा)नी अये स्वप्रत्यायक न छे के प्रभाणु वचनना अभाव होवाथी मूक परप्रत्यायक होतो नथी अये प्रभाणु मतिज्ञान पणु द्रव्यश्रुतरूप वचनात्मक नही होवाथी परप्रत्यायक होतु नथी पोताना प्रत्ययना हेतुभूत वचनना सद्भाव होवाथी श्रुतभा स्व अने पर प्रत्यायकता बोलनारनी अयेम सिद्ध न होय छे आ रीते पणु मति अने श्रुतभा लेद छे ॥ ६ ॥

अपमपि मतिश्रुतयोर्भेदः—मतिज्ञानं चल्कलसमं कारणत्वात् । श्रुतज्ञानं तु सुखसमं—(चल्कलनिष्पन्नरज्जुसमं) तत्कार्यत्वात् । ततश्च यथा—चल्कलसुखयोर्भेदस्तथा मतिश्रुतयोरपि ॥ ४ ॥

पुनरप्यनयोरयं भेदः—मतिज्ञानम्—अक्षर साक्षर च । श्रुतज्ञानं तु साक्षरमेव—अक्षरानुगतमेव । तथाहि—अग्रज्ञानमनक्षर, तस्य सामान्यमात्रप्रतिभासकतया निर्विकल्पत्वात् । ईहादिज्ञानं तु साक्षर, तस्य परमर्शादिरूपतयाऽऽश्यवर्णनिरूपितत्वात् । श्रुतज्ञानं तु साक्षरमेव, अक्षरमन्तरंणं शब्दार्थपर्यालोचनस्यानुपपत्तेः ॥६॥

नहीं बैठता है, कारण कि—आप तो शेषेन्द्रियोपलब्धि को भी श्रुतरूप से अब प्रतिपादित कर रहे हैं ।

उत्तर—शेषेन्द्रियोपलब्धि को श्रुतज्ञानपने का प्रतिपादन नहीं किया गया है, किन्तु शब्दार्थपर्यालोचनरूप अक्षरलाभ ही श्रुतज्ञान कहा है । यह शब्दार्थपर्यालोचनरूप अक्षरलाभश्रोत्रेन्द्रियोपलब्धि जैसा ही होता है, अतः इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ३ ॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में एक यह भी भेद है कि मतिज्ञान चल्कल के समान है और श्रुतज्ञान सुख के समान है । जिस प्रकार चल्कल से सुख (चल्कल की बनी दोरी) की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मतिज्ञान से श्रुतज्ञान की उत्पत्ति होती है, अतः कार्य और कारण की अपेक्षा इनमें भेद बन जाता है ॥ ४ ॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में भेद होने का कारण एक यह भी है कि मतिज्ञान अक्षर और अनक्षर दोनों रूप होता है तब कि श्रुतज्ञान अक्षरात्मक ही होता है । मतिज्ञान के भेद जो अवग्रह आदि हैं इनमें अवग्रह

कारण के आप तो शेषेन्द्रियोपलब्धि पक्षे श्रुतज्ञाने द्वये प्रतिपादन करी रखा छे

उत्तर—शेषेन्द्रियोपलब्धि थी श्रुतज्ञानपक्षानु प्रतिपादन करवाभा आन्धु नथी, पक्ष शब्दार्थपर्यालोचनरूप अक्षरलाभ श्रोत्रेन्द्रियोपलब्धि जेवो ७ होय छे, तेथी तेभा केअर होय नथी ॥ ३ ॥

मतिज्ञानं अने श्रुतज्ञानमा अके आ पक्षे लेद छे के मतिज्ञानं चल्कलना जेवु छे अने श्रुतज्ञानं सुखना जेवु छे जे प्रमाणे चल्कलमाथी सुख (चल्कलनी वल्लुकी दोरी)नी उत्पत्ति थाय छे, अजे रीते मतिज्ञानथी श्रुतज्ञाननी उत्पत्ति थाय छे, तेथी कार्यं अने कारणनी अपेक्षायें तेमनामा लेद पडी जाय छे ॥ ४ ॥

मतिज्ञानं अने श्रुतज्ञानमा लेद होवावु अके कारणं जे पक्षे छे के मतिज्ञानं अक्षरं अने अनक्षरं अनेऽप्यं होय छे, त्पारे श्रुतज्ञानं अक्षरात्मकं ७ होय छे, मतिज्ञानना अवग्रह आदि जे लेद छे तेमनामा अवग्रहज्ञानं तो

ग्राहकत्वात्, निश्चयनयदर्शनेन स्वकार्यप्रसाधकत्वाच्च । मिथ्यादृष्टेस्तु मतिर्मत्यज्ञान-
मुच्यते, मिथ्यादृष्टिमतेरेकान्तावलम्बितया यथावस्थितार्थग्रहणाभावात् तत्त्वतो
मतिफलरहितत्वाच्च ।

विशेष स्वामी के द्वारा ग्रहण करने की अपेक्षा से अविशेषित मति
मतिज्ञान और मत्यज्ञान, इन दोनों रूप मानी जाती है । अर्थात् सम्य-
ग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि की विवक्षा न करके सामान्यरूप से विवक्षित मति
दोनों प्रकार को बतलाती है, परन्तु जब मति में सम्यग्दृष्टि और मिथ्या-
दृष्टि के द्वारा परिगृहीत होने की अपेक्षा विशेषता आती है तब वही
मति यदि सम्यग्दृष्टि के द्वारा परिगृहीत है तो वह मतिज्ञान कही जाती
है, और जब वह यदि मिथ्यादृष्टिरूप स्वामी-विशेष से परगृहीत हुई
है तो वही मति मतिअज्ञानरूप मानी जाती है । सम्यग्दृष्टि की मति
मतिज्ञान इसलिये मानी जाती है कि वह यथावस्थित अर्थ की ग्राहक
होती है, तथा निश्चयनय को साध्य बनाकर उसीके अनुसार अपने
कार्यों की साधिका होती है, इस दृष्टि द्वारा व्यवहारधर्म का लोप नहीं
किया जाता है, परन्तु लक्ष्य कोटि में निश्चयनय रहता है । मिथ्यादृष्टि
की मति मतिअज्ञानरूप इसलिये मानी जाती है कि वह एकान्त का
अवलम्बन करके वस्तु का प्रतिपादन करती है, इसलिये उससे यथा-
वस्थित अर्थ के ग्रहण के अभाव में वह मति तत्त्वविचारणारूप फल से
रहित होती है ।

विशेष स्वामी द्वारा ग्रहण करवानी अपेक्षासे अविशेषित मति मतिज्ञान
अने मत्यज्ञान, अने अन्ने रूप मानवामा आवी छे अेटवे डे सम्यग्दृष्टि मिथ्या
दृष्टिनी विवक्षा न करेने सामान्यरूपे विवक्षित मति अन्ने प्रदाने दर्शावे छे,
पणु न्त्यारे मतिमा सम्यग्दृष्टि अने मिथ्यादृष्टि द्वारा परिगृहीत यवानी अपे
क्षासे विशेषता आवे छे त्त्यारे अेज मति ले सम्यग्दृष्टि द्वारा परिगृहीत होय
तो ते मतिज्ञान उडेवाय छे, अने ले ते मिथ्यादृष्टिरूप स्वामी विशेषथी परिगृहीत
होय तो अेज मति मतिअज्ञानरूप मनाय छे सम्यग्दृष्टिनी मति मतिज्ञान तेकाओ
मनाय छे डे ते यथावस्थित अर्थने ग्रहण करनारी होय छे तथा निश्चयनयने
साध्य बनावीने तेना अनुसार पोताना कार्योनी साधिका थाय छे आ दृष्टि
द्वारा व्यवहार धर्मने लोप करतो नथी पण लक्ष्य कोटिमा निश्चयनय रहे छे
मिथ्यादृष्टिनी मति मतिअज्ञानरूप ते करणे मानवामा आवी छे डे ते अेकान्तनु
अवलम्बन करीने वस्तुनु प्रतिपादन करे छे, तेथी तेना वडे यथावस्थित अर्थ
ग्रहणु धतो नथी यथावस्थित अर्थ ग्रहणुना अलावे ते मति तत्त्वविचारणारूप
रहित होय छे

કિન્ન—આવરણભેદાદ મતિશ્રુતયોર્ભેદઃ ॥ ૭ ॥ સૂ૦ ૨૪ ॥

યથા મતિશ્રુતયોર્ કાર્યકારણભાવાત્ પરસ્પરં ભેદઃ, તથા—સમ્યગ્દર્શન-મિથ્યા
દર્શન-પરિગ્રહભેદાત્ સ્વરૂપનોઽપિ તયોર્ભેદઃ ઇતિ પ્રત્યર્થયિતુમાહ—

મૂલમ્—અવિસેસિયા મઈ મહનાણ ચ, મહ અન્નાણં ચ ।
વિસેસિયા સમ્મદિદિસસ મઈ મહનાણં, મિચ્છાદિદિસસ મઈ
મહ-અન્નાણ । અવિસેસિય સુયં સુયનાણ ચ સુય-અન્નાણં ચ ।
વિસેસિય સુય સમ્મદિદિસસ સુય સુયનાણં, મિચ્છદિદિસસ
સુય સુય અન્નાણં ॥ સૂ૦ ૨૫ ॥

છાયા—અવિશેષિતા મતિમતિજ્ઞાનં ચ, મત્યજ્ઞાન ચ । વિશેષિતા સમ્યગ્દષ્ટેર્મ
તિર્મતિજ્ઞાન, મિથ્યાદષ્ટેર્મતિર્મત્યજ્ઞાનમ્ । અવિશેષિત શ્રુતં—શ્રુતજ્ઞાન ચ, શ્રુતાવાન ચ ।
વિશેષિત શ્રુત-સમ્યગ્દષ્ટેઃ શ્રુત શ્રુતજ્ઞાન, મિથ્યાદષ્ટેઃ શ્રુત-શ્રુતાજ્ઞાનમ્ ॥ સૂ૦ ૨૬ ॥

ટીકા—‘ અવિસેસિયા ’ ઇત્યાદિ । અવિશેષિતા=સ્વામિવિશેષપરિગ્રહરહિતા
સામાન્યરૂપેણ વિવક્ષિતેત્યર્થઃ, મતિજ્ઞાનમ્, મત્યવાન ચેત્યુભયમુચ્યતે । વિશેષિતા=
સ્વામિવિશેષપરિગ્રહીતા સ્વામિના વિશેષ્યમાણા, વિશેષરૂપેણ વિવક્ષિતા મતિઃ
સ્વામિવિશેષાપેક્ષયા મતિઃ સમ્યગ્દષ્ટેર્મતિજ્ઞાનમુચ્યતે, સમ્યગ્દષ્ટિમતેર્યથાવસ્થિતાર્થ-

મતિજ્ઞાન કા કારણ મતિજ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા ક્ષયોપશમ, તથા શ્રુત
જ્ઞાન કા કારણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મ કા ક્ષયોપશમ હૈ । ઇસ આવરણ
કે ભેદ સે મી ઇન દોનોં મે ભિન્નતા આતી હૈ ॥ ૭ ॥ સૂ૦ ૨૪ ॥

જિસ પ્રકાર મતિજ્ઞાન ઓર શ્રુતજ્ઞાન મે કાર્યકરણભાવ કો લેકર
ભેદ પ્રદર્શિત ક્રિયા ગયા હૈ ઊસી પ્રકાર સમ્યગ્દષ્ટિ ઓર મિથ્યાદષ્ટિ
કે પરિગ્રહ (સ્વીકૃતિ) કે ભેદ સે ઇન દોનો મે સ્વરૂપતઃ મી ભેદ હૈ,
ઇસ વાત કો સૂત્રકાર દિખલાતે હૈ—“ અવિસેસિયા મઈ ” ઇત્યાદિ ।

મતિજ્ઞાનતુ કારણ મતિજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ, તથા શ્રુતજ્ઞાનતુ
કારણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષયોપશમ છે આ આવરણના તક્ષાવતને લીધે
પણ એ બંનેમા ભિન્નતા છે ॥ ૭ ॥ સૂ ૨૪ ॥

જે રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમા કાર્યકારણભાવને લીધે ભેદ દર્શાવાયો
છે, એજ રીતે સમ્યગ્દષ્ટિ અને મિથ્યાદષ્ટિના પરિગ્રહ (સ્વીકૃતિ) ના ભેદથી
એ બંનેમા સ્વરૂપત પણ ભેદ છે, એ વાતને અત્રકાર બતાવે છે-

“ અવિસેસિયા મઈ ” ઇત્યાદિ

ग्राहकत्वात्, निश्चयनयदर्शनेन स्वकार्यप्रसाधकत्वाच्च । मिथ्यादृष्टेस्तु मतिर्मत्यज्ञान-
मुच्यते, मिथ्यादृष्टिमतेरेकान्तावलम्बितया यथावस्थितार्थग्रहणाभावात् तत्त्वतो
मतिफलरहितत्वाच्च ।

विशेष स्वामी के द्वारा ग्रहण करने की अपेक्षा से अविशेषित मति
मतिज्ञान और मत्यज्ञान, इन दोनों रूप मानी जाती है । अर्थात् सम्य-
ग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि की विवक्षा न करके सामान्यरूप से विवक्षित मति
दोनों प्रकार को बतलाती है, परन्तु जब मति में सम्यग्दृष्टि और मिथ्या-
दृष्टि के द्वारा परिगृहीत होने की अपेक्षा विशेषता आती है तब वही
मति यदि सम्यग्दृष्टि के द्वारा परिगृहीत है तो वह मतिज्ञान कही जाती
है, और जब वह यदि मिथ्यादृष्टिरूप स्वामी-विशेष से परिगृहीत हुई
है तो वही मति मतिअज्ञानरूप मानी जाती है । सम्यग्दृष्टि की मति
मतिज्ञान इसलिये मानी जाती है कि वह यथावस्थित अर्थ की ग्राहक
होती है, तथा निश्चयनय को साध्य बनाकर उसीके अनुसार अपने
कार्यों की साधिका होती है, इस दृष्टि द्वारा व्यवहारधर्म का लोप नहीं
किया जाता है, परन्तु लक्ष्य कोटि में निश्चयनय रहता है । मिथ्यादृष्टि
की मति मतिअज्ञानरूप इसलिये मानी जाती है कि वह एकान्त का
अवलम्बन करके वस्तु का प्रतिपादन करती है, इसलिये उससे यथा-
वस्थित अर्थ के ग्रहण के अभाव में वह मति तत्त्वविचारणारूप फल से
रहित होती है ।

विशेष स्वामी द्वारा ग्रहण करवानी अपेक्षासे अविशेषित मति मतिज्ञान
अने मत्यज्ञान, अने अने रूप मानवामा आवी छे अेटके के सम्यग्दृष्टि मिथ्या
दृष्टिनी विवक्षा न करीने सामान्यरूपे विवक्षित मति अने प्रकारने दशावे छे,
पण अतारे मतिमा सम्यग्दृष्टि अने मिथ्यादृष्टि द्वारा परिगृहीत भवानी अपे
क्षासे विशेषता आवे छे त्तारे अेज मति ने सम्यग्दृष्टि द्वारा परिगृहीत होय
तो ते मतिज्ञान कहेवाय छे, अने ने ते मिथ्यादृष्टिरूप स्वामी विशेषथी परिगृहीत
होय तो अेज मति मतिअज्ञानरूप भनाय छे सम्यग्दृष्टिनी मति मतिज्ञान ते जरखे
भनाय छे के ते यथावस्थित अर्थने ग्रहण करवानी होय छे तथा निश्चयनयने
साध्य भवानीने तेना अनुसार पोताना कार्योनी साधिका थाय छे आ दृष्टि
द्वारा व्यवहार धर्मने बोध करातो नथी पण लक्ष्य कोटिमा निश्चयनय रहे छे
मिथ्यादृष्टिनी मति मतिअज्ञानरूप ते जरखे मानवामा आवी छे के ते अेकान्तनु
अवलम्बन करीने वस्तुनु प्रतिपादन करे छे, तेथी तेना वडे यथावस्थित अर्थ
ग्रहण थतो नथी यथावस्थित अर्थ ग्रहणना अलावे ते मति तत्त्वविचारणारूप
रहित होय छे

यद्यपिशेषितं-सामान्यरूपेण विवक्षितं तदा-श्रुतमित्यनेन-श्रुतज्ञानं श्रुताज्ञानं चेत्युभयमुच्यते । यदि तु श्रुतं विशेषितं-स्वामिशेषरूपेण विशेषितं, तर्हि सम्यग्दृष्टेः श्रुत-श्रुतज्ञानमुच्यते, मिथ्यादृष्टेस्तु श्रुतं श्रुताज्ञानमुच्यते ।

ननु मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते कथमज्ञानरूपे उच्येते?, यतः-क्षयोपशमादिरूपे कारणे नास्ति भेदः, नापि च लौकिके घटादि ज्ञानरूपे कार्ये भेदो भवति । क्षयोपशमादेव मिथ्यादृष्टेरपि मतिश्रुते भवतः, इति चेत्,

इसी तरह श्रुत भी जय सामान्यरूप से विवक्षित होता है तब वह श्रुतज्ञान एव श्रुतअज्ञान दोनों का घोघक होता है, परन्तु जय यह विशेषणविशिष्ट होता है तब यदि इसमें सम्यग्दृष्टिरूप विशेषण रहता है तो यह श्रुतज्ञान कहलाना है और जय इसमें 'मिथ्यादृष्टि' ऐसा विशेषण रहता है तब यही श्रुतअज्ञान कहलाता है ।

शका—मिथ्यादृष्टि के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अज्ञानरूप क्यों होते हैं? क्यों कि मिथ्यादृष्टि के भी ये दोनों अपने २ आवरण के क्षयोपशम से ही होते हैं, अतः इनकी उत्पत्ति का जो अपने २ आवरण का क्षयोपशम आदि कारण हैं उनमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि को लेकर भेद नहीं है । तथा सम्यग्दृष्टि जिस प्रकार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से घटपट आदि पदार्थों को जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी उन्हें वैसा ही जानता है, अतः इन दोनों के जाननेरूप कार्य में भी कोई भेद नहीं है?।

એજ પ્રમાણે શ્રુત પણ જ્યારે સામાન્યરૂપે વિવક્ષિત થાય છે ત્યારે તે શ્રુતજ્ઞાન અને શ્રુતઅજ્ઞાન એ બન્નેનું બોધક થાય છે, પણ જ્યારે તે વિશેષણ-વિશિષ્ટ હોય છે ત્યારે જો તેમા સમ્યગ્દૃષ્ટિરૂપ વિશેષણ રહે છે તો તે શ્રુત જ્ઞાન કહેવાય છે અને જ્યારે 'મિથ્યાદૃષ્ટિ' એવું વિશેષણ રહે છે ત્યારે એજ શ્રુતઅજ્ઞાન કહેવાય છે

શકા—મિથ્યાદૃષ્ટિનું મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન અજ્ઞાનરૂપ કેમ હોય છે? કારણ કે મિથ્યાદૃષ્ટિને પણ તે બન્ને પોત-પોતાના આવરણના ક્ષયોપશમથી જ થાય છે, તેથી તેમની ઉત્પત્તિનું પોત-પોતાના આવરણનો ક્ષયોપશમ આદિ જે કારણ છે તેમનામા મિથ્યાદૃષ્ટિ અને સમ્યગ્દૃષ્ટિને લીધે ભેદ નથી તથા સમ્યગ્દૃષ્ટિ જે પ્રમાણે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનથી ઘટ પટ આદિ પદાર્થોને જાણે છે એજ રીતે મિથ્યાદૃષ્ટિ પણ તેમને એવા જ જાણે છે, તેથી એ બન્નેના જાણવારૂપી કાર્યમા પણ ભેદ નથી ?

तत्रोच्यते—मिथ्यादृष्टेः सदसद्विवेकपरिज्ञानाभावात् । तथाहि—मिथ्यादृष्टिः खलु सर्वमप्येकान्तवादपुरःसर प्रतिपद्यते, न तु सर्वज्ञभगवदुक्तस्याद्वादमाश्रित्य, ततश्च मिथ्यादृष्टिर्यदा 'घट एवाय'—मिति वदति तदा तस्मिन् घटे घटत्वपर्यायव्यतिरेकेण शेषान् सत्त्व-ज्ञेयत्व-प्रमेयत्वादीन् सतोऽपि धर्मानपलपति, अन्यथा—'घट एवाय'—मित्येकान्तेनावधारणानुपपत्तेः । 'घटः सन्नेव' इति यदा ब्रूते, तदा पररूपेण नास्तित्वस्यानभ्युपगमादसद्भूत पररूपमपि तत्रास्तीति प्रतिपद्यते । ततश्च सन्तमसन्त मन्यते, असन्त च सन्त मन्यते, इति सदसद्विशेषपरिज्ञानाभावा-न्मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञानरूपे भजत ॥ १ ॥

उत्तर—मिथ्यादृष्टि को सत् और असत् का विवेकज्ञान नहीं है । समस्त वस्तुओं को वह एकान्तधर्मविशिष्ट ही जानता है, कारण कि एकान्तवाद का ही वह अवलम्बन करता है, भगवत्कथित स्याद्वाद का नहीं । जब वह "घट एवायम्" यह घट ही है, ऐसा कहता है तब उस घटमें वर्तमान सत्त्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व आदि धर्मोंका वह अपलाप करता है । यदि ऐसा वह नहीं करता है तो फिर "यह घट ही है" इस प्रकार का वह अवधारण क्यों करता है । तथा "घटः सन्नेव" घट सत् स्वरूप ही है, ऐसा जब वह कहता है तो उसके इस कथन से पररूप की अपेक्षा भी घटमें अस्तित्व धर्म है, इस बात को भी उसे कबूल करना पड़ेगा, क्यों कि पररूप की अपेक्षा उसमें नास्ति-शब्द का प्रयोग नहीं किया है । इस तरह वह मिथ्यादृष्टि सत् को असत् और असत् को सत् मानता है, अतः सत् और असत् में इसकी दृष्टि में कोई न होने से उस मिथ्यादृष्टि का मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अज्ञानरूप माना जाता है ।

उत्तर—मिथ्यादृष्टिने सत् अने असत्तु विवेकज्ञान होतु नहीं समस्त वस्तुओंने ते एकान्तधर्मविशिष्ट न वल्ले छे, कारण के एकान्तवादतु न ते अवलम्बन करे छे, भगवाने लाभेल स्याद्वादतु नही न्यारे ते "घट एवायम्" "आ घटो न छे" जेवु कथन करे छे त्यारे ते घटमा रहिल सत्त्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व आदि धर्मोना ते अपलाप करे छे जे ते जेवु करतो न होय तो पछी "आ घटो न छे" आ प्रकारतु अवधारणु ते शा भाटे करे छे ? तथा "घट सन्नेव" "घटो सत्स्वरूप न छे" जेवु न्यारे ते कहे छे त्यारे तेना आ कथनथी पररूपनी अपेक्षाये पणु घटामा अस्तित्व धर्म छे जे वात पणु तेने कबूल करवी पडशे, कारण के पररूपनी अपेक्षाये तेमा नास्ति शब्दने प्रयोग कर्यो नहीं आ रीते ते मिथ्यादृष्टि सत् ने असत् अने असत् ने सत् माने छे, तेथी तेनी दृष्टिजे सत् अने असत्मा केछ भेद न होवाथी ते मिथ्यादृष्टितु मतिज्ञान अने श्रुतज्ञान अज्ञानरूप मानवामा आण्यु छे

विज्ञ—इत्थ मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञाने, भवहेतुत्वात्, मिथ्यादर्शनवत् ।
तथाहि—मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते पशुधर्मैश्वरनादीनां धर्मसाधकत्वेन परिच्छेदके,
सतो दीर्घतरसंसारपथप्रवर्तकत्वाद् अज्ञानरूपत्वम् ॥ २ ॥

तथा—इत्थापि मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञानरूपे भवतः?, यदच्छोपलम्भे,
उन्मत्तकविकल्पवत् । यथा हि उन्मत्तकविकल्पमिमिथ्यादृष्टियो वस्तु अनपेक्ष्यं यथा
कथंचित् प्रवर्तन्ते । यद्यपि च ते कश्चिद् यथावस्थितगन्तुसादिनस्तथापि सम्यग्
यथावस्थितवस्तुतत्त्वपर्यालोचनरिहण प्रवर्तमानत्वात्, परमार्थतोऽपरमार्थिकाः । ३।

किं च—मिथ्यादृष्टि जीव के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इसलिये भी
अज्ञानस्वरूप होते हैं कि ये दोनों मिथ्यादर्शन की तरह भवभ्रमण के
हेतु होते हैं । भव के हेतुभूत ये इसलिये माने जाते हैं कि पशुधर्म,
मैथुन आदि जैसे कुकर्मों को “ये धर्म के साधनभूत हैं” ऐसा मानते
हैं, इसलिये दीर्घतरसंसारमार्ग के प्रवर्तक होने के कारण ये दोनों
मिथ्यादृष्टि के अज्ञानस्वरूप हैं ।

जिस प्रकार उन्मत्त का ज्ञान स्वेच्छानुसार पदार्थों का ग्राहक होता
है और इसी लिये वह अज्ञानरूप माना जाता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि
का ज्ञान भी अज्ञानरूप ही माना गया है, यद्यपि उन्मत्तजन जो वस्तु
जैसी है उसे वैसी जानता है, सोने को सोना और लोहे को लोहा
जानकर यथार्थज्ञान लाभ कर लेता है, पर उन्माद के कारण वह सत्य
असत्य का अन्तर जानने में असमर्थ होता है, इससे उसका सच्चा
झूठा सभी ज्ञान परमार्थतः विचारशून्य या अज्ञान ही कहलाता है,

तथा—मिथ्यादृष्टि लवणु मतिज्ञान अने श्रुतज्ञान ते कारणे पशु अज्ञान
स्वरूप होय छे के अने अज्ञाने मिथ्यादर्शननी लभे लवणुभणुना कारणरूप होय
छे लवणुना कारणभूत तेअने अने कारणे मनाय छे के पशुधर्म, मैथुन वगैरे लवणु
कर्मोने “अने धर्मोना साधनभूत छे” अणु मने छे, तेथी दीर्घतर संसार
मार्गोना प्रवर्तक होवाने कारणे अने अज्ञाने मिथ्यादृष्टिने भाटे अज्ञानस्वरूप छे

ले रीते उन्मत्तनु ज्ञान स्वेच्छानुसार पदार्थोनु ग्राहक थाय छे अने ते
कारणे ते अज्ञानरूप मनाय छे, अने रीते मिथ्यादृष्टिनु ज्ञान पशु अज्ञानरूप
मनाय छे ले के उन्मत्त भाणुअने वस्तु लेवी छे अणु तेने लोह छे सोनाने
सोनु अने लोहाने लोह लोहोने यथार्थज्ञान लाभ करी ले छे, पशु उन्मादने
कारणे ते सत्य असत्यने लोह लोहोने असमर्थ होय छे, तेथी तेनु सायु
जोहू सबस्त ज्ञान परमार्थतः विचारशून्य के अज्ञान अ कहेवाय छे

तथा—मिथ्यादृष्टीना मतिश्रुते यथावस्थितं वस्तु अविचार्यैव प्रवर्तते, ततो यद्यपि च तद्द्वयं क्वचिद् 'रसोऽयं' 'स्पर्शोऽयं' इत्यादौ अवधारणाध्यवसायाभावे सवादि, तथापि न तद्द्वयं स्याद्वादपरिभाषनातस्तथा प्रवृत्तं किन्तु यथा कथंचित् । अतो मतिश्रुतरूपमेतद् द्वयम् अज्ञानम् ॥ ४ ॥

तथा—ज्ञानफलाभावात् मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञाने भवतः । ज्ञानस्य हि फल हेयस्य हानिः, उपादेयस्य चोपादानम् । न च ससारात् परं किंचित् हेयमस्ति, न उसी प्रकारं मिथ्यादृष्टि आत्मा कितना ही अधिक ज्ञानवाला क्यों न हो पर आत्मा के विषय में अधेरा होने के कारण उसका सारा लौकिक ज्ञान शास्त्रदृष्टि से अज्ञान ही है । यही बात "मिथ्यादृष्टीनां मतिश्रुते यथावस्थितं वस्तु अविचार्यैव प्रवर्तते" इत्यादि पक्तियों द्वारा स्पष्ट की गई है । इनमें बतलाया है कि मिथ्यादृष्टि जीव के मतिश्रुतज्ञान वस्तु के वास्तविक स्वरूप का विचार नहीं करके ही प्रवृत्त हुआ करते हैं । यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीव का "यह रस है यह स्पर्श है" इस प्रकार का ज्ञान अवधारणरूप अध्यवसाय के बिना प्रवृत्त होता है, और वह इस तरह अपने विषयभूत पदार्थ का सवादक भी हो जाता है तो भी इसके इस ज्ञान में स्याद्वाद-सिद्धान्त की थोड़ी सी भी पुट नहीं होती है । वह तो यथाकथंचित् ही प्रवृत्त होता है ।

तथा—ज्ञान के फल का अभाव होने से मिथ्यादृष्टि के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अज्ञानस्वरूप होते हैं । ज्ञान का फल हेय-छोड़ने योग्य-पदार्थ का परित्याग करना और उपादेय-ग्रहण करने योग्य-पदार्थ का

मिथ्यादृष्टि आत्मा दृष्टेय अधिज्ञानी लक्षे होय पण आत्माना विषयमा अधाडु होवाने ङरखे तेनु समस्त लौकिक ज्ञान शास्त्रीनी दृष्टिथी अज्ञान जे छे अजे वात "मिथ्यादृष्टीना मतिश्रुते यथावस्थितं वस्तु अविचार्यैव प्रवर्तते" इत्यादि पक्षित्तो द्वारा स्पष्ट कराई छे तेमा अजे अतानवाभा आब्यु छे ते मिथ्यादृष्टि अवनना मतिश्रुतज्ञान वस्तुना वास्तविक स्वरूपनो विचार न करीने जे प्रवृत्त तथा करे छे जे ते मिथ्यादृष्टि अवननु "आ रस छे, आ स्पर्श छे" आ प्रकारनु ज्ञान अवधारणरूप अध्यवसाय विना प्रवृत्त थाय छे, अने ते आ रीते चेताना विषयभूत पदार्थनु सवादक पण थई जय छे तो पण तेना ते ज्ञानमा स्याद्वाद सिद्धातनो सडे जे पण पट होतो नथी ते तो यथा कथंचित् प्रवृत्त होय छे

तथा—ज्ञानना क्षणनो अभाव होवाथी मिथ्यादृष्टिना मतिज्ञान अने श्रुत ज्ञानअज्ञान स्वरूप होय छे ज्ञाननु क्षण "हेय-यागना लायक पदार्थनो परित्याग करवो अने उपादेय-ग्रहण करवा लायक पदार्थनो ग्रहण करवो," अजे

च मोक्षात् पर किञ्चिदुपादेय, ततो भयमोक्षायेवान्तेन हेयोपादेयौ । तयोर्दोषोपादे-
ययोर्भवमोक्षयोर्भदान्पुपादाने सर्वसगविरतिर्भवतः, ततो विरतिरवश्य कर्तव्या । सेव
च परमार्थतो ज्ञानस्य फलम् । सा च मिथ्यादृष्टिर्नास्तीति ज्ञानफलामायात् मिथ्या
दृष्टिर्मतिश्रुते अज्ञाने भवतः । उक्तञ्च—

“सदसदविसेसणाओ, भवहेउज हिच्छिओवलभाओ ।

नाणफलाभावाओ, मिच्छदिद्विस्स अन्नाण ” ॥ १ ॥

छाया — सदसदविशेषणात्, भवहेतुयद्विच्छित्तो (मनःकल्पितो) पलम्मात् ।

ज्ञानफलाभावात्, मिथ्यादृष्टेरज्ञानम् ॥ १ ॥ ५ ॥ सू० २७ ॥

श्रुत मतिपूर्वक भवतीत्युक्तम् । समति मतिज्ञानमेवाधिकृत्य शिष्यः पृच्छति—

उपादान करना है । ससार के सिवाय और कोई पदार्थ हेय नहीं है,
तथा मोक्ष के सिवाय और कोई उपादेय नहीं है । ससार हेय है और
मोक्ष एकान्ततः उपादेय है, ये दोनों ज्ञाने सर्वपरिग्रह की विरतिवाले
सम्यग्दृष्टि जीवके ही होती हैं, इसलिये विरति अवश्य अगीकार करने
योग्य है । यही परमार्थतः ज्ञान का फल है । यह सर्वसगविरतिरूप ज्ञान
का फल मिथ्यादृष्टि को प्राप्त नहीं है, इसलिये मिथ्यादृष्टि के ज्ञान के
फल का अभाव होने से उसके मतिश्रुतज्ञान अज्ञानस्वरूप होते हैं ।
कहा भी है—

“सदसदविसेसणाओ, भवहेउज हिच्छिओवलभाओ ।

नाणफलाभावाओ, मिच्छदिद्विस्स अन्नाण ” ॥ १ ॥ सू० २५ ॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है यह बात यहातक कह दी । अब
शिष्य मतिज्ञान के विषय में पूछता है और सूत्रकार उसका उत्तर
देते हैं—‘से किं त आभिणिबोहियनाण’ इत्यादि ।

छे ससारना सिवाय भीजे कोई पदार्थ हेय नथी तथा मोक्षना सिवाय भीजे
कोई उपादेय नथी, ससार हेय छे अने मोक्ष एकान्तत उपादेय छे, अने अने
वाता सर्वपरिग्रहणी विरतिवाणा सम्यग्दृष्टि जीवने जे होय छे ते कारणे विरति
अवश्य अगीकार करवा योग्य छे अने परमार्थत ज्ञाननु क्षण छे आ सर्व-
सगविरतिरूप ज्ञाननु क्षण मिथ्यादृष्टिने प्राप्त नथी, तेथी मिथ्यादृष्टिने ज्ञानना
क्षणना अभाव होवाथी तेना मतिश्रुतज्ञान अज्ञानस्वरूप होय छे कहु पणु छे—

“सदसद-विसेसणाओ, भवहेउज हिच्छिओवलभाओ ।

नाणफलाभावाओ मिच्छदिद्विस्स अन्नाण ” ॥ १ ॥ सू० २५ ॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होय छे अने वात अही सुधी कही हवे शिष्य
मतिज्ञान विषे पूछे छे अने सूत्रकार तेना उत्तर आपे छे—“से किं त
आभिणिबोहियनाण ” इत्यादि

मूलम्--से किं त आभिणिवोहियनाणं ? । आभिणिवोहियनाणं दुविहं पणत्त । त जहा -सुयनिस्सिय च, असुयनिस्सियं च । से किं तं असुयनिस्सिय ? । असुयनिस्सिय चउव्विह पणत्तं । त जहा-

गाहा--उप्पत्तिया १, वेणइआ २, कम्मया ३, परिणामिया ४।
बुद्धी चउव्विहा बुत्ता, पचमा नोवल्लभई ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानम् ? आभिनिबोधिकज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—श्रुतनिश्चित च अश्रुतनिश्चितं च ।

अथ किं तद् अश्रुतनिश्चितम् ? । अश्रुत निश्चितं चतुर्विध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—

गाथा—औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३, पारिणामिकी ४ ।

बुद्धिश्चतुर्विधा उक्ता, पञ्चमी नोपलभ्यते ॥ १ ॥

टीका—‘से किं त’ इत्यादि । अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानम् ? पूर्वनिर्दिष्टस्याभिनिबोधिकज्ञानस्य किं स्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह—‘ आभिणिवोहिय नाण दुविह पणत्त ’ इत्यादि । आभिनिबोधिकज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—श्रुतनिश्चित च, अश्रुतनिश्चित च । इह श्रुत शब्देन—सामायिकमारभ्य लोकाभिन्दुसारपर्यन्त

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट आभिनिबोधिकज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर—आभिनिबोधिकज्ञान दो प्रकार का कहा गया है । वे दो प्रकार ये हैं—१ श्रुतनिश्चित और २ अश्रुतनिश्चित । श्रुतशब्द से सामायिक से लेकर लोकविन्दुसारनामक चौदहवें पूर्वपर्यन्त द्रव्यश्रुत ग्रहण किया गया है । इस द्रव्यश्रुत के अभ्यास से जनित जो सस्कार, उस सस्कार से समन्वित जिसकी बुद्धि है ऐसे प्राणी को मति के उत्पत्ति के समय

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट आभिनिबोधिकज्ञाननुं शु स्वरूप छे ?

उत्तर—आभिनिबोधिकज्ञान छे प्रजास्तु पताब्धु छे जे प्रजास्तु आ प्रभाषे छे—(१) श्रुतनिश्चित अने (२) अश्रुतनिश्चित श्रुतशब्द वटे सामायिकथी लछने लोकविन्दुसार नामना चौदहा पूर्व सुधीनु द्रव्यश्रुत ग्रहण करैल छे आ द्रव्यश्रुतना अभ्यासथी उत्पन्न थयेल जे सस्कार, जे सस्कारथी समन्वित जेनी बुद्धि छे जेवा प्राणीने मतिनी उत्पत्ति समये शास्त्र अने तेना अर्थनी

द्रव्यश्रुत गृह्यते, तदनुसारेण श्रुताभ्यामजनिगमकारगमन्यितमतोरुपाट्काले शास्त्रार्थपर्यालोचनमपेक्ष्यैव यदुपजायते मतिज्ञानं तत् श्रुतनिश्चितम् । यथा-अवग्रहादि । रूपरसादिभेदैरनिर्देश्यस्य सामान्यमात्ररूपार्थस्य ग्रहणरूपोऽवग्रहः । यत्तु सर्वथा शास्त्रसम्पर्शरहितस्य तथाविधक्षयोपशमसद्भावमेव यथावस्थितवस्तुमंस्पर्शि मतिज्ञानमुपजायते, तत् अश्रुतनिश्चितम् । यथा-औत्पत्तिक्यादिसम् ।

ननु औत्पत्तिक्यादिरुमप्यवग्रहादिरूपमेव, तत् कोऽन्यो निर्देशः?, इति चेत्, अत्रोच्यते—यद्यपि अवग्रहादिरूपमेव, पर तु शास्त्रमनपेक्ष्योपद्यते, इत्येतावता भेदेनौत्पत्त्यादिरु पृथगुपन्यस्तम् ।

में शास्त्र और उसके अर्थ की पर्यालोचना की अपेक्षा करके जो मतिज्ञान होता है वह श्रुतनिश्चित मतिज्ञान है, जैसे अवग्रह आदि । रूपरस आदि भेदों से अनिर्देश्य-जिसका निर्देशन हो सके ऐसे पदार्थका सामान्यरूप से जानने का नाम अवग्रह है १ । सर्वथा शास्त्र के सम्पर्श से रहित प्राणी को तथाविध क्षयोपशम के सद्भाव से यथावस्थित वस्तु को जानने वाला जो मतिज्ञान होता है वह अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान है, जैसे औत्पत्तिकी आदि बुद्धि २ ।

शका—औत्पत्ति की आदि जो बुद्धियां हैं वे भी अवग्रह आदिरूप ही हैं तो फिर अवग्रह आदि में और औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों में क्या भेद है ।

उत्तर—यद्यपि ये बुद्धियां अवग्रह आदिरूप ही हैं, परन्तु फिर भी शास्त्र की अपेक्षा नहीं करके ही ये बुद्धियां उत्पन्न होती हैं, अतः इन्हें अवग्रह आदि से भिन्नरूप में माना है, और इसी अभिप्राय से सूत्रकारने इनका पृथक् रूप से प्रतिपादन किया है ।

पर्यालोचनानी अपेक्षा करीने के मतिज्ञान थाय छे ते श्रुतनिश्चित मतिज्ञान छे, केम के अवग्रह आदि १ इप रस आदि लेहोथी अनिर्देश्य-नेना निर्देशन थई शके ओवा पदार्थने सामान्यइपे लक्षुवानु नाम अवग्रह छे सर्वथा शास्त्रना ससर्गथी रहित प्राणीने तथाविध क्षयोपशमना सद्भावथी यथावस्थित वस्तुने लक्षुनार के मतिज्ञान थाय छे ते श्रुतनिश्चित मतिज्ञान छे, केमके औत्पत्तिकी आदि बुद्धि २

शका—औत्पत्तिकी आदि के बुद्धियो छे ते पक्ष अवग्रह आदि इप न छे, तो पक्षी अवग्रह आदिमा औत्पत्तिकी आदि बुद्धियोमा शे लेह छे ?

उत्तर—के के ओ बुद्धियो अवग्रह आदि इप न छे, तो पक्ष शास्त्रनी अपेक्षा कर्था बिना न ओ बुद्धियो उत्पन्न थाय छे, तेथी तेने अवग्रह आदिथी बिन्नइपे मानी छे, अने ओ कारणे न सूत्रकारे तेमनु अलग रीते प्रतिपादन थई छे

तत्राश्रुतनिश्चितस्य स्वल्पविषयकतया पूर्वतदेव प्रस्तौति—‘से किं त’ इत्यादि। अश्रुतनिश्चितस्याभिनिर्गोषिकस्य किं स्वरूपमिति प्रश्नः । उत्तरमाह—‘अस्सुय-निस्सिय-चउच्चिह पण्णत्त’ इत्यादि । अश्रुतनिश्चित चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३, पारिणामिकी ४ । इत्येव चतुर्विधा बुद्धिः प्रोक्ता । औत्पत्तिकी-उत्पत्तिरेव न तु शास्त्राभ्यासकर्मपरिशीलनादिक प्रयोजन-कारण यस्याः सा औत्पत्तिकी ।

ननु सर्वस्याः बुद्धेः कारण क्षयोपशमस्तत् कथमुच्यते ‘उत्पत्तिरेव प्रयोजन-मस्याः’ इति चेत्, उच्यते-क्षयोपशमं सर्वबुद्धिसाधारणस्ततो नासौ भेदेन प्रतिपत्तेः कारणं भवति । अथ च बुद्ध्यन्तराद् भेदेन प्रतिपत्त्यर्थं व्यपदेशान्तरं कर्तुमारब्धं, तत्र व्यपदेशान्तरनिमित्तं न हिमपि विनयादिकं विद्यते, केवलमेवमेव तथोत्पत्तिरिति सैव साक्षान्निर्दिष्टा । १ ।

अश्रुतनिश्चित के विषय का विवेचन अल्प है, इसलिये सूत्रकार पहिले श्रुतनिश्चित मतिज्ञान का विवेचन न करके पहिले अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान का ही विवेचन करते हैं ‘से किं त अस्सुयनिस्सिय’ इत्यादि । प्रश्न-अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान का क्या स्वरूप है ? । उत्तर-अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान चार प्रकार का है वे उसके चार प्रकार ये हैं-औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३ एव पारिणामिकी ४, ये चार बुद्धियाँ हैं । जो बुद्धि शास्त्राभ्यास आदि के करने से उत्पन्न नहीं होती है, किन्तु जीव को स्वतः ही उत्पन्न होती है-जिस को व्यवहार में “हाजिरजवाब” कहते हैं इसका नाम औत्पत्तिकी बुद्धि है ।

शका-समस्त बुद्धियों का कारण क्षयोपशम कहा गया है, तो फिर यह बात कैसे मानी जा सकती है कि इस बुद्धि का कारण अपनी उत्पत्ति ही है ।

अश्रुतनिश्चितना विषयतु विवेचनं ३ कुं छे तथी सूत्रकार पडेलाश्रुतनि-
श्चिततु विवेचनं न करता अश्रुतनिश्चिततु न विवेचनं करे छे

प्रश्न-अश्रुतनिश्चित मतिज्ञानतु शु स्वरूप छे ?

उत्तर-अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान चार प्रकारतु छे-(१) औत्पत्तिकी, (२) वैनयिकी, (३) कर्मजा अने (४) पारिणामिकी, ये चार मति छे ने मति शास्त्राभ्यास आदि द्वाराथी उत्पन्न थती नथी यणु आपोआप उत्पन्न थाय छे-
नेने पडेवारमा “हाजिर जवाब” कडे छे अतु नाम औत्पत्तिकी मति छे

शका-समस्त मतिनु वारणु क्षयोपशम दशोवेत छे, तो आ बात केवी शीते मानी शकाय के अने मति स्वत उत्पन्न थाय छे ?

द्रव्यश्रुत गृह्यते, तदनुसारेण श्रुताभ्यामजनितामंस्फारगमन्वितमतेरूपाद्रकाले शास्त्रार्थपर्यालोचनमपेक्ष्यैव यदुपजायते मतिज्ञानं तत् श्रुतनिश्चितम् । यथा—अवग्रहादि । रूपरसादिभेदैरनिर्देश्यस्य सामान्यमात्ररूपार्थस्य ग्रहणरूपोऽवग्रहः । यत् सर्वथा शास्त्रसम्पर्शरहितस्य तथाविधक्षयोपशमसङ्गात्तमेव यथावस्थितवस्तुमंस्पर्शि मतिज्ञानमुपजायते, तत् अश्रुतनिश्चितम् । यथा—औत्पत्तिक्यादिरूपम् ।

ननु औत्पत्तिक्यादिरूपमप्यवग्रहादिरूपमेव, तत् कोऽन्यो विशेषः?, इति चेत्, अत्रोच्यते—यद्यपि अवग्रहादिरूपमेव, पर तु शास्त्रमनपेक्ष्योत्पद्यते, इत्येतावता भेदेनौत्पत्तिक्यादिरूपं पृथगुपन्यस्तम् ।

में शास्त्र और उसके अर्थ की पर्यालोचना की अपेक्षा करके जो मतिज्ञान होता है वह श्रुतनिश्चित मतिज्ञान है, जैसे अवग्रह आदि । रूपरस आदि भेदों से अनिर्देश्य—जिसका निर्देशन हो सके ऐसे पदार्थका सामान्यरूप से जानने का नाम अवग्रह है १ । सर्वथा शास्त्र के सम्पर्श से रहित प्राणी को तथाविध क्षयोपशम के सङ्गात् से यथावस्थित वस्तु को जानने वाला जो मतिज्ञान होता है वह अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान है, जैसे औत्पत्तिकी आदि बुद्धि २ ।

शका—औत्पत्ति की आदि जो बुद्धियाँ हैं वे भी अवग्रह आदिरूप ही हैं तो फिर अवग्रह आदि में और औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों में क्या भेद है ।

उत्तर—यद्यपि ये बुद्धियाँ अवग्रह आदिरूप ही हैं, परन्तु फिर भी शास्त्र की अपेक्षा नहीं करके ही ये बुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं, अतः इन्हें अवग्रह आदि से भिन्नरूप में माना है, और इसी अभिप्राय से सूत्रकारने इनका पृथक् रूप से प्रतिपादन किया है ।

पर्यालोचनानी अपेक्षा करीने के मतिज्ञान थाय छे ते श्रुतनिश्चित मतिज्ञान छे, जेभ के अवग्रह आदि १ रूप रस आदि लेहोथी अनिर्देश्य—जेना निर्देशन थई शके ओवा पदार्थने सामान्यरूपे लक्षणानु नाम अवग्रह छे सर्वथा शास्त्रना ससर्गथी रहित प्राणीने तथाविध क्षयोपशमना सङ्गात्थी यथावस्थित वस्तुने लक्षणानु के मतिज्ञान थाय छे ते श्रुतनिश्चित मतिज्ञान छे, जेभके औत्पत्तिकी आदि बुद्धि २

शका—औत्पत्तिकी आदि के बुद्धियाँ छे ते पणु अवग्रह आदि रूप न छे, तो पणु अवग्रह आदिमा औत्पत्तिकी आदि बुद्धियाँमा शो लेह छे ?

उत्तर—जे के ये बुद्धियाँ अवग्रह आदि रूप न छे, तो पणु शास्त्रनी अपेक्षा कर्था विना न के बुद्धियाँ उत्पन्न थाय छे, तेथी तेने अवग्रह आदिथी भिन्नरूपे मानी छे, अने ये कारणे न सूत्रकारे तेमनु अलग रीते प्रतिपादन क छे

तत्राश्रुतनिश्चितस्य स्वल्पविषयकृतया पूर्वं तदेव प्रस्तौति—'से किं त' इत्यादि। अश्रुतनिश्चितस्याभिन्नोधिकस्य किं स्वरूपमिति प्रश्न' । उत्तरमाह—'अस्सुय-निस्सिय-चउच्चिह पण्णत्त' इत्यादि । अश्रुतनिश्चित चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३, पारिणामिकी ४ । इत्येव चतुर्विधा बुद्धिः प्रोक्ता । औत्पत्तिकी-उत्पत्तिरेव न तु शास्त्राभ्यासकर्मपरिशीलनादिक प्रयोजन=कारण यस्याः सा औत्पत्तिकी ।

ननु सर्वस्याः बुद्धेः कारण क्षयोपशमस्तत् कथमुच्यते 'उत्पत्तिरेव प्रयोजन-मस्याः' इति चेत्, उच्यते-क्षयोपशमः सर्वबुद्धिसाधारणस्ततो नासौ भेदेन प्रतिपत्तेः कारण भवति । अथ च बुद्ध्यन्तराद् भेदेन प्रतिपत्त्यर्थं व्यपदेशान्तरं कर्तुमारब्धं, तत्र व्यपदेशान्तरनिमित्तं न किमपि विनयादिकं विद्यते, केवलमेवमेव तथोत्पत्तिरिति सैव साक्षान्निर्दिष्टा । १ ।

अश्रुतनिश्चित के विषय का विवेचन अल्प है, इसलिये सूत्रकार पहिले श्रुतनिश्चित मतिज्ञान का विवेचन न करके पहिले अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान का ही विवेचन करते हैं 'से किं त अस्सुयनिस्सिय' इत्यादि । प्रश्न-अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान का क्या स्वरूप है ? । उत्तर-अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान चार प्रकार का है वे उसके चार प्रकार ये हैं-औत्पत्तिकी १, वैनयिकी २, कर्मजा ३ एव पारिणामिकी ४, ये चार बुद्धियां हैं । जो बुद्धि शास्त्राभ्यास आदि के करने से उत्पन्न नहीं होती है, किन्तु जीव को स्वतः ही उत्पन्न होती है-जिस को व्यवहार में "हाजिरजवाब" कहते हैं इसका नाम औत्पत्तिकी बुद्धि है ।

शका-समस्त बुद्धियों का कारण क्षयोपशम कहा गया है, तो फिर यह बात कैसे मानी जा सकती है कि इस बुद्धि का कारण अपनी उत्पत्ति ही है ।

अश्रुतनिश्चितना विषयतु विवेचनं इकु छे तथी सूत्रकार पड़ेला श्रुतनि-श्रिततु विवेचनं न करता अश्रुतनिश्चिततु न विवेचनं करे छे

प्रश्न-अश्रुतनिश्चित मतिज्ञानतु शु स्वरूपं छे ?

उत्तर-२ श्रुतनिश्चित मतिज्ञान चार प्रकारतु छे-(१) औत्पत्तिकी, (२) वैनयिकी, (३) कर्मजा अने (४) पारिणामिकी, ये चार मति छे न मति शास्त्राभ्यास आदि द्वाराथी उत्पन्न थती नहीं यणु आपोआप उत्पन्न थाय छे-नेने पड़ेवारमा "हाजिर जवाब" कडे छे येतु नाम औत्पत्तिकी मति छे

शका-समस्त मतिनु जरणु क्षयोपशम दशावेल छे, तो आ बात केवी सीते मानी शक्य के ये मति स्वत उत्पन्न थाय छे ?

વૈનયિકી-વિનયો-ગુરુશુશ્રૂપાન્તરણઃ, સ પ્રયોજન-કારણ યમ્યાઃ, મા તથા, યદ્વા-વિનયપ્રધાના યુદ્ધિર્વૈનયિકી । ૨ ।

તથા-કર્મજા-ભનાચાર્યક ધર્મ, સાચાર્યક શિલ્પમ્ । તત્ર કર્મગો જાતા કર્મજા । શિલ્પ તુ વિનયોત્પન્નમ્, તદુત્પન્ના યુદ્ધિર્વૈનયિક્યામન્તર્ભૂતા । ૩ ।

ઉત્તર—યહ તો ઠીક છે, પરન્તુ ક્ષયોપશમ ઇન યુદ્ધિયોં મેં ભેદ કી પ્રતિપત્તિ (સમઘ્ને) કા કારણ નહીં હો સકના છે, કયોં કિ ક્ષયોપશમ સર્વ યુદ્ધિયોં કી ઉત્પત્તિ મેં સર્વમાધારણ રૂપ સે કારણ હોના હી છે, ઇસલિયે વહ પૃથ્ગરૂપ સે પ્રતિપત્તિ કા કારણ નહીં હો સકના, ઓર જહા ઔત્પત્તિકી યુદ્ધિ કા અન્ય વૈનયિકી આદિ યુદ્ધિયોં સે પૃથ્ગરૂપ પ્રતિપત્તિ (સમઘ્ને) કે લિયે વ્યપદેશાન્તર કરના પ્રારંભ કિયા વહા પર વ્યપદેશાન્તર કા નિમિત્ત વિનયાદિક કોઈ નહીં છે, કેવલ ઉસ પ્રકાર કી ઉમકી ઉત્પત્તિ હી નિમિત્ત છે ઇસલિયે યહ વહી સાક્ષાત્રૂપ સે નિર્દિષ્ટ કી ગઈ છે । ૧ ।

ગુરુ કી શુશ્રૂપા કરના ઇસકા નામ વિનય છે । ઇસ વિનયરૂપ કારણ સે જો યુદ્ધિ હોતી છે વહ વૈનયિકી યુદ્ધિ છે । અથવા જિસમેં વિનય-પ્રધાન હો વહ ભી વૈનયિકી યુદ્ધિ છે ૨ । આચાર્ય કે વિના સ્વય પ્રાપ્ત હુઈ કલા કો કર્મ કહતે હેં, ઓર આચાર્ય સે પ્રાપ્ત હુઈ કલા કો શિલ્પ કહતે હેં । ઇનમે કર્મ સે જો યુદ્ધિ ઉત્પન્ન હોતી છે વહ કર્મજા યુદ્ધિ છે । ૧ શિલ્પ,

ઉત્તર—એ તો ધરાણર છે, પણ ક્ષયોપશમ એ મતિઓમા લેદની પ્રતિ પત્તિ (સમજવા) નુ કારણ હોઈ શકતુ નથી, કારણ કે ક્ષયોપશમ સર્વે મતિ ઓની ઉત્પત્તિમા સર્વસધારણ રીતે કારણ હોય જ છે, તેથી તે અલગ રીતે પ્રતિપત્તિનુ કારણ હોઈ શકતુ પ્રથી, અને ન્યા ઔત્પત્તિકી મતિનુ અન્ય વૈનયિકી આદિ મતિઓથી અલગ રીતે પ્રતિપત્તિ (સમજવા) ને માટે વ્યપદે શાન્તર કરવાનો પ્રારંભ કર્યો ત્યા વ્યપદેશાન્તરનુ નિમિત્ત વિનયાદિક કોઈ નથી, ક્રકત એ પ્રકારની તેની ઉત્પત્તિ જ નિમિત્ત છે તેથી અહીં એજ સાક્ષાતરૂપે નિર્દિષ્ટ કરવામા આવી છે ॥૧૧॥

ગુરુની શુશ્રૂપા કરવી તેનુ નામ વિનય છે આ વિનયરૂપ કારણથી જે મતિ ઉત્પન્ન થાય છે તે વૈનયિક મતિ છે અથવા જેમા વિનય પ્રધાન હોય તે પણ વૈનયિકી મતિ છે ૨ આચાર્ય વિના સ્વય પ્રાપ્ત થયેલ કળાને કર્મ કહે છે, અને આચાર્યથી પ્રાપ્ત થયેલ કળાને શિલ્પ કહે છે એમા કર્મથી જે મતિ ઉત્પન્ન થઈ હોય તે કર્મજા મતિ છે શિલ્પ, વિનયથી પ્રાપ્ત થાય છે. શિલ્પ ૧૦

तथा—पारिणामिकी-परि=समन्तात् नमन परिणामः सुदीर्घकालपूर्वापरार्थ पर्यालोचनजन्यः स्वात्मनो धर्मविशेषः, स प्रयोजनमस्याः सा पारिणामिकी । सा च-अनुमानकारणमात्रदृष्टान्तैः साध्यसाधिका, वयोविपाके च पुष्टीभूता, अभ्युदयमोक्षफला चेति । ४ ।

इत्येव चतुर्विधा बुद्धिः-बुध्यते-ज्ञायतेऽनयेति बुद्धिः=मतिः, उक्ता=तीर्थ-करगणधरैः कथिता । कथं चतुर्भिर्धैव कथिता ? यस्मात् पञ्चमी बुद्धिर्नोपलभ्यते, सर्वस्यापि अश्रुतनिश्चितमतिविशेषस्य औत्पत्तिकयादिवुद्धिचतुष्टयमात्रेऽन्तर्भागतः पञ्चम्या उद्वेगभावात् केवलानाऽपि पञ्चमी बुद्धिर्न दृष्टेति भावः ॥ गा. १ ॥

तत्र ' यथोद्देश निर्देशः ' इति न्यायमाश्रित्य पूर्वमौत्पत्तिकीलक्षणमाह—
मूलम्--गाहा -पुव्वमदिद्वस्सुय-मवेइय-तक्खण-विसुद्धगहियत्था ।

अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥२॥

छाया—पूर्यदृष्टाऽश्रुताऽचिदित-तत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था ।

अव्याहतफलयोगा, बुद्धिरौत्पत्तिकी नाम ॥ २ ॥

विनय से प्राप्त होता है, शिल्प से उत्पन्न हुई बुद्धि का वैनयिकी में अन्तर्भाव है ३ । सुदीर्घ कालतक पूर्वापर अर्थ के विचार से जन्य आत्म-धर्मविशेष जिस बुद्धि की उत्पत्ति में कारणभूत होता है वह पारिणामिकी बुद्धि अनुमान, कारण-मात्र एव दृष्टान्त से सा य को सिद्ध करनेवाली होती है, तथा जैसी २ अवस्था वीतती जाती है उसीके अनुसार पुष्ट होती हुई यह स्वर्ग और मोक्ष फल को देनेवाली होती है ४ । इस प्रकार की बुद्धिरूप मति तीर्थकर गणधरोंने कही है । इनके सिवाय बुद्धि का और कोई पाचवा प्रकार नहीं है, कारण कि जितना भी अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान है वह सब इन चार बुद्धियों में ही अन्तर्भूत हो जाता है ॥ गा० १ ॥

थयेव मतिनेो वैनयिणीमा सभावेश थध जय छे उ धव्वा लाणा काण सुधी पूर्वापर अर्थेना विचारथी जनित आत्मधर्मविशेष जे मतिनी उत्पत्तिमा कारणभूत डोय छे ते पारिणामिकी मति छे आ पारिणामिकी मति अनुमान, कारणमात्र अने दृष्टान्तथी साध्यने सिद्ध करनारी डोय छे, अने जेभ जेभ अवस्था वीतती जय छे तेभ तेभ पुष्ट थती ते स्वर्ग अने मोक्ष इणने देनेारी छे ४ आ प्रकारे आ आर प्रकारनी मति तीर्थकर, गणधरोअे उडेल छे कारण ते जेटलु अश्रुत निश्चित मतिज्ञान छे ते जधु आ आर मतिओमा ज सभावेश पाभी जय छे ॥ गा १ ॥

વૈનયિકી-વિનયો-ગુરુશુભાભણ', સ પ્રયોજનં=કારણ ગત્યાઃ, મા તથા, યદ્વા-વિનયપ્રધાના બુદ્ધિર્વૈનયિકી । ૨ ।

તથા-કર્મજા-ખનાચાર્યકર્મ, સાચાર્યકં શિલ્પમ્ । તત્ત્વ કર્મજો જાતા કર્મજા । શિલ્પ તુ વિનયોત્પન્નમ્, તદુત્પન્ના બુદ્ધિર્વૈનયિકયામન્તર્ભૂતા । ૩ ।

ઉત્તર—યહ તો ઠીક છે, પરન્તુ ક્ષયોપશમ ઇન બુદ્ધિયોં મેં મેદ્ કી પ્રત્તિપત્તિ (સમજાને) કા કારણ નહીં હો સકતા છે, ક્યોં કિ ક્ષયોપશમ સર્વ બુદ્ધિયોં કી ઉત્પત્તિ મેં સર્વસાગ્રાણ રૂપ સે કારણ હોતા હી હૈ, ઇસલિયે વહ્ પૃથ્ગરૂપ સે પ્રત્તિપત્તિ કા કારણ નહીં હો સકતા, ઓર જહાં ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિ કા અન્ય વૈનયિકી આદિ બુદ્ધિયોં સે પૃથ્કરૂપ પ્રતિપત્તિ (સમજાને) કે લિયે વ્યપદેશાન્તર કરના પ્રારમ્ કિયા વહાં પર વ્યપદેશાન્તર કા નિમિત્ત વિનયાદિક કોઈ નહીં હૈ, કેવલ ઉસ પ્રકાર કી ઉસકી ઉત્પત્તિ હી નિમિત્ત હૈ ઇસલિયે યદ્વા વહી સાક્ષાત્રૂપ સે નિર્દિષ્ટ કી ગઈ હૈ । ૧ ।

ગુરુ કી શુશ્રૂષા કરના ઇસકા નામ વિનય હૈ । ઇસ વિનયરૂપ કારણ સે જો બુદ્ધિ હોતી હૈ વહ્ વૈનયિકી બુદ્ધિ હૈ । અથવા જિસમેં વિનય-પ્રધાન હો વહ્ મી વૈનયિકી બુદ્ધિ હૈ ૨ । આચાર્ય કે વિના સ્વય પ્રાપ્ત હુઈ કલા કો કર્મ કહ્તે હૈ, ઓર આચાર્ય સે પ્રાપ્ત હુઈ કલા કો શિલ્પ કહ્તે હૈ । ઇનમે કર્મ સે જો બુદ્ધિ ઉત્પન્ન હોતી હૈ વહ્ કર્મજા બુદ્ધિ હૈ । ૧ શિલ્પ,

ઉત્તર—એ તો બરાબર છે, પણ ક્ષયોપશમ એ મતિઓમા ભેદની પ્રતિ પત્તિ (મમજવા) તુ કારણ હોઈ શકતુ નથી, કારણ કે ક્ષયોપશમ સર્વે મતિ ઓની ઉત્પત્તિમા સર્વસધારણ રીતે કારણ હોય જ છે, તેથી તે અલગ રીતે પ્રતિપત્તિનુ કારણ હોઈ શકતુ પ્રથી, અને જ્યા ઔત્પત્તિકી મતિનુ અન્ય વૈનયિકી આદિ મતિઓથી અલગ રીતે પ્રતિપત્તિ (સમજવા) ને માટે વ્યપદે શાન્તર કરવાને પ્રારભ કયોં ત્યા વ્યપદેશાન્તરનુ નિમિત્ત વિનયાદિક કોઈ નથી, ક્રુત્ત એ પ્રકારની તેની ઉત્પત્તિ જ નિમિત્ત છે તેથી અહીં એજ સાક્ષાતરૂપે નિર્દિષ્ટ કરવામા આવી છે ॥૧॥

ગુરુની શુશ્રૂષા કરવી તેનું નામ વિનય છે આ વિનયરૂપ કારણથી જે મતિ ઉત્પન્ન થાય છે તે વૈનયિક મતિ છે અથવા જેમા વિનય પ્રધાન હોય તે પણ વૈનયિકી મતિ છે ૨ આચાર્ય વિના સ્વય પ્રાપ્ત થયેલ કળાને કર્મ કહે છે, અને આચાર્યથી પ્રાપ્ત થયેલ કળાને શિલ્પ કહે છે એમા કર્મથી જે મતિ ઉત્પન્ન થઈ હોય તે કર્મજા મતિ છે શિલ્પ, વિનયથી પ્રાપ્ત થાય છે, શિલ્પથી ઉત્પન્ન

तथा—पारिणामिकी-परि=समन्तात् नमन परिणामः सुदीर्घकालपूर्वापरार्थ पर्यालोचनजन्यः स्नात्मनो धर्मविशेषः, स प्रयोजनमस्याः सा पारिणामिकी । सा च-अनुमानकारणमात्रदृष्टान्तैः साध्यसाधिका, वयोविपाके च पुष्टीभूता, अभ्युदयमोक्षफला चेति । ४ ।

इत्येव चतुर्विधा बुद्धिः-बुध्यते-ज्ञायतेऽनयेति बुद्धिः=मतिः, उक्ता=तीर्थ-करगणधरैः कथिता । कथं चतुर्विधैव कथिता ? यस्मात् पञ्चमी बुद्धिर्नोपलभ्यते, सर्वस्यापि अश्रुतनिश्चितमतिविशेषस्य औत्पत्तिकयादिबुद्धिचतुष्टयमात्रेऽन्तर्भावतः पञ्चम्या बुद्धेरभावात् केवलनाऽपि पञ्चमी बुद्धिर्न दृष्टेति भावः ॥ गा. १ ॥

तत्र 'यथोद्देश निर्देशः' इति न्यायमाश्रित्य पूर्वमौत्पत्तिकीलक्षणमाह—

मूलम्-गाहा-पुव्वमदिट्टस्सुय-मवेइय तक्खण-विसुद्धगहियत्था ।

अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥२॥

छाया—पूर्वादृष्टाऽश्रुताऽनिदित-तत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था ।

अव्याहृतफलयोगा, बुद्धिरौत्पत्तिकी नाम ॥ २ ॥

विनय से प्राप्त होता है, शिल्प से उत्पन्न हुई बुद्धि का वैनयिकी में अन्तर्भाव है ३ । सुदीर्घ कालतक पूर्वापर अर्थ के विचार से जन्य आत्म-धर्मविशेष जिस बुद्धि की उत्पत्ति में कारणभूत होता है वह पारिणामिकी बुद्धि अनुमान, कारण-मात्र एव दृष्टान्त से सा य को सिद्ध करनेवाली होती है, तथा जैसी २ अवस्था वीतती जाती है उसीके अनुसार पुष्ट होती हुई यह स्वर्ग और मोक्ष फल को देनेवाली होती है ४ । इस प्रकार की बुद्धिरूप मति तीर्थकर गणधरोंने कही है । इनके सिवाय बुद्धि का और कोई पाचवा प्रकार नहीं है, कारण कि जितना भी अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान है वह सब इन चार बुद्धियों में ही अन्तर्भूत हो जाता है ॥ गा० १ ॥

थयेव मतिना वैनयिणीमा समावेश थथ नय छे उ धणा लाणा काण सुधी पूर्वापर अर्थना विचारथी जनित आत्मधर्मविशेष ने मतिनी उत्पत्तिमा कारणभूत होय छे ते पारिणामिकी मति छे आ पारिणामिकी मति अनुमान, कारणमात्र अने दृष्टान्तथी माध्यने सिद्ध करनारी होय छे, अने नेम नेम अवस्था वीतती नय छे तेम तेम पुष्ट थती ते स्वर्ग अने मोक्ष कृणने हेनारी छे ४ आ प्रकारे आ चार प्रकारनी मति तीर्थकर, गणधरेअे कडेल छे कारण के नेटलु अश्रुत निश्चित मतिज्ञान छे ते णधु आ चार मतिओमा न समावेश पाभी नय छे ॥ गा १ ॥

टीका—‘पुञ्ज’ इत्यादि। पूर्वांशप्राश्रुताऽप्रिदिततत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था
 पूर्व=बुद्धपुत्रपत्तेः प्राः, अदृष्टः=मय चक्षुषान दृष्टः, अश्रुतः=न चाप्यन्यत श्रुतः,
 अप्रिदितः=मनसाप्यप्रिदितः-अपर्यालोचित, तत्क्षणे=नस्मिन् क्षणे-बुद्धपुत्रपत्ति
 काले, विशुद्धः=यथावस्थित, गृहीतः=अप्रधारितोऽर्थः यथा सा तथा। ‘पुञ्जमदि
 दृमस्त्रुयमवेद्य’ इत्यत्र मकारत्रयम् आर्पत्वात्। तथा-अव्याहृतफलयोगा-अव्याहृत
 =व्याघातरहित च तत् फल चाव्याहृतफलम्, तेन योगो यस्या सा अव्याहृतफल
 योगा-अवाधितार्थविषयमा बुद्धिः, औत्पत्तिमी नाम-नाम्ना औत्पत्तिकीत्यर्थः॥२॥

समति शिष्यानुग्रहार्थमौत्पत्तिक्याः स्वरूप प्रतिरोधयितुमृदाहरणान्याह—

मूलम्—गाहा-भरहसिल १, मिठ २, कुक्कुड ३, तिल ४,
 वालुय ५, हत्थि ६, अगड ७, वणसडे ८। पायस ९, अइया १०,
 पत्ते ११, खाडाहिला १२, पंचपियरो १३, य ॥ ३ ॥

छाया—भरतशिला, १, मेण्ड २, कुक्कुट ३, तिल ४, वालुका ५, हस्त्य
 गड ६-७, वनपण्डाः ८। पायसातिग ९-१०, पराणि ११, खाडहिला १२,
 पञ्चपितरश्च १३ ॥ ३ ॥

टीका—‘भरहसिल’ इत्यादि। अस्या अर्थः त्रयोदशमधानकेभ्योऽवगन्तव्यः।
 तानि च कथानकानि टीकासमाप्त्यनन्तर द्रष्टव्यानि ॥ ३ ॥

अब औत्पत्तिकी बुद्धि का क्या लक्षण है इसे सूत्रकार नीचे की
 गाथा द्वारा बतलाते हैं—‘पुञ्जमदिदृठ’ इत्यादि।

जो पदार्थ पहिले कभी देखा नहीं है, किसी दूसरे से सुना भी नहीं
 है, और न जिसकी मन से भी कल्पना की गई है, ऐसे पदार्थ का उसी
 समय यथावस्थितरूप से जिसके द्वारा निश्चय हो जावे उस बुद्धि का
 नाम औत्पत्तिकी बुद्धि है। तात्पर्य कहने का यही है कि इस बुद्धि का
 विषय अवाधित होता है। अर्थात्—यह बुद्धि सभी विषयों को निस्सन्देह
 रूप से स्पष्ट करती है ॥ २ ॥

इसे औत्पत्तिकी भतिनु शु लक्षण्यु छे ते सूत्रकार नीचेनी गाथा द्वारा
 बतावे छे—“पुञ्जमदिदृठ” इत्यादि

जे पदार्थ पखेला कही जेथे न डोय, जीज डोयनी पासेथी सालज्ये
 पखु न डोय, अने मनधी जेनी कल्पना पखु करी न डोय, जेवा पदार्थने जेजु समथे
 यथावस्थित रूपे जेना द्वारा निश्चय शधु ज्ये भतिनु नाम औत्पत्तिकी
 भति छे तेनु तात्पर्य जे छे के आ भतिने विषय अवाधित डोय छे अटके
 के बुद्धि समस्त विषयेने नि स देह रूपे स्पष्ट करे छे ॥ गा २ ॥

औत्पत्तिम्या बुद्धेर्वाचनान्तरेण पुनरुदाहरणानि गाथाद्वयेनाह—

मूलम्—भरहसिल १, पणिय २, रुक्खे ३, खुड्डग ४, पड ५, सरड ६, काय ७, उच्चारे ८ । गय ९, घयण १०, गोल ११, खंभे १२, खुड्डग १३, मग्गित्थि १४—१५, पइ १६, पुत्ते १७ ॥ ४ ॥
महुसित्थ १८, मुद्दिय १९, ऽके २०, नाणए २१, भिक्खु २२, चेडगनिहाणे २३ । सिक्खाय २४, अत्थसत्थे २५, इच्छाय मह २६, सयसहस्से २६ ॥ ५ ॥

छाया—भरतशिला १, पणित २, वृक्षाः ३, क्षुल्लक ४, पट ५, सरट ६, काकोच्चाराः ७—८ । गज ९, घयण (भाण्ड) १०, गोलक ११, स्तम्भाः १२, क्षुल्लक १३, मार्ग १४, स्त्री १५, पति १६, पुत्राः १७ ॥ ४ ॥ मधुसिन्ध १८, मुद्रिका १९, अङ्कः २०, ज्ञायक २१, भिक्षु २२, चेटकनिधानानि २३ । शिक्षा २४, च अर्थशास्त्रम् २५, इच्छा च महती २६, शतसहस्रम् २७ ॥ ५ ॥

टीका—‘ भरहसिल ’ इत्यादि । अस्य गाथाद्वयस्यार्थः सप्तविंशतिरुथानकेभ्योऽवगन्तव्यः । तानि च कथानकानि टीकाममाप्त्यनन्तर द्रष्टव्यानि ॥ ४—५ ॥

वैनयिकालक्षणमाह—

मूलम्—गाथा—भरनिरत्थरण समत्था, तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला ।
उभओलोगफलवई, विणयसमुत्था हवइ बुद्धी ॥१॥

इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं—‘ भरहसिल १ ’ इत्यादि ।

इन चारह उदाहरणों का स्पष्टरूप से खुलासा टीका के अन्त में है ॥३॥
वाचनान्तर से भी औत्पत्तिकी बुद्धि के सत्ताईस उदाहरण इस प्रकार हैं—‘ भरहसिल १, पणिय २ ’ इत्यादि ।

इन सत्ताईस उदाहरणों का भी खुलासा टीका के अन्त में है ॥४॥५॥

‘ अब वैनयिकी बुद्धि का लक्षण कहते हैं—‘ भरनित्थरणसमत्था ’ इत्यादि ।

तेना उदाहरणो नीचे प्रभाषे छे—“ भरहसिल १ ” इत्यादि अये पार उदाहरणोने स्पष्ट रीते खुलासा टीकाने अते छे ॥ गा ३ ॥

वाचनान्तरथी पण्य औत्पत्तिकी भतिना सत्तावीस उदाहरण नीचे मुण्य छे—“ भरहसिल १ पणिय २ ” इत्यादि

अये सत्तावीस उदाहरणोने खुलासा पण्य टीकाने अते छे ॥ गा ४ ॥ ५ ॥
इवे वैनयिकी भतिनु लक्षण कडे छे—“ भरनित्थरणसमत्था ” इत्यादि

टीका—‘पुञ्ज’ इत्यादि। पूर्वाऽदृष्टाश्रुताऽप्रिदिततत्त्वणविशुद्धगृहीतार्था
 पूर्व=बुद्धश्रुततेः प्राक्, अदृष्टः=स्य चक्षुषा न दृष्ट, अश्रुतः=न चाप्यन्यत श्रुतः,
 अप्रिदितः=मनसाप्यप्रिदितः=अपर्यालोचित, तत्त्वणे=तस्मिन् क्षणे-बुद्धश्रुतत्ति
 काले, विशुद्धः=यथास्थितः, गृहीतः=अपारितोऽर्थः यथा सा तथा। ‘पुञ्जमदि
 दृमस्सुयमवेडय’ इत्यत्र ममारत्रयम् आर्पत्वात्। तथा-अव्याहृतकयोगा-अव्याहृत
 =व्याघातरहित च तत् फल चान्याहृतफलम्, तेन योगो यस्या सा अव्याहृतफल
 योगा-अवाधितार्थत्रिपयका बुद्धि, औत्पत्तिकी नाम-नाम्ना औत्पत्तिकीत्यर्थः॥२॥

सपत्ति शिष्यानुग्रहार्थमौत्पत्तिक्याः स्वरूप प्रतिरोधयितुमुदाहरणान्याह—

मूलम्—गाहा-भरहासिल १, मिंद २, कुम्कुड ३, तिल ४,
 वालुय ५, हस्ति ६, अगड ७, वणसडे ८। पायस ९, अडया १०,
 पत्ते ११, खाडहिला १२, पचपियरो १३, य ॥ ३ ॥

छाया—भरतशिला, १, मेण्ड २, कुम्कुड ३, तिल ४, गडका ५, हस्त्य
 गड ६-७, वनपण्डाः ८। पायसातिग ९-१०, प्राणि ११, खाडहिला १२,
 पञ्चपितरश्च १३ ॥ ३ ॥

टीका—‘भरहासिल’ इत्यादि। अस्या अर्थः त्रयोदशस्थानकेभ्योऽवगन्तव्यः।
 तानि च कथानकानि टीकासमाप्त्यनन्तर द्रष्टव्यानि ॥ ३ ॥

अब औत्पत्तिकी बुद्धि का क्या लक्षण है उसे सूत्रकार नीचे की
 गाथा द्वारा बतलाते हैं—‘पुञ्जमदिदृ०’ इत्यादि।

जो पदार्थ पहिले कभी देखा नहीं है, किसी दूसरे से सुना भी नहीं
 है, और न जिसकी मन से भी कल्पना की गई है, ऐसे पदार्थ का उसी
 समय यथावस्थितरूप से जिसके द्वारा निश्चय हो जावे उस बुद्धि का
 नाम औत्पत्तिकी बुद्धि है। तात्पर्य कहने का यही है कि इस बुद्धि का
 विषय अवाधित होता है। अर्थात्-यह बुद्धि सभी विषयों को निस्सन्देह
 रूप से स्पष्ट करती है ॥ २ ॥

इसे औत्पत्तिकी भतिनु शु लक्षण छे ते सूत्रकार नीचेनी गाथा द्वारा
 बतावे छे—“पुञ्जमदिदृ०” इत्यादि

जे पदार्थ पहिले कभी न देखे न होय, जेना कौनो पासेथी साबज्ये
 पछु न होय, अने मनथी जेनी कल्पना पछु करी न होय, जेवा पदार्थने जे सभजे
 यथावस्थित रूपे जेना द्वारा निश्चय थछ नय जे भतिनु नाम औत्पत्तिकी
 भति छे तेनु तात्पर्य जे छे के आ भतिने विषय अवाधित होय छे जेठवे
 के बुद्धि सभस्त विषयेने नि सदेह रूपे स्पष्ट करे छे ॥ गा २ ॥

औत्पत्तिम्या बुद्धेर्वाचनान्तरेण पुनरुदाहरणानि गाथाद्वयेनाह—

मूलम्—भरहसिल १, पणिय २, रुक्खे ३, खुडुग ४, पड ५, सरड ६, काय ७, उच्चारे ८ । गय ९, घयण १०, गोल ११, खंभे १२, खुडुग १३, मग्गित्थि १४-१५, पइ १६, पुत्ते १७ ॥ ४ ॥
महुसित्थ १८, मुद्दिय १९, ऽके २०, नाणए २१, भिक्खु २२, चेडगनिहाणे २३ । सिक्खाय २४, अत्थसत्थे २५, इच्छाय महं २६, सयसहस्से २६ ॥ ५ ॥

छाया—भरतशिला १, पणित २, वृक्षाः ३, क्षुल्लक ४, पट ५, सरट ६, काकोच्चारा, ७-८ । गज ९, घयण (भाण्ड) १०, गोलक ११, स्तम्भाः १२, क्षुल्लक १३, मार्ग १४, स्त्री १५, पति १६, पुत्राः १७ ॥ ४ ॥ मधुसिन्धु १८, मुद्रिका १९, अङ्कः २०, ज्ञायक २१, भिक्षु २२, चेटकनियानानि २३ । शिक्षा २४, च अर्थशास्त्रम् २५, इच्छा च महती २६, शतसहस्रम् २७ ॥ ५ ॥

टीका—‘भरहसिल’ इत्यादि । अस्य गाथाद्वयस्यार्थः सप्तविंशतिकथानकेभ्योऽवगन्तव्यः । तानि च कथानकानि टीकासमाप्त्यनन्तर द्रष्टव्यानि ॥ ४-५ ॥

वैनयिकालक्षणमाह—

मूलम्—गाहा—भरनिरत्थरण समत्था, तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला ।
उभओलोगफलवई, विणायसमुत्था हवइ बुद्धी ॥१॥

इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं—‘भरहसिल १’ इत्यादि ।

इन बारह उदाहरणों का स्पष्टरूप से खुलासा टीका के अन्तमें है ॥३॥

वाचनान्तर से भी औत्पत्तिकी बुद्धि के सत्ताईस उदाहरण इस प्रकार हैं—‘भरहसिल १, पणिय २’ इत्यादि ।

इन सत्ताईस उदाहरणों का भी खुलासा टीका के अन्त में है ॥४॥५॥

‘अथ वैनयिकी बुद्धि का लक्षण कहते हैं—‘भरनित्थरणसमत्था’ इत्यादि ।

तेना उदाहरणो नीचे प्रभाषे उे—“भरहसिल १” इत्यादि अे षार उदाहरणोने स्पष्ट गीते खुलासे टीकाने अते छे ॥ गा ३ ॥

वाचनान्तरधी पषु औत्पत्तिकी भतिना सत्तावीस उदाहरणु नीचे मुण्ठ छे—“भरहसिल १ पणिय २” इत्यादि

अे सत्तावीस उदाहरणोने खुलासे पषु टीकाने अते छे ॥ गा ४ ॥ ५ ॥
इवे वैनयिकी भतिनु लक्षणु कडे छे—“भरनित्थरणसमत्था” इत्यादि

छाया—गाथा—भरनिस्तरणसमर्था, त्रिवर्गसुप्रार्थगृहीतपेयात् (प्रमाण)।

उमयलोकफल्गती, त्रिनयसमुत्था भवति बुद्धिः ॥ १ ॥

टीका—'भरनिस्तरणसमर्था' इत्यादि। भरनिस्तरणसमर्था=भर इव भरस्तस्य निस्तरणे समर्था, गुरुकार्यसंपादन क्रातराणां दुष्कर भवतीति गुरुकार्यमेव भारसाहचर्याद्वारस्तस्य यत्ने दक्षेत्यर्थः। तथा—त्रिवर्गसुप्रार्थगृहीतपेयात्=त्रयो वर्गास्त्रिवर्गाः, लोकरूढ्या धर्मार्थकामाः, तेया सूत्रं—तद्वर्जनोपायप्रतिपादक सूत्रम्, अर्थ—तदर्थश्च, तौ त्रिवर्गसुप्रार्थौ, तयोर्गृहीतं पेयात्—प्रमाण सारो वा यया सा त्रिवर्गसुप्रार्थगृहीतपेयात्, नीतिशास्त्रनिपुणा—इत्यर्थः।

ननु चैनयिक्या मतेस्त्रिवर्गसुप्रार्थगृहीतसारत्वे मत्पश्रुतनिश्चितत्वं नोपपद्यते, न हि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसुप्रार्थगृहीतसारत्वं सम्यतीति चेत्,

कठिन कार्य का संपादन करना कानरों के लिये दुष्कर होता है अतः वह भारकी सदृशता से भार कहा गया है, उसके सम्पादन करने में दक्ष, तथा धर्म, अर्थ एवं काम के उपार्जन के उपाय बतलाने वाले सूत्र और उनके अर्थ का जिसके द्वारा सार ग्रहण किया जासके ऐसी, अर्थात् नीतिशास्त्र में निपुण, तथा इस लोक एवं परलोक में सुन्दर फल देनेवाली विनय से उत्पन्न चैनयिकी बुद्धि कहलाती है।

शका—जब आप चैनयिकी बुद्धि को त्रिवर्ग के उपाय को बतलाने वाले सूत्र अर्थ का सार ग्रहण करने वाली कहते हैं तो फिर यह अश्रुतनिश्चित कैसे मानी जा सकती है, क्योंकि श्रुत के अभ्यास के बिना त्रिवर्ग के स्वरूप का समझना सम्भवित नहीं हो सकता है।

कठिन कार्यतु संपादन कश्चु अथे कायशने भाटे दुष्कर डोय छे तेथी ते भोजन समान डोवाथी लार कडेल छे तेनु संपादन उरवाभा दक्ष, तथा, धर्म, अर्थ अने कामना उपार्जनने उपाय दशोवनार सूत्रे अने तेमना अर्थनेनेना वडे सार अडणु करी शकाय अेवी, अेटवे के नीतिशास्त्रभा निपुणु, तथा आलौड अने परलोकना सुंदर इण हेनारी विनयथी उत्पन्न थयेवी भतिने चैनयिकी भति कडे छे

शका—जे आप चैनयिकी भतिने त्रिवर्गना उपायने अतावनारी सूत्र अर्थने सार अडणु करनारी कडे छे तो पछी ते अश्रुतनिश्चित केवी रीते भानी शकाय, कश्चु के श्रुतना अभ्यास बिना त्रिवर्गना स्वरूपने सम्भवित होय शकतु नहीं ?

उच्यते—इह प्रायोवृत्तिमाश्रित्याश्रुतनिश्रुतत्वमुक्तम्, अतः स्वल्पश्रुतनिश्रुतत्वमद्भावेऽपि न कोऽपि दोषः ।

तथा—उभयलोरुफलप्रती=उभयलोके-इहलोके परलोके च, फलप्रती-फलदायिनी, विनयसमुत्था=विनयोद्भवा वैनयिकी बुद्धिर्भवति ॥ १ ॥

सप्रति शिष्यानुग्रहार्थं वैनयिकीमतेः स्वरूपमुदाहरणैः प्रदर्शयति—

मूलम्—गाहा—निमित्ते १, अत्थसत्थे २, य, लेहे ३, गणिए ४, य कूव ५, अस्से ६ य । गद्भ ७, लक्खण ८, गठी ९, अगए १०, रहिए ११ य गणिया १२ य ॥ २ ॥

आया—निमित्तम् १, अर्थशास्त्रं २ च, लेसो ३, गणित च ४, कृपाथो च ५-६ । गर्दभ ७, लक्षण ८, ग्रन्थ्यगदाः ९-१०, रथिकश्च ११, गणिकां १२ च ॥ २ ॥

तथा—

गाहा—सीया साडी दीह च तण, अवसव्वय च कुचस्स १३ ।

निव्वोदए १४ य गोणे, घोडगपडण च रुक्खाओ १५ ॥ ३ ॥

छाया—शीता शाटी दीर्घं च तृणम् अपसव्वक च ज्ञोच्चस्य १३ ।

नीव्रोदक १४ च गौः, घोटरु-पतन (मरण) च वृक्षात् १५ ॥ ३ ॥

टीका—‘निमित्ते’ इत्यादिगाथाद्वयार्थः कथानकेभ्योऽपगन्तव्यः । तानि च कथानकानि टीकाऽन्ते द्रष्टव्यानि ॥ २-३ ॥

उत्तर—वैनयिकी बुद्धि मे जो अश्रुतनिश्रितता वतलाई गई है वह प्रायोवृत्ति जो आश्रित करके वतलाई गई है, अर्थात् इसमें प्राय करके अश्रुतनिश्रितता है, इसलिये थोड़े रूपमें यदि श्रुतनिश्रितता रहती भी है तो भी इसमें कोई दोष नहीं है ॥ १ ॥

उत्तर—वैनयिकी भक्तिमा जे अश्रुतनिश्रितता गताववामा आवी छे ते प्रायोवृत्तिने आधारे गतावार्ड छे, अेटवे के तेमा प्राय अश्रुतनिश्रितता छे, तेथी जे तेमा थोडा प्रमाणमा श्रुतनिश्रितता पणु छेय तो तेमा केछे दोष नहीं ॥ ३ ॥ १ ॥

कर्मजाया युद्धेर्लक्षणमाह—

मूलम्—गाहा—उवओगट्टिसारा, कम्मपसगपरिघोलणविसाला ।

साधुकारफलवई, कम्मसमुत्था हवड बुद्धी ॥१॥

गाया—उपयोग दृष्टमारा, कर्मममद्रपरिघोलनविशाला ।

साधुकार फलवती, कर्मसमुत्था भवति बुद्धिः ॥ १ ॥

टीका—‘उपयोगदृष्टिमारा’ इत्यादि । उपयोगदृष्टिसारा=उपयोगः निवृत्तिं कर्मणि मनसोऽभिनिवेशः, तेन दृष्टः सारः=तस्यैव कर्मणः परमार्थो यया, सा उपयोगदृष्टिसारा—अभिनिवेशोपलब्धकर्मपरमार्थेत्यर्थः । तथा—कर्मममद्रपरिघोलन विशाला—कर्मणि मसद्गः—कर्ममसद्गः, मसद्गोऽभ्याम’, परिघोर्नन=विचार, कर्म मसद्गपरिघोलनाभ्या विशाला=विस्तारमुपगता । तथा—साधुकृत=मुष्टुकृतमिति वि द्भिः कृता=मशसा साधुकारः, तेन फलवती=साधुकारपुरस्सर ज्ञानादित्यभरूप फलं यस्याः सेत्यर्थः । कर्मसमुत्था=कर्मजा बुद्धिर्भवति ॥ १ ॥

शिष्यानुग्रहार्थमुदाहरणैः कर्मजायाः स्वरूपं दर्शयति—

मूलम्—हेरणिणए १, करिसए २, कोलियं ३, डोवे ४, य मुत्ति ५, घय ६, पवए ७ । तुन्नाए ८, वड्डई ९, य, पूइय १०, घड ११, चित्तकारे १२ य ॥ २ ॥

अथा—हेरण्यकः १ कर्पकः ३, डोवथ (दर्वीकारश्च) ४ मौक्तिक—घृत-प्लवकाः ५ ६-७ । तुन्नागो ८, वर्द्धकश्च ९, आपूपिकः १०, घट—चित्तकारी च ११-१२ ॥ २ ॥

टीका—‘हेरणिणए’ इत्यादि । अस्या अप्यर्थः द्वादशकथानकेभ्योऽवगन्तव्यः । तानि च कथानकानि टीकाऽन्ते द्रष्टव्यानि ॥ २ ॥

अब चारह उदाहरणों द्वारा सूत्रकार इसका स्वरूप प्रतिपादन करते हैं—‘निमित्ते’ इत्यादि । तथा—‘सीया साडी’ इत्यादि ।

इन दोनों गाथाओंके सत्ताईस दृष्टान्तोंका स्पष्टीकरण टीका के अन्तमें है ॥ २-३ ॥

डोवे आर उडाहरणो द्वारा सूत्रकार तेना स्वरूपु प्रतिपादन करे छे—

“निमित्ते” इत्यादि सीया साडी” इत्यादि

आ अन्ने गाथाओना सत्तावीस दृष्टान्तो रुपष्टीकरणे टीकाने अते आप्यु छे ॥ ११ २ ॥ ३ ॥

પારિણામિક્યા લક્ષણમાહ—

મૂલમ્—ગાહા--અણુમાણહેઉદિદ્વિતસાહિયા વચવિવાગપરિણામા ।

હિયનિસ્સેયસ ફલવર્ઙ્, બુદ્ધી પરિણામિક્યા નામ ॥૧॥

ગયા—અનુમાનહેતુદ્વિપ્રાન્ત-સાધિકા, વચો વિપારુપરિણામા ।

દ્વિત્તિનિઃશ્રેયસફલવત્તી, બુદ્ધિઃ પારિણામિકી નામ ॥ ૧ ॥

ટીકા—‘અણુમાણ૦’ ઇત્યાદિ । અનુમાનહેતુદ્વિપ્રાન્તસાધિકા-અનુમાન મિદ્ સ્વાર્થમ્ । અનુમાનપ્રતિપાદક વચો હેતુઃ-પશ્ચાત્તયમનામ્યરૂપઃ, પરાર્થાનુ-માનમિત્યર્થઃ ।

અવ સૂત્રકાર કર્મજા બુદ્ધિકા સ્વરૂપ તતલાતે હૈ—‘ઉચ્ચોગદ્વિદ્ધ-સારા’ ઇત્યાદિ । જિસ બુદ્ધિકે દ્વારા કર્તવ્ય કર્મ-કાર્ય-કા મનની લગન પૂર્વક અચ્છી તરફસે સાર ગ્રહણ કર લિયા જાતા હૈ, તથા જો બુદ્ધિ, કાર્ય કે અભ્યાસ ઓર ઉસકે વિચારસે વિસ્તારકો પ્રાપ્ત હુઈ હો, ત્વ જિસ બુદ્ધિસે સસારમે પ્રગણા હો વહ બુદ્ધિ કર્મજા કહલાતી હૈ ॥૧॥

કર્મજા બુદ્ધિકે વારહ ઉદાહરણ કહતે હૈ—‘દ્વેરિણ્ણા’ ઇત્યાદિ ।

ઇન વારહ દ્વિપ્રાન્તોંકા સુલાસા ટીકાકે અન્તમેં હૈ ॥ ૨ ॥

અવ પારિણામિકી બુદ્ધિકા સ્વરૂપ કહતે હૈ—‘અનુમાણહેઉ દ્વિદ્વિત’ ઇત્યાદિ । અનુમાન, હેતુ ત્વ દ્વિપ્રાન્તકે દ્વારા મા ય અર્થકો મિદ્ધ કરને-વાલી, ઝમરકે અનુસાર પુષ્ટ હોનેવાલી, તથા અભ્યુદય ત્વ નિઃશ્રેયસરૂપ ફલવાલી બુદ્ધિ પારિણામિકી બુદ્ધિ હૈ ॥ ૧ ॥

હવે સૂત્રકાર કર્મજા મતિનું સ્વરૂપ બતાવે છે—“ઉચ્ચોગદ્વિદ્ધમારા” ઇત્યાદિ જે મતિ દ્વારા કર્તવ્ય કર્મ-કાર્યનો મનની લીનતા પૂર્વક સારી રીતે સાર ગ્રહણ થાય છે, તથા જે મતિ કર્મના અભ્યાસ અને વિચારથી વિસ્તાર પામી હોય, અને જે મતિને લીધે સસારમાં પ્રગણા થાય તે મતિને કર્મજા મતિ કહે છે ॥ ગા ૧ ॥

કર્મજામતિના બાર ઉદાહરણો કહે છે—“દ્વેરિણ્ણા” ઇત્યાદિ

જે બાર દ્વિપ્રાન્તોનું સ્પષ્ટીકરણ તીકાને અતે આપ્યું છે ॥ ગા ૨ ॥

હવે ચોથી પારિણામિકી મતિનું સ્વરૂપ કહે છે—“અણુમાણહેઉદ્વિદ્વિત૦” ઇત્યાદિ અનુમાન, હેતુ અને દ્વિપ્રાન્ત દ્વારા સાધ્ય અર્થને મિદ્ધ કરનારી, ઊમરના પ્રમાણે પુષ્ટ થનારી, તથા અભ્યુદય અને નિઃશ્રેયસરૂપ જાણી મતિને પારિણામિકી મતિ કહે છે ॥ ગા ૧ ॥

ઇદમત્ર ચોધ્યમ્—અનુમાન દ્વિવિધ-સ્વાર્થ પર્યાયં ચ । તત્ર મ્યમેત્ર નિશ્ચિતાત્
 સાધનાત્ સાધ્યમાન સ્વાર્થાનુમાનમ્ । પરોપદેશમનપેન્ચ મ્યમેત્ર નિશ્ચિતાત્ પ્રાક્
 તર્કાનુભૂતવ્યાપ્તિસ્મરણમહજ્જતાત્ ધૂમાટે' સાધનાદુત્પન્ન પર્યતાદૌ ધર્મિણિ ં
 ગ્યાદેઃ સાધ્યસ્ય નાન સ્વાર્થાનુમાનમિત્યર્થઃ । યથા-પર્યંતોઽય ઘટ્તિમાન ધૂમવ
 ત્વાદિતિ । અય હિ સ્વાર્થાનુમાનમ્ય જ્ઞાનરૂપસ્યાપિ શબ્દેનોલ્લેચ', યથા 'અય
 ઘટ' ' ઇતિ શબ્દેન પ્રત્યક્ષસ્યોલ્લેચો ભવતિ ।

અનુમાન સ્વાર્થાનુમાન ઓર પરાર્થાનુમાનકે મેટસે ટો પ્રકારકા ઘન
 લાયા ગયા હૈ । યહા પ્રકૃતમે સ્વાર્થાનુમાન ગૃહીત હુઆ હૈ । સ્વાર્થાનુમાનકે
 પ્રતિપાદક જો પચાવયગરૂપ વચન હૈ વહ હેતુ હૈ । યહ હેતુ પરાર્થાનુમાન
 હૈ । જહા પરોપદેશ કી અપેક્ષા વિના હી મનુષ્ય કો ત્વય નિશ્ચિત કિયે
 ગયે સાધન સે-જિમ સાધન કા સન્નાયક પૂર્વકાલીન તર્કાનુભૂત વ્યાપ્તિ
 કા સ્મરણ હોતા હૈ ઉસસે-માધ્ય કા જ્ઞાન હોતા હૈ વહ સ્વાર્થાનુમાન
 હૈ । જૈસે-રસોઈઘર આદિ મેં ઘાર ૨ ધૂમ ઓર વહિ કે દેગ્વને સે
 અનુમાતા પુરૂપ કો યહ દૃઢ ધારણા ઘન જાતી હૈ કિ જહા ૨ ધૂમ હોગા
 વહા ૨ અગ્નિ હોગી, કારણ કિ જિતના મી ધૂમ હોતા હૈ વહ અગ્નિ કે
 વિના ઉત્પન્ન નહી હોતા । ઇસ તરહ ધૂમ ઓર વહિ કી તર્કસે વ્યાપ્તિ
 ગ્રહણ કર જવ વહ કિસી પર્વતાદિક ધર્મી મે ધૂમરૂપ સાધન કો દેખતા
 હૈ તો ઉસે શીઘ્ર હી પ્રાક્ તર્કાનુભૂત ધૂમ ઓર વહિ કી વ્યાપ્તિ કા સ્મરણ
 હો આતા હૈ । ઇસકે વલ પર વહ ઉસ ધૂમરૂપ સાધન સે યહ જ્ઞાન લેતા

અનુમાન સ્વાર્થાનુમાન અને પરાર્થાનુમાનના લેહથી જે પ્રકારનુ દર્શાવ્યુ છે
 અહીં પ્રકૃતિમા સ્વાર્થાનુમાન અહણુ કરાયુ છે સ્વાર્થાનુમાનનુ પ્રતિપાદક જે
 પચાવયવરૂપ વચન છે તે હેતુ છે આ હેતુ પરાર્થાનુમાન છે ન્યા પરોપદેશની
 અપેક્ષા વિનાજ મનુષ્યને સ્વય નિશ્ચિત કરેલ સાધનથી જે સાધનનુ સહાયક
 પૂર્વકાલીન તર્કાનુભૂત વ્યાપ્તિનુ સ્મરણ થયુ છે તે વડે સાધ્યનુ જ્ઞાન થાય છે
 તે સ્વાર્થાનુમાન છે જેમ કે-રસોડા આદિમા વાર વાર ધુમાડો તથા અગ્નિને
 જોવાથી અનુમાન કરનાર પુરુષને એ મજબૂત અનુમાન થાય છે કે ન્યા ન્યા
 ધુમાડો હોય ત્યા ત્યા અગ્નિ હોય જ, કારણ કે જેટલો ધુમાડો થાય છે તે
 અગ્નિ વિના ઉત્પન્ન થતો નથી આ રીતે ધુમાડો અને અગ્નિની તર્કથી વ્યાપ્તિ
 અહણુ કરીને ન્યારે તે કેમ પર્વતાદિક ધર્મીમા ધુમાડારૂપ સાધનને જોવે છે
 તો તેને તરતજ આગળ તર્કાનુભૂત ધુમાડા તથા અગ્નિની વ્યાપ્તિનુ સ્મરણ થઈ
 આવે છે તેના આધારે તે ધુમાડારૂપ સાધન વડે એ જાણી લે છે કે આ

પરોપદેશમપેક્ષ્ય સાધ્યજ્ઞાન, તત્ પરાર્થાનુમાનમ્ । યથા-પર્વતો વહ્નિમાન્, (પ્રતિજ્ઞા ૧), ધૂમાત્, (હેતુઃ ૨), યથા મહાનસમ્ (દૃષ્ટાન્તઃ ૩), તથા ચાયમ્, (ઉપનયઃ ૪), તસ્માત્ તથા (નિગમનમ્ ૫), ઇત્યાદિ પશ્ચાવયવવાક્યં યત્ર પ્રયુજ્યતે, તત્ પરાર્થાનુમાનમ્ ।

હૈ કિ હિસ પર્વત મે અગ્નિ હૈ । યદિ અગ્નિ નહીં હોતી તો યહ અવિચ્છિન્ન શાસ્ત્રાવાલા ધૂમ જો દિશ્વ રહા હૈ વહ નહીં દિશ્વતા । સ્વાર્થાનુમાન યદ્યપિ જ્ઞાનરૂપ હોતા હૈ પરન્તુ સમઘ્નાને કે લિયે હી વહા વહ “પર્વતોઽય વહ્નિમાન્ ધૂમવત્ત્વાત્” હિસ રૂપ સે શબ્દોં દ્વારા ઉલ્લિખિત કિયા ગયા હૈ, જૈસે પ્રત્યક્ષ કા “અય ઘટઃ” ઇસ શબ્દ દ્વારા ઉલ્લેખ કિયા જાતા હૈ । જિસ અનુમાન મેં પર કે ઉપદેશ કી અપેક્ષા કરકે સાધન સે સાધ્ય કા જ્ઞાન હોતા હૈ વહ પરાર્થાનુમાન હૈ । જૈસે કિસી સે એસા જવ કહા જાતા હૈ કિ દેશ્વો માઈ ! ઇસ પર્વત મે અગ્નિ હૈ, ક્યોં કિ ધૂમ ઊઠ રહા હૈ, જૈસે-રસોઈઘર મે ધૂમ ઊઠતા રહતા હૈ તો વહા અગ્નિ રહતી હૈ, ઊસી પ્રકાર પર્વત મે ણી એસા હી હો રહા હૈ, ઇસલિયે યહાં ણી અગ્નિ હૈ । યહ પશ્ચાવયવ વાક્ય હૈ, ક્યોં કિ પર્વત મે અગ્નિ કા સદ્ભાવ સ્થાપિત કિયા જા રહા હૈ અતઃ વહ પક્ષ હૈ, અગ્નિ સાધ્ય હૈ, પક્ષ ઓર હેતુ કા સમુદાયરૂપ કથન પ્રતિજ્ઞા કહલાની હૈ । ઇસલિયે ‘પર્વત અગ્નિવાલા હૈ’ એસા કથન પ્રતિજ્ઞા હુઈ ૧ । ‘ધૂમવત્ત્વાત્’ યહ પચમ્યન્ત સાધન હુઆ ૨ । મહાનસ દૃષ્ટાન્ત ૩ । પક્ષમે હેતુ કા ઉપસહાર

પર્વતમા અગ્નિ છે જે અગ્નિ ન હોત તો આ અવિચ્છિન્ન શાસ્ત્રાવાળો જે ધુમાડો દેખાય છે તે દેખાત નહીં આ સ્વાર્થાનુમાન જે જ્ઞાનરૂપ હોય છે પણ સમભવવાને માટે જ અહીં તેને “પર્વતોઽય વહ્નિમાન્ ધૂમવત્ત્વાત્” આ રીતે શબ્દ દ્વારા ઉલ્લેખ કરાયો છે જેવી રીતે પ્રત્યક્ષને “અય ઘટ” આ શબ્દ દ્વારા ઉલ્લેખ કરવામા આવે છે જે અનુમાનમા પરોપદેશની અપેક્ષા કરીને સાધનથી સાધ્યનુ જ્ઞાન થાય છે તે પરાર્થાનુમાન છે જેમકે બ્યારે કોઈ એવુ કહે કે બુઓ ભાઈ! આ પર્વતમા અગ્નિ છે, ઠારણુ કે ધુમાડો નીકળી રહ્યો છે, જેમ-રસોડામાથી ધુમાડો નીકળતો હોય તો ત્યા અગ્નિ રહેલ હોય છે, એજ પ્રમાણે પર્વતમા પણ એવુ થઈ ગહ્યુ છે તેથી ત્યા પણ અગ્નિ છે આ પશ્ચાવયવ વાક્ય છે, ઠારણુ કે પર્વતમા અગ્નિના સદ્ભાવ સ્થાપિત કરાઈ રહ્યો છે તેથી તે પક્ષ છે ૧ અગ્નિ સાધ્ય છે ૨ પક્ષ અને હેતુના અમુદાયરૂપ કથનને પ્રતિજ્ઞા ઠહેવાય છે ૧ ધૂમવત્ત્વાત્ એ પચમ્યન્ત સાધન થયુ ૨

અથવા-અનુમાન-જ્ઞાપક, હેતુ-સારક-ઉચ્ચાત્કમ, દૃષ્ટાન્ત:-દૃષ્ટોડન્તો
-નિર્ણયો વસ્તુતત્ત્વમ્ય યત્ર સ દૃષ્ટાન્ત.-ઉચ્ચાત્કમ, તેપામિતરેતસ્યોગદ્વન્દ્ઃ, અનુ
માનહેતુદૃષ્ટાન્તાસૈ. સાધ્યમા, અનુમાનહેતુદૃષ્ટાન્તૈ' સાધ્યમર્થ મા પ્રતિ યા સંત્યર્થઃ ।
તથા-વયોવિપાકપિણિમા-ચયઃ=કાલક્રતા દેહાવસ્થા, તસ્ય વિપાકેન=પ્રસ્થેણ,
પરિણામઃ=પુષ્ટતા યસ્યા સા તથા । અપિ ન હિતનિ.ત્રેયમપચ્ચતી-હિતમ્-અમ્યુત્તયઃ,
તત્કારણ વા, નિ.ત્રેયમ-મોનઃ, તત્કારણ વા, હિતનિ.ત્રેયમાભ્યા પલ્લવતી=મપચ,
અમ્યુદયમોક્ષતાધિકા યા વુદ્ધિઃ મા પારિણામિકી નામ-નામ્ના પારિણામિ
કીત્યર્થઃ ॥ ૧ ॥

શિષ્યાનુગ્રહાર્થમુદાહરણેઃ પારિણામિકયાઃ સ્વરૂપ દર્શયિતુમાદ—

મૂલમ્-અમ્ ૧, સિદ્ધિ ૨, કુમારે ૩, દેવી ૪, ઉદિઓદણ હવડ રાયા ૫ ।
સાહૂ ય નદિસેણે ૬, ધણદત્તે ૭, સાવગ ૮, અમચ્ચે ૯ ॥ ૨ ॥

ઉપનય ૪ ઓર સાધ્ય કા ઉપસહાર નિગમન હુઆ ૫ । ઇસ તરહ શ્રોતા
કો પચાવયવરૂપ વાચ્ય દ્વારા જો જ્ઞાન કરાયા જાતા હૈ વહ પરા અનુમાન
કહલાતા હૈ ।

અથવા-જો જ્ઞાપક હોતા હૈ વહ અનુમાન ૧, એવ જો કારક હોતા હૈ
વહ હેતુ ૨ । વસ્તુતત્ત્વ કા નિર્ણય જિસમે દેવો જાતા હૈ વહ દૃષ્ટાન્ત
હૈ ૩ । ગાથા મેં “ અનુમાન-હેતુ-દૃષ્ટાન્ત ” યહા ઇતરેતર દ્વન્દ્ઃ સમાસ
હુઆ હૈ । કાલક્રત દેહાવસ્થા કા નામ વચ હૈ । ઇસ તરહ અનુમાન, હેતુ,
દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સાધ્ય અર્થકો સિદ્ધ કરને ચાલી, વચ કે વિપાક કે અનુરૂપ
પરિણમનવાળી, એવ હિત ઓર કલ્યાણરૂપ ફલવાળી વુદ્ધિ કા નામ
પારિણામિકી વુદ્ધિ હૈ ૪ ।

મહાનસ દૃષ્ટાત ૩ પક્ષમા હેતુનો ઉપસહાર ૪ અને સાધ્યનો ઉપસહાર
નિગમન થયો ૫ આ રીતે શ્રોતાને પચાવયવરૂપ વાક્ય દ્વારા જે જ્ઞાન કરા
વાય છે તે પરાર્થાનુમાન કહેવાય છે અથવા (૧) જે જ્ઞાપક હોય છે તે અનુ
માન અને (૨) જે કારણ હોય છે તે હેતુ છે (૩) વસ્તુતત્ત્વનો નિર્ણય જેમા
જોવામા આવે છે તે દૃષ્ટાત છે ગાથામા “ અનુમાન-હેતુ-દૃષ્ટાન્ત ” અહીં ઇતરેતર
દ્વન્દ્ઃ સમાસ થયો છે કાલક્રત દેહાવસ્થાનુ નામ વચ છે આ રીતે અનુમાન, હેતુ,
દૃષ્ટાત દ્વારા સાધ્ય અર્થને સિદ્ધ કરનારી, વચના વિપાક પ્રમાણે પચિણામનવાળી,
અને હિત અને કલ્યાણરૂપ ફળવાળી મતિનુ નામ પરિણામિકી મતિ છે ॥૪॥

खमए१०, अमच्चपुत्ते ११, चाणक्ये १२, चेष थूलभदे १३ य ।
नासिकसुदरिन्दे १४, वडरे १५, परिणामिया बुद्धी ॥३॥
चलणाऽऽहण १६, आमडे १७, मणीय १८, सप्ये १९,
य खग्गि २० थूभिदे २१ ।

परिणामियबुद्धीए, एवमाई उदाहरणा ॥ ४ ॥

से त्त अस्सुयनिस्सिय ॥ सू० २६ ॥

छाया—अभयः १, श्रेष्ठिकुमारी २-३, देवी ४, उदितोदयो भवति राजा ५ ।

साधुश्च नन्दिपेणः ६, धनदत्तः ७, श्रावकोऽमात्यः ८-९ ॥ २ ॥

क्षपकोऽमात्यपुत्रः-१०-११, चाणक्यश्चैव १२, स्थूलभद्रश्च १३ ।

नासिक्यसुन्दरीनन्दः १४, वज्रः १५ पारिणामिकी बुद्धिः ॥ ३ ॥

चलनाह १६, आमडे-कृत्रिम आमलकः १७, मणिश्च १८, सर्पश्च १९, खड्गो २०

स्तुपेन्द्रः २१ । पारिणामिकया बुद्ध्या एवमादीन्युदाहरणानि ॥ ४ ॥

तदेतदश्रुतनिश्चितम् ॥ सू० २६ ॥

टीका—'अभय' इत्यादि । आसा तिस्रणा गाथानामर्थ एरुपि शक्तिरूथान-
केभ्योऽगमन्तव्यः । तानि च कथानमानि टीकान्ते द्रष्टव्यानि ॥ २-३-४ ॥

तदेतदश्रुतनिश्चित मतिज्ञानं वर्णितम् ॥

अथ श्रुतनिश्चितमतिज्ञानमाह—

मूलम्—से किं त सुयनिस्सिय ? । सुयनिस्सिय चउट्ठिवह
पणत्त । त जहा—उग्गहे १, ईहाश, अवाओ ३, धारणा ४ ॥ सू० २७ ॥

इसके दृष्टान्त इस प्रकार हैं—'अभय' इत्यादि गाथात्रयम् । इन
तीन गाथाओं के दृष्टीस उदाहरणों का खुलासा टीकाके अन्तमे है ॥४॥

इस प्रकार यहा तक अश्रुतनिश्चित मतिज्ञानका वर्णन किया
गया है ॥ सू० २६ ॥

अब सूत्रकार श्रुतनिश्चित मतिज्ञानका वर्णन करते हे—'से किं त
सुयनिस्सिय ?' इत्यादि ।

तेना दृष्टान्त आ प्रमाणे हे—'अभयं' इत्यादि त्रय गाथा ये त्रय गाथा
आना येकवीस उदाहरणानु अपधीकरणु टीकाने अते हे ॥४॥ आ गीते अडी
सुधी अश्रुतनिश्चित मतिज्ञाननु वर्णन करुं छे ॥ सू २६ ॥

इसे सूत्रकार श्रुतनिश्चित मतिज्ञाननु वर्णन करे छे—'से किं तसुयनि
स्सिय ?' इत्यादि ।

छाया—अथ किं तत् श्रुतनिश्चित ? । श्रुतनिश्चित चतुर्विधं प्रकृतम् । तद् यथा—अवग्रहः १, ईडा २, अवाय ३, धारणा ४ ॥ छ० २६ ॥

टीका—‘से किं त’ इत्यादि । शिष्यः पृच्छति—अथ किं तत् श्रुतनिश्चितमिति । पूर्वनिर्दिष्टस्य श्रुतनिश्चितस्य मतिज्ञानस्य किं स्वल्पमित्यर्थः । उत्तरमाह—‘सुयनिस्सिय’ इत्यादि । श्रुतनिश्चितं मतिज्ञानं चतुर्विधं प्रकृतम् । तद् यथा—अवग्रहः १, ईडा २, अवाय ३, धारणा ४ । तत्रावग्रहणमावग्रहः=सामान्यार्थपरिच्छेदः । यद् विज्ञान सामान्यस्य शब्दरूपरसादिभिरनिर्देश्यम्वत्परन्पनाग्रहितस्य नामनायादि स्वल्पनारहितस्य च यस्मिन् परिच्छेदकमेव सामायिक, सोऽवग्रहः, अव्यक्त ज्ञानमिति

शिष्य पृच्छता है—हे भदन्त ! श्रुतनिश्चित मतिज्ञानका क्या स्वरूप है ? उत्तर—श्रुतनिश्चित मतिज्ञान चार प्रकारका है, वे उसके चार प्रकार के हैं—अवग्रह १, ईडा २, अवाय ३, और धारणा ४ । वस्तुका सामान्य रूपसे ज्ञान होना इन्द्रका नाम अवग्रह है । अवग्रह ज्ञानसे ऐसी वस्तु गृहीत होती है कि जिसमें जब तक वह अवग्रहके विषय भूतवाली रहती है तब तक नाम जाति आदिकी कल्पना नहीं होती है । अवग्रह का काल एक समय मात्र है । तात्पर्य—नाम जाति आदिकी विशेष कल्पनासे रहित सामान्य मात्र का ज्ञान अवग्रह है । जैसे गाढ अघारमें कुछ छू जाने पर ‘यह कुछ है’ ऐसा ज्ञान । इस ज्ञानमें यह नहीं मालूम होता कि किस चीजका स्पर्श है ? इस लिये इस अव्यक्त ज्ञानका नाम अवग्रह है । यही बात “सामान्यस्य शब्दरूपरसादिभिरनिर्देश्यस्य” इत्यादि पक्तियों द्वारा स्पष्ट की गई है । अवग्रह ज्ञानमें

शिष्य पृच्छे छे—हे भदन्त ! श्रुत निश्चित मतिज्ञानतु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—श्रुतनिश्चित मतिज्ञान नीचे प्रमाणे चार प्रकारतु छे—(१) अवग्रह (२) ईडा (३) अवाय अने (४) धारणा । वस्तुतु सामान्यरूपधी ज्ञान थतु तेषु नाम अवग्रह छे अवग्रह ज्ञानथी ओवी वस्तु अडधु थाय छे के जेमा न्या सुधी ते अवग्रहना विषयभूत वाणी रह्ये छे त्या सुधी नाम जाति आदिनी उद्वपना थनी नथी अवग्रहनेो डाण मात्र ओक समय जे छे तात्पर्य—नाम जाति आदिनी विशेष उद्वपनाथी रहित सामान्य मात्रतु ज्ञान अवग्रह छे जेम के गाढ अधाराभा केध वस्तुनेो स्पर्श थध जता “आ क छे छे” ओतु ज्ञान आ ज्ञानभा ओ अघर पडती नथी के कछ चीजनेो स्पर्श छे ? तेथी आ अव्यक्त ज्ञानतु नाम अवग्रह छे ओज वात “सामान्यस्य शब्दरूपरसादिभिरनिर्देश्यस्य”

यावत् । ईहनम्-वस्तुनिर्णयार्थं चेष्टा ईहा । नामजात्यादि विशेषरूपनारहित-
सामान्यज्ञानोत्तर विशेषनिश्चयार्थं विचारणा । यथा-स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये
ज्ञाते सति, तदनु क्रीदशोऽय स्पर्शः ? कस्याय स्पर्शः ? किमयं कमलनालस्पर्शः,
उताहो भुजङ्गमस्पर्शः ? इति गाढान्धकारे चक्षुष्मतोऽपि विचारणा प्रवर्तते ।

ननु सशयस्य ईहायाश्च क प्रतिविशेषः ? किमयं स्थाणुः आहोश्चित् पुरुषः ?
तथा किमयं कमलनालस्पर्शः, उत भुजङ्गमस्पर्शः, इत्यनिश्चयात्मकस्य सशयरु-
पत्वादिति चेत्,

वस्तु, रूप रस आदिके द्वारा अनिर्देश्य होती है, कारण कि यह ज्ञान
अव्यक्त होता है ? ।

वस्तुके निर्णयके लिये जो चेष्टा होती है उसका नाम ईहा है ।
अवग्रहके द्वारा नाम जाति आदि विशेष कल्पनासे रहित जो सामान्य
मात्र ग्रहण किया गया है उसके उत्तरकालमें उसी सामान्यको विशेष-
रूपसे निश्चित करनेके लिये जो विचारणा होती है वह ईहा ज्ञान है ।
जैसे स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा सामान्य रूपसे स्पर्श गृहीत होने पर ऐसी
जो विचारणा होती है ' यह स्पर्श कैसा है ? किसका है ? क्या कमल-
नालका है ? अथवा सर्पका है ' इस प्रकारकी विचारणा गाढ अधकारमें
जो मृञ्जते भी मनुष्य होते हैं उन्हें भी हो जाया करती है ।

शङ्का—सशयमें और ईहा ज्ञानमें क्या भेद है ? ' यह स्थाणु है ?
या पुरुष है ' इस प्रकारका जैसे सशय होता है उसी प्रकारका ' क्या
यह कमलनालका स्पर्श है अथवा सर्पका स्पर्श है ' ऐसा अनिश्चयात्मक

ये पक्षित्तो द्वारा स्पष्ट करेले छे अवग्रह ज्ञानमा वस्तु, रूप, रस आदि
द्वारा अनिर्देश्य होय छे, कारण के आ ज्ञान अव्यक्त होय छे (१)

वस्तुना निर्णयने माटे ले चेष्टा थाय छे तेतु नाम ईहा छे अवग्रह द्वारा
नाम, जाति आदि विशेष उचनार्थी रहित ले सामान्य मात्र ग्रहण करायेल
छे तेना उत्तर क्षणमा जेन सामान्यने विशेषरूपे निश्चित करवाने माटे ले विचा
रणा थाय छे ते ईहाज्ञान छे जेभ स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा सामान्यरूपार्थी स्पर्श-
गृहीत थता जेवी ले विचारणा थाय छे के " आ स्पर्श केवो छे ? कानो छे ?
शु कभणनाणने छे ? अथवा सर्पने छे ? " आ प्रकारनी विचारणा गाढ
अधकारमा ले सूत्रता मनुष्यो होय छे तेभने पण थया करे छे

श ७—सशय तथा ईहा ज्ञानमा शो भेद छे ? " आ स्थाणु छे के पुरुष
छे " आ प्रकारने जेभ सशय थाय छे जेन प्रमाणे " शु आ कभणनाणने

ઉચ્ચતે — યત્કમતિપત્તિપત્યાગાનાત્મકઃ સંશયઃ । ઈદા તુ મતિજ્ઞાનભેદઃ ।
 ઉદમન તત્ત્વમ્-અગ્રદાદુત્તરજ્ઞાનમાયાન પૂર્વં તદ્ભૂતાર્થવિશેષોગદાનામિમુવોડમ
 દ્ભૂતાર્થવિશેષપરિત્યાગામિમુવમ્ વસ્તુર્મવિચારણાસ્વો મતિવિશેષ ઈદા । યથા
 પૂર્વં સામાન્યતઃ ગચ્છે સુતે સતિ, તન્નુ “માયોડત ય દે મધુસ્તાદયઃ શુદ્ધાદિ
 શદ્ધર્મા વિચિન્તે, ન તુ કર્મશનિદુરનાદયો ધનુઃગદ્ધર્માઃ” ઇતિ ત્રિચારણાસ્વો
 મતિવિશેષઃ । યથા યા-સ્વવિષયે ઈદા—ઋધિદસ્તંગતે મતિરિ વને સ્યાણુ
 ઈદા જ્ઞાન ધી હોતા હૈ તો ફિર હસ અનિશ્ચયાત્મક ઈદા જ્ઞાનમેં મગ્ય
 સ્વપતા આનેસે ઈદા જ્ઞાન મશયસ્વ હી હો ગયા ।

ઉત્તર—એસા કહના ઠીક નહીં હૈ, કારણ કિ સશયજ્ઞાનમેં વસ્તુ
 કી પ્રતિપત્તિ નહીં હોતી હૈ ઇસ લિયે વહ અજ્ઞાનસ્વરૂપ માના ગયા હૈ,
 ઈદા એમી નહીં હૈ । કારણ વહ મતિજ્ઞાનકા ભેદ હૈ । તાત્પર્ય ઇસકા ઇસ
 પ્રકાર હૈ, અવગ્રહજ્ઞાન કે વાદ સશય હોતા હૈ । ઇસ સશયકો દૂર કરને
 કે લિયે જો પ્રયત્ન હોતા હૈ વહ ઈદા હૈ । જય ગાઢ અધકારમે કિસી વસ્તુ
 કા સ્પર્શ હોના હૈ તત્ત્વ એસા ત્રિચાર હોતા હૈ કિ-‘વહ સ્પર્શ કમલનાલ
 કા હૈ યા સાપકા હૈ?’ વહ વિચાર હી સશય હૈ । ઇસ સશયકો દૂર
 કરનેકે લિયે જો ઉત્તરકાલમેં એસા વિચાર આતા હૈ કિ ‘વહ સ્પર્શ
 કમલનાલકા હોના ચાહિયે, કારણ કિ યદિ સાપકા સ્પર્શ હોતા તો વહ
 એસી સ્થિતિમે ફુફકાર’ કિયે વિના નહીં રહતા । વસ યહી વિચારણા ઈદા

સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે” એવુ અનિશ્ચયાત્મક ઈદાજ્ઞાન પણ હોય છે તે
 પછી આ અનિશ્ચયાત્મક ઈદાજ્ઞાનમા સશયરૂપતા આવવાથી આ ઈદાજ્ઞાન સશ
 યરૂપ થઈ ગયું

ઉત્તર—એમ કહેવુ તે ઉચિત નથી, કારણ કે સશયજ્ઞાનમા વસ્તુની
 અમળ્ય પડતી નથી તેથી તે અજ્ઞાનસ્વરૂપ મનાયુ છે, ઈદા એવી નથી કારણ
 કે તે મતિજ્ઞાનનો ભેદ છે તેનુ તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—અવગ્રહજ્ઞાન પછી સશય
 થાય છે એ સશયને દૂર કરવાને માટે જે પ્રયત્ન થાય છે તે ઈદા છે જ્યારે
 ગાઢ અધકારમા કોઈ વસ્તુનો સ્પર્શ થાય છે ત્યારે એવો વિચાર થાય છે કે—
 “આ સ્પર્શ કમળનાળનો છે કે સાપનો છે” આ વિચાર જ સશય છે આ
 સશયને દૂર કરવાને ઉત્તરકાળમા જે એવો વિચાર આવે છે કે “આ સ્પર્શ
 કમળનાળનો હોવો જોઈએ, કારણ કે જો સાપનો સ્પર્શ હોત તો તે એ પરિ
 સ્થિતિમા કુશકો કર્યા વિના ન રહેત ” બસ એજ વિચરણાને ઈદા કહે છે

दृष्टवान्, ततस्तस्य विमर्शः समुत्पन्नः—‘ किमयं स्थाणुः पुरुषो वा ’ इति । जय
विमर्शः संशयरूपत्वाद्ज्ञानम् । ततोऽसौ तत्र स्थाणुं प्रल्यारोहणं पक्षिणां नित्यन
च दृष्ट्वा विचारयति—‘ स्थाणुरयं स भवति, प्रल्लयुत्सर्षणकाकादि निलयनोपलम्भात् ।

हैं । इसी बातको टीकाकारने “अवग्रहादुत्तरकालम् अवायात् पूर्वम्”
इत्यादि पक्तियों द्वारा स्पष्ट किया है । इनके द्वारा ये बतला रहे हैं कि
अवग्रह-ज्ञानसे उत्तरकालमें और अवायसे पहिले सद्भूत अर्थ के उपा-
दानके सन्मुख झुका हुआ और असद्भूत अर्थ के परित्यागकी ओर
रहा हुआ यह भतिज्ञानका विशेषरूप ईहा-ज्ञान होता है । जैसे-किसी
व्यक्तिने पहिले सामान्यरूप से शब्द सुना, सुनने पर ऐसा ख्याल होता
है कि उस शब्दमें प्रायः मधुरता आदि शब्दधर्म विद्यमान हैं, कर्कशता
निष्ठुरता आदि धनुष-शब्दके धर्म विद्यमान नहीं हैं, इसलिये यह शब्द
का शब्द होना चाहिये । अथवा एक व्यक्तिको वनमें मृग्यके अस्त हो जाने
पर जब स्थाणुके देखनेसे ऐसा ख्याल होता है कि ‘ क्या स्थाणु है या पुरुष
है ’ । इस ख्यालके होने पर न स्थाणुका निश्चय होता है और न पुरुषका
ही, बस यही संशय है, परन्तु जब उसके देखनेमें यह आता है कि यहा
पर तो बल्लीका आरोहण एव पक्षियोंके घोसले हैं तो फिर विचारने
लगता है कि यह स्थाणु होना चाहिये, क्योंकि इस पर बल्लियों का

ये वातने टीकाकारने “अवग्रहादुत्तरकालम् अवायात् पूर्वम्” इत्यादि पक्तियों
द्वारा स्पष्ट करेन छे तेमना द्वारा ते गतावे छे डे अवग्रह ज्ञानना उत्तरकालमा
अने ‘अवाय’ना पड़ेला सद्भूत अर्थना उपादाननी तरङ्ग बुकेल, अने असद्
भूत अर्थना परित्यागनी तरङ्ग रडेल आ भतिज्ञाननु विशेषरूप धिडाज्ञान डोय छे
जेम डे-डेाँ व्यक्तिये पड़ेना सामान्यरूपे गण्ड मालज्ये, साक्षयता येपु
लागे छे डे आ शब्दमा सामान्यरीते मधुरता आदि शब्दधर्म विद्यमान छे,
कर्कशता निष्ठुरता आदि धनुष-शब्दना धर्म विद्यमान नथी, तेथी ते
शब्दना अनाज डोवे जेथे अथवा जेक व्यक्तिये वनमा सूयस्त यर्
जवाथी न्नारे स्थाणुने जेवाथी येपु लागे छे डे “ गुं आ स्थाणु छे डे पुरुष
छे ” आ विचार आवता स्थाणुने पणु निर्णय थतो नथी अने पुरुषने पणु
निर्णय थतो नथी अम जेज स गय छे, पणु न्नारे तेना जेवामा जे आवे
छे डे अडीया तो लताज्ये यडेवी छे अने पक्षीज्येना भागा पणु छे त्यारे ते
विचारवा लागे छे डे आ स्थाणु डोवु जेथे छे करणु डे तेना उपर लताज्ये

तथा संभ्रमस्य पर्यालोचनं यमेति-अस्ताचरान्तरिते गत्रितरि ईपत्तमग्नि प्रमरति
 महारण्येऽस्मिन् स्थाणुरगमगाभ्यते न तु पुरुषः, शिःःकण्डयनग्रीवाचलनादेस्तद्व्य-
 रस्थापकहेतोरभावाद्, ईदृशे च प्रदेशेऽस्यां वैश्याया प्रायस्तम्या सभयान् । तस्मात्
 स्थाणुनाऽत्र सद्भूतेन भाव्य न तु पुरुषेण । तदुक्तम् ।

अरण्यमेतन् सविताऽस्तमागतो,

न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा,

भाव्य स्मराराति ममाननाम्ना ॥ १ ॥

व्याख्या—पूर्वाधं स्पष्टम् । तत्=नस्मात्, एतेन=दृश्यमानमनुना, प्रायः स्म-
 रारातिममाननाम्ना-स्मरम्य=कामम्य, अरातिः=शत्रुः शिःस्त्वस्य समान नाम्ना,
 समान नाम 'स्थाणु'-रिति तेन नाम्ना भाव्यम् । तत्र हेतु प्रदर्शयन् विशेषणमाह-
 खगादिभाजेति । पक्ष्यादिनिवासयुक्तेनेत्यर्थः ॥ १ ॥

चढ़ना और कौण आदि पक्षियों के गोसले स्पष्ट दीग्न रहे हैं । यहा जब
 सूर्य अस्त हो रहा है और थोड़ा २ अघकार छा रहा है तो इस महारण्य
 मे यह स्थाणु की ही सभावना है, पुरुष की नहीं, कारण कि पुरुष के
 सद्भावख्यापक जो शिरका खुजाना हाथ ग्रीवा आदि का चलाना आदि
 धर्म है वे नहीं हो रहे हैं, अतः ऐसे प्रदेश में इस समय प्रायः मनुष्य
 के सद्भावना की सभावना नहीं होती है, इसलिये यह स्थाणु ही होना
 चाहिये, पुरुष नहीं । कहा भी है—

“अरण्यमेतन् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्य स्मरारातिसमाननाम्ना ॥ १ ॥

अडेली छे, अने कागडा वगेरे पक्षीज्जाना भाणा स्पष्ट देखाय छे अही न्यारे
 सूर्य अस्त पाभी रह्यो छे अने आछे आछे अघकार छवाध रह्यो छे त्यारे
 आ भडारण्यमा आ स्थाणुनी न सभावना छे, पुरुषनी नही, कारण के पुरु-
 पनु अस्तित्व इशावनार भाथु अ नवाणवु, हाथ डोठ आदिनु हलनयलन
 आदि धर्म छे ते नवाणता नथी, तेथी आवा प्रदेशमा आ सभये सामान्य रीते
 मनुष्यना अस्तित्वनी सभावना नथी, तेथी अे स्थाणु न डोवु न्नेधये, पुरुष
 नही कहु पणु छे—

“अरण्यमेतन् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्य स्मरारातिसमाननाम्ना ॥ १ ॥

एतादृशं ज्ञानम् 'ईहा' इत्युच्यते, निश्चयाभिमुखत्वेन संशयादुत्तीर्णत्वात्, सर्वथा निश्चयेऽवायप्रसङ्गेन निश्चयादगोवर्तित्याचेति सशयेद्वयोः प्रतिविशेषः ।

यथा वा—'अय मनुष्यः' इत्यप्रगृहीते मति, तत्र सद्भूतविशेषार्थपर्यालोचन भवति, यथा तत्र—'किमय दाक्षिणात्यः? किं वाऽयमौदीन्यः?' इति सशयस्य निराकरणार्थं भवति । अय दाक्षिणात्यो भवितुमर्हति, तद्देशीयवेपादिसमन्वितत्वात्, इति २।

अर्थात्—यह निर्जन अरण्य है, सूर्य भी अस्त हो गया है, इसलिये इस समय यहां मनुष्य की सभावना नहीं है, अतः घोमले और लताओं से युक्त यह स्थाणु ही होना चाहिये ॥ १ ॥

इस श्लोक में जो 'स्मरारातिसमाननाम्ना' यह पद है, उसका अर्थ है—स्मराराति=महादेव के नाम सदृश नामचाला अर्थात् स्थाणु ।

इस प्रकार जो वस्तु के निर्णय करने की ओर झुकता हुआ ज्ञान है उसी का नाम ईहा है । मशय में और ईहा में इम तरह भेद हो जाता है—सशय में निर्णय की तरफ झुकाव नहीं है तब कि ईहा में है । ईहा में सर्वथा निश्चय नहीं है । ऐसा निश्चय तो अवायज्ञान में है, इसीलिये ईहा को अवायज्ञान से पहिले माना है । इसी तरह जय अवग्रह-ज्ञान का विषय 'यह मनुष्य है' ऐसा होता है तब वहा पर भी सद्भूत विशेष अर्थ की पर्यालोचना होती है जैसे यह मनुष्य दण्डि का है अथवा उत्तर का है । जय इस प्रकार का अवग्रह के पश्चात् सशयज्ञान होता है तब उसके निराकरण के लिये जो ऐसा ज्ञान होता है कि—'यह

अच्छे के—आ निर्जन वन है, सूर्य पण्य अस्त पाये छे, तेथी आ मभये अडी मनुष्यनी म लावना नथी, तेथी भाणाओ अने लताओथी युक्त स्थाणु व डोडु ओधये आ श्लोकभा ने "स्मराराति समाननाम्ना" अये पद छे, तेना अर्थ आ प्रभाणे छे—स्मराराति=महादेवना नाम समान नामवाणु आणु आ रीते वस्तुना निर्णय करवानी तद्द ढणतु ने ज्ञान छे तेतु नाम ईहा छे म शयभा अने धडाभा आ रीते तद्भावत पडे छे—सशयभा निर्णयनी तरफ झुकावापणु नवी त्त्यारे ईहा भा छे धडाभा तदन निश्चय नवी अयेवा निश्चय तो अवायज्ञान भा व छे तेथी ईहा ने अवायज्ञान नी आगण मानेव छे अयेव रीते त्त्यारे अवग्रह ज्ञानने विषय "आ मनुष्य छे" अयेवा डोड छे त्त्यारे तेभा पण्य सद्भूत विशेष अर्थनी पर्यालोचना थाय छे, जेभडे "आ मनुष्य दक्षिणुने छे के उत्तरने छे" त्त्यारे आ प्रकाणा अवग्रह पछी मशयज्ञान थाय छे त्त्यारे तेना निवारणने भाटे ने अयेव ज्ञान थाय छे के—"अे दक्षिणु देशने डोडो ओधये, उरणु के दक्षिणुदेशभा नो ४१

तथा सभरस्य पर्यागतान् परोति-अन्तापगन्धरितं मग्निरि ईपत्तमग्नि प्रमरति
महारण्येऽस्मिन् स्थाणुगगणनाग्ने न तु पुरुषः, शिरःपण्डित्यनप्रीनाचलनादेस्तद्व्य-
वस्थापकहेतोरभावाद्, ईदृशे च प्रदेशेऽर्घ्या वेदाया मायन्तम्या सभरान् । तस्माद्
स्थाणुनाऽत्र सद्भूतेन भाव्य न तु पुरुषेण । तदुक्तम् ।

अरण्यमेतत् सविताऽस्तमागतो,

न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा,

भाव्य स्मराराति ममाननाम्ना ॥ १ ॥

व्याख्या—पूर्वाधे स्पष्टम् । तत्=तस्मात्, ण्तेन=दृश्यमानस्तुना, मायः स्म-
रारातिममाननाम्ना-स्मरस्य=कामस्य, अरातिः=शत्रु' शिरस्तस्य ममान नाम्ना,
समान नाम 'स्थाणु'-रिति तेन नाम्ना भाव्यम् । तत्र हेतु प्रदर्शयन् विशेषणमाह-
खगादिभाजेति । पक्ष्यान्निवासपृक्तेनेत्यर्थः ॥ १ ॥

चढ़ना और कौण आदि पक्षियों के घोंसले स्पष्ट दीप्त रहे हैं । यहा जब
सूर्य अस्त हो रहा है और थोड़ा २ अघकार छा रहा है तो इस महारण्य
मे यह स्थाणु की ही सभावना है, पुरुष की नहीं, कारण कि पुरुष के
सद्भावख्यापक जो शिरका खुजाना हाथ ग्रीवा आदि का चलाना आदि
धर्म हैं वे नहीं हो रहे हैं, अत ऐसे प्रदेश में इस समय प्रायः मनुष्य
के सद्भावना की सभावना नहीं होती है, इसलिये यह स्थाणु ही होना
चाहिये, पुरुष नहीं । कहा भी है—

“अरण्यमेतत् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्य स्मरारातिसमाननाम्ना” ॥ १ ॥

थडेली हे, अने कागडा वगेर पक्षीज्मिना भाणा स्पष्ट हेभाय छे अही न्यारे
सूर्य अस्त पाभी रह्यो छे अने आछे आछे अघकार छवाछ रह्यो छे त्यारे
आ भडारण्यमा आ स्थाणुनी ज सभावना छे, पुरुषनी नही, कारण के पुरु-
षतु अस्ति व दर्शानार भाथु ज जवाणु, हाथ डाक आदिनु उलनथलन
आदि धर्म छे ते ज्झाता नथी, तेथी आवा प्रदेशमा आ सभये सामान्य दीते
मनुष्यना अस्तित्वनी सभावना नथी, तेथी जे स्थाणु ज डोपु जेधजे, पुरुष
नही कछु पणु छे-

“अरण्यमेतत् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्य स्मरारातिसमाननाम्ना” ॥ १ ॥

एतादृशं ज्ञानम् 'ईहा' इत्युच्यते, निश्चयाभिमुखत्वेन संशयादुत्तीर्णत्वात्, सर्वथा निश्चयेऽवायमसद्वेन निश्चयादधोऽर्तित्याचेति सशयहयोः प्रतिविशेषः ।

यथा वा—'अय मनुष्यः' इत्यमृहीते सति, तत्र सद्वृत्तविशेषार्थपर्यालोचन भवति, यथा तत्र—'किमय दाक्षिणात्यः? किं वाऽयमौदीच्यः?' इति सशयस्य निराकरणार्थं भवति । अय दाक्षिणात्यो भवितुमर्हति, तद्देशीयवेपादिसमन्वितत्वात्, इति २ ।

अर्थात्—यह निर्जन अरण्य है, सूर्य भी अस्त हो गया है, इसलिये इस समय यहा मनुष्य की सभाचना नहीं है, अतः प्रोमले और लताओं से युक्त यह स्थाणु ही होना चाहिये ॥ १ ॥

इस श्लोक में जो 'स्मरारातिसमाननाम्ना' यह पद है, उसका अर्थ है—स्मराराति=महादेव के नाम सदृश नामवाला अर्थात् स्थाणु ।

इस प्रकार जो वस्तु के निर्णय करने की ओर झुकाता हुआ ज्ञान है उसी का नाम ईहा है । सशय में और ईहा में इस तरह भेद हो जाता है—सशय में निर्णय की तरफ झुकाव नहीं है तब कि ईहा में है । ईहा में सर्वथा निश्चय नहीं है । ऐसा निश्चय तो अवायज्ञान में है, इसीलिये ईहा को अवायज्ञान से पहिले माना है । इसी तरह जब अवग्रह-ज्ञान का विषय 'यह मनुष्य है' ऐसा होता है तब वहा पर भी सद्वृत्त विशेष अर्थ की पर्यालोचना होती है जैसे यह मनुष्य दण्डि का है अथवा उत्तर का है । जब इस प्रकार का अवग्रह के पश्चात् सशयज्ञान होता है तब उसके निराकरण के लिये जो ऐसा ज्ञान होता है कि—'यह

ओटके डे—आ निर्जन वन छे, सूर्य पणु अस्त पाऽये छे, तेथी आ मभये अही मनुष्यनी मभावना नथी, तेथी भाणाओ अने लताओथी युक्त स्थाणु व डोवु लेधओ आ श्लोडमा के "स्मराराति समाननाम्ना" ओ पद छे, तेना अर्थ आ प्रभावे डे—स्मराराति=महादेवना नाम समान नामवाणु स्थाणु आ रीते वस्तुना निष्पुंय वरवानी तद्व दणुतु के ज्ञान छे तेतु नाम ईहा छे मशयमा अने धडाभा आ रीते तद्ववत पडे छे—सशयमा निष्पुंयनी तद्व जुकवापणु नथी त्यारे ईहा मा छे वडाभा तदन निश्चय नयी ओवे निश्चय तो अवायज्ञान मा व छे तेथी ईहा ने अवायज्ञान नी आगण मानेव डे ओव रीते न्यारे अवग्रह ज्ञानने विषय "आ मनुष्य डे" ओवे डोय डे त्यारे तेमा पणु सद्वृत्त विशेष अर्थनी पर्यालोचना थाय डे, जेभडे "आ मनुष्य दक्षिणुने डे के उत्तरने डे" न्यारे आ प्रकरना अवग्रह पछी मशयज्ञान थाय छे त्यारे तेना निवारणुने भाटे के ओवु ज्ञान थाय छे डे—"ओ दक्षिणु देशने डोवे लेधओ, कारव डे दक्षिणुदेशमा न ० ४१

तथा सभस्य पर्यागमन एवेति-अस्मात्प्रान्तरिते सप्रितरि दृपत्तमि प्रमरति
महारण्येऽस्मिन् स्थाणुगममाभ्यते न तु पुरुषः, शिग्ःकण्डयनग्रीवान्प्रान्देस्तद्व-
स्थापकहेतोरभावाद्, ईदमे च प्रदेशेऽस्यां त्रेत्राया प्रायस्तम्या सभान् । तस्मात्
स्थाणुनाऽत्र सद्भूतेन भाव्यं न तु पुरुषेण । तदुक्तम् ।

अरण्यमेतन् सविताऽस्तमागतो,

न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा,

भाव्य स्मररागति ममाननाम्ना ॥ १ ॥

व्याख्या—पूर्वाधं स्पष्टम् । तत्=तस्मात्, एतेन=दृश्यमानमस्तुना, प्रायः स्म-
रारातिममाननाम्ना-स्मरस्य=कामस्य, अरातिः=शत्रुः शिखस्तस्य समान नाम्ना,
समान नाम 'स्थाणु'-रिति तेन नाम्ना भाव्यम् । तत्र हेतु प्रदर्शयन् विशेषणमाह-
खगादिभाजेति । पक्ष्यादिनिवासयुक्तेनेत्यर्थः ॥ १ ॥

चढ़ना और कौण आदि पक्षियों के गोसले स्पष्ट टीग्न रहे हैं । यहा जब
सूर्य अस्त हो रहा है और थोडा २ अधकार छा रहा है तो इस महारण्य
मे यह स्थाणु की ही सभावना है, पुरुष की नहीं, कारण कि पुरुष के
सद्भावख्यापक जो शिरका खुजाना हाथ ग्रीवा आदि का चलाना आदि
धर्म हैं वे नहीं हो रहे हैं, अत ऐसे प्रदेश में इस समय प्रायः मनुष्य
के सद्भावना की सभावना नहीं होती है, इसलिये यह स्थाणु ही होना
चाहिये, पुरुष नहीं । कहा भी है—

“अरण्यमेतन् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्य स्मरारातिसमाननाम्ना” ॥ १ ॥

खडेली छे, अने डागडा वगेरे पक्षीअना भाणा स्पष्ट हेजाय छे अही न्यारे
सूर्य अस्त पाभी रह्यो छे अने आछे आछे अधकार छवाछ रह्यो छे त्यारे
आ भडारण्यमा आ स्थाणुनी न सभावना छे, पुरुषनी नही, कारणु के पुरु-
षनु अस्ति व दर्शावनार भाथु अ नवाणु, हाथ डोक आदितु डलनयवन
आदि धर्म छे ते नवाणुता नथी, तेथी आवा प्रदेशमा आ सभये सामान्य रीते
मनुष्यना अस्तिवनी सभावना नथी, तेथी अे स्थाणु न डोपु न्नेछंअे, पुरुष
नही कहु पथु छे-

“अरण्यमेतन् सविताऽस्तमागतो, न चाधुना सभवतीह मानवः ।

प्रायस्तदेतेन खगादिभाजा, भाव्य स्मरारातिसमाननाम्ना” ॥ १ ॥

तथा—अवगमार्थस्य निर्णयरूपोऽवगमोऽत्रायः । अत्राय, निर्णयः, निश्चयः, अवगमः, इति पर्यायाः । यथा—अय शब्दः अयस्यैव, इत्यादिनिश्चयात्मकोऽवगमोऽत्राय इत्युच्यते ३ ।

निर्णीतार्थविशेषस्य धारण धारणा । मा च त्रिधा—अविच्युतिः १, वासना २, स्मृति ३ च । तत्र तदुपयोगान्निव्ययनम्—अविच्युतिः । सा चान्तर्मुहूर्तप्रमाणा ॥१॥ ततस्तथा आदितो यः सम्कारः सा वासना । मा च मंग्ग्रेयममंग्ग्रेय वा कान्

दक्षिण देश का होना चाहिये, कारण दक्षिण देश में जिस प्रकार की वेपभूपा होती है उस प्रकार की वेपभूपा से यह मुमज्जित है ।' तथा अवग्रह से गृहीत अर्थ का निर्णयरूप जो अभ्यग्रमाय है वह अवाय है । जैसे 'यह शब्द शय्य का ही है ।' अथवा 'यह स्थाणु ही है' आदि । इस प्रकार निश्चयात्मक बोध का नाम अवाय है । निर्णय, निश्चय, अवगम, ये सब अत्राय के ही पर्यायवाची शब्द हैं । अवाय-निश्चय-कुछ काल तक कायम रहता है फिर विषयान्तर में मन चला जाता है इससे वह निश्चय लुप्त हो जाता है, वह ऐसे सस्कार को डाल जाता है कि जिससे आगे कभी कोई योग्य निमित्त मिलने पर उस निश्चित विषय का स्मरण हो आता है । इस निश्चय की सतत धारा, तज्जन्यसस्कार और सस्कारजन्य स्मरण, मति के ये सब न्यापार धारणा है । इसी बात का खुलासा करते हुए टीकाकार कहते हैं कि-निर्णीत अर्थविशेष का धारण ही धारणा है । इस धारणा के अविच्युति, वासना और स्मृति, इस तरह तीन भेद हैं । अवायद्वारा निश्चित अर्थ

के जतने पड़ेरवेश होय छे ते प्रकारने पड़ेरवेश तेछे धारणु करेल छे " तथा अवग्रहार्थी अक्षरु करेल अर्थना निर्णयत्रूप के अन्वयसाय (प्रयत्न) छे ते अवाय छे जेभ के " आ शब्द शयने ज छे " अथवा " आ स्थाणु ज छे " आदि आ रीते निश्चयात्मक बोधनु नाम अवाय छे निर्णय, अवगम, अथवा अवाय नाम पर्यायवाची शब्दो छे अवाय-निश्चय केटलोके सभय सुधी कायम रहे छे पछी मन विषयान्तरमा आब्यु जय छे, तेथी ते निश्चयने लोप थाय छे, पछु ते जेवा सस्कार भूझी जय छे के जेथी आगण कोय योग्य निमित्त भणता ते निश्चित विषयनु स्मरण थई आवे छे " आ निश्चयनी सतत धारा, तेनाथी जनित सस्कार जने सस्कारजनित स्मरण " मतिला जे सधना व्यापार धारणा छे जेज वातनु स्पष्टीकरणु करता टीकाकार कहे छे हे-निर्णीत अर्थविशेषनु अक्षरु ज धारणा छे आ धारणाणा आ रीते प्रथ

यावद्भवति ॥ २ ॥ ततःकालान्तरे कुतश्चित् तादृशार्थदर्शनादिकारणात् सस्कारस्यो
द्वोधे यद् नानमुदयते, यथा 'तदेवेद यन्मया प्रागुपलब्धम्' इत्यादिरूप सा स्मृतिः
॥ ३ ॥ एताश्च-अविच्युति-वासना-स्मृतयो धारणालक्षणसामान्यान्ययोगाद्
धारणाशब्दवाच्याः । उक्तच—

“तयणतर तयत्या-ऽविच्यवण जो य वासणा जोगो ।

कालतरे य जं पुण, अणुसरण धारणा सा उ” ॥१॥

छाया—तदनन्तरं तदर्थविच्यवन यश्च वासनायोगः ।

कालान्तरे च यत् पुनरनुस्मरण धारणा सा तु ॥ १ ॥

मैं अवाय के बाद जबतक उपयोग की धारा कायम रहती है, इसका
नाम अविच्युति है । अविच्युति का काल अन्तर्मूर्त का है । इस अवि-
च्युति से जो सस्कार आत्मा में स्थापित कर दिया जाता है उसका नाम
वासना है । वासना सरयात असरयात काल तक रहती है । इस वासना
से यह बात होती है कि कालान्तर में किसी तादृश अर्थ के देखनेरूप
कारण से सस्कार की उद्भूति हो जाती है । उससे ऐसा ज्ञान होता है
कि यह वस्तु वही है कि जिसको मैंने पहिले देखा था । इस तरह का
ज्ञान ही स्मृति है । अविच्युति, वासना और स्मृति, इन तीनों में धारणा
का सामान्य लक्षण रहता है, इसलिये ये तीनों भेद धारणास्वरूप माने
गये हैं । कहा भी है—

“तयणतर तयत्याऽविच्यवण जो य वासणा जोगो ।

कालतरे य ज पुण, अणुसरण धारणा सा उ” ॥ १ ॥

लेख छे-(१) अविच्युति (२) वासना अने (३) स्मृति 'अवाय' द्वारा निश्चित
अर्थमा अवायनी पछी न्या सुधी उपयोगनी धारा कायम रहे छे, तेनु नाम
अविच्युति छे अविच्युतिने काण अन्तर्मुहूर्तने छे आ अविच्युति वडे ने
सस्कार आत्मामा स्थापित कराय छे तेनु नाम वासना छे सप्यात अमप्यात
काण सुधी रहे छे आ वासनाधी अे वात अने छे के कालान्तरे केई तादृश
अर्थने देखाइय करखे सस्कारनी उत्पत्ति थय नथ छे तेनाधी अेपु ज्ञान
वाय छे के आ वस्तु अेव छे के नेने में पड़ेला केई इती आ प्रकारनु
ज्ञान अ स्मृति छे अविच्युति, वासना अने स्मृति, अे त्रहेमा धारणातु सामान्य
लक्षण रहे छे, तेथी ते त्रहे लेख धारणास्वरूप मानवामा आव्या छे कछु पछु छे-

“तयणतर तयत्याऽविच्यवण जोय वासणा जोगो ।

काल तरे य ज पुण, अणुसरण धारणा सा उ” ॥१॥

व्याख्या—तस्मादवायानन्तर-तदनन्तर यत् तदर्थं अविच्यवनम्-उपयोग-
माश्रित्याश्रयः ॥१॥ तथा यत्र जीवेन मह वासनाया योगः-सम्बन्धः ॥२॥ तथा
यच्च तत्पार्थम्य कालान्तरं पुनरिन्द्रियरूपलब्धम्य, तर्था-इन्द्रियरूपलब्धस्य वा मन
साऽनुस्मरण-स्मृतिर्भवति ॥३॥ सेय त्रिविधाऽप्यर्थस्यावधारणरूपा धारणा विज्ञेया।
अय भावार्थ'—अवायेन निश्चितेऽर्थे तदनन्तर यादद्यापि तदर्थोपयोग' मातन्वय
वर्तते, न तु तस्मान्निवर्तते तावत् तदर्थोपयोगादत्रियुतिर्नाम, मा धारणाया-
प्रथमभेदो भवति १। ततस्त्वपार्थोपयोगस्य यदावधारण कर्म तस्य भयोपशमनेन जीवा
युज्यते, येन कालान्तरे इन्द्रियव्यापारादिसामग्रीशान् पुनरपि तदर्थोपयोग'
स्मृतिरूपेण प्रादुर्भवति, मा चेय तदावधारणश्लेषोपशमरूपा वासना नाम द्वितीयस्त
दभेदो भवति २। कालान्तरे च वासनाशान् तदर्थम्येन्द्रियैरुपलब्धम्य, अथवा
तैरनुपलब्धस्यापि मनसि या स्मृतिराविर्भवति, सा तृतीयस्तदभेद ३ इति। एवं
त्रिभेदा धारणा विज्ञेया। इह तु शब्दोऽग्रहादिभ्यो विशेष्योत्तनार्थः ॥१॥ अ० २६॥
॥ इति श्रुतनिश्चितमतिज्ञानभेदा ॥

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—अवाय के बाद अवायगृहीत अर्थ
में उपयोग की अपेक्षा को लेकर जो उपयोग की धारा का अविच्यवन
होता है १। तथा जीव के साथ वासना का जो सम्बन्ध होता है २।
पश्चात् कालान्तर में इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध होने पर अथवा नहीं होने
पर मन से जो उस अर्थ की स्मृति होती है ३। इस तरह त्रिविधरूप
से जो अर्थ का अवधारण होता है वही धारणा है।

भावार्थ इस का इस प्रकार है—अवाय के द्वारा निश्चित हुए पदार्थ
में उसके बाद जबतक निरन्तर उस पदार्थ का जो उपयोग बना रहता
है सो इस उपयोग का बना रहना ही अविच्युति है। यह धारणा का

आ गाथानो अर्थ आ प्रमाणे छे—(१) 'अवाय' पछी अवायगृहीत
अर्थमा उपयोगनी अपेक्षाने लक्षणे ने उपयोगनी धारानु अविच्यवन थाय छे
तथा (२) लवनी साथे वासनानो ने सम्बन्ध थाय छे, (३) पछी कालान्तरे
इन्द्रियो द्वारा उपलब्ध यता अथवा न यता मन वडे ते अर्थनी ने स्मृति
थाय छे, आ रीते त्रिविधरूपे ने अर्थनु अवधारणु थाय छे अन्व धारणु छे

तेनो भावार्थ आ प्रमाणे छे—अवायद्वारा निश्चित थयेल पदार्थमा तेना
पछी न्या सुधी निरन्तर ते पदार्थनो ने उपयोग कायम रहे छे ते उपयोगनु
कायम रहेषु ते अविच्युति छे आ धारणानो पहिलो लेख छे १ आ अर्थो

॥ अथ अवग्रहभेदनिरूपणम् ॥

मूलम्—से किं त उग्वहे ? । उग्वहे दुविहे पणत्ते, त जहा-
अत्थुग्वहे य, वजणुग्वहे य ॥० २७ ॥

उया—अथ कः सोऽवग्रहः ? । अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः । तद् यथा अर्थावग्रहश्च,
व्यञ्जनावग्रहश्च ॥ सू० २७ ॥

टीका—‘से किं तं उग्वहे०’ इत्यादि ।

अथ कः सोऽवग्रहः—अवग्रहस्य किं स्वरूपमिति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—
‘उग्वहे दुविहे’ इत्यादि । अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः । तद् यथा—अर्थावग्रहः,

प्रथम भेद है १ । इस अर्थोपयोग का जो आवरण करने वाला कर्म है
उसका क्षयोपशम होना यह वासना है । वासना के बल पर ही कालान्तर
में जीव उस अर्थ के उपयोग से वामित बना रहता है, और उस
पदार्थ की स्मृति किया करता है यह वासना धारणा का द्वितीय भेद
है २ । कालान्तर में जब उस दृष्ट पदार्थ के साथ इन्द्रियो का सवध
होता है अथवा नहीं होता तब भी जीव मन में जो उस पदार्थ का स्मरण
करता है यह स्मृति धारणा का तृतीय भेद है ३ । इसका फलितार्थ
केवल इतना ही है कि अवाय के बाद उस दृष्ट पदार्थ का आत्मा में
जो उपयोग बना रहता है वह अविच्युति १, और इस अविच्युति से
उसके आवारक कर्मका क्षयोपशम होना यह वासना २, और वासना
के बल पर उस पदार्थ का स्मरण होना यह स्मृति है ३ । इस प्रकार
से धारणा के तीन भेद हैं । इस तरह ये श्रुतनिश्चित मतिज्ञान के
भेद हैं ॥ सू० २६ ॥

पयोगनु जे आवरणु करनार उर्म छे तेनो क्षयोपशम थयो ते वासना छे
वासनाना जणे ज जालान्तरे एव ते अर्थना उपयोगथी वासित जनी रहे छे,
अने जे पदार्थनी स्मृति कथा करे छे आ वासना धारणानो भीजे लेद छे २
जालान्तरे न्त्यारे ते जेथेव पदार्थनी साथे इन्द्रियोना सभध थाय छे ते थतो
नथी त्यारे पणु एव मनमा जे पदार्थनु जे स्मरणु करे छे जे स्मृति धारणानो
भीजे लेद छे ३ तेनु तात्पर्य इक्षत जेट्लु ज छे छे—(१) अवायनी पछी ते
जेथेव पदार्थनो आत्माभा जे उपयोग कायम रहे छे ते अविच्युति, अने (२)
ते अविच्युतिथी तेनु आवरणु करनार उर्मोना क्षयोपशम थयो ते वासना,
अने (३) वासनाने जणे ते पदार्थनु स्मरणु थयु ते स्मृति छे आ रीते धार
णना प्रणु लेद छे आ रीते जे श्रुतनिश्चित मतिज्ञानना भेद छे ॥ सू० २६ ॥

व्याख्या—तस्मादवायादनन्तर-तदनन्तर यत् तदर्थोदप्रिययनम्-उपयोग-
माश्रित्याभ्रगः ॥१॥ तथा यत् जीवेन मह प्राणनाया योगः-मम्यत्र ॥२॥ तथा
यच्च तन्मार्थस्य कालान्तरे पुनरिन्द्रियैरुपलब्धस्य, तर्था-इन्द्रियैरनुपलब्धस्य वा मन
माऽनुस्मरण-स्मृतिर्भवति ॥३॥ सेय त्रिप्राऽप्यर्थस्याप्राणरूपा प्राणा त्रिज्ञेया।
अय भार्थ-अत्रायेन निधितेज्यं तदनन्तर यादद्यापि तदर्थोपयोगः सातत्येन
वर्तते, न तु तस्मान्निवर्तते तात् तदर्थोपयोगादप्रियुतिर्नाम, सा धारणायाः
प्रथमभेदो भवति १। ततस्त्वस्वार्थोपयोगस्य यदाश्रयणं कर्म तस्य अपोपग्रमेन जीवो
युज्यते, येन कालान्तरे इन्द्रियव्यापारादिसामग्रीनशात् पुनरपि तदर्थोपयोगः
स्मृतिरूपेण प्रादुर्भवति, सा चेय तदाश्रयणोपग्रमरूपा प्रासना नाम द्वितीयस्त
द्वभेदो भवति २। कालान्तरे च वामनाश्रयात् तदर्थस्येन्द्रियैरुपलब्धस्य, अथवा
तैरनुपलब्धस्यापि मनसि या स्मृतिराविर्भवति, सा तृतीयस्तद्वभेद ३ इति। एवं
त्रिभेदा धारणा त्रिज्ञेया। इह तु शब्दाऽग्रहादिभ्यो विशेषप्रोक्तनार्थः ॥१॥सू०२६॥
॥ इति श्रुतनिश्चितमतिज्ञानभेदाः ॥

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है-अवाय के वाद अवायगृहीत अर्थ
में उपयोग की अपेक्षा को लेकर जो उपयोग की धारा का अविच्यवन
होता है १। तथा जीव के साथ वासना का जो सम्बन्ध होता है २।
पश्चात् कालान्तर में इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध होने पर अथवा नहीं होने
पर मन से जो उस अर्थ की स्मृति होती है २। इस तरह त्रिविधरूप
से जो अर्थ का अवधारण होता है वही धारणा है।

भावार्थ इस का इस प्रकार है-अवाय के द्वारा निश्चित हुए पदार्थ
में उसके बाद जबतक निरन्तर उस पदार्थ का जो उपयोग बना रहता
है सो इस उपयोग का बना रहना ही अविच्युति है। यह धारणा का

आ गाथानो अर्थ आ प्रमाणे छे—(१) 'अवाय' पछी अवायगृहीत
अर्थमा उपयोगनी अपेक्षाने लक्षणे ने उपयोगनी धारणु अविच्यवन थाय छे
तथा (२) एवनी साथे वासनानो ने सम्बन्ध थाय छे, (३) पछी कालान्तरे
इन्द्रियो द्वारा उपलब्ध यथा अथवा न यथा मन वडे ते अर्थनी ने स्मृति
थाय छे, आ रीते त्रिविधरूपे ने अर्थनु अवधारणु थाय छे ओज धारणु छे

तेनो भावार्थ आ प्रमाणे छे-अवायद्वारा निश्चित थयेल पदार्थमा तेना
पछी न्या सुधी निरन्तर ते पदार्थनो ने उपयोग कायम रहे छे ते उपयोगनु
कायम रहेषु ते अविच्युति छे आ धारणुनो पहेलो लेह छे १ आ अर्थो-

सम्बन्धेन अवग्रहण-सम्बन्धमानस्यशब्दादि रूपस्यार्थम्याव्यक्तरूप परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः, अथवा व्यज्यन्ते=ज्ञायन्ते इति व्यञ्जनानि, शब्दादिरूपा अर्थाः, तेषामुपकरणेन्द्रियसमाप्तानामवग्रहः=अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः । अथवा-अर्थो व्यज्यतेऽनेन, घटः प्रदीपेन इति व्यञ्जनम्-उपकरणेन्द्रिय, तेन स्वसम्बन्धस्यार्थस्य शब्दादेरवग्रहणम् अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः । उपकरणे-

और पदार्थके स्वधरूप व्यञ्जन द्वारा जो शब्दादिकरूप अर्थका स्वप्रथम अति-अल्प मात्रामे अवग्रह-परिच्छेद होता है वह व्यञ्जनावग्रह है । तात्पर्य यह है कि-प्रारम्भमे ज्ञानकी मात्रा इतनी अल्प होती है कि उससे “ यह कुछ है ” ऐसा सामान्य बोध भी नहीं होने पाता है, इसी का नाम अव्यक्त परिच्छेद है, और यही व्यञ्जनावग्रह है । अथवा-“ व्यज्यन्ते-ज्ञायन्ते इति व्यञ्जनानि-शब्दादिरूपाः ” अर्थात्-इस व्युत्पत्तिके अनुसार व्यञ्जनका अर्थ शब्दादिकरूप अर्थ है, क्योंकि वे ही अव्यक्तरूपसे व्यञ्जित किये जाते हैं । इस तरह इन व्यञ्जनोका उपकरणेन्द्रियों के विषयभूत होने पर जो अव्यक्तरूपसे ग्रहण होता है वह व्यञ्जनावग्रह है । अथवा-“ अर्थो व्यज्यते=प्रकटी क्रियतेऽनेन घटः प्रदीपेनेवेति व्यञ्जनम् ” इस व्युत्पत्तिके अनुसार व्यञ्जन शब्द का अर्थ उपकरण-इन्द्रिय भी होता है, कारण कि उपकरण-इन्द्रियके द्वारा शब्दादिक विषयरूप अर्थ अव्यक्तरूपसे ग्रहण किये जाते हैं । यही व्यञ्जनावग्रह है । उपक-

र्धन्द्रिय अने पदार्थना मध्यस्थ व्यञ्जन द्वारा जे शब्दादिक उप अर्थने सर्वप्रथम अतिअल्पमात्रामे अवग्रह-परिच्छेद थाय छे ते व्यञ्जनावग्रह छे तात्पर्य जे जे-प्रारम्भमे ज्ञानानी मात्रा जेटली ज्योछी होय छे जे तेना वडे “आ उधउ छे” जेवो सामान्य बोध पद्यु थवा पामतो नथी, जेनुज नाम अव्यक्ता परिच्छेद छे, अने जेव व्यञ्जनावग्रह छे अथवा-“ व्यज्यन्ते-ज्ञायन्ते इति व्यञ्जनानि-शब्दादि रूपा ” जेटले जे आ व्युत्पत्तिप्रमाणे व्यञ्जनने अर्थ शब्दादिकउप अर्थ छे, कारण जे तेमनेज अव्यक्ताउपे व्यञ्जित कराय छे आ गीते जे व्यञ्जनेनु उपकरणेन्द्रियेने विषयभूत थईने जे अव्यक्ताउपे ग्रहण थाय छे ते व्यञ्जनावग्रह छे अथवा-“ अर्थो व्यज्यते=प्रकटी क्रियतेऽनेन घटः प्रदीपेने वेति व्यञ्जनम् ” आ व्युत्पत्ति प्रमाणे व्यञ्जन शब्दने अर्थ उपकरणेन्द्रिय

व्यञ्जनाग्रहश्चेति। अर्थस्यस्तुनोऽग्रहः—अग्रहण सामान्यज्ञानम्, अर्थोऽग्रहः, रूपादिसकलविशेषनिरपेक्षाऽनिर्देश्यतामात्रमात्रार्थपदगमेऽगामक्रियमिति भावार्थः ॥१॥ तथा—अर्थो व्यज्यते=प्रकटीक्रियते ऽनेन, घट प्रदीपेनेवेति व्यञ्जनम्। तच्चोपकरणेन्द्रियस्य श्रोत्रादः शब्दादिपरिणतद्रव्याणां च परस्पर सम्बन्धः, यतः सम्बन्धे मति सोऽर्थः शब्दादिरूपः श्रोत्रादीन्द्रियेण व्यञ्जयितुं =ज्ञापयितुं शक्यते, नान्यथा, ततश्च सम्बन्धो व्यञ्जनम्। व्यञ्जनेन=

अथ सूत्रकार अचग्रह के भेदों का निरूपण करते हैं—'से किं त उग्रहे' इत्यादि।

शिष्य पूछता है—पूर्वनिर्दिष्ट अचग्रह का क्या स्वरूप है? उत्तर—अचग्रह दो प्रकार का घतलाया गया है। अर्थाचग्रह और व्यञ्जनाग्रह। जिसमें वस्तु का सामान्यज्ञान होता है वह अर्थाचग्रह है। इसमें रूपादिक सकल विशेषों से निरपेक्ष गेसे अनिर्देश्य सामान्य मात्र अर्थ का ग्रहण होता है। इसका काल एक समय है। जिस प्रकार प्रदीप से घट पटादिक अर्थों की अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार जिसके द्वारा अर्थकी व्यञ्जना अभिव्यक्ति होती है वह व्यञ्जन है। यह व्यञ्जन उपकरणेन्द्रिय जो श्रोत्र आदिक हैं उनका और उनके विषयभूत शब्दादिकोंका परस्पर सम्बन्ध-स्वरूप माना गया है। अर्थात्—उपकरणेन्द्रियका विषयके साथ सम्बन्ध होना यह व्यञ्जन है। इन्द्रिय और पदार्थों का सम्बन्ध होने पर ही इन्द्रियोंका शब्दादिरूप विषय, श्रोत्रादिक इन्द्रियोंद्वारा ज्ञापित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं, अतः सम्बन्धका नाम व्यञ्जन है। इन्द्रिय

इवे सूत्रकार अवग्रहना लेहोतु निरूपण करे छे—“से किं त उग्रहे” इत्यादि शिष्य पूछे छे—पूर्वनिर्दिष्ट अवग्रहतु शु स्वरूप छे?

उत्तर—अवग्रह के प्रकारना दर्शाव्या छे—अर्थावग्रह अने व्यञ्जनावग्रह केमा वस्तुतु सामान्य ज्ञान थाय छे ते अर्थावग्रह छे तेमा रूपादिक समस्त विशेषेथी निरपेक्ष अेवा अनिर्देश्य सामान्य मात्र अर्थतु ग्रहणु थाय छे तेमा काण अेक समय छे १ के प्रकारे हीवा वडे घट, पट आदि अर्थोनी अलिव्यक्ति थाय छे अेव रीते केना द्वारा अर्थोनी व्यञ्जना—अलि व्यक्ति थाय छे ते व्यञ्जन छे, ते व्यञ्जन श्रोत्र आदि उपकरणेन्द्रियो अने तेभना विषयभूत शब्दादितु परस्पर सम्बन्धस्वरूप मानवामा आवेल छे अेटके के उपकरणेन्द्रियेना विषयनी साथे सम्बन्ध थवो ते व्यञ्जन छे इन्द्रिय अने पदार्थोना सम्बन्ध थता न इन्द्रियोना शब्दादि रूप विषय, श्रोत्रादिक इन्द्रियो द्वारा लक्ष्मी शक्य छे, भील रीते नहीं, तेथी सम्बन्धतु नाम व्यञ्जन छे

उत्तर—व्यञ्जनावग्रहमे ज्ञानकी मात्रा अति अल्प है—अव्यक्त है, इस लिये उसका सवेदन नहीं होता है । सवेदन न होनेसे उसमें ज्ञानरूपता का अभाव नहीं आ सकता है । यदि उसमें ज्ञानांशरूपता न होवे अर्थात् प्रथम समयमें भी शब्दादिरूपसे परिणत द्रव्योंके साथ उपकरण-इन्द्रिय का सम्बन्ध होने पर व्यञ्जनावग्रह अनिर्वचनीय थोड़ी सी भी ज्ञानमात्रा नहीं स्वीकृत की जावे—तो फिर द्वितीय समयमें भी ज्ञानमात्रा नहीं होनी चाहिये । इस तरह अन्तिम समयमें भी ज्ञान नहीं होगा, अतः अर्थावग्रह हो ही नहीं सकेगा । तात्पर्य इसका इस प्रकार है कि—प्रथम समयमें ज्ञानकी मात्रा अति अल्प होती है परन्तु ज्यों २ विषय और इन्द्रियोंका सम्बन्ध पुष्ट होता जाता है त्यों २ ज्ञानकी मात्रा भी पुष्ट होती चली जाती है । ज्ञानकी मात्राकी जब इतनी पुष्टि हो जाती है कि उससे यह मालूम होने लगे कि 'यह कुछ है' तब यहा व्यञ्जनावग्रह अर्थावग्रहके रूपमें परिणत हो जाता है । यदि व्यञ्जनावग्रहमें ज्ञानकी मात्रा जो कि उस समय अव्यक्ततम, अव्यक्ततर या अव्यक्त रूपमें रहती है वह नहीं मानी जावे तो फिर व्यञ्जनावग्रहकी आगे २ के समयों में पुष्टि होने पर जो अर्थावग्रहरूप में परिणति होती है वह कैसे हो सकती

उत्तर—व्यञ्जनावग्रहमा ज्ञाननी मात्रा वही थोड़ी ठे अव्यक्त ठे तेथी तेतु सवेदन थतु नहीं सवेदन न थवाथी तेमा ज्ञानरूपताने अभाव आवी राउते नथी ले तेमा ज्ञानाराउपता न होय ओठले के प्रथम समये पशु शब्दादि उपे परिणत द्रव्योनी साथे उपकरण इन्द्रियोने मणध थता व्यञ्जनावग्रह अनिर्वचनीय थोड़ी पशु ज्ञानमात्राने स्वीकार उरवाभा न आवे तो पती द्वितीय समयमा पशु ज्ञान मात्रा न होवी ओठ ओ आरीते अतीम समये पशु ज्ञान नही होय, तेथी अर्थावग्रह थर्ध्व नही शडे तेतु तात्पर्य आ प्रभावे ठे—प्रथम समयमा ज्ञानमात्रा अति अल्प होय ठे, पशु लेम लेम विषय अने इन्द्रियोने मणध पुष्ट थता लय ठे तेम तेम ज्ञाननी मात्रा पुष्ट थती लय छे ज्ञाननी मात्रा लयारे ओठली पुष्ट थाय ठे तेना वडे ओम भणर पडवा भाडे ठे “आ उठके छे” तयारे ओर व्यञ्जनावग्रह अर्थावग्रहना उपे परिणुमे ठे ले व्यञ्जनावग्रहमा ज्ञाननी मात्रा के ले ते समये अव्यक्ततेतु ठे अव्यक्त उपे रहे ठे ओम न मानवामा आवे तो पती व्यञ्जनावग्रहनी पथीना पुष्टि थता ले अवग्रहउपे परिणति वाय ठे ते डेवी गीते थर्ध्व राडे व्यञ्जनावग्रहनी

न्द्रिय-शब्दाद्यर्थसम्बन्धे तति प्रथमममात्रारभ्य, अर्थाग्रहात् प्राक् या मुक्त-
मत्तमूर्च्छितादिपुराणामिष शब्दान्द्रियगम्यन्मात्रप्रियया तानिदिव्यक्ता ज्ञानमात्रा
मा व्यञ्जनाग्रहः । म चान्तर्मुहूर्तप्रमाण' ।

ननु—व्यञ्जनाग्रहकाले तिमपि संवेदन न संवेगते, तत् प्रथममौ ज्ञानरूपः
स्यात् ?, उच्यते—अपत्तत्मान्न संवेद्यत, ततो न कश्चिन्मोष । तथाहि—यदि प्रथम
समयेऽपि शब्दादिपरिणतद्रव्यैरुपकरणेन्द्रियस्य सम्बन्धे कानिदपि ज्ञानमात्रा न
भवेत्, ततो द्वितीयेऽपि समये न भवेत् विशेषाभावात् । यावत्प्रथमसमयेऽपि ।
अथ यदि चरमसमये ज्ञानमर्थाग्रहरूप जायमानमुपलभ्यते, तथा प्रागपि क्वापि
कियती ज्ञानमात्रा भवतीति मन्तव्यम् ।

रण-इन्द्रियका शब्दादिकरूप अपने प्रियके साथ सम्बन्ध होनेपर प्रथम
समयसे ले कर अर्थावग्रहके पहिले २ जो उनका बहुत ही कम अल्प
मात्रामे ज्ञान होता है, जैसे-सुप्त, मत्त एवं मूर्च्छित व्यक्तियोंको पदार्थ
का सम्बन्ध होने पर अल्प मात्रामें अव्यक्त बोध होता है उसका नाम
व्यञ्जनाग्रह है । इसका काल अन्तर्मुहूर्तका है ।

शङ्का—व्यञ्जनावग्रहके समयमें जब “यह कुछ है” ऐसा सामान्य
बोध भी नहीं होने पाता है तो फिर उसको ज्ञानरूप क्यों कहा ? अर्थात्
जब व्यञ्जनावग्रहके कालमें ज्ञानका थोडासा भी संवेदन-अनुभवन नहीं
होता है तो फिर वह ज्ञानरूप कैसे माना जा सकता है कि जिससे यह
मतिज्ञानका एक भेदरूप माना जा सके ? ।

द्वारा शब्दादिक विषयरूप अर्थ अव्यक्तारूपे अहणु थाय छे जेव व्यञ्जनावग्रह
छे उपकरणु इन्द्रियने शब्दादिक रूप पोताना विषयनी साथेसंभध थता
प्रथम समयथी लधने अर्थावग्रहना पहिला जे तेमनु अहुण थोडा प्रमाणमा
ज्ञान थाय छे, जेभके सुप्त, मत्त अने मूर्च्छित व्यक्तिज्येने पदार्थने संभध
थता थोडा प्रमाणमा अव्यक्त बोध थाय छे तेनु नाम व्यञ्जनावग्रह छे तेने
काल अन्तर्मुहूर्तने छे

शंका—व्यञ्जनावग्रहना समये ज्यारे “आ कुछ छे” जेवो सामान्य
बोध पणु थवा पाभतो तथा तो पछी तेने ज्ञानरूप केम कुछ ? जेटवे के जे
व्यञ्जनावग्रहना समये ज्ञाननु थोडु पणु संवेदन (अनुभव) थतु नथी तो
पछी जे ज्ञानरूप केवी रीते मानी शक्य के जेथी ते मतिज्ञानना जेक भेदरूप
मानी शक्य ?

उत्तर—व्यञ्जनावग्रहमे ज्ञानकी मात्रा अति अल्प है—अव्यक्त है, इस लिये उसका सवेदन नहीं होता है । सवेदन न होनेसे उसमें ज्ञानरूपता का अभाव नहीं आ सकता है । यदि उसमें ज्ञानांशरूपता न होवे अर्थात् प्रथम समयमें भी शब्दादिरूपसे परिणत द्रव्योंके साथ उपकरण-इन्द्रिय का सम्बन्ध होने पर व्यञ्जनावग्रह अनिर्वचनीय थोड़ी सी भी ज्ञानमात्रा नहीं स्वीकृत की जावे—तो फिर द्वितीय समयमें भी ज्ञानमात्रा नहीं होनी चाहिये । इस तरह अन्तिम समयमें भी ज्ञान नहीं होगा, अतः अर्थावग्रह हो ही नहीं सकेगा । तात्पर्य इसका इस प्रकार है कि—प्रथम समयमें ज्ञानकी मात्रा अति अल्प होती है परन्तु ज्यों २ विषय और इन्द्रियोंका सम्बन्ध पुष्ट होता जाता है त्यों २ ज्ञानकी मात्रा भी पुष्ट होती चली जाती है । ज्ञानकी मात्राकी जब इतनी पुष्टि हो जाती है कि उससे यह मालूम होने लगे कि 'यह कुछ है' तब यहा व्यञ्जनावग्रह अर्थावग्रहके रूपमें परिणत हो जाता है । यदि व्यञ्जनावग्रहमें ज्ञानकी मात्रा जो कि उस समय अव्यक्ततम, अव्यक्ततर या अव्यक्त रूपमें रहती है वह नहीं मानी जावे तो फिर व्यञ्जनावग्रहकी आगे २ के समयों में पुष्टि होने पर जो अर्थावग्रहरूप में परिणति होती है वह कैसे हो सकती

उत्तर—व्यञ्जनावग्रहमा ज्ञाननी मात्रा धृष्टी थोड़ी छे अव्यक्त छे तेथी तेनु सवेदन थतु नहीं सवेदन न थवाथी तेमा ज्ञानरूपताने अभाव आवी शकते नहीं जे तेमा ज्ञानाशरूपता न होय ओटले के प्रथम समये पणु शब्दादि रूपे परिणत द्रव्येनी साथे उपकरण इन्द्रियेनो मणध थता व्यञ्जनावग्रह अनिर्वचनीय थोड़ी पणु ज्ञानमात्राने स्वीकार करवाभा न आवे तो पणु द्वितीय समयमा पणु ज्ञान मात्रा न होवी जेध ओ आ रीते अतीम समये पणु ज्ञान नही होय, तेथी अर्थावग्रह थर्व नही शके तेनु तात्पर्य आ प्रभाषे छे—प्रथम समयमा ज्ञानमात्रा अति अल्प होय छे, पणु जेम जेम विषय अने इन्द्रियेनो मणध पुष्ट थता जय छे तेम तेम ज्ञाननी मात्रा पुष्ट थती जय छे ज्ञाननी मात्रा ज्यारे ओटली पुष्ट थाय छे तेना वडे जेम जणर पडवा माडे के "आ उधके छे" त्यारे जेज व्यञ्जनावग्रह अर्थावग्रहना रूपे परिणुमे छे जे व्यञ्जनावग्रहमा ज्ञाननी मात्रा के जे ते समये अव्यक्ततेर के अव्यक्त रूपे रहे छे जेम न मानवामा आवे तो पणु व्यञ्जनावग्रहनी पथीना पुष्टि थता जे अवग्रहरूपे परिणुति थाय छे ते केवी रीते थर् शके व्यञ्जनावग्रहनी

अथ प्रथममयादिषु शब्दादिपरिणतद्रव्यमन्वेषेऽपि कानिदपि ज्ञानमात्रा
 माभूत् शब्दादिद्रव्याणां तेषु समयेषु स्तोकरूपेण गगत्वात्, नरमममये तु ज्ञान
 मात्रा स्यात् शब्दादिद्रव्यपरिणतद्रव्यममृद्स्य तदानीं भूयस्त्वेन विषयत्वात् ।
 इति चेत्, तन्मृत्कम्-यदि हि प्रथममयादिषु शब्दादिद्रव्याणां स्तोकरत्वात्
 मपृक्ता इत्यव्यक्ता कानिदपि ज्ञानमात्रा न समृत्तसेत्, तर्हि प्रभूतममृदायमम्पर्कऽपि
 है? । परिपुष्ट व्यञ्जनावग्रह एी तो अर्थावग्रह होता है । अर्था
 वग्रहसे होनेवाला विषयका मान ज्ञानाके ध्यानमें आ जाता है, और
 व्यञ्जनावग्रहसे होनेवाला अर्थका बोध ज्ञानाके ध्यानमें नहीं आता है, यही
 तो इनमें भेद है । ज्ञानके अभावको ले कर इनमें भेद नहीं माना गया
 है । इस लिये यह स्वीकार करना चाहिये कि व्यञ्जनावग्रहमें थोड़ी सी
 ज्ञान की मात्रा है ।

यहाँ शंकाकार कहता है यह कि प्रथमादि समयों में शब्दादिरूप से
 परिणत पुद्गल द्रव्यों का सप्रध होने पर भी व्यञ्जनावग्रह में जो थोड़ी सी
 भी ज्ञानमात्रा नहीं होती है? उसका कारण यह है कि वे उन समयों में
 बहुत ही स्तोकरूप से-सूक्ष्मरूप से-ग्राह्य होते हैं, परन्तु अन्तिम समय
 में जो उनका ज्ञान होता है उसका कारण यह है कि उस समय शब्दा
 दिरूप परिणत द्रव्यसमूह का भूयस्वरूप से ग्रहण होता है । तात्पर्य
 शंकाकार का यह है कि अभी सिद्धान्ती की ओर से जो व्यञ्जनावग्रह
 में ज्ञानरूपता प्रतिपादन करने के लिये ऐसा कहा गया है कि-‘यदि
 व्यञ्जनावग्रह में ज्ञानरूपता न मानी जावेगी तो अर्थावग्रह में ज्ञानरूपता

એક પુષ્ટ અશબ્દ અર્થાવગ્રહ થાય છે અર્થાવગ્રહથી થનાર અર્થને બોધ બાજુ-
 નારના ધ્યાનમાં આવતો નથી, એજ તેમની વચ્ચેનો ભેદ છે, જ્ઞાનના અભાવે
 કરીને તેમાં ભેદ મનાવે નથી તેથી એ સ્વીકારવું જોઈએ કે વ્યજનાવગ્રહમાં
 કેટલીક જ્ઞાનની માત્રા છે જ

જો શકા કરનારની તરફથી એન કહેવામાં આવે કે પ્રથમાદિ સમયોમાં
 શબ્દાદિ રૂપે પરિણત પુદ્ગલ દ્રવ્યોનો સપ્રધ થતા પણ જે થોડા પ્રમાણમાં
 પણ જ્ઞાનમાત્રા નથી હોવી તેનું કારણ એ છે કે તેઓ તે સમયોમાં બહુ જ
 સ્તોકરૂપે-સૂક્ષ્મરૂપે-ગ્રાહ્ય થાય છે, પણ અન્તિમ સમયે જે તેમનું જ્ઞાન થાય
 છે તેનું કારણ એ છે કે તે સમયે શબ્દાદિ રૂપ પરિણત દ્રવ્ય સમૂહનું ભૂય
 સ્વરૂપે ગ્રહણ થાય છે શકાકરનારના કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે હમણા જ
 સિદ્ધાંત દ્વારા વ્યજનાવગ્રહમાં જ્ઞાનરૂપતાનું પ્રતિપાદન કરવાને માટે એવું જે
 કહ્યું છે કે-“જો વ્યજનાવગ્રહમાં જ્ઞાનરૂપતા માનવામાં ન આવે તો અર્થાવગ્રહ

नहीं आ सकती है, अर्थात्-यदि प्रथम समय में भी शब्दादिपरिणत द्रव्यों के साथ उपकरणेन्द्रिय का संबन्ध होने पर थोड़ी भी ज्ञानमात्रा न होवे तो वह द्वितीय समय में भी नहीं होगी, इस तरह चलते २ वह अन्तिम समयरूप अर्थावग्रह में भी नहीं आ सकेगी सो इस पर यह कहना है कि चरम समय में जो ज्ञानरूपता का वेदन होता है उसका कारण यह है कि उस चरम समयमें शब्दादिरूप परिणत द्रव्यसमूहका भ्रूयस्त्वरूपसे ग्रहण होता है । ऐसा ग्रहण द्वितीयादि समयों में नहीं होता है वहा तो स्तोकरूपसे ही उनका ग्रहण होता है । इसलिये व्यञ्जनावग्रह में ज्ञान मात्रा नहीं होती है ।

इस पर सिद्धान्तिका ऐसा उत्तर है कि-यदि प्रथमादि समयोंमें शब्दादि द्रव्य स्तोक होते ह इस ख्यालसे वहा थोड़ी सी भी ज्ञानमात्रा नहीं होती है, अर्थात्-उन द्रव्योंका जो ग्रहण होता है वह ज्ञानाके अनुभवमें नहीं आता है-वे बहुत ही सूक्ष्म होते हैं, इस लिये उस अवस्थामें उनका ज्ञान “ ये कुछ है ” इस रूपसे निर्देश्य नहीं होता है, कारण कि उस समयका इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध अपुष्ट रहता है, ऐसा कहकर उन समयों में थोड़ी भी ज्ञानमात्रा न मानी जावे

इहा ज्ञानरूपता आवी शकती नथी अटले केजे प्रथम समयमा पणु शब्दादि परिणत द्रव्योनी नाथे उपकरणेन्द्रियेना संबध यता थोडी पणु ज्ञानमात्रा न डोय तो ते द्वितीय समयमा पणु नडी डोय, आ रीते आगण वधता वधता ते अन्तिम समयरूप अर्थावग्रहमा पणु आवी नडी शडे ” तो ते भावतमा तेनु आ पूर्वोक्त स्थान छे-ते उडे छे उे अरम समयमा जे ज्ञानरूपतानु न वे दन थाय छे तेनु ङारणु अे छे के ते अरमसमयमा शब्दादिद्रूप परिणत द्रव्य समूहनु यतु नथी त्या तो सूक्ष्मरूपेण तेमनु ग्रहणु थाय छे ?

तेनो सत्रादर तरङ्गी अेवो जवाण भणे छे के-जे प्रथमादि समयमा शब्दादि द्रव्य सूक्ष्म डोय छे ते मान्यताथी त्या थोडी पणु ज्ञानमात्रा डोती नथी, अटले के अे द्रव्योनु जे ग्रहणु थाय छे ते जाताना अनुभवमा आवतु नथी-तेअो भाडूण सूक्ष्म डोय छे, ते ङारणु ते परिस्थितिमा तेमनु ज्ञान “ अे उधक छे ” अे उपे निर्देश्य यतु नथी, ङारणु के ते समयनो इन्द्रिय अने पदार्थनो संबध अपुष्ट डोय छे, अेम उडीने ते समयमा थोडी पणु ज्ञानमात्रा मानवामा न आवे तो मोटा समूहायनो सपडं यता पणु ज्ञानमात्रा केवी रीते

અથ પ્રથમમયાદિય શબ્દાદિરિપણિતતદ્રગમમ્બન્નેઽપિ કાચિદપિ જ્ઞાનમાત્રા માભૂત્ શબ્દાદિરિવ્યાપાં તેષ મમયેષુ સ્તોકરૂપેન ગ્રાહયાન્, નરમમમયે તુ જ્ઞાન માત્રા મ્યાત્ શબ્દાદિરુપરિણિતતદ્રગમમૃદસ્ય તદાનો ભૂયસ્ત્રેન વિપયસ્વાન્ । ઇતિ ચેત્, તદયુક્તમ્-યદિ હિ પ્રથમમમયાદિયુ શબ્દાદિરિવ્યાપા સ્તોકરૂપાત્ સમૃક્તા ત્પ્યવ્યક્તા કાચિત્પિ જ્ઞાનમાત્રા ન મમૃડસેન્, તર્હિ પ્રભૂતમમુદાયમમ્પર્કેઽપિ હૈ? । પરિપુષ્ટ વ્યજ્ઞનાવગ્રહ ઈ તો અર્થાવગ્રહ હોના હૈ । અર્થા વગ્રહસે હોનેવાલા વિપયકા માન જ્ઞાનાકે ધ્યાનમેં આ જાના હૈ, ઓર વ્યજ્ઞનાવગ્રહસે હોનેવાલા અર્થકા ઘોષ જ્ઞાનાકે ધ્યાનમેં નહીં આના હૈ, યહી તો ઠનમેં ભેદ હૈ । જ્ઞાનકે અભાવકો હે કર ઠનમેં ભેદ નહીં માના ગયા હૈ । ડસ લિયે યહ સ્વીકાર કરના વાલિયે કિ વ્યજ્ઞનાવગ્રહમેં યોહી સી જ્ઞાન કી માત્રા હૈ ।

યહાં શકાકાર કહતા હૈ યહ કિ પ્રમાદિ સમયોં મે શબ્દાદિરુપ સે પરિણત પુદ્ગલ દ્રવ્યોંકા સમ્બધ હોને પર ધી વ્યજ્ઞનાવગ્રહ મેં જો યોહી સી ધી જ્ઞાનમાત્રા નહીં હોતી હૈ? ડસકા કારણ યહ હૈ કિ વે ડન સમયોં મેં વહુત ઈ સ્તોકરુપ સે-સૂત્રમરુપ સે-ગ્રાહ્ય હોતે હૈ, પરન્તુ અન્તિમ સમય મેં જો ડનકા જ્ઞાન હોતા હૈ ડસકા કારણ યહ હૈ કિ ડસ સમય શબ્દા દિરુપ પરિણત દ્રવ્યસમૃહ કા ભૂયસ્વરુપ સે ગ્રહણ હોતા હૈ । તાત્પર્યે શકાકાર કા યહ હૈ કિ અધી સિદ્ધાન્તી કી ઓર સે જો વ્યજ્ઞનાવગ્રહ મે જ્ઞાનરુપતા પ્રતિપાદન કરને કે લિયે ણેસા કહા ગયા હૈ કિ-‘યદિ વ્યજ્ઞનાવગ્રહ મેં જ્ઞાનરુપતા ન માની જાવેગી તો અર્થાવગ્રહ મે જ્ઞાનરુપતા

એક પુષ્ટ અશ જ અર્થાવગ્રહ થાય છે અર્થાવગ્રહથી ધનારઅર્થને ઝોષ બાલુ- નારના ધ્યાનમા આવતો નથી, એજ તેમની વચ્ચેનો લેહ છે, જ્ઞાનના અભાવે ઠરીને તેમા લેહ મના ॥ નથી તેથી એ સ્વીકારવુ જોઈએ કે વ્યાજનાવગ્રહમા કેટલીક જ્ઞાનની માત્રા છે જ

જે શકા કરનારની તરફથી એમ કહેવામા આવે કે પ્રથમાદિ સમયોમા શબ્દાદિ રૂપે પરિણુત પુદ્ગલ દ્રવ્યોનો સમ્બધ થતા પણ જે થોડા પ્રમાણમા પણ જ્ઞાનમાત્રા નથી હોવી તેનુ કારણ એ છે કે તેઓ તે સમયોમા ખડુ જ સ્તોકરૂપે-સૂક્ષ્મરૂપે-ગ્રાહ્ય થાય છે, પણ અન્તિમ સમયે જે તેમનુ જ્ઞાન થાય છે તેનુ કારણ એ છે કે તે સમયે શબ્દાદિ રૂપ પરિણુત દ્રવ્ય સમૂહનુ ભૂય સ્વરૂપે ગ્રહણ થાય છે શકાકરનારના કહેવાનુ તાત્પર્ય એ છે કે હમણા જ સિદ્ધાંત દ્વારા વ્યજ્ઞનાવગ્રહમા જ્ઞાનરૂપતાનુ પ્રતિપાદન કરવાને માટે એવુ જે કહ્યુ છે કે-“જે વ્યજ્ઞનાવગ્રહમા જ્ઞાનરૂપતા માનવામા ન આવે તો અર્થાવગ્ર

तथाहि-सर्वैरपि जीवैरर्थावग्रहः स्पष्टरूपतया सवेद्यते । शीघ्रतरगमनादौ सकृत् त्वरयोपलब्धे वस्तुनि “मया किंचिद् दृष्टं, पर न परिभाषित सम्य-” गिति व्यवहारदर्शनात् । अपि च अर्थावग्रहः सर्वेन्द्रियमनोभाषी, व्यञ्जनावग्रहस्तु न तथा भवतीति प्राधान्यात् प्रथममर्थावग्रह उक्तः ॥ २७ ॥ सू० ॥

अथ व्यञ्जनावग्रहादनन्तरमर्थावग्रहो भवतीत्यत उत्पत्तिक्रममाश्रित्य प्रथम व्यञ्जनावग्रह उच्यते—

मूलम्—से किं त वज्रणुग्गहे ? । वंजणुग्गहे चउव्विहे पणत्ते । त जहा—सोइदियवजणुग्गहे, घाणिदियवजणुग्गहे, जिब्बिदियवजणुग्गहे, फासिदिय वजणुग्गहे, से त वजणुग्गहे ॥ सू० २८ ॥

उच्यते—अथ कः स व्यञ्जनावग्रहः ? व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः ब्रह्म, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहः, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स एव व्यञ्जनावग्रहः ॥ सू० २८ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त वज्रणुग्गहे ?’ इति । अथ कः स व्यञ्जनावग्रहः ? इति । उत्तरमाह—‘वज्रणुग्गहे—चउव्विहे पणत्ते’ इत्यादि व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः ब्रह्म, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स एव व्यञ्जनावग्रह इति ।

उत्तर—अर्थावग्रह अनुभवमे आता है, व्यञ्जनावग्रह नहीं, इसलिये सूत्रकारने ऐसा किया है । देखो जब हम शीघ्रातिशीघ्ररूपसे चलते फिरते हे तो उस समय उपलब्ध वस्तुमे ऐसा भान होता है कि ‘यह कुछ है’ पर क्या है इसका स्पष्ट बोध नहीं होता । दूसरे—वात एक यह है कि अर्थावग्रह पाच इन्द्रियोसे एव मनसे होता है । व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मनसे नहीं होता है । इस लिये व्यञ्जनावग्रहकी अपेक्षा अर्थावग्रहमे प्रधानता आती है, अतः प्रधान होनेसे सूत्रकारने अर्थावग्रह का पहिले उल्लेख किया है, और पीछे व्यञ्जनावग्रह का ॥ सू० २७ ॥

उत्तर—अर्थावग्रह अनुभवमा आवे छे व्यञ्जनावग्रह नही, तेथी सूत्रकारने ऐम कथुं छे ऐमके आपणे अर्थीमा अर्थी रीते आलता छे। छे त्त्यारे उपलब्ध वस्तुमा ऐवु लान थाय छे छे “आ उर्थे छे” पणु शु छे तेतु स्पष्ट लान थतु नथी पीछे वात छे छे के अर्थावग्रह पाच इन्द्रियो अने मनथी थाय छे व्यञ्जनावग्रह आप अने मनथी थतो नथी ते कारणे व्यञ्जनावग्रह उरता अर्थावग्रहमा प्रवानता आवे छे तेथी मुख् छे। वाथा सूत्रकारने अर्थावग्रहने पहिला उल्लेख उर्थे छे, अने पाछे व्यञ्जनावग्रहने ॥ सू० २७ ॥

न भवेत्, न हि खट्वु सिरनारुणेणु प्रत्येन तैलाभावे समुदायेऽपि तैः समुद्र-
दुपलभ्यते । अस्ति च चरमममये प्रभूतगद्गादिद्रव्यगृह्णातुं ज्ञानम्, ततः प्राक्तनेष्वपि
ममयेषु स्तोत्रमन्त्रोक्तारैरपि शब्दादि परिणत द्रव्यैः मध्यन्धे काचिद्रव्यक्ता ज्ञान
मात्रामन्तव्या, अथवा चरमममयेऽपि ज्ञानानुपपत्तेः । तथा च—'व्यञ्जनावग्रहो
ज्ञानरूप' इति सिद्धम् । तच्च ज्ञानमव्यक्तमेवेति बोध्यम् । सूत्रे चकारद्वयं स्वग
तानेकमेदय्यचरम् । ते च म्यगतानेरुभेदा. स्वयमेव मृत्तृणाग्रे वक्ष्यते ।

ननु प्रथम व्यञ्जनावग्रहो भवति, ततोऽर्थानुग्रहः तर्हि कथमिहार्थावग्रहः पूर्व
मुक्तः ? इति चेत्, उच्यते—स्पष्टतयोपगम्यमानादर्थानुग्रहः पूर्वमुपन्यस्तः ।

तो प्रभूत समुदायके सम्पर्क होने पर भी ज्ञानमात्रा कैसी मानी जा
सकेगी ? । जब स्तोकरूपमे उनके ग्रहण करने पर उनमे ज्ञानमात्रा नहीं
है तो वह भूयस्त्वरूपसे उनके ग्रहण होने पर भी कतासे आयगी ? । यह
तो प्रत्यक्ष मालूम देता है कि बालुके एक-एक रूपमे तैल नहीं है, इसीलिये
वह उसके समुदायमें भी नहीं है । चरम समयमें जब ज्ञान होना अनुभव
मे आता है तो मानना चाहिये कि पहिलेके समयों में भी ज्ञान है, भले
वह स्तोक्तम आदि रूपमे हो, पर है अवश्य । इस लिये व्यञ्जनावग्रह
अज्ञानरूप न होकर ज्ञानरूप है, ऐसा माननेमें कोई बाधा नहीं आती
है । व्यञ्जनावग्रहमे किसरूपमें ज्ञानरूपता है यह बात कहा अव्यक्त ही है ।

सूत्रमे दो चकार स्वगत अनेक भेदों की सूचना देते हैं । इन
भेदोंका कथन सूत्रकार आगे चल कर करेंगे ।

शब्दा—जब व्यञ्जनावग्रह पहिले होता है बादमे अर्थावग्रह होता है
तो सूत्रकारने पहिले अर्थावग्रह क्यों कहा ?

मानी शक्या ? जे सूक्ष्मरूपे तेमने अडलु करता तेमनामा ज्ञानमात्रा न होय
तो ते भूयस्त्वरूपे तेमनु अडलु करता कथाथी आवशे ? आ तो प्रत्यक्ष
अनुभवनी वात छे के देतीना प्रत्येक कलुमा तेल नथी तेथी ते तेमना समुदा
यमा पलु नथी अरम समये जे ज्ञान यवाने अनुभव थाय छे तो जे स्वी
कारनु लोई जे के पडेलाना समयोमा पलु ज्ञान छतु न, लडे ते सूक्ष्मतम
आदिरूपे होय, पलु छे अवश्य ते कागले व्यञ्जनावग्रह अज्ञानरूप नथी पलु
ज्ञानरूप छे, जेम मानवामा कोई सुरकेली रहैती नथी व्यञ्जनावग्रहमा कथा
रूपे ज्ञानरूपता छे जे वात त्या अव्यक्त न छे सूत्रमा जे अकार स्वगत अनेक
लेहोनु सूचन करे छे जे लेहोनु वरुन सूत्रकार आगण जाता करे

शका—जे व्यञ्जनावग्रह पडेला थाय छे अने त्यार पाठ अर्थावग्रह थाय
छे तो सूत्रकारे पडेला अर्थावग्रह उभे कही ?

ननु कथमप्राप्यकारित्वं तयोरवसीयते? उच्यते-विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात् । तथाहि-यदि प्राप्तमर्थं चक्षुर्मनो वा गृह्णीयात् तदा यथा स्पर्शनेन्द्रिय स्रक्चन्दनादिकस्य अङ्गारादिकस्य च प्राप्तस्यार्थस्य पङ्क्तिच्छेदं कुर्वत् तत्कृतानुग्रहोपघातभाग् भवति, तथा चक्षुर्मनश्चापि स्यात् विशेषाभावात्, न तु तथा भवति, तस्मादेतद्द्वयमप्राप्यकारीति सिद्धम् ।

कारी है । अपने विषय के साथ सबध किये बिना ही ये दोनो इन्द्रिया उसका ज्ञान करा देती है । इस तरह व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का ही होता है, छह प्रकारका नहीं ।

शका—चक्षु और मन अप्राप्यकारी हैं-विषय के साथ सबध किये बिना ही अपने विषय का ज्ञान करा देते हैं, यह बात कैसे जानी जाती है ।

उत्तर—‘ये दोनों अप्राप्यकारी हैं’ यह बात इस तरह जानी जाती है कि इनमें अपने विषय से कृत उपघात और अनुग्रह नहीं होता है । यदि प्राप्त अर्थ को चक्षु और मन ग्रहण करे तो जिस प्रकार प्राप्त अर्थ को ग्रहण करनेवाली स्पर्शेन्द्रिय में अपने विषयद्वारा स्रक्, चदन-अगार आदि द्वारा-अनुग्रह और उपघात देखा जाता है उसी तरह इन दो इन्द्रियों में यह बात देखी जानी चाहिये, परन्तु ऐसी बात इनमें नहीं देखी जाती है, इसलिये ये दो अप्राप्यकारी माने गये हैं ।

अने मनमा थतो नथी, ढारणु डे अे णन्ने अप्राप्यकारी छे पोताना विषय साथे सपडं कर्था विना न अे णन्ने छिन्द्रियो तेनु ज्ञान करावी हे छे आरीते व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारने न छेय छे, छ प्रकारने नही

शका—अथु अने मन अप्राप्यकारी छे-विषयनी साथे सपडं कर्था विना न पोताना विषयनु ज्ञान करावी हे छे, अे वात केवी रीते न्णणी शकाय ?

उत्तर—अे णन्ने अप्राप्यकारी छे, अे वात आ रीते न्णणी शकाय छे डे तेमनामा पोताना विषय वडे ढरथेड उपघात अने अनुग्रह डोता नथी. ने प्राप्त अर्थने अथु अने मन ग्रहणु करे तो ने गीते प्राप्त अर्थने ग्रहणु करनारी स्पर्शेन्द्रियमा पोताना विषय द्वारा स्रक्, चदन-अगार आदि द्वारा-अनुग्रह अने उपघात न्णेवा भणे छे, अे न्ण गीते अे णन्ने छिन्द्रियोमा आ वात देभावी न्णेअे, पणु अेवी वात तेमनामा देभाती नथी तेथी अे णन्ने अप्राप्यकारी मानवामा आवी छे

ननु पञ्चेन्द्रियाणि गन्ति पञ्च मनभास्ति, कथं तर्हि न्यजनावग्रहव्यवृत्तिरि एवोक्तः ? इति चेत् उच्यते—श्रोत्रेन्द्रियेन्द्रियस्य शब्दादिन्द्रियाणां च परस्परं सम्बन्धो व्यञ्जनमुच्यते, स च सम्बन्धगतुर्णामेव श्रोत्रेन्द्रियादीनां भवति, न तु चतुर्भुवनमो, तयोरभाष्यकारित्वात् । चतुर्भुवनं हि रूपादिसम्बन्धेन विनैव ज्ञानमुत्पादयति ।

अथ सूत्रकार उत्पत्तिक्रमकी अपेक्षासे व्यञ्जनावग्रहका वर्णन करते हैं—‘से किं त वज्रणुमाहे’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न करता है कि—हे भद्रन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट व्यञ्जनावग्रह का क्या स्वरूप है ? उत्तर—व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का घनलाया गया है । जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय—व्यञ्जनावग्रह १, घ्राणेन्द्रिय—व्यञ्जनावग्रह २, जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ३ और स्पर्शेन्द्रिय—व्यञ्जनावग्रह ४ । इस तरह यह चार प्रकार का अवग्रह व्यञ्जनावग्रह है ।

शका—इन्द्रिया तो पांच वनलाई गई हैं न या उठा मन भी वनलाया गया है फिर व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार ही होता है ऐसा क्यों कहा ? उसे उह प्रकारका कहना चाहिये था ।

उत्तर—उपकरणेन्द्रिय का और शब्दादिक पौद्गलिक द्रव्यों का जो परस्पर में संबध होता है वह व्यञ्जन है, यह बात पीछे बतलाई जा चुकी है ।

यह जो इन्द्रिय और पदार्थों का संबध है वह इन चार इन्द्रियों से ही होता है, चक्षु और मन में नहीं होता है, कारण ये दोनों अप्राप्य

इये सूत्रमात्र उत्पत्ति क्रमकी अपेक्षासे व्यञ्जनावग्रहद्वय वर्णन करे थे—
“से किं त वज्रणुमाहे” इत्यादि

प्रश्न—हे भद्रन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट व्यञ्जनावग्रहद्वय शु स्वरूप है ?

उत्तर—व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारको गताव्यो है (१) श्रोत्रेन्द्रिय—व्यञ्जनावग्रह, (२) घ्राणेन्द्रिय—व्यञ्जनावग्रह (३) जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह अने (४) स्पर्शेन्द्रिय—व्यञ्जनावग्रह आ रीते आ चार प्रकारको अवग्रह—व्यञ्जनावग्रह है

शका—इन्द्रियो तो पांच दर्शावी थे तथा उहुं मन पञ्च गताव्यु थे, तो पछी व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारको न होय छे अथवा शा भाटे कथु ? ते उ प्रकारको उडेवो भेधतो हुतो

उत्तर—उपकरणेन्द्रियको अने शब्दादिक पौद्गलिक द्रव्योंको ने परस्पर रभा संबध थाय छे ते व्यञ्जन छे आ बात पाठण गतावी वीधी छे इन्द्रियो अने पदार्थोको आ ने संबध छे ते अे चार इन्द्रियो वडे न थाय छे, अथु

ननु कथमप्राप्यकारित्वं तयोरवसीयते? उच्यते—विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात् । तथाहि—यदि प्राप्तमर्थं चक्षुर्मनो वा गृह्णीयात् तदा यथा स्पर्शनेन्द्रियं सूक्ष्मचन्दनादिकस्य अङ्गारादिकस्य च प्राप्तस्यार्थस्य पङ्क्तिं कुर्वत् तत्कृतानुग्रहोपघातभाग् भवति, तथा चक्षुर्मनश्चापि स्यात् विशेषाभावात्, न तु तथा भवति, तस्मादेतद्द्वयमप्राप्यकारीति सिद्धम् ।

कारी है । अपने विषय के साथ सबध किये बिना ही ये दोनों इन्द्रिया उसका ज्ञान करा देती हैं । इस तरह व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का ही होता है, उह प्रकारका नहीं ।

शका—चक्षु और मन अप्राप्यकारी हैं—विषय के साथ सबध किये बिना ही अपने विषय का ज्ञान करा देते हैं, यह बात कैसे जानी जाती है ।

उत्तर—‘ये दोनों अप्राप्यकारी हैं’ यह बात इस तरह जानी जाती है कि इनमें अपने विषय से कृत उपघात और अनुग्रह नहीं होता है । यदि प्राप्त अर्थ को चक्षु और मन ग्रहण करे तो जिस प्रकार प्राप्त अर्थ को ग्रहण करनेवाली स्पर्शनेन्द्रिय में अपने विषयद्वारा सूक्ष्म, चदन-अंगार आदि द्वारा—अनुग्रह और उपघात देखा जाता है उसी तरह इन दो इन्द्रियों में यह बात देखी जानी चाहिये, परन्तु ऐसी बात इनमें नहीं देखी जाती है, इसलिये ये दो अप्राप्यकारी माने गये हैं ।

अने मनमा थतो नथी, कारणु ते अने अने अप्राप्यकारी छे पोताना विषय साथे सपडं कर्था बिना न अने अने इन्द्रियो तेनु ज्ञान करावी हे छे आरीते व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारनो न होय छे, छ प्रकारनो नही

शका—अक्षु अने मन अप्राप्यकारी छे—विषयनी साथे सपडं कर्था बिना न पोताना विषयनु ज्ञान करावी हे छे, अने बात केवी रीते नाली शकय ?

उत्तर—अने अने अप्राप्यकारी छे, अने बात आ रीते नाली शकय छे हे तेमनामा पोताना विषय वडे ठराथेल उपघात अने अनुग्रह होता नथी. जे प्राप्त अर्थने अक्षु अने मन अडणु करे तो जे रीते प्राप्त अर्थने अडणु करनारी स्पर्शनेन्द्रियमा पोताना विषय द्वारा सूक्ष्म, चदन-अंगार आदि द्वारा—अनुग्रह अने उपघात जेवा भये छे, अने रीते अने अने इन्द्रियोमा आ बात देखावी जेअने, पणु अने वात तेमनामा देखाती नथी तेथी अने अने अप्राप्यकारी मानवामा आवी छे

નવેય ન દૃશ્યતે, ચતુષ્પોઽપિ દિ વિપયઋતાનુમાદોપધાતૌ મયતઃ । તથાદિ-
મેવરક્તિ નમસિ પ્રચ્છદમાર્તઞ્ડમઞ્ડલ વશ્યતો મયતિ ચતુષ્પો વિપાત', તથા ચન્દ્રમ-
ણ્ડલ તરફમાલોપગોમિત જલ ગાત્રાલ દ્વિગિતરુમઞ્ડલ ન વશ્યતપ્રશ્નુષ્પોઽનુમાદો મવ
તીતિ, તન્માનુષ્પઃ પ્રાપ્યકારિત્વમેવ મિશ્યતીતિચેત્ ,

અત્રોન્યતે—વિપયઋતાનુમાદોપધાતૌ ચતુષ્પ મર્યાદા ન મયત, ઇતિ વ્યંન
ઘૂમઃ કિં તુ ણતાવંદેવ ઘૂમ—યદા વિપય વિપયતયા ચતુષ્પલમ્બતે, તદા

શકા—આપ જેમા કૈસે ફાતે ફે કિ વશ્ચુ મે વિપયઋત ઉપધાત
ઔર અનુગ્રહ નર્ના દેગ્યા જાના ફે । વિપયઋત ઉપધાત ઔર અનુગ્રહ વશ્ચુ
ઇન્દ્રિય મેં દેગ્યા જાતા હૈ, અતઃ ઉમમે અન્ય ઇન્દ્રિયોં કી તરફ પ્રાપ્યકારિતા
સિદ્ધ હોતી હૈ । મેવરક્તિ આકાશ મે જો વ્યક્તિ સૂર્યમંડલ કા નિરીક્ષણ
કરતા હૈ ઉમકે વશ્ચુ કા વિધાત હોતા હૈ, તથા ચન્દ્રમંડલ કા, તરફ-
માગા સે ઉપગોમિત જલ કા, દરિતઘાસ કા ણ્વ હરે ૨ વૃક્ષોં કા જો
નિરીક્ષણ કરતા હૈ ઉસકી આગ્યોં મેં શીતલતા આતી હૈ, યદ વશ્ચુ કા
વિપયઋત ઉપધાત ણ્વ અનુગ્રહ હૈ ।

ઉત્તર—હસ કથનસે વશ્ચુમે પ્રાપ્યકારિતા સિદ્ધ નર્ના હોતી હૈ ।
હસસે તો કેવલ યહી વાત જાની જાતી હૈ કિ દ્રવ્યકે સપથસે વશ્ચુકા
ઉપધાત ઔર અનુગ્રહ હોના હૈ । હમ ઇમ વાતકા નિપેધ થોડે હી કરતે
હૈં કિ વિપય-પદાર્થ-ઋત ઉપધાત ઔર અનુગ્રહ વશ્ચુમે નર્ના હોતા હૈ ?
કિન્તુ હમ તો યદ વતલાતે હૈ કિ વશ્ચુ જવ પદાર્થકો વિપય કરતા હૈ

શકા—આપ એમ કેવી રીતે કહો છો કે ચતુષ્પા વિપયઋત ઉપધાત અને
અનુગ્રહ દેખાતા નથી વિપયઋત ઉપધાત અને અનુગ્રહ વશ્ચુ ઇન્દ્રિયમા ભેદ
મળે છે, તેથી તેમા ખીજ ઇન્દ્રિયોની જેમ પ્રાપ્યકારિતા સિદ્ધ થાય છે એવ
રહિત આકાશમા જે વ્યક્તિ સૂર્યમંડળનુ નિરીક્ષણ કરે છે તેના ચતુષ્પો વિધાત
થાય છે, તથા ચન્દ્રમંડળનુ તરંગમાળાથી શોભતા જળનુ, લીલા ઘાસનુ અને
લીલાછમ વૃક્ષોનુ જે નિરીક્ષણ કરે છે તેની આગોમા શીતળતા આવે છે, આ
વશ્ચુનો વિપયઋત ઉપધાત અને અનુગ્રહ છે

ઉત્તર—આ વધનથી ચતુષ્પા પ્રાપ્યકારિતા સાબીત થતી નથી તેનાથી
તો ક્રૂત એજ વાત જાણવા મળે છે કે દ્રવ્યના સપથથી વશ્ચુનો ઉપધાત અને
અનુગ્રહ થાય છે એમ એ વાતનો નિપેધ થોડો કરીએ છીએ કે વિપય-પદાર્થઋત
ઉપધાત અને અનુગ્રહ વશ્ચુમા થતો નથી ? પણ એમ તો એ બતાવીએ છીએ કે
વશ્ચુ જ્યારે પદાર્થને વિપય કરે છે ત્યારે તે વિપયભૂત પદાર્થને વિપય કરે છે

तत्कृतावनुग्रहोपघातौ तस्य न भवत इति, तस्मात् तदप्राप्यकारि । यदा तु विषयं विषयतया नावलम्बते किं तु यदा-चक्षुषि स्वोपघातकावयवाणुप्रवेशो भवति, तदोपघातः, अनुग्रहकाग्रायवाणुप्रवेशे सति चानुग्रहो भवति । यथा-प्रचण्ड-मार्तण्डरश्मयः सर्वत्रापि प्रसरन्तो यदा चक्षुषि समाप्ता भवन्ति, तदा ते स्पर्शनेन्द्रियमिव चक्षुरूपप्रान्ति, तथा चन्द्ररश्मयःचक्षुषि समाप्ताः सन्तः स्पर्शनेन्द्रियमिव चक्षुरनुगृह्णन्ति, तथा-चक्षुषि जलकणसस्पृष्टपत्रनसस्पर्शादनुग्रहो भवति, तथा-शाड्वलतरुच्छायासपर्कशीतीभूतममीरसस्पर्शादनुग्रहो भवति । विषयतयाऽवलम्बने तु न भवति चक्षुषि तत्परमाणुप्रवेशस्तस्माद् विषयतया जलाद्यवलीरुने

तव उस विषयभूत पदार्थसे चक्षुका उपघात और अनुग्रह नहीं होता है, इसलिये वह अप्राप्यकारी है । चक्षु का पूर्वोक्तकथन से जो उपघात अनुग्रह बतलाये गये हैं वे उसमें अपने द्वारा उन्हें गृहीत करने से नहीं हुए हैं किन्तु जब अपने उपघातक अवयवाणु का प्रवेश उसमें हो जाता है उस समय उसके द्वारा उसका उपघात होता है, इसी तरह अनुग्रह होता है । जैसे प्रचण्ड मार्तण्ड की किरणें फैलते समय जब चक्षु के साथ सवध करती हैं उस समय वे स्पर्शनेन्द्रियकी तरह चक्षु का उपघात करती हैं । तथा चन्द्र की किरणें जब चक्षु के साथ सवध करती हैं तो वे स्पर्शनेन्द्रिय की तरह उसका अनुग्रह करती हैं । इसी तरह जलकणसिक्त वायु के सम्पर्श से उसका अनुग्रह होता है । परन्तु जब चक्षु इन्हें विषयरूप से अवलम्बन करता है तब चक्षु के भीतर इनके परमाणु का प्रवेश नहीं होता है । इस तरह विषयरूप से जलादिक के अचलो-

त्यारे ते विषयभूत पदार्थथी यक्षुनेो उपघात अने अनुग्रह थतो नथी, तेथी ते अप्राप्यकारी छे पूर्वोक्त कथनथी यक्षुनेो ने उपघात अनुग्रह णताववामा आव्या छे ते तेनामे पोताना द्वारा तेमने गृहीत करवाथी थयेल नथी, पछ न्यारे पोताना उपघातक अवयव अणुनेो प्रवेश तेमा थछ नय छे ते समये तेमना द्वारा तेना उपघात थाय छे अेव रीते अनुग्रहक अवयव अणुनेो न्यारे यक्षुमा प्रवेश थछ नय छे त्यारे तेमना द्वारा तेना अनुग्रह थाय छे जेम प्रयउ सूर्यना किरणो देलाती वधते न्यारे यक्षुनी साथे स पकं करे छे त्यारे तेओ स्पर्शनेन्द्रियनी जेम यक्षुनेो उपघात करे छे तथा चन्द्रना किरणो न्यारे यक्षुनी साथे स पकं करे छे त्यारे तेओ स्पर्शनेन्द्रियनी जेम तेना अनुग्रह करे छे अेव प्रमाणे जणउणु युक्त वायुना सस्पर्शथी तेना अनुग्रह थाय छे पछ न्यारे यक्षु विषयइये तेमनु अवलम्बन करे छे त्यारे यक्षुनी अएव तेमना परमाणुनेो प्रवेश थतो नथी अेव रीते विषयइये जलादिककु

उपघातामायादनुग्रहोपचारो मन्तव्यः । उपघाताभावेऽनुग्रहोपचारो लोके दृश्यते, यथाऽतिसूक्ष्माक्षरनिरीक्षणार्थं प्रिनिर्गम्य नीलहरितमनादिनिरीक्षणे यथासुखं लोकः प्रवर्तते तन्मादुपघाताभावेऽनुग्रहोपचारो भवतीति मतव्यम् । प्राप्यकारित्वे तु तुल्ये सपर्कं सूर्यं पश्यत' सूर्येण यथोपगतो भवति, तथा अग्निजलशूलादिनि

कन करने पर तत्कृत उपघात का अभाव होने से उममें अनुग्रह का उपचार माना जाता है । उपघात के अभाव में अनुग्रह का उपचार लोक में देगा जाता है, जैसे अतिसूक्ष्म अक्षरों के देखने से मनुष्य जब निवृत्त होकर नील, हरित वग्न आदि को देखने में प्रवृत्त होता है तो उससे उसको आगों में एक प्रकार का सुग्न का अनुभव होता है । यह सुखा भव ही न्यायान का अभाव है, और इसीसे उमके द्वारा अनुग्रह का उपचार कहा होता है । तात्पर्य इसका यह है कि अतिसूक्ष्म अक्षरों के देखने में आगों को जोर पढ़ता है, वह जोर नील वग्न आदिक के निरीक्षण करते समय नहीं होता है अतः लोग उससे दृष्टि का उपघात और नील वग्न आदिक से उसका अनुग्रह मान लेते हैं, परन्तु जब उस पर विचार किया जाता है तो यह अनुग्रह उपघातभाव होने से वहां उपचरित है, वास्तविक नहीं है । न तो विषयीकृत पदार्थ से चक्षु का उपघात होता है और न अनुग्रह ही होता है । यदि चक्षु को प्राप्यकारी माना जावे तो इस प्राप्यकारित्व की समानता में पदार्थ के साथ उमका सपर्क तुल्य रहता है । ऐसी स्थिति में जिस प्रकार सूर्य का निरीक्षण करते

अवबोधन करता तेना वडे करायेल उपघातना अभाव होवाथी तेना अनुग्रह हुने उपचार मानवामा आवे छे उपघातना अभावमा अनुग्रहने उपचार बोधमा जेवा भणे छे, जेभके अतिसूक्ष्म अक्षरने जेवा पछी मनुष्य न्यारे भूरा, लीला वग्न आदिने जेवाने प्रवृत्त थाय छे त्यारे तेथी तेने आप्तेमा अके प्रकारना सुणने अनुभव थाय छे आ सुणने अनुभव न व्याघातना अभाव छे, अने तेथी तेना वडे अनुग्रहने उपचार त्या होय छे तेनु तात्पर्य अे छे के अतिसूक्ष्म अक्षरने जेवामा आप्तेने जेर पडे छे, ते जेर नील वग्न आदिकडु निरीक्षण करती वभते पडतु नथी तेथी बोडो ते वडे दृष्टिने उपघात अने नीलवग्न आदिकथी तेना अनुग्रह मानी ले छे, पण न्यारे जेना पण विचार करवामा आवे छे त्यारे आ अनुग्रह उपघाताभाव होवाथा त्या उपचरित छे, वास्तविक नथी विषयीकृत पदार्थथी यक्षुने उपघात पण थतो नथी अने अनुग्रह पण थतो नथी जे यक्षुने प्राप्यकारी मानवामा आवे तो आ प्राप्यकारित्वनी समानतामा पदार्थनी साथे तेना सपर्क तुल्य रहे छे, जेवी परिस्थितिमा न प्रकार

रीक्षणो दाह-क्लेद-पाटनादयः कस्मान्न भवन्तीति । तस्माद्विषयदेशे चक्षुषो गमनं न भवति, नापि च चक्षुषि स्वविषयप्रवेशो भवति, ततश्च विषयतया मलम्बने चक्षुषस्तत्कृतोपघातानुग्रहौ न भवत इति स्थितम् ।

अपि च-यदि चक्षुः प्राप्यकारि, तर्हि स्वदेशगतरजोमलाञ्जनशलाकादिकं किं न पश्यति ? तस्माच्चक्षुरप्राप्यकार्येवास्तीति मन्तव्यम् ।

समय उसका आपकी दृष्टि से उपघात होता है उसी प्रकार अग्नि, जल, शूल आदिके निरीक्षण करते समय इसका सपर्क रहेगा तो फिर उस समय इनके द्वारा चक्षुका दाह, क्लेदन, एव पाटनादिक भी होना चाहिये, परन्तु ये बातें तो होती नहीं हैं, सो क्यों नहीं होती ? इस परसे विचारना चाहिये कि चक्षुमे प्राप्यकारिता नहीं है । अर्थात् चक्षु इन्द्रिय न तो विषयके पास जा कर उसका प्रकाशन करती है और न विषय ही चक्षुमें आ कर प्रविष्ट होता है, इस लिये विषयभूत ज्ञेयसे चक्षुका उपघात अनुग्रह कुछ भी नहीं होता है । यह सिद्धान्त ही ठीक है । दूसरी बात एक यह भी है कि यदि चक्षु प्राप्यकारी माना जावे तो फिर उसको अपनेमें पड़े हुए रजकण, मल एव अजनशलाका आदिका भी प्रकाशन करना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता है, अतः अप्राप्यकारी मतव्य ही निर्दोष है ।

मूर्ध्नु निरीक्षणं वरती वपते तेनो आपणी दृष्टिञ्च उपघातं थाय छे अञ्ज प्रजारे अग्नि, जल शूल आदितु निरीक्षणं वरती वपते तेनो म पड' रडेशे तो पछी ते समये तेभना द्वारा चक्षुने दाह, क्लेदन (पलणवु) अने पाटनादिक पणु थवु जेधं अे पणु अे भावते। अनती नथी तेनु वारणु नुं ?

आ उपरथी विशारवु जेधं अे चक्षुभा प्राप्यकारिता नथी अेटले के चक्षु इन्द्रिय वस्तुनी पासे वरधने तेनु प्रकाशन वरती नथी अने वस्तु ज चक्षुभा आवीने प्रवेश पणु वरती नथी, तेथी विषयभूत जेयथी अथुने उपाघात अनुग्रह उधं पणु वनु नथी आ सिद्धात ज पराभञ्ज छे थीञ्च अे वत अे पणु उ के जे अथुने प्राप्यकारी मानवामा आवे तो पछी तेणु पोतानी अदर पडेला रजकण, मल अने अजनशलाका आदितु पणु प्रकाशन करवु जेधं अे, पणु अे म थतु नथी तेथी अप्राप्यकारी मतव्य जे निर्दोष छे.

ननु यदि चक्षुरप्राप्यकारीति मन्यसे, तर्हि मनोऽद् विज्ञेयेण मयानपि दूरव्यवहितादीनर्यान् कृतो न गृह्णाति ? । यदि हि प्राप्तमेव विषय चतुर्गृह्णाति, तर्हि युक्तं, देवानामपिचक्षुरनाश्रितमेव अदूरदेशमेव अदूरस्थमेव यस्तु वा गृह्णाति, नाश्रितदूरदेशदूरस्थं वा, इति । तत्र चक्षुषो रश्मीनां गमनासमयेन सपर्कसंभवत्वात्, तस्माच्चक्षुः प्राप्यकार्येण मन्तव्यम् । तथा यदि हि—चक्षुरप्राप्यकारि भवेत् तदा तदावर्णमुपगतवर्णसमर्थं न स्यात्, ततश्चावर्णसद्भावेऽनुपलभ्यमान्यथोपलब्धिरिति व्यवस्था न स्यात् । प्राप्यकारित्वे तु व्यवहिते तदावर्णसद्भावाच्चक्षुःसपर्कसंभवेः, अतिदूरेऽपि चक्षुषो रश्मीनां गमनामात्रान्न चक्षुःसपर्कसंभव इति चक्षुः प्राप्यकार्येवेति मन्तव्यमिति चेत्,

शङ्का—यदि चक्षुको अप्राप्यकारी आप मानते हो तो वह मनकी तरह बिना किसी विशेषताके दूर व्यवस्थित पदार्थों का प्रकाशन क्यों नहीं करता है ? । अर्थात् जब चक्षु अप्राप्त अर्थका प्रकाशक माना जाता है तो यह बात स्वाभाविक है कि उसके द्वारा समस्त दूरस्थित पदार्थोंका भी प्रकाशन होना चाहिये, मन जैसे दूरस्थित पदार्थोंका प्रकाशक माना गया है “जब चक्षु अर्थको प्राप्त हो कर उसका प्रकाश करता है तो ऐसी हालतमें उससे दूर व्यवस्थित अथवा आवृत पदार्थका प्रकाशन नहीं हो सकता, क्यों कि उनके साथ उसका सवध नहीं है । देवोंकी आंखें भी अदूरदेशस्थ अनावृत पदार्थों का ही प्रकाशन करती हैं, दूर देशस्थ, आवृत पदार्थका नहीं, क्यों कि वहां तक उनकी किरणें जा नहीं सकती हैं, अतः चक्षुकिरणोंके गमनके अभावमें उन पदार्थों के साथ असपर्क होनेकी वजहसे उन दूरदेशस्थ आवृत पदार्थोंका उनके

शङ्का—जे आप चक्षुने अप्राप्यकारी मानता हो तो ते मनकी जेम ठोड़ विशेषता बिना दूर रहल पदार्थोंनु प्रदर्शन केम करती नहीं ? जेठले के जे चक्षुने अप्राप्त अर्थनी प्रकाशक मानवामा आवे तो जे बात स्वाभाविक छे, के जेम मन दूर रहल पदार्थोंनु प्रकाशक बनाय छे, तेम तेना वडे पक्षु समस्त दूर पदार्थोंनु प्रदर्शन थलु जेधजे जे चक्षु अर्थने थाभीने तेने अतावे छे तो जेवी स्थितिमा तेनाथी दूर रहल अथवा ढकाजेल पदार्थोंनु प्रकाशन थर् शकतु नहीं, कारण के तेनी साथे तेना सपर्क नहीं होवानी आये पक्षु दूर नहीं जेवा प्रदेशमा रहल अनावृत पदार्थोंनु जे प्रकाशन करे छे, दूर देशस्थ आवृत पदार्थोंनु नहीं, कारण के त्या सुधी तेमना किरणो जेध शकता नहीं, तेथी चक्षु किरणोना गमनने अलावे ते पदार्थोंनी साथे असपर्क ने कारणे

ज्ञानचन्द्रिकाटीका-व्यञ्जनावग्रहमेव ।

उच्यते—मनोवचक्षुरप्राप्यकार्येवास्ति । अप्राप्यकारित्वाङ्गीकारे दूरव्यव-
दीनर्थान् कुतो न गृह्णातीति यद् दूषणमुपन्यस्त तस्य नास्त्यत्र प्रसङ्गः, यतः
मनोऽपि नाशेषान् विषयान् गृह्णाति, तस्यापि सूक्ष्मेष्वागमगम्यादिषु अर्थेषु
दर्शनात् । तस्माद् यथा मनोऽप्राप्यकार्येपि स्वावरणक्षयोपशमत्वात्
तथा—चक्षुरपि स्वावरणक्षयोपशमसापेक्षत्वादप्राप्यकार्येपि नियतविषयम्,
योग्यदेशावस्थितमात्रारूप विषयकम् । ततश्च न व्यवहितानामुपलब्धिप्रसङ्गः,
दूरस्थितानामपि ।

द्वारा प्रकाशन नहीं हो सकता है, अतः चक्षुद्वारा गृहीत
जब प्रकाशन होता है तो यह मानने में कोई बाधा नहीं है कि
प्राप्यकारी है ।

उत्तर—चक्षु मनकी तरह अप्राप्यकारी ही है । अप्राप्यकारी
जो ये पूर्वोक्त बातें कही गई हैं कि वह मनकी तरह दूर, व्यवहित
र्थों का प्रकाशन क्यों नहीं करता है सो इन बातों के लिये यहाँ
का अवसर ही नहीं है, कारण कि मन भी तो आगमगम्य आदि सूक्ष्म
र्थों का प्रकाशन नहीं करता है । इस लिये जैसे मन अप्राप्यकारी होने
भी अपने आवरणके क्षयोपशमके अनुसार नियत विषयवाला माना
है, अर्थात्—योग्य देशमें अवस्थित हुए पदार्थका ग्राहक माना गया
अनियत पदार्थका नहीं, इसी तरह चक्षु भी अप्राप्यकारी होता है
अपने आवरण के क्षयोपशमानुसार नियत विषय का प्रकाशक होता

ये दूर देशस्थ आवृत पदार्थोंनु तेमना द्वारा प्रकाशन थई शकतु नथी, ते
चक्षु द्वारा गृहीत पदार्थोंनु जे जे प्रकाशन थाय छे तो जे मानवामा के
बाधा नथी के चक्षु प्राप्यकारी छे

उत्तर—चक्षु मननी जेम अप्राप्यकारी जे छे अप्राप्यकारीना पक्ष
जे पूर्वोक्त जे बातें कहेवाछे के ते मननी जेम दूर रहल पदार्थोंनु
केम करता नथी तो जे बातोंने माटे अछी प्राप्त थवानो अवसर जे
कारण के मन पक्ष आगमगम्य आदि सूक्ष्म पदार्थोंनु प्रकाशन करतु
तेथी जेम मन अप्राप्यकारी होवा छता पक्ष पोताना आवरणोना क्षयोपशम-
प्रभावे नियतविषयवाणु मनायु छे—अटले के योग्य देशमा रहल पदार्थोंनु
ग्राहक मनायु छे, अनियत पदार्थोंनु नही जेन रीते चक्षु पक्ष अप्राप्यकारी
होवा छता पोताना आवरणोना क्षयोपशम प्रभावे नियत विषयना प्रकाशक

अपि च—अप्राप्यकारित्वेऽपि योग्यदेशापेक्षा तथाविधस्वभावविशेषाद् दृश्यते, यथा—अयस्कान्तस्य ('चुरक' इति प्रसिद्धम्) । लोहग्रामाप्यस्य कर्षणं प्रवर्तमानोऽयस्कान्तो न सद्यः सर्वस्यापि जगद्वर्तिनो लोहस्याकर्षको भवति, किं तु प्रतिनियतस्यैव ।

अनियत विषय का नहीं, अर्थात्—योग्य देशमें रहे हुए रूपका प्रकाशन करता है, अविषयभूत स्थान में रहे हुए रूपका नहीं । इस तरह यह घात समझने में देरी नहीं लगती है कि चक्षु व्यवहित पदार्थों का तथा दूरस्थित पदार्थों का प्रकाशन नहीं करता है, अतः इस प्रकार का प्रसंग जो शकाकार ने अप्राप्यकारित्व की मान्यता में दिया है वह उचित नहीं है ।

तथा—तथाविधस्वभावविशेष से चक्षु में योग्य देश की अपेक्षा देखी जाती है । तात्पर्य इसका यह है कि चक्षु अप्राप्यकारी होने पर भी योग्य देशस्थित वस्तु का ही प्रकाशन करेगा, कारण उसका ऐसा ही स्वभाव है । अयोग्य देशस्थित वस्तु के प्रकाशन करने का उसका स्वभाव नहीं है । जिस प्रकार चुमक पत्थर का स्वभाव अप्राप्त लोहे को आकर्षण करने का है तो इसका तात्पर्य यह थोड़े ही होता है कि वह ससारभर के लोहे का आकर्षण करे । वह तो योग्य देशस्थित लोहे का ही आकर्षण करेगा, कारण कि उसका ऐसा ही स्वभाव है । इसी तरह चक्षु का भी

होय छे, अनियत विषयना नडी, अेटवे के योग्य देशमा रहेल इपनु प्रकाशन करे छे, विषयभूत स्थानमा रहेल इपनु नडी आ रीते अे वात समजवामा वार थती नथी के चक्षु व्यवहित पदार्थोनु तथा दूर रहेल पदार्थोनु प्रकाशन करता नथी, तेथी आ प्रकारने प्रसंग जे शका करनारे अप्राप्यकारीनी मान्यता माटे आपेख छे ते योग्य नथी

तथा—ते प्रकारना स्वभाव विशेषथी चक्षुमा योग्य देशनी अपेक्षा देभाय छे तेनु तात्पर्य अे छे के चक्षु अप्राप्यकारी होवा छता पणु योग्य स्थानमा रहेल पदार्थोनु ज प्रकाशन करेशे, कारण के तेना अेवो स्वभाव छे अयोग्य स्थानमा रहेल वस्तुनु प्रकाशन करवाने तेना स्वभाव ज नथी जेम लोह-चुमकने स्वभाव अप्राप्त लोहाने आकर्षवाने छे तो तेनु तात्पर्य अे थोडु छे के ते आभा ससारना लोहाने आकर्षे । तेतो योग्य स्थानमा रहेल लोहानु आकर्षे करेशे, कारण के तेना अेवो ज स्वभाव छे अेज प्रमाणे चक्षुने।

अत्र केचित्-उदन्ति अयस्कान्तोऽपि प्राप्यकारी भवति अयस्कान्तच्छायाऽणुभिः सह समाकृष्यमाणस्तुनः सम्प्रयात्, केवलं ते छायाणवः सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते इति तदसत्, तद्ग्राहरूपमाणाभावात्, नहि तत्र छायाणुसमवग्राहकं प्रमाणमस्ति, प्रमाणरहितं न किमपि स्वीकर्तुं शक्नुमः ।

नन्वत्र छायाणुसभवे प्रमाणमनुमानमस्ति, इह हि- 'यदाकर्षणं, तत् ससर्गं पूर्वकं, यथाऽयोगोलोकास्याकर्षणं संदशेन वा अयस्कान्तेन वा भवति, तत्रायस्कान्ते साक्षात्संसर्गः क्वचिदपि न दृष्ट इति साक्षात्संसर्गः प्रत्यक्षमाधित, ततश्च तत्र तच्छायाणुभिः ससर्गो मन्तव्य इति चेन्न, हेतोरनैकान्तिकत्वात् मन्त्रेण व्यभिचारात्, मन्त्रः स्मर्यमाणोऽपि विवक्षित वस्तु आकर्षति, न च तत्र कोऽपि संसर्ग इति ।

ऐसा ही स्वभाव है कि वह अप्राप्यकारी होता हुआ भी योग्य देशस्थित पदार्थ का ही प्रकाशन करता है, देशभर के सब पदार्थों का नहीं ।

कोई २ ऐसा कहते हैं कि अयस्कान्त (चुम्बक पत्थर) अप्राप्यकारित्व की सिद्धि में दृष्टान्तभूत नहीं बन सकता है, कारण कि वह स्वयं प्राप्यकारी है । अयस्कान्त जो लोहे का आकर्षण करता है वह अप्राप्त होकर उसका आकर्षण नहीं करता है किन्तु आकृष्यमाण वस्तु के साथ में उसके छायाणुओं का सवध होता है, इसी से वह उसका आकर्षण करता है । वे छायाणु अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे देखे नहीं जाते हैं । ऐसा कथन भी ठीक नहीं है, कारण कि छायाणुका ग्राहक कोई प्रमाण नहीं है । जिसका ग्राहक प्रमाण नहीं होता है वह केवल कहने मात्रसे स्वीकार करने योग्य नहीं होता है ।

पणु ओवे स्वभाव छे केते अप्राप्यकारी होवा छता पणु योग्य प्रदेशमा रडेल पदार्थनु न प्रकाशन करे छे, समस्त देशना समस्त पदार्थोनु नहीं

कोई कोई ओवु कहे छे के अयस्कान्त (चुम्बक पत्थर) अप्राप्यकारीत्वनी साणीतीमा दृष्टान्त रूप जनी शकतो नथी, कारण के ते पोते न प्राप्यकारी छे चुम्बक पत्थर ने लोढानु आकर्षणु करे छे ते अप्राप्त धर्षने तेनु आकर्षणु करतो नथी पणु आकर्षणी वस्तुनी सथे तेना छायाणुओनो सवध होय छे, तेथी ते तेनु आकर्षणु करे छे ओ छायाणु अत्यन्त सूक्ष्म होवाथी देखाता नथी ओवु कथन पणु योग्य नथी, कारण के छायाणुनो ग्राहक कोई प्रमाणु नथी नेनो ग्राहक (ग्राहण करनार) प्रमाणु न होय ते इह कहेवा मात्रथी स्वीकार करवामा आवतु नथी

શબ્દ—‘છાયાણુ છે’ દસ ઘાતના સવાદક્ર અનુમાન પ્રમાણ છે ઓર વહુ દસ તરફસે છે “ જો ૨ આકર્ષણ હોતા હૈ વહુ ૨ સમર્ગપૂર્વક હોતા હૈ, જૈસે અયોગોલકના આકર્ષણ મહામીસે હોતા હૈ, અથવા અયસ્કાન્ત સે હોતા હૈ । સહાસી સે જો અયોગોલકના આકર્ષણ હોતા હૈ ઉસમ્મે સહાસી ઓર અયોગોલકના સમર્ગ સાક્ષાત્ દિગ્વતા હૈ, પરન્તુ અયસ્કાન્તકે દ્વારા જવ અયોગોલકના આકર્ષણ હોતા હૈ ઉસ સમય અયસ્કાન્તમ્મે વહુ સસર્ગ સાક્ષાત્ નહીં દિગ્વતા હૈ, કયોં કિ અયસ્કાન્તમ્મે સાક્ષાત્ સસર્ગ કરી પર મી દેવા નહીં ગયા હૈ, દસ લિયે સાક્ષાત્સસર્ગ વહાં પ્રત્યક્ષસે વાધિત હોતા હૈ, પરન્તુ જવ ણેસી વ્યાસિ હૈ કિ જો ૨ આકર્ષણ હોતા હૈ વહુ ૨ સસર્ગપૂર્વક હોતા હૈ તવ વહુ માનના પહતા હૈ કિ અયસ્કાન્તકે છાયાણુઓંકે સાથે લોહેકા મસર્ગ હૈ ।

ઉત્તર—દસ પ્રકારના કથન મી ઠીક નહીં હૈ, કારણ વહુ વ્યાસિ યુક્તિયુક્ત નહીં હૈ । નિર્દોષ વ્યાસિસે ઉત્પન્ન અનુમાન હી પ્રમાણકોટિ મે આતા હૈ । યુક્તિયુક્ત નહીં હોનેકે કારણ વહુ હૈ કિ—દેવો મત્રાદિકોં કે દ્વારા મી તો આકર્ષણ હોતા હૈ, પરન્તુ આકર્ષણીય વસ્તુકે સાથે ઉસકા કોઈ સસર્ગ નહીં હોતા હૈ । દસ તરફ સાધ્યાભાવમ્મે હેતુકે રહને સે આકર્ષક હેતુ વ્યભિચરિત હો જાતા હૈ । દસમ્મે સમજાને જૈસી કોઈ

શબ્દ—“છાયાણુ છે” આ વાતનુ સવાદક્ર અનુમાન પ્રમાણ છે અને તે આ પ્રમણ છે—“ જે જે આકર્ષણ થાય છે તે તે સસર્ગપૂર્વક થાય છે જેમકે અયોગોલક નુ આકર્ષણ સહાસીથી થાય છે, અથવા ચુબક પથ્થરથી થાય છે સહાસીથી અયોગોલકનુ જે આકર્ષણ થાય છે, તેમા સહાસી અને અયોગોલકનો સસર્ગ પ્રત્યક્ષ દેખાય છે, પણ ચુબક પથ્થરના દ્વારા ન્યારે અયોગોલકનુ આકર્ષણ થાય છે તે સમયે ચુબક પથ્થરમા આ સસર્ગ પ્રત્યક્ષ દેખાતો નથી, કારણ કે લોહકાન્તમા સાક્ષાત્ સસર્ગ ત્યાં પણ જોવામા આવ્યો નથી, તેથી ત્યાં સાક્ષાત્ સસર્ગ ત્યાં પ્રત્યક્ષથી બાધિત થાય છે, પણ ન્યારે એવી વ્યાસિ છે કે જે જે આકર્ષણ થાય છે તે તે સસર્ગપૂર્વક થાય છે ત્યારે તો એ માનવું પડે છે કે લોહકાન્તના છાયાણુઓની સાથે લોહનો સસર્ગ છે

ઉત્તર—એ પ્રકારનુ કથન પણ બરાબર નથી, કારણ કે આ વ્યાસિ યુક્તિયુક્ત નથી નિર્દોષ વ્યાસિથી ઉત્પન્ન અનુમાન જે પ્રમાણ કોટિનુ છે યુક્તિયુક્ત ન હોવાનુ કારણ એ છે કે—મત્રાદિ દ્વારા પણ આકર્ષણ થાય છે પણ આકર્ષણીય વસ્તુની સાથે તેનો કોઈ સસર્ગ થતો નથી, આ રીતે સાધ્યાભાવમા હેતુના રહેવાથી આકર્ષણ હેતુ વ્યભિચરિત થઈ જાય છે તે

अपि च—यथा ज्ञायाणवः प्राप्तमेव लोह समार्कपन्ति, तथा काष्ठादिकमपि प्राप्तं कस्मान्न समार्कपन्ति । यदि प्रतिनियतशक्तिमत्त्वात् काष्ठादिक नार्कपन्ती-
त्युच्यते, तर्हि मनसोऽपि शक्तिः प्रतिनियतैवेति मनो यथा सूक्ष्मेष्वर्थेषु क्वचिन्न
ज्ञानमुत्पादयति, शक्तिप्रतिनियमात्, तथा चक्षुरपि व्यवहितदूरदेशस्थितान् विप-
यान्न गृह्णातीति मन्तव्यम्, किमनेन ज्ञायाणुपरिकल्पनेनेति ।

वात नहीं है कि—मत्रका जव मात्रिक स्मरण करता है तव उसके द्वारा
विवक्षित वस्तुका आकर्षण होता है ।

फिर भी उत्तर यह है कि—जिस तरह छायाणु, प्राप्त हुए लोहका
आपके मन्तव्यानुसार आकर्षण करते हैं तो इसी तरह वे प्राप्त काष्ठादिक
का आकर्षण क्यों नहीं करते हैं ? यदि इसके समाधानमें ऐसा कहा
जाय कि उनकी शक्ति प्रति नियत है, प्रति नियत शक्तिविशिष्ट होनेसे
ही वे प्राप्त काष्ठादिकका आकर्षण नहीं करते हैं तो फिर यही बात मनमें
भी मान लेनी चाहिये, अर्थात् मनकी शक्ति भी प्रतिनियत ही है इसी
लिये वह सूक्ष्मादिक अर्थों में ज्ञानका उत्पादक नहीं होता है, अतः
जिस प्रकार प्रतिनियत शक्तिवाला होनेसे मन कहीं सूक्ष्मादिक पदार्थों
में ज्ञानका उत्पादक नहीं होता, उसी प्रकार चक्षु भी व्यवहित एव दूर
देशस्थित विषयोंका प्रकाशक नहीं होता है फिर अपनी बातको सिद्ध
करनेके लिये अप्रसिद्ध छायाणुओंकी कल्पना करनेसे क्या लाभ ? ।

जववा जेवी केअ वात नथी ते—ज्यारे मात्रिक मत्रनु स्मरणु करे छे त्यारे त्यारे
तेना द्वारा विवक्षित वस्तुनु आकर्षणु थाय छे

वणी थीले जवाण जे छे के जेम छायाणु, प्राप्त थयेल बोढानु आपना
मत प्रमाणे आकर्षणु करे छे तो जे प्रमाणे ते प्राप्त काष्ठादिकनु आकर्षणु
केम करता नथी ? जे तेना समाधानरूपे जेम कडेवाभा आवे के तेनी शक्ति
प्रतिनियत छे प्रतिनियत शक्तिविशिष्ट होवाथी ते प्राप्त काष्ठादिकनु आकर्षणु
करता नथी तो पछी जेवा वात मननी भाणतभा पणु मानवी जोधजे, जेटवे
के मननी शक्ति पणु प्रतिनियत जे छे तेथी ते सूक्ष्मादिक अर्थोभा ज्ञाननु
उत्पादक थतु नथी, तेथी जेम प्रतिनियत शक्तिवाणु होवाने लीधे मन केअ
सूक्ष्मादिक पदार्थोभा ज्ञाननु उत्पादक थतु नथी जे प्रमाणे यक्षु पणु व्यवहित
अने इर स्थानभा गडेल वस्तुनु प्रकाशक थतु नथी, तो चेतानी वात सिद्ध
करवाने माटे अप्रसिद्ध छायाणुजोनी कल्पना करवाथी शे लाल ?

यत्तु-व्यवहितार्थानुपलब्धिदर्शनान्चक्षुः प्राप्यकारीति मन्यते तदयुक्तम्-
काचा-भ्रुकपटल-स्फटिकैर्व्यवहितस्याप्युपलब्धिदर्शनेन हेतोरनृकान्तिरुत्वात् ।

अथ नयनरश्मयो निर्गत्य तमर्थं गृह्णन्ति, नयनरश्मयथ तैजसत्वान्न तेजोद्रव्यैः
प्रतिस्खलिता भवन्तीति चक्षुषः प्राप्यकारित्वस्वीकारे नास्ति कश्चिद्दोष इति चेत्,
तदपि न समीचीनम्, महाज्वालादीं स्वलनोपलब्धेः, तन्मान्चक्षुरप्राप्यकारीति
स्थितम् ॥

एवं मनसोऽप्यप्राप्यकारित्वं विनियम् । तत्रापि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात् ।

‘व्यवहित अर्थकी उपलब्धि नहीं होती’ इससे जो तुम चक्षुमें
प्राप्यकारिता मानते हो सो यह बात ठीक नहीं है, कारण कि काच,
एव भोडल एव स्फटिकमणियोंसे ढके हुए व्यवहित पदार्थों की भी
उपलब्धि होती देखी जाती है ।

यदि इस पर यह कहा जावे कि चक्षुकी किरणें निकल कर उस
काच अभ्रकपटल आदिसे व्यवहित पदार्थको ग्रहण करती हैं। ये रश्मिया
तैजस हैं अतः तैजस द्रव्योंद्वारा इनकी प्रतिस्खलना-स्कावट नहीं होती
है, इस लिये चक्षुको प्राप्यकारि माननेमें कोई दोष नहीं है, सो ऐसी
धारणा भी युक्तियुक्त नहीं है, कारण कि महाज्वाला आदिमें इसकी
स्खलना देखी जाती है। इस लिये यही मानना चाहिये की चक्षु
अप्राप्यकारी है ।

इसी तरह विषयकृत अनुग्रह और उपघातका मनके साथ सपर्क
न होनेसे उसको भी अप्राप्यकारी जानना चाहिये ।

“व्यवहित अर्थकी प्राप्ति होती नहीं” तबे चक्षुमा ने प्राप्यकारिता
माना छे ते वात परापर नहीं, कारण के काच, अभ्रक अने स्फटिकमणियोंमा
ढकायेल व्यवहित पदार्थोनी उपलब्धि होती होभाय छे

ने ये भावतमा अम कहेवाभा आवे के-चक्षुना किरणो निकलीने ते
काच, अभ्रकपटल, आदिथो आच्छादित पदार्थने अडलु करे छे ये किरणो
तेजस्वी छे तेथी तेजस्वी द्रव्यो द्वारा तेनी इकावट होती नहीं, तेथी चक्षुने
प्राप्यकारी मानवामा कोई दोष नहीं, तो अेवी मान्यता पणु युक्तियुक्त नहीं,
कारण के अग्नि महाज्वाला आदिमा तेनी इकावट होभायछे ते कारणे अम न
मानवु नेछंअे के चक्षु अप्राप्यकारी छे अेव रीते विषयकृत अनुग्रह अने उप-
घातनो मननी साथे पणु सपर्क न होवाथी तेने पणु अप्राप्यकारी
मानवु नेछंअे

ननु मनसोऽपि हर्षादिप्पनुग्रहः शरीरोपचयदर्शनात्, तथाहि—हर्षप्रकर्षवशान्मनसः पुष्टता भवति, तद्वशाच्च शरीरस्योपचयः । तथा—शोकादिभिः शरीरदौर्बल्योरक्षतादिदर्शनात्, अतिशोककरणेन मनसो विघातः सम्भवति ततश्च शरीरदौर्बल्यम्, अतिचिन्ताकरणेन तु हृदयरोगो भवतीति चेत् ?

उच्यते—मनसोऽप्राप्यकारित्वं वर्तते, विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात् । विषयकृतोऽनुग्रहस्तथोपघातश्च मनसो न भवति, शरीरस्यानुग्रहोपघातौ मनः स्वयं पुद्गलमयत्वात् कर्तुं शक्नोति, यथा—इष्टरूप आहारः परिभुज्यमानः शरीरस्य पुष्टिं करोति, अनिष्टरूपस्तु हानिं करोति, तथा मनोऽपीष्टपुद्गलोपचितं हर्षादिकारणं सत् पुष्टिं जनयति, अनिष्टपुद्गलोपचितं च शोकादिचिन्ताकारणं सत् शरीरस्य हानिं जनयति । तस्माद् मनोऽपि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावाद् अप्राप्यकारीति स्थितम् ।

शका—विषयकृत उपघात और अनुग्रहका सबध मनमें देखा जाता है, जैसे जब हर्षपरिणति होती है तो मनमें पुष्टता आती है, और इस पुष्टतारूप प्रसन्नता की वजहसे शरीरका उपचय होता है । इसी तरह जब शोक आदिका सबध होता है तो उस समय मनका विघात होता है, इससे शरीरमें दुर्बलता आती है । अति चिन्ता करने से मनुष्य हृदयरोगी होता हुआ देखा जाता है । इससे इसी बातकी पुष्टि होती है कि मनके ऊपर विषयकृत पदार्थों का अनुग्रह और उपघात होता है, फिर यह मन अप्राप्यकारी कैसे हो सकता है ?

उत्तर—मनमें प्राप्यकारिताका निषेध हम इस लिये करते हैं कि उसमें विषयकृत अनुग्रह और उपघात नहीं होते हैं, किन्तु मन पुद्गल-

शका—विषयकृत उपघात अने अनुग्रहने सबध मनमा देखाय छे जेभ के न्यारे दुर्षपरिणति थाय छे त्यारे मनमा पुष्टता थाय छे, अने आपुष्टताइप प्रसन्नताने कारणे शरीरने उपचय थाय छे जेभ रीते न्यारे शोक आदिने सबध थाय छे त्यारे मनमा विघात थाय छे, ते कारणे शरीरमा दुर्बलता आवे छे, अतिचिन्ता करवाधी, माणुस हृदयरोगी थतो जेवा भणे छे, तेथी जे वातने पुष्टि भणे छे के मन उपर विषयकृत पदार्थाने अनुग्रह अने उपघात थाय छे, तो पछी आ मन केवी रीते अप्राप्यकारी होथ शके ?

उत्तर—जेभ मानवामा प्राप्यकारिताने निषेध जे कारणे करीजे छीजे के तेमा विषयकृत अनुग्रह अने उपघात थता नथी, पणु मन पुद्गलमय होवाधी

यत्तु-व्यवहितार्थानुपलब्धिदर्शानान्चक्षुः प्राप्यकारीति मन्यते तदयुक्तम्-
काचा-भ्रुकपटल-स्फटिकैर्व्यवहितस्याप्युपलब्धिदर्शनेन हेतोरनैकान्तिमत्वात् ।

अथ नयनरश्मयो निर्गत्य तमर्थं गृह्णन्ति, नयनरश्मयश्च तैजसत्वात् तैजोऽन्यैः
प्रतिस्खलिता भवन्तीति चक्षुः प्राप्यकारित्वस्वीकारे नास्ति कश्चिदोप इति चेत्,
तदपि न समीचीनम्, महाज्वालादां स्वलनोपलब्धिः, तस्मान्चक्षुरप्राप्यकारीति
स्थितम् ॥

एव मनसोऽप्यप्राप्यकारित्वं विनियम् । तत्रापि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात् ।

‘व्यवहित अर्थकी उपलब्धि नहीं होती’ इससे जो तुम चक्षुमें
प्राप्यकारिता मानते हो सो यह बात ठीक नहीं है, कारण कि काच,
एव भोडल एव स्फटिकमणियोंसे ढके हुए व्यवहित पदार्थों की भी
उपलब्धि होती देखी जाती है ।

यदि इस पर यह कहा जावे कि चक्षुकी किरणें निकल कर उस
काच अभ्रकपटल आदिसे व्यवहित पदार्थको ग्रहण करती हैं । ये रश्मिया
तैजस हैं अतः तैजस द्रव्योंद्वारा इनकी प्रतिस्खलना-स्कावट नहीं होती
है, इस लिये चक्षुको प्राप्यकारि माननेमें कोई दोष नहीं है, सो ऐसी
धारणा भी युक्तियुक्त नहीं है, कारण कि महाज्वाला आदिमें इसकी
स्वलना देखी जाती है । इस लिये यही मानना चाहिये की चक्षु
अप्राप्यकारी है ।

इसी तरह विषयकृत अनुग्रह और उपघातका मनके साथ सपर्क
न होनेसे उसको भी अप्राप्यकारी जानना चाहिये ।

“व्यवहित अर्थनी प्राप्ति यती नथी” तमे चक्षुभा ने प्राप्यकारिता
माने छे ते वात परापर नथी, कारण के काच, अम्रण अने स्फटिकमणीयोभा
ढकायेव व्यवहित पदार्थोनी उपलब्धि यती हेभाय छे

जे जे भावतभा जेभ कहेवाभा आवे के-चक्षुना किरणो नीकणीने ते
काच, अम्रकपटल, आदिथी आच्छादित पदार्थने अडणु करे छे जे किरणो
तेजस्वी छे तेथी तेजस्वी द्रव्यो द्वारा तेनी इकावट यती नथी, तेथी चक्षुने
प्राप्यकारी मानवाभा कोठहोष नथी, तो जेवी मान्यता पणु युक्तियुक्त नथी,
कारण के अग्नि महाज्वाला आदिभा तेनी इकावट हेभायछे ते कारणे जेभ ज
मानवु जेधजे के चक्षु अप्राप्यकारी छे जेव रीते विषयकृत अनुग्रह अने उप-
घातने भननी साथे पणु सपर्क न होवाथी तेने पणु अप्राप्यकारी
मानवु जेधजे

ननु मनसोऽपि हर्षादिप्पनुग्रहः शरीरोपचयदर्शनात्, तथाहि—हर्षप्रकर्षवशान्म-
नसः पुष्टता भवति, तद्वशाच्च शरीरस्योपचयः । तथा—शोकादिभिः शरीरदोर्वल्योर-
क्षतादिदर्शनात्, अतिशोककरणेन मनसो विघातः सम्भवति ततश्च शरीरदोर्वल्यम्,
अतिचिन्ताकरणेन तु हृदयरोगो भवतीति चेत् ?

उच्यते—मनसोऽप्राप्यकारित्वं वर्तते, विषयकृतानुग्रहोपघाताभावात् । विष-
यकृतोऽनुग्रहस्तयोपघातश्च मनसो न भवति, शरीरस्यानुग्रहोपघातौ मनः स्वयं पुद्ग-
लमयत्वात् नर्तुं शक्नोति, यथा—इष्टरूप आहारः परिभुज्यमानः शरीरस्य पुष्टिं
करोति, अनिष्टरूपस्तु हानिं करोति, तथा मनोऽपीष्टपुद्गलोपचितं हर्षादिकारणं
सत् पुष्टिं जनयति, अनिष्टपुद्गलोपचितं च शोकादिचिन्ताकारणं सत् शरीरस्य
हानिं जनयति । तस्माद् मनोऽपि विषयकृतानुग्रहोपघाताभावाद् अप्राप्यकारीति
स्थितम् ।

शका—विषयकृत उपघात और अनुग्रहका सबध मनमे देखा
जाता है, जैसे जब हर्षपरिणति होती है तो मनमे पुष्टता आती है,
और इस पुष्टतारूप प्रसन्नता की वजहसे शरीरका उपचय होता है ।
इसी तरह जब शोक आदिका सबध होता है तो उस समय मनका
विघात होता है, इससे शरीरमें दुर्बलता आती है । अति चिन्ता करने
से मनुष्य हृदयरोगी होता हुआ देखा जाता है । इससे इसी बातकी
पुष्टि होती है कि मनके ऊपर विषयकृत पदार्थों का अनुग्रह और उप-
घात होता है, फिर यह मन अप्राप्यकारी कैसे हो सकता है ? ।

उत्तर—मनमे प्राप्यकारिताका निषेध हम इस लिये करते हैं कि
उसमें विषयकृत अनुग्रह और उपघात नहीं होते हैं, किन्तु मन पुद्गल-

शका—विषयकृत उपघात अने अनुग्रहने सबध मनमा देखाय छे
जेम के न्यारे हर्षपरिणति थाय छे त्यारे मनमा पुष्टता थाय छे, अने आ
पुष्टताइ प्रसन्नताने कारखे शरीरने उपचय थाय छे जेव रीते न्यारे शोक
आदिने सबध थाय छे त्यारे मनमा विघात थाय छे, ते कारखे शरीरमा दुर्ब-
लता आवे छे, अतिचिन्ता करवाथी, माणुस हृदयरोगी थतो जेवा भजे छे,
तेथी जे वातने पुष्टि भजे छे के मन ऊपर विषयकृत पदार्थने अनुग्रह अने
उपघात थाय छे, तो पछी आ मन केवी रीते अप्राप्यकारी छोछ राके ?

उत्तर—जेम मानवामा प्राप्यकारिताने निषेध जे कारखे करीजे छीजे के
तेमा विषयकृत अनुग्रह अने उपघात थता नहीं, पछु मन पुद्गलमय छोवाथी

અપિ ચ-શ્રોત્રેન્દ્રિયં પ્રાપ્તમેવ શબ્દ ગૃહ્ણતિ, તર્હિં ચાણ્ડાલમાપિતોઽપિ શબ્દઃ શ્રોત્રેન્દ્રિયેણ સ એવ ગૃહ્ણતે, યઃ સ્વલુ શ્રોત્રેન્દ્રિયસંસ્પૃષ્ટો ભવતિ તત્તથ શ્રોત્રેન્દ્રિયસ્ય ચાણ્ડાલસ્પર્શદોષમસદ્ગઃ સ્યાદિતિ ચેત્ ?

અત્રોચ્યતે—શ્રોત્રેન્દ્રિયસ્ય યદપ્રાપ્યમારિત્વ મન્યસે, તદંતન્મહામોહગિલમિત્તમ્, યદ્યપિ પ્રાપ્ત એવ શબ્દઃ શ્રોત્રેન્દ્રિયેણ ગૃહ્ણતે, તથાપિ શબ્દે શક્તિૈર્વિચ્ય-સમગ્રાદ્ દૂરાસન્નાદિભેદમતીતિર્ભવતિ, તથાહિ-દૂરાદાગતઃ શબ્દઃ ક્ષીણશક્તિક્વતયા ક્ષીણોઽસ્પષ્ટરૂપો યા ઉપલક્ષ્યતે । તત્તથ લોકો યદતિ-‘દૂરે શબ્દઃ શ્રૂયતે’ ઇતિ, દૂરાદાગતઃ શબ્દઃ શ્રૂયતે, ઇતિ તદર્થઃ ।

કરતી હૈ, પ્રાપ્ત હુઆ પદાર્થ સમીપ મેં હી હોતા હૈ, ફિર ઇસ વ્યવહાર કે હોને કા વર્હા વિરોધ ક્યોં નહીં આવેગા ? પરન્તુ શબ્દ મેં દૂર આસન્ન આદિ કા ભેદ વ્યવહાર લોક મેં હોતા હુઆ દેગા હી જાતા હૈ । લોક કહતે હૈ-યહ દૂર કા શબ્દ સુનને મેં આ રહા હૈ, યહ નજદીક કા શબ્દ સુનને મેં આ રહા હૈ ।

ફિર મી-શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રાપ્ત હુણ હી શબ્દ કો ગ્રહ્ણ કરતી હૈ એસા માનને પર એક યહ ઓર આપત્તિ આતી હૈ કિ શબ્દ જવ ચાંડાલ કે મુખ સે નિર્ગત હોકર હમારે કાન કો પ્રાપ્ત હોગા તો શ્રોત્રેન્દ્રિય મે અસ્પૃશ્યતા આ જાવેગી, ક્યોં કિ ઉસને ચાંડાલ કે અસ્પૃશ્ય શબ્દ કો ગ્રહ્ણ ક્રિયા હૈ, અતઃ વહ ચાંડાલ કે સ્પર્શ કરને કે દોષ સે મુક્ત કૈસે માના જા સકેગા ।

ઉત્તર—શ્રોત્રેન્દ્રિય મે યહ આપ્રાપ્યકારિતા કી માન્યતા મહામોહ કા એક વિલાસ હૈ, ક્યોં કિ યહ જો કુછ કહા ગયા હૈ વહ વિના વિચારે

નજીકમા જ હોય છે, તો પછી આ વ્યવહાર હોવામા ત્યા વિરોધ કેમ નહી આવે ? પણ શબ્દમા દૂર રહેલ આદિનો ભેદ વ્યવહાર લોકમા થતો જોવામા આવે છે જ લોકો કહે છે કે-આ દૂરનો શબ્દ સંભળાઈ રહ્યો છે, આ નજીકનો શબ્દ સંભળાઈ રહ્યો છે

વળી-શ્રોત્રેન્દ્રિય પ્રાપ્ત થયેલ શબ્દને ગ્રહણ કરે છે એવું માનવામા આ એક ખીણ મુશ્કેલી પણ નહે છે કે શબ્દ જો આડાળના મુખમાથી નીકળીને અમારા કાને પડશે તો શ્રોત્રેન્દ્રિયમા અસ્પૃશ્યતા આવી જશે, કારણ કે તેણે આડાળના અસ્પૃશ્ય શબ્દને ગ્રહણ કર્યા છે, તેથી તે આડાળના સ્પર્શ થવાના દોષથી મુક્ત કેવી રીતે માની શકાશે ?

ઉત્તર—શ્રોત્રેન્દ્રિયમા આપ્રાપ્યકારિતાની માન્યતા મહામોહનો એક વિલાસ છે, કારણ કે આ જે ઠઈકહેવાયુ છે તે વિચાર્યા વિનાજ કહેવાયુ છે પ્રાપ્ય

ननु स्यादेतत्, एवमेतदपि वक्तुं शक्यते—‘दूरे रूपमुपलभ्यते’ इति । दूरादागत रूपमुपलभ्यते, इति तदर्थः । ततश्च चक्षुरपि प्राप्यकारि स्यात्, न च तदिष्यते । ततश्च शब्दे शक्तिवैचित्र्यकल्पन, श्रोत्रेन्द्रियस्य च प्राप्यकारित्वकल्पन न युक्तमिति चेन्न ।

ही कहा गया है । प्राप्यकारी होने पर भी श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा गृहीत शब्द में जो दूर और समीप आदिका भेद व्यवहार होता है, वह शब्दशक्ति की विचित्रता से होता है । जब शब्द दूर देश से आता है तो उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है, उस समय वह अस्पष्टरूप से या मन्दरूप से सुनने में आता है, इसलिये लोक कहते हैं कि यह शब्द दूर से आया हुआ सुनाई दे रहा है ।

प्रश्न यदि इस पर यह आक्षेप किया जाय कि जिस प्रकार “दूर से आया हुआ शब्द सुनाई दे रहा है” ऐसा बोध होने से श्रोत्रेन्द्रिय में प्राप्यकारिताका आप समर्थन करते हैं तो फिर “दूररूपमुपलभ्यते” दूरसे आये हुए रूपको चक्षु इन्द्रिय जानती है, इस प्रकारके बोधसे चक्षु इन्द्रिय को भी प्राप्यकारी मान लेना चाहिये, परन्तु इस तरहसे चक्षु इन्द्रिय प्राप्यकारी तो आपने मानी नहीं है, अतः शब्दमें विचित्रशक्ति की मान्यता, तथा श्रोत्रेन्द्रियमें प्राप्यकारिताकी कल्पना युक्तियुक्त नहीं कही जा सकती ?

कारी होना छता पणु श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा अहणु थयेल शब्दमा हर अने समीप आदिने। ने सेदव्यवहार थाय छे ते शब्दशक्तिनी विचित्रताने वीधे थाय छे न्यारे शब्द हरना स्थानेथी आवे छे त्तारे तेनी शक्ति क्षीणु थछ नय छे, ते समथे ते अस्पष्ट इये मन्द रीते सलणाय छे, तेथी वोको कडे छे के आ शब्द हरथी आवतो सलणाय छे

शब्द—ने ते भावतमा जेवो आक्षेप भूकवामा आवे के ने प्रकारे “हरथी आवतो शब्द सलणाय छे” जेवो बोध थवाथी श्रोत्रेन्द्रियमा प्राप्यकारितातु आप समर्थन करे छे, तो पछी “दूर रूपमुपलभ्यते” “हरथी आवता इपने चक्षु इन्द्रिय नले छे” आ प्रकारना बोधथी चक्षु इन्द्रियने पणु प्राप्यकारी मानवी नेधजे पणु जे रीते चक्षु इन्द्रियने तो आवे प्राप्यकारी मानी नथी, तेथी शब्दमा विशिष्ट शक्तिनी मान्यता, तथा श्रोत्रेन्द्रियमा प्राप्यकारितानी कल्पना युक्तियुक्त कही शक्य नही ?

તથા યામેવ નામમારોહતિ સ્મ ચાણ્ડાલસ્તામેવારોહતિ શ્રોત્રિયોઽપિ । તથા સ ઞ્વ
પવનથાણ્ડાલમપિ સ્પૃદ્ધા શ્રોત્રિયમપિ સ્પૃગતિ, ન ચ તત્ર લોકે સ્પર્શદોષવ્યવસ્થા,
તથા શબ્દપુદ્ગલસંસ્પર્શેઽપિ લોકે સ્પર્શદોષવ્યવસ્થા ન ભવતીતિ ન કોઽપિ દોષ ઇતિ ।

અપિ ચ-યદા ચાણ્ડાલઃ કેતકીપુષ્પનિચય પદ્માદિપુષ્પનિચય યા ગિરસિ નિધાય
શરીરે કસ્તૂરીચન્દનાઘનુલેપન વિધાય યીશ્યામાગત્ય તિષ્ઠતિ, તદા તદ્વતકેતકી-
પુષ્પાદિગન્ધપુદ્ગલાઃ શ્રોત્રિયાદિનાસિકામ્ પ્રતિષ્ઠા મયન્તીતિ તત્રાપિ ચાણ્ડાલ-
સ્પર્શદોષમસદ્ગઃ સ્યાત્, તસ્માત્ નાસિકેન્દ્રિયમપ્યમાપ્યકારીતિ મન્તવ્યં, ન ચ તદ્
મત્તોઽપ્યાગમે ક્વચિત્ પ્રતિપાદિતમ્ । અતથાણ્ડાલસ્પર્શદોષમસદ્ગઃ સ્યાદિતિ
કથન વાલિશજલ્પિતમ્ ।

ચાણ્ડાલ સ્પર્શ કરતા હુઆ ચલતા છે उसी भूमि को पीठे से स्पर्श करता
हुआ श्रोत्रिय-ब्राह्मण-भी चलता है । जिस नाव में बैठकर चाण्डाल
नदी पार पहुँचता है उसी नाव में श्रोत्रिय ब्राह्मण भी सवार होकर
नदी पार करता है । जो वायुमण्डल चाण्डाल का स्पर्शकर रहता है वही
पवन श्रोत्रियको भी स्पर्श करता है । इन बातों में लोकमें जैसे स्पर्श-
दोषकी व्यवस्था नहीं मानी जाती है, इसी प्रकार शब्द पुद्गलके सस्पर्श
होने पर भी लोकमें स्पर्शदोषकी व्यवस्था नहीं मानी गई है, अत यह
व्यवस्था काल्पनिक होनेसे पारमार्थिक नहीं है ।

फिर भी-जिस समय चाण्डाल केतकीके पुष्पों को अथवा कमलादि
पुष्पोंको मस्तक पर धारण करके अथवा शरीरमें कस्तूरी आदिका उव-
टन करके रस्तेमें आकर खड़ा होता है उस समय वहाँ रहे हुए श्रोत्रिय
आदि व्यक्तियोंकी नासिका में वे केतकी एव कमलादि पुष्पोंके गंध

કેવળ કાલ્પનિક છે બુદ્ધો-ને ભૂમિને સ્પર્શ કરતો આડાળ આગળને આગળ
બધ છે એજ ભૂમિને પાછળથી સ્પર્શ કરતો શ્રોત્રિય-પ્રાહ્મણ આલે છે જે
હોડીમા બેસીને આડાલ નદી એળગે છે એજ નાવમા બેસીને શ્રોત્રિય પ્રાહ્મણ
પણ નદીને એળગે છે જે વાયુ આડાલને સ્પર્શ કરતો વાય છે એજ વાયુ
શ્રોત્રિયને પણ સ્પર્શ કરે છે એ બાળતોમા જેમ લોકોમા સ્પર્શદોષની વ્યવસ્થા
માનવામા આવતી નથી એજ પ્રકારે શબ્દપુદ્ગલને સસ્પર્શ થવાથી લોકોમા
સ્પર્શદોષની વ્યવસ્થા માનવામા આવી નથી, તેથી એ વ્યવસ્થા કાલ્પનિક હોવાથી
પારમાર્થિક નથી

વળી-જે સમયે આડાલ કેતકીના પુષ્પોને અથવા કમલાદિ પુષ્પોને માથે
ઉપાડીને અથવા શરીર પર કસ્તૂરી આદિને લેપ કરીને રસ્તામા આવીને ઉભો
રહે છે, તે સમયે ત્યા રહેલ શ્રોત્રિય આદિ વ્યક્તિઓની નાસિકામા કેતકી અને

केचिच्च श्रोत्रेन्द्रियस्याप्राप्यकारित्वं मन्यन्ते, शब्दस्य चाकाशगुणत्वम्, तद-
युक्तम्-आकाशगुणत्वस्वीकारे शब्दस्यामूर्तत्वप्रसङ्गात् । यो हि यस्य गुणः, स
तत्समानधर्मा भवति, यथा-ज्ञानमात्मनो गुणः, तत्रात्मा खल्वमूर्त्तस्ततस्तद्गुणो
ज्ञानमप्यमूर्त्तमेव । तथा-शब्दोऽपि यत्राकाशगुणस्तिर्हि आकाशस्यामूर्त्तत्वात् शब्द-
स्यापि तद्गुणत्वेनामूर्त्ततापत्तिः स्यात् । न चासौ युक्तिः समीचीना, तल्लक्षणायोगात् ।
मूर्त्तत्वविरोधो हि अमूर्त्तताया लक्षणम् । न च शब्दानां मूर्त्तत्वप्रसङ्गः, स्पर्शवचनात् ।

परमाणु घुसते हैं तो फिर यहा भी चाण्डालके स्पर्श होनेके दोषका
प्रसंग प्राप्त होगा, इसलिये नासिका इन्द्रियको अप्राप्यकारी मानना
चाहिये, परन्तु ऐसी व्यवस्था आपके भी आगममे प्रतिपादित नहीं हुई
है, इस लिये यह चाण्डालके स्पर्श होनेका दोष युक्तियुक्त नहीं है ।

कितनेक व्यक्ति श्रोत्रेन्द्रियको अप्राप्यकारी इसलिये मानते हैं कि
उसका विषय जो शब्द है, वह आकाशका गुण है, सो ऐसी मान्यता भी
ठीक नहीं है, कारण कि-शब्दको यदि आकाशका गुण माना जावेगा
तो उसमे मूर्त्तता न आकर अमूर्त्तता ही आवेगी, क्यों कि जो जिसका
गुण होता है वह उसके ही समान धर्मवाला होता है, जैसे-आत्माका
गुणज्ञान । आत्मा अमूर्त्त है तो उसका गुणज्ञान भी अमूर्त्त ही है ।
इसी तरह यदि आकाशका गुण शब्द है तो आकाशके अमूर्त्त होनेकी
वजहसे उसका गुण शब्द भी अमूर्त्त ही होगा, परन्तु शब्दमें अमूर्त्तता
है नहीं, क्यों कि अमूर्त्तताका लक्षण शब्दमें घटित नहीं होता है ।

कमलादि पुष्पानां गन्धपरमाणु प्रवेशे छे ते पथी त्या पञ्च आडालने स्पर्श
थवाना दोषने प्रसंग प्राप्त थगे, ते भाटे नासिका इन्द्रियने अप्राप्यकारी
मानवी जेठजे, पञ्च जेवी व्यवस्थानु आपना आगमोभा पञ्च प्रतिपादन थयु
नथी ते ठारणे आडालने स्पर्श थवानो जे दोष युक्तियुक्त नथी

वेदलाकं व्यञ्जितञ्च श्रोत्रेन्द्रियने अप्राप्यकारी जे ठारणे माने छे के तेने
विषय जे शब्द छे ते आकाशने शुद्ध मानवाना आवे तो तेना मूर्त्तता न
आवता अमूर्त्तता न आवेशे, ठारणु के जे जेने शुद्ध होय छे ते तेना समान
धर्मवाला होय छे जेभटे- आत्मानो शुद्ध ज्ञान आत्मा अमूर्त्त छे, तो तेने
शुद्ध 'ज्ञान' पञ्च अमूर्त्त न छे जे प्रमाणु जे आकाशने शुद्ध शब्द होय तो
आकाश अमूर्त्त होवाने ठारणे तेने शुद्ध 'शब्द' पञ्च अमूर्त्त न होय, पञ्च
शब्दमा अमूर्त्तता नथी, ठारणु के अमूर्त्ततानु लक्षण शब्दमा घटावी शकानु

તથાહિ-સ્પર્શવન્તઃ શબ્દાઃ, તત્સપર્કાત્ ઉપઘાતદર્શનાત્ ગોષ્ટયત્ । ન ચાયમસિદ્ધો
 હેતુઃ, યતઃ સઘોજાતગિચ્છુના ધર્માન્તિકાઽઽનીવગાઢાસ્ફાન્તિક્ષટ્ટરોગદ્શ્રુચ્છુણ્ણતો
 યધિરતા ભવતીતિ દૃશ્યતે । યત્ર સ્પર્શો નાસ્તિ, તત્રોપઘાતોઽપિ નાસ્તિ, યથાઽઽ-
 કાશઃ । તત્તથ વિપક્ષે ઉપઘાતાઽભાયાન્નાનૈકાન્તિકોઽપિ હેતુઃ ।

અપિ ચ-સ્પર્શવન્તઃ શબ્દાઃ, તૈરભિયાતે ગિરિગદરાદિષુ શબ્દોત્થાનાત્, લોષ્ટ
 યત્ । તૌત્રમયત્નોન્ચારિતશ ઢામિયાતે ગિરિગદરાદિષુ પ્રતિશ દા' શ્રૂયન્તે પ્રતિદિક્ ।
 તત્તથ સ્પર્શવચ્ચાત્ મૂર્તા એવ શબ્દા ઇતિ સ્થિતમ્, “સ્પષ્ટ્વશાંટિસનિવેશો મૂર્તિ”
 -રિતિ વચનપ્રામાણ્યાત્ । અસ્માદાકાશગુણત્વ શબ્દાના નોપપન્નમિતિ ।

મૂર્તત્વકા વિરહ અમૂર્તતાકા લક્ષણ છે, પરન્તુ શબ્દમેં મૂર્તત્વકા વિરહ-
 અભાવ નહીં છે, ક્યોં કિ ઉસકા સ્પર્શ હોતા છે, અર્થાત્ શબ્દ સ્પર્શ
 ગુણવાલા છે । યહ સ્પર્શ ગુણવાલા ઇમલિયે છે કિ ઉસસે શ્રોત્રેન્દ્રિયમે
 ઉપઘાત હોતા દેખા જાતા છે । તુર્તકે જન્મે હુણ ત્રાલકકે કાનકે પાસ
 લાકર જબ ઇલ્લરી વઢે જોરસે વજાનેમેં આતો છે તો ઉસકે શબ્દકે
 સપર્કસે ઉસકે કાનકી ઇલ્લી ફટ જાતી છે, ઓર વહ ઘહિરા હો જાતા
 છે । જિસમે સ્પર્શગુણ નહીં હોતા છે ઉસમેં ઉપઘાતકે ગુણ મી નહીં હોતા
 છે, જૈસે આકાશમે । હસલિયે વિપક્ષ આકાશમેં ઉપઘાત કરનેકા અભાવ
 હોનેસે હમારા હેતુ વિપક્ષમેં નહીં રહતા છે । વિપક્ષમે વર્તમાન હેતુ સ્વ-
 સાધ્યકા ગમક નહીં હોતા છે । યહ સ્પર્શવચ્ચકા વિપક્ષ આકાશ છે,
 ઉસમે યહ હેતુ નહીં રહતા અતઃ વહા ઉપઘાત કરના રૂપ સામ્ય મી નહીં
 રહતા । યહ તો અપને હેતુકે સાથ હી રહતા છે ।

નથી અમૂર્તતાનો અભાવ અમૂર્તતાનું લક્ષણ છે, પણ શબ્દમા મૂર્તતાનો અભાવ
 નથી, કારણ કે તેના સ્પર્શ થાય છે એટલે કે શબ્દ સ્પર્શશુભવાળો છે તે સ્પર્શ-
 શુભવાળો તે કારણ છે કે તેનાથી શ્રોત્રેન્દ્રિયમા ઉપઘાત થતો દેખાય છે તરતના
 જન્મેલા બાળકના કાન પાસે લઈ જઈને ત્યારે અલરને ઘણા બેરથી વગાડવામા
 આવે છે ત્યારે તેના શબ્દના સ્પર્શથી તેના જાનને પડકો તૂટી જાય છે અને તે
 બહેરો શર્ધ જાય છે જેમા સ્પર્શશુભ નહોાય તેમા ઉપઘાતક શુભ પણ હોતો
 નથી જેમકે આકાશમા તથી વિપક્ષ આકાશમા ઉપઘાત કરવાનો અભાવ હોવાથી
 આપણો હેતુ વિપક્ષમા રહેતો નથી વિપક્ષમા વર્તમાન હેતુ સ્વસાધ્યનો ગમક
 થતો નથી અહીં સ્પર્શવનો વિપક્ષ આકાશ છે, તેમા તે હેતુ રહેતો નથી,
 તેથી ત્યા ઉપઘાત કરવારૂપ સાધ્ય પણ રહેતુ નથી એ તો પોતાના હેતુની
 સાથે જ રહે છે

अपि च-आकाश किमेकम् ? अनेक वा ? , यद्येक, तर्हि दूरतरादपि शब्दः श्रूयेत, आकाशस्यैकत्वेन शब्दस्य च तद्गुणतया दूरासन्नादिभेदाभावम् । यद्यनेकम्, तर्हि मुखदेश एव गन्तो विद्यते इति क्व भिन्नदेशवर्तिभिः श्रोतृभिः श्रूयते, मुखदेशाकाशगुणतया श्रोतृगतश्रोत्रेन्द्रिया कागसन्त्याभावात् ।

फिर भी-शब्द, स्पर्शगुणवाला है, यह वान इस कारण भा सिद्ध होती है कि-जब गिरिगुफामें शब्दका उच्चारण किया जाता है, तो वहा से प्रतिध्वनि होती है । इस तरह स्पर्शवत्तासे शब्दमे मूर्तता सिद्ध होती है, और मूर्तताकी सिद्धिसे आकाशगुणत्वाभाव सिद्ध होता है । रूप रस आदि गुणोंका जहा सद्भाव होता है उसका नाम मूर्त ह । मूर्त होने से आकाशगुणता शब्दमे नहीं आती है ।

और भी-आकाश एक है अथवा अनेक है ? यदि ' आकाश एक है ' ऐसा माना जाय तो अत्यन्त दूरसे भी शब्द सुननेमे आना चाहिये, क्यों कि सर्वत्र आकाश एक ही है । शब्दमें दर आसन्न आदि ऐसा व्यवहार तो हो नहीं सकता है । तात्पर्य इसका यह है कि जब आकाश एक है और शब्द उसका गुण है तो आकाशके सर्वत्र एक होनेसे जब के गुणरूप शब्दमे- ' यह दरका शब्द है यह नजदीकका शब्द है ' ऐसा व्यवहार ही नहीं हो सकता है । यदि आकाश अनेक है ऐसा माना जावे तो भिन्न देशवर्ती प्रत्ययो द्वारा शब्दका श्रवण कैसे हो सकेगा ? कारण कि शब्द तो वक्ता के मुखरूपी आकाश मे ही रहेगा । वह वक्ता

वणी-शब्द स्पर्शगुणवाला है, या वात से ढारले पक्ष सिद्ध थाय है के-न्यासे पर्वतनी शुद्धमा शब्द जोलवाना आवे है, त्वारे त्याथी पडधो पडे है या गीते स्पर्शवत्तथी शब्दमा मूर्तता सिद्धथाय है, अने मूर्ततागी सिद्धिथी आकाशगुणत्वाभाव सिद्धथाय है इय, रस, आदि शुद्धानो न्या सद्भाव होय है तेतु नाम मूर्त है मूर्त होवाने लीधे शब्दमा आकाशगुणता आवती नथी

वणी-आकाश एक है अथवा अनेक है ? जो आकाश एक है अथवा मान वाभा आवे तो अत्यन्त दूरथी पक्ष शब्द सलगावो लेधे अ, कारण के सर्वत्र आकाश एक न है तो शब्दमा दूरथी आवतो आदि व्यवहार होधे शके नही तेतु तात्पर्य अ है के जो आकाश एक है अने शब्द तेना शुद्ध है तो सर्वत्र एक आकाश होवाथी तेना शुद्धप शब्दमा- " या दूरनो शब्द है, या नल-कनो शब्द है " अथो व्यवहार न थल शके नही जो आकाश अनेक है अथवा मानवाभा आवे तो भिन्न स्थानमा रहेल प्राणीओ द्वारा शब्दतु श्रवण केवी रीते थधे शके ? कारण के शब्द तो वक्ताना मुखरूपी आकाशमा न रहेथे ते

अथ च श्रोत्रेन्द्रियविरवर्त्याकाशसम्बन्धेन शब्दस्य भ्रमण भवतीति स्वीकारे शब्दस्याकाशगुणत्वाभ्युपगमो न युज्यते ।

नन्वाकाशगुणत्वमन्तरेण शब्दस्यावस्थानमेव नोपपद्यते, स्थितिं विना पदार्थस्य सद्भाव एव न स्यात् तस्मादत्र पदार्थेन स्थितिमता भवितव्यम्, तत्र स्पर्शस-
स्पर्शगन्धाना पृथिव्यादिमहाभूतचतुष्टयमाश्रयः, शब्दस्य तु आकाशमिति चेत्,

के मुखरूपी आकाश का जय गुण है तो फिर वह भिन्नदेशवर्ती श्रोता के श्रोत्रेन्द्रियरूप आकाश के साथ सन्ध कैसे कर सकता है कि जिससे वह सुनाई पड सके ।

यदि कहा जावे कि 'शब्द का सन्ध श्रोत्रेन्द्रिय के विवर में रहे हुए आकाश के साथ होता है इसलिये वह सुनने में आता है, तो फिर इस मान्यता में 'शब्द आकाश का गुण है' यह बात सिद्ध नहीं होती है ।

यदि इस पर यह कहा जाय कि 'शब्द को आकाश का गुण न माना जावे तो उसकी स्थिति ही नहीं बनती है, स्थिति के विना पदार्थ का सद्भाव माना नहीं जाता है, अतः जय शब्द स्थितिवाला पदार्थ माना जाता है तो ऐसी हालत में कही न कही इसकी स्थिति भी माननी चाहिये । पृथिव्यादिक भूतों में तो इसकी स्थिति होती नहीं है, कारण कि वे तो रूप रसादिकों के ही आधारभूत हैं । अब रहा आकाश सो यह आकाश ही शब्द का आश्रय सिद्ध होता है ।

वक्ताना सुभ्रूषी आकाशने जे शुष्णु छे, ते पछी ते बिन्न स्थानमा रहेल श्रोताना श्रोत्रेन्द्रियश्च आकाशनी साथे सन्ध केवी रीते करी शक्ये छे, के जेथी ते सलणार्थ शक्ये

जे जेम उडेवाभा आवे के "शब्दने सन्ध जानना पौवाणुमा रहेल आकाश साथे थाय छे तेथी ते सलणवाभा आवे छे," ते पछी जे मान्य ताथी "शब्द आकाशने शुष्णु छे" जे वान सिद्ध थती नथी

जे ते विषे जेम उडेवाभा आवे के "शब्दने आकाशने शुष्णु मानवाभा न आवे तो तेथी स्थिति न सलवती नथी स्थिति विना पदार्थने सहभाव (अस्तित्व) भनातो नथी, तेथी ज्यारे शब्द स्थितिवाभा पदार्थ भनाय छे त्यारे जेवी हालतमा तेनी केधने केध स्थिति पणु मानवी जेधजे पृथिव्यादिक पदार्थेभा तो तेनी स्थिति होती नथी, कारण के जे तो इ रसादिकेना न आधार भूत छे उवे रह्यु आकाश, तो जे आकाश न शब्दने आश्रय सिद्ध थाय छे.

तदयुक्तम्, एव सति पृथिव्यादीनामप्याकाशगुणत्वपसङ्गात्, तेषामप्याकाशाश्रित-
त्वात्, न खल्वाकाशमन्तरेण पृथिव्यादीनामप्यन्यः ऋश्विदाश्रय ।

न च पृथिव्यादीनामगुणत्वादाकाशगुणत्वमनुपपन्नमिति वाच्यम्, आकाशा-
श्रितत्वे सति पृथिव्यादीना भवन्मते बलार्दाप तद्गुणत्वपसङ्गात् ।

नन्वाश्रयणमात्र न तद्गुणत्वमाप्तिकारण, किं तु समायाः, स चास्ति शब्द-
स्याकाशे, न तु पृथिव्यादीनामिति चेत्,

ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि इस तरह की मान्यता से
पृथिव्यादिक भूतचतुष्टय में भी आकाशाश्रित होने से गुणत्वापत्ति आती
है । आकाश के सिवाय और कोई तो इन भूतों का आश्रय है नहीं ।
यदि कहा जाय कि 'पृथिव्यादिकभूत गुणरूप नहीं है कि जिसकी वजह
से उनमें आकाशगुणता आसकें सो ऐसा कथन भी ठीक नहीं है,
कारण कि—जब आप ऐसा कहते हैं कि 'शब्द आकाश के आश्रित
रहता है अतः वह उसका गुण है' तो फिर इस कथन के अनुसार
पृथिव्यादिकभूतों में तदाश्रयता होने से गुणत्वापत्ति का वारण कौन
कैसे कर सकता है ? इस मान्यता में तो गुणत्वापत्ति उनमें बलात्
आ जाती है ।

यदि फिर भी ऐसा कहा जाय कि—'सामान्यरूप से आश्रित होने
में गुणत्वापत्ति नहीं आती है किन्तु समवायसंबन्ध से आश्रित रहने में
गुणरूपता आती है, पृथिव्यादिकभूत आकाश में समवायसंबन्ध से आश्रित

अथ कहेषु ते पक्षे परापर नथी, कारण के अ प्रकारनी मान्यताथी पृथिव्या
दिक आर पदार्थोभा पक्षे आकाशाश्रित होवाथी शुषुत्वापत्ति आवे छे आकाश
सिवाय भीष्णु कोष्ठ अे भूतोना (पदार्थोना) आश्रय नथी ने अथ कहेवामा
आवे के "पृथिव्यादिकभूत शुषुत्प नथी के अने कारणे तेमनामा आकाशशुषुता
आवी शडे" तो अेषु कथन पक्षे परापर नथी, कारण के न्यारे आप अथ
कहे छे के "शब्द आकाशने आश्रित रहे छे, तेथी ते शुषु छे" तो पछी आ
कथन प्रमाणे पृथिव्यादिक भूतोभा ते आश्रयता होवाथी शुषुत्वापत्तिनु निवारण
कोषु केवी रीते करी शके छे ? आ मान्यताथी तो तेमनामा शुषुत्वापत्ति
अणाकारे आवी नथ छे

वणी ने अथ कहेवामा आवे के "सामान्यरूपे आश्रित थवामा शुषु-वा-
पत्ति आवती नथी पक्षे समवायसंभन्धथी आश्रित रहेवामा शुषुत्पता आवे छे
पृथिव्यादिक भूत आकाशमा समवाय संभन्धथी आश्रित रहेता नथी, तेयो तो

અત્રોચ્યતે—કોડ્ય ભગ્નદુક્તઃ મમવાયઃ ?, યદ્યેકત્ર લોલીભાવેનાવસ્થાન, યથા ઘટાદેસ્તદ્વતરૂપાદેશ્વ યઃ સમ્બન્ધઃ સ સમવાય ઇત્યુચ્યતે, તર્હિ શબ્દમ્યાકાશગુણત્વં ન સંભવતિ, આકાશેન સર્વેકત્ર લોલીભાવેન તમ્યાનવસ્થાનાન્, ન હિ ઘટાદૌ રૂપાદિવત્ સદા નભસિ શબ્દસદ્ભાવોસ્તિ ।

અથાકાશે ઉપલભ્યમાનત્વાત્ તદ્ગુણત્વ શબ્દમ્યાસ્તીત્યુચ્યતે, તર્હિ ઉલ્કાદેર-
પ્યાકાશ ઉપલભ્યમાનત્વાત્ તદ્ગુણત્વમસદ્ભઃ સ્પાત્ ।

યદિ તુ ઉલ્કાદેઃ પરમાર્થતઃ સ્થાન પૃથિવ્યાદિકમ્, આકાશે તદુપલન્ધિસ્તુ પવનેન સચાર્યમાણત્વાદિત્યુચ્યતે, તર્હિ તથૈવ શબ્દસ્યાપિ પરમાર્થતઃ સ્થાનમાકાશ નાસ્તિ, કિં તુ શ્રોત્રાદિકમિતિ વ્રૂમઃ । યત્તુ આકાશે તદવસ્થાનમુપલભ્યતે, તત્ પવનેન સચાર્યમાણત્વાદિતિ ઘોષ્યમ્, તથાહિ યત્ર યત્ર પવનઃ સચરતિ, તત્ર તત્ર શબ્દોઽપિ ગચ્છતિ, પવનમતિક્રૂતગમન શબ્દમ્પ નાસ્તિ । ઉક્તઃ—

નહીં રહતે હૈં, વે તો વહા મયોગસવધ સે આશ્રિત રહતે હૈં' જેસા કહના
હસ પ્રશ્ન કો સ્થાન દેને કે લિયે વાઘ્ય કરતા હૈં કિં યહ સમવાય ક્યા
વસ્તુ હૈં ? ક્યા ઇકત્ર લોલીભાવ સે રહના યહી સમવાય હૈં જૈસા ઘટા-
દિક ઓર ઉસકે રૂપાદિકોં મે હૈં ? । સો હસ કથન સે તો શબ્દ મેં
આકાશગુણતા નહીં આતી હૈં, કારણ કિ-શબ્દ ઓર આકાશ મેં હસ
પ્રકાર કા લોલીભાવરૂપ સમવાયસવધ નહીં હૈં । જિસ પ્રકાર ઘટાદિક
મે સદા રૂપાદિક કા ઇકત્ર લોલીભાવ રહા કરતા હૈં ઉસ પ્રકાર સે
આકાશ મેં શબ્દ કા સદા લોલીભાવ નહીં રહતા હૈં ।

યદિ કહા જાવે કિં 'આકાશ મેં શબ્દ કી ઉપલગ્ધિ હોતી હૈં અતઃ
વહ ઉસકા ગુણ હૈં' સો ઇસી વાત તો ઉલ્કાદિક મેં ભી હોતી હૈં અતઃ
ઉનમેં ભી આકાશગુણતા માનની પહેગી ।

ત્યા સ યોગ સ ં ઘે આશ્રિત રહે છે " એમ કહેવું તે આ પ્રશ્નને સ્થાન દેવા
માટે ડરજ પાડે છે કે એ સમવાય શી વસ્તુ છે ? શુ એકવ લોલીભાવથી રહેવું
એજ સમવાય છે, જેવો ઘટાદિક અને તેનો રૂપાદિકોમા છે ? તો આ કથનથી
તો શબ્દમા આકાશગુણતા આવતી નથી, કારણ કે શબ્દ અને આકાશમા આ
પ્રકારનો લોલીભાવરૂપ સમવાય સ ં ઘ નથી જે પ્રકારે ઘટાદિકમા હ મેશા
રૂપાદિકને એક માત્ર લોલીભાવ રહ્યા કરે છે, તે પ્રકારે આકાશમા શબ્દને
હ મેશા લોલીભાવ રહી શકતો નથી

જો એમ કહેવામા આવે કે " આકાશમા શબ્દની પ્રાપ્તિ થાય છે તેથી તે
તેનો ગુણ છે " તો એવી વાત તો ઉલ્કાદિકમા પણ થાય છે તેથી તેમનામા પણ
આકાશ ગુણતા માનવી પડે

यथा च पूर्यते तूल, - माकाशे मातरिश्चना ।

तथा शब्दोऽपि किं वायोः प्रतीप कोऽपि शब्दवित् ॥ १ ॥

तस्मान्नाकाशगुणः शब्दः, किंतु पृथ्वलमय इति स्थितम् । व्यञ्जनावग्रहस्य दृष्टान्तो मल्लक इति टीकान्ते द्रष्टव्यः ॥ म० २८ ॥

॥ इति व्यञ्जनावग्रहप्रकरणम् ॥

यदि इस पर ऐसा कहा जावे कि 'उल्कादिकों का परमार्थतः स्थान तो पृथिवी आदिक ही है परन्तु वे जो आकाश में उपलब्ध होते हैं उसका कारण पवन द्वारा उनका वहां संचरण करवाना है' तो फिर इसी तरह से यह भी मान लेना चाहिये कि परमार्थतः शब्द का स्थान आकाश नहीं है किन्तु श्रोत्रादिक ही है, परन्तु आकाश में जो उसका अवस्थान मालूम पड़ता है वह पवन के द्वारा उसका वहा संचरण होना है । जहा जहा पवन का संचार होता है वहां वहा शब्द भी जाता है, शब्द का पवन के प्रतिकूल गमन नहीं होता है । कहा भी है—

“यथा च पूर्यते तूल, - माकाशे मातरिश्चना ।

तथा शब्दोऽपि किं वायोः, प्रतीपकोऽपि शब्दवित्” ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे पवन रुई को उड़ाकर आकाशमें भरदेता है, उसी तरह शब्द को भी आकाश में भरदेता है । क्या पवन की प्रतिकूलता में कोई भी मनुष्य किसीके शब्द को समझ पाता है ? अर्थात् कोई भी नहीं समझ पाता है ।

ने ते विषे ज्येभ उडेवाभा आवे के “उल्कादिकेणु परमार्थत स्थान तो पृथ्वी आदि न छे, पणु आकाशमा तेज्यो ने प्राप्त थाय छे तेनु कारणु पवन द्वाग तेमनु त्या सचरणु करवानी किया न छे” तो पछी ज्ये रीते ज्ये पणु मानी लेवु ज्ये ज्ये के परमार्थत शब्दनु स्थान आकाश नथी पणु श्रोत्रादि न छे पणु आकाशमा ने तेनु अवस्थान मालूम पडे छे ते पवनना द्वारा तेनु त्या सचरणु करवानी किया छे, न्या न्या पवनना सचरण थाय छे त्या त्या शब्द पणु नथ छे शब्दनु गमन पवनथी प्रतिकूल होतु नथी कहु पणु छे—

“यथा च पूर्यते तूल, माकाशे मातरिश्चना

तथा शब्दोऽपि किं वायो, प्रतीप कोऽपि शब्दवित्” ॥ १ ॥

अर्थ—ज्ये पवन रुपे उडाडीने आकाशमा लरीहे छे, तेवी न रीते शब्दने पणु आकाशमा लरी हे छे शु ? पवननी प्रतिकूलतामा केरु पणु माणुस केरुना शब्दने समझ शके छे ? अर्थात् केरुपणु समझ सकता नथी

अथार्थावग्रहः प्रोच्यते—

मूलम्—से किं तं अत्युगहे ? । अत्युगहे छविहे पणत्ते; त जहा-सोइदिय-अत्युगहे १, चर्मिलदिय अत्युगहे २, घाणि-दिय अत्युगहे ३, जिन्भदिय अत्युगहे ४, फासिंदिय-अत्यु-गहे ५, नोइदिय-अत्युगहे ॥ सू० २९ ॥

छाया—अथ कः सोऽर्थावग्रहः ? । अर्थावग्रहः पञ्चमिः प्रज्ञप्तः । तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः १, चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः २, घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः ३, जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः ४, स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः ५, नोऽन्द्रियार्थावग्रहः ६ ॥ सू० २९ ॥

टीका—‘से किं त अत्युगहे०’ इत्यादि । कतिविधोऽसार्थावग्रह इति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—‘अत्युगहे छविहे पणत्ते०’ इत्यादि । अर्थस्यावग्रह-णम्—अर्थावग्रहः । सफलरूपादिविशेषनिरपेक्षाऽनिर्देश्यसामान्यमात्राऽर्थग्रहण-रूपः । प्रथमपरिच्छेदनमर्थावग्रह इति निर्णयरूपकं ज्ञानं दर्शनरूपमित्युच्यते । अथ च नैश्वयिक एकसामायिकः, यस्तु व्यावहारिकः ‘शब्दोऽयम्’ इत्याद्युल्लेख-वान् स आन्तमौहूर्तिक इति । अर्थावग्रहश्च—मनःसहितेन्द्रियपञ्चकजन्यत्वात् पोढा

इसलिये शब्द आकाश का गुण नहीं है, किन्तु वह पुद्गल की एक पर्याय है, यह सिद्ध हो जाता है ।

व्यञ्जनावग्रह का दृष्टान्त मल्लक-मृत्तिका का नवीन सकोरा-बतलाया गया है वह टीका के अन्त में दिया गया है अतः वहाँ से समझ लेना चाहिये ॥ सू० २८ ॥

॥ इस प्रकार यह व्यञ्जनावग्रह हुआ ॥

अब सूत्रकार अर्थावग्रहको कहते हैं—‘से किं त अत्युगहे०’ इत्यादि । प्रश्न—हे भदत ! पूर्वनिर्दिष्ट अर्थावग्रहका क्या स्वरूप है ?

तेथां शब्द आकाशने शुष् नथी, पण् ते पुद्गलनी अेक पर्याय छे अे सिद्ध थर्ध नथ छे

व्यञ्जनावग्रहं दृष्टात् मल्लक-भाटीतु नवीन शकोऽ-अताववाभा आवेद छे ते टीकाने अते आवेद छे तेथी त्याथी सभल्ल लेवु ॥ सू० २८ ॥

॥ आ प्रकारे आ व्यञ्जनावग्रहं वर्णनं थयु ॥

इवे सूत्रकार अर्थावग्रहं वर्णनं करे छे—“से किं त अत्युगहे०” इत्यादि प्रश्न—हे भदन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट अर्थावग्रहं तु स्वरूपं छे ?

भवतीत्याह—‘ अत्युग्रहे ’ इति । अर्थावग्रहः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः । श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः श्रोत्रेन्द्रियेण, एव चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहादिषु विज्ञेयम् । इदमत्र बोध्यम्—चक्षुर्मनसोस्तु व्यञ्जनाग्रहो न भवति, ततस्तयोरर्थावग्रह एव भवति । तत्र षष्ठमेदमाह—‘ नो इदिय-अत्युग्रहे ’ इति । नो इन्द्रियार्थावग्रहः—नो इन्द्रियेण=भाष्यमनसाऽर्थावग्रहो द्रव्येन्द्रिय-व्यापारनिरपेक्षो घटाद्यर्थस्वरूपपरिभावनाऽभिमुखः प्रथममेकसामयिको रूपाद्यर्था-कारादिविशेषचिन्तारहितोऽनिर्देश्यसामान्यमात्रचिन्तात्मको बोधः—नो इन्द्रिया-र्थावग्रहः—नो इन्द्रिय हि मनः, तच्च द्विधा—द्रव्यरूप भावरूपं च । तत्र मनःपर्याप्ति-नामरुमोदयाद् यन्मन प्रायोऽव्यवर्गणाढलिकानादाय मनस्त्वेन परिणमति तद् द्रव्यरूप मन । तथा द्रव्यमनोऽवष्टम्भेन जीवस्य यो मननपरिणाम स भावमनः । तत्रेह भावमनो गृह्यते । तद्ग्रहणे हि द्रव्यमनसोऽपि ग्रहण भवत्येव, द्रव्यमनो विना भावमनसोऽसम्भवात्, भावमनो विनाऽपि च द्रव्यमनो भवति ॥ सू० २९ ॥

उत्तर—अर्थावग्रह छह प्रकारका वतलाया गया है, वे इस प्रकार हैं—१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, २ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह, ३ जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह, ४ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, ५ स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रह और ६ नो इन्द्रिय अर्थावग्रह । अर्थ का अवग्रह होना इसका नाम अर्थावग्रह है । सकल रूपादिक विशेष से निरपेक्ष होने की वजह से अनिर्देश्य सामान्य मात्र अर्थ का जानना, जैसे ‘ यह कुछ है ’ इसका नाम अर्थावग्रह है । नैश्चयिक और व्यावहारिक रूप से अर्थावग्रह दो प्रकार का होता है । नैश्चयिक अर्थावग्रह का काल एक समयमात्र है । यह निर्विकल्पकज्ञान रूप होता है । निर्विकल्पकज्ञान, दर्शनरूप होता है । तथा जो व्यावहारिक अर्थावग्रह होता है, अर्थात्—‘ यह शब्द है ’ इत्यादि प्रकार के

उत्तर—अर्थावग्रह छ प्रकारना वतलाया छे ते आ प्रमाणे छे—(१) श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह (२) चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह (३) जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह (४) घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह (५) स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रह (६) नो इन्द्रिय अर्थावग्रह अर्थनो अवग्रह थवे तेनु नाम अर्थावग्रह छे सङ्ग रूपादिक विशेषधी निरपेक्ष होवाने कारणे अनिर्देश्य सामान्यमात्र अर्थनु ज्ञानरूप, जेभके “ आ शब्द छे ” तेनु नाम अर्थावग्रह छे नैश्चयिक अने व्यावहारिक रूपे अर्थावग्रह जे प्रकारनो छे नैश्चयिक अर्थावग्रहनो कारणे एक समयमात्र छे अने निर्विकल्पक ज्ञानरूप होय छे निर्विकल्पकज्ञान दर्शनरूप होय छे तथा जे व्यावहारिक अर्थावग्रह भाष्य छे ओहके के “ आ शब्द छे ” इत्यादि प्रकारना उद्वेगभावणो होय छे, तेनो

ઉલ્લેખ ચાલા હોતા હૈં ઉમકા કાલ અન્તર્મુહર્ત કા હૈં । યદ અર્થાવગ્રહ મન ઓર પાચ ઇન્દ્રિયોં સે ઉત્પન્ન હોને કે કારણ ડ્ર વગ્રહ કા ચતલાયા ગયા હૈં । યદ તાત પહિલે વ્યજનાવગ્રહ કે પ્રકરણ મેં કૃતી જા ચુકી હૈં કિ ચક્ષુ ઓર મન અપ્રાપ્યકારી હોને કે કારણ ઇનસે વ્યજનાવગ્રહ નહીં હોતા હૈં. અર્થાત્ ઇનસે અર્થાવગ્રહ હીં હોતા હૈં । સૂત્ર મેં “નો ઇન્દ્રિય” શબ્દ સે ભાવમન ગૃહીત હુઆ હૈં । મન દો પ્રકાર કા વતલાયા ગયા હૈં । ઇક દ્રવ્ય મન ઓર દૂસરા ભાવમન । ભાવમન કે ઠારા જો અર્થ કા ગ્રહણ હોતા હૈં—જિસમેં કિ દ્રવ્યેન્દ્રિય કે વ્યાપાર કી અપેક્ષા નહીં હોતી હૈં, તથા ઘટાદિકરૂપ પદાર્થ કે સ્વરૂપ કી વિચારણા કે જો સન્મુગ્ધ હોતા હૈં, વિશેષ કા જિસમેં કોઈ વિચાર નહીં હોતા હૈં કિન્તુ અનિર્દેશ્ય સામાન્ય-માત્ર કા હીં જિસમેં ચોપ રહા કરતા હૈં—ઉસકા નામ નો ઇન્દ્રિયાર્થાવગ્રહ હૈં । મનઃપર્યાસિ નામ કર્મ કે ઉદ્વેગ સે યુક્ત જીવ મન. પ્રાયોગ્ય વર્ગણાદલિકોં જો ગ્રહણ કરકે જો ઉન્હેં મનરૂપ સે પરિણમાતા હૈં ઇસકા નામ દ્રવ્યમન હૈં । તથા દ્રવ્યમન કી સહાયતા સે જીવ કા જો મનનરૂપ પરિણામ હોતા હૈં વહ ભાવમન હૈં । તાત્પર્ય ઇસકા ઇસ પ્રકાર હૈં—મનો-વર્ગણાઓં કા મનરૂપ સે પરિણમન હોના ઇસકા નામ દ્રવ્યમન, તથા ઇસ દ્રવ્યમન કી સહાયતા સે જીવ કે જો ઊન ૨ પદાર્થોં કા વિચાર

ઠાળ અન્તર્મુહર્તને છે આ અર્થાવગ્રહ મન અને પાચ ઇન્દ્રિયોથી ઉત્પન્ન થવાને કારણે છે પ્રકારને બતાવ્યો છે એ વાત પહેલા વ્યજનાવગ્રહના પ્રકરણમા ડહેવાઈ ગઈ છે કે ચક્ષુ અને મન અપ્રાપ્યકારી હોવાથી તેમના વડે વ્યજનાવગ્રહ થતો નથી, એટલે કે તેમનાથી અર્થાવગ્રહ જ થાય છે સૂત્રમા “નો ઇન્દ્રિય” શબ્દથી ભાવ મન ગ્રહણ કરેલ છે મન બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે (૧) દ્રવ્ય મન, (૨) ભાવ મન

“ભાવમનનાદ્વારા જે અર્થનું ગ્રહણ થાય છે, “જેમા દ્રવ્યેન્દ્રિયના વ્યાપારની અપેક્ષા રહેતી નથી, તથા ઘટાદિકરૂપ પદાર્થના સ્વરૂપની વિચારણાની જે સમીપ હોય છે, વિશેષને જેમા કોઈ વિચાર થતો નથી, પણ અનિર્દેશ્ય સામાન્યમાત્રને જે જેમા બોધ રહ્યા કરે છે” તેનું નામ નો ઇન્દ્રિયાર્થાવગ્રહ છે મન પર્યાસિ નામ કર્મના ઉદ્યથી યુક્ત જીવ મન પ્રાયોગ્ય વર્ગણાદલિકોને ગ્રહણ કરીને તેમને જે મનરૂપે પરિણમાવે છે, તેનું નામ દ્રવ્યમન છે તથા દ્રવ્યમનની સહાયતાથી જીવનું જે મનનરૂપે પરિણામ આવે છે, તે ભાવમન છે તેનું તાત્પર્ય એ છે—મનોવગણાઓનું મનરૂપે પરિણમન થવું તે દ્રવ્યમન, તથા તે દ્રવ્યમનની સહાયતાથી જીવને તે તે પદાર્થોના

मूलम्—तस्स ण इमे एगट्टिया नाणाघोषा नाणावजणा पंच नामधिज्जा भवति, त जहा-ओगेण्हणया, उवधारणया, सवणया, अवलवणया, मेहा । से त उग्गहे ॥ सू० ३० ॥

छाया—तस्स खलु इमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि, पञ्च नामधेयानि भवन्ति, तत् यथा—अवग्रहणता, उपारणता, श्रवणता, अवलम्बनता, मेधा । स एपोऽग्रहः ॥स० ३०॥

टीका—‘ तस्स ण० ’ इत्यादि । तस्य=अवग्रहस्य खलु इमानि=अनन्त-स्वक्ष्यमाणानि, नानाघोषाणि = नाना - अनेकविधाः घोषा = उदात्तादयो यत्र तानि । तथा नानाव्यञ्जनानि - नाना = अनेकविधानि, व्यञ्जनानि=व्यञ्जनवर्णाः करुरादयो यत्र तानि, पञ्च=पञ्चसंख्यकानि, नामधेयानि=नामानि एकार्थिकानि=अवग्रहसामान्यापेक्षया अभिन्नार्थकानि । अवग्रहविशेषापेक्षया तु

हुआ करता है वह भावमन है । यहा भावमन का ग्रहण हुआ है । इसीसे द्रव्य मन का भी ग्रहण हो जाता है, कारण कि-द्रव्यमन के बिना भावमन नहीं होता । भावमन के बिना द्रव्यमन तो हो जाता है । इसी तरह श्रोत्र इन्द्रिय से जो अर्थ का अवग्रह होता है वह श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रह, चक्षु इन्द्रिय से जो अर्थ का अवग्रह होता है वह चक्षु-इन्द्रिय अर्थावग्रह है, इत्यादि रूप से छेप इन्द्रियों में भी जान लेना चाहिये ॥ सू० २९ ॥

‘ तस्स ण० ’ इत्यादि ।

अवग्रह के नाना उदात्त आदि घोष तथा अनेक विध व्यजन-ककार आदि व्यजन-वर्ण वाले एकार्थिक पाच नाम हैं । अर्थात् ये पाच

यथा करे छे ते लावमन छे अडी लावमन अहणु उरेल छे तेथी द्रव्यमनतु पणु अहणु थर्ध ञय छे, करणु के द्रव्यमन विना लावमन होतु नवी लाव-मन विना द्रव्यमन होर्ध शके छे अण प्रमाणे श्रोत्रेन्द्रियधी ले अर्थने अवग्रह थाय छे ते श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रह, चक्षुर्धन्द्रियधी ले अर्थने अवग्रह थाय छे ते चक्षुर्धन्द्रिय अर्थावग्रह छे, इत्यादि रीते भाडीनी धन्द्रियेभा पणु समणु वेणु ॥ स० २६ ॥

“ तस्स ण० ” इत्यादि—

अवग्रहना अनेउ उदात्त आदि घोष तथा अनेउविध व्यजन-उदात्त व्यजन-वर्णवाणा अकार्थिक पाच नाम छे अटवे के अ पाच नाम अव

कथंचिद् भिन्नार्थकानि । तथाहि—इह अग्रहस्त्रिधा—व्यञ्जनावग्रहः, सामान्यार्थावग्रहः, विशेषसामान्यार्थावग्रहश्चेति । तत्र विशेषसामान्यार्थावग्रह औपचारिकः, स चानन्तरमेवाग्रे प्रदर्शयिष्यते । अग्रहस्य पञ्चनामानि प्रदर्शयितुमाह—‘त जहा’ इत्यादि । तद्यथा—तानि यथा—‘अग्रहणता’ इति । अग्रहणतेऽनेनेत्यवग्रहणम्—व्यञ्जनावग्रह—प्रथमसमयप्रविष्ट—शब्दादि—पुद्गलाऽऽदानपरिणाम । इत्यर्थः । अग्रहणमेव—अवग्रहणता । स्वार्थे तल् मत्वय आर्षत्वात् । एतन्नेऽपि तद् मत्वयो मोध्यः ॥१॥

नाम अवग्रह सामान्य की अपेक्षा से समान अर्थ वाले हैं । तथा अग्रह विशेष की अपेक्षा ये पाचों ही नाम कथंचित् भिन्नार्थक भी हैं । अवग्रह तीन प्रकार का है—व्यञ्जनावग्रह, सामान्यार्थावग्रह तथा विशेष सामान्यार्थावग्रह । इनमें तीसरा भेद जो विशेष सामान्यार्थावग्रह है वह औपचारिक है । यह बात अभी आगे प्रदर्शित की जावेगी । अग्रह के पांच नाम ये हैं—अवग्रहता १, उपधारणता २, श्रवणता ३, अवलम्बनता ४, मेधा ५ । व्यञ्जनावग्रह कि जिसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है उसके प्रथम समय में प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलों के ग्रहण करने रूप परिणाम का नाम अवग्रहणता है १ । व्यञ्जनावग्रह के द्वितीय आदि समय से लेकर व्यञ्जनावग्रह की समाप्ति पर्यन्त प्रतिसमय अपूर्व २ प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलों के ग्रहण पूर्वक प्राक्तन प्रतिसमयगृहीत शब्दादिक पुद्गलों का जो धारणापरिणाम है वह उपधारणा है २ । तात्पर्य इसका यह है कि व्यञ्जनावग्रह का अन्त अर्थावग्रह के होने का प्रथम समय पर्यन्त

अह सामान्यता अपेक्षासे समान अर्थवाणा छे तथा अवग्रहविशेषता अपेक्षासे पाचै नाम कथंचिद भिन्नार्थक पणु छे अवग्रह त्रणु प्रकारता छे—व्यञ्जनावग्रह, सामान्यार्थावग्रह, तथा विशेष सामान्यार्थावग्रह आभा त्रणु लेह—विशेष सामान्यार्थावग्रह औपचारिक छे आ वात हवे आगण धनाववाभा आवशे अवग्रहना आ पाच नाम छे—(१) अवग्रहणता, (२) उपधारणता (३) श्रवणता (४) अवलम्बनता आने (५) मेधा

(१) जे व्यञ्जनावग्रहनी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तनी छे, तेना प्रथमसमयमा प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलेने अहणु ढरवाइप परिणामनु नाम अवग्रहणता छे

(२) व्यञ्जनावग्रहना द्वितीय आदि समयधी लघने व्यञ्जनावग्रहनी समाप्ति सुधी, प्रति समय अपूर्व अपूर्व प्रविष्ट शब्दादिक पुद्गलेना अहणु पूर्वक प्राक्तन प्रतिममयगृहीत शब्दादिक पुद्गलेना जे धारणा परिणाम छे, ते उपधारणा छे तेनु तात्पर्ये से छे जे व्यञ्जनावग्रहने अत अर्थावग्रह,

‘ઉપધારણતા’ ઇતિ । ધાર્યતેઽનેનેતિ ધારણમ્ । ઉપ=સામીપ્યેન ધારણમ્
ઉપધારણમ્, વ્યજ્ઞનામગ્રહ-દ્વિતીયાદિ-સમયેત્વવસાનપર્યન્તં પ્રતિસમયમપૂર્વાપૂર્વ-
પ્રવિષ્ટગદ્વાદિપુદ્ગલગ્રહણપુરસ્સપ્રાક્તનપ્રતિસમયગૃહીતશબ્દાદિપુદ્ગલધારણપરિણામ ઇ-
ત્યર્થઃ । તદેવોપધારણતા । અગ્રહણતોપધારણતા ચેતિ દ્વય વ્યજ્ઞનાવગ્રહરૂપમ્ ॥૨॥

‘શ્રવણતા’ ઇતિ । શ્રૂયતેઽનેનેતિ શ્રવણમ્, એકસામાયિક્સામાન્યાર્થાવગ્રહ-
રૂપો વોધપરિણામ ઇત્યર્થઃ । તદેવ શ્રવણતા ॥ ૩ ॥

‘અપલમ્બનતા’ ઇતિ । અપલમ્બ્યત ઇત્યવલમ્બનમ્ । વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહ
ઇત્યર્થઃ । તદેવ અપલમ્બનતા ॥ ૪ ॥

માના ગયા હૈ । વહ પહિલે વનલાયા જા ચુકા હૈ કિ-અર્થાવગ્રહ કા
પૂર્વવર્તીજ્ઞાનવ્યાપાર વ્યજન સે ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઓર ઉસ વ્યજન કી
પુષ્ટિ કે સાથ પુષ્ટ હોતા ચલા જાતા હૈ, અતઃ વ્યજનાવગ્રહ કા પ્રથમ
ક્ષણવર્તી જિતના ભી જ્ઞાનવ્યાપાર હૈ વહ અવગ્રહગતા ૧ ઓર દ્વિતીય
આદિ સમય સે લેકર અન્ત સમય તક જો અપૂર્વ ૨ જ્ઞાનવ્યાપાર હૈ વહ
સપ ઉપધારણતા હૈ ૨ । વહ ઉપધારણતા વહ કરતી હૈ કિ વ્યજનાવગ્રહ
કે ઇન દ્વિતીયાદિ સમયોં સે લેકર જો અન્તસમય તક અપૂર્વ ૨ જ્ઞાન-
વ્યાપાર પુષ્ટ હોતા જાતા હૈ ઉસ સપ કો અપને મે જમા કરતી જાતી હૈ ।
તથા દ્વિતીયાદિ સમય કે જ્ઞાનવ્યાપાર કો આગે ૨ કે સમયોં મે હુણ
જ્ઞાનવ્યાપાર કે સાથ જોડતી રહતી હૈ । ઇસ તરહ ઉન સમયોં કે જ્ઞાન-
વ્યાપાર કી અન્તતક એક ધારા ચિત્ત મે જમતી ચલી જાતી હૈ । ઇસી કા
નામ ઉપધારણતા હૈ ૨ । ઇસ ઉપધારણતા કે અનન્તર સમય મેં હી

પ્રથમ સમય સુધી માનવામા આવેલ છે એ પહેલા બતાવવામા આવી ગયુ
છે કે-અર્થાવગ્રહનો પૂર્વવર્તી જ્ઞાનવ્યાપાર વ્યજનથી ઉત્પન્ન થાય છે અને તે
વ્યજનની પુષ્ટિની સાથે જ પુષ્ટ થતો બધ છે, તેથી વ્યજનાવગ્રહનો પ્રથમ ક્ષણ-
વર્તી બેટલો જ્ઞાન વ્યાપાર છે તે અવગ્રહણતા અને દ્વિતીય આદિ સમયથી લઈને
અન્ત સમય સુધી જે અપૂર્વ અપૂર્વ જ્ઞાનવ્યાપાર છે તે બધી ઉપધારણતા
એ આ ઉપધારણતા એ કામ કરે છે કે વ્યજનાવગ્રહના એ દ્વિતીયાદિ સમયોથી
લઈને અન્ત સમય સુધી જે અપૂર્વ અપૂર્વ જ્ઞાન વ્યાપાર પુષ્ટ થતો બધ છે તે
બધાને પોતાની અદર જમા કરતી બધ છે તથા દ્વિતીયાદિ સમયના જ્ઞાન
વ્યાપારને આગળ આગળના સમયોમા થયેલ જ્ઞાનવ્યાપારની સાથે જોડતી રહે
છે આ રીતે તે સમયોના જ્ઞાનવ્યાપારની અત સુધી એક ધારા ચિત્તમા બમતી
બધ છે એવું જ નામ ઉપધારણતા છે ૨ આ ઉપધારણતા બાદના સમયે જ

નનુ કથ વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહોઽવલમ્બનમિતિ ચેત્, ઉચ્યતે—ઇદં ‘શબ્દોઽયમ્’ इत्यपि नान विशेषावगमरूपत्वाद्वायजानम् । तथाहि—शब्दोऽयं नाशब्दो रूपादिरिति शब्दस्वरूपावधारण विशेषावगमः । अतो यत् पूर्वमनिर्देश्यमासान्य- मात्रग्रहणमेकसामायिकं स पारमार्थिकोऽर्थावग्रहः । ततः उच्यते यत् ‘किमिदं’—मिति विमर्शनं सा ईहा । तदनन्तरं शब्दस्वरूपावधारणं ‘शब्दोऽयम्’ इति भवति

“यह कुछ है” ऐसा अर्थावग्रह होना है । अवग्रहता और उपधारणता ये दोनों प्रकाशरूपज्ञान व्यापार व्यजनावग्रह स्वरूप होते हैं । एक सामयिक जो सामान्यरूप अर्थ का अवग्रहरूप जोय परिणाम होता है वह श्रवणता है ३ । तथा विशेष और सामान्यरूप अर्थ का जो अवग्रहरूप बोध परिणाम होता है, अर्थात् जो विशेष सामान्यार्थावग्रह होता है उसका नाम अवलम्बनता है ४ ।

शका—विशेष सामान्यार्थावग्रह को आप अवलम्बन कैसे कहते हैं ?

उत्तर—‘शब्दोऽयम्’—यह शब्द है, इस प्रकार का ज्ञान विशेषावगमरूप होने से अवायज्ञान है, क्योंकि कि यह शब्द है, अशब्द रूपादि नहीं है, इस प्रकार शब्दस्वरूप के अवधारक होने से यह अवायज्ञान विशेषावगम है । अवायज्ञान विशेषावगमस्वरूप उस प्रकार होता है । सर्व प्रथम जो अनिर्देश्य एक समयपर्यन्त सामान्य मात्र का ग्रहण होता है वह पारमार्थिक अर्थावग्रह है । इस प्रकार अर्थावग्रह होने के बाद जो ‘शब्दोऽयम्’—इस प्रकार शब्दस्वरूप का अवधारण होता है

“આ કંઈક છે” એવો અવગ્રહ થાય છે અવગ્રહણતા અને ઉપધારણતા એ બંને પ્રકાશરૂપ જ્ઞાનવ્યાપાર વ્યજનાવગ્રહસ્વરૂપ હોય છે જે સામાન્યરૂપ અર્થના અવગ્રહરૂપ બોધ પરિણામ એક સામયિક હોય છે તે શ્રવણતા છે ૩, તથા વિશેષ રૂપ અને સામાન્યરૂપ અર્થના જે અવગ્રહરૂપ બોધ પરિણામ હોય છે એટલે કે જે વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહ થાય છે તેનું નામ અવલમ્બનતા છે ૪

શકા—વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહને આપ અવલમ્બન કેવી રીતે કહો છો ?

ઉત્તર—“શબ્દોઽયમ્” આ શબ્દ છે આ પ્રકારનું જ્ઞાન વિશેષાવગમરૂપ હોવાથી અવાયજ્ઞાન છે, કારણ કે આ શબ્દ છે, અશબ્દ રૂપાદિ નથી, આ પ્રકારે શબ્દસ્વરૂપનું અવધારક હોવાથી તે અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમ છે અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમસ્વરૂપ આ પ્રકારે હોય છે સર્વ પ્રથમ જે અનિર્દેશ્ય એકસમય સુધી સામાન્ય માત્રનું ગ્રહણ થાય છે, તે પારમર્થિક અર્થાવગ્રહ છે, આ રીતે અર્થાવગ્રહ થયા પછી જે “શબ્દોઽયમ્” આ પ્રકારે શબ્દસ્વરૂપનું અવધારણ થાય છે, તે

तदवायज्ञानम् । तत्रापि यदा उत्तरधर्मजिज्ञासा भवति—‘ किमय शब्दः शाङ्गः ?, किं वा शाङ्गः ?’ इति, तदा ‘ शब्द ’ इति ज्ञानमुत्तरकालभाविविशेषज्ञानापेक्षया सामान्यमात्राऽऽलम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते । स च परमार्थतः सामान्यविशेषरूपार्थालम्बन इति विशेषसामान्यार्थावग्रह इत्युपचर्यते । इदमेव हि ‘ शब्दः ’ इति ज्ञानमवलम्ब्य ‘ किमय शब्दः शाङ्गः?, किं वा शाङ्गः ’ इतीदरूप ज्ञानमुत्पद्यते । ततश्च विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽलम्बनमित्युक्तम् ।

‘ किमय शब्दः शाङ्गः ?, किं वा शाङ्गः?’ इतीदानन्तर यत्—शाङ्ग एव, शाङ्ग एव’ इति ज्ञानमुत्पद्यते, तदवायज्ञानम् । तदपि च ‘ किमय शाङ्गोऽपि शब्दो

वह अवायज्ञान है । यह अवायज्ञान शब्देतररूपादि की व्यावृत्ति करके शब्द का निश्चायक होता है, इसलिये यह विशेषावगम स्वरूप है । इस प्रकार ‘ यह शब्द है ’ इस अवायज्ञान के होने के बाद फिर उत्तरकालिक जिज्ञासा होती है—‘ यह शब्द शाङ्ग का है ? या शृङ्ग का है ?’ । इस जिज्ञासा के बाद जो विशेषज्ञान होता है उसकी अपेक्षा ‘ यह शब्द है ’ यह ज्ञान सामान्यमात्रावलम्बन है, इसलिये यह अवग्रह शब्द से उपचरित होता है । वह अवग्रह सामान्यविशेषरूप अर्थावलम्बन वाला है इसलिये वह ‘ विशेषसामान्यार्थावग्रह ’ इस शब्द से उपचरित होता है, क्योंकि ‘ यह शब्द है ’—इस प्रकार के ज्ञान का अवलम्बन करके ‘ यह शब्द शाङ्ग का है या शृङ्ग का है ?’ इस प्रकार की ईहा रूपज्ञान उत्पन्न होता है, इसीलिये ‘ विशेषसामान्यार्थावग्रह अवलम्बन है ’ यह कहा है । यह शाङ्ग का शब्द है अथवा शृङ्ग का ? इस प्रकार की ईहा के बाद जो ‘ यह—शाङ्ग का ही शब्द है अथवा शृङ्ग का ही शब्द है ’ ऐसा जो

अवायज्ञान छे आ अवायज्ञान शब्देतर रूपादिनी व्यावृत्ति करीने शब्दतु निश्चा यठ होयछे, तेथी ते विशेषावगमस्वरूप छे आ रीते “आ शब्द छे” आ अवायज्ञान थया पछी पणी उत्तरकालिकधर्मनीजिज्ञासा थाय छे—“ आ शब्द श भनो छे के गगनो छे ? ” आ जिज्ञासा भाद ने विशेषज्ञान थाय छे तेना करता “आ शब्द छे” ओ ज्ञान सामान्यमात्रावलम्बन छे तेथी ते अवग्रह शब्दथी उपचरित थाय छे ते अवग्रह सामान्यविशेषरूप अर्थावलम्बनवाणो छे तेथी ते “ विशेषसामान्यार्थावग्रह ” ओ शब्दथी उपचरित थाय छे, कारण के “आ शब्द छे” आ प्रकारना ज्ञानतु अवलम्बन लक्षणे “आ शब्द श भनो छे के शृङ्गनो छे ? ” आ प्रकारतु धडाइप ज्ञान उत्पन्न थाय छे, तेथी “विशेष सामान्यार्थावग्रह अवलम्बन छे” ओमकछु छे “आ श भनो शब्द छे के शृङ्गनो ? ” आ प्रकारनी धडा पछी ने “आ श भनो न शब्द छे के शृङ्गनो

નવુ કય વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહોઽવગમનમિતિ ચેન્, ઉચ્યતે-इह 'शब्दो-
 ऽयम्' इत्यपि ज्ञान विशेषावगमस्वरूपादवायानम् । तथाहि-शब्दोऽयं नाशब्दो
 रूपादिरिति शब्दस्वरूपावधारण विशेषावगमः । जतो यत् पूर्वमनिर्देश्यमामान्य-
 मात्रग्रहणमेकसामायिकं स पारमार्थिकोऽर्थावग्रहः । ततः ऊर्ध्वं तु यत् 'मिमिद'
 -मिति विमर्शनं सा ईडा । तदनन्तरं शब्दस्वरूपावधारण 'शब्दोऽयम्' इति भवति

"यह कुछ है" ऐसा अर्थावग्रह होता है । अवग्रहता और उपधारणा ये
 दोनों प्रकाशरूपज्ञान व्यापार व्यजनावग्रह स्वरूप होते हैं । एक सामयिक
 जो सामान्यरूप अर्थ का अवग्रहरूप बोध परिणाम होता है वह श्रवणता
 है ३ । तथा विशेष और सामान्यरूप अर्थ का जो अवग्रहरूप बोध
 परिणाम होता है, अर्थात् जो विशेष सामान्यार्थावग्रह होता है उसका
 नाम अवगमनता है ४ ।

शका—विशेष सामान्यार्थावग्रह को आप अवलम्बन कैसे करते हैं ?

उत्तर—'शब्दोऽयम्'—यह शब्द है, इस प्रकार का ज्ञान विशेषा
 वगमरूप होने से अवायज्ञान है, क्योंकि कि यह शब्द है, अशब्द रूपादि
 नहीं है, इस प्रकार शब्दस्वरूप के अवधारक होने से यह अवायज्ञान
 विशेषावगम है । अवायज्ञान विशेषावगमस्वरूप उस प्रकार होता है ।
 सर्व प्रथम जो अनिर्देश्य एक समयपर्यन्त सामान्य मात्र का ग्रहण
 होता है वह पारमार्थिक अर्थावग्रह है । इस प्रकार अर्थावग्रह होने के
 बाद जो 'शब्दोऽयम्'—इस प्रकार शब्दस्वरूप का अवधारण होता है

"આ કંઈક છે" એવો અવગ્રહ થાય છે અવગ્રહણતા અને ઉપધારણતા એ
 બંને પ્રકાશરૂપ જ્ઞાનવ્યાપાર વ્યજનાવગ્રહસ્વરૂપ હોય છે જે સામાન્યરૂપ અર્થના
 અવગ્રહરૂપ બોધ પરિણામ એક સામયિક હોય છે તે શ્રવણતા છે ૩, તથા વિશેષ
 રૂપ અને સામાન્યરૂપ અર્થના જે અવગ્રહરૂપ બોધ પરિણામ હોય છે એટલે કે
 જે વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહ થાય છે તેનું નામ અવલબનતા છે ૪

શકા—વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહને આપ અવલબન કેવી રીતે કહો છો ?

ઉત્તર—"શબ્દોઽયમ્" આ શબ્દ છે આ પ્રકારનું જ્ઞાન વિશેષાવગમરૂપ
 હોવાથી અવાયજ્ઞાન છે, કારણ કે આ શબ્દ છે, અશબ્દ રૂપાદિ નથી, આ પ્રકારે
 શબ્દસ્વરૂપનું અવધારક હોવાથી તે અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમ છે અવાયજ્ઞાન વિશે-
 ષાવગમસ્વરૂપ આ પ્રકારે હોય છે સર્વપ્રથમ જે અનિર્દેશ્ય એકસમય સુધી
 સામાન્ય માત્રનું ગ્રહણ થાય છે, તે પારમર્થિક અર્થાવગ્રહ છે, આ રીતે અર્થ
 વગ્રહ થયા પછી જે "શબ્દોઽયમ્" આ પ્રકારે શબ્દસ્વરૂપનું અવધારણ થાય છે, તે

तदवायज्ञानम् । तत्रापि यदा उत्तरधर्मजिनासा भवति—‘ किमय शब्दः शाङ्गः ? , किं वा शाङ्गः ? ’ इति, तदा ‘ शब्द ’ इति ज्ञानमुत्तरकालभाविविशेषज्ञानापेक्षया सामान्यमात्राऽऽलम्बनमित्यवग्रह इत्युपचर्यते । स च परमार्थतः सामान्यविशेषरूपार्थाऽलम्बन इति विशेषसामान्यार्थावग्रह इत्युपचर्यते । इदमेव हि ‘ शब्दः ’ इति ज्ञानमवलम्ब्य ‘ किमय शब्दः शाङ्गः ? , किं वा शाङ्गः ? ’ इतीहारूपं ज्ञानमुत्पद्यते । ततश्च विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽऽलम्बनमित्युक्तम् ।

‘ किमय शब्दः शाङ्गः ? , किं वा शाङ्गः ? ’ इतीहानन्तर यत्-शाङ्ग एव, शाङ्ग एव ’ इति ज्ञानमुत्पद्यते, तदवायज्ञानम् । तदपि च ‘ किमय शाङ्गोऽपि शब्दो

वह अवायज्ञान है । यह अवायज्ञान शब्देतररूपादि की व्यावृत्ति करके शब्द का निश्चायक होता है, इसलिये यह विशेषावगम स्वरूप है । इस प्रकार ‘ यह शब्द है ’ इस अवायज्ञान के होने के बाद फिर उत्तरकालिक जिज्ञासा होती है—‘ यह शब्द शाङ्ग का है ? या शृङ्ग का है ? ’ । इस जिज्ञासा के बाद जो विशेषज्ञान होता है उसकी अपेक्षा ‘ यह शब्द है ’ यह ज्ञान सामान्यमात्रावलम्बन है, इसलिये यह अवग्रह शब्द से उपचरित होता है । वह अवग्रह सामान्यविशेषरूप अर्थावलम्बन वाला है इसलिये वह ‘ विशेषसामान्यार्थावग्रह ’ इस शब्द से उपचरित होता है, क्योंकि ‘ यह शब्द है ’—इस प्रकार के ज्ञान का अवलम्बन करके ‘ यह शब्द शाङ्ग का है या शृङ्ग का है ? ’ इस प्रकार की ईहा रूपज्ञान उत्पन्न होता है, इसीलिये ‘ विशेषसामान्यार्थावग्रह अवलम्बन है ’ यह कहा है । यह शाङ्ग का शब्द है अथवा शृङ्ग का ? इस प्रकार की ईहा के बाद जो ‘ यह-शाङ्ग का ही शब्द है अथवा शृङ्ग का ही शब्द है ’ ऐसा जो

अवायज्ञान छे आ अवायज्ञान शब्देतर रूपादिनी व्यावृत्ति करीने शब्दनु निश्चा यउ होयछे, तेथी ते विशेषावगमस्वरूप छे आ रीते “ आ शब्द छे ” आ अवायज्ञान थया पछी वणी उत्तरकालिकधर्मनीजिज्ञासा थाय छे—“ आ शब्द शभनो छे के गजानो छे ? ” आ जिज्ञासा भाद ले विशेषज्ञान थाय छे तेना करता “ आ शब्द छे ” अे ज्ञान सामान्यमात्रावलम्बन छे तेथी ते अवग्रह शब्दथी उपचरित थाय छे ते अवग्रह सामान्यविशेषरूप अर्थावलम्बनवाणो छे तेथी ते “ विशेषसामान्यार्थावग्रह ” अे शब्दथी उपचरित थाय छे, उरषु के “ आ शब्द छे ” आ प्रकारना ज्ञाननु अवलम्बन लधने “ आ शब्द शभनो छे के शृङ्गनो छे ? ” आ प्रकारनु धडाइय ज्ञान उत्पन्न थाय छे, तेथी “ विशेष सामान्यार्थावग्रह अवलम्बन छे ” अेभकछु छे “ आ शभनो शब्द छे के शृङ्गनो ? ” आ प्रकारनी धडा पछी ले “ आ शभनो अ शब्द छे के शृङ्गनो

નનુ કય વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહોડગમ્યનમિતિ ચેન્, ઉન્યતે-ઇદ્ 'શબ્દોડ્યમ્' ઇત્પિ જ્ઞાન વિશેષાવગમસ્ત્વાદવાયજ્ઞાનમ્ । તથાહિ-શબ્દોડ્ય નાગબ્દો રૂપાદિરિતિ શબ્દમ્યરૂપાવધારણ વિશેષાવગમઃ । જતો યત્ પૂર્વમનિર્દેશ્યમામાન્ય- માત્રગ્રહણમેકસામાયિક સ પારમાર્થિકોડર્થાવગ્રહઃ । તતઃ ઉપ્તં તુ યત્ 'કિમિદ્' -મિતિ વિમર્શન સા ઈદા । તદનન્તર શબ્દસ્વરૂપાવધારણ 'શબ્દોડ્યમ્' ઇતિ ભવતિ

“યદ્ કુદ્દ હૈ” એસા અર્થાવગ્રહ હોતા હૈ । અવગ્રહતા ઓગ ઉપધારણતા યે દોનો પ્રકાશરૂપજ્ઞાન વ્યાપાર વ્યજનાવગ્રહ સ્વરૂપ હોતે હૈ । ણક સામયિક જો સામાન્યરૂપ અર્થ કા અવગ્રહસ્વ ઘોધ પરિણામ હોતા હૈ વદ શ્રવણતા હૈ ૩ । તથા વિશેષ ઓર સામાન્યરૂપ અર્થ કા જો અવગ્રહસ્વ ઘોધ પરિણામ હોતા હૈ, અર્થાત્ જો વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહ હોતા હૈ ઉસકા નામ અવગમ્યનતા હૈ ૪ ।

શકા—વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહ કો આપ અવલમ્યન કૈસે કર્તે હૈ ?

ઉત્તર—‘શબ્દોડ્યમ્’-યદ્ શબ્દ હૈ, ડસ પ્રકાર કા જ્ઞાન વિશેષા વગમરૂપ હોને સે અવાયજ્ઞાન હૈ, કયો કિ યદ્ શબ્દ હૈ, અશબ્દ રૂપાદિ નહી હૈ, ડસ પ્રકાર શબ્દસ્વરૂપ કૈ અવધારક હોને સે યદ્ અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમ હૈ । અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમસ્વરૂપ ડસ પ્રકાર હોતા હૈ । સર્વ પ્રથમ જો અનિર્દેશ્ય ંક સમયપર્યન્ત સામાન્ય માત્ર કા ગ્રહણ હોતા હૈ વદ પારમાર્થિક અર્થાવગ્રહ હૈ । ડસ પ્રકાર અર્થાવગ્રહ હોને કૈ વાદ જો ‘શબ્દોડ્યમ્’-ડસ પ્રકાર શબ્દસ્વરૂપ કા અવધારણ હોતા હૈ

“આ કઈક છે” એવો અવગ્રહ થાય છે અવગ્રહણતા અને ઉપધારણતા એ બન્ને પ્રકાશરૂપ જ્ઞાનવ્યાપાર વ્યજનાવગ્રહસ્વરૂપ હોય છે જે સામાન્યરૂપ અર્થના અવગ્રહરૂપ ંધ પરિણામ એક સામયિક હોય છે તે શ્રવણતા છે ૩, તથા વિશેષ રૂપ અને સામાન્યરૂપ અર્થના જે અવગ્રહરૂપ ંધ પરિણામ હોય છે એટલે કે જે વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહ થાય છે તેનુ નામ અવલબનતા છે ૪

શકા—વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહને આપ અવલબન કેવી રીતે કહો છો ?

ઉત્તર—‘શબ્દોડ્યમ્’ આ શબ્દ છે આ પ્રકારનુ જ્ઞાન વિશેષાવગમરૂપ હોવાથી અવાયજ્ઞાન છે, કારણ કે આ શબ્દ છે, અશબ્દ રૂપાદિ નથી, આ પ્રકારે શબ્દસ્વરૂપનુ અવધારક હોવાથી તે અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમ છે અવાયજ્ઞાન વિશેષાવગમસ્વરૂપ આ પ્રકારે હોયછે સર્વપ્રથમ જેઅનિર્દેશ્ય એકસમય સુધી સામાન્ય માત્રનુ ગ્રહણ થાય છે, તે પારમાર્થિકઅર્થાવગ્રહ છે, આ રીતે અર્થાવગ્રહ થયા પછી જે “શબ્દોડ્યમ્” આ પ્રકારે શબ્દસ્વરૂપનુ અવધારણ થાય છે, તે

इदमत्र तत्र बोध्यम्—उत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासाया सत्यां शब्दादिज्ञानमेवावलम्ब्ये-
हादयः प्रवर्तन्ते—‘किमय शब्दः शाङ्गः किं वा शाङ्गः ?’ इत्यादि। अतः शब्दादि-
ज्ञानान्तरमेव ईहादेः प्रवृत्तिर्भवतीत्यतो विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बन-
मुच्यते । इति । ४ ।

इह शिष्याणां स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थमुक्तमेवार्थं पुनर्विशदीकुर्मः—अर्थावग्रहो द्विविधः
—नैश्चयिको व्यावहारिकश्च । तत्र प्रथमोऽर्थावग्रह एकसमयमात्रमानो निरूपचरित
पारमार्थिकः सामान्यवस्तुमात्रग्राहको भवति । सामयिकानि हि ज्ञानादिवस्तूनि
परमयोगिन एव निश्चयवेदिनोऽगच्छन्तीति नैश्चयिकोऽर्थावग्रह उच्यते । यस्तु

उपचार का कारण रहता ही नहीं । उपचार के कारण के अभावमें अन्तिम
विशेषावगम अवायज्ञान स्वरूप ही रहता है । अन्तिम विशेषावगम के
बाद अविच्युतिरूप धारणा प्रवृत्त होती है । वासनारूप स्मृतिरूप धारणा
तो सभी विशेषावगमों में होती है ।

इस पूर्वोक्त सन्दर्भका अभिप्राय है कि—उत्तरोत्तर धर्म की जिज्ञासा
होने पर शब्दादि ज्ञान का अवलम्बन करके ईहादि प्रवृत्त होते हैं, जैसे
क्या यह शब्द शाख का है अथवा शृङ्ग का है ? । इसलिये शब्दादि ज्ञान के
बाद ही ईहादि की प्रवृत्ति होती है, अतएव—विशेषसामान्यार्थावग्रह
को अवलम्बन कहा है ।

शिष्यों को स्पष्टरूपसे समझाने के लिये फिर भी इसको स्पष्ट करतेहै—
नैश्चयिक और व्यावहारिक के भेद से अर्थावग्रह दो प्रकार का है ।
नैश्चयिक अर्थावग्रह एक समय का होता है । इसमें किसी भी प्रकार
का उपचार नहीं होता है । अतः यह परमार्थिक है । इसका विषय केवल

છે, તેથી જ ત્યાં ઉપચારનું કારણ રહેતું જ નથી ઉપચારના કારણના અભાવે
અન્તિમ વિશેષાવગમ અવાય જ્ઞાન સ્વરૂપ જ રહે છે અન્તિમ વિશેષાવગમની
પછી અવિચ્યુતિરૂપ ધારણા પ્રવૃત્ત થાય છે, વાસનારૂપ અને સ્મૃતિરૂપ ધારણા
તો સઘળા વિશેષાવગમોમાં હોય છે

પૂર્વોક્ત ધ્યનનું તાત્પર્ય એ છે કે—ઉત્તરોત્તર ધર્મની જિજ્ઞાસા થતા
શબ્દાદિ જ્ઞાનનું અવલમ્બન લઈને ઈહાદિ પ્રવૃત્ત થાય છે, જેમ કે “ શુ આ
શબ્દ શ ખનો છે કે શૃ ળનો છે ? ” તે કારણે શબ્દાદિ જ્ઞાનની પછી જ ઈહાદિની
પ્રવૃત્તિ થાય છે, તેથી વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહને અવલમ્બન કહેલ છે

શિષ્યોને સ્પષ્ટ રીતે સમજાવવાને માટે ફરીથી પણ તેને સ્પષ્ટ કરે છે
નૈશ્ચયિક અને વ્યાવહારિકના ભેદથી અર્થાવગ્રહ બે પ્રકારનો છે નૈશ્ચયિક અર્થો
વગ્રહ એક સમયનો હોય છે, તેમાં કોઈ પણ પ્રકારનો ઉપચાર હોતો નથી, તેથી

मन्द्रः (गम्भीरः) किं वा तारः' इत्युत्तरविशेषजिज्ञासायां सामान्यावलम्बनमित्यत्रग्रह इत्युपचर्यते । किं मन्द्रः किं वा तारः ' इतीहानन्तर ' मन्द्र एवाय, तार एवाय वे' -ति ज्ञान यदुत्पद्यते, तदवायरूपम् । एवमुत्तरोत्तरविशेषजिज्ञासाया पूर्वं पूर्वमवा- वायज्ञानमुत्तरोत्तरविशेषावगमापेक्षया सामान्यार्थावलम्बनमित्यत्रग्रह इत्युपचर्यते । यदा तृत्तरधर्मजिज्ञासा न भवति, तदा तदन्त्य विशेषज्ञानमवायज्ञानमेव, न तत्रो- पचारः, उपचारकारणाभावात्, तदनन्तरं हि विशेषाकाङ्क्षाया अपगमात् । अतस्त- दनन्तरमपिच्युतिरूपा धारणा प्रवर्तते । रासनारूपा स्मृतिरूपा तु धारणा सर्वेष्व- पि विशेषावगमेषु द्रष्टव्या ।

होता है वह अवायज्ञान है । उसके बाद 'यह शब्द का शब्द मन्द्र (गभीर) है अथवा तार है' इस प्रकार विशेष जिज्ञासा होने पर 'यह शब्द का शब्द है'-यह अवायज्ञान सामान्यावलम्बन होने के कारण अवग्रह शब्द से उपचरित होता है । फिर 'मन्द्र है अथवा तार है?' इस ईहा के बाद यह मन्द्र ही है अथवा तार ही है' इस प्रकार का जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है वह अवायज्ञान है । इस प्रकार उत्तरोत्तर विशेष जिज्ञासा होने पर पूर्व पूर्व का अवायज्ञान उत्तरोत्तर विशेषावगम की अपेक्षा सामान्यार्थावलम्बन होने से अवग्रह शब्द से उपचरित होता है । जब उत्तर काल में जिज्ञासा नहीं होती तब वह अन्तिम विशेषज्ञान अवाय- ज्ञान ही रहता है, क्यों कि वहा उपचार नहीं होता । उपचार तो तब होता है जब उपचार का कारण रहे, अन्तिम विशेषज्ञान होने पर उपचार के कारण विशेषाकाङ्क्षा का अपगम हो जाता है, अत एव वहा

ए शब्द छे" जेवु जे ज्ञान थाय छे ते अवायज्ञान छे त्यार भाद "आ श भने शब्द मन्द्र (ग भीर) छे के भोटो छे" आ रीते विशेष जिज्ञासा थता "आ श भने शब्द छे" आ अवायज्ञान सामान्यावलम्बन होवाने कारणे अवग्रह शब्दथी उपचरित थाय छे वणी "म द छे के भोटो छे?" आ धंडा पछी आ म द ए छे के भोटो छे" जेवा प्रकारनु जे निश्चयात्मक ज्ञान थाय छे ते अवाय ज्ञान छे आ रीते उत्तरोत्तर विशेष जिज्ञासा थता आगण आग णनु अवाय ज्ञान उत्तरोत्तर विशेषावगमनी अपेक्षाजे सामान्यार्थावलम्बन होवाथी अवग्रह शब्दथी उपचरित थाय छे, न्यारे उत्तर धर्मभा जिज्ञासा थती नथी त्यारे ते अन्तिम विशेषज्ञान अवायज्ञान ए रहे छे कारणु के त्या उपचार थतो नथी उपचार तो त्यारे थाय छे के न्यारे उपचारनु कारणु रहे, अन्तिम विशेषज्ञान थता उपचारनी कारणु विशेष आकाक्षानो अपगम थई नय

उदमत्र तत्त्व बोध्यम्-उत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासाया सत्या शब्दादिज्ञानमेवावलम्ब्ये-
हादयः प्रवर्तन्ते-‘किमय शब्दः शाङ्गः किं वा शाङ्गः ?’ इत्यादि। अतः शब्दादि-
ज्ञानान्तरमेव ईहादेः प्रवृत्तिर्भवतीत्यतो विशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बन-
मुच्यते । इति । ४ ।

इह शिष्याणां स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थमुक्तमेवार्थं पुनर्विशदीकुर्मः-अर्थावग्रहो द्विविधः-
-नैश्चयिको व्यावहारिकश्च । तत्र प्रथमोऽर्थावग्रह एकसमयमात्रमानो निरुपचरित
पारमार्थिकः सामान्यस्तुमात्रग्राहको भवति । सामयिकानि हि ज्ञानादिवस्तूनि
परमयोगिन एव निश्चयवेदिनोऽगच्छन्तीति नैश्चयिकोऽर्थावग्रह उच्यते । यस्तु

उपचार का कारण रहता ही नहीं । उपचार के कारण के अभावमें अन्तिम
विशेषावगम अवायज्ञान स्वरूप ही रहता है । अन्तिम विशेषावगम के
बाद अविच्युतिरूप धारणा प्रवृत्त होती है । वासनारूप स्मृतिरूप धारणा
तो सभी विशेषावगमों में होती है ।

इस पूर्वोक्त सन्दर्भका अभिप्राय है कि-उत्तरोत्तर धर्म की जिज्ञासा
होने पर शब्दादि ज्ञान का अवलम्बन करके ईहादि प्रवृत्त होते हैं, जैसे
क्या यह शब्द शस्त्र का है अथवा शृङ्ग का है ? इसलिये शब्दादि ज्ञान के
बाद ही ईहादि की प्रवृत्ति होती है, अतएव-विशेषसामान्यार्थावग्रह
को अवलम्बन कहा है ।

शिष्यों को स्पष्टरूपसे समझाने के लिये फिर भी इसको स्पष्ट करते हैं-

नैश्चयिक और व्यावहारिक के भेद से अर्थावग्रह दो प्रकार का है ।
नैश्चयिक अर्थावग्रह एक समय का होता है । इसमें किसी भी प्रकार
का उपचार नहीं होता है । अतः यह परमार्थिक है । इसका विषय केवल

छे, तेथी જ ત્યા ઉપચારનુ કારણ રહેતુ જ નથી ઉપચારના કારણના અભાવે
અન્તિમ વિશેષાવગમ અવાય જ્ઞાન સ્વરૂપ જ રહે છે અન્તિમ વિશેષાવગમની
પછી અવિચ્યુતિરૂપ ધારણા પ્રવૃત્ત થાય છે, વાસનારૂપ અને સ્મૃતિરૂપ ધારણા
તો સઘળા વિશેષાવગમોમાં હોય છે

पूर्वोक्तं नथननु तात्पर्यं ये छे के-उत्तरोत्तर धर्मनी जिज्ञासा यत्ता
शब्दादि ज्ञाननु अवलम्बन करिने ईहादि प्रवृत्त थाय छे, जेभ के “शु आ
शब्द शस्त्रो छे के अग्रो छे ?” ते कारणे शब्दादि ज्ञाननी पछी ज ईहादिनी
प्रवृत्ति थाय छे, तेथी विशेष सामान्यार्थावग्रहने अवलम्बन कडेल छे

शिष्याने स्पष्ट रीते समझववाने भाटे क्रीथी पक्षु तेने स्पष्ट करे छे
नैश्चयिक અને व्यावહારિકના ભેદથી અર્થાવગ્રહ બે પ્રકારના છે નૈશ્ચયિક અર્થ
વગ્રહ એક સમયના હોય છે, તેમાં કોઈ પણ પ્રકારના ઉપચાર હોતો નથી, તેથી

मन्द्रः (गम्भीरः) किं वा तारः' इत्युत्तरविशेषजिज्ञासाया सामान्यावलम्बनमित्यत्रग्रह इत्युपचर्यते । किं मन्द्रः किं वा तारः ' इतीहानन्तरं ' मन्द्र एवाय, तार एवाय वे' -ति ज्ञान यदुत्पद्यते, तदत्रायरूपम् । एवमुत्तरोत्तरविशेषजिज्ञासाया पूर्वं पूर्वमवा- वायज्ञानमुत्तरोत्तरविशेषावगमापेक्षया सामान्यार्थावलम्बनमित्यत्रग्रह इत्युपचर्यते । यदा तूत्तरधर्मजिज्ञासा न भवति, तदा तदन्त्य विशेषज्ञानमत्रायज्ञानमेव, न तत्रो- पचारः, उपचारकारणाभावात्, तदनन्तर हि विशेषाकाङ्क्षाया अपगमात् । अतस्त- दनन्तरमविच्युतिरूपा धारणा प्रवर्तते । वासनारूपा स्मृतिरूपा तु धारणा सर्वेष्व- पि विशेषावगमेषु द्रष्टव्या ।

होता है वह अवायज्ञान है । उसके बाद 'यह शब्द का शब्द मन्द्र (गभीर) है अथवा तार है' इस प्रकार विशेष जिज्ञासा होने पर 'यह शब्द का शब्द है'-यह अवायज्ञान सामान्यावलम्बन होने के कारण अवग्रह शब्द से उपचरित होता है । फिर 'मन्द्र है अथवा तार है ?' इस ईहा के बाद यह मन्द्र ही है अथवा तार ही है' इस प्रकार का जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है वह अवायज्ञान है । इस प्रकार उत्तरोत्तर विशेष जिज्ञासा होने पर पूर्व पूर्व का अवायज्ञान उत्तरोत्तर विशेषावगम की अपेक्षा सामान्यार्थावलम्बन होने से अवग्रह शब्द से उपचरित होता है । जब उत्तर काल में जिज्ञासा नहीं होती तब वह अन्तिम विशेषज्ञान अवाय- ज्ञान ही रहता है, क्यों कि वहा उपचार नहीं होता । उपचार तो तब होता है जब उपचार का कारण रहे, अन्तिम विशेषज्ञान होने पर उपचार के कारण विशेषाकाङ्क्षा का अपगम हो जाता है, अत एव वहा

७ शब्द छे" ज्येवु जे ज्ञान थाय छे ते अवायज्ञान छे त्यार भाड "आ शब्दो शब्द मन्द्र (गभीर) छे के भोटो छे" आ रीते विशेष जिज्ञासा थता "आ शब्दो शब्द छे" आ अवायज्ञान सामान्यावलम्बन होवाने कारणे अवग्रह शब्दथी उपचरित थाय छे वणी "मद्र छे के भोटो छे ?" आ छेडा पछी आ मद्र ७ छे के भोटो छे" ज्येवा प्रकारनु जे निश्चयात्मक ज्ञान थाय छे ते अवाय ज्ञान छे आ रीते उत्तरोत्तर विशेष जिज्ञासा थता आगण आग णनु अवाय ज्ञान उत्तरोत्तर विशेषावगमनी अपेक्षाजे सामान्यार्थावलम्बन होवाथी अवग्रह शब्दथी उपचरित थाय छे, न्यारे उत्तर धर्मभा जिज्ञासा थती नथी त्यारे ते अन्तिम विशेषज्ञान अवायज्ञान ७ रहे छे कारणु के त्या उपचार थतो नथी उपचार तो त्यारे थाय छे के न्यारे उपचारनु कारणु रहे, अन्तिम विशेषज्ञान थता उपचारनी कारणु विशेष आकाक्षानो अपगम थथ न्य

ઇદમત્ર તત્ત્વ વોધ્યમ્-ઉત્તરોત્તરધર્મજિજ્ઞાસાયા સત્યા શબ્દાદિજ્ઞાનમેવાવલમ્બ્યે-
 દાદયઃ પ્રવર્તન્તે-‘ક્રિમય શબ્દઃ શાઙ્ગઃ કિં વા શાઙ્ગઃ ?’ ઇત્યાદિ । અતઃ શબ્દાદિ-
 જ્ઞાનાન્તરમેવ ઈહાદેઃ પ્રવૃત્તિર્ભવતીત્યતો વિશેષસામાન્યાર્થાવગ્રહોઽવલમ્બન-
 મુચ્યતે । ઇતિ । ૪ ।

इह शिष्याणां स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थमुक्तमेवार्थं पुनर्विशदीकुर्मः-अर्थावग्रहो द्विविधः
 -नैश्वयिको व्यावहारिकश्च । तत्र प्रथमोऽर्थावग्रह एकसमयमात्रमानो निरूपचरित
 पारमार्थिकः सामान्यवस्तुमात्रग्राहको भवति । सामयिकानि हि ज्ञानादिवस्तूनि
 परमयोगिन एव निश्चयवेदिनोऽगच्छन्तीति नैश्वयिकोऽर्थावग्रह उच्यते । यस्तु

उपचार का कारण रहता ही नहीं । उपचार के कारण के अभावमें अन्तिम
 विशेषावगम अवायज्ञान स्वरूप ही रहता है । अन्तिम विशेषावगम के
 वाद अविच्युतिरूप धारणा प्रवृत्त होती है । वासनारूप स्मृतिरूप धारणा
 तो सभी विशेषावगमों में होती है ।

इस पूर्वोक्त सन्दर्भका अभिप्राय है कि-उत्तरोत्तर धर्म की जिज्ञासा
 होने पर शब्दादि ज्ञान का अवलम्बन करके ईहादि प्रवृत्त होते हैं, जैसे
 क्या यह शब्द शूल का है अथवा शृङ्ग का है ? इसलिये शब्दादि ज्ञान के
 वाद ही ईहादि की प्रवृत्ति होती है, अतएव-विशेषसामान्यार्थावग्रह
 को अवलम्बन कहा है ।

शिष्यों को स्पष्टरूपसे समझाने के लिये फिर भी इसको स्पष्ट करते हैं-

नैश्वयिक और व्यावहारिक के भेद से अर्थावग्रह दो प्रकार का है ।
 नैश्वयिक अर्थावग्रह एक समय का होता है । इसमें किसी भी प्रकार
 का उपचार नहीं होता है । अतः यह परमार्थिक है । इसका विषय केवल

છે, તેથી જ ત્યા ઉપચારનુ કારણ રહેતુ જ નથી ઉપચારના કારણના અભાવે
 અન્તિમ વિશેષાવગમ અવાય જ્ઞાન સ્વરૂપ જ રહે છે અન્તિમ વિશેષાવગમની
 પછી અવિચ્યુતિરૂપ ધારણા પ્રવૃત્ત થાય છે, વાસનારૂપ અને સ્મૃતિરૂપ ધારણા
 તો સઘળા વિશેષાવગમોમા હોય છે

पूर्वोक्त कथननु तात्पर्यं એ છે કે-ઉત્તરોત્તર ધર્મની જિજ્ઞાસા થતા
 શબ્દાદિ જ્ઞાનનુ અવલમ્બન લઈને ઈહાદિ પ્રવૃત્ત થાય છે, જેમ કે “ શુ આ
 શબ્દ શખનો છે કે શૃંગનો છે ? ” તે કારણે શબ્દાદિ જ્ઞાનની પછી જ ઈહાદિની
 પ્રવૃત્તિ થાય છે, તેથી વિશેષ સામાન્યાર્થાવગ્રહને અવલમ્બન કહેલ છે

શિષ્યોને સ્પષ્ટ રીતે સમજાવવાને માટે ફરીથી પણ તેને સ્પષ્ટ કરે છે
 નૈશ્વયિક અને વ્યાવહારિકના ભેદથી અર્થાવગ્રહ બે પ્રકારનો છે નૈશ્વયિક અર્થો
 વગ્રહ એક સમયનો હોય છે, તેમા કોઈ પણ પ્રકારનો ઉપચાર હોતો નથી, તેથી

उद्बन्धस्थव्यवहारिभिरपि व्यवहियते, स व्यावहारिक उपचरितोऽर्थावग्रह उच्यते ।
 नैश्वयिकार्थावग्रहादनन्तरमीदृहितस्य वस्तुविशेषस्य योऽप्यायः स पुनर्भाविनीमीहाप्
 अवाय चापेक्ष्य उपचरितोऽर्थावग्रहः । भाविविशेषापेक्षया सामान्यमप्यायोऽपि सन्
 गृह्णाति । यश्च सामान्यं गृह्णाति, सोऽर्थावग्रहः, यथा प्रथमो नैश्वयिकार्थावग्रहः ।

इदमत्र तात्पर्यम् । प्रथमं नैश्वयिकेऽर्थावग्रहे रूपादिभ्योऽव्यावृत्तमव्यक्त शब्द-
 सामान्यं वस्तु गृहीतं भवति । ततस्तस्मिन्नीहिते सति 'शब्द एवायम्' इत्यादि-

सामान्यं है समयमात्राभवी ज्ञानादिकों को निश्चयवेदी परमयोगी जन
 ही जानते हैं, इसीलिये इसका नाम नैश्वयिक अर्थावग्रह है । तात्पर्य
 नैश्वयिक अर्थावग्रह को उद्बन्धजन नहीं जानते हैं । उद्बन्धजनों को जो
 व्यवहारमें आता है वह व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं और यह पारमार्थिक
 नहीं है उपचरित है, क्यों कि नैश्वयिक अर्थावग्रह के अनन्तर जो ईदृहित
 वस्तु विशेष का अवायज्ञान होता है वह पुनर्भाविनी ईहा और अवा-
 यकी अपेक्षा करके उपचरित अर्थावग्रहरूप से माना जाता है । उस
 अवायज्ञान का विषय भाविविशेष की अपेक्षा सामान्य हो जाता है,
 और इस तरह वह अवायज्ञान उम सामान्य को विषय रखता है, इसी
 लिये सामान्य को विषय करनेवाला होने से अवायज्ञान अर्थावग्रह उप-
 चार से मान लिया जाता है, क्यों कि जो सामान्य को विषय करता है
 वह प्रथम नैश्वयिक अर्थावग्रह की तरह अर्थावग्रह है ।

निष्कर्ष इसका यह है कि-प्रथम नैश्वयिक अर्थावग्रहमे रूपादिकों
 द्वारा अनिर्देश्य अव्यक्त ऐसी शब्दसामान्यरूप वस्तु गृहीत होती है,

ते परमार्थिक छे तेनो विषय इक्षत सामान्य छे समयमात्रभावी ज्ञानादिकोंने
 निश्चयवेदी परमयोगी जन न जान्छे छे, तेथी तेनु नाम नैश्वयिकअर्थावग्रह छे
 तात्पर्य- नैश्वयिक अर्थावग्रहने छद्मस्थ जन नानुता नथी छद्मस्थजनोना
 व्यवहारमा ने आवे छे ते व्यावहारिक अर्थावग्रह छे अने ते पारमार्थिक
 नथी, उपचरित छे, कारण के नैश्वयिकअर्थावग्रहनी पछी ने उद्विहित वस्तु
 विशेषतु अवायज्ञान थाय छे, ते पुनर्भाविनी ईहा अने अवायनी अपेक्षाअने उरीने
 उपचरितअर्थावग्रहइपे भनाय छे ते अवायज्ञानोविषय भाविविशेषनी अपे-
 क्षाअने सामान्यर्थ नय छे, अने आ रीते ते अवायज्ञान ते सामान्यने विषय
 उरे छे, तेथी सामान्यने विषयउरनार होवाथी अवायज्ञानअर्थावग्रह उपचा-
 रथी भानी देवाय छे, कारण के ने सामान्यने विषय करे छे, ते प्रथम नैश्वयिक
 अर्थावग्रहनी नेम अर्थावग्रह छे

तेनो सार अे छे के-प्रथम नैश्वयिकअर्थावग्रहमा रूपादिकोंद्वारा अनि

निश्चयरूपोऽत्रायो भवति । अर्थावग्रहेण प्रमाता शब्दमात्र रूपरसादिव्यावृत्त्याऽन-
वधारितत्वात् शब्दतया अनिश्चित गृह्णातीति । एतावताऽशेन शब्दोऽत्रग्रहज्ञानप्रियो
भवति, न तु शब्दबुद्ध्या 'शब्दोऽयम्' इत्यध्ययसायेन शब्दस्य ग्रहणं भवति,
शब्दनिश्चयस्य आन्तर्मुहूर्तिरूपात्, अर्थावग्रहस्य तु एकमामयिरूपात्तदसम्भवात् ।

अर्थात् नैश्वयिक अर्थावग्रह का विषय केवल अनिर्देश्य सामान्य है ।

जब हम सामान्य को विशेषरूपमे जानने की अभिलाषा ज्ञाता के चित्त
मे जगती है तब वह यह निश्चय करता है कि "यह शब्द ही है" इसी का
नाम अवाय है । अर्थावग्रह के द्वारा प्रमाता अनुभव करनेवाला शब्द
सामान्य रूप वस्तुको जानता है, इसका तात्पर्य यह है कि वह शब्द सामान्य
रूप वस्तु, रूप रसादिकों को व्यावृत्ति से उस समय अनवधारित होती है
हमी लिये वह शब्द रूपसे निश्चित नहीं होती है, किन्तु "यह कुछ है"
ऐसा ही ज्ञान वहा उसको होता है, अतः इनके ही अर्थ को लेकर वह
शब्द अवग्रह ज्ञान का विषय माना जाता है । उस समय 'यह शब्द है'
इस प्रकार के अवग्रहमाय से युक्त होकर प्रमाता के द्वारा वह शब्द
गृहीत नहीं होता है, कारण कि "यह शब्द है" इस प्रकार का निश्चय
तो प्रमाता को अन्तर्मुहूर्त कालमें होता है । इतना काल अर्थावग्रह का
माना नहीं गया है । अर्थावग्रह का काल तो केवल एक समय का है ।

देश्य, अव्यक्त ऐवी शब्दसामान्यरूप वस्तु अदृश्य थाय छे, ऐटले के नैश्वयिक
अर्थावग्रहने विषय केवण अनिर्देश्यसामान्य छे

ज्यारे आ सामान्यने विशेषरूपे लक्षणांनी अभिलाषा ज्ञाताना चित्तमा
लगे छे त्यारे ते ऐ निश्चय करे छे के "आ शब्द न छे" ऐनु न नाम
अवाय छे अर्थावग्रहद्वारा प्रमाता शब्द सामान्यरूपवस्तुने लक्षे छे, तेनु
तात्पर्य ऐ छे के ते शब्दसामान्यरूपवस्तु, रूप, रसादिकोनी व्यावृत्तिथी ते
समये अनवधारित छाय छे, तथा न ते शब्दरूपे निश्चित छोती तथा पक्ष
"आ उरु छे" ऐनु न ज्ञान त्या तेने थाय छे, तथा ऐटला न अज्ञाने
लक्षने ते शब्द अवग्रह ज्ञानने विषय मनाय छे ते समये "आ शब्द छे"
आ प्रज्ञाना अध्यवसायथी युक्त थरने प्रमाता द्वारा ते शब्द गृह्यत थतो नथी,
कारण के "आ शब्द छे" ऐ प्रज्ञाने निश्चय तो प्रमाताने अन्तर्मुहूर्तमा
थाय छे ऐटले जण अर्थावग्रहने मानवामाव्याव्येनथी अर्थावग्रहने जणतो
इक्षत ऐक समयेने छे

ननु प्रथमसमय एव रूपादिपरिहारण 'शब्दोऽयम्' इति ज्ञानमर्थावग्रहत्वेन मन्यताम्, शब्दमात्रत्वेन सामान्यत्वात्, तदुत्तरकाल तु प्रायो मायुर्यादयः शब्द-शब्दधर्मा अत्र घटन्ते, न तु शार्ङ्गधर्माः खरकर्कशत्वादय इति विमर्शबुद्धिरीता भविष्यति। ततश्च 'शाङ्ग एवाय शब्दः' इति शब्दविशेषात्प्रमोऽप्रायोऽस्तु? इति चेत्, शृणु-

यदि शब्दबुद्धिमात्रं 'शब्दोऽयम्' इति निश्चयज्ञानमपि भवताऽर्थावग्रहो मन्यते, शब्दविशेषज्ञानमप्राय इति भेदोऽङ्गीक्रियते, तर्हि अवग्रहमात्रप्रसङ्गः स्यात्, अवग्रहस्थानेऽप्रायस्यैवाङ्गीकारात्।

शका—रूपरसादिक के परिहार से प्रथम समय में ही 'यह शब्द है, अशब्द-रूपादिक नहीं है,' ऐसा ज्ञान अर्थावग्रहरूप से मान लेना चाहिये, क्योंकि अर्थावग्रह का विषय आप सामान्य करते हैं और "यह शब्द है" ऐसा ज्ञान मात्र की अपेक्षा सामान्य पड़ जाता है। अब इसमें ईहा भी उत्तर काल में उत्पन्न हो जावेगी—जब ऐसा विमर्श होगा कि शार्ङ्ग शब्द के धर्म खर कर्कशता आदि इसमें घटित नहीं होते हैं, किन्तु प्रायः मायुर्य आदि शब्द शब्द के धर्म यहा घटित हो रहे हैं। इसके बाद ऐसा शब्द विशेष का निर्णय होने पर कि "यह शब्द का ही शब्द है" अवायज्ञान मान लिया जायगा।

उत्तर—ऐसा मन्तव्य भी ठीक नहीं माना जा सकता है क्योंकि "शब्दोऽयम्" यह शब्द है। ऐसी शब्दबुद्धि भी यदि अर्थावग्रहरूप से मानी जावेगी, और शब्द विशेष का निर्णय अवायरूप से माना जावेगा तो फिर अवग्रह ज्ञान क्या होगा—ऐसी कल्पना में तो अवग्रह का अभाव

शका—इपरसादिकनापरिहारथी प्रथमसमयमा "आ शब्द छे, अशब्द-इपादिक नथी," ओवु ज्ञान अर्थावग्रह इपे मानी लेवु नेधये कारणु के अर्थावग्रहने विषय आप सामान्य कडे छे अने "आ शब्द छे" ओवु ज्ञान शब्दमात्रनी अपेक्षाओ सामान्य न लागे छे डवे तेमा उडा पणु उत्तरकालमा उत्पन्न थध नथे, न्यारे ओवो अनुभव थशेके श्रु ग शब्दना धर्म तीपा अने कठोर आदि तेमा घटावीशकता नथी, पणु सामान्य रीते माधुर्य आदि शब्द शब्द न धर्मो तेमा घटावीशकाय छे त्यार आह शब्द विशेषने। "आ शब्दने न अवा न छे" ओवो निर्णय थता तेने अवायज्ञान मानीलेवाशे

उत्तर—ओवी मान्यता पणु साथीमानीशकायतेमनथी कारणु के "शब्दोऽयम्" आ शब्द छे ओवी शब्दबुद्धि पणु ने अर्थावग्रहइपे मनाय, अने शब्दविशेषने निर्णय अवायइपेमनाय तो पछी अवग्रहज्ञान थु डशे?—

ननु 'शब्दोऽय'—मिति ज्ञानस्य ऋथमवायत्वमिति चेद्, उच्यते—तस्यापि विशेषग्राहकत्वात्, विशेषज्ञानस्य चावायत्वात् ।

ननु 'शाह् एवाय शब्दः' इति तदुत्तरकालभावि ज्ञानं विशेषार्थग्राहक, शब्दज्ञाने तु शब्दसामान्यस्यैव प्रतिभासनात् ऋथ विशेषप्रतिभासः, येनावायप्रसङ्गः स्यादिति चेत्, उच्यते—शब्दोऽयमित्यपि ज्ञान विशेषग्राहकमेव, तथाहि—'शब्दोऽय नाशब्दः' इति विशेषप्रतिभास एव । यस्मात् न रूपादिरयं, तेभ्यो व्यावृत्तत्वेन गृहीतत्वात्, अतो 'नाशब्दोऽय'—मिति निश्चीयते । यदि तु रूपादि-ही प्रसक्तं होगा, कारण कि अवग्रह का स्थान अवाय ले लेता है । यदि कहो कि—'यह शब्द है' ऐसा सामान्य ज्ञान अवाय कैसे माना जावेगा ? इसका उत्तर इस प्रकार है—यह ज्ञान सामान्य नहीं है किन्तु विशेष है । विशेषग्राहक ज्ञान अवाय माना गया है ।

प्रश्न—यदि फिर भी ऐसा कहा जाय कि "शब्द का ही यह शब्द है" इस प्रकार का उत्तर कालभावीज्ञान ही शब्दविशेष का ग्राहक होने से विशेषग्राहक ज्ञान माना जावेगा, "यह शब्द है" ऐसा ज्ञान नहीं, अर्थात्—यह तो शब्द सामान्य का ग्राहक होने से सामान्य ज्ञान ही माना जावेगा, क्यों कि इसमें शब्द सामान्य का ही प्रतिभास होता है, विशेष का नहीं । अतः "यह शब्द है" ऐसा सामान्य प्रतिभासवाले ज्ञान को अवाय प्राप्त होने का प्रसङ्ग कैसे प्रतिपादित किया है ।

એવી કલ્પનામાં તે અવગ્રહનો અભાવ જ પ્રસક્ત હશે, કારણ કે અવગ્રહનું સ્થાન અવાયલઈલે છે

જે આપ એમકહો કે "આ શબ્દ છે" એવા સામાન્યજ્ઞાનને અવાય કેમ મનાય ? તેનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે—આ જ્ઞાન સામાન્ય નથી પણ વિશેષ છે વિશેષ ગ્રાહક જ્ઞાનને અવાય માનવામાં આવેલ છે

પ્રશ્ન—જે દ્રશીથી પણ એમ કહેવામાં આવેકે "શબ્દનો જ આ શબ્દ છે" આ પ્રકારનું ઉત્તર કાલભાવીજ્ઞાન જ શબ્દવિશેષનું ગ્રાહક હોવાથી વિશેષ ગ્રાહકજ્ઞાન માનીશકાશે, "આ શબ્દ છે" એવું જ્ઞાન નહીં, એટલે કે એ તે શબ્દ સામાન્યનું ગ્રાહક હોવાથી સામાન્યજ્ઞાન જ માનવામાં આવશે, કારણ કે તેમાં શબ્દ સામાન્યનો જ પ્રતિભાસ થાય છે, વિશેષનો નહીં તેથી "આ શબ્દ છે" એવા સામાન્ય પ્રતિભાસવાળા જ્ઞાનને અવાય પ્રાપ્ત હોવાનો પ્રસંગ કેવી રીતે પ્રતિપાદિત કર્યો છે ?

ननु प्रथमसमय एव रूपादिपरिहारण 'शब्दोऽयम्' इति ज्ञानमर्थावगाहत्वेन मन्यताम्, शब्दमात्रत्वेन सामान्यत्वात्, तदुत्तरकाल तु प्रायो माधुर्यादयः शब्द-शब्दधर्मा अत्र घटन्ते, न तु शार्ङ्गधर्माः गार्कुर्यशब्दादय इति विमर्शबुद्धिरीत्या भविष्यति । ततश्च 'शाङ्ग एवाय शब्दः' इति शब्दविशेषात्तत्त्वज्ञानोऽयम्? इति चेत्, मृशु-

यदि शब्दबुद्धिमात्र 'शब्दोऽयम्' इति निश्चयज्ञानमपि भवतावर्थावगाहो मन्यते, शब्दविशेषज्ञानमत्राप इति भेदोऽङ्गीक्रियते, तर्हि अत्रगताभावममङ्गः स्यात्, अत्रगहस्थानेऽवायस्यैवाङ्गीकागत् ।

शका—रूपरसादिक के परिहार से प्रथम समय में ही 'यह शब्द है, अशब्द-रूपादिक नहीं है,' ऐसा ज्ञान अर्थावग्रह रूप से मान लेना चाहिये, क्योंकि अर्थावग्रह का विषय आप सामान्य करते हैं और "यह शब्द है" ऐसा ज्ञान मात्र की अपेक्षा सामान्य पड़ जाता है । अब इसमें ईहा भी उत्तर काल में उत्पन्न हो जावेगी—जब ऐसा विमर्श होगा कि शार्ङ्ग शब्द के धर्म पर कर्कशता आदि इसमें घटित नहीं होते हैं, किन्तु प्रायः माधुर्य आदि शब्द शब्द के धर्म पर घटित हो रहे हैं । इसके बाद ऐसा शब्द विशेष का निर्णय होने पर कि "यह शब्द का ही शब्द है" अवायज्ञान मान लिया जायगा ।

उत्तर—ऐसा मन्तव्य भी ठीक नहीं माना जा सकता है क्योंकि "शब्दोऽयम्" यह शब्द है । ऐसी शब्दबुद्धि भी यदि अर्थावग्रहरूप से मानी जावेगी, और शब्द विशेष का निर्णय अवायरूप से माना जावेगा तो फिर अवग्रह ज्ञान क्या होगा—ऐसी कल्पना में तो अवग्रह का अभाव

शका—रूपरसादिकनापरिहारधी प्रथमसमयमा "आ शब्दं छे, अशब्द-रूपादिक नहीं," ऐवु ज्ञान अर्थवग्रह इपे मानी लेवु जेधजे कारणु के अर्थावग्रहने विषय आप सामान्य कडे छे अने "आ शब्दं छे" ऐवु ज्ञान शब्दमात्रनी अपेक्षाजे सामान्य न लागे छे डवे तेमा धडा पणु उत्तरकालमा उत्पन्न थध नथे, न्यारे जेवो अनुभव थशेके शुभ शब्दना धर्म तीया अने कठोर आदि तेमा घटावीशकाता नथी, पणु सामान्य रीते माधुर्य आदि शब्द शब्द न धर्मो तेमा घटावीशकाय छे त्यार गह शब्द विशेषने "आ शब्दो न अवाय छे" जेवो निर्णय थता तेने अवायज्ञान मानीलेवाशे

उत्तर—जेवी मान्यता पणु साथीमानीशकायतेमनथी कारणु के "शब्दोऽयम्" आ शब्दं छे जेवी शब्दबुद्धि पणु जे अर्थवग्रहइपे मनाय, अने शब्दविशेषने निर्णय अवायइपेमनाय तो पछी अवग्रहज्ञान शु डशे ?-

ननु 'शब्दोऽय'—मिति ज्ञानस्य कथमवायत्वमिति चेद्, उच्यते—तस्यापि विशेषग्राहकत्वात्, विशेषज्ञानस्य चावायत्वात् ।

ननु 'शाह एवाय शब्दः' इति तदुत्तरकालभावि ज्ञानं विशेषार्थग्राहक, शब्दनाने तु शब्दसामान्यस्यैव प्रतिभासनात् कथं विशेषप्रतिभासः, येनावायप्रसङ्गः स्यादिति चेत्, उच्यते—शब्दोऽयमित्यपि ज्ञान विशेषग्राहकमेव, तथाहि—'शब्दोऽय नाशब्दः' इति विशेषप्रतिभास एव । यस्मात् न रूपादिस्य, तेभ्यो व्यावृत्तत्वेन गृहीतत्वात्, अतो 'नाशब्दोऽय'—मिति निश्चीयते । यदि तु रूपादि-ही प्रसक्तं होगा, कारण कि अवग्रह का स्थान अवाय ले लेता है । यदि कहो कि—'यह शब्द है' ऐसा सामान्य ज्ञान अवाय कैसे माना जावेगा ? इसका उत्तर इस प्रकार है—यह ज्ञान सामान्य नहीं है किन्तु विशेष है । विशेषग्राहक ज्ञान अवाय माना गया है ।

प्रश्न—यदि फिर भी ऐसा कहा जाय कि "शब्द का ही यह शब्द है" इस प्रकार का उत्तर कालभावीज्ञान ही शब्दविशेष का ग्राहक होने से विशेषग्राहक ज्ञान माना जावेगा, "यह शब्द है" ऐसा ज्ञान नहीं, अर्थात्—यह तो शब्द सामान्य का ग्राहक होने से सामान्य ज्ञान ही माना जावेगा, क्यों कि इसमें शब्द सामान्य का ही प्रतिभास होता है, विशेष का नहीं । अतः "यह शब्द है" ऐसा सामान्य प्रतिभासवाले ज्ञान को अवाय प्राप्त होने का प्रसङ्ग कैसे प्रतिपादित किया है ।

એવી કલ્પનામા તો અવગ્રહનો અભાવ જ પ્રસક્ત હશે, કારણ કે અવગ્રહનું સ્થાન અવાયલઇલે છે

ને આપ એમકહો કે "આ શબ્દ છે" એવા સામાન્યજ્ઞાનને અવાય કેમ મનાય ? તેનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે—આ જ્ઞાન સામાન્ય નથી પણ વિશેષ છે વિશેષ ગ્રાહક જ્ઞાનને અવાય માનવામા આવેલ છે

પ્રશ્ન—ને ફરીથી પણ એમ કહેવામા આવેકે "શબ્દનો જ આ શબ્દ છે" આ પ્રકારનું ઉત્તર કાલભાવીજ્ઞાન જ શબ્દવિશેષનું ગ્રાહક હોવાથી વિશેષ ગ્રાહકજ્ઞાન માનીશકાશે, "આ શબ્દ છે" એવું જ્ઞાન નહીં, એટલે કે એ તો શબ્દ સામાન્યનું ગ્રાહક હોવાથી સામાન્યજ્ઞાન જ માનવામા આવશે, કારણ કે તેમા શબ્દ સામાન્યનો જ પ્રતિભાસ થાય છે, વિશેષનો નહીં તેથી "આ શબ્દ છે" એવા સામાન્ય પ્રતિભાસવાળા જ્ઞાનને અવાય પ્રાપ્ત હોવાનો પ્રસંગ એવી રીતે પ્રતિપાદિત કર્યો છે ?

भ्योऽपि व्यावृत्तिर्गृहीता न स्यात्, तदा 'शब्दोऽय'—मिति निश्चयोऽपि न स्यात् । तस्मात् 'शब्दोऽय नाशब्दः' इति विशेषणानमेव । तथा न 'शब्दोऽय'—मिति ज्ञानस्य विशेषग्राहकत्वान्निश्चयरूपत्वाच्चागम एव, न तु अग्रह इति ।

उत्तर—“यह शब्द है” ऐसा ज्ञान भी विशेषग्राहक ही माना जावेगा, कारण कि—“यह शब्द है—अशब्द नहीं है—अर्थात् यह रूपादिक नहीं है” ऐसा ज्ञान, विशेष का प्रतिभास स्वरूप होने से विशेषप्रतिभासात्मक ही है, कारण कि—इस ज्ञानमें शब्द को रूपादिक से व्यावृत्तिरूपमें—पृथक्स्वरूप—ग्रहण किया गया है, नहीं तो “यह शब्द नहीं है” इस प्रकार का निश्चय शब्दमें कैसे किया जा सकता है । रूपादिकोंसे भिन्नता जब तक शब्दमें नहीं जानी जावेगी जब तक यह कैसे बोध हो सकेगा कि—“यह अशब्द नहीं है—शब्द है” इस प्रकार की भिन्नताका उसमें बोध होने से शब्द का बोध होता है, तब यह ज्ञान सामान्यप्रतिभास वाला न होकर विशेष प्रतिभास वाला ही माना गया है । सामान्यप्रतिभास वाले ज्ञानमें पर की व्यावृत्ति पूर्वक अपने विषयका निश्चय नहीं होता है, वहा तो सामान्यरूप से ही बोध रहा करता है, अतः अशब्द व्यावृत्ति पूर्वक हुआ यह शब्द का निश्चय अवायजान है ऐसा मान लेना चाहिये—अवग्रहरूप नहीं मानना चाहिये ।

उत्तर—“आ शब्द छे” ऐवु ज्ञान पणु विशेष आहक मानी शक्य काणु के “आ शब्द छे—अशब्द नहीं अटले के इपादिक नहीं” ऐवु ज्ञान विशेषना प्रतिभास स्वरूप होवाथी विशेष प्रतिभासात्मक न छे, कारण के—आ ज्ञानमा—शब्दने इपादिकथी व्यावृत्तिरूपेपृथक्स्वरूपे—अहणु करायेल छे, नही तो “आ अशब्द नहीं” ऐ प्रकाग्ने निश्चय शब्दमा डेवी रीते करी शक्य छे इपादिकेथी न्या सुधी शब्दमा भिन्नता नही नणुवामा आवे त्या सुधी ऐवे जोध डेवी रीते थशे के “आ अशब्द नहीं” ऐ प्रकारने निश्चय शब्दमा डेवीरीतेकरीशक्यछे इपादिकेथी न्या सुधी शब्दमा भिन्नता नही नणु वामा आवे त्या सुधी ऐवे जोध डेवी रीते थशे के “आ अशब्द नहीं, शब्द छे आ प्रकाग्नी भिन्नताने तेमा जोध थवाथी शब्दने जोध थाय छे, त्यारे न आ ज्ञान सामान्य प्रतिभासवाणु न गणुता विशेष प्रतिभासवाणु न गणुथु छे सामान्य प्रतिभासवाणा ज्ञानमा परनी व्यावृत्ति पूर्वक पोताना विषयने निश्चयथतो नथी, त्या तो सामान्यरूपे न जोधरह्याकरेछे तेथी अशब्द व्यावृत्तिपूर्वक थयेल आ शब्दने निश्चय अवायजानरूप छे. ऐव मानी लेष जोध ऐ—अवग्रहरूप न मानवु जोधऐ

ननु स्तोकविशेषग्राहक ज्ञानमग्रहोऽस्तु, वृहद्विशेषग्राहकं ज्ञानं तु अवायः इति, एव सति शब्दमात्ररूपस्य विशेषस्य ग्राहकतया 'शब्दोऽयम्'—मिति ज्ञानमग्रहः, 'शाब्दोऽयमशब्दः' इत्यादिविशेषणविशिष्ट यद् ज्ञान तदवायः, वृहद्विशेषावबोधकत्वात् ? इति चेत्,

उच्यते—'यत् यत् स्तोकं तत्तन्नावाय.' इति स्वीकारे भयन्मतेऽज्ञायाभासप्रसङ्गः, उत्तरोत्तरार्थविशेषग्राहणापेक्षया पूर्वपूर्वार्थविशेषावबोधस्य स्तोकत्वात् ।

प्रश्न—योडे से विशेषको ग्रहण करनेवाला जो ज्ञान होगा वह अवग्रह मानलिया जावेगा, तथा अधिक विशेषको ग्रहण करने वाला जो ज्ञान होगा वह अवाय मान लिया जावेगा। इस तरह अवग्रह और अवाय का स्वरूप निर्धारण करलेने पर अब इस बात के समझनेमें देर नहीं लगेगी कि—“ शब्दोऽयम् ” यह ज्ञान अवग्रह और 'यह शब्द का शब्द है' ऐसा ज्ञान अवाय होगा, कारण कि अवग्रहमें जो शब्द विषय हुआ है वह स्तोक विशेष को लेकर हुआ है। शब्द मात्र ही वह अवग्रह का विषय है। जब 'यह शब्द का शब्द है' ऐसा विशेषणविशिष्ट शब्द विषय होगा तो अधिक विशेष को विषय करनेवाला होने से यह ज्ञान अवाय मान लिया जावेगा।

उत्तर—'जो जो योडे विशेषको ग्रहण करने वाला होगा वह अवाय नहीं होगा' इस प्रकार के मन्तव्यमें अवाय का अभावप्रसक्त-होगा, कारण कि—उत्तरोत्तर अर्थविशेष ग्रहण होने की अपेक्षा पूर्व पूर्वका अर्थविशेषका बोध सब ही स्तोक होने से अवग्रह रूप ही कहा जावेगा।

प्रश्न—थोडासरभावविशेषनेअडलुकरनाइ ने ज्ञानइशे ते अवग्रहमानी लेवाशे तथा अधिकविशेषनेअडलुकरनाइ ने ज्ञानइशे, तेने अवाय, मानी लेवाशे आ प्रभाजे अवग्रह अने अवायनु स्वरूप नक्षी ज्या पडी अे वातने समजवामा वार नही लागे के “ शब्दोऽयम् ” अे ज्ञान अवग्रह अने “ आ शब्दो शब्द छे ” अेपु ज्ञान अवाय इशे, कारण के अवग्रहमा ने शब्द विषय थये छे ते सूक्ष्म विशेषने लीधे थये छे शब्द मात्र न त्या अवग्रहने विषय छे न्यारे “ आ शब्दो शब्द छे ” अेवो विशेषणविशिष्टशब्द विषय थये तो अधिकविषयने विषयकरनारहोवाथी अे-ज्ञान अवाय मानी लेवाशे

उत्तर—“ने ने थोडा विषयने अडलु करनार इशे ते अवाय नही होय” आ प्रकारना मतव्यमा अवायने अभाव प्रसक्ता इशे, कारण के उत्तरोत्तर अर्थविशेष अडलुथवानी अपेक्षाअे पूर्वपूर्वना अर्थविशेषने बोध अथु न सूक्ष्म होवाथी अवग्रहइय न छोवाशे

तथाहि-शास्त्रशब्दस्य ये उत्तरोत्तरभेदाः मन्त्रमधुरत्यादयः, तरुणमध्यमट्टस्त्रीपुरुष-
जन्यत्वादयश्च, तदपेक्षया सत्यामिदमपि-‘शास्त्रोऽय-शब्दः’ इत्यादि ज्ञान स्तोक-
विशेषग्राहकमेव-इति नायायः स्यात् । एवमुत्तरोत्तरविशेषग्राहिणामपि ज्ञानानां तदु-
त्तरोत्तरभेदापेक्षया स्तोकत्वादवायाभावात् एव स्यादिति । तस्मात् ‘शब्दोऽय’-मिति
निश्चयोऽवाय एव मन्तव्यः । तदनन्तरं तु ‘शब्दोऽय किं शास्त्र’, शास्त्रो वा’ इत्यादि-
शब्दविशेषविषया पुनरीहा प्रवर्तिष्यते । ‘शास्त्र एवाय शब्दः’ इत्यादिशब्द-

जब ऐसा ज्ञान होगा कि-‘यह शब्द शस्त्र का है’ तो यह अवाय
इसलिये नहीं हो सकेगा कि इसमें उत्तरोत्तर मन्त्रता मधुरता आदि
की, तथा तरुण मध्यम, वृद्ध, स्त्री आदि के द्वारा बोले गये आदिकी,
अपेक्षा रहेगी, अतः यह स्तोक विशेष का ग्राहक माना जावेगा, इस-
लिये ‘जो ज्ञान स्तोकविशेष का ग्राहक होगा वह अवग्रह एव जो बृह-
द्विशेषकाग्राहक होगा वह अवाय है’ ऐसा नियम बनना किसी प्रकार
से भी उचित नहीं माना जा सकता। इस तरह की एकान्तमान्यतामें
उत्तरोत्तर विशेषाग्राही जितने भी ज्ञान होंगे वे सब उत्तरोत्तर भेदोंकी
अपेक्षा स्तोकविषयवाले रहेंगे, इस तरह अवाय का सर्वथा अभाव ही
होगा, अतः अवाय का लोप न हो इस तरह “यह शब्द है” इस ज्ञान
को अवाय मानना ही उचित है। इसके बाद-‘यह शब्द शस्त्र का है या
श्रृंग का है’ इत्यादि आकाक्षा का जो कि शब्द विशेष को इहित करती
हैं ईहाज्ञानरूपसे प्रवृत्ति होगी। इस प्रवृत्तिमें जब ऐसा निर्णय हो
जावेगा कि “यह शब्द शस्त्र का ही है” तो यह शब्द विशेष को विषय

न्याये अेषु ज्ञान यथे के-“आ शब्दश जनेो छे” त्यारे ते अवाय ते
कारणे नही डोडशिके के तेमा उत्तरोत्तर गभिरता, मधुरता, आदिनि, तथा
तरुण्य, मध्यम, वृद्ध, स्त्री, आदि द्वारा बोलाया आदिना अपेक्षा रहेशे, तेथी
ते स्तोकविशेषनु आडकमनाशे, ते कारणे “जे ज्ञान स्तोकविशेषनु आडक
थशे ते अवग्रह, अने जे वृद्ध विशेषनु आडक थशे ते अवाय छे” अवेो
नियम उरवेो ते केरि पणु रीते उचितमानीशकायनडी आ प्रकारनी अेकान्त
मान्यतामा उत्तरोत्तर विशेषआही जेटलापणुज्ञानथशे ते यथा उत्तरोत्तर
वेदोनी अपेक्षाअे सूक्ष्मविषयवाणा रहेशे आ रीते अवायनेो सर्वथा अभाव
न छेशे, तेथी अवायनेो लोप न थाय अेरिते “आ शब्द छे” अे ज्ञानने
अवाय माननु अेअ उचित छे त्यारणाड “आ शब्द श जनेोछे के श्रृंगनेो
छे” इत्यादि आकाक्षानी के जे शब्दविशेषने धडितकरे छे धडाज्ञान रुपे
प्रवृत्ति थशे आ प्रवृत्तिमा न्याये अवेो निर्णय यथे नशे के “आ शब्द

विशेषविषयोऽत्रायश्च यो भविष्यति, तदपेक्षया 'शब्द एवायम्' इति निश्चयः प्रथमोऽत्रायोऽपि सन् उपचारादर्थाग्रह उच्यते । यदनन्तरमीहाऽत्रायो प्रवर्तते यश्च सामान्यं गृह्णाति, सोऽर्थाग्रहः । यथा-आद्यो नैश्चयिकः । 'शब्द एवाय' मित्याद्यत्रायानन्तर पुनरीहाऽत्रायो च प्रवर्तते । 'शाब्दोऽय' -मित्यादिभाविनिशेषापेक्षया शब्दः सामान्यम्, तस्मादर्थाग्रहो भाविविशेषापेक्षया सामान्यं गृह्णातीत्युक्तम् ।

ततश्च सामान्येन शब्दनिश्चयरूपात् प्रथमात्रायानन्तर 'किमय शब्दः शाब्दः, शाब्दो वा' इत्यादिरूपा ईहा प्रवर्तते । ततः 'शाब्द एवायम्' इत्यादिरूपेण शब्द-विशेषस्य निश्चयरूपोऽत्रायो भवति । अयमपि च पुनर्विशेषाकाङ्क्षाव्रतः प्रमातुर्भाविनीमीहामत्रायं चापेक्ष्य भाविविशेषापेक्षया सामान्यालम्बनत्वाच्च अर्थावग्रह इत्युपचर्यते ।

करने वाला ज्ञान अवाय हो जावेगा । अब इस अवाय ज्ञान की अपेक्षा से पहिले जो ऐसा अवाय ज्ञान हुआ है कि "यह शब्द ही है" वह उपचार से अर्थावग्रह कहा जावेगा । जिस के बाद ईहा और अवाय ज्ञान प्रवृत्त होते हैं, तथा जो सामान्य को ग्रहण करता है वह अर्थावग्रह है, जैसे आदि का नैश्चयिक अर्थावग्रह । "यह शब्द ही है" इत्यादि अवायज्ञान के अनन्तर पुनः ईहा और अवाय प्रवृत्त होते हैं इसलिये "यह शब्द ही है" यह अवायज्ञान होते हुए भी उपचारसे अवग्रहरूप माना जावेगा, कारण कि इसमें "यह शब्द शब्दका है" इत्यादिरूपसे भावी विशेषों की आकाक्षा रहती है, अतः इस अपेक्षा से शब्द, सामान्य बन जाता है, इसलिये अर्थावग्रह भावीविशेष की अपेक्षा सामान्य को ग्रहण करता है, ऐसा कहा है ।

शब्दो न च " त्पारे ये शब्द विशेषने विषयदर्शनाज्ञान अवाय अर्थ न चो हवे अवायज्ञाननी अपेक्षाये पहिला नो येवु अवायज्ञान यथु छे के " आ शब्द न च " ते उपचारथी अर्थावग्रह उडेवाशे, नेना पधी धडा अने अवाय ज्ञान प्रवृत्तथायछे, तथा नो सामान्यनेग्रहणुकरे छे ते अर्थावग्रह छे, नेमके आदिने नैश्चयिक अर्थावग्रह " आ शब्द न च " इत्यादि अवायज्ञान ग्राह ईरीथी धडा अने अवाय प्रवृत्तथाय छे तेथी " आ शब्द न च " आ अवा यज्ञान होवा छता पणु उपचारथी अवग्रहरूप भनाशे कारणु के तेमा " आ शब्द शब्दो छे " इत्यादि इचे भावीविशेषोनी आकाक्षारडेछे तेथी आ अपेक्षाये शब्द, सामान्यपनीनायछे, ते कारणु अर्थावग्रह भावीविशेषनी अपेक्षाये सामान्यनेग्रहणुकरेछे अम कहु छे

तथाहि-शास्त्रशब्दस्य ये उत्तरोत्तरभेदाः मन्त्रमधुरत्यादयः, तरुणमध्यमटद्धस्त्रीपुरुष-
जन्यत्वादयश्च, तदपेक्षाया सत्यामिदमपि-‘शास्त्रोऽय-शब्द.’ इत्यादि ज्ञान स्तोक-
विशेषग्राहकमेव-इति नायायः स्यात्। एवमुत्तरोत्तरविशेषग्राहिणामपि ज्ञानानां तदु-
त्तरोत्तरभेदापेक्षया स्तोकत्वादवायाभावा एव स्यादिति । तस्मात् ‘शब्दोऽय’-मिति
निश्चयोऽवाय एव मन्तव्यः । तदनन्तरं तु ‘शब्दोऽय किं शास्त्रः, शास्त्रं वा’ इत्यादि-
शब्दविशेषविषया पुनरीहा प्रवर्तिष्यते । ‘शास्त्र एवाय शब्दः’ इत्यादिशब्द-

जत्र ऐसा ज्ञान होगा कि-‘यह शब्द शास्त्र का है’ तो यह अवाय
इसलिये नहीं हो सकेगा कि इसमें उत्तरोत्तर मन्त्रता मधुरता आदि
की, तथा तरुण मध्यम, वृद्ध, स्त्री आदि के द्वारा बोले गये आदिकी,
अपेक्षा रहेगी, अतः यह स्तोक विशेष का ग्राहक माना जावेगा, इस-
लिये ‘जो ज्ञान स्तोकविशेष का ग्राहक होगा वह अवग्रह एव जो वृह-
द्विशेषकाग्राहक होगा वह अवाय है’ ऐसा नियम बनना किसी प्रकार
से भी उचित नहीं माना जा सकता। इस तरह की एकान्तमान्यतामें
उत्तरोत्तर विशेषाग्राही जितने भी ज्ञान होंगे वे सब उत्तरोत्तर भेदोंकी
अपेक्षा स्तोकविषयवाले रहेंगे, इस तरह अवाय का सर्वथा अभाव ही
होगा, अतः अवाय का लोप न हो इस तरह “यह शब्द है” इस ज्ञान
को अवाय मानना ही उचित है। इसके बाद-‘यह शब्द शास्त्र का है या
श्रृंग का है’ इत्यादि आकाक्षा का जो कि शब्द विशेष को ईहित करती
हैं ईहाज्ञानरूपसे प्रवृत्ति होगी। इस प्रवृत्तिमें जब ऐसा निर्णय हो
जावेगा कि “यह शब्द शास्त्र का ही है” तो यह शब्द विशेष को विषय

न्यारे એવું જ્ઞાન થશે કે-“આ શબ્દશબ્દનો છે” ત્યારે તે અવાય તે
કારણે નહીં હોઈ શકે કે તેમાં ઉત્તરોત્તર ગભિરતા, મધુરતા, આદિની, તથા
તરુણ, મધ્યમ, વૃદ્ધ, સ્ત્રી, આદિ દ્વારા બોલાયા આદિની અપેક્ષા રહેશે, તેથી
તે સ્તોકવિશેષનું ગ્રાહકમનાશે, તે કારણે “જે જ્ઞાન સ્તોકવિશેષનું ગ્રાહક
થશે તે અવગ્રહ, અને જે બૃહદ્ વિશેષનું ગ્રાહક થશે તે અવાય છે” એવો
નિયમ કરવો તે કોઈ પણ રીતે ઉચિતમાની શકાય નહીં આ પ્રકારની એકાન્ત
માન્યતામાં ઉત્તરોત્તર વિશેષગ્રાહી જેટલાપણુ જ્ઞાનથશે તે બધા ઉત્તરોત્તર
ભેદોની અપેક્ષાએ સૂક્ષ્મવિષયવાળા રહેશે આ રીતે અવાયનો સર્વથા અભાવ
જ હશે, તેથી અવાયનો લોપ ન થાય એ રીતે “આ શબ્દ છે” એ જ્ઞાનને
અવાય માનવું એજ ઉચિત છે ત્યારબાદ “આ શબ્દ શબ્દનો છે કે શ્રૃંગનો
છે” ઇત્યાદિ આકાક્ષાની કે જે શબ્દવિશેષને ઇહિતકરે છે ઇહિતજ્ઞાન રૂપે
પ્રવૃત્તિ થશે આ પ્રવૃત્તિમાં ન્યારે એવો નિર્ણય થઈ જશે કે “આ શબ્દ

अन्यविशेषेषु यतो विशेषात् परतः प्रमातुस्तज्जिज्ञासा निवर्तते सोऽन्त्यः । अन्य-
विशेषापेक्षया च व्यावहारिकार्थावग्रहेद्वाऽप्यायार्थं सामान्यविशेषाऽपेक्षा कर्तव्या ।
तस्मादुत्तरोत्तरविशेषाकाङ्क्षा यान्तु प्रवर्तते, तावत् सर्वत्र यो योऽप्यायः स स
उपचारतोऽर्थावग्रहः । यदा तु प्रमातुस्तज्जिज्ञासा निवर्तते, तदा तद्विशेषार्थनिश्चय-
रूपोऽप्यायो नावग्रह इति विभाजनीयम् ॥ ४ ॥

‘मेधा’ इति । शब्दोऽयमित्याकारकं प्रथम विशेषसामान्यार्थावग्रहं प्रियाय,
उत्तरः सर्वोऽपि विशेषसामान्यार्थावग्रहो ‘मेधा’ इत्युच्यते । यथा-‘शाब्दोऽय

अन्य विशेषो के रहने पर भी जिस विशेष से आगे प्रमाता को फिर
विशेषविषयक जिज्ञासा नहीं होती हो वह अन्त्य है । अन्त्यविशेष
अपेक्षा से ही व्यावहारिक अर्थावग्रह ईहा और अवाय के लिये सामान्य
विशेष की अपेक्षा करनी पड़ती है इसलिये जवत्क अपने विषय में
उत्तरोत्तर विशेष की आकाक्षा चालू रहती है तवत्क सर्वत्र जो जो
अवायज्ञान होता है वह उपचार से अर्थावग्रह मान लिया जाता है ।
जैसे ही प्रमाता की अपने विषय में विशेष को जानने की आकाक्षा शांत
हो जाती है कि वैसे ही वह अवाय अपने विषय को निश्चय करने वाला
अवाय ही रहता है, अर्थावग्रह नहीं होता है ॥ ४ ॥

“यह शब्द है” इत्याकारक जो प्रथम सामान्यविशेषरूप अर्था-
वग्रह होता है उसको छोड़कर इसके बाद के जिनने भी सामान्यविशेष-
रूप अर्थावग्रह हैं वे सब मेधा शब्द वाच्य माने गये हैं । अर्थात्-“यह

रहेवा छता पक्षु ने विशेषनी आगण प्रमाताने विशेषविषयक जिज्ञासा यतीनया
ते अन्त्य छे अन्त्यविशेषनी अपेक्षा छे न व्यावहारिक अर्थावग्रह छे छे अने
अवायने भाटे सामान्य विशेषनी अपेक्षाउरवीपडेछे ते तरेछे न्या मुधा पोताना
विषयमा उत्तरोत्तरविशेषनी आकाक्षा आलुरहेछे त्यासुधी सर्वत्र ने ने अवाय-
ज्ञान थाय छे ते उपचारथी अर्थावग्रह मानीवेवायछे नेवी प्रमातानी पोताना
विषयमा विशेष नालुवानी आकाक्षा शान्तपडीनय छे, ओषु न ते अवाय
पोतानाविषयनेनिश्चितकरनाइ अवायउरहेछे अर्थावग्रह यतो नथी ॥ ४ ॥

“आ शब्द छे” इत्याकारक ने प्रथम सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह थाय छे,
तेने छोडी छे छे त्यारभाद नेटला सामान्य विशेषरूप अर्थावग्रह छे छे अथा

इयं च सामान्यविशेषापेभा तात् कर्तव्या, यादन्त्यो वस्तुनो विशेषः । यस्माच्च विशेषात् परतोऽन्ये विशेषा न समान्ति, सोऽन्त्य. । अथवा—मभवात्स्वपि

फिर—सामान्यतः शब्द का निश्चय करने वाले प्रथम अवायज्ञान के बाद “ किमय शब्दः शब्दः शाङ्गोवा—क्या यह शब्द शब्द का है अथवा शब्द का है ” इत्यादि रूप से ईहा ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है। इसके बाद “ शब्द का ही यह शब्द है ” इत्यादि रूप से शब्दविशेष का निश्चयरूप अवाय ज्ञान होता है। इस तरह का यह अवायज्ञान भी उपचार से अर्थावग्रह रूप तब माना जाता है जब कि प्रमाता को उसमें और भी विशेष जानने की आकाक्षा होती है। इस आकाक्षामें अवाय के विषयभूत वने हुए उस शब्द के शब्दमें प्रमाता को ईहा और अवाय पुनः होते हैं। इस तरह “ शब्द का ही यह शब्द है ” यह अवायज्ञान होने पर भी उसमें भावि विशेष को जानने की आकाक्षा की अपेक्षा लेकर होनेवाली ईहा और अवायज्ञान की अपेक्षा से प्रमाता का वह अवायज्ञान सामान्य को विषय करनेवाला मान लिया जाता है, अतः उह उपचार से अर्थावग्रह कह दिया जाता है।

यह सामान्यविशेष की अपेक्षा तत्पर करनी चाहिये जतक वस्तु का अन्त्य विशेष निर्णीत न हुआ हो। जिस विशेष को आगे फिर अन्यविशेष की सभावना नहीं होती हो वह विशेष अन्त्य है। अथवा

તથા—સામાન્યરીતે શબ્દનો નિશ્ચયકરનારા પ્રથમ અવયજ્ઞાનના પછી “ કિમય શબ્દ શબ્દ શાઙ્ગોવા~શુ આ શબ્દ શ ખનોછે કે શ્રગનો છે ” ઇત્યાદિ રૂપે ઇહાજ્ઞાનની પ્રવૃત્તિથાયછે ત્યારબાદ ‘ શ ખનો જ આશબ્દછે ” ઇત્યાદિ રૂપે શબ્દવિશેષનાનિશ્ચયરૂપ અવાયજ્ઞાનથાયછે આ પ્રકારતુ આ અવાયજ્ઞાન પણ ઉપચારથી અર્થાવગ્રહરૂપ ત્યારેમનાયછે કે જ્યારે પ્રમાતાને તેમાં હજી પણ વિશેષ જાણવાની આકાક્ષા થાય છે આ આકાક્ષામાં અવાયના વિષયભૂત ખનેલ તે શ ખના શબ્દમાં પ્રમાતાને ઇહા અને અવાય ફરીથી થાય છે આ રીતે “ શ ખનો જ આ શબ્દ છે ” આ અવાયજ્ઞાન થવા છતાં પણ તેમાં ભાવિવિશેષને જાણવાની આકાક્ષાની અપેક્ષાએ થનારી ઇહા અને અવાયજ્ઞાનની અપેક્ષાએ પ્રમાતાનુ તે અવાયજ્ઞાન સામાન્યને વિષય કરનાર માનવામાં આવે છે, તેથી તે ઉપચારથી અર્થાવગ્રહ કહી દેવાય છે

આ સામાન્યવિશેષની અપેક્ષા ત્યાં સુધી કરવીજોઈએકે, જ્યાંસુધી વસ્તુનું અન્ત્યવિશેષ નિશ્ચિત ન થયું હોય જે વિશેષથી આગળ ફરીથી અન્ત્યવિશેષની સલાવના ન રહેતી હોય તે વિશેષ અન્ત્ય છે અથવા અન્ત્યવિશેષોના

सा पड्विधा प्रज्ञप्ता । तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियेहा-इत्यादि । श्रोत्रेन्द्रियेण ईहा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहमधिकृत्य या प्रवृत्ता ईहा सा श्रोत्रेन्द्रियेहा, इत्यर्थः । एव शेषाश्चक्षु-रिन्द्रियेहादयोऽपि साधनीयाः । 'तीसे ण०' इत्यादि । तस्याः=ईहायाः । अन्यत् सुगमम् । नवर सामान्यापेक्षया एकार्थकानि । विशेषचिन्ताया तु भिन्नार्थकानि ।

‘से किं त ईहा?’ इत्यादि० ।

शिष्य पूछता है कि हे भदत ! पूर्वनिर्दिष्ट ईहा का क्या स्वरूप है ? उत्तर-ईहा छह प्रकार की बतलाई गई है । वह इस प्रकार है-श्रोत्र इन्द्रिय ईहा १, चक्षु इन्द्रिय ईहा, घ्राण इन्द्रिय ईहा ३, जिह्वा इन्द्रिय ईहा ४, स्पर्शइन्द्रिय ईहा ५, नो इन्द्रिय ईहा ६ । उसके ये नाना घोष-वाले तथा नाना व्यजनावाले एकार्थक पाच नाम है । जैसे-आभोगनता, मार्गणता २, गवेपणता ३, चिन्ता ४, और विमर्श ५, इस प्रकार ये पाच ईहा के नाम है । वस्तु के निर्णय के लिये जो विचारणा होती है उसका नाम ईहा है । श्रोत्रेन्द्रिय से जन्य अर्थावग्रह के बाद जो विचारणा चलती है उसका नाम श्रोत्रेन्द्रिय ईहा है । इसी तरह अवशिष्ट इन्द्रियों की ईहा भी उन २ इन्द्रियों के अर्थावग्रह के बाद हुई विचारणा स्वरूप जाननी चाहिये । इस ईहा के जो पाच नाम एकार्थक बतलाये गये हैं वे सामान्य की अपेक्षा ही बतलाये गये जानना चाहिये, विशेष की अपेक्षा नहीं, कारण-विशेष की अपेक्षा ये सब भिन्न २ अर्थवाले हो

“से किं त ईहा ?” इत्यादि—

शिष्यपूछेछे-डे लदन्त । पूर्वनिर्दिष्ट “ईहा”तु शु स्वइपछे ?

उत्तर-ईहा ना छ प्रकारणताव्याछे ते आप्रभाछे छे-(१) श्रोत्रेन्द्रिय धडा, (२) चक्षुधन्द्रिय धडा, (३) घ्राणुन्द्रिय धडा, (४) लुड्वाधन्द्रिय धडा, (५) स्पर्शेन्द्रिय धडा, अने (६) नो धन्द्रिय धडा तेना विवधघोषवाणा तथा विविधव्यजनवाणा ऐकार्थक पाचनामछे लेवा डे (१) आभोगनता, (२) मार्गणता, (३) गवेपणता (४) चिन्ता, अने (५) विमर्श आ प्रकारे धडाना पाच नाम छे वस्तुनानिर्णयभाटे ले विचारणाथायछे तेनुनाम धडाछे

श्रोत्रेन्द्रियजनितअर्थावग्रहभाड ले विचारणाथाय छे तेनुनाम श्रोत्रेन्द्रिय धडाछे ऐजरीते भाडीनीधन्द्रियोनी धडा पणु ते ते धन्द्रियोना अर्थावग्रह भाड थयेलविचारणास्वइपसमलुडेवी आ धडाना ले पाच ऐकार्थक नाम षताव्याछे, ते सामान्यनीअपेक्षाऐ ज षतावेकमानवालेधऐ, विशेषनी अपेक्षाऐनडी, कारण डे विशेषनीअपेक्षाऐ ऐ षधा बित्तलित्त

शब्दः' इत्यारभ्यान्त्यविशेषात् प्राक् यो यो विशेषसामान्यार्थावग्रहः स सर्वोऽपि 'मेधा' इति विशेषः । तथा च श्रवणताऽवलम्बनता मेधा चेत्येतत् त्रयमर्थावग्रहरूप बोध्यम् । 'अवग्रहणता, उपधारणता चेत्येतद् द्वयव्यञ्जनावग्रहरूपमिति प्रागुक्तम् ॥ ५ ॥ अवग्रहो वर्णित इत्याह—'सेत' इति । स एषोऽवग्रह इति ॥ मू० ३० ॥

मूलम्—से किं त ईहा ? । ईहा छव्विहा पणत्ता, त जहा-सोइदिय-ईहा । चन्निखदिय-ईहा । घाणिदिय-ईहा । जिन्निदिय-ईहा । फासिदिय-ईहा । नोइंदिय-ईहा । तीसे ण इमे एगट्टिया नाणाघोसा नाणावंजणा पचनामधिज्जा भवंति, त जहा-आभोगणया, मग्गणया, गवेसणया, चिंता, वीमंसा । से त ईहा ॥ सू० ३१ ॥

छाया—अथ का सा ईहा ?, ईहा पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियेहा । चक्षुरिन्द्रियेहा । घ्राणेन्द्रियेहा, जिह्वेन्द्रियेहा, स्पर्शेन्द्रियेहा, नोइन्द्रियेहा । तस्या इमानि—एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति । तद् यथा—आभोगनता १, मार्गणता २, गवेपणता ३, चिन्ता ४, विमर्शः (मीमासा) । सा एषा ईहा ॥ मू० ३१ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं त ईहा ? इत्यादि । अथ का सा ईहा ? उत्तरमाह—'ईहा छव्विहा पणत्ता' इत्यादि । वस्तुनिर्णयार्थं विचारणा ईहा,

शब्द का शब्द है" इस प्रकार के बोध से लगाकर अन्त्यविशेष के पहिले पहिले का जो सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह है वह सब मेधा है ॥ ५ ॥ इस तरह श्रवणता अवलम्बनता और मेधा ये तीन अर्थावग्रहरूप, तथा अवग्रहता, उपधारणता ये दो व्यञ्जनावग्रहरूप होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ इस प्रकार यह अवग्रह का वर्णन है ॥ सू० ॥ ३० ॥

मेधा शब्दवाच्यमनायाछे अट्ठेके "आ श भनोशफ० छे" आ प्रकारना जोधर्था लक्षणे अन्त्यविशेषनीआगग आगगनो ने सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह छे ते सौ मेधा छे ॥ ५ ॥ आ प्रकारे श्रवणता अवलम्बनता अने मेधा अत्रेषु अर्थावग्रहरूप, तथा अवग्रहणता, उपधारणता अे जे व्यञ्जनावग्रहरूप होय छे अे मनाषु लक्षणे आ प्रकारे आ अवग्रहण वलुन छे ॥ सू० ॥ ३० ॥

सा पड्विधा मज्ञप्ता । तद् यथा-श्रोत्रेन्द्रियेहा-इत्यादि । श्रोत्रेन्द्रियेण ईहा-श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहमधिकृत्य या मृत्ता ईहा सा श्रोत्रेन्द्रियेहा, इत्यर्थः । एव शेषाश्चन्द्रियेहादयोऽपि साधनीयाः । 'तीसे ण०' इत्यादि । तस्याः=ईहायाः । अन्यत् सुगमम् । नवर सामान्यापेक्षया एकार्थकानि । विशेषचिन्तार्यां तु भिन्नार्थकानि ।

'से किं त ईहा?' इत्यादि० ।

शिष्य पृच्छता है कि हे भदत ! पूर्वनिर्दिष्ट ईहा का क्या स्वरूप है ? उत्तर-ईहा छह प्रकार की बतलाई गई है । वह इस प्रकार है-श्रोत्र इन्द्रिय ईहा १, चक्षु इन्द्रिय ईहा, घ्राण इन्द्रिय ईहा ३, जिह्वा इन्द्रिय ईहा ४, स्पर्शइन्द्रिय ईहा ५, नो इन्द्रिय ईहा ६ । उसके ये नाना घोषवाले तथा नाना व्यजनावाले एकार्थक पाच नाम हैं । जैसे-आभोगनता, मार्गणता २, गवेपणता ३, चिन्ता ४, और विमर्श ५, इस प्रकार ये पाच ईहा के नाम हैं । वस्तु के निर्णय के लिये जो विचारणा होती है उसका नाम ईहा है । श्रोत्रेन्द्रिय से जन्य अर्थावग्रह के बाद जो विचारणा चलती है उसका नाम श्रोत्रेन्द्रिय ईहा है । इसी तरह अवशिष्ट इन्द्रियों की ईहा भी उन २ इन्द्रियों के अर्थावग्रह के बाद हुई विचारणा स्वरूप जाननी चाहिये । इस ईहा के जो पांच नाम एकार्थक बतलाये गये हैं वे सामान्य की अपेक्षा ही बतलाये गये जानना चाहिये, विशेष की अपेक्षा नहीं, कारण-विशेष की अपेक्षा ये सब भिन्न २ अर्थवाले हो

“से किं त ईहा ?” इत्यादि—

शिष्यपृच्छते-हे लहन्त ! पूर्वनिर्दिष्ट “ईहा” तु शु स्वर्पछे ?

उत्तर-ईहा ना छ प्रकारभताव्याछे ते आप्रभाछे छे-(१) श्रोत्रेन्द्रिय छडा, (२) चक्षुइन्द्रिय छडा, (३) घ्राणेन्द्रिय छडा, (४) जिह्वाइन्द्रिय छडा, (५) स्पर्शेन्द्रिय छडा, अने (६) नो इन्द्रिय छडा तेना विवधघोषवाणा तथा विविधव्यजनवाणा ऐकार्थक पाच्यनामछे जेवा के (१) आभोगनता, (२) मार्गणता, (३) गवेपणता (४) चिन्ता, अने (५) विमर्श आ प्रकारे छडाना पाच नाम छे वस्तुनानिर्णयमाटे जे विचारणाथायछे तेनु नाम छडाछे श्रोत्रेन्द्रियजनितअर्थावग्रहमाह जे विचारणाथाय छे तेनु नाम श्रोत्रेन्द्रिय छडाछे जेजरीते आकीनीइन्द्रियोनी छडा पणु ते ते इन्द्रियोना अर्थावग्रह माह थयेतविचारणास्वर्पसमलुलेवी आ छडाना जे पाच ऐकार्थक नाम भताव्याछे, ते सामान्यनीअपेक्षाज्जे ज भतावेतमानवालेइज्जे, विशेषनी अपेक्षाज्जेनडी, कारण के विशेषनीअपेक्षाज्जे जे भधा भिन्नभिन्न

शब्दः' इत्यारभ्यान्त्यविशेषात् प्राक् यो यो विशेषसामान्यार्थावग्रहः स सर्वोऽपि 'मेधा' इति विशेषः । तथा च श्रवणताऽवलम्बनता मेधा चेत्येतत् त्रयमर्थावग्रह रूप बोध्यम् । 'अवग्रहणता, उपधारणता चेत्येतद् द्वय व्यञ्जनावग्रहरूपमिति प्रागुक्तम् ॥ ५ ॥ अवग्रहो वर्णित इत्याह—'सेत' इति । स णपोऽवग्रह इति ॥ भू० ३० ॥

मूलम्—से किं त ईहा ? । ईहा छविहा पणत्ता, तं जहा-
सोइंदिय-ईहा । चक्खिदिय-ईहा । घाणिंदिय-ईहा । जिब्भि-
दिय-ईहा । फासिदिय-ईहा । नोइदिय-ईहा । तीसे ण इमे
एगट्टिया नाणाघोसा नाणावंजणा पचनामधिज्जा भवति, त
जहा—आभोगणया, मग्गणया, गवेसणया, चित्ता, वीमसा ।
से त ईहा ॥ सू० ३१ ॥

छाया—अथ का सा ईहा ? , ईहा पइविधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियेहा ।
चक्षुरिन्द्रियेहा । घ्राणेन्द्रियेहा, जिह्वेन्द्रियेहा, स्पर्शेन्द्रियेहा , नोइन्द्रियेहा । तस्या
इमानि—एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति ।
तद् यथा—आभोगनता१, मार्गणता२, गवेपणता३, चिन्ता४, विमर्शः (मीमासा)।
सा एषा ईहा ॥ म० ३१ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—'से किं त ईहा ? इत्यादि । अथ का सा ईहा?।
उत्तरमाह—'ईहा छविहा पणत्ता' इत्यादि । वस्तुनिर्णयार्थं विचारणा ईहा,

शब्द का शब्द है" इस प्रकार के बोध से लगाकर अन्त्यविशेष के पहिले
पहिले का जो सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह है वह सब मेधा है ॥ ५ ॥
इस तरह श्रवणता अवलम्बनता और मेधा ये तीन अर्थावग्रहरूप, तथा
अवग्रहता, उपधारणता ये दो व्यञ्जनावग्रहरूप होते हैं ऐसा जानना
चाहिये ॥ इस प्रकार यह अवग्रह का वर्णन है ॥ सू० ॥ ३० ॥

मेधा शब्दवाच्यमनायाहे अेट्ठे के "आ श अनोरा०० छे" आ प्रकारना बोधधी
लक्षणे अन्त्यविशेषनीआगण आगणने ने सामान्यविशेषरूप अर्थावग्रह छे ते
सौ मेधा छे ॥५॥ आ प्रकारे श्रवणता अवलम्बनता अने मेधा अत्रणु अर्थाव
ग्रहरूप, तथा अवग्रहणता, उपधारणता अे जे व्यञ्जनावग्रहरूप होय छे अेम
नाणु बोधअे आ प्रकारे आ अवग्रहण वणुन छे ॥ सू० ॥

तथा-अवायः=निश्चयः, सर्वथा ईहातो विनिर्गुत्तस्यावधारणावधारितमर्थमवगच्छतो जीवस्य यो बोधविशेषः सोऽवायः ॥ ३ ॥ तथा-बुद्धिः-ततस्तमेवावधारितमर्थं क्षयोपशमविशेषात् स्थिरतया पुनः पुनः स्पष्टतरमवबुध्यमानस्य या बोधपरिणतिः सा बुद्धिः ॥ ४ ॥ तथा-विज्ञान=विशिष्ट ज्ञान विज्ञानं, क्षयोपशमविशेषादेव अवधारितार्थनिपयक एव तीव्रतरधारणाद्देतुर्वोधविशेष इत्यर्थः ॥५॥ स एषोऽवायो वर्णितः ॥ सू० ३२ ॥

जैसे-आवर्तनता १, प्रत्यावर्तनता २, अवाय ३, बुद्धि ४, और विज्ञान ५ । इस तरह पूर्वोक्त अवाय ज्ञान का यह स्वरूप है । श्रोत्रेन्द्रिय से उत्पन्न ईहाज्ञान के बाद जो ऐसा ज्ञान होता है कि ' यह शब्द अमुक का ही है ' इसका नाम श्रोत्रेन्द्रियजन्य अवाय है । जैसे यह शब्द का ही शब्द है । इसी तरह शेष इन्द्रियो के विषयोंमें उत्पन्न ईहा के बाद जो उस उस विषय के निश्चयका ज्ञान होता है, वह तत्तत् इन्द्रियजन्य अवाय जानना चाहिये । आवर्तनता आदि पाच नामोंमें जो एकार्थकता बतलाई गई है, वह सामान्य अवाय की विवक्षा से बतलाई गई जाननी चाहिये । जिस बोध परिणाम द्वारा ईहा से निवृत्त होकर जीव अवाय-भाव की तरफ झुकाया जाता है उसका नाम आवर्तनता १ । इस आवर्तन के प्रति जो बोध विशेष होता है कि जिस बोध से जीव उत्तरोत्तर अर्थविशेषोंमें विवक्षित अवाय के बिलकुल समीप आ जाता है उसका नाम प्रत्यावर्तनता है २ । ईहा से हटकर जीव के लिये जो उस ईहित

आवर्तनता, (२) प्रत्यावर्तनता, (३) अवाय, (४) बुद्धि, अने (५) विज्ञान आ गीते पूर्वोक्त अवायज्ञाननु आ स्वरूप छे श्रोत्रेन्द्रियधीउत्पन्नथयेल ईहाज्ञान भाद ने ऐबु ज्ञानथायछे के " आ शब्द अमुकनाछे " तेनुनाम श्रोत्रेन्द्रियजन्यअवाय छे नेम डे आ शब्दना शब्दछे ऐनप्रकारे भाङ्गीनी इन्द्रियोनाविषयमा उत्पन्नथयेल ईहानी पछी ने ते ते विषयना निश्चयनु ज्ञानथायछे, ते ज्ञानने ते ते इन्द्रियजन्य अवायज्ञान मानबु आवर्तनता आदि पाचनामोमा ने ऐकार्थता भतावेलेते ते सामान्य अवायनी विवक्षाथी भतावाछि ऐभ सभगबु (१) ने बोध परिणामद्वारा ईहाथी निवृत्तथने एव अवायभाव तरङ्ग भुपावातो जाय छे तेनुनाम आवर्तनता छे (२) आ आवर्तनता प्रति ने बोध विशेष थाय छे, अने ने बोधथी एव उत्तरोत्तर अर्थविशेषोमा विवक्षित अवायनी बिलकुल समीप आवेछे तेनुनाम प्रत्यावर्तनताछे (३) ईहाथी द्रव्यने एवनेभाटे ने

छाया—अथ कः सोऽत्रायः ? । अत्रायः पट्विधः प्रज्ञप्तः । तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियावायः १ । चक्षुरिन्द्रियावायः २ । घ्राणेन्द्रियावायः ३ । जिह्वेन्द्रियावायः ४ । स्पर्शेन्द्रियावायः ५ । नोइन्द्रियावायः ६ । तस्य खलु इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि । नानाव्यञ्जनानि, पञ्च नामधेयानि भवन्ति, तद् यथा—आवर्तनता १, प्रत्यावर्तनता २, अत्रायः ३, बुद्धिः ४, विज्ञानम् ५ । स एषोऽत्रायः ॥ सू० ३२ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त०’ इत्यादि । अथ कः सोऽत्रायः ? इति उत्तरमाह—‘अवाए छत्रिहे पण्णत्ते०’ इत्यादि । अत्रायो निश्चयात्ममात्रबोधः । स पट्विधः प्रज्ञप्तः, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियावाय—इत्यादि । श्रोत्रेन्द्रियेणात्रायः—श्रोत्रेन्द्रियावायः । श्रोत्रेन्द्रियेहामधिकृत्य यः प्रवृत्तोऽत्रायो—निश्चयः, स श्रोत्रेन्द्रियावाय इत्यर्थः । एवं चक्षुरिन्द्रियावायादयः साधनीयाः । तस्य=अत्रायस्य खलु इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति । एतेषां व्याख्या प्राग्वत् । ननु अत्रायसामान्यविवक्षया एकार्थकानि । तद्विशेषचिन्ताया तु नानार्थकानि । तत्र—आवर्तते—आ=मर्यादया वर्तते—ईहातो निवृत्त्या अत्रायमात्र प्रति अभिमुखो वर्तते येन बोधपरिणामेन स आवर्तनः, स एवावर्तनता ॥ १ ॥

तथा—प्रत्यावर्तनता—आवर्तन प्रति गतो योऽर्थविशेषेण उत्तरोत्तरेषु विवक्षितावायप्रत्यासन्नतरो बोधविशेषः स प्रत्यावर्तनः, स एव प्रत्यावर्तनता ॥ २ ॥

‘से किं त अवाए०’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता है—पूर्वनिर्दिष्ट अवाय ज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—अवायज्ञान छह प्रकार का कहा गया है । वे प्रकार ये हैं—श्रोत्रेन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय, २ चक्षु इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय २ घ्राणेन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय, ३ जिह्वा इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय ४, स्पर्श इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय ५ तथा नो इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ अवाय ६ । उस अवाय के ये नाना घोषवाले तथा नाना व्यञ्जनवाले एकार्थक पांच नाम हैं ।

“से किं त अवाए०” उत्तर—

शिष्यपूछे—“पूर्वनिर्दिष्ट अवायज्ञानं तु स्वरूपं ?

उत्तर—अवायज्ञान नीचेप्रमाणे छ प्रकारनु कहेलछे—(१) श्रोत्रेन्द्रियथी चेदाथयेल अवाय (२), चक्षुइन्द्रियथी चेदाथयेल अवाय, घ्राणेन्द्रियथी चेदाथयेल अवाय (४), जिह्वाइन्द्रियथी चेदाथयेल अवाय (५), स्पर्शेन्द्रियथी चेदाथयेल अवाय, तथा (६) नो इन्द्रियथी चेदाथयेल अवाय ते अवायना अ विविध घोषवाणा तथा व्यञ्जनवाणा अकार्थक पायनामछे, जेवाके (१)

तथा-अवायः=निश्चयः, सर्वथा ईहातो विनिवृत्तस्यावधारणावधारितमर्थमवगच्छतो जीवस्य यो बोधविशेषः सोऽवायः ॥ ३ ॥ तथा-बुद्धिः-ततस्तमेवानधारितमर्थं क्षयोपशमविशेषात् स्थिरतया पुनः पुनः स्पष्टतरमवबुध्यमानस्य या बोधपरिणतिः सा बुद्धिः ॥ ४ ॥ तथा-विज्ञान=त्रिशिष्ट ज्ञान विज्ञानं, क्षयोपशमविशेषादेव अवधारितार्थविषयक एव तीव्रतरधारणाहेतुर्बोधविशेष इत्यर्थः ॥५॥ स एषोऽवायो वर्णितः ॥ सू० ३२ ॥

जैसे-आवर्तनता १, प्रत्यावर्तनता २, अवाय ३, बुद्धि ४, और विज्ञान ५ । इस तरह पूर्वोक्त अवाय ज्ञान का यह स्वरूप है । श्रोत्रन्द्रिय से उत्पन्न ईहाज्ञान के बाद जो ऐसा ज्ञान होता है कि 'यह शब्द अमुक का ही है' इसका नाम श्रोत्रन्द्रियजन्य अवाय है । जैसे यह शब्द का ही शब्द है । इसी तरह शेष इन्द्रियो के विषयोंमें उत्पन्न ईहा के बाद जो उस उस विषय के निश्चयका ज्ञान होता है, वह तत्तत् इन्द्रियजन्य अवाय जानना चाहिये । आवर्तनता आदि पांच नामोंमें जो एकार्थकता बतलाई गई है, वह सामान्य अवाय की विवक्षा से बतलाई गई जाननी चाहिये । जिस बोध परिणाम द्वारा ईहा से निवृत्त होकर जीव अवाय-भाव की तरफ झुकाया जाता है उसका नाम आवर्तनता १ । इस आवर्तन के प्रति जो बोध विशेष होता है कि जिस बोध से जीव उत्तरोत्तर अर्थविशेषोंमें विवक्षित अवाय के विलकुल समीप आ जाता है उसका नाम प्रत्यावर्तनता है २ । ईहा से हटकर जीव के लिये जो उस ईहित

आवर्तनता, (२) प्रत्यावर्तनता, (३) अवाय, (४) बुद्धि, અને (५) विज्ञान आरीते पूर्वोक्त अवायज्ञानतु आ स्वरूप छे श्रोत्रेन्द्रियधीर्उत्पन्नथयेल ईहाज्ञान भाद ले अेषु ज्ञानथायछे के "आ शब्द अमुकनोछे" तेनुनाम श्रोत्रेन्द्रियजन्यअवाय छे लेभ के आ शब्दनेल शब्दछे अेषप्रकारे भाङ्गीनी इन्द्रियोनाविषयभा उत्पन्नथयेल ईहानी पछी ले ते ते विषयना निश्चयतु ज्ञानथायछे, ते ज्ञानने ते ते इन्द्रियजन्य अवायज्ञान मानतु आवर्तनता आदि पाचनामोभा ले अेकार्थता अतावेलछे ते सामान्य अवायनी विवक्षायी अतावाछे अेष समन्वु (१) ले बोध परिणामद्वारा ईहाथी निवृत्तथने एव अवायसाव तरद अुपावातो अय छे तेनुनाम आवर्तनता छे (२) आ आवर्तनता प्रति ले बोध विशेष थाय छे, અને ले बोधथी एव उत्तरोत्तर अर्थविशेषोभा विवक्षित अवायनी विलकुल समीप आवेछे तेनुनाम प्रत्यावर्तनताछे (३) ईहाथी दूरजने एवनेभाटे ने

अथ धारणास्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं धारणा ? । धारणा छविवा पणत्ता, तं जहा—सोइदियधारणा । चक्खिदियधारणा । घाणिदियधारणा । जिब्बिदियधारणा । फासिदियधारणा । नोइदियधारणा । तीसेणं इमे एगट्टिया नाणाघोसा नाणावंजणा पच नामधिजा भवन्ति, तं जहा—धरणा१, धारणा२, ठवणा३, पइट्टा४, कोट्टे५। से तं धारणा ॥ सू० ३३ ॥

त्रया—अथ का सा धारणा ? । धारणा पइग्गिधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियधारणा १ । चक्षुरिन्द्रियधारणा २ । प्राणेन्द्रियधारणा ३ । जिह्वेन्द्रियधारणा ४ । स्पर्शेन्द्रियधारणा ५ । नेत्रेन्द्रियधारणा ६ । तस्या इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामयेयानि भवन्ति, तद् यथा—वरणा १, वारणा २, स्थापना ३, प्रतिष्ठा ४, कोष्ठः ५ । सा एषा धारणा ॥ सू० ३३ ॥

टीका—‘से किं तं धारणा’ इत्यादि । शिष्यः पृच्छति—अथ का सा धारणा इति । उत्तरमाह—‘धारणा छविवा पणत्ता’ इत्यादि । धारणा—निर्णीतार्थविगे पदार्थ का विलकुल निश्चितज्ञान होता है वह अवाय है ३ । इस अवाय के द्वारा निश्चित किये गये पदार्थ का जो स्थिररूप से पुनः पुनः स्पष्टतर बोध होता है उसका नाम बुद्धि है ४ । इस बुद्धि के बाद जो ऐसा जीव को बोध होता है कि जिसके बल पर जीव धारणा के निकट पहुच जाता है—जो धारणा की उत्पत्तिमे हेतुभूत होता है—उस विशिष्ट ज्ञान का नाम विज्ञान है ५ । यह अवाय का स्वरूप हुआ ॥ सू० ३२ ॥

अब धारणाका स्वरूप कहा जाता है—‘से किं तं धारणा०’ इत्यादि

धृष्टित पदार्थतु ने तइंन निश्चित ज्ञान थायछे ते अवायछे (४) आ अवाय द्वारा निश्चिततरायेल पदार्थमे ने स्थिररूपे इरीने स्पष्टतर बोधथायछे तेतु नाम बुद्धिछे (५) अे बुद्धिनी पती ने अेवा लवने बोध थाय छे के नेना आधारे लव धारणाणी समीप पडोयीन्तयछे—ने धारणाणी उत्पत्तिमा हेतुभूत थायछे—अे विशिष्टज्ञानतु नामविज्ञानते आ अवायना स्वरूपतु वर्णन थयु ॥ सू० ३२ ॥

दुवे धारणातु स्वरूप अताववाभा आवे ते—“से किं तं धारणा०” इत्यादि.

पस्य धारणम्=अविस्मरणम् । सा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा—‘ श्रोत्रेन्द्रिय धारणा’ इत्यादि । श्रोत्रेन्द्रियेण या धारणा सा श्रोत्रेन्द्रियधारणा । एव चक्षुरिन्द्रियधारणा-दयः साधनीयाः । तस्याः=धारणायाः । अन्यत् सुगमम् । अत्रापि सामान्यविपक्षया एकार्थकानि । विशेषार्थचिन्ताया तु भिन्नार्थानि । तत्रावायानन्तरमवगतस्यार्थ-स्याविच्युत्या अन्तर्मुहूर्तकालयात्रत् धरण वरणा ॥१॥ ततस्तस्यैवार्थस्योपयोगाच्च्यु-तस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतः सरयेयाऽसरयेयकालपर्यन्त यत् स्मरण सा धारणा ॥२॥ तथा—स्थापन—स्थापना । जवायानगरितस्यार्थस्य हृदि स्थापन, जलपूर्ण-

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट धारणा का क्या स्वरूप है ? उत्तर—धारणा छह प्रकार की कही गई है । उसके छह प्रकार ये हैं—श्रोत्रेन्द्रिय से होने वाली धारणा १, चक्षु इन्द्रिय से होने वाली धारणा २, घ्राणेन्द्रिय से होनेवाली धारणा ३, जिह्वा इन्द्रिय से होनेवाली धारणा ४, स्पर्शेन्द्रिय से होनेवाली धारणा ५, तथा नो इन्द्रिय से होनेवाली धारणा ६ । उस धारणा में ये पांच नानाघोष एव नाना व्यजनवाले एकार्थक नाम हैं । जैसे—धरणा १, धारणा २, स्थापना ३, प्रतिष्ठा ४, तथा कोष्ठ ५ ।

निर्णीत अर्थ का नहीं भूलना इसका नाम धारणा है । यह छह प्रकार की है । श्रोत्र इन्द्रिय के विषयभूत शब्दरूप पदार्थों में जो अवाय ज्ञान के बाद उस विषय की धारणा होती है कि जिसमें जीव उस विषय को कालान्तरमें भी नहीं भूलता है उसका नाम श्रोत्रेन्द्रिय धारणा है । इसी तरह उस २ इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थों में अवाय ज्ञान के बाद जो उस २ विषय की धारणा जीव को होती है वह चक्षु आदि इन्द्रियों

प्रश्न—पूर्व निर्दिष्ट धारणांश्च तु स्मरथ ? उत्तर—धारणा नीचे प्रमाणों से प्रकाशनी अतावेदते—(१) श्रोत्रेन्द्रियधी यनारी धारणा, (२) चक्षु इन्द्रियधी यनारी धारणा, (३) घ्राणेन्द्रियधी यनारी धारणा, (४) जिह्वा इन्द्रियधी यनारी धारणा, (५) स्पर्शेन्द्रियधी यनारी धारणा, अने (६) नो इन्द्रियधी यनारी धारणा ते धारणांना आ पाच विविध घोषवाणा अने विविध व्यजनवाणा अकार्थक नाम ते—(१) धरणा, (२) धारणा, (३) स्थापना, (४) प्रतिष्ठा, तथा (५) कोष्ठ ।

निर्णीत अर्थने न भूलवो तेनुनाम धारणांश्च ते छ प्रकाशनीं श्रोत्रेन्द्रियना विषयभूत शब्दरूप पदार्थों में अवायज्ञाननी पक्षी ते विषयनी धारणा थायते के नेधी एव ते विषयने कालान्तरें पक्षु भूलतो नथी तेनु नाम श्रोत्रेन्द्रियधारणा छे अज्ञप्रमाणों ते ते इन्द्रियोना विषयभूत पदार्थों में अवायज्ञाननी पक्षी ते ते विषयनी धारणा एवनेथायते ते चक्षु आदि

ઘટસ્થાપનત્, વાસનેત્યર્થઃ ॥૩॥ તથા-પ્રતિષ્ઠાન-પ્રતિષ્ઠા-અવાયાધારિતસ્યૈવા-
ર્થસ્ય હૃદિ પ્રભેદેન પ્રતિષ્ઠાપનમિત્યર્થઃ, યથા-જલે ઉપલપ્ત્વેપ્રતિષ્ઠા ભવતિ ॥૪॥
'કોષ્ઠઃ' ઇતિ, કોષ્ઠ ઇવ કોષ્ઠઃ। અવિનષ્ટસૂત્રાર્થમીજ ધારણાત્ કોષ્ઠત્ યા ધારણા,
સા કોષ્ઠ ઇત્યુચ્યતે ॥ ૫ ॥ સૂ. ૩૩ ॥

કે વિષયમે ભી સમદ્ધ લેના ચાહિયે । ધારણા કે પાચ નામોમે જો ાકા
ર્થકતા વતલાઈ ગઈ હૈ વહ ધારણા સામાન્ય કી અપેક્ષા સે કરી ગઈ હૈ ।
વૈસે તો વિશેષ-અર્થ કી અપેક્ષા સે હનમે ભિન્નાર્થતા ભી હૈ । અવાય કે
દ્વારા નિર્ણીત પદાર્થ કે હો જાને પર ઉસ પદાર્થ કી જો અવિચ્યુતિ દ્વારા
અન્તર્મુદ્દર્ત કાલ તક ધારણા વની રહતી હૈ ઉસકા નામ ધારણા હૈ ૧ ।
અવાયજ્ઞાન દ્વારા નિર્ણીત પદાર્થ કી તરફ સે જીવ કા ઉપયોગ હટ જાને
પર ભી કમ સે કમ અન્તર્મુદ્દર્તતક ઓર ડ્યાદા સખ્યાત ઓર અસખ્યાત
કાલતક ઉસ પદાર્થ કી જો સ્મૃતિ વની રહતી હૈ ઉસકા નામ ધારણા હૈ
૨ । અવાય દ્વારા નિશ્ચિત કિયે ગયે અર્થ કા હૃદયમે જો જલપૂર્ણકુમ્ભ કી
તરહ સ્થાપન હો જાના હૈ વહ સ્થાપના હૈ, ઇસકા દૂસરા નામ વાસના
ભી હૈ ૩ । અવાય કે દ્વારા અવધારિત અર્થ કા જો હૃદયમે ભેદપ્રભેદ સે
સ્થાપન હોતા હૈ ઉસકા નામ પ્રતિષ્ઠા હૈ ૪ । અવિનષ્ટ સૂત્રાર્થરૂપ વીજ
કે ધારણ સે જો ધારણા કોષ્ઠ કી તરહ હોતી હૈ વહ કોષ્ઠ હૈ ૫ । યહ
ધારણા કા સ્વરૂપ હુઆ ॥ સૂ. ૩૩ ॥

ઇન્દ્રિયોનાવિષયમાપણુ સમજલેવીજ્ઞેઇ ધારણાના પાચનામોમા જે એકા
ર્થતા બતાવવામા આવેલ છે તે ધારણા સામાન્યની અપેક્ષાએ બતાવવામા
આવી છે એમ તો વિશેષઅર્થનીઅપેક્ષાએ તેમનામા ભિન્નતાપણુછે
(૧) અવાય દ્વારા પદાર્થ નિર્ણીતથઈજતા તે પદાર્થની જે અવિચ્યુતિ દ્વારા
અન્તર્મુદ્દર્તકાળ સુધી ધારણા બની રહેછે તેનુ નામ ધારણાછે (૨)
અવાયજ્ઞાન દ્વારા નિર્ણીત પદાર્થની તરફથી જીવનો ઉપયોગ હર થતા પણુ
ઓછામા ઓઢી અન્તર્મુદ્દર્ત સુધી અને વધારેમાવધારે મજ્યાત અને
અસજ્યાતકાળસુધી તે પદાર્થની જે સ્મૃતિ બનીરહેછે તેનુ નામ ધારણા
છે (૩) અવાયદ્વારા નિશ્ચિત કરાયેલ અર્થનુ હૃદયમા જલપૂર્ણકુમ્ભની જેમ
સ્થાપન થયુ તે સ્થાપના કહેવાય છે, તેનુ ખીજુ નામ વાસનાપણુછે
(૪) અવાયદ્વારા અવધારિત અર્થનુ હૃદયમા જે લે.પ્રલેદથી સ્થાપના થાય
છે તેનુ નામ પ્રતિષ્ઠા છે (૫) અવિનષ્ટ સૂત્રાર્થરૂપ ખીજના ધારણથી જે ધારણા
કોષ્ઠની જેમ થાય તે તેનુ નામ કોષ્ઠ છે આ ધારણાનુ સ્વરૂપ થયુ ॥ સૂ. ૩૩ ॥

अवग्रहादीना कालमानमाह—

मूलम्—उग्राहे इकसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अंतोमुहुत्तिए
अवाए, धारणा संखेज्ज वा काल असखेज्ज वा काल ॥सू० ३४॥

छाया—अवग्रह एरुसामायिकः । आन्तमोहृत्तिकी ईहा । आन्तमोहृत्तिको-
ऽमायः । धारणा-सख्येयं वा कालम्, असख्येयं वा कालम् ॥ सू० ३४ ॥

टीका—‘उग्राहे’ इत्यादि । अवग्रहः=नैश्वयिकोऽर्थावग्रहः, स एक माम-
यिको भवति । ईहा आन्तमोहृत्तिकी भवति । अवाय आन्तमोहृत्तिको भवति ।
धारणा त्रिविधा—अविच्युति-वासना - स्मृतिभेदात् । तत्र-वासनारूपा धारणा,
सख्येय वा काल भवति, असख्येय वा काल भवति । तत्र संख्येयवर्षायुष्काणा
सख्येयकालम्, असंख्येयवर्षायुष्काणामसख्येय काल युगलाद्यपेक्षया भवति ।
अविच्युतिरूपा, स्मृतिरूपा च धारणा प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त भवति ॥ सू० ३४ ॥

अब इन अवग्रह आदि ज्ञानों का कालमान कितना है यह सूत्रकार
स्पष्ट करते हैं—‘उग्राहे०’ इत्यादि ।

नैश्वयिक अर्थावग्रह का काल एक समय का है । ईहाज्ञान का काल
अन्तर्मुहूर्त का है । अवायज्ञान का भी काल इनना ही है । अविच्युति,
वासना और स्मृति के भेद से धारणा तीन प्रकार की है । इनमे वासना-
रूप धारणा का काल सख्यात अथवा असख्यात काल है । जिनकी सख्यात
वर्ष की आयु होती है उनकी अपेक्षा सख्यातकाल, तथा जिन जीवों की
असख्यातवर्ष की आयु होती है उनकी अपेक्षा असख्यात काल जानना
चाहिये । अविच्युति तथा स्मृतिरूप धारणा का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण
है । ॥सू० ३४ ॥

इवे अे अवग्रह आदि ज्ञानानु कालमान डेटलु छे ते सूत्रकार स्पष्ट
करे छे—“उग्राहे०” इत्यादि,

नैश्वयिक अर्थावग्रहानो काल अेक समयनो छे ईहाज्ञाननो काल अन्तर्मु-
हूर्तनो छे अवायज्ञाननो काल पलु अेटलो न छे अविच्युति, वासना अने
स्मृति अे त्रलु केदथी धारणा त्रलु प्रकारनी छे तेमनामा वासनाइप धारणानो
काल सख्यात अथवा असख्यात समय छे तेमनी सख्यात वर्षनी आयु
डोय छे तेमनी अपेक्षाअे सख्यातकाल, तथा ते लुवोनी असख्यातवर्षनी
आयु डोय छे तेमनी अपेक्षाअे असख्यातकाल समय देवो जेथअे अवि
च्युति तथा स्मृतिइप धारणानो काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण छे ॥ सू ३४ ॥

“एव अट्टावीसइ विहस्स” इत्यादि

मूलम्—एव अट्टावीसइविहस्स आभिणित्रोहियनाणस्स (परू-
वण करिस्सामि, तत्थ णं पढम) वजणुग्गहस्स परूवण करिस्सा-
मि पडिवोहगादिट्टतेण, मल्लगदिट्टतेण य ।

से किं तं पडिवोहगादिट्टतेण ? । पडिवोहगादिट्टतेण-से जहा-
नामए केइ पुरिसे कंचि पुरिस सुत्त पडिवोहिज्जा—अमुगा अमु-
गत्ति । तत्थ चोयगे पन्नवग एवं वयासी—किं एगसमयपविट्ठा
पुग्गला ग्रहणमागच्छति ? , दुसमयपविट्ठा पुग्गला ग्रहणमाग-
च्छति ? जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला ग्रहणमागच्छति ?
सखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला ग्रहणमागच्छंति ? असखिज्ज-
समयपविट्ठा पुग्गला ग्रहणमागच्छंति ? । एव वयत चोयग
पणवए एव वयासी—नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला ग्रह-
णमागच्छंति, नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला ग्रहणमागच्छति, जाव
नो दससमयपविट्ठा पुग्गला ग्रहणमागच्छति, नो सखिज्ज-
समयपविट्ठा पुग्गला ग्रहणमागच्छति, असखिज्जसमयपविट्ठा
पुग्गला ग्रहणमागच्छति । से त पडिवोहगादिट्टतेणं ॥

छाया—एवमष्टाविंशतिविधस्य आभिनित्रोधिकज्ञानस्य [प्ररूपण करिष्यामि
तत्र खलु प्रथम] व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपण करिष्यामि प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, मल्लक-
दृष्टान्तेन च ।

अथ किं तत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ? । प्रतिबोधकदृष्टान्तेन—स यथानामकः
कश्चित् पुरुष कश्चित् पुरुष सुप्तप्रतिबोधयेत्—अमुक-अमुक ! इति । तत्र नोदकः
प्रज्ञापकमेवमवादीत्—किमेतसमयप्रविष्टा पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? , द्विसमयप्रविष्टाः
पुद्गलाः ग्रहणमागच्छन्ति ? यावद्दशसमयप्रविष्टा पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? , सख्येय-
समयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? , अस्त्रयेयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमाग-

चञ्चन्ति ? एव वदन्तं नोदक प्रज्ञापक एवमवादीत्-नो एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहण-
मागच्छन्ति, नो द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, यावन्नो दशसमयप्रविष्टाः
पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो सख्येयममयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, अस-
ख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति । तदेतत् (प्ररूपण) प्रतिबोधरू-
ढान्तेन ॥

टीका—‘एव अट्टावीसइतिहस्स’ इत्यादि । एवम्=पूर्वोक्तेन प्रकारेण,
अष्टाविंशतिविधस्य=चतुर्द्धा व्यञ्जनावग्रहः, पड्विधोऽर्थावग्रहः पड्विधा ईहा,
पड्विधोऽवायः, पड्विधा धारणा, इत्यष्टाविंशतिप्रकारकस्य, आभिनिवोधिक-
ज्ञानस्य प्ररूपणं करिष्यामि । तत्र खलु प्रथमं=पूर्वं व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणं=वर्णनं

सूत्रकार कहते हैं-इस तरह आभिनिवोधिकज्ञान के अट्टाईस भेद
हो जाते हैं, उसकी मैं प्ररूपणा करूँगा । मतिज्ञान अट्टाईस प्रकार का इस
तरह होता है-व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का होता है । चक्षु एव मन से
यह अवग्रह होता नहीं है, श्रोत्र चार इन्द्रियो से ही होता है । तथा व्यजन
के ईहा, अवाय, एव धारणा ये प्रकार होते नहीं है इसलिये व्यजन का अव-
ग्रह ही होता है, और यह अवग्रह चार इन्द्रियो से होता है, अतः व्यज-
नावग्रह चार प्रकारका होता है ४ । अर्थ का अवग्रह पाच इन्द्रिय और
मन से होता है इसलिये वह छह प्रकार का होता है ६ । इसी तरह ईहा
भी छह प्रकार की होती है १० । अवाय भी छह प्रकार का १८, तथा
धारणा भी छह प्रकार की २४, इस तरह ये सब त्रयोविध भेद होते हैं ।
इस प्रकार मतिज्ञान अट्टाईस प्रकार का होता है । सूत्रकार कहते हैं

एव अट्टावीसइ विहरस इत्यादि

सूत्रकार कहे हैं-आ रीते आभिनिवोधिक ज्ञानना के अट्टावीस लेह पडे
छे, तेनी हु प्ररूपणा करे छु मतिज्ञान आ रीते अट्टावीस प्रकारनु थाय छे-
व्यञ्जनावग्रह या प्रकाशना थाय छे अक्षु अने मनथी ते अवग्रह थतो नथी,
आदीनी चार इन्द्रियोथीन थाय छे तथा व्यजनना ईहा, अवाय अने
धारणा ये प्रकार पडता नथी, ते कारणे व्यजनना अवग्रह न थाय छे, अने ते
अवग्रह चार इन्द्रियो वडे थाय छे, तेथी व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारना डोय
छे ४ अर्थना अवग्रह पाच इन्द्रियो अने मनथी थाय छे ते कारणे ते ये छ
प्रकारना डोय छे ६ आज प्रकारे ईहा पषु छ प्रकारनी डोय छे १२ अवाय
पषु छ प्रकारना १८, तथा धारणा पषु छ प्रकारनी २४ आ रीते ये षधा
भणीने त्रयोविध लेह थाय छे आ प्रकारे मतिज्ञान अट्टावीस प्रकारनु डोय छे
न० ५०

करिष्यामि । स्पष्टतरस्वरूपप्रतिबोधनार्थमिति भावः । कथं तत् प्ररूपणं करिष्यतीत्याकाङ्क्षायामाह—'पडिगोहगदिदृष्टेण०' इत्यादि । प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, मल्लकदृष्टान्तेन च । तत्र-प्रतिबोधयतीति प्रतिबोधकः=सुप्तस्योत्थापकः, स एव दृष्टान्तः—प्रतिबोधकदृष्टान्तस्तेन । तथा मल्लक=शराव, तदेव दृष्टान्तो मल्लकदृष्टान्तस्तेन च । 'से किं त०' इत्यादि । अथ किं तत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपणमिति प्रश्नः । उत्तरमाह—प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहप्ररूपणमेव भवति-म यथानामकः—यत्किञ्चिन्नामधारक-अनिर्दिष्टनामक इत्यर्थः, कथित् पुरुषः, यद्वा—'से' इति सः=दृष्टान्तस्पोऽर्थः, यथा=येन प्रकारेण, 'नाम' सभाव्यते, तर्णयामीत्यर्थः । 'ए' इति वाच्यालकारे । कथित् पुरुष' कथित्=अनिर्दिष्टनामान यथासभवनामक-देवदत्तादिकं पुरुषं सुप्तं सन्त प्रतिबोधयेत् । कथं प्रतिबोधयेदित्याह—'अमुक ! अमुक !' इति । तत्रैवमुक्ते सति ज्ञानावरणीयकर्मोदयात् कथितमपि सूत्रार्थमननुष्यमानो नोदक' = प्रश्नकर्ता शिष्यः प्रज्ञापक - यथाऽवस्थितसूत्रार्थं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापकस्त-गुरुम्, एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अनादीत्=अपृच्छत् । इह भूतकाल-

कि इस अद्वैतस प्रकार के मतिज्ञान की प्ररूपणामें हम पहिले स्पष्टतर स्वरूप समझाने के लिये व्यञ्जनावग्रह की प्ररूपणा करेंगे । यह प्ररूपणा प्रतिबोधक तथा नवीनमल्लक (शरावा) के दृष्टान्त से की जावेगी । प्रतिबोधक का दृष्टान्त इस प्रकार से है—

कोई एक पुरुष गाढनिद्रामे सोये हुए किसी पुरुष को पुकार पुकार कर जगाता है, परन्तु वह शब्द उमके कानमे नहीं पहुँचा हो जैसा हो जाता है । तब इस पर ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से कथित सूत्रार्थ को भी नहीं जानने वाला शिष्य सूत्रार्थ की यथावस्थित प्ररूपणा करनेवाले गुरु महाराज से प्रश्न करता है कि हे भदन्त ! यह जगाने पर भी क्यों

सूत्रकार कडे छे के आ अट्टावीस प्रकारना मतिज्ञाननी प्ररूपणामे अन्ने पडेला वधारे स्पष्टस्वरूपे सभजववाने भाटे व्यञ्जनावग्रहनी प्ररूपणा करुशु
आ प्ररूपणा प्रतिबोधक तथा नवीनमल्लक (शरावा) ना दृष्टान्तथी करारे प्रतिबोधकनु दृष्टान्त आ प्रभाषे छे—

कोई एक पुरुष गाढनिद्रामे पडेले कोई पुरुषने अवाञ्जरीकरीने जगाडे छे, पणु ते शब्द तेना काने पडोव्यतो न डोव्ये अवे थायछे त्तारे ज्ञानावरणीयकर्मना उच्यथी कडेले सूत्रार्थने पणु न जणुनार शिष्य सूत्रार्थनी यथावस्थित प्ररूपणा करनार गुरुमहाराजने प्रश्न पूछे छे के-डे लदन्त ! ते जगाडवा छता पणु केम जगतो नथी ? शु तना कानमे अके

निर्देशस्तु 'आगमोऽयमनादि'—रिति प्रतिबोधनार्थः। शिष्यः किमवादी ? इत्याह—
 'किं एगसमयप्रविष्टा०' इत्यादि। भदन्त ! किम् एकसमयप्रविष्टाः पुद्गलाः,
 ग्रहणमागच्छन्ति=ग्राह्या भवन्ति ?, यावत् असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहण-
 मागच्छन्ति=ग्राह्या भवन्तीति प्रश्नः। एव उदन्त नोदक प्रज्ञापक एवमवादीत्—
 'नो एगसमयप्रविष्टा०' इत्यादि। एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला यावत् संख्येयसमयप्र-
 विष्टा पुद्गला न ग्राह्या भवन्तीत्यर्थः। अयं प्रतिषेधः स्फुटप्रतिभासरूपार्थावग्रहण-
 क्षणविज्ञानग्राह्यतामधिकृत्य विज्ञेयः। यावता पुनः प्रथमसमयादारभ्य किञ्चिद-
 व्यक्त ग्रहणमागच्छन्त्येवेति प्रतिपत्तव्यम्। 'असंख्येज्ज०' इत्यादि। आदित आरभ्य
 प्रतिसमयप्रवेगनेन असंख्येयान् समयान् यावत् ये प्रविष्टास्ते असंख्येयसमयप्रविष्टाः
 न तु विगत्याऽहोभिः पथिकृद्ग्रहप्रवेशवदपान्तरालागमनसमयापेक्षयाऽसंख्येयस-
 मयप्रविष्टा इति। पुद्गलाः=शब्दद्रव्यप्रिज्ञेयाः, ग्रहणमागच्छन्ति=अर्थावग्रहज्ञानहे-
 तवो भवन्तीति भावः। पुद्गलेषु असंख्येयसमयप्रविष्टेषु चरमसमयेऽर्थावग्रहज्ञान-
 नही जगता है ? क्या उसके कानमे एकसमयप्रविष्ट पुद्गलो से लगा-
 कर असंख्यात समय प्रविष्ट पुद्गल भरते नहीं हैं ? यदि भरते हैं तो
 उसको जग जाना चाहिये, फिर क्यों नहीं जगता ? आचार्य इसका
 उत्तर देते हैं कि एक समय से लेकर असंख्यात समय तक प्रविष्ट हुए
 पुद्गल उसके कानमे पडते हैं, पर वे लुप्त हो जाते हैं, यही कारण है कि वह
 दो तीन बार जगाने पर भी नहीं जागता है, परन्तु ज्यों ही वे मन्द २
 रीति से चार-पाच बार जगाने पर उसके कानमे भर जाते हैं और
 लुप्त नहीं होते ह तो वह व्यक्ति शीघ्र जग उठता है। इसका तात्पर्य
 यही है कि वे अधिक बोले गये शब्द जब उसके कानमे भर जाते हैं—
 उसके ग्रहण मे आने लगते हैं—तो वह जग जाता है, अर्थात्—वे शब्द-

समय-प्रविष्ट पुद्गलवोधी भाडीने असंख्यात समय-प्रविष्ट-पुद्गल भरता नहीं ?
 जे भरता होय तो तेणे जगी जेवु जेधे छे छता पणु केम जगतो नहीं ?
 आचार्य तेनो जेवाय आपे छे ते अके समयधी भाडीने असंख्यात समय
 सुधी प्रविष्ट थयेल पुद्गल तेना ज्ञानमा पडे छे, पणु ते लुप्त थई जय छे,
 जेव कारणे ते जे त्रणुवार जगाउवा छता पणु जगतो नहीं, पणु जेवा ते
 मद् मद् रीते चार पाच बार जगाउता तेना ज्ञानमा भरार्थ जयछे, जने
 लुप्त थता नहीं तेयो ज ते भाणुस जगी उडे छे जेनु तात्पर्य जे छेके ते
 अधिक बोलायेल शब्दो न्यारे तेना ज्ञानमा भरार्थ जय छे तेनाधी थडुषु थवा
 भाडे छे, त्यारे ते जगी जय छे जेठले डे ते शब्द पुद्गल अर्थावग्रहण कारणु

मुपजायते इत्यर्थः । अर्थावग्रहविज्ञानाच्च प्राक् सर्वोऽपि यज्जनावग्रहः । चरमसमये जायमानोऽर्थावग्रह एकसमयमान. परमयोगिना स्फुटगम्यः । 'यज्जनावग्रहस्य च कालो जघन्यत आवलिकाऽसरयेयभागः, उत्कर्षतः मरुयेया जावलिना' । ता अपि सरुयेया आवलिकाः प्राणापान (उच्छ्वासनिःश्वास) - पृथक्पृथक्कालमाना वे दितव्याः । तदेतत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यज्जनावग्रहस्य प्ररूपणम् ॥

पुद्गल अर्थावग्रह के कारण ही जाते हैं । एक समय से लेकर असख्यात समयतक के शब्द पुद्गल ऐसे हैं जो उसके अर्थावग्रहरूप ज्ञान के हेतु नहीं होते हैं, किन्तु अन्तिम समय में ही यह अर्थावग्रहरूप ज्ञान का हेतु होता है, अतः एक समय के उन शब्द पुद्गलों से लेकर असख्यात समय तक के ये जितने शब्दपुद्गल हैं वे स्पष्ट प्रतिभासजनक न हो सकने के कारण व्यज्जनावग्रहरूप ही हैं ।

जिस अन्तिम शब्द पुद्गल के ग्रहण में स्पष्टज्ञान हुआ है वह अन्तिम पुद्गल ही अर्थावग्रह का जनक हुआ है । इसका काल एक समय प्रमाण है, यह परमयोगियों के ज्ञान का विषय है । 'यज्जनावग्रह का जघन्य समय आवलिका के असख्यातवें भाग प्रमाण है, तथा उत्कृष्टरूप से सख्यात आवलिका प्रमाण है । वे सख्यात आवलिकाएँ प्राणापानपृथक्त्व अर्थात्-दोसे नव तरु उच्छ्वास-निश्वास-परिमित कालप्रमाण वाली समझना चाहिये । यह व्यज्जनावग्रह का खुलासा प्रतिबोधक के दृष्टान्त से हुआ ॥

थई लय छे, ओक समयथी भाडीने असख्यात समय सुधीना शब्दपुद्गल ओवा छे जे तेना अर्थावग्रह इय ज्ञाननु काण्य थता नथी, यणु अतिम समयभा ज ते अर्थावग्रहइय ज्ञाननु कारण बने छे, तेथी ओक समयना ते शब्दपुद्गलओथी भाडीने असख्यात समय सुधीना ओ जेटला शब्दपुद्गल छे ते स्पष्ट प्रतिभासजनक होई न शकवाने कारणे व्यज्जनावग्रहइय ज छे जे अन्तिम शब्दपुद्गलना ग्रहणथी स्पष्ट ज्ञान थयु छे ते अन्तिमपुद्गल ज अर्थावग्रहनु जनक थयु छे तेना जाण ओकसमयना छे ते परमयोगीओना ज्ञानना विषय छे व्यज्जनावग्रहना जघन्य समय आवलिकाना असख्यातभा लागेना छे, तथा उच्छ्वात इयथी सख्यातआवलिकाप्रमाण छे ते सख्यात-आवलिकाओ प्राणापानपृथक्त्व ओटवे के ओथी नव सुधी उच्छ्वास-निश्वास-परिमितकाल-प्रमाणवाणी समझवी लेई ओ व्यज्जनावग्रहना आ खुलासा प्रति बोधकना दृष्टान्तथी थये।

मूलम्—से किं त मल्लगदिदृष्टेण ? । मल्लगदिदृष्टेण—से जहा-
नामए केड पुरिसे आवागसीसाओ मल्लग गहाय तत्थेगं उद
गविदु पक्खेविजा से नट्टे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्टे, एव
पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगविदू, जे ण त
मल्लग रावेहिडत्ति, होही से उदगविदू जे ण तंसि मल्लगसिठाहिति,
होही से उदगविदू जे ण त मल्लग भरिहिति, होही से उद-
गविदू जे ण मल्लग पवाहेहिति । एवमेव पक्खिप्पमाणेहि पक्खि-
प्पमाणेहि अण्णतेहि पुग्गलेहि जाहे त वजण पूरिय हांइ ताहे
‘हु’ ति करेइ, नो चैव णं जाणइ के एस सदाइ ? । तओ ईह
पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस सदाइ । तओ अवाय पविसइ
तओ से उवगय हवइ । तओ धारण पविसइ । तओ ण धारेइ
संखिज्ज वा काल, असखिज्ज वा काल ॥

उाया—अथ किं तत् मल्लकदृष्टान्तेन ? । मल्लकदृष्टान्तेन—स यथानामक-
कश्चित् पुरुषः आपाकशीर्षतो मल्लकं पृथीत्वा तत्रैकमुदकविन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः,
अन्योऽपि प्रक्षिप्तः सोऽपि नष्टः । एव प्रक्षिप्यमाणेषु ० भविष्यति स उदक-
विन्दुर्यो नु त मल्लकम् आर्द्रयिष्यति, भविष्यति स उदकविन्दुर्यो नु तस्मिन् मल्लके
स्थास्यति, भविष्यति स उदकविन्दुर्यो नु त मल्लकं भरिष्यति, भविष्यति स
उदकविन्दुर्यो नु त मल्लकं प्रवाहयिष्यतीति, एवमेव प्रक्षिप्यमाणैः ० अनन्तैः
पुद्गलैर्यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं भवति, तदा ‘हु’—मिति करोति, नो चैव खलु
जानाति क एष शब्द ? इति । तत ईहा प्रविशति, ततो जानाति अमुक एष
शब्द इति । ततोऽवाय प्रविशति, ततः स उपगतो भवति । ततो धारणा प्रवि-
शति, ततः खलु धारयति सख्येय वा कालमसरयेय वा कालम् ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त मल्लगदिदृष्टेण ०’ इत्यादि । अथ किं
तत्—प्ररूपणं मल्लकदृष्टान्तेन ? इति । उत्तरमाह—मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रह-

મુપજાયતે इत्यर्थः । अर्थावग्रहविज्ञानाच्च प्राक् सर्वोऽपि व्यञ्जनावग्रहः । चरमसमये जायमानोऽर्थावग्रह एरुसमयमानः परमयोगिना स्फुटगम्यः । 'व्यञ्जनावग्रहस्य च कालो जघन्यत आवलिकाऽसरचेयभागः, उत्कर्षतः मग्नेया आपलिना' । ता अपि सख्येया आवलिकाः प्राणापान (उच्छ्वासनिःश्वास) - पृथक्कालमाना वे दितव्याः । तदेतत् प्रतियोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य ग्रम्पणम् ॥

પુદ્ગલ અર્થાવગ્રહ કે કારણ હો જાતે હૈ । ઁક સમય સે લેકર અસરયાત સમયતક કે શબ્દ પુદ્ગલ ઁસે હૈ જો ઁસકે અર્થાવગ્રહરૂપ જ્ઞાન કે હેતુ નહીં હોતે હૈ, કિન્તુ અન્તિમ સમય મેં હી યહ અર્થાવગ્રહરૂપ જ્ઞાન કા હેતુ હોતા હૈ, અતઃ ઁક સમય કે ઁન શબ્દ પુદ્ગલોં સે લેકર અસરયાત સમય તક કે ઁ જિતને શબ્દપુદ્ગલ હૈ વે સ્પષ્ટ પ્રતિભાસજનક ન હો સકને કે કારણ વ્યજનાવગ્રહરૂપ હી હૈ ।

જિસ અન્તિમ શબ્દ પુદ્ગલ કે ગ્રહણ મેં સ્પષ્ટજ્ઞાન હુઆ હૈ વહ અન્તિમ પુદ્ગલ હી અર્થાવગ્રહ કા જનક હુઆ હૈ । ઁસકા કાલ ઁક સમય પ્રમાણ હૈ, યહ પરમયોગિયોં કે જ્ઞાન કા વિષય હૈ । વ્યજનાવગ્રહ કા જઘન્ય સમય આવલિકા કે અસરયાતવેં ભાગ પ્રમાણ હૈ, તયા ઉત્કૃષ્ટરૂપ સે સર્યાત આવલિકા પ્રમાણ હૈ । વે સર્યાત આવલિકાણ પ્રાણાપાનપૃથક્ત્વ અર્થાત્-દોસે નવ તક ઉચ્ચ્વાસ-નિઃશ્વાસ-પરિમિત કાલપ્રમાણ વાલી સમજ્ઞના ચાહિયે । યહ વ્યજનાવગ્રહ કા ખુલાસા પ્રતિયોધક કે દૃષ્ટાન્ત સે હુઆ ॥

થઈ જાય છે, એક સમયથી માડીને અસખ્યાત સમય સુધીના શબ્દપુદ્ગલ એવા છે જે તેના અર્થાવગ્રહ રૂપ જ્ઞાનનું કારણ થતા નથી, પણ અતિમ સમયમા જ તે અર્થાવગ્રહરૂપ જ્ઞાનનું કારણ બને છે, તેથી એક સમયના તે શબ્દપુદ્ગલોથી માડીને અસખ્યાત સમય સુધીના એ જેટલા શબ્દપુદ્ગલ છે તે સ્પષ્ટ પ્રતિભાસજનક હોઈ ન શકવાને કારણે વ્યજનાવગ્રહરૂપ જ છે જે અન્તિમ શબ્દપુદ્ગલના ગ્રહણથી સ્પષ્ટ જ્ઞાન થયું છે તે અન્તિમપુદ્ગલ જ અર્થાવગ્રહનું જનક થયું છે તેનો કાળ એકસમયનો છે તે પરમયોગીઓના જ્ઞાનનો વિષય છે વ્યજનાવગ્રહનો જઘન્ય સમય આવલિકાના અસખ્યાતમા ભાગનો છે, તથા ઉત્કૃષ્ટ રૂપથી સખ્યાતઆવલિકાપ્રમાણ છે તે સખ્યાત-આવલિકાઓ પ્રાણાપાનપૃથક્ત્વ એટલે કે યેથી નવ સુધી ઉચ્ચ્વાસ-નિશ્વાસ-પરિમિતકાલ-પ્રમાણવાળી સમજવી જોઈ એ વ્યજનાવગ્રહનો આ ખુલાસો પ્રતિ યોધકના દૃષ્ટાન્તથી થયો

उदम्बिन्दुर्यः खलु त मल्लक प्रमाहयिष्यति=शरावाद् वद्विर्निर्गतो भविष्यतीत्यर्थः ।
 एममेव=उदम्बिन्दुभिरिव, निरन्तर प्रक्षिप्यमाणैः प्रक्षिप्यमाणैरन्तैः पुद्गलैः=ज्वररू-
 पतया परिणतैर्यदा तद् व्यञ्जन=श्रोत्ररूपमुपकरणेन्द्रिय पूरित भवति, तदा-‘हृ’
 इति करोति-अर्थावग्रहरूपेण ज्ञानेन तमर्थं पृह्णाति-नामजात्यादि कल्पनारहितमेव
 जानाति, नत्वेव जानाति ‘हृ एष शब्दः’ ? इति-‘कथंभूतोऽयं शब्दः, कस्य
 वाऽयं शब्दः’-इत्यादि न जानाति । स्वरूपद्रव्यगुणक्रियाविशेषरूपनारहितमनिर्देश्य
 सामान्यमात्रममरयेयसमयेषु चरमसमये जानाति । अर्थावग्रहस्य एकसामायिक-
 कत्वात् सामान्यमात्रग्रहणकाणत्वान्च । अस्मात् प्राक् मर्यादोऽपि व्यञ्जनावग्रह एव ।
 तदेतत् मल्लकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावग्रहस्य प्ररूपण कृतम् । इह हुकारकरण चार्थाव-
 ग्रहजनितम् । ततः=तदनन्तरम्, ईहा प्रविशति=‘किमिद् किमिद्’-मिति विमर्श-
 करणे प्रवृत्तो भवति । ततः=ईहानन्तरम्, जानाति-‘अमुक एष शब्दः’ इति, तदा
 धायोपशमविशेषोत्पत्तेरिति भावः । ततः=तदा-ईदृशे ज्ञानपरिणामे जाते सति
 स पुरुषोऽवाय प्रविशति । ततः=तदा-अवायकालेऽन्तर्मुहूर्तकाल यावत् स शब्द उप-

पेसी होती है जो उस शरावे को बहा देती है, अर्थात्-शरावे से जल
 बाहर निकलने लगता है । इसी तरह प्रक्षिप्यमाण-भरे जाने वाले
 अनन्त पुद्गलों से जब वह श्रोत्रेन्द्रियरूप उपकरणेन्द्रिय भर जाती है तब
 वह मोया हुआ पुरुष ‘हृ’ इस प्रकार के शब्द को करता है, अर्थात्
 अर्थावग्रहरूप ज्ञान से नामजात्यादि की कल्पना से रहित ही उस अर्थ
 को जानता है, पर वह यह नहीं जानता है कि यह शब्द क्या है ? इसके
 बाद जब वह ईहा ज्ञान में प्रविष्ट होता है तब जान जाता है कि ‘यह
 अमुक शब्द है’ बाद में विशेष निश्चय करने के लिये वह अवाय में
 प्रविष्ट होता है तब वह उससे परिचित हो जाता है । बाद में वह जब

छे डोर्ध टीपा ओवा डोय छे के ने ते शडोगने छवकावी नाणे छे ओव
 प्रभाणे प्रक्षिप्यमाण-लराधेनारा अनतपुद्गलोत्थी न्यारे ते श्रोत्रेन्द्रियउप
 उपकरणेन्द्रिय लराधे नय छे त्यारे ते सूतेवे। भाषुम “हु” ओवे शब्द
 पोक्षीने, ओटवे के अर्थावग्रहइय ज्ञानवडे नाम, लतिआदिनी कल्पनाथी
 गहित न ते अर्थने लखे छे, पण ते ओ नथी लखुते। के आ शब्द शे
 छे ? त्याग्णाद न्यारे ते ईहाज्ञानमा प्रविष्ट थाय छे त्यारे लखी नय छे के
 “आ अमुक शब्द न छे” त्यारभाद विशेष निर्णय करवाने भाटे ते अवायमा
 प्रविष्ट थाय छे त्यारे ते तेनाथी परिचित थर्धे नय छे त्यारभाद ते न्यारे धारणाने

परूपणमेव भवति—स यथानामकः=यत्किञ्चिन्नामक कश्चित् पुरुषः, आपाकशीर्षतः—आपाके=कुम्भकारस्य भाण्डपाकस्थाने स्थापितो भाण्डराशिः, तस्य शीर्षतः—शीर्षमिदं शीर्षम्=उपरितनो भागस्तस्मात्, मल्लक=शराव गृहीत्वा, तत्रैकमुदकविन्दु प्रक्षिपेत्=प्रक्षिप्तं कुर्यात्, स उदकविन्दुर्नष्ट—सर्वथा नूतनगगनस्य स्थित्वात् तत्रैव तद्भावपरिणतिमापन्न इत्यर्थः । तदनन्तरम् अन्योऽपि जलविन्दु. प्रक्षिप्त., मोऽपि नष्टः, एव प्रक्षिप्यमाणेषु प्रक्षिप्यमाणेषु भविष्यति स उदकविन्दुर्य. खलु त मल्लक =शराव (रावेदिति) आर्द्रयिष्यति—आर्द्रं करिष्यतीति । ‘रावेदिति’ इति ‘राव’ इति देशीयधातोर्भविष्यति रूपम् । भविष्यति स उदकविन्दुर्यः खलु तस्मिन् मल्लक स्थास्यति । भविष्यति स उदक विन्दुर्य. खलु तं मल्लक भरिष्यति । भविष्यति स

अत्र मल्लक के दृष्टान्त से इसका गुलागा करते हैं—‘से किं त मल्लगदिदृतेण०?’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! मल्लकदृष्टान्त का क्या स्वरूप है ? उत्तर—मल्लक दृष्टान्त इस प्रकार है—जैसे कोर्ट पुरुष कुमार के आवा में से एक नवीन मल्लक—शरावे को लावे, और उसमें एक पानी की बूद डाले परन्तु वह पानी की एक बूद उस पर डालते ही नष्ट हो जाती है, क्यों कि वह सर्वथा रूक्ष होता है । इसी तरह दूसरी पानी की बूद भी उसमें डाली जाने पर नष्ट हो जाती है । इस तरह चार २ डाली जाने पर उन जल की विन्दुओं में कोई एक बूद ऐसी होती है जो उस शरावे को गीला कर देती है । तथा कोई बूद ऐसी होती है जो उसमें ठहरती है । कोई बूद ऐसी होती है जो उसको भर देती है । कोई बूद

हुवे मल्लकना दृष्टातथी तेनु स्पष्टीकरणु करे छे—

“से किं त मल्लगदिदृतेण० ?” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे हे भदन्त ! मल्लकदृष्टातनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—मल्लकदृष्टात आ प्रमाणे छे—जेभडे कोर्ष पुरुष कु लारना निभाडा माथी जेठ नवुशकोर लावे जने तेमा पाणीनु जेठ दीपु नाजे, पण ते पाणीनु जेठ दीपु तेना पर नाथता ज नाश पाजे छे, कारणके ते तहन सूके डोय छे जेठ प्रमाणे तेमा पाणीनु भीनु दीपु पण नथाता तेना पण नाश थाय छे आ रीते वारवार नथाता ते पाणीना दीपाजोमाथी कोर्ष जेठ दीपु जेठु डोय छे के जे ते शकोराने भीनु करे छे तथा कोर्ष दीपा जेवा डोय छे के जे तेमा टके छे कोर्ष दीपा जेवा डोय छे के जे तेने लरी हे

ज्ञात होने लगती है तो क्या यह आर्द्रता पहिले-पहिल ही उसमें आई है इसके पूर्वमें वह उसमें जलचिन्दुओं के डालने पर नहीं आई थी ? परन्तु ऐसा नहीं है, जब से उसमें जलचिन्दुओं का डालना प्रारभ किया गया तब ही से उसमें आर्द्रता का आना प्रारभ हो गया, परन्तु वह उसमें ज्ञात जो नहीं होती थी उसका कारण उसमें उसका तिरोभाव हो जाना था। जैसे २ जल की मात्रा बढी और सरावेमें पानी को सोखने की शक्ति कम होने लगी, तब कहीं उसमें आर्द्रता स्पष्ट ज्ञात होने लगी। इसी प्रकार जब किसी सुप्त व्यक्ति को पुकारा जाता है तब वह शब्द उसके कानमें लुप्त सा हो जाता है। दो चार बार पुकारने से उसके कानमें जब पौट्टलिक शब्दों की मात्रा काफी रूपमें भर जाती है तब जलकणों से पहिले-पहिल आर्द्र होने वाले शरावे की तरह उस सुप्त व्यक्ति के कान भी शब्दों से परिपूरित होकर उनको सामान्यरूप से जाननेमें समर्थ हो जाते हैं।

“यह क्या है ?”—यही सामान्यज्ञान है जो शब्द को पहिले-पहिल स्फुटतया जानता है। इस के बाद विशेषज्ञान का क्रम प्रारभ होता है। इसमें ईहा, अवाय और धारणा का सबध रहा हुआ है। धारणा से यहा पर उसका भेद रूप वासना का ग्रहण किया गया है। यदि

दृष्टावा लागे छे, त्पारे न शु पडेल वडेली न ते तेमा आवी छे, तेना पडेल पाणीना टीपा नाभता शु ते आवी न डती ? पणु अणु नथी, न्यारथी तेमा पाणीना टीपा नाभवानु शङ् कथुं त्पारथी न तेमा आर्द्रतानु आववु शङ् थयु, पणु ते तेमा नृणाती न डती, तेनु करणु तेमा तेना तिरोभाव थर्द नतो ते डतु नेम नेम पाणीनु प्रमाणु वधु, अने शकेरानी पाणी शोधवानी शक्ति धटी, त्पारे न तेमा लीनाश स्पष्टरूपे नृणावा लागी अणु रीते न्यारे कौर्द उधती व्यक्तिते मोलाववाभा आवे छे त्पारे ते शब्द तेना कानमा नृणु लुप्त थर्द नय छे जे थार वार मोलाववाथी न्यारे तेना कानमा पौट्टलिक शब्दोनी मात्रा पुरता प्रमाणुमा भरार्द नय छे त्पारे नलकणोथी पडेल वडेल लीना थता शकेरानी नेम ते उधती व्यक्तिते नान पणु शब्दोथी परिपूरित थर्दने तेमने सामान्यरूपे नृणुवाने समर्थ थर्द नय छे

“आ शु छे” अणु सामान्यज्ञान छे, जे शब्दने पडेल वडेल स्पष्ट रीते नृणु छे त्पार भाद विशेषज्ञानने कभ शङ् थाय छे, तेमा छडा, अवाय अने धारणाते धारणाथी अडी तेना वेदरूप वासनानु

गतो भवति=निश्चयेन गतो भवति-निर्णयात्मकानविषयो भवतीत्यर्थः । ततो धारणा प्रशिक्षति । मा च धारणा रासनाम्पा द्रष्टव्या । ततः=राग्णाया प्रवेशान् सरवेय वा असरवेय या काल हृदि धारयति । तत्र सग्नेयवर्षायुष्क सग्नेयमालम्, असरवेयवर्षायुष्कस्तु असरवेय कालमित्यर्थः ॥

सुप्त पुष्पमङ्गीकृत्य पूर्वोक्तः सर्वोऽपि प्रकारः सप्रदत्ते, जाग्रतस्तु क्रममग्रहादीना क्रमः सवदेत, जाग्रदवस्थाया शब्दश्रवणसमन तरमेयाग्रहेहाव्यतिरेकेणाग्रायज्ञानमुपजायते, तथैव प्रतिप्राणि सवेदनादित्याशङ्काया निवारणार्थं महत्कृष्टान्ते नैव पङ्क्तिविधानार्थावग्रहादीन र्णयति—

धारणा का विषय होता है तब निश्चय से वह उसको इस तरह के हृदय मे धारण कर लेना है कि जिससे वह मर्यातकाल अथवा असरयात कालतक विस्मृत नहीं होता है । इस सूत्र का तात्पर्य इस प्रकार है—

जिस प्रकार कुमार के आवा मे पका हुआ उसी समय का नया सकोरा एक व्यक्ति अपने घर पर लावे और उसमें एक बूद पानी की डाले तो सकोरा उसी वख्त उसको सोख लेगा, यहा तक कि उसका वहा नामोनिशा तक नहीं रहेगा । इसी तरह आगे भी एक २ क्र डाले गये अनेक जलविन्दुओ को वह सकोरा सोखलेगा, पर अन्तमे ऐसा समय आवेगा कि जब वह जलविन्दुओ को मोग्वनेमे असमर्थ बन जायगा । फिर वह उन्हे न सोखकर उनसे गीला होने लगेगा । तथा उसमे डाले गये जलकण इकट्ठे होकर दिखलाई देने लगेंगे । अब यहा पर विचार करने की बात है कि शरावे की आर्द्रता जब पहिले-पहिल

विषय थाय छे त्यारे निश्चयथी ते तेने अे प्रकारे हृदयभा धारणु ठरी ले छे के अेथी ते सज्यात काण अथवा असज्यात काण सुधी भूलातो नथी आ सूत्रनु तात्पर्य आ प्रमाणे छे

अे प्रकारे कुमारना निलाडामा पकावेल अेअ समयनु ननु शकेअ अेअ भाणुस पोताने घेर लावे अने तेमा पाणीनु दीपु नाणे तो शकेअ त्यारे अे तेने शोधी ले छे, अेटले सुधी के त्या तेनु नामनिशान पणु रडेशे नही अेअरीते पठीपणु अेके अेके नाभवामा आवेल पाणीना दीपाअेने ते शकेअ शोधी वेशे, पणु छेवटे अेवो समय आवेशे के न्यारे ते शकेअ पाणीना दीपाअेने शोपवाने असमर्थ थशे त्यारे ते तेने शोपता लीनु न थवा लागेशे अने तेमा नापेला दीपाअे अेअ थधने देभावा लागेशे डवे आ अेअे विचारवानी बात अे छे के शकेरानी आर्द्रता न्यारे पडेल पडेली

ज्ञात होने लगती है तो क्या यह आर्द्रता पहिले-पहिल ही उसमें आई है इसके पूर्वमें वह उसमें जलविन्दुओं के डालने पर नहीं आई थी ? परन्तु ऐसा नहीं है, जब से उसमें जलविन्दुओं का डालना प्रारम्भ किया गया तब ही से उसमें आर्द्रता का आना प्रारम्भ हो गया, परन्तु वह उसमें ज्ञात जो नहीं होती थी उसका कारण उसमें उसका तिरोभाव हो जाना था। जैसे २ जल की मात्रा बढ़ी और सराबमें पानी को सोखने की शक्ति कम होने लगी, तब कही उसमें आर्द्रता स्पष्ट ज्ञात होने लगी। इसी प्रकार जब किसी सुप्त व्यक्ति को पुकारा जाता है तब वह शब्द उसके कानमें लुप्त सा हो जाता है। दो चार बार पुकारने से उसके कानमें जब पौद्गलिक शब्दों की मात्रा काफी रूपमें भर जाती है तब जलकणों से पहिले-पहिल आर्द्र होने वाले शराबे की तरह उस सुप्त व्यक्ति के कान भी शब्दों से परिपूरित होकर उनको सामान्यरूप से जाननेमें समर्थ हो जाते हैं।

“यह क्या है ?”—यही सामान्यज्ञान है जो शब्द को पहिले-पहिल स्फुटतया जानता है। इस के बाद विशेषज्ञान का क्रम प्रारम्भ होता है। इसमें ईहा, अवाय और धारणा का सबंध रहा हुआ है। धारणा से यहा पर उसका भेद रूप वासना का ग्रहण किया गया है। यदि

दृष्टावा लागे छे, त्यारे न शु पडेल वडेली न ते तेमा आवी छे, तेना पडेली पाणीना दीपा नाभता शु ते आवी न डती ? पणु अणु नथी, न्यारथी तेमा पाणीना दीपा नाभवानु शङ्कथुं त्यारथी न तेमा आर्द्रतानु आववु शङ्कथु, पणु ते तेमा नण्णती न डती, तेनु कारणु तेमा तेना तिरोभाव थर्छ नते ते डतु नेम नेम पाणीनु प्रभाणु वधु, अने शङ्करानी पाणी शोषवानी शक्ति घटी, त्यारे न तेमा लीनाश स्पष्टरूपे नण्णवा लागी अणु रीते न्यारे डोर्छ उधती व्यक्तिते जेलाववामा आवे छे त्यारे ते शब्द तेना कानमा नण्णु लुप्त थर्छ नथ छे जे चार वार जेलाववथी न्यारे तेना कानमा पौद्गलिक शब्दोनी मात्रा पुरता प्रभाणुमा लरार्छ नथ छे त्यारे नलकण्णोथी पडेल वडेली लीना थता शङ्करानी नेम ते उधती व्यक्तितेना कान पणु शब्दोथी परिपूरित थधने तेमने सामान्यरूपे नण्णवाने समर्थ थर्छ नथ छे

“आ शु छे” अणु सामान्यज्ञान छे, जे शब्दने पडेल वडेली स्पष्ट रीते नण्णु छे त्यार भाद विशेषज्ञानने कर्म शङ्क थथ छे, तेमा धडा, अवाय अने धारणाणे सभंध रडेल छे धारणाथी अड्डी तेना वेदरूप वासनानु

मूलम्—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्त सद सुणिजा, तेषं सद्धोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सदाइ । तओ ईह पविसइ । तओ जाणइ अमुगे एस सदे । तओ अवाय पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ—सखेज वा कालं, असंखेज वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्त रूव पासिजा, तेषं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ, के वेस रूवत्ति । तओ

यह वासनारूप धारणा सरयात वर्षकी आयुवाले के हृदयमें जम गई है तो उसकी अपेक्षा यह सरयातकालकी जाननी चाहिये, और यदि यह असख्यातकाल वाले भोगभूमिया आदि जीवों के हृदयमें जमी है तो इस अपेक्षा यह असख्यातकाल की जाननी चाहिये ।

यह पूर्वोक्त अवग्रहादिक का समस्त प्रकार का क्रम सुप्त पुरुष की अपेक्षा लेकर तो ठीक बैठ जाता है, परन्तु जाग्रत व्यक्तियों में वह अवग्रहादिक का क्रम किस प्रकार घटित हो सकता है ? कारण—वह तो शब्दश्रवण के अनन्तर ही अवग्रह ईहा को छोड़कर अवायज्ञान हो जाता है । यह बात हर एक प्राणी जानता है । इस आशका की निवृत्ति के लिये सूत्रकार मल्लक के दृष्टांत से ही छह प्रकार के अवग्रह आदि का प्रदर्शन करते हैं—‘से जहानामए०’ इत्यादि ।

अहंशु क्शायु छे ने आ वासनाइय धारणा सभ्यात वर्षनी आयुवाणाना हृदयमा नभी गध डोय तो तेनी अपेक्षाये ते सभ्यातकाणनी नलुवी नेधये, अने ने ते असभ्यातकाणवाणा भोगभूमिया आदि लुवेना हृदयमा नभी डोय तो ते अपेक्षाये ते असभ्यातकाणनी नलुवी नेधये

आ पूर्वोक्त अवग्रहादिकना समस्त प्रकारना कर्म सुप्त पुरुषनी अपेक्षाये तो भराणर मध भेसतो आवे छे पणु नत्तत पुरुषोभा आ अवग्रहादिकना कर्म केवी रीते घटावी शकय ? कारण के त्या तो शब्दश्रवणु पछी न अवग्रह छेडाने छोडीने अवायज्ञान थध नथ छे आ वात हरेक प्राणी नलु छे आ अशकाना निवारणु भाटे सूत्रकार शकौराना दृष्टातथी न छ प्रकारना अवग्रह आदिनु प्रदर्शन करे छे—‘से जहानामए०’ इत्यादि

ईहं पत्रिसइ । तओ जाणइ-अमुगे एस रूवे । तओ अवाय पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ ण धारेइ-सखेज्ज वा काल, असंखेज्ज वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अक्वत्त गंधं अग्घाइज्जा, तेणं गंधति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ-के वेस गंधेत्ति ? । तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ अमुगे एस गंधे । तओ अवाय पत्रिसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारण पविसइ । तओ ण धारेइ-संखेज्ज वा काल, असंखेज्ज वा काल ।

से जहानामए केइ पुरिसे अक्वत्त रसं आसाइज्जा, तेण रसोत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ के वेस रसेत्ति ? । तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ-अमुगे एस रसे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगय हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ ण धारेइ-संखेज्ज वा काल असंखेज्ज वा काल ।

से जहानामए केइ पुरिसे अक्वत्त फासं पडिसवेइज्जा, तेण फासेत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ-के वेस फासओत्ति ? । तओ ईह पविसइ । तओ जाणइ-अमुगे एस फासे । तओ अवाय पविसइ । तओ से उवगय हवइ । तओ धारण पविसइ । तओ णं धारेइ-सखेज्ज वा काल असंखेज्ज वा काल ।

से जहानामए केइ पुरिसे अक्वत्त सुमिणं पासिज्जा, तेणं सुमिणोत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ-के वेस सुमिणेत्ति ? ।

मूलम्—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्त सइ सुणिज्जा, तेणसद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ । तओ ईह पविसइ । तओ जाणइ अमुगे एस सदे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगय हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ—सखेज्ज वा काल, असखेज्ज वा काल ।

से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्त रूव पासिज्जा, तेणं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ, के वेस रूवत्ति । तओ

यह वासनारूप धारणा सख्यात वर्षकी आयुवाले के हृदयमें जम गई है तो उसकी अपेक्षा यह सरयातकालकी जाननी चाहिये, और यदि यह असख्यातकाल वाले भोगभूमिया आदि जीवों के हृदयमें जमी है तो इस अपेक्षा यह असख्यातकाल की जाननी चाहिये ।

यह पूर्वोक्त अवग्रहादिक का समस्त प्रकार का क्रम सुप्त पुरुष की अपेक्षा लेकर तो ठीक बैठ जाता है, परन्तु जाग्रत व्यक्तियों में वह अवग्रहादिक का क्रम किस प्रकार घटित हो सकता है ? कारण—वहा तो शब्दश्रवण के अनन्तर ही अवग्रह ईहा को छोड़कर अवायज्ञान हो जाता है । यह बात हरएक प्राणी जानता है । इस आशका की निवृत्ति के लिये सूत्रकार मल्लक के दृष्टान्त से ही उह प्रकार के अवग्रह आदि का प्रदर्शन करते हैं—‘से जहानामए०’ इत्यादि ।

अडुल्लु करायु छे ने आ वासनाइय धारणा सख्यात वर्षनी आयुवाणाना हृदयमा नमी गध डोय तो तेनी अपेक्षाये ते सख्यातकाणनी नल्लुवी नेधंये, अने ने ते असख्यातकाणवाणा भोगभूमिया आदि एवेना हृदयमा नमी डोय तो ते अपेक्षाये ते असख्यातकाणनी नल्लुवी नेधंये

आ पूर्वोक्त अवग्रहादिकना समस्त प्रकारनो उभ सुप्त पुरुषनी अपेक्षाये तो अराअर अ ध भेसतो आवे छे पल्लु नअत पुरुषोभा आ अवग्रहादिकनो उभ डेवी रीते घटावी शकय ? नारल्लु डे त्या तो शब्दश्रवणु पली न अवग्रह धड्डाने छोडीने अवायज्ञान थध नय छे आ वात हरेके प्राणी नल्लु छे आ अशकाना निवारणु भाटे सूत्रकार शकैराना दृष्टातथी न छ प्रकारना अवग्रह आदित्तु प्रदर्शन करे छे—“से जहानामए०” इत्यादि

ईहं पविसइ । तओ जाणइ-अमुगे एस रूवे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगय हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ णं धारेइ-सखेज्जं वा काल, असंखेज्ज वा कालं ।

से जहानामए केइ पुरिसे अब्वत्त गंधं अग्घाइज्जा, तेणं गंधति उग्गहिए, नां चेव ण जाणइ-के वेस गंधेत्ति ? । तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ अमुगे एस गंधे । तओ अवाय पविसइ । तओ से उवगय हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ ण धारेइ-संखेज्ज वा काल, असंखेज्ज वा काल ।

से जहानामए केइ पुरिसे अब्वत्तं रसं आसाइज्जा, तेण रसोत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ के वेस रसेत्ति ? । तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ-अमुगे एस रसे । तओ अवायं पविसइ । तओ से उवगय हवइ । तओ धारणं पविसइ । तओ ण धारेइ-संखेज्ज वा काल असंखेज्ज वा काल ।

से जहानामए केइ पुरिसे अब्वत्त फास पडिसवेइज्जा, तेण फासेत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ-के वेस फासओत्ति ? । तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ-अमुगे एस फासे । तओ अवाय पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारण पविसइ । तओ णं धारेइ-संखेज्ज वा काल असंखेज्ज वा काल ।

से जहानामए केइ पुरिसे अब्वत्त सुमिण पासिज्जा, तेणं सुमिणोत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ-के वेस सुमिणेत्ति ? ।

तओ ईहं पविसइ । तओ जाणइ—अमुगे एस सुमिणे । तओ
अवाय पविसइ । तओ से उवगयं हवइ । तओ धारण पविसइ ।
तओ णं धारेइ—संखेज्जं वा कालं असखेज्ज वा कालं । से त्त
मल्लगदिट्ठेण ॥ सू० ३५ ॥

छाया—स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्त शब्दं शृणुयात्, तेन शब्द
इत्यवगृहीतम्, नो चैव खलु जानाति—को वैप शब्द इति ? । तत ईहा प्रविशति । ततो
जानाति—अमुक एष शब्दः । ततोऽप्यय प्रविशति । ततः स उपगतो भवति । ततो
धारणां प्रविशति । ततः खलु धारयति—सख्येय वा कालम्, असख्येय वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्त रूप पश्येत्, तेन रूपमित्यवगृहीतम्,
नो खलु चैव जानाति—किं वा एतद् रूपमिति । तत ईहा प्रविशति । ततो जानाति—अमु
कमेतद् रूपम् । ततोऽप्यय प्रविशति । ततस्तदुपगतं भवति । ततो धारणा प्रविशति ।
ततः खलु धारयति—सख्येय वा कालमसख्येय वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्त गन्धमाजिघ्रेत्, तेन गन्ध इत्यवगृहीतम्,
नो चैव खलु जानाति—को वैप गन्ध इति ? । तत ईहां प्रविशति । ततो जानाति—अमुक
एष गन्ध इति । ततोऽप्यय प्रविशति, ततः स उपगतो भवति । ततो धारणा प्रवि-
शति । ततः खलु धारयति—सख्येय वा कालम् असख्येय वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्त रसमास्वादयेत्, तेन रस इत्यवगृहीतम्,
नो चैव खलु जानाति—को वैप रस इति । तत ईहा प्रविशति । ततो जानाति—अमुक
एष रसः । ततोऽप्यय प्रविशति । ततः स उपगतो भवति । ततो धारणा प्रविशति ।
तत खलु धारयति—संख्येयं वा कालम्, असख्येय वा कालम् ।

स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्त स्पर्शं प्रतिसवेदयेत्, तेन स्पर्श इत्यव
गृहीतम्, नो चैव खलु जानाति को वैप स्पर्श इति ? । तत ईहा प्रविशति । ततो जानाति
—अमुक एष स्पर्शः । ततोऽप्यय प्रविशति । ततः स उपगतो भवति । ततो धारणा
प्रविशति । ततः खलु धारयति—सख्येय वा कालम्, असख्येय वा कालम् ।

स यथानामक कश्चित् पुरुषोऽव्यक्त स्वप्न पश्येत्, तेन स्वप्न इत्यवगृहीतम्,
नो चैव खलु जानाति—को वैप स्वप्न इति ? । तत ईहा प्रविशति । ततो जानाति—अमुक
एष स्वप्नः । ततोऽप्यय प्रविशति । तत खलु धारयति—सख्येय वा कालम् अस-
ख्येय वा कालम् । तदेतत् मल्लकदृष्टान्तेन ॥ सू० ३५ ॥

टीका—‘से जहानामए०’ इत्यादि । स यथानामकः कश्चित् पुरुषोऽव्यक्त शब्द शृणुयात्, अव्यक्तमित्यनेन नामजात्यादिकल्पनारहितमनिर्देश्यमिति गम्यते, तथा- चार्थावग्रहनानमुक्तम् । अर्थावग्रहश्च श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धी व्यञ्जनावग्रह विना न भवतीति पूर्वं व्यञ्जनावग्रहो भवतीत्यपि सूचितम् ।

नन्वेव क्रमो नोपलभ्यते, किंतु प्रथमत एव शब्दस्याप्रायज्ञान जायते, इह

जैसे कोई पुरुष जब नाम, जाति आदि की कल्पना से रहित शब्द को सुनता है तब उसे ऐसा सामान्य बोध होता है कि यह शब्द है । इसी बोध का नाम अर्थावग्रह है । इस बोध में उसको ऐसा ज्ञान नहीं होता है कि यह शब्द किस स्वरूप वाला, अथवा किसका है । कारण अर्थावग्रह में सामान्य बोध रहता है, विशेष नहीं । यहा जो शब्द का सामान्य बोध उस सुनने वाले को हुआ है वह श्रोत्रेन्द्रिय-संबंधी अर्थावग्रह है । यह नियम है कि अर्थावग्रह के पहिले व्यञ्जनावग्रह होता ही है, अतः अब श्रोत्रेन्द्रिय-संबंधी अर्थावग्रह हुआ है तो स्वतः सिद्ध हो जाता है कि उसको पहिले व्यञ्जनावग्रह हो चुका है । जब वह आगे जानने की आकांक्षा में प्रविष्ट होता है तो वह शब्दविषयक ईहा-ज्ञान में अपने को पाना है । तब वह यह जानने की तरफ झुकता है कि यह शब्द यह स्वरूपवाला होना चाहिये ।

शका—जाग्रत अवस्था में पुरुष को ऐसा क्रम तो मालूम पडता नहीं है, किन्तु पहिले से ही उसको शब्द का अवायवरूप ज्ञान हो जाता है ।

नेम डोई पुरुष न्यारे नाम, जाति आदिनी उदपनाथी रहित शब्दने सालणे उ, त्तारे जेवो सामान्य बोध थाय छे डे आ शब्द छे जेव बोधतु नाम अर्थावग्रह छे ते बोधभा तेने जेवु ज्ञान नथी थतु डे आ शब्द कया स्वरूप वाणो अथवा डोना छे ? काणु डे अर्थावग्रहभा सामान्य बोध रह छे विशेष नडी, ने सालणनारने जे शब्दने सामान्य बोध थयो छे ते श्रोत्रेन्द्रिय संबधी अर्थावग्रह छे जे नियम छे डे अर्थावग्रहना पडेला व्यञ्जनावग्रह थाय ज छे, तेथी न्यारे श्रोत्रेन्द्रियसंबधी अर्थावग्रह थयो छे, त्तारे जे आपोआप सिद्ध थाय छे डे तेने पडेला व्यञ्जनावग्रह थर्ध गयो छे न्यारे ते आगण जणुवानी ध्येयभा प्रवेश करे छे त्तारे ते शब्दविषयक ईहाज्ञानभा पोताने पावे छे त्तारे ते जे जणुवा तरङ्ग जुके छे डे आ शब्द आ स्वरूपवाणो डोवो जेध जे

शका—जगृत अवस्थाभा पुरुषने जेवो क्रम तो जणुतो नथी, पणु पडे वेथी ज तेने शब्दतु अवायरूप ज्ञान थर्ध नय छे सूत्रभा शब्दतु “अव्यक्त”

दृश्य यो वस्तुविशेषनिश्चयः स ईहापूर्वकः । शब्दोऽयमिति च निश्चयो रूपादि
व्यवच्छेदात् । ततोऽवश्यमितः पूर्वमीहया भवितव्यम् । ईहा च प्रथमतः सामान्य-
रूपेणाग्रहीते सति भवति, न त्वनवग्रहीते । न खलु सर्वथा निरालम्बनमीहन
भवदुपलभ्यते । न चानुपलभ्यमान प्रतिपत्तु शत्रुमः, तस्मात् ईहायाः प्राग् अव-
ग्रहोऽपि नियमेन भवतीति मतव्यम् । अवग्रहश्च 'शब्दोऽय'—मिति ज्ञानात् पूर्वं
प्रवर्तमानोऽनिर्देश्यसामान्यमात्रग्रहणरूप एवोपपद्यते नान्यः । अत एवोक्तं भगवता
—' अव्यक्तं सद् सुणिज्जा ' इति । स हि परमार्थतः शब्द एव, किंतु अव्यक्तमिति-

सशय वना हुआ है । धूमविषयक सशय की निवृत्ति होते ही 'यह
धूम है' ऐसा उसको निश्चय हो जाता है, अतः यह मानना पड़ता है
कि वस्तु का जो निर्णयज्ञान है वह ईहाज्ञानपूर्वक ही होता है । जब
श्रोता "यह शब्द है" ऐसा निश्चयज्ञान कर लेता है तो इसका तात्पर्य
यह है कि उसको यह निश्चय हो चुका है कि 'यह शब्द ही है, रूपादिक
नहीं है' । इस प्रकार रूपादिक के व्यवच्छेद से जब वह शब्द का निश्चय
कर लेता है तो यह ज्ञान उसको ईहापूर्वक हुआ ही माना जावेगा,
और यह ईहाज्ञान बिना अवग्रह के होता नहीं है, अतः ईहा के सद्-
भाव से शब्द का अवग्रहरूपज्ञान उसको हुआ है, यह बात भी स्वीकार
करनी पड़ेगी, क्योंकि ईहाज्ञान का आधार अवग्रहज्ञान होता है । अव-
ग्रह का विषय सामान्य है, इसलिये "यह शब्द है" ऐसा जो अवग्रह-
ज्ञान का विषय शब्द हुआ है वह विशेषज्ञान रूप नहीं है, किन्तु अव्यक्त

के उल्लु सुधी तेनो ते विषे सशय रडेलो७ छे धुमाडा विषेना सशयतु निरा-
करषु थता ७ "आ धुमाडा छे" अवेो तेनो निर्णय थर् भय छे, तेथी अे
मानवु पडे छे के वस्तुनु ने निर्णयज्ञान छे ते धडाज्ञानपूर्वक ७ थाय छे ने
श्रोता "आ शब्द छे" अेवु निश्चयज्ञान करी ले छे, तो तेनु तात्पर्य अे छे के
तेने अे निश्चय थर् युक्तये छे के "आ शब्द ७ छे, रूपादिक नहीं " आ
प्रकारे रूपादिकना व्यवच्छेदथी न्यारे ते शब्दने निश्चय करी ले छे, त्यारे तेनु
अे ज्ञान धडापूर्वक ७ मानी शकशे, अने अे धडाज्ञान अवग्रह विना थतु
नथी, तेथी धडाना सद्भावथी तेने शब्दनु अवग्रहइय ज्ञान थयु छे, अे वात
पषु स्वीकारवी पडशे कारषु के धडाज्ञानने आधार अवग्रहज्ञान होय छे
अवग्रहने विषय सामान्य छे, ते कारषे "आ शब्द छे" अवा ने अवग्रह
ज्ञानने विषय शब्द थये छे ते विशेषज्ञानइय नहीं, पषु अव्यक्त नाम अत्या

व्यक्तं न शृणोति, किंतु सामान्यमात्रमनिर्देश्य गृह्णातीत्यर्थः । यदपि चोक्तम्—तेन श्रोत्रा शब्द इत्यवगृहीतमिति, तदिदमवग्रहप्रतिपादनार्थमुक्तम्, न तु तेन श्रोत्रा 'शब्दः' इति निश्चयेन ज्ञातम्, अत एव तस्य विवरणं कुर्वन् भगवानाह—'नो चेव ण' इत्यादि । नो चैव जानाति—क एष शब्दः? इति—शब्दतया तमर्थं न जानातीत्यर्थः, अर्थावग्रहस्य अनिर्देश्यसामान्यमात्रप्रतिभासकत्वात् । अर्थावग्रहश्च श्रोत्रेन्द्रियघ्राणेन्द्रियादीना व्यञ्जनावग्रहपूर्वक इति पूर्वं व्यञ्जनावग्रहोऽपि द्रष्टव्यः । तदेव

नामजात्यादिक से अनिर्देश्य मात्र सामान्यरूप ही है । यही बात सूत्रकारने "अव्वत्त सद्ध सुणिज्जा" इस सूत्रांश से प्रकट की है । श्रोता के कानमें पडते ही वह यह जान लेता है कि 'यह परमार्थतः शब्द ही है किन्तु अव्यक्त है' व्यक्तरूप-विशेषरूप-से वह उसे ग्रहण नहीं करता है—मात्र सामान्यरूप से ही वह उसे जानता है । सूत्रकारने जो ऐसा कहा है कि उस श्रोता ने 'यह शब्द है' ऐसा जो जाना है सो उसका तात्पर्य यही है कि उसने उसको अवग्रहज्ञान के द्वारा ही जाना है । इस तरह सूत्रकार का यह कथन अवग्रह के प्रतिपादन निमित्त जानना चाहिये । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उस श्रोता ने शब्द का निश्चय कर लिया है । इसी बात का विवरण करते हुए सूत्रकार आगे कह रहे हैं—कि "नो चेव ण" इत्यादि । 'यह शब्द किसका है' अथवा 'किस स्वरूप वाला है' यह बात उस समय श्रोता नहीं जानता है । अवग्रह दो प्रकार का है—(१) व्यञ्जनावग्रह (२) अर्थावग्रह । व्यञ्जनावग्रह की ही

दिकथी अनिर्देश्य मात्र सामान्यरूपेण च ऐव वात सूत्रकारे "अव्वत्त सद्ध सुणिज्जा" आ सूत्रांशो प्रकट करेण च श्रोतानां जाने पडता च ते ऐ वण्णो ले छे के "आ परमार्थतः शब्द च छे यण्ण अव्यक्त छे" व्यक्तरूप विशेषरूपे ते तेने अहण्ण करतो नथी मात्र सामान्यरूपे च ते तेने वण्णे छे सूत्रकारे ने ऐम कण्ठु के श्रोतांसे "आ शब्द छे" ऐवु ने वण्णु छे, तेणु तात्पर्य ऐव छे के तेणु तेने अवग्रहज्ञान द्वारा च वण्णये छे आ रीते सूत्रकारणु आ कथन अवग्रहना प्रतिपादन निमित्त वण्णु जेधंसे तेणु तात्पर्य ऐ नथी के श्रोतांसे शब्दने निश्चय ठरी लीधो छे ऐव वातणु विवरण करता सूत्रकार आगण कडे छे के—"नो चेव ण" इत्यादि "आ शब्द कोनो छे" अथवा "या स्वरूपवाणो छे" आ वात ते समये श्रोता वण्णतो नथी अव ग्रह के प्रकारने छे—(१) व्यञ्जनावग्रह, (२) अर्थावग्रह व्यञ्जनावग्रहनी च पुट पर्याय अर्थावग्रह छे, आ वात डमण्णो च अतावाध गधं छे अर्थावग्रहने

સર્વત્રાપિ અગ્રહેહાપૂર્વમનાયજ્ઞાનમુત્પદ્યતે, કેવમભ્યામદશામાપન્નમ્ય ગ્રીષ્મતરમવ
ગ્રહાદયઃ પ્રવર્તન્તે ઇતિ કાલસૂક્ષ્મ્યાત્ તે સ્પષ્ટં ન સન્નેધતે। યથા ઉત્પલપત્રગત
ભેદને કાલભેદો દુર્લક્ષ્યસ્તથાઽગ્રહેહાકાલસ્ય દુર્લક્ષ્યતયા સુસ્પષ્ટોઘો ન ભવતિ।

પુષ્ટપર્યાય અર્થાવગ્રહ હૈ, યદ ઘાત અમ્બી ઘતલાઈ હી જા ચુકી હૈ। અર્થા
વગ્રહ કા વિષય માત્ર સામાન્ય હૈ ઓર યદ શ્રોત્રેન્દ્રિય જન્ય અર્થાવગ્રહ
અથવા ઘ્રાણેન્દ્રિય આદિ જન્ય અર્થાવગ્રહ વ્યજનાવગ્રહપૂર્વક હી હોતા હૈ।
હસલિયે યદ ઘાત સર્વત્ર પદાર્થ કો જ્ઞાન હોતે સમય સ્વીકાર કરની
ચાહિયે કિ અવાયજ્ઞાન અવગ્રહ તથા ઈહાપૂર્વક હી હોતા હૈ, વિના હનકે
નહીં। હા ! જો અભ્યાસદશાસપત્ર વ્યક્તિ હીં હનમં યે અવગ્રહાદિક શીઘ્રતર
પ્રવર્તિત હોતે રહતે હીં, અતઃ કાલ કી સૂક્ષ્મતા સે સ્પષ્ટરૂપ સે અનુભવમં નહીં
આતે, ઓર એસા જ્ઞાન હોતા હૈ કિ અવગ્રહ ઈહા કે વિના મ્બી અવાયજ્ઞાન હો
ગયા હૈ। કમલ કે સૌ પતોં કો એક પર એક રખકર જન કોઈ વ્યક્તિ
હને સુઈ સે હેદતા હૈ તો હસે એસા હી માલૂમ હોતા હૈ કિ યે સબ પત્તે
એક હી સાથ હિદ ગયે હૈ, પરન્તુ યે સબ પત્તે એક સાથ નહીં હિદે હીં,
ક્રમશઃ હી હિદે હીં, પરન્તુ કાલ કી સૂક્ષ્મતા એક સાથ હિદે હી જ્ઞાત હોતે
હીં। હસી તરહ અભ્યાસદશામં અવગ્રહ આદિ કા કાલ અતિસૂક્ષ્મ હોને
સે દુર્લક્ષ્ય હોતા હૈ, અતઃ વહા હનકા સમયભેદ અનુભવમં નહીં
આતા હૈ।

વિષય માત્ર સામાન્ય છે, અને આ શ્રોત્રેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહ, અથવા ઘ્રાણેન્દ્રિય
આદિ જન્ય અર્થાવગ્રહ, વ્યજનાવગ્રહપૂર્વક જ થાય છે તે કારણે આ વાત
સર્વત્ર પદાર્થનું જ્ઞાન થતી વખતે સ્વીકારવી જોઈએ કે અવાયજ્ઞાન, અવગ્રહ
તથા ઈહાપૂર્વક જ થાય છે, તેમના વિના નહીં હા, જે અભ્યાસદશાસ પત્ર
વ્યક્તિઓ છે તેમનામા અવગ્રહાદિક વધારેઝડપથી પ્રવર્તિત થતા રહે છે તેથી
કાળની સૂક્ષ્મતાથી તેઓ સ્પષ્ટરૂપે અનુભવવામા આવતા નથી, અને એવું લાગે
છે કે અવગ્રહ ઈહા વિના પણ અવાયજ્ઞાન થઈ ગયું છે ઝમળના સો પાનને
એક ઉપર એક ગોઠવીને જ્યારે કોઈ વ્યક્તિ તેમને સાથ વડે છેદે છે, તો તેને
એમ જ લાગે છે કે એ સંઘળા પાન એકજ સાથે છેદાઈ ગયા છે પણ તે બધા
પાન એકસાથે છેદાયા નથી, વારા ફરતી છેદાયા છે, તોપણ કાળની સૂક્ષ્મ
તાને લીધે તેઓ એકસાથે છેદાયા હોય એવું લાગે છે એજ રીતે અભ્યાસદશામા
અવગ્રહઆદિનો કાળ અતિસૂક્ષ્મ હોવાથી દુર્લક્ષ્ય થાય છે, તેથી ત્યા તેમનો
સમયભેદ અનુભવવામા આવતો નથી

ननु ईहाऽपि ' क्रिमय शाङ्गः, किं वा शाङ्गः ? ' इत्येवंरूपतया प्रवर्तते, सश-
योऽपि चैवमेव, ततः कोऽनयोः प्रतिविशेषः ?,

उच्यते—इह यद् ज्ञान शाङ्गशाङ्गादिविशेषान् अनेकान् आलम्बते, न चा-
सद्भूत विशेषमपहातु शक्नोति, किं तु सर्वात्मना शयानमिव वर्तते—कुण्ठीभूत
तिष्ठतीत्यर्थः, तदसद्भूतविशेषापर्युदासपङ्क्तिष्ठित सशयज्ञानमुच्यते । यत्तु ज्ञान
सद्भूतार्थविशेषविषये हेतूपपत्तिव्यापारतया सद्भूतार्थविशेषोपादानाभिमुखमसद्भू-
तविशेषत्यागाभिमुख च तदीहा । इह यदि वस्तु सुगोघ भवति, निशिष्टश्च मतिज्ञा-

शंका—“ क्या यह शाख का शब्द है अथवा सींग का शब्द है ”
इसरूप से प्रवर्तित होने वाले ज्ञान को आप ईहा कह रहे हैं तो फिर सश-
यमें और ईहामें क्या भेद रहेगा, कारण सशयज्ञान भी इसी तरह से
प्रवर्तित होता है ? ।

उत्तर—जो ज्ञान शाख और शाङ्ग आदि परस्पर विरुद्ध अनेक
विशेषों को विषय करता है—उनका परित्याग नहीं करता है, किन्तु उन
परस्पर विरुद्ध अनेक कोटियोंमें सोया हुआ जैसा रहता है—किसी भी
विशेष का निश्चय नहीं कर सकता है, ऐसे ज्ञान का नाम सशय है ।
ऐसा ज्ञान ईहा नहीं है, क्योंकि इस ज्ञानमें सद्भूतार्थविशेषविषयता
रहती है, कारण यह ज्ञान हेतु आदि के व्यापार से सद्भूतार्थविशेष
को उपादान करने की तर्फ झुका रहता है, तथा असद्भूतविशेष का
इसमें परित्याग रहता है । तात्पर्य इसका यह है—सशयज्ञानमें ऐसा
बोध रहता है कि ' यह शाख का शब्द है अथवा सींग का शब्द है ' ।

शंका—“ शु “ आ श अनो शब्द छे अथवा शि गडानो शब्द छे ” अे रूये
प्रवर्तित थनारा ज्ञानने आप धडा डडा छे, तो पजी सशयभा अने धडाभा
शे बेड छे, कारण के सशयज्ञान पखु अेज गीते प्रवर्तित थाय छे ?

उत्तर—जे ज्ञान शय अने शि गडा आदि परस्परविरुद्ध अनेक
विशेषाने विषय करे छे तेभनो परित्याग नरतु नथी, पखु अे परस्परविरुद्ध
अनेक केटीओभा सुभ डेय अेभ रडे छे—डेधपखु विशेषनो निर्णय करी
शजतु नथी, अेवा ज्ञाननु नाम सशय छे अेवु ज्ञान धडा नथी, कारण के
आ ज्ञानभा सद्भूतार्थविशेषविषयता रडे छे, कारण के आ ज्ञान छेतु आदिना
व्यापारथी सद्भूतार्थविशेषने उपादान करवानी तरङ्ग जुडेल रडेछे, तथा अस
द्भूतविशेषनो तेभा परित्याग रक्षा करे छे तेतु तात्पर्य अे छे के—सशय
ज्ञानभा अेवा बोध रडे छे के “ आ श अनो शब्द छे के शि गडानो शब्द छे ”

नावरणक्षयोपशमो वर्तते, ततोऽन्तर्मुहूर्तकालेन नियमात् तद्वस्तु निश्चिनोति । यदि तु वस्तु दुर्वोधं भवति, न च तथाविधो विशिष्टो मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्तत ईहोपयोगा दच्युतः पुनरप्यन्तर्मुहूर्तकालमीहते । एवमीहोपयोगाविन्देन प्रभूतान्यन्तर्मुहूर्तानि

इस तरह परस्पर विरुद्ध अनेक कोटियों को अचलचलन करनेवाला सशय ज्ञान होता है तब कि ईहामें 'यह शय का शब्द होना चाहिये अथवा सींग का शब्द होना चाहिये' ऐसा ही एक तर्क निर्णयाभिमुख बोध रहता है । 'यह शय का शब्द होना चाहिये, क्यों कि इसके ही माधुर्य आदि अमुक २ विशेष धर्म पाये जाते हैं, सींग का यह शब्द नहीं होना चाहिये, क्यों कि उसके कर्कशता, कठोरता आदि अमुक २ विशेष धर्म यहां उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।' इस तरह ईहाज्ञानमें विशेषार्थ के निर्णय के सम्मुख हुए तथा असद्भूतविशेष अर्थ के परित्याग की तरफ झुके हुए बोध का उदय रहता है । सशयमे ऐसा नहीं होता । इसलिये ईहाज्ञानमे और सशयज्ञानमे बड़ा अन्तर है । ईहित वस्तु यदि सुबोध होती है, तथा मतिज्ञानावरण कर्म का विशिष्ट क्षयोपशम उस जीव के होता है तो वह वस्तु अन्तर्मुहूर्तकालमे नियमसे निश्चित हो जाती है । यदि वह ईहित वस्तु दुर्ज्ञेय है, तथा ज्ञाता के मतिज्ञानावरणीयकर्म का विशिष्ट क्षयोपशम नहीं है तो वह ज्ञाता ईहारूप उपयोग से अच्युत बना हुआ ही

आ प्रकारे परस्परविरुद्ध अनेक कोटियोंको अचलचलन करनेवाला सशयज्ञान होय छे, त्वारे धडाभा " आ शयने शब्द होवो नोधये अथवा शिगडानो शब्द होवो नोधये " येवो अेक तरङ्गना निर्णय तरङ्ग जुकेतो बोध रह्या करे छे " आ शयनेशब्द होवोनोधये, कारण के तेभा तेना न माधुर्य आदि अमुक अमुक विशेषगुणो भणे छे, शिगडानो आ शब्द न होवो नोधये, कारण के तेना कर्कशता, कठोरता आदि अमुक अमुक विशेषगुण अडी प्राप्त थता नथी " आ रीते धडाज्ञानमा विशेषार्थना निर्णयनीतरङ्ग अने असद्भूतविशेष अर्थना परित्याग तरङ्ग जुकेल बोधने उदय रहे छे सशयमा अेषु थतु नथी ते तारणे धडाज्ञान अने सशयज्ञान वर्ये मोटे लेह छे धडित वस्तु ने सुबोध होय छे तथा ते एवने मतिज्ञानावरण कर्मने विशिष्ट क्षयोपशम थायछे, तो ते वस्तु अन्तर्मुहूर्तकालमा नियमथी निश्चित थथ नय छे ने ते धडित वस्तु दुर्ज्ञेय होय तथा ज्ञाताना मतिज्ञानावरणीयकर्मने विशिष्टक्षयोपशम न थयो होय, तो ते ज्ञाता धडाइय उपयोगथी अच्युत भनीने न इरिथी अन्तर्मु-

યાવદીહતો તત્ત્વજ્ઞાનન્ટરં જાનાતિ-‘અમુક ઇવોડર્યઃ શબ્દઃ’ ઇતિ-અયમર્યઃ શબ્દ ઇવ ન તુ રૂપાદિરિતિ । ડદ ચ જ્ઞાનમગાયરૂપમ્ । તતઃ=તદા સઃ=શબ્દરૂપોડર્યઃ ઉપગતઃ=જ્ઞાતો ભવતિ-તદગાયજ્ઞાનમાત્મનિ પરિણત ભવતીતિ ભાવઃ । તત્તો ધારણા પ્રવિશતિ, ડહ ધારણા કાલાન્ટરેડપ્યવિસ્મણરૂપા । તતઃ સ્વલુ ધારયતિ-સસ્થ્યેય વા કાલમ્, અસસ્થ્યેય વા કાલમ્ ।

ચક્ષુરિન્દ્રિયેણ યથાડગ્રહાદયો ભવન્તિ, તથા ઝર્ણયતિ-‘સે જહાનામણ કેડ પુરિસે અવ્યત્ત રૂવ પાસિજ્જા૦’ ઇત્યાદિ । સ યથાનામકઃ કશ્ચિત્ પુસ્પોડવ્યક્ત

પુનઃ અન્તર્મુદ્ધર્તકાલતક ઉસ વસ્તુ કા ઈહાજ્ઞાન કા વિપયભૂત યનતા હૈ । ડસ તરહ ઈહારૂપ ઉપયોગ કે અવિચ્છેદ સે ડસકે અનેક અન્તર્મુદ્ધર્ત ઈહાજ્ઞાનમેં નિકલ જાતે હૈં તવ યહ જાનતા હૈ કિ “અમુક ઇવોડર્ય શબ્દઃ” યહ શબ્દ હી હૈ, રૂપાદિક નહી હૈ । ડસકે વાદ વહ અવાયજ્ઞાનમે પ્રવિષ્ટ હોતા હૈ, તવ ડસકો વહ શબ્દરૂપ અર્ય ઉપગત-જ્ઞાત હોતા હૈ । અવાયજ્ઞાન જિસ સમય આત્મામે પરિણત હો જાતા હૈ તો વહ જ્ઞાતા ડસ શબ્દરૂપ અર્ય કો હૃદયમેં ધારણ કરને કે લિયે ધારણારૂપ જ્ઞાનમેં પ્રવેશ કરતા હૈ । ધારણા આત્મામે ઇસા સસ્કાર ઉત્પન્ન કર દેતી હૈ કિ જિસસે આત્મા ડસ વસ્તુ કો કાલાન્ટરમે સી નહી ભૂલતા હૈ । સસ્થ્યાતકાલ તક અથવા અસસ્થ્યાત કાલ તક વહ વસ્તુ અવધારિત યની રહતી હૈ ॥

અવ ચક્ષુ ડન્દ્રિય સે અવગ્રહાદિક જિમ તરહ સે હોતે હૈ સૂત્રકાર વહ વર્ણન કરતે હૈ-‘સે જહાનામણ૦’ ઇત્યાદિ ।

હૂર્તઙાણસુધી, ઓ વસ્તુને ઇહાજ્ઞાનના વિપયભૂત યનાવે છે આરીતે ઈહાઉપ ઉપયોગના અવિચ્છેદથી તેના અનેક અન્તર્મુદ્ધર્ત ઇહાજ્ઞાનમા વીતી બય છે, ત્યારે તે બંધુ છે કે “અમુક ઇવોડર્ય શબ્દ” આ શબ્દજ છે રૂપાદિઠ નથી ત્યારબાદ તે અવાયજ્ઞાનમા પ્રવેશ કરે છે તેને તે શબ્દઉપ અર્થ ઉપગત-જ્ઞાત થાય છે અવાયજ્ઞાન જે સમયે આત્મામા પરિણત થઈ બય છે, ત્યારે તે જ્ઞાતાવ્યકિત તે શબ્દરૂપ અર્થને હૃદયમા ધાગ્ણુકરવાને માટે ધારણા રૂપ જ્ઞાનમા પ્રવેશ કરે છે ધારણા આત્મામા ઓવા સસ્કાર ઉત્પન્ન કરી નાખે છે જેથી આત્મા તે વસ્તુને ઙાણાન્ટરે પણ ભૂલતો નથી સસ્થ્યાતકાળ સુધી અથવા અસસ્થ્યાત ઙાણ સુધી તે વસ્તુ અવધારિત યની રહે છે

હવે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયથી અવગ્રહાદિક કેવી રીતે થાય છે તેનું સૂત્રકાર વર્ણન કરે છે-“સે જહાનામણ૦” ઇત્યાદિ

नावरणक्षयोपशमो वर्तते, ततोऽन्तर्मुहूर्त्तकालेन नियमात् तद्वस्तु निश्चिनोति । यदि तु वस्तु दुर्ज्ञेयं भवति, न च तयाविधो विशिष्टो मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्तत उद्दोषयोगा दच्युतः पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तकालमीहते । एयमीहोपयोगाच्छेदेन प्रभूतान्यन्तर्मुहूर्त्तानि

इस तरह परस्पर विरुद्ध अनेक कोटियों को अवलयन करनेवाला सशय ज्ञान होता है तब कि ईहामें 'यह शस्त्र का शब्द होना चाहिये अथवा सींग का शब्द होना चाहिये' ऐसा ही एक तर्क निर्णयाभिमुख बोध रहता है । 'यह शस्त्र का शब्द होना चाहिये, क्यों कि इसके ही माधुर्य आदि अमुक २ विशेष धर्म पाये जाते हैं, सींग का यह शब्द नहीं होना चाहिये, क्यों कि उसके कर्कशता, कठोरता आदि अमुक २ विशेष धर्म यहा उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।' इस तरह ईहाज्ञानमें विशेषार्थ के निर्णय के सम्मुख हुए तथा असद्भूतविशेष अर्थ के परित्याग की तरफ झुके हुए बोध का उदय रहता है । मशयमें ऐसा नहीं होता । इसलिये ईहा-ज्ञानमें और सशयज्ञानमें बड़ा अन्तर है । ईहित वस्तु यदि सुबोध होती है, तथा मतिज्ञानावरण कर्म का विशिष्ट क्षयोपशम उस जीव के होता है तो वह वस्तु अन्तर्मुहूर्त्तकालमें नियमसे निश्चित हो जाती है । यदि वह ईहित वस्तु दुर्ज्ञेय है, तथा ज्ञाता के मतिज्ञानावरणीयकर्म का विशिष्ट क्षयोपशम नहीं है तो वह ज्ञाता ईहारूप उपयोग से अच्युत बना हुआ ही

आ प्रकारे परस्परविरुद्ध अनेक कोटीयोऽनु अवलयन करनार सशयज्ञान डोय छे, त्तारे धडाभा " आ शभनो शब्द डोवो नोड्ये अथवा शिगडानो शब्द डोवो नोड्ये " ओवो ओक तरङ्गना निर्णय तरङ्ग ओकतो ओध रहा करे छे " आ शभनोशब्द डोवो नोड्ये, कारण के तेभा तेना न माधुर्य आदि अमुक अमुक विशेषशुष्मा मणे छे, शिगडानो आ शब्द न डोवो नोड्ये, कारण के तेना कर्कशता, कठोरता आदि अमुक अमुक विशेषशुष्मा अडी प्राप्त थता नथी " आ रीते धडाज्ञानमा विशेषार्थना निर्णयनीतरङ्ग अने असद्भूतविशेष अर्थना परित्याग तरङ्ग ओकेल ओधनो उदय रडे छे सशयभा ओषु थतु नथी ते नारणे धडाज्ञान अने सशयज्ञान वन्ने ओटो लेद छे धडित वस्तु नो सुओध डोय छे तथा ते ओवने मतिज्ञानावरण कर्मना विशिष्ट क्षयोपशम थायछे, तो ते वस्तु अन्तर्मुहूर्त्तकालमा नियमथी निश्चित थई अथ छे नो ते धडित वस्तु दुर्ज्ञेय डोय तथा ज्ञाताना मतिज्ञानावरणीयकर्मना विशिष्टक्षयोपशम न थयो डोय, तो ते ज्ञाता धडाङ्गप उपयोगथी अच्युत भनीने न इरिथी अन्तर्मु-

नोऽन्द्रियजनितान्तावग्रहादीन् वर्णयति—‘से जहानामए०’ इत्यादि । स यथानामकं कश्चित् पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं पश्येत् । अव्यक्तं=सकलविशेषरहितम्, अनिर्देश्यमित्यर्थः । तेन स्वप्न इत्यवगृहीतम्, स्वप्नः परमार्थतया यद्यपि दृष्टः परन्तु विशेषरहितोऽनभिव्यक्तः सामान्यरूप एव ज्ञात इत्यर्थः । तमेवार्थमाह—‘नो चैव जाणइ०’ इत्यादि । नो चैव जानाति—‘को वा एष स्वप्नः’ इति, स्वप्नोऽयमित्यपि न निश्चिनोतीत्यर्थः । अत एव माह—‘तओ ईह पविसइ’ इत्यादि । तत ईहा प्रविशतीत्यादि । एव स्वप्नमधिकृत्य जाग्रदवस्थाया नोऽन्द्रियस्यार्थावग्रहादयो बोध्याः । इहापि व्यञ्जनावग्रहो न व्याख्येयः, मनसोऽप्राप्यकारित्वात् ।

सप्रति मल्लकदृष्टान्तमुपसहरन् प्राह—‘से तं मल्लकद्विद्वतेणं’ इति । तदेतत् मल्लकदृष्टान्तेनाष्टाविंशतिविधस्याऽऽभिनिबोधज्ञानस्य प्ररूपणं कृतमित्यर्थः ।

चाहिये । नोऽन्द्रियजनित अर्थावग्रहके पहिले व्यञ्जनावग्रह नही होता है । यह बात बतलाई जा चुकी है, क्यों कि मन अप्राप्यकारी है ।

अब सूत्रकार मल्लकके दृष्टान्तका उपसहार करते हुए कहते हैं कि मल्लकके दृष्टान्तसे अठारह प्रकारके आभिनिबोधिक ज्ञानकी यह प्ररूपणा की है । तात्पर्य इसका यह है कि यह आभिनिबोधिक ज्ञान पाच इन्द्रिय और छठे मनसे होता है । प्रत्येक इन्द्रियसे ज्ञात पदार्थ में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, ये सब होते हैं । इस तरह अर्थावग्रहकी अपेक्षा चोईस भेद होते हैं । तथा व्यञ्जनावग्रहकी अपेक्षा चार भेद और होते हैं । इस तरह आभिनिबोधिक ज्ञान अठारह प्रकारका यह मल्लकके दृष्टान्तसे लेकर वर्णित हो चुका है ।

इन्द्रियजनित अर्थावग्रहनी पहिला व्यञ्जनावग्रह थतो नथी आ वात समनवी देवामा आवी छे, कारणु के मन अप्राप्यकारी छे

इसे सूत्रकार मल्लक (शंकरा)ना दृष्टान्तने उपसहार करता कहे छे के मल्लकना दृष्टान्तथी अठ्ठावीस प्रकारना आभिनिबोधिक ज्ञाननी आ प्ररूपणा करी छे तेनु तात्पर्य अे छे के आ आभिनिबोधिकज्ञान पाचइन्द्रिय अने मनथी थायछे प्रत्येक इन्द्रियथी ज्ञात पदार्थमा अवग्रह, ईहा, अवाय, अने धारणा अे षधु थायछे आरीते अर्थावग्रहनी अपेक्षाअे चोवीस लेहपडेछे तथा व्यञ्जनावग्रहनी अपेक्षाअे भीन चारलेहपडेछे आरीते अठ्ठावीसप्रकारना आभिनिबोधिकज्ञाननी प्ररूपणा मल्लकनु दृष्टान्त लधने पूर्य थध

રૂપ પડ્યેત્ । અમ્ય વ્યારયા પ્રાગત્ । નરમ્-રૂઢ વ્ય-જનાવગ્રહો ન જ્યામ્યેય, ચક્ષુષોઽપ્રાપ્યકારિત્વાત્ । ઘ્રાણેન્દ્રિયાદિપુ તુ વ્યાર્યેયઃ ।

ઘ્રાણેન્દ્રિયજનિતાનવગ્રહાદીન્ વર્ણયતિ-‘ સે જહાનામણ્ ’ ઇત્યાદિ । વ્યાખ્યા પ્રાગત્ ।

રસનેન્દ્રિયજનિતાનવગ્રહાદીન્ વર્ણયતિ-‘ સે જહાનામણ્ ’ ઇત્યાદિ । મુગમ્ ।

સ્પર્શેન્દ્રિયજનિતાનવગ્રહાદીન્ વર્ણયતિ-‘ સે જહાનામણ્ ’ ઇત્યાદિ । મુગમ્ ।

હસકા અર્થ શ્રોત્રેન્દ્રિયકે વિષયમે ક્રિયે ગયે અર્થકે સમાન હી હૈ । પરન્તુ યહા વિશેષતા યહ હૈ કિ શ્રોત્રેન્દ્રિયકે વિષયભૂત પદાર્થમે શ્રોત્રેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહકે પહિલે જૈસા વ્યજ્જનાવગ્રહકા હોના કહ્તા ગયા હૈ યહા વહ વ્યજ્જનાવગ્રહ નહીં હોતા હૈ, ઇસકા કારણ યહ હૈ કિ યે દોનો ઇન્દ્રિયા અપ્રાપ્યકારી હૈ । શેષ ઇન્દ્રિયોકે વિષયભૂત પદાર્થ મેં હી યહ વ્યજ્જનાવગ્રહકે પહિલે હોતા હૈ, કારણ યે ચાર ઇન્દ્રિયા અપ્રાપ્યકારી હૈ, શેષ પદોં કા વ્યાખ્યાન શ્રોત્રેન્દ્રિયસમ્બન્ધી સૂત્રમે રહે હુણ પદોં કે અનુસાર જાનના ચાહિયે ।

અવ સૂત્રકાર ઘ્રાણેન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોં કા વર્ણન કરતે હૈ- ‘સે જહા નામણ્ ’ ઇત્યાદિ । ઇન પદોંકી વ્યાખ્યા મી પૂર્વવત્ જાનની ચાહિયે । ઇસી તરહ રસનેન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોંકા, સ્પર્શેન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોંકા, નો ઇન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોંકા વર્ણન મી જાનના

આનો અર્થ શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષયમા કરાયેલ અર્થ સમાનજ છે, પણ અહીં, એ વિશેષતા છે કે શ્રોત્રેન્દ્રિયના વિષયભૂતપદાર્થમા શ્રોત્રેન્દ્રિયજન્ય અર્થાવગ્રહના પહેલા જેવો વ્યજ્જનાવગ્રહ થવાનું કહ્યું છે, એવો વ્યજ્જનાવગ્રહ અહીં થતો નથી તેનું કારણ એ છે કે એ બંને ઇન્દ્રિયો અપ્રાપ્યકારી છે શેષ ઇન્દ્રિયોના વિષયભૂત પદાર્થમા જ આ વ્યજ્જનાવગ્રહ અર્થાવગ્રહના પહેલા થાય છે, કારણ કે ચાર ઇન્દ્રિયો પ્રાપ્યકારી છે બાકીના પદોનું વ્યાખ્યાન શ્રોત્રેન્દ્રિ વિષેના સૂત્રમા રહેલ પદોપ્રમાણેજ સમજવાનું છે

હવે સૂત્રકાર ઘ્રાણેન્દ્રિય જનિત અવગ્રહાદિકોંનું વર્ણન કરે છે-“ સે જહા નામણ્ ” ઇત્યાદિ આપદોની વ્યાખ્યા પણ પહેલાની જેમજ સમજવાની છે એજ પ્રમાણે રસનેન્દ્રિય જનિત અવગ્રહાદિકોંનું, સ્પર્શેન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોંનું અને નો ઇન્દ્રિયજનિત અવગ્રહાદિકોંનું વર્ણન પણ સમજી લેવું જોઈએ નો

धाग्रहः ३, एकविधाऽवग्रह ४, क्षिप्रावग्रह ५, चिरानग्रहः ६, अनिश्रितावग्रहः ७, निश्रितावग्रहः ८, असंदिग्धावग्रहः ९, सदिग्धावग्रहः १०, सुवानग्रहः ११, अधु-
वावग्रहश्च १२, इत्येव श्रोत्रावग्रहस्य द्वादशभेदा, एव चभुरिन्द्रियावग्रहादेरपि द्वादश
-द्वादशभेदा बोःयाः । उक्तभेदा मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्योत्कर्षादपकर्षाच्च भव-
न्तीति बोऽयम् ।

नन्ववग्रहः शास्त्रे एरुसामायिकः प्रोक्तः, बहुवग्रहादेरेकस्मिन् समये नास्ति
संभनस्तस्य विशेषग्राहकत्वादिति चेत्,

होता है, केवल चार इन्द्रियों के विषयों में ही होता है। इस लिये वह
चार प्रकारका है। उन चार प्रकारों में प्रत्येक क्षिप्रादि भेदसे चारह
चारह प्रकारके होते हैं। अतः सब भेदों के जोड़नेसे वह ४८ प्रकारका
होता है। पूर्वोक्त २८८ अर्थावग्रहके भेदोंमें व्यज्जनावग्रहके ४८ भेदोंको
जोड़नेसे ३३६ भेद होते हैं। इस प्रकार आभिनिवोधिक ज्ञान
तीनसौउत्तीस (३३६) भेदवाला होना है। ये भेद मतिज्ञानावरण कर्म
के क्षयोपशमकी उत्कर्षता और अपकर्षताको ले कर होते हैं।

शङ्का—अवग्रहका काल शास्त्रमें एक समय कहा है। बहु, अवग्रह,
बहुविध अवग्रह आदिरूप अवग्रह जो बाह्य प्रकारका अभी बतलाया
गया है वह एक समय प्रमाणवाला कैसे हो सकता है, क्यों कि यह
अवग्रह विशेषका ग्राहक होता है।

व्यज्जनावग्रहं यक्षु अने भननाविषयभा यतो नथी इकत चार इन्द्रियोना
विषयभा न थाय ठे तेथी ते चार प्रकारने छे ते चारप्रकारमाना इरेक
क्षिप्रादिलेदधी ५२ ५२ प्रकारना डोय ठे तेथी अथा लेद भणीने ते अड
ताणीस (४८) प्रकारने थाय छे पूर्वोक्त २८८ अर्थावग्रहनालेदोभा व्यज्जना-
वग्रहना ४८ लेदो उमेरता कुल ३३६ लेद थाय छे आ रीते आभिनिवोधिक
ज्ञान त्रयुसो छत्रीस (३३६) लेदवाणु डोय छे अे लेद मतिज्ञानावरण कर्मना
क्षयोपशमनी उत्कर्षता अने अपकर्षताने लीधे थाय छे

शंका—अवग्रहने काण शास्त्रभा अेकसमय उह्यो छे बहु अवग्रह, बहुविध
अवग्रह, आदिरूप ने चार प्रकारना अवग्रह उभयु अताववामा आव्या छे, ते
अेकसमयप्रमाणवाणा केची रीते डोय शके छे, कारण के आ अवग्रहविशेषने
आहक थाय छे?

एते चाग्रहादयोऽष्टाविंशतिभेदाः प्रत्येक वदादिभिस्तद्धिनैश्च द्वादशमन्व्य-
 कैर्भेदैर्भिद्यमानाः पद्विंशदधिकशतत्रय (३३६) सत्यका भवन्ति । तथाहि—अवग्र-
 हादयः खलु बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिश्रिता-असदिग्ध-ध्रुव-भेदेन पद्विधानां
 तद्धिन्नानां च पद्विधाना शब्दाद्यर्थानां ग्राहका भवन्ति । बह्वर्थमिन्नः स्तोकार्थः ।
 बहुविध इत्यस्माद् भिन्नोऽर्थ एकविधः, क्षिप्रमित्यस्माद्धिन्न चिरमिति । एव चाव-
 ग्रहो बह्ववगृह्णाति १, अल्पमवगृह्णाति २, बहुविधमवगृह्णाति ३, एकविधमवगृह्णाति
 ४, क्षिप्रमवगृह्णाति ५, चिरेणावगृह्णाति ६, अनिश्रितम्—(अनुमानागम्यम्)
 अवगृह्णाति ७, निश्रितम् (अनुमानागम्यम्) अवगृह्णाति ८ । असदिग्ध (सदेह-
 रहितम्) अवगृह्णाति ९, सदिग्धम्—(सदेहयुक्तम्) अवगृह्णाति १०, ध्रुवमव-
 गृह्णाति ११, अध्रुवमवगृह्णाति १२, तस्मात्—ग्रहग्रहः १, अल्पाग्रहः २, बहुवि

अव सूत्रकार आभिनिर्गोधिक ज्ञानके—मतिज्ञानके—तीनसौछत्तीस
 (३३६) भेद किस प्रकारसे होते हैं यह बात प्रकट करते हैं—बहु १,
 बहुविध २, क्षिप्र ३, अनिश्रित ४, असदिग्ध ५ और ध्रुव ६, इन भेदों
 से, तथा इनके उल्टे एक १, एकविध २, अक्षिप्र ३, निश्रित ४, सदिग्ध
 ५ और अध्रुव ६, इन भेदोंसे शब्दादिक पदार्थ बारह बारह प्रकार के
 होते हैं ।

ये बारह बारह प्रकारके शब्दादि पदार्थ श्रोत्रेन्द्रियादि छ से यथा-
 योग्य गृहीत होते हैं । इस लिये बारहको छ से गुणा करने पर बहत्तर
 भेद होते हैं । इन बहत्तरमे भी प्रत्येक अवग्रह, ईहा, अवाय और धार-
 णाके भेदसे चार चार प्रकारका होता हैं । इस प्रकार सबको जोडनेसे
 २८८ भेद होते हैं । तथा व्यजनावग्रह चक्षु और मनके विषयोंमे नही

७वे सूत्रकार आभिनिर्गोधिकज्ञानना—मतिज्ञानना—त्रयसो छत्तीस (३३६)
 लेख ३४ रीते थाय छे अये वात प्रगत करे छे (१) बहु, (२) बहुविध, (३) क्षिप्र,
 (४) अनिश्रित, (५) असदिग्ध, अने (६) ध्रुव आ लेहोथी तथा तेना उलटा
 (१) अक, (२) अकविध, (३) अक्षिप्र (४) निश्रित, (५) सदिग्ध, (६) अध्रुव
 अये लेहोथी शब्दादिक पदार्थ बार बार प्रकारना होय छे

अये बार बार प्रकारना शब्दादिकपदार्थ श्रोत्रेन्द्रियादि छ वडे यथायोग्य
 गृहीत थाय छे तेथी बारने ७ वडे गुणता भातेर लेख थाय छे अये भातेरभा
 पल प्रत्येक अवग्रह, ईहा, अवाय, अने धारणा लेहोथी बार बार प्रकारना
 होय छे आ प्रकारे यथा भणीने असे अठ्ठासी (२८८) लेख थाय छे तथा

चावायः पुनरवग्रह इत्युपचर्यते । उत्तरोत्तरवर्तिनीमीहामवायं चाश्रित्य पूर्वपूर्वोऽवायः सामान्यग्राहको भवतीत्यतस्तत्र तत्रावग्रहत्वोपचारः । यदा तु-अपर विशेष नाकाङ्क्षति, तदाऽवाय एव भवति, न तत्रोपचारः, तस्यावायस्य सामान्यरूपत्वाभावात् । तस्माद् बह्ववग्रहादि रौपचारिको विशेषसामान्यावग्रहरूपोऽवग्रह, न त्वेकसमयवर्ती नैश्रयिकोऽवग्रह इति स्थितम् ।

करने वाला होता है तो इस अपेक्षा “ शब्दोऽयम् ” यह बोध सामान्य-विषयक माना जाता है । सामान्य विषय करनेवाला अवग्रह होता है, अतः इस अवाय को उपचार से अवग्रह मान लिया है । तात्पर्य इसका यह है जो पहिले पहिल सामान्यमात्र को विषय करता है वह नैश्रयिक अवग्रह है । तथा जिस विशेषग्राही अवायज्ञान के बाद अन्यान्य विशेषों की जिज्ञासा और अवाय होते रहते ह वे सामान्यविशेषग्राही अवाय-ज्ञान व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं । जिसके बाद अन्यविशेषों की जिज्ञासा न हो वह अवायज्ञान व्यावहारिक, अर्थावग्रह नहीं माना गया है । अन्य सभी अवायज्ञान जो अपने बाद नये नये विशेषों की जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं वे व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं । यही बात टीकाकार ने “ उत्तरोत्तरवर्तिनीमीहामवाय चाश्रित्यपूर्वपूर्वोऽवायः सामान्य ग्राहको भवतीत्य-तस्तत्र तत्रावग्रहत्वोपचारः । यदा तु अपर विशेषनाकाङ्क्षतितदाअवाय एव भवति न तत्रोपचारः, तस्य अवायस्य सामान्यरूपत्वाभावात् । तस्मात् बह्ववग्रहादि रौपचारिको विशेषसामान्यावग्रहरूपोऽवग्रहः, नत्वेक समय

तो એ અપેક્ષાએ “ શब्दોऽयम् ” એ બોધ સામાન્યવિષયક મનાય છે સામા-
ન્યને વિષય કરનાર અવગ્રહ હોય છે તેથી આ અવાયને औपचारिक रीते अवग्रह
मानी लीधी છે તેનું तात्पर्य એ છે કે જે પહેલવહેલુ સામાન્ય માત્રને
વિષય કરે છે, તે નૈશ્રયિક અવગ્રહ છે તથા જે વિશેષગ્રાહી અવાયજ્ઞાનની પછી
અન્યાન્ય વિશેષોની જિજ્ઞાસા અને અવાય થતા રહે છે, તે સામાન્ય વિશેષ
ગ્રાહી અવાયજ્ઞાન વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ છે જેના પછી અન્ય વિશેષોની
જિજ્ઞાસા ન થાય, તે અવાયજ્ઞાનને વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ માનેલ નથી બીજા
બધા અવાયજ્ઞાન જે પોતાના પછી નવા નવા વિશેષોની જિજ્ઞાસા ઉત્પન્ન કરે
છે, તે વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહ છે એજ વાત ટીકાકારે “ ઉત્તરોત્તર વર્તિનીમીહા
મવાય ચાશ્રિત્ય પૂર્વ પૂર્વોઽવાય સામાન્ય ગ્રાહકો ભવતીત્યતસ્ત્રત્રાવગ્રહત્વોપચાર ।
યદા તુ અપર વિશેષ નાકાઙ્ક્ષતિ તદા અવાય એવ ભવતિ ન તત્રોપચાર, તસ્ય
અવાયસ્ય સામાન્યરૂપત્વાભાવાત્ । તસ્માદ્ બહ્વગ્રહાદિ રોપચારિકો વિશેષ સામાન્યા

ઉચ્યતે—સત્યમેવૈતત્, કિન્તુ અગ્રહો દ્વિધા-નૈશ્વયિકો વ્યાપહારિકમ્ । તત્ત્ર
 નૈશ્વયિકો નામ સામાન્યપરિન્હેદ', સ ચૈત્સામાયિરઃ પરમયોગિના સ્ફુટગમ્ય
 ઇતિ । તતો નૈશ્વયિકાદનન્તરમીદા પ્રવર્તતૈ । તદનન્તરમગાયો મયતિ । અય ચાત્રાયઃ
 —અગ્રહ ઇત્યુપચર્યતે । 'શબ્દોડ્યમ્' ઇત્યગાયાનન્તર પુનરીદા પ્રવર્તતે—'શાક્તોડ્યમ્
 શબ્દઃ, કિમુત શાર્દ્ઃ?' ઇતિ । તદનન્તર 'શાક્ત એવાયં શબ્દઃ' ઇતિ શબ્દવિશેષ-
 વિષયકોડવાયો મવતિ । તદપેક્ષયા શબ્દોડ્યમિત્યસ્ય સામાન્યવિષયત્વાત્ । અયમપિ

ઉત્તર—શબ્દા—ઠીક છે, કિન્તુ વિચાર કરનેસે સમાધાન મિલ
 જાતા છે । વહ ઇસ પ્રકાર છે—અવગ્રહ દો પ્રકાર કા કહા ગયા છે (૧)
 નૈશ્વયિક, (૨) વ્યાવહારિક । નૈશ્વયિક અવગ્રહકા હી કાલ ઁક સમયકા
 છે, ઇસકા વિષય સામાન્ય છે, ઔર વહ પરમ યોગિજ્ઞાન ગમ્ય છે । ઇસ
 નૈશ્વયિક અવગ્રહકે વાદ ઈદા, ઔર ઈદાકે વાદ અવાય પ્રવર્તિત હોતા
 છે । વહ જો અવાયજ્ઞાન છે વહ ઉપચારસે અવગ્રહરૂપ માન લિયા જાતા
 છે, ક્યોં કિ ઇસકે વાદ અન્યાન્ય વિશેષોં કી જિજ્ઞાસા હોતી છે । જબ
 “વહ શબ્દ છે” ઇસ પ્રકાર કા અવાયજ્ઞાન હો જાતા છે તવ વહ જિજ્ઞાસા
 હોતી છે કિ—“વહ શબ્દ કિસ કા છે—કયા શબ્દ કા છે અથવા સીંગે કા
 છે? શબ્દ કા હોના ચાહિયે” ઇસ પ્રકાર નિર્ણયાભિમુખ જો વોધ હોતા
 છે વહ ઈદા છે । ઇસ ઈદા કે વાદ અવાય હોતા છે કિ “વહ શબ્દ શબ્દ
 કા હી છે ।” ઇસ પ્રકાર જબ વહ અવાયજ્ઞાન શબ્દ વિશેષ કો વિષય

ઉત્તર—શ કા ખરાખર છે, પણ વિચારકરવાથી તેનું સમાધાન મળી જાય
 છે તે આ પ્રકારે છે—અવગ્રહ બે પ્રકારના બતાવ્યા છે (૧) નૈશ્વયિક, (૨) વ્યાવ-
 હારિક નૈશ્વયિક અવગ્રહને જ કાળ એકસમયને છે, તેને વિષય સામાન્ય છે,
 અને તે પરમયોગિજ્ઞાનગમ્ય છે આ નૈશ્વયિક અવગ્રહની પછી ઈદા, અને
 ઈદા પછી અવાય પ્રવર્તિત થાય છે આ બે અવાયજ્ઞાન છે તે ઔપચારિક રીતે
 અવગ્રહરૂપ માની લેવાય છે, કારણ કે તેના પછી અન્યાન્ય વિશેષોની જિજ્ઞાસા
 થાય છે

ત્યારે “આ શબ્દ છે” આ પ્રકારનું અવાયજ્ઞાન થાય છે ત્યારે એ
 જિજ્ઞાસા થાય છે કે “આ શબ્દ કોનો છે? શુ શ ખને છે અથવા શ્રુ ગને
 છે?” શ ખને હોવો જોઈએ” આ પ્રમાણે નિર્ણય તરફ ઘળતો બે બોધ
 થાય છે તે ઈદા છે આ ઈદા પછી અવાય થાય છે કે “આ શબ્દ શ ખને
 જ છે” આ પ્રકારે જો આ અવાયજ્ઞાન શબ્દવિશેષને વિષય કરનાર હોય છે

चावायः पुनरवग्रह इत्युपचर्यते । उत्तरोत्तरवर्तिनीमीहामवायं चाश्रित्य पूर्वपूर्वोऽवायः सामान्यग्राहको भवतीत्यतस्तत्र तत्रावग्रहत्वोपचारः । यदा तु-अपर विशेष नाका-इक्षति, तदाऽवाय एव भवति, न तत्रोपचारः, तस्यावायस्य सामान्यरूपत्वाभावात् । तस्माद् ब्रह्मवग्रहादि रौपचारिको विशेषसामान्यावग्रहरूपोऽवग्रहः, न त्वेकसमयवर्ती नैश्रयिकोऽवग्रह इति स्थितम् ।

करने वाला होता है तो इस अपेक्षा “ शब्दोऽयम् ” यह बोध सामान्य-विषयक माना जाता है । सामान्य विषय करनेवाला अवग्रह होता है, अतः इस अवाय को उपचार से अवग्रह मान लिया है । तात्पर्य इसका यह है जो पहिले पहिल सामान्यमात्र को विषय करता है वह नैश्रयिक अवग्रह है । तथा जिस विशेषग्राही अवायज्ञान के बाद अन्यान्य विशेषों की जिज्ञासा और अवाय होते रहते हैं वे सामान्यविशेषग्राही अवाय-ज्ञान व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं । जिसके बाद अन्यविशेषों की जिज्ञासा न हो वह अवायज्ञान व्यावहारिक, अर्थावग्रह नहीं माना गया है । अन्य सभी अवायज्ञान जो अपने बाद नये नये विशेषों की जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं वे व्यावहारिक अर्थावग्रह हैं । यही बात टीकाकार ने “ उत्तरो-त्तरवर्तिनीमीहामवाय चाश्रित्यपूर्वपूर्वोऽवायः सामान्य ग्राहको भवतीत्य-तस्तत्र तत्रावग्रहत्वोपचारः । यदा तु अपर विशेषनाकाइक्षतितदाअवाय एव भवति न तत्रोपचारः, तस्य अवायस्य सामान्यरूपत्वाभावात् । तस्मात् ब्रह्मवग्रहादि रौपचारिको विशेषसामान्यावग्रहरूपोऽवग्रहः, नत्वेक समय

तो ये अपेक्षाये “ शब्दोऽयम् ” ये बोध सामान्यविषयक बनाय छे सामान्यने विषय उरनार अवग्रह डोय छे तेथी आ अवायने औपचारिक रीते अवग्रह मानी लीधे छे तेतु तात्पर्य ये छे के ने पडेलवडेलु सामान्य मात्रने विषय करे छे, ते नैश्रयिक अवग्रह छे तथा ने विशेषग्राही अवायज्ञाननी पछी अन्यान्य विशेषोनी जिज्ञासा अने अवाय थता रहे छे, ते सामान्य विशेष ग्राही अवायज्ञान व्यावहारिक अर्थावग्रह छे जेना पछी अन्य विशेषोनी जिज्ञासा न थाय, ते अवायज्ञानने व्यावहारिक अर्थावग्रह मानेल नथी पीन अथा अवायज्ञान ने पोताना पछी नवा नवा विशेषोनी जिज्ञासा उत्पन्न करे छे, ते व्यावहारिक अर्थावग्रह छे जे वात टीकाकारे “ उत्तरोत्तर वर्तिनीमीहामवाय चाश्रित्य पूर्व पूर्वोऽवाय सामान्य ग्राहको भवतीत्यतस्तत्रावग्रहत्वोपचार । यदा तु अपर विशेष नाकाइक्षति तदा अवाय एव भवति न तत्रोपचार, तस्य अवायस्य सामान्यरूपत्वाभावात् । तस्माद् ब्रह्मवग्रहादि रौपचारिको विशेष सामान्या-

તત્ર વહુમગ્રહાદિઃ શબ્દમધિકૃત્ય ચ પતે-શબ્દપટહાદિનાનાશબ્દમમૂઠં પૃથગે-
કૈઃ યદાઽગ્રહાતિ, તદા વહુમગ્રહઃ ૧। યદા તુ એકમેવ કચિત્ શબ્દમગ્રહાતિ, તદા
અલ્પાવગ્રહઃ ૨। યદા શબ્દપટહાદિનાનાશબ્દસમૂહમધ્યે એકેઃ શબ્દમનેકઃ પર્વાયૈઃ
સ્તિગ્ધગામ્ભીર્યાદિભિર્વિશિષ્ટ યથાસ્થિતમગ્રહાતિ, તદા સ વહુત્રિધાવગ્રહઃ ૩। યદા

વર્તીનેશ્ચયિકોઽવગ્રહ ઇતિ સ્થિતમ્” ઇતિ પત્તિયોં દ્વારા સ્પષ્ટ કરી છે । જે
કહે છે કે ઉત્તરોત્તરવર્તી ઈલા, ઓર અવાય, કી અપેક્ષા કરકે પૂર્વ પૂર્વ
કા અવાયજ્ઞાન સામાન્યાગ્રાહક હો જાતા હૈ । ઇમલિયે સામાન્યગ્રાહક
હોને કી વજહ સે ડસ અવાયજ્ઞાન મેં અવગ્રહરૂપતા કા ઉપચાર કર
લિયા જાતા હૈ । જય વહ અવાયજ્ઞાન ઉત્તર કાલ મેં અપર વિશેષ કી
આકાક્ષા નહી કરતા હૈ તો વહ અવાય હી રહતા હૈ, ઉપચાર સે ડસમેં
અવગ્રહરૂપતા કલ્પિત નહીં કી જાતી હૈ, કારણ ડસમેં સામાન્યરૂપતા
ડસ મમય નહી આતી હૈ । ઇમલિયે વહુ આદિ ચારહ પ્રકાર કે પદાર્થો
અવગ્રહરૂપ જ્ઞાન એક મમયવર્તી નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહરૂપ નહી માના ગયા
હૈ કિન્તુ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહરૂપ હી માના ગયા હૈ ક્યોં કિ ડસમેં
સામાન્યવિશેષ કા જ્ઞાન હોતા હૈ, અતઃ વહ અવાયરૂપ હોકર ઉપચાર
સે અવગ્રહરૂપ માન લિયા ગયા હૈ ।

અવ વહ સ્પષ્ટ કિયા જાતા હૈ કિ વહુ આદિક પદાર્થવિષયક અવ
ગ્રહ શબ્દ મે કિસ પ્રકાર હોતે હૈ ?—

વગ્રહ રૂપોઽવગ્રહ, નત્વેક સમયવર્તી નૈશ્ચયિકોઽવગ્રહ ઇતિ સ્થિતમ્” આ પ કિતઓ
દ્વારા સ્પષ્ટ કરેલ છે તેઓ કહે છે કે ઉત્તરોત્તરવર્તી ઈલા અને અવાયની
અપેક્ષાએ ડરીને પૂર્વ પૂર્વનુ અવાયજ્ઞાન સામાન્ય ગ્રાહક થઈ બલ્ય છે તેથી
સામાન્ય ગ્રાહક હોવાને કારણે તે અવાય જ્ઞાનમા અવગ્રહ રૂપતાને ઉપચાર
કરી લેવામા આવે છે બ્યારે તે અવાયજ્ઞાન ઉત્તરકાળમા અપર વિશેષની
આકાક્ષા કરતુ નથી ત્યારે તે અવાય જ રહે છે, ઉપચારથી તેમા અવગ્રહરૂપતા
કટપવામા આવતી નથી, ડરણુ કે તેમા સામાન્યરૂપતા તે સમયે આવતી નથી
તે કારણે બહુ આદિ બાર પ્રકારના પદાર્થોનુ અવગ્રહરૂપ જ્ઞાન એક સમયવર્તી
નૈશ્ચયિક અર્થાવગ્રહરૂપ માનવામા આવ્યુ નથી, પણ વ્યાવહારિક અર્થાવગ્રહરૂપ જ
માન્યુ છે ડરણુ કે તેમા સામાન્ય વિશેષનુ જ્ઞાન થાય છે, તેથી તે અવાય
રૂપ હોવાથી ઉપચારથી અવગ્રહરૂપ માની લેવામા આવેલ છે

હવે એ સ્પષ્ટ કરવામા આવે છે કે બહુ આદિક પદાર્થ વિષયક અવગ્રહ
શબ્દમા કેવી રીતે થાય છે ?

तु एकमनेरुवा शब्दमेरुपर्यायत्रिगिष्टम्, अर्थात्-गाम्भीर्यमाधुर्यादिक्रमेक पर्यायविशिष्टमेव जानाति, तदा स एकविधाग्रहः ४ । यदा तमेव शब्द क्षिप्र-शीघ्र जानाति, तदा क्षिप्राग्रहः ५ । यदा तु बहुना कालेन जानाति, तदा चिरावग्रहः ६ ।

यहा बहु का तात्पर्य अनेक से है । जब श्रोता शब्द, पटह, आदि नाना शब्द समूह में से पृथक् २ एक एक के शब्द को अवग्रह ज्ञानका विषयभूत करता है इसका नाम बहुका अवग्रह । क्रमशः दो या इससे अधिक शब्दोंका ज्ञान इस बहुके अवग्रहमें विवक्षित हुआ है १ । जब श्रोता एक ही किसी शब्दको सुनता है तो वह इस से विपरीत अल्पका अवग्रह ज्ञान माना जाता है २ । जिस समय शब्द पटह आदि के अनेक शब्दसमूहमें से एक एक शब्दको स्निग्ध, गाम्भीर्य आदि अनेक पर्यायों से विशिष्ट जब श्रोता जानता है तब इस प्रकारका ज्ञान बहुविव का अवग्रह कहलाता है ३ । और जब श्रोता एक या अनेक शब्दोंको एक ही पर्यायसे विशिष्ट जानता है तब वह ज्ञान एकविवका अवग्रह कहलाता है ४ । बहुविध से अपनी पर्यायों में विविधता रखनेवाले अनेक पदार्थों का ज्ञान विवक्षित हुआ है । तब कि अपनी पर्यायों में एक प्रकारता रखनेवाले पदार्थों का ज्ञान एकविधमें विवक्षित हुआ है । शब्दको शीघ्र जानना यह क्षिप्रका अवग्रह है ५ । बहुतकालमें शब्दका ज्ञान होना इसका नाम चिरका अवग्रह है ६ । यह देखा जाता है कि इन्द्रिय

आधी अहुतु तात्पर्य अनेक से न्यारे श्रोता शब्द, पटह, आदि विविध शब्द समूहमाथी ओठ ओठना शब्दने अवग्रहज्ञानना विषयभूत करे छे, त्यारे तेनु नाम 'बहु'ने अवग्रह छे कभश जे तेथी बहु शब्दोतु ज्ञान आ अहुना अवग्रहमा विवक्षित थयु छे १ न्यारे श्रोता ओठ न केठ शब्दने साभणे छे त्यारे ते तेनाथी 'अल्प'नु अवग्रहज्ञान बनाय छे २ जे नभये श्रोता शब्द पटह आदिना अनेक शब्दसमूहमाथी ओठ ओठ शब्दने स्निग्ध, गाम्भीर्य आदि अनेक पर्यायोथी विशिष्ट नछे छे, त्यारे ते प्रकारतु ज्ञान अहुविधने अवग्रह उडेवाय छे ३ अने न्यारे श्रोता ओठ के अनेक शब्दोने ओठ न पर्यायोथी विशिष्ट नछे छे त्यारे ते ज्ञान ओकविधने अवग्रह उडेवाय छे अहुविधमा पोतानी पर्यायोमा विविधता राखनार अनेक पदार्थोतु ज्ञान विवक्षित थयु छे, त्यारे पोतानी पर्यायोमा ओक प्रकारता राखनार पदार्थोतु ज्ञान ओकविधमा विवक्षित थयु छे ४ शब्दने न्हदी नछुवा ते क्षिप्रने अवग्रह छे ५ बाणे कणे शब्दतु ज्ञान थयु तेनु नाम चिरने अवग्रह छे ६

तत्र गृहप्रहादिः शब्दमधिकृत्य कथं यते-शब्दव्यपट्टहादिनानाशब्दसमूहं पृथगे-
 कैरु यदाऽऽगृह्णाति, तदा गृहग्रहः १। यदा तु एरुमेव कचित् शब्दमगृह्णाति, तदा
 अल्पावग्रहः २। यदा शब्दव्यपट्टहादिनानाशब्दसमूहमध्ये एकैक शब्दमनेकैः पर्यायैः
 स्निग्धगाम्भीर्यादिभिर्विशिष्ट यथाऽस्थितमगृह्णाति, तदा स गृहविधायग्रहः ३। यदा
 वर्तमानैश्चयिकोऽवग्रह इति स्थितम्” इति पक्तियों द्वारा स्पष्ट की हैं। वे
 कहते हैं कि उत्तरोत्तरवर्ती ईहा, और अवाय, की अपेक्षा करके पूर्व पूर्व
 का अवायज्ञान सामान्याग्राहक हो जाता है। इसलिये सामान्यग्राहक
 होने की वजह से उस अवायज्ञान में अवग्रहरूपता का उपचार कर
 लिया जाता है। जत्र वह अवायज्ञान उत्तर काल में अपर विशेष की
 आकाक्षा नहीं करता है तो वह अवाय ही रहता है, उपचार से उसमें
 अवग्रहरूपता कल्पित नहीं की जाती है, कारण उसमें सामान्यरूपता^{के}
 उस समय नहीं आती है। इसलिये गृह आदि चार प्रकार के पदार्थों^{के}
 अवग्रहरूप ज्ञान एक समयवर्ती नैश्चयिक अर्थावग्रहरूप नहीं माना गया
 है किन्तु व्यावहारिक अर्थावग्रहरूप ही माना गया है क्योंकि इसमें
 सामान्यविशेष का ज्ञान होता है, अतः यह अवायरूप होकर उपचार
 से अवग्रहरूप मान लिया गया है।

अब यह स्पष्ट किया जाता है कि गृह आदिक पदार्थविषयक अव-
 ग्रह शब्द में किस प्रकार होते हैं ?—

गृह रूपोऽवग्रह, नत्वेक समयवर्ती नैश्चयिकोऽवग्रह इति स्थितम्” आ पक्षित्यो
 द्वारा स्पष्ट करेले छे तेओ कहे छे के उत्तरोत्तरवर्ती छे। अने अवायनी
 अपेक्षाओ जरीने पूर्व पूर्वनु अवायज्ञान सामान्य आहठ थछे नथ छे तेथी
 सामान्य आहठ होवाने कारणे ते अवाय ज्ञानमा अवग्रह रूपताने उपचार
 करी लेवामा आवे छे न्यारे ते अवायज्ञान उत्तरकालमा अपर विशेषनी
 आकाक्षा करतु नथी त्यारे ते अवाय न रहै छे, उपचारथी तेमा अवग्रहरूपता
 उत्पवामा आवती नथी, कारणे के तेमा सामान्यरूपता ते समय आवती नथी
 ते कारणे गृह आदि चार प्रकारना पदार्थानु अवग्रहरूप ज्ञान ओके समयवर्ती
 नैश्चयिक अर्थावग्रहरूप मानवामा आव्यु नथी, पण व्यावहारिक अर्थावग्रहरूप न
 मान्यु छे कारणे के तेमा सामान्य विशेषनु ज्ञान थाय छे, तेथी ते अवाय
 रूप होवथी उपचारथी अवग्रहरूप भानी लेवामा आवेले छे

हुवे ओ स्पष्ट करवामा आवे छे के गृह आदिक पदार्थ विषयक अवग्रह
 शब्दमा केवी रीते थाय छे ?

तु एकमनेकवा शब्दमेकपर्यायविशिष्टम्, अर्थात्-गाम्भीर्यमाधुर्यादिकमेक पर्यायविशिष्टमेव जानाति, तदा स एकविधानग्रहः ४ । यदा तमेव शब्द क्षिप्र-शीघ्र जानाति, तदा क्षिप्रानग्रहः ५ । यदा तु बहुना कालेन जानाति, तदा चिरावग्रहः ६ ।

यहां बहु का तात्पर्य अनेक से है । जब श्रोता शब्द, पटह, आदि नाना शब्द समूह में से पृथक् २ एक एक के शब्द को अवग्रह ज्ञानका विषयभूत करता है इसका नाम बहुका अवग्रह । क्रमशः दो या इससे अधिक शब्दोंका ज्ञान इस बहुके अवग्रहमें विवक्षित हुआ है १ । जब श्रोता एक ही किसी शब्दको सुनता है तो वह इस से विपरीत अल्पका अवग्रह ज्ञान माना जाता है २ । जिस समय शब्द पटह आदि के अनेक शब्दसमूहमें से एक एक शब्दको स्निग्ध, गाम्भीर्य आदि अनेक पर्यायों से विशिष्ट जब श्रोता जानता है तब इस प्रकारका ज्ञान बहुविध का अवग्रह कहलाता है ३ । और जब श्रोता एक या अनेक शब्दोंको एक ही पर्यायसे विशिष्ट जानता है तब वह ज्ञान एकविधका अवग्रह कहलाता है ४ । बहुविध में अपनी पर्यायों में विविधता रखनेवाले अनेक पदार्थों का ज्ञान विवक्षित हुआ है । तब कि अपनी पर्यायों में एक प्रकारता रखनेवाले पदार्थों का ज्ञान एकविधमें विवक्षित हुआ है । शब्दको शीघ्र जानना यह क्षिप्रका अवग्रह है ५ । बहुतकालमें शब्दका ज्ञान होना इसका नाम चिरका अवग्रह है ६ । यह देखा जाता है कि इन्द्रिय

आड़ी अहुतु तात्पर्य अनेक छे न्यारे श्रोता शब्द, पटह, आदि विविध शब्द समूहमाथी अेक अेकना शब्दने अवग्रहज्ञानना विषयभूत करे छे, त्यारे तेनु नाम 'बहु'ने अवग्रह छे क्रमश अे के तेथी बहु शब्दतेनु ज्ञान आ अहुना अवग्रहमा विवक्षित थयु छे १ न्यारे श्रोता अेक अे कौछ शब्दने साक्षणे छे त्यारे ते तेनाथी 'अवग्रह'ते अवग्रहज्ञान बनाय छे २ अे अमथे श्रोता शब्द पटह आदिना अनेक शब्दसमूहमाथी अेक अेक शब्दने स्निग्ध, गाम्भीर्य आदि अनेक पर्यायोथी विशिष्ट लखे छे, त्यारे ते प्रदरनु ज्ञान अहुविधने अवग्रह कडेवाय छे ३ अने न्यारे श्रोता अेक के अनेक शब्दने अेक अे पर्यायोथी विशिष्ट लखे छे त्यारे ते ज्ञान अेकविधने अवग्रह कडेवाय छे अहुविधमा चोतानी पर्यायोमा विविधता राखनार अनेक पदार्थतेनु ज्ञान विवक्षित थयु छे, त्यारे चोतानी पर्यायोमा अेक प्रकारता राखनार पदार्थतेनु ज्ञान अेकविधमा विवक्षित थयु छे ४ शब्दने जल्दी लखुवे ते क्षिप्रने अवग्रह छे ५ लामे काले शब्दतेनु ज्ञान थयु तेनु नाम चिरने अवग्रह छे ६

તમેય શબ્દ યદા સ્વરૂપેણ જાનાતિ, ન ત્વનુમાનેન, તદા અનિશ્રિતાવગ્રહઃ ૭ । યદા તુ અનુમાનેન જાનાતિ, તદા નિશ્રિતાવગ્રહઃ ૮ । યદા-અસદિગ્ધા-નિઃસદેહ શૃ-
હ્ણાતિ, તદા-અસદિગ્ધાવગ્રહઃ ૯ । યદા તુ સદિગ્ધમયશૃહ્ણાતિ, તદા સદિગ્ધાવ-
ગ્રહઃ ૧૦ । સર્વદેવ વહ્વાદિરૂપેણાવગૃહ્ણતો ધ્રુવાવગ્રહઃ ૧૧ । કદાચિદેવ તુ વહ્વાદિ-
રૂપેણાવગૃહ્ણતોઽધ્રુવાવગ્રહ ૧૨ ઇતિ ॥ સૂ૦ ૩૫ ॥

વિષય આદિ મન ગણ સામગ્રી ઘરાવર હોને પર મી કેવલ ક્ષયોપશમ
કી પટુતાકે કારણ ણુ મનુષ્ય ઉસ વિષયકા જ્ઞાન જન્મી કર લેતા હૈ ।
ઔર ક્ષયોપશમકી મન્દતાકે કારણ દૂસરા મનુષ્ય ઢેરસે કરતા હૈ ૫-૬
શબ્દ સ્વરૂપસે શબ્દકો જાનના, અનુમાનસે નહીં, ઇસકા નામ અનિ-
શ્રિતાવગ્રહ હૈ ૭ । અનુમાનસે શબ્દકો જાનના ઇસકા નામ નિશ્રિતાવ-
ગ્રહ હૈ ૮ । સદેહરહિત હો કર શબ્દકો જાનના અસદિગ્ધાવગ્રહ હૈ ૯ ।
સદેહયુક્ત શબ્દકા જ્ઞાન હોના ઇમકા નામ સદિગ્ધાવગ્રહ હૈ ૧૦ । મદા
વહુ આદિ રૂપસે શબ્દકા જાનના ધ્રુવાવગ્રહ ૧૧, ઔર કમી ૨ જાનના
અધ્રુવાવગ્રહ હૈ ૧૨ । અસદિગ્ધાવગ્રહકા તાત્પર્ય ઇસ પ્રકાર હૈ-જૈસે
'યહ શબ્દ મનુષ્યકા હી અન્યકા નહી' । સદિગ્ધાવગ્રહમે ઇસ પ્રકાર
જ્ઞાન હોગા કિ 'યહ શબ્દ મનુષ્યકા હૈ અથવા ઔર કિસીકા હૈ' ।
ધ્રુવકા તાત્પર્ય અવશ્યભાવી ઔર અધ્રુવકા તાત્પર્ય કદાચિત્ ભાવી
હૈ ॥ સૂ૦ ૩૫ ॥

એવુ જોવામા આવે છે કે ઇન્દ્રિય વિષય આદિ સઘળી બાહ્ય સામગ્રી બરાબર
હોવા છતાં પણ ક્ષયોપશમની પટુતાને કારણે એક માણસ તે વિષયનું
જ્ઞાન જલ્દી પ્રાપ્ત કરી લે છે, અને ક્ષયોપશમની મન્દતાને કારણે બીજા
માણસ મોડું પ્રાપ્ત કરે છે (૫-૬) શબ્દસ્વરૂપથી શબ્દને જાણવો, અનુ-
માનથી નહીં, તેનું નામ અનિશ્રિતાવગ્રહ છે ૭ અનુમાનથી શબ્દને જાણવો
તેનું નામ નિશ્રિતાવગ્રહ છે ૮ સદેહરહિત થઈને શબ્દને જાણવો તેનું નામ
અસદિગ્ધાવગ્રહ છે ૯ સદેહયુક્ત શબ્દનું જ્ઞાન થવું તેનું નામ સદિગ્ધાવગ્રહ
છે ૧૦ સદા બહુ આદિ રૂપથી શબ્દને જાણવો તેનું નામ ધ્રુવાવગ્રહ છે ૧૧
અને કોઈ કોઈ વાર જાણવો તેનું નામ અધ્રુવાવગ્રહ છે ૧૨ અસદિગ્ધ
અવગ્રહનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે જેમકે " આ શબ્દ મનુષ્યનો જ છે બીજાનો
નહીં સદિગ્ધાવગ્રહમા આ પ્રકારનું જ્ઞાન થશે કે " આ શબ્દ મનુષ્યનો છે
અથવા બીજા કોઈનો છે " ધ્રુવનું તાત્પર્ય અવશ્ય બનનાર, અને અધ્રુવનું
તાત્પર્ય કદાચ બનનાર છે ॥ સૂ. ૩૫ ॥

संप्रति मतिज्ञानस्य द्रव्यादिभेदचतुःप्रकारतामाह—

मूलम्—तं समासओ चउव्विह पणत्त, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओ ण आभिणिवोहियनाणी आएसेणं सव्वाइ दव्वाइं जाणइ, न पासइ । खेत्तओ णं आभिणिवोहियनाणी आएसणं सव्व खेत्त जाणइ न पासइ । कालओ णं आभिणिवोहियनाणी आएसेणं सव्व काल जाणइ, न पासइ । भावओ णं आभिणिवोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ, न पासइ ॥

उाया—तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः । तत्र द्रव्यतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति, न पश्यति । क्षेत्रतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति, न पश्यति । कालतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं कालं जानाति, न पश्यति । भावतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वान् भावान्, न पश्यति ॥

टीका—‘त समासओ०’ इत्यादि । तत्=मतिज्ञान, समासतः=सक्षेपेण, चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्=प्ररूपितं तीर्थकरादिभिरित्यर्थः । तद् यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च । तत्र द्रव्यतः खलु आभिनिवोधिकज्ञानी=मतिज्ञानी, आदेशेन=आदेश—

अत्र सूत्रकार मतिज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र आदिकी अपेक्षा चार भेद बनलाते है—‘त समासओ चउव्विह०’ इत्यादि ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल ओर भावकी अपेक्षा मतिज्ञान सक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है । इन द्रव्यकी अपेक्षा आभिनिवोधिक ज्ञानी—मतिज्ञानी आत्मा—आदेशसे द्रव्य जातिरूप सामान्य प्रकारसे यर्मास्तिकाया—

इसे सूत्रकार मतिज्ञानना द्रव्य, क्षेत्र, आदिनी अपेक्षाये चार भेद बतावे छे— “त समासओ चउव्विह०” इत्यादि

द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावकी अपेक्षाये मतिज्ञान सक्षेपतमा चार प्रकारनु कहेल छे अये द्रव्यकी अपेक्षाये आभिनिवोधिकज्ञानी—मतिज्ञानी आत्मा—आदेशथी द्रव्य नतिरूप सामान्य प्रकारे यर्मास्तिकाया आदिके नमस्त द्रव्येने

પ્રકારઃ, સ ચ દ્વિધા-સામાન્યરૂપો વિશેષરૂપશ્ચ, તગ્રેહ પ્રાયઃ સામાન્યરૂપો ગ્રાહ્યઃ, તતશ્ચ-આદેશેન-દ્રવ્યજાતિરૂપસામાન્યપ્રકારેણ, સર્વદ્રવ્યાણિ=ધર્માસ્તિકાયાદીનિ જાનાતિ । કિંચિદ્ વિશેષતોડપિ જાનાતિ । યથા-ધર્માસ્તિકાયા, ધર્માસ્તિકાયાસ્ય પ્રદેશમ્, તથા-ધર્માસ્તિકાયો ગત્યુપપ્તમ્ભેતુરમૂર્તો લોકાકાગ પ્રમાણ ઇત્યાદિ । ન પશ્યતિ=સર્વાત્મના, ધર્માસ્તિકાયાદીન ન પશ્યતિ, ઘટાદીંસ્તુ યોગ્યદેશાવસ્થિતાન્ પશ્યત્યપિ । અથવા-આદેશ ઇતિ મૂત્રાદેશઃ, તેન મૂત્રાદેશેન=મૂત્રાનયા સર્વદ્રવ્યાણિ -ધર્માસ્તિકાયાદીનિ જાનાતિ, ન તુ સાક્ષાત્ પશ્યતિ ।

દિક્ સમસ્ત દ્રવ્યોંકો જાનતા હૈ । યદા આદેશકા તાત્પર્ય પ્રકારસે હૈ । સામાન્ય ઔર વિશેષકી અપેક્ષા યદ પ્રકાર દો તરહકા કહા ગયા હૈ । યદા સામાન્યરૂપ પ્રકાર વિવક્ષિત ઠહા હૈ । યદપિ મતિજ્ઞાની આત્મા સમસ્ત ધર્માદિક્ દ્રવ્યોંકો સામાન્યરૂપસે હી જાનતા હૈ, ફિર ખી વહ ઉનકે વિષયમેં કુઠ ૨ વિશેષરૂપસે ખી જાનતા હૈ । જૈસે-ધર્માસ્તિકાયા કા કાર્ય જીવ પુઢલોં કો ગમનમેં સહાયતા પ્રદાન કરના હૈ । યદ દ્રવ્ય અમૂર્તિક્ એવ લોકાકાશવ્યાપી હૈ । ઇસકે અસખ્યાત પ્રદેશ હૈં । ઇસે યદ મતિજ્ઞાની આત્મા ધર્માદિક્ દ્રવ્યોંકો સામાન્યરૂપસે જાનતા હુઆ ખી ઉન્હે કુઠ ૨ વિશેષરૂપસે ખી જાનતા હૈ । જાનતા હૈ, પરન્તુ ઉન્હેં સાક્ષાત્ રૂપસે સર્વાત્મતા દેખતા નહી હૈ । જા, જો ઘટાદિક્ દ્રવ્ય યોગ્ય દેશાવસ્થિત હોતે હૈ ઉન્હેં યદ દેખતા ખી હૈ । અથવા આદેશ શબ્દકા અર્થ સૂત્રાજ્ઞા હૈ । સૂત્ર-આગમ-કી આજ્ઞા કે અનુસાર મતિજ્ઞાની આત્મા ધર્માદિક્ દ્રવ્યોં કો કેવલ જાનતામાત્ર હૈ, ઉન્હેં સાક્ષાત્ દેખતા નહા હૈ ।

જાણે છે અહી આદેશનો ભાવાર્થ પ્રકાર છે સામાન્ય અને વિશેષની અપેક્ષાએ આ પ્રકાર એ જાતનો ખતાવ્યો છે અહી સામાન્યરૂપ પ્રકાર વિવક્ષિત થયો છે, જે કે મતિજ્ઞાની આત્મા સમસ્ત ધર્માદિક્ દ્રવ્યોને સામાન્યરૂપ જ જાણે છે, તો પણ તે તેમના વિષે કઈક કઈક વિશેષરૂપે પણ જાણે છે જેમકે— ધર્માસ્તિકાયાનુ કાર્ય જીવ અને પુઢલોને ગમનમા સહાયતા આપવાનુ છે આ દ્રવ્ય અમૂર્તિક્ અને લોકાકાશવ્યાપી છે તેનામા અસખ્યાત પ્રદેશ છે આ રીતે તે મતિજ્ઞાની આત્મા ધર્માદિક્ દ્રવ્યોને સામાન્ય રૂપે જાણવા છતા પણ તેમને થોડા થોડા વિશેષરૂપે પણ જાણે છે, જાણે છે, પણ તેમને પ્રત્યક્ષરૂપે સર્વાત્મના દેખતો નથી હા, જે ઘટો આદિ દ્રવ્ય યોગ્ય સ્થાનમા રહેલ હોય તેમને તે દેખે પણ છે અથવા 'આદેશ' શબ્દનો અર્થ સૂત્રાજ્ઞા છે સૂત્ર-આગમનની આજ્ઞા પ્રમાણે મતિજ્ઞાની આત્મા ધર્માદિક્ દ્રવ્યોને કેવળ જાણે જ છે, તેમને પ્રત્યક્ષ દેખતો નથી

ननु सत्रादेशतो यद् ज्ञानमुपजायते, तत् खलु श्रुतज्ञानं भवति, तस्य शब्दार्थ-
परिज्ञान रूपत्वात्, अत्र तु मतिज्ञानमुच्यते, तत् कथमिह सूत्रादेशो व्याख्यायते ?
इति चेत्, तदयुक्तम्, सम्यग्बस्तुतत्त्वापरिज्ञानात् । इह हि श्रुतभाषितमतेः
श्रुतोपलब्धेष्वपि अर्थेषु सूत्रानुसारमात्रेण येऽत्रग्रहेद्वावायादयो ज्ञानविशेषाः प्रादुर्भू-
वन्ति, ते मतिज्ञानमेव, न तु श्रुतज्ञान, सूत्रानुसारनिरपेक्षत्वात् ? ।

एव क्षेत्रादिष्वपि वाच्यम् । क्षेत्र लोकालोकात्मकम् २ । कालः सर्वाद्धारूपः,
अतीतानागतवर्तमानरूपो वा ३ । भाषाश्च पञ्चसरयकाः—औदयिकादयः ४ ॥

शका—जब आदेश शब्द का अर्थ सूत्राज्ञा है, और यह कहा जाता
है कि मतिज्ञानी आत्मा आगम की आज्ञा के अनुसार धर्मादिक द्रव्यों
को जानता है, तो सूत्र से जो ज्ञान होता है वह तो श्रुतज्ञान कहलाता
है यहा प्रकरण चल रहा है मतिज्ञान का, फिर वह ज्ञान मतिज्ञान
कैसे कहलावेगा ? ।

उत्तर—यह प्रश्न तत्त्व को नहीं समझकर ही किया गया है, क्यों
कि जिसकी मति, श्रुतज्ञान से परिभावित हो रही है ऐसे पुरुष को श्रुतो-
पलब्ध पदार्थों में भी सूत्रानुसारी जो अवग्रह ईहा, अवायज्ञान होते हैं
वे मतिज्ञान ही हैं. श्रुतज्ञान नहीं, क्यों कि उस समय वे सूत्र के अनु-
सरण की अपेक्षा से निरपेक्ष होते हैं । इसी तरह का सबध क्षेत्र आदिकों
में लगा लेना चाहिये । क्षेत्र की अपेक्षा जब विचार किया जाता है तो
मतिज्ञानी आत्मा सामान्यरूप से अथवा सूत्र की आज्ञा के अनुसार
लोकालोकात्मक समस्त क्षेत्र को जानता मात्र है, उसको साक्षात् देखता

शका—जे ' आदेश ' शब्दने अर्थ सूत्राज्ञा होय, अने जेभ कडेवाभा
आवे छे के मतिज्ञानी आत्मा आगमनी आज्ञा प्रभावे धर्मादिक द्रव्येने लब्ध
छे, तो सूत्रही जे ज्ञान थाय छे ते तो श्रुतज्ञान कडेवाय छे अही मतिज्ञानतु
प्रदर्शय वाली रह्यु छे, तो ते ज्ञान मतिज्ञान केवी गीते कडेवाय ?

उत्तर—आ प्रश्न तत्त्वने समन्था विना करायो छे, कारण के जेभनी मति
श्रुतज्ञानथी परिभावित थई रह्यु छे, जेवा पुरुषेने श्रुतोपलब्ध पदार्थोभा पद्य
सूत्रानुसारी जे अवग्रह, ईहा, अवायज्ञान थाय छे, जे मतिज्ञान न छे, श्रुत-
ज्ञान नही कारण के ते समथे तेजो सूत्रने अनुसरवानी अपेक्षाजे निरपेक्ष
होय छे जे प्रधारने स अ ध क्षेत्र आदिकोभा समस्त लेवे जेधजे, क्षेत्रनी
अपेक्षाजे न्यारे विचार कराय छे त्यारे मतिज्ञानी आत्मा सामान्यरूपे अथवा
सूत्रनी आज्ञा अनुसार लोकालोकात्मक समस्त क्षेत्रने इक्षत लब्ध न छे, तेने
न० ५४

પ્રકારઃ, સ ચ દ્વિધા-સામાન્યરૂપો વિશેષરૂપશ્ચ, તત્રેષા પ્રાયઃ સામાન્યરૂપો ગ્રાહ્યઃ, તતશ્ચ-આદેશેન-દ્રવ્યજાતિરૂપસામાન્યપ્રકારેણ, સર્વદ્રવ્યાણિ=ધર્માસ્તિકાયાદીનિ જાનાતિ । કિંચિદ્ વિશેષતોઽપિ જાનાતિ । યથા-ધર્માસ્તિકાય, ધર્માસ્તિકાયસ્ય પ્રદેશમ્, તથા-ધર્માસ્તિકાયો ગત્યુપપ્ત્ત્મહેતુરમૃતો લોકાકાશ પ્રમાણ ઇત્યાદિ । ન પશ્યતિ=સર્વાત્મના, ધર્માસ્તિકાયાદીન ન પશ્યતિ, ઘટાદોઽસ્તુ યોગ્યદેશાવસ્થિતાન્ પશ્યત્યપિ । અથવા-આદેશ ઇતિ ધરાદેશઃ, તેન મુદ્રાદેશેન=મુદ્રાવ્રયા સર્વદ્રવ્યાણિ-ધર્માસ્તિકાયદીનિ જાનાતિ, ન તુ સાક્ષાત્ પશ્યતિ ।

દિક્ સમસ્ત દ્રવ્યોંકો જાનતા હૈ । યદાં આદેશકા તાત્પર્ય પ્રકારસે હૈ । સામાન્ય ઓર વિશેષકી અપેક્ષા યદ પ્રકાર દો તરફકા કરા ગયા હૈ । યદાં સામાન્યરૂપ પ્રકાર વિવક્ષિત જ્ઞા હૈ । યદ્યપિ મતિજાની આત્મા સમસ્ત ધર્માદિક દ્રવ્યોંકો સામાન્યરૂપસે ઠી જાનતા હૈ, ફિર મી વહ્ન ઉનકે વિષયમેં કુઝ ૨ વિશેષરૂપસે મી જાનતા હૈ । જંસે-ધર્માસ્તિકાય કા કાર્ય જીવ પુદ્ગલોં કો ગમનમેં સહાયતા પ્રદાન કરના હૈ । યદ દ્રવ્ય અમૃતિક એવ લોકાકાશવ્યાપી હૈ । ઇસકે અસરયાત પ્રદેશ હૈ । ઇસે યદ મતિજાની આત્મા ધર્માદિક દ્રવ્યોંકો સામાન્યરૂપસે જાનતા હુઆ મી ઉન્હે કુછ ૨ વિશેષરૂપસે મી જાનતા હૈ । જાનતા હૈ, પરન્તુ ઉન્હે સાક્ષાત્ રૂપસે સર્વાત્મતા દેખતા નહી હૈ । જા, જો ઘટાદિક દ્રવ્ય યોગ્ય દેશાવસ્થિત હોતે હૈ ઉન્હે યદ દેખતા મી હૈ । અથવા આદેશ શબ્દકા અર્થ સૂત્રાજ્ઞા હૈ । સૂત્ર-આગમ-કી આજ્ઞા કે અનુસાર મતિજાની આત્મા ધર્માદિક દ્રવ્યોં કો કેવલ જાનતામાત્ર હૈ, ઉન્હે સાક્ષાત્ દેખતા નહા હૈ ।

જાણે છે અહી આદેશનો ભાવાર્થ પ્રકાર છે સામાન્ય અને વિશેષની અપેક્ષાએ આ પ્રકાર એ બંનેનો બતાવ્યો છે અહી સામાન્યરૂપ પ્રકાર વિવક્ષિત થયો છે, જો કે મતિજાની આત્મા સમસ્ત ધર્માદિક દ્રવ્યોને સામાન્યરૂપ જ જાણે છે, તો પણ તે તેમના વિષે ડહકે કહકે વિશેષરૂપે પણ જાણે છે જેમકે— ધર્માસ્તિકાયનું કાર્ય જીવ અને પુદ્ગલોને ગમનમાં સહાયતા આપવાનું છે આ દ્રવ્ય અમૃતિક અને લોકાકાશવ્યાપી છે તેનામાં અસરયાત પ્રદેશ છે આ રીતે તે મતિજાની આત્મા ધર્માદિક દ્રવ્યોને સામાન્ય રૂપે જાણવા છતાં પણ તેમને થોડા થોડા વિશેષરૂપે પણ જાણે છે, જાણે છે, પણ તેમને પ્રત્યક્ષરૂપે સર્વાત્મના દેખતો નથી હા, જે ઘટો આદિ દ્રવ્ય યોગ્ય સ્થાનમાં રહેલ હોય તેમને તે દેખે પણ છે અથવા ‘ આદેશ ’ શબ્દનો અર્થ સૂત્રાજ્ઞા છે સૂત્ર-આગમની આજ્ઞા પ્રમાણે મતિજાની આત્મા ધર્માદિક દ્રવ્યોને કેવળ જાણે જ છે, તેમને પ્રત્યક્ષ દેખતો નથી

ननु सूत्रादेशतो यद् ज्ञानमुपजायते, तत् खलु श्रुतज्ञान भवति, तस्य शब्दार्थ-
परिज्ञान रूपत्वात्, अत्र तु मतिज्ञानमुच्यते, तत् कथमिह सूत्रादेशो व्याख्यायते ?
इति चेत्, तदयुक्तम्, सम्यग्बस्तुतत्त्वापरिज्ञानात् । इह हि श्रुतभावितमतेः
श्रुतोपलब्धेष्वपि अर्थेषु सूत्रानुसारमात्रेण येष्वग्रहेहायायादयो ज्ञानविशेषाः प्रादुर्भू-
वन्ति, ते मतिज्ञानमेव, न तु श्रुतज्ञान, सूत्रानुसारनिरपेक्षत्वात् १ ।

एव क्षेत्रादिष्वपि वाच्यम् । क्षेत्र लोकोल्लोकात्मकम् २ । कालः सर्वाद्वारूपः,
अतीतानागतवर्तमानरूपो वा ३ । भाषाश्च पञ्चसरस्यकाः—औदयिकादयः ४ ॥

शका—जब आदेश शब्द का अर्थ सूत्राज्ञा है, और यह कहा जाता
है कि मतिज्ञानी आत्मा आगम की आज्ञा के अनुसार धर्मादिक द्रव्यो
को जानता है, तो सूत्र से जो ज्ञान होता है वह तो श्रुतज्ञान कहलाना
है यहा प्रकरण चल रहा है मतिज्ञान का, फिर वह ज्ञान मतिज्ञान
कैसे कहलावेगा ? ।

उत्तर—यह प्रश्न तत्त्व को नहीं समझकर ही किया गया है, क्यों
कि जिसकी मति, श्रुतज्ञान से परिभावित हो रही है ऐसे पुरुष को श्रुतो-
पलब्ध पदार्थों में भी सूत्रानुसारी जो अवग्रह ईहा, अवायजान होते हैं
वे मतिज्ञान ही हैं श्रुतज्ञान नहीं, क्यों कि उस समय वे सूत्र के अनु-
सरण की अपेक्षा से निरपेक्ष होते हैं । इसी तरह का सबध क्षेत्र आदिकों
में लगा लेना चाहिये । क्षेत्र की अपेक्षा जब विचार किया जाता है तो
मतिज्ञानी आत्मा सामान्यरूप से अथवा सूत्र की आज्ञा के अनुसार
लोकोल्लोकात्मक समस्त क्षेत्र को जानता मात्र है, उसको साक्षात् देखता

शका—जे ' आदेश ' शब्दने अर्थ सूत्राज्ञा होय, अने अर्थ कहेवाभा
आवे छे के मतिज्ञानी आत्मा आगमनी आज्ञा प्रमाणे धर्मादिक द्रव्येने लखे
छे, तो सूत्रथी जे ज्ञान थाय छे ते तो श्रुतज्ञान कहेवाय छे अही मतिज्ञानतु
प्रकरणे आली रह्यु छे, तो ते ज्ञान मतिज्ञान केवी गीते कहेवाय ?

उत्तर—आ प्रश्न तत्त्वने समन्या विना कराये छे, जसु के जेमनी मति
श्रुतज्ञानथी परिभावित यर्ह रही छे, अथा पुरुषेने श्रुतोपलब्ध पदार्थेभा पण
सूत्रानुसारी जे अवग्रह, ईहा, अवायजान थाय छे, अ मतिज्ञान न छे, श्रुत-
ज्ञान नही कारणे के ते समये तेओ सूत्रने अनुसरवानी अपेक्षाये निरपेक्ष
होय छे अज प्रकारने सबध क्षेत्र आदिकेभा समल लेवे लोभये, क्षेत्रनी
अपेक्षाये न्यारे विचार कराय छे त्यारे मतिज्ञानी आत्मा सामान्यरूपे अथवा
सूत्रनी आज्ञा अनुसार लोकोल्लोकात्मक समस्त क्षेत्रने इक्षत लखे न छे, तेने

सप्रति मतिज्ञानविषये सग्रहगाथा आह—

मूलम्—

गाहा—उग्गह ईहाऽवाओ, य धारणा एव हुंति चत्तारि ।
 आभिणिवोहियनाण,—स्त भेयवत्थू समासेण ॥ १ ॥
 अत्थाण उग्गहणं,—मि उग्गहो तह वियालणे ईहा ।
 धवसायंमि अवायो, धरणं पुण धारणं विंति ॥ २ ॥
 उग्गह इक्के समयं, ईहावाया मुहुत्तमद्ध तु ।
 कालमसख सखं, च धारणा होइ नायव्वा ॥ ३ ॥
 पुट्ट सुणेइ सइ, रूव पुण पासइ अपुट्ट तु ।
 गध रसं च फास, च वद्धपुट्टं वियागरे ॥ ४ ॥
 भासा समसेढीओ, सइं ज सुणइ मीसिय सुणइ ।
 वीसेढी पुण सइं सुणेइ, नियमा पराघाए ॥ ५ ॥
 ईहा—अपोह—वीमसा, मग्गणा य गवेसणा ।
 सन्ना सईं मईं पन्ना, सब्ब आभिणिवोहिय ॥ ६ ॥

नहीं है । काल की अपेक्षा मतिज्ञानी सामान्यरूप से अथवा आगम की आज्ञा के अनुसार सर्वाद्वारूप निश्चयकाल को या भूत, भविष्यत, वर्तमानरूप व्यवहार काल को जानता मात्र है, उसे साक्षात् देखता नहीं है । इसी तरह भाव की अपेक्षा मतिज्ञानी सामान्यरूप से अथवा आगम की आज्ञा के अनुसार समस्त भावों को—पर्यायों को—जानतामात्र है, उन्हें देखता नहीं है ॥

प्रत्यक्ष देखते नथी ज्ञाननी अपेक्षाये मतिज्ञानी सामान्यरूपे अथवा आगमनी आज्ञा अनुसार सर्वाद्वारूप निश्चय ज्ञानने लूत, भविष्य वर्तमानरूप व्यवहार ज्ञानने मात्र लखे ज छे, तेने प्रत्यक्ष देखते नथी येज प्रभाखे भावनी अपेक्षाये मतिज्ञानी सामान्यरूपे अथवा आगमनी आज्ञानुसार समस्त भावने पर्यायाने मात्र लखे ज छे, तेमने देखते नथी

छाया—अवग्रह ईहाऽवायश्च, धारणा एवं भवन्ति चत्वारि ।
 आभिनिवोधिकज्ञानस्य, भेदवस्तुनि समासेन ॥ १ ॥
 अर्थानामवग्रहणे, अवग्रहस्तथा विचारणे ईहा ।
 व्यवसायेऽवायः, धरण पुनर्धारणा द्युते ॥ २ ॥
 अवग्रह एकं समयम् ईहाऽवायौ मुहूर्तमधं तु ।
 कालमसरय सख्य, च धारणा भवति ज्ञातव्या ॥ ३ ॥
 स्पृष्ट शृणोति शब्द, रूप पुनः पश्यत्यस्पृष्ट तु ।
 गन्ध रसं च स्पर्शं च, बद्धस्पृष्ट व्यागृणीयात् ॥ ४ ॥
 भापासमश्रेणीतः, शब्द य शृणोति मिश्रित शृणोति ।
 विश्रेणि पुनः शब्द, शृणोति नियमात् पाराधाते ॥५॥
 ईहाऽपोहविमर्शाः, मार्गणा च गवेपणा ।
 सज्ञा स्मृतिर्मतिः प्रज्ञा, सर्वमाभिनिवोधिकम् ॥ ६ ॥

से त आभिनिवोहियनाणपरोक्खं । से तं मइनाण ॥सू०३६॥
 तदेतत् आभिनिवोधिकज्ञानपरोक्षम् । तदेतन्मतिज्ञानम् ॥ सू० ३६ ॥

टीका—‘उगग्रह०’ इत्यादि । आभिनिवोधिकज्ञानस्य=मतिज्ञानस्य, समा
 सेन=सक्षेपेण, भेदवस्तूनि=भेदा’ प्रकारास्त एव वस्तूनि-पदार्थाः, एवम्, अने
 नैव क्रमेण चत्वारि=भवन्ति, तद् यथा—अवग्रहः १, ईहा २, अवाय ३, धारणा ४
 च । चकारः समुच्चयार्थकः । नन्वेव क्रमः कथमवग्रहादीना ? मिति चेत्—उच्यते—
 यतोऽनवगृहीतस्येहा न भवति, अनोहितस्य चावायो न भवति, अनवगतस्य च

मतिज्ञान के विषय में सग्रह गाथाए इस प्रकार है—‘उगग्रह ईहा०’
 इत्यादि । गाथाओ का अर्थ—मतिज्ञान के सक्षेप से चार भेद हैं । वे इस
 प्रकार हैं—अवग्रह १, ईहा २, अवाय ३ और धारणा ४ । इस प्रकार इनके
 क्रम का कारण है कि—जयनक पदार्थ का अवग्रह ज्ञान नहीं होता है तबतक
 उसकी ईहा नहीं होती है । ईहा के नहीं होने पर अवाय नहीं होता है

मतिज्ञानना विषयभा आ प्रभाणे सग्रह गाथाओ छे—“उगग्रह ईहा०”
 इत्यादि गाथाओना अर्थ—मतिज्ञानना सक्षेपथी चार लेह छे ओ आ प्रकारे
 छे अवग्रह १, ईहा २, अवाय ३, अने धारणा ४ तेमना आ प्रकारना क्रमनु कारण
 ओ छे के—न्या मुधी पदार्थनु अवग्रहज्ञान थतु नथी त्यामुधी तेनी ईहा थती
 नथी ईहा न थाय तो अवाय थतु नथी तथा अवायज्ञानना अभावे धारणा

ધારણા ન ભવતીતિ ॥ ૧ ॥ અગ્રહાદીના સ્વરૂપમાહ—‘અન્યાણ૦’ ઇત્યાદિ । અર્થાના=શબ્દાદીનામ્, અવગ્રહણે સતિ=મથમદર્શનાન્તરમ્—વ્યજ્ઞનાગ્રહાનન્તર-મિત્યર્થ, અગ્રહો ભવતિ । નતુ યસ્તુનઃ સામાન્યવિશેષાત્મકતયા વિશિષ્ટત્વાત્ કથ પ્રથમ દર્શન તતો જ્ઞાન ? મિત્તિ ચેત્, અન્યતે-જ્ઞાનમ્ય પ્રવલાપરણપચ્ચાત્, દર્શનસ્ય ચાલ્પાપરણપચ્ચાદિતિ । અર્થાનામિત્યસ્યાગ્રંડપિ સમ્બન્ધઃ । તયા અર્થાના વિચારણે=પર્યાલોચને ઈદ્દા ભવતિ । તથા—અર્થાના વ્યગ્રસાયે નિશ્ચયે અગ્રાયો

તથા, અવાયજ્ઞાન કે અભાવ મેં ધારણા નહીં હોતી હૈ । અવગ્રહ આદિ જ્ઞાનો કા સ્વરૂપ ઇસ પ્રકાર હૈ—શબ્દાદિક પદાર્થોં કા જો પ્રથમ દર્શનરૂપ વ્યજ્ઞનાવગ્રહ કે વાદ સામાન્ય મોધ હોતા હૈ ઉસકા નામ અવગ્રહ હૈ ? ।

શકા—જય વસ્તુ સામાન્ય વિશેષ ધર્માત્મક હૈ તો ક્યા કારણ હૈ જો ઉસકા સર્વ પ્રથમ દર્શન હી હોતા હ જ્ઞાન નહીં હોતા ? ઔર ક્યોં દર્શન કે વાદ જ્ઞાન હોતા હૈ ? ।

ઉત્તર—જ્ઞાન કા જો આવરણ હૈ વહ દર્શન કા આવરણ અલ્પ હૈ, ઇસલિયે પ્રબલ આવરણવાલા હોને સે દર્શન કે વાદ હી જ્ઞાન હોતા હૈ । દર્શન કા આવરણ જત્દી હટ જાતા હૈ ઔર જ્ઞાન કા આવરણ દેર સે હટતા હૈ, ઇસલિયે જ્ઞાનકી અપેક્ષા દર્શન પહિલે હોતા હૈ, વાદ મેં જ્ઞાન ।

અર્યોં કી જો વિચારણા હોતી હૈ ઉસકા નામ ઈદ્દા ૨ । ઔર ઉનકા

થતી નથી, અવગ્રહ આદિ જ્ઞાનોનુ સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—શબ્દાદિક પદાર્થોના પ્રથમદર્શનરૂપ વ્યજ્ઞનાવગ્રહની પછી જે સામાન્યમોધ થાય છે, તેનુ નામ અવગ્રહ છે (૧)

શકા—જો વસ્તુ સામાન્ય વિશેષ ધર્માત્મક હોય છે, તો ક્યા કારણે તેનુ સર્વપ્રથમ દર્શન જ થાય છે, પણ જ્ઞાન થતુ નથી ? અને શા કારણે દર્શન પછી જ્ઞાન થાય છે ?

ઉત્તર—જ્ઞાનનુ જે આવરણુ છે તે દર્શનના આવરણુ ઠરતા પ્રબળ છે અને દર્શનનુ આવરણુ અલ્પ છે, તેથી પ્રબળ આવરણુવાળુ હોવાથી દર્શન પછી જ જ્ઞાન થાય છે દર્શનનુ આવરણુ જત્દી ખસી જાય છે, અને જ્ઞાનના આવરણુને ખમતા વાર લાગે છે તે કારણે જ્ઞાન કરતા દર્શન પહેલુ થાય છે, અને પછી જ્ઞાન થાય છે

અર્થોની જે વિચારણા થાય છે તેનુ નામ ઈદ્દા ૨ અને તેમનો જે

भवति । तथा-धरणम्=वासनादिरूपेण यद्धारण, तत्, धारणा द्रुवते=वदन्ति तीर्थकरादय इत्यर्थः ॥ २ ॥

अवग्रहादीना स्थितिमानमाह-‘उग्रह इक्के०’ इत्यादि । अवग्रहः-एक समय भवति । इहावग्रहशब्देन नैश्वयिकोऽर्थावग्रहो गृह्यते । सर्वजघन्यः कालविशेषः समयः । स च प्रवचनोक्तादुत्पलपत्रगतव्यतिभेदोदाहरणात्, जरुत्पटशाटिकापाटनदृष्टान्ताच्च विज्ञेयः । तमेकं समयमवग्रहो वर्तते, न तु ततः परमित्यर्थः । व्यञ्जनावग्रह-व्यावहारिकार्थावग्रहौ च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तं भवत इति द्रष्टव्यम् । ईहाचार्यो तु अर्थं मुहूर्तं भवतः । मुहूर्तो घटिकाद्वयप्रमाणः कालविशेषः । अर्थं मुहूर्तमिति व्यवहारापेक्षया कथितम् । परमार्थतस्तु इह ‘मुहूर्तमद्’ इत्यनेनान्तर्मुहूर्तमेव मन्तव्यम् । तु शब्दः समुच्चयो

जो निश्चय होता है उसका नाम अचाय ३ । तथा उन शब्दादिक पदार्थों का जो वासना आदि रूप से हृदय में धारण होता है उसका नाम धारणा है ४ । ऐसा तीर्थकर गणधरो ने कहा है । इनका कालमान इस प्रकार है-

अवग्रह नैश्वयिक अर्थावग्रह-का काल एक समय मात्र है । कालका समसे जघन्य भेद समय कहा है । उत्पलके शतपत्रोंको एक साथ छेदने में तथा जीर्ण वस्त्रादिकके फाड़नेमें अमरुयात समय हो जाते हैं, इससे जाना जाता है कि समय, कालका सबसे सूक्ष्म भेद है । नैश्वयिक अर्थावग्रह एक समय तक ही रहता है, इसके बाद नहीं । व्यञ्जनावग्रह तथा व्यावहारिक अर्थावग्रह, इनका काल प्रत्येकका अन्तर्मुहूर्त है । ईहा तथा अचाय, इनका काल आधा मुहूर्तका है । दो घड़ीका एक मुहूर्त होता है । यहा जो आधा मुहूर्तकाल बतलाया गया है वह व्यवहारकी अपेक्षा कहा

निश्चय वाय छे तेनु नाम अचाय ३ तथा ऐ शब्दादिक पदार्थोनु ने वासना आदि रूपे हृदयमा धारणा थाय ४ तेनु नाम धारणा छे ४ ऐवु तीर्थ कर गणधरोऐ कहु छे तेमनु जणमान आ प्रमाणे छे-

अवग्रह-नैश्वयिक अर्थावग्रह-नो जण मात्र ऐउ समयनो छे काणनो सौथी जघन्य लेद समय उडेवाय छे उत्पलना सो पानने ऐक साथे छेदवामा तथा एषु वस्त्रादिकने फाडवामा अस प्रयात समय लागे छे, तेथी नाली शकाय छे उ समय, काणनो सौथी सूक्ष्म लेद छे नैश्वयिक अर्थावग्रह ऐउ समय सुधी न रहे छे, त्यारणाद रहतेो नथी व्यञ्जनावग्रह तथा व्यावहारिक अर्थावग्रह ऐ प्रत्येकनो जण अन्तर्मुहूर्त छे, उहा तथा अचायनो जण अर्धा मुहूर्तनो छे ऐ घडीनु ऐउ मुहूर्त थाय छे, अहा ने अर्धा मुहूर्ताजण अताव्ये ।

ધારણા ન ભરતીતિ ॥ ૧ ॥ અગ્રહાદીના સ્વરૂપમાહ—‘અત્યાણં’ ઇત્યાદિ । અર્થાના—શબ્દાદીનામ્, અગ્રહણે સતિ=પ્રથમદર્શનાન્તરમ્—વ્યજનાગ્રહાનન્તર-મિત્યર્થઃ, અગ્રહો ભરતિ । નતુ ઋત્નનઃ સામાન્યવિશેષાત્મકતયા વિશિષ્ટત્વાત્ કથમ્ પ્રથમ દર્શન તત્તો જ્ઞાન ? મિતિ ચેત્, ઉચ્યતે—જ્ઞાનમ્ય પ્રવલાપરણપચ્ચાત્, દર્શનસ્ય ચાલ્પાપરણપચ્ચાદિતિ । અર્થાનામિત્યસ્પાગ્રંડર્ષિ સમ્બન્ધઃ । તયા અર્થાના વિચારણે=પર્યાલોચને ઈદા ભરતિ । તયા—અર્થાના વ્યગ્રસાયે નિશ્ચયે અવાયો

તયા, અવાયજ્ઞાન કે અભાવ મે ધારણા નહીં હોતી હૈ । અગ્રહ આદિ જ્ઞાનો કા સ્વરૂપ ઇસ પ્રકાર હૈ—શબ્દાદિક પદાર્થો કા જો પ્રથમ દર્શનરૂપ વ્યજનાવગ્રહ કે વાદ સામાન્ય વોધ હોતા હૈ ડસકા નામ અવગ્રહ હૈ ? ।

શકા—જન વસ્તુ મામાન્ય વિશેષ ધર્માત્મક હૈ તો ક્યા કારણ હૈ જો ડસકા સર્વ પ્રથમ દર્શન હી હોતા હે જ્ઞાન નહીં હોતા ? જૌર ક્યો દર્શન કે વાદ જ્ઞાન હોતા હૈ ? ।

ઉત્તર—જ્ઞાન કા જો આવરણ હૈ વહ દર્શન કા આવરણ અલ્પ હૈ, ઇસલિયે પ્રવલ આવરણવાલા હોને સે દર્શન કે વાદ હી જ્ઞાન હોતા હૈ । દર્શન કા આવરણ જત્દી વટ જાતા હૈ ઔર જ્ઞાન કા આવરણ દેર સે વટતા હૈ, ઇસલિયે જ્ઞાનકી અપેક્ષા દર્શન પહિલે હોતા હૈ, વાદ મેં જ્ઞાન ।

અર્થો કી જો વિચારણા હોતી હૈ ડસકા નામ ઈદા ૨ । ઔર ડનકા

થતી નથી, અવગ્રહ આદિ જ્ઞાનોત્તુ સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે—શબ્દાદિક પદાર્થોના પ્રથમદર્શનરૂપ વ્યજનાવગ્રહની પછી જે સામાન્યબોધ થાય છે, તેનું નામ અવગ્રહ છે (૧)

શકા—જો વસ્તુ સામાન્ય વિશેષ ધર્માત્મક હોય છે, તો ક્યા કારણે તેનું સર્વપ્રથમ દર્શન જ થાય છે, પણ જ્ઞાન થતું નથી ? અને શા કારણે દર્શન પછી જ્ઞાન થાય છે ?

ઉત્તર—જ્ઞાનતું જે આવરણ છે તે દર્શનના આવરણ કરતા પ્રબળ છે અને દર્શનતું આવરણ અલ્પ છે, તેથી પ્રબળ આવરણવાળું હોવાથી દર્શન પછી જ જ્ઞાન થાય છે દર્શનતું આવરણ જત્દી ખસી જાય છે, અને જ્ઞાનના આવરણને ખસતા વાર લાગે છે તે કારણે જ્ઞાન કરતા દર્શન પહેલું થાય છે, અને પછી જ્ઞાન થાય છે

અર્થોની જે વિચારણા થાય છે તેનું નામ ઈદા ૨ અને તેમનો જે

तदेवमवग्रहादीनां स्वरूप कालप्रमाण चाभिधाय श्रोत्रेन्द्रियादीना प्राप्ताप्राप्त-
विषयतामाह—‘पुट्टं सुणेइ०’ इत्यादि । स्पृष्ट=श्रोत्रेन्द्रियेण स्पृष्टमात्र शब्द शृणोति ।
अयमर्थः—यथा शरीरोपरि धूलिकणसपातस्तथा श्रोत्रेन्द्रियेण सह शब्दस्पर्शमात्रे सति
शब्द जानातीति ।

ननु कथं स्पृष्टमात्र शब्द शृणोती ? ति चेत् , उच्यते—इह शेषेन्द्रियगणापे-
क्षया श्रोत्रेन्द्रिय प्रायः पटुतरम् , तथा गन्धादिद्रव्यापेक्षया शब्दद्रव्याणि सूक्ष्माणि
की अपेक्षा सरयातवर्षं प्रमित कालवाली मानी जाती है , और जो
पल्योपम आदि असख्यातवर्ष की आयुवाले जीव होते हैं उनकी अपेक्षा
असख्यातवर्ष प्रमित काल वाली मानी जाती है । इम अपेक्षा इसका
काल सरयात तथा असरयात वर्ष का बतलाया है ॥ ३ ॥

इस प्रकार अवग्रह आदि का स्वरूप एव काल प्रमाण बतलाकर
अब श्रोत्र इन्द्रिय आदिकों में प्राप्यकारिता तथा अप्राप्यकारिता प्रकट
करते हैं—“पुट्ट सुणेइ सह०” इत्यादि । जो श्रोत्र इन्द्रिय है वह स्पृष्टमात्र
शब्द को सुनती है , इसलिये वह प्राप्यकारी है । जिस प्रकार शरीर के
ऊपर धूलिकणों का सपात होता है उसी तरह श्रोत्र इन्द्रिय के साथ
शब्द का स्पर्शमात्र होते ही वह उसे जान लेती है ।

शका—स्पृष्टमात्र होने पर श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को कैसे सुन लेती है ?

उत्तर—शेष इन्द्रियों की अपेक्षा श्रोत्र इन्द्रिय प्रायः पटुतर होती है,
तथा गंध आदि द्रव्य की अपेक्षा शब्द, द्रव्य, सूक्ष्म, प्रभूत, और भावुक

वर्षना आयुष्यवाणा प्राणीभ्योनी अपेक्षाञ्चे सभ्यात वर्षं प्रमित काणवाणी
मनाथ छे , अने ने पल्योपम आदि असभ्यात वर्षना आयुष्यवाणा एव डोय
छे तेमनी अपेक्षाञ्चे असभ्यात वर्षं प्रमित काणवाणी मनाथ छे ते अपेक्षाञ्चे
तेनो काण असभ्यात तथा सभ्यात वर्षनो भताव्ये छे ॥ ३ ॥

आ रीते अवग्रह आदितु स्वरूप अने काणप्रमाण भतावीने हुवे
श्रोत्रेन्द्रिय आदिमा प्राप्यकारिता तथा अप्राप्यकारिता प्रकट करे छे—
“पुट्ट सुणेइ सह०” इत्यादि ने श्रोत्र इन्द्रिय छे , ते मात्र स्पृष्ट शब्दने न
सालणे छे ते नारणे ते प्राप्यकारी छे नेम शरीर ऊपर धूलिकणानो सपात
थाथ छे जेन प्रमाणे श्रोत्रेन्द्रियनी साथे शब्दने स्पर्श मात्र थता न ते तेने
नारणे छे

शका—स्पर्शमात्र थता न श्रोत्रेन्द्रिय शब्दने केवी रीते सालणे छे ?

उत्तर—आधीनी इन्द्रियो करता श्रोत्र इन्द्रिय सामान्य रीते वधारे यथण
डोय छे , तथा गंध आदि द्रव्यनी अपेक्षाञ्चे शब्दद्रव्य, सूक्ष्म, प्रभूत अने

धारणा-असख्य संग्य च काल ज्ञातव्या भवति। असंग्यं-न विद्यते मर्या-पक्षः-
मास-ऋतु-अयन-सवत्सरादिको यस्यासात्रसरयः-पल्योपमाद्रिलक्षणस्त कालमसं-
ख्यम्, तथा-सरयायते, इति सरयः-पक्षमासत्वयनादिप्रमित इत्यर्थः। त सरय,
च शब्दादन्तर्मुहूर्तं च काल धारणा भवतीत्यर्थः। इदमुक्तं भवति-अविच्युति-
वासनास्मृतिभेदाद् धारणा त्रिविधा। तत्राविच्युतिरूपा स्मृतिरूपा च प्रत्येकमन्त-
र्मुहूर्तं भवति। या तु तदर्थज्ञानावरणक्षयोपशमरूपा स्मृतिमीजरूपा वासनाख्या
धारणा सा सख्येयवर्षायुषा प्राणिना सरयेयकालम्, असरयेयवर्षायुषा तु पल्यो-
पमादिजीविनामसख्येय काल भवतीति ॥ ३ ॥

गया जानना चाहिये। जैसे तो वास्तविक रूपमें इनका काल "सुहृत्तमद्"
इस कथनसे अन्तर्मुहूर्तका ही मानना चाहिये। धारणा का समय
सरयात असख्यात-कालरूप कहा गया है। पक्ष, मास, ऋतु, अयन,
सवत्सर आदिरूप सरया जिसमें नहीं होती है ऐसा जो पल्योपम आदि
रूप काल है उसका नाम असख्यात काल है, तथा जिसमें पक्ष मास
ऋतु आदिका व्यवहार होता है वह सरयातकाल है। तथा "च" शब्द
से यह बात भी जानी जाती है कि इसका काल अन्तर्मुहूर्त भी है। इस
का तात्पर्य यह है कि शास्त्रों में धारणा के (१) अविच्युति, (२) वासना
तथा (३) स्मृति, इस तरह तीन भेद बतलाये हैं। इनमें अविच्युति तथा
स्मृतिरूप धारण का काल प्रत्येक का अन्तर्मुहूर्त का है। तथा वासनारूप
जो धारणा है, कि जिससे स्मृति होती है एव जो तत्तत् अर्थ के ज्ञाना-
वरण के क्षयोपशमरूप होती है, वह सख्यात वर्ष की आयुवाले प्राणियों

छे ते व्यवहारनी अपेक्षाये कडेले छे अमे समजवानु छे आम ते वास्तविक
इये तेना काण "सुहृत्तमद्" आ कथनथी अन्तर्मुहूर्तं न मानवे। जेध अये
धारणातेना काण असख्यात अने सख्यातकाणइय कडेवाय छे पक्ष, मास, ऋतु,
अयन, सवत्सर आदिइय सख्या जेभा छेती नथी जेवे जे पल्योपम आदि
इय काण छे तेनु नाम असख्यात काण छे, तथा जेभा पक्ष, मास, ऋतु
आदिने व्यवहार थाय छे ते सख्यात काण छे तथा "च" शब्दथी आ वात
पक्ष जखुवा भणे छे के तेना काण अन्तर्मुहूर्तं पक्ष छे तेनु तात्पर्यं जे छे के
शास्त्रोभा धारणा, (१) अविच्युति, (२) वासना, तथा (३) स्मृति जे रीते
त्रयु लेह जताव्या छे तेओभा अविच्युति तथा स्मृतिइय धारणा जे प्रत्येकने
काण अन्तर्मुहूर्तने छे अने वासनाइय जे धारणा छे के जेथी स्मृति थाय
छे, अने जे ते ते अर्थना ज्ञानावरणना क्षयोपशमइय छे, ते सख्यात

गघ रस च स्पर्श च षडस्पृष्ट-वद्धम्=आश्लिष्टम् आत्मप्रदेशैरात्मीकृतं-दुग्धे जल-
मिवेत्यर्थः, स्पृष्ट=स्पृष्टमात्रम्, शरीरे रजःकणवत् । आर्पत्वात्-‘ वद्धपुद्ग ’ इति ।
अर्थस्तु स्पृष्ट वद्ध च स्पृष्टवद्धमिति बोध्यम्, पूर्वं स्पृष्ट पश्चाद् वद्ध स्पृष्टवद्धम्,
स्पर्शमात्राऽनंतरमात्मप्रदेशैरागृहीतमित्यर्थः । घ्राणादिभिरिन्द्रियैर्जानातीति व्याघ्र-
णाति=तीर्थकरः कथयति ।

इह शब्दमुत्कर्षतो द्वादशयोजनेभ्य आगत जीवः शृणोति । गन्धरसस्पर्श
द्रव्याणि तु प्रत्येकमुत्कर्षतो नवभ्यो योजनेभ्य आगतानि घ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियै-
र्जीवो गृह्णाति । जघन्यतस्त्वरूप विहाय शब्दादिद्रव्याणि अद्गुलासरज्येयभागादा-
गतानि गृह्णाति । चक्षुषा तु जघन्यतो योग्यदेशस्थयोग्यत्रिपयमद्गुलसख्येय-
भागवर्ति द्रव्यं गृह्णाति । उत्कर्षतस्तु आत्माद्गुलेन सातिरेकयोजनलक्षणवर्ति
इन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय तथा स्पर्शाइन्द्रिय, ये आश्लिष्ट एव स्पृष्ट ह्ये अपने
विषय को-गघ रस एव स्पर्श को जानती है । “ वद्ध पुद्ग ” यह आर्पवाक्य
है अतः यहा ‘ पुद्ग वद्ध ’ ऐसा समझना चाहिये, अर्थात् इन इन्द्रियों
का विषय पहिले इन इन्द्रियोंके साथ स्पृष्ट होता है बादमें वद्ध होता है ।
ऐसा तीर्थकर गणधरोने कहा है ।

बारह योजनसे आये हुए शब्दको कर्ण इन्द्रियके द्वारा जीव उत्कृष्ट
की अपेक्षा विषय कर लिया करता है । इसी तरह उत्कृष्टकी अपेक्षा
नौ योजन तक के गघ, रस, और स्पर्श द्रव्यों को घ्राण आदि इन्द्रियों
के द्वारा जीव विषय कर लिया करता है । जघन्यकी अपेक्षा रूपको
छोड़ कर अगुलके असरयातवें भागसे आये हुए शब्दादिक द्रव्योंको

अर्थमा आये छे घ्राणैन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय तथा स्पर्शाइन्द्रिय, ये आश्लिष्ट
अने स्पृष्ट थयेव पीताना विषयने-गघ, रस अने स्पर्शने लभे छे “ वद्ध
पुद्ग ” ये आर्पवाक्य छे तेथी अडी “ पुद्ग वद्ध ” येभ नमज्जातु छे
अटवे डे ये इन्द्रियोना विषय पडेला ये इन्द्रियोनी साथे स्पृष्ट थाय छे, पछी
वद्ध थाय छे जेवु तीर्थ कर गणधरोने लहे छे

बार योजनथी आवेल शब्दने एव कर्णैन्द्रिय द्वारा उत्कृष्टकी अपेक्षाये
विषय करी ले छे जेन प्रमाणे उत्कृष्टकी अपेक्षाये नव, नव, योजन सुधीना
गघ, रस अने स्पर्श द्रव्योने घ्राणैन्द्रिय आदि इन्द्रियो द्वारा एव विषय करी
ले छे जघन्यनी अपेक्षाये इपने छोडीने अशुलना अस आत्मा बागथी
न० ५५

પ્રભૂતાનિ ભાગુકાનિ ચ, અર્થાત્-શ્રોત્રેન્દ્રિયસસંગેણ તથાવિધપરિણમનશીલાનિ, શબ્દપુદ્ગલા એવ સર્વતસ્તદિન્દ્રિય વ્યાપ્નુવન્તિ । તતઃ સ્પૃષ્ટમાત્રાણ્યપિ શબ્દદ્રવ્યાણિ શ્રોત્રેન્દ્રિયેણ ગ્રહીતુ શક્યન્તે ।

રૂપ પુનરસ્પૃષ્ટમેવ=અસપદ્મમેવ પશ્યતિ=ગૃહ્ણતિ । પુનઃ શબ્દાદસ્પૃષ્ટમપિ યોગ્યદેશાવસ્થિતમેવ ગૃહ્ણતિ, નત્વયોગ્યદેશાવસ્થિતમધોલોઠાદિમ્થિતમ્, ચક્ષુષોઽપ્રાપ્ય કારિત્વાત્, પરિમિતદેશસ્થિતિપયગ્રાહિત્વાચ । ‘તુ’ શબ્દ ણ્યકારાર્થે વર્તેતે । તથા હોતે હૈં, અર્થાત્-શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય કે માથે શબ્દ દ્રવ્ય કા સસર્ગ હોતે હી ઉસમેં તથાવિધ પરિણમન્ શીલતા આ જાતી હૈ । શબ્દ પુદ્ગલ હી સર્વ તરફ સે ઉસ ઇન્દ્રિય કો વ્યાપ કર લેતે હૈં, ઇસલિયે સ્પૃષ્ટમાત્ર શબ્દ દ્રવ્ય શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય દ્વારા ગ્રહણ ક્રિયે જાતે હૈં, અતઃ વહ પ્રાપ્યકારી થત લાઈ ગઈ હૈ । યહી વાત ગાવાકારને “પુદ્ગ સુણેડસહ” ‘સ્પૃષ્ટ શ્રુણોતિ શબ્દમ્’ ઇસ ગાથાંશ દ્વારા સ્પષ્ટ કી હૈ । ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પૃષ્ટરૂપ કો દેખતી હૈ, અતઃ વહ અપ્રાપ્યકારી કહી ગઈ હૈ । ગાથા મેં પુનઃ શબ્દ ઇસ વાત કી સૂચના કે નિમિત્ત હૈ કિ યદ્યપિ ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પૃષ્ટરૂપ કો હી જાનતી હૈ તો ખી વહ યોગ્ય દેશ મેં અવસ્થિત હુએ હી ઉસ રૂપ કો ગ્રહણ કરતી હૈ, અધોલોક આદિ અયોગ્ય દેશ મેં સ્થિતરૂપ કો નહી, ક્યો કિ યહ અપ્રાપ્યકારી માની ગઈ હૈ । તથા ઇસ ઇન્દ્રિય કા સ્વભાવ હી કુઝ ણેસા હૈ કિ જિસકી વજહ સે યહ પરિમિત દેશ મેં રહે હુએ વિષય કો ગ્રહણ કરતી હૈ । ગાવા મેં ‘તુ’ શબ્દ ‘એવ’ કે અર્થ મેં આયા હૈ । ઘ્રાણ-

ભાવુક હોય છે, એટલે કે-શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયની માથે શબ્દદ્રવ્યનો સસર્ગ થતા જ તેમા તે પ્રકારની પરિણમન શીલતા આવી જાય છે શબ્દ પુદ્ગલ જ બધી તરફથી તે ઇન્દ્રિયને આવરી લે છે, તે કારણે શબ્દદ્રવ્યનો સ્પર્શમાત્ર શ્રોત્રેન્દ્રિય વડે ગ્રહણ થાય છે, તેથી તેને પ્રાપ્યકારી ઠરાવી છે એજ વાત સ્વ કારે “પુદ્ગ સુણે સહ”-સ્પૃષ્ટ શ્રુણોતિ શબ્દમ્” એ ગાથાશ દ્વારા સ્પષ્ટ કરેલ છે ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પર્શ્ય રૂપને દેખે છે, તેથી તેને અપ્રાપ્યકારી કહેલ છે ગાથામા પુન શબ્દ એ બાબતની સૂચનાને માટે છે કે ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પર્શ્ય રૂપને જ બાણે તો પણ તે યોગ્ય સ્થાનમા રહેલ તે રૂપને જ ગ્રહણ કરે છે, અધોલોક આદિ અયોગ્ય સ્થાનમા રહેલ રૂપને નહી, કારણ કે તે અપ્રાપ્યકારી ગણેલ છે તથા આ ઇન્દ્રિયનો સ્વભાવ જ કઈક એવો છે કે જેને કાણુ તે મર્યાદિત સ્થાનમા રહેલ વિષયને ગ્રહણ કરે છે ગાથામા “તુ” “એવ”ના

उच्यते-न केवलानि शब्दप्रयोगनिःसृतानि शब्दद्रव्याणि शृणोति। यतः केवला निवासकानि, तथा-शब्दयोग्यानि च द्रव्याणि सकललोकव्याप्तानि, अतस्तद्भावितानि विना केवलानामसत्त्वात् केवलानि न श्रोतुं शक्यन्ते। किंतु तद्भावितानि मिश्राणि वा शृणोति। अमुमर्थं प्रतिबोधयितुमाह-‘भासा’ इति। भाष्यते इति भाषा= वाक्। शब्दरूपतया निरुक्ता पुद्गलद्रव्यसहनिरित्यर्थः। सा च द्विविधा-पर्णात्मिका

शका-मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा स्पष्ट शब्दको सुनता है ऐसा जो कहना है उस विषयमे यह प्रश्न है कि मनुष्य कर्ण इन्द्रियद्वारा शब्द प्रयोग करते समय निकले हुए एक मात्र शब्द द्रव्योंको सुनता है? अथवा इनसे जुदे तद्भावित शब्दों को? अथवा मिश्र शब्दोंको सुनता है?

उत्तर-मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा केवल शब्द प्रयोग निरुक्त शब्द द्रव्यों को नहीं सुनता है, क्यों कि वे उस समय वासक (सस्कारक) होते हैं। तथा शब्द योग्य द्रव्य सकल लोकमे व्याप्त रहते हैं, इस लिये तद्भावित शब्दों के विना केवल शब्द द्रव्योंका कर्ण इन्द्रियद्वारा सुनना असंभव है, अतः तद्भावित शब्दोंका अथवा मिश्र शब्दोंका ही सुनना संभव है, इस लिये श्रोता ऐसे शब्दोंको ही सुनता है, केवल शब्द द्रव्योंको नहीं ॥ ४ ॥ यही बात सूत्रकार अगली गाथासे स्पष्ट करते हैं-‘भासा समसेदीओ०’ इत्यादि। शब्द रूपसे परिणत हो कर निकले हुए पुद्गल द्रव्य समूहको भाषा कहते हैं। यह भाषा वर्णस्वरूप

शका-मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा स्पष्ट शब्दने मालगे छे अथवा के कडेले छे, ते विषयमा आ प्रश्न छे के-मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा शब्द प्रयोग करती वपते निरुक्ते अथवा एक मात्र शब्द द्रव्येने मालगे छे? अथवा तेमनाथी गुहा तद्भावित शब्दने? अथवा मिश्र शब्दने मालगे छे?

उत्तर-मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा इरुक्त शब्द प्रयोग निरुक्त शब्द द्रव्येने मालगतो नहीं, कारणे के तेओ ते समये वासक (सस्कारक) होय छे तथा शब्दयोग्य द्रव्य सकल लोकमा व्याप्त रह्या करे छे, तेथी तद्भावित शब्दो विना इरुक्त शब्द द्रव्येनु कर्ण इन्द्रिय द्वारा मालगालु ते अमलवित छे, तेथी तद्भावित शब्दोनु अथवा मिश्र शब्दोनु न मालगालु मलविन छे, ते कारणे श्रोता अथवा शब्दने न मालगे छे, इरुक्त शब्द द्रव्येने न नडी ॥४॥ अथवा वात सूत्रकार डवे पतीनी गाथामा स्पष्ट करे छे-

“भासा समसेदीओ०” इत्यादि

शब्दरूपे परिणत यर्धने निरुक्ते पुद्गल द्रव्यसमूहने भाषा कडे छे

द्रव्यम् । एतदपि भास्वरद्रव्यमधिकृत्योच्यते । भास्वरद्रव्यमेकविंशतियोजनलक्षे-
भ्योऽपि परतः पश्यन्ति । यथा पुष्करद्वीपार्धे मानुषोत्तरपर्वतप्रत्यासन्नवर्तीनो
मनुष्या कर्कसक्रान्तीं सूर्यचिम्बं पश्यन्तीति विज्ञेयम् । तथाचोक्तम्—

लक्खेहि एगवीसा,—ए साइरेगेहि पुक्खरवरद्धमि ।

उदये पेच्छति नरा, सूर उक्कोसए दिवसे ॥ १ ॥

छाया—लक्षैरेकविंशत्या, सातिरेकैः पुष्करार्धे ।

उदये प्रेक्षन्ते नराः, सूर्यम् उत्कर्षके दिवसे ॥१॥ इति ॥४॥

ननु 'स्पृष्ट शृणोति शब्द'—मित्युक्तम्, तत्र किं शब्दप्रयोगनिस्तान्येव केव-
लानि शब्द द्रव्याणि शृणोति, उतान्यान्येव तद्भाषितानि, आहोषित मिश्राणीति? ।

जीव जान लेता है । जघन्यकी अपेक्षा चक्षुके द्वारा जीव अगुलके सरया-
तवें भागवर्ति, योग्य देशस्थित गेसे योग्य विषयरूप द्रव्यको जान लेता
है । तथा उत्कृष्टकी अपेक्षा आत्माद्गुलके मापसे कुछ अधिक एक लाख
योजनवर्ती द्रव्यको जान लेता है । यह कथन भास्वर-चमकता हुआ द्रव्यकी
अपेक्षा कहा गया जानना चाहिये । जीव चक्षु इन्द्रियके द्वारा इक्कीस
लाख योजनसे भी दूर रहे हुए भास्वर द्रव्यको देख लेता है, जैसे-कर्क
सक्रान्तिमे पुष्कर द्वीपार्धमें रहे हुए मानुषोत्तर पर्वतके प्रत्यासन्नवर्ती-
जीव सूर्य के चिम्बको देख लिया करते हैं । कहा भी है—

“ लक्खेहि एगवीसाए, साइरेगेहि पुक्खरवरद्धमि ।

उदये पेच्छति नरा, सूर उक्कोसए दिवसे ” ॥ १ ॥

आवेक शब्दादिक द्रव्येने एव ज्ञेयते वे छे जघन्यनी अपेक्षाये चक्षु द्वारा
एव अगुलना असप्यातमा भागवर्ति, योग्य स्थानमा रहेल जेवा योग्य
विषयरूप द्रव्येने ज्ञेयते वे छे तथा उत्कृष्टनी अपेक्षाये आत्माद्गुलना मापथी
कथन वधारे जेक लाख योजनवर्ती द्रव्येने ज्ञेयते वे छे आ कथन भास्वर
द्रव्यनी अपेक्षाये कहेल छे, जेभ समजवातु छे एव चक्षु इन्द्रिय द्वारा जेकवीस
लाख योजनथी पणु दूर रहेल भास्वर द्रव्य जेवे छे जेभके कर्क सक्रान्तिमा
पुष्करद्वीपार्धमा रहेल मानुषोत्तर पर्वतना प्रत्यासन्नवर्ती एव सूर्यना चिम्बने
जेवे छे कहु पणु छे—

“ लक्खे हि एगवीसाए साइ रेगे हि पुक्खर वरद्धमि ।

उदये पेच्छति नरा, सूर उक्कोसए दिवसे ” ॥१॥

उच्यते—न केवलानि शब्दप्रयोगनिःसृतानि शब्दद्रव्याणि शृणोति यतः केवलानि वासकानि, तथा—शब्दयोग्यानि च द्रव्याणि सकललोक्याप्तानि, अतस्तद्भावितानि विना केवलानामसत्त्वात् केवलानि न श्रोतुं शक्यन्ते । किंतु तद्भावितानि मिश्राणि वा शृणोति । अमुमर्थं प्रतिरोधयितुमाह—‘ भासा ’ इति । भाष्यते इति भाषा= वाक् । शब्दरूपतया निःसृता पुद्गलद्रव्यसहनिरित्यर्थः । सा च द्विविधा—गर्णात्मिका

शका—मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा स्पष्ट शब्दको सुनता है ऐसा जो कहना है उस विषयमे यह प्रश्न है कि मनुष्य कर्ण इन्द्रियद्वारा शब्द प्रयोग करते समय निकले हुए एक मात्र शब्द द्रव्योंको सुनता है ? अथवा इनसे जुदे तद्भावित शब्दों को ? अथवा मिश्र शब्दोंको सुनता है ?

उत्तर—मनुष्य कर्ण इन्द्रिय द्वारा केवल शब्द प्रयोग निःसृत शब्द द्रव्यों को नहीं सुनता है, क्योंकि वे उस समय वासरु (सस्कारक) होते हैं । तथा शब्द योग्य द्रव्य सकल लोकमे व्याप्त रहते हैं, इस लिये तद्भावित शब्दों के विना केवल शब्द द्रव्योका कर्ण इन्द्रियद्वारा सुनना असंभव है, अतः तद्भावित शब्दोंका अथवा मिश्र शब्दोंका ही सुनना संभव है, इस लिये श्रोता ऐसे शब्दोंको ही सुनता है, केवल शब्द द्रव्योंको नहीं ॥ ४ ॥ यही बात सूत्रकार अगली गाथासे स्पष्ट करते हैं—‘ भासा समसेढीओ० ’ इत्यादि । शब्द रूपसे परिणत हो कर निकले हुए पुद्गल द्रव्य समूहको भाषा कहते हैं । यह भाषा वर्णस्वरूप

श ३—मनुष्य उर्ध्वेन्द्रिय द्वारा स्पष्ट शब्दने सांलणे छे अथवा के कडेले छे, ते विषयमा आ प्रश्न छे उ—मनुष्य उर्ध्वेन्द्रिय द्वारा शब्द प्रयोग करती वषते निकलेल अथवा मात्र शब्द द्रव्योने सांलणे छे ? अथवा तेमनाथी बुद्धा तद्भावित शब्दोने ? अथवा मिश्र शब्दोने सांलणे छे ?

उत्तर—मनुष्य उर्ध्वेन्द्रिय द्वारा कृत शब्द प्रयोग निःसृत शब्द द्रव्योने सांलणते नथी, कारणे उ तेअो ते समये वासरु (सस्कारक) होय छे तथा शब्दयोग्य द्रव्य सकल लोकमा व्याप्त रह्या उरे छे, तेथी तद्भावित शब्दो विना कृत शब्द द्रव्योनु उर्ध्वेन्द्रिय द्वारा सांलणावु ते असंभवित छे, तेथी तद्भावित शब्दोनु अथवा मिश्र शब्दोनु वा सांलणावु संभवित छे, तेकारणे श्रोता अथवा शब्दोने वा सांलणे छे, कृत शब्द द्रव्योने वा नही ॥४॥ अथवा वात सूत्रकार उये पंजीनी गाथामा स्पष्ट उरे छे—

“ भासा समसेढीओ० ” इत्यादि

शब्दरूपे परिणत भवेन निकलेल पुद्गल द्रव्यसमूहने भाषा कडे छे

અર્ણાત્મિકા ચ । તત્ર વર્ણાત્મિકા લોકવ્યવહારરૂપા, અર્ણાત્મિકા ચ ભેરીમાઝ્ઙ્ઙા રાદિરૂપા । તસ્યા' સમાઃ શ્રેણયઃ-ભાપાસમશ્રેણયઃ । इह श्रेणयः क्षेत्रप्रदेशे पश्य उच्यन्ते । ताश्च सर्वस्यैव भापमाणस्य पटसु दिक्षु विद्यन्ते । यासु श्रेणिषु निःसृता सती भाषा प्रथमसमय एव लोकान्तमनुधावति, ता इतः=गतः-प्राप्तः-भाषासम-श्रेणीतः=भाषासमश्रेणिव्यवस्थित इत्यर्थः, यं शब्द=पुरुपादिसम्बन्धिनं भेर्यादि-सम्बन्धिन वा शृणोति=जानाति, यत्तच्छब्दयोर्नित्यसम्बन्धात् त मिश्रित शृणोति-निःसृतशब्द द्रव्यभाविताऽपान्तरालस्थशब्दद्रव्यमित्यर्थः । मिश्रेणि पुन' इत इति योज्यम् । मिश्रेणिम् इतः=गतः-प्राप्तः-मिश्रेणिव्यवस्थित इत्यर्थः । अथवा-मिश्रे-णिस्थितो मिश्रेणिरित्युच्यते, पदेऽपि पदायवप्रयोगदर्शनात्, यथा-'भीमसेनः सेनः, सत्यभामा भामा' इति । म तु नियमात् पराघाते सति शब्द शृणोति । अय भावः यानि वासितानि शब्दद्रव्याणि तान्येव निःसृतशब्दद्रव्याभिधाते सति शृणोति, न तु निःसृतानि केवलानि, तेषामनुश्रेणिगमनात् प्रतिघाताभावाच्चेति ॥५॥

और अवर्ण स्वरूपसे दो प्रकारकी होती है । जिस भाषामें लोकव्यवहार चलता है वह वर्णात्मक भाषा है, तथा भेरी आदिकी ध्वनिरूप भाषा अवर्णस्वरूप है । भाषाकी समश्रेणी का तात्पर्य है-भाषाके क्षेत्रप्रदेशमें समान पक्तिका होना । ये श्रेणिया बोलनेवाले व्यक्तिकी छहों दिशाओं में हुआ करती है । इन्ही में से हो कर भाषा प्रथम समयमें ही लोकके अन्त तक पहुच जाती है, अतः भाषाकी समश्रेणिमें व्यवस्थित हुआ जब किसी शब्दको चाहे वह पुरुष आदि सबधी हो या भेरी आदि सबधी हो सुनता है तो वह उसे मिश्रित ही सुनता है । तथा जो व्यक्ति भाषाकी समश्रेणीमें स्थित नहीं है किन्तु मिश्रेणिमें स्थित है वह नियम-मतः पराघात होने पर वासित शब्द द्रव्योंको ही सुनता है, केवल

એ ભાષા વર્ણસ્વરૂપ અને અવર્ણસ્વરૂપ એ બે પ્રકારની હોય છે જે ભાષામા લોકવ્યવહાર ચાલે છે તે વર્ણાત્મક ભાષા છે, તથા ભેરી આદિના ધ્વનિરૂપ ભાષા અવર્ણસ્વરૂપ છે ભાષાની સમશ્રેણીનું તાત્પર્ય આ છે-

ભાષાના ક્ષેત્રપ્રદેશમા સમાન પક્ષિતનુ હોવું એ શ્રેણિઓ બોલનાર વ્યક્તિની છએ દિશાઓમા થાય છે તેમની અદરથી ભાષા પ્રથમ સમયમા જ લોકના અન્ત સુધી પહોચી જાય છે, તેથી ભાષાની સમશ્રેણિમા રહેલ શ્રોતા જ્યારે કોઈ શબ્દને-લલે તે પુરુષ આદિ નબધી હોય કે ભેરી આદિ સબધી હોય-સાભળે છે ત્યારે તે તેને મિશ્રિત જ સાભળે છે તથા જે વ્યક્તિ ભાષાની સમશ્રેણિમા રહેલ નથી પણ મિશ્રેણિમા રહેલ છે, તે નિયમત પરાઘાત થતા વાસિત શબ્દદ્રવ્યોને જ સાભળે છે કેવલ નિસૃત શબ્દોને નહી, કારણ કે તે

सप्रति मतिज्ञानपर्यायशब्दानाम्—‘ ईहा० ’ इत्यादि । ईहनम् ईहा=सदर्थ-पर्यालोचनम् । अपोहः=निश्चयः । विमर्शः=विमर्शनम्-अवायात् पूर्व ईहायाश्चो-त्तरः प्रायः ‘शिरःरुण्डयनादयः पुरुषधर्मा इह न घटन्ते’-इति सप्रत्यय’, ईहाऽ-वायमन्वयवर्ती प्रत्यय इत्यर्थः । तथा-मार्गणा-अन्वयधर्मोन्वेपणरूपा । च शब्द-समुच्चयार्थः । गवेपणा=व्यतिरेकरुधर्माऽऽलोचनम् । तथा-सज्ञा-सज्ञानं, व्यञ्जना-ग्रहोत्तरकालभागी मतिविशेष इत्यर्थः । स्मृतिः=स्मरण-पूर्वानुभूतार्थालम्बन-प्रत्यय-

निसृत शब्दों को नहीं, कारण के वे त्रेणिके अनुसार गमन कर जाते हैं और उनमें प्रतिघातका उस समय अभाव रहता है ॥ ५ ॥

अब मतिज्ञानके पर्यायवाची शब्दों को सूत्रकार बतलाते हैं—
‘ ईहा० ’ इत्यादि ।

मतिज्ञानके पर्यायवाची नौ नाम इस प्रकार हैं—ईहा १, अपोह २, विमर्श ३, मार्गणा ४, गवेपणा ५, सज्ञा ६, स्मृति ७, मति ८, प्रज्ञा ९ । सदर्थका विचार करना इसका नाम ईहा १, उस वस्तुका निश्चय हो जाना अपोह २, अवाय के पहिले एव ईहाके बाद होनेवाले विचारके नाम विमर्श ३, एव अन्वय धर्मों का अन्वेपण करना मार्गणा है ४ । व्यतिरेक धर्मों की आलोचना करना इसका नाम गवेपणा है ५ । व्यञ्ज-नावग्रहके उत्तरकालमें जो मतिविशेष होता है वह सज्ञा है ६ । पूर्व में अनुभूत अर्थका स्मरण करना इसका नाम स्मृति है ७ । अर्थका परि-च्छेद हो जाने पर भी उस अर्थके सूक्ष्म धर्मों का आलोचन करना

श्रेष्ठि प्रमाणे गमन ऽरे ७ अने तेमनाभा ते भभये प्रतिगतने अलाव रहे छे ॥ ५ ॥

इसे मतिज्ञानना पर्यायवाची शब्दों सूत्रकार बतावे छे—“ ईहा ” इत्यादि मतिज्ञानना पर्यायवाची नव नाम आ प्रमाणे छे—(१) ईहा, (२) अपोह, (३) विमर्श, (४) मार्गणा, (५) गवेपणा, (६) सज्ञा, (७) स्मृति, (८) मति अने (९) प्रज्ञा (१) सदर्थने विचार ऽरये तेनु नाम ‘ईहा’ (२) ते वस्तुने निश्चय यथ ऽवे तेनु नाम “अपोह” (३) अवायनी पहिले अने ईहानी पहिले धनार विचारनु नाम “विमर्श” (४) अने अन्वयधर्मोनु अन्वेपण करु ते “मार्गणा” छे (५) व्यतिरेक धर्मोनी आलोचन ऽरवी तेनु नाम “गवेपणा” छे (६) व्यञ्जनावग्रहना उत्तर कालभा ने मतिविशेष थाय छे तेनु नाम “सज्ञा” छे (७) पूर्व अनुभवेल अर्थनु स्मरण करु तेनु नाम “स्मृति” छे (८) अर्थने परिच्छेद यथ गया पहिले पणु ते अर्थना सूक्ष्मधर्मोनु आलोचन करु

અર્ણાત્મિકા ચ । તત્ર વર્ણાત્મિકા લોકવ્યવહારરૂપા, અર્ણાત્મિકા ચ મેરીમાક્કારાદિરૂપા । તસ્યાઃ સમાઃ શ્રેણયઃ-ભાષાસમશ્રેણયઃ । ઇદ્ શ્રેણયઃ ક્ષેત્રપ્રદેશે પક્ત્ય ઉચ્યન્તે । તાશ્ચ સર્વસ્યેવ ભાષમાણસ્ય પદસુ દિક્ષુ મિથન્તે । યાસુ શ્રેણિષુ નિઃસૃતા સતી ભાષા પ્રથમસમય એવ લોકાન્તમનુષાગતિ, તા ઇતઃ=ગતઃ-પ્રાપ્તઃ-ભાષાસમશ્રેણીતઃ=ભાષાસમશ્રેણિવ્યવસ્થિત इत्यर्थः, યં શબ્દ=પુરુષાદિમમ્મન્થિનં મેર્યાદિ-સમ્મન્થિન વા શૃણોતિ=જાનાતિ, યત્તન્ન ડ્યોર્નિત્યસમ્મન્થાત્ ત મિશ્રિત શૃણોતિ-નિઃસૃતશબ્દ દ્રવ્યભાવિતાડપાન્તરાલસ્થશબ્દદ્રવ્યમિત્યર્થઃ । વિશ્રેણિ પુનઃ ઇત ઇતિ યોજ્યમ્ । વિશ્રેણિમ્ ઇતઃ=ગતઃ-પ્રાપ્તઃ-વિશ્રેણિવ્યવસ્થિત इत्यर्थः । અથવા-વિશ્રેણિસ્થિતો વિશ્રેણિસ્તિચ્યતે, પદેડપિ પદાન્યવપ્રયોગદર્શનાત્, યથા-‘મીમસેનઃ સેનઃ, સત્યમામા ભાષા’ ઇતિ । સ તુ નિયમાત્ પરાઘાતે સતિ શબ્દ શૃણોતિ । અય ભાવઃ યાનિ વાસિતાનિ શબ્દદ્રવ્યાણિ તાન્યેવ નિ સૃતશબ્દદ્રવ્યાભિવાતે સતિ શૃણોતિ, ન તુ નિઃસૃતાનિ કેવલાનિ, તેપામનુશ્રેણિગમનાત્ પ્રતિઘાતામાનાચ્ચેતિ ॥૫॥

और अवर्ण स्वरूपसे दो प्रकारकी होती है । जिस भाषामे लोकव्यवहार चलता है वह वर्णात्मक भाषा है, तथा भेरी आदिकी ध्वनिरूप भाषा अवर्णस्वरूप है । भाषाकी समश्रेणी का तात्पर्य है-भाषाके क्षेत्रप्रदेशमें समान पक्तिका होना । ये श्रेणिया गोलनेवाले व्यक्तिकी छहों दिशाओं में हुआ करती हैं । इन्ही मे से हो कर भाषा प्रथम समयमें ही लोकके अन्त तक पहुच जाती है, अतः भाषाकी समश्रेणिमे व्यवस्थित हुआ जब किसी शब्दको चाहे वह पुरुष आदि सबधी हो या भेरी आदि सबधी हो सुनता है तो वह उसे मिश्रित ही सुनता है । तथा जो व्यक्ति भाषाकी समश्रेणीमे स्थित नहीं है किन्तु विश्रेणिमें स्थित है वह नियमतः पराघात होने पर वासित शब्द द्रव्योको ही सुनता है, केवल

એ ભાષા વર્ણસ્વરૂપ અને અવર્ણસ્વરૂપ એ બે પ્રકારની હોય છે જે ભાષામા લોકવ્યવહાર આલે છે તે વર્ણાત્મક ભાષા છે, તથા ભેરી આદિના ધ્વનિરૂપ ભાષા અવર્ણસ્વરૂપ છે ભાષાની સમશ્રેણીનુ તાત્પર્ય આ છે-

ભાષાના ક્ષેત્રપ્રદેશમા સમાન પક્તિનુ હોવુ એ શ્રેણિઓ ગોલનાર વ્યક્તિની છએ દિશાઓમા થાય છે તેમની અદરથા ભાષા પ્રથમ સમયમા જ લોકના અન્ત સુધી પહોચી જાય છે, તેથી ભાષાની સમશ્રેણિમા રહેલ શ્રોતા જ્યારે કોઈ શબ્દને-ભલે તે પુરુષ આદિ સબધી હોય કે ભેરી આદિ સબધી હોય-સાભળે છે ત્યારે તે તેને મિશ્રિત જ સાભળે છે તથા જે વ્યક્તિ ભાષાની સમશ્રેણિમા રહેલ નથી પણ વિશ્રેણિમા રહેલ છે, તે નિયમત પરાઘાત થતા વાસિત શબ્દદ્રવ્યોને જ સાભળે છે ક્ષત્ર નિસૃત શબ્દોને નહી, કારણ કે તે

समति मतिज्ञानपर्यायशब्दानाह—‘ ईहा० ’ इत्यादि । ईहनम् ईहा=सदर्थ-पर्यालोचनम् । अपोहः=निश्चयः । विमर्शः=विमर्शनम्—अवायात् पूर्व ईहायाश्चो-त्तरः प्रायः ‘शिरःऋण्डयनादयः पुरुषधर्मा इह न घटन्ते’—इति संप्रत्ययः, ईहाऽ-वायमध्यमर्तो प्रत्यय इत्यर्थः । तथा—मार्गणा—अन्वयधर्मान्वेषणरूपा । च शब्दः समुच्चयार्थः । गवेपणा=व्यतिरेकधर्माऽऽलोचनम् । तथा—सज्ञा—सज्ञान, व्यञ्जनाव-ग्रहोत्तरकालभागी मतिविशेष इत्यर्थः । स्मृतिः=स्मरणं—पूर्वानुभूतार्थालम्बन प्रत्यय-निर्मृत शब्दों को नहीं, कारण के वे श्रेणिके अनुसार गमन कर जाते हैं और उनमे प्रतिघातका उस समय अभाव रहता है ॥ ५ ॥

अब मतिज्ञानके पर्यायवाची शब्दों को सूत्रकार बतलाते हैं—
‘ ईहा० ’ इत्यादि ।

मतिज्ञानके पर्यायवाची नौ नाम इस प्रकार हैं—ईहा १, अपोह २, विमर्श ३, मार्गणा ४, गवेपणा ५, सज्ञा ६, स्मृति ७, मति ८, प्रज्ञा ९ । सदर्थका विचार करना इसका नाम ईहा १, उस वस्तुका निश्चय हो जाना अपोह २, अवाय के पहिले एव ईहाके बाद होनेवाले विचारके नाम विमर्श ३, एव अन्वय धर्मों का अन्वेषण करना मार्गणा है ४ । व्यतिरेक धर्मों की आलोचना करना इसका नाम गवेपणा है ५ । व्यञ्ज-नावग्रहके उत्तरकालमें जो मतिविशेष होता है वह सज्ञा है ६ । पूर्व में अनुभूत अर्थका स्मरण करना इसका नाम स्मृति है ७ । अर्थका परि-च्छेद हो जाने पर भी उस अर्थके सूक्ष्म धर्मों का आलोचन करना

श्रेष्ठि प्रमाणे गमन करे छे अने तेमनामा ते समये प्रतिघातने अलाव रहे छे ॥ ५ ॥

इधे मतिज्ञानना पर्यायवाची शब्दों सूत्रकार बतावे छे—“ ईहा ” इत्यादि मतिज्ञानना पर्यायवाची नव नाम आ प्रमाणे छे—(१) ईहा, (२) अपोह, (३) विमर्श, (४) मार्गणा, (५) गवेपणा, (६) सज्ञा, (७) स्मृति, (८) मति अने (९) प्रज्ञा (१) सदर्थको विचार करवो तेनु नाम “ईहा” (२) ते वस्तुको निश्चय थछे जवो तेनु नाम “अपोह” (३) अवायनी पडेलो अने ईहानी पछी थनार विचारनु नाम “विमर्श” (४) अने अन्वयधर्मोनु अन्वेषण करवु ते “मार्गणा” छे (५) व्यतिरेक धर्मोनी आलोचना करवी तेनु नाम “गवेपणा” छे (६) व्यञ्जनावग्रहना उत्तर कालमा जे मतिविशेष थाय छे तेनु नाम “सज्ञा” छे (७) पूर्वे अनुभवेल अर्थनु स्मरण करवु तेनु नाम “स्मृति” छे (८) अर्थको परिच्छेद थछे जया पछी पछु ते अर्थना सूक्ष्मधर्मोनु आलोचन करवु

प्रिणोप. । मतिः=मनन-कथंचिदर्थपरिच्छेदेऽपि सूक्ष्मधर्मालोचनरूपा बुद्धिः । तथा
-प्रज्ञा=विशिष्टक्षयोपशमजन्या प्रभूतस्तुगतयथागस्थितधर्मालोचनरूपा सवित् ।
सर्वमिदमाभिनिगोधिक मतिज्ञानमित्यर्थः । कथंचित् किंचिद् भेददर्शनेऽपि
तत्त्वतः सर्वं मतिज्ञानमेवेदमिति भावः ॥ ६ ॥

तदेतत् आभिनिगोधिकज्ञानपरोक्षम् । तदेतन्मतिज्ञानं वर्णितमिति शेषः ॥ सू० ३६ ॥
सप्रति सकलचरणकरणक्रियाधारश्रुतज्ञानस्वरूपं वर्णयति—

मूलम्—से कित सुयनाणपरोक्खं ? सुयनाणपरोक्खं चोद्धसविह
पणत्तं, तं जहा—अक्खरसुय १, अणक्खरसुय २, सण्णिसुय ३,
असण्णिसुय ४, सम्मसुय ५, मिच्छासुय ६, साइय ७, अणाइय ८,
सपज्जवासिय ९, अपज्जवासिय १०, गमिय ११, अगमिय १२,
अगपविट्ठ १३, अणंगपविट्ठ १४ ॥ सू० ३७ ॥

छाया—अथ किं तच्छ्रुतज्ञानपरोक्षम् ? श्रुतज्ञानपरोक्षं चतुर्दशविधं प्रवृत्तम् ।
तद् यथा—अक्षरश्रुतम् १, अनक्षरश्रुतम् २, सञ्ज्ञिश्रुतम् ३, असञ्ज्ञिश्रुतम् ४, सम्य-
क्श्रुतम् ५, मिथ्याश्रुतम् ६, सादिकम् ७, अनादिकम् ८, सपर्यवसितम् ९, अप-
र्यवसितम् १०, गमिकम् ११, अगमिकम् १२, अङ्गप्रविष्टम् १३, अनङ्गप्रविष्टम्
१४ ॥ सू० ३७ ॥

मति ८ । तथा उस पदार्थके यथार्थं प्रभूत धर्मो का विचार करना प्रज्ञा है ।
ये सब मतिज्ञानके ही पर्यायवाची शब्द हैं । यद्यपि इनमें शाब्दिक भेद
है तो भी मतिज्ञानरूपता की समानता होनेसे ये सब मतिज्ञान स्वरूप ही
हैं । यह आभिनिगोधिक ज्ञान परोक्षज्ञान है । इस तरह मतिज्ञानका
वर्णन किया ॥ सू० ३६ ॥

अब सकल चरण करणक्रियाके आधारभूत श्रुतज्ञानका वर्णन करते
हैं—‘से कित सुयनाण परोक्खं ?’ इत्यादि ।

ते “मति” छे (६) तथा ते पदार्थनो यथार्थं प्रभूत धर्मानो विचार करवो ते
“प्रज्ञा” छे अथ मतिज्ञानना ज पर्यायवाची शब्दो छे जे के तेमनामा
शाब्दिक भेद छे तो पणु मतिज्ञान रूपतानी समानता होवाथी अथ मति
ज्ञान स्वरूप ज छे आ आभिनिगोधिक ज्ञान परोक्ष ज्ञान छे आ प्रमाणे मति
ज्ञानतु वर्णन कराथु ॥ सू० ३६ ॥

हुवे सकल चरण करण क्रियाना आधारभूत श्रुतज्ञानतु वर्णन करे छे—
“से किं त सुयनाण परोक्खं ?” इत्यादि

ટીકા—‘ સે કિં ત મુચનાણપરોક્ષવ ’ ઇતિ । અથ કિં તન શ્રુતજ્ઞાનપરોક્ષ-
મિતિ શિષ્યપ્રશ્નઃ । ઉત્તરમાહ—શ્રુતજ્ઞાનપરોક્ષ=શ્રુતજ્ઞાનરૂપ પરોક્ષજ્ઞાન ચતુર્દશપ્રિથ
પદ્મપ્ત=તીર્થકરૈઃ પ્રરૂપિતમ્ । તદ્ યથા-અક્ષરશ્રુતમ્ ૧, અનક્ષરશ્રુતમ્ ૨ ઇત્યાદિ ।
એતેષા ભેદાના સ્વરૂપમગ્રે વક્ષ્યતે । અક્ષરશ્રુતજ્ઞાનપરોક્ષભેદદ્વયે સન્નિશ્ચુદીના શ્રેયભે-
દાનામન્તર્ભાવેઽપિ પૃથગુપન્યાસો મન્દમત્તીના શિષ્યાણામનુવ્રહ્મચર્યકૃત ઇતિ ॥મ્ ૦૩૭॥

અથ મુત્રકારઃ શ્રુતજ્ઞાનમ્ય ચતુર્દશ ભેદાન્ વર્ણયતિ—

મૂલમ્—સે કિ ત અક્ષરસુય ? । અક્ષરસુય તિવિહ પળ્લન્ત ।
તં જહા—સન્નક્ષર ૧, વજળક્ષર ૨, લઙ્ઘિઅક્ષર ૩ । સે કિ
ત સન્નક્ષર ? સન્નક્ષર—અક્ષરસ્સ સઠાણાગિઈ, સે ત સન્ન-
ક્ષરં । સે કિ ત વજળક્ષરં ? । વજળક્ષર—અક્ષરસ્સ વજ-
ળાભિલાવો । સે ત વજળક્ષર । સે કિ ત લઙ્ઘિઅક્ષર ? ।
લઙ્ઘિઅક્ષર—અક્ષરલઙ્ઘિયસ્સ લઙ્ઘિ અક્ષર સમુપ્પજ્જઈ । ત
છઠ્ઠિવિહ પળ્લન્ત ત જહા—સોઈદિયલઙ્ઘિ—અક્ષર, ચક્ષિવદિય-
લઙ્ઘિ અક્ષર, ઘાણિદિયલઙ્ઘિ અક્ષર, રસણિદિયલઙ્ઘિ—અક્ષર,
ફાસિદિયલઙ્ઘિ અક્ષર, નોઈદિયલઙ્ઘિ—અક્ષર । સે ત લઙ્ઘિ-
અક્ષર, સે ત અક્ષરસુયં ।

પૂર્વવર્ણિત શ્રુતજ્ઞાન કિ જિસકા પરોક્ષરૂપસે વર્ણન કિયા ગયા હૈ
ઉસકા કયા સ્વરૂપ હૈ ? ઉત્તર—શ્રુતજ્ઞાન કિ જિસકો પરોક્ષ કહા ગયા
હૈ વહ ચૌદ્દ પ્રકારકા કહા ગયા હૈ । વે ચૌદ્દ પ્રકાર યે હૈ—અક્ષરશ્રુત
૧, અનક્ષરશ્રુત ૨, સન્નશ્રુત ૩, અસન્નશ્રુત ૪, ઇત્યાદિ ॥ મૂ ૦ ૩૭ ॥

પૂર્વ વર્ણિત શ્રુતજ્ઞાન કે જેનુ પરોક્ષરૂપે વર્ણન કરાયુ છે, તેનુ શુ
સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—શ્રુતજ્ઞાન કે જેને પરોક્ષ કહેવાયુ છે તે ચૌદ પ્રકારનુ છે તે ચૌદ
પ્રકાર આ પ્રમાણે છે—(૧) અક્ષર શ્રુત, (૨) અનક્ષર શ્રુત, (૩) સન્નશ્રુત, (૪)
અસન્નશ્રુત ઇત્યાદિ ॥ મૂ ૦ ૩૭ ॥

से किं त अणक्खरसुय ? । अणक्खरसुय अणेगविह
पण्णत्त । त जहा—

गाहा—उससिय नीससिय, निच्छूढ खासियं च छीय च ।

निस्सिधियमणुसार, अणक्खर छेलियाईय ॥ १ ॥

से त्तअणक्खरसुय ॥ सू० ३८ ॥

छाया—अथ किं तदक्षरश्रुतम् ? । अक्षरश्रुत त्रिविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—
सज्ञाक्षर १, व्यञ्जनाक्षर २, लब्ध्याक्षर ३ । अथ किं तद् सज्ञाक्षरम् ? । सज्ञाक्षरम्—
अक्षरस्य सस्थानाऽऽकृति । तदेतत् सज्ञाक्षरम् । अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरम् ? ।
व्यञ्जनाक्षरम्—अक्षरस्य व्यञ्जनाभिलाषः । तदेतत् व्यञ्जनाक्षरम् । अथ किं तल्ल
ब्ध्याक्षरम् ? । लब्ध्याक्षरम्—अक्षरलब्धिपरस्य लब्ध्याक्षरं समुत्पद्यते । तद् षड्विधं
प्रवृत्तं, तद् यथा—श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्याक्षरम् १, चक्षुरिन्द्रियलब्ध्याक्षरम् २, घ्राणेन्द्रि-
यलब्ध्याक्षरम् ३, रसनेन्द्रियलब्ध्याक्षरम् ४, स्पर्शेन्द्रियलब्ध्याक्षरम् ५, नोडेन्द्रियलब्ध्या-
क्षरम् ६ । तदेतल्लब्ध्याक्षरम् । तदेतदक्षरश्रुतम् ।

अथ किं तदनक्षरश्रुतम् ? अनक्षरश्रुतमनेकविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—

गाथा—उच्छ्रमसित निःश्वसित, निष्ठथूत कासित च क्षुत च ।

निस्सिद्धितमनुसार, अनक्षर खेलितादिकम् ॥ १ ॥

तदेतदनक्षरश्रुतम् ॥ सू० ३८ ॥

टीका—‘से किं त अक्खरसुय’ इति । अथ किं तद् अक्षरश्रुतमिति । पूर्व-
निर्दिष्टस्याक्षरश्रुतस्य किं स्वरूपमित्यर्थः । उत्तरमाह—‘अक्खरसुय तिविह
पण्णत्त’ इत्यादि । अक्षरश्रुत त्रिविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—सज्ञाक्षर, व्यञ्जनाक्षर,

अथ सूत्रकार श्रुतज्ञानके चौदह भेदोंका वर्णन करते हैं—‘से किं त
अक्खर सुय० ?’ इत्यादि ।

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट अक्षरश्रुतका क्या स्वरूप है ? उत्तर—पूर्वनिर्दिष्ट
अक्षरश्रुत तीन प्रकारका बतलाया गया है । उसके तीन प्रकार ये हैं ।

इसे सूत्रकार श्रुतज्ञाना थोड़े बोलते वर्णन करते हैं—“से किं त अक्खर
सुय ?” इत्यादि

प्रश्न—पूर्वनिर्दिष्ट अक्षरश्रुतनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—पूर्वनिर्दिष्ट अक्षरश्रुत त्रय प्रकारनु अताव्यु छे ते त्रय प्रकारे

लब्ध्यक्षर च । ननु अक्षरश्रुतमित्यस्य कः शब्दार्थः ? उच्यते—न क्षरति—न चल-
त्यनुपयोगेऽपि न विनश्यति—इत्यक्षर—सामान्यज्ञानम् । तद्धि जीवस्वभावतयाऽनु-
पयोगेऽपि तत्त्वतो न प्रच्यवते । यद्यपि मत्यादिकं सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षर भवति,
तथापीदं श्रुतज्ञानस्य प्रस्तावादक्षर श्रुतज्ञानमेव द्रष्टव्यम् । अस्य श्रुतज्ञानरूपस्य भा-
वाक्षरस्य कारणं चाकारादिवर्णवृन्दम्, ततोऽकारादिवर्णोऽप्युपचारादक्षरमुच्यते ।
तस्मात्—अक्षर—ज्ञानरूपं च तच्छ्रुतम् अक्षरश्रुत—भावश्रुतमित्यर्थः । तथा—अक्षरम्=
अकारादिवर्णरूपं श्रुतम्—अक्षरश्रुत, द्रव्यश्रुतमित्यर्थः । अक्षरश्रुतमित्यनेन द्रव्य-
श्रुत, भावश्रुतमित्तिद्वयं बोध्यम् । तत्र द्रव्यश्रुतस्य द्वौ भेदौ । सज्ञाक्षर, व्यञ्जनाक्षर
च । भावश्रुतं च लब्ध्यक्षररूपमिति बोध्यम् ।

सज्ञाक्षरश्रुत १, व्यञ्जनाक्षरश्रुत २, एव लब्ध्यक्षरश्रुत ३ । अक्षर शब्दका
क्या अर्थ है ? अक्षर शब्दका अर्थ है—सामान्य ज्ञान । अनुपयोग अवस्था
में भी जो नष्ट नहीं होता है वह अक्षर है, ऐसी अक्षरकी व्युत्पत्ति है ।
ज्ञान सामान्य जीवका लक्षण है, अतः अक्षर शब्दका वाच्यार्थ सामान्य
ज्ञान होता है । यद्यपि मतिज्ञान आदि समस्त विशेष ज्ञान सामान्यरूप
से अक्षर रूप है तौ भी यहां श्रुतज्ञानका सबध चल रहा है अतः “अक्षर”
से श्रुतज्ञान ही कहा गृहीत हुआ है अन्य ज्ञान नहीं । इस श्रुतज्ञानरूप
भावाक्षरका कारण अकार आदि वर्णसमूह है, अतः अकार आदि वर्ण
भी उपचारसे अक्षररूप मान लिये गये हैं, इस लिये ज्ञानरूप जो श्रुत
है वह अक्षरश्रुत—भावश्रुत है । और इस भावश्रुतका कारण होनेसे अका-
रादि अक्षर द्रव्यश्रुत हैं । अक्षरश्रुतपदसे द्रव्यश्रुत और भावश्रुत इन

नीचे प्रमाणों से—(१) सज्ञाक्षर श्रुत, (२) व्यञ्जनाक्षर श्रुत, अने (३) लब्ध्यक्षर
श्रुत अक्षर शब्दने शो अर्थ है ? अक्षर शब्दने अर्थ “सामान्य ज्ञान” है
अनुपयोग अवस्थामा पक्ष ने नाश प्राप्तुं नहीं तो अक्षर है, अर्थात् अक्षरनी
व्युत्पत्ति है ज्ञानसामान्य एवमु लक्षण है, तथै अक्षर शब्दने वाच्यार्थ
सामान्यज्ञान थाय है जो के मतिज्ञान आदि समस्त विशेषज्ञान सामान्यरूपे
अक्षररूप है, तो पक्ष अक्षी श्रुतज्ञानने विषय आली रह्यो है, तथै “अक्षर”
पद अक्षी श्रुतज्ञान के अर्द्धु करायु है, पीछे ज्ञान अक्षी आ श्रुतज्ञानरूप
भावाक्षरनु कारण अकार आदि वर्णसमूह है, तथै आकार आदि वर्ण पक्ष
औपचारिक रीते अक्षररूप मानी लेनामा आव्या है, तो कारणे ज्ञानरूप ने श्रुत
है तो अक्षरश्रुत—भावश्रुत है अने आ भावश्रुतनु कारणे भावाक्षी अकारादि अक्षर
द्रव्यश्रुत है अक्षरश्रुत पदथै द्रव्यश्रुत अने भावश्रुत अने अर्द्धु करायु

અથ કિં તત્ સંજ્ઞાક્ષરમ્ ? इति शिष्यप्रश्नः ? । उत्तरमाह—‘सन्नस्वरं०’ इत्यादि । सज्ञाक्षरम् - अक्षरस्य = अकारादेर्वर्णस्य सम्यग्नाऽऽकृतिः-अयमर्थः-सज्ञानम्-अवबोधः-सज्ञा, अथवा-सज्ञायतेऽनयेति सना, तत्कारणम्-अक्षर सज्ञा-क्षरम् । सज्ञावाच्य - कारणमाकृतिविशेषः, आकृतिविशेष एव नाम्नः कारणाद् व्यवहरणाच्च । ततोऽक्षरस्य पट्टिकादीं लिखितस्य सम्यग्नाऽऽकृतिः सज्ञाऽभ्यमुच्यते । तच्च ब्राह्मणादिलिपिभेदतोऽनेकप्रकारम् । तच्च समवायाद्ब्रह्मत्रेऽष्टादशे समवाये द्रष्टव्यम् । तदेतत् सज्ञाक्षरं वर्णितम् ।

दोनो का ग्रहण हुआ है, इनमें द्रव्यश्रुतके सज्ञाक्षर एव व्यञ्जनाक्षर, ये दो भेद हैं । तथा भावश्रुतका लब्ध्याक्षररूप एक भेद है, कारण-भावश्रुत लब्ध्याक्षररूप होता है ।

फिर शिष्य पूछता है-पूर्वनिर्दिष्ट सज्ञाक्षरका क्या स्वरूप है ? उत्तर-अकार आदि वर्णका जो सस्थाना कृति-रचना विशेष है वह सज्ञाक्षर है । सज्ञा शब्दका अर्थ-अवबोध-ज्ञान है, अथवा जिसके द्वारा पदार्थका भान होता है वह सज्ञा है, इसका जो कारण है वह सज्ञाक्षर है । सज्ञाका कारण आकृति विशेष होता है । आकृति विशेषमें ही तो नाम किया जाता है, और व्यवहारमें भी उसे ही काममें लिया जाता है, इसलिये पट्टिका आदिमें लिखित अक्षर की जो सस्थानाकृति है वह सज्ञा-क्षर है, ऐसा इसका फलितार्थ होता है । यह सज्ञाक्षर ब्राह्मी आदि लिपि के भेदसे अठारह प्रकारका बतलाया गया है । यह बात समवायाद्ब्रह्मत्रेमें अठारहवें समवायमें कही गई है, अतः जिज्ञासुओं को चहा देख लेना

છે, તેમનામા દ્રવ્યશ્રુતના સજ્ઞાક્ષર અને વ્યજ્ઞનાક્ષર એ બે ભેદ છે, તથા ભાવ શ્રુતનો લબ્ધ્યાક્ષર રૂપ એક ભેદ છે કારણ કે ભાવશ્રુત લબ્ધ્યાક્ષર રૂપ હોય છે વળી શિષ્ય પૂછે છે-પૂર્વનિર્દિષ્ટ સજ્ઞાક્ષરનું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર-અક્ષર આદિ વર્ણની જે સસ્થાકૃતિ-રચના વિશેષ છે તે સજ્ઞા ક્ષર છે સજ્ઞા શબ્દનો અર્થ-અવબોધ-જ્ઞાન છે અથવા જેના દ્વારા પદાર્થનું ભાન થાય છે તે સજ્ઞા છે તેનું જે કારણ છે તે સજ્ઞાક્ષર છે સજ્ઞાનું કારણ આકૃતિ વિશેષ હોય છે આકૃતિવિશેષમાજ તો નામ કરાય છે, અને વ્યવહારમા પણ તેને જ કામમા લેવાય છે તે કારણે પાટી આદિમા લખેલ અક્ષરની જે સસ્થાનાકૃતિ છે તે સજ્ઞાક્ષર છે એવો તેનો ફલિતાર્થ થાય છે આ સજ્ઞાક્ષર બ્રાહ્મી આદિ લિપિના ભેદથી અનેક પ્રકારનો બતાવ્યો છે આ વાત સમવાયાગ સૂત્રના અઠારમા અધ્યયનમા કહી છે, તેથી જિજ્ઞાસુઓએ ત્યાં બેઠી લેવી

અય કિં તત્ત વ્યંજનાક્ષરમ્ ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरमाह ' वज्रणक्खर० ' इत्यादि । व्यंजनाक्षरम्-अक्षरस्य व्यंजनाभिलाप इति । व्यज्यते-प्रकाश्यतेऽने-
नार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यंजनम्-उच्चार्यमाणमकारादिक वर्णजातम्, तस्य वि-
क्षितार्थाऽभिव्यंजकत्वात् । व्यंजन च तदक्षर चेति व्यंजनाक्षरम् । अमुमर्थमाश्रि-
त्याह ' वज्रणक्खर अक्खरस्स वज्रणाभिलापो ' इति । व्यंजनाक्षरमक्षरस्य व्यंज-
नाभिलापः । अक्षरस्य=अकारादेर्वर्णसमूहस्य, व्यंजनाभिलापः-व्यंजनेन=व्यंजक-
त्वेन, अभिलापः=उच्चारणम् । अर्थव्यंजकत्वेनोच्चार्यमाणमकारादिवर्णजातमित्यर्थः ।

इह प्रसङ्गवशाद् व्यंजनाक्षरस्य भेदाः प्रदर्श्यन्ते —

अर्थाभिव्यंजक तद् व्यंजनाक्षर द्विविधम्-यथार्थनियतम्, अयथार्थनियत च ।
तत्र-यथार्थनियतम्-अनर्थयुक्तम् । यथा-क्षपयतीति क्षपणः=मुनिः, तपसा कर्म-
चाहिये । इस प्रकार यह सजाक्षर है ? ।

प्रश्न—व्यंजनाक्षर क्या है ? उत्तर—दीपकके द्वारा जिम तरहसे
घट प्रकाशित किया जाता है, उसी प्रकार जिसके द्वारा अर्थका प्रकाशन
होता है वह व्यंजनाक्षर है । इस तरह उच्चार्यमाण अकार आदि समूह
का नाम व्यंजनाक्षर कहा गया है, क्यों कि इसीके द्वारा ही विवक्षित
अर्थका बोध हुआ करता है । व्यंजनाक्षर श्रुत यथार्थनियत ? और अय
थार्थनियत २ के भेदसे दो प्रकारका है । सार्थक नामसपन्न जो अक्षर-
होता है उसका नाम यथार्थनियत है जैसे क्षपण शब्द । यह शब्द “ क्षप-
यतीति क्षपण ” जो कर्मों को नष्ट करे वह क्षपण-मुनि कहलाता है,
इस सार्थक नाम वाला है, इसलिये इस शब्द को अपने अर्थ के साथ
नियत माना गया है । इसी तरह तपन-सूर्य आदि शब्द भी इसी तरह के

આ પ્રકારનુ આ સજાક્ષર છે (૧)

પ્રશ્ન—વ્યંજનાક્ષર શુ છે ? ઉત્તર—જે રીતે દીવા વડે ઘડાને પ્રકાશિત
કરાય છે એજ રીતે જેના દ્વારા અર્થ પ્રકાશિત થાય છે, તે વ્યંજનાક્ષર છે આ
રીતે ઉચ્ચાર્યમાણ અક્ષર આદિ સમૂહનુ નામ વ્યંજનાક્ષર કહેલ છે, કારણ કે
તેના દ્વારા જ વિવક્ષિત અર્થનો બોધ થાય છે વ્યંજનાક્ષરશ્રુતના બે ભેદ છે—(૧)
યથાર્થ નિયત, અને (૨) અયથાર્થ-નિયત સાર્થક નામ સપન્ન જે અક્ષર હોય
છે, તેનુ નામ યથાર્થ નિયત છે જેમડે ક્ષપણ શબ્દ આ શબ્દ “ ક્ષપયતીતિ
ક્ષપણ ” જે કર્મોનો ક્ષય કરે તે ક્ષપણ-મુનિ કહેવાય છે એ સાર્થક નામવાળો
છે, તે કારણે એ શબ્દને પોતાના અર્થની સાથે નિયત માનેલ છે એજ રીતે તપન
આદિ શબ્દને પણ એજ પ્રકારના ગણવા અયથાર્થનિયત તે છે કે જે સાર્થક

ક્ષપકૃત્વાત્ । તપતીતિ તપનઃ=મૂર્યઃ-इत्यादि । अयथार्थनियतं यथा-इन्द्र न गो-
पायति=न पालयति, तथापीन्द्र-गोपकः कीटविशेषः । न पलमश्नाति=न मांस
भक्षति तथापि पलाशः इत्यादि ।

अथवा-तद् व्यञ्जनाक्षर द्विविधम्-एकपर्यायम्, अनेकपर्याय च । एकः
पर्यायोऽभिधेयो यस्य तदेकपर्यायम् । यथा - अलोक, स्थण्डिलम्-इत्यादि ।
अलोकशब्देन हि अलोकाकाशलक्षण एक एव पर्यायोऽभिधीयते । स्थण्डिलशब्देन
च स्थण्डिलरूप एक एव पर्यायः । अनेके पर्याया अभिधेया यस्य तदनेक
पर्यायम् । यथा-लोक इति । जगत्, भ्रुवनम्, संसारः, इत्यनेके पर्याया लोक-
शब्दस्य सन्ति ।

जानना चाहिये । अयथार्थनियत वह है जो सार्थक नामवाला नहीं है-
जैसे-इन्द्रगोपक शब्द । इन्द्रगोपक कीटविशेष का नाम है । यह शब्द
अपने अर्थ से सपन्न नहीं है, कारण वह इन्द्र की रक्षा थोड़े ही करता
है । केवल इसका नाम ही नाम है । ऐसे अर्थशून्य शब्द अयथार्थनियत
माने गये हैं । इसी तरह पलाश आदि शब्द भी इसी श्रेणी के जानना
चाहिये, कारण पल-मांस को जो खाता है उसका नाम पलाश होता है,
परन्तु पलाश-ढांक मांस को खाने के कारण पलाश नहीं कहा गया है
किन्तु वह तो उसका नाम ही नाम है ।

अथवा-दूसरी तरह से भी व्यजनाक्षर दो प्रकार का बतलाका गया
है-एक पर्याय जिसका अभिधेय-नाम होता है वह एक पर्याय वाला
व्यजनाक्षर है और अनेक पर्याय जिसका अभिधेय नाम होते हैं वह
अनेक पर्यायवाला व्यजनाक्षर है । एक पर्यायवाला व्यजनाक्षर अलोक
स्थण्डिल आदि शब्द हैं, क्यों कि अलोक शब्द का अभिधेय-वाच्य-

नामवाणુ નથી જેમકે ઈન્દ્રગોપક શબ્દ ઈન્દ્રગોપક ખાસ પ્રકારનુ જ તુ છે તે
શબ્દ પોતાના અર્થથી સપન્ન નથી, કારણુ તે ઈન્દ્રની રક્ષા થોડી જ કરે છે ।
ક્રૂત તેનુ નામ જ એ પ્રકારનુ છે આવા અર્થશૂન્ય શબ્દ અયથાર્થનિયત મનાય
છે એજ રીતે પલાશ આદિ શબ્દ પણ એજ પ્રકારના બાણુવા, કારણુ કે પલ
માસને જે ખાય છે તેનુ નામ પલાશ છે, પણ પલાશ-ખાખરાને માસ ખાવાને
કારણુ પલાશ કહેતા નથી, પણ એ તો ક્રૂત તેનુ નામ જ છે અથવા ખીલ
રીતે પણ વ્યજનાક્ષર બે પ્રકારના બતાવ્યા છે-જેનુ અભિધેય-નામ એક પર્યાય
હોય છે તે એક પર્યાયવાળુ વ્યજનાક્ષર છે અને જેનુ અભિધેય-નામ અનેક
પર્યાય હોય છે તે અનેક પર્યાયવાળુ વ્યજનાક્ષર છે એક પર્યાયવાળુ વ્યજના-
ક્ષર અલોક સ્થ ડિલ આદિ શબ્દ છે કારણુ કે અલોક શબ્દનુ અભિધેય-વાચ્ય

एवमेव एकाक्षरानेकाक्षभेदेन व्यञ्जनाक्षर द्विविधम् । तत्रैकाक्षर-धीः श्रीरित्यादि । अनेकाक्षर-वीणा, लता, माला, इत्यादि । अथवा-संस्कृतप्राकृतभाषाभेदेन द्विविधम् । यथा-वृक्षः, रुक्खो-इति । तथा-नानादेशानाश्रित्य तद् व्यञ्जनाक्षरमनेकविधम् । यथा-मगधानाम्-ओदनः, 'चावल' इति भाषा प्रसिद्धः, लाटाना 'कूरः', द्राविडाना 'चौरः', आन्ध्रानाम्-'इडाकु'-रिति नाम प्रसिद्धम् ।

केवल एक अलोकाकाशरूप पर्याय ही है । इसी तरह स्थण्डिल शब्द का अभिधेय एक स्थण्डिलरूप पर्याय ही है ।

“लोक” यह व्यञ्जनाक्षर अनेक पर्यायवाला है, क्योंकि कि हमके जगत, भुवन, ससार आदि अनेक अभिधेय-नाम होते हैं ।

एकाक्षर, अनेकाक्षर, इस तरह से भी व्यञ्जनाक्षर दो प्रकार का बतलाया गया है । जिसमें केवल एक ही अक्षर होता है वह एकाक्षर व्यञ्जनाक्षर है-जैसे-धी, (वृद्धि) श्री आदि अक्षर । अनेक अक्षर जिसमें होते हैं वह अनेकाक्षर व्यञ्जनाक्षर है, जैसे-वीणा, लता, माला आदि शब्द ।

अथवा संस्कृत एव प्राकृत आदि के भेद से भी यह व्यञ्जनाक्षर दो प्रकार का माना गया है-'वृक्ष' शब्द संस्कृत और 'रुक्ख' शब्द प्राकृत है । अथवा नाना देशों की अपेक्षा व्यञ्जनाक्षर अनेक प्रकार का भी बतलाया गया है-जैसे-मगधदेश में चावलों को 'ओदन' कहते हैं, लाटदेश में 'कूर' कहते हैं, द्राविडदेश में 'चौर' कहते हैं और आंध्रदेश में 'इडाकु' कहते हैं ।

डेवण ओऽ अलोकाकाश रूप पर्याय न् छे ओऽ रीते स्थण्डिल शब्दतु अलिधेय ओऽ स्थण्डिल रूप पर्याय न् छे

“लोक” आ व्यञ्जनाक्षर अनेक पर्यायवालो छे कारण् के तेना जगत, भुवन, ससार आदि अनेक अलिधेय थाय छे

एकाक्षर, अनेकाक्षर, आ रीते पञ्च व्यञ्जनाक्षर जे प्रकारनु भताव्यु छे जेभा इकत ओऽ न् अक्षर होय छे ते ओकाक्षर व्यञ्जनाक्षर छे जेभके-धी, श्री आदि अक्षर जेभा अनेक अक्षर होय छे ते अनेकाक्षर व्यञ्जनाक्षर छे, जेभके विष्णु, लता, माला, आदि शब्द

अथवा संस्कृत अने प्राकृत आदिना लेहथी पञ्च व्यञ्जनाक्षर जे प्रकारनु भनाय छे “वृक्ष” शब्द संस्कृत अने “रुक्ख” शब्द प्राकृत छे, अथवा विविध देशानी अपेक्षाओ व्यञ्जनाक्षर अनेक प्रकारनु पञ्च भताव्यु छे जेभके मगध देशमा ओषाने 'ओदन' उडे छे, लाटमा “कूर” उडे छे द्राविड देशमा “चौर” उडे छे अने आंध्र देशमा “इडाकु” उडे छे

तथा—व्यञ्जनाक्षर स्वामिनेयाद् भिन्नमभिन्नं च । तत्र तादात्म्याभावाद् भिन्नम् । तथाहि—क्षुरशब्दोच्चारणे, अग्निशब्दोच्चारणे मोदकशब्दोच्चारणे च यथा-क्रम उदतो मुखस्य, श्रुण्वतः श्रवणस्य न श्रेयो, नापि दाहो, नापि पूरणं भवति, अतो ज्ञायतेस्वामिनेयाद्भिन्नः शब्दः । अन्यथा—तादात्म्यमद्भावे क्षुरादयोऽपि तत्र सन्तीति मुखस्य श्रवणस्य च छेदादिप्रसङ्गः ।

अभिन्नत्व=सम्बद्धत्वम् । यः सल्लु सम्बद्धः स लोकेऽप्यभिन्न इत्युच्यते । यथा—यस्य येन सहाशनपान सम्बद्ध, स तदभिन्न इत्युच्यते 'अयमस्मान्मभिन्नः'

व्यञ्जनाक्षर अपने अभिधेय से कथंचित् भिन्न भी है और कथंचित् अभिन्न भी है । भिन्न इसलिये है कि शब्द और उसके अर्थ का तादात्म्य संबध नहीं है । यदि तादात्म्य संबध होता तो क्षुर शब्द के उच्चारण करने पर मुख कट जाना चाहिये, और सुनने वाले के कान भी कट जाना चाहिये । इसी तरह अग्नि शब्द के उच्चारण करने पर उच्चारण कर्त्ता के मुख में दाह, और सुनने वाले के कानों में जलन पैदा हो जानी चाहिये मोदक शब्द के बोलने पर मुख का भरना और सुनने वाले के कानों का भरना हो जाना चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है, अतः मालूम होता है कि शब्दका और उसके अर्थका तादात्म्य संबध नहीं है, किन्तु शब्द और उसके अर्थ में परस्पर भिन्नता है ।

अभिन्न का तात्पर्य है अपने अर्थ को बतलाना—प्रोध कराना । अपने अर्थ के साथ शब्द का सम्बद्ध होना । लोक में भी जिसका जिसके

व्यञ्जनाक्षर पीताना वाच्यथी कर्कषे लिन्न पञ्च छे अने कर्कषे अलिन्न पञ्च छे लिन्न अेटला भाटे छे के शब्द अने तेना अर्थने तादृश्य संबध नथी ने तादृश्य संबध छेत तो क्षुर शब्दतु उच्चारण करता न मोदु कपाई नवु नेई अे अने साक्षणानरना कान पञ्च शटी नवा नेई अे अे शीते अग्नि शब्द भोलता न भोलनारना सुभभा भणतरा अने श्रोताना कानभा पञ्च हाई पैदा थवा नेई अे 'लाडु' शब्द भोलता न भोलनारतु मोदु लरार्थ नवु नेई अे, अने श्रोताना कान लरार्थ नवा नेई अे, पञ्च अेवु थतु नथी, तेथी अेभ लागे छे के शब्दने अने तेना अर्थने तादृश्य संबध नथी, पञ्च शब्द अने तेना अर्थभा अन्योन्य लिन्नता छे ।

अलिन्नतु तात्पर्यं छे पीताना अर्थने दर्शाववो—प्रोध कराववो—पीताना अर्थनी साथे शब्दने संबध छेवो बोकाभा पञ्च नेनी नेनी थे—भावा

मोदकशब्दे उच्चारिते मोदकरूपेण एव प्रत्ययो भवति । मोदकरूपार्थोद्भिन्नत्वे ऽसम्बद्धत्वे च सति, तत्र नियमेन मोदकरूपार्थस्य प्रत्ययो न स्यात् । सम्बन्धाभावतो नियामकाभावेनान्यत्रापि मोदकार्थं प्रत्ययस्य प्रसङ्ग आयेत । तस्माद् ज्ञायते -अर्थादभिन्नः शब्द इति । अर्थेन सह वाच्यवाचकभावसम्बन्धः शब्दस्येति ।

साय खाना पीना सम्बद्ध रहता है वह उससे अभिन्न माना जाता है । जब उच्चारण कर्त्तामोदक आदि शब्दों का उच्चारण करता है तो सुनने वाले को सकेत के चक्रसे मोदकरूप अर्थ का ही बोध होता है अन्य अर्थ का नहीं । यदि मोदकरूप अर्थ से मोदक (लड्डू)शब्द सर्वथा भिन्न तथा असंबद्ध माना जावे तो मोदक शब्द से मोदकरूप अर्थ की नियमतः प्रतीति नहीं हो सकती है । जब मोदकरूप अर्थ के साथ मोदक शब्द सम्बद्ध ही नहीं होगा तो फिर संबन्ध के अभाव से मोदक शब्द द्वारा अन्य पदार्थ का भी बोध होने लगेगा । इस तरह नियामक के अभाव में शब्द स्वाभिधेय का प्रत्यायक-बोधक नहीं हो सकने के कारण हर एक पदार्थ का प्रत्यायक-बोधक हो जावेगा तब विवक्षित अर्थ की प्रतीति उससे कैसे हो सकेगी । परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता है । विवक्षित शब्द से विवक्षित अर्थ की प्रतीति होती है, अतः यह मानना चाहिये कि शब्द से अर्थ कथञ्चित् अभिन्न भी है । इस अभिन्नता में ही शब्द और अर्थ का वाच्य वाचक संबन्ध सिद्ध होता है । शब्द और अर्थ का यह सम्बन्ध ही इन दोनों की अभिन्नता का कथञ्चित् प्रत्यायक-बोधक माना गया है ।

पीवानो सम्बन्ध होय छे, ते तेनाथी अलिन्न मनाय छे त्यारे जोलनाग मोदक आदि शब्दनु उच्चारणु करे छे त्यारे सालणनारने स केतने कारखे मोदकरूप अर्थनो न बोध थाय छे, पीव अर्थनो नही जे मोदकरूप अर्थथी मोदक शब्द तदन लिन्न तथा असम्बद्ध मानवामा आवे तो मोदक शब्दथी मोदकरूप अर्थनी नियमता प्रतीति थछ शकती नही जे मोदकरूप अर्थ साथे मोदक शब्द सम्बद्ध न होय तो पछी सम्बन्धने अलावे मोदक शब्द द्वारा पीव पदार्थनो पछु बोध थवा लागशे आ गीते नियामकने अलावे शब्द स्वाभिधेयनु प्रत्यायक-बोधक नही थछ शकवाने कारखे दरेक पदार्थनु बोधक थछ जे त्यारे तेनाथी विवक्षित अर्थनी प्रतीति केवी रीते थछ शकशे ? पछु व्यवहारमा जेनु थतु नही विवक्षित शब्दथी विवक्षित अर्थनी प्रतीति थाय छे, तेथी जे मानवु जेथजे के शब्दथी अर्थ क्यारेक अलिन्न पछु होय छे आ अलिन्नतामा न शब्द अने अर्थनो वाच्यवाचक सम्बन्ध सिद्ध थाय छे शब्द अने अर्थनो आ सम्बन्ध न जे अन्नेनी अलिन्नतानो क्यारेक बोधक मनाय छे

તથા—વ્યજ્ઞનાક્ષર સ્વામિપ્રેયાદ્ મિન્નમમિન્ન ચ । તત્ત તાદાત્મ્યામાત્રાદ્ મિન્નમ્ । તથાહિ—ધુરશબ્દોચારણે, અગ્નિશબ્દોચારણે મોદકશબ્દોચારણે ચ યથા-ક્રમ વદતો મુલ્કસ્ય, શુન્વતઃ શ્રવણમ્ય ન ટ્રેદો, નાપિ દાહો, નાપિ પૂરણ મત્તિ, અતો જ્ઞાયતેસ્વામિપ્રેયાદ્મિન્ન' શબ્દઃ । અન્યથા—તાદાત્મ્યસદ્ધાત્રે ધુરાદયોઽપિ તત્ત સન્તીતિ મુલ્કસ્ય શ્રવણસ્ય ચ છેદાદિમસદ્ધઃ ।

અમિન્નત્વ=સમ્યદ્ધત્વમ્ । યઃ સ્વલુ સમ્યદ્ધઃ ન લોકેઽપ્યમિન્ન ઇત્યુચ્યતે । યથા—યસ્ય યેન સહાશનપાન સમ્યદ્ધ, સ તદમિન્ન ઇત્યુચ્યતે 'અયમસ્માકમમિન્નઃ' ।

વ્યજ્ઞનાક્ષર અપને અભિધેય સે કથચિત્ મિન્ન મી હૈ ઓર કથચિત્ અમિન્ન મી હૈ । મિન્ન ઇસલિયે હૈ કિ શબ્દ ઓર ઉસકે અર્થ કા તાદા-ત્મ્ય સબધ નહીં હૈ । યદિ તાદાત્મ્ય સંબધ હોતા તો ધુર શબ્દ કે ઉચ્ચારણ કરને પર મુલ્ક ઋટ જાના ચાહિયે, ઓર સુનને વાલે કે કાન મી ઋટ જાના ચાહિયે । ઇસી તરહ અગ્નિ શબ્દ કે ઉચ્ચારણ કરને પર ઉચ્ચારણ કર્તા કે મુલ્ક મે દાહ, ઓર સુનને વાલે કે કાનોં મેં જલન પૈદા હો જાની ચાહિયે મોદક શબ્દ કે ઘોલને પર મુલ્ક કા ભરના ઓર સુનને વાલે કે કાનોં કા ભરના હો જાના ચાહિયે, પરન્તુ ણેસા હોતા નહીં હૈ, અતઃ માલૂમ હોતા હૈ કિ શબ્દકા ઓર ઉસકે અર્થકા તાદાત્મ્ય સબધ નહીં હૈ, કિન્તુ શબ્દ ઓર ઉસકે અર્થ મે પરસ્પર મિન્નતા હૈ ।

અમિન્ન કા તાત્પર્ય હૈ અપને અર્થ કો વતલના—બોધ કરાના । અપને અર્થ કે સાથ શબ્દ કા સમ્યદ્ધ હોના । લોક મેં મી જિસકા જિસકે

વ્યજ્ઞનાક્ષર પોતાના વાચ્યથી કંઈક ભિન્ન પણ છે અને કંઈક અભિન્ન પણ છે ભિન્ન એટલા માટે છે કે શબ્દ અને તેના અર્થને તાદૃશ્ય સબધ નથી જે તાદૃશ્ય સબધ હોત તો ધુર શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરતા જ મોહુ કપાઈ જવું જોઈએ અને સાલળનારના કાન પણ ફાટી જવા જોઈએ એજ રીતે અગ્નિ શબ્દ જોલતા જ જોલનારના મુખમા બળતરા અને શ્રોતાના કાનમા પણ દાહ પેદા થવા જોઈએ 'લાડુ' શબ્દ જોલતા જ જોલનારનું મોહુ ભારાઈ જવું જોઈએ, અને શ્રોતાના કાન ભારાઈ જવા જોઈએ, પણ એવું થતું નથી, તેથી એમ લાગે છે કે શબ્દને અને તેના અર્થને તાદૃશ્ય સબધ નથી, પણ શબ્દ અને તેના અર્થમા અન્યોન્ય ભિન્નતા છે ।

અભિન્નનું તાત્પર્ય છે પોતાના અર્થને દર્શાવવો—બોધ કરાવવો—પોતાના અર્થની સાથે શબ્દને સબધ હોવો લોકમા પણ જેને જેની ખાવા

मोदकशब्दे उच्चारिते मोदकविषय एव प्रत्ययो भवति । मोदकरूपार्थाङ्घ्रित्वे ऽसम्बद्धत्वे च सति, तत्र नियमेन मोदकरूपार्थस्य प्रत्ययो न स्यात् । सम्बन्धाभावतो नियामकाभावेनान्यत्रापि मोदकार्थं प्रत्ययस्य प्रसङ्ग आपद्येत । तस्माद् ज्ञायते - अर्थादभिन्नः शब्द इति । अर्थेन सह वाच्यवाचकभावसम्बन्धः शब्दस्येति ।

साथ खाना पीना सम्बद्ध रहता है वह उससे अभिन्न माना जाता है । जब उच्चारण कर्त्ता मोदक आदि शब्दों का उच्चारण करता है तो सुनने वाले को सकेत के बराबर मोदकरूप अर्थ का ही बोध होता है अन्य अर्थ का नहीं । यदि मोदकरूप अर्थ से मोदक (लड्डू) शब्द सर्वथा भिन्न तथा असंबद्ध माना जावे तो मोदक शब्द से मोदकरूप अर्थ की नियमतः प्रतीति नहीं हो सकती है । जब मोदकरूप अर्थ के साथ मोदक शब्द सम्बद्ध ही नहीं होगा तो फिर संबन्ध के अभाव से मोदक शब्द द्वारा अन्य पदार्थ का भी बोध होने लगेगा । इस तरह नियामक के अभाव में शब्द स्वाभिधेय का प्रत्यायक-बोधक नहीं हो सकने के कारण हर एक पदार्थ का प्रत्यायक-बोधक हो जावेगा तब विवक्षित अर्थ की प्रतीति उससे कैसे हो सकेगी । परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता है । विवक्षित शब्द से विवक्षित अर्थ की प्रतीति होती है, अतः यह मानना चाहिये कि शब्द से अर्थ कथञ्चित् अभिन्न ही है । इस अभिन्नता में ही शब्द और अर्थ का वाच्य वाचक संबन्ध सिद्ध होता है । शब्द और अर्थ का यह सम्बन्ध ही इन दोनों की अभिन्नता का कथञ्चित् प्रत्यायक-बोधक माना गया है ।

पीवानो स भूध होय छे, ते तेनाथी अलिन्न बनाय छे न्यारे जोलनार मोदक आदि शब्दनु उच्चारण करे छे त्यारे साभणनारने स डेतने कण्ठे मोदक रूप अर्थनो न बोध थाय छे, पीन अर्थनो नही ले मोदक रूप अर्थथी मोदक शब्द तदन भिन्न तथा असंबद्ध मानवामा आवे तो मोदक शब्दथी मोदक रूप अर्थनी नियमता प्रतीति थध शकती नथी ले मोदक रूप अर्थ साथे मोदक शब्द संबद्ध न होय तो पछी स भूधने अलावे मोदक शब्द द्वारा पीन पदार्थनो पणु बोध थावा लागथे आ रीते नियामकने अलावे शब्द स्वाभिधेयनु प्रत्यायक-बोधक नही थध शकवाने नारण्ठे हरेक पदार्थनु बोधक थध नथे त्यारे तेनाथी विवक्षित अर्थनी प्रतीति डेवी रीते थध शकथे ? पणु व्यवहारमा अणु थतु नथी विवक्षित शब्दथी विवक्षित अर्थनी प्रतीति थाय छे, तेथी अणु माननु लेधअे डे शब्दथी अर्थ क्यारेक अलिन्न पणु होय छे आ अलिन्न तामा न शब्द अने अर्थनो वाच्यवाचक स भूध सिद्ध थाय छे शब्द अने अर्थनो आ स भूध न अणु अनेनी अलिन्नतानो क्यारेक बोधक बनाय छे

तथा—व्यञ्जनाक्षर स्थाभियोयाद् भिन्नमभिन्न च । तत्र तादात्म्याभावाद् भिन्नम् । तथाहि—धुरशब्दोच्चारणे, अग्निशब्दोच्चारणे मोदकशब्दोच्चारणे च यथा-क्रम प्रदत्तो मुखस्य, शृण्वतः श्रवणस्य न त्रेदो, नापि दाहो, नापि पूरण भवति, अतो ज्ञायतेस्वाभियोयाद्भिन्नः शब्दः । अन्यथा—तादात्म्यसद्भावे धुरादयोऽपि तत्र सन्तीति मुखस्य श्रवणस्य च छेदादिप्रसङ्गः ।

अभिन्नत्व=सम्बद्धत्वम् । यः सलु सम्बद्धः स लोकेऽप्यभिन्न इत्युच्यते । यथा—यस्य येन सहाशनपान सम्बद्ध, स तदभिन्न इत्युच्यते 'अयमस्मान्मभिन्नः'

व्यञ्जनाक्षर अपने अभिधेय से कथंचित् भिन्न भी है और कथंचित् अभिन्न भी है । भिन्न इसलिये है कि शब्द और उसके अर्थ का तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है । यदि तादात्म्य सम्बन्ध होता तो धुर शब्द के उच्चारण करने पर मुख कट जाना चाहिये, और सुनने वाले के कान भी कट जाना चाहिये । इसी तरह अग्नि शब्द के उच्चारण करने पर उच्चारण कर्त्ता के मुख में दाह, और सुनने वाले के कानों में जलन पैदा हो जानी चाहिये मोदक शब्द के बोलने पर मुख का भरना और सुनने वाले के कानों का भरना हो जाना चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं है, अतः मालूम होता है कि शब्दका और उसके अर्थका तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, किन्तु शब्द और उसके अर्थ में परस्पर भिन्नता है ।

अभिन्न का तात्पर्य है अपने अर्थ को बतलाना—बोध कराना । अपने अर्थ के साथ शब्द का सम्बद्ध होना । लोक में भी जिसका जिसके

व्यञ्जनाक्षर पोताना वाच्यधी कर्क शिन्न पञ्च छे अने कर्क अलिन्न पञ्च छे शिन्न अटला भाटे छे के शब्द अने तेना अर्थने तादस्थ सम्बन्ध नहीं अने तादस्थ सम्बन्ध डोत तो धुर शब्दनु उच्चारण करता न मोडु कपाई नवु नेई अने सालनारना डान पञ्च श्ठी नवा नेई अने अग्नि शब्द भोलता न भोलनारना मुभमा भणतरा अने श्रोताना डानमा पञ्च दाड पेदा थवा नेई अने 'लाडु' शब्द भोलता न भोलनारनु मोडु बराई नवु नेई अने श्रोताना डान बराई नवा नेई अने, पञ्च अणु थतु नहीं, तेशी अम लागे छे के शब्दने अने तेना अर्थने तादस्थ सम्बन्ध नहीं, पञ्च शब्द अने तेना अर्थमा अन्योन्य शिन्नता छे ।

अलिन्ननु तात्पर्य छे पोताना अर्थने दर्शावो—बोध करावो—पोताना अर्थनी साथे शब्दने सम्बन्ध डोवो डोकमा पञ्च नेना नेनी साथे आवा

ते स्वपर्यायाः परपर्यायश्च एकैके द्विधा भवन्ति । तद् यथा-सम्बद्धाः असम्बद्धाश्च । ये अकारस्य स्वपर्यायास्ते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा भवन्ति । नास्तित्वेन पुनस्त एव सर्वेऽप्यसम्बद्धाः । तत्र तेषा नास्तित्वाभावात् । एवमेवासन्तः परपर्याया अपि नास्तित्वेन सम्बद्धा भवन्ति । ते च परपर्याया अस्तित्वेनासम्बद्धाः, तेषामस्तित्वस्य तत्राभावात् । यथा-घटशब्दे घकारटकाराकारा ये पर्यायाम्त एते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा

जान लेना चाहिये । ये जो परपर्यायें हैं वे उस व्यञ्जनाक्षरकी ही स्वपर्यायकी तरह पर्यायें हैं । अर्थात्-जिस प्रकार स्वपर्याये व्यञ्जनाक्षरकी निज पर्याये कही गई हैं, उसी प्रकार परपर्याये भी उस व्यञ्जनाक्षरकी मानी जाती हैं, क्यों कि वे वहां व्यवच्छेद्य हैं और इसी लिये उस विवक्षित अकारादि अक्षरकी वे विशेषक होती हैं, जैसे-कहा जाता है कि- 'यह मेरा शत्रु है ।'

स्वपर्याय और परपर्याय ये दोनों दो २ प्रकारकी बतलाई गई हैं एक सबद्ध और दूसरी असबद्ध । विवक्षित शब्दकी जो स्वपर्याये हुआ करती है वे वहा अस्तित्व धर्मसे सबधित रहा करती हैं, और जो परपर्याये हुआ करती हैं वे वहा नास्तित्व धर्मसे सबधित रहा करती हैं । स्वपर्याये नास्तित्व धर्म से सबधित नहीं होती हैं, क्यों कि वस्तु की स्वपर्याये वस्तु में अस्तित्व धर्म से सबधित और नास्तित्व धर्म से असबधित मानी गई है । इसी तरह पर पर्याये वस्तु में नास्तित्व धर्म

अधी परपर्यायो छे ओ न प्रकारे अवर्ण आदि व्यञ्जनाक्षरमा पणु स्वपर्याय अने परपर्याय सभल देवी जेध ओ ओ ने परपर्यायो छे ते ते व्यञ्जनाक्षरनी न स्वपर्यायना लेवी पर्यायो छे ओटले के नेम स्वपर्यायो व्यञ्जनाक्षरनी पोतानी पर्यायो कडेवामा आवी छे तेम पर पर्यायो पणु ते व्यञ्जनाक्षरनी मानवामा आवे छे, ङारणु के तेओ त्या अवच्छेद्य छे अने तेधी ते विवक्षित अकारादि अक्षरनी तेओ विशेष छे, नेमके "आ मारे शत्रु छे" ओम कडेवामा आवे छे

स्वपर्याय अने परपर्याय ओ अने ओ ओ प्रभारनी अतावी छे ओक सभद्ध अने ओल असभद्ध विवक्षित शब्दनी ने पर्यायो यथा करे छे तेओ त्या अस्तित्वधर्मधी सभधित रह्या करे छे, अने ने परपर्यायो होय छे तेओ त्या नास्तित्वधर्मधी सभधित रह्या करे छे स्वपर्यायो नास्तित्वधर्मधी सभधित होती नथी, ङारणु के वस्तुनी स्वपर्यायो वस्तुमा अस्तित्वधर्मधी सभधित अने नास्तित्वधर्मधी असभधित मानवामा आवी छे ओ न प्रभारो परपर्यायो वस्तुमा नास्तित्वधर्मधी सभधित अने अस्तित्वधर्मधी असभधित अताववामा

तथा-व्यञ्जनाक्षरस्यैकैकस्य द्विविधाः पर्याया भवन्ति । यथा-स्वपर्याया, परपर्यायाश्च । तत्रैतत् स्वपर्याया अर्णस्य भवन्ति, अर्णद्विधा-ऋस्यो दीर्घः प्लुतश्च । पुनरैकैकद्विधा-उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्च । पुनरैकैको द्विधा-अनुनासिको निरनुनासिकश्च । एवमष्टादशप्रकारोऽर्णः । तथा ये एवैकाक्षरसयोगतोऽक्षरसंयोगत एवं यावन्तः सयोगा घटन्ते, तावत्सयोगसगतो येऽप्यस्थानिषेपाः, ये च तत्तदर्थ्याभिधायकत्वस्वभावास्तेऽपि तस्य स्वपर्यायाः । ये तु तत्रामन्तस्ते परपर्यायाः । एवमिषादीनामपि स्वपर्यायाः परपर्यायाः वक्तव्याः । येऽपि परपर्यायास्तेऽपि तस्यैति व्यपदिश्यन्ते, व्यवच्छेद्यतया तेषां तद्विशेषकत्वाद् । यथाऽयं मे शत्रुरिति ।

तथा-एक एक व्यञ्जनाक्षरकी दो २ प्रकारकी पर्याये होती हैं । इनका नाम स्वपर्याय और परपर्याय है । अर्थात् स्वपर्याय और परपर्याय के भेदसे ये पर्याये दो प्रकारकी होती हैं । जैसे-अकार यह अक्षर ह्रस्व दीर्घ और प्लुत के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है, तथा ह्रस्व दीर्घ और प्लुत ये भी प्रत्येक उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से तीन तीन प्रकारके बतलाये गये हैं, ऐसे ये नौ भेद हुए । ये भी सानुनासिक और निरनुनासिकके भेद से दो दो प्रकारके होनेसे अवर्ण अठारह (१८) प्रकारका हो जाता है । ये स्वपर्याय हैं । इसी तरह एक एक अक्षरके सयोग से जितने सयोग अक्षरोंके निष्पन्न होते हैं तथा इन सयोगोंके वश से जो अक्षरोंकी अवस्थाएँ होती हैं, तथा इन अवस्थाओं में वे वे शब्द जो अपने २ तत्तदर्थके अभिधायक स्वभाववाले होते हैं ये सब भी व्यञ्जनाक्षरकी स्वपर्याये हैं । जो पर्याये इनमें नहीं हैं वे सब पर पर्याय हैं । इसी प्रकार इवर्ण आदि व्यञ्जनाक्षरों में भी स्वपर्याय और परपर्याय

तथा—एक एक व्यञ्जनाक्षरनी जे जे प्रकारनी पर्याये थाय छे तेभनु नाम स्वपर्याय अने परपर्याय छे ओटले के स्वपर्याय अने परपर्यायना लेखी ओ पर्याये जे प्रकारनी होय छे जेभके-अकार आ अक्षर ह्रस्व, दीर्घ अने प्लुतना लेखी त्रषु प्रकारना कहेल छे, तथा ह्रस्व, दीर्घ, अने प्लुत, ओ पक्ष प्रत्येक उदात्त, अनुदात्त अने स्वरितना लेखी त्रषु त्रषु प्रकारना बताव्या छे ओम आ नव लेख थया ओ पक्ष सानुनासिक, अने निरनुनासिकना लेखी जे जे प्रकारना होवाथी अवर्ण अठार प्रकारना थाय छे ओज रीते ओक ओक अक्षरना सयोगथी अक्षराना नेटला सयोग प्राप्त थाय छे, तथा ओ सयोगाने कारणे अक्षरानी जे अवस्थाओ थाय छे, तथा ते अवस्थाओमा ते ते शब्दो जे चोतपोताना ते ते अर्थना अलिधायक स्वभाववाणा होय छे, ओ सधणी पक्ष व्यञ्जनाक्षरनी स्वपर्याये छे जे पर्याये ते नथी ते

ते स्वपर्यायाः परपर्यायश्च एकैके द्विधा भवन्ति । तद् यथा—सम्बद्धाः असम्बद्धाश्च । ये अकारस्य स्वपर्यायास्ते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा भवन्ति । नास्तित्वेन पुनस्त एव सर्वेऽप्यसम्बद्धाः । तत्र तेषां नास्तित्वाभावात् । एवमेवास्तन्तः परपर्याया अपि नास्तित्वेन सम्बद्धा भवन्ति । ते च परपर्याया अस्तित्वेनासम्बद्धाः, तेषामस्तित्वस्य तत्राभावात् । यथा—घटशब्दे घकारटकाराकारा ये पर्यायास्त एते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा

जान लेना चाहिये । ये जो परपर्याय हैं वे उस व्यञ्जनाक्षरकी ही स्वपर्यायकी तरह पर्याय हैं । अर्थात्—जिस प्रकार स्वपर्याय व्यञ्जनाक्षरकी निज पर्याय कही गई हैं, उसी प्रकार परपर्याय भी उस व्यञ्जनाक्षरकी मानी जाती है, क्यों कि वे वही व्यञ्जनाक्षर हैं और इसी लिये उस विवक्षित अकारादि अक्षरकी वे विशेषक होती हैं, जैसे—कहा जाता है कि—‘यह मेरा शत्रु है ।’

स्वपर्याय और परपर्याय ये दोनों दो प्रकारकी बतलाई गई हैं एक सबद्ध और दूसरी असबद्ध । विवक्षित शब्दकी जो स्वपर्याय हुआ करती है वे वहां अस्तित्व धर्मसे सबधित रहा करती हैं, और जो परपर्याय हुआ करती है वे वहां नास्तित्व धर्मसे सबधित रहा करती हैं । स्वपर्याय नास्तित्व धर्म से सबधित नहीं होती हैं, क्यों कि वस्तु की स्वपर्याय वस्तु में अस्तित्व धर्म से सबधित और नास्तित्व धर्म से असबधित मानी गई है । इसी तरह पर पर्याय वस्तु में नास्तित्व धर्म

अधी परपर्याय छे ओ न प्रदारे धवर्ण आदि व्यञ्जनाक्षरभा पण स्वपर्याय अने परपर्याय नमण लेवी जेधं ओ ओ परपर्याय छे तेते व्यञ्जनाक्षरनी न स्वपर्यायना लेवी पर्याय छे ओटले के नम स्वपर्याय व्यञ्जनाक्षरनी पोतानी पर्याय ओडेवामा आवी छे तेम पर पर्याय पण ते व्यञ्जनाक्षरनी मानवामा आवे छे, ङारणु डे तेओ त्या व्यञ्जनाक्षर छे अने तेधी ते विवक्षित अकारादि अक्षरनी तेओ विशेषक होय छे, नमके “आ भारे शत्रु छे” ओम कडेवामा आवे छे

स्वपर्याय अने परपर्याय ओ नने ओ ओ प्रदारेनी भतावी छे ओड सभद्ध अने णीण असभद्ध विवक्षित शब्दनी ले पर्याय यथा ङरे छे तेओ त्या अस्तित्वधर्मधी सभधित रह्या ङरे छे, अने ले परपर्याय होय छे तेओ त्या नास्तित्वधर्मधी सभधित रह्या ङरे छे स्वपर्याय नास्तित्वधर्मधी सभधित होती नथी, ङारणु डे वस्तुनी स्वपर्याय वस्तुमा अस्तित्वधर्मधी सभधित अने नास्तित्वधर्मधी असभधित मानवामा आवी छे ओन प्रमाणे परपर्याय वस्तुमा नास्तित्वधर्मधी सभधित अने अस्तित्वधर्मधी असभधित भताववामा

ભવન્તિ, તેવાં તત્ર વિચિત્રમાનત્વાત્ । ત एव घटकारणकारणपर्याया रथशब्दादिषु अस्तित्वेनाऽसम्बद्धा भवन्ति, तेषां तत्राभावात् । तदत्र स्वपर्याया जमित्वेन तत्र सम्बद्धा अन्यत्र चाऽसम्बद्धा भवन्ति । त एव स्वपर्याया नास्तित्वेन तत्रासम्बद्धाः, अन्यत्र तु सम्बद्धा भवन्ति ।

तथा—ये रथशब्दस्य स्वपर्यायास्ते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा, तेषां तत्र विचि-
मानत्वात् । घटशब्दे तत्रासम्बद्धा, तेषां तत्रासत्त्वात् । त एव च रथशब्दे नास्ति
त्वेनासम्बद्धाः, घटशब्दे तु सम्बद्धा इति तदेतद् अनाक्षर रणितमिति शेषः ।

સે સમ્બંધિત ઓર અસ્તિત્વ ધર્મ સે અસમ્બંધિત કહી ગઈ છે. જૈસે—ઘટ શબ્દ મેં “ઘ, ટ, અ” રૂપ અર્થાત્—ગકાર, ટકાર, અકારરૂપ જો પર્યાયેં હૈં, યે વહા (ઘટ મેં) અસ્તિત્વ ધર્મ સે સમ્બંધ રચને વાલી છે, યયોં કિં ઇનકી વહા વિચિત્રમાનતા છે. તથા રથ આદિ શબ્દોં મેં ઇનકી વિચિત્રમાનતા નહીં હોને કે કારણ યે વહા ર ઓર આદિ મેં અસ્તિત્વ ધર્મ સે અસમ્બંધિત હૈં. ઇસ તરહ સ્વપર્યાય વહા (ઘટ શબ્દ મેં) અસ્તિત્વ સે સબદ્ધ હૈં ઓર અન્યત્ર રથ આદિ મેં અસ્તિત્વ સે વહા સબદ્ધ નહીં હૈં, તથા યહી સ્વપર્યાય નાસ્તિત્વ સે વહા અસબદ્ધ હૈં, ઓર અસ્તિત્વ સે સબદ્ધ હૈં. ઇસી તરહ રથ આદિ શબ્દો કી જો સ્વપર્યાયેં હૈં યે વહા અસ્તિત્વ ધર્મ સે સુસમ્બંધિત હૈં, કારણ ઇનકી હી વહા વિચિત્રમાનતા છે, ઘટ શબ્દ મેં ઇનકી વિચિત્રમાનતા નહીં હોને સે યે વહા અસબંધિત હૈં. રથ શબ્દ મેં યે નાસ્તિત્વ ધર્મ સે અસબદ્ધ ઇસ લિચે માની ગઈ છે કિં વહા ઇનકી (ર, ધ, અ) કી વિચિત્રમાનતા હૈં ઓર ઘટ શબ્દ મેં નાસ્તિત્વ ધર્મસે સમ્બંધિત ઇસલિચે

આવેલ છે જેમકે ‘ઘટ’ શબ્દમા “ઘ, ટ, અ,” ૩૫ એન્ડે ડે ઘકાર, ટકાર, અકાર રૂપ જે પર્યાયો છે તેઓ ત્યા (ઘટમા) અસ્તિત્વધર્મથી સબંધ ગણનારી છે, કારણ કે તેમની ત્યા હાજરી છે તથા ‘રથ’ આદિમા તેમની વિદ્યમાનતા (હાજરી) ન હોવાને કારણે તેઓ ત્યા (રથ આદિમા) અસ્તિત્વધર્મથી અસબંધિત છે આ રીતે સ્વપર્યાય ત્યા (ઘટ શબ્દમા) અસ્તિત્વથી સબંધ છે અને અન્યત્ર (રથ આદિમા) અસ્તિત્વથી તે સબંધ નથી, તથા એજ સ્વપર્યાય નાસ્તિત્વથી ત્યા અસબંધ છે અને અસ્તિત્વથી સબંધ છે એજ પ્રમાણે રથ આદિ શબ્દોની જે સ્વપર્યાયો છે તેઓ ત્યા અસ્તિત્વધર્મથી સુસબંધિત છે, કારણ કે તેમની જ ત્યા વિદ્યમાનતા છે, ‘ઘટ’ શબ્દમા તેમની વિદ્યમાનતા ન હોવાથી તેઓ ત્યા અસબંધિત છે ‘રથ’ શબ્દમા તેઓ નાસ્તિત્વધર્મથી અસબંધ તે કારણે માની છે કે ત્યા તેમની (ર, ધ, અ) વિદ્યમાનતા છે અને ઘટ શબ્દમા નાસ્તિત્વધર્મથી સબંધિત તે કારણે મનેલી

शिष्यः पृच्छति—‘ से किं तं ’ इत्यादि । अथ किं तद् लब्धक्षरमिति ।
उत्तरमाह—‘ लद्धिअक्षरं ’ इत्यादि । लब्धक्षरम्-लब्धिः=उपयोगरूपा, सा चेह
प्रस्तुत्यात् शब्दार्थपर्यालोचनानुसारिणी गृह्यते । लब्धिरूपमक्षर लब्धक्षर भावश्रुत-
मित्यर्थः, अक्षरलब्धिः-अक्षरे=अक्षरोच्चारणे अक्षरानुबोधे वा लब्धिः=उपयोगो
यस्य सोऽक्षरलब्धिः-अकाराद्यक्षरानुगतश्रुतलब्धिसमन्वितस्येत्यर्थः, लब्ध-
क्षर=भावश्रुत समुत्पद्यते-शब्दादिग्रहणसमन्तरमिन्द्रियमनोनिमित्त शब्दार्थ-
पर्यालोचनानुसारि ‘ शाब्दोऽयम् ’ इत्याद्यक्षरानुगत विज्ञानमुपजायते इत्यर्थः ।

मानी गई है कि वहाँ उनकी (र, य, अ, की) अव्ययमानता है । इस
तरह स्वपर्याय और परपर्याय, ये दोनों प्रकारकी पर्याये अपने व्यजना-
क्षरोंमें सन्नद्ध और असन्नद्ध भेदवाली सिद्ध हो जाती हैं । इस प्रकार
यहाँ तक व्यजनाक्षरका वर्णन हुआ ॥

शिष्य लब्धक्षरके विषयमें पृच्छता है—‘ से किं त लद्धि-अक्षरं ’
इत्यादि ।

लब्धक्षरका क्या स्वरूप है ? उत्तर—लब्धि नाम है उपयोगका,
यह उपयोग, शब्द और अर्थका जो पर्यालोचनरूप व्यापार होता है
उसका स्वरूप यहाँ ग्रहण किया गया है । इस तरह लब्धिरूप जो अक्षर
है वह लब्धक्षर है, और यह भावश्रुतरूप है । अक्षरलब्धिक-अर्थात्
अक्षरके उच्चारण करनेमें अथवा अक्षरके अनुबोध करनेमें उपयोगयुक्त-
व्यक्तिको यह भावश्रुत उत्पन्न होता है । आकारादि अक्षरानुगतश्रुत-
लब्धि समन्वित प्राणीको शब्दादि ग्रहणके बाद इन्द्रिय और मन निमि-

छे के त्या तेमनी (र, य, अनी) अव्ययमानता छे आ रीते स्वपर्याय अने
परपर्याय, ये अने प्रजातनी पर्याये पोतपोताना व्यजनाक्षरेमा सन्नद्ध अने
असन्नद्ध लेहवाणी सिद्ध थाय छे आ प्रजारे अही सुधी व्यजनाक्षरनु
वर्णन थयुं

शिष्य लब्धक्षरना विषयमा पूछे छे—“ से किं त लद्धिअक्षरं ” इत्यादि
लब्धक्षरनु शु स्वरूप छे ? उत्तर—लब्धि उपयोगनु नाम छे, आ उपयोग
शब्द अने अर्थना ने पर्यालोचनरूप व्यापार छेय छे तेनु स्वरूप अही
अडलु करेव छे आ रीते लब्धिरूप ने अक्षर छे ते लब्धक्षर छे, अने ते
भावश्रुतरूप छे अक्षरलब्धि-अटके के अक्षरनु उच्चारण करेनामा अथवा
अक्षरना अनुबोध करेनामा उपयोग-युक्त व्यक्तितने ये भावश्रुत उत्पन्न थाय
छे, आकारादि अक्षरानुगत-श्रुतलब्धि समन्वित प्राणीने शब्दादि अडलु कथां

ભવન્તિ, તેવા તત્ત્વ વિગ્રમાત્વાત્ । ત एव प्रकारस्तराकारपर्याया स्थगन्दादिषु अस्तित्वेनाऽसम्बद्धा भवन्ति, तेषां तत्राभावात् । तदत्र स्वपर्याया उचितत्वेन तत्र सम्बद्धा अन्यत्र चाऽसम्बद्धा भवन्ति । त एव स्वपर्याया नास्तित्वेन तत्रासम्बद्धाः, अन्यत्र तु सम्बद्धा भवन्ति ।

तथा-ये स्थशब्दस्य स्वपर्यायास्ते तत्रास्तित्वेन सम्बद्धा, तेषां तत्र विग्रमानत्वात् । घटशब्दे त्वसम्बद्धा, तेषां तत्रासत्त्वात् । त एव च स्थशब्दे नास्तित्वेनासम्बद्धा, घटशब्दे तु सम्बद्धा इति तदेतद् वृत्तान्तरं वर्णितमिति शेषः ।

સે સવધિત ઔર અસ્તિત્વ ધર્મ સે અમયંપિત કહી ગઈ છે । જેસે-ઘટ શબ્દ મેં “ ઘ, ટ, અ ” રૂપ અર્થાત્-પકાર, ટકાર, અકારરૂપ જો પર્યાય હૈં, યે વહા (ઘટ મે) અસ્તિત્વ ધર્મ સે સમઘ રખને વાલી હૈં, યજોં કિ ઇનકી યહા વિઘમાનતા હૈં । તયા સ્થ આદિ શબ્દોં મેં ઇનકી વિઘમાનતા નહીં હોને કે કારણ યે વહા ર ઓ આદિ મેં અસ્તિત્વ ધર્મ સે અસવધિત હૈં । ઇસ તરહ સ્વપર્યાય વહા (ઘટ શબ્દ મેં) અસ્તિત્વ સે સબદ્ધ હૈં ઔર અન્યત્ર સ્થ આદિ મેં અસ્તિત્વ સે વહ સબદ્ધ નહીં હૈ, તયા યહી સ્વપર્યાય નાસ્તિત્વ સે વહા અસબદ્ધ હૈ, ઔર અસ્તિત્વ સે સબદ્ધ હૈ । ઇસી તરહ સ્થ આદિ શબ્દો કી જો સ્વપર્યાયોં હૈ યે વહાં અસ્તિત્વ ધર્મ સે સુસવધિત હૈં, કારણ ડનકી હી વહા વિઘમાનતા હૈ, ઘટ શબ્દ મેં ઇનકી વિઘમાનતા નહીં હોને સે યે વહા અસવધિત હૈ । સ્થ શબ્દ મેં યે નાસ્તિત્વ ધર્મ સે અસબદ્ધ ઇસ લિયે માની ગઈ હૈ કિ વહા ડનકી (ર, ય, અ) કી વિઘમાનતા હૈ ઔર ઘટ શબ્દ મે નાસ્તિત્વ ધર્મસે સવધિત ઇસલિયે

આવેલ છે જેમકે ‘ઘટ’ શબ્દમા “ ઘ, ટ, અ, ” રૂપ એટલે કે ઘકાર, ટકાર, અકાર રૂપ જે પર્યાયો છે તેઓ ત્યાં (ઘટમા) અસ્તિત્વધર્મથી સબધ નાખ નારી છે, કારણ કે તેમની ત્યા હોજરી છે તથા ‘સ્થ’ આદિમા તેમની વિઘમાનતા (હોજરી) ન હોવાને કારણે તેઓ ત્યા (સ્થ આદિમા) અસ્તિત્વધર્મથી અસબધિત છે આ રીતે સ્વપર્યાય ત્યા (ઘટ શબ્દમા) અસ્તિત્વથી સબદ્ધ છે અને અન્યત્ર (સ્થ આદિમા) અસ્તિત્વથી તે સબદ્ધ નથી, તથા એજ સ્વપર્યાય નાસ્તિત્વથી ત્યા અસબદ્ધ છે અને અસ્તિત્વથી સબદ્ધ છે એજ પ્રમાણે સ્થ આદિ શબ્દોની જે સ્વપર્યાયો છે તેઓ ત્યા અસ્તિત્વધર્મથી સુસબધિત છે, કારણ કે તેમની જ ત્યા વિઘમાનતા છે, ‘ઘટ’ શબ્દમા તેમની વિગ્રમાનતા ન હોવાથી તેઓ ત્યા અસબધિત છે ‘સ્થ’ શબ્દમા તેઓ નાસ્તિત્વધર્મથી અસબદ્ધ તે કારણે માની છે કે ત્યા તેમની (ર, ય, અ) વિઘમાનતા છે અને ઘટ શબ્દમા નાસ્તિત્વધર્મથી સબધિત તે કારણે મનેલી

માનશ્રુત ત્ર શબ્દાર્થ પર્યાલોચનાનુસારિ ત્રિજ્ઞાનમ્ । શબ્દાર્થપર્યાલોચન ચાક્ષરં વિના ન સમ્ભવતીતિ ચેત્ ?,

સત્યમેતત્—ફિતુ યત્રપિ તેપામેકેન્દ્રિયાદીના પરોપદેશશ્રવણાઽસમ્ભવસ્તથાપિ તેપા તથાત્રિધક્ષયોપશમભાવતઃ કાચિદવ્યક્તાઽવરલઘ્વિર્ભવતિ, યદ્વશાદઘરાનુપક્ત શ્રુતજ્ઞાનમુપજાયતે । ઇત્ય ચૈતદગ્નીર્કર્તવ્યમ્, તથાહિ-તેપામપ્યાહારાદ્યભિલાપ ઉપજાયતે, અભિલાપશ્ચ પ્રાર્થના, સા ચ ' યદીદમહ પ્રાન્નોમિ, તતો ભવ્ય ભવતી' -ત્યાદ્યક્ષરાનુગતૈવ ।

“દ્વસુયાભાવમિ વિ, ભાવસુય પત્તિવાઈણ” ઇતિ દ્રવ્યશ્રુતકે અભાવમેં મી પૃથિવ્યાદિ એકેન્દ્રિયાદિક જીવોમે ભાવશ્રુત હોતા હૈ, પરન્તુ જવ ભાવશ્રુતકા અર્થ “ શબ્દ ઓર અર્થકા પર્યાલોચન કરના ભાવશ્રુત હૈ” એસા ક્રિયા જાતા હૈ, તવ ડનમે ભાવશ્રુતકા સદ્ભાવ કૈસે સિદ્ધ હો સક્રતા હૈ, ? કયો કિ શબ્દ ઓર અર્થકા પર્યાલોચનરૂપ ભાવશ્રુત અક્ષરકે વિના સભવિત નહી હોતા હૈ ।

ઉત્તર—શબ્દા ઠીક હૈ । પરન્તુ જવ ઇસકા વિચાર ક્રિયા જાતા હૈ તો યહ વાત સમઙ્ગમે આ હી જાતી હૈ । હા યહ ઉચિત હૈ કિ ડન એકેન્દ્રિયાદિક જીવોં મેં પરોપદેશ શ્રવણ કી સભવતા નહી હૈ, પરન્તુ ફિર મી ડનમે ઇસ પ્રકાર કા ક્ષયોપશમ અવઙ્ગ્ય હૈ કિ જિસસે ડનમે અવ્યક્ત અક્ષરલઘ્વિ હોતી હૈ, ઓર ઇસીસે અક્ષરાનુસવદ્ શ્રુતજ્ઞાન ડનકે હોતા હૈ । યહ વાત ઇસ તરહ સે ડનમેં જાની જાતી હૈ કિ આહાર, ભવ, મૈથુન ઓર

“દ્વસુયાભાવમિ વિ, ભાવસુય પત્તિવાઈણ” ઇતિ દ્રવ્યશ્રુતના અભાવમા પણ પૃથિવ્યાદિ-એકેન્દ્રિયાદિક્ક એવોમા ભાવશ્રુત થાય છે, પણ જો ભાવશ્રુતનો અર્થ “ શબ્દ અને અર્થનું પર્યાલોચન કરવું તે ભાવશ્રુત છે ” એ પ્રમાણે કરાય તો તેમનામા ભાવશ્રુતનો સદ્ભાવ કેવી રીતે સિદ્ધ થઈ શકે છે, તરણ કે શબ્દ અને અર્થના પર્યાલોચનરૂપ ભાવશ્રુત અક્ષરના વિના સભવિત હોતું નથી

ઉત્તર—શબ્દ અસંભવ છે, પણ જો તેના પર વિચાર કરવા મા આવે તો એ વાત સમજવામા આવી જ નથી છે હા, એ ઉચિત છે કે એ એકેન્દ્રિયાદિક્ક એવોમા પરોપદેશ શ્રવણના સભવિતતા નથી, છતા પણ તેમનામા એ પ્રકારનો ક્ષયોપશમ અવગ્ય છે, કે જેથી તેમનામા અવ્યક્ત અક્ષરલઘ્વિ હોય છે, અને તેથી જ અક્ષરાનુપક્ત શ્રુતજ્ઞાન તેમને થાય છે એ વાત આ રીતે તેમનામા ભણી શકાય છે કે આહાર, ભવ, મૈથુન અને પરિશદ્, એ ચાર પ્રકારની જે

નન્વિદ્ લઘ્વ્યક્ષર સક્તિનામેય પુરુષાદીના સમ્મતિ, નત્વસક્તિનામેકેન્દ્રિયા-
દીનામ્, તેપામકારાદિવર્ણાનામવગમે ઉચારણે વા લઘ્વ્યમમ્મયાત્ । નદિ તેપાં
પરોપદેશશ્રવણ સમ્મતિ, યેનાડકારાદિવર્ણાનામગમાદિર્ભવેત્ । યથ ચ-એકેન્દ્રિ-
યાદીનામપિ ભાવશ્રુતરૂપ લઘ્વ્યખરમિપ્યતે । તથાહિ-પૃથિવ્યાદીનામપિ ભાવશ્રુત
વર્ણિતમ્—

તથા ચોક્તમ્—‘ દ્રવ્યમૃયાભાવમિ યિ, ભાવસુય પત્થિગાર્ઠણ ’ ઇતિ ।

છાયા—‘ દ્રવ્યશ્રુતાભાવેડપિ ભાવશ્રુત પાર્થિગાદીનામ્ ’ ઇતિ ।

ત્ત્ર જો શબ્દ ઓર અર્થકી પર્યાલોચનાકે અનુસાર જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ
યહી ભાવશ્રુત હૈ । જૈસે શબ્દકા શબ્દ જવ કાનમેં પડતા હૈ તથ શ્રોતા
કો ંસા જો વિચાર હોતા હૈ કિ ‘ યહ અન્યકા શબ્દ નહીં હૈ યહ તો
શબ્દકા શબ્દ હૈ ’ ઇસીકા નામ ભાવશ્રુત હૈ ।

શકા—લઘ્વ્યક્ષરરૂપ ભાવશ્રુતકા જો ંસા આપ સ્વરૂપ પ્રકટ
કર રહે હૈં વહ તો સજી પચેન્દ્રિય પ્રાણીકે હી ઘટિત હો સકતા હૈ, અ-
સજી એકેન્દ્રિયાદિકોં કે નહીં. ક્યોં કિ ઉનમે ંસી લઘ્વિ નહીં હૈ, કિ
જિસસે વે અકાર આદિ અક્ષરોંકા અવગમ, અથવા ઉચ્ચારણ કર સકેં ।
અકાર આદિ અક્ષરોંકા જો અવગમ આદિ હોતા હૈ, વહ પરકે ઉપદેશ
શ્રવણપૂર્વક હોતા હૈ । ઉનમેં કર્ણ ઇન્દ્રિય ઓર મનકા અભાવ હોનેસે
પરોપદેશ શ્રવણતા આતી નહીં હૈ, પરન્તુ લઘ્વ્યક્ષરરૂપ યહ ભાવશ્રુત તો
એકેન્દ્રિય આદિ પ્રાણિયો મે ભા શાસ્ત્રકારોને વતલાયા હૈ । જૈસે કહા હૈ—

પઠી, ઇન્દ્રિય અને મન નિમિત્તક જે શબ્દ અને અર્થની પર્યાલોચના અનુસાર
જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે એજ લાવશ્રુત છે જેમકે શ ખનેા શબ્દ ત્યારે કાને પડે
છે, ત્યારે શ્રોતાને એવો જે વિચાર થાય છે કે “ આ ખીલનેા શબ્દ નથી,
આ તો શ ખનેા શબ્દ છે ” એતુ નામ લાવશ્રુત છે

શકા—લઘ્વ્યક્ષરરૂપ લાવશ્રુતતુ આપ જે સ્વરૂપ પ્રકટ કરો છો, તે તો
સ સીપચેન્દ્રિય પ્રાણીમા જ ઘટાવી શકાય છે, અસ સી એકેન્દ્રિયાદિકોમા નહીં,
કારણ કે તેમનામા એવી લઘ્વિ નથી કે જેથી તેઓ અકાર આદિ અક્ષરોને
અવગમ અથવા ઉચ્ચારણ કરી શકે અકાર આદિ અક્ષરોતુ જે અવગમ
આદી થાય છે તે પરના ઉપદેશ શ્રવણ પૂર્વક થાય છે તેમનામા કલ્પેન્દ્રિય
અને મનનેા અભાવ હેવાથી પરોપદેશ શ્રવણતા આવતી નથી પણ લઘ્વ્યક્ષરરૂપ
આ લાવશ્રુત તો એકેન્દ્રિય આદિ પ્રાણિઓમા પણ શાસ્ત્રકારોએ બતાવ્યુ છે
જેમકે કહ્યુ છે કે—

भावश्रुत च शब्दार्थ पर्यालोचनानुसारि विज्ञानम् । शब्दार्थपर्यालोचन चाक्षर
पिना न सम्भवतीति चेत् ?,

सत्यमेतत्—किंतु यद्यपि तेषामेकेन्द्रियादीना परोपदेशश्रवणाऽसम्भवस्तथापि
तेषा तथात्रिधक्षयोपगमभावतः काचिदव्यक्ताऽक्षरलब्धिर्भवति, यद्वशादक्षरा-
नुपक्त श्रुतज्ञानमुपजायते । इत्थं चैतदङ्गीकर्तव्यम्, तथाहि—तेषामप्याहाराद्यभिलाष
उपजायते, अभिलाषश्च प्रार्थना, सा च ' यदीदमहं प्राप्नोमि, ततो भव्य भवती'
—त्याद्यक्षरानुगतैव ।

“ द्रव्यसुखाभावमि वि, भावसुख पत्तिवाङ्मण ” इति द्रव्यश्रुतके
अभावमें भी पृथिव्यादि एकेन्द्रियादिक जीवोमे भावश्रुत होता है,
परन्तु जब भावश्रुतका अर्थ “ शब्द और अर्थका पर्यालोचन करना
भावश्रुत है ” ऐसा किया जाता है, तब उनमें भावश्रुतका सद्भाव कैसे
सिद्ध हो सकता है, ? क्यों कि शब्द और अर्थका पर्यालोचनरूप भावश्रुत
अक्षरके बिना सम्भवित नहीं होता है ।

उत्तर—शब्दा ठीक है । परन्तु जब इसका विचार किया जाता है तो
यह बात समझमें आ ही जाती है । हा यह उचित है कि उन एकेन्द्रियादिक
जीवों में परोपदेश श्रवण की सम्भवा नहीं है, परन्तु फिर भी उनमें
इस प्रकार का क्षयोपगम अवश्य है कि जिससे उनमें अव्यक्त अक्षर-
लब्धि होती है, और इसीसे अक्षरानुसवद्ध श्रुतज्ञान उनके होता है । यह
बात इस तरह से उनमें जानी जाती है कि आहार, भय, मैथुन और

“ द्रव्यसुखाभावमि वि, भावसुख पत्तिवाङ्मण ” इति द्रव्यश्रुतना अला
वमा पणु पृथिव्यादि—एकेन्द्रियादिक एवोमा भावश्रुत थाय ठे, पणु जे भाव-
श्रुतने अर्थ “ शब्द अने अर्थनु पर्यालोचन करवु ते भावश्रुत छे ” जे
प्रमाणे उराय तो तेमनामा भावश्रुतने सद्भाव जेवी गीते सिद्ध थरु शब्द छे,
उरथु के शब्द अने अर्थना पर्यालोचनरूप भावश्रुत अक्षरना बिना न भवित
डोतु नथी

उत्तर—शब्द अरापर छे, पणु जे तेना पर विचार करव मा आवे तो
जे वात समजवामा आवी न नथ छे डा, जे उचित छे के जे एकेन्द्रियादिक
एवोमा परोपदेश श्रवणना न भवितता नथी, छता पणु तेमनामा जे प्रकारने
क्षयोपगम अवश्य छे, ते जेथी तेमनामा अव्यक्त अक्षरलब्धि डोथ छे, अने
तेथी न अक्षरानुपगत श्रुतज्ञान तेमने थाय छे जे वात आ रीते तेमनामा
लक्ष्मी शक्य छे के आहार, भय, मैथुन अने परिश्रम, जे चार प्रकारनी जे

તતસ્તેપામપિ ફાગિદન્યક્તાઽક્ષરલઙ્ગિપ્રવચ્યમઙ્ગીકર્તવ્ય્યા । તતસ્તેપામપિ લઙ્ગ્યક્ષર ભવતીતિ ન કથિદોષઃ ।

તત્ત્વ લઙ્ગ્યક્ષર પદત્રિપં પ્રણમ્ । તદ્ યથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયલઙ્ગ્યક્ષરમિત્યાદિ ।
 રૂઢ યત્ શ્રાત્રેન્દ્રિયેણ શબ્દશ્રવણે સત્તિ 'શાક્તોઽયમ્' ઇત્યાદ્યશરાનુગત ગત્યર્થપર્યા
 ળોચનાનુસારિ વિજ્ઞાન, તત્ શ્રોત્રેન્દ્રિયલઙ્ગ્યક્ષરમ્, તસ્ય શ્રોત્રેન્દ્રિયનિમિત્તત્વાત્ ।

પરિગ્રહ, યે ચાર પ્રકાર કી જો જ્ઞાન શાસ્ત્રકારો ન વતલાઈ હે વે જન
 નકેન્દ્રિયાદિ જીવો મેં હોની હે । યે આહાર આદિ સજ્ઞાન અભિલાપા
 સ્વરૂપ માની ગઈ હે । અભિલાપા કા તાત્પર્ય યહા ડસ પ્રકાર કા હે
 કિ-“યદિ મેં ઇસે પ્રાપ્ત કર લેતા હુ તો યહ વહુન અચ્છી વાત હોતી
 હે” । જય ડસ પ્રકાર કી અભિલાપા ડનમેં હે તો યહ માનના હી પડતા
 હે કિ ડનમેં અક્ષરાનુપક્ત શ્રુતજ્ઞાન મી હે, ત્યોં કિ યહ પ્રાર્થના રૂપ
 અભિલાપા અક્ષરાનુસરૂદ્ધ હી હે, ડસલિયે ડનમેં મી યોડી વહુત અવ્યક્ત
 અક્ષરલઙ્ગિ અવચ્ય અગીકાર કરનો ચાહિયે । જય યહ વાત માન લી
 જાતી હે તો ડનકે મી લઙ્ગ્યક્ષરરૂપ ભાવશ્રુત હે, યહ સિદ્ધાન્ત સગત
 વૈઠ જાતા હે ।

યહ લઙ્ગ્યક્ષર ડહ પ્રકાર કા વતલાયા ગયા હે-શ્રોત્રેન્દ્રિય લઙ્ગ્યક્ષર,
 ચક્ષુ ઇન્દ્રિય લઙ્ગ્યક્ષર ઇત્યાદિ । શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય સે શબ્દસુનને પર જય
 ણેસા માન હોતા હે કિ “યહ શબ્દ શસ્ત્ર કા હે” તવ યહ જ્ઞાન અક્ષરા
 નુગત શબ્દ ઓર અર્થકી પર્યાલોચના કે અનુસાર ઉદ્ભૂત હોને કે કારણ

સ જ્ઞાઓ શાસ્ત્રકારોએ બનાવા છે, તે એ એકેન્દ્રિયાદિ શ્રોત્રેમા પણ હોય છે
 એ આહાર આદિ સ જ્ઞાઓ અભિલાપા સ્વરૂપ માનવામા આવી છે અભિલાપાનુ
 તાત્પર્ય અહીં એ પ્રકારની પ્રાર્થના છે કે “જે હુ તેને પ્રાપ્ત કરે તો એ
 ઘણી સરસ વાત છે” ત્યારે આ પ્રકારની અભિલાપા તેઓમા છે, ત્યારે એ
 માનવુ જ પડે છે કે તેમનામા અક્ષરાનુપક્ત શ્રુતજ્ઞાન પણ છે કારણ કે
 એ પ્રાર્થના રૂપ અભિલાપા અક્ષરાનુગત જ છે, તે કારણે તેઓમા પણ
 થોડી ઝાઝી અવ્યક્ત અક્ષરલઙ્ગિ અવચ્ય અગીકાર કરવી જોઈએ જો એ વાત
 સ્વીકારીએ તો તેમનામા પણ લઙ્ગ્યક્ષરરૂપ ભાવશ્રુત છે આ સિદ્ધાન્ત સુસગત
 થઈ જાય છે

આ લઙ્ગ્યક્ષર છ પ્રકારનુ બતાવ્યુ છે-શ્રોત્રેન્દ્રિય લઙ્ગ્યક્ષર, ચક્ષુ ઇન્દ્રિય
 લઙ્ગ્યક્ષર ઇત્યાદિ શ્રોત્રેન્દ્રિયથી શબ્દ સંભગતા જ્ઞાને એવુ ભાન થાય છે કે
 “આ શબ્દ શખનો છે” ત્યારે તે જ્ઞાન અક્ષરાનુગત શબ્દ અને અર્થની
 પર્યાલોચના અનુસાર ઉત્પન્ન થવાને કારણે શ્રોત્રેન્દ્રિય લઙ્ગ્યક્ષર છે

यत्तु चक्षुषा आम्रफलादिमृगफलस्य 'आम्रफलम्' इत्याद्यवसानुगत शब्दार्थपर्या-
लोचनात्मक विज्ञान, तच्चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षरम् । एव शोषेन्द्रियलब्ध्यक्षरमपि यो यम् ।

शियाः पृच्छति—'से किं त' इति । अथ किं तदनक्षरश्रुतिमिति । उत्तरमाह—
'अणक्खरसुय०' इत्यादि । अनक्षरात्मकम्-अक्षररहित श्रुतम्-अनक्षरश्रुतम्, तत्
अनेकविध प्रज्ञप्तम्, तद् यथा-उच्छ्वसितमित्यादि । उच्छ्वसितम्=उच्छ्वसनम् ।
निःश्वसित=निःश्वसनम् । निष्कृत निष्ठीवनम् । कासितम्=वासनम् । च शब्दः
समुच्चयार्थः । क्षुत=क्षवणम्-'छीक' इति भाषाप्रसिद्धम् । निःमिद्वितम्=निःसि-
द्धनम्-नासिनाजन्य शब्द, अनुसार=अनुसरणम्-अयोगयोर्निसरण, तज्जनित.

श्रोत्रेन्द्रिय लब्ध्यक्षर है, कारण यह श्रोत्रेन्द्रिय के निमित्त से उत्पन्न हुआ
है । आम्ब से आम्रफल आदि को देखकर जो ऐसा विचार होना है कि
"यह आम्र का फल है" यह चक्षुडन्द्रिय लब्ध्यक्षर है, क्योंकि "यह
आम्र का फल है" इस प्रकार के अक्षर से यह ज्ञान मिला हुआ है
और इसमें शब्द एव उसके अर्थ की पर्यालोचना हो रही है । इसी
तरह से श्रोत्रेन्द्रिय लब्ध्यक्षर भी जान लेना चाहिये ।

फिर शिया पृच्छता है—'से किं त अणक्खर सुय०' इत्यादि ।

अनक्षररूप श्रुतज्ञान का क्या स्वरूप है ? उत्तर-अनक्षररूप श्रुतज्ञान
अनेक प्रकार का बनलाया गया है—(१) उच्छ्वसित, (२) निःश्वसित
(३) निष्कृत, (४) कासित, (५) क्षुत, (छीक) (६) निःमिद्वित, (७) अनु-
सार, (८) खलित, आदि (श्लेषित, चीत्कार आदि) । नामिकाजन्य शब्द

ते श्रोत्रेन्द्रियना निमित्तथी उत्पन्न थयु ते आणयी अम्रक्षण आदिने जेठने
ने अयेवा विज्ञा आवे छे के "आ आम्रक्षण ते" अये चक्षुडन्द्रियलब्ध्यक्षर
छे, कारण के "आ आम्रक्षण छे" आ प्रतरना अक्षरथी आ ज्ञान भणेलु छे,
अने तेमा शब्द अने तेना अर्थनी पर्यालोचना थछ ग्ही ते अये प्रतरे
आधीनी छिन्द्रियेतु लब्ध्यक्षर पथु अभलु लेवु

वणी शिष्य पूछे छे—'से किं त अणक्खर सुय०' इत्यादि

अनक्षररूप श्रुतज्ञानतु शु स्वरूप छे ।

उत्तर—अनक्षररूप श्रुतज्ञान अनेक प्रकारतु णताव्यु छे—(१) उच्छ्वसित
(२) निःश्वसित, (३) निष्कृत, (४) कासित, (५) क्षुत (छीक), (६) निःमि-
द्वित, (७) अनुसार (८) खलित आदि (श्लेषित, चीत्कार, आदि) नामिका-

તતસ્તેપામપિ ક્ષાત્રિદ્યક્તાઞ્ચરલગ્નિરનુદયમત્તીકર્તવ્યા । તતસ્તેપામપિ લ
લ્ચક્ષર મત્તીતિ ન કથિદ્દોષઃ ।

તત્ત્વ લલ્ચક્ષર પદ્મિથ પ્રણમમ્ । તદ્ યથા-શ્રોત્રેન્દ્રિયલ્લ્ચક્ષરમિત્યાદિ ।
ઇદ્દ યત્ શ્રોત્રેન્દ્રિયેણ શબ્દશ્રવણે સતિ 'શાક્તોડયમ્' ઇત્યાગ્રધરાનુગત શબ્દાર્થપર્યા
લોચનાનુસારિ વિજ્ઞાન, તત્ શ્રોત્રેન્દ્રિયલ્લ્ચક્ષરમ્, તમ્ય શ્રોત્રેન્દ્રિયનિમિત્તત્વાત્

પરિગ્રહ, યે ચાર પ્રકાર કો જો જ્ઞાણે શાસ્ત્રકારો ન વતલાઈ હ વે ઇન
એકેન્દ્રિયાદિ જીવો મેં મ્હી હોની હ । યે આહાર આદિ સજ્ઞાણે અભિલાષા
સ્વરૂપ માની ગઈ હ । અભિલાષા ત્તા તાત્પર્ય યત્તા ઇમ પ્રકાર કા હૈ
કિ-“યદિ મેં ઇસે પ્રાપ્ત કર લેના હૈ તો યત્ વહુત અચ્છી વાત હોતી
હૈ” । જવ ઇસ પ્રકાર કો અભિલાષા ડનમેં હૈ તો યત્ માનના હી પડના
હૈ કિ ડનમેં અક્ષરાનુપક્ત શ્રુતજ્ઞાન મ્હી હૈ, ત્યોં કિ યત્ પ્રાર્થના રૂપ
અભિલાષા અક્ષરાનુસન્દ્દ હી હૈ, ઇસલિયે ડનમેં મ્હી યોડી વહુત અવ્યક્ત
અક્ષરલગ્નિ અવશ્ય અગીકાર કરનો ચાહિયે । જવ યત્ વાત માન લી
જાતી હૈ તો ડનકે મ્હી લલ્ચક્ષરરૂપ માવશ્રુત હૈ, યત્ સિદ્ધાન્ત સગત
વૈઠ જાતા હૈ ।

યત્ લલ્ચક્ષર ડહ પ્રકાર ત્તા વતલાયા ગયા હૈ-શ્રોત્રેન્દ્રિય લલ્ચક્ષર,
ચક્ષુ ઇન્દ્રિય લલ્ચક્ષર ઇત્યાદિ । શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય સે શબ્દસુનને પર જવ
એસા માન હોતા હૈ કિ “ યત્ શબ્દ શ્રવ કા હૈ ” તવ યત્ જ્ઞાન અક્ષરા
નુગત શબ્દ ઓર અર્થકો પર્યાલોચના કે અનુસાર ઉદ્ભૂત હોને કે કારણ

સ જ્ઞાઓ શાસ્ત્રકારોએ જનાવા ડે, તે એ એકેન્દ્રિયાદિ શ્રોત્રેમા પણ હોય છે
એ આહાર આદિ સ જ્ઞાઓ અભિલાષા સ્વરૂપ માનવામા આવી છે અભિલાષાનુ
તાત્પર્ય અહીં એ પ્રકારની પ્રાર્થના છે કે “ જો હુ તેને પ્રાપ્ત કર તો એ
ઘણી સરસ વાત છે ” ત્યારે આ પ્રકારની અભિલાષા તેઓમા છે, ત્યારે એ
માનવુ જ પડે છે કે તેમનામા અક્ષરાનુપક્ત શ્રુતજ્ઞાન પણ છે તારણ કે
એ પ્રાર્થના રૂપ અભિલાષા અક્ષરાનુગત જ છે, તે કારણે તેઓમા પણ
થોડી ઝઝી અવ્યક્ત અક્ષરલગ્નિ અવશ્ય અગીકાર કરવો જોઈએ જો એ વાત
સ્વીકારીએ તો તેમનામા પણ લલ્ચક્ષરરૂપ ભાવશ્રુત છે આ સિદ્ધાન્ત સુસગત
થઈ જાય છે

આ લલ્ચક્ષર છ પ્રકારનુ જતાવ્યુ છે-શ્રોત્રેન્દ્રિય લલ્ચક્ષર, ચક્ષુ ઇન્દ્રિય
લલ્ચક્ષર ઇત્યાદિ શ્રોત્રેન્દ્રિયથી શબ્દ સભગતા ત્યારે એવુ લાન થાય છે કે
“ આ શબ્દ શખનો છે ” ત્યારે તે જ્ઞાન અક્ષરાનુગત શબ્દ અને અર્થની
પર્યાલોચના અનુસાર ઉત્પન્ન થવાને કારણે શ્રોત્રેન્દ્રિય લલ્ચક્ષર છે, વ કે

श्रुतमित्यत्र श्रुतशब्दार्थाश्रयणात् । तथाहि-श्रूयते यत् तच्छ्रुतमित्युच्यते । करा-
दिचेष्टा तु न श्रूयते, ततो न तत्र द्रव्यश्रुतत्वमसङ्गः । उच्छ्वसितादिकं तु श्रूयते,
अनक्षरात्मकं च । अतस्तदनक्षरश्रुतमित्युक्तम् । तदेतदनक्षरश्रुतवर्णितम् ॥ सू० ३८ ॥

अथ सञ्चिन्नुत वर्णयति ।

मूलम्—से किं तं सण्णिसुयं ? । सण्णिसुयं तिविहं पण्णत्तं;
त जहा-कालिओवएसेणं, हेऊवएसेणं, दिट्ठिवाओवएसेणं । से
किं तं कालिओवएसेणं ? । कालिओवसेण-जस्स णं अत्थि ईहा,
अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिता, वीमंसा, से णं सण्णीति
लब्भइ । जस्स णं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा,
चिता, वीमंसा, से णं असण्णीति लब्भइ । सेत्तं कालिओवएसेणं ।

से प्रयोक्ता के हार्दिक भावोंका पता लग जाता है, एव प्रयोक्ता इसे जान-
बूझकर कहता है अतः उच्छ्वसित आदि की तरह यह भी भावश्रुत
का कार्य एव भावश्रुत का जनक है ।

उत्तर—इस प्रकार की शंका ठीक नहीं है, कारण—“श्रुत” यहाँ
श्रुतशब्द के अर्थ का आश्रय लिया गया है, और इसका तात्पर्य यह है
कि—“श्रूयते यत्तदिति श्रुतमित्युच्यते” अर्थात् जो सुना जावे वह श्रुत
है । हस्तादि की चेष्टा सुनी नहीं जाती है वह तो देखी जाती है इसलिये
वह द्रव्यश्रुतरूप नहीं मानी गई है । ये उच्छ्वसित आदि सुने जाते हैं
और स्वयं अक्षर से रहित हैं इसलिये ये अनक्षरश्रुतरूप माने गये हैं ।
इस तरह अनक्षरश्रुत का वर्णन हुआ ॥ सू० ३८ ॥

ભાવની ખખગ પડી નય છે અને પ્રયોક્તા એને બાણી બોધને કરે છે, તેથી
ઉચ્છ્વસિત આદિની જેમ, એ પણ ભાવશ્રુતનું ઠાર્થ અને ભાવશ્રુતનું જનક છે

ઉત્તર—આ પ્રકારની શંકા યોગ્ય નથી, કારણ કે “શ્રુત” અહીં શ્રુત
શબ્દના અર્થનો આધાર લેવાયો છે અને તેનું તાત્પર્ય એ છે કે “શ્રૂયતે યત્
દિતિશ્રુતમિત્યુચ્યતે” એટલે કે જે સંભળાય છે તે શ્રુત છે હસ્તાદિની ચેષ્ટા
સંભળાતી નથી, તે તો જોવાય છે, તે કારણે તે દ્રવ્યશ્રુતરૂપ મનાઈ નથી એ
ઉચ્છ્વસિત આદિ સંભળાય છે અને સ્વયં અક્ષર રહિત છે તેથી, તેને અનક્ષર-
શ્રુતરૂપ માન્યા છે આ ગીતે આ અનક્ષરશ્રુતનું વર્ણન થયું છે ॥ સૂ. ૩૮ ॥

इत्यर्थ । खेलितादिभूम्-खेलितमादिर्यस्य तत् खेलितादिभूम्, खेलितम्=श्लेष्मिन्-श्लेष्मशब्दः, आदिशब्देन चीत्कारादिभूम्, एतत्सर्वम् अनारम्भम्=अनभरश्रुत बोध्यम् ।

इहोद्भवमितादिकं द्रव्यश्रुतं द्रष्टव्यम्, ध्वनिमात्रत्वात् भावश्रुतजनकत्वात् भावश्रुतकार्यत्वञ्च । तथा हि-यदाऽन्यं कश्चित् पूर्य प्रति समप्यर्थं योषयितुमभिमन्धिपूर्वकं सविशेषतरमुच्छ्रमितादिकं क्रियते, तदा तदुच्छ्रमितादिकं प्रयोक्तुर्भावं श्रुतस्य फलम्, श्रोतुश्च भावश्रुतस्य कारणं भवति । तस्माद् द्रव्यश्रुतमिष्ट्युच्यते ।

नन्वेव तर्हि करादिचेष्टाया अपि द्रव्यश्रुतत्वमसद्गः, साऽपि हि बुद्धिपूर्विका क्रियते, सा च कर्तुर्भावंश्रुतस्य फलं, द्रादुश्च भावश्रुतस्य कारणम् ? इति चेन्न,

ज्ञाना नाम नि सिद्धितं है । तत्र अश्रोत्रायु के नि सरग होते समय जो शब्द होता है उसका नाम अनुभार-अनुसरण है । ये सब अनक्षरात्मक श्रुत हैं । ये उच्छ्रवसित आदि सब ध्वनिमात्र होने से भावश्रुत के जनक होनेसे एव भावश्रुतके कार्य होनेसे द्रव्यश्रुत माने गये हैं । तात्पर्य इसका यह है कि-जब कोई प्रयोक्ता किसी विशेष बातको समझानेके लिये इच्छापूर्वक किसीके प्रति इन उच्छ्रवसित आदिका प्रयोग करता है, तब ये उच्छ्रवसित आदि उस प्रयोक्ता के भावश्रुत का फलरूप होते हैं, और श्रोता के ये ज्ञान के-भावश्रुत के-जनक होते हैं, इसलिये इन्हें द्रव्यश्रुतरूप बतलाया गया है ।

शका-इस तरह यदि उच्छ्रवसित आदि को आप द्रव्यश्रुतरूप मानते हैं, तो फिर हस्तादि की चेष्टा को भी द्रव्यश्रुतरूप मानना चाहिये कारण यह भी प्रयोक्ता के द्वारा बुद्धिपूर्वक ही की जाती है, तथा चेष्टा

जन शब्दनु नाम नि सिद्धितं छे तथा अधेवायुनु नि सरणु धती वधते न शब्दं थाय छे तेनु नाम अनुभार-अनुसरणु छे अथे अधा अनक्षरात्मक श्रुत छे अथे उच्छ्रवसित आदि अधा ध्वनिमात्र होवाथी भावश्रुतना जनक होवाथी अने भावश्रुतना कार्य होवाथी द्रव्यश्रुतत्वं भावभावा आणा छे तेनु तात्पर्य अथे छे के-जनारे केछ प्रयोक्तता केऽ विशेष बातने समझवाववाने भागे छेऽऽ पूर्वक केधना तरङ्ग अथे उच्छ्रवसित आदिने प्रयोग करे छे, त्यारे अथे उच्छ्रवसित आदि ते प्रयोक्ताना भावश्रुतना इणत्वं होय छे, अने श्रोताना अथे ज्ञाननु-भावश्रुतनु जनक होय छे, ते कारणे तेभने द्रव्यश्रुतत्वं अताव्यु छे

शका-आ रीते ने आप उच्छ्रवसित आदिने द्रव्यश्रुतत्वं माने छे तो पण्डित हस्तादिनी चेष्टाने पणु द्रव्यश्रुतत्वं माननी नेछ अथे, कारणे के अथे पणु प्रयोक्तता द्वारा बुद्धिपूर्वक न कराय छे, तथा अथे चेष्टाथी प्रयोक्ताना हार्दिक

श्रुतमित्यत्र श्रुतशब्दार्थाश्रयणात् । तथाहि-श्रूयते यत् तच्छ्रुतमित्युच्यते । करा-
दिचेष्टा तु न श्रूयते, ततो न तत्र द्रव्यश्रुतत्वप्रसङ्गः । उच्छ्वसितादिक तु श्रूयते,
अनक्षरात्मक च । अतस्तदनक्षरश्रुतमित्युक्तम् । तदेतदनक्षरश्रुतवर्णितम् ॥ सू० ३८ ॥

अथ सञ्चि श्रुतवर्णयति ।

मूलम्—से कि त सणिसुयं ? । सणिसुयं तिविहं पणसं;
त जहा-कालिओवएसेण, हेऊवएसेणं, दिट्टिवाओवएसेणं । से
कि त कालिओवएसेण ? । कालिओवसेणं-जस्स णं अत्थि ईहा,
अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिता, वीमंसा, से णं सण्णीति
लब्भइ । जस्स णं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा,
चिता, वीमंसा, सेणं असण्णीति लब्भइ । सेत्त कालिओवएसेण ।

से प्रयोक्ता के हार्दिक भावोंका पता लग जाता है, एव प्रयोक्ता इसे जान-
बूझकर कहता है अतः उच्छ्वसित आदि की तरह यह भी भावश्रुत
का कार्य एव भावश्रुत का जनक है ।

उत्तर—इस प्रकार की शका ठीक नहीं है, कारण—“श्रुत” यहाँ
श्रुतशब्द के अर्थ का आश्रय लिया गया है, और इसका तात्पर्य यह है
कि—“श्रूयते यत्तदिति श्रुतमित्युच्यते” अर्थात् जो सुना जावे वह श्रुत
है । हस्तादि की चेष्टा सुनी नहीं जाती है वह तो देखी जाती है इसलिये
वह द्रव्यश्रुतरूप नहीं मानी गई है । ये उच्छ्वसित आदि सुने जाते हैं
और स्वयं अक्षर से रहित है इसलिये ये अनक्षरश्रुतरूप माने गये हैं ।
इस तरह अनक्षरश्रुत का वर्णन हुआ ॥ सू० ३८ ॥

भावनी षभर पडी नथ छे अने प्रयोक्तता अने लक्ष्णी लेखने करे छे, तेथी
उच्छ्वसित आदिनी लेभ, अे पणु भावश्रुतनु ढार्थ अने भावश्रुतनु बनक छे

उत्तर—आ प्रकारनी शका योग्य नहीं, कारण के “श्रुत” अर्थात् श्रुत
शब्दना अर्थने आधार लेवाये छे अने तेनु तात्पर्य अे छे के “श्रूयते यत्त
दिति श्रुतमित्युच्यते” अेटले के ले सलगाय छे ते श्रुत छे हस्तादिनी चेष्टा
सलगाती नहीं, ते तो लेवाय छे, ते कारणे ते द्रव्यश्रुतरूप मनाई नहीं अे
उच्छ्वसित आदि सलगाय छे अने स्वयं अक्षर रहित छे तेथी, तेने अनक्षर
श्रुतरूप मान्या छे आ रीते आ अनक्षरश्रुतनु वर्णन थयु छे ॥ सू० ३८ ॥

ननु यदि सज्ञायाः सम्बन्धात् संज्ञी भवतीत्युच्यते, तर्हि सज्ञासम्बन्धेन सर्वे-
ऽप्येकेन्द्रियादयो जीवाः सङ्गिनः स्युः, न तु केऽप्यसङ्गिनः, तथा हि सर्वजीवाना-
मेकेन्द्रियादीनामपि प्रज्ञापनादौ दशविधा सज्ञा प्ररूपिता, तद् यथा—

“एगिंदियाण भते ! कडविहा सण्णा पणत्ता ? । गोयमा ! दसविहा पण-
त्ता; त जहा—आहारमण्णा १, भयसण्णा २, मेहुणसण्णा ३, परिग्रहसण्णा ४,
कोहसण्णा ५, माणसण्णा ६, मायासण्णा ७, लोहसण्णा ८, ओहसण्णा ९,
लोगसण्णा १० ।”

छाया—एकेन्द्रियाणा भदन्त ! कतिविधा सज्ञा प्रज्ञप्ता ? गौतम ! दशविधा
प्रज्ञप्ता, तद् यथा—आहारसज्ञा १, भयसज्ञा २, मैथुनसज्ञा ३, परिग्रहसज्ञा ४,
क्रोधसज्ञा ५, मानसज्ञा ७, लोभसज्ञा ८, ओघसज्ञा ९, लोकसज्ञा १० ।

शका—यदि सज्ञा के संबध से जीव सज्ञी माना जाय तो फिर इस
प्रकार से कोई भी प्राणी असज्ञी नहीं माना जासकता है, कारण प्रज्ञाप-
नादि सूत्रो में समस्त एकेन्द्रियादि जीवों के भी दशप्रकार की सज्ञाएँ प्ररू-
पित की गई हैं, अतः वे भी सज्ञा के संबध से सज्ञी सिद्ध हो जाते हैं । जैसे—

“एगिंदियाण भते ! कडविहा सण्णा पणत्ता ? गोयमा ! दसविहा
पणत्ता” इत्यादि इस पाठ से कि जिसमे यही बतलाया हुआ है कि
एकेन्द्रिय जीवों के आहारसज्ञा १, भयसज्ञा २, मैथुनसज्ञा ३, परिग्रह-
सज्ञा ४, क्रोधसज्ञा ५, मानसज्ञा ६, मायासज्ञा ७, लोभसज्ञा ८, ओघ-
सज्ञा ९, और लोकसज्ञा १०, ये दश प्रकार की सज्ञाएँ हैं । इसी प्रकार
द्वीन्द्रिय आदि जीवो में भी ये ही दस प्रकार की सज्ञाएँ जाननी चाहिये,
अतः जब यह बात है तब ‘सज्ञा के संबध से जीव सज्ञी है’

शका—जे सज्ञाना संबधथी एव सज्ञी गणुय तो पछी जे प्रकारे
तो डोह पणु प्राणी असज्ञी मानी शकय नही, उरए के प्रज्ञापन आदिमा
समस्त ऐकेन्द्रियादि एवोने पणु दस प्रकारनी सज्ञाओ प्ररूपित करेल छे,
तेथी तेओ पणु सज्ञाना संबधथी सज्ञी सिद्ध यध नय छे जेभके—

“एगिंदियाण भते ! कडविहा सण्णा पणत्ता ? गोयमा ! दसविहा पणत्ता ”
इत्यादि आ पाठथा के जेमा जेय गताण्यु छे के ऐकेन्द्रिय एवोने
(१) आहार सज्ञा, (२) लय सज्ञा, (३) मैथुन सज्ञा, (४) परिग्रह सज्ञा,
(५) क्रोध सज्ञा, (६) मान सज्ञा, (७) माया सज्ञा, (८) लोभ सज्ञा, (९) ओघ
सज्ञा, अने (१०) लोक सज्ञा जे दस प्रकारनी सज्ञाओ होय छे जे
प्रभावे द्वीन्द्रिय आदि एवोमा पणु जेय दस प्रकारनी सज्ञाओ नणुवी
जेधजे, तेथी न्यारे आम बात छे त्यारे “सज्ञाना संबधथी एव सज्ञी छे”

से किं तं हेउवएसेण ? । हेउवएसेण—जस्स ण अरिथ अभिस-
धारणपुव्विया करणसत्ती से ण सण्णाति लब्भइ । जस्स ण
नरिथ अभिसधारणपुव्विया करणसत्ती से ण असण्णाति लब्भइ ।
से त हेउवएसेण । से किं त दिट्ठिवाओवएसेण ? दिट्ठिवाओ-
वएसेण—सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णा लब्भइ, असण्ण-
सुयस्स खओवसमेण असण्णा लब्भइ । से त्ति दिट्ठिवाओवए-
सेण । से त्ति सण्णिसुय । से त्ति असण्णिसुय ॥ सू० ३९ ॥

छाया—अथ किं तत् सञ्ज्ञिश्रुतम् ? । सञ्ज्ञिश्रुत त्रिविध प्रथमम् ; तद् यथा-
कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन, दृष्टिवादोपदेशेन । अथ कोऽसौ कालिक्युपदेशेन
(सञ्ज्ञी) ? कालिक्युपदेशेन—यस्य खलु अस्ति ईहा, अपोहः, मार्गणा, गवेपणा,
चिन्ता, विमर्शः, स सञ्ज्ञीति लभ्यते । यस्य खलु नास्ति ईहा, अपोहः, मार्गणा,
गवेपणा, चिन्ता, विमर्शः, सोऽसञ्ज्ञीति लभ्यते । स एव कल्मियुपदेशेन (सञ्ज्ञी) ।
अथ कोऽसौ हेतूपदेशेन (सञ्ज्ञी) ? हेतूपदेशेन—यस्य खलु अस्ति अभिसधारणपूर्विका
करणशक्तिः, स सञ्ज्ञीति लभ्यते, यस्य खलु नास्ति अभिसधारणपूर्विका करण-
शक्तिः सोऽसञ्ज्ञीति लभ्यते । स एव हेतूपदेशेन (सञ्ज्ञी) ।

अथ कोऽसौ दृष्टिवादोपदेशेन (सञ्ज्ञी) ? । दृष्टिवादोपदेशेन—सञ्ज्ञिश्रुतस्य क्षयो-
पशमेन सञ्ज्ञी लभ्यते, असञ्ज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन असञ्ज्ञी लभ्यते । स एव दृष्टिवा-
दोपदेशेन (सञ्ज्ञी) । तदेतत् सञ्ज्ञिश्रुतम् । तदेतदसञ्ज्ञिश्रुतम् ॥ सू० ३९ ॥

टीका—शिष्य पृच्छति—‘ से किं त सण्णिसुय ’ इति । अथ किं तत् सञ्ज्ञि-
श्रुतम् ? इति । उत्तरमाह—‘ सण्णिसुय० ’ इत्यादि । सञ्ज्ञिश्रुत त्रिविध प्रथमं, तद्
यथा—कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन, दृष्टिवादोपदेशेन ।

अब सञ्ज्ञिश्रुत का वर्णन करते हैं—‘ से किं त सण्णिसुय० ’ इत्यादि ।
शिष्य पृच्छता है—हे भदन्त ! पूर्ववर्णित सञ्ज्ञिश्रुत का क्या स्वरूप है ।
उत्तर—सञ्ज्ञिश्रुत तीन प्रकार का कहा है । वे इस प्रकार—कालिकी उपदेश
से १, हेतु उपदेश से २, तथा दृष्टिवाद के उपदेश से ३ ।

इवे सञ्ज्ञिश्रुततु वल्लिं करे छे—से किं त सण्णिसुय० ’ इत्यादि—
शिष्य पृच्छे छे—हे भदन्त ! पूर्ववर्णित सञ्ज्ञिश्रुततु शु स्वरूप छे ?
उत्तर—सञ्ज्ञिश्रुत त्रय प्रकारतु कल्लुं छे ते आ प्रकारे छे—(१) कालिकी
उपदेशथी, (२) हेतु उपदेशथी, अने (३) दृष्टिवादाना उपदेशथी

यथा लोके बहुद्रव्य एव धनवानित्युच्यते, प्रशस्तरूप एव रूपवानिति व्यपदिश्यते, तथाऽत्रापि महत्या शोभनया च सज्ञया ज्ञानावरणीकर्मक्षयोपशमजन्यमनोज्ञानरूपया सज्ञी व्यपदिश्यते । सज्ञान-सज्ञा, मनोज्ञानमिति तदर्थः । मनोज्ञानरूपा सज्ञा महती शोभना चास्तीति सैव गृह्यते, न त्वन्या । ततश्च मनोज्ञानरूपा सज्ञा येषामस्ति त एव सज्ञिन इति वोच्यम् ।

अथ कोऽसौ कालिक्युपदेशेन सज्ञी ?-ति शिष्य प्रश्नः । दीर्घकालिकी सज्ञा कालिकीत्युच्यते, तस्या उपदेशः=कथन तेन सज्ञी कीदृशो भवती ?ति भावः ।

से सब जीवों में पाई जानेवाली इन आहार आदि सजाओं के सबध से कोई भी जीव सज्ञी नहीं बतलाया गया है, अतः जिस प्रकार बहुत द्रव्य के सद्भाव में प्राणी धनशाली माना जाता है, तथा प्रशस्तरूप के होने पर रूपसपन्न गिना जाता है उसी प्रकार यहां भी महती-विशिष्ट एव शोभन-सुन्दरसज्ञा से अर्थात् ज्ञानवरणीय कर्मके क्षयोपशमजन्य जो मनोज्ञानरूप सज्ञा है उससे जो जीव युक्त होता है वह सज्ञी कहा गया है । यह मनोज्ञानरूप सज्ञा महती एव शोभनीय है, इसलिये यह सज्ञा जिन जीवों के पाई जाती है वे ही शास्त्रकारों की दृष्टि में सजीरूप से व्यपदिष्ट हुए हैं, अन्य सजाओं के सबध से नहीं ।

शिष्य सञ्जिथुत के भेद पूछता है-हे भदन्त ! कालिक्युपदेश के सबध से सज्ञी जीव का क्या स्वरूप है ? शिष्य के इस प्रश्न का तात्पर्य यह है कि दीर्घकालिकी सज्ञा का नाम कालिकी है, इस कालिकी के कथन से जो सज्ञी जीव कहे गये हैं उनका क्या स्वरूप है-वे कैसे होते हैं ? ।

इषाणु कडेवातु नथी, जेण प्रकारे सामान्यइपवाणी-समानइपे सधणा लवोभा हेभाती जे आहार आदि सज्ञाज्योना सधधथी केई पणु लवने सज्ञी भताव्यो नथी, तेथी जेभ वधारे द्रव्यना सद्भावथी प्राणी धनवान मनाय छे, तथा प्रशस्तरूप डोवाथी इषाणे गणाय छे जेण प्रकारे अही पणु महती-विशिष्ट अने शोभन-सुन्दर सज्ञाथी जेटवे के ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशम जन्य जे मनोज्ञानइप सज्ञा छे तेना वडे जे लव युक्त डोय छे तेने सज्ञी कडेव छे आ मनोज्ञानइप सज्ञा महती अने शोभनाय छे, तेथी ते सज्ञा जे लवोभा जेवा भणे छे ते लवो जे शास्त्रकारनी दृष्टिजे सज्ञी इपे अइपीत थया छे, जील सज्ञाज्योना सधधथी नही

शिष्य सञ्जिथुतना लेह पूछे छे-हे भदन्त ! कालिकी उपदेशना सधधथी सज्ञी लवनु शु स्वरूप छे ? शिष्यना आ प्रश्ननु तात्पर्य जे छे के-दीर्घकालिकी सज्ञातु नाम कालिकी छे, जे कालिकीना कथनथी जे सज्ञी लव कडेवाया छे तेभनु शु स्वरूप छे-तेज्यो केवा डोय छे ?

एव द्वीन्द्रियादीना गन्धम् । तत् कथं जीवा असन्निः प्रोक्ताः ? इति चेत् ।
उच्यते—अत्र सा दशविधा सज्ञा नाधिक्रियते । यतस्तत्र काचिन् स्वन्या भव-
ति, यथा—ओघसज्ञेति । तथा सज्ञया सज्ञीति व्यपदेशो न युज्यते । नहि कार्पाण-
मात्रसद्भावे धनवानित्युच्यते लोके । आहार-भय-परिग्रह-मैथुनादिसज्ञा अप्या-
श्रित्य सज्ञीति निर्देशः कर्तुमशक्यः, तासा मोहादिजन्यत्वेन सामान्यरूपत्वादशो
भनत्वाच्च । लोकेऽप्यविशिष्टेन रूपमात्रेण रूपानिति न व्यग्रहियते । तस्मात्

इस कथन में कोई भी जीव असज्ञी नहीं सिद्ध होता है फिर “असज्ञी
जीव है” यह बात केवल असवद्ध ही मानी जानी चाहिये, क्यों कि
इस तरह कोई भी असज्ञी जीव नहीं होता है ? ।

उत्तर—कथन को नहीं समझने के कारण इस प्रकार की शका
उपस्थित की गई है । सज्ञी शब्द के अर्थ का जटा विचार किया गया है
वहां इन दश प्रकार की सज्ञा का संबध विवक्षित नहीं है, कारण कि
कोई २ सज्ञाएँ वहां अल्प भी होती हैं, जैसे—ओघसज्ञा । यदि इन सज्ञाओं
को लेकर सज्ञी जीव माने जाते तो ओघ सज्ञा की अल्पता में सज्ञीपना
वहा नहीं आ सकता । कोडी मात्र धन के होने पर कोई जीव ससार
में धनी नहीं माना जाता है । आहार, भय, परिग्रह, मैथुन आदि सज्ञाओं
के संबध को लेकर भी जीव में “सज्ञी” इस प्रकार का निर्देश नहीं
किया गया है, क्यों कि ये सज्ञाएँ मोहादिजन्य होने से सामान्यरूप हैं,
तथा अशोभन हैं । जैसे—लोक में सामान्यरूप को लेकर कोई प्राणी
रूपवान् नहीं कहा जाता है उसी प्रकार सामान्यरूप वाली—समानरूप

आ कथनथी कोष्ठं पञ्च एव असज्ञी सिद्धं यतो नथी तो “असज्ञी एव छे”
ये वात केवण असवद्धं न मानवी नेधञ्जे, कारण के आ रीते कोष्ठं पञ्च
असज्ञी एव होता नथी ?

उत्तर—कथनने नही समझवाने कारणे आ प्रकारनी शका उदाववामा
आवी छे सज्ञी शब्दना अर्थना न्या विचार करायो छे, त्या आ दश प्रकारनी
सज्ञानो संबध विवक्षित नथी कारण के कोष्ठं कोष्ठं सज्ञाञ्जे त्या अल्प पञ्च
होय छे, नेभके ओघ सज्ञा ने आ सज्ञाञ्जेने दीधे सज्ञी एव मानवामा
आवे तो ओघसज्ञानी अल्पतामा त्या सज्ञीपणु आवी शके नही मात्र ओघ
कोडी धन होय तो ओवो कोष्ठं एव ससारमा धनिं मनय नही आहार,
भय, परिग्रह, मैथुन आदि सज्ञाञ्जेना संबधने दीधे पञ्च एवमा “सज्ञी”
ओवा प्रकारने निर्देश करायो नथी, कारण के ओ सज्ञाञ्जे मोहादिजन्य होवाथी
सामान्यरूप छे, तथा अशोभन छे नेभ लोकमा सामान्यरूपने दीधे कोष्ठं प्राणी

यथा लोके बहुद्रव्य एव धनवानित्युच्यते, प्रशस्तरूप एव रूपवानिति व्यपदिश्यते, तथाऽत्रापि महत्या शोभनया च सज्ञया ज्ञानावरणीकर्मक्षयोपशमजन्यमनोज्ञानरूपया सज्ञी व्यपदिश्यते । सज्ञान-सज्ञा, मनोज्ञानमिति तदर्थः । मनोज्ञानरूपा सज्ञा महती शोभना चास्तीति सैव गृह्यते, न त्वन्या । ततश्च मनोज्ञानरूपा सज्ञा येषामस्ति त एव सञ्ज्ञिन इति नोऽयम् ।

अथ कोऽसौ कालिक्युपदेशेन सज्ञी ?-ति शिष्य प्रश्नः । दीर्घकालिकी सज्ञा कालिकीत्युच्यते, तस्या उपदेशः=रुच्यते तेन सज्ञी कीदृशी भवती ?ति भावः ।

से सब जीवों में पाई जानेवाली इन आहार आदि सजाओं के सबध से कोई भी जीव सजी नहीं बतलाया गया है, अतः जिस प्रकार बहुत द्रव्य के सद्भाव में प्राणी धनशाली माना जाता है, तथा प्रशस्तरूप के होने पर रूपसपन्न गिना जाता है उसी प्रकार यहाँ भी महती-विशिष्ट एव शोभन-सुन्दरसजा से अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमजन्य जो मनोज्ञानरूप सजा है उससे जो जीव युक्त होता है वह सजी कहा गया है । यह मनोज्ञानरूप सजा महती एव शोभनीय है, इसलिये यह सजा जिन जीवों के पाई जाती है वे ही शास्त्रकारों की दृष्टि में सजीरूप से व्यपदिष्ट हुए हैं, अन्य सजाओं के सबध से नहीं ।

शिष्य सञ्ज्ञित के भेद पूछता है-हे भदन्त ! कालिक्युपदेश के सबध से सजी जीव का क्या स्वरूप है ? शिष्य के इस प्रश्न का तात्पर्य यह है कि दीर्घकालिकी सजा का नाम कालिकी है, इस कालिकी के कथन से जो सजी जीव कहें गये हैं उनका क्या स्वरूप है-वे कैसे होते हैं ? ।

इषाणु कडेवातु नथी, अेव प्रकरे सामान्यइपवाणी-समानइपे सधणा लुवेमा देणाती अे आहार आदि सज्ञाअेना सणधथी केरु पणु लुवने सजी अताव्यो नथी, तेथी नेम वधारे द्रव्यना सहसावथी प्राणी धनवान मनाथे, तथा प्रशस्तइप डोवाथी इषाणे गणाय ते अेव प्रकरे अडी पणु महती-विशिष्ट अने शोभन-सुंदर सजाथी अेटडे के जानावरणीय कर्मना क्षयोपशम जन्य ने मनोज्ञानइप सज्ञा छे तेना वडे ने लुव युक्त डोय छे तेने सजी उडेव छे आ मनोज्ञानइप सज्ञा महती अने शोभनाथे, तेथी ते सज्ञा ने लुवेमा लेवा भणे छे ते लुवेव शास्त्रकारनी दृष्टिअे सजी इपे अर्पीत थया छे, भील सज्ञाअेना सणधथी नडी

शिष्य सञ्ज्ञितना भेद पूछे छे-हे भदन्त ! कालिकी उपदेशना सणधथी सजी लुवतु शु स्वरूप छे ? शिष्यना आ प्रश्नतु तात्पर्य अे छे के-दीर्घकालिकी सजातु नाम कालिकी छे, अे कालिकीना कथनथी ने मजी लुव कडेवाया छे तेमतु शु स्वरूप छे-तेअे डेवा डोय छे ?

एव द्वीन्द्रियादीना राच्यम् । तत् कथं जीवा असज्जिनः प्रोक्ताः ? इति चेत् ।

उच्यते—अत्र सा दशविधा सज्ञा नाधिक्रियते । यतस्तत्र काचित् स्वल्पा भवति, यथा—ओघसज्ञेति । तथा सज्ञया सज्ञीति व्यपदेशो न युज्यते । नहि कार्यापण-
मात्रसद्भावे धनयानित्युच्यते लोके । आहार-भय-परिग्रह-मैथुनादिसज्ञा अप्या-
श्रित्य सज्ञीति निर्देशः कर्तुमशक्यः, तासा मोहादिजन्यत्वेन सामान्यरूपत्वादज्ञो
भनत्वाच्च । लोकेऽप्यविशिष्टेन रूपमात्रेण रूपयानिति न व्यपक्रियते । तस्मात्

इस कथन में कोई भी जीव असज्जी नहीं सिद्ध होता है फिर “असज्जी जीव है” यह बात केवल असज्ज ही मानी जानी चाहिये, क्यों कि इस तरह कोई भी असज्जी जीव नहीं होता है ? ।

उत्तर—कथन को नहीं समझने के कारण इस प्रकार की शका उपस्थित की गई है । सज्जी शब्द के अर्थ का जहा विचार किया गया है वहा इन दश प्रकार की सज्ञा का सबध विवक्षित नहीं है, कारण कि कोई २ सज्ञाएँ वहा अल्प भी होती हैं, जैसे—ओघसज्ञा । यदि इन सज्ञाओं को लेकर सज्जी जीव माने जाते तो ओघ सज्ञा की अल्पता में सज्जीपना वहा नहीं आ सकता । कोडी मात्र धन के होने पर कोई जीव ससार में धनी नहीं माना जाता है । आहार, भय, परिग्रह, मैथुन आदि सज्ञाओं के सबध को लेकर भी जीव में “सज्जी” इस प्रकार का निर्देश नहीं किया गया है, क्यों कि ये सज्ञाएँ मोहादिजन्य होने से सामान्यरूप हैं, तथा अज्ञोभन हैं । जैसे—लोक में सामान्यरूप को लेकर कोई प्राणी रूपवान् नहीं कहा जाता है उसी प्रकार सामान्यरूप वाली—समानरूप

या कथनथी केध पण्णु एव असज्जी सिद्ध थतो नथी तो “असज्जी एव छे”
ये वात केवण असज्जं न् मानवी जेधंये, कारणु के आ रीते केध पण्णु
असज्जी एव होता नथी ?

उत्तर—कथनने नही समझवाने कारणे आ प्रकारनी शका उकापवामा
आवी छे सज्जी शब्दना अर्थने न्या विचार कराये छे, त्या आ दश प्रकारनी
सज्ञाने सभध विवक्षित नथी कारणु के केध केध सज्ञाये त्या अल्प पण्णु
होय छे, जेभके ओघ सज्ञा जे आ सज्ञायेने लीधे सज्जी एव मानवामा
आवे तो ओघसज्ञानी अल्पतामा त्या सज्जीपण्णु आवी शके नही मात्र ओक
कोडी धन होय तो जेवे केध एव ससारमा धनिक मनाय नही आहार,
लय, परिग्रह, मैथुन आदि सज्ञायेना सभधने लीधे पण्णु एवमा “सज्जी”
जेवा प्रकारने निर्देश कराये नथी, कारणु के जे सज्ञाये मोहादिजन्य होवाथी
सामान्यरूप छे, तथा अज्ञोभन छे जेभ दोकमा सामान्यरूपने लीधे, केध प्राणी

एष च प्रायः सर्गमप्यर्थं स्फुटरूपमुपलभते । तथाहि—यथा चक्षुष्मान् प्रदी-
पादिप्रकाशेन स्फुटमर्थमुपलभते, तद्वदय मनोलब्धिसम्पन्नो मनोद्रव्याऽऽम्बु-
समुत्पन्नविमर्शवशात् पूर्वापरानुसन्धानेन यथावस्थित स्फुटमर्थमुपलभते ।

अथ भावः—यः कश्चिन्मनोज्ञानादारु कर्मक्षयोपशमाद् मनोलब्धिसम्पन्नो मनो-
योग्याननन्तान् स्फुटान् मनोवर्गणाभ्यो गृहीत्वा मनस्त्वेन परिणम्य चिन्तनीय
वस्तुजानाति, स कालियुपदेशेन सङ्गी विज्ञेयः । स च गर्भजस्तिर्यग् मनुष्यो वा
देवो नारकश्चेति ।

पुम्प तथा तिर्यञ्च एवं औपपातिक जन्मवाले देव और नारकी होते हैं ।
इन सब के मनःपर्याप्ति होती है और इसीसे ये भूत, भविष्यत् और
वर्तमान काल सबधी वस्तु का विचार आदि कर सकते हैं ।

यह सजी जीव प्रायः समस्त पदार्थों को स्फुटरूप से जान लेता है ।
जैसे अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति दीपादि के प्रकाश की सहायता से
पदार्थों को जैसे का तैसा जान लेता है उसी प्रकार मनोलब्धि सम्पन्न
प्राणी मनोद्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न विमर्श के वश से पूर्वापरानु
सन्धानपूर्वक यथावस्थित पदार्थ को स्फुटरूप से जान लिया करता है ।

तात्पर्य इसका यह है कि जो प्राणी मनोज्ञान को आवरण करने
वाले कर्मके क्षयोपशम के वशसे मनोलब्धियुक्त होता हुआ मनोयोग्य
अज्ञत स्फुटों को मनोवर्गणाओं से ग्रहण करके उन्हें ननरूप से परि-
णमाकर चिन्तनीय जानने योग्य वस्तु को जानता है वह कालिकी-उप-
देश के सबब से सजीजीव कहा गया है । ऐसे जीव गर्भजन्म वाले
मनुष्य एव तिर्यञ्च तथा देव एव नारकी हैं ।

गर्भजन्मवाणा पुरुष तथा तिर्यञ्च अने औपपातिक जन्मवाणा देव अने
नारकी होय छे अने जधाने मन पर्याप्ति होय छे, अने ते वडे तेजो भूत,
भविष्य अने वर्तमानकाल सबधी वस्तुने विचार आदि करी शके छे

अने मत्तिलेव आमान्य रीते समस्त पदार्थने स्फुटरूपे ज्ञाणी दे छे अने सारी
नज्जवाणी अस्ति प्रदीपादिना प्रकाशनी महदधी पदार्थने तादृश्य स्वरूपे ज्ञाणी
दे छे अने प्रकारे लब्धिसम्पन्न प्राणी मनोद्रव्यने आधारे उत्पन्न विमर्शने
कारणे पूर्वापरानु सन्धानपूर्वक यथावस्थित पदार्थने स्फुटरूपे ज्ञाणी छे तेनु तात्पर्य
अने छे अने प्राणी मनोज्ञाननु आवरण करनार कर्मना क्षयोपशमने कारणे
मनोलब्धियुक्त धर्मने मनोयोग्य अत एव धीने मनोवर्गणाभ्यां अलक्ष्य करीने
तेमने मनउपधी परिणमावीने चिन्तनीय ज्ञानवायोग्य-वस्तुने ज्ञाणी छे ते
कालिकी-उपदेशना सबधी मत्तिलेव नहिल छे अनेवा एव गर्भजन्मवाणा
मनुष्य अने तिर्यञ्च तथा देव अने नारकी छे

ઉત્તરમાહ—‘કાલિઓવદેસેણ જસ્મ ણ૦’ ઇત્યાદિ । વાગ્મિયુપદગ્ને સગ્ની
સ ઉચ્યતે, યસ્ય પ્રાણિનઃ સ્વલુ ઈહા=સદર્થ પર્યાલોચનરૂપા, અસ્તિ-પ્રિયતે । તથા-
અપોહઃ=નિશ્ચયઃ, માર્ગણા=અન્વયધર્માન્વેષણમ્, ગવેષણા = વ્યતિરેકધર્મસ્વરૂપ
પર્યાલોચનમ્, તથા-ચિન્તા=‘ઇદ ક્ષેન પ્રકારેણ જાત, ઇદ સપ્રતિ ક્ષેન પ્રકારેણ
વર્તતે, ક્ષેન પ્રકારેણ ચૈતદ્ ભવિષ્યતી’-તિ પર્યાલોચનમ્, તથા-વિમર્શઃ=વિમર્શ
નમ્-‘ઇદમિત્યમેવ ઘટતે, ઇત્ય ગા તદ્ ભૂતમ્, ઇત્યમેવ વા તદ્ ભવિષ્યતી’-તિ
યથાઽવસ્થિતવસ્તુસ્વરૂપનિર્ણયઃ, અસ્તિ=વિદ્યતે સ પ્રાણી સગ્નીતિ લખ્યતે । સ ચ
ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિકો મનુષ્યાદિઃ ઔપપાતિકશ્ચ દેવાદિર્મનઃપર્યામ્નિયુક્તો વિનેયઃ ।
તસ્યૈવ ત્રિકાલવિષયચિન્તાવિમર્શાદિસમ્મનાત્ ।

ઉત્તર-કાલિકી કે ઉપદેશ કે સઘષ્ઠ સે સગ્ની જીવ વદ્દ હૈ કિ
જિસકે ઈહા આદિ જ્ઞાન હોતે હૈ । સદર્થ કી પર્યાલોચના કા નામ ઈહા
હૈ ૧ । અપોહ વસ્તુ કા નિશ્ચય હોના ૨ । ‘માર્ગણા’-શબ્દ કા અર્થ હૈ
વસ્તુ મેં અન્વય ધર્મ કી ગવેષણા કરના, જૈસે-‘યદ્ અમુક વસ્તુ હી હૈ,
કયોં કિ ડસમે ઇનકે સાથ સવધ રચને વાલે અમુક ૨ ધર્મ પાયે જાતે
હૈ’ ૩ । ગવેષણા શબ્દ કા અર્થ હૈ વ્યતિરેક ધર્મોં કે સ્વરૂપ કી વસ્તુ મેં
પર્યાલોચના કરના ૪ । “યદ્ કિસ તરહ સે હુઆ હૈ, ઇસ સમય યદ્
કિસ તરહ હૈ, આગે કિસ તરહ સે હોગા” ઇસ પ્રકાર કી વિચાર ધારા
કા નામ ચિન્તા હૈ ૫ । “યદ્ ઇસી તરહ સે ઘટિત હોતા હૈ, પહિલે ઓ
યદ્ ઇસી તરહ સે ઘટિત હુઆ યા, આગે ઓ યદ્ ઇસી રૂપ સે ઘટિત
હોગા” ઇસ તરહ વસ્તુ કા જો સ્વરૂપ હૈ ડસકા નિર્ણય હોના સો વિમર્શ
હૈ ૬ । યે સવ વાતે જિન મે પાઈ જાતી હૈ વે સગ્ની જીવ ગર્ભજન્મવાલે

ઉત્તર—કાલિકીના ઉપદેશના સળ ધર્મી સગ્ની જીવ તે છે કે જેમને ઇહા
આદિ જ્ઞાન હોય છે (૧) સદર્થની પર્યાલોચનાનું નામ ઇહા છે (૨) વસ્તુનો
નિર્ણય થવો તે અપોહ છે (૩) “માર્ગણા” શબ્દનો અર્થ છે—વસ્તુમાં અન્વય-
ધર્મની ગવેષણા કરવી જેમકે—“આ અમુક વસ્તુ જ છે, કારણ કે તેમાં તેની
સાથે સળ ધ સળનાર અમુક અમુક ધર્મ મળે છે (૪) “ગવેષણા” શબ્દનો
અર્થ છે—વ્યતિરેક ધર્મોના સ્વરૂપની વસ્તુમાં પર્યાલોચના કરવી “આ કેવી રીતે
થયું છે, આ સમયે આ કયા પ્રકારનું છે, આગળ કેવી રીતે હશે આ પ્રકારની
વિચાર ધારાનું નામ ચિન્તા છે (૫) આ રીતે ઘટાવી શકાય છે, પહેલા
પણ આ રીતે જ ઘટિત થયું હતું, આગળ પણ તે આ રીતે જ ઘટાવી શકાયે”
આ રીતે વસ્તુનું જે સ્વરૂપ છે તેનો નિર્ણય થવો તે “વિમર્શ” છે (૬)
જે ધર્મી વાત જેમનામાં જોવા મળે છે તેઓ સગ્નીજીવ છે સગ્નીજીવ

अयं कोऽसौ हेतूपदेशेन सञ्ज्ञीति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—‘हेतुव्यपदेशेन०’ इत्यादि । हेतूपदेशेन—हेतुः=कारण, तस्योपदेशः=कथन, हेतूपदेशस्तेन—कारणोपदेशेनेत्यर्थः । कालिक्युपदेशेनाऽसाद्यपि यः सन्नित्वकारणमुपलभ्य सतीति व्यपदिश्यते, स एव भ्रमति—यस्य प्राणिनः खलु अभिसधारणपूर्विका=अभिसन्धारणम्=अव्यक्तेन व्यक्तेन वा विज्ञानेन आलोचनं, तत्पूर्विका=तत्कारणिका, करणशक्तिः—करण=क्रिया, तस्या शक्तिः=प्रवृत्तिः, अस्ति=विद्यते, स प्राणी खलु हेतूपदेशेन सञ्ज्ञीति लभ्यते । अयं च द्वीन्द्रियादिः समूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियपर्यन्तो विज्ञेयः ।

फिर शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! हेतूपदेश से सबध से सजी का क्या स्वरूप है ? उत्तर—जिस जीव में अभिसधारणपूर्विका कारण शक्ति होती है वह जीव हेतूपदेश के सबध से सजी माना गया है । तात्पर्य इसका यह है—यद्यपि ऐसा जीव कालिकी उपदेश की अपेक्षा सजी नहीं माना जाता है, परन्तु सञ्ज्ञिपने के कारणों से उसे सजी कह दिया जाता है । अभिसधारणपूर्विका कारणशक्ति का तात्पर्य इस प्रकार है—व्यक्त तथा अव्यक्त विज्ञान से जो आलोचना होती है—विचार धारा चलती है—उसका नाम अभिसधारण है, क्रियामें जो प्रवृत्ति होती है वह कारणशक्ति है । अभिसधारणपूर्विक जो क्रियामें प्रवृत्ति होती है वह अभिसधारण पूर्विका कारण शक्ति है । यह अभिसधारण पूर्विकाकरण-शक्ति ही यह हेतूपदेश है । यहा हेतूपदेश की अपेक्षा सञ्ज्ञिपना असञ्ज्ञी समूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय जीव से लेकर द्वीन्द्रिय जीवों तक माना गया है ।

तात्पर्य इसका यह है, जो जीव अपने शरीर के पालन के लिये

पणी शिष्य पूछे छे—हे लहन्त ! हेतूपदेशना सभधधी सञ्ज्ञीतु शु स्वरूपे छे ?

उत्तर—जे एवमा अभिसधारण पूर्विका कारण शक्ति डोय छे ते एव हेतूपदेशना सभधधी सञ्ज्ञी मानवामा आव्ये छे तेतु तात्पर्य जे छे के जेवो एव कालिकी उपदेशनी अपेक्षाजे सञ्ज्ञी मानवामा आवते नधी, पणु सञ्ज्ञिपणाना कारणधी तेने सञ्ज्ञी कही देवाय छे अभिसधारण पूर्विका कारण शक्तिनु तात्पर्य आ प्रमाणे छे—व्यक्त तथा अव्यक्त विज्ञानधी जे आलोचना थाय छे विचारधारा आवे छे तेतु नाम अभिसधारण छे, क्रियामा जे प्रवृत्ति थाय छे ते कारणशक्ति छे अभिसधारण पूर्विक जे क्रियामा प्रवृत्ति थाय छे ते अभिसधारण पूर्विका कारणशक्ति छे आ अभिसधारणपूर्विका कारणशक्ति जे अही हेतूपदेश छे आ हेतूपदेशनी अपेक्षाजे सञ्ज्ञिपणु असञ्ज्ञी समूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय एवधी लहने द्वीन्द्रियएवो सुधी मानवामा आवेल छे

યસ્ય તુ ઈદાઽપોહો માર્ગણા ગવેપણા ચિન્તા વિમર્શઃ નાસ્તિ સ ચ્વલુ અસત્રીતિ લભ્યતે । સ ચાલ્પમનોલબ્ધિત્વાત્ સમૂર્ચ્છિત્મપચ્ચેન્દ્રિયોઽસ્ફુટમર્થે જાનાતિ । તતોઽપ્યસ્ફુટ ચતુરિન્દ્રિયો જાનાતિ । તતોઽપ્યસ્ફુટતર ત્રીન્દ્રિયઃ । તતોઽપ્યસ્ફુટતમ દ્વીન્દ્રિયઃ । તતોઽપ્યસ્ફુટતમમેકેન્દ્રિયો જાનાતિ, તસ્ય ઠિ દ્રવ્યમનો નાસ્તિ, કિં તુ અલ્પતરમવ્યક્ત માનમનો વિધતે, યદ્દશાદાહારાદિમના અવ્યક્તરૂપાઃ પ્રાદુર્ભવન્તિ । સ એપ કાલિક્વયુપદેશેન સજ્ઞી વર્ણિતઃ । અસદ્યપિ વર્ણિતઃ ॥

જિસ જીવ કે ઈદા, અપોહ, માર્ગણા, ગવેપણા ચિન્તા તથા વિમર્શ, એ નહીં હોતે હૈં વે અસગી હૈં, ણેસા જાનના ચાહિયે । ણેસા જીવ અલ્પ-મનોલબ્ધિવાલા હોતા હૈં, ઓર વહ સમૂર્ચ્છિત્મ પચ્ચેન્દ્રિય યદા ગ્રહ ગ ક્રિયા ગયા હૈં । યહ પદાર્થ કો સ્ફુટરૂપ સે નહીં જાનતા હૈં, કિન્તુ અસ્ફુટરૂપ સે જાનતા હૈં । ઈસકી અપેક્ષા ચતુરિન્દ્રિયવાલા જીવ પદાર્થ કો અસ્ફુટરૂપ સે જાનતા હૈં, તથા ચતુરિન્દ્રિયવાલે જીવ કી અપેક્ષા ત્રીન ઈન્દ્રિય વાલા જીવ પદાર્થ કો ઓર અધિક અસ્ફુટરૂપ સે, તથા ત્રીન ઈન્દ્રિયવાલે જીવ કી અપેક્ષા દો ઈન્દ્રિય વાલા જીવ પદાર્થ કો ઓર અધિક અસ્ફુટરૂપ સે, એવ દો ઈન્દ્રિય વાલે જીવ કી અપેક્ષા એકેન્દ્રિય જીવ પદાર્થ કો ઓર અધિક અસ્ફુટરૂપ સે જાનતા હૈં । ઈસ અસજ્ઞી જીવ કે દ્રવ્ય મન નહીં હોતા હૈં, કિન્તુ અત્યલ્પ અવ્યક્ત ભાવ મન હોતા હૈં, ઈસીસે આહાર આદિ સજ્ઞાઈ અવ્યક્તરૂપ મે ઈસકે હુઆ કરતી હૈં । ઈસ તરહ યહ કાલિકી-ઉપદેશ કે સબધ સે સજ્ઞી કા ઓર તદ્વિપરીત અસજ્ઞી કા યદા તક કથન-વર્ણન હુઆ ।

જે જીવને ઈદા, અપોહ, માર્ગણા, ગવેપણા, ચિન્તા તથા વિમર્શ હોતા નથી તે અસજ્ઞી છે, એમ સમજવું એવો જીવ અલ્પમનોલબ્ધિવાળો હોય છે, અને તે સમૂર્ચ્છિત્મ પચ્ચેન્દ્રિય ઝાઢી અહુણ કરવામા આવેલ છે એ પદાર્થને સ્ફુટરૂપે જાણતા નથી પણ અસ્ફુટરૂપે જાણે છે, તેના કરતા ચતુરિન્દ્રિય જીવ પદાર્થને અસ્ફુટરૂપે જાણે છે તથા ચતુરિન્દ્રિયવાળા જીવ કરતા ત્રણ ઈન્દ્રિય વાળો જીવ પદાર્થને તેનાથી પણ વધારે અસ્ફુટરૂપે તથા ત્રણ ઈન્દ્રિયવાળા કરતા બે ઈન્દ્રિયવાળો જીવ પદાર્થને વધારે અસ્ફુટરૂપે અને બે ઈન્દ્રિયવાળા જીવ કરતા એકેન્દ્રિયજીવ પદાર્થને તેના કરતા પણ વધારે અસ્ફુટરૂપે જાણે છે, આ અસજ્ઞી જીવને દ્રવ્યમન હોતું નથી, પણ અત્ય અલ્પ અવ્યક્ત ભાવ મન હોય છે, તેથી તેમને આહાર આદિ સજ્ઞાઓ અવ્યક્તરૂપે થયા કરે છે આ રીતે આ કાલિકી-ઉપદેશના સબધથી સજ્ઞી અને તેનાથી વિપરીત અસજ્ઞી વર્ણન ઝાઢી સુધી થયું

अथ कोऽसौ हेतूपदेशेन सज्ञीति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—‘हेऊवएसेण०’ इत्यादि । हेतूपदेशेन—हेतुः=कारण, तस्योपदेशः=कथन, हेतूपदेशस्तेन—कारणोपदेशेनेत्यर्थः । कालिक्युपदेशेनाऽऽइयपि यः सञ्चित्वकारणमुपलभ्य सज्ञीति व्यपदिश्यते, स एव भवति—यस्य प्राणिनः खलु अभिसधारणपूर्विका=अभिसन्धारणम्=अव्यक्तेन व्यक्तेन वा विज्ञानेन आलोचन, तत्पूर्विका=तत्कारणिका, करणशक्तिः—करण=क्रिया, तस्या शक्तिः=प्रवृत्तिः, अस्ति=विद्यते, स प्राणी खलु हेतूपदेशेन सज्ञीति लभ्यते । अथ च द्वीन्द्रियादिः समूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियपर्यन्तो विज्ञेयः ।

फिर शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! हेतूपदेश से सवध से सजी का क्या स्वरूप है ? उत्तर—जिस जीव में अभिसधारणपूर्विका कारण शक्ति होती है वह जीव हेतूपदेश के सवध से सजी माना गया है । तात्पर्य इसका यह है—यद्यपि ऐसा जीव कालिकी उपदेश की अपेक्षा सजी नहीं माना जाता है, परन्तु सजिपने के कारणों से उसे सजी कह दिया जाता है । अभिसधारणपूर्विका करणशक्ति का तात्पर्य इस प्रकार है—व्यक्त तथा अव्यक्त विज्ञान से जो आलोचना होती है—विचार धारा चलती है—उसका नाम अभिसधारण है, क्रियामें जो प्रवृत्ति होती है वह करणशक्ति है । अभिसधारणपूर्विक जो क्रियामें प्रवृत्ति होती है वह अभिसधारण पूर्विका करण शक्ति है । यह अभिसधारण पूर्विकाकरणशक्ति ही यह हेतूपदेश है । यहां हेतूपदेश की अपेक्षा सजीपना असजी समूर्च्छिम पचेन्द्रिय जीव से लेकर द्वीन्द्रिय जीवों तक माना गया है ।

तात्पर्य इसका यह है, जो जीव अपने शरीर के पालन के लिये

वणी शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! हेतूपदेशना सवधथी सजीनु शु स्वरूपे छे ?

उत्तर—जे एवमा अबिसधारण पूर्विका कारण शक्ति होय छे ते एव हेतूपदेशना सवधथी सजी मानवामा आव्ये छे तेनु तात्पर्य अे छे छे अेवे एव कालिकी उपदेशनी अपेक्षाअे सजी मानवामा आवतो नथी, पणु सजीपणुना कारणेथी तेने सजी कही होवय छे अबिसधारण पूर्विका कारण शक्तिनु तात्पर्य आ प्रभाणु छे—व्यक्त तथा अव्यक्त विज्ञानथी जे आलोचना थाय छे विचारधारा आवे छे तेनु नाम अबिसधारण छे, क्रियामा जे प्रवृत्ति थाय छे ते कारणशक्ति छे अबिसधारण पूर्विक जे क्रियामा प्रवृत्ति थाय छे ते अबिसधारण पूर्विका कारणशक्ति छे आ अबिसधारणपूर्विका कारणशक्ति न अही हेतूपदेश छे आ हेतूपदेशनी अपेक्षाअे सजीपणु असजी समूर्च्छिम पचेन्द्रिय एवथी लधने द्वीन्द्रियएवे सुधी मानवामा आवेल छे

અર્થ માર્ય:-યો યુદ્ધિપૂર્વક સ્વદેહપરિપાલનાર્થમિષ્ટેષ્ણાહારેષુ યન્તુષુ પ્રવર્તતે, અનિષ્ટેભ્યશ્ચ નિવર્તતે, સ હેતુપદેશેન સજ્ઞી । ન ચ દ્વીન્દ્રિયાદિરપિ વેદિતવ્યઃ । તથાહિ-ઇષ્ટાનિષ્ટવિષયપ્રવૃત્તિનિવૃત્તિચિન્તન, ન મનોવ્યાપાગ્મન્તરેણ સમ્પ્રવતિ । મનસા ચ પર્યાલોચન સજ્ઞા । સા ચ દ્વીન્દ્રિયાદેરપિ વિદ્યતે, તસ્યાપિ પ્રતિનિયતેષ્ટા-નિષ્ટવિષયપ્રવૃત્તિનિવૃત્તિર્દર્શનાત્ । તતો દ્વીન્દ્રિયાદિરપિ હેતુપદેશેન સજ્ઞી લભ્યતે । નવરમ્-અસ્ય સચિન્તન પ્રાયો વર્તમાનકાલવિષય મવતિ, ન તુ ભૂતમવિષયદ્વિ-પયમ્, અસ્ય ભાવમનસ્કત્વાદિતિ ન કાલિમ્પુપદેશેન સજ્ઞી લભ્યતે ।

યુદ્ધિપૂર્વક ઇષ્ટ આહારમે પ્રવર્તિત હોતા હૈ તથા અનિષ્ટ આહાર સે નિવર્તિત હોતા હૈ વહ હેતુપદેશ કી અપેક્ષા સંજી રુદ્ધા ગયા હૈ । એસા પ્રાણી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ મી હૈ, ક્યોં કિ ઇસકે જો ઇષ્ટ ંવ અનિષ્ટ પદાર્થોં મેં પ્રવૃત્તિ તથા નિવૃત્તિ યા ચિન્તન હોંતા હૈ વહ માનસિક વ્યાપાર કે વિના નહીં હોતા હૈ । માનસિક વ્યાપારકા નામ હી સજ્ઞા હૈ । જવ ઇસ પ્રકાર કી સજ્ઞા યહા હૈ તો ફિર યે મી સજ્ઞી હી હૈ, અર્થાત્ ઇસ તરદ્દ હેતુપદેશ કી અપેક્ષા અસજ્ઞી જીવ મી સજ્ઞી માન લિયે જાતે હૈ, ક્યોં કિ ઇન જીવોંમે મી પ્રતિનિયત વિષયોં કે પ્રતિ પ્રવૃત્તિ ઔર નિવૃત્તિ લક્ષિત હોતી હૈ । દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવોંમેં જો ઇષ્ટાનિષ્ટ વિષયોં કે પ્રતિ ચિન્તન હોતા હૈ વહ વર્તમાન કાલિક હી હોતા હૈ-ભૂત મવિષ્યત કાલીન વિષ-યોકો લેકર નહીં હોતા । ઇસ હેતુપદેશ કી અપેક્ષા સજ્ઞીપને કે વિચારમે ભાવમન કી અપેક્ષા રચી ગઈ હૈ, ઔર કાલિકી ઉપદેશ કી અપેક્ષા સે

તેતુ તાત્પર્ય એ છે કે જે જીવ પોતાના શરીરના પાલનને માટે યુદ્ધિપૂર્વક ઇષ્ટ આહારમા પ્રવર્તિત થાય છે તથા અનિષ્ટ આહારથી નિવર્તિત થાય છે તે હેતુપદેશની અપેક્ષાએ સજ્ઞી કહેલ છે એવુ પ્રાણી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ પણ છે, કારણ કે તેની જે ઇષ્ટ અને અનિષ્ટ પદાર્થોમા પ્રવૃત્તિ તથા નિવૃત્તિ કે ચિન્તન થાય છે તે માનસિક વ્યાપાર વિના થતુ નથી માનસિક વ્યાપારતુ નામ જ સજ્ઞા છે જે આ પ્રકારની સજ્ઞા અહીં છે તેઓ પણ સજ્ઞી જ છે, એટલે કે આ રીતે હેતુપદેશની અપેક્ષાએ અસજ્ઞીજીવ પણ સજ્ઞી માની લેવાય છે, કારણ કે એ જીવોમા પણ પ્રતિનિયત વિષયોની તરફ પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ લક્ષિત હોય છે દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવોમા જે ઇષ્ટાનિષ્ટ વિષયોતુ ચિન્તન થાય છે તે વર્તમાન કાલિક જ હોય છે-ભૂત મવિષ્ય વિષયોને લઈને થતુ નથી આ હેતુપદેશની અપેક્ષાએ સજ્ઞીપણાના વિચારમા ભાવમનની અપેક્ષા રાખેલ છે, અને કાલિકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ સજ્ઞીપણાના વિચારમા દ્રવ્યમનની એ રીતે

यस्य तु खलु नास्त्यभिसाधारणपूर्विका कारणशक्तिः स प्राणी खलु हेतूपदेशे-
नाप्यसङ्गीति लभ्यते । स च पृथिव्यादिरेकेन्द्रियो विज्ञेयः । तस्याभिसन्धिपूर्वक-
मिष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्त्यसभवात् । याश्चाहारादिसङ्गाः पृथिव्यादीना वर्तन्ते, ता-
अप्यत्यन्तमव्यक्तरूपा इति तदपेक्षयाऽपि न तेषा सङ्गित्वव्यपदेशः ।

स एष हेतूपदेशेन सजी वर्णितः, असङ्ग्यपि वर्णितः ।

अथ कोऽसौ दृष्टिवादेन सङ्गी ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरमाह—‘दिङ्मि-
ओऽएसेण०’ इत्यादि । दृष्टिवादोपदेशेन-दृष्टिदर्शन सम्यक्त्वादिः, दृष्टीना वादो
दृष्टिवादः, तदुपदेशेन=तदपेक्षया सङ्गी स भवति यः सङ्गिश्रुतस्य क्षयोपशमेन

संजीपने के विचारमे द्रव्यमन की । इस तरह भावमन की अपेक्षा से जो
कि आत्मस्वरूप होता है द्वीन्द्रियादिक असजी जीव सजी कह दिये जाते
है । जिन जीवोमे अभिसाधारणपूर्वक कारणशक्ति नहीं है वे हेतूपदेश
की अपेक्षा से भी सजी नहीं है किन्तु असङ्गी ही है । ऐसे जीव पृथि-
व्यादिक एकेन्द्रिय माने गये है, क्योंकि इन जवों की जो इष्टानिष्ट
पदार्थोमे प्रवृत्ति निवृत्ति होती है वह अभिसाधारण पूर्वक नहीं होती
है । तथा जो आहार आदि सङ्गाएँ इन पृथिव्यादिकोमें है वे भी अत्यन्त
अव्यक्तरूपमे है, अतः इस अपेक्षा से भी उनमे सजीपने का व्यपदेश
नहीं बन सकता है । इस तरह यहा तक हेतूपदेश की अपेक्षा सजी जीव
का वर्णन हुआ । तथा इसके संबध से असङ्गी जीव का भी वर्णन हुआ ।

फिर शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! दृष्टिवाद की अपेक्षा से सजी
जीव का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—दृष्टिवाद की अपेक्षा से सजी जीव का स्वरूप यह है—जो

भावमननी अपेक्षाये जे ते आत्मस्वरूप डोय छे द्वीन्द्रियादिक असङ्गी एव सङ्गी
कडेवाय ते जे एवोभा अबिसाधारणपूर्वक उरुणशक्ति डोती नथी तेओ डेतू
पदेशनी अपेक्षाये पणु सङ्गी नथी पणु असङ्गी न छे जेवा एव पृथिव्या
दिक एकेन्द्रिय मानवामा आव्या छे, कारण ते ते एवोनी जे इष्टानिष्ट
पदार्थोभा प्रवृत्ति निवृत्ति थाय छे ते अबिसाधारणपूर्वक थती नथी तथा जे
आहारादि सङ्गा ते पृथिव्यादिओभा ते ते पणु अत्यन्त अव्यक्तरूपभा छे, तेथी
जे अपेक्षाये पणु तेमनाभा सङ्गीपणुआतु आरोपणु शक्य नथी आ रीते अडी
सुधी डेतूपदेशनी अपेक्षाये सङ्गी एवतु वर्णन थयु तथा तेना सम्बधधी
असङ्गीएवतु पणु वर्णन थयु

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! दृष्टिवादननी अपेक्षाये सङ्गीएवतु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—दृष्टिवादननी अपेक्षाये सङ्गीएवतु स्वरूप आ प्रभावे छे—

અર્થ માયઃ—યો યુદ્ધિપૂર્વક સ્વદેહવરિપાલનાર્થમિષ્ટેષ્વાહારેણ યસ્તુ પ્રવર્તતે, અનિષ્ટેભ્યથ નિવર્તતે, સ હેતૂપદેશેન સજી । સ ચ દ્વીન્દ્રિયાદિરપિ વેદિતવ્યઃ । તથાહિ—ઈષ્ટાનિષ્ટવિષયપ્રવૃત્તિનિવૃત્તિચિન્તન, ન મનોવ્યાપારમન્તરેણ સમ્ભવતિ । મનસા ચ પર્યાલોચન સજા । સા ચ દ્વીન્દ્રિયાદેરપિ પ્રિયતે, તસ્યાપિ પ્રતિનિયતેષ્ટાનિષ્ટવિષયપ્રવૃત્તિનિવૃત્તિદર્શનાત્ । તતો દ્વીન્દ્રિયાદિરપિ હેતૂપદેશેન સજી લભ્યતે । નવરમ્—અસ્ય સચિન્તન પ્રાયો વર્તમાનકાલપ્રિય ભવતિ, ન તુ ભૂતમવિષ્યદ્વિષયમ્, અસ્ય ભાવમનસ્કૃત્વાદિતિ ન કાલિમ્યુપદેશેન સજી લભ્યતે ।

યુદ્ધિપૂર્વક ઇષ્ટ આહારમે પ્રવર્તિત હોતા હૈ તથા અનિષ્ટ આહાર સે નિવર્તિત હોતા હૈં વહ હેતૂપદેશ કી અપેક્ષા સજી રુદા ગયા હૈ । જેસા પ્રાણી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ મી હૈ, કયોં કિ હસકે જો ઇષ્ટ ંવ અનિષ્ટ પદાર્થોંમે પ્રવૃત્તિ તથા નિવૃત્તિ યા ચિન્તન હોંતા હૈ વહ માનસિક વ્યાપાર કે વિના નહીં હોતા હૈ । માનસિક વ્યારકા નામ હી સજા હૈ । જવ હસ પ્રકાર કી સજા યહા હૈ તો ફિર યે મી સજી હી હૈ, અ યોંત્ હસ તરહ હેતૂપદેશ કી અપેક્ષા અસજી જીવ મી સજી માન લિયે જાતે હૈં, કયોં કિ હન જીવોંમે મી પ્રતિનિયત વિષયોં કે પ્રતિ પ્રવૃત્તિ ઔર નિવૃત્તિ લક્ષિત હોતી હૈ । દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવોંમે જો ઇષ્ટાનિષ્ટ વિષયોં કે પ્રતિ ચિન્તન હોતા હૈ વહ વર્તમાન કાલિક હી હોતા હૈ—ભૂત મવિષ્યત કાલીન વિષયોંકો લેકર નહી હોતા । હસ હેતૂપદેશ કી અપેક્ષા સજીપને કે વિચારમેં ભાવમન કી અપેક્ષા રહી ગઈ હૈ, ઔર કાલિકી ઉપદેશ કી અપેક્ષા સે

તેતુ તાર્થ એ છે કે જે જીવ પોતાના શરીરના પાલનને માટે યુદ્ધિપૂર્વક ઇષ્ટ આહારમા પ્રવર્તિત થાય છે તથા અનિષ્ટ આહારથી નિવર્તિત થાય છે તે હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ સજી કહેલ છે એવુ પ્રાણી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ પણ છે, કારણ કે તેની જે ઇષ્ટ અને અનિષ્ટ પદાર્થોમા પ્રવૃત્તિ તથા નિવૃત્તિ કે ચિન્તન થાય છે તે માનસિક વ્યાપાર વિના થતુ નથી માનસિક વ્યાપારનુ નામ જ સજા છે જે આ પ્રકારની સજા અહીં છે તેા તેઓ પણ સજી જ છે, એટલે કે આ રીતે હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ અસજીજીવ પણ સજી માની લેવાય છે, કારણ કે એ જીવોમા પણ પ્રતિનિયત વિષયોની તરફ પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ લક્ષિત હોય છે દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવોમા જે ઇષ્ટાનિષ્ટ વિષયોનુ ચિન્તન થાય છે તે વર્તમાન કાલિક જ હોય છે—ભૂત ભવિષ્ય વિષયોને લઈને થતુ નથી આ હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ સજીપણુના વિચારમા ભાવમનની અપેક્ષા રાખેલ છે, અને કાલિકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ સજીપણુના વિચારમા દ્રવ્યમનની એ રીતે

तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।

तमसः कुतोऽस्ति शक्ति, -दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ॥ १ ॥

अन्यस्तु मिथ्यादृष्टिरसञ्जी विज्ञेय इत्याह- 'असणिसुयस्स०' इत्यादि ।

असञ्चिञ्चतस्य=मिथ्याश्रुतस्य, क्षयोपशमेनाऽसञ्जीति लभ्यते । स एष दृष्टिवादोप-
देशेन सञ्जी वर्णितः, असञ्जी च वर्णितः ।

ननु प्रथम हेतूपदेशेन संज्ञी वस्तु युज्यते, हेतूपदेशेन अल्पमनोलब्धिसापन्नस्यापि
द्वीन्द्रियादेः सञ्चित्वेन स्वीकारात्, तस्य चाविशुद्धतरत्वात्, हेतूपदेशेन यः सञ्जी
जीवस्तदपेक्षया कालिम्युपदेशेन सञ्चिनो मनःपर्याप्तियुक्ततया विशुद्धत्वात्, तत्
किमर्थमुक्तमेणोपन्यासः कृत ? इति चेत्,

ही मेरे सम्यग्दृष्टित्व की शोभा है, अन्यथा-हितमें प्रवृत्ति और अहितमें
निवृत्ति का अभाव होने से मुझमें यद्यार्थत सम्यग्दृष्टित्व का अयोग ही
माना जायगा ।

कहा भी है- "तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।

"तमस कुतोऽस्ति शक्ति, -दिनकर किरणाग्रतः स्थातुम्" ॥१॥

उस ज्ञान से जीव को लाभ ही क्या हो सकता है कि जिसके होने
पर भी रागादिकों का सद्भाव आत्मामें बना रहता है । सूर्य के सद्भावमें
अन्धकार का सद्भाव कैसे हो सकता है ॥ १ ॥

असञ्जी-श्रुत के क्षयोपशम से-मिथ्याश्रुत के सद्भाव से-जीव असञ्जी
माना गया है । तात्पर्य यह है कि दृष्टिवाद की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि
जीव सञ्जी तथा मिथ्या दृष्टि जीव असञ्जी कहा गया है ।

जे तत्पर रहु तोज मारा सम्यग्दृष्टित्वनी शोभा छे अन्यथा छितभा प्रवृत्ति
अने अछितभा निवृत्तिनो अभाव होवाथी मारामा वास्तविज रीते सम्यग्
दृष्टित्वनो अयोग ज मानवामा आवशे कछु पछु छे-

"तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।

तमः कुतोऽस्ति शक्ति, -दिनकर किरणाग्रतः स्थातुम्" ॥१॥

ते ज्ञानथी एवने लाभ ज शो छोछ शके ते जे होवा छता पछु ते
आत्मामा रागादिकेनो सद्भाव टकी रहे सूर्यना सद्भावमा अधकारनो
सद्भाव देवी रीते छोछ शके ? ॥ १ ॥

असञ्जी-श्रुतना क्षयोपशमथी-मिथ्याश्रुतना सद्भावथी-एव असञ्जी मनाथे
छे तेनु तात्पर्य अे छे छे दृष्टिवादनो अपेक्षाअे सम्यग्दृष्टि एव सञ्जी तथा
मिथ्यादृष्टि एव असञ्जी कहेवाथे छे

સજ્ઞીતિ લભ્યતે । અયમર્થઃ—સજ્ઞા=સમ્યગ્જ્ઞાન, સાઽસ્પ્યાસ્તીતિ સંજ્ઞી=સમ્યગ્દષ્ટિઃ, તસ્ય શ્રુત સજ્ઞિશ્રુત-સમ્યક્શ્રુતમિત્યર્થઃ । તસ્ય=તદ્વાચરકરસ્ય કર્મણઃ, ક્ષયોપશમ-ભાવેન સજ્ઞીતિ લભ્યતે । અય માયઃ—યઃ સમ્યગ્દષ્ટિઃ ક્ષાયોપશમિક્ષણપુત્કઃ, સ દષ્ટિવાદોપદેશેન સજ્ઞીતિ વ્યપદિશ્યતે । સ ચ યથાશક્તિ રાગાદિનિગ્રહપરો મહાપુરુષો વિજ્ઞેયઃ, સ દ્વિ સમ્યગ્દષ્ટિઃ યઃ સમ્યગ્જ્ઞાનોચ રાગાદીન્ નિવૃત્ત્વાતિ, અન્યથા દિતા હિતેષુ પ્રવૃત્તિનિવૃત્ત્યભાગાત્ સમ્યગ્દષ્ટિત્વાયોગાત્ । ઉક્તચ્ચ—

સજ્ઞી શ્રુત કે આચારક કર્મ કે ક્ષયોપશમ સે જીવ 'સજ્ઞી' ઇસ તરહ કે વ્યપદેશ સે યુક્ત હૈ । સમ્યક્જ્ઞાન કા નામ સજ્ઞા હૈ । યહ સજ્ઞા જિસ જીવ મેં પ્રાપ્ત હૈં વહ સજ્ઞી માના ગયા હૈ । ઇસ અપેક્ષા સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ હી યહા સજ્ઞીપદ સે વ્યવહૃત હુઆ હૈ । સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ કા જો શ્રુત હૈં વહ, સજ્ઞી-શ્રુત સમ્યક્શ્રુત હૈ । ઇસ સજ્ઞિશ્રુત કે આચારક કર્મ-શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મ-કે ક્ષયોપશમ સે જિસ જીવમેં "સજ્ઞી" ઇસ તરહ કા વ્યપદેશ હુઆ હૈં વહ દષ્ટિવાદ કી અપેક્ષા સે સજ્ઞી માના ગયા હૈ । ક્ષાયોપશમિક્ષણ જ્ઞાન શાલી સમ્યક્ દષ્ટિ જીવ હી દષ્ટિવાદ કી દષ્ટિ સે સજ્ઞીપદ કા વાચ્યાર્થ કહા ગયા હૈ । યહ જીવ અપની શક્તિ કે અનુસાર રાગાદિક દોષોં કો દૂર કરનેમેં તત્પર રહતા હૈ, ઓર ઇસકી આત્મા અન્ય સાધારણ જીવોં કી અપેક્ષા વિશેષ મહત્વશાલી હુઆ કરતી હૈ । સમ્યગ્જ્ઞાની જીવ જિસ તરહ અનંતસસાર કે કારણભૂત રાગાદિકોં કો સર્વથા વિલીન કરનેમેં ઉદ્યોગ શાલી રહતા હૈ ડસી તરહ યહ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ મી યહી વિચાર કિયા કરતા હૈ કિમેં મી રાગાદિકોં કે નિગ્રહ કરનેમેં જબ તત્પર રહુંગા તથ

સજ્ઞીશ્રુતના આચારક કર્મના ક્ષયોપશમથી જીવ "સજ્ઞી" એ પ્રકારના વ્યપદેશથી યુક્ત છે સમ્યક્જ્ઞાનનું નામ સજ્ઞા છે આ સજ્ઞા જે જીવને પ્રાપ્ત છે તે સજ્ઞી મનાય છે એ અપેક્ષાએ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ જ અહીં સજ્ઞી પદથી વ્યવહાર થયેલ છે સમ્યગ્દષ્ટિ જીવનું જે શ્રુત છે તે સજ્ઞીશ્રુત સમ્યક્શ્રુત છે આ સજ્ઞીશ્રુતના આચારક કર્મ-શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી જે જીવમા "સજ્ઞી" આ પ્રકારનો વ્યપદેશ થયો છે તે દષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ સજ્ઞી મનાયો છે ક્ષાયોપશમિક્ષણ જ્ઞાનવાળો સમ્યક્દષ્ટિ જીવ જ દષ્ટિવાદની દષ્ટિએ સજ્ઞીપદનો વાચ્યાર્થ કહેલ છે એ જીવ પોતાની શક્તિ પ્રમાણે રાગાદિક દોષોને દૂર કરવાને તત્પર રહે છે, અને તેનો આત્મા ધીબ સાધારણ જીવો કરતા વિશેષ મહત્વવાળો હોય છે સમ્યગ્જ્ઞાની જીવ જે રીતે અનંત સસારના કારણભૂત રાગાદિકોનો સર્વથા નાશ કરવામા ઉદ્યોગી રહે છે, એજ રીતે આ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ પણ એજ વિચાર કયો કરે છે કે હું પણ રાગાદિકોનો નિગ્રહ કરવાને

तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।

तमसः कुतोऽस्ति शक्ति, -दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ॥ १ ॥

अन्यस्तु मिथ्यादृष्टिरसञ्जी विज्ञेय इत्याह- 'असणिसुयस्स०' इत्यादि । असञ्चिञ्चतस्य=मिथ्याश्रुतस्य, क्षयोपशमेनाऽसञ्जीति लभ्यते । स एष दृष्टिवादोपदेशेन सञ्जी वर्णितः, असञ्जी च वर्णितः ।

ननु प्रथम हेतूपदेशेन सञ्जी वस्तु युज्यते, हेतूपदेशेन अल्पमनोलब्धिसापन्नस्यापि द्वीन्द्रियादेः सञ्चित्वेन स्वीकारात्, तस्य चाविशुद्धतरत्वात्, हेतूपदेशेन यः सञ्जी जीवस्तदपेक्षया कालिम्बुपदेशेन सञ्चिनो मनःपर्याप्तियुक्ततया विशुद्धत्वात्, तत् किमर्थमुत्क्रमेणोपन्यासः कृतः ? इति चेत्,

ही मेरे सम्बन्धदृष्टित्व की शोभा है, अन्यथा-हितमें प्रवृत्ति और अहितमें निवृत्ति का अभाव होने से मुझमें यथार्थत सम्बन्धदृष्टित्व का अयोग ही माना जायगा ।

कहा भी है-“ तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।

“ तमस कुतोऽस्ति शक्ति, -दिनकर किरणाग्रतः स्थातुम् ” ॥१॥

उस ज्ञान से जीव को लाभ ही क्या हो सकता है कि जिसके होने पर भी रागादिकों का सद्भाव आत्मामें बना रहता है । सूर्य के सद्भावमें अन्धकार का सद्भाव कैसे हो सकता है ॥ १ ॥

असञ्जी-श्रुत के क्षयोपशम से-मिथ्याश्रुत के सद्भाव से-जीव असञ्जी माना गया है । तात्पर्य यह है कि दृष्टिवाद की अपेक्षा से सम्बन्धदृष्टि जीव सञ्जी तथा मिथ्या दृष्टि जीव असञ्जी कहा गया है ।

जे तत्पर रहु तोज् भास सम्बन्धदृष्टित्वनी शोभा छे अन्यथा हितमा प्रवृत्ति अने अहितमा निवृत्तिने अभाव होवाथी भासमा वास्तविज् रीते सम्बन्ध दृष्टित्वने अयोग ज् मानवामा आवशे कहु पण् छे—

“ तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।

तमः कुतोऽस्ति शक्ति, -दिनकर किरणाग्रतः स्थातुम् ” ॥१॥

ते ज्ञानथी एवने लाभ ज् शो छोड शके के जे होवा छता पण् ते आत्मामा रागादिकोना सद्भाव टकी रहे सूर्यना सद्भावमा अधकारने सद्भाव केवी रीते छोड शके ? ॥ १ ॥

असञ्जी-श्रुतना क्षयोपशमथी-मिथ्याश्रुतना सद्भावथी-एव असञ्जी मनाये छे तेनु तात्पर्य अे छे के दृष्टिवादनी अपेक्षाअे सम्बन्धदृष्टि एव सञ्जी तथा मिथ्यादृष्टि एव असञ्जी कहेवाये छे

અન્યતે—કદ સર્વત્ર સૂત્રે યત્ર કચિત્ સજ્ઞી અગંધી યા પરિગૃહ્યતે, તત્ર સર્વ
ત્રાપિ પ્રાયઃ કાલિમ્યુપદેશેન ગૃહ્યતે, ન હેતૂપદેશેન, નાપિ દૃષ્ટિચાદોપદેશેન । તસ્મા

શકા—સૂત્રકારકો સૂત્રમે મર્વપ્રથમ હેતૂપદેશસે સજ્ઞી જીવકા કથન
કરના ચાલિયે ધા, કારણ કિ હસ કથનકી દૃષ્ટિ સે અત્પમનોલઙ્ઘિ
સપત્ત ડીન્દ્રિયાદિકુ જીવ મી સજ્ઞીરૂપ સે સિદ્ધ હો જાતે હૈ । યહ યાન
સૂત્રકાર ને મી માની હૈ । હેતૂપદેશકી અપેક્ષા જો જીવ સજ્ઞી સ્વીકાર
કિયા ગયા હૈ ઉસકો અવિશુદ્ધતર માના ગયા હૈ, કારણ કિ વહ મન-
પર્યાસિયુક્ત નહીં હોતા હૈ । હસકી અપેક્ષા કાલિકી ઉપદેશ સે જો જીવ
સજ્ઞી કહા ગયા હૈ વહ વિશુદ્ધતર માના ગયા હૈ, કારણ યહ મન-પર્યાસિ
યુક્ત યનલાયા ગયા હૈ, અતઃસૂત્રકાર ને એસા ક્રમ ન રચકર જો કાલિકી
ઉપદેશ સે સજ્ઞી જીવ કા પ્રથમ કથન કિયા હૈ વહ ઉત્ક્રમ હૈ । એસા
કયોં કિયા ?

ઉત્તર—શકા ઠીક હૈ પરન્તુ યહા સૂત્રમે જો સૂત્રકાર ને એસા કથન
કિયા હૈ, ઉસકા અભિપ્રાય યહ હૈ કિ સજ્ઞી ઓર અસજ્ઞી કા કથન જહા
મી હુઆ હૈ વહા હસી કાલિકી ઉપદેશકી અપેક્ષા સે હુઆ હૈ । હેતૂપદેશ
તથા દૃષ્ટિચાદ કે ઉપદેશ સે સજ્ઞી તથા અસજ્ઞી પનેકા વિચાર નહીં હુઆ હૈ ।

શકા—સૂત્રકાર સૂત્રમા સૌથી પહેલા હેતૂપદેશથી સજ્ઞી જીવનુ કથન
કરવુ જોઈતુ હતુ, કારણ કે આ કથનની દૃષ્ટિએ અત્પમનોલઙ્ઘિયુક્ત ડીન્દ્રિ
યાદિક જીવ પણ સજ્ઞી રૂપે સિદ્ધ થઈ જાય છે આ વાત સૂત્રકારે પણ માન્ય
કરી છે હેતૂપદેશની અપેક્ષાએ જે જીવ સજ્ઞી તરીકે સ્વીકાર્યા છે તેમને
અવિશુદ્ધતર માન્યા છે, કારણ કે તે મન પર્યાસિયુક્ત હોતા નથી તેના કરતા
વાલિકી ઉપદેશથી જે જીવ સજ્ઞી કહેવાયા છે તે વિશુદ્ધતર માન્યુ છે, કારણ
કે તે મન પર્યાસિયુક્ત બતાવેલ છે, તેથી સૂત્રકારે આવો ક્રમ ન રાખતા જે
કાલિકી ઉપદેશથી સજ્ઞી જીવનુ પ્રથમ કથન કર્યું તે ઉત્ક્રમ છે એવુ
કેમ કર્યું ?

ઉત્તર—શકા ઠીક છે, પણ અહીં સૂત્રમા સૂત્રકારે જે એવુ કથન કર્યું
છે, તેનો ભાવાર્થ એ છે—સજ્ઞી અને અસજ્ઞીનો ઉદ્ભવ જ્યાં થયો હોય
ત્યાં એજ કાલિકી ઉપદેશ, અપેક્ષાએ થયેલ છે હેતૂપદેશ તથા દૃષ્ટિચાદના
સજ્ઞી તથા અસજ્ઞી કરાયો નથી

देतत्प्रतिषेधनार्थं प्रथम कालिम्युपदेशेन सञ्ज्ञिनो ग्रहणम् । तदनन्तरमप्रधानत्वाद्धे-
तृपदेशेन सञ्ज्ञिनो ग्रहण, ततः सर्वप्रधानत्वाद्दन्ते दृष्टिवादोपदेशेन सञ्ज्ञिनो ग्रहणमिति ।

तदेतत् सञ्ज्ञिश्रुत वर्णितम् । असञ्ज्ञिश्रुतमपि वर्णितमित्याशयेनाह—‘ से त
असञ्ज्ञिसुय० ’ इति । तदेतत् असञ्ज्ञिश्रुत वर्णितमित्यर्थः ॥ सू० ३९ ॥

सप्रति सूत्रकारः सम्प्रकृत वर्णयति—

मूलम्—से कि त सम्मसुय ? सम्मसुय ज इम अरिहतेहि
भगवतेहि उप्पण्णनाणदसणधरोहि तेल्लुक्कनिरिक्खियमहियपूइ-
एहि तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहि सब्बण्णूहि सब्बदरिर्साहि
पर्णीय दुवालसग गणिपिडग, त जहा—आयारो १, सूयगडे २,
ठाण ३, समवाओ ४, विवाहपण्णत्तो ५, नायाधम्मकहाओ ६,
उवासगदसाओ ७, अतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९,
पण्हावागरणाइ १०, विवागसुय ११, दिट्ठिवाओ १२, इच्चेय
दुवालसग गणिपिडग चोद्दसपुट्ठिस्स सम्मसुय, अभिण्णदसपु-
ट्ठिस्स सम्मसुय, तेण पर भिण्णेसु भयणा । से त्त सम्मसुय ॥ सू० ४० ॥

अर्थात्—जहा पर भी जीव को संज्ञी तथा असञ्ज्ञी माना गया है वह
कालि की उपदेश से ही माना गया जानना चाहिये, हेतृपदेश तथा
दृष्टिवाद की अपेक्षा से नहीं । इसी बात को समझाने के लिये सूत्रकार
ने सूत्रमे सर्वप्रथम कालिकी उपदेश की अपेक्षा संज्ञी जीव का कथन किया
है । पश्चात् अप्रधान होने से हेतृपदेश की अपेक्षा से और सर्वप्रधान
होने से अन्तमे दृष्टिवाद की अपेक्षा से सञ्ज्ञी जीव का कथन किया है ।
इस प्रकार यहातक सञ्ज्ञिश्रुत और उसके सबब से असञ्ज्ञिश्रुतका वर्णन
हुआ ॥ सू० ३९ ॥

એટલે કે જે કોઈ જગ્યાએ જીવને સ જ્ઞી તથા અસ જ્ઞી માનવામા આવ્યો
છે તે કાલિકી ઉપદેશથી જ માનવામા આવ્યો છે તેમ સમજવુ હેતુપદેશ તથા
દૃષ્ટિવાદની અપેક્ષાએ નહીં એજ વાતને સમજાવવાને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમા મૌઠી
પહેલા કાલિકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ સ જ્ઞી જીવનું વર્ણન કર્યું છે ત્યાર બાદ અપ્ર
ધાન હોવાથી હેતુપદેશની અપેક્ષાએ અને સર્વપ્રધાન હોવાથી અન્તે દૃષ્ટિવાદની
અપેક્ષાએ સ જ્ઞી જીવનું કથન કર્યું છે આ રીતે અહીં સુધી સ જ્ઞીશ્રુત અને તેના
સબબથી અસ જ્ઞીશ્રુતનું વર્ણન થયું ॥ સૂ ૩૯ ॥

ઉચ્ચતે—ઇહ સર્વત્ર સૂત્રે યત્ત્વ મ્ચિત્ત્ સજ્ઞી અમજ્ઞી ત્વા પરિગૃહ્યતે, તત્ત્વ સર્વ ત્વાપિ પ્રાયઃ કાલિમ્યુપદેશેન ગૃહ્યતે, ન હેતુપદેશેન, નાપિ દૃષ્ટિવાદોપદેશેન । તમ્મા-

શકા—સૂત્રકારકો સૂત્રમે સર્વપ્રથમ હેતુપદેશસે સજ્ઞી જીવકા કથન કરના ચાહ્યે થા, કારણ કિ ઇસ કથનકી દૃષ્ટિ સે અલ્પમનોલબ્ધિ સપન્ન દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ મ્હી સજ્ઞીરૂપ સે સિદ્ધ હો જાતે હૈ । યહ યાન સૂત્રકાર ને મ્હી માની હૈ । હેતુપદેશકી અપેક્ષા જો જીવ સજ્ઞી સ્વીકાર કિયા ગયા હૈ ઉસકો અવિશુદ્ધતર માના ગયા હૈ, કારણ કિ વહ મન-પર્યાસિયુક્ત નહી હોતા હૈ । ઇસકી અપેક્ષા કાલિકી ઉપદેશ સે જો જીવ સજ્ઞી કહા ગયા હૈ વહ વિશુદ્ધતર માના ગયા હૈ, કારણ યહ મન.પર્યાસિ યુક્ત ઘતલાયા ગયા હૈ, અતઃસૂત્રકાર ને ણેસા ક્રમ ન રખકર જો કાલિકી ઉપદેશ સે સજ્ઞી જીવ કા પ્રથમ કથન કિયા હૈ વહ ઉત્ક્રમ હૈ । ણેસા ક્યોં કિયા ?

ઉત્તર—શકા ઠીક હૈ પરન્તુ યહા સૂત્રમે જો સૂત્રકાર ને ણેસા કથન કિયા હૈ, ઉસકા અભિપ્રાય યહ હૈ કિ સજ્ઞી ઓર અસજ્ઞી કા કથન જહા મ્હી હુઆ હૈ વહા ઇસી કાલિકી ઉપદેશકી અપેક્ષા સે હુઆ હૈ । હેતુપદેશ તથા દૃષ્ટિવાદ કે ઉપદેશ સે સજ્ઞી તથા અસજ્ઞી પનેકા વિચાર નહી હુઆ હૈ ।

શકા—સૂત્રકાર સૂત્રમા સૌથી પહેલા હેતુપદેશથી સજ્ઞી જીવનું કથન કરવું બોધવું હતું, કારણ કે આ ધ્યનની દૃષ્ટિએ અલ્પમનોલબ્ધિયુક્ત દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ પણ સજ્ઞી રૂપે સિદ્ધ થઈ જાય છે આવા સૂત્રકારે પણ માન્ય કરી છે હેતુપદેશની અપેક્ષાએ જે જીવ સજ્ઞી તરીકે સ્વીકાર્યા છે તેમને અવિશુદ્ધતર માન્યા છે, કારણ કે તે મન પર્યાસિયુક્ત હોતા નથી તેના કરતા કાલિકી ઉપદેશથી જે જીવ સજ્ઞી કહેવાયા છે તે વિશુદ્ધતર માન્ય છે, કારણ કે તે મન પર્યાસિયુક્ત બતાવેલ છે, તેથી સૂત્રકારે આવો ક્રમ ન રાખતા જે કાલિકી ઉપદેશથી સજ્ઞી જીવનું પ્રથમ કથન કર્યું તે ઉત્ક્રમ છે એવું કેમ કર્યું ?

ઉત્તર—શકા ઠીક છે, પણ અહીં સૂત્રમા સૂત્રકારે જે એવું ધ્યન કર્યું છે, તેનો ભાવાર્થ એ છે કે સજ્ઞી અને અસજ્ઞીને ઉત્ક્રેષ્ઠ તથા થયે હોય ત્યાં એજ કાલિકી ઉપદેશની અપેક્ષાએ થયેલ છે હેતુપદેશ તથા દૃષ્ટિવાદના સજ્ઞી તથા અસજ્ઞીપણાનો વિચાર કરાયો નથી

पूजिताश्चेति समासः । त्रलोक्येन निरीक्षितमहितपूजिताः-त्रैलोक्यनिरीक्षितमहित-
 पूजितास्तैरिति विग्रह । त्रैलोक्यशब्देन भवनपति १-व्यन्तर-नर-विद्याधर-ज्यो-
 त्स्कि २-वैमानिकाना ३ ग्रहणम् । तत्र निरीक्षिता = मनोरथपरपरासपत्तिसभ-
 विनिश्चयसमुत्थसामदविकाशिलोचनैर्भक्तिनैरालोकिताः, महिताः=अनन्यसाधा-
 रणगुणोत्कीर्तनेन प्रशसिताः, पूजिताः=प्रशस्तभावेन कायेन नमस्कृताः वीतरा-
 गाणा पुष्पादिभिः सावधपूजाया निपिद्धत्वात् । तथा-अतीतप्रत्युत्पन्नानागत
 ज्ञायकै -अतीत=भूतकालिक, प्रत्युत्पन्न=वर्तमानकालिकम्, अनागत-भविष्यत्काल-
 लिकृ तेषा ज्ञायकाः=ज्ञातारस्तैः, तथा सर्वज्ञैः-सर्वं=समस्त द्रव्यप्रदेशपर्यायरूप वस्तु
 जानन्तीति सर्वज्ञास्तैः, तथा सर्वदर्शिभिः=संप्राणिगणमात्मन्त् पश्यन्तीति सर्वदर्शि-
 नस्तैः, प्रणीतम्=अर्थरूथनद्वारेण प्ररूपितम्, द्वादशाङ्गं=द्वादश अङ्गानि आचारादीनि
 यस्मिंस्तत् द्वादशाङ्गम् । गणिपिटकः=गणो गच्छः, गुणगणो वाऽस्यास्तीति गणी
 आचार्यस्तस्य पिटकः=मञ्जूषा, पिटक इय पिटकः-सर्वस्वमित्यर्थः । सर्वज्ञैः सर्व-
 दर्शिभिस्तीर्थकरैर्यद् गणिपिटकरूप द्वादशाङ्गं प्रणीत तत् सम्यक्श्रुतमिति निष्कर्षः।

आनन्द-विकसित लोचनों के आलोकित, महित=अनन्य साधारण गुणो-
 त्कीर्त्तन पूर्वक प्रशसित पूजित=वितरागों की पुष्पादि सामग्री से की गयी
 सावधपूजा निपिद्ध होने के कारण प्रशस्त भाव युक्त शरीर से नमस्कृत,
 ऐसे अरिहत प्रभु द्वारा अर्थरूथन-पूर्वक प्ररूपित हुआ है । ये अर्हत प्रभु
 अतीत-भूत, प्रत्युत्पन्न-वर्तमान, तथा अनागत-भविष्यत्काल सावधी
 समस्त पदार्थों के ज्ञाता, तथा सर्वज्ञ-समस्त-द्रव्यों के तथा उनकी
 समस्त पर्यायों के वेत्ता, एव सर्वदर्शी-त्रिलोक-वर्ती समस्त जीव
 राशि को अपने तुल्य देखनेवाले होते हैं । सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी तीर्थ-
 कर प्रभुने जिसका अर्थतः प्ररूपण किया है वह द्वादशाङ्गगणिपिटक है ।

नेथी आलोकित, महित=अनन्य साधारण गुणोत्कीर्त्तन पूर्वक प्रशसित,
 पूजित=वीतरागानी पुष्पादी सामग्रीथी करता सावध पूजा निपिद्ध होवाने
 कारणे प्रशस्त भावयुक्त शरीरथी नमस्कृत, जेवा अरिहत प्रभु द्वारा अर्थ
 रूथन प्ररूपित थयु छे ते अर्हत प्रभु भूत, वर्तमान तथा भविष्यकाण समधी
 सधणा पदार्थोना ज्ञाता, तथा सर्वज्ञ-समस्त द्रव्योना प्रदेशोना तथा तेमनी
 पर्यायोना ज्ञानारा, अने सर्वदर्शी-त्रिलोकवर्ती समस्त जिवराशिने चोतानी
 जेभ हेमनारा होय छे सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी तीर्थ कर प्रभुजे जेनु अर्थपूर्वक
 प्ररूपण कथुं छे ते द्वादशाङ्गगणि पिटक छे तेने गणिपिटक ते कारणे कथुं छे

छाया—अथ किं तत् सम्यक्श्रुतम् ? सम्यक्श्रुत-यदिदम् अर्हद्भिर्मगवद्भि-
रुत्पन्नज्ञानदर्शनधरैर्त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः, अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः
सर्वैः सर्वदर्शिभिः प्रणीत द्वादशाङ्ग गणिपिटक', तद्यथा—आचारः १, मूत्रकृतम् २,
स्थानम् ३, समवाय ४, त्रिपाहप्रज्ञप्ति ५, ज्ञातार्थमर्यादाः ६, उपामरुदशाः ७,
अन्तकृदशाः ८, अनुत्तरोपपातिरुदशाः ९, प्रश्नव्याकरणाणि १०, त्रिपादश्रुतम् ११,
दृष्टिवादः १२, इत्येव द्वादशाङ्गगणितकश्चतुर्दशपूर्विणं सम्यक्श्रुतम् । अमिषदश-
पूर्विणः सम्यक्श्रुतम् । ततः पर भिन्नेषु भजना । तदेतत् सम्यक्श्रुतम् ॥ मृ०४०॥

टीका—शिष्यं पृच्छति—'से किं त सम्मसुय' इति । अथ किं तत्
सम्यक्श्रुतमिति । सम्यक्श्रुतस्य किं स्वरूप ? मिति प्रश्नः । उत्तरमाह—'सम्मसुय०'
इत्यादि । सम्यक्श्रुत तदुच्यते, यदिदम् अर्हद्भिः=तीर्थकरैः, भगवद्भिः-भगः=
समग्रैश्वर्यादिः, उक्तञ्च—

“एश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशस' श्रियः ।

धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, पण्णा भग इतीद्वना” ॥ १ ॥ इति ।

भगो विद्यते येषां ते भगवन्तस्तैः=समग्रैश्वर्यसमग्ररूपादियुक्तैः, तथा उत्पन्न
ज्ञानदर्शनधरैः=उत्पन्ने ज्ञानदर्शने=केवलज्ञानकेवलदर्शने, उत्पन्नज्ञानदर्शने तयोर्धराः,
उत्पन्नज्ञानदर्शनधरास्तैः, तथा त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः-निरीक्षिताश्च महितश्च

अत्र सूत्रकार सम्यक्श्रुत का वर्णन करते हैं—'से किं त सम्म-
सुय ?' इत्यादि—

शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! पूर्ववर्णित सम्यक्श्रुत का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—पूर्ववर्णित सम्यक्श्रुत वह है जो भगवान्-समग्रैश्वर्य १,
रूप २, यश ३, लक्ष्मी ज्ञानादिलक्ष्मी ४, धर्म ५, और प्रयत्न ६, इन छहों
अर्थों से सपन्न तथा अनतज्ञान अनतदर्शन शाली, तथा त्रैलोक्यद्वारा-
भवनपति, व्यन्तर, नर, विद्याधर, ज्योतिष्क एव वैमानिक देवों द्वारा-
निरीक्षित-अर्थात्-मनोरथों से परिपूर्ण होने के निश्चय से समुत्पन्न

इसे सूत्रकार सम्यक्श्रुतनु वर्णन करे छे—से किं त सम्मसुय ? इत्यादि

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! पूर्ववर्णित सम्यक्श्रुतनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—पूर्ववर्णित सम्यक्श्रुत अये छे जे भगवान्-(१) समग्रैश्वर्य,

(२) रूप (३) यश (४) लक्ष्मी (ज्ञानादि लक्ष्मी) (५) धर्म अने (६) प्रयत्न
अये छे अर्थोर्थी युक्त तथा अनत ज्ञान अनत दर्शनशाली, तथा त्रैलोक्य द्वारा-
भवनपति, व्यन्तर, नर, विद्याधर, ज्योतिष्क अने वैमानिक देवों द्वारा-निरीक्षित
अये छे जे मनोरथोना परिपूर्ण थवाना निश्चयथी प्राप्त आनन्द-विकसित-लोच्य-

पूजिताश्चेति समासः । त्रलोभ्येन निरीक्षितमहितपूजिताः-त्रैलोक्यनिरीक्षितमहित-
पूजितामैरिति विग्रह । त्रैलोक्यशब्देन भवनपति १-व्यन्तर-नर-विद्याधर-ज्यो-
तिष्क २-वैमानिकाना ३ ग्रहणम् । तत्र निरीक्षिता = मनोरथपरपरासापत्तिसाभव-
विनिश्चयसमुत्थसामदविकाशिलोचनैर्भक्तिनम्रैरालोकिताः, महिताः = अनन्यसाधा-
रणगुणोत्कीर्तनेन प्रशसिताः, पूजिताः = प्रशस्तभावेन कायेन नमस्कृताः वीतरा-
गाणा पुष्पादिभिः सावधपूजाया निषिद्धत्वात् । तथा-अतीतप्रत्युत्पन्नानागत
ज्ञायकै - अतीत = भूतकालिक, प्रत्युत्पन्न = वर्तमानकालिकम्, अनागत-भविष्यत्का-
लिक तेपा ज्ञायकाः = ज्ञातारस्तैः, तथा सर्वज्ञैः - सर्व = समस्त द्रव्यप्रदेशपर्यायरूप वस्तु
जानन्तीति सर्वज्ञास्तैः, तथा सर्वदर्शिभिः = सर्वप्राणिगणमात्मन्त् पश्यन्तीति सर्वदर्शि-
नस्तैः, प्रणीतम् = अर्थकथनद्वारेण प्ररूपितम्, द्वादशाङ्गं = द्वादश अङ्गानि आचारादीनि
यस्मिंस्तत् द्वादशाङ्गम् । गणिपिटकः = गणो गण्डः, गुणगणो वाऽस्यास्तीति गणी
आचार्यस्तस्य पिटकः = मञ्जूषा, पिटक इय पिटकः - सर्गस्वमित्यर्थः । सर्वज्ञैः सर्व-
दर्शिभिस्तीर्थकरैर्यद् गणिपिटकरूप द्वादशाङ्गं प्रणीत तत् सम्यक्श्रुतमिति निष्कर्षः।

आनन्द-विकसित लोचनों के आलोकित, महित = अनन्य साधारण गुणो-
त्कीर्त्तन पूर्वक प्रशसित पूजित = वितरागों की पुष्पादि सामग्री से की गयी
सावधपूजा निषिद्ध होने के कारण प्रशस्त भाव युक्त शरीर से नमस्कृत,
ऐसे अरिहत प्रभु द्वारा अर्थकथन-पूर्वक प्ररूपित हुआ है । ये अर्हत प्रभु
अतीत-भूत, प्रत्युत्पन्न-वर्तमान, तथा अनागत-भविष्यत्काल सावधी
समस्त पदार्थों के ज्ञाता, तथा सर्वज्ञ-समस्त-द्रव्यों के तथा उनकी
समस्त पर्यायों के वेत्ता, एवं सर्वदर्शी-त्रिलोक-वर्ती समस्त जीव
राशि को अपने तुल्य देखनेवाले होते हैं । सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी तीर्थ-
कर प्रभुने जिसका अर्थतः प्ररूपण किया है वह द्वादशाङ्गगणिपिटक है ।

नाथी आलोकित, महित = अनन्य साधारण गुणोत्कीर्त्तन पूर्वक प्रशसित,
पूजित = वीतरागोनी पुष्पादि सामग्रीधी करतायी सावध पूजा निषिद्ध होवाने
कारण प्रशस्त भावयुक्त शरीरधी नमस्कृत, जेवा अरिहत प्रभु द्वारा अर्थ
कथन प्ररूपित थयु छे ते अर्हत प्रभु भूत, वर्तमान तथा भविष्यकाल सावधी
सधणा पदार्थोना ज्ञाता, तथा सर्वज्ञ-समस्त द्रव्योना प्रदेशोना तथा तेमनी
पर्यायोना लक्षणारा, अने सर्वदर्शी-त्रिलोकवर्ती समस्त लुवराशिने पेतानी
जेम देभनारा होय छे सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी तीर्थ कर प्रभुजे जेतु अर्थपूर्वक
प्ररूपण कथ्यु छे ते द्वादशाङ्गगणि पिटक छे तेने गणिपिटक ते कारणे कथ्यु छे

फानि तानि द्वादशाङ्गानीति जिज्ञासामायामाह—‘तं जहा०’ इत्यादि । तद् यथा—तानि द्वादशाङ्गानि यथा सन्ति तथा वर्णयामीत्यर्थः । आचारः=आचाराङ्गम् १ । सूत्रकृत=सूत्रकृताङ्गम् २ । स्थान=स्थानाङ्गम् ३ । समवायः=समवायाङ्गम् ४ । विवाहप्रज्ञप्तिः=भगवतीसूत्रम् ५ । ज्ञाताधर्मकथाः=ज्ञाताधर्मकथाऽङ्गम् ६ । उपासकदशाः=उपासकदशाङ्गम् ७ । अन्तकृदशाः=अन्तकृदशाङ्गम् ८ । अनुत्तरोपपातिकदशाः=अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गम् ९ । प्रश्नव्याकरणानि=प्रश्नव्याकरणसूत्रम् १० । विपाकश्रुत=विपाकश्रुतसूत्रम् ११ । दृष्टिवादः १२ । इत्येतद् द्वादशाङ्ग गणिपिटकरूप चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्श्रुतम् । यश्चतुर्दशपूर्वी, तस्य सकलमपि सामायिकादि-विन्दुसारपर्यन्त श्रुत नियमात् सम्यक्श्रुतम् । ततोऽधोमुखपरिहान्या नियमतः सर्वं सम्यक्श्रुतं तावद् वक्तव्यं यावदभिन्नदशपूर्विणः=संपूर्णदशपूर्वधरस्यापि सम्यक्श्रुतम् । संपूर्णदशपूर्वध-

गणिपिटक इसे इस लिये कहा गया है कि यह गणी-आचार्यका पिटक मजूपाके समान माना गया है । वह इस प्रकार है—१ आचाराग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ विवाहप्रज्ञप्ति-भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृतदशाङ्ग, ९ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणसूत्र, ११ विपाकश्रुत, १२ दृष्टिवाद । यह चतुर्दशपूर्वधारीका गणिपिटकरूप द्वादशाङ्ग सम्यक्श्रुत है । तात्पर्य यह है कि चौदह पूर्वपाठीका जितना भी सामायिक आदिसे ले कर विन्दुसार पर्यन्त श्रुत है, वह समस्त सम्यक्श्रुत है । इस प्रकार पश्चानुपूर्वीसे कम से कम अभिन्नदशपूर्वधारीका-समस्त दशपूर्वपाठीकाश्रुत है वह भी सम्यक्श्रुत है, कारण ये सम्पूर्ण दशपूर्व नियमत सम्यग्दृष्टि जीवके होते हैं-मिथ्यादृष्टिके नहीं । तात्पर्य कहनेका यह है कि पूरे दश

‘के ते गणी-आचार्यनु पिटक-पेटीना समान गणाय छे ते आ प्रभाण्णु छे—

(१) आचाराग, (२) सूत्रकृताग (३) स्थानाग (४) समवायाग (५)

विवाहप्रज्ञप्ति भगवती सूत्र, (६) ज्ञाता धर्मकथाग (७) उपासक दशाग (८)

अन्तकृत दशाग (९) अनुत्तरोपपातिक दशाग (१०) प्रश्न व्याकरण सूत्र (११)

विपाकश्रुत सूत्र (१२) दृष्टिवाद आ चौदह पूर्वधारीका गणिपिटक रूप द्वादशाग

सम्यक्श्रुत छे तेनु तात्पर्यं अे छे के चौदह पूर्वपाठीना सामायिक आदिथी लधने

विन्दुसार सुधी नेटला श्रुत छे ते सम्यक्श्रुत छे आ प्रकारे पश्चानुपूर्वीथी

ओछाभा ओछा अबिन्न दश पूर्वधारीना-समस्त दश पूर्वपाठीनु श्रुत छे ते

पणु सम्यक्श्रुत छे, कारण के अे संपूर्ण दशपूर्व नियमथी सम्यग्दृष्टि लधने

हाय छे-मिथ्यादृष्टिके नहीं तेनु तात्पर्यं अे छे के पूरा दश

रत्वादिक हि नियमतः सम्यग्दृष्टेरेव, न तु मिथ्यादृष्टेः, तथा स्वाभाव्यात् । तथा हि—यथा अभव्यो ग्रन्थिदेशमुपागतोऽपि तथास्वभावत्वान्न ग्रन्थिभेदमाधातु समर्थः, एवं मिथ्यादृष्टिरपि श्रुतमग्राहमानः प्ररूपतोऽपि तावदवगाहते, यावत् किञ्चिन्मूत्रानि दशपूर्वाणि भवन्ति, परिपूर्णाणि तु तानि नावगाहितु शक्नोति, तथा—स्वभावत्वादिति ।

ततः पर=सपूर्णदशपूर्वधरत्वात् पश्चानुपूर्व्याः पर भिन्नेषु न्यूनेषु दशसु पूर्वेषु, भजना=विकल्पना । रुदाचित् सम्यक्श्रुत, रुदाचित् मिथ्याश्रुतमित्यर्थः । पूर्वश्रुतको जिसने पढ़ लिया है ऐसा जीव नियमसे सम्यग्दृष्टि ही होता है, मिथ्यादृष्टि नहीं, क्यों कि मिथ्यादृष्टि जीव सम्पूर्ण दश पूर्वों का अव्येता नहीं हो सकता है, यह नियत है । जिस प्रकार अभव्य जीव रागद्वेषरूपी ग्रन्थिदेशतक आकर भी उसे भेद नहीं सकता,—कारण उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि, जिस कारणसे उससे उस ग्रन्थिका भेद करना नहीं बन सकता है । रागद्वेषरूपी इस ग्रन्थिका भेद-विनाश तो जो सम्यग्दृष्टि जीव हुआ करते हैं । इसी तरह मिथ्यादृष्टि जीव भी श्रुतका अध्ययन करता हुआ भी उसे यहाँ तक पढ़ लेता है कि जिससे वह कुछ कम दशपूर्वका पाठी बन जाता है, परन्तु फिर भी उसका मिथ्यात्व नहीं जाता, अतः उस कारणसे वह सम्पूर्ण दशपूर्वका पाठी नहीं बन सकता है । जो सम्पूर्ण दश पूर्वके पाठी नहीं होते हैं उनमें सम्यक्श्रुतकी भजना है अर्थात् उनमें कभी सम्यक्श्रुत और कभी मिथ्याश्रुत होता है । इसका तात्पर्य यह है कि जिन सम्यग्दृष्टि

वाची वीधा छे जेवो एव नियमथी सम्यग्दृष्टि न होय छे, मिथ्यादृष्टि नहीं जारखे के मिथ्यादृष्टि एव स पूर्ण दशपूर्वना अब्यासी थर्ष शकते नथी, जे नियत छे जे प्रकारे अलव्यएव रागद्वेषरूपी ग्रन्थिदेश सुधी आपीने पखु तेने लेही शकते नथी, जारखे के तेने स्वभाव न कर्षज जेवो होय छे के जे जारखे तेनार्थी ते ग्रन्थिने लेहवातु गनी शकतु नथी रागद्वेषरूपी आ ग्रन्थिने नाश तो जे एव सम्यग्दृष्टि होय छे तेजो न करे छे आ रीते मिथ्यादृष्टि एव पखु श्रुतनु अध्ययन करवा छता पखु तेने त्या सुधी अब्यास करी ले छे के जेथी ते दशपूर्वना पाठी जस्ता कर्षज न्यून थर्ष शके छे, पखु ते छता तेनु मिथ्यात्व न्तु नवी, तेथी ते जारखे ते स पूर्ण दशपूर्वना पाठी गनी शकते नथी जे स पूर्ण दशपूर्वना पाठी होता नथी, तेमनामा सम्यक्श्रुतनी लजना छे जेदहे के तेमनामा क्यारेक सम्यक्श्रुत अने क्यारेक मिथ्याश्रुत होय छे

ફાનિ તાનિ દ્વાદશાદ્વાનીતિ જિજ્ઞાસાયમાહ—‘તં જહા૦’ इत्यादि । तद् यथा—तानि द्वादशाङ्गानि यथा सन्ति तथा वर्णयामीत्यर्थः । आचारः=आचारङ्गम् १ । सूत्रकृत=सूत्रकृताङ्गम् २ । स्थान=स्थानाङ्गम् ३ । समवायः=समवायाङ्गम् ४ । विवाहप्रज्ञप्तिः=भगवतीसूत्रम् ५ । ज्ञातधर्मकथाः=ज्ञाताधर्मकथाऽङ्गम् ६ । उपासकदशाः=उपासकदशाङ्गम् ७ । अन्तकृतदशाः=अन्तकृतदशाङ्गम् ८ । अनुत्तरोपपातिकदशाः=अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गम् ९ । प्रश्नव्याकरणानि=प्रश्नव्याकरणसूत्रम् १० । विपाकश्रुत=विपाकश्रुतसूत्रम् ११ । दृष्टिवादः १२ । इत्येतद् द्वादशाङ्ग गणिपिटकरूप चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्श्रुतम् । यश्चतुर्दशपूर्वी, तस्य सकलमपि सामायिकादि-विन्दुसारपर्यन्त श्रुत नियमात् सम्यक्श्रुतम् । ततोऽधोमूलपरिहान्या नियमतः सर्वं सम्यक्श्रुत तावद् वक्तव्यं यावदभिन्नदशपूर्विणः=संपूर्णदशपूर्वधरस्यापि सम्यक्श्रुतम् । संपूर्णदशपूर्वध-

गणिपिटक इसे इस लिये कहा गया है कि यह गणी-आचार्यका पिटक मजूपाके समान माना गया है । वह इस प्रकार है—१ आचाराग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ विवाहप्रज्ञप्ति-भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृतदशाङ्ग, ९ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणसूत्र, ११ विपाकश्रुत, १२ दृष्टिवाद । यह चतुर्दशपूर्वधारीका गणिपिटकरूप द्वादशाग सम्यक्श्रुत है । तात्पर्य यह है कि चौदह पूर्वपाठीका जितना भी सामायिक आदिसे ले कर विन्दुसार पर्यन्त श्रुत है, वह समस्त सम्यक्श्रुत है । इस प्रकार पश्चानुपूर्वीसे कम से कम अभिन्नदशपूर्वधारीका-समस्त दशपूर्वपाठीकाश्रुत है वह भी सम्यक्श्रुत है, कारण ये सम्पूर्ण दशपूर्व नियमतः सम्यग्दृष्टि जीवके होते हैं—मिथ्यादृष्टिके नहीं । तात्पर्य कहनेका यह है कि पूरे दश

કે તે ગણી-આચાર્યનું પિટક-ચેટીના સમાન ગણાય છે તે આ પ્રમાણે છે—

(૧) આચારાગ, (૨) સૂત્રકૃતાગ (૩) સ્થાનાગ (૪) સમવાયાગ (૫) વિવાહપ્રજ્ઞપ્તિ ભગવતી સૂત્ર, (૬) જ્ઞાતા ધર્મકથાગ (૭) ઉપાસક દશાગ (૮) અન્તકૃત દશાગ (૯) અનુત્તરોપપાતિક દશાગ (૧૦) પ્રશ્ન વ્યાકરણ સૂત્ર (૧૧) વિપાકશ્રુત સૂત્ર (૧૨) દૃષ્ટિવાદ આ ચૌદ પૂર્વધારિકા ગણિપિટક રૂપ દ્વાદશાગ સમ્યક્શ્રુત છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે ચૌદ પૂર્વપાઠીના સામાયિક આદિથી લઈને વિન્દુસાર સુધી જેટલા શ્રુત છે તે સમ્યક્શ્રુત છે આ પ્રકારે પશ્ચાનુપૂર્વીથી આઠમા આઠમ અભિન્ન દશ પૂર્વધારીના-સમસ્ત દશ પૂર્વપાઠીનું શ્રુત છે તે પણ સમ્યક્શ્રુત છે, કારણ કે એ સંપૂર્ણ દશપૂર્વ નિયમથી સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવને હાય છે-મિથ્યાદૃષ્ટિને નહીં તેનું તાત્પર્ય એ છે કે પૂરા દશ પૂર્વ

ચેત્, ઉચ્યતે—શુદ્ધદ્રવ્યાસ્તિકનયમતાનુસારિભિઃ કૈશ્વિદનાદિસિદ્ધા યુક્તા અર્હ-
ન્વેન સ્વીક્રિયન્તે । ઉક્તશ્ચ તૈઃ—

“ જ્ઞાનમપ્રતિઘ યસ્ય, વૈરાગ્ય ચ જગત્પતેઃ ।

ૐશ્વર્યં ચૈવ ધર્મશ્ચ, સહસિદ્ધ ચતુષ્ટયમ્ ” ॥ ૧ ॥

હત્યાદિ । તેપામિહ ગ્રહણ નાસ્તીતિ વોધયિતું ભગવદ્ધિરિતિ વિશેષણમ્ ।

શકા—સૂત્ર મે જવ “ અર્હદ્ધિઃ ” એસા પદ સૂત્રકાર ને રચા હૈ તવ
હસ એક પદ સે હી ભગવદ્રૂપ અર્થ કા વોધ હો જાતા હૈ તો ફિર
“ ભગવદ્ધિઃ ” હસ વિશેષણ કા સ્વતન્ત્રરૂપ સે સૂત્ર મેં ગ્રહણ ક્યોં
કિયા ગયા હૈ ? ।

ઉત્તર—કિતનેક એસે ભી પ્રાણી હૈં જો શુદ્ધદ્રવ્યાસ્તિકનય કી
માન્યતા કો લેકર એસા કહતે હૈં કિ મુક્ત જીવ અનાદિ કાલ સે સિદ્ધ
હૈં ઓર વે અર્હત પદ વાચ્ય માને ગયે હૈં । જૈસે—

“ જ્ઞાનમપ્રતિઘ યસ્ય, વૈરાગ્ય ચ જગત્પતેઃ ।

ૐશ્વર્યં ચૈવ ધર્મશ્ચ, સહ સિદ્ધ ચતુષ્ટયમ્ ” ॥ ૧ ॥

અપ્રતિઘ-અનત-જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ૐશ્વર્ય એવ ધર્મ યે ચાર વાતેં જગ-
ત્પતિ પ્રભુ મેં સ્વાભાવિકરૂપ સે સિદ્ધ હૈં સો એસે અનાદિસિદ્ધ પરમાત્મા
કા યહા “ ભગવતેહિં ” પદ સે ગ્રહણ નહીં હુઆ હૈ, હસ વાત કો પ્રકટ
કરને કે લિયે સૂત્રકાર ને સૂત્ર મેં “ ભગવતેહિં ” યહ પદ રચા હૈ ।

શકા—સૂત્રમા જે “ અર્હદ્ધિ ” એવુ પદ સૂત્રકારે મૂક્યુ છે, તે એ એક
પદથી જ ભાગવદ્રૂપ અર્થને વોધ થઇ નય છે તે પછી “ ભગવદ્ધિ ” આ
વિશેષણને સ્વતન્ત્રરૂપે સૂત્રમા કેમ ગ્રહણ કર્યું છે ?

ઉત્તર—કેટલાક એવા પ્રાણીઓ છે જે શુદ્ધ દ્રવ્યાગ્નિક નયની માન્યતાને
લીધે એવુ કહે છે કે મુક્તણવ આનાદિ કાળથી સિદ્ધ છે અને તેમને અર્હત
પદવાચ્ય માન્ય છે જેમ કે—

“ જ્ઞાનમપ્રતિઘ, યસ્ય, વૈરાગ્ય ચ જગત્પતેઃ ॥

ૐશ્વર્યં ચૈવ, ધર્મશ્ચ સહ સિદ્ધ ચતુષ્ટયમ્ ” ॥ ૧ ॥

અપ્રતિઘ-અનત-જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ૐશ્વર્ય અને ધર્મ એ ચાર વાત જગ-
ત્પતિ પ્રભુમા સ્વાભાવિક રીતે સિદ્ધ છે, તે એવા આનાદિ સિદ્ધ પરમાત્માવુ
અહીં “ ભગવતેહિં ” પદથી ગ્રહણ થયુ નથી, એ વાતને પ્રકટ કરવા માટે
સૂત્રકારે સૂત્રમા “ ભગવતેહિં ” એ પદ મૂક્યુ છે “ ભગવત ” પદથી એવા પર-

અર્થ ભાવઃ—સમ્યગ્દષ્ટેઃ પ્રશમાદિગુણગણોપેતસ્ય સમ્યક્શ્રુત ભવતિ, યથાવસ્થિતાર્થ તપા તસ્ય સમ્યક્ પરિણમનાત્ । મિથ્યાદષ્ટેન્તુ મિથ્યાશ્રુતં ભવતિ, ત્રિપરીતાર્થતપા તસ્ય પરિણમનાત્ । તદેતત્ સમ્યક્શ્રુતમ્ ।

અથ 'ભગવતેહિં૦' इत्यादि विशेषणाना सार्थक्यमुच्यते—अर्हद्विरित्युक्त्यैव भगवद्रूपार्थस्य बोधः समवति, पुनः 'भगवद्वि'रिति विशेषणोपादान किमर्थमिति जीवों में प्रशम आदि गुण मौजूद हों वे यद्यपि सम्पूर्ण दशपूर्वके पाठी न भी हों तो भी उनका जितना भी श्रुत है वह सम्यक् श्रुत है तथा जिन जीवों में मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनका जितना भी श्रुत है वह सब मिथ्याश्रुत है । सम्यग्दृष्टि जीव के श्रुत को सम्यक् श्रुत कहने का कारण यह है कि वह पदार्थ के स्वरूप को यथार्थरूप से जानता है । तथा मिथ्यादृष्टि जीव पदार्थ के स्वरूप को मिथ्यात्व के प्रभाव से यथार्थरूप से नहीं जानता, अतः किञ्चित् न्यून दशपूर्व के पाठी दो जीवों में एक का श्रुत सम्यक्श्रुत, तथा दूसरे का श्रुत मिथ्याश्रुत कहा गया है । इसीलिये किञ्चित् न्यून दशपूर्वपाठी जीवों में सम्यक्श्रुत की भजना बतलाई गई है । इस तरह यहा तक सम्यक्श्रुत का वर्णन हुआ ॥

अब टीकाकार सूत्र मे रहे हुए “ भगवतेहिं० ” आदि विशेषणपदों की सार्थकता प्रकट करते हैं—

तेषु तात्पर्यं એ છે કે જે સમ્યગ્દષ્ટિ જીવોમા પ્રશમ આદિ ગુણ મોજૂદ હોય તેઓ કદાચ સપૂર્ણ દશપૂર્વના પાઠી ન હોય તો પણ તેમણે જેટલું પણ શ્રુત છે તે બધું સમ્યક્શ્રુત છે તથા જે જીવોમા મિથ્યાત્વ ભરેલ છે એવા જે મિથ્યાદષ્ટિ જીવ છે તેમણે જેટલું પણ શ્રુત છે તે બધું મિથ્યાશ્રુત છે સમ્યક્દષ્ટિ જીવના શ્રુતને સમ્યક્શ્રુત કહેવાનું કારણ એ છે કે તે પદાર્થના સ્વરૂપને યથાર્થ રૂપે જાણે છે તથા મિથ્યાદષ્ટિ જીવ પદાર્થના સ્વરૂપને મિથ્યાત્વના પ્રભાવે યથાર્થરૂપે જાણતો નથી, તેથી દશપૂર્વ કરતા થોડા ન્યૂનના પાઠી એ જીવોમા એકનું શ્રુત સમ્યક્શ્રુત, તથા બીજાનું શ્રુત મિથ્યાશ્રુત કહ્યું છે તેથી દશપૂર્વ કરતા કંઈક ન્યૂનના પાઠી જીવોમા સમ્યક્શ્રુતની ભજના દર્શાવવામા આવી છે આ રીતે અહીં સુધી સમ્યક્શ્રુતનું વર્ણન થયું હવે સૂત્રકાર સૂત્રમા આવેલ “ ભગવતેહિં ” આદિ વિશેષણપદોની સાર્થકતા પ્રગટ કરે છે—

ચેત્, ઉચ્યતે—શુદ્ધદ્રવ્યાસ્તિકનયમતાનુસારિભિઃ કૈશ્વિદનાદિસિદ્ધા મુક્તા અર્હ-
ત્ત્વેન સ્વીક્રિયન્તે । ઉક્તશ્ચ તૈઃ—

“ જ્ઞાનમપ્રતિઘ યસ્ય, વૈરાગ્ય ચ જગત્પતેઃ ।

ૐશ્વર્યં ચૈવ ધર્મશ્ચ, સહસિદ્ધ ચતુષ્ટયમ્ ” ॥ ૧ ॥

इत्यादि । तेषामिह ग्रहण नास्तीति बोधयितुं भगवद्भिरिति विशेषणम् ।

શકા—સૂત્ર મે જવ “અર્હદ્ધિઃ” એસા પદ સૂત્રકાર ને રચ્વા હૈ તવ
इस एक पद से ही भगवद्रूप अर्थ का बोध हो जाता है तो फिर
“ भगवद्भिः ” इस विशेषण का स्वतन्त्ररूप से सूत्र में ग्रहण क्यों
किया गया है ? ।

उत्तर—कितनेक ऐसे भी प्राणी हैं जो शुद्धद्रव्यास्तिकनय की
मान्यता को लेकर ऐसा कहते हैं कि मुक्त जीव अनादि काल से सिद्ध
हैं और वे अर्हत पद वाच्य माने गये हैं । जैसे—

“ ज्ञानमप्रतिघ यस्य, वૈરાગ્યં ચ જગત્પતેઃ ।

ૐશ્વર્યં ચૈવ ધર્મશ્ચ, સહ સિદ્ધ ચતુષ્ટયમ્ ” ॥ ૧ ॥

અપ્રતિઘ-અનત-જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ૐશ્વર્ય એવ ધર્મ યે ચાર વાતેં જગ-
ત્પતિ પ્રભુ મેં સ્વાભાવિકરૂપ સે સિદ્ધ હૈં સો ૐસે અનાદિસિદ્ધ પરમાત્મા
કા ઘટાં “ ભગવતેહિં ” પદ સે ગ્રહણ નહીં હુઆ હૈ, ઇસ વાત કો પ્રકટ
કરને કે લિયે સૂત્રકાર ને સૂત્ર મેં “ ભગવતેહિં ” યહ પદ રચ્વા હૈ ।

શકા—સૂત્રમા જે “ અર્હદ્ધિ ” એવુ પદ સૂત્રકારે મૂક્યુ છે, તે એ એક
પદથી જ ભાગવદ્રૂપ અર્થનો બોધ થઇ જાય છે તે પછી “ ભગવદ્ધિ ” આ
વિશેષણને સ્વતન્ત્રરૂપે સૂત્રમા કેમ ગ્રહણ કર્યું છે ?

ઉત્તર—કેટલાક એવા પ્રાણીઓ છે જે શુદ્ધ દ્રવ્યાસ્તિક નયની માન્યતાને
લીધે એવુ કહે છે કે મુક્તજીવ આનાદિ કાળથી સિદ્ધ છે અને તેમને અર્હત
પદવાચ્ય માન્ય છે જેમ કે—

“ જ્ઞાનમપ્રતિઘ, યસ્ય, વૈરાગ્ય ચ જગત્પતેઃ ॥

ૐશ્વર્યં ચૈવ, ધર્મશ્ચ સહ સિદ્ધ ચતુષ્ટયમ્ ” ॥ ૧ ॥

અપ્રતિઘ-અનત-જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ૐશ્વર્ય અને ધર્મ એ ચાર વાત જગ-
ત્પતિ પ્રભુમા સ્વાભાવિક રીતે સિદ્ધ છે, તે એવા અનાદિ સિદ્ધ પરમાત્માનુ
અર્હો “ ભગવતેહિં ” પદથી ગ્રહણ થયુ નથી, એ વાતને પ્રગટ કરવા માટે
સૂત્રકારે સૂત્રમા “ ભગવતેહિં ” એ પદ મૂક્યુ છે “ ભગવત ” પદથી એવા પર-

अयं भावः—सम्यग्दृष्टेः प्रशमादिगुणगणोपेतस्य सम्यक्श्रुत भवति, यथावस्थितार्थ-
तया तस्य सम्यक् परिणमनात् । मिथ्यादृष्टेस्तु मिथ्याश्रुत भवति, विपरीतार्थतया
तस्य परिणमनात् । तदेतत् सम्यक्श्रुतम् ।

अथ ' भगवतेहि० ' इत्यादि विशेषणानां सार्थक्यमुच्यते—अर्हद्विरित्युक्त्यैव
भगवद्रूपार्थस्य बोधः समभवति, पुनः ' भगवद्वि 'रिति विशेषणोपादानं किमर्थमिति

जीवों में प्रशम आदि गुण मौजूद हों वे यद्यपि सम्पूर्ण दशपूर्वके पाठी
न भी हों तो भी उनका जितना भी श्रुत है वह सम्यक् श्रुत है तथा जिन
जीवों में मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनका
जितना भी श्रुत है वह सब मिथ्याश्रुत है । सम्यग्दृष्टि जीव के श्रुत
को सम्यक् श्रुत कहने का कारण यह है कि वह पदार्थ के स्वरूप को
यथार्थरूप से जानता है । तथा मिथ्यादृष्टि जीव पदार्थ के स्वरूप को
मिथ्यात्व के प्रभाव से यथार्थरूप से नहीं जानता, अतः किञ्चित् न्यून
दशपूर्व के पाठी दो जीवों में एक का श्रुत सम्यक्श्रुत, तथा दूसरे का
श्रुत मिथ्याश्रुत कहा गया है । इसीलिये किञ्चित् न्यून दशपूर्वपाठी
जीवों में सम्यक्श्रुत की भजना बतलाई गई है । इस तरह यहाँ तक
सम्यक्श्रुत का वर्णन हुआ ॥

अब टीकाकार सूत्र में रहे हुए " भगवतेहि० " आदि विशेषणपदों
की सार्थकता प्रकट करते हैं—

तेन तात्पर्यं ये छे के जे सम्यग्दृष्टि लोकोभा प्रशम आदि शुष्ण भोगूद
छोय तेओ कदाय स पूर्ण दशपूर्वना पाठी न छोय तो पण तेमनु जेटलु
पण श्रुत छे ते अणु सम्यक्श्रुत छे तथा जे लोकोभा मिथ्यात्व बरेल छे
ओवा जे मिथ्यादृष्टि लव छे तेमनु जेटलु पण श्रुत छे ते अणु मिथ्याश्रुत छे
सम्यग्दृष्टि लवना श्रुतने सम्यक्श्रुत कडेवानु कारण् ओ छे के ते पदार्थना
स्वरूपने यथार्थ रूपे लखे छे तथा मिथ्यादृष्टि लव पदार्थना स्वरूपने
मिथ्यात्वना प्रभावे यथार्थरूपे लखुतो नथी, तेथी दशपूर्व करता थोडा न्यूनना
पाठी जे लोकोभा अकेनु श्रुत सम्यक्श्रुत, तथा ओलनु श्रुन मिथ्याश्रुत कलु
छे तेथी दशपूर्व करता कर्क न्यूनना पाठी लोकोभा सम्यक्श्रुतनी लखना
दर्शाववाभा आवी छे आ रीते अही सुधी सम्यक्श्रुतनु वलुन थयु डवे
सूत्रकार सूत्रमा आवेल " भगवतेहि " आदि विशेषणपदोनी सार्थकता
प्रगट करे छे—

ज्ञानचन्द्रिका टीका-सम्पत्कृतमेदा

चेत्, उच्यते—शुद्धव्यास्तिजनयमतानुसारिभिः कैथिदनादिभिः नृत्वेन स्वीक्रियन्ते । उक्तञ्च तैः—

“ज्ञानमप्रतिघ यस्य, वैराग्य च जगन्पतेः ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सहसिद्ध चतुष्टयम्” ॥१॥

इत्यादि । तेषामिह ग्रहण नास्तीति बोधयितुं मन्त्रद्विगिति लिखितः

शका—सूत्र में जब “अर्हद्भिः” ऐसा पद सूत्रकार ने रखा है तो इस एक पद से ही भगवद्रूप अर्थ का बोध हो जाना है तो फिर “भगवद्भिः” इस विशेषण का स्वतन्त्ररूप में सूत्र में उक्त क्यों किया गया है ?

उत्तर—कितनेक ऐसे भी प्राणी हैं जो शुद्धव्यास्तिजनय मान्यता को लेकर ऐसा कहते हैं कि मुक्त जीव अनादि आदि हैं सिद्ध हैं और वे अर्हत पद वाच्य माने गये हैं । जैसे—

“ज्ञानमप्रतिघ यस्य, वैराग्य च जगन्पते ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सह सिद्ध चतुष्टयम्” ॥१॥

अप्रतिघ-अनत-ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एव धर्म ये चार लक्षण प्रतीति प्रभु में स्वाभाविकरूप से सिद्ध हैं सो ऐसे अनादि आदि का यहाँ “भगवतेर्हि” पद से ग्रहण नहीं हुआ है, इस सूत्रकार करने के लिये सूत्रकार ने सूत्र में “भगवतेर्हि”

शका—सूत्रमा ने “अर्हद्भिः” जेवु पद अत्र उक्तं तदा, तदा पदवी न लागवद्दृश्य अर्थना बोध वरु तदा उक्तं तदा “भगवतेर्हि” विशेषणने स्वतंत्ररूपे सूत्रमा केम प्रयुक्तं इत्युक्ते ।

उत्तर—केटलाक जेवा प्राणीजो उक्तं उक्तं उक्तं उक्तं उक्तं ॥ १ ॥
तीथे जेवु उक्तं छे ते मुक्तत्वव आनादि उक्तं उक्तं उक्तं उक्तं उक्तं ॥ १ ॥
पदवाच्य मान्य छे जेम के-

“ज्ञानमप्रतिघ, यस्य, वैराग्य च जगन्पतेः ॥
ऐश्वर्यं चैव, धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयम्” ॥१॥

अप्रतिघ-अनत-ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एव धर्म ये चार लक्षण प्रतीति प्रभु में स्वाभाविकरूप से सिद्ध हैं सो ऐसे अनादि आदि का यहाँ “भगवतेर्हि” पदवी अत्र उक्तं उक्तं उक्तं उक्तं उक्तं ॥ १ ॥
सूत्रकारे सूत्रमा “भगवतेर्हि” जेवु पद अत्र उक्तं तदा, तदा पदवी न लागवद्दृश्य अर्थना बोध वरु तदा उक्तं तदा “भगवतेर्हि” विशेषणने स्वतंत्ररूपे सूत्रमा केम प्रयुक्तं इत्युक्ते ।

અર્થ ભાવ:—સમ્યગ્દષ્ટે: પ્રશમાદિગુણગણોપેતસ્ય સમ્યક્શ્રુત મત્તિ, યથાવસ્થિતાર્થ-
તયા તસ્ય સમ્યક્ પરિણમનાત્ । મિથ્યાદષ્ટેસ્તુ મિથ્યાશ્રુત મ્ભવતિ, યિપરીતાર્થતયા
તસ્ય પરિણમનાત્ । ત્વદેતત્ સમ્યક્શ્રુતમ્ ।

અર્થ ‘મગવતેહિં’ इत्यादि विशेषणाना सार्थक्यमुच्यते—अर्हद्विरित्युक्त्यैव
भगवद्रूपार्थस्य मोक्षः सभवति, पुनः ‘भगवद्भि’रिति विशेषणोपादान किमर्थमिति
जीवों में प्रशम आदि गुण मौजूद हों वे यद्यपि सम्पूर्ण दशपूर्वके पाठी
न भी हों तो भी उनका जितना भी श्रुत है वह सम्यक् श्रुत है तथा जिन
जीवों में मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनका
जितना भी श्रुत है वह सब मिथ्याश्रुत है । सम्यग्दृष्टि जीव के श्रुत
को सम्यक् श्रुत कहने का कारण यह है कि वह पदार्थ के स्वरूप को
यथार्थरूप से जानता है । तथा मिथ्यादृष्टि जीव पदार्थ के स्वरूप को
मिथ्यात्व के प्रभाव से यथार्थरूप से नहीं जानता, अतः किञ्चित् न्यून
दशपूर्व के पाठी दो जीवों में एक का श्रुत सम्यक्श्रुत, तथा दूसरे का
श्रुत मिथ्याश्रुत कहा गया है । इसीलिये किञ्चित् न्यून दशपूर्वपाठी
जीवों में सम्यक्श्रुत की भजना बतलाई गई है । इस तरह यहा तक
सम्यक्श्रुत का वर्णन हुआ ॥

अब टीकाकार सूत्र में रहे हुए “भगवतेहिं” आदि विशेषणपदों
की सार्थकता प्रकट करते हैं—

તેતુ તાત્પર્ય એ છે કે જે સમ્યગ્દષ્ટિ જીવોમા પ્રશમ આદિ ગુણ મોજૂદ
હોય તેઓ વ્દશ્ય સપૂર્ણ દશપૂર્વના પાઠી ન હોય તો પણ તેમનુ જેટલુ
પણ શ્રુત છે તે બધુ સમ્યક્શ્રુત છે તથા જે જીવોમા મિથ્યાત્વ ભરેલ છે
એવા જે મિથ્યાદષ્ટિ જીવ છે તેમનુ જેટલુ પણ શ્રુત છે તે બધુ મિથ્યાશ્રુત છે
સમ્યક્દષ્ટિ જીવના શ્રુતને સમ્યક્શ્રુત કહેવાનુ કારણ એ છે કે તે પદાર્થના
સ્વરૂપને યથાર્થ રૂપે જાણે છે તથા મિથ્યાદષ્ટિ જીવ પદાર્થના સ્વરૂપને
મિથ્યાત્વના પ્રભાવે યથાર્થરૂપે જાણતો નથી, તેથી દશપૂર્વ કરતા થોડા ન્યૂનના
પાઠી જે જીવોમા એકનુ શ્રુત સમ્યક્શ્રુત, તથા બીજાનુ શ્રુત મિથ્યાશ્રુત કહ્યુ
છે તેથી દશપૂર્વ કરતા કંઈક ન્યૂનના પાઠી જીવોમા સમ્યક્શ્રુતની ભજના
દર્શાવવામા આવી છે આ રીતે અહીં સુધી સમ્યક્શ્રુતનુ વર્ણન થયુ હવે
સૂત્રકાર સૂત્રમા આવેલ “મગવતેહિં” આદિ વિશેષણપદોની સાર્થકતા
પ્રગટ કરે છે—

ननु तर्हि 'उत्पन्नज्ञानदर्शनधरैः' इत्येतान्मात्र विशेषणमस्तु अल 'भगवद्भिः'

वत्ता का अभाव आप कैसे कह सकते हैं। इस प्रकार की दूसरी शका की निवृत्ति के लिये सूत्रकारने सूत्र में "उत्पणनाण दसणधरे हि" यह पद रखा है। इस पद द्वारा सूत्रकार यह प्रमाणित करते हैं कि जो अनादिसिद्ध माने गये हैं वे उत्पन्न हुए ज्ञान एवं दर्शन को धारण करने वाले नहीं होते हैं, किन्तु वे तो नित्यसिद्ध ज्ञान वैराग्य आदि के अधिपति होते हैं, अतः यद्वा ऐसे ही अर्हत्प्रभु का ग्रहण किया गया है, जो भगवन्त हों तथा उत्पन्न हुए ज्ञान दर्शन को धारण करनेवाले हों। तात्पर्य इसका इस प्रकार है कि पर समत अनादिसिद्ध परमात्मा भले ही अपने शरीर का स्वेच्छा से निर्माण करलें एतावता उनमें भगवत्ता भले ही आजावे परन्तु इतने मात्र से उनमें अर्हत्ता नहीं आसकती है, किन्तु अर्हत्ता आनेके लिये सूत्रकार की दृष्टि में उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन को धारणकरनापना भी आवश्यकीय है। अनादिसिद्धों में यह बात बनती नहीं है, अतः उनमें अर्हत्ता घटित नहीं होती। २।

शका—जय ऐसी बात है तो फिर "अर्हत्ता" प्रकट करने के लिये "उत्पन्न ज्ञानदर्शनधरैः" यही एक पद काफी है। व्यर्थ में "भगवद्भिः" इस पद का न्यास क्यों किया गया है ?

ज्ञानो अलाव डेवी रीते ठकी शका छे ? आ प्रज्ञरनी षील श डानी निवृत्तिने भाटे सूत्रकारे सूत्रमा "उत्पणनाणदसणधरे हि" आ पद भूइयु छे आ पद द्वारा सूत्रकार अे साभित करे ते डे अे अनादि सिद्ध भानाय छे तेओ उत्पन्न थयेल ज्ञान अने दर्शनने धारणु करनार डोता नथी, पणु तेओ तो नित्यसिद्ध ज्ञान वैराग्य आदिना अधिपति डोय छे, तेथी अही ओवा अे अर्हत्त प्रभु अडणु करवाभा आव्या छे डे अे भगवत्त डोय अने उत्पन्न थयेल ज्ञानदर्शनने धारणा करनार डोय तेतु तात्पर्य ओवु छे डे पर समत अनादि सिद्ध परमात्मा लडे पोताना गरीरतु स्वेच्छाथी निर्माणु करी डे, ओटला प्रमाणुमा तेमनाभा लडे भगवत्ता आरी लथ पणु मात्र ओटलाथी अे तेमनाभा अर्हत्तता आवी शकती नथी, पणु अर्हत्तता आववाने भाटे सूत्रकारनी दृष्टिअे उत्पन्न थयेल ज्ञान अने दर्शनने धारणु करवु ते पणु आवश्यक छे अनादि सिद्धोमा आ वात बनती नथी, ओटला भाटे अेमनाभा अर्हत्तता घटती नथी ॥१॥

शका—अे ओवी वात छे तो पछी "अर्हत्ता" प्रकट करवाने भाटे "उत्पन्न ज्ञान दर्शनधरै" अे अे अे पद पुरतु अे "भगवद्भि" अे पदने उपयोग आ भाटे अेयो अे ?

અનાદિસિદ્ધા અર્હન્તો હિ સ્વાભાગાદેય સમગ્રરૂપવન્તો ન ભવન્તિ, અગ્રીરિસ્વાદ્, શરીરસ્ય ચ રાગાદિકાર્યત્વાત્, તેષા ચ રાગાઘભાગાદિતિ તેષા ભગવત્ચ નોપપવત્તે ।

નતુ પરમમ્મતા અપિ સિદ્ધાઃ સ્વેન્ત્ર્યા શરીર નિર્માતું ગમ્નુવન્તીતિ તેઽપિ ભગવન્તઃસ્થુરતો વિશેષગાન્તરમાહ—‘ ઉપ્પન્નાણદમણધરેહિ ’—ઉત્પન્નજ્ઞાન-દર્શનધરે ’રિતિ । તેઽનાદિસિદ્ધા જ્ઞાનૈરાગ્યાદિચતુષ્ટયસ્ય નિત્યસિદ્ધતાદ્ ઉત્પન્નજ્ઞાનદર્શનધરા ન ભવન્તીતિ નેહ તેષા ગ્રહણમ્ ।

“ભગવત્” પદ સે એસે પરમાત્મા કા પાર્યન્ત્ય ઇસલિયે હો જાતા હૈ કિ અનાદિસિદ્ધ અર્હન્ત મેં શરીર કે અભાવ સે સમગ્રરૂપજ્ઞાલિતા નહીં આતી હૈ, કારણ જો અનાદિસિદ્ધ અર્હન્ત હોંગે उनमें रागादिक का कार्यरूप शरीर का सद्भाव कैसे बन सकता है । यदि शरीर उनमें माना जाय तो उनमें रागादिक का अभाव एव अनादिसिद्धता नहीं मानी जा सकती, परन्तु ऐसी मान्यता तो है नहीं, वहा तो रागादिक का अभाव माना ही गया है, अतः यह निश्चय है कि अनादिसिद्ध अर्हन्त, भगवन्त नहीं बन सकते हैं, किन्तु जो सादि सिद्ध अर्हन्त होंगे वे ही भगवन्त बन सकेंगे, इस बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने सूत्र में “भगवतेहि” यह पद स्वतंत्ररूप से निवेशित किया । १ ।

શકા—જો અનાદિસિદ્ધ અર્હન્ત પરમાત્મા દૂસરોં ને માને હૈં વે ભગવત્ મ્હી બન સકતે હે, કારણ उनमें जब शरीर निर्माण करने की इच्छा होती है तब वे शरीर का भी निर्माण कर लिया करते हैं, फिर उनमें भग-

માત્માનુ પાર્યન્ત્ય એ ડારણુ થઈ બધ છે કે અનાદિ સિદ્ધ અર્હન્તમા શરીરને અભાવે સમગ્ર રૂપશાલીતા આવતી નથી, કારણુ કે જે અનાદિ સિદ્ધ અર્હન્ત હશે તેમનામા રાગાદિકના ધર્મરૂપ શરીર કેવી રીતે હોઈ શકે ! જો તેઓને શરીર હોય છે એમ માનવામા આવે તો તેઓમા રાગાદિકનો અભાવ અને અનાદિ સિદ્ધતા માની શકાય નહી, પણુ એવી માન્યતા તો નથી, ત્યા તો રાગાદિકનો અભાવ માનવામા આવ્યો જ છે, તેથી તે નક્કી થાય છે કે અનાદિ સિદ્ધ અર્હન્ત ભગવન્ત બની શકતા નથી, પણુ જે સાદિ સિદ્ધ અર્હન્ત હશે તેઓ જ ભગવત બની શકશે, એ વાતને પ્રકટ કરવાને માટે સૂત્રકારે સૂત્રમા “ભગવતેહિ” આ પદ સ્વતંત્ર રીતે મૂક્યુ છે ॥૧॥

શકા—જે અનાદિસિદ્ધ અર્હન્ત પરમાત્મા બીજા લોકોએ માન્યા છે તેઓ ભગવત પણુ બની શકે છે, કારણુ કે તેમને ન્યારે શરીર નિર્માણુ કરવાની ઇચ્છા થાય છે, ત્યારે તેઓ શરીરનુ નિર્માણુ કરી લે છે, છતા આપ તેમનામા ભગવ-

पूङ्गुएहि' इति । त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैरिति । न च ते तथा भवन्तीति ।

ननु सौगतमतेऽपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिः सुगतास्त्रैलोक्यनिरीक्षित-
महितपूजिता एव स्वीक्रियन्ते, ततश्च तत्तुल्यतापत्तिः स्यादत आह—' तीयपद्दुष्पण-
मणागयजाणएहि' इति । अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैरिति । सुगताः खलुअतीत-
प्रत्युत्पन्ना नागतज्ञा न सभवन्ति, तेषामेकान्तक्षणिकत्वाभ्युपगमेन सर्वथाऽतीताना-
गतयोरसन्नात्, असता च ग्रहणाऽसम्भवात् । ननु व्यवहारनयमतानुसारिभिस्तु

जीव सादिसिद्ध होते हैं उनमें अननज्ज्ञान और अनन्तदर्शन उत्पन्न हो
जाता है परन्तु ऐसे सब जीव अहंत नहीं होते हैं। अहंत प्रभु ही त्रैलोक्य
द्वारा निरीक्षित, महित एवं पूजित हुआ करते हैं, कारण इनके तीर्थंकर
प्रकृति का उदय रहता है, अन्य के नहीं । ४ ।

शका—यदि अहंत बननेमें त्रैलोक्य निरीक्षित, महित एव पूजि-
तपना कारण हो तो बौद्धसिद्धान्त द्वारा कि जो पर्यायास्तिकनय मतानु-
सारी हैं कल्पित बुद्ध भी अहंत माने जावेगे कारण वे भी त्रैलोक्य द्वारा
निरीक्षित, महित एव पूजित माने गये हैं, इस तरह उभयत्रतुल्यता
की आपत्ति आती है ।

उत्तर—इस तरह तुल्यता की आपत्ति नहीं आसकती है, कारण
अहंत बननेमें जिस तरह त्रैलोक्य निरीक्षित महित पूजितता कारण है
उसी प्रकार "तीयपद्दुष्पण मणागय जाणएहि" अतीत प्रत्युत्पन्न एव अना-
गत विपर्योका ज्ञापकपना भी कारण है । बुद्ध भले ही उनकेमानने वालो द्वारा

छे तेनु तात्पर्य आ प्रभावे छे-जे एव सादिसिद्ध होय छे, तेमनामा अनत
ज्ञान अने अनत दर्शन उत्पन्न थछे जय छे, पणु जेवा थधा एव अहंत
थना नथी अहंत प्रभु ज त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित, महित अने पूजित थाय
छे, कारण के तेमनी तीर्थंकर प्रकृतिना उदय रहे छे अन्यना नही (४)

शका—जे अहंत बननामा त्रैलोक्य निरीक्षित, महित अने पूजितपणु
कारण होय तो बौद्ध सिद्धांत द्वारा के जे पर्यायास्तिकनय मतानुसारी छे,
कल्पित बुद्ध पणु अहंत मनासे कारण के तेजो पणु त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित,
महित अने पूजित मनाया छे, आ रीते उभयत्र तुल्यतानी मुश्केली आवे छे

उत्तर—आ रीते तुल्यतानी मुश्केली आवी शकती नथी, कारण के अहंत
बननामा जे रीते त्रैलोक्य निरीक्षित, महित पूजितना कारणउप छे जे प्रकारे
" तीयपद्दुष्पण मणागय जाणएहि " भूत, वर्तमान अने भविष्यना विपर्योनी
जणुकारी पणु कारणउप छे बुद्धने लवे तेमने माननाराज्यो त्रैलोक्य निरी-

इति विशेषणोपन्यासेन ? इति चेत्, अन्यते-सामान्यकेवलिनोऽपि हि—उत्पन्नज्ञान-दर्शनधरा भवन्ति नितु तेषा समग्रैश्वर्यरूपाद्यभावात्ते तीर्थकरवद् भगवतो न भवन्ति, तस्मात् समग्रैश्वर्यादिगुणप्रतिबोधनार्थं 'भगवद्भिः' इति विशेषणोपादानमापश्यमिति ।

उक्तविशेषणैः शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पितानामनादिसिद्धाना व्यवच्छेदः कृतः । समति पर्यायास्तिकनयमतानुसारिपरिकल्पिताः ये मुक्तास्ते-ऽप्युत्पन्नज्ञानदर्शनधरा भवन्तीत्यतस्तद्व्याप्यर्थमाह—'तेलुगु निरिक्खियमहिय-

उत्तर—अर्हता आने के लिये उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन को धारण करना मात्र कारण नहीं माना गया है, किन्तु साथ में भगवत्सा भी कारण है । यही बात प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने सूत्र में दोनों पद स्थापित किये हैं । उत्पन्नज्ञानदर्शनधरत्व सामान्यकेवलियों में भी होता है, परन्तु वहा समग्ररूपादिमुक्ता नहीं होती, इसलिये वे तीर्थकर प्रभु की तरह भगवान् नहीं होते हैं, अतः अर्हत बनने में समग्र ऐश्वर्यादिगुण चाहिये यह बात "भगवद्भिः" इस पद से सूत्रकार ने ख्यापित की है । ३ ।

इस तरह इन विशेषणों द्वारा शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की मान्यता को लेकर जो अनादिसिद्ध मुक्त मानने वाले हैं, उनका व्यवच्छेद हो जाता है । अब पर्यायार्थिक नयकी मान्यता को लेकर के जिन व्यक्तियों ने सादिसिद्ध मुक्त माने हैं वे यद्यपि उत्पन्न दर्शन ज्ञानधारी होते हैं परन्तु उनमें अर्हता नहीं आती है, कारण अर्हता आनेमें "तेलुगु निरिक्खियमहिय पूइएहि" कारण माना गया है । तात्पर्य इसका इस प्रकार—जो

उत्तर—अर्हता आववाने माटे इत्त उत्पन्नज्ञान, अने दर्शनने धारण करवु अने कारण भनायु नथी, पणु साथे लगवत्ता पणु कारण छे अने वात प्रगट करवाने माटे सूत्रकारे सूत्रमा अने पद भूकथा छे उत्पन्न ज्ञान दर्शन धारकता सामान्य केवणीओमा पणु डोय छे पणु त्या समग्र रूपादिभक्ता डोती नथी तेथी तेओ तीर्थकर प्रभुनी नेम लगवान थता नथी, तेथी अर्हत अण वामा समग्र ऐश्वर्यादि शुणु जेध अने वात "भगवद्भि" आ पदथी सूत्रकारे स्थापित करी छे (३)

आ दीते अे विशेषणो द्वारा शुद्ध द्रव्यार्थिक नयनी मान्यताने लीधे अे अनादिसिद्ध मुक्त माननारा छे, तेमनु अ उन थध नय छे हवे पर्यायार्थिक नयनी मान्यताने लीधे अे व्यक्तियोंअे सादिसिद्ध मुक्त मान्या छे तेओ अे के उत्पन्न दर्शन ज्ञानधारी डोय छे पणु तेमनामा अर्हता आवती नथी, कारण अे अर्हता आववामा "तेलुगु निरिक्खिय महियपुइएहि" कारण भना

पूइएहि' इति । त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैरिति । न च ते तथा भवन्तीति ।

ननु सौगतमतेऽपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिः सुगतास्त्रैलोक्यनिरीक्षित-
महितपूजिता एव स्वीक्रियन्ते, तत्र च तुल्यतापत्तिः स्यादत आह—' तीयपटुप्पण-
मणागयजाणएहि' इति । अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैरिति । सुगताः खलुअतीत-
प्रत्युत्पन्ना नागतज्ञा न सभवन्ति, तेषामेकान्तक्षणिकत्वाभ्युपगमेन सर्वथाऽतीताना-
गतयोरसत्त्वात्, असता च ग्रहणाऽसम्भवात् । ननु व्यवहारनयमतानुसारिभिस्तु

जीव सादिसिद्ध होते हैं उनमें अननजान और अनन्तदर्शन उत्पन्न हो
जाता है परन्तु ऐसे सब जीव अहंत नहीं होते हैं । अहंत प्रभु ही त्रैलोक्य
द्वारा निरीक्षित, महित एवं पूजित हुआ करते हैं, कारण इनके तीर्थंकर
प्रकृति का उदय रहता है, अन्य के नहीं । ४ ।

शका—यदि अहंत बननेमें त्रैलोक्य निरीक्षित, महित एव पूजि-
तपना कारण हो तो बौद्धसिद्धान्त द्वारा कि जो पर्यायास्तिक नय मतानु-
सारी है कल्पित बुद्ध भी अहंत माने जावेगे कारण वे भी त्रैलोक्य द्वारा
निरीक्षित, महित एव पूजित माने गये हैं, इस तरह उभयत्रतुल्यता
की आपत्ति आती है ।

उत्तर—इस तरह तुल्यता की आपत्ति नहीं आसकती है, कारण
अहंत बननेमें जिस तरह त्रैलोक्य निरीक्षित महित पूजितता कारण है
उसी प्रकार "तीय पटुप्पण मणागय जाणएहि" अतीत प्रत्युत्पन्न एव अना-
गत विषयोंका ज्ञापकपना भी कारण है । बुद्ध भले ही उनकेमानने वालो द्वारा

छे तेनु तात्पर्य आ प्रमाणे छे—जे एव सादिसिद्ध होय छे, तेमनामा अनत
ज्ञान अने अनत दर्शन उत्पन्न थछे जय छे, पणु जेवा अधा एव अहं त
थना नथी अहं त प्रभु ज त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित, महित अने पूजित थाय
छे, कारणु के तेमनी तीर्थं कर प्रकृतिनो उदय रहे छे अन्यनो नही (४)

शका—जे अहं त बनवामा त्रैलोक्य निरीक्षित, महित अने पूजितपणु
कारणु होय तो बौद्ध सिद्धांत द्वारा के जे पर्यायास्तिक नय मतानुसारी छे,
कल्पित बुद्ध पणु अहं त बनाये कारणु के तेजो पणु त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित,
महित अने पूजित बनाया छे, आ रीते उभयत्र तुल्यतानी भुशकेली आवे छे

उत्तर—आ रीते तुल्यतानी भुशकेली आवी शकती नथी, कारणु के अहं त
अनवामा जे रीते त्रैलोक्य निरीक्षित, महित पूजितता कारणु छे जेव प्रकृति
" तीय पटुप्पण मणागय जाणएहि " भूत, वर्तमान अने लविध्यना विषयोंनी
जाणकारी पणु कारणु छे बुद्धने लवे तेमने माननाराज्यो त्रैलोक्य निरी-

इति विशेषणोपन्यासेन ? इति चेत्, उच्यते—सामान्यकेवलिनोऽपि हि—उत्पन्नज्ञान-
दर्शनधरा भवन्ति किन्तु तेषां समग्रैश्वर्यैः पाद्यभावात्ते तीर्थकरपदं भगवन्तो न भवन्ति,
तस्मात् समग्रैश्वर्यादिगुणप्रतिषेधनार्थं 'भगवद्भिः' इति विशेषणोपादानमात्रमव्यक्तमिति ।

उक्तविशेषणैः शुद्धद्रव्यास्तिरुनयमतानुसारिपरिकल्पितानामनादिसिद्धानां
व्यवच्छेदः कृतः । सप्रति पर्यायास्तिरुनयमतानुसारिपरिकल्पिताः ये मुक्तास्ते-
ऽप्युत्पन्नज्ञानदर्शनधरा भवन्तीत्यतस्तद्व्याप्त्यर्थमाह—'तेलुक्क निरिक्खियमहिय-

उत्तर—अर्हता आने के लिये उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन को
धारण करना मात्र कारण नहीं माना गया है, किन्तु साथ में भगवत्सा
भी कारण है । यही बात प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने सूत्र में दोनों
पद स्थापित किये हैं । उत्पन्नज्ञानदर्शनधरत्व सामान्यकेवलियों में भी
होता है, परन्तु वही समग्ररूपादिमुक्ता नहीं होती, इसलिये वे तीर्थकर
प्रभु की तरह भगवान् नहीं होते हैं, अतः अर्हत बनने में समग्र श्रेष्-
ठादिगुण चाहिये यह बात " भगवद्भिः " इस पद से सूत्रकार ने
ख्यापित की है । ३ ।

इस तरह इन विशेषणों द्वारा शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की मान्यता को
लेकर जो अनादिसिद्ध मुक्त मानने वाले हैं, उनका व्यवच्छेद हो जाता
है । अब पर्यायार्थिक नयकी मान्यता को लेकर के जिन व्यक्तियों ने सादि-
सिद्ध मुक्त माने हैं वे यद्यपि उत्पन्न दर्शन ज्ञानधारी होते हैं परन्तु उनमें
अर्हता नहीं आती है, कारण अर्हता आनेमें " तेल्लुक्क निरिक्खिय-
महिय पुइण्हि " कारण माना गया है । तात्पर्य इसका इस प्रकार—जो

उत्तर—अर्हता आववाने भाटे इत्त उत्पन्नज्ञान, अने दर्शनने धारण
करणु अने धारणु मनायु नथी, पणु साथे भगवत्ता पणु धारणु छे अने वात
प्रगट करवाने भाटे सूत्रकारे सूत्रमा अने पद भूठया छे उत्पन्न ज्ञान दर्शन
धारकता सामान्य केवणीयामा पणु डोय छे पणु त्या समग्र इपादिमुक्ता डोती
नथी तेथी तेअो तीर्थ कर प्रभुनी अने भगवान थता नथी, तेथी अर्हत अन-
वामा समग्र श्रेष्ठादि गुणु लेछे अने वात " भगवद्भि " आ पदथी सूत्रकारे
स्थापित करी छे (३)

आ रीते अने विशेषणो द्वारा शुद्ध द्रव्यार्थिक नयनी मान्यताने लीधे अने
अनादि सिद्ध मुक्त माननारा छे, तेमनु अ उन थछे जय छे इवे पर्यायार्थिक
नयनी मान्यताने लीधे अने व्यक्तियोंके सादि सिद्ध मुक्त मान्या छे तेअो
अने उत्पन्न दर्शन ज्ञानधारी डोय छे पणु तेमनामा अर्हता आवती नथी,
धारणु के अर्हता आववामा " तेलुक्क निरिक्खिय महियपुइण्हि " धारणु

पूङ्गुएहि' इति । त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैरिति । न च ते तथा भवन्तीति ।

ननु सौगतमतेऽपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिः सुगताश्चैलोक्यनिरीक्षित-
महितपूजिता एव स्वीक्रियन्ते, ततश्च तत्तुल्यतापत्तिः स्यादत आह—' तीयपद्दुष्पण-
मणागयजाणएहि' इति । अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैरिति । सुगताः खलुअतीत-
प्रत्युत्पन्ना नागतज्ञा न सभवन्ति, तेषामेकान्तक्षणिकत्वाभ्युपगमेन सर्वायास्तीताना-
गतयोरसच्चात्, असता च ग्रहणाऽसम्भवात् । ननु व्यवहारनयमतानुसारिभिस्तु

जीव सादिसिद्ध होते हैं उनमें अननजान और अनन्तदर्शन उत्पन्न हो
जाता है परन्तु ऐसे सब जीव अहंत नहीं होते हैं । अहंत प्रभु ही त्रैलोक्य
द्वारा निरीक्षित, महित एवं पूजित हुआ करते हैं, कारण इनके तीर्थकर
प्रकृति का उदय रहता है, अन्य के नहीं । ४ ।

शका—यदि अहंत बननेमें त्रैलोक्य निरीक्षित, महित एव पूजि-
तपना कारण हो तो बौद्धसिद्धान्त द्वारा कि जो पर्यायास्तिक नय मतानु-
सारी हैं कल्पित बुद्ध भी अहंत माने जावेगे कारण वे भी त्रैलोक्य द्वारा
निरीक्षित, महित एव पूजित माने गये हैं, इस तरह उभयत्रतुल्यता
की आपत्ति आती है ।

उत्तर—इस तरह तुल्यता की आपत्ति नहीं आसकती है, कारण
अहंत बननेमें जिस तरह त्रैलोक्य निरीक्षित महित प्रजितता कारण है
उसी प्रकार "तीय पद्दुष्पण मणागय जाणएहि" अतीत प्रत्युत्पन्न एव अना-
गत विषयोंका ज्ञापकपना भी कारण है । बुद्ध भले ही उनकेमानने वालो द्वारा

छे तेनु तात्पर्यं आ प्रमाहे छे—जे एव सादिसिद्ध होय छे, तेमनाभा अनत
ज्ञान अने अनत दर्शन उत्पन्न थथं नय छे, पणु जेवा अधा एव अहं त
थना नथी अहं त प्रभु ज त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित, महित अने पूजित थाय
छे, कारणु के तेमनी तीर्थ कर प्रकृतिना उदय रहे छे अन्येना नही (४)

शका—जे अहं त बनवाभा त्रैलोक्य निरीक्षित, महित अने पूजितपणु
कारणु होय तो बौद्ध सिद्धांत द्वारा के जे पर्यायास्तिक नय मतानुसारी छे,
कल्पित बुद्ध पणु अहं त मनासे कारणु के तेज्या पणु त्रैलोक्य द्वारा निरीक्षित,
महित अने पूजित मनाथा छे, आ रीते उभयत्र तुल्यतानी मुश्केली आवे छे

उत्तर—आ रीते तुल्यतानी मुश्केली आवी शकती नथी, कारणु के अहं त
बनवाभा जे रीते त्रैलोक्य निरीक्षित, महित पूजितता कारणुइप छे जेव प्रजारे
" तीय पद्दुष्पण मणागय जाणएहि " भूत, वर्तमान अने भविष्यना विषयानी
जणुजारी पणु कारणुइप छे बुद्धने लवे तेमने माननाशय्याजे त्रैलोक्य निरी-
न० ६१

कैश्चिदिप्यन्तेऽतीतानागतवर्तमानार्थज्ञायका ऋषयः । उक्तञ्च—

“ ऋषयः सयतात्मानः फलमूलाऽनिगमनाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

अतीतानागतान् भावान्, वर्तमानाश्च भारत ! ।

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसगा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥ इत्यादि ।

त्रैलोक्य निरीक्षित महित एव पृजित स्वीकृत किये गये हों, परन्तु उनमें अतीत, प्रत्युत्पन्न एव अनागत विषयों की ज्ञापकता नहीं है, कारण उनके सिद्धान्तानुसार अतीत और अनागतता सिद्ध ही नहीं होती । यह सिद्धान्त एकान्ततः क्षणिक चादी है, अतः इसमें एकान्त वर्तमान क्षण का ही अस्तित्व स्वीकार किया गया है । इस तरह अतीत और अनागत क्षणों का असत्त्व होने से उनका ग्रहण उनके द्वारा नहीं हो सकता है । इस प्रकार तुल्यता की आपत्ति हट जाती है । ७ ।

शका—व्यवहारनय की मान्यता को माननेवाले कितनेक व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते हैं कि ऋषिजन अतीत, अनागत एव प्रत्युत्पन्न विषयों के ज्ञाता होते हैं । कहा भी है—

“ ऋषयः सयतात्मानः, फल मूला निलाशनाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

अतीतानागतान् भावा, वर्तमानाश्च भारत ! ।

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥

क्षित महित अने पूजित तरीके स्वीकार्यो होय, पण तेमनाभा भूत, वर्तमान अने लविध्यना विषयेनी ज्ञापकरी नथी कारण के तेमना सिद्धात प्रभावे भूत अने लविध्यता सिद्ध नथी थती अे सिद्धात एकान्तत क्षणिकवादी छे, तेथी तेमा एकान्त वर्तमान क्षणतुं ए अस्तित्व स्वीकार्युं छे आ रीते अतीत (भूत) अने अनागत (लविध्य) क्षणतुं असत्त्व होवाथी तेमनु अहणु तेमना द्वारा थथ शकतु नथी आ रीते तुल्यतानी मुश्केली हर थाय छे (५)

शका—व्यवहार नयनी मान्यताने माननारी डेटलीक व्यक्तित्व अे वातने स्वीकार करे छे के ऋषिजन भूत, लविध्य अने वर्तमान विषयेना ज्ञापक होय छे कहु पणु छे—

“ ऋषयः सयतात्मानः फलमूला निलाशनाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

“ अतीतानागतान् भावान्, वर्तमानाश्च भारत ?

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥

अतस्तत्तुल्यतापत्तिः स्यादत आह—‘सर्ववर्णूहिं सर्वदरिशीहिं’—सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिरिति । ते तु ऋपयो न भवन्ति सर्वज्ञाः—सर्वद्रव्यप्रदेशपर्यायज्ञानाभावात्, तथा ते सर्वदर्शिनोऽपि न भवन्ति, फलमूलानिलाद्याहारकरणेन सर्वप्राणिज्वात्म-तुल्यदृष्ट्यभावात् ।

तदेव द्रव्यास्तिरूपर्यायास्तिरुनयमतानुसारिपरिरूपितमुक्तेभ्यो भिन्नास्तीर्य-करा इत्युक्तम् ॥ सू० ४० ॥

यदि अतीत, अनागत एव प्रत्युत्पन्नविषयों का जानना अर्हंत होने में कारण माना जाय तो व्यवहारनय की मान्यता के अनुसार चलने वाले कितनेक व्यक्तियों द्वारा कल्पित ऋपियों में भी अर्हंतता आ जावेगी । इस तरह इनके साथ तुल्यता की आपत्ति खड़ी ही रहती ?

उत्तर—इस तरह से भी तुल्यता की आपत्ति नहीं आती है, कारण सूत्र में इस बात की निवृत्ति के लिये “सर्ववर्णूहिं सर्वदरिशीहिं” ये पद रक्खे गये हैं । ये पद यह स्पष्ट करते हैं कि तीर्थंकर अर्हंत ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, ये ऋषिजन नहीं । इनमें सर्वज्ञता इसलिये नहीं आती है कि ये समस्त जीवादिक द्रव्यों के प्रदेश और उनकी पर्यायों के ज्ञाता नहीं होते हैं । तथा सर्वदर्शित्व इसलिये नहीं आता है कि ये फलमूल आदि का आहार करते हैं । फलमूल आदि के आहार करने वालों में समस्त प्राणियों के साथ आत्मतुल्यता की दृष्टि नहीं रहती है । इस तरह द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिकनय की मान्यता के अनुसार परिरूपित

जे भूत, लविष्य अने वर्तमान विषयोंने जणुवा ते अर्हंत थवाभा डारणुप बनाय तो व्यवहार नयनी मान्यता प्रमाणे आलनार डेटलीड व्यङ्गि-ओ द्वारा कल्पित ऋषिओभा पणु अर्हंतता आवी जशे आ रीते तेमनी साथे तुल्यतानी सुरडेली आवी ज पडे छे ?

उत्तर—आ रीते पणु तुल्यतानी सुरडेली आवती नथी डारणु डे सूत्रमा ते वातना निराडरणु भाटे “सर्व वर्णूहिं सर्व दरिशीहिं” ओवा पढो भूक्या डे ओ पढो ओ स्पष्ट डरे छे डे तीर्थंकर अर्हंत ज सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी छे, ओ ऋषिजन नथी तेमनाभा सर्वज्ञता ओ डारणु आवती नथी डे तेओ समस्त एवाडिक द्रव्येना प्रदेश अने तेमनी पर्यायेना जणुडार डोता नथी तथा सर्वदर्शित्व ते डारणु आवतु नथी डे तेओ इणभूण आदिने आडार डरे छे इलभूण आदिने आडार डरनारभा समस्त प्राणुओनी साथे आत्मतुल्यतानी धिं रडेती नथी आ रीते द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक नयनी मान्यता प्रमाणे

કૈશિદિપ્યન્તેઝ્વીતાનાગતવર્તમાનાર્થજ્ઞાયકા ઋપયઃ । ઉક્તશ્ચ—

“ ઋપયઃ સયતાત્માનઃ ફલમૂલાઽનિલાશનાઃ ।

તપસૈવ પ્રપશ્યન્તિ, ત્રૈલોક્ય સચરાચરમ્ ॥ ૧ ॥

અતીતાઽનાગતાન્ ભાવાન્, વર્તમાનાશ્ચ ભારત ! ।

જ્ઞાનાલોકેન પશ્યન્તિ, ત્યક્તસગ્ગા જિતેન્દ્રિયા ” ॥ ૨ ॥ ઇત્યાદિ ।

ત્રૈલોક્ય નિરીક્ષિત મહિત ંવ પૃજિત સ્વીકૃત ક્રિયે ગયે હૈં, પરન્તુ ઉનમ્ અતીત, પ્રત્યુત્પન્ન ંવ અનાગત વિષયોં કી જ્ઞાપકના નહીં હૈ, કારણ ઉનકે સિદ્ધાન્તાનુસાર અતીત ંર અનાગતતા સિદ્ધ હી નહીં હોતી । યહ સિદ્ધાન્ત ંકાન્તતઃ ક્ષણિક વાદી હૈ, અતઃ ઇસમ્ ંકાન્ત વર્તમાન ક્ષણ કા હી અસ્તિત્વ સ્વીકાર ક્રિયા ગયા હૈ । ઇસ તરહ અતીત ંર અનાગત ક્ષણોં કા અસત્ત્વ હોને સે ઉનકા ગ્રહણ ઉનકે ઢારા નહીં હો સકતા હૈ । ઇસ પ્રકાર તુલ્યતા કી આપત્તિ હટ જાતી હૈ । ૬ ।

શકા—વ્યવહારનય કી માન્યતા કો માનનેવાલે કિતનેક વ્યક્તિ ઇસ વાત કો સ્વીકાર કરતે હૈં કિ ઋપિજન અતીત, અનાગત ંવ પ્રત્યુત્પન્ન વિષયો કે જ્ઞાતા હોતે હૈં । કહા ંધી હૈ—

“ ઋપયઃ સયતાત્માનઃ, ફલ મૂલા નિલાશનાઃ ।

તપસૈવ પ્રપશ્યન્તિ, ત્રૈલોક્ય સચરાચરમ્ ॥ ૧ ॥

અતીતાનાગતાન્ ભાવા, વર્તમાનાશ્ચ ભારત ! ।

જ્ઞાનાલોકેન પશ્યન્તિ, ત્યક્તસગ્ગા જિતેન્દ્રિયાઃ ” ॥ ૨ ॥

ક્ષિત મહિત અને પૂજિત તરીકે સ્વીકાર્યો હોય, પણ તેમનામા ભૂત, વર્તમાન અને ભવિષ્યના વિષયોની બાબુકારી નથી કારણ કે તેમના સિદ્ધાત પ્રમાણે ભૂત અને ભવિષ્યતા સિદ્ધ નથી થતી એ સિદ્ધાત એકાન્તત ક્ષણિકવાદી છે, તેથી તેમા એકાન્ત વર્તમાન ક્ષણનુ બ અસ્તિત્વ સ્વીકાર્યું છે આ રીતે અતીત (ભૂત) અને અનાગત (ભવિષ્ય) ક્ષણોનુ અસત્ત્વ હોવાથી તેમનુ ગ્રહણ તેમના ઢારા થઈ શકતુ નથી આ રીતે તુલ્યતાની મુશ્કેલી ઢર થાય છે (૫)

શકા—વ્યવહાર નયની માન્યતાને માનનારી કેટલીક વ્યક્તિ એ વાતનો સ્વીકાર કરે છે કે ઋપિજન ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાન વિષયોના બાબુકાર હોય છે કહુ પણ છે—

“ ઋપયઃ સયતાત્માનઃ ફલમૂલા નિલાશનાઃ ।

તપસૈવ પ્રપશ્યન્તિ, ત્રૈલોક્ય સચરાચરમ્ ॥ ૧ ॥

“ અતીતા નાગતાન્ ભાવાન્, વર્તમાનાશ્ચ ભારત ?

જ્ઞાનાલોકેન પશ્યન્તિ, ત્યક્તસગ્ગા જિતેન્દ્રિયાઃ ” ॥ ૨ ॥

अतस्तत्तुल्यतापत्तिः स्यादत आह—‘सर्ववर्णूहिं सर्वदरिसीहिं’—सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिरिति । ते तु रूपयो न भवन्ति सर्वज्ञाः—सर्वद्रव्यप्रदेशपर्यायज्ञानाभावात्, तथा ते सर्वदर्शिनोऽपि न भवन्ति, फलमूलानिलाद्याहारकरणेन सर्वप्राणिज्वात्म-तुल्यदृष्ट्यभावात् ।

तदेव द्रव्यास्तिरूपर्यायास्तिरुनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तेभ्यो भिन्नास्तीर्य-करा इत्युक्तम् ॥ सू० ४० ॥

यदि अतीत, अनागत एव प्रत्युत्पन्नविषयों का जानना अर्हंत होने में कारण माना जाय तो व्यवहारनय की मान्यता के अनुसार चलने वाले किननेक व्यक्तियों द्वारा कल्पित ऋषियों में भी अर्हंतता आ जावेगी । इस तरह इनके साथ तुल्यता की आपत्ति खड़ी ही रहती ?

उत्तर—इस तरह से भी तुल्यता की आपत्ति नहीं आती है, कारण सूत्र में इस बात की निवृत्ति के लिये “सर्ववर्णूहिं सर्वदरिसीहिं” ये पद रक्खे गये हैं । ये पद यह स्पष्ट करते हैं कि तीर्थंकर अर्हंत ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, ये ऋषिजन नहीं । इनमें सर्वज्ञता इसलिये नहीं आती है कि ये समस्त जीवादिक द्रव्यों के प्रदेश और उनकी पर्यायों के ज्ञाता नहीं होते हैं । तथा सर्वदर्शित्व इसलिये नहीं आता है कि ये फलमूल आदि का आहार करते हैं । फलमूल आदि के आहार करने वालों में समस्त प्राणियों के साथ आत्मतुल्यता की दृष्टि नहीं रहती है । इस तरह द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिकनय की मान्यता के अनुसार परिकल्पित

जे लूत, लविध्य अने वर्तमान विषयेने जणुवा ते अर्हंत थवाभा कारणरूप मनाय तो व्यवहार नयनी मान्यता प्रमाणे आलनार केटलीक व्यक्ति-ओ द्वारा कल्पित ऋषियोभा पणु अर्हंतता आवी जशे आ शीते तेमनी साथे तुल्यतानी सुरक्षेली आवी न पडे छे ?

उत्तर—आ शीते पणु तुल्यतानी सुरक्षेली आवती नथी कारण के सूत्रमा ते वातना निराकरण भाटे “सर्व वर्णूहिं सर्व दरिसीहिं” जेवा पढे भूक्या छे जे पढे जे स्पष्ट करे छे के तीर्थंकर अर्हंत न सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी छे, जे ऋषिजन नथी तेमनाभा सर्वज्ञता जे कारणे आवती नथी के तेजो समस्त ज्ञादिक द्रव्येना प्रदेश अने तेमनी पर्यायेना जणुकार छेता नथी तथा सर्वदर्शित्व ते कारणे आवतु नथी के तेजो इणभूण आदिने आहार करे छे इणभूण आदिने आहार करनारभा समस्त प्राणीओनी साथे आत्मतुल्यतानी दृष्टि रहेती नथी आ शीते द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक नयनी मान्यता प्रमाणे

कैश्चिदिप्यन्तेऽतीतानागतवर्तमानार्थेऽप्ययमाश्रयः । उक्तञ्च—

“ ऋषयः सयतात्मानः फलमूलाऽनिशानाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचम् ॥ १ ॥

अतीताऽनागतान् भावान्, वर्तमानाश्च भारत ! ।

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥ इत्यादि ।

त्रैलोक्य निरीक्षित महित एव पृजित स्वीकृत क्रिये गये हों, परन्तु उनमें अतीत, प्रत्युत्पन्न एव अनागत विषयों की जापकना नहीं है, कारण उनके सिद्धान्तानुसार अतीत और अनागतता सिद्ध ही नहीं होती । यह सिद्धान्त एकान्ततः क्षणिक वादी है, अतः इसमें एकान्त वर्तमान क्षण का ही अस्तित्व स्वीकार किया गया है । इस तरह अतीत और अनागत क्षणों का असत्त्व होने से उनका ग्रहण उनके द्वारा नहीं हो सकता है । इस प्रकार तुल्यता की आपत्ति हट जाती है । ५ ।

शका—व्यवहारनय की मान्यता को माननेवाले किननेक व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते हैं कि ऋषिजन अतीत, अनागत एव प्रत्युत्पन्न विषयों के ज्ञाता होते हैं । कहा भी है—

“ ऋषयः सयतात्मानः, फल मूला निलाशनाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

अतीतानागतान् भावा, वर्तमानाश्च भारत ! ।

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥

क्षित महित अने पृजित तरीके स्वीकार्यो होय, पण तेमनाभा भूत, वर्तमान अने लविष्यना विषयेनी लक्षुकारी नथी कारण के तेमना सिद्धात प्रभावे भूत अने लविष्यता सिद्ध नथी थती अे सिद्धात अेकान्तत क्षणिकवादी छे, तेथी तेमा अेकान्त वर्तमान क्षणनुं न् अस्तित्व स्वीकार्युं छे आ रीते अतीत (भूत) अने अनागत (लविष्य) क्षणानु अस्तित्व होवार्थी तेमनुं श्रद्धणुं तेमना द्वारा थर्ध शकतु नथी आ रीते तुल्यतानी मुश्केली हर थाय छे (५)

शका—व्यवहार नयनी मान्यताने माननारी डेटलीक व्यक्ति अे वातने स्वीकार करे छे के ऋषिजन भूत, लविष्य अने वर्तमान विषयेना लक्षुकार होय छे कहुं पणुं छे—

“ ऋषयः सयतात्मानः फलमूला निलाशनाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

“ अतीता नागतान् भावान्, वर्तमानाश्च भारत ?

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥

अतस्तुल्यतापत्तिः स्यादत आह—‘सर्वणूहिं सर्वदरिसीहिं’—सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिरिति । ते तु ऋषयो न भवन्ति सर्वज्ञाः—सर्वद्रव्यप्रदेशपर्यायज्ञानाभावात्, तथा ते सर्वदर्शिनोऽपि न भवन्ति, फलमूलानिलाद्याहारकरणेन सर्वप्राणिज्वात्म-तुल्यदृष्ट्यभावात् ।

तदेव द्रव्यास्तिरूपर्यायास्तिरुनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तेभ्यो भिन्नास्तीर्थ-करा इत्युक्तम् ॥ सू० ४० ॥

यदि अतीत, अनागत एव प्रत्युत्पन्नविषयों का जानना अर्हत होने में कारण माना जाय तो व्यवहारनय की मान्यता के अनुसार चलने वाले किननेक व्यक्तियों द्वारा कल्पित ऋषियों में भी अर्हता आ जावेगी । इस तरह इनके साथ तुल्यता की आपत्ति खड़ी ही रहती ? ।

उत्तर—इस तरह से भी तुल्यता की आपत्ति नहीं आती है, कारण सूत्र में इस बात की निवृत्ति के लिये “सर्वणूहिं सर्वदरिसीहिं” ये पद रक्खे गये हैं । ये पद यह स्पष्ट करते हैं कि तीर्थंकर अर्हत ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, ये ऋषिजन नहीं । इनमें सर्वज्ञता इसलिये नहीं आती है कि ये समस्त जीवादिक द्रव्यों के प्रदेश और उनकी पर्यायों के ज्ञाता नहीं होते हैं । तथा सर्वदर्शित्व इसलिये नहीं आता है कि ये फलमूल आदि का आहार करते हैं । फलमूल आदि के आहार करने वालों में समस्त प्राणियों के साथ आत्मतुल्यता की दृष्टि नहीं रहती है । इस तरह द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिकनय की मान्यता के अनुसार परिकल्पित

जे भूत, लविध्य अने वर्तमान विषयेने ज्ञाणुवा ते अर्हत थवामा कारणुप्य मनाय तो व्यवहार नयनी मान्यता प्रमाणे आखनार केटलीक व्यक्ति-ओ द्वारा कल्पित ऋषियोमा पणु अर्हता आवी जथे आ रीते तेमनी साथे तुल्यतानी मुश्केली आवी ज पडे छे ?

उत्तर—आ रीते पणु तुल्यतानी मुश्केली आवती नथी कारणु डे सूत्रमा ते वातना निराकरणु भाटे “सर्वणूहिं सर्व दरिसीहिं” जेवा पढे भूकथा छे जे पढे जे शपथ करे छे डे तीर्थंकर अर्हत ज सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी छे, जे ऋषिजन नथी तेमनामा सर्वज्ञता जे कारणे आवती नथी डे तेओ समस्त जीवादिक द्रव्येना प्रदेश अने तेमनी पर्यायेना ज्ञाणुकार होता नथी तथा सर्वदर्शित्व ते कारणे आवतु नथी डे तेओ इणभूण आदिने आहार करे छे इणभूण आदिने आहार करनारमा समस्त प्राणीओनी साथे आत्मतुल्यतानी दृष्टि रहेती नथी आ रीते द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक नयनी मान्यता प्रमाणे

कैश्चिदिष्यन्तेऽतीतानागतवर्तमानार्थज्ञायका ऋषयः । उक्तञ्च—

“ ऋषयः सयतात्मानः फलमूलाऽनिलाशनाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

अतीताऽनागतान् भावान्, वर्तमानाश्च भारत ! ।

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसगा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥ इत्यादि ।

त्रैलोक्य निरीक्षित महित एव पूजित स्वीकृत किये गये हों, परन्तु उनमें अतीत, प्रत्युत्पन्न एव अनागत विषयों की जापकना नहीं है, कारण उनके सिद्धान्तानुसार अतीत और अनागतता सिद्ध ही नहीं होती । यह सिद्धान्त एकान्ततः क्षणिक वादी है, अतः इसमें एकान्त वर्तमान क्षण का ही अस्तित्व स्वीकार किया गया है । इस तरह अतीत और अनागत क्षणों का असत्त्व होने से उनका ग्रहण उनके द्वारा नहीं हो सकता है । इस प्रकार तुल्यता की आपत्ति हट जाती है । ५ ।

शका—व्यवहारनय की मान्यता को माननेवाले कितनेक व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते हैं कि ऋषिजन अतीत, अनागत एव प्रत्युत्पन्न विषयों के ज्ञाता होते हैं । कहा भी है—

“ ऋषयः सयतात्मानः, फल मूला निलाशना' ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

अतीतानागतान् भावा, वर्तमानाश्च भारत ! ।

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥

क्षित भङ्गित अने पूजित तरीके स्वीकार्यां होय, यषु तेभनामा भूत, वर्तमान अने लविष्यना विषयेना नालुकारि नथी कारषु के तेभना सिद्धात प्रभाषु भूत अने लविष्यता सिद्धञ्च नथी यती अे सिद्धात अेकान्तत क्षणिकवादी छे, तेथी तेमा अेकान्त वर्तमान क्षणनुं च अस्तित्व स्वीकार्युं छे आ रीते अतीत (भूत) अने अनागत (लविष्य) क्षणुतु असत्त्व होवाथी तेभनु अहषु तेभना द्वारा अर्थ शकतु नथी आ रीते तुत्थतानी मुश्केली हर थाय छे (५)

शका—व्यवहार नयनी मान्यताने माननारी डेटलीक व्यङ्गित अे वातने स्वीकार करे छे के ऋषिजन भूत, लविष्य अने वर्तमान विषयेना नालुकार होय छे कछु यषु छे—

“ ऋषयः सयतात्मान' फलमूला निलाशनाः ।

तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ १ ॥

“ अतीता नागतान् भावान्, वर्तमानाश्च भारत ?

ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्यक्तसङ्गा जितेन्द्रियाः ” ॥ २ ॥

કાપિલિક્રમ્ ૧૩, લૌકાયતિક્રમ્ ૧૪, પૃષ્ઠિતન્ત્રમ્ ૧૫, માઠરમ્ ૧૬, પુરાણમ્ ૧૭, વ્યાકરણમ્ ૧૮, ભાગવતમ્ ૧૯, પાતંજલમ્ ૨૦, પુણ્યદૈવતમ્ ૨૧, લેખમ્ ૨૨, ગણિતમ્ ૨૩, શકુનસ્તમ્ ૨૪, નાટકાનિ ૨૫, અથના-દ્વાસસૃતિઃ કલાઃ, ચત્વા-રશ્ચ વેદાઃ સાક્ષોપાદ્ધાઃ, એતાનિ મિથ્યાદૃષ્ટેર્મિ-યાત્પરિગૃહીતાનિ મિથ્યાશ્રુતમ્ । એતાનિ ચૈવ સમ્યગ્દૃષ્ટેઃ સમ્યક્ત્વપરિગૃહીતાનિ સમ્યક્શ્રુતમ્ । અથવા મિથ્યાદૃષ્ટે-રપ્યેતાનિ ચૈવ સમ્યક્શ્રુતમ્, કસ્માત્ ? સમ્યક્ત્વહેતુત્વાત્, યસ્માત્તે મિથ્યાદૃષ્ટ-યસ્તૈશ્ચૈવ સમયૈર્નોદિતાઃ સન્તઃ કેચિત્ સ્વપક્ષદૃષ્ટીસ્ત્યજન્તિ । તદેતન્મિથ્યાશ્રુતમ્ ॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૂછતિ—‘ સે કિં તં મિચ્છાસુયં ’ ઇતિ । અય કિં તન્મિ-થ્યાશ્રુતમ્ ઇતિ । ઉત્તરમાહ—મિચ્છાસુયં ’ ઇત્યાદિ । તત્ સ્વલ્લ મિથ્યાશ્રુત મતિ, યદિદમ્ અજ્ઞાનિકૈઃ=અલ્પમતિભિ મિથ્યાદૃષ્ટિભિઃ=મિથ્યાત્તિભિઃ, સ્વચ્છન્દબુદ્ધિ-મતિવિકલ્પિતમ્, તત્ત્વ બુદ્ધિઃ=અવગ્રહેહારૂપા, મતિઃ=અવાય ધારણારૂપા, સ્વચ્છન્દેન=સ્વાભિપ્રાયેણ, ન તુ સર્વજ્ઞપ્રણીતાર્યાનુસારેણ, બુદ્ધિમતિભ્યા વિકલ્પિતમ્, સ્વબુદ્ધિ

અથ સૂત્રકાર મિથ્યાશ્રુત કા વર્ણન કરતે હૈં—‘ સે કિં ત મિચ્છાસુયં ’ ઇત્યાદિ । શિષ્ય પૂછતા હૈં—હે મદન્ત ! મિથ્યાશ્રુત કા ક્યા સ્વરૂપ હૈ ! ઉત્તર-મિથ્યાશ્રુત વહ હૈ કિ જિસે અજ્ઞાની-અત્પમતિયુક્ત-મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવોં ને અપની સ્વચ્છદ મતિ એવ બુદ્ધિ ઢારા પરિકલ્પિત કિયા હૈ । યહા જો “સ્વચ્છદ મતિ બુદ્ધિ” એસા કહા હૈ ઉસકા અભિપ્રાય યહ હૈ કિ જો મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ હુઆ કરતે હૈ વે સર્વજ્ઞ પ્રણીત અર્થકે અનુસાર પદાર્થોં કી પ્રરૂપણા નહી કરતે, કિન્તુ અપને અભિપ્રાય કે અનુસાર જો અપની બુદ્ધિ ઓર મતિમેં આતા હૈ ઉસે હી સત્ય કલ્પિત કર લિયા કરતે હૈં । યહા અવગ્રહ એવ ઈહારૂપ માન્યતા કા નામ બુદ્ધિ હૈ, તથા અવાય એવ ધારણારૂપ માન્યતા કા નામ મતિ હૈ । ઇસ તરહ બુદ્ધિ ઓર મતિમે ભેદ

હવે સૂત્રકાર મિથ્યાશ્રુતવુ વર્ણન કરે છે—“સે કિ ત મિચ્છાસુયં ” ઇત્યાદિ શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત ! મિથ્યાશ્રુતવુ શુ સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—મિથ્યાશ્રુત તે છે કે જેને અજ્ઞાની-અલ્પમતિવાળા-મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવોએ પોતાની સ્વચ્છદ મતિ અને બુદ્ધિ દ્વારા પરિકલ્પિત કર્યું છે અહીં જે “સ્વચ્છદ મતિ બુદ્ધિ” એમ કહ્યું છે તેવું તાત્પર્ય એ છે કે જે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ હોય છે તેઓ સર્વજ્ઞ પ્રણીત અર્થ પ્રમાણે પદાર્થોની પ્રરૂપણા કરતા નથી, પણ પોતાના અભિપ્રાય પ્રમાણે જે પોતાની બુદ્ધિ અને મતિમા આવે છે એને જ સત્ય ઠપી લે છે અહીં અવગ્રહ અને ઈહારૂપ માન્યતાવું નામ બુદ્ધિ છે,

अथ मिथ्याश्रुत वर्णयति—

मूलम्—से किं तं मिच्छासुय ? । मिच्छासुयं जं इमं अण्णा-
णिएहि मिच्छादिट्टिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पिय, तं जहा-
भारहं १, रामायण २, भीमासुरकं ३, कोडिच्छय ४, सगडभदि-
याओ ५ खोड—(घोडग) मुहं ६, कप्पासियं ७, नागसुहुमं ८,
कणगसत्तरी ९, वइसेसिय १०, बुद्धवयणं ११, तेरासिय १२,
काविलिय १३, लोगायय १४, सट्टितंत १५, माढर १६, पुराण १७,
वागरणं १८, भागवय १९, पायजली २०, पुस्सदेवयं २१, लेहं २२,
गणिय २३, सउणरुय २४, नाडयाड २५, अहवा वावत्तरि-
कलाओ, चत्तारि य वेया संगोवगा । एयाइं मिच्छादिट्टिस्स
मिच्छत्तपरिग्गहियाइ मिच्छासुय । एयाइ चेव सम्मदिट्टिस्स
सम्मत्तपरिग्गहियाइ सम्मसुय । अहवा—मिच्छदिट्टिस्स वि
एयाइं चेव सम्मसुय, कम्हा ? सम्मत्तहेउत्तणओ, जम्हा ते
मिच्छदिट्टिया तेहि चेव समएहि चोइया समाणा केइ सपक्ख-
दिट्टिओ चयति । से तं मिच्छासुय ॥ सू० ४१ ॥

छाया—अथ किं तन्मिथ्याश्रुतम् ? । मिथ्याश्रुत यदिदमत्रानिकैर्मिथ्यादृष्टिकैः
स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्, तद् यथा—भारतम् १, रामायणम् २, भीमासुरोक्तम्
३, कौटिल्यकम् ४, शकटभद्रिकाः ५, खोडा (घोटक) मुखम् ६, कार्पासिकम् ७,
नागसूक्ष्मम् ८, कनरुसप्ततिः ९, वैशेषिकम् १०, बुद्धवचनम् ११, त्रैराशिकम् १२,

मुक्त जीवों से भिन्न तीर्थकर अर्हत प्रभु है, यह बात इन विशेषणों द्वारा
प्रतिपादित की गई है ६ ॥ सू० ४० ॥

परिकल्पित मुक्त लोकोत्थी सिद्ध तीर्थ कर अर्हत प्रभु छे, ओ बात ओ विशे-
षणो द्वारा सिद्ध उरवामा आवी छे (६) ॥ सू ४० ॥

कापिलिकम् १३, लौकायतिकम् १४, पण्डितन्त्रम् १५, माठरम् १६, पुराणम् १७, व्याकरणम् १८, भागवतम् १९, पातञ्जलम् २०, पुण्यदैवतम् २१, लेखम् २२, गणितम् २३, शकुनरुतम् २४, नाटकानि २५, अथवा-द्रासप्ततिः कलाः, चत्वारश्च वेदाः साङ्गोपाङ्गाः, एतानि मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिग्रहीतानि मिथ्याश्रुतम् । एतानि चैव सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिग्रहीतानि सम्यक्श्रुतम् । अथवा मिथ्यादृष्टेरप्येतानि चैव सम्यक्श्रुतम्, कस्मात् ? सम्यक्त्वहेतुत्वात्, यस्मात्ते मिथ्यादृष्टेरप्येतानि चैव सम्यक्श्रुतम्, तत्र बुद्धिः=अग्रहेहारूपा, मतिः=अवायगारणारूपा, स्वच्छन्देन=स्वाभिप्रायेण, न तु सर्वज्ञप्रणीतार्थानुसारेण, बुद्धिमतिभ्या विकल्पितम्, स्वबुद्धि

टीका—शिष्य. पृच्छति—‘ से किं तं मिच्छासुय० ’ इति । अथ किं तन्मिथ्याश्रुतम् इति । उत्तरमाह—‘ मिच्छासुयं० ’ इत्यादि । तत् खलु मिथ्याश्रुत भवति, यदिदम् अज्ञानिकैः=अल्पमतिभि मिथ्यादृष्टिभिः=मिथ्यात्विभिः, स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्, तत्र बुद्धिः=अग्रहेहारूपा, मतिः=अवायगारणारूपा, स्वच्छन्देन=स्वाभिप्रायेण, न तु सर्वज्ञप्रणीतार्थानुसारेण, बुद्धिमतिभ्या विकल्पितम्, स्वबुद्धि

अथ सूत्रकार मिथ्याश्रुत का वर्णन करते हैं—‘ से किं तं मिच्छासुय० ’ इत्यादि । शिष्य पृच्छता है—हे भदन्त ! मिथ्याश्रुत का क्या स्वरूप है ! उत्तर—मिथ्याश्रुत वह है कि जिसे अज्ञानी-अल्पमतियुक्त-मिथ्यादृष्टि जीवों ने अपनी स्वच्छन्द मति एव बुद्धि द्वारा परिकल्पित किया है । यहा जो “ स्वच्छन्द मति बुद्धि ” ऐसा कहा है उसका अभिप्राय यह है कि जो मिथ्यादृष्टि जीव हुआ करते हैं वे सर्वज्ञ प्रणीत अर्थके अनुसार पदार्थों की प्ररूपणा नहीं करते, किन्तु अपने अभिप्राय के अनुसार जो अपनी बुद्धि और मतिमें आता है उसे ही सत्य कल्पित कर लिया करते हैं । यहा अवग्रह एव ईहारूप मान्यता का नाम बुद्धि है, तथा अवाय एव धारणारूप मान्यता का नाम मति है । इस तरह बुद्धि और मतिमें भेद

इवे सूत्रकार मिथ्याश्रुतवु वर्णन करे छे—“ से किं तं मिच्छासुय० ” इत्यादि शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! मिथ्याश्रुतवु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—मिथ्याश्रुत ते छे ते जेने अज्ञानी-अल्पमतिवाणा-मिथ्यादृष्टि जीवोअे चोतानी स्वच्छन्द मति अने बुद्धि द्वारा परिकल्पित क्युं छे अही जे “ स्वच्छन्द मति बुद्धि ” अथे कह्युं छे तेतु तात्पर्य अथे छे के जे मिथ्यादृष्टि एव होय छे तेअे सर्वज्ञ प्रणीत अर्थ प्रमाद्ये पदार्थोनी प्ररूपणा करता नथी, पण्यु चोताना अलिप्राय प्रमाद्ये जे चोतानी बुद्धि अने मतिमा आवे छे अने ज सत्य कल्पी वे छे अही अवग्रह अने ईहारूप मान्यतावु नाम बुद्धि छे,

પરિકલ્પિતમિત્યર્થઃ, તદ્ યથા-તત્=મિઃ યાશ્રુત, યથા=યેન પ્રકારેણ ભગવતા કથિત તથા કથયામીત્યર્થ' । ભારત ૧, રામાયણમ્ ૨, મીમાસુરોક્ત=મીમાસુરેણ રચિત શાસ્ત્રમ્ ૩, કૌટિલ્યક-કૌટિલ્યેન=ચાણક્યેન નિર્મિતમ્ અર્થશાસ્ત્રમ્ ૪, શકુટભદ્રિકાઃ ૫, ઘોટકમુરય=ઘોટકમુલનામક શાસ્ત્ર ૬, કાર્પાસિક ૭, નાગસૂક્ષ્મ ૮, કનકસપ્તિ ૯, વૈશેષિક=કળાદર્શનમ્ ૧૦, ત્રુદ્ધચન=ત્રિપિટકરૂપં ૧૧ ત્રૈરાશિક-ત્રૈરાશિકસમ્પ્રદાયમમ્ચન્વી ગ્રન્થવિશેષઃ ૧૨, કાપિલક-સાખ્યશાસ્ત્રમ્ ૧૩, લૌકાયતિક=ચાર્વાકદર્શનમ્ ૧૪, પષ્ટિતન્ત્ર=સાખ્યશાસ્ત્રગ્રન્થવિશેષ ૧૫, માઠર-માઠરનિર્મિત શાસ્ત્ર પોઢશતન્ત્રસ્થાપકો ન્યાયશાસ્ત્રવિશેષઃ ૧૬, પુરાણ ૧૭, વ્યાકરણ ૧૮, ભાગવત ૧૯, પાતન્જલ ૨૦, પુષ્પદૈવત ૨૧, લેલઃ ૨૨, ગણિત ૨૩, શકુનરુતમ્ ૨૪, નાટકાનિ ૨૫ ઇતિ । અથયા-અવ ચેત્યર્થ' । દ્વામસપ્તિ. મ્લાઃ, ચત્વારો વેદાઃ સાઙ્ગોપાઙ્ગાઃ । ઇતાનિ ભારતાદીનિ શાસ્ત્રાણિ, યદા મિઠ્યાદષ્ટેમિઠ્યાત્વેન પરિગૃહીતાનિ ભવન્તિ, તદા ત્રિપરીતાભિનિવેગટદ્વિદેહુત્વાન્મિઠ્યાશ્રુત

જાનના ચાહ્યે । વે મિઠ્યાશ્રુત યે હૈં-ભારત ૧, રામાયણ ૨, મીમાસુર કેદ્વારા રચિત શાસ્ત્ર, ચાણક્ય કે દ્વારા યનાયા હુઆ અર્થશાસ્ત્ર ૪, શકુટભદ્રિકા ૫, ઘોટકમુરય નામકા શાસ્ત્ર ૬, કાર્પાસિક ૭, નાગસૂક્ષ્મ ૮, કનકસપ્તિ ૯, વૈશેષિકદર્શન ૧૦, પિટકત્રય ૧૧, ત્રૈરાશિકસમ્પ્રદાય સવધી ગ્રન્થવિશેષ ૧૨, સાખ્યશાસ્ત્ર ૧૩, ચાર્વાક દર્શન ૧૪, પષ્ટિતન્ત્ર સાખ્યો કા ગ્રન્થ વિશેષ ૧૫, માઠર-સોલહ તત્વો કી સ્થાપના કરનેવાલા ન્યાયશાસ્ત્ર કા ગ્રન્થવિશેષ ૧૬, પુરાણ ૧૭, વ્યાકરણ ૧૮, ભાગવત ૧૯, પાતન્જલ ૨૦, પુષ્પદૈવત ૨૧, લેલ ૨૨, ગણિત ૨૩, શકુ નરુત ૨૪, એવ નાટક ૨૫, । તથા વહત્તર કલાપ્ સાગોપાઙ્ગ ચારોવેદ । યે ભારતાદિકશ્રુત જલ મિઠ્યાદષ્ટિ જીવો દ્વારા મિઠ્યાત્વપૂર્વક પરિગૃહીત

તથા અવાય અને ધારણારૂપ માન્યતાનુ નામ મતિ છે આ રીતે મતિ અને બુદ્ધિ વચ્ચે ભેદ સમજવાનો છે એ મિઠ્યાશ્રુત આ પ્રમાણે છે-(૧) ભારત, (૨) રામાયણ (૩) ભીમસુર દ્વારા રચિત શાસ્ત્ર (૪) ચાણક્યે બનાવેલુ અર્થ-શાસ્ત્ર, (૫) શકુટ ભદ્રિકા (૬) ઘોટકમુખ નામનુ શાસ્ત્ર, (૭) કાર્પાસિક, (૮) નાગસૂક્ષ્મ (૯) કનક સપ્તક, (૧૦) વૈશેષિક દર્શન, (૧૧) પિટકત્રય, (૧૨) ત્રૈરાશિક સમ્પ્રદાય સળ ધી ગ્રન્થવિશેષ, (૧૩) સાખ્યશાસ્ત્ર, (૧૪) ચાર્વાકદર્શન, (૧૫) પષ્ટિતન્ત્ર-સાખ્યોનો ગ્રન્થવિશેષ, (૧૬) માઠર-સોળ તત્વોની સ્થાપના કરનાર ન્યાયશાસ્ત્રનો ગ્રન્થવિશેષ, (૧૭) પુરુષ, (૧૮) વ્યાકરણ, (૧૯) ભાગ વત, (૨૦) પાતન્જલ, (૨૧) પુષ્પદૈવત, (૨૨) લેખ, (૨૩) ગણિત, (૨૪) શકુ નરુત અને (૨૫) નાટક તથા બોતેર કળાઓ સાગોપાગ ચારે વેદ એ ભાર તાદિક શ્રુત ન્યાયે મિઠ્યાદષ્ટિ જીવો દ્વારા મિઠ્યાત્વપૂર્વક પરિગૃહીત કરાય છે,

भवन्ति । एतान्येव च भारतादीनि शास्त्राणि, सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि-सम्यक्त्वेन=यथावस्थिताऽसारतापरिभावेन रूपेण परिगृहीतानि भवन्ति, तस्य सम्यक्श्रुतम्, तद्वताऽसारतादर्शनेन स्थिरतरसम्यक्त्वपरिणामजनकत्वात् ।

अथवेत्यादि । अथवा-मिथ्यादृष्टेरपि ऋस्यचित्, एतानि-भारतादीनि शास्त्राणि सम्यक्श्रुतं भवति । शिष्यः पृच्छति—'कम्हा ?' इति । कस्मात् ? सम्यक्त्वहेतुत्वात् । सम्यक्त्वहेतुत्वमेव दर्शयति—'जम्हा०' इत्यादि ।

यस्मात् ते मिथ्यादृष्टयस्तैश्चैव समयै =भारताद्युक्तैरेव स्वसिद्धान्तैः, पूर्वापरविरोधेन, यद्वा गगादिपरीतः पुरुषस्तान्नातीन्द्रियमर्थमनुबुध्यते, रागादिपरीत-

क्रिये जाते हैं उस समय ये विपरीत अभिनिवेश को बढ़ाने के कारण होने से मिथ्याश्रुत माने जाते हैं । तथा जिस समय ये सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा सम्यक्त्वपूर्वक गृहीत क्रिये जाते हैं उस समय ये उसे अपने भीतर रही हुई असारता के प्रदर्शक होते हैं इससे उसकी आत्मामें सम्यक्त्व परिणाम स्थिरतर हो जाता है अतः उस सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा ये सम्यक्श्रुत रूपसे भी माने जाते हैं । अथवा-किसी मिथ्यादृष्टि जीव के लिये भी ये भारतादिकश्रुत सम्यक्श्रुतरूपसे परिणामित हो जाते हैं, कारण क्रिये उस आत्मामें सम्यक्त्व के कारण बन जाते हैं । सम्यक्त्व के कारण ये उसको किस तरह से बनते हैं ? यही बात यहा स्पष्ट की जाती है-मिथ्यादृष्टि जीव जब भारतादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का अवलोकन करता है, तो जब उसे वहा पूर्वापरविरोध दृष्टिगत होता है अथवा वह ऐसा भी विचार करता है कि इन वेदादिक शास्त्रोंमें प्रायः

ते वधते ते विपरीत अभिनिवेशने वधारवानु काण्यु डोवायी मिथ्याश्रुत मनाथ उ तथा ते मभये ये सम्यग्दृष्टि एवो द्वारा सम्यक्त्वपूर्वक अडण्यु उगाय उ, त्यारे तेवो तेने पोतानी अडर रडेल असारताना प्रदर्शक थाय उ तेथी तेना आत्मामा सम्यक्त्व परिणाम वधारि स्थिर थाय उ तेथी ते सम्यग्दृष्टिनी अपेक्षाये तेमने सम्यक्श्रुतइये पण्यु मनाथ उ अथवा डेअड डेअड मिथ्यादृष्टि एवने माटे पण्यु ये भारतादिऽश्रुत सम्यक्श्रुतइये परिण्यु एमित थाय उ, डारण्यु डे तेवो ते आत्मामा सम्यक्त्वनु काण्यु भने उ तेवो तेने माटे सम्यक्त्वनु डारण्यु डेवी रीते भने छे ? येच वात अडी स्पष्ट डर वामा आवे उ-मिथ्यादृष्टि एव न्यारे भारतादि शास्त्रोमा प्रतिपादिन सिद्धान्तोनु अवलोचन इते ते न्याके तेने पूर्वापर विशेष नबरे पडे उ अथवा ते येवो

પરિકલ્પિતમિત્યર્થઃ, સદ્ યથા-તત્=મિથ્યાશ્રુત, યથા=યેન પ્રકારેણ ભગવતા કથિત તથા કથયામીત્યર્થઃ । ભારત ૧, રામાયણમ્ ૨, મીમાસુરોક્ત=મીમાસુરેણ રચિતં શાસ્ત્રમ્ ૩, કૌટિલ્યક-કૌટિલ્યેન=ચાણક્યેન નિર્મિતમ્ અર્થશાસ્ત્રમ્ ૪, શકટભદ્રિકાઃ ૫, ઘોટકમુગ્ધ=ઘોટકમુલ્લનામક શાસ્ત્રં ૬, કાર્પાસિક ૭, નાગસૂક્ષ્મ ૮, કનકસપ્તિઃ ૯, વૈશેષિક=કળાદર્શનમ્ ૧૦, પુષ્પવૈવત=ત્રિપિટકરૂપ ૧૧ ત્રૈરાશિક-ત્રૈરાશિકસમ્પ્રદાયસમ્બન્ધી ગ્રન્થવિશેષ ૧૨, કાપિલક-સાખ્યશાસ્ત્રમ્ ૧૩, લૌકાયતિક-ચાર્વાકદર્શનમ્ ૧૪, પષ્ટિતત્ર=સાખ્યશાસ્ત્રગ્રન્થવિશેષ ૧૫, માઠર-માઠરનિર્મિત શાસ્ત્ર પોઢશતન્નસ્થાપકો ન્યાયશાસ્ત્રવિશેષઃ ૧૬, પુરાણ ૧૭, વ્યાકરણ ૧૮, ભાગવત ૧૯, પાતઙ્ગલ ૨૦, પુષ્પવૈવત ૨૧, લેખઃ ૨૨, ગણિતં ૨૩, શકુનરુતમ્ ૨૪, નાટકાનિ ૨૫ इति । અથયા-અથ ચેત્યર્થઃ । દ્વાસપ્તિ. કલાઃ, ચત્વારો વેદાઃ સાહ્યોપાદ્યાઃ । एतानि भारतादीनि शास्त्राणि, यदा मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वेन परिगृहीतानि भवन्ति, तदा निपरीताभिनिवेशग्रद्धिहेतुत्वान्मिथ्याश्रुत

જાનના ચાહિયે । વે મિથ્યાશ્રુત યે હૈ-ભારત ૧, રામાયણ ૨, મીમાસુર કે દ્વારા રચિત શાસ્ત્ર, ચાણક્ય કે દ્વારા વનાયા હુઆ અર્થશાસ્ત્ર ૪, શકટભદ્રિકા ૫, ઘોટકમુગ્ધ નામકા શાસ્ત્ર ૬, કાર્પાસિક ૭, નાગસૂક્ષ્મ ૮, કનકસપ્તિ ૯, વૈશેષિકદર્શન ૧૦, પિટકત્રય ૧૧, ત્રૈરાશિકસમ્પ્રદાય સવધી ગ્રન્થવિશેષ ૧૨, સાખ્યશાસ્ત્ર ૧૩, ચાર્વાક દર્શન ૧૪, પષ્ટિતત્ર સાખ્યોં કા ગ્રન્થ વિશેષ ૧૫, માઠર-સોલહ તત્વો કી સ્થાપના કરનેવાલા ન્યાયશાસ્ત્ર કા ગ્રન્થવિશેષ ૧૬, પુરાણ ૧૭, વ્યાકરણ ૧૮, ભાગવત ૧૯, પાતઙ્ગલ ૨૦, પુષ્પવૈવત ૨૧, લેખ ૨૨, ગણિત ૨૩, શકુ નરુત ૨૪, એવ નાટક ૨૫, । તયા વહત્તર કલાઈ સાગોપાદ્ય ચારોવેદ । યે ભારતાદિકશ્રુત જય મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવો દ્વારા મિથ્યાત્વપૂર્વક પરિગૃહીત

તથા અવાય અને ધારણાકૃપ માન્યતાનુ નામ મતિ છે આ રીતે મતિ અને બુદ્ધિ વચ્ચે ભેદ સમજવાનો છે એ મિથ્યાશ્રુત આ પ્રમાણે છે-(૧) ભારત, (૨) રામાયણ (૩) મીમાસુર દ્વારા રચિત શાસ્ત્ર (૪) ચાણક્યે બનાવેલું અર્થ-શાસ્ત્ર, (૫) શકટ ભદ્રિકા (૬) ઘોટકમુગ્ધ નામનું શાસ્ત્ર, (૭) કાર્પાસિક, (૮) નાગસૂક્ષ્મ (૯) કનક સપ્તક, (૧૦) વૈશેષિક દર્શન, (૧૧) પિટકત્રય, (૧૨) ત્રૈરાશિક સમ્પ્રદાય સબધી ગ્રન્થવિશેષ, (૧૩) સાખ્યશાસ્ત્ર, (૧૪) ચાર્વાકદર્શન, (૧૫) પષ્ટિતત્ર-સાખ્યોના ગ્રન્થવિશેષ, (૧૬) માઠર-સોળ તત્વોની સ્થાપના કરનાર ન્યાયશાસ્ત્રનો ગ્રન્થવિશેષ, (૧૭) પુરુષ, (૧૮) વ્યાકરણ, (૧૯) ભાગ વત, (૨૦) પાતઙ્ગલ, (૨૧) પુષ્પવૈવત, (૨૨) લેખ, (૨૩) ગણિત, (૨૪) શકુ નરુત અને (૨૫) નાટક તથા બોતેર કળાઓ સાગોપાદ્ય ચાર વેદ એ ભાર તાદિક શ્રુત ન્યારે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવો દ્વારા મિથ્યાત્વપૂર્વક પરિગૃહીત કરાય છે,

भवन्ति । एतान्येव च भारतादीनि शास्त्राणि, सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि-सम्यक्त्वेन=यथावस्थिताऽसारतापरिभावेन रूपेण परिगृहीतानि भवन्ति, तस्य सम्यक्श्रुतम्, तद्गताऽसारतादर्शनेन स्थिरतरसम्यक्त्वपरिणामजनकत्वात् ।

अथवेत्यादि । अथवा-मिथ्यादृष्टेरपि कस्यचित्, एतानि-भारतादीनि शास्त्राणि सम्यक्श्रुतं भवति । शिष्यः पृच्छति—‘कम्हा ?’ इति । कस्मात् ? सम्यक्त्वहेतुत्वात् । सम्यक्त्वहेतुत्वमेव दर्शयति—‘जम्हा०’ इत्यादि ।

यस्मात् ते मिथ्यादृष्टयस्तैश्चैव समयै =भारताद्युक्तैरेव स्वसिद्धान्तैः, पूर्वापरविरोधेन, यद्वा गगादिपरीतः पुरुषस्तावन्नातीन्द्रियमर्थमनुबध्यते, रागादिपरीत-

किये जाते हैं उस समय ये विपरीत अभिनिवेश को बढ़ाने के कारण होने से मिथ्याश्रुत माने जाते हैं । तथा जिस समय ये सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा सम्यक्त्वपूर्वक गृहीत किये जाते हैं उस समय ये उसे अपने भीतर रहीं हुई असारता के प्रदर्शक होते हैं इससे उसकी आत्मामें सम्यक्त्व परिणाम स्थिरतर हो जाता है अतः उस सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा ये सम्यक्त्व रूपसे भी माने जाते हैं । अथवा-किसी मिथ्यादृष्टि जीव के लिये भी ये भारतादिकश्रुत सम्यक्श्रुतरूप से परिणामित हो जाते हैं, कारण किये उस आत्मामें सम्यक्त्व के कारण बन जाते हैं । सम्यक्त्व के कारण ये उसको किस तरह से बनते हैं ? यही बात यहां स्पष्ट की जाती है-मिथ्यादृष्टि जीव जब भारतादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का अवलोकन करता है, तो जब उसे वहां पूर्वापरविरोध दृष्टिगत होता है, अथवा वह ऐसा भी विचार करता है कि इन वेदादिक शास्त्रोंमें प्रायः

ते वपन्ते ते विपरीत अभिनिवेशने वधाग्वानु कारण ढोवाधी मिथ्याश्रुत मनाय छे तथा जे समये जे सम्यग्दृष्टि जेवो द्वारा सम्यक्त्वपूर्वक अडणु उराय छे, त्यारे तेजो तेने पोतानी अ हर रडेल असारताना प्रदर्शक थाय छे तेथी तेना आत्माभा सम्यक्त्व परिणाम वधारे स्थिर थाय छे तेथी ते सम्यग्दृष्टिनी अपेक्षाजे तेभने सम्यक्श्रुतइये पणु मनाय छे अथवा केछ केछ मिथ्यादृष्टि जेवने भाटे पणु जे भारतादिऽश्रुत सम्यक्श्रुतइये परिणु जमित थाय छे, कारण छे तेजो ते आत्माभा सम्यक्त्वनु कारण जने छे तेजो तेने भाटे सम्यक्त्वनु कारण केवी रीते जने छे ? जे वात अडी स्पष्ट उर वामा आवे छे-मिथ्यादृष्टि जेव ज्यारे भारतादि शास्त्रोंमा प्रतिपादित सिद्धान्तोंनु अवलोकन करे छे त्यारे जे तेने पूर्वापर विरोध नजरे पडे छे अथवा ते जेवो

परिरूपितमित्यर्थः, तद् यथा-तत्=मिथ्याश्रुत, यथा=येन प्रकारेण भगवता कथित
 तथा कथयामीत्यर्थः । भारत १, रामायणम् २, भीमासुरोक्त=भीमासुरेण रचित
 शास्त्रम् ३, कौटिल्यरू=कौटिल्येन=चाणक्येन निर्मितम् अर्थशास्त्रम् ४,
 शकटभट्टिकाः ५, घोटकमुख=घोटकमुखनामक शास्त्र ६, कार्पासिक ७, नागसू
 क्ष्मम् ८, कनकसप्ततिः ९, वैशेषिकरू=रूपादर्शनम् १०, बुद्धचक्र=त्रिपिटकरूपं ११
 त्रैराशिकरू=त्रैराशिकसम्प्रदायसम्बन्धी ग्रन्थविशेषः १२, कापिलरू=सारयशास्त्रम्
 १३, लौकायतिकरू=चार्वाकदर्शनम् १४, पण्डितत्र=सारयशास्त्रग्रन्थविशेष १५,
 माठर-माठरनिर्मित शास्त्र षोडशतत्रस्थापको न्यायशास्त्रविशेषः १६, पुराण १७,
 व्याकरण १८, भागवत १९, पातञ्जल २०, पुष्पदैवत २१, लेखः २२, गणितं २३,
 शकुनरुतम् २४, नाटकानि २५ इति । अथवा-अथ चेत्यर्थः । द्वासप्ततिः कलाः,
 चत्वारो वेदाः साङ्गोपाङ्गाः । एतानि भारतादीनि शास्त्राणि, यत्र मिथ्यादृष्टिर्मि-
 थ्यात्वेन परिगृहीतानि भवन्ति, तदा निपरीताभिनिवेशद्विहेतुत्वान्मिथ्याश्रुत

जानना चाहिये । वे मिथ्याश्रुत ये हैं-भारत १, रामायण २, भीमासुर
 के द्वारा रचित शास्त्र, चाणक्य के द्वारा बनाया हुआ अर्थशास्त्र ४,
 शकटभट्टिका ५, घोटकमुख नामका शास्त्र ६, कार्पासिक ७, नागसूक्ष्म
 ८, कनकसप्तति ९, वैशेषिकदर्शन १०, पिटकत्रय ११, त्रैराशिकसम्प्र-
 दाय सबधी ग्रन्थविशेष १२, साख्यशास्त्र १३, चार्वाक दर्शन १४,
 पण्डितत्र साख्यों का ग्रन्थ विशेष १५, माठर-सोलह तत्वों की स्थापना
 करनेवाला न्यायशास्त्र का ग्रन्थविशेष १६, पुराण १७, व्याकरण १८,
 भागवत १९, पातञ्जल २०, पुष्पदैवत २१, लेख २२, गणित २३, शकु
 नरुत २४, एव नाटक २५, । तथा बहत्तर कलाएँ साङ्गोपाङ्ग चारोंवेद ।
 ये भारतादिकश्रुत जय मिथ्यादृष्टि जीवो द्वारा मिथ्यात्वपूर्वक परिगृहीत

तथा अथाय अने धारणाएँ मान्यताएँ नाम भति छे आ रीते भति अने
 बुद्धि वस्थे लेह समजवाने छे ये मिथ्याश्रुत आ प्रमाणे छे-(१) भारत,
 (२) रामायण (३) भीमासुर द्वारा रचित शास्त्र (४) आलोक्ये अनावेले अर्थ-
 शास्त्र, (५) शकट भट्टिका (६) घोटकमुख नामक शास्त्र, (७) कार्पासिक, (८)
 नागसूक्ष्म (९) कनक सप्तक, (१०) वैशेषिक दर्शन, (११) पिटकत्रय, (१२)
 त्रैराशिक सम्प्रदाय सबधी ग्रन्थविशेष, (१३) साख्यशास्त्र, (१४) चार्वाकदर्शन,
 (१५) पण्डितत्र-साख्येनो ग्रन्थविशेष, (१६) माठर-सोण तत्वोनी स्थापना
 करनार न्यायशास्त्रो ग्रन्थविशेष, (१७) पुरुष, (१८) व्याकरण, (१९) भाग
 वत, (२०) पातञ्जल, (२१) पुष्पदैवत, (२२) लेख, (२३) गणित, (२४) शकु
 नरुत अने (२५) नाटक तथा ओतेर कलाओ साङ्गोपाङ्ग चारो वेद ये भार
 तादिक श्रुत न्याये मिथ्यादृष्टि जीवो द्वारा मिथ्यात्वपूर्वक परिगृहीत कराय छे,

सम्प्रति सम्यक्त्वतस्य सादिसपर्यवसिततामनाद्यपर्यवसितता च वर्णयति—

मूलम्—से कि त साइय सपज्जवसिय ? । अणाइय अपज्जवसिय च ? इच्चेइय दुवालसग गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्टयाए साइयं सपज्जवसिय, अव्वुच्छित्तिनयट्टयाए अणाइयं अपज्जवसिय, त समासओ चउव्विहं पणत्त, त जहा—द्व्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ ।

तत्थ द्व्वओ णं सम्मसुयं एग पुरिस पडुच्च साइय सपज्जवसिय, वहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइय अपज्जवसिय । खेत्तओ ण पच भरहाइ पचेरवयाइ पडुच्च साइय सपज्जवसियं, पचमहाविदेहाइ पडुच्च अणाइय अपज्जवसियं । कालओ णं उस्सप्पिणि ओसप्पिणि च पडुच्च साइय सपज्जवसिय, नो उस्सप्पिणि नो ओसप्पिणि च पडुच्च अणाइय अपज्जवसिय । भावओ ण जे जया जिणपन्नत्ता भावा आद्यविज्जति, पणविज्जति, परूविज्जति, दसिज्जति, निदसिज्जति, उवदसिज्जति तथा ते भावे पडुच्च साइयं सपज्जवसिय, खाओवसमिय पुण भाव पडुच्च अणाइय अपज्जवसिय, अहवा भवसिद्धियस्स सुय साइय सपज्जवसिय च अभवसिद्धियस्स सुय अणाइय अपज्जवसियं । सव्वागासपएसग्ग सव्वागासपएसेहि अणंतगुणियं पज्जवग्गक्खर निष्फज्जइ । सव्वजीवाण पि इ णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ चिट्ठइ । जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा ते ण जीवो अजीवत्त पाविज्जा—

त्वादस्माद्गत । वेदेषु चातीन्द्रिया अर्थाः मायो वर्णिताः । परन्त्वतीन्द्रियार्थदर्शी च वीतरागः सर्वज्ञः, स च तद्वक्ता नास्ति तत्र परस्परविरुद्धार्थदर्शनात्, तत्र कथं वेदार्थप्रतीतिरित्येव नोदिताः सन्तः केचिद् विवेकेनः मत्प्रक्यादय इव स्वपक्षदृष्टीः=स्वदर्शनानि त्यजन्ति अर्हतो भगवतः सर्वमय्य शासन स्वीकुर्वन्ति । तदेव सम्यक्त्व हेतुत्वाद् वेदादीन्पि शास्त्राणि कस्यचिन्मिथ्यादृष्टेरपि सम्यक्श्रुत भवति । तदेतन्मिथ्याश्रुत वर्णितम् ॥ सू० ४१ ॥

अतीन्द्रियार्थों का प्रतिपादन किया गया है, परन्तु इनके प्रतिपादन करने वाले वीतराग सर्वज्ञ नहीं हैं, जिन्होंने उन्हें प्रतिपादन किया है वे तो हमारे जैसे रागादिक दोषों से ही दूषित व्यक्ति हैं, अतः इनके द्वारा अतीन्द्रिय अर्थों का प्रतिपादन समीचीन रूप से नहीं हो सकता है कारण ये उस विषय को पूर्णरूपसे समझ ही नहीं सके हैं, इसी लिये इन शास्त्रोंमें परस्पर विरुद्धार्थ प्ररूपणता देखी जाती है, अतः जय जेसी बात है तो फिर वेदादिकों द्वारा वास्तविक अर्थ की प्रतीति भी कैसे हो सकती है? इस तरह पूर्वापर विरोध के विचार से प्रेरित हुए कितनेक-विवेकी मिथ्यादृष्टि जीव अपने २ दर्शनों का परित्याग कर देते हैं और अर्हत भगवान सर्वज्ञ के शासन को अगीकार कर लेते हैं । इस तरह किसी २ मिथ्यादृष्टि जीव में सम्यग्दृष्टि जगाने में कारण होनेसे वेदादिक शास्त्र उसकी अपेक्षा सम्यक्श्रुत भी मान लिये जाते हैं । इस प्रकार यहा तक मिथ्याश्रुत का वर्णन हुआ ॥ सू० ४१ ॥

पञ्च विचार करे छे के आ वेदादिक शास्त्रोमा मोटे भागे अतीन्द्रियार्थोंतु समर्थन कथुं छे पञ्च तेतु समर्थन करनारा वीतराग सर्वज्ञ नधी, जेभले तेमनु समर्थन कथुं छे तेज्यो तो अभास जेवी रागादिक दोषोधी दूषित व्यक्ति छे, तेथी तेमना द्वारा अतीन्द्रिय अर्थोंतु प्रतिपादन समीचीन रीते थछ शके नधी कारण के तेज्यो जे विषयने पूर्ण रीते समझ ज शक्या नधी, ते कारणे जे शास्त्रोमा परस्पर विरुद्धार्थ प्ररूपणता नकरे पडे छे, तेथी जे वात जे प्रभावे छे तो पछी जे वेदादिकों द्वारा वास्तविक अर्थनी प्रतीति केवी रीते थछ शके ? आ प्रभावे पूर्वापर विरोधना विचारथी प्रेरता केद्वारा विवेकी मिथ्यादृष्टि लव पोत पोताना दर्शनोना परित्याग करे छे अने अर्हत भगवान सर्वज्ञना शासनने अगीकार करे छे आ रीते केछ केछ मिथ्यादृष्टि लवमा सम्यग्दृष्टि पैदा कर वाने कारणरूप दोषोधी वेदादिक शास्त्र तेनी अपेक्षाजे सम्यक्श्रुत पञ्च भानी देवामा आवे छे आ रीते अर्ही सुधी मिथ्याश्रुतनु वर्णन थयु ॥ २ -॥

सम्प्रति सम्यक्त्वतस्य सादिसपर्यवसिततामनाद्यपर्यवसितता च वर्णयति—

मूलम्—से कि त साइय सपज्जवसियं ? । अणाइय अपज्जवसिय च ? इच्चेइय दुवालसंगं गणिपिडग वुच्छित्तिनयट्टयाए साइयं सपज्जवसिय, अब्बुच्छित्तिनयट्टयाए अणाइय अपज्जवसियं, तं समासओ चउट्ठिव्हं पण्णत्त, त जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ ।

तत्थ दव्वओ णं सम्मसुयं एग पुरिस पडुच्च साइय सपज्जवसिय, वहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइय अपज्जवसिय । खेत्तओ ण पच्च भरहाइ पचेरवयाइ पडुच्च साइय सपज्जवसिय, पच्चमहाविदेहाइ पडुच्च अणाइय अपज्जवसियं । कालओ णं उस्सप्पिणि ओसप्पिणि च पडुच्च साइय सपज्जवसिय, नो उस्सप्पिणि नो ओसप्पिणि च पडुच्च अणाइय अपज्जवसिय । भावओ ण जे जया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जति, पण्णविज्जति, परूविज्जति, दसिज्जति, निदसिज्जति, उवदसिज्जति तथा ते भावे पडुच्च साइय सपज्जवसिय, खाओवसमिय पुण भाव पडुच्च अणाइय अपज्जवसिय, अहवा भवसिद्धियस्स सुय साइय सपज्जवसिय च अभवसिद्धियस्स सुय अणाइय अपज्जवसिय । सव्वागासपएसग्ग सव्वागासपएसेहि अणंतगुणियं पज्जवग्गक्खर निप्फज्जइ । सव्वजीवाण पि इ णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ चिट्ठइ । जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा ते णं जीवो अजीवत्त पाविज्जा—

त्वादस्माद्दशयत् । वेदेषु चातीन्द्रिया अर्थाः प्रायो वर्णिताः । परन्त्वतीन्द्रियार्थदर्शी च वीतरागः सर्वज्ञः, स च तद्वक्ता नास्ति तत्र परस्परविरुद्धार्थवर्णनात्, तत्र कथं वेदार्थप्रतीतिरित्येव नोदिताः सन्तः केचिद् विवेकेनः मत्त्यक्यादय इव स्वपक्षदृष्टीः=स्वदर्शनानि त्यजन्ति अर्हतो भगवतः सर्वस्य शासनं स्वीकुर्वन्ति । तदेव सम्यक्त्व हेतुत्वाद् वेदादीन्यपि शास्त्राणि कस्यचिन्मिथ्यादृष्टेरपि सम्यक्श्रुत भवति । तदेवन्मिथ्याश्रुत वर्णितम् ॥ सू० ४१ ॥

अतीन्द्रियार्थों का प्रतिपादन क्रिया गया है, परन्तु इनके प्रतिपादन करने वाले वीतराग सर्वज्ञ नहीं हैं, जिन्होंने उन्हें प्रतिपादन क्रिया है वे तो हमारे जैसे रागादिक दोषों से ही दूषित व्यक्ति हैं, अतः इनके द्वारा अतीन्द्रिय अर्थों का प्रतिपादन समीचीन रूप से नहीं हो सकता है कारण ये उस विषय को पूर्णरूपसे समझ ही नहीं सके हैं, इसी लिये इन शास्त्रोंमें परस्पर विरुद्धार्थ प्ररूपणता देखी जाती है, अतः जय तेसी बात है तो फिर वेदादिकों द्वारा वास्तविक अर्थ की प्रतीति भी कैसे हो सकती है? इस तरह पूर्वापर विरोध के विचार से प्रेरित हुए कितनेक-विवेकी मिथ्यादृष्टि जीव अपने २ दर्शनों का परित्याग कर देते हैं और अर्हत भगवान सर्वज्ञ के शासन को अगीकार कर लेते हैं । इस तरह किसी २ मिथ्यादृष्टि जीव में सम्यग्दृष्टि जगाने में कारण होनेसे वेदादिक शास्त्र उसकी अपेक्षा सम्यक्श्रुत भी मान लिये जाते हैं । इस प्रकार यहाँ तक मिथ्याश्रुत का वर्णन हुआ ॥ सू० ४१ ॥

पणु विचार करे छे के आ वेदादिक शास्त्रोभा मोटे भागे अतीन्द्रियार्थोंनु समर्थन कर्तुं छे पणु तेनु समर्थन करनारा वीतराग सर्वज्ञ नथी, जेभणु तेमनु समर्थन कर्तुं छे तेओ तो अभास जेवी रागादिक दोषोधी दूषित व्यक्ति छे, तेथी तेमना द्वारा अतीन्द्रिय अर्थोंनु प्रतिपादन समीचीन रीते थध शकें नडी कारण के तेओ ओ विषयने पूर्ण रीते समझ न शक्या नथी, ते कारणे ओ शास्त्रोभा परस्पर विरुद्धार्थ प्ररूपणता नकरे पडे छे, तेथी जे बात ओ प्रभाणु छे तो पछी ओ वेदादिके द्वारा वास्तविक अर्थनी प्रतीति केवी रीते थध शकें? आ प्रभाणु पूर्वापर विरोधना विचारथी प्रेराता डेटलाठ विवेकी मिथ्यादृष्टि एव योत योताना दर्शनाने। परित्याग करे छे अने अर्हत भगवान सर्वज्ञना शासनने अगीकार करे छे आ रीते कोछ कोछ मिथ्यादृष्टि एवभा सम्यग्दृष्टि पेदा कर वाने कारणेपु डोषोधी वेदादिक शास्त्र तेनी अपेक्षाओ सम्यक्श्रुत पणु भानी देवामा आवे छे आ रीते अडी सुधी मिथ्याश्रुतनु वर्णन थयु ॥ सू० ४१ ॥

उत्तरमाह—‘इच्चे इय दुवालसग०’ इत्यादि । इत्येतत्-पूर्वोक्तमेतत् द्वादशाङ्ग गणिपिटकः=आचाराङ्गादिरूपः यद् गणिनः सर्वस्वं, तदेव व्यवच्छित्तिनयार्थतया=व्यवच्छित्ति बोधको नयः-व्यवच्छित्तिनयः पर्यायार्थिक इत्यर्थः, तस्यार्थः-व्यवच्छित्तिनयार्थः, तद्भावः-व्यवच्छित्ति नयार्थता, तथा, पर्यायार्थिकनया पेक्षयेत्यर्थः, सादिक-सपर्यवसितम्=आदिसहितम्, अन्तसहित च सम्यक्श्रुतम् । तथा-अव्यवच्छित्तिनयार्थतया=अव्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरोनयः-अव्यवच्छित्तिनयः, द्रव्यार्थिक इत्यर्थः, तस्यार्थः-अव्यवच्छित्तिनयार्थः, तद्भावः-अव्यवच्छित्तिनयार्थता, तथा द्रव्यार्थिकनयापेक्षयेत्यर्थः । अनादिकमपर्यवसितम्=अनाद्यनन्त च सम्यक्श्रुतम् ।

उत्तर—यह पूर्वोक्त गणिपिटकस्वरूप द्वादशाङ्गश्रुत पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से आदि अन्त सहित है । व्यवच्छित्ति शब्द का अर्थ है पर्याय । इस पर्याय का बोधक जो नय है उसका नाम व्यवच्छित्तिनय है । तथा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से यह अनादि अनन्तरूप है । यह अव्यवच्छित्ति शब्द का अर्थ द्रव्य है । इस द्रव्य को जो नय, प्रधानतया विषय करता है वह द्रव्यार्थिनय अव्यवच्छित्तिनय है । तात्पर्य कहने का यह है कि जत्र सम्यक्श्रुत का पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा विचार किया जाता है तो यह गणिपिटकरूप सम्यक्श्रुत सादि और सात होता है, कारण-पर्यायार्थिकनय द्रव्य को प्रधानपने विषय नहीं करता-पर्याय को ही प्रधानतया विषय करता है । पर्याय कोई भी नित्य नहीं होती है । सब ही पर्याये सादि और सात होती है । इस तरह जब गणिपिटकरूप यह द्वादशाङ्ग सम्यक्श्रुत पर्यायरूप माना जायगा तो इसमें

उत्तर—आ पूर्वोक्त गणिपिटक रूप द्वादशाङ्गश्रुत पर्यायार्थिकनयनी अपेक्षाओं आदि अन्त सहित छे व्यवच्छित्ति शब्दने अर्थ छे “पर्याय” आ पर्यायने बोधक के नय छे तेनु नाम व्यवच्छित्तिनय छे तथा द्रव्यार्थिक नयनी अपेक्षाओं ते अनादि अन्त रूप छे अही अव्यवच्छित्ति शब्दने अर्थ द्रव्य छे ओ द्रव्यने के नय मुख्यत्वे विषय करे छे ते द्रव्यार्थिनय अव्यवच्छित्ति नय छे कहेवानु तात्पर्य ओ छे के त्यारे सम्यक्श्रुतने पर्यायार्थिकनयनी अपेक्षाओं विचार करवाना आवे छे त्यारे ओ गणिपिटकरूप सम्यक्श्रुत सादि अने अतसहित होय छे, कारण के पर्यायार्थिकनय द्रव्यने मुख्यत्वे विषय करतो नथी पर्यायने न मुख्यत्वे विषय करे छे केछे पण पर्याय नित्य होती नथी सधणी पर्याय सादि (आदि सहित) अने सात (अत सहित) होय छे आ रीते ओ गणिपिटकरूप ओ द्वादशाङ्ग सम्यक्श्रुत पर्यायरूप मानवाना

“सुदृढं वि मेघसमुदये, होइ पभाचटसूराणं ।”

से त साइय सपञ्जवसिय, से त अणाइयं अपञ्जवसिय ॥सू० ४२॥

छाया—अथ किं तत् सादिक सपर्यवसितम् ? । अनादिकमपर्यवसितं च ? इत्येतद् द्वादशान् गणपिटक व्यवन्ति-त्तिनयार्थतया सादिक सपर्यवसितम् । अव्यवच्छित्तिनयार्थतयाऽनादिकमपर्यवसितम्, तत् समासतश्चतुर्विधं प्रकृतम् । तद् यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः ।

तत्र द्रव्यतः खलु सम्यक्श्रुतम्—एक पुरुष प्रतीत्य सादिक सपर्यवसितम्, षड्गुण पुरुषाश्च प्रतीत्य अनादिकमपर्यवसितम् । क्षेत्रतः खलु पञ्च भरतानि पञ्चैव तानि प्रतीत्य सादिक सपर्यवसितम्, पञ्चमहाविदेहान् प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम् । कालत उत्सर्पिणीभवसर्पिणीं च प्रतीत्य सादिक सपर्यवसितम्, नो उत्सर्पिणीं नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम् । भावतः खलु ये यदा जिनप्रज्ञा भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते, निदर्शयन्ते, उपदर्शयन्ते, तदा तान् भावान् प्रतीत्य सादिक सपर्यवसितम्, क्षायोपशमिक पुनर्भाव प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम् । अथवा भवसिद्धिकस्य श्रुत सादिक सपर्यवसितं च । अभवसिद्धिकस्य श्रुतमनादिकमपर्यवसितं च । सर्वाकाशप्रदेशाश्च सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणित पर्यवग्राक्षर निष्पद्यते, सर्वजीवानामपि च अक्षरस्यानन्तभागो नित्यमुद्घाटितः तिष्ठति, यदि पुनः सोऽपि आत्रियेत, तेन जीवोऽजीवत्व प्राप्नुयात् ।

‘सुदृढं वि मेघसमुदये भवति प्रभाचन्द्रसूर्यणाम् ।’

तदेतत् सादिक सपर्यवसितम्, तदेतदनादिकमपर्यवसितम् ॥ सू० ४२ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त०’ इत्यादि । हे भदन्त ! अथ किं तत् सादिकम्—आदिसहित, सपर्यवसितम्—अन्तसहितं सम्यक्श्रुतम्, तथा अनादिकम्—आदिरहितम्, अपर्यवसितम्—अन्तरहितं सम्यक्श्रुतं किमितिप्रश्नः ।

अथ सम्यक्श्रुत का सादिपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित रूप से वर्णन करते हैं—‘से किं त साइय सपञ्जवसिय०?’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! आदि एव अन्त सहित सम्यक्श्रुत का क्या स्वरूप है ? तथा अनादि एव अन्तरहित सम्यक्श्रुत का क्या स्वरूप है ?

इवे सम्यक्श्रुतत्वं सादिपर्यवसितं अने अनादि अपर्यवसितं इये वधुं न करे छे—‘से किं त साइय सपञ्जवसिय०?’ इत्यादि

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त आदि अने अन्त सहित सम्यक्श्रुतत्वं तु स्वइयं छे ? तथा अनादि अने अन्तरहित सम्यक्श्रुतत्वं तु स्वइयं छे ?

ઉત્તરમાહ—‘ઇચ્ઞે ઇય દુવાલસગ૦’ ઇત્યાદિ । ઇત્યેતત્-પૂર્વોક્તમેતત્ દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટકઃ=આચારાઙ્ગાદિરૂપઃ યદ્ ગણિનઃ સર્વસ્વં, તદેવ વ્યવચ્છિત્તિનયાર્થતયા=વ્યવચ્છિત્તિ યોધકો નયઃ-વ્યવચ્છિત્તિનયઃ પર્યાયાર્થિક ઇત્યર્થઃ, તસ્યાર્થઃ-વ્યવચ્છિત્તિનયાર્થઃ, તદ્ભાવઃ-વ્યવચ્છિત્તિ નયાર્થતા, તયા, પર્યાયાર્થિકનયા પેક્ષયેત્યર્થઃ, સાદિક-સપર્યવસિતમ્=આદિસહિતમ્, અન્તસહિત ચ સમ્યક્શ્રુતમ્ । તથા-અવ્યવચ્છિત્તિનયાર્થતયા=અવ્યવચ્છિત્તિપ્રતિપાદનપરોનયઃ-અવ્યવચ્છિત્તિનયઃ, દ્રવ્યાર્થિક ઇત્યર્થઃ, તસ્યાર્થઃ-અવ્યવચ્છિત્તિનયાર્થઃ, તદ્ભાવઃ-અવ્યવચ્છિત્તિનયાર્થતા, તયા દ્રવ્યાર્થિકનયાપેક્ષયેત્યર્થઃ । અનાદિકમપર્યવસિતમ્=અનાદ્યનન્ત ચ સમ્યક્શ્રુતમ્ ।

ઉત્તર—યદ્ પૂર્વોક્ત ગણિપિટકસ્વરૂપ દ્વાદશાઙ્ગશ્રુત પર્યાયાર્થિકનય કી અપેક્ષા સે આદિ અન્ત સહિત હૈ । વ્યવચ્છિત્તિ શબ્દ કા અર્થ હૈ પર્યાય । ઇસ પર્યાય કા યોધક જો નય હૈ ઉસકા નામ વ્યવચ્છિત્તિનય હૈ । તથા દ્રવ્યાર્થિકનય કી અપેક્ષા સે યદ્ અનાદિ અનતરૂપ હૈ । યહાં અવ્યવચ્છિત્તિ શબ્દ કા અર્થ દ્રવ્ય હૈ । ઇસ દ્રવ્ય કો જો નય, પ્રધાનતયા વિષય કરતા હૈ વહ દ્રવ્યાર્થિકનય અવ્યવચ્છિત્તિનય હૈ । તાત્પર્ય કહને કા યદ્ હૈ કિ જન સમ્યક્શ્રુત કા પર્યાયાર્થિકનય કી અપેક્ષા વિચાર કિયા જાતા હૈ તો યદ્ ગણિપિટકરૂપ સમ્યક્શ્રુત સાદિ ઓર સાત હોતા હૈ, કારણ-પર્યાયાર્થિકનય દ્રવ્ય કો પ્રધાનપને વિષય નહી કરતા-પર્યાય કો હી પ્રધાનતયા વિષય કરતા હૈ । પર્યાય કોઈ મી નિત્ય નહી હોતી હૈ । સવ હી પર્યાયે સાદિ ઓર સાત હોતી હૈ । ઇસ તરહ જય ગણિપિટકરૂપ યદ્ દ્વાદશાઙ્ગ સમ્યક્શ્રુત પર્યાયરૂપ માના જાયગા તો ઇસમેં

ઉત્તર—આ પૂર્વોક્ત ગણિપિટક રૂપ દ્વાદશાઙ્ગશ્રુત પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ આદિ અન્ત સહિત છે વ્યવચ્છિત્તિ શબ્દનો અર્થ છે “પર્યાય” આ પર્યાયનો યોધક જે નય છે તેનું નામ વ્યવચ્છિત્તિનય છે તથા દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ તે અનાદિ અનતરૂપ છે અહીં અવ્યવચ્છિત્તિ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે એ દ્રવ્યને જે નય સુખ્યત્વે વિષય કરે છે તે દ્રવ્યાર્થિકનય અવ્યવચ્છિત્તિ નય છે ડહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જ્યારે સમ્યક્શ્રુતનો પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામા આવે છે ત્યારે એ ગણિપિટકરૂપ સમ્યક્શ્રુત સાદિ અને અતસહિત હોય છે, કારણ કે પર્યાયાર્થિકનય દ્રવ્યને સુખ્યત્વે વિષય કરતો નથી પર્યાયને જ સુખ્યત્વે વિષય કરે છે કેઈ પણ પર્યાય નિત્ય હોતી નથી સઘળી પર્યાયો સાદિ (આદિ સહિત) અને સાત (અત સહિત) હોય છે આ રીતે જે ગણિપિટકરૂપ એ દ્વાદશાઙ્ગ સમ્યક્શ્રુત પર્યાયરૂપ માનવામા

तत्-सम्यक्श्रुतं समासतः-संक्षेपत, चतुर्विधं प्रथमम्, तद् यथा-द्रव्यतः
क्षेत्रतः कालतो मानतश्च ।

तत्र द्रव्यतः खलु सम्यक्श्रुतम् एकं पुरुष प्रतीत्य, सादि सपर्यवसितम् । तथा
हि-सम्यक्त्व प्राप्तौ, तत्प्रथमपाठतो वा सादि, पुनर्मिन्यात्प्रमाप्तौ, सम्यक्त्वे वा
सति प्रमादवशात् ग्लानत्वाद्वा परलोकगमनसम्भवाद् वा त्रिभृतिमुपागते सति, तथा
-केवलज्ञानोत्पत्त्या सर्वथा त्रिभृते च मति सपर्यवसित-सपर्यवसान मान्त भवति ।

सादि और सातता आती है । तथा जब इसका द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा
विचार किया जाता है तो द्रव्य अनादि अनन्त होता है । द्रव्यार्थिकनय
प्रधानतया द्रव्य को ही विषय करता है । इस अपेक्षा सम्यक्श्रुत अनादि
और अपर्यवसित-अन्तरहित माना जाता है । द्रव्य का मौलिक स्वरूप
ही अनन्त अनन्तरूप है ।

यह सम्यक्श्रुत संक्षेप से चार प्रकार का वर्णित किया गया है ?
उसके चार प्रकार ये हैं-एक प्रकार द्रव्य की अपेक्षा, दूसरा प्रकार क्षेत्र की
अपेक्षा, तीसरा प्रकार काल की अपेक्षा, एवं चौथा प्रकार भाव की अपेक्षा ।

द्रव्य की अपेक्षा जो प्रथम प्रकार है उसका तात्पर्य यह है, कि जब एक
पुरुष की अपेक्षा सम्यक्श्रुत का विचार किया जाता है, तो उसमें उसकी
अपेक्षा सादि सातता ही आती है कारण जब यह सम्यक्त्व प्राप्त पुरुष
को होगा, तब ही उसके द्वारा गृहीत उक्त श्रुत में सम्यक्पना आजावेगा,

आवे तो तेभा सादि अने सातता आवे छे तथा ने तेना द्रव्यार्थिकनयनी
अपेक्षाये विचार उरवाभा आवे तो द्रव्य अनादि अनन्त डोय छे द्रव्यार्थिक
नय सुम्भवे द्रव्यने न विषय करे छे आ अपेक्षाये सम्यक्श्रुत अनादि अने
अपर्यवसित-अन्तरहित मनाय छे द्रव्यनु मौलिक स्वरूप न अनन्त
अनन्तरूप छे

आ सम्यक्श्रुत संक्षिप्तभा चार प्रकारनु वषुवेछु छे ते चार प्रकार आ
प्रमाणु छे-एक प्रकार द्रव्यनी अपेक्षाये, धीन्ने प्रकार क्षेत्रनी अपेक्षाये, त्रिभृ
प्रकार ज्ञाननी अपेक्षाये, अने चौथे प्रकार भावनी अपेक्षाये

द्रव्यनी अपेक्षाये ने पहिले प्रकार छे तेनु तात्पर्य ये छे के न्यारे
ये पुरुषनी अपेक्षाये सम्यक्श्रुतने विचार उराय छे त्यारे तेभा तेनी अपे
क्षाये सादि सातता न आवे छे, कारण के न्यारे ते सम्यक्त्व पुरुषने प्राप्त थये
त्यारे न तेना द्वारा गृहित ते श्रुतभा सम्यक्पणु आवेशे, अथवा ते सम्यक्

बहून् पुरुषान्-कालत्रयवर्ति नः पुनः प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम् प्रवाहरूपेण प्रवृत्त-
त्वात् कालवदिति भावः ।

अथवा वह सम्यक् दृष्टि जीव जय उसका सर्व प्रथम पाठ करेगा तब वह सम्यक्श्रुत कहलावेगा। इस तरह सम्यक्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा उसमें सादिता आती है। जब जीव को समकित होकर छूट जाता है और वह मिथ्यात्वदशा सपन्न बन जाता है तब अथवा सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर भी यदि प्रमाद से या ग्लान अवस्थामे पतित हो जाने के कारण, या मृत्यु की सभावनामे आजाने के कारण से वह जीव जब इसे भूल जाता है या केवलज्ञान की उत्पत्ति होने से जब यह नष्ट हो जाता है, तब यह सम्यक्श्रुत अत सहित भी माना गया है। इस अवस्थामें उस जीव की अपेक्षा सम्यक्श्रुत का अस्तित्व नहीं रहता है। इस प्रकार एक सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा उस श्रुत की उसे प्राप्ति होने के कारण, और उसके द्वारा मिथ्यात्व आदि अवस्थामें परित्यक्त होने के कारण सम्यक्श्रुतमे सादि सातता होती है। अब सूत्रकार सम्यक्श्रुतमे नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनतता प्रकट करते हुए कहते हैं-जय सम्यक् श्रुतका विचार नाना पुरुषों की अपेक्षा किया जाता है, तो इसमे अनादि अनतता ही आती है। वह

दृष्टि एव न्यारे तेना सर्व प्रथम पाठ कश्चे त्यारे ते सम्यक्श्रुत उडेवाशे आरीते सम्यक्दृष्टि ओक एवनी अपेक्षाये तेमा सादिता आवे छे न्यारे एवने समकित थरने छूटी नय छे, अने ते मिथ्यात्व दशावाणे एनी नय छे त्यारे, अथवा सम्यक्त्वनी प्राप्ति थवा छता पशु ने प्रमादशी के ग्लान अवस्थामा पतित थर नवाने जरखे, के मृत्युनी सभावनामा आवी नवाने जरखे ते एव न्यारे तेने भूती नय छे, के केवलज्ञान पेहा थवाथी न्यरे ते नष्ट थर नय छे, त्यारे ते सम्यक्श्रुत अत सहित पशु मानवामा आव्यु छे ते अवस्थामा ते एवनी अपेक्षाये सम्यक्श्रुतनु अस्तित्व रहैतु नथी आ प्रगरे ओक सम्यक्दृष्टी एवनी अपेक्षाये ते श्रुतनी प्राप्ति थवाने जरखे अने तेना द्वारा मिथ्यात्व आदि अवस्थामा परित्यक्त थवाने जरखे सम्यक्-श्रुतमा सादि सातता डेय छे डवे सूत्रकार सम्यक्श्रुतमा विविध एवोनी अपेक्षाये अनादि अनतता प्रकट करता उडे छे-न्यारे सम्यक्श्रुतने विचार विविध पुरुषोनी अपेक्षाये करवामा आवे छे त्यारे तेमा अनादि अनतता न

તત્-સમ્યક્શ્રુતં સમાસતઃ-સક્ષેપત, ચતુર્થિર્થ પ્રક્ષત્તમ્, તદ્ યથા-દ્રવ્યતઃ
ક્ષેત્રતઃ કાલતો ભાવતથા ।

તત્ત દ્રવ્યતઃ સ્વલ્લ સમ્યક્શ્રુતમ્ એકં પુરુષ પ્રતીત્ય, સાદિ સપર્યવસિતમ્ । તથા
દિ-સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્તૌ, તત્પ્રથમપાઠતો યા સાદિ, પુનર્મિ-યાત્વપ્રાપ્તૌ, સમ્યક્ત્વે યા
સતિ પ્રમાદવશાત્ ગ્લાનત્વાદ્વા પરલોકગમનસમવાદ્ યા ત્રિસ્મૃતિગુપાગતે મતિ, તથા
-કેરલજ્ઞાનોત્પત્ત્યા સર્વથા ત્રિનષ્ટે ચ મતિ સપર્યવસિત=સપર્યવમાન માન્ત ભવતિ ।

સાદિ ઓર સાતતા આતી છે । તથા જન ઇસકા દ્રવ્યાર્થિકનય કી અપેક્ષા
વિચાર કિયા જાતા હૈ તો દ્રવ્ય અનાદિ અનત હોતા હૈ । દ્રવ્યાર્થિકનય
પ્રધાનતયા દ્રવ્ય કો હી વિષય કરતા હૈ । ઇસ અપેક્ષા સમ્યક્શ્રુત અનાદિ
ઓર અપર્યવસિત-અન્તરહિત માના જાતા હૈ । દ્રવ્ય કા મૌલિક સ્વરુપ
હી અનત અનતરુપ હૈ ।

યદ્ સમ્યક્શ્રુત સક્ષેપ સે ચાર પ્રકાર કા ચર્ણિત ક્રિયા ગયા હૈ ?
ઉસકે ચાર પ્રકાર યે હૈ-એક પ્રકાર દ્રવ્ય કી અપેક્ષા, દૂસરા પ્રકાર ક્ષેત્ર કી
અપેક્ષા, તીસરા પ્રકાર કાલ કી અપેક્ષા, ંવં ચૌથા પ્રકાર ભાવ કી અપેક્ષા ।

દ્રવ્ય કી અપેક્ષા જો પ્રથમ પ્રકાર હૈ ઉસકા તાત્પર્ય યદ્ હૈ, કિ જબ એક
પુરુષ કી અપેક્ષા સમ્યક્શ્રુત કા વિચાર કિયા જાતા હૈ, તો ઉસમે ઉસકી
અપેક્ષા સાદિ સાતતા હી આતી હૈ કારણ જન યદ્ સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત પુરુષ
કો હોગા, તથા હી ઉસકે દ્વારા ગૃહીત ઉસ શ્રુત મે સમ્યક્પના આજાવેગા,

આવે તો તેમા સાદિ અને સાતતા આવે છે તથા જો તેના દ્રવ્યાર્થિકનયની
અપેક્ષાએ વિચાર કરવામા આવે તો દ્રવ્ય અનાદિ અનત હોય છે દ્રવ્યાર્થિક
નય સુખ્યત્વે દ્રવ્યને જ વિષય કરે છે આ અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુત અનાદિ અને
અપર્યવસિત-અન્તરહિત મનાય છે દ્રવ્યનુ મૌલિક સ્વરૂપ જ અનત
અનતરૂપ છે

આ સમ્યક્શ્રુત સક્ષેપમા ચાર પ્રકારનુ વર્ણવેલુ છે તે ચાર પ્રકાર આ
પ્રમાણે છે-એક પ્રકાર દ્રવ્યની અપેક્ષાએ, બીજો પ્રકાર ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ, ત્રીજો
પ્રકાર કાળની અપેક્ષાએ, અને ચોથો પ્રકાર ભાવની અપેક્ષાએ

દ્રવ્યની અપેક્ષાએ જે પહેલો પ્રકાર છે તેનુ તાત્પર્ય એ છે કે જ્યારે
એક પુરુષની અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુતનો વિચાર કરાય છે ત્યારે તેમા તેની અપે
ક્ષાએ સાદિ સાતતા જ આવે છે, કારણ કે જ્યારે તે સમ્યક્ત્વ પુરુષને પ્રાપ્ત થશે
ત્યારે જ તેના દ્વારા ગૃહીત તે શ્રુતમા સમ્યક્ષપણુ આવશે, અથવા તે સમ્યક્

बहून् पुरुषान्-कालत्रयवर्ति नः पुनः प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितम् प्रवाहरूपेण प्रवृत्त-
त्वात् कालवदिति भावः ।

अथवा वह सम्यक् दृष्टि जीव जब उसका सर्व प्रथम पाठ करेगा तब वह सम्यक्श्रुत कहलावेगा। इस तरह सम्यक्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा उसमें सादिता आती है। जब जीव को समकित होकर छूट जाता है और वह मिथ्यात्वदशा सपन्न बन जाता है तब अथवा सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर भी यदि प्रमाद से या ग्लान अवस्थामें पतित हो जाने के कारण, या मृत्यु की सभावनामें आजाने के कारण से वह जीव जब इसे भूल जाता है या केवलज्ञान की उत्पत्ति होने से जब वह नष्ट हो जाता है, तब यह सम्यक्श्रुत अतः सहित भी माना गया है। इस अवस्थामें उस जीव की अपेक्षा सम्यक्श्रुत का अस्तित्व नहीं रहता है। इस प्रकार एक सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा उस श्रुत की उसे प्राप्ति होने के कारण, और उसके द्वारा मिथ्यात्व आदि अवस्थामें परित्यक्त होने के कारण सम्यक्श्रुतमें सादि सान्तता होती है। अब सूत्रकार सम्यक्श्रुतमें नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनतता प्रकट करते हुए कहते हैं-जब सम्यक् श्रुतका विचार नाना पुरुषों की अपेक्षा किया जाता है, तो इसमें अनादि अनतता ही आती है। वह

दृष्टि एव न्यारे तेना सर्वं प्रथम पाठ कश्चे त्वादे ते सम्यक्श्रुत कडेवाशे आ रीते सम्यग्दृष्टि ओक एवनी अपेक्षाये तेमा सादिता आवे छे न्यारे एवने समकित थधने छूटी नय छे, अने ते मिथ्यात्व दशावाणे अनी नय छे त्वादे, अथवा सम्यक्त्वनी प्राप्ति थवा छता पशु जे प्रमादधी के ग्लान अवस्थामा पतित थधे नवाने ङरखे, के मृत्युनी सभावनामा आवी नवाने ङरखे ते एव न्यारे तेने लूची नय छे, के केवलज्ञान पेदा थवाथी न्यारे ते नष्ट थधे नय छे, त्वादे ते सम्यक्श्रुत अत सहित पशु मानवामा आवु छे ते अवस्थामा ते एवनी अपेक्षाये सम्यक्श्रुतनु अस्तित्व रहेतु नथी आ प्रकारे ओक सम्यग्दृष्टी एवनी अपेक्षाये ते श्रुतनी प्राप्ति थवाने ङरखे अने तेना द्वारा मिथ्यात्व आदि अवस्थामा परित्यक्त थवाने ङरखे सम्यक्श्रुतमा सादि सातता होय छे डवे सूत्रकार सम्यक्श्रुतमा विविध एवानी अपेक्षाये अनादि अनतता प्रकट ङरता ङडे छे-न्यारे सम्यक्श्रुतने विचार विविध पुरुषोनी अपेक्षाये ङरवामा आवे छे त्वादे तेमा अनादि अनतता न

તથા—ક્ષેત્રતઃ સ્વલુ પઞ્ચ ભરતાનિ, પઞ્ચ ણેરવતાનિ પ્રતીત્ય, સાદિ સર્પયવ-
સિતમ્ । તયાદિ-તેષુ ક્ષેત્રેષુ અવસર્પિણ્યા સુપમદુઃપમાપર્યયાસાને, ઉત્સર્પિણ્યા તુ
દુઃપમસુપમાપારમ્ભે તીર્થકરધર્મસયાનાં તત્પ્રથમવતપોત્યત્તેઃ સાદિ ભવતિ, ઇકાન્તદુઃપ-
માદૌકાલે ચ તદભાવાત્ સર્પયવસિત-અન્તસહિતં ભવતિ । તથા-મહાવિદેહાન્
પ્રતીત્ય અનાદ્યપર્યવસિત, તન્ન પ્રવાહરુપેણ તીર્થકરાદીના વ્યવ-ત્રેદાભાવાદિતિ ભાવઃ
'મહાવિદેહાઈ' ઇત્યન્ન સૌત્રત્વાન્નપુંસત્ત્વમ્ ।

હસ પ્રકાર સે-ભૂત, ભવિષ્યત્ એવ વર્તમાનકાલમે કોઈ ન કોઈ પુરુષ
હસ સમ્યક્શ્રુત કા ધારક ઘના હી રહતા હૈ, અતઃ પ્રવાહરુપ સે વર્તમાન
રહને કે કારણ કાલ કી તરહ યહ અનાદિ અનત રુપ માના જાતા હૈ ।
હસ તરહ દ્રવ્ય કી અપેક્ષા સમ્યક્શ્રુતમે કથચિત્ સાદિ સાતતા ઓર
કથચિત્ અનાદિ અનતતા સૂત્રકારને પ્રકટ કી હૈ ? ।

અવ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા વે હસે સ્પષ્ટ કરતે હૈ-પાચ ભરતક્ષેત્ર, એવ
પાચ ણેરવત ક્ષેત્રમે અવસર્પિણીકાલ કે સુપમદુષ્પમા આરા કે અન્તમે,
તથા ઉત્સર્પિણી કે દુષ્પમ સુપમા આરા કે પ્રારભમે તીર્થકર, ધર્મ એવ
સઘ કી સર્વપ્રથમ ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, હસ અપેક્ષા યહ સમ્યક્શ્રુત સાદિ
હૈ ઓર ઇકાન્તતઃ દુઃસ્વસ્વરુપ દુષ્પમાદિ કાલમે તીર્થકર આદિકા સર્વથા
અભાવ હો જાતા હૈ હસ કારણ યહ સમ્યક્શ્રુત-પર્યવસિત-અન્ત સહિત
ભી હૈ । તથા પાચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રમે સદાચતુર્થકાલ વર્તમાન રહતા હૈ ।
હસ અપેક્ષા વહા તીર્થકર આદિકા સદા સદ્ભાવ માના ગયા હૈ, હસલિયે

આવે છે તે આ પ્રકારે-ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળમા કોઈને કોઈ પુરુષ
આ સમ્યક્શ્રુતને ધારક બની રહે છે જ, તેથી પ્રવાહરુપે વર્તમાન રહેવાને
કારણે કાળના જેમ તે અનાદિ અનતરૂપ બનાય છે આ રીતે દ્રવ્યની અપે-
ક્ષાએ સમ્યક્શ્રુતમા કઈક સાદિ સાતતા અને કઈક અનાદિ અનતતા સૂત્રકારે
પ્રગટ કરી છે (૧)

હવે ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ તેને સ્પષ્ટ કરે છે-પાચ ભરતક્ષેત્ર અને પાચ
ણેરવત ક્ષેત્રમા અવસર્પિણીકાળના સુપમદુષ્પમા આરાના અતે, તથા ઉત્સર્પિ-
ણીના દુષ્પમ સુપમા આરાના પ્રારભમા તીર્થકર, ધર્મ અને સઘની સર્વ પ્રથમ
ઉત્પત્તિ થાય છે, તે અપેક્ષાએ આ સમ્યક્શ્રુત સાદિ છે અને ઇકાન્તત ડુષ્પ
સ્વરૂપ દુષ્પમાદિ કાળમા તીર્થકર આદિને સર્વથા અભાવ થઈ જાય છે તે કારણે
આ સમ્યક્શ્રુત-પર્યવસિત-અન્ત સહિત પણ છે, તથા પાચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રમા
સદા ચતુર્થકાળ વર્તમાન રહે છે એ અપેક્ષાએ ત્યા તીર્થકર આદિને સદા

कालतः खलु उत्सर्पिणीमत्रसर्पिणीं च प्रतीत्य सादिकम्-आदिसहितम्-सपर्यवसितम्-अन्तसहितं भवति । तथाहि-उत्सर्पिण्या द्वयोः समयोः-दुःषमसुपमा-सुपमदुःषमा रूपयोर्भवति, न परतः । अवसर्पिण्या तु तिसृष्वेव समासु सुपमदुःषमा-दुषमसुपमा दुपमारूपासु भवति तस्मात् सादि सपर्यवसितम् । नो उत्सर्पिणीं नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम् । महाविदेहेषु हि उत्सर्पिणीरूपस्थाऽवसर्पिणीरूपश्चकालो नास्ति, तत्र च सदैवावस्थितं सम्यक्श्रुतम्, तस्मादनाद्यपर्यवसितम् ।

प्रचाररूप से वहाँ तीर्थकर आदि का अस्तित्व होने के कारण सम्यक्श्रुतमें उस अपेक्षा अनादि अनतता घटित होती है २ ।

काल की अपेक्षा जब सम्यक्श्रुतमें सादि सांतता एव अनादि-अनतता का विचार किया जाता है, तो फलितार्थ यह निकलता है कि उत्सर्पिणी कालके दुष्पम सुपमा तथा सुपमदुष्पमा, इन दो आरों में होता है, बाकी में नहीं । इसी तरह अवसर्पिणी के सुपमदुष्पमा, दुष्पमसुपमा, तथा दुष्पमा, इन तीन आरों में होता है, अवशिष्ट आरों में नहीं । इस तरह इन दोनों उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल की अपेक्षा इसमें सादि सांतता आती है । जहाँ पर उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी-रूप काल नहीं हैं ऐसे महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा इसमें सदा अवस्थित होने के कारण इसकी अनादि अनतता मानी जाती हैं । यही बात सूत्रकार " नो उत्सर्पिणिं नो ओ सर्पिणिं च पटुञ्चा अणाह्य अपज्जवसिय "

सद्रूपाव मानवामा आण्ये छे, ते कारणे प्रवाहइपे त्या तीर्थं कर आदितु अस्तित्व होवाने कारणे सम्यक्श्रुतमा ते अपेक्षाये अनादि अनतता घटावी शक्य छे (२)

काणनी अपेक्षाये न्यादे सम्यक्श्रुतमा सादि सातता अने अनादि अनतताने विचार करवामा आवे छे त्यादे इक्षितार्थं ये निकले छे छे उत्सर्पिणी काणना दुष्पमसुपमा तथा सुपमदुष्पमा, ये ये आशामा थाय छे, भाकीनामा नही ये न रीते अवसर्पिणीना सुपमदुष्पमा, दुष्पमसुपमा, तथा दुष्पमा ये त्रहे आशामा थाय छे, भाकीना आशामा नही आ रीते ये अने उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणीकाणनी अपेक्षाये तेमा सादि सातता आवे छे न्या उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणी इपकाण काण नथी जेवा महाविदेह क्षेत्रनी अपेक्षाये तेमा सदा अवस्थित होवाने कारणे तेनी अनादि अनतता मनाय छे जेवा वात सूत्रकार " नो उत्सर्पिणिं नो ओ सर्पिणिं च पटुञ्चा अणाह्य

भावतः खलु ये केचित्-पूर्वाहाटी जिनमशता भाषा=जीवादयः पदार्थाः, आख्यायन्ते-सामान्यरूपतया, विशेषरूपतया वा देशानुरूपेण कथ्यन्ते इत्यर्थः । प्रज्ञाप्यन्ते-भेदकथनेनारथायन्ते, प्ररूप्यन्ते-भेदानां स्वरूपकथनेन प्रख्यायन्ते । तथा-दृश्यन्ते-उपमानमात्रप्रदर्शनेनप्रकटीक्रियन्ते, यथा 'गौरि गवयः' इत्यादि । निदृश्यन्ते-हेतुदृष्टान्तोपदर्शनेन स्पष्टतरी क्रियन्ते । उपदृश्यन्ते-उपनय निगमनाभ्या निःशङ्कं शिष्यबुद्धौ स्थाप्यन्ते । तान भावान तदा-तस्मिन्काले, प्रतीत्य सादि सपर्यवसितम्, प्रज्ञापकोपयोगस्वरप्रयत्नासनभेदात् प्रतिसमयमन्यथा चान्यथा च भवनादिति भाव । क्षायोपशमिक भाव पुनः प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसि

" नो उत्सर्पिणीं नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्य अनादिकम् अपर्यवसितम् "

इन पदों द्वारा प्रकट की है ।

भाव की अपेक्षा सादि सातता तथा अनादि अनतता यहाँ इस प्रकार आती है कि जो परपरारूप से जिन देवों द्वारा प्रज्ञप्त जीवादिक पदार्थ विवक्षित किसी तीर्थकर आदि द्वारा पूर्वाह्ण आदि जिस समय में सामान्य विशेषरूप से कथित किये जाते हैं, भेदकथनपूर्वक समझाये जाते हैं, भेदों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बतलाये जाते हैं, तथा उपमान उपमेय भावपुरस्सर स्पष्टरूप से झलका दिये जाते हैं, और हेतु, दृष्टान्त द्वारा समर्थित किये जाते हैं, तथा उपनय एव निगमन द्वारा शिष्य की बुद्धि में दृढतररूप से स्थापित कर दिये जाते हैं उस समय उन पदार्थों की प्ररूपणा करनेमें प्रज्ञापक के उपयोग, स्वर, प्रयत्न, एव आसन आदि भावोंमें भेद आजाने के कारण तथा प्रतिसमयमें उन प-

अपञ्जवसिय (नो उत्सर्पिणीं नो अवसर्पिणीं च प्रतीत्य अनादिकम् अपर्यवसितम्)
आ पदों द्वारा प्रकट करी है

भावकी अपेक्षासे सादि सातता तथा अनादि अनतता अही आ रीते आवे है के के परपरारूपे जिनदेवों द्वारा प्रज्ञप्त अनादिक पदार्थ विवक्षित कोई तीर्थकर आदि द्वारा पूर्वाह्ण आदि के समयमा सामान्य विशेषरूपे कहेवाय है, भेदकथन सहित समझवाय है, हेतु स्पष्ट करीने गतावाय है, तथा उपमान उपमेय भावपूर्वक स्पष्टरूपे प्रकाशित कराय है, अने हेतु, दृष्टान्त द्वारा समर्थित कराय है, तथा उपनय अने निगमन द्वारा शिष्यकी बुद्धिमा दृढतर रीत कसाववाभा आवे है तयारे ते पदार्थोंकी प्ररूपणा करवाभा प्रज्ञापकना उपयोग, स्वर, प्रयत्न अने आसन आदि भावोंमा भेद आवी जाने कारणें तथा प्रतिसमय से पदार्थोंमा पक्ष परिवर्तन यतु रहेतु होवायी

તમ્ , પ્રવાહરૂપેણ ક્ષાયોપશમિકભાવસ્ય અનાઘપર્યવસિતત્વાત્ । યદ્વા-અત્ર ચતુર્ભંગિકા-સાદિસપર્યવસિત ૧, સાઘપર્યવસિત ૨, અનાદિસપર્યવસિતમ્ ૩, અનાઘપર્યવસિતમ્ ૪ । તત્ર પ્રથમભક્ષ્યપ્રદર્શનાયાદ્—‘ અહવા૦ ’ ઇત્યાદિ । અથવા-ભવસિદ્ધિકસ્ય=ભવ-સિદ્ધિકો ભવ્યસ્તસ્ય શ્રુત=સમ્યક્શ્રુત સાદિક સપર્યવસિત ચ, સમ્યક્ત્વલાભે તદુત્પત્તેઃ, પુનર્મિત્યાત્વપ્રાપ્તૌ કેવલોત્પત્તૌ વા તદ્વિનાશાત્ । દ્વિતીયસ્તુ ભક્ષ્યઃશૂન્યઃ,

દાર્થોમે ભી પરિવર્તન હોતા રહને કે કારણ સમ્યક્શ્રુતમે સાદિ સાંતતા હોતી હૈ, ઓર પ્રવાહરૂપ સે અનાદિ ઓર અપર્યવસિતરૂપ ક્ષાયોપશમિક ભાવ કો લેકર સમ્યક્શ્રુતમે અનાદિ અનતતા હોતી હૈ । અથવા યદ્વા ચતુર્ભંગી ભી વનતી હૈ, જો ડસ પ્રકાર સે હૈ-૧ સાદિસાત, ૨ સાદિ અનત, ૩ આનાદિ સાંત તથા ૪ અનાદિ અનત । પ્રથમ ભગ કિસ પ્રકાર ઘટિત હોતા હૈ યદ્ સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘અહવા૦’ ઇત્યાદિ । જો જીવ ભવસિદ્ધિક (એક ભવસે અથવા અનેક ભવો સે સિદ્ધિકો પ્રાપ્ત કરનેવાલા) હૈ ડસમે સમ્યક્શ્રુત કી ઉત્પત્તિ સમ્યક્ત્વ કે લાભ હોને પર હોતી હૈ, ડસ અપેક્ષા સમ્યક્શ્રુત કી પ્રારભતા વહાં આતી હૈ, તથા જવ વદ્ મિથ્યાત્વ દશામે આ જાના હૈ, અથવા કેવલજ્ઞાન કી ઉત્પત્તિ સે વિશિષ્ટ વન જાતા હૈ તો ડસ અવસ્થામે સમ્યક્શ્રુત વહાં નહીં રહતા-ડસકા ડસમે અભાવ હો જાતા હૈ, ડસલિયે ડસ રૂપસે સમ્યક્શ્રુત કા વહા અત માન લિયા જાતા હૈ । યદ્ પ્રથમ ભગ હૈ ૧ । દ્વિતીયભગ શૂન્ય હૈ, કારણ ચાહે મિથ્યા

સમ્યક્શ્રુતમા સાદિ સાતતા હોય છે, અને પ્રવાહરૂપે અનાદિ અને અપર્યવસિત રૂપ ક્ષાયોપશમિક ભાવને લીધે સમ્યક્શ્રુતમા અનાદિ અનતતા હોય છે અથવા અહીં ચતુર્ભંગી પણ અને છે જે આ પ્રમાણે છે—(૧) સાદિ સાત (૨) સાદિ અનત (૩) અનાદિ સાત તથા (૪) અનાદિ અનત પ્રથમ ભગ કેવી રીતે ઘટિત થાય છે તે સૂત્રકાર કહે છે—“અહવા૦” ઇત્યાદિ

જે શુભ ભવસિદ્ધિક (એક ભવે અથવા અનેક ભવે સિદ્ધિને પ્રાપ્ત કરનાર) છે તેનામા સમ્યક્શ્રુતની ઉત્પત્તિ સમ્યક્ત્વનો લાભ થના થાય છે, એ અપેક્ષાએ સમ્યક્શ્રુતની પ્રારભતા ત્યા આવે છે, તથા ન્યારે તે મિથ્યાત્વ દશામા આવી જાય છે, અથવા કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિથી વિશિષ્ટ બની જાય છે ત્યારે એ અવસ્થામા ત્યા સમ્યક્શ્રુત રહેતું નથી, તેનો તેનામા અભાવ થઈ જાય છે, તે કા-ણે તે રૂપે સમ્યક્શ્રુતનો ત્યા અત માની લેવાય છે આ પહેલો ભગ છે (૧)

નહિ સમ્યક્શ્રુત મિથ્યાશ્રુત યા સાદિ ભૂત્યા અપર્યવસિતં સમપતિ, મિથ્યાત્વપ્રાપ્તૌ કેવલોત્પત્તૌ યા નિયમેન સમ્યક્શ્રુતસ્ય વિનાશાત્ । મિથ્યાશ્રુતસ્પ્યાપિ ચ સાદેરવચ્યં કાલાન્તરે સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્તૌ તસ્ય પર્યવસિતત્વાત્ । તૃતીયમદ્રસ્તુ મિથ્યાશ્રુતાપેક્ષયા ધૌધ્યઃ-ભવ્યસ્યાનાદિમિથ્યાદષ્ટેર્મિથ્યાશ્રુતમનાદિ ભવતિ, સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્તૌ ચ તદપયાતીતિ સપર્યવસિત મપતિ । અથ ચતુર્થમદ્ગમુદર્શયતિ-‘અમવસિદ્ધિયસ્મ૦’ इत्यादि । અમવસિદ્ધિરસ્ય=અમવસિદ્ધિષ્ઠોઽમવ્યસ્તસ્ય શ્રુત-મિથ્યાશ્રુતમ્, અનાશ્રુત હો યા સમ્યક્શ્રુત હો, તેસા કોઈ મી શ્રુત નહીં હૈ જા સાદિ હોકર અપર્યવસિત હો જાય । સમ્યક્શ્રુત મિથ્યાત્વ કી પ્રાપ્તિ હોને પર, અથવા કેવલજ્ઞાન કી વ્ત્પત્તિ હોને પર નિયમ સે નષ્ટ હો જાતા હૈ । મિથ્યાશ્રુત મી જીવ કો જઘ સમ્યક્શ્રુત પ્રાપ્ત હો જાતા હૈ તય ચલા જાતા હૈ ૨ । તૃતીયમગ મિથ્યાશ્રુત કી અપેક્ષા જાનના ઘાલ્ધિયે, જેસે કોઈ અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ ભવ્યજીવ કો જરતક સમ્યક્ત્વ કા લાભ નહીં હુઆ હૈ તથતક ઉસકે સાથ લગા હુઆ મિથ્યાશ્રુત અનાદિ હી માના ગયા હૈ, પરન્તુ જ્યો હી હસ આત્મા કે સમકિત્ત હો જાતા હૈ તો વહ મિથ્યાશ્રુત નષ્ટ હો જાતા હૈ । હસ અપેક્ષા અનાદિ સાંત યહ તૃતીય મગ ઘન જાતા હૈ ૩ । અવ ચતુર્થમગ કહતે હૈ-‘અમવસિદ્ધિયસ્મ૦’ इत्यादि । જો અમવ્ય જીવ હુઆ કરતે હૈ ઉનકા મિથ્યાશ્રુત અનાદિ અનત હુઆ કરતા હૈ, કારણ-હન અમવ્ય જીવોમ્ કિસી મી સમયમ્ સમ્યક્ત્વ આદિ ગુણો કા લાભ નહીં હોતા હૈ અતઃહસ અપેક્ષા મિથ્યાશ્રુત કી હનમ્ અનાદિતાકે સાથ ૨

બીજે ભગ શૂન્ય છે, કારણ કે ભલે મિથ્યાશ્રુત હોય કે સમ્યક્શ્રુત હોય, પણ એવું કોઈ શ્રુત નથી જે સાદિ હોવા છતા અપર્યવસિત થઈ બધ સમ્યક્શ્રુત મિથ્યાત્વની પ્રાપ્તિ થતા, અથવા કેવળજ્ઞાન પેદા થતા નિયમથી જ નાશ પામે છે બ્યારે જીવને સમ્યક્શ્રુત પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે મિથ્યાશ્રુત પણ વ્યાલ્યુ બધ છે (૨) ત્રીજે ભગ મિથ્યાશ્રુતની અપેક્ષાએ સમજવો, જેમકે કોઈ અનાદિ મિથ્યાદષ્ટિ ભવ્ય જીવને બ્યા સુધી સમ્યક્ત્વને લાભ થયો નથી ત્યા સુધી તેને લાગેલું મિથ્યાશ્રુત અનાદિ જ માનવામા આવ્યું છે, પણ જેવું તે આત્માને સમકિત પ્રાપ્ત થાય છે કે તરત જ તે મિથ્યાશ્રુત નાશ પામે છે તે અપેક્ષાએ એ ત્રીજે ભગ અનાદિ સાત બની બધ છે (૩) હવે ચોથો ભગ કહે છે-“અમવસિદ્ધિયસ્મ૦” इत्यादि જે અલબ્યજીવ હોય છે તેમનું મિથ્યાશ્રુત અનાદિ અનત હોય છે, કારણ કે તે અલબ્ય જીવોમા કોઈ પણ સમયે સમ્યક્ત્વ આદિ ગુણોના લાભ થતા નથી તેથી તે અપેક્ષાએ તેમનામા મિથ્યાશ્રુતની

ઘપર્યવસિત તસ્ય સદૈવ સમ્યક્ત્વાદિગુણહીનત્વાત્ । एषा चतुर्भङ्गिका यथा श्रुतस्यो-
क्ता, तथा मतेरपि द्रष्टव्या, मतिश्रुतयोरन्यानुगतत्वात्, परस्मिन् श्रुतमेव प्रकान्त,
ततस्तस्यैव चतुर्भङ्गी प्रदर्शिता ।

નનુ તૃતીયભંગે ચતુર્થભંગે વા શ્રુતસ્યાનાદિભાવ ઉક્ત સ ચ કિં જઘન્યઃ, ઉત
મધ્યમઃ, આદોશ્ચિત્ ઉત્કૃષ્ટઃ ? ઇતિ ।

અન્યતે—જઘન્યો મધ્યમો વા નતૂત્કૃષ્ટઃ, યતસ્તસ્યેદ માનમિત્યાહ—
संवागासपएसग्ग संवागासपएसेहिं अणतगुणिय पज्जवग्गक्खर निप्फज्जइ” इति
सर्वाकाशप्रदेशाग्र=सर्वं च तत् आकाशं च सर्वाकाश-लोकालोकाकाशमित्यर्थः तस्य

અનતતા મ્હી સુઘટિત હો જાતી હૈ ૪ । યહ ચતુર્ભંગી જિસ પ્રકાર સામા-
ન્યરૂપ સે શ્રુતમેં ઘટિતકર વતલાઈ ગઈ હૈ ઁસી પ્રકાર સે મતિજ્ઞાનમે મ્હી
ઘટિત કર લેના ઁાહિયે, કારણ મતિ ઁર શ્રુત ઁે ઁોનોં સાય ૨ હી જીવોમે
રહતે હેં પરન્તુ ફિર મ્હી ઁહા પર શ્રુતજ્ઞાન કા પ્રકરણ ચલ રહા હૈ અતઃ
ઁસોમેં ઁહ ચતુર્ભંગી પ્રદર્શિત કરનેમેં આઈ હેં ।

ઁહા કોઈ શકા કરતા હૈ—તૃતીયભગમે અથવા ચતુર્થભગમે શ્રુતમેં
જો અનાદિતા પ્રકટ કરનેમેં આઈ હૈ વહ જઘન્યરૂપ સે હૈ ઁા મધ્યમરૂપ
સે હૈ અથવા ઉત્કૃષ્ટ રૂપ સે હૈ ?

ઉત્તર—શ્રુતકી અનાદિતા ઉત્કૃષ્ટરૂપ સે નહી હૈ કિન્તુ વહ જઘન્ય
ઁવ મધ્યમરૂપ સે હૈ, ક્યોંકિ ઁસકા માન ઁસ પ્રકાર હૈ—

“ સંવાગાસપેસગ્ગ સંવાગાસપેસેહિં અણતગુણિયપજ્જવગ્ગક્ખર
નિપ્ફજ્જઈ ” તાત્પર્ય ઁહ હૈ કિ સર્વાકાશ સે લોકાકાશ ઁર અલોકા-

અનાદિતાની સાથે સાથે અનતતા પણ સુઘટિત થઈ નય છે (૪) આ અતુ
ર્ભંગી જે પ્રકારે સામાન્યરૂપે શ્રુતમા ઘટિત કરી ળતાવાઈ છે એજ પ્રકારે મતિ
જ્ઞાનમા પણ ઘટિત કરી લેવી, કારણ કે ઁવોમા મતિ અને શ્રુત સાથે જ રહે
છે, છતા પણ અહીં શ્રુતજ્ઞાનનુ પ્રકરણ આલે છે તેથી તેમા જ આ અતુર્ભંગી
કશોવવામા આવી છે

અહીં કોઈ શકા કરે છે કે—તૃતીયભગમા અને ચતુર્થભગમા શ્રુતમા જે
અનાદિતા પ્રકટ કરવામા આવી છે, તે જઘન્યરૂપે છે કે મધ્યમરૂપે છે કે
ઉત્કૃષ્ટરૂપે છે ?

ઉત્તર—શ્રુતની અનાદિતા ઉત્કૃષ્ટરૂપે નથી પણ તે જઘન્ય અને મધ્યમ
રૂપે છે, કારણ કે તેનુ માન (પ્રમાણ) આ પ્રમાણે છે—

“ સંવાગાસપેસગ્ગ સંવાગાસપેસેહિં અણતગુણિય પજ્જવગ્ગક્ખર
નિપ્ફજ્જઈ ” તાત્પર્ય એ છે કે સર્વાકાશથી લોકાકાશ અને અવલોકાકાશ, એ બન્નેને

प्रदेशः=निर्विभागा भागाः, सर्वाकाशप्रदेशास्तेषामग्र-परिमाण, सर्वाकाशप्रदेशैः, अनन्तगुणितम्-अनन्तशोगुणितम्, एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽनन्तागुरुलघुपर्यायमा यात्, पर्यायाग्राक्षर=पर्यायपरिमाणम्-अक्षर-निष्पद्यते सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण भवतीत्यर्थः । इदमत्र बोध्यम्-सर्वाकाशप्रदेशपरिमाण सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तशोगुणित यावत् परिमाण भवति, तावत् परिमाण सर्वाकाशप्रदेशपर्यायाणामग्र-परिमाण भवति । एकैकस्मिन् आकाशप्रदेशे यावन्तोऽगुरुलघुपर्यायास्ते सर्वेऽपि एकत्र पि ण्डिता यावन्तो भवेयुः, एतावत्प्रमाण चाक्षर भवति । इह स्तोत्रत्वाद् धर्मास्तिका-यादयः साक्षात् सूत्रे नोक्ताः । अर्थतस्तु तेषुपि गृहीता एव । अयमर्थः-सर्वद्रव्य

काश, इन दोनों का ग्रहण हुआ है । इस सर्वाकाश के जो निर्विभाग भाग हैं उनका नाम प्रदेश है । इन प्रदेशों के परिमाण का नाम अग्र है । इस तरह 'सर्वाकाश प्रदेशाग्रम्' इस पदका "समस्त आकाशके प्रदेशों का परिमाण" ऐसा वाच्यार्थ होता है । यह समस्त आकाश के प्रदेशोंका परिमाण समस्त आकाश के प्रदेशों से अनन्तगुणित करने पर पर्यायाग्राक्षर-पर्यायपरिमाण अक्षर निष्पन्न होता है, कारण एक २ आकाश के प्रदेश पर अनन्त २ अगुरुलघु पर्यायों का सङ्काव माना गया है । इस तरह समस्त आकाश के प्रदेशोंकी पर्यायों का यह परिमाण निकल आता है । और इतना ही प्रमाण अक्षर का बतलाया गया है । तात्पर्य इसका यह है कि एक २ आकाशके प्रदेश ऊपर जितनी भी अगुरुलघु पर्याये हैं वे सब एकत्र जोड़ली जाने पर जितना उनका प्रमाण आवे उतना ही प्रमाण अक्षर का है । यद्यपि सूत्रमे सूत्रकारने आकाश

अक्षरु करेल छे आ सर्वाकाशना जे निर्विलाग लाग छे तेमनु नाम प्रदेश छे जे प्रदेशोना परिभाषुनु नाम अग्र छे आ रीते " सर्वाकाश प्रदेशाग्रम् " आ पहने " समस्त आकाशना प्रदेशोना परिभाषु " जेवो वाच्यार्थ थाय छे आ समस्त आकाशना प्रदेशोना परिभाषु समस्त आकाशना प्रदेशोना अनन्त गणु करता पर्यायाग्राक्षर-पर्यायपरिमाण अक्षर निष्पन्न थाय छे, कारण के जेक जेक आकाशना प्रदेशपर अनन्त अनन्त अगुरुलघु पर्यायोना सङ्काव मानवामा आण्यो छे आ रीते समस्त आकाशना प्रदेशोनी पर्यायोनु आ परिभाषु नीकणे छे जेने जेठलु न प्रमाण अक्षरनु एतावतामा आण्यु छे तेनु तात्पर्य जे छे के जेक जेक आकाशना प्रदेश उपर जेठली अगुरुलघु पर्यायो छे ते जधी जेकही करता जेठलु तेमनु प्रमाण आवे जेठलु न प्रमाण अक्षरनु छे

देशाग्र सर्वद्रव्यप्रदेशैरनन्तशोणुणितं यावत् परिमाणं भवति तावत् परिमाणं सर्वद्रव्य-
पर्याय परिमाणं, एतावत् परिमाणं चाक्षरं भवति । तदपि चाक्षरं द्विधा—ज्ञानम्,
अकारादि वर्णजातं च । उभयत्राप्यर्थेप्यक्षरशब्दप्रवृत्तेरुद्वेत्वात्, द्विविधमपि चेद्
गृह्यते विरोधाभावात्, इति ।

ननु सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणमक्षरं भवतीत्युक्तं, तत्राक्षरशब्देन ज्ञानमकारादि वर्ण-
जातं चेत्युभयं गृह्यते इति यदुक्तं तन्नोपपद्यते, तथाहि—यद्यपि ज्ञानं सर्वद्रव्यपर्याय
पदका ही साक्षात् उपादानं किया है—धर्मास्तिकाय आदिका नहीं सो
इसका कारण यह है कि ये आकाश की अपेक्षा स्तोक हैं, परन्तु अर्थतः
सूत्रकारने धर्मास्तिकाय आदि का भी ग्रहण किया ही है। इस अपेक्षा
अर्थ की संगति इस प्रकार होती है—समस्त द्रव्यों के प्रदेशों का परि-
माण उनके समस्त प्रदेशों से अनन्तगुणित है, और इतना ही परिमाण
उन समस्त द्रव्यों की पर्यायों का आता है। इस तरह समस्त द्रव्यों की
जितनी पर्यायें हैं उतना प्रमाण एक अक्षर का बतलाया गया है। यद्यपि
समस्त द्रव्यों का पर्याय प्रमाण एक अक्षर का प्रमाण कहा गया है, फिर
भी ज्ञान और अकार आदि वर्ण समूह के भेद से अक्षर दो प्रकार का
भी कहा है। अक्षर के ये दोनों ही प्रकार यहा गृहीत हुए हैं। इसमें
कोई विरोध नहीं आता है।

शका—ज्ञान और अकार आदिवर्ण के भेद से जो आपने अक्षर

के के सूत्रकारे सूत्रमा आभाशपदतु न प्रत्यक्ष उपादानं ऽयुं छे, धर्मास्तिकाय
आदितु नही तो तेनु कारण्ये छे ते तेनो आभाशनी अपेक्षाये सूक्ष्म छे,
पण्यु अर्थतः सूत्रकारे धर्मास्तिकाय आदिने पण्यु ग्रहण्यु ऽरेल छे ये अपेक्षाये
अर्थनी संगतता आ प्रमाण्ये याय छे—समस्त द्रव्येना प्रदेशोतु परिमाण्यु
तेमना समस्त प्रदेशोथी अनन्तगण्यु छे, अने अटलु न परिमाण्यु ते समस्त
द्रव्येनी प्रथयेतु आवे छे आ रीते समस्त द्रव्येनी नेटली पर्याये छे
अटलु प्रमाण्यु अक्षरनु गताववाभा आण्यु छे के के समस्त द्रव्येनु
पर्याय प्रमाण्यु अक्षरनु प्रमाण्यु ऽडेवामा आण्यु छे तो पण्यु ज्ञान अने
अकार आदि वर्णसमूहना लेदथी अक्षर के प्रकारना ऽद्या छे अक्षरना ये
अने प्रकार अही ग्रहण्यु करवामा आव्या छे तेमा केछ विरोध आवतो नही

शका—ज्ञान अने अकार आदि वर्णना लेदथी आवे न अक्षर शब्द

પરિમાણ સમ્યક્તિ, યતો જ્ઞાનમિદારિશોષકત્યા સર્વદ્રવ્યપર્યાયપરિમાણતુલ્યતામિ-
ધાનાત્ પ્રક્રમાદ્ ધા કેવલજ્ઞાન ગ્રહીષ્યતે, તત્ત્વ સર્વદ્રવ્યપર્યાયપરિમાણ ઘટતે એવ ।
તયાહિ=યાવન્તો જગતિ રૂપિ દ્રવ્યાણામરૂપિ દ્રવ્યાણા ધા યે ગુરુલઘુપર્યાયાસ્તાન્
સર્વાનપિ ભગવાન્ સાક્ષાત્ કરતલઠ્ઠલિતમુક્તાફલમિત્ત કેવલગોળેન પ્રતિક્ષણમવલો-
કતે । યેન સ્વભાવેનૈક પર્યાય જાનાતિ, તે નૈવ સ્વભાવેન પર્યાયાન્તર ન જાનાતિ
તયોઃ પર્યાયોરેકત્વમસન્તેઃ તયાહિ-ઘટપર્યાયપરિચ્છેદન સ્વભાવ યદ્ જ્ઞાન, તદ્

શબ્દ દ્વારા દ્વિવિધ અક્ષર કા સૂત્રમેં ગ્રહણ હુઆ ઘનલાયા હૈ સો યહ્ બાત
સમક્ષમે નહીં આતી, કારણ અકારાદિ અક્ષરમેં સર્વદ્રવ્ય પર્યાયપ્રમાણતા
કા વિરોધ આતા હૈ । જ્ઞાનમેં યહ્ ઘાન ઘટ સકતી હૈ, કારણ જ્ઞાન સે
અન્ય મતિ આદિ જ્ઞાનોં કા ગ્રહણ ન હોકર પ્રકરણવશ કેવલજ્ઞાન કા
હી જબ ગ્રહણ હોગા તો ડસ અપેક્ષા ડસમેં યહ્ સર્વે દ્રવ્યપર્યાય પ્રમા-
ણતા ઘટિત હોનેમેં કોઈ ઘાધા નહીં આતી હૈ, કારણ-જગતમેં રૂપિદ્રવ્યોં
કી તથા અરૂપીદ્રવ્યોં કી જિતની બી ગુરુલઘુપર્યાયેં એવ અગુરુલઘુપર્યાયેં
હૈં ડન સ્વ કો કેવલજ્ઞાની ભગવાન્ સાક્ષાત્ કરતલ મેં રખે હુએ મોતી
કે સમાન કેવલજ્ઞાનરૂપ આલોક સે પ્રતિક્ષણ જાનતે ઓર દેખતે હૈં ।
અબ હસ કેવલજ્ઞાનરૂપ આલોક મેં સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતા હસ પ્રકાર
ઘટ જાતી હૈ કિ પ્રભુ જન જિસ સ્વભાવ સે ઇક પર્યાય કો-જાનતે હૈં
ડસી સ્વભાવ સે દૂસરી પર્યાય કો નહીં જાનતે હૈં, કિન્તુ ડસ સમય

દ્વારા દ્વિવિધ અક્ષરનુ સૂત્રમા ગ્રહણ થયેલ દર્શાવ્યુ છે એ વાત સમજવામા
આવતી નથી, કારણ કે અક્ષર આદિ અક્ષરમા સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતાનો
વિશેષ નહે છે જ્ઞાનમા એ વાત બધાએસતી થતી નથી કારણ કે જ્ઞાનથી
અન્ય મતિ આદિ જ્ઞાનોનુ ગ્રહણ ન થતા પ્રકરણવશ કેવલજ્ઞાનનુ જ ને ગ્રહણ
થશે તો તે અપેક્ષાએ આ સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતા ઘટાવવામા કોઈ મુશ્કેલી
નડતી નથી, કારણ કે જગતમા રૂપીદ્રવ્યોની તથા અરૂપીદ્રવ્યોની જેટલી ગુરુ
લઘુ પર્યાયો અને અગુરુલઘુ પર્યાયો છે તે બધીને કેવલજ્ઞાની ભગવાન પ્રત્યક્ષ
હુએજીમા રાખેલ મોતી સમાન કેવલજ્ઞાનરૂપ આલોકથી પ્રતિક્ષણ નાણે
અને દેખે છે હવે તે કેવલજ્ઞાનરૂપ આલોકથી પ્રતિક્ષણ નાણે અને દેખે
છે હવે તે કેવલજ્ઞાનરૂપ આલોકમા સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પ્રમાણતા આ પ્રકારે
ઘટિત થાય છે કે પ્રભુ ત્યારે જે સ્વભાવથી એક પર્યાયને નાણે છે એજ
સ્વભાવથી બીજી પર્યાયને નાણતા નથી, પણ ત્યારે તેને નાણવામા સિન્ન

यदा पटपर्यायपरिच्छेदन कुर्यात्, तदा पटपर्यायस्यापि घटपर्यायरूपतापत्तिः स्यात् अन्यथा-तस्य तत्परिच्छेदकत्वानुपपत्तेः, तथारूपस्वभावात् । ततो यावन्तः परिच्छेद्याः पर्यायास्तावन्तः परिच्छेदकाज्ञानपर्यायास्तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावा विज्ञेयाः । स्वभावाश्च पर्यायाः । तस्मात् पर्यायानधिकृत्य सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण ज्ञानमुपपद्यते, पर तु यदकारादिक वर्णजात तत् कथं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण भवितुमर्हति, वर्णपर्यायराशेः सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्ततमे भागे वर्तमानत्वादिति चेत् ?

उसको जानने में भिन्न स्वभावता आजाती है । यदि ऐसा नहीं माना जाता है तो फिर एक स्वभावाधिगत होने से उन दोनों में एकत्वापत्ति का प्रसंग होगा । घट पर्याय को जानने के स्वभाववाला वह ज्ञान उसी स्वभाव द्वारा यदि पटपर्याय को जानेगा तो पटपर्याय में घटपर्यायरूपता के आने में बाधक ही कौन हो सकता है । यदि ऐसा नहीं होगा तो फिर उसके द्वारा पटपर्याय का अधिगम हो ही नहीं सकेगा, इसलिये यह अवश्य मानना पड़ता है कि जगत में जितने परिच्छेद्य-पदार्थ हैं-पर्यायें हैं-उतनी ही उन्हें जानने वाली उस ज्ञान की पर्यायें हैं । ये समस्तपर्यायें उस केवलज्ञान की स्वभावभूत पर्यायें हैं । इसलिये पर्यायों की अपेक्षा समस्तद्रव्यों की पर्यायों के प्रमाणानुसार ज्ञानमें सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता आजाती है । परन्तु जो अकार आदि वर्ण समूह है उसमें सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता कैसे आ सकती है, कारण जो वर्ण पर्यायराशि है वह सर्वद्रव्यपर्यायों के अनन्ततमभागमें वर्तमान कही गई है ।

स्वभावता आवी नय छे जे ज्येभ मानवामा न आवे तो ज्येक स्वाभावधिगत होवारी ते जन्नेमा ज्येकत्व आपत्तिने प्रसंग आवशे घट पर्यायने जलुवाना स्वभाववाणे ते ज्ञानी ज्ये स्वभाव द्वारा जे पट पर्यायने जलुशे पट पर्यायमा घट पर्यायरूपता आववामा बाधक न होव थई शके छे जे ज्येभ न थाय तो पछी तेना द्वारा पटपर्यायनी समजलु पडी न शके, ते कारणे जे अवश्य मानवु पडे छे के जगतमा जेटला परिच्छेद्य-पदार्थ छे-पर्याये छे जेटली न तेने जलुनारी ते ज्ञाननी पर्याये छे जे समस्त पर्याये ते केवज-ज्ञाननी स्वभावभूत पर्याये छे तेथी पर्यायेनी अपेक्षाजे समस्त द्रव्येनी पर्यायेना प्रमाणानुसार ज्ञानमा सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता आवी नय छे पछे जे अकार आदि वर्णसमूह छे तेमा सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता केवी रीते आवी शके छे, कारणे के जे वर्णपर्याय राशि छे ते सर्वद्रव्य पर्यायेना अनन्ततम भागमा वर्तमान कहेवामा आवी छे

उच्यते—अकारादेरपिर्णस्य स्वपरपर्यायभेदमिन्नतया सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण तुल्यत्वादकारादिर्णजातमपि सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण भवतीति ।

नन्वकारादेर्घर्णस्य स्वपरपर्यायापेक्षया सर्वद्रव्यपर्यायराशितुल्यता केन प्रकारेण भवती ? ति चेत्,

उच्यते—इह 'अ, अ, अ,' इत्यकार उदात्तोऽनुदात्तः स्वरित । म पुनरेकैको द्विधा—सानुनासिको निरनुनासिकश्चेत्यकारस्य पदभेदाः । एष ह्रस्वो दीर्घप्लुतश्च । तदेवमप्यादशमभेदान् केवलोऽकारो लभते । तथा—अन्यवर्णसहितोऽप्यकारोऽनेकान् भेदान् लभते । तथाहि—अकारेण सायुक्तोऽकारोऽप्यादशमभेदान् लभते । एष स्वकारेण ।

उत्तर—ठीक है, परन्तु अकार आदि जो वर्ण हैं उनके भी स्वपर्याय और परपर्याय की अपेक्षा अनेक भेद हो जाते हैं, इसलिये उनमें भी सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाणता सुघटित होनेमें कोई बाधा नहीं आती है ।

शका—अकार आदि वर्णोंमें स्व और परपर्याय की अपेक्षा सर्वद्रव्यपर्याय राशितुल्यता कैसे घटती है ?

उत्तर—सुनो—अकार—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से तीन प्रकार का रहा हुआ है । उदात्त अकार के, अनुदात्त अकार के, और स्वरित अकार के सानुनासिक और निरनुनासिक, इस तरह और भी दो दो भेद किये गये हैं । इन छह भेदों के भी ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ऐसे और भी तीन तीन भेद होते हैं । इस तरह अकेला अकार अठारह प्रकार का हो जाता है । इसी तरह अन्यवर्णों से समन्वित हुआ अकार भी अनेक भेदों वाला बन जाता है । जैसे—“क” में मिला हुआ “अ”

उत्तर—शका धराधर छे पञ्च अकार आदि जे वर्ण छे तेभना पञ्च स्वपर्याय अने परपर्यायनी अपेक्षाअने अनेक लेह थछ नय छे, ते कारण्ण तेभनाभा पञ्च सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणात्ता सुघटित थवाभा कौछ भुशकैली नउती नथी

शका—अकार आदि वर्णोंभा स्व अने पर पर्यायनी अपेक्षाअने सर्वद्रव्य पर्याय राशितुल्यता केवी रीते घटावी शकय छे ?

उत्तर—उदात्त, अनुदात्त अने स्वरितना लेहथी अकार त्रण प्रकारना कहेल छे उदात्त अकारना, अनुदात्त अकारना अने स्वरित अकारना सानुनासिक अने निरनुनासिक, आ रीते भील पञ्च जे जे लेह पडे छे अने छ भेदोना पञ्च ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अेवा भील पञ्च त्रण त्रण लेह थाय छे आ प्रकारे अेकलेा अकार अठार प्रकारना थाय छे अेज रीते अन्यवर्णो साथे जेठयेल अकार पञ्च अनेक लेहोवाणे थछ नय छे जेभके—“क”भा भणेलेा ‘अ’

एव यावत् हकारेण । एवमेकैक केवल व्यञ्जन सयोगे इय सजातीय विजातीय व्यञ्जन-
द्विक संयोगेऽपि । तथा स्वरान्तर सयुक्त तत्तद्व्यञ्जनसहितोऽप्यनेकान् भेदान्
लभते । अपि चैकैकोऽप्युदात्तादिको भेदो वक्तुः स्वर विशेषादनेक भेदो भवति ।
वाच्यभेदादपि च समानवर्णश्रेणीकस्यापि शब्दस्य भेदो जायते । तथाहि-करशब्दो
हस्तरूपमर्थं येन स्वभावेन बोधयति, नहि तेनैव स्वभावेन किरणरूपमर्थम्, किंतु
स्वभावभेदेन । तथा-अकारोऽपि तेन तेन ककारादिना सयुज्यमानस्त तमर्थं

अठारह प्रकार का बन जाता है, इसी प्रकार “ख” में मिला हुआ तथा
“ग” से लेकर “ह” तक मिला हुआ “अ” भी अठारह प्रकार का बन
जाता है । जिस तरह यह “अ” केवल एक २ व्यञ्जनों के साथ मिलने
पर अनेक प्रकार का प्रकट किया गया है उसी प्रकार जब यह सजातीय
एव विजातीय दो दो व्यञ्जनों के साथ तथा स्वरान्तरसयुक्त उन २ व्यञ्ज-
नों के साथ मिलना है तब अनेक भेद वाला हो जाता है, यह जानना
चाहिये-अधिक और क्या कहा जाय एक २ भी उदात्तादिक भेद वक्ता
के स्वरों के भेद से अनेक भेदवाला बन जाया करता है । वाच्यभेद से
भी समानवर्ण श्रेणी वाले शब्दों में भी भेद आ जाता है, जैसे ‘कर’ शब्द
जिस स्वभाव से हस्तरूप अर्थ का बोधन करता है उसी स्वभाव से वह
किरणरूप अर्थ का बोधन नहीं करता है, किन्तु स्वभाव भेद से ही करता
है । तात्पर्य कहने का यह है कि-करशब्द का अर्थ हाथ है, किरण है,
परन्तु जिस स्वभाव से ‘कर’ शब्द अपने हाथ रूप वाच्यार्थ का प्रतिपादन

अठार प्रकारनेो णनी ळय छे, ओळ प्रभाषे “स”मा भजेल तथा “ग”थी
लधने “ह” सुधी भजेले। ‘अ’ पणु अठार प्रकारनेो थर्ध ळय छे ले रीते
आ ‘अ’ इकत ओक ओक व्यञ्जनी साथे भणता अनेक प्रकारनेो प्रकट कथी
छे ओळ प्रकारे न्यारे ते सजातीय अने विजातीय णण्णे व्यञ्जनी साथे
तथा स्वशन्त सयुक्त ते ते व्यञ्जनी साथे भजे छे त्यारे अनेक लेदवाणे
थर्ध ळय छे, ओळ सभणु वधारे शु कडेवु । ओक ओक पणु उदात्तादिक
लेद णालनारना स्वरेना लेदथी अनेक लेदवाणेो णनी ळय छे वाच्यलेदथी
पणु समानवर्णु श्रेणीवाणा शब्दमा पणु लेद आवी ळय छे, जेभके “ कर ”
शब्द ले स्वभावथी हस्तार्थ अर्थनेो णोध करे छे ओळ स्वभावथी ते किरण
र्थ अर्थनेो णोध करतो नथी, पणु स्वभाव लेदथी न करे छे कडेवानु
तात्पर्यं ओ छे के-“ कर ” शब्दनेो अर्थ हाथ छे, किरण छे, पणु ले स्वभाव
थी “ कर ” शब्द पोटाना हाथर्थ वाच्यार्थनु प्रतिपादन करे छे ओळ

बोधयन् भिन्नस्वभावो वेदितव्यः । ते च स्वभावा अनन्ता भवन्ति, उच्चार्यमाण-
शब्दस्य परमाणुद्वयणुकादिभेदेनाऽनन्तत्वात् । घनेश्च तथा तथाऽभिग्रायकप्रपि-
णामे सत्येव तत्तदर्थप्रतिपादकत्वात् । एते च सर्वेऽप्यकारस्य स्वपर्यायाः शेषास्तु
सर्वेऽपि घटादिपर्यायाः परपर्यायाः । ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः । परपर्याया
अप्यकारस्य सम्बन्धितया विज्ञेयाः

करता है उसी स्वभाव से वह किण्वणरूप अर्थका नहीं, कारण अपने २
वाच्यार्थ के प्रतिपादन करनेमें शब्दोंमें भिन्न २ स्वभावता मानी गई है ।
इसी तरह अकार भी भिन्न २ फकार आदि शब्दों के साथ सगत होकर
भिन्न २ स्वभाव से भिन्न २ अर्थों का प्रत्यायक होता है । इस तरह एक
ही अकेले अकारमें अनन्त स्वभाव समाविष्ट हुए माने गये हैं । जो शब्द
उच्चरित होता है उसमें परमाणु तथा द्वयणुक आदि के भेद से अन-
न्तता आती है । तात्पर्य इसका यह है कि शब्द पौद्गलिक है, अतः पुद्गल
जन्य इस शब्दमें परमाणुक द्वयणुक आदि की भिन्नता से भिन्नता आती
है और यह भिन्नता अनन्तरूपमें परिणत हो जाती है । इसी तरह पदार्थ
अनन्त है और उन पदार्थों को प्रतिपादन करने का परिणाम ध्वनी-शब्द
में रहा हुआ है तभी जाकर वह उन २ पदार्थों का प्रतिपादन किया
करता है । इस तरह से समस्त अकार की निज पर्याये हैं तथा इनसे
भिन्न जो घटादि पर्याय हैं वे इस की पर पर्याय हैं । ये पर पर्याये अपनी

स्वभावार्थी ते किण्वणरूप अर्थानु प्रतिपादन करतो नही, कारण के पोतपोताना
वाच्यार्थानु प्रतिपादन करवाना शब्दोभा भिन्न भिन्न स्वभावता मानवाना आवी
छे अकार रीते 'अकार' पणु भिन्न भिन्न ककार आदि शब्दोनी साथे सगत
थधने भिन्न भिन्न स्वभावार्थी भिन्न भिन्न अर्थोनी प्रत्यायक थाय छे आ
रीते अकारमा अकारमा अन्त स्वभावतो समावेश थयेल मनायो छे अ
शब्द जोलाय छे तेमा परमाणु तथा द्वयणुक आदिना लेदधी अनन्तता आवे
छे तेनु तात्पर्य अ छे के शब्द पौद्गलिक छे तेथी पुद्गलजन्य ते शब्दमा
परमाणु, द्वयणुक आदिनी भिन्नताथी भिन्नता आवे छे, अने ते भिन्नता
अनन्तये परिणुमे छे आ रीते पदार्थ अनन्त छे अने ते पदार्थोनु प्रति-
पादन करवानो परिणाम ध्वनि-शब्दमा रहेल छे त्यारे अ अर्थने ते, ते ते
पदार्थोनु प्रतिपादन थ्यां ठरे छे आ रीते समस्त अकारनी पोतानी पर्यायो छे
तथा तेमनाथी भिन्न अ घटादि पर्याय छे अ तेनी परपर्याय छे अ पर

ननु ये स्वपर्यायास्ते तस्य सम्बन्धिनो भवन्तु, ये तु परपर्यायास्ते भिन्नवस्वाश्रयत्वात् कथं तस्य सम्बन्धिनः स्युरिति चेत् ?

उच्यते—इह द्विधा सम्बन्धो भवति, अस्तित्वेन नास्तित्वेन च । तत्रास्तित्वेन सम्बन्धः स्वपर्यायैः सह भवति, यथा-घटस्य रूपादिभिः नास्तित्वेन सम्बन्धः परपर्यायैः सह भवति तेषां तत्रासम्भवात् । यथा-घटावस्थायां मृत्पिण्डाकारेण

पर्यायों से अनन्तगुणी हैं । स्वपर्याये जिस प्रकार अकार की सवधी मान जाती है उसी प्रकार पर पर्यायों भी इसकी सवधी मानी गई हैं ।

शका—यह तो ठीक है कि अकार की जितनी भी निज पर्यायों हैं वे सब इसकी सवधी मानी जायें—पर जो परपर्यायों हैं वे इसकी सवधी कैसे मानी जा सकती हैं ? कारण—ये परपर्यायों भिन्न वस्तु के साथ रही हुई होती हैं । अतः उसीकी सवधी मानी जावेगी ?—

उत्तर—सवध दो प्रकार से हुआ करता है—एक अस्तित्व मुख से, और दूसरा नास्तित्वमुख से । अस्तित्वमुख से जो संबंध होता है, वह अपनी पर्यायों के साथ पर्यायी का होता है । जैसे रूपादिकों के साथ घट का होता है । नास्तित्वमुख से जो सवध हुआ करता है वह परपर्यायों का पर्यायी के साथ हुआ करता है । कारण ये परपर्यायों उसमें रहती नहीं हैं । जैसे मिट्टी से जब घट बन कर तैयार हो जाता है, तब उसमें पिण्डाकार

पर्यायो चोतानी पर्यायोथी अनेकगणी छे स्वपर्यायो नेम अकारनी सवधी मानवामा आवे छे अने प्रकारे परपर्यायो पणु तेनी सवधी मानवामा आवी छे

शका—अे तो अराअर छे के अकारनी नेटवी स्वपर्यायो छे ते अधी तेनी सवधी बनाय, पणु ने परपर्यायो छे ते तेनी सवधी केवी रीते मानी शक्य ? कारण के अे परपर्यायो बिन्न वस्तुनी साथे रहलेल डोय छे तेथी तेनी अ सवधी मानी शक्ये

उत्तर—सवध अे रीते यथा करे छे—अेक अस्तित्वमुखी अने अीने नास्तित्वमुखी अस्तित्वमुखी ने सवध थाय छे ते स्वपर्यायोनी साथे पर्यायोनी डोय छे नेम रूपादिकोनी साथे घडानो डोय छे नास्तित्वमुखी ने सवध यथा करे छे ते परपर्यायोनी पर्यायोनी साथे यथा करे छे कारण के—ते पर्यायो तेमा रहलेती नथी नेमके भाटीभाथी अ्यारे घडो तैयार थाय

पर्यायेण सह सम्बन्धो नास्तित्व सम्बन्धेन । यतोऽग्री पिण्डाकारः पर्यायस्तस्यतदानीं नास्तीति नास्तित्व सम्बन्धेन सम्बन्धः । अत एव च स परपर्याय इति व्यपदिश्यते । अन्यथा तस्यापि तत्रास्तित्व स्वीकारे सोऽपि स्वपर्याय एव स्यात् ।

ननु ये यत्र न विघ्नन्ते ते कथं 'तस्ये'—ति व्यपदिश्यन्ते । धन ददिस्य नास्तीति 'धन तस्य सम्बन्धी'—ति व्यपदेष्टु न शक्यम्, अन्यथा परपर्यायस्यापि सम्बन्धित्वे लोकोप्यवहारातिक्रम प्रसङ्गः ? इति चेन्न,

यदि नाम ते—परपर्याया नास्तित्व सम्बन्धमधिकृत्य 'तस्ये'—ति न व्यप पर्याय नहीं रहती है । अतः उस घट के साथ पिण्डाकार पर्याय का सबंध नास्तित्वमुख से माना जायगा । इसीलिये वह पिण्डाकार पर्याय परपर्याय होने से निज पर्याय नहीं है । अन्यथा घटमें उसका अस्तित्व होने से वह उसकी निजपर्याय मानी जावेगी । अतः यह अवश्य स्वीकार करना चाहिये कि पर्यायोंका सबंध पदार्थमें नास्तित्वमुख से ही रहा करता है ।

शका—दरिद्र के पास धन जिस प्रकार नहीं होने से वह उसका सबंधी नहीं कहा जाता है, उसी प्रकार जो जहा नहीं है वह उसका सबंधी कैसे कहा जा सकेगा ? परपर्याय पर पदार्थमें होती है वह विवक्षित पदार्थ की सबंधी कैसे मानी जा सकती है यदि इस प्रकार का व्यवहार होने लगे तो फिर लोक व्यवहार का ही अतिक्रम करना कहलायेगा ।

उत्तर—परपर्यायों विवक्षित पदार्थ की सबंधी हैं इसका तात्पर्य यह

छे त्पारे तेभा पिडाकार पर्याय रहेती नथी तेथी ते घडानी साथे पिडाकार पर्यायने सभध नास्तित्वमुभथी मानवामा आवशे ते कारणे ते पिडाकार पर्याय परपर्याय होवाथी स्वपर्याय नथी नही तो घडामा तेनु अस्तित्व होवाथी ते तेनी स्वपर्याय मानवामा आवे तेथी जे अवश्य स्वीकारनु जेथजे के परपर्यायने सभध पदार्थमा नास्तित्वमुभथी रखा करे छे

शका—जेम दरिद्रनी पास धन न होवाथी ते तेने सभंधी उडेवाते नथी जे प्रकारे जे न्या नथी ते तेनु सभंधी केवी रीते कही शक्य ? परपर्याय पर पदार्थमा होय छे ते विवक्षित पदार्थनी सभंधी केवी रीते मानी शक्य जे आ प्रकारने व्यवहार थवा लागे तो पजी दोऽ व्यवहारने ज अतिक्रम करे कडेवाय

उत्तर—परपर्यायों विवक्षित पदार्थनी सभंधी छे तेनु तात्पर्य जेनु

दिश्यन्ते, तर्हि सामान्यतो न सन्तीति प्राप्तम् । तथा च ते स्वरूपेणाऽपि न भवेयुः, न चैतद् दृष्ट श्रुतं वा तस्मादवश्य ते नास्तित्व सम्बन्धमङ्गीकृत्य 'तस्ये'—ति व्यपदेश्याः । धनमपि च नास्तित्व सम्बन्धमधिकृत्य 'दरिद्रस्ये'—ति व्यपदिश्यते एव । तथा—' धनमस्य दरिद्रस्य न विद्यते ' इति लोकादः ।

यदपि चोक्त 'तत् तस्ये'—ति व्यपदेश्णु न शक्यमिति, तत्रापि तदस्तित्वेन तस्येति व्यपदेश्णु न शक्य, न तु नास्तित्वेनापि । ततो न कश्चित् लौकिक व्यवहारातिक्रमः ।

नहीं है कि वे उसमें अस्तित्व मुख से सबधित हैं । यह शका तो उचित उस समय मानी जाती कि जब उसे विवक्षित पदार्थमे अस्तित्वमुख से सबधित की जाती । यहा तो ऐसा कहा जाता है कि—पदार्थमें एक दूसरे पदार्थ की पर्यायों का जो इतरतराभाव—अन्योन्याभाव रूप से सबध है वह वहा नास्तित्वमुख से है । यदि नास्तित्वमुख से वे परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की सबधी हैं तो इसमे क्या आपत्ति हो सकती है । यदि नास्तित्व के सबधसे वे पर पर्यायें विवक्षित पदार्थ की सबधी न मानी जावे तो इसका तात्पर्य यह होता है कि ये सामान्यरूप से भी अस्तित्व विशिष्ट नहीं है । इस तरह स्वरूपतः भी इनका कोई अस्तित्व नहीं बन सकेगा । नास्तित्व सबध से धन भी दरिद्र का सबधी माननेमें कोई बाधा नहीं है । ऐसा व्यपदेश होता ही है । नास्तित्व सबध से धन दरिद्रव्यक्ति का है इसका तात्पर्य यही है कि दरिद्र के पास धन नहीं है ।

नथी ते तेजो तेमा अस्तित्वमुभथी सभधित छे आ शका तो त्यारे योज्य मनाय के न्यारे तेने विवक्षित पदार्थमा अस्तित्वमुभथी सभधित करवोमा आवे अर्धी तो जेवु छडेवामा आवे छे के—पदार्थमा जेक भीज पदार्थनी पर्यायोना जे इतरतरा भाव इथे सभध छे ते त्या नास्तित्वमुभथी छे जे नास्तित्वमुभथी ते पर्याये विवक्षित पदार्थनी सभधी होय तो तेमा शी सुक्केली होई शके छे ? जे नास्तित्वना सभधथी ते पर पर्याये विवक्षित पदार्थनी सभधी मनाय नही तो तेनु तात्पर्य जे थाय छे के तेजो सामान्य रूप पणु अस्तित्व विशिष्ट नथी आ रीते स्वरूपथी पणु तेमनु होई अस्तित्व जनी शकथे नही नास्तित्व सभधथी धनने पणु दरिद्रनु सभधी मानवामा होई बाधा नथी जेवो व्यपदेश होय छे जे नास्तित्व सभधथी धन दरिद्र व्यक्तितु छे तेनु तात्पर्य जे छे के दरिद्रनी पास धन नथी आ रीते पर-

ननु नास्तित्वमभावरूपम् , अभावश्च स्वरूपशून्यस्तेन गृह कथं सम्बन्धः, शून्यस्य सकलशक्ति विमलतया सम्बन्धप्रशस्तेरभावात् ।

अन्यच्च—यदि परपर्यायाणां तत्र नास्तित्व, तर्हि नास्तित्वेन गृह सम्बन्धो भवतु, परपर्यायैस्तु 'यथ सम्बन्धः' ? । घटः पट्टाभावेन संयुक्तः इति न पट्टेनापि सह सम्बन्धो भवितुमर्हति, तथा प्रतीतेरभावात् ? ।

इसी तरह परपर्यायं नास्तित्वसंबन्ध से विवक्षित पदार्थ की संबन्धी है इसका भी तात्पर्यार्थ यही है कि ये उसमें नहीं हैं । "परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं" इस रूपसे उनका व्यापदेश नहीं हो सकता है, ऐसा जो कहना है सो इसमें कोई आपत्ति नहीं है । ज्ञान्त्र भी तो यही करते हैं कि अस्तित्व मुख से परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं ऐसा व्यापदेश नहीं हो सकता है । परन्तु नास्तित्वमुख से वहाँ उनका व्यपदेश होनेमें कोई लौकिक व्यवहार का अतिक्रम नहीं होता है ।

शका—नास्तित्व अभावरूप होता है । अभाव का तात्पर्य होता है स्वरूपशून्यता । तो फिर पदार्थ का इस स्वरूपशून्यरूप नास्तित्व के साथ संबन्ध कैसे बन सकता है । क्यों कि शून्यमें सकल शक्ति की विकलता होने से सप्रथ स्थापित करने की शक्ति का सद्भाव माना ही कैसे जा सकता है । दूसरी बात एक यह भी है कि "विवक्षित पदार्थमें परपर्यायोका नास्तित्व है" इस प्रकार के कथनमें यही फलितार्थ निकलता है कि पदार्थ का उन पर्यायों के साथ संबन्ध नहीं है किन्तु नास्तित्व के साथ

पर्यायो नास्तित्व संबन्धी विवक्षित पदार्थनी संबन्धी छे तेनु तात्पर्य पक्षे अत्र छे के अत्र तेमा नथी " परपर्यायो विवक्षित पदार्थनी छे " आ इये तेमने व्यपदेश थय शकतो नथी, अत्र न्ने कडेवु छे तेमा कौछ आपत्ति नथी शास्त्रो पक्षे अत्र कडे छे के अस्तित्वमुखथी परपर्यायो विवक्षित पदार्थनी छे अत्रो व्यापदेश थय शकतो नथी पक्षे नास्तित्वमुखथी त्या तेवो व्यपदेश थवामा कौछ लौकिक व्यवहारने अतिक्रम थतो नथी

शका—नास्तित्व अभावरूप होय छे अभावतु तात्पर्य छे स्वरूपशून्यता तो पछी पदार्थने आ स्वरूप शून्यरूप नास्तित्वनी साथे संबन्ध केवी रीते भनी शके ? जारण के शून्यमा सकल शक्तिनी विकलता होवार्थी संबन्ध स्थापित करवानी शक्तिने सद्भाव भानी न्ने केवी रीते शकय ? थिल्ल अक वात अत्र पक्षे छे के विवक्षित पदार्थमा परपर्यायोनु नास्तित्व छे आ प्रकारना कथनमा अत्र इलितार्थ नीकजे छे के पदार्थने अत्र पर्यायो साथे संबन्ध नथी पक्षे नास्तित्वनी साथे छे न्नेमके "घट पराभवथी संबन्ध

उच्यते—अयुक्तमेतत्, सम्यग् वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात् । तथाहि—नास्तित्व नाम तेन तेन रूपेणाऽभवनमिष्यते, तच्च तेन तेन रूपेणाऽभवन वस्तुधर्मस्ततो नैकान्तेन तच्छून्यरूपमिति न सह सम्बन्धाभावः । तदपि च तेन रूपेणाऽभवन त त पर्यायमपेक्ष्य भवति, नान्यथा । तथाहि—यो यो घटादिगतः पर्यायस्तेन तेन रूपेण है । जैसे—“ घट पराभाव से सबद्ध है ” इस प्रकार के वाच्यार्थ में यह तात्पर्य थोड़े ही निकल सकता है कि घट पट के साथ सबधित हैं । किन्तु घट पटाभाव से ही युक्त है, पट से नहीं, यही बोध होता है । इसी प्रकार परपर्यायों का अभाव विवक्षित पदार्थ में है इसका भी यही तात्पर्य निकलता है कि परपर्यायों का अभाव ही विवक्षित पदार्थ के साथ सबध है—परपर्यायों नहीं ।

उत्तर—वस्तुतत्त्व का समीचीन परिज्ञान नहीं होने से यह शका की गई है । जब नास्तित्व का “ उस उस रूप से नहीं होना ” ऐसा तात्पर्य है तो फिर यह वस्तु का ही निजधर्म है । निजधर्म जो होता है वह एकान्ततः शून्यरूप नहीं होता है । इस तरह नास्तित्व के साथ सबध होने में कोई विरोध नहीं है । तात्पर्य इसका यह है कि शकाकार ने “ नास्तित्व ” का तात्पर्य “ स्वरूपशून्य ” मानकर जो उसका पदार्थ के साथ सबधाभाव स्थापित किया था उसका यहा यह उत्तर दिया गया है । नास्तित्व का भाव स्वरूपशून्यता नहीं है किन्तु उस उस रूप

छे” आ प्रकारना वाच्यार्थमा ये तात्पर्यं थोडु न नीकणे छे के घट (घडा) पटनी साथे सभधित छे, पणु घट पटालावधी न युक्त छे, पटथी नडी, येन बोध थाय छे येन प्रकारे परपर्यायिनो अभाव विवक्षित पदार्थमा छे येनु पणु येन तात्पर्यं नीकणे छे के परपर्यायिनो अभाव न विवक्षित पदार्थनी साथे सभध छे—परपर्यायो नडी

उत्तर—वस्तुतत्त्वतु स पूर्ण परिज्ञान न होवाधी आ शका उठाववाभा आवी छे ने नास्तित्वतु ” ते ते इये न होवु ” येनु तात्पर्यं छे तो ये वस्तुनो न चोतानो धर्म छे ने चोतानो धर्म होय छे ते येकान्तत शून्यरूप होतो नथी आ रीते नास्तित्वनी साथे सभध होवाभा केछ विरोध नथी तेवु तात्पर्यं ये छे के शकाकारे “ नास्तित्व ”तु तात्पर्यं “ स्वरूपशून्य ” मानीने तेनो पदार्थनी साथे ने सभधाभाव स्थापित कर्यो हुतो तेनो अडी आ उत्तर आपवाभा आव्यो छे नास्तित्वनो अर्थ स्वरूपशून्यता नथी पणु “ ते ते

ननु नास्तित्वमभावरूपम्, अभावश्च म्यत्पशून्यस्तेन मा कथं सम्बन्धः, शून्यस्य सकलशक्ति विकलतया सम्बन्धशरतेरभावात् ।

अन्यच्च—यदि परपर्यायाणां तत्र नास्तित्व, तर्हि नास्तित्वेन सा सम्बन्धो भवतु, परपर्यायैस्तु कथं सम्बन्धः ? । घटः पटाभावेन समृद्धः इति न पटेनापि सह सम्बद्धो भवितुमर्हति, तथा प्रतीतेरभावात् ? ।

इसी तरह परपर्यायें नास्तित्वसम्बन्ध से विवक्षित पदार्थ की सबधी हैं इसका भी तात्पर्यार्थ यही है कि ये उसमें नहीं है । “परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं” इस रूपसे उनका व्यापदेश नहीं हो सकता है, ऐसा जो कहना है सो इसमें कोई आपत्ति नहीं है । शास्त्र भी तो यही कहते हैं कि अस्तित्व मुख से परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं ऐसा व्यापदेश नहीं हो सकता है । परन्तु नास्तित्वमुखसे वहां उनका व्यापदेश होनेमें कोई लौकिक व्यवहार का अतिक्रम नहीं होता है ।

शका—नास्तित्व अभावरूप होता है । अभाव का तात्पर्य होता है स्वरूपशून्यता । तो फिर पदार्थ का इस स्वरूपशून्यरूप नास्तित्व के साथ सबध कैसे बन सकता है । क्यों कि शून्यमें सकल शक्ति की विकलता होने से सबध स्थापित करने की शक्ति का सद्भाव माना ही कैसे जा सकता है । दूसरी बात एक यह भी है कि “विवक्षित पदार्थमें परपर्यायोंका नास्तित्व है” इस प्रकार के कथनमें यही फलितार्थ निकलता है कि पदार्थ का उन पर्यायों के साथ सबध नहीं है किन्तु नास्तित्व के साथ

पर्यायो नास्तित्व सम्बन्धी विवक्षित पदार्थनी सम्बन्धी छे तेनु तात्पर्यं पक्षे अर्थ छे के अर्थे तेमा नथी “परपर्यायो विवक्षित पदार्थनी छे” आ रूपे तेमने व्यापदेश थछ शकतो नथी, अर्थे के कडेपु छे तेमा केछ आपत्ति नथी शास्त्रे पक्षे अर्थे के अस्तित्वमुखी परपर्यायो विवक्षित पदार्थनी छे अर्थे व्यापदेश थछ शकतो नथी पक्षे नास्तित्वमुखी आ तेवे व्यापदेश थवाभा केछ लौकिक व्यवहारने अतिक्रम थतो नथी

शका—नास्तित्व अभावरूप होय छे अभावतु तात्पर्यं छे स्वरूपशून्यता तो पछी पदार्थने आ स्वरूप शून्यरूप नास्तित्वनी साथे सम्बन्ध केवी रीते बननी शके ? कारण के शून्यमा सकल शक्तिनी विकलता होवानी सम्बन्ध स्थापित करवानी शक्तिने सद्भाव मानी केवी रीते शकय ? पीछे अर्थे वात अर्थे पक्षे छे के विवक्षित पदार्थमा परपर्यायोनु नास्तित्व छे आ प्रकारना कथनमा अर्थे इतिार्थं नीकणे छे के पदार्थने अर्थे पर्यायो साथे सम्बन्ध नथी पक्षे नास्तित्वनी साथे छे अर्थे के “घट पराभवथी सम्बन्ध

उच्यते—अयुक्तमेतत्, सम्यग् वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्। तथाहि—नास्तित्व नाम तेन तेन रूपेणाऽभवनमिष्यते, तच्च तेन तेन रूपेणाऽभवन वस्तुधर्मस्ततो नैकान्तेन तच्छून्यरूपमिति न सह सम्बन्धाभावः। तदपि च तेन रूपेणाऽभवन त त पर्यायमपेक्ष्य भ्रमति, नान्यथा। तथाहि—यो यो घटादिगतः पर्यायस्तेन तेन रूपेण है। जैसे—“घट पराभाव से सबद्ध है” इस प्रकार के वाच्यार्थ में यह तात्पर्य थोड़े ही निकल सकता है कि घट पट के साथ सबधित हैं। किन्तु घट पटाभाव से ही युक्त है, पट से नहीं, यही बोध होता है। इसी प्रकार परपर्यायों का अभाव विवक्षित पदार्थ में है इसका भी यही तात्पर्य निकलता है कि परपर्यायों का अभाव ही विवक्षित पदार्थ के साथ सबध है—परपर्यायों नहीं।

उत्तर—वस्तुतत्त्व का समीचीन परिज्ञान नहीं होने से यह शका की गई है। जब नास्तित्व का “उस उस रूप से नहीं होना” ऐसा तात्पर्य है तो फिर यह वस्तु का ही निजधर्म है। निजधर्म जो होता है वह एकान्ततः शून्यरूप नहीं होता है। इस तरह नास्तित्व के साथ सबध होने में कोई विरोध नहीं है। तात्पर्य इसका यह है कि शकाकार ने “नास्तित्व” का तात्पर्य “स्वरूपशून्य” मानकर जो उसका पदार्थ के साथ सबधाभाव स्थापित किया था उसका यहा यह उत्तर दिया गया है। नास्तित्व का भाव स्वरूपशून्यता नहीं है किन्तु उस उस रूप

छे” आ प्रकारना वाच्यार्थभा अये तात्पर्यं थोडु न नीकणे छे डे घट (घटा) पटनी साथे सभधित छे, पणु घट पटाभावथी न युक्त छे, पटथी नही, अये बोध थाय छे अये प्रकारे परपर्यायेनो अभाव विवक्षित पदार्थभा छे अये पणु अये तात्पर्यं नीकणे छे डे परपर्यायेनो अभाव न विवक्षित पदार्थनी साथे सभध छे—परपर्याये नही

उत्तर—वस्तुतत्त्वनु सपूर्व परिज्ञान न होवाथी आ शका उहाववाभा आवी छे अये नास्तित्वनु” ते ते रूपे न होवु” अये तात्पर्यं छे ते अये वस्तुनो न चेतानो धर्म छे अये चेतानो धर्म होय छे ते अयेकान्तत शून्यरूप होतो नथी आ शीते नास्तित्वनी साथे सभध होवामा डोछ विरोध नथी तेवु तात्पर्यं अये छे डे शकाकारे “नास्तित्व”नु तात्पर्यं “स्वरूपशून्य” मानीने तेनो पदार्थनी साथे अये सबधाभाव स्थापित कर्यो हुतो तेनो अही आ उत्तर आपवामा आव्यो छे नास्तित्वनो अर्थ स्वरूपशून्यता नथी पणु “ते ते

ननु नास्तित्वमभावरूपम्, अभावश्च स्वरूपशून्यस्तेन मह कथ सम्बन्धः, शून्यस्य सकलशक्ति विकलतया सम्बन्धशततेरभावात् ।

अन्यच्च—यदि परपर्यायाणां तत्र नास्तित्व, तर्हि नास्तित्वेन सह सम्बन्धो भवतु, परपर्यायैस्तु कथ सम्बन्धः ? । घटः पटामावेन संगठः इति न पटेनापि सह सम्बन्धो भवितुमर्हति, तथा प्रतीतेरभावात् ? ।

इसी तरह परपर्यायें नास्तित्वसमर्थ से विवक्षित पदार्थ की सबधी हैं इसका भी तात्पर्यार्थ यही है कि ये उसमें नहीं हैं । “परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं” इस रूपसे उनका व्यापदेश नहीं हो सकता है, ऐसा जो कहना है सो इसमें कोई आपत्ति नहीं है । शान्त्र भी तो यही कहते हैं कि अस्तित्व मुख से परपर्यायें विवक्षित पदार्थ की हैं ऐसा व्यापदेश नहीं हो सकता है । परन्तु नास्तित्वमुग्र से वहा उनका व्यपदेश होनेमें कोई लौकिक व्यवहार का अतिक्रम नहीं होता है ।

शका—नास्तित्व अभावरूप होता है । अभाव का तात्पर्य होता है स्वरूपशून्यता । तो फिर पदार्थका इस स्वरूपशून्यरूप नास्तित्व के साथ सबध कैसे बन सकता है । क्यों कि शून्यमें सकल शक्ति की विकलता होने से सबध स्थापित करने की शक्ति का सद्भाव माना ही कैसे जा सकता है । दूसरी बात एक यह भी है कि “विवक्षित पदार्थमें परपर्यायोंका नास्तित्व है” इस प्रकार के कथनमें यही फलितार्थ निकलता है कि पदार्थ का उन पर्यायों के साथ सबध नहीं है किन्तु नास्तित्व के साथ

पर्यायो नास्तित्व सञ्जघथी विवक्षित पदार्थनी सञ्जघी छे तेनु तात्पर्यं पञ्च अञ्ज छे के अजे तेमा नथी “ परपर्यायो विवक्षित पदार्थनी छे ” आ इपे तेमनेो व्यपदेश थछ शकतेो नथी, अजे अजे कछेपु छे तेमा डोअ आपत्ति नथी शास्त्रो पञ्च अजे कछे छे के अस्तित्वमुञ्जथी परपर्यायो विवक्षित पदार्थनी छे अजेो व्यापदेश थछ शकतेो नथी पञ्च नास्तित्वमुञ्जथी त्या तेवेो व्यपदेश थवाभा डोअ लौकिक व्यवहारनेो अतिक्रम थतेो नथी

शका—नास्तित्व अभावरूप होय छे अभावनु तात्पर्यं छे स्वरूपशून्यता तो पछी पदार्थनेो आ स्वरूप शून्यरूप नास्तित्वनी साथे सञ्जघ केवी रीते अनी शके ? अरए के शून्यमा सकल शक्तिनी विकलता होवाथी सञ्जघ स्थापित करवानी शक्तिनेो सहभाव मानी अ केवी रीते शकय ? अथ अजे वात अजे पञ्च छे के विवक्षित पदार्थमा परपर्यायोनो नास्तित्व छे आ प्रकारना कथनमा अजे इदितार्थ नीकजे छे के पदार्थनेो अजे पर्यायो साथे सञ्जघ नथी पञ्च नास्तित्वनी साथे छे अजेके “घट पराअवधी सञ्जघ

तथा चात्र प्रयोगः—यदनुपलब्धौ यस्यानुपलब्धिः स तस्य सम्बन्धी । यथा घटस्य रूपादयः । घटादि पर्यायानुपलब्धौ चाकारस्य न यथावस्थित स्वरूपेणोपलब्धिरिति ते तस्य सम्बन्धिनः ।

न चायमसिद्धो हेतुः, घटादि पर्यायरूपप्रतियोग्यपरिज्ञानात् तदभावात्मकस्याकारस्य तत्त्वतो ज्ञातत्वायोगात् ।

में तभी हो सकता है कि जब उसमें पर के—घटादि पर्यायों के—अभाव का बोध हो । जब तक इनका उनमें अभाव का बोध नहीं होगा तब तक अकार का वास्तविकरूप से परिज्ञान नहीं हो सकेगा । इस तरह अकार का यथार्थबोध होने के लिये घटादि पर्यायों का बोध होना आवश्यक है । इस दृष्टि से घटादि पर्याय भी अकार के सबधी हैं ऐसा कहा जाता है ।

यहा प्रयोग इस प्रकार है—जिसकी अनुपलब्धि होने पर जिसकी अनुपलब्धि होती है, वह उसका सबधी होता है—जैसे रूपादिक की अनुपलब्धि होने पर घट की अनुपलब्धि होती है । इसी प्रकार से घटादिपर्यायों की अनुपलब्धि में अकार की यथावस्थितरूप से उपलब्धि नहीं होती है इसलिये वे उसकी सबधिनी हैं ऐसा माना जाता है । इस अनुमान प्रयोग में हेतु असिद्ध नहीं है कारण घटादिपर्यायरूप जो प्रतियोगी पदार्थ है वह जतक परिज्ञात नहीं हो जाता है जतक उसके अभावरूप अकार का तत्त्वतः ज्ञान नहीं हो सकता है । इसलिये यह

७ थर् शडे छे के न्यारे तेमा परना—घटादि पर्यायोना—अभावना बोध थाय न्या सुधी तेमनामा तेमना अभावना बोध नही थाय त्या सुधी आठरनु वास्तवि-रूपे परिज्ञान थर् शशे नही आ शीते आठरना यथार्थ बोध थवाने भाटे घटादि पर्यायोना बोध थवे ते आवश्यक छे आ दृष्टिअे घटादि पर्याय पषु अकारनी सबधी छे अेम छडेवामा आवे छे

अर्ही प्रयोग आ प्रकारे छे—नेनी अनुपलब्धि थता नेनी अनुपलब्धि थाय छे ते तेनु सबधी छेय छे नेमके रूपादिनी अनुपलब्धि (अभाव) थता घडानी अनुपलब्धि छेय छे, अेम प्रमाणे घटादि पर्यायोनी अनुपलब्धिमा अठरनी यथावस्थित रूपे उपलब्धि थनी नथी ते जरबे तेओ तेनी सबधिनी छे अेम मानवामा आवे छे आ अनुमान प्रयोगमा हेतु असिद्ध नथी ठारबु छे घटादि पर्यायरूप ने प्रतियोगी पदार्थ छे ते न्या सुधी परिज्ञात थर् नतो नथी त्या सुधी तेना अभावरूप अकारनु तत्त्वत ज्ञान थर् शकर्तु नथी ते

परपर्याया न भवेद्युस्तर्हि 'अकारस्य स्वपर्यायाः' इति न व्यपदिश्येरन, परापेक्षया स्वव्यपदेशस्य संभवात्। ततः स्वपर्यायव्यपदेशकारणतया तेषु परपर्यायास्तस्योपयोगिन इति 'तस्ये' ति व्यपदिश्यन्ते । २ ।

अपि च — सर्वं वस्तु प्रतिनियतस्वभावं, प्रतिनियतस्वभावता च प्रतियोग्यभावात्मकतानिग्रहना । ततो यावन्न प्रतियोगिगणान भवति, तावन्नाधिकृत वस्तु तदभावात्मकं तत्त्वतो ज्ञातुं शक्यते । तथा च सति घटादि पर्यायाणामपि अभावप्रतियोगित्वात् तदगणान यावद् भवति तावन्नाधिकृत वस्तु तदभावात्मकं परिज्ञातमिति नाकारो यथात्मनाऽवगन्तुं शक्यते, इति घटादिपर्याया अप्यकारस्य पर्यायाः

यदि वे परपर्याये न हों तो ये अकार की स्वपर्याये हें ऐसा व्यपदेश ही नहीं हो सकेगा । कारण स्व व्यपदेश परापेक्ष है । इसलिये पर्याये में स्व व्यपदेश का कारण होने से वे परपर्याये भी उस विवक्षित पदार्थ की उपयोगी हें अतः उनमें " तस्य " ऐसा व्यपदेश होता है ॥ २ ॥

फिर भी—ससार की जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब प्रतिनियत स्वभाव वाली हैं । और यह प्रतिनियत स्वभावता उनमें प्रतियोगी पदार्थ के अभाव को लेकर ही आई हुई है । इसलिये यह ध्रुव सत्य है कि वस्तु अपने स्वभाव में प्रतिनियत है यह बात स्पष्टरूप से जानने के लिये प्रतियोगी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिये । तभी जाकर विवक्षित वस्तु में " प्रतियोगी पदार्थ का अभाव रहा हुआ है " ऐसा कहा जा सकता है ।

और भी " अकार की ये निज पर्याये हें " ऐसा बोध अकार पर्याये

छे त्पारे न 'स्व' नी शोभा छे ले अे परपर्याये न होत तो अे आकारनी स्वपर्याये छे अेवो व्यपदेश न थर् शकत नही कारण के स्व व्यपदेश परापेक्ष छे ते कारणे पर्यायेभा स्व व्यपदेशतु कारणे होवार्थि अे परपर्याये पणु ते विवक्षित पदार्थने उपयोगी थाय छे, तेथी तेभनाभा " तस्य " अेवो व्यपदेश थाय छे ॥ २ ॥

वणी ससारनी जेटली वस्तुअो छे ते अधी प्रतिनियत स्वभाववाणी छे अने अे प्रतिनियत स्वभावता तेभनाभा प्रतियोगी पदार्थना अभावने लीधे न आवेकी छे ते कारणे अे ध्रुव सत्य छे के वस्तु योताना स्वभावभा प्रतिनियत छे अे वात स्पष्टरूपे समजवाने भाटे प्रतियोगी पदार्थतु ज्ञान होतु नैधे अे त्पारे न विवक्षित वस्तुभा " प्रतियोगी पदार्थने अभाव रहेल छे " अेभ कही शक्य छे

वणी—"अकारनी अे स्वपर्याये छे" अेवो बोध अकार पर्यायेभा त्पारे

तथा चात्र प्रयोगः—यदनुपलब्धौ यस्यानुपलब्धिः स तस्य सम्बन्धी । यथा घटस्य रूपादयः । घटादि पर्यायानुपलब्धौ चाकारस्य न यथावस्थित स्वरूपेणोपलब्धिरिति ते तस्य सम्बन्धिनः ।

न चायमसिद्धो हेतुः, घटादि पर्यायरूपप्रतियोग्यपरिज्ञानात् तदभावात्मकस्याकारस्य तत्त्वतो ज्ञातत्वायोगात् ।

मे न भी हो सकता है कि जब उसमें पर के—घटादि पर्यायों के—अभाव का बोध हो । जब तक इनका उनमें अभाव का बोध नहीं होगा तब तक अकार का वास्तविकरूप से परिज्ञान नहीं हो सकेगा । इस तरह अकार का यथार्थबोध होने के लिये घटादि पर्यायों का बोध होना आवश्यक है । इस दृष्टि से घटादि पर्याय भी अकार के सबधी हैं ऐसा कहा जाता है ।

यहां प्रयोग इस प्रकार है—जिसकी अनुपलब्धि होने पर जिसकी अनुपलब्धि होती है, वह उसका सबधी होता है—जैसे रूपादिक की अनुपलब्धि होने पर घट की अनुपलब्धि होती है । इसी प्रकार से घटादिपर्यायों की अनुपलब्धि में अकार की यथावस्थितरूप से उपलब्धि नहीं होती है इसलिये वे उसकी सबधिनी हैं ऐसा माना जाता है । इस अनुमान प्रयोग में हेतु असिद्ध नहीं है कारण घटादिपर्यायरूप जो प्रतियोगी पदार्थ है वह जबतक परिज्ञात नहीं हो जाता है जबतक उसके अभावरूप अकार का तत्त्वतः ज्ञान नहीं हो सकता है । इसलिये यह

७ यथं शक्ये छे के न्यारे तेभा परना—घटादि पर्यायोना—अभावना बोध थाय न्या सुधी तेभनाभा तेभना अभावना बोध नही थाय त्या सुधी आकरनु वास्तविकरूपे परिज्ञान यथं शक्ये नही आ रीते आकारना यथार्थ बोध थवाने भाटे घटादि पर्यायोना बोध थवे ते आवश्यक छे आ दृष्टिअे घटादि पर्याय पणु अकारनी सबधी छे अेम कडेवामा आवे छे

अर्था प्रयोग आ प्रकारे छे—तेनी अनुपलब्धि थता तेनी अनुपलब्धि थाय छे ते तेनु सबधी छेय छे अेमके रूपादिकनी अनुपलब्धि (अभाव) थता घटानी अनुपलब्धि छेय छे, अेम प्रभावे घटादि पर्यायोनी अनुपलब्धिमा अकारनी यथावस्थित रूपे उपलब्धि थनी नथी ते कारणे तेओ तेनी सबधिनी छे अेम मानवामा आवे छे आ अनुमान प्रयोगमा छेतु असिद्ध नथी कारणे के घटादि पर्यायरूप अे प्रतियोगी पदार्थ छे ते न्या सुधी परिज्ञात यथं नती नथी त्या सुधी तेना अभावरूप अकारनु तत्त्वत ज्ञान यथं शक्यं नथी ते

પરપર્યાયા ન ભવેયુસ્તર્થિ 'અકારસ્ય સ્વપર્યાયાઃ' ઇતિ ન ત્ર્યપદિદ્યેરન્, પરા પેક્ષયા સ્વવ્યપદેશસ્ય સંમયાત્ । તતઃ સ્વપર્યાયવ્યપદેશકારણતયા તેષિ પરપર્યાયા સ્તસ્યોપયોગિન ઇતિ 'તસ્યે' તિ ત્ર્યપદિદ્યન્તે । ૨ ।

અપિ ચ — સર્વં વસ્તુ પ્રતિનિયતસ્વમાન, પ્રતિનિયતસ્વમાનતા ચ પ્રતિયોગ્યમા-
વાત્મકતાનિગ્ધના । તતો યાવન્ન પ્રતિયોગિત્રિગ્ધાન ભવતિ, તાવન્નાચિક્રુત વસ્તુ
તદભાગાત્મક તત્ત્વતો વાતુ શક્યતે । તથા ચ સતિ ઘટાદિ પર્યાયાણામપિ અમાત્ર
પ્રતિયોગિત્વાત્ તદપિગ્ધાનં યાવદ્ ભવતિ તાવન્નાચિક્રુત વસ્તુ તદભાગાત્મક પરિ
જ્ઞાતમિતિ નાકારો યયાત્મનાઽવગન્તુ શક્યતે, ઇતિ ઘટાદિપર્યાયા અપ્યકામસ્ય પર્યાયાઃ

યદિ વે પરપર્યાયે ન હોં તો વે અકાર કી સ્વપર્યાયે હું જેસા વ્યપદેશ
હી નહીં હો સકેગા । કારણ સ્વ વ્યપદેશ પરાપેક્ષ હૈ । ઇમલિયે પર્યાયો
મેં સ્વ વ્યપદેશ કા કારણ હોને સે વે પરપર્યાયે ભી ઉસ વિવક્ષિત પદાર્થ
કી ઉપયોગી હું અતઃ ઉનમેં “તસ્ય” જેસા વ્યપદેશ હોતા હૈ ॥ ૨ ॥

ફિર ભી—સસાર કી જિતની ભી વસ્તુએ હું વે સવ પ્રતિનિયત સ્વ-
ભાવ વાલી હું । ઓર યહ પ્રતિનિયત સ્વભાવતા ઉનમેં પ્રતિયોગી પદાર્થ
કે અભાવ કો લેકર હી આઈ હુઈ હૈ । ઇસલિયે યહ ધ્રુવ સત્ય હૈ કિ
વસ્તુ અપને સ્વભાવ મેં પ્રતિનિયત હૈ યહ વાત સ્પષ્ટરૂપ સે જાનને કે
લિયે પ્રતિયોગી પદાર્થ કા જ્ઞાન હોના ચાહિયે । તમી જાકર વિવક્ષિત
વસ્તુ મેં “પ્રતિયોગી પદાર્થ કા અભાવ રહા હુઆ હૈ” જેસા કહા જા
સકતા હૈ ।

ઓર ભી “અકાર કી વે નિજ પર્યાયે હું” જેસા વોધ અકાર પર્યાયો

છે ત્યારે જ ‘સ્વ’ ની શોભા છે જો એ પરપર્યાયો ન હોત તો એ આકારની
સ્વપર્યાયો છે એવો વ્યપદેશ જ થઈ શકત નહી કારણ કે સ્વ વ્યપદેશ
પરાપેક્ષ છે તે કારણે પર્યાયોમા સ્વ વ્યપદેશનું કારણ હોવાથી એ પરપર્યાયો
પણ તે વિવક્ષિત પદાર્થને ઉપયોગી થાય છે, તેથી તેમનામા “તસ્ય” એવો
વ્યપદેશ થાય છે ॥ ૨ ॥

વળી સસારની જેટલી વસ્તુઓ છે તે બધી પ્રતિનિયત સ્વભાવવાળી છે
અને એ પ્રતિનિયત સ્વભાવતા તેમનામા પ્રતિયોગી પદાર્થના અભાવને લીધે જ
આવેલી છે તે કારણે એ ધ્રુવ સત્ય છે કે વસ્તુ પોતાના સ્વભાવમા પ્રતિનિયત
છે એ વાત સ્પષ્ટરૂપે સમજવાને માટે પ્રતિયોગી પદાર્થનું જ્ઞાન હોવું જોઈ એ
ત્યારે જ વિવક્ષિત વસ્તુમા “પ્રતિયોગી પદાર્થને અભાવ રહેલ છે” એમ
કહી શકાય છે

વળી—“અકારની એ સ્વપર્યાયો છે” એવો વોધ અકાર પર્યાયોમા ત્યારે

तथा चात्र प्रयोग.—यदनुपलब्धौ यस्यानुपलब्धिः स तस्य सम्यग्धी । यथा घटस्य रूपादयः । घटादि पर्यायानुपलब्धौ चाकारस्य न यथावस्थित स्वरूपेणोपलब्धिरिति ते तस्य सम्यग्धिः ।

न चायमसिद्धो हेतुः, घटादि पर्यायरूपप्रतियोग्यपरिज्ञानात् तदभावात्मकस्याकारस्य तत्त्वतो ज्ञातत्वायोगात् ।

में तभी हो सकता है कि जब उसमें पर के—घटादि पर्यायों के—अभाव का बोध हो । जब तक इनका उनमें अभाव का बोध नहीं होगा तब तक अकार का वास्तविकरूप से परिज्ञान नहीं हो सकेगा । इस तरह अकार का यथार्थबोध होने के लिये घटादि पर्यायों का बोध होना आवश्यक है । इस दृष्टि से घटादि पर्याय भी अकार के सबधी हैं ऐसा कहा जाता है ।

यहा प्रयोग इस प्रकार है—जिसकी अनुपलब्धि होने पर जिसकी अनुपलब्धि होती है, वह उसका सबधी होता है—जैसे रूपादिक की अनुपलब्धि होने पर घट की अनुपलब्धि होती है । इसी प्रकार से घटादिपर्यायों की अनुपलब्धि में अकार की यथावस्थितरूप से उपलब्धि नहीं होती है इसलिये वे उसकी सबधिनी हैं ऐसा माना जाता है । इस अनुमान प्रयोग में हेतु असिद्ध नहीं है कारण घटादिपर्यायरूप जो प्रतियोगी पदार्थ है वह जयतक परिज्ञात नहीं हो जाता है जयतक उसके अभावरूप अकार का तत्त्वतः ज्ञान नहीं हो सकता है । इसलिये यह

न थध शउे छे के न्यारे तेमा परना-घटादि पर्यायोना-अभावने जोध थाय न्या सुधी तेमनामा तेमना अभावने जोध नहीं थाय त्या सुधी आठरनु वास्तविउरूपे परिज्ञान थध शउथे नहीं आरीते आठरने यथाथं जोध थवाने माटे घटादि पर्यायोना जोध थवे ते आवश्यक छे आ दृष्टिअे घटादि पर्याय पणु अठारनी सअधी छे अेम ठडेवामा आवे छे

अर्डी प्रयोग आ प्रकारे छे—नेनी अनुपलब्धि थता नेनी अनुपलब्धि थाय छे ते तेतु सअधी छेय छे नेमके रूपादिठनी अनुपलब्धि (अभाव) थता घडानी अनुपलब्धि छेय छे, अेम प्रमाणे घटादि पर्यायोनी अनुपलब्धिमा अठारनी यथावस्थित रूपे उपलब्धि थनी नथी ते कारणे तेअे तेनी सअधिनी छे अेम मानवामा आवे छे आ अनुमान प्रयोगमा हेतु असिद्ध नहीं कारणु के घटादि पर्यायरूप ने प्रतियोगी पदार्थ छे ते न्या सुधी परिज्ञात थध नते नथी त्या सुधी तेना अभावरूप अठारनु तत्त्वत ज्ञान थध शउतु नथी ते

તસ્માદ્ ઘટાદિપર્યાયા અવ્યકારસ્ય સમ્યન્ધિન इति स्वपर्यायापेक्षयाऽकारः सर्वद्रव्य पर्याय परिमाणः ।

एवमाकारादयोऽपि र्णाः सर्वे प्रत्येकं सर्वं द्रव्यपर्याय परिमाणा वेदितव्याः। एव घटादिकमपि प्रत्येकं सर्वं वस्तु जात परिभाषनीय, न्यायस्य समानत्वात् । न चैतदनापं, यत् उक्तमाचाराद्दे—

“ जे एग जाणइ, से सव्व जाणइ । जे सव्व जाणइ, से एग जाणइ । ”

अयमर्थः—य एक वस्तु सर्वपर्यायैः सह जानाति, न नियमेन सर्वं वस्तु जानाति । सर्वोपलब्धिमन्तरेण विरहितस्यैकस्य स्वपर्यायभेदभिन्नतया सर्वात्मनाऽवगन्तुमशक्यत्वात् यश्च सर्वं सर्वात्मनासाक्षाद् जानाति, स एक स्वपर्यायभेद भिन्न जानाति ।

मानना चाहिये कि घटादि परपर्याये भी अकार की समधी हैं । इस तरह अकार सर्वद्रव्य पर्याय भी परिमाणवाला सिद्ध हो जाता है । इस तरह और भी आकार आदि जो वर्ण हैं वे भी प्रत्येक सर्वद्रव्य-पर्यायप्रमाणानुरूप हैं यह सिद्ध हो जाता है । घटादिक जो वस्तुएँ हैं उनमें भी इस न्याय के समान होने से सर्वपर्यायप्रमाणता घटित हो जाती है । हमारा इस प्रकार का यह कथन आगम से प्रतिकूल नहीं पड़ता है, कारण आचाराद् में ऐसा ही कहा है—“ जे एग जाणइ से सव्व जाणइ, जे सव्व जाणइ से एग जाणइ ” इति । इसका भाव यह है कि जो एक जीवादिक वस्तु को अपनी २ समस्त पर्यायों सहित जानता है वह नियम से समस्त वस्तुओं को जानता है । विवक्षित एक वस्तु का “ यह अपनी समस्त पर्यायों से सहित है तथा परपर्यायों का इसमें

કારણે એમ માનવું બેઠંએ કે ઘટાદિ પરપર્યાયો પણ અકારની સખધી છે આ રીતે અકાર સર્વદ્રવ્યપર્યાય પરિણામવાળો સિદ્ધ થઈ બન્ય છે એજ રીતે બીજા પણ અકાર આદિ ને વર્ણુન છે તેઓ પણ પ્રત્યેક સર્વદ્રવ્યપર્યાય પ્રમાણાનુરૂપ છે તે સિદ્ધ થઈ બન્ય છે ઘટાદિક ને વસ્તુઓ છે તેમનામા પણ આ ન્યાયથી સમાનતા હોવાથી સર્વપર્યાય પ્રમાણતા ઘટિત થઈ બન્ય છે આમાડે એ પ્રકારનું આ કથન આગમથી વિરુદ્ધ જતું નથી કારણુ કે આચારાગમા એવું જ કહ્યું છે—“ જે એગ જાણइ સે સવ્વ જાણइ, જે સવ્વ જાણइ સે એગ જાણइ ” તેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે એક જીવાદિક વસ્તુને પોતા પોતાની સમસ્ત પર્યાયો સહિત બાણે “ આ પોતા” મથી સમસ્ત વસ્તુઓને બાણે છે વિવક્ષિત એક વસ્તુને “ યુક્ત છે તથા પરપર્યાયોને તેમા અલાવ છે ”

अन्यत्राप्युक्तम्—

“ एको भावः सर्वथा येन दृष्टः,

सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।

सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः,

एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ” ॥ १ ॥

तदेवमकारादिकर्माप वर्णजात केवलज्ञानवत् सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणमिति न कश्चिद्विरोधः ।

अपि च—केवलज्ञानपि स्वपरपर्यायभेदभिन्न भवति । तच्चात्मस्वभावरूप न अभाव है ” ऐसा बोध जवतक नहीं होगा तवतक वह वस्तु सर्वात्मना जानी हुई नहीं कहला सकेगी । अतः जब वह इस रूप से जान ली जाती है तो इसका तात्पर्य ही यह है कि उस जानने वाले को सर्व पदार्थ की उपलब्धि हो चुकी है तभी वह विवक्षित वस्तु को सर्व पर्यायों सहित जान सका है । इसी तरह जो सर्व वस्तु को सर्वात्मना साक्षात् जानता है वह एक वस्तु को स्वपरपर्याय के भेदरूप से जानता है । अन्यत्र भी इसी बात की पुष्टि इस प्रकार से की है—

“ एको भावः सर्वथा येन दृष्ट , सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।

सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥१॥ ” इति ।

इस तरह अकार आदि समस्त वर्ण समूह केवलज्ञान की तरह सर्वद्रव्यपर्यायों के प्रमाणानुरूप है इस कथन में कोई विरोध नहीं आता है ।

अथेवा ज्ञेयं न्या सुधी नही थाय त्या सुधी ते वस्तु सर्वात्मना लक्ष्मी कही शकशे नहीं तेथी जे ते अे रूपे लक्ष्मी देवाय छे तो तेनु तात्पर्य न अे छे के ते लक्षणराने सर्व पदार्थनी उपलब्धि थई गई छे त्यारे न ते विवक्षित वस्तुने सर्वपर्याये सहित लक्ष्मी शक्ये छे आ रीते जे सर्ववस्तुने सर्वात्मना प्रत्यक्ष पळे छे ते अेक वस्तुने स्वरूप पर्यायना लेदरूपथी लक्ष्मे छे अन्यत्र पळु अेन वातनी पुष्टि आ रीते करी छे—

“ एको भावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।

सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥१॥ ”

आ रीते अकार आदि समस्त वर्णसमूह केवलज्ञाननी जेभ सर्वद्रव्य पर्यायोना प्रमाणानुरूप छे आ कथनमा कोई विरोध नउता नथी.

તસ્માદ્ ઘટાદિપર્યાયા અપ્યકારસ્ય સમ્પન્ધન ઇતિ સ્વપર્યાયાપેશ્રયા-કારઃ
સર્વદ્રવ્ય પર્યાય પરિમાણઃ ।

एवमाकारादयोऽपि वर्णाः सर्वे प्रत्येकं सर्वं द्रव्यपर्याय परिमाणा वेदितव्याः।
एव घटादिकमपि प्रत्येकं सर्वं उक्तुं जात परिभाषनीयं, न्यायस्य समानत्वात् । न
चैतदनापं, यत उक्तमाचाराद्दे—

“ जे एग जाणइ, से सब्ब जाणइ । जे सब्ब जाणइ, से एगं जाणइ । ”

अयमर्थः—य एक वस्तु सर्वपर्यायैः सह जानाति, स नियमेन सर्वं वस्तु
जानाति । सर्वोपलब्धिमन्तरेण प्रिदितस्यैकस्य स्वपर्यायभेदभिन्नतया सर्वात्मना
ऽवगन्तुमशक्यत्वात् यथा सर्वं सर्वात्मनासाक्षाद् जानाति, स एक स्वपर्यायभेद
भिन्न जानाति ।

मानना चाहिये कि घटादि परपर्याये मी अकार की सम्धी हैं। इस
तरह अकार सर्वद्रव्य पर्याय भी परिमाणवाला सिद्ध हो जाता है।
इस तरह और भी आकार आदि जो वर्ण हैं वे भी प्रत्येक सर्वद्रव्य-
पर्यायप्रमाणानुरूप हैं यह सिद्ध हो जाता है। घटादिक जो वस्तुएँ हैं
उनमें भी इस न्याय के समान होने से सर्वपर्यायप्रमाणता घटित हो
जाती है। हमारा इस प्रकार का यह कथन आगम से प्रतिकूल नहीं
पढता है, कारण आचाराङ्ग में ऐसा ही कहा है—“ जे एग जाणइ से
सब्व जाणइ, जे सब्व जाणइ से एग जाणइ ” इति । इसका भाव यह
है कि जो एक जीवादिक वस्तु को अपनी २ समस्त पर्यायों सहित जानता
है वह नियम से समस्त वस्तुओं को जानता है। विवक्षित एक वस्तु
का “ यह अपनी समस्त पर्यायों से सहित है तथा परपर्यायों का इसमें

કારણે એમ માનવું બેઠાએ કે ઘટાદિ પરપર્યાયો પણ અકારની સબ્ધી છે આ
રીતે અકાર સર્વદ્રવ્યપર્યાય પરિણામવાળો સિદ્ધ થઈ બંધ છે એજ રીતે બીજા
પણ અકાર આદિ ને વર્ણન છે તેઓ પણ પ્રત્યેક સર્વદ્રવ્યપર્યાય પ્રમાણાનુરૂપ
છે તે સિદ્ધ થઈ બંધ છે ઘટાદિક ને વસ્તુઓ છે તેમનામા પણ આ ન્યાયથી
સમાનતા હોવાથી સર્વપર્યાય પ્રમાણતા ઘટિત થઈ બંધ છે અમારૂં એ પ્રકારનું
આ કથન આગમથી વિરૂદ્ધ જતું નથી કારણ કે આચારાગમા એવું જ કહ્યું
છે—“ જે એગ જાણઈ સે સબ્બ જાણઈ, જે સબ્બ જાણઈ સે એગ જાણઈ ” તેટલું
તાત્પર્ય એ છે કે જે એક જીવાદિક વસ્તુને પોતા પોતાની સમસ્ત પર્યાયો
સહિત બાણે છે તે નિયમથી સમસ્ત વસ્તુઓને બાણે છે વિવક્ષિત એક વસ્તુને
“ આ પોતાની સમસ્ત પર્યાયોચુક્ત છે તથા પરપર્યાયોને તેમા અભાવ છે ”

सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्तभागरूपा, परपर्यायास्तु स्वपर्यायरूपानन्ततमभागोनाः सर्वद्रव्यपर्यायाः । तस्मादकारादिकं स्वपरपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं भवति ।

यथा चाऽकारादिकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तथा मत्यादीन्यपि ज्ञानानि द्रष्टव्यानि, न्यायस्य समानत्वात् ।

इह यद्यपि सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षरं मुच्यते, सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं च भवति, तथापि श्रुताधिकारादिहाक्षरं श्रुतज्ञानं ग्राह्यम् । श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभूतं, ततो मतिज्ञानमपि । तदेव श्रुतज्ञानमकारादिकं चोत्कर्षतः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं,

स्व और परपर्यायों द्वारा जाननी चाहिये । अकार आदि वर्णों में जो स्वपर्याय हैं वे तो सर्व द्रव्यपर्यायों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं, तथा जो परपर्याय हैं वे वहाँ स्वपर्यायरूप अनन्तवें भागहीन सर्वद्रव्यपर्याय-प्रमाण हैं । इसलिये अकारादि में स्व एव परपर्यायों द्वारा ही सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाणता सिद्ध होती है ।

जिस प्रकार अकारादि सर्व द्रव्यपर्याय परिमाणवाले प्रकट किये गये हैं उसी प्रकार मति आदि ज्ञानों में भी यह सर्व द्रव्यपर्यायप्रमाणता जान लेनी चाहिये । क्यों कि न्याय सर्वत्र समान होता है ।

यहाँ पर यद्यपि सामान्यरूपसे समस्त ज्ञान अक्षररूपसे कहा गया है और वह सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणरूप बतलाया गया है, तो भी श्रुत का अधिकार होनेसे यह अक्षर शब्दसे श्रुतज्ञानका ग्रहण करना चाहिये । श्रुतज्ञान मतिज्ञानका अविनाभावी होता है इस अपेक्षासे उसमें भी सर्व द्रव्यपर्याय प्रमाणता सिद्ध हो जाती है । इस तरह श्रुतज्ञान

आदि वस्तुओं के स्वपर्यायों से तो तो सर्वद्रव्यपर्यायोंना अनन्तभाग प्रमाण है, तथा के परपर्यायों से तो त्या स्वपर्यायरूप अनन्त भागहीन सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाण से तो द्वारा अकारादिमा स्व अने परपर्यायों द्वारा के सर्वद्रव्यपर्याय प्रमाणता सिद्ध था है

के रीते अकारादि सर्वद्रव्यपर्यायवाणा प्रकट करे है अने रीते मति आदि ज्ञानोंमा पण अने सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाणता समष्टि लेवी द्वारा के सर्वत्र न्याय समान के होय है

अर्थात् जो के सामान्यरूपे समस्तज्ञान अक्षररूपे कहेवामा आशु है अने तो सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणरूप अभाववामा आशु है, तो पण श्रुतने अधिकार होवाथी अर्थात् अक्षर शब्दथी श्रुतज्ञानने ग्रहण करवु लेथी श्रुतज्ञान मति ज्ञान अविनाभावी होय है तो अपेक्षासे तेमा पण सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाणता

તુ ઘટાદિવસ્તુસ્વમાયાત્મકમ્ । તસ્માદ્ યે ઘટાદિવસ્તુનઃ સ્વમાયાસ્તે કેવલજ્ઞાનસ્ય પરપર્યાયાઃ, યે તુ પરિચ્છેદકત્વ સ્વમાયાસ્તે સ્વપર્યાયાઃ । પરપર્યાયા અપિ પૂર્વોક્તયુક્તેસ્તસ્ય સમ્યન્ધિન ઇતિ સ્વપરપર્યાયભેદમિન્ન મતિ ।

તતઃ સ્વપર્યાયપરિમાણચિન્તાયાં પરમાર્થતો ન કશ્ચિદ્કારાદિ મંયુક્તશ્રુત-કેવલજ્ઞાનયોર્વિશેષઃ । एतायानेय विशेषः—केवलज्ञान स्वपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणतुल्यम् । अकारादिक तु स्वपर्यायैः । तथाहि—अकारस्य स्वपर्यायाः—

ફિર મી-કેવલજ્ઞાન મેં મી સ્વપર્યાય કી ભિન્નતા સે ભેદ સિદ્ધ હોતા હૈ । આત્મસ્વભાવરૂપતા યહ કેવલજ્ઞાનકી નિજ પર્યાય હૈ । તથા ઘટાદિ-રૂપ જો વસ્તુ હૈ તદાત્મકતા ઉસમેં નહીં હૈ યહ કેવલજ્ઞાન કી પરપર્યાય હૈ । કેવલજ્ઞાન મેં આત્મસ્વભાવરૂપતા જો નિજપર્યાય હૈ ઉસકા તાત્પર્ય પદાર્થ પરિચ્છેદક સ્વભાવ સે હૈ । જિસ્ પ્રકાર નિજપર્યાય કેવલજ્ઞાન કી સવધી માની ગઈ હૈ ઉસી પ્રકાર પૂર્વોક્તયુક્તિ કે અનુસાર પરપર્યાય મી ઉસકી સવધી હોતી હૈ । ઇસ તદ્દર કેવલજ્ઞાન મેં ઇન દોનોં પર્યાયોં કી ભિન્નતા સે ભેદ આ જાતા હૈ ।

જવ ઇસ પ્રકાર સે સ્વપર્યાયપરિમાણ કા વિચાર કિયા જાતા હૈ તથ પરમાર્થતઃ અકારાદિ સયુક્ત શ્રુતજ્ઞાન મેં ઓર કેવલજ્ઞાન મેં યદ્યપિ કોઈ ભેદ નહી પ્રતીત હોતા હૈ । પરન્તુ ફિર મી કેવલજ્ઞાન મેં જો સર્વદ્રવ્ય-પર્યાય પરિમાણ તુલ્યતા કહી ગઈ હૈ વહ સ્વપર્યાયોં સે હી જાનની ચાહિયે । પરપર્યાયો દ્વારા નહી । ઓર અકારાદિકોં મેં યહ સર્વદ્રવ્યપર્યાયપરિમાણતા

તથા-કેવલજ્ઞાનમા પશુ સ્વપર્યાય અને પરપર્યાયની ભિન્નતાથી ભેદ સિદ્ધ થાય છે આત્મસ્વભાવરૂપતા એ કેવલજ્ઞાનની સ્વપર્યાય છે તથા ઘટાદિરૂપ જે વસ્તુઓ છે તેમા તદાત્મકતા નથી, તે કેવલજ્ઞાનની પરપર્યાય છે કેવલજ્ઞાનમા આત્મસ્વભાવરૂપતા જે સ્વપર્યાય છે તેનું તાત્પર્ય પદાર્થ પરિચ્છેદક સ્વભાવ છે જેમ સ્વપર્યાય કેવલજ્ઞાનની સબધી માનવામા આવી છે એમ પૂર્વોક્ત યુક્તિ પ્રમાણે પરપર્યાય પણ તેની સબધી હોય છે આ રીતે એ બન્ને પર્યાયોની ભિન્નતાથી કેવલજ્ઞાનમા ભેદ આવી બચ છે

બ્યારે આ રીતે સ્વપર્યાય પરિમાણને વિચાર કરવામા આવે છે ત્યારે પરમાર્થત આકારાદિ સયુક્ત શ્રુતજ્ઞાનમા અને કેવલજ્ઞાનમા એ કે કોઈ ભેદ લાગતો નથી, છતાં પણ કેવલજ્ઞાનમા જે સર્વદ્રવ્યપર્યાય પરિમાણ તુલ્યતા કહેલ છે તે સ્વપર્યાયોથી જ બાહુવી જોઈએ, પરપર્યાયો દ્વારા નહીં અને આકારાદિકોમા આ સર્વદ્રવ્યપર્યાય પરિમાણતા સ્વ અને પરપર્યાયો દ્વારા બાહુવી જોઈએ આકાર

सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्तभागरूपा, परपर्यायास्तु स्वपर्यायरूपानन्ततमभागोनाः सर्वद्रव्यपर्यायाः । तस्मादकारादिक स्वपरपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण भवति ।

यथा चाऽकारादिक सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण तथा मत्यादीन्यपि ज्ञानानि द्रष्टव्यानि, न्यायस्य समानत्वात् ।

इह यद्यपि सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षर मुच्यते, सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण च भवति, तथापि श्रुताधिकारादिहाक्षर श्रुतज्ञान ग्राह्यम् । श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभूतं, ततो मति ज्ञानमपि । तदेव श्रुतज्ञानमकारादिक चोत्कर्षतः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण,

स्व और परपर्यायों द्वारा जाननी चाहिये । अकार आदि वर्णों में जो स्वपर्याय हैं वे तो सर्व द्रव्यपर्यायों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं, तथा जो परपर्याय हैं वे वहा स्वपर्यायरूप अनन्तवें भागहीन सर्वद्रव्यपर्याय-प्रमाण हैं । इसलिये अकारादि में स्व एव परपर्यायों द्वारा ही सर्वद्रव्य-पर्यायप्रमाणता सिद्ध होती है ।

जिस प्रकार अकारादि सर्व द्रव्यपर्याय परिमाणवाले प्रकट किये गये हैं उसी प्रकार मति आदि ज्ञानों में भी यह सर्व द्रव्यपर्यायप्रमाणता जान लेनी चाहिये । क्यों कि न्याय सर्वत्र समान होता है ।

यहा पर यद्यपि सामान्यरूपसे समस्त ज्ञान अक्षररूपसे कहा गया है और वह सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणरूप बतलाया गया है, तो भी श्रुत का अधिकार होनेसे यहा अक्षर शब्दसे श्रुतज्ञानका ग्रहण करना चाहिये । श्रुतज्ञान मतिज्ञानका अविनाभावी होता है इस अपेक्षासे उसमें भी सर्व द्रव्यपर्याय प्रमाणता सिद्ध हो जाती है । इस तरह श्रुतज्ञान

आदि वस्तुओं में स्वपर्यायों के ते तो सर्वद्रव्यपर्यायोंना अनन्तभाग प्रमाण है, तथा वे परपर्यायों के ते त्या स्वपर्यायद्रव्य अनन्तभागहीन सर्वद्रव्य पर्यायप्रमाण है ते कारणे अकारादिमा स्व अने परपर्यायों द्वारा वे सर्वद्रव्य पर्याय प्रमाणता सिद्ध थाय है

वे रीते अकारादि सर्वद्रव्यपर्यायवाला प्रकट करेले के अने रीते मति आदि ज्ञानोंमा पण्ये सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाणता समझ लेवी कारणे के सर्वत्र न्याय समान है होय है

अर्थात् वे के सामान्यद्रव्य समस्तज्ञान अक्षररूप में उद्देवाभा आण्यु है अने ते सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणरूप अतापवाभा आण्यु है, तो पण्यु श्रुतना अधिकार होवाथी अर्थात् अक्षर शब्दही श्रुतज्ञानने अहण्यु करणु अर्थात् श्रुतज्ञान मति ज्ञाननु अविनाभावी होय है ते अपेक्षासे तेमा पण्यु सर्वद्रव्यपर्यायप्रमाणता

તથા સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતકેવલિનો દ્વાન્દ્વાદ્વિદ' સંભવતિ, ન તુ ગેપમ્ય । તસ્માત્
અનાદિભાવઃ શ્રુતસ્ય જન્ત્ના જઘન્યો મપ્યમો યા દ્રઢ્યો નતત્કૃષ્ટ ઇતિ સ્થિતમ્ ।

નત્તુ શ્રુતસ્થાનાદિભાવ ણ્વક્યમુપસપઘતે-યદા દિ સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતજ્ઞાનાવરણ-
સ્થાનદ્વિનિદ્રારૂપદર્શનાવરણોદયઃ-સંભવતિ, તદા માન્યેન શ્રુતસ્થાવરણ સમા
વ્યતે, યથાડ્વધ્યાદિ ગાનમ્ય । તસ્માદ્વધ્યાદિજ્ઞાનમિવ શ્રુતમપિ-આદિમદિતિજ્ય
તૃતીય ચતુર્થમદ્વસમયસ્તત આહ-' સત્ત્વ જીવાણપિ૦ ' ઇત્યાદિ । મર્ગજીવાનામપિ ચ

ઔર અકાર આદિ અક્ષરોંમેં જો યહ ઉત્કૃષ્ટરૂપસે મર્વત્રવ્ય પર્ગાંયપ્રમા
ણતા પ્રકૃટ કી ગર્હૈ હૈ વહ દ્વાદશાંગકે પાટી સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતકેવલીકી
અપેક્ષાસે હી જાનની યાહિયે । ક્યોંકિ વહોં પર યહ ઉત્કૃષ્ટતા સમ્બવિત
હોતી હૈ અન્ય જીવોં કે શ્રુતજ્ઞાન આદિમેં નહીં । કારણ કિ વહાં પર
શ્રુતકા અનાદિભાવ જઘન્ય યા મધ્યમરૂપસે વતલાયા ગયા હૈ । ઉત્કૃષ્ટ
રૂપસે નહીં ।

શકા-શ્રુતમેં જો અનાદિતા પ્રકૃટ કી ગર્હૈ હૈ વહ સમજમેં નહીં
આતી હૈ । કારણ જન જીવ કે સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુત જ્ઞાનાવરણકા સ્થાનદ્વિકા
એવ નિદ્રારૂપ દર્શનાવરણ કર્મકા ઉદય હોતા હૈ તન ઉસ સ્થિતિમેં સપૂર્ણ
રૂપસે શ્રુતકા આવરણ હો જાતા હૈ । જિસ પ્રકાર કિ અવધિજ્ઞાનાવરણી
કે ઉદયમેં અવધિ જ્ઞાનકા આવરણ હો જાતા હૈ । અતઃ યહ કૈસે માના
જા સકતા હૈ કિ શ્રુતજ્ઞાન અનાદિ હૈ । અવધિજ્ઞાન આદિ કી તરહ વહ
મી સાદિ હી હૈ ઔર ઇસ તરહ ઉસમે યે તૃતીય ઔર ચતુર્થ ભગ
સમ્બવિત નહીં હોતે હૈ ।

સિદ્ધ થઈ બંધ છે આ રીતે શ્રુતજ્ઞાન અને અકારાદિ અક્ષરોમા જે આ ઉત્કૃષ્ટ
રૂપે સર્વદ્રવ્યપર્યાયપ્રમાણતા પ્રગટ કરવામા આવી છે તે દ્વાદશાંગના પાટી સર્વો
ત્કૃષ્ટ શ્રુતકેવળીની અપેક્ષાએ જ બંધવી બેઠીએ કારણ કે ત્યા જ તે ઉત્કૃષ્ટતા
સંભવિત હોય છે અન્ય જીવોના શ્રુતજ્ઞાન આદિમા નહી કારણ કે ત્યા શ્રુતનો
અનાદિ ભાવ જઘન્ય કે મધ્યમરૂપે બતાવવામા આવ્યો છે, ઉત્કૃષ્ટ રૂપે નહી

શકા-શ્રુતમા જે અનાદિતા પ્રગટ કરવામા આવી છે તે સમ્બવતી નથી
કારણ કે બ્યારે જીવના સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુત જ્ઞાનાવરણના સ્થાનદ્વિકા અને નિદ્રારૂપ
દર્શનાવરણ કર્મનો ઉદય થાય છે ત્યારે તે સ્થિતમા સપૂર્ણરૂપેશ્રુતનુ આવરણ
થઈ બંધ છે, જેમ અવધિજ્ઞાનવરણીના ઉદયમા અવધિજ્ઞાનનુ આવરણ થઈ
બંધ છે તેમ શ્રુતમા પણ થાય છે તેથી શ્રુતજ્ઞાન અનાદિ છે એમ કેવી
રીતે માની શકાય! અવધિજ્ઞાન આદિની જેમ તે પણ સાદી જ છે અને આ
રીતે તેમા એ ત્રીજા અને ચોથો ભગ સંભવિત હોતા નથી

अक्षरस्य श्रुतज्ञानस्य, श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभावि, अतो मतिज्ञानस्यापीत्यर्थः, अनन्तभागः-अनन्तमो भागः, नित्योद्घाटितः-सदाऽनावृतस्तिष्ठतीत्यर्थः । स पुनरनन्ततमभागोऽप्यनेकविधः । तत्र सर्वजघन्योभागश्चैतन्यमात्रम् । तत्पुनः सर्वोत्कृष्टश्रुतावरण-स्त्यानद्धिनिद्रोदयभावेऽपि ना त्रियते, तथा जीवस्वभावत्वात्, तदेवाह -' जड़पुण० ' इत्यादि । यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत, तेन-आवरणेन, जीवः-चैतन्यलक्षणः, अजीत्व प्राप्नुयात्-स्वलक्षणपरित्यागादिति भावः । न चैतद् दृष्टमिदं

उत्तर—समस्त जीवोंका जो ३ तजान है तथा मतिज्ञान है वह सदा अपने अनन्तवें भाग में अनावृत ही रहा करता है अतः उसका आवरण नहीं होता है । तात्पर्य इसका यह है कि जो शकाकारने श्रुतज्ञानमें अनादिताका आवरण दशामें असद्भाव प्रकट किया है उसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि ठीक है आवरण दशामें यद्यपि अवधि आदि ज्ञान विलकुल आवृत्त हो जाते हैं परन्तु मतिज्ञान एव श्रुतज्ञानमें ऐसा नहीं है । वे तो अपनी आवृत्तदशामें भी अनन्तवें भाग में सदा अनावृत्त रहा करते हैं । मतिज्ञान श्रुतज्ञानका जो अनन्तवां भाग है वह अनेक प्रकारका बतलाया गया है । उसमें सर्व जघन्य जो भाग है वह मात्र चैतन्यरूप पडता है । यह चैतन्यरूप सर्व जघन्य भाग सर्वोत्कृष्टश्रुतावरण, स्त्यानद्धि एव निद्रावरण कर्मके उदयमें भी आवृत्त नहीं होता है कारण जीवका स्वभाव ही ऐसा है । यदि यह स्वभाव भी आवृत्त माना जावे तो इस दशामें चैतन्य लक्षण जीवमें अपने लक्षणके परित्यागके

उत्तर—समस्त जीवोंके श्रुतज्ञान तथा मतिज्ञान छे, ते सदा पोताना अनन्तमा भागमा अनावृत न रह्या करे छे तेथी तेनु आवरण छोटु नथी तेनु तात्पर्य छे छे के शकाकारने के श्रुतज्ञानमा अनादिताने आवरण दशामा असद्भाव प्रकट कर्यो छे तेने नवाथ आपता सूत्रकार कहे छे के आवरण दशामा ने के अवधि आदि ज्ञान विलकुल आवृत्त थई नथ छे पण मतिज्ञान अने श्रुतज्ञानमा ओषु थतु नथी ते तो पोतानी आवृत्त दशामा पण अनन्तमा भागमा सदा अनावृत रह्या करे छे मतिज्ञान श्रुतज्ञानने ने अनेकमा भाग छे ते अनेक प्रकारने बतल्यो छे तेमा सर्वजघन्य के भाग छे ते मात्र चैतन्यरूप पडे छे आ चैतन्यरूप सर्वजघन्य भाग सर्वोत्कृष्टश्रुतावरण, स्त्यानद्धि अने निद्रावरण कर्मना उदयमा पण आवृत्त थतो नथी, कारण के एवने स्वभाव न ओषो छे ने ते स्वभाव पण आवृत्त मानवामा आवे तो अे दशामा चैतन्यलक्षण एवमा पोताना लक्षणमा परित्यागने कारणे अणुत्वनी प्रसक्ति न० ६६

તથા સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતકેવલિનો દ્વાન્દ્વાગ્રહિત્ સંમરતિ. ન તુ ગેપસ્ય । તસ્માત્ અનાદિભાવઃ શ્રુતસ્ય જન્તનાં જઘન્યો મધ્યમો યા દ્રષ્ટ્યો ન તત્કૃષ્ટ ઇતિ સ્થિતમ્ ।

નન્નુ શ્રુતસ્થાનાન્નિભાવ ણ્વરુપમુપમપદ્યતે-યદા હિ સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતજ્ઞાનાવરણ-સ્થાનદ્વિનિદ્રારૂપદર્શનાવરણોદયઃ-સંમરતિ, તદા ગાયન્તેન શ્રુતસ્થાવરણ સમા વ્યતે, યથાઽવ્યાયાદિ જ્ઞાનમ્ય । તસ્માદગ્ર્યાદિજ્ઞાનમિવ શ્રુતમપિ-આદિમરિતિક્ય તૃતીય ચતુર્થમદ્ગસમસ્તત આદ- ' સત્ત્વ જીવાણપિ૦ ' ડ્યાદિ । મર્ગજીવાનામપિ ચ ઓર અકાર આદિ અક્ષરોંમેં જો ગ્રહ ઉત્કૃષ્ટરૂપસે સર્વદ્રવ્ય પર્યાયપ્રમાણતા પ્રકટ કી ગઈ હૈ વહ ઠાદજાંગકે પાઠી સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતકેવલીકી અપેક્ષાસે હી જાનની ચાલિયે । ક્યોં કિ વર્ણે પર વહ ઉત્કૃષ્ટતા સમ્ભવિત્ હોતી હૈ અન્ય જીવોં કે શ્રુતજ્ઞાન આદિમેં નહોં । કારણ કિ વર્ણ પર શ્રુતકા અનાદિભાવ જઘન્ય યા મધ્યમરૂપસે પતલાયા ગયા હૈ । ઉત્કૃષ્ટ રૂપસે નહોં ।

શકા—શ્રુતમેં જો અનાદિતા પ્રકટ ફી ગઈ હૈ વહ સમજમેં નહોં આતી હૈ । કારણ જવ જીવ કે સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુત જ્ઞાનાવરણકા સ્થાનદ્વિકા એવ નિદ્રારૂપ દર્શનાવરણ કર્મકા ઉદય હોતા હૈ તવ ઉસ સ્થિતિમેં સપૂર્ણ રૂપસે શ્રુતકા આવરણ હો જાતા હૈ । જિસ પ્રકાર કિ અવધિજ્ઞાનાવરણી કે ઉદયમેં અવધિ જ્ઞાનકા આવરણ હો જાતા હૈ । અતઃ વહ કૈસે માના જા સકતા હૈ કિ શ્રુતજ્ઞાન અનાદિ હૈ । અવધિજ્ઞાન આદિ કી તરહ વહ મી સાદિ હી હૈ ઓર ઇસ તરહ ઉસમેં યે તૃતીય ઓર ચતુર્થ ભગ સમ્ભવિત્ નહોં હોતે હૈ ।

સિદ્ધ થઈ બંધ છે આ રીતે શ્રુતજ્ઞાન અને અકારાદિ અક્ષરોંમા જે આ ઉત્કૃષ્ટ રૂપે સર્વદ્રવ્યપર્યાયપ્રમાણતા પ્રગટ કરવામા આવી છે તે દ્વાદશાગના પાઠી સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુતકેવળીની અપેક્ષાએ જ બાણવી જોઈએ કારણ કે ત્યા જ તે ઉત્કૃષ્ટતા સંભવિત હોય છે અન્ય જીવોના શ્રુતજ્ઞાન આદિમા નહીં કારણ કે ત્યા શ્રુતનો અનાદિ ભાવ જઘન્ય કે મધ્યમરૂપે બતાવવામા આવ્યો છે, ઉત્કૃષ્ટ રૂપે નહીં

શકા—શ્રુતમા જે અનાદિતા પ્રગટ કરવામા આવી છે તે સમજતી નથી કારણ કે જ્યારે જીવના સર્વોત્કૃષ્ટ શ્રુત જ્ઞાનાવરણના સ્થાનદ્વિકા અને નિદ્રારૂપ દર્શનાવરણ કર્મનો ઉદય થાય છે ત્યારે તે સ્થિતમા સપૂર્ણરૂપે શ્રુતનું આવરણ થઈ બંધ છે, જેમ અવધિજ્ઞાનવરણીના ઉદયમા અવધિજ્ઞાનનું આવરણ થઈ બંધ છે તેમ શ્રુતમા પણ થાય છે તેથી શ્રુતજ્ઞાન અનાદિ છે એમ કેવી રીતે માની શકાય! અવધિજ્ઞાન આદિની જેમ તે પણ સાદી જ છે અને આ રીતે તેમા એ ત્રીજો અને ચોથો ભગ સંભવિત હોતો નથી

‘સે તં’ ઇત્યાદિ । તદેતદ્ સાદિક સપર્યવસિત શ્રુતં વર્ણિતમ્ । તથા—તદેતદનાદિક-મપર્યવસિત ચ શ્રુત વર્ણિતમ્ ॥ સૂ. ૪૨ ॥

મૂલમ્—સે કિં ત ગમિય ? । ગમિય દિદ્વિવાઓ । સે કિં તં અગમિયં ? । અગમિયં કાલિયં સુયં । સે તં ગમિયં । સે ત અગમિયં ॥

છાયા—અથ કિં તદ્ ગમિકમ્ ? । ગમિકં દષ્ટિપાદઃ । અથ કિં તદગમિકમ્ ? । અગમિક કાલિક શ્રુતમ્ । તદેતદ્ ગમિકમ્ । તદેતદ્ અગમિકમ્ ॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૃચ્છતિ—‘સે કિં ત ગમિયં’ ઇતિ । અથ કિં તદ્ ગમિકમ્ ? ઇતિ શિષ્ય મત્ર ? । ઉત્તરમાહ—‘ગમિયં’ ઇત્યાદિ । ગમિક દષ્ટિપાદ ઇતિ । ગમો નામ આદિ મધ્યાપસાનેપુ કિંચિદ્ વિશેષતો ભૂયોભૂયસ્તસ્યૈવ પાઠસ્યોચ્ચારણમ્ । યથામૂત્રાદૌ—સુય મે આ ઉસતેણ ભગવયા એવ મન્વલાય ઇહ સ્વલુ ઇત્યાદિ । એવ મન્વેન્વસાને વા યથા સમ્ભવ દ્રષ્ટવ્યમ્ । ગમોઽસ્ય વિદ્યતે, ઇતિ ગમિકમ્ । તચ્ચ ભાગ નિત્ય ઉદ્ઘાટિત સિદ્ધ હોતા હૈ । ઇસ તરહ મતિજ્ઞાન એવં શ્રુતજ્ઞાન મે અનાદિતા કા કથન વિરુદ્ધ નહી પડતા હૈ । ઇસ તરહ યદા તક સાદિસાત ઓર અનાદિ અનત શ્રુતજ્ઞાન કા યદ વર્ણન હુઆ ॥ સૂ. ૪૨ ॥

‘સે કિં ત ગમિયં’ ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય પૂછતા હૈ—મદન્ત ! ગમિક શ્રુતકા કયા લક્ષણ હૈ ? ઉત્તર—ચારહવે દષ્ટિવાદકા નામ ગમિક હૈ । આદિ મન્વ ઓર અન્તમેં કુલ ૨ વિશેષતાસે જો ઉસી પાઠકા પુનઃ ૨ ઉચ્ચારણ કિયા જાતા હૈ ઉસકા નામ ગમ હૈ । જૈસે સૂત્રકી આદિમે “સુય મે આ ઉસતેણ ભગવયા એવ મન્વલાય ઇહ સ્વલુ” ઇત્યાદિ, એસા પાઠ કદ દિયા જાતા હૈ ।

—ભાગ સદા ઉદ્ઘાટિત સિદ્ધ થાય છે એ રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમા અનાદિતાનું કથન વિરુદ્ધ પડતું નથી આ રીતે અહીં સુધી સાદિસાત અને અનાદિ અનત શ્રુતજ્ઞાનનું આ વર્ણન થયું ॥ સૂ. ૪૨ ॥

“સે કિં ત ગમિયં” ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત ! ગમિક શ્રુતનું શુ લક્ષણ છે ?

ઉત્તર—આગા દષ્ટિવાદનું નામ ગમિક છે આદિ મધ્ય અને અન્તમા કોઈક કોઈક વિશેષતાથી જે એવ પાઠનું ફરી ફરીને ઉચ્ચારણ કરાય છે તેનું નામ ગમ છે જેમ કે સૂત્રના પ્રારંભે “સુય મે આઉસતેણ ભગવયા એવમન્વલાય ઇહ સ્વલુ” ઇત્યાદિ, એવો પાઠ કહેવામા આવે છે એ રીતે મધ્ય અને અન્તમા

या सर्वस्य जीरादिपदार्थस्य सर्वा स्वभावरिगारासंगत्वात् । अत्र ष्टान्तमाह-
 'सुदृष्टु वि०' इत्यादि । सुदृष्टु अपि मेघममुदये--चन्द्रस्येप्रभा पटन्नाग्नादके मति
 चन्द्रसूर्ययोः प्रभा=प्रकाशः, भ्रमति=तिष्ठति । अयं मात्र-यया निविटतरमेघपट-
 लैरान्तादितयोरपि चन्द्रसूर्ययोर्नान्तेन तन्प्रभाभासो भ्रमति, मयस्य मययास्वभावात्
 नयनस्य कर्तुमशक्यत्वात् । एवमनन्तानन्तरिपि ज्ञानदर्शनागणकर्मपरमाणुभिरैकैक्या
 त्मप्रदेशस्य समाच्छादितम्यापि नान्तेन चैतन्यमात्रस्याऽभासो भ्रमति । यतः सर्व
 जघन्य तन्मतिश्रुतात्मकम्, अतोऽक्षरस्यानन्ततमोभागो नित्योद्भासित इति सिद्धम् ।
 तथा च सति मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य राज्ञादि भावीन विरूप्यते, इति म्यितम् ।

कारण अजीवत्वकी प्रसक्ति आवेगी परन्तु ऐसी स्थिति जीव पदार्थ की न
 कभी देखी गई है और न किसी को यह दृष्ट ही है क्यों कि समस्त
 जीवादि पदार्थों के अपने २ स्वभाव का सर्वथा परिहार होना असंभव
 है । अब सूत्रकार इसी विषय को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं-जिस
 प्रकार निविटतर मेघपटलों द्वारा चंद्र और सूर्य आवृत्त हो जाते हैं,
 परन्तु इनकी प्रभा एकान्ततः आवृत्त नहीं होती है-नष्ट नहीं होती है,
 कारण उन मेघपटलों में ऐसी शक्ति नहीं है, जो वे चंद्र सूर्य के प्रभा
 स्वरूप स्वभाव का सर्वथा अपनयन कर सकें । इसी प्रकार भले ही
 अनन्तान्त भी ज्ञान दर्शनावरण कर्मपरमाणुओं द्वारा एक एक आत्मा
 का प्रदेश ढक दिया जावे तो भी एकान्ततः चैतन्य मात्र का उस अवस्था
 में अभाव नहीं हो सकता है । यह जो सर्व जघन्य चैतन्यमात्र अवस्था
 है यही मतिश्रुतज्ञान का अनन्तवां भाग है । इसलिये अक्षर का अनन्तवां

आवशे पक्ष एवपदार्थनी ऐवी स्थिति कही जेवाभा आवी नथी अने क्वाधने
 ते धृष्ट पक्ष नथी कारण के समस्त एवादि पदार्थाना पोतपोताना स्वभावने
 त्याग थवे। असंभवित छे डवे सूत्रकार ऐज विषयने दृष्टात द्वारा स्पष्ट करे
 छे-ने रीते घाड वाहयो द्वारा यद्र अने सूर्य द्काधन्य छे पक्ष तेमनु तेज
 ऐकान्तत द्कानु नथी नाश पाभतु नथी कारण के ते मेघपटलोभा ऐवी
 गडित होती नथी के तेजो यद्र सूर्यना प्रभास्वरूप स्वभावने। सर्वथा नाश
 करी शके, ऐज रीते लवे अनन्तान्त ज्ञान दर्शनावरण कर्मपरमाणुओं द्वारा
 ऐक आत्मानो प्रदेश ढकी देवाय तो पक्ष ऐकान्तत चैतन्य भावने। ते
 अपवस्थाना अभाव होई शकते नथी आ ले सर्वजघन्य चैतन्य मात्र अवस्था
 छे ऐज मतिश्रुत ज्ञानने अनन्तमे भाग छे ते कारण अक्षरने अनन्तमे

‘સે ત૦’ ઇત્યાદિ । તદેતત્ સાદિક સપર્યવસિત શ્રુતં વર્ણિતમ્ । તથા-તદેતદનાદિક-મપર્યવસિત ચ શ્રુત વર્ણિતમ્ ॥ સૂ. ૦ ૪૨ ॥

મૂલમ્—સે કિં ત ગમિય ? । ગમિય દિદ્વિત્રાઓ । સે કિં તં અગમિય ? । અગમિય કાલિય સુયં । સે તં ગમિયં । સે તં અગમિયં ॥

છાયા—અથ કિં તદ્ ગમિકમ્ ? । ગમિક દ્વિદ્વિત્રાદઃ । અથ કિં તદગમિકમ્ ? અગમિક કાલિક શ્રુતમ્ । તદેતદ્ ગમિકમ્ । તદેતદ્ અગમિકમ્ ॥

ટીકા—શિષ્યઃ પૂછતિ—‘સે કિં ત ગમિય૦’ ઇતિ । અથ કિં તદ્ ગમિકમ્ ? ઇતિ શિષ્ય પ્રશ્ન ? । ઉત્તરમાહ—‘ગમિય૦’ ઇત્યાદિ । ગમિક દ્વિદ્વિત્રાદ ઇતિ । ગમો નામ આદિ મધ્યાવસાનેષુ કિંચિદ્ વિશેષતો ભૂયોભૂયસ્તસ્યૈવ પાઠસ્યોચારણમ્ । યથામૂત્રાદૌ—સુય મે આ ઉસંતેણ ભગવયા એમ મક્ષાયાઈ હ્ સ્વલ્લુ ઇત્યાદિ । એવ મ-યેશ્વસાને વા યથા સમ્ભવ દ્રષ્ટવ્યમ્ । ગમોઽસ્ય વિદ્યતે, ઇતિ ગમિકમ્ । તદ્

ભાગ નિત્ય ઉદ્દાટિત સિદ્ધ હોતા હૈ । હસ તરહ મતિજ્ઞાન એવ શ્રુતજ્ઞાન મે અનાદિતા કા કથન વિરુદ્ધ નહી પડતા હૈ । હસ તરહ યહાં તક સાદિસાત ઓર અનાદિ અનત શ્રુતજ્ઞાન કા યહ વર્ણન હુઆ ॥ સૂ. ૦ ૪૨ ॥

‘સે કિં ત ગમિય ?’ ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય પૂછતા હૈ—મદન્ત ! ગમિક શ્રુતકા કયા લક્ષણ હૈ ? ઉત્તર-વારહવે દ્વિદ્વિત્રાદકા નામ ગમિક હૈ । આદિ મ-ય ઓર અન્તમે કુચ્ચ ૨ વિશેષતાસે જો ડસી પાઠકા પુનઃ ૨ ઉચ્ચારણ ક્રિયા જાતા હૈ ડસકા નામ ગમ હૈ । જૈસે સૂત્રકી આદિમે “સુય મે આ ડસતેણ ભગવયા એવ મક્ષાયાઈ હ્ સ્વલ્લુ” ઇત્યાદિ, એસા પાઠ કહ દિયા જાતા હૈ ।

-ભાગ સદા ઉદ્દાટિત સિદ્ધ થાય છે એ રીતે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાનમા અના-દિતાનુ કથન વિરુદ્ધ પડતુ નથી આ ગીતે અહીં સુધી સાદિસાત અને અનાદિ અનત શ્રુતજ્ઞાનનુ આ વર્ણન થયુ ॥ સૂ. ૪૨ ॥

“સે કિં ત ગમિય૦” ઇત્યાદિ

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત ! ગમિક શ્રુતનુ શુ લક્ષણ છે ?

ઉત્તર—ખારમા દ્વિદ્વિત્રાદનુ નામ ગમિક છે આદિ મધ્ય અને અન્તમા કોષ્ઠ કોષ્ઠક વિશેષતાથી જે એવ પાઠનુ ફરી ફરીને ઉચ્ચારણ કરાય છે તેનુ નામ ગમ છે જેમ કે સૂત્રના પ્રારભે “સુય મે આડસતેણ ભગવયા એમક્ષાયાઈ હ્ સ્વલ્લુ” ઇત્યાદિ, એવો પાઠ કહેવામા આવે છે એ રીતે મધ્ય અને અન્તમા

પ્રાયો દષ્ટિવાદ इति । अथ पुनः शिष्यः पृच्छति—‘से किं त०’ इत्यादि । अथ किं तद् अगमिक? मिति । उत्तरमाह—‘अगमिय०’ इत्यादि । अगमिक कालिक श्रुतम् । अगमिक-गमिकाद् भिन्नम् । तत्र कालिक-प्रायः आचारादिश्रुतम्, आदी यथा पाठोऽस्ति—‘सुय मे आउसतेण’ इति, तथा मध्येऽप्रसंगे च पुनः पाठोऽस्तीति गमिकत्वाभावात् । तदेतद् गमिकश्रुतम् अगमिक च श्रुत वर्णितम् ॥

मूलम्—अहवा त समासओ दुविहं पणत्त । त जहा-अग-पविट्ठ, अगवाहिर च । से किं त अंगवाहिर? । अगवाहिर दुविह पणत्त । त जहा-आवस्सय च आवस्सय-वइरित्त च । से कि त आवस्सय? । आवस्सय छव्विह पणत्त । त जहा-सामाइय १, चउवीसत्थओ २, वदणय ३, पडिक्कमण ४, काउ-स्सग्गो ५, पच्चक्खाण ६ । से त्त आवस्सयं ॥

इसी तरहसे मध्य एव अवसानमें भी इसी प्रकारके पाठका उच्चारण यथासंभव जान लेना चाहिये । इस प्रकारका गम जिस श्रुतमें होता है उसका नाम गमिकश्रुत है । यह गमिकश्रुत-प्रायः बारहवा दृष्टिवाद अग है । शिष्य पुनः पूछता है । हे भदन्त ! आगमिक श्रुत क्या है ? उत्तर—कालिक श्रुतका नाम आगमिक श्रुत है, क्योंकि यह गमिक श्रुतसे भिन्न पडता है । यह प्रायः आचारादि श्रुतरूप होता है । गमिक श्रुतमें सूत्र की आदिमें “सुय मे आ उसतेण” यह पाठ उच्चरित होता है उसी तरह से मध्य और आदिमें पुनः इस पाठका उच्चारण अगमिक श्रुतमें नहीं किया है, अतः अगमिक श्रुतमें गमिक श्रुतसे भिन्नता आ जाती है । यह गमिकश्रुत और अगमिक श्रुतका वर्णन हुआ ॥

પણ એજ પ્રકારના પાઠનું ઉચ્ચારણ યથાસંભવ સમજી લેવું જોઈએ એ પ્રકારનો ગમ જે જે શ્રુતમાં થાય છે તેનું નામ ગમિકશ્રુત છે આ ગમિકશ્રુત-પ્રાય બારમા દષ્ટિવાદ અગ છે શિષ્ય ફરીથી પૂછે છે-હે ભદન્ત ! અગમિક શ્રુત શું છે? ઉત્તર—કાલિક શ્રુતનું નામ અગમિક શ્રુત છે, કારણ કે તેમાં ગમિક શ્રુતથી ભિન્નતા રહેલ છે તે સામાન્ય રીતે આચારાદિ શ્રુતરૂપ હોય છે ગમિક શ્રુતમાં સૂત્રને પ્રારંભે “સુય મે આ ઉસતેણ” આ પાઠ ઉચ્ચારાય છે એજ પ્રમાણે મધ્ય અને આદિમાં ફરીથી આ પાઠનું ઉચ્ચારણ અગમિક શ્રુતમાં કરાતું નથી, તેથી અગમિક શ્રુતમાં ગમિક શ્રુત કરતા ભિન્નતા આવે છે આગમિક શ્રુત અને અગમિક શ્રુતનું વર્ણન થયું

जाया—अथवा तत् समासतो द्विविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—अङ्गप्रविष्टम्, अङ्गवाह्य च । अथ किं तद् अङ्गवाह्यम् ? । अङ्गवाह्य द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—आवश्यकं च, आनश्यक्यतिरिक्तं च । अथ किं तदावश्यकम् । आवश्यक पञ्चविध प्रज्ञप्तम्—तद् यथा सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानम् ६ । तदेतद् आवश्यकम् ॥

टीका—‘अहवा०’ इत्यादि । अथवा तत् श्रुतम् अर्हदुपदेशानुसारि श्रुतमित्यर्थः समासतः—सक्षेपेण द्विविध प्रज्ञप्तम् । तत् यथा—अङ्गप्रविष्टम्, अङ्गवाह्य च ।

ननु पूर्वमेव चतुर्दशभेदकथनाधिकारे त्रयोदशचतुर्दशभेदरूपेण अङ्गप्रविष्टमनङ्गप्रविष्टमित्युपन्यस्तम्, तत् किमर्थमिह—“अहवा त समासओ द्विविह पण्णत्तं” इत्याद्युपन्यासेन तदेव पुनरुच्यते ? इति चेत् ?

उच्यते—इह सर्वे श्रुतभेदा अङ्गप्रविष्टानङ्गप्रविष्टरूपभेदद्वय एवान्तर्भवन्ति ।

“अहवा त समासओ०” इत्यादि ।

अथवा—अर्हन्त भगवानके उपदेशका अनुसरण करनेवाला वह श्रुत सक्षेपसे दो प्रकारका भी कहा गया है, वे दो प्रकार ये हैं—१ अङ्गप्रविष्ट—२ अङ्गवाह्य ।

शका—पहिले ही चौदह भेदों के कथनके अधिकारमे तेरह और चौदह भेदोंके रूपसे अङ्गप्रविष्ट तथा अनङ्गप्रविष्ट ऐसा कह दिया गया है फिर यहां दुबारा “अहवा त समासओ द्विविह पण्णत्तं” इस प्रकार के कथन की क्या आवश्यकता थी ? ।

उत्तर—इस तरह जो यहां पर पुनः प्रगट करनेमे आया है उसका कारण यह है कि सूत्रकार यह कहना चाहते हैं कि जितने भी समस्त श्रुतके भेद हैं वे सब इन्ही दो भेदोंमे अन्तर्भूत हो जाते हैं । तथा

“अहवा त समास ओ०” इत्यादि

अथवा—अर्हन्त भगवानना उपदेशने अनुसारना ते श्रुत सक्षिप्तमा आ प्रभाषे ये प्रकारानु कडेल छे—(१)अङ्ग प्रविष्ट, (२) अङ्ग वाह्य

शका—पडेला न चौद लेहोना कथनना अधिकारमा तेर अने चौद लेहोना रूपे अङ्गप्रविष्ट तथा अनङ्गप्रविष्ट अेभ कडेवाछ गयु छे तो पछी अर्हो भीछ वार ”अहवा त समासओ द्विविह पण्णत्तं” आ प्रकारना कथननी शी आवश्यकता छेती ?

उत्तर—आ रीते ने अर्हो करीथी प्रगट करवाभा आवेल छे तेनु कारखु अे छे के सूत्रकार अे कडेवा भागे छे के नेटला समस्त श्रुतना लेह छे ते अधाने

માયો દષ્ટિવાદ ઇતિ । અય પુનઃ શિષ્યઃ પૂઞ્ઞતિ—‘ સે કિં ત૦ ’ ઇત્યાદિ । અય કિં તદ્ અગમિકૃ ? મિતિ । ઉત્તરમાહ—‘ અગમિય૦ ’ ઇત્યાદિ । અગમિક કાલિક શ્રુતમ્ । અગમિકૃ-ગમિકાન્ મિત્તમ્ । તન્ન કાલિન્-પ્રાયઃ આચારાદિશ્રુતમ્, આદૌ યયા પાઠોઽસ્તિ—‘ સુય મે આઠસતેણ ’ ઇતિ, તયા મધ્યેઽગમાને ચ પુનઃ પાઠોના સ્તીતિ ગમિકૃત્વામાત્રાત્ । તદેતદ્ ગમિકૃશ્રુતમ્ અગમિકૃ ચ શ્રુત ણિતમ્ ॥

મૂલમ્—અહવા તં સમાસઓ દુવિહ પળ્ળત્તં । તં જહા-અગ-પવિદ્ઠ, અગવાહિરં ચ । સે કિં ત અંગવાહિર ? । અંગવાહિરં દુવિહ પળ્ળત્ત । તં જહા-આવસ્સય ચ આવસ્સય-વડરિત્ત ચ । સે કિં ત આવસ્સય ? । આવસ્સય છવિહ પળ્ળત્ત । ત જહા-સામાઙ્ગય ૧, ચઠવીસત્થઓ ૨, વંદણય ૩, પઠિક્કમણં ૪, કાઠ-સ્સગ્ગો ૫, પચ્ચક્કવાણં ૬ । સે ત્ત આવસ્સયં ॥

इसी तरहसे मध्य एव अवसानमें भी इसी प्रकारके पाठका उच्चारण यथासंभव जान लेना चाहिये । इस प्रकारका गम जिस श्रुतमें होता है उसका नाम गमिकश्रुत है । यह गमिकश्रुत-प्रायः दारहवा दृष्टिवाद अग है । शिष्य पुनः पूछता है । हे भदन्त ! आगमिक श्रुत क्या है ? उत्तर—कालिक श्रुतका नाम आगमिक श्रुत है, क्योंकि यह गमिक श्रुतसे भिन्न पडता है । यह प्रायः आचारादि श्रुतरूप होता है । गमिक श्रुतमें सूत्र की आदिमें “सुय मे आ उस्ततेण ” यह पाठ उच्चरित होता है उसी तरह से मध्य और आदिमें पुनः इस पाठका उच्चारण अगमिक श्रुतमें नहीं किया है, अतः अगमिक श्रुतमें गमिक श्रुतसे भिन्नता आ जाती है । यह गमिकश्रुत और अगमिक श्रुतका वर्णन हुआ ॥

પણ એજ પ્રકારના પાઠનું ઉચ્ચારણ યથાસંભવ સમજી લેવું જોઈએ એ પ્રકારનો ગમ જે જે શ્રુતમાં થાય છે તેનું નામ ગમિકશ્રુત છે આ ગમિકશ્રુત-પ્રાય ધારમા દષ્ટિવાદ અગ છે શિષ્ય ફરીથી પૂછે છે—હે ભદન્ત ! અગમિક શ્રુત શું છે ? ઉત્તર—કાલિક શ્રુતનું નામ અગમિક શ્રુત છે, કારણ કે તેમાં ગમિક શ્રુતથી ભિન્નતા રહેલ છે તે સામાન્ય રીતે આચારાદિ શ્રુતરૂપ હોય છે ગમિક શ્રુતમાં સૂત્રને પ્રારંભે “સુય મે આ ઠસતેણ ” આ પાઠ ઉચ્ચારાય છે એજ પ્રમાણે મધ્ય અને આદિમાં ફરીથી આ પાઠનું ઉચ્ચારણ અગમિક શ્રુતમાં કરાતું નથી, તેથી અગમિક શ્રુતમાં ગમિક શ્રુત કરતા ભિન્નતા આવે છે આગમિક શ્રુત અને અગમિક શ્રુતનું વર્ણન થયું

छाया—अथवा तत् समासतो द्विविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—अङ्गप्रविष्टम्, अङ्गवाह्य च । अथ किं तद् अङ्गवाह्यम् ? । अङ्गवाह्य द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—आवश्यकं च, आनश्यरुण्यतिरिक्तं च । अथ किं तदावश्यकम् । आवश्यकं पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्—तद् यथा सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानम् ६ । तदेतद् आवश्यकम् ॥

टीका—‘अहवा०’ इत्यादि । अथवा तत् श्रुतम् अर्हदुपदेशानुसारि श्रुतमित्यर्थः समासतः—सक्षेपेण द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तत् यथा—अङ्गप्रविष्टम्, अङ्गवाह्यं च ।

ननु पूर्वमेव चतुर्दशभेदकथनाधिकारे त्रयोदशचतुर्दशभेदरूपेण अङ्गप्रविष्टमनङ्गप्रविष्टमित्युपन्यस्तम्, तत् किमर्थमिह—“अहवा त समासओ दुविह पण्णत्तं” इत्याद्युपन्यासेन तदेव पुनरुच्यते ? इति चेत् ?

उच्यते—इह सर्वे श्रुतभेदा अङ्गप्रविष्टानङ्गप्रविष्टरूपभेदद्वय एवान्तर्भवन्ति ।

“अहवा त समासओ०” इत्यादि ।

अथवा—अर्हन्त भगवानके उपदेशका अनुसरण करनेवाला वह श्रुत सक्षेपसे दो प्रकारका भी कहा गया है, वे दो प्रकार ये हैं—१ अङ्गप्रविष्ट—२ अङ्गवाह्य ।

शका—पहिले ही चौदह भेदों के कथनके अधिकारमें तेरह और चौदह भेदोंके रूपसे अङ्गप्रविष्ट तथा अनङ्गप्रविष्ट ऐसा कह दिया गया है फिर यहां दुबारा “अहवा त समासओ दुविह पण्णत्तं” इस प्रकार के कथन की क्या आवश्यकता थी ? ।

उत्तर—इस तरह जो यहां पर पुनः प्रगट करनेमें आया है उसका कारण यह है कि सूत्रकार यह कहना चाहते हैं कि जितने भी समस्त श्रुतके भेद हैं वे सब इन्हीं दो भेदोंमें अन्तर्भूत हो जाते हैं । तथा

“अहवा त समास ओ०” इत्यादि

अथवा—अर्हन्त भगवानना उपदेशने अनुसारना ते श्रुत सक्षिप्तमा आ प्रभाणु ये प्रकारनुं कडेल छे—(१)अङ्ग प्रविष्ट, (२) अङ्ग वाह्य

शका—पहिला ७ चौदह भेदोंना कथनना अधिकारमा तेर अने चौदह भेदोंना रूपे अङ्गप्रविष्ट तथा अनङ्गप्रविष्ट अंग कडेवाछ गयु छे तो पछी अर्हो भील वार ”अहवा त समासओ दुविह पण्णत्तं” आ प्रकारना कथननी शी आवश्यकता छती ?

उत्तर—आ शीते ने अर्हो कुरीथी प्रगट करवाभा आवेल छे तेनु कारखु अ छे के सूत्रकार अ कडेवा भागे छे के नेटला समस्त श्रुतना लेह छे ते अधाने

एतमर्थं बोधयितुं पुनरुपन्यासः । अत्रा सर्वेषु श्रुतमैदम्ब्रह्ममणिष्ठान्द्रप्रविष्टभेन्यो-
रहदुपदेशानुसारित्वात् माधान्यमन्तीति बोधयितुं पुनस्तदुपादानमिति न दोषः ।

अद्भ्रप्रविष्टमिति । इह यथा पुरुषस्य द्वादशाङ्गानि भवन्ति, “ द्वा चरणी, द्वे
जह्वे, द्वे उरुणी, द्वे गाश्राधे, द्वौ बाहू, त्रीणां, शिरश्च ।

तथा चोक्तम्—

पाददुग्ग जघोरू, गातदुग्द तु दो य बाहूओ ।

गीना सिर च पुरिसो, धारम अगो सुयनिसिटो ॥ ૧ ॥

છાયા—પાદદ્વિક જહ્વોરૂ ગાત દ્વિકાર્ધ તુ દ્વૌ ચ બાહૂ ।

ગ્રીવા શિરશ્ચ પુરુષો દ્વાદશાન્દ્રઃ શ્રુતપિષ્ટિઃ ॥ ૧ ॥

તથા શ્રુતરૂપસ્યાપિ પરમપુરુષસ્ય દ્વાદશાન્દ્રાણિ આચારાદીનિ સન્તીતિ વેદિ-
ત્વન્યમ્ । શ્રુતપુરુષસ્યાન્દ્રેષુ પ્રતિષ્ઠમ્ અદ્ભ્રભાવેન વ્યગ્રસ્યિતમિત્યર્થઃ । અદ્ભ્રાહ્યમિતિ ।
યત્તુ તસ્યૈવ દ્વાદશાન્દ્રાત્મકસ્ય શ્રુતપુરુષસ્યાર્થાવગમે પરમોપકારકૃત્વેન સ્થિત શ્રુત
તદન્દ્રબાહ્યમ્ તદેવાન્દ્રમષ્ટિમિતિ ।

તત્રાલ્પવક્તવ્યતયા પ્રથમમદ્ભ્રાહ્યમધિકૃત્ય પૃચ્છતિ—‘ સે કિં ત૦ ’ ઇત્યાદિ ।
અથ કિં તદ્ અદ્ભ્રાહ્ય ? મિતિ શિષ્ય પ્રશ્નઃ । ઉત્તરમાહ—‘ અગવાહિર૦ ’ ઇત્યાદિ ।

સમસ્ત શ્રુતકે ભેદોં મે ઈન્દ્રીં દો ભેદોંકી પ્રધાનતા હૈ, કારણ ઈનમેં હી
અર્હન્ત પ્રમુકે ઉપદેશ કી અનુસારિતા રહતી હૈ । જિસ પ્રકાર પુરુષકે યે
દો પૈર ૨, દો જાઘે ૪, દો ઉરૂ ૬, દો પાર્શ્વભાગ ૮, દો બાહુ ૧૦, ગ્રીવા
૧૧ ઓર શિર ૧૨, યે ચારહ અગ હોતે હૈં ડસી પ્રકારસે શ્રુતરૂપ પરમ
પુરુષકે ભી યે આચારાગ આદિ ચારહ અગ હોતે હૈં । ઈન ચારહ અગોંમેં
જો શ્રુતનિબદ્ધ હુઆ હૈ વહ અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુત હૈ । તથા જો શ્રુત દ્વાદશા-
ગાત્મકશ્રુત પુરુષકે અર્થાવગમમે પરમ સહાયક હોતા હૈ વહ અગવાહ્ય-
શ્રુત હૈ । અગવાહ્યશ્રુતકા ડુસરા નામ અનન્દ્રપ્રવિષ્ટ ભી હૈ ।

આ બે લેહોમા સમાવેશ થઈ જાય છે તથા શ્રુતના સમસ્ત લેહોમા એ બે
લેહોની પ્રધાનતા છે, કારણ કે તેમનામા જ અહીં ત લગવનાનના ઉપદેશની
અનુસારિતા રહે છે જે પ્રકારે પુરુષના બે પગ ૨, બે જ ઘા ૪, બે ઉરૂ ૬,
બે પાર્શ્વભાગ ૮, બે બૂજ ૧૦, ગ્રીવા ૧૧, અને શિર ૧૨, એ બાર અંગ
હોય છે એ બાર અંગોમા જે શ્રુત નિબદ્ધ થયુ છે તે અંગપ્રવિષ્ટ શ્રુત છે
તથા જે શ્રુત દ્વાદશાગાત્મકશ્રુત પુરુષના અર્થાવગમમા પરમ સહાયક થાય છે તે
અગવાહ્યશ્રુત છે અગવાહ્ય શ્રુતનુ બીજુ નામ અનન્દ્રપ્રવિષ્ટ પણ છે

अङ्गवाह्य श्रुतं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—आवश्यकं च आवश्यकव्यतिरिक्तं च । पुनः पृच्छति—‘ से किं तं ’ इत्यादि । अथ किं तदावश्यकं ? मिति । प्रश्नः । उत्तरमाह—‘ आवस्ययं ’ इत्यादि । आवश्यकमिति । अत्रय कर्तव्यम् आवश्यकम्, श्रमणादिभिरवश्यमुभयकालं यत् क्रियते तदित्यर्थः । यद्वा—आ—समन्ताद्, वश्या इन्द्रियरूपायादि भावशत्रवो यस्मात् तदावश्यकम् । यद्वा—ज्ञानादिगुणकदम्बक मोक्षो वा आ—समन्ताद्, वश्यः क्रियतेऽनेनेत्यावश्यकम् । आवश्यकप्रतिपादकं यत् श्रुतं तदप्यावश्यकम् । आवश्यकं पदत्रयं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—सामायिकम् १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानम् ६, सामा-

अङ्गप्रविष्ट और अङ्गवाह्य इन दोनों भेदोंमेंसे अल्पवक्तव्यता होनेके कारण शिष्य प्रथम अङ्गवाह्यके विषयमें पूछता है—हे भदन्त ! अङ्गवाह्यश्रुतका क्या स्वरूप है ? उत्तर—अङ्गवाह्यश्रुतज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, वे दो प्रकार ये हैं—आवश्यकश्रुत १, आवश्यक व्यतिरेकश्रुत २ । साधु श्रावक आदि जो कृत्य उभयकालमें अवश्य करते हैं वह आवश्यक है, अथवा जिससे इन्द्रिय, कपाय आदि भावशत्रु अच्छी तरहसे वशमें किये जाते हैं वह आवश्यक है, अथवा जिसके द्वारा ज्ञानादि गुणोंका समूह व मोक्ष भले प्रकारसे स्वाधीन किया जा सकता है वह आवश्यक है । इस आवश्यक वाच्यार्थ का प्रतिपादक जो श्रुत है वह आवश्यक श्रुत है । यह आवश्यक छह प्रकारका बतलाया है, वे छह प्रकार ये हैं—सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५ और प्रत्याख्यान ६ । इन छह आवश्यकों की

अङ्गप्रविष्ट अने अङ्गवाह्य अने अने लेशोभाषी अल्पवक्तव्यता होवाने कारणे शिष्य प्रथम अङ्गवाह्यने विषे पूछे छे—हे भदन्त ! अङ्गवाह्य श्रुतनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—अङ्गवाह्य श्रुतज्ञान नीचे प्रमाणे अने प्रकारनु छे (१) आवश्यक श्रुत, (२) आवश्यक व्यतिरिक्त श्रुत साधु, श्रावक आदि अने किया अने काने अवश्य करे छे ते आवश्यक छे अथवा अने वडे इन्द्रिय, कपाय आदि भावश्रुत सारी गीते साधुभा देवाय छे ते आवश्यक छे अथवा अने द्वारा ज्ञानादि गुणाने समूह अथवा मोक्ष सारी गीते प्राप्त करी शक्य छे ते आवश्यक छे आ आवश्यक वाच्यार्थनु प्रतिपादक अने श्रुत छे ते आवश्यक श्रुत छे अने आवश्यक छे प्रदानना अताव्या छे—ते छे प्रदान आ प्रमाणे छे—(१) सामायिक, (२) चतुर्विंशतिस्तव, (३) वन्दनक, (४) प्रतिक्रमण, (५) कायोत्सर्ग, अने (६) प्रत्याख्यान अने छे आवश्यकाने व्याख्या अने उत्तराध्यान सूत्रनी प्रिय

एतमर्थं बोधयितुं पुनरुपन्यासः । अथवा सर्वेषु श्रुतमेतद्व्यङ्गमप्रिष्ठानङ्गप्रविष्टभेदयो-
रर्हदुपदेशानुसारितात् माधान्यमस्तीति बोधयितुं पुनस्तदुपादानमिति न दोषः ।

अङ्गप्रविष्टमिति । इह यथा पुरुषस्य द्वादशाङ्गानि भवन्ति, “ द्वौ चरणौ, द्वे
जङ्घे, द्वे ऊरुणी, द्वे गात्रार्धे, द्वौ बाहू, ग्रीवा, शिरश्च ।

तथा चोक्तम्—

पाददुग्ग जघोरू, गातदुग्द तु दो य बाहूओ ।

ग्रीवा सिर च पुरिसो, वारस अगो सुयविसिद्वो ॥ १ ॥

छाया—पादद्विकं जङ्घोरू गात्र द्विकार्धं तु द्वौ च बाहू ।

ग्रीवा शिरश्च पुरुषो द्वादशाङ्गः श्रुतप्रिष्ठः ॥ १ ॥

तथा श्रुतरूपस्यापि परमपुरुषस्य द्वादशाङ्गानि आचारादीनि सन्तीति वेदि-
तव्यम् । श्रुतरूपस्याङ्गेषु प्रविष्टम् अङ्गभावेन व्यस्यितमित्यर्थः । अङ्गवाह्यमिति ।
यत्तु तस्यैव द्वादशाङ्गात्मकस्य श्रुतपुरुषस्यार्थावगमे परमोपकारकत्वेन स्थित श्रुत
तदङ्गवाह्यम् तदेवानङ्गप्रविष्टमिति ।

तत्राल्पवक्तव्यतया प्रथममङ्गवाह्यमधिकृत्य पृच्छति—‘ से किं त० ’ इत्यादि ।
अथ किं तद् अङ्गवाह्यं ? मिति शिष्य प्रश्नः । उत्तरमाह—‘ अगवाहिर० ’ इत्यादि ।

समस्त श्रुतके भेदों में इन्हीं दो भेदों की प्रधानता है, कारण इनमें ही
अर्हन्त प्रभुके उपदेश की अनुसारिता रहती है । जिस प्रकार पुरुषके ये
दो पैर २, दो जांघे ४, दो ऊरु ६, दो पार्श्वभाग ८, दो बाहु १०, ग्रीवा
११ और शिर १२, ये बारह अंग होते हैं उसी प्रकारसे श्रुतरूप परम
पुरुषके भी ये आचाराग आदि बारह अंग होते हैं । इन बारह अंगोंमें
जो श्रुतनिबद्ध हुआ है वह अगप्रविष्ट श्रुत है । तथा जो श्रुत द्वादशा-
गात्मकश्रुत पुरुषके अर्थावगममे परम सहायक होता है वह अगवाह्य-
श्रुत है । अगवाह्यश्रुतका दुसरा नाम अनङ्गप्रविष्ट भी है ।

आ जे लेहोभा समावेश थर्ध लय छे तथा श्रुतना समस्त लेहोभा जे जे
लेहोनी प्रधानता छे, वारणु के तेमनामा न अर्हन्त लगवनानता उपदेशनी
अनुसारिता रहै छे जे प्रकारे पुरुषना जे पग २, जे न धा ४, जे उरु ६,
जे पार्श्वभाग ८, जे भूज १०, ग्रीवा ११, अने शिर १२, जे वार अंग
होय छे जे वार अंगोभा जे श्रुत निबद्ध थयु छे ते अगप्रविष्ट श्रुत छे
तथा जे श्रुत द्वादशागात्मकश्रुत पुरुषना अर्थावगममा परम सहायक थाय छे ते
अगवाह्यश्रुत छे अगवाह्य श्रुतनु पीणु नाम अनङ्गप्रविष्ट पणु छे ।

चन्द्ररुवेद्य १५, सूर्यप्रज्ञप्तिः १६, पौरुपीमण्डलम् १७, मण्डलप्रवेशः १८, विद्या-
चरण निनिश्चयः १९, गणिविद्या २०, ध्यानविभक्तिः २१, मरणविभक्तिः २२,
आत्मविशोधिः २३, वीतरागश्रुतम् २४, सलेखनाश्रुतम् २५, विहारकल्पः २६,
चरणविधिः २७, आतुरप्रत्याख्यानम् २८, महाप्रत्याख्यानम् २९, एवमादि ।
तदेतदुत्कालिकम् ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त०’ इत्यादि । अथ किं तदावश्यकव्य-
तिरिक्तम् ? इति शिष्य प्रश्नः । उत्तरमाह—‘आवस्सयवडरिक्त०’ इत्यादि । आव-
श्यकव्यतिरिक्त द्विविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—कालिकम्, उत्कालिक च । तत्र यद्
दिवसे रात्रौ च प्रथम चरमपौरुपी द्वये एव पठ्यते, तत् कालिकम्, कालेन निर्वृत्त
कालिक मिति व्युत्पत्तेः । यत्तु कालवेलानजं पठ्यते, तदुत्कालिकम् । तत्राल्पवक्त-
व्यतया प्रथममुत्कालिकमधिकृत्य शिष्यः पृच्छति—‘से किं त०’ इत्यादि । अथ
किं तदुत्कालिक श्रुत ?—मिति शिष्यप्रश्नः । उत्तरमाह—‘उत्कालिय०’ इत्यादि ।

‘से किं त आवस्सयवडरिक्त०’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता हैं—हे भदन्त ! आवश्यक व्यतिरिक्तश्रुत का क्या
स्वरूप है ? उत्तर—आवश्यक व्यतिरिक्तश्रुत दो प्रकार का बतलाया गया
है, वे उसके दो प्रकार ये हैं—१ कालिक २ उत्कालिक । दिन तथा रात्रि
में जो प्रथम चरमपौरुपीद्वय में ही पठित होता है वह कालिक, एव जो
अस्वाध्यायरूप काल को छोड़कर पठित होता है वह उत्कालिक है ।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! उत्कालिकश्रुत का क्या स्वरूप है ?
यहा पर भी शिष्य ने जो यह प्रश्न व्यतिक्रम से किया है उसका तात्पर्य
यही है कि सूत्रकार को उत्कालिक के विषय में अल्परूप से कहना है
अतः कालिक के विषय में शिष्य के प्रश्न का उद्भावन करके उत्कालिक
के विषय में ही सर्वप्रथम सूत्रकार ने प्रश्न का उद्भावन किया है ।

“से किं त आवस्सयवडरिक्त०” इत्यादि

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! आवश्यक व्यतिरिक्त श्रुतनुं शु स्वरूप छे ?
उत्तर—आवश्यक व्यतिरिक्त श्रुत छे प्रकारन बताव्यु छे ते आ प्रभाषे छे—
(१) कालिक, (२) उत्कालिक, द्विस तथा रात्रे जेना प्रथम चरम पौरुपीद्वयमां
व पाठ थाय छे ते कालिक, अने जेना काणने छोडीने पाठ कराय छे ते उत्कालिक छे

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! उत्कालिक श्रुतनुं शु स्वरूप छे ? अही पद्य
शिष्ये जे आ प्रश्नव्यतिक्रमथी कथ्ये छे तेनु तात्पर्य अे छे छे सूत्रकारने उत्का-
लिकने विषे थोडा प्रभाषुमा व कहेवानु छे तेथी कालिकना विषे शिष्येना प्रश्न
उत्ते न करता उत्कालिकना विषयमा व सौथी पडेला सूत्रकारे प्रश्नउत्ते कथ्ये छे ?

यिकादीनां व्याख्यास्माभिरुत्तराध्ययन सूत्रस्य प्रियदर्शनी टीकायामेकोनत्रिंशत्-
माध्ययने कृतेति तत्र द्रष्टव्या जिज्ञासुभिः । तदेतदावश्यक वर्णितम् ॥

मूलम्—से किं तं आवस्तयवइरित्तं ? आवस्तयवइरित्तं
दुविहं पणत्त । तं जहा—कालिय च, उक्कालियं च । से किं त
उक्कालियं ? । उक्कालियं अणेगविह पणत्तं । तं जहा—दसवेया-
लियं १, कप्पियाकप्पिय २, चुल्लकप्पसुय ३, महाकप्पसुय ४,
उववाइय ५, रायपसेणिय ६, जीवाभिगमो ७, पणवणा ८,
महापणवणा ९, पमायप्पमायं १०, नदी ११, अणुओगदाराइ १२,
देविदत्थओ १३, तंदुलवेयालियं १४, चदाविज्जय १५, सूरप-
णत्ती १६, पोरिसिमडल १७, मंडलपवेसो १८, विज्जाचरण-
विणिच्छओ १९, गणिविज्जा २०, ज्ञाणविभत्ती २१, मरणवि-
भत्ती २२, आयविसोही २३, वीयरागसुय २४, संलेहणासुयं २५,
विहारकप्पो २६, चरणविही २७, आउरपच्चक्खाणं २८, महा-
पच्चक्खाण २९, एवमाइ । से त उक्कालियं ॥

छाया—अथ किं तदावश्यकव्यतिरिक्तम् ? आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधं
प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—कालिक च, उत्कालिक च । अथ किं तदुत्कालिकम् ? ।
उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—दशवैकालिकम् १, कल्पिकाकल्पिकम्,
(कल्पाकल्पम्) २, चुल्ल—(क्षुल्ल) कल्पश्रुतम् ३, महाकल्पश्रुतम् ४, औपपातिक
५, राजप्रश्नीयम् ६, जीवाभिगमः ७, प्रज्ञापना ८, महाप्रज्ञापना ९, प्रमादाप्रमाद
१०, नन्दिः ११, अनुयोगद्वाराणि १२, देवेन्द्रस्तम् १३, तन्दुलवैचारिक १४,

व्याख्या हमने उत्तराध्ययन सूत्रकी प्रियदर्शनी टीकामें उनतीसवें अध्या-
यनमें की है अतः जिज्ञासुजन इस विषयको वहाँसे जान सकते हैं ।
इस प्रकार आवश्यकका यह छह भेद रूप कथन है ॥

दर्शनी टीकाभा ओगणुत्रीसभा अध्ययनभा करी छे तो जिज्ञासुओ ओ विषयने
तेभाथी समल्ल शकै छे आ रीते आवश्यकतु आ छ वेदइय कथन छे

तत्र यदल्पग्रन्थमल्पार्थं च तत् चुल्लकल्पश्रुतम् ३, यत्तुमहाग्रन्थं-महार्थं च तन्महा-
कल्पश्रुतमिति ४, कल्पिकाकल्पिकादिकं त्रयं विच्छिन्नम् । औपपातिकं ५, राज-
प्रश्रीय ६, जीवाभिगमः ७, एतन्नयं प्रसिद्धम्, ' प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना ' इति ।
जीवादीनां पदार्थानां प्रज्ञापनं प्रज्ञापना, तच्च सूत्रं प्रज्ञापनासूत्रम् । एतदुपलभ्यते ८,
सैत्रवृहत्तरा महाप्रज्ञापना, तच्च सूत्रं महाप्रज्ञापनासूत्रं तद्विच्छिन्नम् ९ । तथा-
प्रमादाप्रमादम्=प्रमादाप्रमादस्वरूपं भेदफलं प्रतिपादकं सूत्रमित्यर्थः । तत्र प्रमाद-
स्वरूपं चैवमुक्तम्-प्रचुरकर्मन्धनं प्रभन-निरन्तराऽविध्मातशारीरमानसानेकदुःखदुःख-
वह्ज्वालाकलापपरीतमशेषमेवससारवासगृहं पश्यस्तन्मध्यवर्त्यपि, सति च तन्निर्ग-

है वह चुल्लकल्पश्रुत है ३, एव जो श्रुत, ग्रन्थ और अर्थ की अपेक्षा महान्
है वह महाकल्प श्रुत है ४ । ये कल्पिकाकल्पिक आदि तीन विच्छिन्न
हो गये हैं । औपपातिक सूत्र ५, राजप्रश्रीय सूत्र ६ और जीवाभिगम
सूत्र ७, ये तीन प्रसिद्ध हैं । जीवादिक पदार्थों के स्वरूपका प्रतिपादक जो
सूत्र है वह प्रज्ञापना सूत्र है । यह सूत्र अभी उपलब्ध होता है ८ । महा
प्रज्ञापना सूत्र विच्छिन्न हो गया है ९ । जिस सूत्रमें प्रमाद तथा अप्रमा-
दके स्वरूपका उनके भेदोंका तथा फलका प्रतिपादन हुआ है वह प्रमादा-
प्रमाद सूत्र है, इस सूत्रमें प्रमादका स्वरूप इस प्रकारसे कहा है-" यह
ससारी जीव अच्छी तरह से देख रहा है कि मैं जिस ससाररूपी निवा-
सगृहके भीतर रहता हूँ वह प्रचुर कर्मरूपी इन्धनसे उत्पन्न हुई अनेक
प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक दुःखरूपी अग्निज्वालासे कि जो कभी
बुझनेवाली नहीं है बहुत बुरी तरह चारों ओर से घिरा हुआ है, तथा

अथ अने अर्थनी अपेक्षाये अल्पं छे ते युल्लकल्पश्रुतं छे (३) तेभनं नेश्रुत,
अथ अने अर्थनी अपेक्षाये महानं छे ते महानं कल्पश्रुतं छे (४) ये कल्पिका
कल्पिका आदि त्रयं विच्छिन्नं यथं गया छे औपपातिकं सूत्र, (५) राजप्रश्रीय सूत्र (६)
अने जीवाभिगम सूत्र (७) ये त्रयं प्रसिद्धं छे एवादिकं पदार्थानां स्वरूपं प्रति-
पादकं नेश्रुतं छे ते प्रज्ञापनासूत्रं छे आ सूत्रं अत्यारे उपलब्धं छे ८ महा
प्रज्ञापना सूत्रं विच्छिन्नं यथं गयु छे ९ नेश्रुतमा प्रमादं तथा अप्रमादना स्वरूपं
यत्, तमना लोढानु तथा इणु प्रतिपादनं यथु छे ते प्रमादा प्रमाद सूत्रं
छे, ते सूत्रमा प्रमादनु स्वरूपं आ प्रमादेषु कहेतं छे-" आ ससारी जीव सारी
रीते नेधं रह्यो छे केहुं नेश्रुतं ससाररूपी निवासगृहनी अदरं रहुं छु ते अपार
कर्मरूपी इन्धननी उत्पन्नं यथेव अनेक प्रकारना शारीरिक तथा मानसिक दुःख
रूपी अग्निज्वालासी, के नेश्रुतं कहीं गुञ्जती नथी, वषुी " अराध रीते आरे
आणुथी घेरायेत छे, तथा तेमाथी नीकणवानो उपाय नेश्रुतं वीतरागं प्रथुतं

उत्कालिक श्रुतमनेकविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—‘दशवैकालिकम्’ इत्यादि । तत्र दशवैकालिकं सुप्रसिद्धम् ? । तथा—कल्पिकाकल्पिकम्—कल्पाकल्पप्रतिपादकं सूत्रमिति । तस्यार्थः २ । तथा—सुल्लकल्पश्रुतं ३, महाकल्पश्रुतमिति । कल्पः—स्थविरादिकल्पः । तत्प्रतिपादकं श्रुत—कल्पश्रुतम् । तच्च द्विविध—सुल्लकल्पश्रुतं महाकल्पश्रुतमिति ।

उत्तर—उत्कालिकश्रुतं अनेक प्रकार का कहा गया है, जैसे—दशवैकालिक १, कल्पिकाकल्पिक—कल्पाकल्पप्रतिपादकसूत्र २, सुल्लकल्पश्रुत ३, महाकल्पश्रुत ४, औपपातिक ५, राजप्रश्रीय ६, जीवाभिगम ७, प्रज्ञापना ८, महाप्रज्ञापना ९, प्रमादाप्रमाद १०, नदी ११, अनुयोगद्वार १२, देवेन्द्रस्तव १३, तन्दुल वैचारिक १४, चन्द्रकवेद्य १५, सूर्यप्रज्ञप्ति १६, पौरुषीमण्डल १७, मण्डलप्रवेश १८, विद्याचरणविनिश्चय १९, गणिविद्या २०, ध्यानविभक्तिः २१, मरणविभक्ति २२, आत्मविशोधि २३, वीतरागश्रुत २४, सखेलनाश्रुत २५, विहारकल्प २६, चरणविधि २७, आतुरप्रत्याख्यान २८, महाप्रत्याख्यान २९, इत्यादि, ये समस्त श्रुत उत्कालिक हैं ।

इनमें दशवैकालिक प्रसिद्ध है १ । कल्पाकल्प का प्रतिपादकश्रुत कल्पिकाकल्पिक है २ । स्थविर आदि के कल्प का प्रतिपादक जो श्रुत है वह कल्पसूत्र है । यह सुल्लकल्पश्रुत तथा महाकल्पश्रुत के भेद से दो प्रकार का बतलाया गया है । जो श्रुत, ग्रन्थ एवं अर्थ की अपेक्षा अल्प

उत्तर—उत्कालिकश्रुत अनेक प्रकारना कहेल छे, जेवा के (१) दशवैकालिक, (२) कल्पिका कल्पिक—कल्पाकल्प प्रतिपादक सूत्र, (३) सुल्लकल्पश्रुत, (४) महाकल्प श्रुत, (५) औपपातिक, (६) राजप्रश्रीय, (७) जीवाभिगम, (८) प्रज्ञापना, (९) महाप्रज्ञापना, (१०) प्रमादप्रमाद, (११) नदी, (१२) अनुयोगद्वार, (१३) देवेन्द्रस्तव, (१४) तन्दुल वैचारिक, (१५) चन्द्रक वेद्य, (१६) सूर्य प्रज्ञप्ति, (१७) पौरुषी मण्डल, (१८) मण्डल प्रवेश, (१९) विद्याचरण विनिश्चय, (२०) गणिविद्या, (२१) ध्यानविलङ्घित, (२२) मरण विलङ्घित, (२३) आत्म विशोधि, (२४) वीतराग श्रुत, (२५) सखेलना श्रुत, (२६) विहार कल्प, (२७) चरणविधि, (२८) आतुर प्रत्याख्यान महाप्रत्याख्यान इत्यादि आ सधना उत्कालिक श्रुत छे

तेजोभा दशवैकालिक प्रसिद्ध छे १ कल्पाकल्पनु प्रतिपादक श्रुत कल्पिका-कल्पिक छे २ स्थविर आदिना कल्पनु प्रतिपादक जे श्रुत छे तेकल्पसूत्र छे ते सुल्लकल्पश्रुत तथा महाकल्पश्रुत जे वेदधी जे प्रकारनु दर्शाव्यु २ जे श्रुत

तत्र यदल्पग्रन्थमल्पार्थं च तत् सुल्लक्ष्णश्रुतम् ३, यत्तुमहाग्रन्थं-महार्थं च तन्महा-
कल्पश्रुतमिति ४, कल्पिकाकल्पिकादिकं त्रयं विच्छिन्नम् । औपपातिकं ५, राज-
प्रश्नीयं ६, जीवाभिगमः ७, एतन्नयं प्रसिद्धम्, ' प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना ' इति ।
जीवादीनां पदार्थानां प्रज्ञापनं प्रज्ञापना, तच्च सूत्रं प्रज्ञापनासूत्रम् । एतदुपलभ्यते ८,
सैववृहत्तरा महाप्रज्ञापना, तच्च सूत्रं महाप्रज्ञापनासूत्रं तद्विच्छिन्नम् ९ । तथा-
प्रमादाप्रमादम्=प्रमादाप्रमादस्वरूपं भेदफलं प्रतिपादकं सूत्रमित्यर्थः । तत्र प्रमाद-
स्वरूपं चैवमुक्तम्-प्रचुरकर्मन्धनं प्रभव-निरन्तराऽपिष्मातशारीरमानसानेकदुःखदुःख-
वहज्वालाकलापपरीतमशेषमेतससारवासगृहं पश्यस्तन्मध्यवर्त्यपि, सति च तन्निर्ग-

है वह सुल्लक्ष्णश्रुत है ३, एव जो श्रुत, ग्रन्थ और अर्थ की अपेक्षा महान
है वह महाकल्प श्रुत है ४ । ये कल्पिकाकल्पिका आदि तीन विच्छिन्न
हो गये हैं । औपपातिक सूत्र ५, राजप्रश्नीय सूत्र ६ और जीवाभिगम
सूत्र ७, ये तीन प्रसिद्ध हैं । जीवादिक पदार्थों के स्वरूपका प्रतिपादक जो
सूत्र है वह प्रज्ञापना सूत्र है । यह सूत्र अभी उपलब्ध होता है ८ । महा
प्रज्ञापना सूत्र विच्छिन्न हो गया है ९ । जिस सूत्रमें प्रमाद तथा अप्रमा-
दके स्वरूपका उनके भेदोंका तथा फलका प्रतिपादन हुआ है वह प्रमादा-
प्रमाद सूत्र है, इस सूत्रमें प्रमादका स्वरूप इस प्रकारसे कहा है-" यह
ससारी जीव अन्धी तरह से देख रहा है कि मैं जिस ससाररूपी निवा-
सगृहके भीतर रहता हूँ वह प्रचुर कर्मरूपी इन्धनसे उत्पन्न हुई अनेक
प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक दुःखरूपी अग्निज्वालासे कि जो कभी
बुझनेवाली नहीं है बहुत बुरी तरह चारों ओर से घिरा हुआ है, तथा

अथ अने अर्थनी अपेक्षाये अल्पं छे ते सुल्लक्ष्णश्रुतं छे (३) तेमन्त्रं ज्ञे श्रुत,
अथ अने अर्थनी अपेक्षाये महानं छे ते महानं कल्पश्रुतं छे (४) ये कल्पिका
कल्पिका आदि त्रयं विच्छिन्नं भूतं गय्यं छे औपपातिकं सूत्रं, (५) राजप्रश्नीयं सूत्रं (६)
अने जीवाभिगमं सूत्रं (७) ये त्रयं प्रसिद्धं छे जीवादिकं पदार्थानां स्वरूपं प्रति-
पादकं ज्ञे सूत्रं छे ते प्रज्ञापनासूत्रं छे आ सूत्रं अत्यन्तं उपलब्धं छे ८ महा
प्रज्ञापना सूत्रं विच्छिन्नं भूतं गय्यं छे ९ ज्ञे सूत्रमा प्रमादं तथा अप्रमादना स्वरूपं
पुनः, तमना लेहानु तथा इणु प्रतिपादनं भूयु छे ते प्रमादा प्रमादं सूत्रं
छे, ते सूत्रमा प्रमादनु स्वरूपं आ प्रमादो कहेव छे-" आ ससारी जीव सारी
रीते जेई रह्यो छे केहु जे ससाररूपी निवासगृहनी अदर रह्यु छु ते अपार
कर्मरूपी इन्धननी उत्पन्न भयेव अनेक प्रकारना शारीरिक तथा मानसिक दुःख-
रूपी अग्निज्वालासी, के जे उही पुञ्जती नथी, धर्यो " पराज रीते यारे
आणुथी घेरायेल छे, तथा तेमाथी नीकणवानो उपाय जे के वीतराग प्रद्योत

मनोपाये वीतरागप्रणीतचिन्तामणी यतो विचित्रकर्मोदयसाहाय्यजनितात् परिणाम-
विशेषादपश्यन्नि तद्भयमविगणय्य विशिष्ट परलोकक्रियाविमूढप्रायऽस्ते जीवः,
स खलु प्रमादः । तस्य च प्रमादस्य ये हंतो मद्यादयस्तेऽपि प्रमादाः,
तत्कारणत्वात् । उक्तञ्च—

“मज्ज विसय कसाया, निदा विगहा य पंचमा भणिया ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ॥ १ ॥”

एतस्य च पञ्चविधस्यापि प्रमादस्य फलं चतुर्गतिक ससारपतनम् ।

किञ्च—

इससे निकलनेका उपाय यद्यपि वीतरागप्रणीत धर्मरूपी चिन्तामणि है सो
वह मेरी दृष्टिमें नहीं आ रहा है, कारण मेरे भीतर कुछ ऐसा विचित्र
कर्मोदयकी सहायतासे परिणाम विशेष आ गया है कि जिसका बजह
से मेरी दृष्टि उस ओर जानी ही नहीं है, और न इस ससार निवा-
सगृहमें रहते हुए मुझे कोई भय ही प्रतीत होता है, इसी लिये मैं
विशिष्ट परलोककी क्रियाओंसे पराङ्मुख हो रहा हूँ” इस तरहकी
परिस्थितिको बनानेवाला एक प्रमाद है । तात्पर्य यह कि जानबूझ कर
भी जीव प्रमादके कारण ही आत्मकल्याणके मार्गसे पराङ्मुख बना
रहता है । इस प्रमादके जो कारण मद्यादिक बतलाये गये हैं वे भी प्रमाद
में ही परिगणित होते हैं । कहा भी है—

“मज्ज विसयकसाया, निदा विगहा य पचमा भणिया ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ” ॥ १ ॥

धर्मरूपी चिन्तामणी छे ते भारी नजर पडतु नथी कारणु के भारी अहर
कोई जेवा विचित्र कर्मोदयनी सहायताथी परिणाम विशेष आवी गयु छे के
जेने कारणु भारी नजर तेनी तरङ्ग थती न नथी, अने आ ससाररूपीनिवा
सगृहमा रहेता जेवा भने कोई लय पणु लागतो नथी, ते कारणु हु विशिष्ट
परलोकनी क्रियाजोथी विमुभ रह्यो छु ” आ प्रकारनी परिस्थितिने उत्पन्न
करनार प्रमाद छे तात्पर्य जे के लक्षण छता एव प्रमादने कारणु न आत्म
कल्याणना मार्गथी विमुभ रहे छे आ प्रमादना मद्यादिक जे कारणु अताज्या
छे ते पणु प्रमादमा न परिगणित थया छे कह्यु पणु छे—

“मज्ज विसय कसाया, निदा विगहा य पचमा भणिया ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ” ॥ १ ॥

“श्रेयो विपमुपभोक्तु, क्षम भवेत् क्रीडितु हुताशेन ।
जीवैरिह ससारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम् ॥ १ ॥
अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विप हुताशो वा ।
आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तरशतानि ॥ २ ॥
यत्र प्रयान्ति पुरुषाः, स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम् ।
तत्र निमित्तमनार्यं, प्रमाद इति निश्चितमिदं मे ॥ ३ ॥

मद्य १, विषय २, कषाय ३, निद्रा ४ तथा विकथा ५, ये पांच प्रमाद हैं, और ये जीवको ससारमे गिराते है यही इनके सेवनका फल है । इस प्रमादका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

“श्रेयो विपमुपभोक्तु, क्षम भवेत् क्रीडितु हुताशेन ।

जीवैरिह ससारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम्” ॥ १ ॥

विप खा लेना अच्छा है, अग्निके साथ क्रीडा करना ठीक है परन्तु मनुष्योंको इस ससारमे एक क्षणका भी प्रमाद करना उचित नहीं है । १ ।

“अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विप हुताशो वा ।

आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तर शतानि” ॥ २ ॥

कारण ग्वाया हुआ विप अथवा सेवित हुई अग्नि प्राणीको इसी पर्याय में जीविनसे विमुक्त कर देती है, परन्तु सेवित किया गया प्रमाद जन्म, जन्मान्तर तकमें भी इस जीवको मारता रहता है ॥ २ ॥

(१) मद्य, (२) विषय, (३) कषाय, निद्रा (४) तथा (५) विकथा ये पांच प्रमाद छे, अने ते लुवने स सारभा पाडे छे अने अनेभना सेवनतु क्षण छे ते प्रमादतु स्वर्ग आ प्रमादु कछु छे—

“श्रेयो विपमुपभोक्तु, क्षम भवेत् क्रीडितु हुताशेन ।

जीवैरिह ससारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम्” ॥ १ ॥

उेर भावु साइ छे, अग्निनी साथे खेलतु पछु साइ छे परन्तु मनुष्ये आ स सारभा अने क्षणुने पछु प्रमाद करवे ते योग्य नथी ॥१॥

“अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विप हुताशो वा ।

आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तर शतानि” ॥ २ ॥

कारण के भावभा आवेल उेर अथवा सेववामा आवेल अग्नि प्राणीअे अने पर्यायभा लुवनथी विमुक्त करी नाछे छे पछु सेववामा आवेल प्रमाद जन्म, जन्मान्तर सुधीमा पछु आ लुवने मारतो रहे छे ॥ २ ॥

મનોપાયે ધીતરાગમણીતચિન્તામણી યતો વિચિત્રકર્મોદયસાહાય્યજનિતાત્ પરિણામ વિશેષાદપશ્યન્નિત્ તદ્વ્યમવિગળગ્ય વિશિષ્ટ પરલોકક્રિયાવિમુખવ્યાઽસ્તે જીવઃ, સ્વલ્પ પ્રમાદઃ । તસ્ય ચ પ્રમાદસ્ય યે હતનો મઘાદયસ્તેઽપિ પ્રમાદાઃ, વત્કારણત્વાત્ । ઉક્તશ્ચ—

“મજ્જ વિસય કસાયા, નિદ્દા વિગહા ય પચમા ભણિયા ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ॥ १ ॥”

एतस्य च पञ्चविधस्यापि प्रमादस्य फल चतुर्गतिक ससारपतनम् ।

किञ्च—

इससे निकलनेका उपाय यद्यपि धीतरागमणीत धर्मरूपी चिन्तामणि है सो वह मेरी दृष्टिमें नहीं आ रहा है, कारण मेरे भीतर कुछ ऐसा विचित्र कर्मोदयकी सहायतासे परिणाम विशेष आ गया है कि जिसका वजह से मेरी दृष्टि उस ओर जानी ही नहीं है, और न इस ससार निवासगृहमें रहते हुए मुझे कोई भय ही प्रतीत होता है, इसी लिये मैं विशिष्ट परलोककी क्रियाओंसे पराङ्मुख हो रहा हूँ” इस तरहकी परिस्थितिको बनानेवाला एक प्रमाद है । तात्पर्य यह कि जानबूझ कर भी जीव प्रमादके कारण ही आत्मकल्याणके मार्गसे पराङ्मुख बना रहता है । इस प्रमादके जो कारण मघादिक बतलाये गये हैं वे भी प्रमाद में ही परिगणित होते हैं । कहा भी है—

“मज्ज विसयकसाया, निदद्दा विगह्हा य पचमा भणिया ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ” ॥ १ ॥

ધર્મરૂપી ચિન્તામણી છે તે મારી નજરે પડતુ નથી કારણ કે મારી અંદર કોઈ એવા વિચિત્ર કર્મોદયની સહાયતાથી પરિણામ વિશેષ આવી ગયુ છે કે જેને કારણે મારી નજર તેની તરફ થતી જ નથી, અને આ સ સારરૂપી નિવાસગૃહમાં રહેતા એવા મને કોઈ ભય પણ લાગતો નથી, તે કારણે હું વિશિષ્ટ પરલોકની ક્રિયાઓથી વિમુખ રહ્યો છું ” આ પ્રકારની પરિસ્થિતિને ઉત્પન્ન કરનાર પ્રમાદ છે તાત્પર્ય એ કે જાણવા છતાં જીવ પ્રમાદને કારણે જ આત્મ કલ્યાણના માર્ગથી વિમુખ રહે છે આ પ્રમાદના મઘાદિક જે કારણો બતાવ્યા છે તે પણ પ્રમાદમાં જ પરિગણિત થયા છે કહ્યું પણ છે—

“મજ્જ વિસય કસાયા, નિદ્દા વિગહા ય પચમા ભણિયા ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ” ॥ १ ॥

“श्रेयो विपमुपभोक्तु, क्षम भवेत् क्रीडितु हुताशेन ।
जीवैरिह ससारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम् ॥ १ ॥
अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विप हुताशो वा ।
आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तरशतानि ॥ २ ॥
यत्र प्रयान्ति पुरुषाः, स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम् ।
तत्र निमित्तमनार्यं, प्रमाद इति निश्चितमिदं मे ॥ ३ ॥

मद्य १, विषय २, कषाय ३, निद्रा ४ तथा विक्रथा ५, ये पांच प्रमाद हैं, और ये जीवको ससारमें गिराते हैं यही इनके सेवनका फल है । इस प्रमादका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

“श्रेयो विपमुपभोक्तु, क्षम भवेत् क्रीडितु हुताशेन ।
जीवैरिह ससारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम्” ॥ १ ॥

विष खा लेना अच्छा है, अग्निके साथ क्रीडा करना ठीक है परन्तु मनुष्योंको इस ससारमें एक क्षणका भी प्रमाद करना उचित नहीं है । १ ।

“अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विप हुताशो वा ।
आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तर शतानि” ॥ २ ॥

कारण खाया हुआ विष अथवा सेवित हुई अग्नि प्राणीको इसी पर्यायमें जीविनसे विमुक्त कर देती है, परन्तु सेवित किया गया प्रमाद जन्म, जन्मान्तर तकमें भी इस जीवको मारता रहता है ॥ २ ॥

(१) मद्य, (२) विषय, (३) कषाय, निद्रा (४) तथा (५) विक्रथा ये पांच प्रमाद हैं, अने ते लवने स सारमा पाडे छे अने अमना सेवनतु क्षण छे ते प्रमादतु स्वरूप आ प्रमादु कर्तुं छे—

“श्रेयो विपमुपभोक्तु, क्षम भवेत् क्रीडितु हुताशेन ।
जीवैरिह ससारे, न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम्” ॥ १ ॥

अरे भावु साइ छे, अग्निनी साथे खेलु पक्षु साइ छे परन्तु मनुष्ये आ स सारमा अरे क्षणुना पक्षु प्रमाद करवे ते योग्य नथी ॥१॥

“अस्यामेव हि जातौ, नरमुपहन्याद् विप हुताशो वा ।
आसेवितः प्रमादो, हन्याज्जन्मान्तर शतानि” ॥ २ ॥

कारण के भावमा आवेल अरे अथवा सेवामा आवेल अग्नि प्राणीअे अने पर्यायमा लवनथी विमुक्त करी नाछे छे पक्षु सेवामा आवेल प्रमाद जन्म, जन्मान्तर सुधीमा पक्षु आ लवने भारतो रहे छे ॥ २ ॥

मनोपाये वीतरागप्रणीतचिन्ताप्रणौ यतो विचित्रकर्मोदयसाहाय्यजनितात् परिणाम
विशेषादपश्यन्नित्र तद्भयमविगणय्य विशिष्ट परलोकक्रियाविमुक्तप्राप्ताऽऽस्ते जीवः,
स खलु प्रमादः । तस्य च प्रमादस्य ये हेतवो मद्यादयस्तेऽपि प्रमादाः,
तत्कारणत्वात् । उक्तञ्च—

“मज्ज विसय कसाया, निदा विगहा य पंचमा भणिया ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ॥ १ ॥”

एतस्य च पञ्चविधस्यापि प्रमादस्य फलं चतुर्गतिकं ससारपतनम् ।

किञ्च—

इससे निकलनेका उपाय यद्यपि वीतरागप्रणीत धर्मरूपी चिन्तामणि है सो
वह मेरी दृष्टिमें नहीं आ रहा है, कारण मेरे भीतर कुछ ऐसा विचित्र
कर्मोदयकी सहायतासे परिणाम विशेष आ गया है कि जिसका बजह
से मेरी दृष्टि उस ओर जानी ही नहीं है, और न इस ससार निवा
सगृहमे रहते हुए मुझे कोई भय ही प्रतीत होता है, इसी लिये मैं
विशिष्ट परलोककी क्रियाओंसे पराङ्मुख हो रहा हूँ” इस तरहकी
परिस्थितिको बनानेवाला एक प्रमाद है । तात्पर्य यह कि जानबूझ कर
भी जीव प्रमादके कारण ही आत्मकल्याणके मार्गसे पराङ्मुख बना
रहता है । इस प्रमादके जो कारण मद्यादिक बतलाये गये हैं वे भी प्रमाद
मे ही परिगणित होते हैं । कहा भी है—

“मज्ज विसयकसाया, निदा विगहा य पंचमा भणिया ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ” ॥ १ ॥

धर्मरूपी चिन्तामणी छे ते भारी नजरें पडतु नथी कारण छे भारी अहं
कोई जेवा विचित्र कर्मोदयनी सहायताथी परिणाम विशेष आवी गयु छे के
जेने कारणे भारी नजरें तेनी तरफ थती नथी, अने आ ससाररूपी निवा
सगृहमा रहैता जेवा भने कोई लय पणु लागतो नथी, ते जखे हुं विशिष्ट
परलोकनी क्रियाज्येथी विमुक्त रह्यो छु ” आ प्रकारनी परिस्थितिने उत्पन्न
करनार प्रमाद छे तात्पर्य जे के जणुवा छता एव प्रमादने कारणे न आत्म
कल्याणना मार्गथी विमुक्त रहै छे आ प्रमादना मद्यादिक जे कारणे अताव्या
छे ते पणु प्रमादमा न परिगणित थया छे कह्यु पणु छे—

“मज्ज विसय कसाया, निदा विगहा य पंचमा भणिया ।

ए ए पच पमाया, जीव पाडेंति ससारे ” ॥ १ ॥

इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः ।

यत् कृत्य तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति ॥ ६ ॥

तेषामभिपतितानા-મુદ્ધ્રાન્તાના પ્રમત્તહૃદયાનામ્ ।

વર્ધન્ત એવ દોષાઃ, વનતરવશ્ચામ્બુસેકેન ॥ ૭ ॥

માનવ પર્યાયકી દૃષ્ટિસે હાથ પૈર આદિ અવયવોં કી સમાનતા હોને પર भी जो प्राणी एक दूसरेकी पराधीनता भोग रहा है-नाना प्रकार की दासवृत्ति कर रहा है-यह सब प्रमादका ही फल है ॥ ६ ॥

“इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः ।

यत् कृत्य तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति ” ॥ ६ ॥

यह कितने दुःखकी घात है कि यह प्राणी प्रमत्त चित्त हो कर उन्मादी पुरुषकी तरह इन्द्रियोंका दास बन कर जो कर्तव्य कार्य है उसे तो करता नहीं है तथा जो नहीं करने योग्य है उसे ही रात दिन करता रहता है ॥ ६ ॥

“तेषामभिपतितानા-મુદ્ધ્રાન્તાના પ્રમત્તહૃદયાનામ્ ।

વર્ધન્ત એવ દોષાઃ, વનતરવશ્ચામ્બુસેકેન ” ॥ ૭ ॥

જિસ પ્રકાર જલકે સિંચન સે જગલકે વૃક્ષ વઢ જાતે હૈં ઉસી પ્રકાર પ્રમત્ત હૃદયવાલે વ્યક્તિયોં મેં भी उद्भ्रान्त चित्तता एव विषयकपायोमें पतनशीलता आदि अनेक प्रकारके दुर्गुण घढ जाते हैं ॥ ७ ॥

માનવ પર્યાયની દૃષ્ટિએ હાથ, પગ આદિ અવયવોની સમાનતા હોવા છતાં પણ જે પ્રાણી એક બીજાની પરાધીનતા ભોગવી રહ્યા છે વિવિધ પ્રકારની શુભામી કરી રહ્યા છે આ બધું પ્રમાદનું જ ફળ છે ॥ ૫ ॥

“इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपला ।

यत् कृत्य तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति ” ॥ ६ ॥

એ કેટલા દુઃખની વાત છે કે આ પ્રાણી પ્રમત્ત ચિત્ત થઈને ઉન્માદી પુરુષની જેમ ઇન્દ્રિયોનું શુભામ બનીને જે કર્તવ્ય બળવવાનું છે તે તે બળ વતું નથી પણ જે કરવા યોગ્ય નથી એજ રાતદિન કરતું રહે છે ॥ ૬ ॥

“तेषामभिपतितानામુદ્ધ્રાન્તાના પ્રમત્તહૃદયાનામ્ ।

વર્ધન્ત એવ દોષાઃ, વનતરવશ્ચામ્બુસેકેન ” ॥ ૭ ॥

જેમ જળના સિંચનથી જ ગલના વૃક્ષો વધી જાય છે એજ પ્રકારે પ્રમત્ત હૃદયવાળી વ્યક્તિઓમા પણ ઉદ્ધ્રાન્ત ચિત્તતા અને વિષય કષાયોમા પતન શીલતા આદિ અનેક પ્રકારના દુર્ગુણ વધી જાય છે ॥ ૭ ॥

સસાર વન્ધનગતો, જાતિ જરાવ્યાધિ મરણ દુઃખાર્તઃ ।
 યન્નો દ્વિજતે સત્ત્વઃ, સોઽપ્યપરાધઃ પ્રમાદસ્ય ॥ ૪ ॥
 આજ્ઞાપ્યતે યદવશ, સ્તુલ્યોદર પાણિપાદવદનેન ।
 કર્મં ચ કરોતિ વહુવિધ, મેતદપિ ફલ પ્રમાદસ્ય ॥ ૫ ॥

“ યન્ન પ્રયાન્તિ પુરુષાઃ, સ્વર્ગં યન્ન પ્રયાન્તિ ત્રિનિપાતમ્ ।
 તત્ર નિમિત્તમનાર્યઃ, પ્રમાદ ઇતિ નિશ્ચિતમિદમે ” ॥ ૩ ॥

પુરુષ-આત્મા જો સ્વર્ગ કો પ્રાપ્ત નહીં કરતે હૈ તથા કેવલ અધોગતિ
 કે હી પાત્ર ઘનતે હૈં હસમેં પ્રધાનકારણ એક યહ અનાર્ય પ્રમાદ હી હૈ યહ
 નિશ્ચિત વાત હૈ ॥ ૩ ॥

“ સસારવન્ધનગતો, જાતિ જરા વ્યાધિ મરણ દુઃખાર્તઃ ।
 યન્નોદ્વિજતે સત્ત્વઃ, સોઽપ્યપરાધઃ પ્રમાદસ્ય ” ॥ ૪ ॥

હસ સસારરૂપી કારાગારમેં પડા હુઆ યહ પ્રાણી જો જન્મ, જરા
 એવ મરણકે દુઃખોં સે સત્રસ્ત હો રહા હૈ, તથા એસી પરિસ્થિતિકો ભોગતા
 હુઆ મી જો યહા સે ઉદ્વિગ્ન ચિત્ત નહીં હોતા હૈ હસમેં યદિ કોઈ
 અપરાધી હૈ તો વહ એક પ્રમાદ હી હૈ ॥ ૪ ॥

“ આજ્ઞાપ્યતે યદવશ, -સ્તુલ્યોદર પાણિપાદવદનેન ।
 કર્મં ચ કરોતિ વહુવિધ, -મેતદપિ ફલ પ્રમાદસ્ય ” ॥ ૫ ॥

“ યન્ન પ્રયાન્તિ પુરુષાઃ, સ્વર્ગં યન્ન પ્રયાન્તિ ત્રિનિપાતમ્ ।
 તત્ર નિમિત્તમનાર્યઃ પ્રમાદ ઇતિ નિશ્ચિતમિદમે ” ॥ ૩ ॥

પુરુષ-આત્મા, જે સ્વર્ગ પ્રાપ્ત કરતા નથી તથા ક્ષત અધોગતિને જ
 પાત્ર થાય છે તેમા એક મુખ્ય કારણ આ અનાર્ય પ્રમાદ જ છે એ વાત
 નિશ્ચિત છે ॥૩॥

“ સસાર વન્ધનગતો, જાતિ જરાવ્યાધિ મરણ દુઃખાર્તઃ ।
 યન્નો દ્વિજતે સત્ત્વઃ, સોઽપ્યપરાધઃ પ્રમાદસ્ય ” ॥ ૪ ॥

આ સસારરૂપી કારાગારમા પડેલ આ પ્રાણી જે જન્મ, જરા, અને
 મરણના હુ ખોથી ત્રાસી ગયેલ છે, તથા એવી પરિસ્થિતિને ભોગવતા ભોગવતા
 પણ જે અહીંથી ઉદ્વિગ્ન ચિત્ત નથી થતા તેમા જે કોઈ અપરાધી હોય તો
 એક પ્રમાદ જ છે ॥૪॥

“ આજ્ઞાપ્યતે યદવશ-સ્તુલ્યોદર પાણિ પાદ વદનેન ।
 કર્મં ચ કરોતિ વહુ વિધ, -મેતદપિ ફલ પ્રમાદસ્ય ” ॥ ૫ ॥

इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः ।

यत् कृत्य तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति ॥ ६ ॥

तेषामभिपतितानા-મુદ્બ્રાન્તાના પ્રમત્તહૃદયાનામ્ ।

વર્ધન્ત એવ દોષાઃ, વનતરવશ્ચામ્બુસેકેન ॥ ૭ ॥

માનવ પર્યાયકી દૃષ્ટિસે હાથ પૈર આદિ અવયવોં કી સમાનતા હોને પર ખી જો પ્રાણી એક દૂસરેકી પરાધીનતા ભોગ રહા હૈ-નાના પ્રકાર કી ડાસવૃત્તિ કર રહા હૈ-યહ સવ પ્રમાદકા હી ફલ હૈ ॥ ૬ ॥

“इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपलाः ।

यत् कृत्य तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति” ॥ ६ ॥

યહ કિતને દુઃખકી ઘાત હૈ કિ યહ પ્રાણી પ્રમત્ત ચિત્ત હો કર ઉન્માદી પુરુષકી તરહ ઇન્દ્રિયોંકા ડાસ વન કર જો કર્તવ્ય કાર્ય હૈ ઉસે તો કરતા નહોં હૈ તથા જો નહોં કરને યોગ્ય હૈ ઉસે હી રાત દિન કરતા રહતા હૈ ॥ ૬ ॥

“तेषामभिपतिताना, -मुद्भ्रान्ताना प्रमत्तहृदयानाम् ।

वर्धन्त एव दोषाः, वनतरवश्चाम्बुसेकेन” ॥ ७ ॥

જિસ પ્રકાર જલકે સિંચન સે જગલકે વૃક્ષ વઢ જાતે હોં ઉસી પ્રકાર પ્રમત્ત હૃદયવાલે વ્યક્તિયોં મેં ખી ઉદ્બ્રાન્ત ચિત્તતા એવ વિષય કષાયોંમેં પતનશીલતા આદિ અનેક પ્રકારકે દુર્ગુણ વઢ જાતે હોં ॥ ૭ ॥

માનવ પર્યાયની દૃષ્ટિએ હાથ, પગ આદિ અવયવોની સમાનતા હોવા છતાં પણ જે પ્રાણી એક બીજાની પરાધીનતા ભોગવી રહ્યા છે વિવિધ પ્રકારની શુભામી કરી રહ્યા છે આ બધું પ્રમાદનું જ ફળ છે ॥ ૬ ॥

“इह हि प्रमत्तमनसः, सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्चपला ।

यत् कृत्य तदकृत्वा, सततमकार्येष्वभिपतन्ति” ॥ ६ ॥

એ કેટલા દુ ખની વાત છે કે આ પ્રાણી પ્રમત્ત ચિત્ત થઈને ઉન્માદી પુરુષની જેમ ઇન્દ્રિયોનું શુભામ બનીને જે કર્તવ્ય બળવવાનું છે તે તો બળ વતું નથી પણ જે કરવા યોગ્ય નથી એજ રાતદિન કરતું રહે છે ॥ ૬ ॥

“तेषामभिपतितानामुद्भ्रान्ताना प्रमत्तहृदयानाम् ।

वर्धन्त एव दोषाः वनतरवश्चाम्बुसेकेन” ॥ ७ ॥

જેમ જળના સિંચનથી જ ગલના વૃક્ષો વધી બંધ છે એજ પ્રકારે પ્રમત્ત હૃદયવાળી વ્યક્તિઓમા પણ ઉદ્બ્રાન્ત ચિત્તતા અને વિષય કષાયોમા પતન શીલતા આદિ અનેક પ્રકારના ઇશુષુ વધી બંધ છે ॥ ૭ ॥

દૃષ્ટાઽઽપ્યાલોક નૈવ વિશ્રમ્ભિતવ્ય, તીર નીતા ભ્રામ્યતે વાયુના નૌઃ ।

લઘ્વા વૈરાગ્યં ભ્રષ્ટયોગઃ પ્રમાદાત્, ભૂયો ભૂયઃ સમૃતૌ વમ્ભ્રમીતિ ॥ ૮ ॥

एव प्रमादप्रतिपक्षस्याऽप्रमादस्य स्वरूपादयो वान्याः १० । नन्दिः ११,

अनुयोगद्वाराणि एतत् सूत्रद्वयमुपलभ्यते १२ । देवेन्द्रस्तवः १३, तन्दुलवैचारिकं

१४, चन्द्रकवेष्यम् १५, एतत् त्रयं नोपलभ्यते । यत्तु तन्दुलवैचारिकम्नाम्नाक्वचि-

दिदानीमुपलभ्यते, तदन्यदेवेति विज्ञेयम् । सूर्यप्रज्ञप्तिः—सूर्यचरितं प्रज्ञापनं

“ दૃષ્ટાઽઽપ્યાલોક નૈવ વિશ્રમ્ભિતવ્ય, તીર નીતા ભ્રામ્યતે વાયુના નૌઃ ।

લઘ્વા વૈરાગ્યં ભ્રષ્ટયોગઃ પ્રમાદાત્, ભૂયો ભૂયઃ સમૃતૌ વમ્ભ્રમીતિ ॥ ૮ ॥

जिस तरह तीर पर आई हुई भी नौका वायुके झोकोंसे कपित

हो उठती है उसी प्रकार प्रमादी जीव आलोक पाकर भी-गुर्वादिकका

उपदेश प्राप्त कर भी ससारकी वासनाओंसे ही कपित होता रहता है ।

वैराग्यका समय पा कर भी वह उस योगसे प्रमादके कारण वञ्चित हो

जाता है । इस तरह यह अभागा धार २ ससारमें ही चक्कर काटा

करता है ॥ ८ ॥

इससे विपरीत अप्रमादका स्वरूप समझ लेना चाहिये ॥ १० ॥

नदि ११ तथा अनुयोगद्वार १२ ये दोनों सूत्र अथ भी उपलब्ध होते

हैं । देवेन्द्रस्तव १३, तन्दुल वैचारिक १४ एव चन्द्रकवेष्य १५, ये तीन

सूत्र नहीं मिलते हैं । अथ भी जो तन्दुल वैचारिक नामसे कहीं २ सूत्र

उपलब्ध होता है यह वह तन्दुल वैचारिक सूत्र नहीं है—यह तो उससे

जुदा ही है । जिस आगमपद्धतिमें सूर्य सम्बन्धी चरित की प्रज्ञा-

“ દૃષ્ટાઽઽપ્યાલોક નૈવ વિશ્રમ્ભિતવ્ય, તીર નીતા ભ્રામ્યતે વાયુના નૌ' ।

લઘ્વા વૈરાગ્યં ભ્રષ્ટયોગ' પ્રમાદાત્, ભૂયો ભૂય' સમૃતૌ વમ્ભ્રમીતિ ॥ ૮ ॥

જે રીતે કાઠે આવેલી હોડી પણ વાયુની લહેરથી ડોલી ઉઠે છે એજ

પ્રકારે પ્રમાદી જીવ આલોક પામીને પણ-શુરુ આદિને ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરીને પણ

સ સારની વાસનાઓથી ડોલાયમાન થયા કરે છે વૈરાગ્યનો સમય પામવા છતા

પણ તે પ્રમાદને કારણે તે તકથી વચિત થાય છે આ રીતે તે અભાગીયો

વારવાર સ સારમા અટવાયા કરે છે ॥ ૮ ॥

એનાથી વિપરીત જુદા અપ્રમાદનું સ્વરૂપ સમજી લેવું જોઈ એ ૧૦

નદિ ૧૧ તથા અનુયોગ દ્વારા ૧૨ એ બંને સૂત્રો હજી પણ ઉપલબ્ધ છે

દેવેન્દ્રસ્તવ ૧૩, તન્દુલવૈચારિક ૧૪ અને ચન્દ્રકવેષ્ય ૧૫ એ ત્રણ સૂત્રો મળતા નથી

હાલમા પણ તન્દુલ વૈચારિક નામનું સૂત્ર કોઈ કોઈ સ્થાને મળી આવે છે, તે

અસલ તન્દુલવૈચારિકસૂત્ર નથી તે તો તેના કરતા જુદું જ છે જે—આગમ

यस्यामागमपद्धतौ सा सूर्यप्रज्ञप्तिः १६ । तथा-पौरुपीमण्डलम्-पुरुष-शङ्कुः शरीर
वा, तस्मान्निष्पन्ना पौरुपी । अय भावः-यदा सप्तस्य वस्तुनः स्वप्रमाणा ज्ञाया
जायते तदा पौरुपी भवति, इत्येतच्च पौरुपीमानमुत्तरायणान्ते दक्षिणायनादौ-
वैरुदिनं भवति, तत ऊर्ध्वमङ्गुलस्याष्टावेकपट्टिभागा दक्षिणायने वर्धन्ते उत्तरा-
यणे च ह्रस्वन्तीति । एष पौरुपी, मण्डले २ अन्या २ प्रतिपाद्यते यत्र तदध्ययनमिति
१७ । इतः प्रभृति महाप्रत्याख्यान पर्यन्तानि सर्वाणि सूत्राणि विच्छिन्नानि,
तथापि तानि नामतः प्रदर्शयन्ते—

मण्डलप्रवेशः-यत्र चन्द्रसूर्ययोर्दक्षिणोत्तरेषु मण्डलेषु प्रवेशो वर्ण्यते तदध्ययन-
मिति । १८ । विद्याचरणविनिश्चय इति-विद्या-ज्ञान, तच्च सम्यग्दर्शनसहित

पना बतलाई गई है वह सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र है । १६ । पौरुपी मण्डल, यह
एकाध्ययनात्मक एक शास्त्रका नाम है । पुरुष नाम शङ्कु अथवा शरीर
का है, उससे जो निष्पन्न हो उसका नाम पौरुपी है । इसका अभिप्राय
यह है-जिस कालमें सभी पदार्थों की अपने प्रमाण परिमित छाया होती
है । यह पौरुपीमान उत्तरायणके अन्तमें और दक्षिणायनके आदिमें एक
दिनका होता है । उसके बाद दक्षिणायनमें अङ्गुलका एकसठिया आठ
भाग बढ़ता है और उत्तरायण में उतना ही कम होता है । इस प्रकार
मण्डल मण्डलमें भिन्न भिन्न पौरुपीका प्रतिपादन जहां किया गया है
वह अध्ययन पौरुपी मण्डल कहलाता है १७ । यहांसे लेकर महाप्रत्या-
ख्यान तकके समस्त सूत्र विच्छिन्न हो चुके हैं तो भी वे नामसे दिख-
लाये जाते हैं-मण्डल प्रवेश, जहां चन्द्र और सूर्य के दक्षिण और उत्तर

पद्धतिमा सूर्य विषेना चरितनी प्रज्ञापना भतावी छे ते सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र छे १६
पौरुपी मण्डल, ओ ओकाध्ययनात्मक ओक शास्त्रनु नाम छे पुरुष शङ्कु अथवा
शरीरनु नाम छे, तेनाथी ने प्रतिपादित थाय तेनु नाम पौरुपी छे तेनु
तात्पर्य आ छे-ओे काणे समस्त पदार्थोनी चोताना प्रमाणु नेटली छाया होय
छे त्पारे पौरुपी थाय छे आ पौरुपी प्रमाणु उत्तरायणने अन्ते अने दक्षिणा
यणने प्रारंभे ओक दिननु थाय छे त्पार जाद दक्षिणायणमा अणुलना ओक
संभा आठ लाग नेटलु वधे छे अने उत्तरायणमा ओटलु न घटे छे आ
प्रकारे मण्डले मण्डले भिन्न भिन्न पौरुपीनु प्रतिपादन न्या १७वामा आव्यु छे
ते अध्ययनने पौरुपी मण्डल ठडे छे १७ अहीथी लघने महाप्रत्याख्यान सुधीना
सधना सूत्र विच्छिन्न थछ गया छे तो पणु तेमने नामथी भताववामा आवे छे-

દૃષ્ટ્વાऽऽપ્યાલોક નૈવ વિશ્રમ્ભિતવ્ય, તીરં નીતા ભ્રામ્યતે વાયુના નૌઃ ।

લઘ્વા વૈરાગ્યં ભ્રષ્ટયોગઃ પ્રમાદાત્, ભૂયોભૂયઃ સસૃતૌ વમ્ભ્રમીતિ ॥ ૮ ॥

एव प्रमादप्रतिपक्षस्याऽप्रमादस्य स्वरूपादयो वाच्याः १० । नन्दिः ११,

अनुयोगद्वाराणि एतत् सूत्रद्वयमुपलभ्यते १२ । देवेन्द्रस्तवः १३, तन्दुलवैचारिकं १४, चन्द्रकवेध्यम् १५, एतत् त्रयं नोपलभ्यते । यत्तु तन्दुलवैचारिकनाम्नाऽवशि-
दिदानीमुपलभ्यते, तदन्यदेवेति विज्ञेयम् । सूर्यप्रज्ञप्ति-सूर्यचरितं मन्नापनं

“ दृષ્ટ્वाऽऽપ્યાલોક નૈવ વિશ્રમ્ભિતવ્ય, તીરં નીતા ભ્રામ્યતે વાયુના નૌઃ ।

લઘ્વા વૈરાગ્યં ભ્રષ્ટયોગઃ પ્રમાદાત્, ભૂયોભૂયઃ સસૃતૌ વમ્ભ્રમીતિ ॥ ૮ ॥

जिस तरह तीर पर आई हुई भी नौका वायुके झोकोसे कपित हो उठती है उसी प्रकार प्रमादी जीव आलोक पाकर भी-गुर्वादिक्का उपदेश प्राप्त कर भी ससारकी वासनाओंसे ही कपित होता रहता है। वैराग्यका समय पा कर भी वह उस योगसे प्रमादके कारण बन्धित हो जाता है। इस तरह यह अभाग्य वार २ ससारमें ही चक्कर काटा करता है ॥ ८ ॥

इससे विपरीत अप्रमादका स्वरूप समझ लेना चाहिये ॥ १० ॥
नदि ११ तथा अनुयोगद्वार १२ ये दोनों सूत्र अथ भी उपलब्ध होते हैं। देवेन्द्रस्तव १३, तन्दुल वैचारिक १४ एव चन्द्रकवेध्य १५, ये तीन सूत्र नहीं मिलते हैं। अथ भी जो तन्दुल वैचारिक नामसे कहीं २ सूत्र उपलब्ध होता है यह वह तन्दुल वैचारिक सूत्र नहीं है-यह तो उससे जुदा ही है। जिस आगमपद्धतिमें सूर्य सम्बन्धी चरित की प्रज्ञा-

“ दृષ્ટ્वाऽऽપ્યાલોક નૈવ વિશ્રમ્ભિતવ્ય, તીરં નીતા ભ્રામ્યતે વાયુના નૌઃ ।

લઘ્વા વૈરાગ્યં ભ્રષ્ટયોગઃ પ્રમાદાત્, ભૂયોભૂયઃ સસૃતૌ વમ્ભ્રમીતિ ॥ ૮ ॥

એ રીતે કાઠે આવેલી હોડી પણ વાયુની લહેરથી ડાલી ઉઠે છે એજ પ્રકારે પ્રમાદી જીવ આલોક પામીને પણ-ગુરુ આદિનેા ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરીને પણ સ સારની વાસનાઓથી ડોલાયમાન થયા કરે છે વૈરાગ્યનેા સમય પામવા છતા પણ તે પ્રમાદને કારણે તે તકથી વચ્ચિત થાય છે આ રીતે તે અલાગીથે વાર વાર સ સારમા અટવાયા કરે છે ॥ ૮ ॥

એનાથી વિપરીત જુદા અપ્રમાદનુ સ્વરૂપ સમજી લેવું જોઈ એ ૧૦ નદિ ૧૧ તથા અનુયોગ દ્વારા ૧૨ એ બંને સૂત્રો હજી પણ ઉપલબ્ધ છે દેવેન્દ્રસ્તવ ૧૩, તન્દુલવૈચારિક ૧૪ અને ચન્દ્રક વેધ્ય ૧૫ એ ત્રણ સૂત્રો મળતા નથી હાલમા પણ તન્દુલ વૈચારિક નામનુ સૂત્ર કોઈ કોઈ સ્થાને મળી આવે છે, તે અસલ તન્દુલવૈચારિકસૂત્ર નથી તે તેના કરતા જુદું જ છે એ આગમ

छाया—ज्योतिष निमित्त ज्ञान, गणिना प्रमाजनादि कार्येषु ।

उपयुज्यते तिथिकरणा,—दि ज्ञानार्थं मन्यथा दोषः ॥ १ ॥ २० ॥

ध्यानविभक्तिरिति, ध्यानानि—आर्तध्यानादीनि, तेषां विभक्तिः—विभागो यस्या-
मागमपद्धतौ सा ध्यानविभक्तिः २१। तथा—मरणविभक्तिरिति, मरणानि-प्राणत्यागल-
क्षणानि, तानि द्विविधानि भवन्ति—प्रशस्तानि, अप्रशस्तानि । तेषां विभक्तिः विभागः,
पार्थक्येन स्वरूपप्रकटनं यस्यामागमपद्धतौ सा मरणविभक्तिः २२ । आत्मविशोधि-
रिति, आत्मनोविशोधि—आलोचनाप्रायश्चित्तप्रतिपत्त्यादि प्रकारेण कर्ममलापगमल-
क्षणा यत्र प्रतिपाद्यते सा आत्मविशोधिः २३ । तथा वीतरागश्रुतमिति; सराग-
प्रतिपेदेन वीतरागस्वरूप प्रतिपाद्यते यत्र श्रुते तद् वीतरागश्रुतम् २४ । तथा—
सलेखनाश्रुतमिति, द्रव्यभाव सलेखना यत्र श्रुते प्रतिपाद्यते तत् सलेखनाश्रुतम्

“ जोडस निमित्तनाण, गणिणा पञ्चायणा इ कज्जेसु ।

उवजुज्जइ तिहिकरणा,—इ जाणणद्वञ्जहा दोसो ” ॥ १ ॥ इति । २० ।

ध्यानविभक्तिनामक सूत्र में आर्तध्यान, रौद्रध्यान आदि चार प्रकार
के ध्यानों का विभाग बतलाया गया है । २१ । मरणविभक्तिनामक सूत्र
में प्रशस्तमरण एवं अप्रशस्तमरण का पृथक् २ रूप से स्वरूप प्रकट किया
गया है २२ । आत्मविशोधिसूत्र में—“ आलोचना प्रतिक्रमण आदि
प्रायश्चित्तों के द्वारा यह आत्मा अपने साथ लगे हुए कर्ममल का अभाव
कैसे कर सकता है ” यह विषय प्रतिपादित हुआ है २३ । वीतरागश्रुत
में—यह विषय समझाया गया है कि सरागता का त्याग कर वीतरागता
को धारण करना चाहिये । तथा वीतराग का स्वरूप अमुक २ प्रकार से
है २४ । सलेखनाश्रुत में—द्रव्य एवं भाव की अपेक्षा द्विविध सलेखना

“ जोडस निमित्तनाण, गणिणा पञ्चायणा इ कज्जेसु ।

उवजुज्जइ तिहिकरणा,—इ जाणणद्वञ्जहा दोसो ” ॥ १ ॥ इति । २० ।

ध्यान निमित्त नामना सूत्रमा आर्तध्यान, रौद्रध्यान, आदि चार प्रकारना
ध्यानानो विभाग बनायो ठे (२१) मरण विभक्ति नामना सूत्रमा प्रशस्त
मरण अने अप्रशस्त मरणनु अलग अलग रीते स्वरूप प्रकट क्युं छे (२२)
आत्मविशोधि सूत्रमा “ आलोचना प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्तों द्वारा आ
आत्मा पोताने लागेला ठम भणने अभाव केवी रीते वरी राठे छे ” अने विष-
यनु प्रतिपादन थयुं ठे (२३) वीतरागश्रुतमा अने विषय समझाये छे ठे सरा-
गतानो त्याग वरीने वीतरागने धारण वरीने जेठे अने तथा वीतरागनु स्वरूप
अमुक अमुक प्रकारे छे (२४) सलेखना श्रुतमा द्रव्य अने भावनी अपेक्षा अने

શ્રુત્યે, અન્યથા જ્ઞાનત્વાયોગાત, ચરણ-ચારિત્રમ્, ણ્તેષાં ફર્ગનિશ્ચયપ્રતિપાત્ક
આગમઃ-વિદ્યાચરણવિનિશ્ચયઃ ૧૯ । તથા-ગણિવિદ્યા-પ્રાલૃપ્તમહિતો ગન્ત્યો ગણઃ,
સોડ્સ્યાસ્તીતિ ગણી-આચાર્યઃ, તમ્ય વિદ્યા-જ્ઞાન ગણિવિદ્યા । મા ચેદ્ જ્યોતિષ્ક
નિમિત્તાદિ પરિમાનરૂપા ઘેદિતવ્યા । જ્યોતિષ્કનિમિત્તાદિક્ક હિ મમ્યક્ર પરિજ્ઞાપ
પ્રત્રાજન-સામાયિકારોપણો - પમ્યાપન-શ્રુતોદેશાનુજ્ઞા-ગણારોપણ - દિશાનુજ્ઞા-
વિહારક્રમાદિપુ પ્રયોજનેપૃપમ્થિતેષુ પ્રશસ્તે તિથિય રણમ્હર્તનક્ષત્રયોગે યદ્ યત્ર કર્તવ્ય
ભવતિ, તત્ તત્ર ગણિના કર્તવ્યમ્ । તથા ચેન્ન કરોતિ, તદ્દિ મહાન્ દોષઃ ।

ઉક્તઞ્ચ—

“ જોડસ નિમિત્ત નાણ, ગણિણા પચ્વાયણા ૬ કજ્જેસુ ।

ઉવ્વજુજ્જઙ્ઘ તિદ્ધિકરણા, ૩ જાણણદ્વડ્ઞહા દોસો ” ॥ ૧ ॥

મળદલોં મેં પ્રવેશ કા વર્ણન કિયા જાતા હૈ વહ અધ્યયન મળદલ
પ્રવેશ હૈ । ૧૮ ।

વિદ્યાચરણ વિનિશ્ચય સૂત્રમેં સમ્યગ્દર્શન સહિત સમ્યક્જ્ઞાનકા તથા
ચારિત્રકા કયા ફલ હોતા હૈ ? ઇસ ઘાતકા નિશ્ચય કિયા હુઆ હૈ । ૧૯ ।

ગણિવિદ્યા સૂત્રમેં યહ વતલાયા ગયા હૈ કિ આચાર્ય કો ચાહિયે કિ
વહ જ્યોતિષ અથવા નિમિત્ત આદિ વિદ્યાઓં મેં પઠુ હો કર ઉનકે દ્વારા
પ્રત્રાજન, સામાયિકારોપણ, ઉપસ્થાપન, શ્રુતોદેશાનુજ્ઞા, ગણારોપણ, દિ-
શાનુજ્ઞા તથા વિહારક્રમ આદિ પ્રયોજનો કે ઉપસ્થિત હોને પર પ્રશસ્ત,
તિથિ, નક્ષત્ર એવ કરણ આદિ કા યોગ દેખે ઓર જિસ સમય જો
કર્તવ્ય હો વહ કરે । યદિ વહ ંસા નહી કરતા હૈ તો દોષ કા પાત્ર
ઉસે હોના પડતા હૈ । કહા ંહી હૈ—

મ ડલ પ્રવેશ, બ્યા ચન્દ્ર અને સૂર્યના દક્ષિણ અને ઉત્તર મ ડલોમા પ્રવેશતુ
વર્ણુન કરાય છે તે અધ્યયન મ ડલ પ્રવેશ છે ૧૮

વિદ્યાચરણ વિનિશ્ચય સૂત્રમા સમ્યગ્ દર્શન સહિત સમ્યક્જ્ઞાનતુ તથા
ચારિત્રતુ શુ ક્ષણ હોય છે તે વાતને નિશ્ચય કરેલ છે ૧૯ ગણિવિદ્યાસૂત્રમા એ
ખતાવ્યુ છે કે આચાર્યે જ્યોતિષ અથવા નિમિત્ત આદિ વિદ્યાઓમા પ્રવીણ
થઈને તેમના દ્વારા પ્રત્રાજન, સામાયિકારોપણ, ઉપસ્થાપન, શ્રુતોદેશાનુજ્ઞા,
ગણારોપણ, દિશાનુજ્ઞા, તથા વિહારક્રમ આદિ પ્રયોજન ઉપસ્થિત તથા પ્રશસ્ત
તિથિ, નક્ષત્ર અને કરણ આદિનો યોગ ભેદે અને જે સમયે જે જરવા યોગ્ય
હોય તે કરે જે તે એમ કરતા નથી તો તેમને દોષપાત્ર થવુ પડે છે
કહુ પણ છે—

सलेखना कृत्वा निर्व्याघातं सचेष्टा एव भव चरम प्रत्याख्यान्ति, एतत् सविस्तर यत्राध्ययने वर्ण्यते तदध्ययन महाप्रत्याख्यानमिति । २९ । एवमादि । एवमन्यदपि उत्कालिक श्रुतं बोध्यम्, उपलक्षणमेतदिति भावः । इह पौरुषी मण्डल सूत्रादारभ्य महाप्रत्याख्यान पर्यन्तं सूत्रत्रयोदशकमपि नोपलभ्यते । उक्तमर्थं निगमयति—‘से त०’ इत्यादि । तदेतदुत्कालिक श्रुत वर्णितमिति ॥ सू० ४३ ॥

अथ कालिक श्रुतमाह—

मूलम्—से कि त कालियं ? । कालिय अणेगविह पण्णत्त । तं जहा—उत्तरज्जयणं १, दसाओ २, कप्पो, ३, ववहारो ४, निसीह ५, महानिसीह ६, इसिभासियं ७, जंबूदीवपन्नत्ती ८, दीवसागरपन्नत्ती ९, चंदपन्नत्ती १०, खुड्डियाविमाणपविभत्ती ११, महल्लियाविमाणपविभत्ती १२, अगचूलिया १३, वग्गचूलिया १४, विवाहचूलिया १५, अरुणोववाए १६, वरुणोववाए १७, गरुलोववाए १८, धरणोववाए १९, वेसमणोववाह २०, वेलधरोववाए २१, देविदोववाए २२, उट्टाणसुय २३, समुट्टाणसुयं २४, नागपरि-

वर्जित चरम भवका प्रत्याख्यान करते हैं । जिनकत्पिक मुनि तो यद्यपि विहारसे ही सलेखना युक्त होते हैं तथापि वे यथायुक्त सलेखना करके अन्तमें सचेष्ट अर्थात् सावधान ही व्याघातवर्जित चरम भवका प्रत्याख्यान करते हैं । इस विषयका जिस अध्ययनमें वर्णन किया गया है वह अध्ययन महाप्रत्याख्यान है २९ । इस तरह से और भी अनेक उत्कालिक सूत्र हैं । यह उत्कालिक सूत्रका वर्णन हुआ ॥सू०४२॥

सुधी सलेखना करीने अन्ते सचेष्ट अेटले डे सावधान व व्याघात वर्जित चरम भवतु प्रत्याख्यान करे छे जिन उट्टिपठ मुनितो जे के विहारथी व सलेखना युक्त थाय छे छता पणु तेओ यथायोग्य सलेखना करीने अ ते सचेष्ट अेटले के सावधान व व्याघात वर्जित चरम भवतु प्रत्याख्यान करे छे आ विषयतु जे अध्ययनमा वर्णुन करायु छे ते अध्ययनतु नाम महाप्रत्या ख्यान छे (२६) आ रीते धीला पणु अनेक उत्कालिक सूत्र छे आ उत्कालिक सूत्रतु वर्णुन थय ॥ सू ४२ ॥

२५ । तथा-विहारकल्प इति, विहारस्यकल्पो व्यसस्या-स्थविरकल्पादिरूपा यत्र गमेवर्ण्यते स विहारकल्पः २६ । तथा-चरणविधिः=चरण-चारित्र्य तस्य विधिपूर्व वर्ण्यते स चरणविधिः २७ । तथा-आतुर प्रत्याख्यानमिति, आतुरः-व्याधितः तस्य या चिकित्सा तस्याः प्रत्याख्यानं यत्र विधिपूर्वकं गुपवर्ण्यते तदातुरप्रत्याख्यानम्, तत्राय विवेकः-जिनकल्पिकस्य सर्वथा चिकित्सा प्रत्याख्यानम् । स्थविरकल्पिकस्य तु सावद्य चिकित्सा प्रत्याख्यानमिति २८ । तथा-महाप्रत्याख्यानमिति, महच्च तत् प्रत्याख्यानं चेति समासः । चरम प्रत्याख्यानमित्यर्थः । अप भावः-स्थविरकल्पेन जिनकल्पेन वा विद्वत्स्यान्ते स्थविरकल्पिका द्वादशवर्षाणि सलेखना कृत्वा, जिनकल्पिकाः पुनर्विहारैरेव सलेखनायुक्ताः, तथापि यथा युक्त

का कथन किया गया है २५ । स्थविरकल्पादिरूप विहार की व्यवस्था जिस आगम में वर्णित हुई है वह विहारकल्प है २६ । तथा चारित्र्य की विधि का जहाँ पर वर्णन हुआ है वह चरणविधि है २७ । व्याधि से युक्त हुए सयमी की चिकित्सा के प्रत्याख्यान का सविधि कथन जिस आगम में आया है वह आतुर प्रत्याख्यान सूत्र है । जिनकल्पि साधुओं के लिये तो चिकित्सा करवाने का सर्वथा निषेध ही है, स्थविरकल्पियों के लिये ऐसा नहीं है पर वे सावद्य चिकित्सा नहीं करवा सकते हैं निरवद्य चिकित्सा ही करवा सकते हैं । इस प्रकार का विधान आतुर प्रत्याख्यान सूत्र में बतलाया गया है २८ । महाप्रत्याख्यान-महाप्रत्याख्यान का अर्थ है-चरम प्रत्याख्यान । मुनि दो प्रकार के होते हैं स्थविरकल्पिक और जिनकल्पिक । उनमें स्थविरकल्पिक मुनि बारह वर्ष तक सलेखना करके अन्तमें सचेष्ट अर्थात् सावधान ही व्याघात-

द्विविध सलेखनानु वर्णन करके छे (२५) स्थविर कल्पादि इय विहारणी व्यव स्थानु ने आगममा वर्णनं यथु छे ते विहारकल्प छे (२६), तथा चारित्र्यनी न्या वर्णनं यथु छे ते चरणविधि सूत्र छे (२७) व्याधिशी युक्तं यथेव सयमीनी चिकित्साना प्रत्याख्यानानु विधिपूर्वकनु वर्णनं ने आगममा आवे छे ते आतुर प्रत्याख्यान सूत्र छे जिन कल्पिक साधुओंने भाटे तो चिकित्सा करवाने तदन निषेध छे, स्थविर कल्पिकोंने भाटे अबु नथी, यथु तेओ सावद्य चिकित्सा करावी शकता नथी निरवद्य चिकित्सा न करावी शकें छे आ प्रकारनु विधान आतुर प्रत्याख्यान सूत्रमा बताववामा आण्यु छे (२८) महाप्रत्याख्यान-महा प्रत्याख्यानने अर्थ छे चरम प्रत्याख्यान मुनि जे जे प्रकारना होय छे स्थविर कल्पिक अने जिन कल्पिक तेओमा स्थविर कल्पिक मुनि बार वर्ष

सलेखना कृत्वा निर्व्याघातं सचेष्टा एव भव चरम प्रत्याख्यान्ति, एतत् सविस्तर यत्राध्ययने वर्ण्यते तदध्ययन महाप्रत्याख्यानमिति । २९ । एवमादि । एवमन्यदपि उत्कालिक श्रुतं बोध्यम्, उपलक्षणमेतदिति भावः । इह पौरुषी मण्डल सूत्रादारभ्य महाप्रत्याख्यान पर्यन्तं सूत्रत्रयोदशरुमपि नोपलभ्यते। उक्तमर्थं निगमयति—‘से त०’ इत्यादि । तदेतदुत्कालिक श्रुत वर्णितमिति ॥ सू० ४३ ॥

अथ कालिक श्रुतमाह—

मूलम्—से कि त कालिय ? । कालिय अणेगविहं पणत्तं । तं जहा—उत्तरज्जयणं १, दसाओ २, कप्पो, ३, ववहारो ४, निसीहं ५, महानिसीह ६, इसिभासिय ७, जवूदीवपन्नत्ती ८, दीवसागरपन्नत्ती ९, चंदपन्नत्ती १०, खुड्डियाविमाणपविभत्ती ११, महल्लियाविमाणपविभत्ती १२, अंगचूलिया १३, वग्गचूलिया १४, विवाहचूलिया १५, अरुणोववाए १६, वरुणोववाए १७, गरुलोववाए १८, धरणोववाए १९, वेसमणोववाह २०, वेलंधरोववाए २१, देविदोववाए २२, उट्टाणसुयं २३, समुट्टाणसुय २४, नागपरि-

वर्जित चरम भवका प्रत्याख्यान करते हैं । जिनकत्पिक मुनि तो यद्यपि विहारसे ही सलेखना युक्त होते हैं तथापि वे यथायुक्त सलेखना करके अन्तमें सचेष्ट अर्थात् सावधान ही व्याघातवर्जित चरम भवका प्रत्याख्यान करते हैं । इस विषयका जिस अध्ययनमें वर्णन किया गया है वह अध्ययन महाप्रत्याख्यान है २९ । इस तरह से और भी अनेक उत्कालिक सूत्र हैं । यह उत्कालिक सूत्रका वर्णन हुआ ॥सू०४२॥

सुधी सलेखना करीने अन्ते सचेष्ट ओटवे के सावधान व व्याघात वर्जित चरम भवनु प्रत्याख्यान करे छे जिन कत्पिक मुनितो ने के विहारथी व सलेखना युक्त थाय छे छता पणु तेओ यथायोग्य सलेखना करीने अते सचेष्ट ओटवे के सावधान व व्याघात वर्जित चरम भवनु प्रत्याख्यान करे छे आ विषयनु ने अध्ययनमा वर्णन करायु छे ते अध्ययननु नाम महाप्रत्या ख्यान छे (२६) आ रीते भील पणु अनेक उत्कालिक सूत्र छे आ उत्कालिक सूत्रनु वर्णन थयु ॥ सू० ४२ ॥

यावणियाओ २५, निरयावलियाओ-ऋषियाओ २६, कप्पवडं-
 सियाओ २७, पुष्पियाओ २८, पुष्पचूलियाओ २९, वण्हि-
 दसाओ ३०, आसीविसभावण १, टिट्टिविसभावणं २, सुमिण
 भावण ३, महासुमिणभावण ४, तेयग्गिनिसग्ग ५, एवमाइ
 याइ चउरासीइ पइन्नगसहस्साइ भगवओ अरहओ उसहसा
 मिसस आइतित्थयरस्स । तहा सयिज्जाइ पइन्नगसहस्साइ
 मज्झिमगणं जिणवराण । चोइमपइन्नगसहस्साइ भगवओ वड्ढ-
 माणसामिस्स । अहवा जस्स जत्तिया सीसा उप्पत्तियाए वेण-
 इयाए कम्मयाए परिणामियाए चउट्ठिहाए बुद्धीए उववेया,
 तस्स तत्तियाइ पइन्नगसहस्साइ, पत्तेयबुद्धा वि तत्तिया चेव । से त
 कालिय । से त आवस्सयवइरित्त । से त अणगपविट्ठ ॥ सू०४३ ॥

छाया—अथ किं तत् कालिकम् ? । कालिकमनेकविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-
 उत्तराध्ययनम् १, दशा २, कल्पः ३, व्यवहारः ४, निशीथम् ५, महानिशीथम् ६,
 ऋषिभाषितम् ७, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ८, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः ९, चन्द्रप्रज्ञप्तिः १०, क्षुद्धि
 काविमानप्रविभक्तिः ११, महालिका (महा) विमानप्रविभक्तिः १२, अङ्गचूलिका
 १३, वर्गचूलिका १४, विनाहचूलिका १५, अरण्योपपातः १६, वरुणो
 पपातः १७, गरुडोपपातः १८, धरण्योपपातः १९, वै श्रमणोपपातः २०,
 वेलधरोपपातः २१, देवेन्द्रोपपातः २२, उत्थानश्रुत २३, समुत्थानश्रुत
 २४, नागपरिज्ञापनिकाः २५, निरयावलिकाः—ऋषिका २६, कल्याव
 तसिका २७, पुष्पिता २८, पुष्पचूलिकाः २९, वृष्णिदशा ३० । आशीविषभा
 वनम् १, दृष्टिविषभावनम् २, स्नपनभावनम् ३, महास्नपनभावनम् ४, तेजोऽग्नि
 निसर्गम् ५, एवमादिकानि चतुरशीति प्रकीर्णक सहस्राणि भगवतोऽर्हंत ऋषभस्वा
 मिन आदि तीर्थकरस्य । तथा—सख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमकाना जिन
 वराणाम् । चतुर्दश प्रकीर्णक सहस्राणि भगवता वर्धमानस्नामिनः । अथवा—यस्य
 यावन्तः शिष्या औत्पत्तिक्या वैनयिक्या कर्मजया पारिणामिक्या चतुर्विधया बुद्ध्यो-
 पपेताः तस्य तावन्ति प्रकीर्णकसहस्राणि प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्तश्चैन । तदेतत्
 कालिकम् । तदेतदावश्यकव्यतिरिक्तम् । तदेतदनङ्गप्रविष्टम् ॥ सू० ४३ ॥

टीका-शिष्यः पृच्छति—'से किं त०' इत्यादि । अथ किं तत् कालिकमिति शिष्य प्रश्नः । उत्तरमाह—'कालिय०' इत्यादि । कालिक श्रुतमनेनविध प्रज्ञप्तम् । तदयथा—उत्तराध्ययनम् = उत्तराध्ययनसूत्रम् १, दशाः = दशाश्रुतसूत्रम् २, कल्प- = बृहत्कल्पसूत्रम् ३, व्यवहार- = व्यवहारासूत्रम् ४, निशीथ- = निशीथसूत्रम् ५ । महानिशीथ- = महानिशीथसूत्र सप्रति नोपलभ्यते, यत्तु महानिशीथसूत्रं क्वचिदपलभ्यमानं तदन्यदेतद् बोध्यम् ६ । ऋषिभाषितम् = ऋषिभाषितसूत्रम् ७ । एतदपि नोपलभ्यते । तथा—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति- = जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम् ८ । द्वीपसागरप्रज्ञप्ति- = द्वीपसागरप्रज्ञप्तिसूत्रं विच्छिन्नम् ९ । चन्द्रप्रज्ञप्तिः १०, क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्तिः ११, महाविमानप्रविभक्तिः १२, अगचूलिका १३, वर्गचूलिका १४, विवाहचूलिका १५, अरुणोपपात १६, वरुणोपपात १७, गरुडोपपातः १८, धरणोपपातः १९,

अथ कालिक सूत्रका वर्णन करते हैं—'से किं त कालिय०' इत्यादि । शिष्य पृच्छता है—हे भदन्त ! कालिकश्रुतका क्या स्वरूप है ? उत्तर—कालिकश्रुत अनेक प्रकारका कहा गया है जैसे—उत्तराध्ययनसूत्र १, दशाश्रुतस्कधसूत्र २, बृहत्कल्पसूत्र ३, व्यवहारसूत्र ४, निशीथसूत्र ५, ये पाच सूत्र उपलब्ध हैं । महानिशीथसूत्र, यह सूत्र उपलब्ध नहीं है । यद्यपि कही २ इस नामका सूत्र अब भी मिलता है परन्तु यह वह नहीं है ६ । ऋषिभाषितसूत्र यह उपलब्ध नहीं है ७ । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र, यह उपलब्ध है ८, द्वीपसागर-प्रज्ञप्तिसूत्र-यह उपलब्ध नहीं ९, चन्द्रप्रज्ञप्ति यह उपलब्ध होता है १० । क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति ११, महाविमानप्रविभक्ति, १२, अगचूलिका १३, वर्गचूलिका १४, विवाहचूलिका १५, अरुणोपपात १६, वरुणोपपात १७, गरुडोपपात १८, धरणोपपात,

इवे कालिक सूत्रानु वर्णन करे छे—“से किं त कालिय०” इत्यादि

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! कालिकश्रुतनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—कालिकश्रुत अनेक प्रकारनु उडेल छे, जेवा छे (१) उत्तराध्ययन सूत्र, (२) दशाश्रुत स्कध सूत्र, (३) बृहत्कल्पसूत्र, (४) व्यवहार सूत्र, (५) निशीथ सूत्र, आ पाच सूत्र उपलब्ध छे (६) महानिशीथ सूत्र, आ उपलब्ध नहीं छता पणु डोर्ध डोर्ध स्थणे जे नामनु सूत्र डालमा पणु मजे छे पणु ते असल नहीं (७) ऋषिभाषित सूत्र-ते उपलब्ध नहीं (८) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र, ते उपलब्ध छे, (९) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति सूत्र-ते उपलब्ध नहीं (१०) चन्द्र प्रज्ञप्ति-ते उपलब्ध छे (११) क्षुद्रिका विमान प्रविभक्ति, (१२) महाविमान प्रविभक्ति, (१३) अगचूलिका, (१४) वर्गचूलिका, (१५) विवाह चूलिका, (१६) अरुणोपपात, (१७) वरुणोपपात, (१८) गरुडोपपात, (१९) धरणोपपात, (२०)

वैश्रवणोपपातः २०, वेलन्धरोपपातः २१, देवेन्द्रोपपातः २२, उत्थानश्रुत २३, क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्तिसूत्रादारभ्योत्थानश्रुतपर्यन्त नोपलभ्यते । समुत्थानश्रुतम् २४, इदमिदानीमुपलभ्यते । 'नागपरिज्ञापनिकाः' इति, नागाः—नागकुमारास्तेषां परिज्ञापन यस्यामागमपद्धतौ मा नागपरिज्ञापनिका, इदं सूत्रं नोपलभ्यते २५ । निरयावलिकाः=आरलिकाप्रविष्टाः श्रेणिरूपेण व्यवस्थिताः, नरकापासाः प्रसङ्गतस्तद्दामिनो नरास्तिर्यञ्च वर्ण्यन्ते यत्र ता निरयावलिकाः । एरुस्मिन्नागमे वाच्ये बहुवचनप्रयोगः शक्तिस्वाभाव्यात्, यथा 'पञ्चालाः' इत्यादौ । 'कल्पिकाः' इति, निरयावलिका सूत्रस्य नामान्तरम् । नरकापासमधिकृत्य 'निरयावलिकाः' इत्युच्यते । चेटकमधिकृत्य 'कल्पिकाः' इत्युच्यते । चेटको हि कल्पसमुत्पन्न इति तत्र वर्ण्यते । सूत्रमिदम् अन्तकृद्दशागका उपाङ्गम् २६ । तथा—कल्पावतसिका इति । यत्र कल्पावतसिकादेवविमानानां वर्णनं विद्यते ताः कल्पावतसिकाः । अनुत्त

१९, वैश्रमणोपपात २०, वेलधरोपपात २१, देवेन्द्रोपपात २२, उत्थान श्रुत २३, क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्तिसूत्र से ले कर इस उत्थानश्रुत तकके तेरह सूत्र उपलब्ध नहीं हैं २३, समुत्थानश्रुत यह इस समय उपलब्ध है २४, नागपरिज्ञापनिका इस सूत्रमें नागकुमार जातिके देवोंका वर्णन किया गया है, यह इस समय उपलब्ध नहीं है २५, निरयावलिका इसमें श्रेणि रूपसे व्यवस्थित नरकों का, प्रसङ्गतः उनमें जानेवाले मनुष्य एव तिर्यञ्चों का वर्णन किया गया है । कल्पिका यह निरयावलिका सूत्रका ही दूसरा नाम है । नरकावासकी अपेक्षा इसका नाम निरयावलिका तथा कल्पसमुत्पन्न चेटकका इसमें वर्णन होनेसे 'कल्पिका' ऐसा नाम प्रथित हुआ है । यह सूत्र अन्तकृत दशागका उपाङ्ग है २६ । जिस सूत्र

वैश्रमणोपपात, (२१) वेलधरोपपात, (२२) देवेन्द्रोपपात, (२३) उत्थानश्रुत क्षुद्रिकाविमान प्रविभक्ति सूत्रकी धरने उत्थानश्रुत सुधीना तेरह सूत्र उपलब्ध नहीं (२४) समुत्थानश्रुत के अत्यारे उपलब्ध है (२५) नागपरिज्ञापनिका—आ सूत्रमा नागकुमार जातिना देवानु वर्णन करेला है ते डालमा उपलब्ध नहीं (२६) निरयावलिका—तेमा श्रेणीरूपे व्यवस्थित नरकानु, प्रसङ्गत तेमा जनार मनुष्य अने तिर्यं गानु वर्णन करेला है आ निरयावलिका सूत्रतु भीष्णु नाम कल्पिका है नरकावासनी अपेक्षाके तेनु नाम निरयावलिका तथा कल्पसमुत्पन्न चेटकनु तेमा वर्णन होवाथी "कालिका" केपु नाम प्रथित थयु है आ सूत्र अन्तकृत दशागनु उपाङ्ग है

रोपपातिकदशाङ्गम्योपाङ्गम् २७ । तथा-‘पुष्पिताः’ इति । यत्रागमपद्धतौ गृह्वा-
समुकुलनपरित्यागेन प्राणिनः सयमभावपुष्पिताः सुखिताः, पुनः सयमभावपरित्या-
गतो दुःखप्राप्तिमुकुलिताः, पुनस्तत्परित्यागादेव पुष्पिताः प्रतिपाद्यन्ते, तां
पुष्पिता उच्यन्ते । पुष्पिता सूत्र प्रश्न व्याकरणस्योपाङ्गम् २८ । तथा-‘पुष्प-
लिका’ इति, अधिकृतार्थं विशेषप्रतिपादिकाः पुष्पचूलिकाः । पुष्पचूलिकामूत्र
विपाकस्योपाङ्गम् २९ । तथा-‘वृष्णिदशा’ इति, अन्धकवृष्णि नराधिपकुलेये
जातास्तेऽपि अन्यकवृष्णयः, इह वृष्णि शब्देन तएव गृह्यन्ते । तेषां दशा-अवस्था-
श्चरितगति मिद्धिगमनलक्षणा यामु वर्णयन्ते ता वृष्णि दशाः । अथवा-अन्धकवृष्णि
चरितप्रतिपादिका दशाः-अव्ययनानि वृष्णिदशाः । वृष्णिदशामूत्र दृष्टिवादस्यो-
पाङ्गम् ३० । आगीविपभावनम् १, दृष्टिविपभावनम् २, स्वप्नभावनम् ३, महास्व-

मे कल्पावतसक देवविमानो का वर्णन किया गया है वह कल्पावतसिका
सूत्र है । यह सूत्र अनुत्तरोपपातिक दशागका उपाङ्ग है २७ । जिस आगम
मे गृहवास का परित्याग कर प्राणी सयमभावको ग्रहण कर सुखी हुए
वर्णित किये गये हैं, तथा ‘सयमभावका परित्याग कर दुःख प्राप्त करने
वाले गने हैं, तथा यदि सुखी हुए हैं तो वे सयमभाव से ही हुए हैं’
ऐसा वर्णन किया गया है वह पुष्पिता सूत्र है । यह सूत्र प्रश्न व्याकरण
सूत्रका उपाङ्ग है । २८ । पुष्पिता सूत्र कथित विषय को जो विशेषरूपसे
प्रतिपादन करता है वह पुष्प चूलिका सूत्र है । यह सूत्र विपाक सूत्र का
उपाङ्ग है २९ । अन्धकवृष्णि राजा के कुल में जो उत्पन्न हुए हैं वे भी
अन्धकवृष्णि माने गये हैं । यहा वृष्णि शब्द से अन्धकवृष्णि राजा के

(२७) के सूत्रमा कल्पावतसक देवविमानोनु वर्णन करेले हे ते कल्पा-
वतसिका सूत्र छे आ सूत्र अनुत्तरोपपातिक दशागतो उपाङ्ग छे

(२८) के आगममा ‘गृहवासनो परित्याग करीने प्राणी सयम भावने
ग्रहण करवाथी सुधी यता वर्णय्यु छे, तथा सयम भावने परित्याग करीने
दुःख प्राप्त करनार गने छे, अने के सुधी वया छे तो तेयो सयम भावथी
न थया छे” जेवु वर्णन करवामा आव्यु छे ते पुष्पितासूत्र छे आ सूत्र
प्रश्न व्याकरण सूत्रनु उपाङ्ग छे (२९) पुष्पितासूत्रमा कथित विषयनु
विशेषरूपसे प्रतिपादन करे छे, ते पुष्पचूलिका सूत्र छे आ सूत्र विपाक सूत्रनु
उपाङ्ग छे

(३०) अन्धकवृष्णि राजाना कुलमा जेयो उत्पन्न थया छे तेयो पण्य
अन्धक वृष्णि मनाया छे अही वृष्णि शब्दथी अ ध क वृष्णि राजाना कुलमा
जन्मेलावु न बहण थयु छे तेमनी आवस्थाज्येनु-चरितगतितु, चरित
न० ६९

પ્નભાવનમ્ ૪, તેજોઽગ્નિનિસર્ગમ્ ૫, एवमादिकानि-एतत्प्रभृतीनि-‘चउरासीष्ट
 नगसहस्रांडं’ इति । चतुरशीति प्रकीर्णक सहस्राणि भगवतोऽर्हत-ऋषभस्वामिन
 आदि तीर्थङ्करस्येति । अयमर्थः-प्रथमतीर्थङ्करस्य भगवतः श्री ऋषभदेवस्वामिनः
 प्रकीर्णकानि चतुरशीति सहस्र सरयकानि प्रभूयुः । तथा-मयमकाना-द्वितीय
 तीर्थङ्करादारभ्य त्रयोविंशतितमतीर्थङ्करपर्यन्ताना, जिनराणा प्रकीर्णकानि सरयात्
 सहस्र सख्यकानि प्रभूयुः । तथा-भगवतः श्री वर्धमानस्वामिनः प्रकीर्णकानि चतु
 र्दशसहस्रसरयकानि आसन् । ‘अष्टा०’ इत्यादि सुगमम् । तदेतत् कालिकश्रुत
 वर्णितम् । तथा-आवश्यकव्यतिरिक्त वर्णितम् । तथा-अनङ्गप्रशिष्टश्रुत वर्णितम् ॥४३॥

કુલ મેં જન્મ લેને વાલોં કા હી ગ્રહણ ક્રિયા ગયા છે । ઇનકી અવસ્થાઓ
 કા-ચરિતગતિકા-ચારિત્ર પ્રાપ્તિ કા મુક્તિ પ્રાપ્તિ કા-જિસ મૂત્ર મેં વર્ણન
 હુઆ છે વહ વૃષ્ણિદશા સૂત્ર છે । અથવા જિમ મૂત્ર મે અધકવૃષ્ણિ કી
 અવસ્થાઓ કા વર્ણન કરને વાલે અભ્યયન હોં વહ મી વૃષ્ણિદશાસૂત્ર
 છે । યહ દૃષ્ટિવાદ સૂત્ર કા ઉપાદ્ધ છે ૩૦ । યે તથા ઇનસે અતિરિક્ત ઓર
 મી જો શ્રુત છે વે સવ કાલિક શ્રુત હેં । જૈસે-આશીવિષભાવન ૧, દૃષ્ટિ
 વિષભાવન ૨, સ્વપ્નભાવન ૩, મહાસ્વપ્નભાવન ૪, તેજોઽગ્નિનિસર્ગ ૫
 इत्यादि । प्रथमतीर्थकर श्रीऋषभदेव स्वामी के चोरासी हजार प्रकीर्णक
 श्रुत थे । तथा द्वितीयतीर्थकर श्री अजितनाथ से लेकर तेईसवेंतीर्थकर
 श्रीपार्श्वनाथस्वामी पर्यन्त चाईस तीर्थकरों के प्रकीर्णक श्रुतसरयात् हजार
 थे । तथा श्रीवर्धमानस्वामी के प्रकीर्णक चौदह हजार थे । अथवा
 औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा एव पारिणामिकी, इन चार प्रकार की

પ્રાપ્તિનુ મોક્ષ પ્રાપ્તિનુ જેમા વર્ણન થયુ છે તે વૃષ્ણિ દશાસૂત્ર છે અથવા જે
 સૂત્રમા અધક વૃષ્ણિની અવસ્થાઓનુ વર્ણન કરનારા અભ્યયન હોય તે પણ
 વૃષ્ણિ દશાસૂત્ર છે તે દૃષ્ટિવાદ સૂત્રનુ ઉપાગ છે એ તથા તેમના સિવાયના
 ખીજા પણ જે શ્રુત છે તે બધા કાલિકશ્રુત છે જેવા કે (૧) આશીવિષ ભાવન,
 (૨) દૃષ્ટિ વિષભાવન, (૩) સ્વપ્ન ભાવન, મહાસ્વપ્ન ભાવન, તેજો અગ્નિનિ
 સર્ગ વગેરે પહેલા તીર્થ કર શ્રી ઋષભદેવ સ્વામીના ચોરાસી હજાર પ્રકીર્ણક
 શ્રુત હતા તથા ખીજા તીર્થ કર અજિતનાથથી માડીને ત્રેવીસમા તીર્થ કર શ્રી
 પાર્શ્વનાથ સ્વામી સુધીના બાવીસ તીર્થ કરોના પ્રકીર્ણક સખ્યાત હજાર શ્રુત
 હતા તથા શ્રી વર્ધમાન સ્વામીના પ્રકીર્ણક ચૌદ હજાર શ્રુત હતા, અથવા
 ઔત્પત્તિકી, વૈનયિકી, કર્મજા અને પરિમાયિકી, એ ચાર પ્રકારની મતિથી

साम्प्रतमङ्गप्रविष्टश्रुतमाह—

मूलम्—से किं तं अंगप्रविष्टं ? । अंगप्रविष्टं दुवालसविह
पणत्तं । त जहा—आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवायो ४,
विवाहप्रज्ञप्ति ५, नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७,
अंतगउदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पणहावागरणं १०,
विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२ ॥ सू० ४४ ॥

छाया—अथ किं तद् अङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा
आचारः १, सूत्रकृतम् २, स्थानम् ३, समवायः ४, विवाहप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञातार्थ-
कथाः ६, उपासकृदशाः ७, अन्तकृदशाः ८, अनुत्तरोपपातिकृदशाः ९, प्रश्नव्याक-
रणम् १०, निपाकश्रुतम् ११, दृष्टिमादः १२ ॥ सू० ४४ ॥

टीका—सुगमम् ॥ सू० ४४ ॥

बुद्धियों से समन्वित जितने शिष्यजन जिन २ तीर्थकरों के थे उन के
घारे में उतने ही हजार प्रकीर्णक थे। तथा प्रत्येक बुद्ध भी उतने ही थे।
यह आवश्यक व्यतिरिक्त के भेदरूप कालिक श्रुतका वर्णन हुआ। यहा
तक अनंगप्रविष्ट का कथन हुआ ॥ सू० ४३ ॥

अब अङ्गप्रविष्ट श्रुत कहते हैं—‘से किं त अंगप्रविष्टं’ इत्यादि।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! अंगप्रविष्ट श्रुत का क्या स्वरूप है।

उत्तर—अंगप्रविष्ट श्रुत चारह प्रकार का कहा गया है, जैसे—आचा-
राग १, सूत्रकृताग २, स्थानाग ३, समवायाग ४, विवाहप्रज्ञप्ति ५,

युक्त नेटला शिष्यजन, ने ने तीर्थ करेना होता तेमना पणु अटला न
होतर प्रतीर्णु श्रुत होता तथा प्रत्येक बुद्ध पणु अटला न होता आ आव
स्थान व्यतिरिक्तना भेदरूप कालिक श्रुततु वर्णन यथु अही सुधी अनंग
प्रविष्टतु वर्णन यथु ॥ सू० ४३ ॥

हवे अंग प्रविष्ट सूत्रतु वर्णन करे ठे—“से किं त अंगप्रविष्टं” इत्यादि
शिष्य पूछे ठे—हे भदन्त ! अंगप्रविष्ट सूत्रतु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—अंगप्रविष्ट श्रुत चार प्रकारतु उहेल छे—(१) आचाराग, (२)
सूत्रकृताग, (३) स्थानाग, (४) समवायाग, (५) विवाह प्रज्ञप्ति, (६) ज्ञाता

अर्थपा पृथक् पृथक् स्वरूप वर्णयितुकाः प्रथममाचाराङ्गरूप दर्शयति—

मूलम्—से कि तं आयारे ? आयारे ण समणाणं निग्गंथाण
आयार-गोयर-विणय-वेणइय-सिक्खा-भासा-भासा-चरण
-करण-जाया-माया-वित्तीओ आघविज्जति ।

से समासओ पंचविहे पणत्ते, त जहा-नाणायारे, दस-
णायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे । आयारे ण परित्ता
वायणा, सखेज्जा अणुओगदारा, सखिज्जावेढा, संखेज्जा सिलोगा,
संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, सखिज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंग
ट्टयाए पढमे अगे, टो सुयक्खधा, पणवीसं अज्झयणा, पचा
सीई उद्देसणकाला, पचासीइ समुद्देसणकाला, अट्टारस-पय-
सहस्साइ पयग्गेण, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणता
पज्जवा, परित्ता तसा, अणता यावरा, सासय-रुड-निवद्ध
निकाइया जिणपणत्ता भावा आघविज्जति, पन्नविज्जति,
परुविज्जति, दसिज्जति, निदंसिज्जति, उवदसिज्जति । से एव
आया, एव नाया, एव विणणाया, एव चरण करण परुवणा
आघविज्जइ, पणविज्जइ, परुविज्जइ, दसिज्जइ, निदसिज्जइ,
उवदसिज्जइ । से त आयारे ॥ सू० ४५ ॥

उया—अथ क स आचार. ? । आचारे खलु श्रमणाना निर्ग्रन्थानामाचार-
गोचर विनयनैयिक शिक्षा भाषाऽभाषाचरणकरणयात्रामात्रावृत्तय आख्यायन्ते ।

स समासतः पञ्चविध. प्रज्ञप्तः । तद् यथा—ज्ञानाचारः १, दर्शनाचार. २,
ज्ञाताधर्मकथाग ६, उपासकदशाग ७, अन्तकृतदशाग ८, अनुत्तरोप-
पातिकदशाग ९, प्रश्नव्याकरण १०, विपाकश्रुत तथा ११ दृष्टिवाद २२,
॥ सू० ४४ ॥

धर्म-६थाग, (७) उपासकदशाग (८) अन्तकृतदशाग, (९) अनुत्तरोपपातिक
दशाग, (१०) प्रश्न व्याकरण, (११) विपाकश्रुत, तथा दृष्टिवाद ॥ सू ४४ ॥

चारित्र्याचारः ३, तप आचारः ४, वीर्याचारः ५। आचारे खलु परीता (परिमिता) वाचना, सख्येयानि—अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, सख्येयाः श्लोकाः, सख्येया निर्युक्तयः, सख्येयाः प्रतिपत्तयः। स खलु अद्वैततया प्रथममङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानि, पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः, पञ्चाशीतिः समुद्देशनकालाः, अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्तागमाः, अनन्ताः पर्ययाः, परीताह्वसाः अनन्ताः स्थावराः, गाश्वतकृतनिवद्ध निकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भागा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दृश्यन्ते निदृश्यन्ते, उपदृश्यन्ते। स एवमात्माज्ञाता, एव विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, प्रनाप्यते, प्ररूप्यते, दृश्यते, निदृश्यते, उपदृश्यते, स एव आचारः ॥ सू० ४५ ॥

टीका—शिष्यः पृच्छति—‘से किं त आचारे०’ इति।

अथ कः स आचार इति। हे भदन्त! यो भवता द्वादशाङ्गश्रुतपुरुषस्य प्रथमाङ्गतयाऽऽचारेऽनुपदमेवोक्तः स आचारः कीदृक् स्वरूपः? इति प्रश्नः। उत्तरमाह—आचारेण०’ इत्यादि। हे शिष्य! आचारे=आचाराङ्गसूत्रे खलु श्रमणानां=साधुनाम्, कीदृशानामित्याह—‘निर्ग्रन्थानां’ इति। निर्ग्रन्थानां=वाह्याभ्यन्तरग्रन्थरहितानाम्, इदं विशेषणं शाक्यादिश्रमणनिवृत्त्यर्थम्। श्रमणा हि पञ्चविधा भवन्ति। उक्तञ्च—

अत्र इन सबका स्वरूप सूत्रकार भिन्न २ सूत्रों द्वारा स्पष्ट करते हैं—
‘से किं त आचारे०’ इत्यादि—

शिष्य पूछता है— हे भदन्त! आपने अभी जो द्वादशांग श्रुत पुरुष का प्रथम अंग आचारांगसूत्र बतलाया है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तर—आचारांगसूत्रमें निर्ग्रन्थ श्रमणों के आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, भाषा, अभाषा, चरण, करण, यात्रा, मात्रा, एव वृत्ति का कथन किया गया है। ग्रन्थ नाम परिग्रह का है। वह बाह्य और आभ्य-

ह्वे ओ अध्यातु स्वरूप सूत्रकार अलग अलग सूत्रों द्वारा स्पष्ट करे थे—
“से किं त आचारे०” इत्यादि

शिष्य पूछे थे—हे भदन्त! आपने अभी जो द्वादशांगश्रुत पुरुष का प्रथम अंग आचारांगसूत्र बताया है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तर—आचारांगसूत्रमें निर्ग्रन्थ श्रमणों के आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, भाषा, अभाषा, चरण, करण, यात्रा, मात्रा, एव वृत्ति का कथन किया गया है। ग्रन्थ नाम परिग्रह का है। वह बाह्य और आभ्यन्तरना लक्ष्यी के अकारणों

अथैषा पृथक् पृथक् स्वरूप वर्णयितुं कामः प्रथममाचाराङ्गरूपं दर्शयति—

मूलम्—से कि त आयारे? आयारे ण समणाण निग्गथाणं
आयार—गोयर—विणय—वेणइय—सिक्खा—भासा—भासा—चरण
—करण—जाया—माया—वित्तीओ आघविज्जति ।

से समासओं पचविहे पणत्ते, त जहा—नाणायारे, दस
णायारे, चरित्तायारे, तवायारं, वीरियायारे । आयारे ण परित्ता
वायणा, सखेज्जा अणुओगदारा, सखिज्जावंढा, संखेज्जा सिलोगा,
संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, सखिज्जाओ पडिवत्तीओ । से ण अंग
ट्टयाए पढमे अगे, टो सुयक्खधा, पणवीसं अज्झयणा, पचा
सीई उद्देसणकाला, पचासीइ समुद्देसणकाला, अट्टारस—पय—
सहस्साइ पयग्गेण, संखिज्जा अक्खरा, अणता गमा, अणता
पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा, सासय—रुड—निबद्ध
निकाइया जिणपणत्ता भावा आघविज्जति, पन्नविज्जति,
परुविज्जति, दसिज्जति, निदसिज्जति, उवदसिज्जति । से एव
आया, एव नाया, एव विण्णाया, एव चरण करण परुवणा
आघविज्जइ, पण्णविज्जइ, परुविज्जइ, दसिज्जइ, निदसिज्जइ,
उवदसिज्जइ । से त आयारे ॥ सू० ४५ ॥

जाया—अथ क स आचारः ? । आचारे खलु श्रमणाना निर्ग्रन्थानामाचार-
गोचर विनयवैनयिक शिक्षा भाषाऽभाषाचरणकरणयात्रामात्रावृत्तय आख्यायन्ते ।
स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः । तद् यथा—ज्ञानाचार. १, दर्शनाचार. २,
ज्ञाताधर्मकथाग ६, उपासकदशाग ७, अन्तकृतदशाग ८, अनुत्तरोप-
पातिकदशाग ९, प्रश्नव्याकरण १०, विपाकश्रुत तथा ११ दृष्टिवाद २२,
॥ सू० ४४ ॥

धर्मकथाग, (६) उपासकदशाग (७) अन्तकृतदशाग, (८) अनुत्तरोपपातिक
दशाग, (९) प्रश्न व्याकरण, (१०) विपाकश्रुत, तथा दृष्टिवाद ॥ सू. ४४ ॥

आसेवनशिक्षा च, यद्वा-शिष्यशिक्षा, भाषा-सत्या असत्या मृषा च, अभाषा-
असत्या सत्यमृषा च, चरण-व्रतादिक, करण-पिण्ड-विशुद्ध्यादिकम् । उक्तञ्च—

(५) (१०) (१७) (१०) (९)
वय समणधम्म सजम, वेयावच्च च वमगुत्तीओ ।

(३) (१२) (४) (७०)
णाणाडतिय तव कोहनिग्गहाई चरणमेय ॥७०॥

(४) (५) (१२) (१३) (५)
पिण्डविसोही समिई, भावण पडिमा य इंदियनिरोहो ।

(२५) (३) (४) (७०)
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहा चैव करण तु ॥

है। विनय जन्य कर्मक्षयादि रूप फल का नाम वैनयिक है। ग्रहणशिक्षा तथा आसेवनशिक्षा के भेद से शिक्षा दो प्रकार की बतलाई गई है। अथवा मुनिजन जो अपने शिष्यवर्ग को शिक्षा देते हैं वह शिक्षा भी शिक्षा शब्द से यहां गृहीत हुई है। भाषा-सत्य, असत्यामृषारूप, अभाषा-असत्य, सत्यमृषारूप है। व्रतादिकका आचरण यह चरण है। पिण्डविशुद्धि आदि करण है। कहा भी है—

(५) (१०) (१७) (१०) (९)
“वय समणधम्म सजम, वेयावच्च च वमगुत्तीओ ।

(३) (१२) (४)
णाणाडतिय तव कोह निग्गहाई चरणमेय (७०) ॥१॥

विनयजन्य कर्मक्षयादि रूप फल का नाम वैनयिक है शिक्षा के प्रकारनी बतायी है—(१) ग्रहण शिक्षा, तथा (२) आसेवन शिक्षा अथवा मुनिजन पोटाना शिष्योने के शिक्षा आपे है ते पण्ड शिक्षा शब्दथी अही ग्रहण वरवामा आवेल है भाषा-सत्य, असत्यामृषादि, अभाषा-असत्य, सत्यमृषादि है व्रतादिकनु आचरणु ते चरण कडेवाय है पिण्डविशुद्धि आदि करणु है कहु पणु है—

५ १० १७ १० ९
“वय समणधम्म सजम, वेयावच्च च वमगुत्तीओ ।

३ १२ ४
णाणाडतिय तव कोह निग्गहाई चरणमेय (७०) ॥१॥

“નિર્ગ્રન્થસયતાપસગૌર્ય આજીવ પચહા સમણા” ।

છાયા—નિર્ગ્રન્થ-શાક્ય-તાપસ-ગૌરિકા જીવાઃ પચધા શ્રમણઃ । ઇતિ ॥

આચારગોચર વિનયવૈનયિક શિક્ષાભાષાઽભાષાચરણફરણયાત્રામાત્રાવૃત્તય આચાર્યવન્તે । તત્રાચારઃ—જ્ઞાનાચારાઘનેરુભેદમિત્તઃ, ગોચર.=મિત્સાગ્રહણત્રિધિ.—યથા ગૌઃ પરિચિતાપરિચિતોભયક્ષેત્રે ગાસાય પ્રવર્તતે તથા સાધુરપિ પરિચિતા પરિચિતો ભયક્ષુલે મિત્સાર્થ ચરતીતિ માત્ર. । વિનયઃ—વિનીયતં અપનીયતે કર્માનેનેતિ વિનયઃ જ્ઞાનાદિ રૂપઃ, વૈનયિકમ્—વિનયજન્ય કર્મક્ષયાદિરૂપ ફલમ્, શિક્ષા—ગ્રહણશિક્ષા

નત્ર કે ભેદ સે દો પ્રકાર કા વતલાયા ગયા હૈ । શ્રમણોં કા જો યહ નિર્ગ્રન્થપદ વિશેષણરૂપ સે સૂત્રમે રખા ગયા હૈ । ઉત્તકા તાત્પર્ય યહ હૈ કિ જૈન મુનિ ઇસ દોનોં પ્રકાર કે ગ્રન્થ સે રહિત હુઆ કરતે હૈ । શાક્યાદિ શ્રમણ એસે નહીં હોતે । પાચ પ્રકાર કે શ્રમણ વતલાયે ગયે હૈ—નિર્ગ્રન્થ ૧, શાક્ય ૨, તાપસ ૩, ગૌરિક ૪, આજીવક ૫, ઇનમેં નિર્ગ્રન્થ જૈન શ્રમણ હી હોતે હૈ । મુનિજન જિસે અપને દૈનિક આચરણમે લાતે હૈ વહ આચાર હૈ, યહ જ્ઞાનાચાર આદિ કે ભેદ સે અનેક પ્રકાર કા હોતા હૈ । મિત્સા ગ્રહણ કરને કો જો વિધિ હૈ વહ ગોચર હૈ । જૈસે ગાય પરિચિત એ અપરિચિત ઉભયપ્રકાર કે સ્વેતમેં ચરતી હૈ ઉસી પ્રકાર નિર્ગ્રન્થમુનિજન મો પરિચિત એ અપરિચિત ઉભયપ્રકાર કે ઘરોંમે મિત્સા કે લિધે જાતે હૈ । ઇસ પ્રકાર જી મિત્સા કો વિધિ હૈ વહ ગોચર હૈ । કર્મરૂપ મૈલ જિસકે દ્વારા દૂર ક્રિયા જાતા હૈ વહ વિનય હૈ । જ્ઞાનાદિરૂપ સે વિનય મો અનેકપ્રકાર કા વતલાયા ગયા

ખતાવેલ છે શ્રમણોતુ જે આ નિર્ગ્રન્થપદ વિશેષણરૂપે સૂત્રમા મૂકવામા આવ્યુ છે તેતુ તાત્પર્ય એ છે કે જૈન મુનિ એ બને પ્રકારના ગ્રન્થથી રહિત હોય છે શાક્યાદિ શ્રમણ એવા હોતા નથી પાચ પ્રકારના શ્રમણ ખતાવવામા આવ્યા છે—(૧) નિર્ગ્રન્થ, (૨) શાક્ય, (૩) તાપસ, (૪) ગૌરિક, અને (૫) આજીવક એમનામા જૈનશ્રમણ જે નિર્ગ્રન્થ હોય છે મુનિઓ જેને પોતાના દૈનિક આચરણમા ઉપયોગ કરે છે તે આચાર છે, તે જ્ઞાનાચાર આદિના લેદથી અનેક પ્રકારનો હોય છે મિત્સાગ્રહણ કરવાની જે વિધિ છે તે ગોચર કહેવાય છે જેમ ગાય પરિચિત અને અપરિચિત બન્ને પ્રકારના ખેતરમા ચરે છે એજ પ્રકારે નિર્ગ્રન્થ મુનિ પણ પરિચિત અને અપરિચિત બન્ને પ્રકારના ઘરે મિત્સાને માટે જાય છે આ રીતે મિત્સાની જે વિધિ છે તેને ગોચર કહે છે જેના દ્વાર કર્મરૂપ મૈલ દૂર કરાય છે તે વિનય છે જ્ઞાનાદિરૂપે વિનય પણ અનેક પ્રકારનો ખતાવ્યો છે

शब्दानां द्वन्द्वः । आचारादि दृश्यन्ताः अत्राचाराङ्गसूत्रे कथ्यन्ते इति भावः । स पूर्वोक्त आचारः समासतः—संक्षेपतः पञ्चविधः प्रथमः, पञ्चविधत्वमेवाह—‘ त जहा० ’ इत्यादिना । तत्र प्रथमे आचारो ज्ञानाचारः—स हि श्रुतज्ञानविषयः काल-विनयबहुमानोपधानानिह्वन व्यञ्जनार्थं तदुभयरूपोऽष्टविध, व्यञ्जनशब्दोऽत्र पद-वाचकः, तच्च सूत्रस्थपदानां सम्यगुच्चारणम् । उक्तञ्च ज्ञानाचारस्वरूपम्—

“ काले विनये बहुमाणे उपहाणे तहा अनिह्ववणे ।

वजण तत्थ तदुभये अट्टविहो णाणमायारो ” ॥ १ ॥

अथा—कालो विनयो बहुमान उपधान तथा अनिह्वनम् ।

व्यञ्जनमर्थस्तदुभयम् अष्टविहो ज्ञानाचारः ॥ इति ।

मयात्रा है । तथा इस रत्नत्रयरूप मयम के निर्वाह निमित्त जो परिमितमात्रामें आहार ग्रहण किया जाता है वह मात्रा है । तथा अनेक प्रकार के अभिग्रहो का धारण करना यह वृत्तिशब्द का अर्थ है । तात्पर्य इसका यह है कि इन साधु के आचार आदि समस्त कर्तव्यों का आचारांगसूत्रमें वर्णन किया गया है ।

वह आचार संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है, जैसे—ज्ञानाचार १, दर्शनाचार २, चारित्राचार ३, तप आचार ४, और वीर्याचार ५ । इनमें ज्ञानाचार श्रुतज्ञान के विषयमें होता है । यह—काल १, विनय २, बहुमान ३, उपधान (उपवासादितप) ४, अनिह्वव ५, व्यञ्जन ६, अर्थ ७, एव तदुभय ८, इस रूप से आठ प्रकार का बतलाया गया है । सूत्रस्थित पदों का अच्छी तरह से उच्चारण करना इसका नाम व्यञ्जन है १ ।

अथमयात्रा छे तथा ते रत्नत्रयरूप मयमना निर्वाह भाटे जे परिमितमात्रामा आहार ग्रहण कराय छे तेतु नाम मात्रा छे तथा अनेक प्रकारना अलिश्रुतेने धारण करवे जेवे वृत्ति शब्दने अर्थ छे तेतु तात्पर्य जे छे के जे साधु जेना आचार आदि समस्त कर्तव्येतु आचारांग सूत्रमा वर्णन करवामा आवेल छे

जे आचार संक्षिप्तमा पाच प्रकारना कहेल छे—(१) ज्ञानाचार, (२) दर्शनाचार, (३) चारित्राचार, (४) तप आचार, अने (५) वीर्याचार तेजोमा ज्ञानाचार श्रुतज्ञानना विषयमा थाय छे जे (१) काल, (२) विनय, (३) बहुमान, (४) उपधान, (५) अनिह्वव, (६) व्यञ्जन, (७) अर्थ अने (८) तदुभय, जेम आठ प्रकारने बताव्ये छे सूत्रमा रहेल पदार्थेतु मार्ग रीते उच्चारण करवु तेतु नाम व्यञ्जन छे (१) दर्शनाचार संभ्यश्रुतिव्येना आचार, ते आठ

छाया—व्रत-श्रवणधर्म समय-वेद्यावृत्त्य च द्वापगुप्तयः ।

नानादित्रिक तप क्रोधनिग्रहादि चरणमेतत् ॥

पिण्डविशुद्धिः समितिः भावना प्रतिमा च इन्द्रियनिरोधः ।

प्रतिलेखना गुप्तयः अभिग्रहार्थं करण तु ॥ उति ॥

तथा-यात्रा-समययात्रा-रत्नत्रयाराधनलक्षणा, मात्रा-तन्निर्वाहार्थमेव परि-
मिताहारग्रहणलक्षणा, वृत्तिः-विशिष्टैरभिग्रहनिशेपैर्परिचनम्, आचारादिवृत्तिपर्यन्ताना

(४) (५) (१२) (१३) (५)
पिंडविसोही समिई, भावण पटिमा य इन्द्रियनिरो हो ।

(२५) (३) (४)
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्रहा चैव करण (७०) तु ॥२॥

पांच प्रकार का महाव्रत दस प्रकार का श्रमण धर्म, मन्त्र प्रकार का समय, दस प्रकार का वेद्यावृत्त्य, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्यगुप्ति, ज्ञानादि तीन, चार प्रकार का तप, चार प्रकार के क्रोधादिको का निग्रह ७०, इस तरह यह चरण सत्तरी है। इस चरण सत्तरी का ही यहां चरण शब्द से ग्रहण हुआ है। चार प्रकार की पिण्डविशुद्धि, पांच प्रकार की समिति, चार प्रकार की भावना, चार प्रकार की प्रतिमा, पांच प्रकार का इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन गुप्ति तथा चार प्रकार का अभिग्रह ७०, ये सब करण सत्तरी है। इसका ग्रहण यहां करण शब्द से हुआ है। रत्नत्रयरूप समय का निर्वाह करना यह समय

पिंड विसोही समिई भावण पटिमा य इन्द्रिय निरोहो ।

पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्रहा चैव करण (७०) तु ॥२॥

पाच प्रकारना महाव्रत, दस प्रकारना श्रमण धर्म, सत्तर प्रकारना समय
दस प्रकारनु वेद्यावृत्त्य, नव प्रकारनी ब्रह्मचर्य गुप्ति, ज्ञानादि त्रण, आर प्रका
रना तप, चार प्रकारना क्रोधादिना निग्रह, (७०) आ रीते आ चरणसत्तरी छे
आ चरण सत्तरीनु न अही चरण शब्दथी अहणु थयेल छे चार प्रकारनी
पिंड विशुद्धि, पाच प्रकारनी समिति, आर प्रकारनी भावना, आर प्रकारनी
प्रतिमा, पाच प्रकारना इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रकारनी प्रतिलेखना, त्रण गुप्ति
तथा चार प्रकारना अलिग्रह (७०) आ षष्ठा करण सत्तरी छे अही करण
शब्दथी तेनु अहणु करवामा आणु छे रत्नत्रयइय समयना निर्वाह करवो ते

वीर्याचारः—ज्ञानदर्शनाधारावने बाह्याभ्यन्तर वीर्यस्यागोपनम् । उक्तञ्च—
अणिगूहियबलविरिओ, परक्वमइ जो जहुत्तमारओ ।
जुंजइ य जहा थाम, णायव्ओ वीरियारा ॥

उाया—अनिगूहितबलवीर्यः पराक्रमति यो यथोक्तमायुक्तः ।

युनक्ति च यथास्याम, ज्ञातव्यो वीर्याचारः ॥ इति ॥

एव पञ्चविध आचार. प्ररूपितः । तथा—आचारे=आचाराङ्गे खलु वाचनाः=

सूत्रार्थाध्यापनलक्षणाः परीताः सत्याताः सन्ति । आचाराङ्गस्य आद्यन्तोपलब्ध्या
वाचनाः सत्येया विज्ञेयाः । इदमवसर्पिणी कालमाश्रित्योक्तम् । अवसर्पिष्युत्सर्पि-
णीकालोभयमाश्रित्य तु कालत्रयापेक्षया अनन्ता अपि वाचना भवेयुः । तथा—
अनुयोगद्वाराणि सूत्रार्थस्य कथनत्रिधिरनुयोगः, द्वाराणीव द्वाराणि, अनुयोगस्य
द्वाराणि—अनुयोग द्वाराणि=उपक्रमनिक्षेपाभिगम नय रूपाणि संत्येयानि=सख्या-

भेद से बारह प्रकार का बतलाया गया है । इस को मुनिजन आचरणमें
लाते हैं । ४ । ज्ञान एव दर्शन के आराधनमें बाह्य और अभ्यन्तर वीर्यका
गोपन नहीं करना, अर्थात् शक्ति के अनुसार ज्ञान दर्शन आदि की
आराधनामें लगना यह वीर्याचार है । इस तरह पाच प्रकार का आचार
कहा है । इस आचारांगमें निश्चय से सूत्र और अर्थ के अध्यापनरूप
वाचनाएँ सख्यात हैं । यह कथन अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से कहा
गया जानना चाहिये । उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दोनों कालों को
लेकर तो कालत्रय की अपेक्षा से इसकी अनन्त वाचनाएँ हो सकती
हैं । सूत्र और अर्थ के कहने की विधि का नाम अनुयोग है । द्वार सदृश
होने से द्वार है अनुयोग के जो द्वार है उन्हें अनुयोग द्वार कहते हैं ।
ये द्वार उपक्रम, निक्षेप, अधिगम एव नयरूप होते हैं । ये उपक्रम आदि

आचार छे बाह्य अने आभ्यन्तरना लेदधी तप णार प्रजागु णावावु छे
तेने मुनिजन अचरणमा भूके छे (४) ज्ञान अने दर्शनना आराधनमा बाह्य
अने आभ्यान्तर वीर्यनु गोपन न उरवु अेद्वे के शक्ति अनुसार ज्ञान दर्शन
आदिनी आराधनामा लागवु ते वीर्याचार छे आ रीते पाच प्रकारना आचार
छे आ आचारायमा निश्चयवी सूत्र अने अर्थना अध्यापनरूप वाचनाओ
सख्यात छे आ कथन अवसर्पिणी ढाणनी अपेक्षाओ कडेल मानवु जेधओ
उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणी ओ णाने ढाणेने लक्ष ने तो ढाणत्रयनी अपेक्षाओ
तेनी अनन्त वाचनाओ थर्ध शके छे सूत्र अने अर्थने उडेवानी विधिनु नाम
अनुयोग छे द्वार समान डोवाधी, अनुयोगना जे द्वार छे तेमने अनुयोग
द्वार कडे छे ओ द्वारा उपक्रम, निक्षेप, अधिगम अने नयरूप डोव छे ओ

दर्शनाचारः—सम्यक्प्रवृत्ता नि शक्ति १, निष्काक्षित २, निर्विचिकित्सा ३
अमूढदृष्टि ४ उपग्रहा ५, स्थिरीकरण ६-वात्सल्य ७-प्रभावना ८ रूपः उपग्रहा
साधर्मिणा वृद्धिकरण पोषण च ।

उक्तञ्च दर्शनाचार स्वरूपम्—

णिस्सकिय णिखलकिय णिच्चित्तिगिन्त्ता अमूढदिट्ठी य ।

उपग्रह धिरीकरणे, वत्सल्यप्रमाणे अट्ट ॥

श्रुत्या—निःशक्ति १ निष्काक्षित २ निर्विचिकित्सा ३ अमूढदृष्टि ४ ।

उपग्रहा ५ स्थिरीकरण ६ वात्सल्य ७ प्रभावना ८ अट्ट ॥ इति ॥

चारित्र्याचारः—चारित्र्यता समितिगुण्यादि पालनरूपो व्यवहारः । उक्तञ्च—

“ पणिहाण जोगजुत्तो, पंचहिं समितिहिं तिहिं य गुत्तीहिं ।

एस चरित्ता यारो, अट्टविहो होड णायच्चो ॥

श्रुत्या—प्रणिधानयोगयुक्तः पञ्चभि समितिभिस्तिष्ठमिश्च गुप्तिभिः ।

एष चारित्र्याचारः, अट्टविधो भवति ज्ञातव्य ॥ इति ॥

तप आचारः—अनश्नादि द्वादशविधतपः—समाचरणलक्षण । उक्तञ्च—

“ वारसविहम्मि वि तवे, सन्भित्तर वाहिरे जिणुवदिट्ठे ।

अगिलाए आणाजीवी, णायच्चो सो तवायारो ” ॥

श्रुत्या—द्वादशविधेषु तपसि साभ्यन्तर बाह्ये जिनोपदिष्टे ।

अग्लानः अनाजीवी, ज्ञातव्यः स तप आचारः ॥ इति ।

दर्शनाचार-सम्यक्स्वियों का आचार, यह आठ प्रकार का कहा गया है
जैसे-निःशक्ति १, निष्काक्षित २, निर्विचिकित्सा ३, अमूढदृष्टि ४,
उपग्रहा ५, स्थिरीकरण ६, वात्सल्य ७, और प्रभावना ८। साधर्मो
जनों की वृद्धि करना तथा उनका पोषण करना यह उपग्रहा है। ये सम्य
स्त्व के आठ अंग हैं। इन्हे सम्यग्दृष्टि जीव पालन करता है २। चारित्र
शाली जीवों का गुप्ति, समिति आदि का पालन करने रूप जो व्यवहार
है उसका नाम चारित्र्याचार है। ३। अनशन आदि बारह प्रकार के
तपों का पालन करना यह तप आचार है। तप बाह्य और अभ्यन्तर के

પ્રકારનો કહેલ છે, જેવા કે-(૧) નિ શક્તિ, (૨) નિષ્કાક્ષિત, (૩) નિર્વિચિકિત્સા,
(૪) અમૂઢ દષ્ટિ, (૫) ઉપગ્રહા, (૬) સ્થિરીકરણ, (૭) વાત્સલ્ય અને પ્રભાવના
સાધર્મી જેનોનો વધારો કરવો તથા તેમનું પોષણ કરવું તે ઉપગ્રહા છે એ
સમ્યક્ત્વના આઠ અંગ છે સમ્યગ્દષ્ટિએ તેમને પાળે છે (૨) ચારિત્રયાણી
એવોનો ગુપ્તિ, સમિતિ આદિનું પાલન કરવારૂપ જે વ્યવહાર છે તેનું નામ ચારિ
ત્રાચાર છે (૩) અનશન આદિ બાર પ્રકારના તપનું પાલન કરવું તે તપ

वादाङ्ग प्रथमम्, तस्य सर्वप्रवचनापेक्षया पूर्वमुक्तत्वात् । अस्य द्वौ श्रुतस्कन्धौ=अध्ययनसमूहौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानिप्रथमे श्रुतस्कन्धे नव, द्वितीये षोडश, इति पञ्चविंशतिः । एषा नामानि एव विज्ञेयानि-शस्त्रपरिज्ञा १, लोकविजयः २, शीतोष्णीयम् ३, सम्यक्त्वम् ४, आवन्ती ५, द्युत ६, विमोहः ७, महापरिज्ञा ८, उपधानश्रुतम् ९, इति प्रथम श्रुतस्कन्धे नवअध्ययनानि । पिण्डैपणा १, शय्यैपणा २, ईर्यैपणा ३, भाषैपणा ४, वस्त्रैपणा ५, पात्रैपणा ६, अवग्रहप्रतिमा ७, सप्तसप्तैकिका-अस्या स्थानसप्तैकिक १-नैपेधिकी सप्तैकिक २-स्थण्डिल सप्तैकिक ३-शब्दसप्तैकिक ४-रूपसप्तैकिक ५-परक्रिया सप्तैकिका ६-अन्योन्यक्रियासप्तैकिके ७-ति सप्ता-

क्रिया गया है। वैसे रचना की अपेक्षा तो चारहवा जो दृष्टिवाद अंग है वही प्रथम अंगमाना गया है, क्यों कि सर्वप्रवचन की अपेक्षा उसको पहिले कहा गया है। इस आचारांगमूत्र के दो श्रुतस्कन्ध-अध्ययन समूह हैं। प्रथम श्रुतस्कन्धमें नव अध्ययन तथा द्वितीय श्रुतस्कन्धमें सोलह अध्ययन, इस प्रकार दोनों श्रुतस्कन्धोंमें पचीस अध्ययन है। प्रथम श्रुतस्कन्धमें कहे गये नौ अध्ययनों के नाम ये हैं—शस्त्रपरिज्ञा १, लोकविजय २, शीतोष्णीय ३, सम्यक्त्व ४, आवन्ती ५, द्युत ६, विमोह ७, महापरिज्ञा ८, तथा उपधानश्रुत ९। दूसरे श्रुतस्कन्धमें कहे गये सोलह अध्ययनों के ये नाम हैं—पिण्डैपणा १, शय्यैपणा २, ईर्यैपणा ३, भाषैपणा ४, वस्त्रैपणा ५, पात्रैपणा ६, अवग्रह प्रतिमा ७, तथा सप्तसप्तैकिका १४, यथा स्थानसप्तैकिक ८, नैपेधिकी-सप्तैकिक ९, स्थण्डिल सप्तैकिक १०, शब्द सप्तैकिक ११, रूपसप्तैकिक १२, परक्रिया सप्तैकिक १३, अन्योन्यक्रिया

लक्षणे आने प्रथम अंग उपे प्रगट करवाभा आवेल छे आभ तो रचनानी अपेक्षाये तो पारमु जे दृष्टिवाद अंग छे अने जे प्रथम अंग मानेल छे, जारणु ते सर्व प्रवचननी अपेक्षाये तेने पड़ेलु उल्लु छे आ आचारांग सूत्रना जे श्रुत स्कन्ध-अध्ययन समूह छे पड़ेला श्रुत स्कन्धमा नव अध्ययन अने भील श्रुतस्कन्धमा सोलह अध्यय, आ गीते अने श्रुतस्कन्धमा भणीने पचीस अध्ययन छे पड़ेला श्रुतस्कन्धमा आ नव अध्ययनो ७-(१) शस्त्रपरिज्ञा (२) लोक विजय, (३) शीतोष्णीय, (४) सम्यक्त्व, (५) आवन्ती, (६) द्युत, (७) विमोह, (८) महापरिज्ञा तथा, (९) उपधान श्रुत भील श्रुतस्कन्धमा आवता जेण अध्ययनोना नाम आ प्रमाणे छे-(१) पिण्डैपणा, (२) शय्यैपणा, (३) ईर्यैपणा, (४) भाषैपणा, (५) वस्त्रैपणा, (६) पात्रैपणा, (७) अवग्रह प्रतिमा, (८) यथा-स्थानसप्तैकिक, (९) नैपेधिकी, सप्तैकिक, (१०) स्थण्डिल सप्तैकिक, (११) शब्द सप्तैकिक, (१२) रूपसप्तैकिक, (१३) परक्रिया सप्तैकिक, (१४) अन्योन्य-

तानि-परिमितानि सन्ति । तथा-वेष्टकाः=ज्ञानाग्रन्यतमप्रिय प्रतिपादकवचन सन्दर्भरूपाः, आर्योपगीत्यादिचन्द्रो विशेषा वा सग्येयाः सन्ति । तथा-श्लोकाः-अनुष्टुपादयः सरयेयाः सन्ति । तथा-निर्युक्तय'-निर्युक्तना घ्राभिमतार्थाना युक्तयः=सयोजनानि निर्युक्तयः, अत्र आर्षत्वाद् युक्त शब्दलोपो द्रष्टव्यः, यद्वा-निश्चयेन अर्थ प्रतिपादिका युक्तयः-निर्युक्तयः सरयेयाः सन्ति । तथा-प्रतिपत्तयः-परमतपदार्थ प्रदर्शनरूपा भिक्षुप्रतिमाद्यभियत्त्रिणेषा वा सग्येयाः सन्ति । स आचारः खलु अद्गार्थतथा=श्रुतपुरुषस्याङ्गरूपतया प्रथममद्गम् । अद्गाना रचनानन्तर यस्तेषा क्रमस्तमपेक्षेयदमाचाराद्ग प्रथममद्गमुक्तम् । रचनापेक्षया तु द्वादश दृष्टि-

अनुयोग द्वार आचारागमें सख्यात है । ज्ञान आदिरूप किसी एक विषयको प्रतिपादन करने वाले जो वाक्य हैं उनका नाम वेष्टक है । अथवा-आर्या, उपगीति आदि चन्द्र विशेषो का नाम भी वेष्टक है । ये भी उसमें सरयात हैं । तथा अनुष्टुप् आदि श्लोक भी सरयात हैं । निर्युक्तिया भी सख्यात ही है । सूत्र अभिमत अर्थ का सयोजन करना इसका नाम निर्युक्ति है । अथवा-निश्चयसे अर्थप्रतिपादन करने वाली जो युक्ति है वह निर्युक्ति है । इस प्रकारकी निर्युक्तिया आचारागसूत्रमें सरयात हो हैं । तथा प्रतिपत्तिया भी सरयात है । अन्यवादि समत पदार्थों का प्रदर्शन करना अथवा भिक्षु प्रतिमा आदिके अभिग्रहों का कथन करना ये सब प्रतिपत्ति शब्दके वाच्यार्थ हैं । इस आचाराग को जो प्रथम अग कहा गया है उसका कारण यह है कि यह श्रुतपुरुष का सर्वप्रथम अग है । जब अगों की रचना हुई तब उनके क्रम को लेकर इसको प्रथम अगरूप से प्रकट

उपक्रम आदि अनुयोग द्वार आचारागमा सख्यात छे ज्ञान आदि रूप को
अथ विषयनु प्रतिपादन करने के वाक्यो होय छे तेमनु नाम वेष्टक छे अथ
पथु तेमा सख्यात छे तथा अनुष्टुप् आदि श्लोक पथु सख्यात छे निर्युक्तिया
पथु सख्यात छे सूत्र अभिमत अर्थनु सयोजन करवु तेनु नाम निर्युक्ति
छे अथवा-निश्चयसे अर्थनु प्रतिपादन करनारी के युक्ति छे ते निर्युक्ति
छे आचाराग सूत्रमा अथ प्रकारनी सख्यात निर्युक्तिया छे तथा प्रतिपत्तियो
पथु सख्यात छे अन्यवादि समत पदार्थोनु समर्थन करवु, अथवा भिक्षु प्रतिमा
आदिना अभिग्रहोनु कथन करवु अथ वाधा प्रतिपत्ति शब्दना वाच्यार्थ छे आ
आचारागने के पहेलु अग उहेवाभा आवेल छे तेनु उरथु अथ छे के ते
श्रुतपुरुषनु सोधी पहेलु अग छे न्याये अगेनी रचना अर्थ त्वारे तेमना क्रमने

दश १०, त्रयः ११, त्रयः १२, द्वौ १३, द्वौ १४, द्वौ १५, द्वौ १६, इति पद सप्तति रुदेशनकाला जाताः । अत्रशिष्टेषु सप्तमसैक्रिका-भावना-विमुक्तिनामकेषु नवस्वध्य यनेषु प्रत्येकस्मिन् अध्ययने एकैकोद्देशनकालस्य सद्भावानवोद्देशनकाला जाता इति सर्वसंस्कृतनयापञ्चाशीतिरुद्देशनकाला भवन्ति । एषं पञ्चाशीतिः समुद्देशनकाला सूत्रार्थाध्यापनकाला अगन्तव्याः । अष्टादशपदसहस्राणि = अष्टादशसहस्राणि पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन सन्ति । इह पदमर्थपद विज्ञेयम् ।

दूसरे शब्दैपणा अध्ययन के तीन ३, तीसरे ईर्ष्येपणा अध्ययन के तीन ३, चौथे भाषैपणा अध्ययन के दो २ पांचवे वक्षैपणा अध्ययन के दो २, छठे पात्रैपणा अध्ययन के दो २, सातवे अवग्रह प्रतिमा अध्ययन के दो २, आठवे स्थान सप्तैकक अध्ययन का एक १, नौवे नैपेधिकी सप्तैकक अध्ययन का एक १, दशवे स्थण्डिल सप्तैकक अध्ययन का एक १, ग्यारहवे शब्द सप्तैकक अध्ययन का एक १, बारहवे रूप सप्तैकक अध्ययन का एक १, तेरहवे परक्रिया सप्तैकक अध्ययन का एक १, चौदहवे अन्योन्यक्रिया सप्तैकक अध्ययन का एक १, पन्द्रहवे भावना अध्ययन का एक २ और सोलहवे विमुक्ति अध्ययन का एक १ । इस प्रकार दूसरे श्रुतस्कन्ध के सोलह (१६) अध्ययनों के चोतीस ३४ उद्देशनकाल होते हैं । इस तरह आचारांग सूत्रके दोनों श्रुतस्कन्धों के पचीस अध्ययनोंमें सभी उद्देशनकाल पचासी (८५) होते हैं । तथा सूत्र और अर्थ को पढाने रूप जो समुद्देशन काल है वे भी पचासी ८५ हैं और उनकी गणना भी

अध्ययनना त्रणु ३, त्रीन्त ध्यपण्णा अध्ययनना त्रणु ३, योथा भाषैपण्णा अध्ययनना णे २, पाय्यमा वक्षैपण्णा अध्ययनना णे २, छट्ठा पात्रैपण्णा अध्ययनना णे २, सातमा अवग्रह प्रतिमा अध्ययनना णे २, आठमा सप्तैकक अध्ययनना ऐक १, नवमा नैपेधिकी सप्तैकक अध्ययनना ऐक, दसमा स्थण्डिल सप्तैकक अध्ययनना ऐक, अगीथारमा शण्ड सप्तैकक अध्ययनना ऐक, बारमा रूपसप्तैकक अध्ययनना ऐक, तेरमा परक्रिया सप्तैकक अध्ययनना ऐक, चौदमा अन्योन्य क्रिया सप्तैकक अध्ययनना ऐक, पहरमा भावना अध्ययनना ऐक अने योणमा विमुक्ति अध्ययनना ऐक आ प्रमाणे भीन्त श्रुतस्कन्धना योण (१६) अध्ययनाना कुल योत्रीस (३४) उद्देशन ढाण थाय छे आ रीते आचारांग सूत्रना अन्ने श्रुतस्कन्धाना पचीस अध्ययनाना अथा भणीने पचाशी (८५) उद्देशनढाण थाय छे तथा सूत्र अने अर्थने लण्णाववा रूप णे समुद्देशनढाण छे ते पछ पचाशी (८५) छे

अध्ययनानि सन्ति १४, तथा-भाषना १५, विमुक्तिः १६, इति षोडशोऽध्ययनानि
द्वितीयं श्रुतस्कन्धे । एवमेतानि निशीथाध्ययनवर्जितानि पञ्चविंशतिरध्ययनानि ।
पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः=सूत्राध्यापनकालाः । उद्देशनकालस्य पञ्चाशीतिसम्बन्धमेव
विज्ञेयम्-शस्त्रपरिज्ञाधारस्य अग्रप्रथमतिमापर्यन्तेषु षोडशाध्ययनेषु क्रमेण-सप्त १,
षट् २, चत्वारः ३, चत्वारः ४, षट् ५, पञ्च ६, षट् ७, सप्त ८, चत्वार ९, एका
सप्तैकक १०, भाषना ११ तथा विमुक्तिः १६ ये निशीथाध्ययनवर्जित
सोलह अध्ययन दूसरे श्रुतस्कन्धमे है । इस तरह ये सब मिलकर पचीस
अध्ययन आचाराग सूत्र के दोनों श्रुतस्कन्धों के है । सूत्राध्यापनरूप जो
उद्देशन काल है वे पचासी ८५ है, गणना उनकी इस प्रकार से है-पहले
श्रुतस्कन्धमे नौ अध्ययन हैं, उनमें प्रथम शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन के सात
७ उद्देशनकाल है, दूसरे लोकविजय के छह ६, तीसरे शीतोष्णीय अध
यन के चार ४, चौथे सम्बन्धत्व अध्ययन के चार ४, पाचवे लोकसागर
अध्ययन के छह ६ छठे श्रुत अध्ययन के पाच ५, सातवे विमोह अध
यन के आठ ८, आठवे महापरिज्ञा अध्ययन के सात ७, और नौवे
उपधान श्रुत अध्ययन के चार ४ उद्देशन काल है । इस प्रकार प्रथमश्रुत-
स्कन्ध के नौ अध्ययनोंमें सब एकावन (५१) उद्देशनकाल होते है ।

दूसरे श्रुताकन्ध के सोलह (१६) अध्ययनों के उद्देशनकाल इस
प्रकार हैं-प्रथम पिण्डैषणा अध्ययन के ग्यारह ११ उद्देशन काल है,

न्यङ्किया सप्तैकक, (१५) भाषना, तथा (१६) विमुक्ति ये निशीथाध्ययन वर्जित
सोण अध्ययन भीम स्कन्धश्रुतमा छे आ रीते आचाराग सूत्रना भन्ने स्क
धाना भणीने पञ्चीश अध्ययन छे सूत्राध्यापनरूप के उद्देशनकाल छे ते पचाशी
(८५) छे तेमनी गणुत्री आ प्रमाछे छे पछेला श्रुतस्कन्धमा नव अध्ययन छे
तेमा प्रथम शस्त्रपरिज्ञा अध्ययनना सात (७) उद्देशनकाल छे, भीम लोक
विजयना छे तीम शीतोष्णीय अध्ययनना चार, चौथा सम्बन्धत्व अध्ययनना
चार, पाचमा लोकसागर अध्ययनना छ, छठ्ठा श्रुत अध्ययनना पाच, सातमा
विमोह अध्ययनना आठ, आठमा महा परिज्ञा अध्ययनना सात, अने नवमा
उपधानश्रुत अध्ययनना चार उद्देशनकाल छे आ प्रकारे पछेला श्रुतस्कन्धना नव
अध्ययनना कुल एकावन (५१) उद्देशनकाल छे

भीम श्रुतस्कन्धना सोण (१६) अध्ययनना उद्देशनकाल आ प्रमाछे छे-
पछेला पिण्डैषणा अध्ययनना अगीधार (११) उद्देशन काल छे, '

दश १०, त्रयः ११, त्रयः १२, द्वौ १३, द्वौ १४, द्वौ १५, द्वौ १६, इति पद सप्तति रुदेशनकाला जाताः । अग्नित्रेषु सप्तपत्त्रिका-भावना-विमुक्तिनामकेषु नवस्वध्ययनेषु प्रत्येकस्मिन् अध्ययने एकैकोद्देशनकालस्य सद्भावान्नवोद्देशनकाला जाता इति सर्वसंकलनयापञ्चाशीतिरुद्देशनकाला भवन्ति । एव पञ्चाशीतिः समुद्देशनकाला सूत्रार्थाध्यापनकाला अगन्तव्याः । अष्टादशपदसहस्राणि = अष्टादशसहस्राणि पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन सन्ति । इह पदमर्थपद विज्ञेयम् ।

दूसरे शय्यैषणा अध्ययन के तीन ३, तीसरे ईर्यैषणा अध्ययन के तीन ३, चौथे भाषैषणा अध्ययन के दो २ पांचवे वस्त्रैषणा अध्ययन के दो २, छठे पात्रैषणा अध्ययन के दो २, सातवे अवग्रह प्रतिमा अध्ययन के दो २, आठवे स्थान सप्तैकक अध्ययन का एक १, नौवे नैषेधिकी सप्तैकक अध्ययन का एक १, दशवे स्थण्डिल सप्तैकक अध्ययन का एक १, ग्यारहवे शब्द सप्तैकक अध्ययन का एक १, बारहवे रूप सप्तैकक अध्ययन का एक १, तेरहवे परक्रिया सप्तैकक अध्ययन का एक १, चौदहवे अन्योन्यक्रिया सप्तैकक अध्ययन का एक १, पन्द्रहवे भावना अध्ययन का एक २ और सोलहवे विमुक्ति अध्ययन का एक १ । इस प्रकार दूसरे श्रुतस्कन्ध के सोलह (१६) अध्ययनों के चोतीस ३४ उद्देशनकाल होते हैं । इस तरह आचाराग सूत्रके दोनों श्रुतस्कन्धों के पचीस अध्ययनोंमें सभी उद्देशनकाल पचासी (८५) होते हैं । तथा सूत्र और अर्थ को पढाने रूप जो समुद्देशन काल है वे भी पचासी ८५ हैं और उनकी गणना भी

अध्ययनना त्रयु ३, त्रीन्त ईर्यैषणा अध्ययनना त्रयु ३, चोथा भाषैषणा अध्ययनना णे २, पाचमा वस्त्रैषणा अध्ययनना णे २, छट्ठा पात्रैषणा अध्ययनना णे २, सातमा अवग्रह प्रतिमा अध्ययनना णे २, आठमा सप्तैकक अध्ययनना ऐक १, नवमा नैषेधिकी सप्तैकक अध्ययनना ऐक, दसमा स्थण्डिल सप्तैकक अध्ययनना ऐक, अशीत्यारमा शब्द सप्तैकक अध्ययनना ऐक, बारमा रूपसप्तैकक अध्ययनना ऐक, तेरमा परक्रिया सप्तैकक अध्ययनना ऐक, चौदमा अन्योन्य क्रिया सप्तैकक अध्ययनना ऐक, पंद्रमा भावना अध्ययनना ऐक अने सोणमा विमुक्ति अध्ययनना ऐक आ प्रमाणे भीन्त श्रुतस्कंधना सोण (१६) अध्ययनाना कुल चोतीस (३४) उद्देशन ङाण थाय छे आ रीते आचाराग सूत्रना अन्ने श्रुत स्कंधाना पचीस अध्ययनाना अथा मणीने पचाशी (८५) उद्देशनङाण थाय छे तथा सूत्र अने अर्थने लण्णाववा रूप णे समुद्देशनङाण छे ते पछ पचाशी (८५) छे

નનુ અષ્ટાદશ સહસ્રાત્મક પદ પરિમાણમુક્તમ્, તત્પરિમાણ ચદિ પચ્ચત્વિન્ચત્ય ધ્યયનાત્મકસ્ય શ્રુતસ્કન્ધસ્ય, તદા 'નવવમચેરમહો અદ્વારસપય મહ મ્મિઓ વેઓ' ઇતિ યદુક્ત તદ્વિકુલ્યતે ? ઇતિચેદુક્તયતે—

'દો સુચકચ્ચઘા, પચ્ચીસ અઙ્ગયણા, પચાસીઠં ઉદ્દેશણકાલા પચાસીઠ સમુદ્દેશ ણકાલા' ઇતિ ચદુક્ત તદાચારાઙ્ગસ્ય પ્રમાણમુક્તમ્, યસ્પુનરુક્તમ્ 'અદ્વારસ પય સહસ્તાઠ પયગ્ગેણ' ઇતિ, તદ્ નવવમચર્યાધ્યયનાત્મકસ્ય પ્રથમશ્રુતસ્કન્ધસ્ય પ્રમાણ વિનેયમ્ ।

ઉક્ત પ્રકાર સે હી હોતી હૈ । આચારાગ સૂત્રમેં પદોં કી સંખ્યા અઠારહ ૧૮ હજાર હૈ । અર્થાત્-આચારાગ સૂત્રમેં અઠારહ ૧૮ હજાર પદ હૈ । સાર્થક શબ્દોં કા નામ પદ હૈ ।

શકા—આચારાંગસૂત્રમેં અઠારહ ૧૮ હજાર પદ જો કહે જાતે હૈંવે યદિ સપૂર્ણ પચ્ચીસ અધ્યયનવાલે આચારાં સૂત્ર કે પદ હૈ તો "નવ વમચેર મહ ઓ અદ્વારસ પય સહસ્તિઓ વે ઓ" ઇસ કથન સે ઉસકા વિરોધ આતા હૈ ? ।

ઉત્તર—ઘહ વાત નહી હૈ । કારણ જો ણેસા કહા ગયા હૈ કિ આચારાગમેં દો શ્રુતસ્કન્ધ, પચ્ચીસ અધ્યયન, પચાસી ૮૫ ઉદ્દેશનકાલ, પચાસી ૮૫ સમુદ્દેશનકાલ હૈ ઘહ તો સમસ્ત આચારાગ સૂત્ર કા પ્રમાણ કહા હૈ । તથા ણેસા જો કહા હૈં કિ આચારાગમેં અઠારહ ૧૮ હજાર પદ હૈ ઘહ કથન બ્રહ્મચર્યાત્મક પ્રથમ શ્રુતસ્કન્ધ કા હૈ ણેસા જાનના ચાહિયે । અતઃ ઇસ કથનમેં કોઈ વિરોધ નહી આતા હૈ ।

અને તેમની ગણતરી પણ ઉપર કહ્યા પ્રમાણે થાય છે આચારાગ સૂત્રમા પદોની સંખ્યા અઠાર (૧૮) હજાર છે એટલે કે આચારાગ સૂત્રમા અઠાર હજાર પદ છે સાર્થક શબ્દોનું નામ પદ છે

શકા—આચારાગ સૂત્રમા અઠાર હજાર પદ ને કહેવામા આવે છે તે જો સપૂર્ણ પચ્ચીસ અધ્યયનવાળા આચારાગ સૂત્રના પદ હોય તો "નવ વમચેર મહ ઓ અદ્વારસ પયસહસ્તિ ઓ વે ઓ" આ કથનથી તે વિરૂદ્ધ નાય છે ?

ઉત્તર—એમ વાત નથી કારણ કે ને એમ કહેવામા આવ્યું છે કે આચારાગમા બે શ્રુતસ્કન્ધ, પચ્ચીસ અધ્યયન, પચાસી અધ્યયનકાળ, પચાસી સમુદ્દેશનકાળ છે તે તો સમસ્ત આચારાગ સૂત્રનું પ્રમાણ ઠહું છે તથા એવું ને કહ્યું છે કે આચારાગમા અઠાર હજાર પદ છે તે કથન બ્રહ્મચર્યાત્મક પ્રથમ શ્રુતસ્કન્ધનું છે એમ સમજવું જોઈએ તેથી તે કથનમા કોઈ વિરોધ લાગતો નથી

तथा—सख्येयानि अक्षराणि—वेष्टकादीना संख्येयत्वात् सख्येयान्यक्षराणि । अनन्ता गमाः, गमाः—अर्थगमाः—अर्थपरिच्छेदा इत्यर्थः, ते च अनन्ताः—अन्तरहिताः आनन्त्य चैषाम्—‘ एगे आया० ’ इत्यादि रूपात् एकस्मादेवसूत्रात्तत्तद्धर्मविशिष्टानन्तधर्मात्मक वस्तुप्रतिपत्ते । यद्वा—अभिधानाभिधेयवशाद् गमा भवन्ति । ते चानन्ता भवन्ति । आनन्त्य चैषामभिधेयवशादेव विज्ञेयम्—

“सखेज्जा अक्खरा” आचारांगमें अक्षरों का प्रमाण सख्यात है, कारण वेष्टक आदिक स्वयं सख्यात है । तथा गमा-पदार्थों का निर्णय अनन्त हैं—अन्त रहित है । इनका जो आनन्त्य कहा गया है उसका कारण यह है कि—“ एगे आया० ” इत्यादिरूप एक ही सूत्र से तत्तदनन्त धर्मात्मक वस्तु का बोध श्रोता को होता है । तात्पर्य कहने का यह है जिवादिक समस्त वस्तुओं अनन्त धर्मात्मक हैं—कोई भी वस्तु एकान्तरूप से एक धर्म विशिष्ट नहीं है ऐसी मान्यता जैनधर्म की है, अतः जय सिद्धान्तानुसार किसी भी सूत्रद्वारा जीवादिक वस्तुओं का प्रतिपादन होगा तो वह उसी रूपमें होगा जैसे—“ एगे आया ” आत्मा एक है ” यह सूत्र आत्मामें एकता को प्रदर्शित करता हुआ यह निरूपण करता है—कि आत्मा त्रिकालवर्ती अनन्त पर्यायो से युक्त है, तथा वह अनन्तशक्तिरूप अनन्तधर्मवाला है । ‘ अनन्ता गमा ’ इस तरह से अर्थपरिच्छेद—जीवादिक पदार्थोंका ज्ञान इस सूत्र द्वारा होता है, अतः यह मानना पड़ता है कि इस सूत्रमें इस प्रकार से अर्थबोधकना रही हुई है ।

“सखेज्जा अक्खरा” आचारांगमा अक्षरेणु प्रमाणु सख्यात छे, कारणु के वेष्टकादिक पोते ज सख्यात छे तथा गमा-पदार्थेने निर्णय अनन्त छे तेमनी जे अनन्तता कहेवामा आवी छे तेनु कारणु जे छे के ‘ एगेआया० ’ इत्यादि रूप अेकज सूत्रथी ते ते अनन्त धर्मात्मक वस्तुने बोध श्रोताने थाय छे कहेवानु तात्पर्य अे छे के ज्वादिक समस्त वस्तुअे अनन्त धर्मात्मक छे—कोई पणु वस्तु अेकान्त रूपथी अेक धर्म विशिष्ट नथी, जेवी तेन धर्मनी मान्यता छे, तेथी सधणा सिद्धात अ-थेना कोई पणु सूत्र द्वारा ज्वादिक वस्तुअेनु प्रतिपादन थशे तो ते जेज रूपे थशे, जेभ के “ एगे आया ” आ सूत्र आत्मामा अेकता जतावता अे जतावे छे—के आत्मा त्रिकालवर्ती अनन्त पर्यायेथी युक्त छे तथा ते अनन्त शक्तिरूप अनन्त धर्मवाला छे “ अनन्तागमा ” आ रीते अर्थपरिच्छेद ज्वादिक पदार्थेनु ज्ञान आ सूत्र द्वारा थाय छे, तेथी जेभ मानणु पडे छे के आ सूत्रमा आ प्रकारे अर्थबोधकता रहेवी छे जेज

સુધર્માસ્વામી જન્મસ્વામિન પ્રત્યાહ—“સુય મે આઝસ તેણ ભગવયા એવમ ક્ષવાય” ઇતિ । તન્નાયમર્થઃ—શ્રુત મયા હે આયુષ્મન્ । તેન ભગવતાવર્ધમાનસ્વામિના એવમારયાતમ્ (૧) । અથવા શ્રુત મયા આયુષ્મદન્તે—આયુષ્મતો ભગવતો વર્ધમાન સ્વામિનોઽન્તે—સમીપે, ‘ળ’ ઇતિ વાક્યાલકારે, તયાચ—ભગવતા એવાહ્યા યહી ગમ હૈ ઓર તેસે ગમ હસ આચારાંગ શ્રુતમેં અનત હૈ । અથવા—હસકા તાત્પર્ય યહ મી હોતા હૈ કિ અભિધાન તથા અભિધેય કે અનુસાર હી ગમ અર્થ યોધ હોતા હૈ ઓર વહ અનત રૂપમેં હોતા હૈ—એક રૂપમેં નહીં । જૈસે—સુધર્માસ્વામી ને જન્મસ્વામી સે કહા—“સુયમે આઝસ તેણ ભગવયા એવમક્ષવાય” “શ્રુતમયા આયુષ્મન્ । તેન ભગવતા એવમ આહ્યાતમ્” હે આયુષ્મન્ ! જન્મ મૈને સુના હૈ કિ ઉન ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીને એસા કહા હૈ એક તો ઇન પદોં કા યહ તાત્પર્ય હોતા હૈ ૧ । દૂસરા અર્થ હસ પ્રકાર હોતા હૈ કિ “સુય મે આઝસતેણ ભગ વયા એવમક્ષવાય” “શ્રુત મયા આયુષ્મદન્તે ભગવતા એવમ આહ્યાતમ્” મૈને આયુષ્માન્ ભગવાન્ મહાવીર સ્વામી કે પાસ સુના હૈ કિ ઉન્હોને એસા કહા હૈ । હસ પ્રકાર કે વાચ્યાર્થમેં “ળ” યહ શબ્દ વાક્યાલકાર રૂપ સે પ્રયુક્ત માન લિયા જાવેગા ૨ । પહિલે અર્થમેં “આઝસ” યહ પદ જન્મ-સ્વામી કા “આયુષ્મન્” રૂપ સે વિશેષણરૂપમેં પ્રયુક્ત હુઆ યા, અબ હસ દ્વિતીય અર્થમેં “આયુષ્મદન્તે” યહ પદ ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીકા

“ગમ” છે અને એવા ‘ગમ’ આ આચારાંગસૂત્રમા અનેક છે અથવા તેનુ તાત્પર્ય એ પણ થાય છે કે અભિધાન તથા અભિધેયના અનુસાર જ ગમ-અર્થબોધ થાય છે, અને તે અનતરૂપે થાય છે, એક રૂપે નહીં જેમ કે સુધર્મા સ્વામીએ જ ખૂસ્વામીને કહ્યું—“સુય મે આઝસ તેણ ભગવયા એવમક્ષવાય” “શ્રુત મયા આયુષ્માન્ । તેન ભગવતા એવમ આહ્યાતમ્” “હે આયુષ્મન ! મે સાલજ્યુ છે કે તે ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીએ એવુ કહ્યુ છે” એક તો એ પહેલુ આ તાત્પર્ય થાય છે (૧) બીજે અર્થ આ પ્રકારે થાય છે “સુય મે આઝસતેણ ભગવયા એવમક્ષવાય” “શ્રુત મયા આયુષ્મદન્તે ભગવતા એવ આહ્યાતમ્” મે આયુષ્માન્ ભગવાન મહાવીર સ્વામી પાસે સાલજ્યુ છે કે તેમણે આમ કહ્યું છે આ પ્રકારના વાચ્યાર્થમા “ળ” આ શબ્દ વાક્યાલકારરૂપે વપરાયેલ માની દેવાશે (૨) પહેલા અર્થમા “આઝસ” એ પદ જન્મસ્વામીના “આયુષ્મન્” રૂપથી વિશેષણરૂપે વપરાયુ હતુ, હવે આ બીજા અર્થમા “આયુષ્મદન્તે” આ

तम् २, अथवा श्रुत मया आयुष्मता ३, अथवा श्रुत मया भगवत्पादारविन्दयुगलमामृशता ४, अथवा श्रुत मया गुरुकुलमावसता ५, अथवा श्रुत मया हे आयुष्मन् ! 'तेण' तत्, प्रथमार्थे तृतीया, भगवता एवमाख्यातम् ६, अथवा-श्रुत मया हे आयुष्मन् ! 'तेण' तदा भगवता एवमाख्यातम् ७, अथवा-श्रुत मया

बोधक हो जाता है २। तीसरा अर्थबोध इस प्रकार से है "श्रुत मया आयुष्मता" मुझ आयुष्मान् द्वारा सुना गया है" इस कथनमें यह "आयुष्मता" विशेषण सुधर्मास्वामी के साथ प्रयुक्त होता हुआ प्रतीत होता है ३। "श्रुत मया आमृशता" यहा "आउसतेण" की छाया "आमृशता" हुई है, इसलिये चतुर्थ अर्थ ऐसा होता है कि "भगवान् के पादारविन्दयुगल को स्पर्श करने वाले मैंने सुना है" ४। अथवा-"आउसतेण" की छाया 'आवसता' भी होती है जिसका अर्थ होता है कि "गुरुकुलमें निवास करते हुए मैंने सुना है" ५। "तेण" यह पद जब प्रथमा के अर्थमें तृतीयारूप से प्रयुक्त हुआ माना जावेगा तब "तेण" की छाया "तत्" होगी, तब ऐसा अर्थ बोध होगा कि-"श्रुत मया आयुष्मन्। तत् भगवता एवमाख्यातम्" हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है जिन जीवादि-वस्तुओं को भगवान् ने इस प्रकार से प्रतिपादित किया है ६। अथवा-"तेण" यह पद "तदा" के रूपमें प्रयुक्त हुआ जब माना जावेगा तब "श्रुत मया आयुष्मन् तदा भगवता एवमाख्यातम्" ऐसा अर्थ बोध होगा" अर्थात्-हे आयुष्मन् ! जब ! मैंने तब सुना था जब भगवान् ने ऐसा

पद भगवान् महावीर स्वामीने बोधक णी जय छे (२) त्रीने अर्थबोध आ प्रभाण्णु छे-"श्रुत मया आयुष्मता" "आयुष्मान् जेवा मारा द्वारा सलणायु छे" आ कथनमा आ "आयुष्मता" विशेषण सुधर्मास्वामीनी साथे वपरायु छे। य तेम लागे छे (३) श्रुत मया आमृशता" अर्द्धी "आउसतेण" नी छाया "आमृशता" यर्थ छे, तेथी जेथे अर्थ जेवा थाय छे के "भगवान्ना पादार विन्दयुगलेना स्पर्श करनार मे सालण्यु छे" (४) अथवा "आउसतेण" नी छाया "आवसता" पणु थाय छे जेना जेवा अर्थ थाय छे के "गुरुकुलमा निवास करता जेवा मे सालण्यु छे" (५) "तेण" आ पद जे प्रथमाना अर्थमा तृतीयाइपे वपरायेत मानवामा आवे तो "तेण"नी छाया "तत्" थरी, त्यारे आ प्रभाण्णु अर्थने बोध थरी के-"श्रुत मया आयुष्मन्। तत् भगवता एवमाख्यातम्" हे आयुष्मान् ! जे जीवादि वस्तुज्जेने भगवान् ने आ प्रकारे प्रति पादित करेव छे ते मे सालण्यु छंतु (६) अथवा "तेण" आ पद तदा ना इपे वपरायेवु जे मानी जेनाय तो "श्रुत मया आयुष्मन् तदा भगवता जेवमा

શુધર્માસ્વામી જન્મુશ્વામિન પ્રત્યાહ—“સુયં મે આઠસ તેણ ભગવયા ઇવમ-
ક્ષવાય” ઇતિ । તત્રાયમર્થઃ—શ્રુત મયા હે આયુષ્મન્ ! તેન ભગવતાવર્ધમાનસ્વામિના
ઇવમાર્યાતમ્ (૧) । અથવા શ્રુત મયા આયુષ્મદન્તે—આયુષ્મતો ભગવતો વર્ધમાન
સ્વામિનોઽન્તે—સમીપે, ‘જ’ ઇતિ વાક્યાલકારે, તથાચ—ભગવતા ઇવમાર્યા

યહી ગમ છે ઓર ંસે ગમ ઇસ આચારાંગ શ્રુતમેં અનત છે । અથવા-
ઇસકા તાત્પર્ય યહ બી હોતા છે ક્રિ અભિધાન તથા અભિધેય કે
અનુસાર હી ગમ અર્થ યોધ હોતા છે ઓર વહ અનત રૂપમેં હોતા છે—ઁક
રૂપમેં નહીં । જૈસે—શુધર્માસ્વામી ને જન્મુશ્વામી સે કહા—“સુયમે આઠસ
તેણ ભગવયા ઇવમક્ષવાય” “શ્રુતમયા આયુષ્મન્ ! તેન ભગવતા ઇવમ્
આર્યાતમ્” હે આયુષ્મન્ ! જન્મુ મૈને સુના છે કિ ઉન ભગવાન
વર્ધમાન સ્વામીને ંસા કહા છે ઁક તો ઇન પદોં કા યહ તાત્પર્ય હોતા
છે ૧ । ઢસરા અર્થ ઇસ પ્રકાર હોતા છે કિ “સુય મે આઠસતેણ ભગ
વયા ઇવમક્ષવાય” “શ્રુત મયા આયુષ્મદન્તે ભગવતા ઇવમ્ આર્યાતમ્”
મૈને આયુષ્માન્ ભગવાન્ મહાવીર સ્વામી કે પાસ સુના છે કિ ંન્હોને
ંસા કહા છે । ઇસ પ્રકાર કે વાચ્યાર્થમેં “જ” યહ શબ્દ વાક્યાલકાર રૂપ
સે પ્રયુક્ત માન લિયા જાવેગા ૨ । પહિલે અર્થમેં “આઠસ” યહ પદ જન્મુ-
શ્વામી કા “આયુષ્મન્” રૂપ સે વિશેષણરૂપમેં પ્રયુક્ત હુઆ થા, અબ ઇસ
ઢિતીય અર્થમેં “આયુષ્મદન્તે” યહ પદ ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીકા

“ગમ” છે ંને ંવેવા ‘ગમ’ ંા આચારાંગસૂત્રમા ંનેક છે અથવા તેનુ
તાત્પર્ય ંે પશુ થાય છે કે અભિધાન તથા અભિધેયના અનુસાર જ ગમ-
અર્થયોધ થાય છે, ંને તે અનતરૂપે થાય છે, ંક રૂપે નહીં જેમ કે સુધર્મા
સ્વામીં જ જન્મુશ્વામીને કહુ —“સુય મે આઠસ તેણ ભગવયા ઇવમક્ષવાય”
“શ્રુત મયા આયુષ્માન્ ! તેન ભગવતા ઇવમ્ આર્યાતમ્” “હે આયુષ્મન્ ! મે
સાલઁયુ છે કે તે ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીં ંેવુ કહુ છે” ંક તો ંે
પહોનુ ંા તાત્પર્ય થાય છે (૧) ંીજે અર્થ ંા પ્રકારે થાય છે “સુય મે
આઠસતેણ ભગવયા ઇવમક્ષવાય” “શ્રુત મયા આયુષ્મદન્તે ભગવતા ઇવ
આર્યાતમ્”
મે આયુષ્માન્ ભગવાન મહાવીર સ્વામી પાસે સાલઁયુ છે કે તેમણે ંામ કહું
છે ંા પ્રકારના વાચ્યાર્થમા “જ” ંા શબ્દ વાક્યાલકારરૂપે વપરાયેલ ંાની
હેવાશે (૨) પહેલા અર્થમા “આઠસ” ંે પદ જન્મુશ્વામીના “આયુષ્મન્”
રૂપથી વિશેષણરૂપે વપરાયુ હેવુ, હવે ંા ંીજા અર્થમા “આયુષ્મદન્તે” ંા

ભવન્તિ । એવ મૂતા ગમા અનન્તા ભવન્તિ । તથા-પર્યવાઃ=પર્યાયાઃ=પદાર્થવર્માઃ
અનન્તા ભવન્તિ, તે ચ સ્વપરભેદમિત્ના અક્ષરાર્થગોચરા વેદિતવ્યાઃ । તથા-ત્રસાઃ
ત્રસ્યન્તિ ઉષ્ણાદ્યમિસતપ્તાઃ સ્વાધિષ્ઠિતોષ્ણાદિ સ્થાનાત્ ઉદ્વિજન્તે ગચ્છન્તિ ચ
છાયાદ્યાસેવનાર્થ સ્થાનાન્તરમિતિ ત્રસાઃ-દ્વીન્દ્રિયાદયઃ પરીતાઃ=અસહ્યાતાઃ સન્તિ

‘સુય મે આઝસતેળ’ ‘આઝસ સુય મે’ ‘મે સુય આઝસ’ ઇત્યાદિ ।
હસ તરહ અર્થ કે ભેદ સે પદોં કા ડસ ડસ રૂપ સે સયોજન હો જાયગા યે
અમિધાન કે અનુસાર ગમ રહે જાયેંગે । હસ તરહ કે ગમ અનત હોતે હેં ।

‘અનતા પજ્જવા’-આચારાગસૂત્ર મે પર્યવ-પર્યાયે-પદાર્થધર્મ-અનત
હોતે હેં યહ દિખલાયા ગયા હૈ । સ્વપર્યાય એવ પરપર્યાય, હસ તરહ સે
પર્યાયોં કે યે દો ભેદ કહે ગયે હેં, ઓર યે પદાર્થ કે હી ધર્મરૂપ સે
પ્રતિપાદિત હુએ હૈ । યહ અમી કહા જાચુકા હૈ કિ નિજપર્યાયોં કા
સંબધ પદાર્થ કે સાથ અસ્તિત્વ ધર્મ દ્વારા હોતા હૈ, તથા પરપર્યાયોં કા
સંબધ વહા નાસ્તિત્વધર્મ કે દ્વારા હોતા હૈ । હરએક પદાર્થ સ્વપર્યાયોં સે
યુક્ત હૈ એવ પરપર્યાયો સે વિહીન હૈ । ‘પરિત્તા તસા’ ત્રસ નામકર્મ કે
ઉદય સે યુક્ત જો જીવ ઉષ્ણ આદિ સે સતસ હોકર દુઃખી હોતે હેં એવ
ઉષ્ણાદિ સમન્વિત સ્વસ્થાન કા પરિત્યાગ કર છાયા સે સમન્વિત હુએ દૂસરે
સ્થાન મે ત્રાયા કે સેવન કે લિયે ચલે જાતે હેં ટ્રે ત્રસ જીવ હૈ । દ્વીન્દ્રિય,
તેઙ્ગિન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય એવ પચેન્દ્રિય, હસ તરહ ડનકે અનેક ભેદ હૈ ।

“સુય મે આઝસતેળ” “આઝસ સુય મે” “મે સુય આઝસ” ઇત્યાદિ
આ રીતે અર્થના ભેદથી પદોત્ત તે તે રૂપે સયોજન થઈ જશે તે અભિધાન
અનુસાર ગમ કહેવાશે આ પ્રકારના ગમ અનત હોય છે

“અનતા પજ્જવા” આચારાગ સૂત્રમા પર્યવ-પર્યાયો-પદાર્થ-ધર્મ-અનત
હોય છે તે બતાવવામા આવ્યુ છે સ્વપર્યાય અને પરપર્યાય, આ રીતે પર્યાયોના
બે ભેદ બતાવ્યા છે, અને એ પદાર્થના જ ધર્મરૂપે પ્રતિપાદિત થયા છે એ
હમણા જ બતાવવામા આવ્યુ છે કે નિજપર્યાયોનો સબધ પદાર્થની સાથે અસ્તિત્વ
ધર્મ દ્વારા થાય છે, તથા પરપર્યાયોનો સબધ ત્યા નાસ્તિત્વ ધર્મ દ્વારા થાય
છે દરેક પદાર્થ સ્વપર્યાયો વાળો છે અને પરપર્યાયો વિનાનો છે “પરિત્તા તસા”
ત્રસ નામકર્મના ઉદયથી યુક્ત જે એવ ઉષ્ણ આદિથી ત્રાસીને હુ ખી થાય છે
અને ઉષ્ણાદિ સમન્વિત પોતાના સ્થાનનો પરિત્યાગ કરીને છાયાથી સમન્વિત
એવા બીજા સ્થાને છાયાના સેવનને માટે ચાલ્યા જાય છે તે ત્રસ એવ છે
દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પચેન્દ્રિય, આ રીતે તેમના અનેક ભેદ પડે છે.

હે આયુષ્યમન્ ! 'તેણ' તત્ર=પહ્નજીવનિકાય વિષયે ૮, તત્ર વા સમવસરણે સ્થિતેન ભગવતા ઇવામાહ્યાતમ્ ૯, અથવા-શ્રુત મમ હે આયુષ્મન્ ! વર્તેતે, યતસ્તેન ભગવતા ઇવામાહ્યાતમ્ ૧૦, ઇવામદયસ્ત તમર્થમધિકૃત્ય ગમા ભવન્તિ ।

અભિધાનવશાત્પુનરેયં ગમા ભવન્તિ- 'સુય મે આઠસતેણ' 'આઠસં સુય મે' 'મે સુય આઠસં' ઇત્યાદિ । અર્થભેદેન પદાનાં તથા તથા સંયોજને અભિધાનગમા કહા ૭ । અથવા- "તેણ" કી છાયા 'તત્ર' કે રૂપમેં જત્ર કી જાવેગી તથ તેસા અર્થ વોધ હોગા કિ- "શ્રુત મયા આયુષ્મન્ તત્ર-પહ્નજીવનિકાયવિષયે", હે આયુષ્યમન્ જમ્વૂ । મેને સુના હૈ જો ભગવાન્ ને પહ્નજીવનિકાય કે વિષય મેં તેસા કહા હૈ ૮. અથવા- "તત્ર-સમવસરણે ભગવતા ઇવામાહ્યાતમ્" મેને સુના હૈ જો સમવસરણ મેં સ્થિત હુણ ભગવાન્ ને તેસા કહા હૈ ૯ । અથવા "મે" કી છાયા તૃતીયા વિભક્તિ "મયા" કે રૂપ મેં ન કરકે જત્ર "મે" કી છાયા "મમ" કે રૂપ મેં કી જાવેગી તથ તેસા અર્થવોધ હોગા- "શ્રુત મમ આયુષ્મન્ ! વર્તેતે યતસ્તેન ભગવતા ઇવામાહ્યાતમ્" ડન ભગવાન્ ને જો તેસા કહા હૈ વહ મેને સુન હી રક્લા હૈ" ૧૦ ।

હસ તરહ મિત્ર ૨ અર્થ કો લેકર હન પદોં સે જો વોધ હોગા વહ અભિધેય કે વશ સે હુણ ગમ જાનને ચાહિયે ।

અભિધાન અર્થાત્નામ કે વશ સે જો ગમ હોતે હૈં વે હસ પ્રકાર હૈં-

શ્યાતમ્" એવો અર્થબોધ થશે એટલે કે- "હે આયુષ્મન્ ! જૂ! ત્યારે ભગવાને આમ કહ્યું ત્યારે મે આલખ્યુ હવુ (૭) અથવા "તેણ" ની છાયા "તત્ર" ના રૂપે ત્યારે વપરાય ત્યારે એવો અર્થ બોધ થશે કે "શ્રુત મયા આયુષ્મન્ તત્ર-પહ્ન જીવ નિકાય વિષયે" હે આયુષ્માન્ જૂ! મે આલખ્યુ છે કે ભગવાને છ હવ નિકાયના વિષયમા આ પ્રમાણે કહ્યુ છે (૮) અથવા "સમવસરણે ભગવતા ઇવામાહ્યાતમ્" મે આલખ્યુ છે કે સમવસરણમા રહેલ ભગવાને આમ કહ્યુ છે" (૯) અથવા "મે" ની છાયા તૃતીયા વિભક્તિ "મયા" ના રૂપે ન કરતા બે "મે" ની છાયા "મમ" ના રૂપે કરાય તે આ પ્રમાણે અર્થબોધ થશે "શ્રુત મમ આયુષ્મન્ ! વર્તેતે યતસ્તેન ભગવતા ઇવામાહ્યાતમ્" એ ભગવાને બે એવુ કહ્યુ છે તે મે આલખી જ રાખ્યુ છે (૧૦)

આ રીતે ભિન્ન ભિન્ન અર્થને લીધે એ પદોથી બે બોધ થશે તે અભિધેયના વશથી થયેલ ગમ બાણવા બોધએ

અભિધાનને કારણે બે ગમ થાય છે તે આ પ્રમાણે છે-

भावाः=जीवादयः पदार्थाः अत्राचाराङ्गसूत्रे आख्यायन्ते=सामान्यतया विशेषतया वा कथ्यन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते=वचन पर्यायादिभेदेन नामादिभेदेन वा कथ्यन्ते, प्ररूप्यन्ते=स्वरूपतः कथ्यन्ते, दर्शयन्ते=उपमानोपमेयभावादिभिः कथ्यन्ते, निदर्शयन्ते=परानुक्रम्यया भव्यकल्याणापेक्षया वा निश्चयेन पुनः पुनर्दर्शयन्ते, उपदर्शयन्ते=उपनय निगमनाभ्यां सकलनपाभिप्रायतो वा निश्चयं शिष्यबुद्धौ व्यवस्थाप्यन्ते।

सम्प्रत्याचाराङ्गाध्ययनफलमाह—‘से०’ इत्यादि। सः=आचाराङ्गस्यायेता

ये समस्त जीवादिक पदार्थ जिसरूपमे तीर्थंकर प्रभुने प्ररूपित किये हैं उसी रूपसे इस आचारागसूत्रमें सामान्यरूप से अथवा विशेषरूप से कहे गये हैं। ‘प्रज्ञाप्यन्ते’ वचनपर्याय अदि के भेद से अथवा नाम आदि के भेद से प्रज्ञापित हुए हैं। ‘प्ररूप्यन्ते’ प्ररूपित हुए हैं—स्वरूप कथन-पूर्वक प्रतिपादित हुए हैं। ‘दर्शयन्ते’ उपमान उपमेय भाव प्रदर्शन पुरस्सर दिखलाये गये हैं। ‘निदर्शयन्ते’ निदर्शित किये गये हैं—दूसरे जीवों की दया से अथवा भव्य जीवों के कल्याण की भावना से पुनः पुनः कहे गये हैं, ‘उपदर्शयन्ते’ उपनय तथा निगमन द्वारा अथवा समस्तनयो द्वारा शिष्यजनों की बुद्धिमें निश्चित रूपसे व्यवस्थापित किये गये हैं।

अब सूत्रकार इस आचाराग श्रुत के अध्ययन के फल को प्रकट करने के अभिप्राय से कहते हैं—‘से एव आया०’ इत्यादि। जो प्राणी इस

दिक पदार्थ ने इंचे तीर्थंकर प्रभुअंचे प्ररूपित किये छे अंचे इंचे आ आचाराग सूत्रमा सामान्य रीते अथवा विशेषइंचे कहेल छे “प्रज्ञाप्यन्ते” वचन, वचन पर्याय आदिना लेहथी अथवा नाम आदिना लेहथी प्रज्ञापित थया छे “प्ररूप्यन्ते” प्ररूपित थया छे—स्वरूप कथनपूर्वक प्रतिपादित थया छे “दर्शयन्ते” उपमान उपमेय भाव प्रदर्शन सङ्घित दर्शाववाभा आख्या छे “निदर्शयन्ते” निदर्शित कराया छे भीअ लुयोनी हयाथी अथवा लव्य लुयोना उल्यालुनी धरुधायी इरी इरीने कहेवाया छे ‘उपदर्शयन्ते’ उपनय तथा निगमन द्वारा अथवा समस्त नयोद्वारा शिष्यजनोंनी बुद्धिमा निश्चितइंचे कस्याववाभा आवेल छे

इंचे सूत्रकार आ आचाराग सूत्रमा अध्ययनना इंचेने प्रकट करवाना छेतुथी कहे छे इंचे—‘से एव आया०’ इत्यादि ने प्राणी आ आचाराग सूत्रने

નત્યનન્તા । તથા-સ્થાવરાઃ-તિષ્ઠન્ત્યેવ-શીલાઃ સ્થાવરાઃ-શીતાતપાદ્યમિભૂતા અપિ સ્થાનાન્તર ગન્તુમસમર્થાઃ પૃથિવ્યપ્તેજોગાયુનસ્પતિકાયલક્ષણા અનન્તાઃ સન્તિ । વનસ્પતેરાનન્ત્યાત્સ્યાધરાણામાનન્ત્યં ઘોષ્યમ્ । ઉપરિ નિર્દિષ્ટા ઇતે સર્વે-શાશ્વતકૃત નિવદ્ધનિકાચિતાઃ, તન્ન-શાશ્વતા-દ્રવ્યાર્થિકનયાપેક્ષયા નિત્યાઃ, કૃતાઃ=પર્યાયા ર્થતયા પ્રતિસમયમન્યથાત્ગાપ્યાકૃતાઃ-અનિત્યા ઇત્યર્થઃ, નિવદ્ધા=સૂત્ર એવ પ્રથિતા ન તુ ઇતસ્તતો વિકીર્ણાઃ, નિકાચિતાઃ-નિર્યુક્તિહેતુદાહરણાદિભિઃ પ્રતિષ્ઠિતાઃ શાશ્વતાદીના ચતુર્ણા પદાનામિતરેતરયોગદ્વન્દ્ભઃ, જિનપ્રજ્ઞતાઃ=તીર્થંકુર પ્રરૂપિતા

યે ત્રસ જીવ પરીત-અસહ્યાત હૈં, અનત નહીં । તથા-‘અણતા ધાવરા’ સ્થાવર જીવ અનત હૈં । સ્થાવર નામકર્મ કા જિનકે ઉદય હૈં વે એકેન્દ્રિય જીવ સ્થાવર જીવ કહે ગયે હૈં । વે શીત તથા આતપ સે પીઢિત હોકર મી એક સ્થાન સે દુસરે સ્થાન પર જાને કે લિયે અસમર્થ હોતે હૈં । પૃથિ વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય તથા વનસ્પતિકાય, હસ પ્રકાર હનકે યે પાચ મેદ હૈં । સ્થાવર કાય જીવ અનત હૈં હસકા કારણ યહ હૈં કિ વનસ્પતિ કાયિક જીવ અનત હૈં હસલિયે સ્થાવર જીવોમૈં અનતતા પ્રકટ કી ગઈ હૈં । ઓર પૃથ્વી, અપ્, તેજો વાયુ પ્રત્યેક મૈં અસહ્યાત અસહ્યાત જીવ હૈં યે સવ જીવ-ત્રસજીવ એવ સ્થાવર જીવ ‘શાશ્વત’ દ્રવ્યા ર્થિકનય કી અપેક્ષા સે નિત્ય હૈં, ‘કૃત’ પર્યાયાર્થિક નયકી અપેક્ષા સે અનિત્ય હૈં, ‘નિવદ્ધ’-સૂત્રમૈં હી પ્રથિત હોને સે યે નિવદ્ધ હૈં તથા ‘નિકાચિત’-નિર્યુક્તિ, હેતુ, ઉદાહરણ આદિ કે દ્વારા યે અચ્છી તરહ સે પ્રતિષ્ઠિત હૈં હસલિયે યે નિકાચિત હૈં । ‘જિનપ્રજ્ઞતા ભાવા આહ્યાયન્તે’

એ ત્રસ જીવ પરીત-અસહ્યાત છે, અનત નથી તથા-‘અણતા ધાવરા’ સ્થાવર જીવ અનત છે સ્થાવર નામ કર્મનો જેમને ઉદય છે એ એકેન્દ્રિય જીવોને સ્થાવર જીવ કહેલ છે તેઓ શીત તથા આતપથી ત્રાસીને એક સ્થાનેથી બીજે સ્થાને જવાને માટે અસમર્થ હોય છે પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય તથા વનસ્પતિકાય, આ રીતે તેમના પાત્ર ભેદ છે સ્થાવર કાય જીવ અનત છે, તેનું કારણ એ છે કે વનસ્પતિકાયિક જીવ અનત છે તે કારણે સ્થાવર જીવોના અનતતા પ્રગટ કરવામા આવેલ છે એ બધા જીવ-ત્રસજીવ અને સ્થાવર જીવ “શાશ્વત” દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ નિત્ય છે, “કૃત” પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાએ અનિત્ય છે, “નિવદ્ધ” સૂત્રમા જ પ્રથિત હોવાથી નિવદ્ધ છે તથા “નિકાચિત” નિર્યુક્તિ, હેતુ, ઉદાહરણ આદિ દ્વારા તે સારી રીતે પ્રતિષ્ઠિત છે તેથી તેઓ નિકાચિત છે “જિન પ્રજ્ઞતા ભાવા આહ્યાયન્તે” એ સમસ્ત જીવ

भवति-एव त्रिध त्रिविध ज्ञानवान् भवति । अयं भावः यथा आचाराङ्गे परसमयनिराकरणपुरस्सर स्वसमयः स्थापितो वर्तते तथैव अस्याचाराङ्गस्याध्ययनशीलः स्वसमयज्ञः परसमयज्ञश्च भूत्वा परसमय निराकृत्य स्वसमयस्थापनेन विशिष्टतरो भवति । वक्तव्यमुपसहरन्नाह—‘ ए० ’ इत्यादि । ए०म्-अनेन प्रकारेण अर्थाद्-आचार-गोचरविनयादि कथनेन अस्मिन्नाचाराङ्गे चरण-करण प्ररूपणा, चरण=त्रयश्रमणधर्म-समयमादिक सप्तति सत्यकम्, करण=पिण्ड-त्रिशुद्धि समित्यादि सप्तति सत्यकम्, तयोः प्ररूपणा आर्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्शयते, निदर्शयते उपदर्शयते । एपा-

यन जाता है तब वह जाता हो जाता है-इस शास्त्र का अध्ययन कर वह समस्त जीवादिक पदार्थों का तथा उनके मन्त्रों के स्वरूप का जाननेवाला होता है । ‘ एव विष्णवाया ’ विज्ञाता हो जाता है-विविध ज्ञानवाला बन जाता है, तात्पर्य यह है कि जिम प्रकार आचारागसूत्रमें परसमय निराकरण पुरस्सर स्वसमय स्थापित किया गया है, अब जो मोक्षाभिलाषी इसका अध्ययन जायगा वह उस तरह स्वसमय एव परसमयका ज्ञाता अवश्य बन जायगा । इस तरह वह प्राणी परसमय का निराकरण करके जब स्वसमयकी स्थापना करता है तो इससे वह विशिष्टतर ही कहा जाता है । अब वक्तव्यका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-इस तरह आचार, गोचर, विनय आदिके कथनसे इस आचारागसूत्रमें चरणसत्तरी एव करणसत्तरी की प्ररूपणा की गई है, प्रज्ञापित हुई है, दिखलाई गई है, निदर्शित की गई है, तथा उपद-

यनी नय छे त्यागे ते जाता यनी नय छे-आ शास्त्रु अध्ययन करीने ते अभस्त एवादिक् पदार्थेने तथा तेमना साया स्वरूपने ज्ञानुनार थर्ध नय छे “एव विष्णवाया” विज्ञाता थर्ध नय छे-विविध ज्ञानवाणो यनी नय छे, तात्पर्य ये छे तेने प्रजारे आचाराग सूत्रमा पर समय निराकरणपूर्वक स्वसमय स्थापित करार्ये छे, हवेने मुमुक्षु तेना पाठी यने ते ये रीते स्वसमय अने परसमयने ज्ञाता अवश्य अनशे आ रीते ते प्राणी परसमयनु निराकरण करीने न्यारे स्वसमयनी स्थापना करे छे, त्यारेते वडे ते विशिष्टतर जे कहेवाय छे हवे वक्तव्यने उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे के-आ रीते आचार, गोचर, विनय आदिना कथनथी आ आचाराग सूत्रमा चरणसत्तरी अने करणसत्तरीनी प्ररूपणा कर वामा, आवी छे-प्रज्ञापित थर्ध छे, दिखलाई आवी छे, निदर्शित करार्य छे,

પરમાત્મા=અસ્મિન્ ભારતઃ સમ્યગધીતે સતિ પવમાત્મા ભવતિ, તદુક્તક્રિયાપરિણામપરિણમનાદાત્મસ્વરૂપો ભવતીત્યર્થઃ । એવ ત્રિપાસારમેવગાન શ્રેયસ્કરમિતિ પાપયિતુ ક્રિયા પરિણામમિધાય સામ્પ્રત જ્ઞાનમધિકૃત્યાહ-‘પવ જ્ઞાતા’ ઇતિ । સથ જ્ઞાતા ભવતિ-દ્વદમધીત્ય સર્વપદાર્થસાર્થનાયમો ભવતીતિ ભાવઃ । તથા-એવ વિજ્ઞાતા

આચારાગસૂત્રકા ભાવપૂર્વક અધ્યેતા હોતા હૈ વહ સચ્ચા આત્મા બન જાતા હૈ । તાત્પર્ય કાળને કા વહ હૈ કિ શાસ્ત્ર કે અધ્યયન કા ફલ હોતા હૈ-ઉસકે દ્વારા પ્રતિપાદિત આચરણ કો-ઉપદેશ કો અપને જીવનમેં ઉતારના । યહી ભાવપૂર્વક ઉસકા પઠન કહલાના હૈ । ભાવશુન ઇસી કા નામ હૈ, અતઃ જવ આત્મા ઇસ આચારાગ સૂત્રકા અધ્યેતા સમ્યકરીતિ સે બન જાતા હૈ તો વહ નિયમત ઉસકે દ્વારા પ્રતિપાદિત શુદ્ધ ક્રિયાઓં કા અપને મનુષ્યજીવનમેં આચરણ કરને વાલા બન જાતા હૈ । ઇન ક્રિયાઓં કો અપને જીવનમેં ઉતારના ઇસકા અર્થ યહી હૈ કિ આત્મા સચ્ચે અર્થમેં આત્મા બન ગયા હૈ-સમીચીન આચરણ કરના યહી જ્ઞાન કા ફલ હૈ ઓર એસા જ્ઞાન હી શ્રેયસ્કર હોતા હૈ, ક્રિયા હીન જ્ઞાન કી કોઈ કીમત નહીં, એસા જાનકર વહ આત્મા-પ્રાણી આત્મા કી પરભાવ પરિણતિરૂપ અસદાચરણ કા પરિત્યાગ કર આત્મા કા નિજ સ્વભાવરૂપ જો સદાચરણ હૈ ઉસકા આચરિત કરને વાલા બન જાતા હૈ, યહી આત્મા કા આત્મા બનના હૈ । ‘ એવ ણાયા ’ જવ આત્મા સચ્ચે અર્થમેં આત્મા

ભાવપૂર્વક અભ્યાસ કરે છે તે સાથે આત્મા બને છે કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે શાસ્ત્રના અધ્યયનનું ફળ હોય છે-તેના દ્વારા પ્રતિપાદિત આચરણને-ઉપદેશને પોતાના જીવનમાં ઉતારવો એજ ભાવપૂર્વકનું તેનું પઠન કહેવાય છે ભાવશુન તેનું જ નામ છે તેથી જ આત્મા આ આચારાગ સૂત્રને અભ્યાસક સમ્યક રીતે બની જાય છે તો તે નિયમપૂર્વક તેના દ્વારા પ્રતિપાદિત શુદ્ધ ક્રિયાઓને પોતાના જીવનમાં આચરનાર બની જાય છે એ ક્રિયાઓને પોતાના જીવનમાં ઉતારવી તેનો અર્થ એજ છે કે આત્મા માથા અર્થમાં આત્મા બની ગયો છે સમીચીન આચરણ કરવું એજ જ્ઞાનનું ફળ છે અને એવું જ્ઞાન જ કયાલુકારી હોય છે, ક્રિયાશૂન્ય જ્ઞાનની કંઈ જ કીમત નથી, એમ સમજીને તે આત્મા-પ્રાણી આત્માની પરભાવ પરિણતિરૂપ અસાચરણને પરિત્યાગ કરીને આત્માના નિજ સ્વભાવરૂપ જે સદાચરણ છે તેને આચરનારો બની જાય છે, એજ આત્માનું આત્મા બનવું છે “એવ ણાયા” જ્યારે આત્મા સાચા અર્થમાં આત્મા

संखिज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं अंगट्टयाए विईए अगे, दो-
सुयक्खधा, तेवीस अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसणकाला तित्तीसं
समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साइ पयग्गेण, सखिज्जा अक्खरा,
अणंता गमा, अणता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा,
सासय-कड-निवद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति
पण्णविज्जंति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति ।
से एवं आया, एवं पहाया एवं विण्णयाया । एवं चरण करणपरूवणा
आघविज्जइ, पण्णविज्जइ, दंसिज्जइ, निदंसिज्जइ, उवदंसिज्जइ ।
से त सूयगडे ॥ सू० ४६ ॥

छाया—अथ किं तत् सूत्रकृतम् ? सूत्रकृते खलु लोकः सूच्यते, अलोकः
सूच्यते, लोकालोक सूच्यते, जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते, जीवाजीवा
सूच्यन्ते, स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते, स्वसमय-परसमयं सूच्यते । सूत्र-
कृते खलु अशीत्यधिकृतस्य क्रियावादिशतस्य, चतुरशीतेरक्रियानादिना, सप्तपष्ठ्या
अज्ञानिक वादिनाम्, द्वात्रिंशतो वैनयिकनादिना, त्रयाणा त्रिपष्ट्यधिकाना पाप-
ण्डिक शताना व्यूह कृत्या स्वसमय. स्थाप्यते । सूत्रकृते खलु परीता वाचनाः,
सख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, सरयेयाः वेष्टकाः, सख्येयाः श्लोकाः, सख्येया
निर्युक्तयः, (सख्येयाः सग्रहण्य.) संख्येयाः प्रतिपत्तय. तत्खलु अह्वार्थतया द्विती-
यमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरययनानि त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंश-
त्समुद्देशनकाला, पट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदात्रेण, सख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता
गमाः, अनन्ताः पर्ययाः, परीतास्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वत-कृत-निवद्ध-
निकाचिता-जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निद-
श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । स एवमात्मा, एव ज्ञाता, एव विज्ञाता । एव चरण करणप्ररूपणा
आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते । तदेतत् सूत्रकृतम्
॥ सू० ४६ ॥

मर्थ पूर्ववद् गोष्यः । आचाराद्गुरुरूपमुक्त्वाऽऽचार्यः शिष्यमाह—‘से त आचारे’ इति । स एष आचारः—हे जम्बू ! यत्त्वयाऽऽचाराद्गमायः पृष्टः स ज्ञानाचारादिलक्षण आचारोऽयमनन्तरोक्तो शिष्यः ॥ सू० ४५ ॥

आचाराद्गुरुरूपमभिधाय साम्प्रत द्वितीयमृत्रहृताद्गुरुरस्य स्वरूपमाह—‘से किं त सूयगडे०’ इत्यादि ।

मूलम्—से किं त सूयगडे ? सूयगडे णं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोयालोए सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जति, जीवाजीवा सूइज्जति, ससमए सूइज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमयपरसमए सूइज्जइ, सूयगडे ण असीयस्स किरिवाइ सयस्स, चउरासीए अकिरियावाईणं, सत्तट्ठीए, अण्णाणियवाईणं वत्तीसाए, वेणइयवाईण, तिण्ह तेसट्ठाणं पासण्डियसयाण बूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ । सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, सखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (सखिज्जाओ सगहणीओ)

श्रित हुई है । (इन सबका अर्थ पहिले की तरह ही है) । इस तरह आचारागके स्वरूपको कह कर अब सुधर्मास्वामी—जबूस्वामीसे कहते हैं कि हे जम्बू ! जो तुमने आचारके स्वरूपके विषयमें प्रश्न किया था वह आचार ज्ञानाचार आदिके भेदसे इस प्रकारका है कि जिसके विषय में यहा तक कथन किया गया है ॥ सू० ४५ ॥

तथा उपदिशितं यद्ये (आ यधानो अर्थ आगण आभ्या प्रभाञ्छे) आरीते आचारगना स्वइपने कहीने डवे सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कडे छे डे छे जम्बू ! तमे आचारना स्वइपना विषयभा जे प्रश्न कर्यो डतो, ते आचार ज्ञानाचार आदिना वेदथी डेवा प्रकारने छे तेना विषे अही सुधी वलुंन कर वाभा आञ्छे ॥ सू० ४५ ॥

“अल्पाक्षरमसन्दिग्ध, सारवद् विश्वतो मुखम् ।
अस्तोभमनवद्य च, सूत्र सूत्रविदो विदुः” ॥ इति ।

कल्याणकी सिद्धि कर लेता है । “सूत्रमिव सूत्रम्” जिस प्रकार तन्तु के द्वारा दो, तीन अथवा अधिक भी वस्तुएँ एक जगह बाध दी जाती हैं उसी प्रकार एक ही सूत्रद्वारा बहुतसे अर्थ भी बाधे जाते हैं इस लिये सूत्रकी तरह यह सूत्र कहा गया है । अथवा सूत्रका यह भी-लक्षण कहा गया है—

“अल्पाक्षर मसन्दिग्ध, सारवत् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्य च, सूत्र सूत्रविदो विदुः” ॥१॥

अल्पाक्षर—जिसमें अक्षर अल्प हों, तथा—असन्दिग्ध—सन्देहरहित, अर्थात् जो सन्देह को उत्पन्न करने वाले अनेकार्थक शब्दोंसे रहित हो, सारवत्—सारयुक्त, अर्थात् अनेक पर्यायों से युक्त हो अथवा बहुत अर्थको कहने वाला हो, विश्वतोमुख—अर्थात् चारों अनुयोगों से युक्त हो अस्तोभ—अर्थात्—‘वा, वै, हि’ आदि स्तोभों—निरर्थक निपातों से रहित हों, अनवद्य—गर्हा रहित अर्थात् हिंसा का प्रतिपादक न हो, इस प्रकार के लक्षणों से युक्त को ही सूत्र के जानने वालों ने सूत्र कहा है ॥१॥

निश्रेयस—आत्मकल्याणकी सिद्धि की दे छे “सूत्रमिव सूत्रम्” जेभ सूत्र (द्वारा) द्वारा जे, त्रय अथवा वधारे वस्तुओं पणु जेक जग्याज्ये पाधी देवाय छे तेभ जेक जे सूत्र द्वारा जहु जे अर्थो पणु पाधी शक्य छे, ते जग्ये आ सूत्रने सूत्र (द्वारा) जेवु जहेल छे अथवा सूत्रनु आ पणु लक्षणु जहेल छे—

“अल्पाक्षर मसन्दिग्ध, सारवत् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभ मनवद्यच, सूत्र सूत्रविदो विदुः” ॥१॥

अल्पाक्षर—जेभा थोडा अक्षर होय, तथा असन्दिग्ध—सन्देह रहित जेटले के जे सन्देह उत्पन्न करनारा अनेकार्थक शब्दोथी रहित होय, सारवत्—सारयुक्त जेटले के अनेक पर्यायोथी युक्त अथवा घणु अर्थने जहेनार होय, विश्वतोमुख—जेटले के चारे अनुयोगोवाणु होय, अस्तोभ—जेटले के ‘वा, वै, हि’ आदि स्तोभो—नशभा निपातो विनाशु होय, अनवद्य—गर्हारहित जेटले के हिंसानु प्रतिपादक न होय, आ प्रकारना लक्षणोवाणाने जे सूत्रना जणुकारोअे सूत्र जहेल छे ॥१॥

ટીકા—‘ સે કિં તં ’ ઇત્યાદિ—

અથ કિં તત્ સૂત્રકૃતમ્—સૂત્રકૃતાન્નમ્ ? સૂત્રનાત્=જીવા-જીવાદિપદાર્થોના પ્રતિબોધનાત્ સૂત્રમ્, યદ્વા-સપ્તરજ્યપર્યાયનયાદ્યર્થ સૂત્રનાત્ સૂત્રમ્, અથવા-સુત્રમિવ સૂત્રમ્, યથા-સુપ્તઃ પુરુષઃ પ્રતિબોધિતઃ સન્નમીષ્ટં કાર્યં સામયતિ, તથૈવેદમયેન પ્રતિબોધિત સન્નિઃશ્રેયસ સાધયતિ । તથા સૂત્ર=તન્તુ, તદિવ સૂત્રમ્, યથા તન્તુના દ્વે ત્રીણિ તદધિકાનિ વા રસ્તૂનિ એન્ન સયોજ્યતે, તથૈવ એકેન સૂત્રેણ વહ્વોર્થ્યાં નિવધ્યન્તે ઇતિ સૂત્રમ્ । અથવેદમપિ સૂત્રસ્ખણમ્—

સૂત્રકાર આચારાગકા સ્વરૂપ કહ કર અન દસરે અદ્ધ સૂત્રકૃતાન્ન કા સ્વરૂપ કહતે હૈ—‘ સે કિં ત સ્યગઢે૦ ’ ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય પ્રશ્ન—હે ભદન્ત ! દ્વિતીય અદ્ધ સૂત્રકૃતાન્ન કા કયા સ્વરૂપ હૈ ?

ઉત્તર—જો સૂત્રરૂપસે રચા ગયા હૈ વહ “ સૂત્રકૃત ” હૈ । યદપિ સૂત્રરૂપસે હી સમસ્ત અગોકી રચના હુઈ હૈ, ફિર મી ટસે “ જો સૂત્ર રૂપસે રચા ગયા વહ સૂત્રકૃત હૈ ” ણેસા જો કહા ગયા હૈ વહ સ્થિકી અપેક્ષા સે જાનના ચાહિયે । “ સૂત્રનાત્ સૂત્રમ્ ” સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થો કા જો પ્રતિબોધક હોતા હૈ વહ સૂત્ર હૈ અથવા-દ્રવ્યાર્થિક એવ પર્યા યાર્થિકનયકે વિપવભૂત સમસ્ત જીવાદિક પદાર્થો કા જો પ્રરૂપક હોતા હૈ વહ સૂત્ર હૈ અથવા “ સુત્રમિવ સૂત્રમ્ ” જૈસે સોયા હુઆ કોઈ પુરુષ જબ જગા દિયા જાતા હૈ તો વહ અપને અમીષ્ટ કાર્યકો કરને મે લગ જાતા હૈ ડસી પ્રકાર અર્થ સે પ્રતિબોધિત હુઆ સૂત્ર નિઃશ્રેયસ આત્મ

સૂત્રકાર આચારાગતુ સ્વરૂપ કહીને બીજા અગ-સૂત્રકૃતાગતુ સ્વરૂપ કહે છે—“ સે કિં ત સ્યગઢે૦ ” ઇત્યાદિ—

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત ! દ્વિતીય અગ સૂત્રકૃતાગતુ શુ સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—જે સૂત્રરૂપે રચવામા આવેલ છે તે “ સૂત્રકૃત ” છે એ કે સમસ્ત અગોની રચના સૂત્રરૂપે જ થઈ છે તેા પણ તેને “ જે સૂત્રરૂપે રચવામા આવેલ છે તે સૂત્રકૃત છે ” એવુ જે કહેલ છે તે રૂઢીની અપેક્ષાએ બાણુવુ બેઈ એ “ સૂત્રનાત્ સૂત્રમ્ ” સમસ્ત ભવાદિક પદાર્થોતુ જે પ્રતિબોધક હોય છે તે સૂત્ર છે અથવા દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક તથા વિષયભૂત સમસ્ત ભવાદિક પદાર્થોતુ જે પ્રરૂપક હોય છે તે સૂત્ર છે અથવા “ સુત્રમિવ સૂત્રમ્ ” જેમ સુતેલા કેઈ પુરુષને બ્યારે જગાડવામા આવે છે ત્યારે તે પોતાના અભીષ્ટ કાર્ય કરવાને મહી બાય છે એજ પ્રકારે અર્થથી પ્રતિબોધિત થયેલ સૂત્ર

“अल्पाक्षरमसन्दिग्ध, सारवद् विश्वतो मुखम् ।
अस्तोभमनवद्य च, सूत्र सूत्रविदो विदुः” ॥ इति ।

कल्याणकी सिद्धि कर लेता है । “सूत्रमिव सूत्रम्” जिस प्रकार तन्तु के द्वारा दो, तीन अथवा अधिक भी वस्तुएँ एक जगह बाध दी जाती हैं उसी प्रकार एक ही सूत्रद्वारा बहुतसे अर्थ भी बाधे जाते हैं इस लिये सूत्रकी तरह यह सूत्र कहा गया है । अथवा सूत्रका यह भी-लक्षण कहा गया है—

“अल्पाक्षर मसन्दिग्ध, सारवत् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्य च, सूत्र सूत्रविदो विदुः” ॥१॥

अल्पाक्षर—जिसमें अक्षर अल्प हो, तथा—असन्दिग्ध—सन्देहरहित, अर्थात् जो सन्देह को उत्पन्न करने वाले अनेकार्थक शब्दोंसे रहित हो, सारवत्—सारयुक्त, अर्थात् अनेक पर्यायों से युक्त हो अथवा बहुत अर्थको कहने वाला हो, विश्वतोमुख—अर्थात् चारों अनुयोगों से युक्त हो अस्तोभ—अर्थात्—‘वा, वै, हि’ आदि स्तोभो—निरर्थक निपातों से रहित हों, अनवद्य—गर्हा रहित अर्थात् हिंसा का प्रतिपादक न हो, इस प्रकार के लक्षणों से युक्त को ही सूत्र के जानने वालों ने सूत्र कहा है ॥१॥

निश्रेयस-आत्मकट्याणुनी सिद्धि उगी द्वे छे “सूत्रमिव सूत्रम्” जेभ सूत्र (द्वारा) द्वारा जे, तेषु अथवा वधारे वस्तुओः पणु ओक जग्याओ आधी देवाय छे तेभ ओक ज सूत्र द्वारा जहु ज अर्थो पणु आधी राजय छे, ते जारणु आ सूत्रने सूत्र (द्वारा) जेवु उडेल छे अथवा सूत्रनु आ पणु लक्षणु उडेल छे—

“अल्पाक्षर मसन्दिग्ध, सारवत् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभ मनवद्यच, सूत्र सूत्रविदो विदुः” ॥१॥

अल्पाक्षर—जेभा थोडा अक्षर होय, तथा असन्दिग्ध—स देह रहित ओटवे के जे स देह उत्पन्न करनार अनेकार्थक शब्दोथी रहित होय, सारवत्—सारयुक्त ओटवे के अनेक पर्यायोथी युक्त अथवा धणु अर्थने उडेनार होय, विश्वतोमुख—ओटवे के थारे अनुयोगोवाणु होय, अस्तोभ—ओटवे के ‘वा, वै, हि’ आदि स्तोभो—नकारा निपातो विनाणु होय, अनवद्य—गर्हारहित ओटवे के हिंसाणु प्रतिपादक न होय, आ प्रकारना लक्षणोवाणाने ज सूत्रना लक्षणुओरेओ सूत्र कहेल छे ॥ १ ॥

સૂત્રેણ=સૂત્રરૂપતયા કૃત=રચિતમ્, સૂત્રકૃતમ્ । યદપિ સર્વાણ્યન્નાનિ સૂત્રરૂપ તયૈવ ત્રિહિતાનિ, તથાપિ સ્તદ્વિનશાદિદમેનાર્દ્રં સૂત્રકૃતાદ્ગ્રશ્ચ દેન પ્રોચ્યતે । ઇતિ ।
 ઉત્તરયતિ-સૂત્રકૃતે સ્વલુ લોકઃ-લોકયતે=કેવલાલોકેન દૃશ્યતે ઇતિ લોકઃ । પચ્ચાસ્તિ
 કાયાત્મકઃ સ સૂચ્યતે । તથા-અલોકઃ=લોકમિત્રઃ સ સૂચ્યતે । લોકાલોક લક્ષણ વેદમ્-

‘ ધર્માદીના વૃત્તિ, દ્રૈવ્યાણા ભવતિ યત્ર તત્ ક્ષેત્રમ્ ।

તદ્દ્રવ્યૈઃ સદ્લોકઃ, -સ્તદ્વિપરીત દ્વલોકારયમ્ ” ॥ ઇતિ ।

તથા-લોકાલોક=લોકૃથ અલોકૃથ-લોકાલોક તત્ મૂચ્યતે । તથા-જીવા,=ચેતનાલ
 ક્ષણાઃ સૂચ્યન્તે, અજીવાઃ=જીવવિપરીતસ્વરૂપાઃ ધર્માધર્માકાશપુદ્ગલાસ્તિકાયાદ્વાસમયાઃ

इस तरह जो सूत्ररूप से रचा गया है वह सूत्रकृत अग है और यह
 द्वितीय अग है । इसी विषय को जानने के लिये यह प्रश्न उपस्थित
 हुआ है । उत्तररूपमें अब सूत्रकार कहते हैं-‘सूयगडेणं०’ इत्यादि ।

सूत्रकृताद्ग मे पञ्चास्तिकायात्मक इस लोक की प्ररूपणा की गयी है ।
 ‘लोकयते इति लोकः’ इस न्युत्पत्ति के अनुसार जो केवलज्ञानरूपी
 आलोकप्रकाश से देखा जावे वह लोक है । यह पाँच अस्तिकार्यों से युक्त है ।
 इस प्रकार के लोक की प्ररूपणा हुई है । लोक से भिन्न अलोक है, इस
 अलोकाकाश की भी वहाँ प्ररूपणा हुई है । लोकाकाश और अलोकाकाश
 का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है-‘जितने क्षेत्र में धर्मादिक द्रव्यों का
 अस्तित्व पाया जाता है उतना क्षेत्र लोकाकाश, एव जहाँ केवल आकाश
 ही आकाश है वह अलोकाकाश है ।’ इसी तरह इसमें जीव, अजीव
 और जीवाजीव वर्णित हुए हैं । चेतना जिसका एक मात्र लक्षण है वह

આ પ્રકારે જે સૂત્રરૂપે રચાયુ છે તે સૂત્રકૃત અગ છે, અને તે બીજી
 અગ છે એજ વિષયને બહુવાને માટે આ પ્રશ્ન ઉદ્ભવ્યો છે ઉત્તરરૂપે હવે
 સૂત્રકાર કહે છે-“સૂયગડે ણ૦”ઈત્યાદિ

સૂત્રકૃતાગમા પચ્ચાસ્તિકાયરૂપ આ લોકની પ્રરૂપણા કરી છે, ‘લોકયતે ઇતિ
 લોક’ આ ન્યુત્પત્તિ અનુસાર, જે કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોકપ્રકાશથી બેવાય તે લોક
 છે એ પાંચ અસ્તિકાયોથી યુક્ત છે આ પ્રકારના લોકના પ્રરૂપણા આ સૂત્રમાં
 કરાઈ છે લોકથી જુદો અલોક છે આ અલોકાકાશની પણ ત્યા પ્રરૂપણા થઈ છે
 લોકાકાશ, અને અલોકાકાશનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે બતાવ્યું છે જેટલા ક્ષેત્રમાં
 ધર્માદિક દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ હોય છે એટલું ક્ષેત્ર લોકાકાશ તેમજ જ્યાં કેવળ
 આકાશ જ આકાશ છે, તે અલોકાકાશ છે એજ રીતે એમાં જીવ અજીવ અને
 જીવાજીવનું વર્ણન થયું છે ચેતના જેનું એકમાત્ર લક્ષણ છે તે-જીવ છે

ते सूच्यन्ते, जीवा जीवा' = जीवाजीवादि द्रव्याणि सूच्यन्ते । तथा-स्वसमयः = अर्हन्म-
तानुसारिसिद्धान्तः सूच्यते, परसमयः = इतर दर्शनसिद्धान्तः सूच्यते, स्वसमय पर-
समय = स्वस्य परस्य च सिद्धान्तः सूच्यते । तथा-सूत्रकृते खलु 'असीअस्स'
अशीत्यधिकस्य क्रियावादिशतस्य-क्रियावदितु शील येपा ते क्रियायादिनस्त
एव क्रियावादिकास्तेषां शत तस्य, अशीत्यधिकशतसक्यकाना क्रियावादिना व्यूह
कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते-इत्यग्रेण सन्धः । एवं सर्वत्र । क्रियावाद्यादीना विस्तर
स्वरूप समयायाङ्गसूत्रस्य भागवोधिनी टीकातोऽत्रसेयम् । एव त्रयाणा त्रिपष्टचधि-
काना पापण्डिकशतानाम् = उपरि निर्दिष्टाना सरेषा मीलने त्रिपष्टचधिकत्रिशतानि
पापण्डिकमतानि तेषा व्यूहम् = प्रतिक्षेप कृत्वा = सर्वाणि मतानि दूषयित्वा स्वसमयः

जीव है । इस लक्षण से विपरीत अजीव हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति-
काय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय तथा काल, ये सब अजीव है ।
तथा इस सूत्रकृताङ्ग में स्वसमय सूचित हुए है । वीतराग, सर्वज्ञ, हितो-
पदेशी अर्हन्त प्रभु द्वारा जिन सिद्धान्तों की प्ररूपणा की गयी है, वे
स्वसमय हैं । अन्य दर्शनों के जो सिद्धान्त है वे परसमय हैं । इनकी
सूचना भी सूत्रकृताङ्ग में है । तथा स्वपर सिद्धान्त की सूचना भी इस
सूत्रकृताङ्ग में की गयी है ।

तथा-सूत्रकृताङ्गमे एकसौ अस्सी १८० भेद क्रियावादियों के चोरासी,
८४ भेद अक्रियावादियों के, सडमठ ६७ भेद अज्ञानवादियों के, तथा
बत्तीस ३२ भेद विनयवादियों के इस प्रकार तीनसौ तेसठ ३६३ पाखण्डियों
के मत का निरसन करके स्वसमय-स्वसिद्धान्त की स्थापना की गई है ।

ये लक्षणुथी बिन्न अणुव छे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय,
पुद्गलास्तिकाय तथा काल, ये अथा अणुव छे तथा आ सूत्रकृताङ्गमा स्वसमय
सूचित थयेल छे वितराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी अर्हन्त प्रभु द्वारा एत सिद्धान्तानि
प्ररूपणा कशर्छ छे ते स्व समय छे अन्य दर्शनानो ने सिद्धात छे, ते
पर समय छे तेनी सूचना पणु "सूत्रकृताङ्ग"मा छे तथा स्व, पर सिद्धातनी
सूचना पणु ये "सूत्रकृताङ्ग"मा करवामा आवी छे

सूत्रकृताङ्गमा ऐकसोअेभी १८० लेदो क्रियावादीअेना, चोराशी (८४)
लेदो अक्रियावादीअेना, सडसठ (६७) लेदो अज्ञानवादीअेना तथा बत्तीस (३२)
लेदो विनयवादीअेना, आ प्रदारे त्रणुसोतेसठ (३६३) पाणु डीअेना मततनु निरसन
करीने स्वसमय-स्वसिद्धातनी स्थापना करवामा आवी छे

સૂત્રેણ=સૂત્રરૂપતયા કૃત=રચિતમ્, સૂત્રકૃતમ્ । યદપિ સર્વાપ્યદ્વાનિ સૂત્રરૂપ તયૈવ વિદિતાનિ, તથાપિ રુદ્ધિવશાદિદમેવાદ્મં સૂત્રકૃતાદ્વશ્ચન્દેન પ્રોચ્યતે । ઇતિ ।
 ઉત્તરયતિ-સૂત્રકૃતે સ્વલુ લોકઃ-લોકયતે=કેવલાલોકેન દૃશ્યતે ઇતિ લોકઃ પશ્ચાસ્તિ
 કાયાત્મકઃ સ સૂચ્યતે । તથા-અલોકઃ=લોકમિત્તઃ સ સૂચ્યતે । લોકાલોક લક્ષણ વેદમ્-

‘ ધર્માદીના વૃત્તિ, દ્રવ્યાણા ભવતિ યત્ર તત્ ક્ષેત્રમ્ ।

તદ્રવ્યૈઃ સહલોક, -સ્તદ્વિપરીત ક્ષાલોકારયમ્ ” ॥ ઇતિ ।

તથા-લોકાલોક=લોકશ્ચ અલોકશ્ચ-લોકાલોક તત્ સૂચ્યતે । તથા-જીવાઃ=ચેતનાલ
 ક્ષણાઃ સૂચ્યન્તે, અજીવાઃ=જીવવિપરીતસ્વરૂપાઃ ધર્માધર્માકાશપુદ્ગલાસ્તિકાયાદ્વાસમયાઃ

इस तरह जो सूत्ररूप से रचा गया है वह सूत्रकृत अग है और यह
 द्वितीय अग है । इसी विषय को जानने के लिये यह प्रश्न उपस्थित
 हुआ है । उत्तररूपमें अब सूत्रकार कहते हैं-‘सूयगडेण०’ इत्यादि ।

सूत्रकृताद्ग में पश्चास्तिकायात्मक इस लोक की प्ररूपणा की गयी है ।
 ‘लोकयते इति लोक.’ इस न्युत्पत्ति के अनुसार जो केवलज्ञानरूपी
 आलोकप्रकाश से देखा जावे वह लोक है । यह पाँच अस्तिकायों से युक्त है ।
 इस प्रकार के लोक की प्ररूपणा हुई है । लोक से भिन्न अलोक है, इस
 अलोकाकाश की भी वहाँ प्ररूपणा हुई है । लोकाकाश और अलोकाकाश
 का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है-‘जितने क्षेत्र में धर्मादिक द्रव्यों का
 अस्तित्व पाया जाता है उतना क्षेत्र लोकाकाश, एव जहाँ केवल आकाश
 ही आकाश है वह अलोकाकाश है ।’ इसी तरह इसमें जीव, अजीव
 और जीवाजीव वर्णित हुए हैं । चेतना जिसका एक मात्र लक्षण है वह

આ પ્રકારે જે સૂત્રરૂપે રચાયુ છે તે સૂત્રકૃત અગ છે, અને તે બીજી
 અગ છે એજ વિષયને બહુવાને માટે આ પ્રશ્ન ઉદ્ભવ્યો છે ઉત્તરરૂપે હવે
 સૂત્રકાર કહે છે-“સૂયગડે ણ૦” ઇત્યાદિ

સૂત્રકૃતાગમા પશ્ચાસ્તિકાયરૂપ આ લોકની પ્રરૂપણા કરી છે, ‘લોકયતે ઇતિ
 લોક’ આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર, જે કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોકપ્રકાશથી બેવાય તે લોક
 છે એ પાંચ અસ્તિકાયેથી યુક્ત છે આ પ્રકારના લોકના પ્રરૂપણા આ સૂત્રમા
 કરાઈ છે લોકથી જુદો અલોક છે આ અલોકાકાશની પણ ત્યા પ્રરૂપણા થઈ છે
 લોકાકાશ, અને અલોકાકાશનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે બતાવ્યું છે જેટલા ક્ષેત્રમા
 ધર્માદિક દ્રવ્યોનું અસ્તિત્વ હોય છે એટલું ક્ષેત્ર લોકાકાશ તેમજ ન્યા કેવળ
 આકાશ જ આકાશ છે, તે અલોકાકાશ છે એજ રીતે એમા જીવ અજીવ અને
 જીવાજીવનું વર્ણન થયું છે ચેતના જેનું એકમાત્ર લક્ષણ છે તે-જીવ છે

प्रथमः, तृतीये चत्वारः, चतुर्थे द्वौ, पञ्चमे द्वौ, अवशिष्टेषु एकादशस्वयनेषु प्रत्ये-
कत्र एकैक उद्देशनकालः इति एकादश उद्देशनकालाः, तथा-द्वितीय श्रुतस्कन्धस्य सप्त-
स्वयनेषु प्रत्येकत्र एकैक उद्देशनकाल, इति सप्तोद्देशनकालाः, एव सर्व सकलनया त्रय-
स्त्रिंशद्दुद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंशत्समुद्देशनकालाः, तथा-पट्त्रिंशत्पदसहस्राणि ३६०००
पदाग्रेण=पदपरिमाणेन प्रज्ञप्तानि । 'प्रज्ञप्तानि' इत्यस्य लिङ्गचन विपरिणामेन सर्व-
शान्वयः कार्यः । तथा-अत्र-सख्यायानि अक्षराणि, अनन्तागमाः, अनन्ताः पर्यायाः,
परीताः=असख्यातास्त्रसाः, अनन्ता स्थावराः सन्ति । उपरि निर्दिष्टाः सर्वे जिन
प्रज्ञप्ता भावाः सन्ति । कीदृशा एते ? इत्याह-'सासया' शाश्वताः, क्रताः, निवद्धाः
पुनः निकाचिताः । त एते भावा अत्र-आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते,

अध्ययनमें तीन, तीसरे अध्ययनमें चार, चौथे अध्ययन में दो, पांचवे
अध्ययनमें दो, इस तरह पाच अध्ययनोंमें पन्द्रह उद्देशनकाल हुए ।
तथा अवशिष्ट ग्यारह अध्ययनोंमें प्रत्येक मे एक उद्देशनकाल होने से
ग्यारह उद्देशन काल हुए, इस प्रकार प्रथम श्रुतस्कन्धके ये छाईस उद्देश-
नकाल हुए । द्वितीय श्रुतस्कन्धके जो सात अध्ययन हैं उनमें प्रत्येक में
एक-एक उद्देशनकाल होनेसे सात उद्देशनकाल हुए, इस प्रकार दोनों
श्रुतस्कन्धों के उद्देशनकाल तेतीस ३३ हो जाते हैं । इसी प्रकार समुद्दे-
शनकाल भी तेतीस है । और छत्तीस हजार पद हैं । सख्यात अक्षर है,
अनतगमे है, अनतपर्याये है, परीता-असख्याते त्रस है, अनत स्थावर
है । ये जीव शाश्वत है-द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे, कृत-अशाश्वत
है-पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा से, निवद्ध है-सूत्रमें त्रयित होनेसे, नि-
काचित है-निर्युक्ति हेतु उदाहरण आदिके द्वारा ये अच्छी तरहसे

यनमा त्रय, त्रीन अध्ययनमा चार, चोथा अध्ययनमा दो, पाचमा अध्ययनमा
दो, आ रीते पाच अध्ययनोमा पहर उद्देशनकाण तथा तथा षाडीना अणी
चारमाना प्रयेकमा ओक ओठ उद्देशनकाण होवाथी, तेमना आगीचार उद्देशनकाण
थया, आ रीते प्रथमश्रुत स्कन्धना कुल छवीश उद्देशनकाण तथा द्वितीयश्रुत
स्कन्धना ने सात अध्ययन छे ते प्रत्येकमा ओक ओक उद्देशनकाण होवाथी तेना
सात उद्देशनकाण थया आ रीते गन्ने श्रुत स्कन्धना भणीने कुल तेत्रीस (३३)
उद्देशनकाण थया छे अने प्रभाषे समुद्देशनकाण पषु तेत्रीस छे, अने छत्रीस
हजार पद छे सख्यात अक्षर छे, अनत गम छे, अनत पर्याये छे, अम
ख्यात त्रस छे अनत स्थावर छे अने एव शाश्वत छे, द्रव्यार्थिकनयनी अपेक्ष ओ
निवद्ध छे-सूत्रमा त्रयित होवाथी, निकाचित छे-निर्युक्ति हेतु उदाहरण
आदि द्वारा सारी रीते प्रतिष्ठित होवाथी अने एवादि पदार्थ ने ३५ तीर्थ-

જૈનસિદ્ધાન્તઃ સ્થાપ્યતે । તથા-ગુરુતે ચલુ પરીતાઃ=મગ્યાતાઃ વાચનાઃ, સહ્યે
યાનિ અનુયોગદ્વારાણિ, સગ્યેયાઃ વેષ્ટકાઃ, સગ્યેયાઃ શ્લોકાઃ, સગ્યેયાઃ નિર્યુ
ક્તયઃ, (સગ્યેયાઃ સંગ્રહણ્યઃ), સગ્યેયા પ્રતિપત્તયઃ । પતાનિ પદાનિ ઐવ આ
ચારાઙ્ગ નિરૂપણાવસરે વ્યાગ્યાતાનિ । 'સે ણ' તત્ત્વલુ અદ્વાર્થતયા=અક્ષરસ્વરૂપ
વસ્તુતયા દ્વિતીયમદ્ગમસ્તિ, તત્ર ઠૌ શ્રુતસ્કન્ધૌ, ત્રયોવિંશતિરયયનાનિ, પ્રથમ
શ્રુતસ્કન્ધે પોડપાખ્યનનાનિ, દ્વિતીયે સપ્તાધ્યયનાનિ, ઇતિ સર્વસમલનયા ત્રયોવિંશતિ
સ્ખ્યનનાનિ, ત્રયસ્ત્રિશદુદ્દેશનકાલાઃ ।

તદુક્તમ્—

“ ચડ-તિય ચરો દો દો, ઇકારસ ચેવ હ્વંતિ ઇક્સરા ।
સત્તેવ મહજ્જયણા, ઇગસરા ત્રીયમુય સ્વધે ” ॥ ૧ ॥

છાયા—ચત્વારસ્ત્રયચત્વારો દ્વૌ દ્વૌ ઇકાદશ ચૈવ ભવન્તિ ઇક્સરકાઃ ।

સપ્તૈવ મહાધ્યયનાનિ ઇક્સરાણિ દ્વિતીય શ્રુતસ્કન્ધે ॥ ઇતિ ।

અય મારઃ—પ્રથમ શ્રુતસ્કન્ધસ્ય પ્રથમેઽયયને ચત્વાર ઉદ્દેશનકાલાઃ દ્વિતીયે

તથા-इस सूत्रकृताग सूत्रके सूत्र और अर्थ यह हैं । तथा इस द्वितीय
अगमें सख्याती वाचनाए हैं, सख्याते अनुयोग द्वार है, सख्याती प्रति-
पत्तिया है, सख्याते वेष्टक हैं, सख्याते श्लोक है, तथा सख्याती निर्यु
क्तिया है । वाचना आदि शब्दों का अर्थ आचारागसूत्र के ४५ पैतालिस
सूत्र मे व्याख्यानमें लिखा जा चुका है । अगार्थपने से यह दूसरा अग है ।
इसमे दो श्रुतस्कन्ध हैं । ते ईस अध्ययन हैं-प्रथम श्रुतस्कधमे सोलह तथा
द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे सात । तेतीस उद्देशनकाल हैं, वे इस तरह से हैं—

“ चउतिय चउरो दो दो, एक्कारस चैव हुंति एक्कसरा ।

सत्तेव महज्जयणा, एगसरा वीय सुयस्वधे ” ॥ १ ॥ इति ।

प्रथमश्रुतस्कध के पहिले अध्ययनमें चार उद्देशनकाल है, द्वितीय

આ સૂત્રકૃતાગ સૂત્રના સૂત્ર અને અર્થ છે તથા આ દ્વિતીય અગમાં
સખ્યાત વાચનાઓ છે, સખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સખ્યાત પ્રતિપત્તિઓ છે,
સખ્યાત વેષ્ટક છે, સખ્યાત શ્લોક છે, તથા સખ્યાત નિર્યુક્તિઓ છે વાચના
આદિ શબ્દોનો અર્થ આચારાગના ૪૫ પિસ્તાલીસ સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં લખાઈ
ગયો છે, અગાર્થપણાથી આ બીજી અગ છે તેમાં બે શ્રુતસ્કધ છે તેવીસ
અધ્યયન છે-પ્રથમ શ્રુતસ્કધમાં સોળ તથા દ્વિતીય શ્રુતસ્કધમાં સાત તેનીસ
ઉદ્દેશકાળ છે તે આ પ્રમાણે છે-

“ ચડતિય ચરો દો દો, ઇકારસ ચેવ હુ તિ ઇક્સરા ।

સત્તેવ મહજ્જયણા, ઇગસરા ત્રીયમુયસ્વધે ” ॥ ૧ ॥

પ્રથમ શ્રુત સકધના પહેલા અધ્યયનમાં ચાર ઉદ્દેશનકાળ છે, બીજા અધ્ય

मूलम्—से किं त् ठाणे ? ठाणे णं जीवा ठाविज्जति, अजीवा
 ठाविज्जति, जीवाजीवा ठाविज्जति, ससमए ठाविज्जइ, परसमए
 ठाविज्जइ, ससमयपरसमए ठाविज्जइ, लोए ठाविज्जइ, अलोए
 ठाविज्जइ, लोयालोए ठाविज्जइ । ठाणेणं टका, कूडा, सेला,
 सिहरिणो, पम्भारा, कुण्डाईं, गुहाओ, आगरा, दहा, नईओ
 आघविज्जति । ठाणे णं एगाइयाए एगुत्तरियाए बुड्ढीए दस-
 द्वाणगविवडिइयाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ । ठाणे णं
 परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, सखेज्जा
 सिलोगा, सखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ
 संखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से ण अंगट्टयाए तईए अंगे, एगे
 सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एगवीसं उद्देसणकाला, एगवीसं
 समुद्देसणकाला वावत्तरिपयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा,
 अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा,
 सासयकड णिवद्ध णिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति,
 परूविज्जति, दसिज्जति निदसिज्जति, उवदसिज्जति । से एवं
 आया एवं णाया, एवं विण्णाया । एव चरण करण परूवणा
 आघविज्जइ ६ । से त् ठाणे ॥ सू० ४७ ॥

छाया—अथ किं तत् स्थानम् ? स्थाने खलु जीवाः स्थाप्यन्ते, अजीवाः
 स्थाप्यन्ते, जीवाजीवाः स्थाप्यन्ते, स्वसमयः स्थाप्यते, परसमयः स्थाप्यते, स्व-
 समय परसमय स्थाप्यते, लोकाः स्थाप्यते, अलोकः स्थाप्यते, लोकालोक स्थाप्यते ।
 स्थाने खलु टङ्का कूटाः शैलाः शिखरिणः प्राग्भाराः कुण्डानि गुहाः आकराः
 हृदाः नद्यः आख्यायन्ते । स्थाने खलु एकादिक्रिया एकोत्तरिक्रिया वृद्धया दशस्था-

નિદર્શ્યન્તે, ઉપદર્શ્યન્તે । 'સે' સઃ=ય એતદ્ગમધીતે સ જનઃ એવામાત્મા-અત્રોક્ત ગુણ વિશિષ્ટઃ સન્ આત્મસ્વરૂપો ભવતિ । એવ જ્ઞાતા ભવતિ, એવ વિજ્ઞાતા ભવતિ । અનેન પ્રકારેણાઽન્ન સૂત્રકૃતાન્ને ચરણકરણ પ્રરૂપણા આગ્યાયતે, પ્રજ્ઞાપ્યતે, પ્રરૂપ્યતે, દર્શ્યતે, નિદર્શ્યતે, ઉપદર્શ્યતે । અત્રાઽવ્યાર્યાતપદાનાં વ્યાર્યા આચારાન્ન નિરૂપણાવસરે ગતા । આચાર્યઃ સૂત્રકૃતસ્વરૂપમૃત્તવા શિષ્યમાદ—'સે સ ઘ્યગદે'—તદેતત્ સૂત્રકૃતમ્=સૂત્રકૃતસ્વરૂપમેવ ત્રિજ્ઞેયમિતિ ॥ સૂં ૪૬ ॥

પ્રતિષ્ઠિત હોનેસે । જે જીવાદિક પદાર્થ જિસ રૂપસે તીર્થઙ્કર પ્રભુને પ્રતિ-પાદિત કિયે હેં ઉસી રૂપસે યહાં સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રમેં પ્રતિપાદિત કિયે ગયે હેં, પ્રજ્ઞાપિત કિયે ગયે હેં, પ્રરૂપિત કિયે ગયે હેં, દિશ્વલાયે ગયે હે, નિદર્શિત કિયે ગયે હે, ઉપદર્શિત કિયે ગયે હે । જો પ્રાણી હસ ઢિતીય અંગકા અધ્યયન કરતા હે વહ પૂર્વોક્ત ગુણ વિશિષ્ટ હો કર આત્મસ્વરૂપ બન જાતા હે, જાતા હો જાતા હે તથા વિજ્ઞાતા હો જાતા હે । હસ પ્રકાર સે હસ સૂત્રકૃતાગમેં ચરણ ઓર કરણકી પ્રરૂપણા કી ગઈ હે, પ્રજ્ઞાપિત કી ગઈ હે, પ્રરૂપિત કી ગઈ હે, દિશ્વલાઈ ગઈ હે, નિદર્શિત કી ગઈ હે તથા ઉપદર્શિત કી ગઈ હે । યહાં જિનપદોં કી વ્યાખ્યા નહીં કી ગઈ હે ઉન પદોં કી વ્યાખ્યા આચારાંગસૂત્રકે નિરૂપણમેં કી ગઈ હે અતઃ વહાંસે જાન લેની ચાહિયે । શ્રીસુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીસે કહતે હે—હે આયુષ્મન્ ! હસ પ્રકારસે યહ સૂત્રકૃતાંગકા સ્વરૂપ હે ॥ સૂં ૪૬ ॥

કર પ્રભુએ પ્રતિપાદિત કર્યા છે, એજ રૂપે અહીં સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રમા પ્રતિપાદિત કરેલ છે, પ્રજ્ઞાપિત કરેલ છે, પ્રરૂપિત કરેલ છે, બતાવવામા આવેલ છે, નિદર્શિત કરેલ છે, ઉપદર્શિત કરાયેલ છે જે પ્રાણી આ દ્વિતીય અંગતુ અધ્યયન કરે છે તે પૂર્વોક્ત ગુણયુક્ત થઈને આત્મસ્વરૂપ બની જાય છે, જ્ઞાતા થઈ જાય છે અને વિજ્ઞાતા થઈ જાય છે આ રીતે આ સૂત્રકૃતાંગમા ચરણ અને કરણની પ્રરૂપણા કરવામા આવી છે, પ્રજ્ઞાપિત કરાઈ છે, પ્રરૂપિત કરાઈ છે, દર્શાવવામા આવી છે, નિદર્શિત થઈ છે તથા ઉપદર્શિત કરવામા આવી છે અહીં જે સૂત્રોની વ્યાખ્યા આપી નથી તે પદોની વ્યાખ્યા આચારાંગ સૂત્રમા નિરૂપણમા આપવામા આવી છે તેથી ત્યાથી જાણી લેવી શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—“હે આયુષ્મન્ ! આ પ્રકારતુ આ સૂત્રકૃતાંગતુ સ્વરૂપ છે” ॥ સૂ. ૪૬ ॥

जीवा जीवा स्थाप्यन्ते । स्वसमयः स्थाप्यते=परमत निराकरणपूर्वक स्वसिद्धान्त-
स्थापनाक्रियते, परसमयः स्थाप्यते, स्वसमय परसमय स्थाप्यते । तथा-लोकः स्था-
प्यते, अलोकः स्थाप्यते, लोकालोक स्थाप्यते । पुनश्च-स्थाने=स्थानाङ्के खलु टङ्काः=
पर्वतविच्छिन्नतटाः, कूटाः=शिखराणि, शैलाः=हिमवदादिपर्वताः, शिखरिणः=शिख-
रयुक्ताः पर्वताः, प्राग्भाराः=इषदरन्ताः कूटाः, अथवा-पर्वतोपरि भागे त्रिनिर्गता
हस्तिकुम्भाकृतिका पर्वतविभागाः, अथवा प्राग्भाराः=सिद्धशिला, कुण्डानि=गङ्गाप्रपात-
कुण्डप्रभृतीनि, गुहाः कन्दरा, आरुराः=लोहादिधातत्पत्तिस्थानानि, ऋदाः=जला-
शयाः, नद्यः=गङ्गाधानद्यश्च आख्यायन्ते । तथा-स्थाने=स्थानाङ्के खलु एकादिकया-

अग स्थानाग के द्वारा जीव की स्थापना की गई है । अजीव की स्थापना
की गई है तथा जीव अजीव की स्थापना की गई है । इसी तरह परमत
निराकरणपूर्वक स्वमत की स्थापना की गई है, परमत की स्थापना की
गई है एव परमत और स्वमत इन दोनों की स्थापना की गई है । तथा
लोक की स्थापना की गई है, अलोक की स्थापना की गई है, और लोक
एव अलोक की स्थापना की गई है ।

इसी तरह इस सूत्रमें टङ्का-अर्थात् पर्वत के विच्छिन्न तटका
कूटका अर्थात् शिखर का, शैलों का हिमवान्, महाहिमवान्, निपथ,
नील, रूमी और शिखरी इन उह पर्वतों का, शिखरियों का-शिखरयुक्त
पर्वतो का, प्राग्भार का-कुठ र कुके हुए शिखरो का, अथवा पर्वत के
ऊपरी भागमें निकले हुए हाथी के मस्तकों के आकार सदृश पर्वत
विभागों का, कुण्डों का-गङ्गा प्रपात आदि कुण्डों का, गुहाओं का, लोह

स्थापना करवाया आवी छे, अलुवनी स्थापना कराय छे तथा एव अने
अलुवनी स्थापना करेय छे आ रीते परमतना निराकरण पूर्वक स्वमतनी
स्थापना करेय छे, परमतनी स्थापना करेय छे, स्वमत अने परमतनी स्थापना
करेय छे तथा लोडनी स्थापना करेय छे, अने अलोडनी स्थापना करेय छे लोड
अने अलोडनी स्थापना करेय छे

अत्र रीते आ सूत्रमा टङ्क-पर्वतना विच्छिन्नतटनु, कूटनु-शिखरनु,
शैलानु-हिमवान्, महाहिमवान्, निपथ, नील, रुकमी अने शिखरी आ छ
पर्वतानु, शिखरियानु-शिखरयुक्त पर्वतानु, प्राग्भारनु-अथाक अथाक कुकेला शिख-
रानु अथवा-पर्वतना ऊपरी भागमा निडयेला हाथीना मस्तक जेवा पर्वत
विलागेनु, कुठानु-गङ्गाप्रपात आदि कुठानु, युक्ताः, लोड आदि धानुअना

નરુચિવદ્ધિતાના ભાવાના પ્રરૂપણા આર્યાયતે । સ્થાને સ્વલુ પરીતા વાચના, સરુચેયાનિ અનુયોગદ્વારાણિ, સરુચેયા વેષ્ટકાઃ સરુચેયાઃ સ્લોકાઃ, સરુચેયાઃ નિર્યુક્તયઃ, સરુચેયાઃ સમ્રહણ્યઃ, સરુચેયાઃ પ્રતિપત્તયઃ । તત્ સ્વલુ અઙ્ગાર્થતયા તૃતી યમઙ્ગમ્, એકઃ શ્રુતસ્કન્ધઃ દશ અયયનાનિ, એકવિંશતિરુદ્દેશનકાલાઃ, એકવિંશતિઃ સમુદ્દેશન કાલાઃ, દ્વિસપ્તતિઃ પદ સહસ્રાણિ પદાગ્રેણ, સરુચેયાન્યક્ષગણિ, અનન્તા ગમા, અનન્તાઃ પર્યાયાઃ, પરીતાસ્રસાઃ, અનન્તાઃ સ્થાપરાઃ, શાશ્વતકૃત નિવદ્ધ નિકાચિતાઃ જિનપ્રજ્ઞાઃ માયાઃ આર્યાયન્તે, પ્રજ્ઞાપ્યન્તે, પ્રરૂપ્યન્તે, ટર્ક્યન્તે, નિદ ર્ક્યન્તે, ઉપદર્ક્યન્તે । સ એવમાત્મા, એવં જ્ઞાતા, એવ વિજ્ઞાતા, એવ ચરણકરણ પ્રરૂપણા આર્યાયતે ૬ । તત્ એતત્ સ્થાનમ્ ॥ મૂ० ૪૭ ॥

ટીકા—‘સે કિં ત ઠાણે’ ઇત્યાદિ—

અથ કિં તત્સ્થાનમ્ ? = તિષ્ઠન્તિ-વિઘન્તે પ્રતિપાઘતયા જીવાદિપદાર્થાં યસ્મિન્-સ્તત્સ્થાન, તત્કિમ્ ? ડતિ પ્રશ્ન ? ઉત્તરયતિ-સ્થાને=સ્થાનાઙ્ગે સ્વલુ અથવા ‘ઠાણે’ ઇતિ તૃતીયામાશ્રિત્ય સ્થાનેન=સ્થાનાઙ્ગેન જીવાઃ સ્થાપ્યન્તે । અજીવાઃ સ્થાપ્યન્તે,

અવ તીસરે અગ સ્થાનાઙ્ગસૂત્રની પ્રરૂપણા કરતે હૈ—

‘સે કિં ત ઠાણે ?’ ઇત્યાદિ—

શિષ્ય પૂછતા હૈ—હૈ ભદન્ત ! સ્થાન નામ કા જો તીસરા અગ હૈ ઉસકા કયા ભાવ હૈ ?

ઉત્તર—જિસમેં જીવાદિક પદાર્થોં કે સ્વરૂપ કા કથન કિયા ગયા હૈ વહ સ્થાન હૈ, ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર ઇસ તૃતીય અગ સ્થાનાગમેં પ્રતિપાઘ હોને કી વજહ સે જીવ આદિ પદાર્થોં કે સ્વરૂપ કી વ્યવસ્થા કહી ગઈ હૈ । ઇસી વિષય કો સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરને કે લિયે કહતે હૈ—ઇસ તૃતીય અગ સ્થાનાગમે જીવ કી સ્થપના કી ગઈ હૈ, અથવા ઇસ તૃતીય

હુવે ત્રીજા અગ સ્થાનાગ સૂત્રની પ્રરૂપણા કરે છે “સે કિં ત ઠાણે ?” ઇત્યાદિ શિષ્ય પૂછે છે—હૈ ભદન્ત ! સ્થાન નામનુ જે ત્રીજુ અગ છે તેનુ શુ તાત્પર્ય છે ?

ઉત્તર—જેમા જીવાદિક પદાર્થોના સ્વરૂપનુ કથન કરવામા આવ્યુ છે તે “સ્થાન” છે, આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે આ ત્રીજુ અગ સ્થાનાગમા પ્રતિપાઘ હોવાને કારણે જીવ આદિ પદાર્થોને સ્વરૂપની વ્યવસ્થા કહેવાના આવી છે આજ વિષયને સ્પષ્ટ કરવાને માટે સૂત્રકાર કહે છે—આ ત્રીજા અગ-સ્થાનાગમા જીવની સ્થાપના કરવામા આવી છે, અથવા આ ત્રીજા અગ-સ્થાનાગ દ્વારા જીવની

सहस्राणि ७२००० पदानि, सख्येयान्यक्षराणि, अनन्तागमाः, अनन्ताःपर्यायाः, परीताः=एकत आरभ्य असख्यातास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः सन्ति । उपरि निर्दिष्टा एते शाश्वतकृतनिवद्धनिकाचिताः जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते, निदर्शयन्ते, उपदर्शयन्ते । 'से' सः=एतद्ग्राध्ययन शीलोजनः, एवमात्मा=अत्रोक्तगुणविशिष्ट सन् आत्म स्वरूपो भवति । एव ज्ञाता भवति, एव विज्ञाता भवति, एवम्=अनेन प्रकारेणाऽत्र स्थानाङ्गेचरणकरण प्ररूपणा आख्यायते ६ । 'आरयायते' इत्यारभ्य 'उपदर्शयते' इत्यन्त पदपट्टकमाचाराङ्गप्रकरण-वदत्रापि विज्ञेयम् । अक्षरगमादीनामर्थोऽत्रैव पञ्चचत्वारिंशत्तमसूत्रे व्याख्यातो विज्ञेयः ॥सू०४७॥

मूलम्—से कि त समवाए णं जीवा समासिज्जति, अजीवा समासिज्जति, जीवाजीवा समासिज्जंति, ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमयपरसमए समासिज्जइ, लोए समासिज्जइ, अलोए समासिज्जइ, लोयालोए समा सिज्जइ । समवाए ण एगाइयाण एगुत्तरियाण ठाण सय विवड्ढियाण भावाण परूवणा आघविज्जइ, दुवालस विहस्स थ गणिपिडगस्स पल्लवगो समासिज्जइ । समवायस्स णं परित्ता वायणा, सखिज्जा हे । इक्कीस उद्देशन काल इस प्रकार है—दूसरे तीसरे और चौथे स्थानोंमें चार चार तथा पाचवेंमें तीन एव अवशिष्ट न्ह अध्ययनोंमें प्रत्येक में एक एक । इसमें बहत्तर हजार (७२०००) पद हैं । 'सखेज्जा अक्खरा' इत्यादि पदों की व्याख्या यहीं सूत्र ४६ पेंतालीसमें की जा चुकी है—सो उसी के अनुसार जानना चाहिये । यह स्थानांग का कथन हुआ ॥सू०४७॥

એકવીસ ઉદ્દેશનકાળ આ પ્રમાણે છે—પીઠ, ત્રીઠ અને ચોથા સ્થાનોમા ચાર ચાર, તથા પાચમામા ત્રણ અને બાકીના છ અધ્યયનોમા પ્રત્યેકમા એક એક ઉદ્દેશનકાળ છે તેમા બોતેરહજાર (૭૨૦૦૦) પદ છે “ સખેજ્જા અક્કરા ” ઇત્યાદિ પદોની વ્યાખ્યા અહીં પીઠ્ઠાલીસમા (૪૫) સૂત્રમા કરાઈ ગઈ છે તે તે પ્રમાણે સમજી લેવી આ સ્થાનાંગર્થ વર્ણન થયું ॥ સૂ० ૪૭ ॥

एक आदी=प्रारम्भे यस्या सा एकादिका तथा, एकोत्तरिकया=क्रमेणैकैकसंख्यारूपया
 वृद्ध्या दशस्थानकप्रियद्विताना=दशस्थानक पर्यन्त वृद्धिमृपगताना भावाना पदार्थाना
 प्ररूपणा आरयायते=कथ्यते । अय भावः-स्थानाङ्गसूत्रे-एक स्थानकत्वेनारभ्य क्रमे
 णैकैकस्थानवृद्ध्या वृद्धिमृपगतानां दशस्थानक पर्यन्ताना भावाना प्ररूपणा क्रियते
 -इति । तथा-स्थाने=स्थानाङ्गे खलु परोताः=संख्याता वाचनाः, सरयेयानि अनु
 योगद्वाराणि, सखेयाः वेष्टकाः, सखेयाः श्लोकाः, सखेया निर्धुक्तयः, सरयेयाः
 सग्रहण्यः, सखेयाः प्रतिपत्तयः । तत्तल्ल अङ्गार्थतया=अङ्गापेक्षया तृतीयमङ्गम् । अत्र-
 एकः श्रुतस्कन्ध , दश अध्ययनानि, एकविंशतिरुद्देशनकालाः-द्वितीय तृतीय चतुर्थेषु
 स्थानेषु चत्वारश्चत्वार उद्देशकाः पञ्चमे त्रयः तथा-प्रथम पष्ठ सप्तमाष्टमनवमदशमे
 पु स्थानेषु प्रत्येकत्रैकौद्देशसत्वात् पट् इत्येवमेकविंशति रुद्देशनकालाः, एकविंशतिः
 समुद्देशनकालाः, तथा-पदाग्रेण=पदपरिणामेन द्विसप्तति पदसहस्राणि=द्वि सप्तति-

आदि धातुओं के उत्पत्ति स्थान, आकरो-खानोका ह्रदों का-जलाशयों का,
 और गङ्गा आदि महानदियों का, कथन किया गया है ।

तथा एकविधवक्तव्यता का द्विविधवक्तव्यताका यावत् दशविधवक्त
 व्यता तक का भी यहा कथन किया गया है । तथा जीवादिको की, पुद्ग
 लोंकी एव धर्मास्तिकाय आदिकों की यहा प्ररूपणा की गई है । इस स्था
 नागसूत्र की सख्याती वाचनाएँ हैं, सख्याते अनुयोग द्वार हैं, सख्याते
 वेष्टक है सख्याते श्लोक है सख्याती नियुक्तिया है प्रतिपत्तिया हैं,
 तथा सख्याती सग्रहणि गाथाण हैं । यह स्थानांगसूत्र अगों की
 अपेक्षा तीसरा अग है । इस तीसरे अगमें एक श्रुतस्कन्ध है । दश
 अध्ययनस्थान है । इस्कीस उद्देशनकाल तथा इक्कीस ही समुद्देशनकाल

ઉત્પત્તિ સ્થાન આકરો (ખાણ)નુ હુદોનુ-જલાશયોનુ અને ગંગા આદિ
 મહાનદિયોનુ કથન કરવામા આવ્યુ છે

તથા એકવિધ વક્તવ્યતાનુ, દ્વિવિધ વક્તવ્યતાનુ તે પ્રમાણે દશ-
 વિધવક્તવ્યતા સુધીનુ પણ તેમા વર્ણન કર્યુ છે તથા જીવાદિકોની,
 પુદ્ગલોની, અને ધર્માસ્તિકાય આદિકોની તેમા પ્રરૂપણા કરવામા આવી
 છે આ સ્થાનાંગસૂત્રની સખ્યાત વાચનાઓ છે, સખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે,
 સખ્યાત વેષ્ટક છે, સખ્યાત શ્લોક છે, સખ્યાત નિર્ધુક્તિઓ છે, સખ્યાત
 પ્રતિપત્તિઓ છે, તથા સખ્યાત સગ્રહણિ ગાથાઓ છે અગોની અપેક્ષાઓ
 આ સ્થાનાંગસૂત્ર ત્રીજુ અગ છે આ ત્રીજા અગમા એક શ્રુતસ્કન્ધ છે દસ
 અધ્યયનસ્થાન છે એકવીસ ઉદ્દેશનકાળ અને એકવીસ જ સમુદ્દેશનકાળ છે

टीका—‘से किं त०’ इत्यादि ।

अथ कोऽसौ समवायः ? समवायनम्—जीवाजीवादिभावानाम् एकादिविभागेन समावेशन-समवायः, यद्वा—समयन्ति=समवतरन्ति-संमिलन्ति नानाविधा आत्मादयो भावा अभिवेयतया यस्मिन्नसौ समवायः, तत्कारणमागमोऽपि कारणे कार्योपचारात् समवाय उच्यते, स कः ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—समवाये=समवायाङ्गसूत्रे खलु जीवाः समाश्रीयन्ते=यथाऽप्रस्थितरूपेण निरूप्यन्ते, अजीवाः समाश्रीयन्ते, जीवाजीवाः समाश्रीयन्ते, स्वसमयः समाश्रीयते, परसमयः समाश्रीयते, स्वसमयपरसमय समाश्रीयते, लोकः समाश्रीयते, अलोकः समाश्रीयते, लोकालोक समाश्रीयते । तथा—समागमे खलु एकादिकानाम्—

अब चौथे अग समवायाग सूत्रकी प्ररूपणा करते हैं—

‘से किं त समवाए ?’ इत्यादि ।

शिष्य पृच्छता है—हे भदन्त ! समवाय का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जीव अजीव आदि पदार्थों का एक आदि विभागरूप से जहा समावेश किया गया है, अथवा प्रतिपाद्य रूप से जहां नानाविध आत्मा आदि पदार्थों का वर्णन हुआ है वह समवाय है । इस व्युत्पत्ति के अनुसार समवाय नाम के इस चतुर्थ अगमे जीव का समावेश किया गया है, अजीव का समावेश किया गया है, अर्थात् यह समझाया गया है कि जीव क्या है ? तथा अजीव क्या है ? । इस तरह इम चतुर्थ अगमें जीव और अजीव इन दोनों का भी प्रतिपाद्यरूप से समावेश किया गया है । स्वसमय, परसमय, एव स्वसमय-परसमय, लोक, अलोक, तथा लोकालोक, इन सब का भी यहां पर प्रतिपाद्य के रूपमें समावेश हुआ

हुवे योथा अग समवायाग सूत्रनी प्ररूपणा करे छे

“से किं त समवाए ?” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त समवायनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—एव अएव आदि पदार्थोना अक आदि विभागरूपे नना समावेश करायो छे अथवा प्रतिपाद्यरूपे नया विविध आत्मा आदि पदार्थोनु वर्णन थयु छे ते “समवाय” छे आ व्युत्पत्ति प्रभावे समवाय नामना आ योथा अगमा एवना समावेश करायो छे, अएवना समावेश करायो छे अटवे के अे समनव्यु छे के एव शु छे ? तथा अएव शु छे ? आ सीते आ योथा अगमा एव अने अएव अे अनेना पण प्रतिपाद्यरूपे समावेश करवाभा आये छे स्वसमय, परसमय, अने स्वपरसमय, लोक, अलोक तथा लोकालोक, अे अधानो पण तेमा प्रतिपाद्यरूपे समावेश

अणुओगदारा, सखिज्जा वेढा, सखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ
 निज्जुत्तीओ, सखिज्जाओ सगहणाओ, सखिज्जाओ पडिवत्तीओ।
 से ण अगट्टयाए चउत्थे अगे, एगे सुयस्संघे, एगे अज्झयणे,
 एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले, एगे चोयाले सयसहस्से-
 पयग्गेण, सखेज्जा अक्खरा, अणता गमा, अणंता पज्जवा,
 परिता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिवद्धनिकाइयाजिणप
 ण्णत्ता भावा आघविज्जति, पण्णविज्जति, परूविज्जति,
 दसिज्जति, निदसिज्जति उवदसिज्जति । से एव आया, एव
 नाया, एव विण्णयाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ ।
 से त्त समवाए सू० ४८ ॥

छाया—अथ कोऽसौ समवायः ? समवाये खलु जीवाः समाश्रीयन्ते, अजीवाः
 समाश्रीयन्ते, जीवाजीवाः समाश्रीयन्ते । स्वसमयः समाश्रीयते, परसमयः समा
 श्रीयते, स्वसमयपरसमय समाश्रीयते, लोकः समाश्रीयते, अलोकः समाश्रीयते,
 लोकालोक समाश्रीयते । समवाये खलु एकादिकानाम् एकोत्तरिकानाम् स्थान-
 शतविर्द्धिताना भावाना प्ररूपणा आख्यायते, द्वादशविधस्य च गणिपिटकस्य
 पर्यवाग्रः समाश्रीयते । समवायस्य खलु परीता वाचनाः, सख्येयानि अनुयोगद्वा
 राणि, सख्येया वेष्टकाः, सख्येयाः श्लोकाः, सख्येया निर्युक्तयः, सख्येयाः
 सग्रहण्यः, सख्येयाः प्रतिपत्तयः स खलु अद्धार्यतया चतुर्थम् अङ्गम्, एकः श्रुत
 स्कन्धः, एकम् अययनम्, एक उेशनकाल, एकः समुद्देशनकालः, एक चतुश्चत्वा
 रिंशदधिक शतसहस्र पदाग्रेण, सख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः,
 परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिवद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा
 आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते । स एवमात्मा,
 एवज्ञाता एवं विज्ञाता, एव चरणकरणप्ररूपणाआख्यायते ६ । स एष समवाय
 ॥ सू० ४८ ॥

प्यते । समवायस्य खलु परीता वाचनाः, 'परीता वाचनाः' इत्यारभ्य 'सख्येयाः प्रतिपत्तयः' इत्यन्त पूर्ववद् व्याख्येयम् । तथा स समवायः खलु अज्ञार्थतया चतुर्थम् अङ्गम् । तथा-अत्र एकः श्रुतस्कन्धः, एकम् अध्ययनम्, एक उद्देशनकालः, एकः समुद्देशनकालः । तथा-एक चतुश्चत्वारिंश शतसहस्रम्=चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राधिकम् एक लक्ष पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेनात्र सूत्रे विज्ञेयानि । तथा-अत्र सरयेयानि अक्षराणि सन्ति । 'सरयेयानि अक्षराणि' इत्यारभ्य 'एव चरणकरण-प्ररूपणा आख्यायते' इत्यन्त सर्वं पूर्ववद् व्याख्येयम् । प्रकृतमुपसंहरन्नाह-'से च समवाय' स एव समवाय इति ॥ सू० ४८ ॥

मानकर किया है । परन्तु जब इसकी छाया "पल्लवाग्र" होगी तब वहा अर्थ होगा अवयवों का परिमाण ।

इस समवायाग सूत्र की सख्याती वाचनाएँ हैं । यावत् शब्द से सख्यात अनुयोगद्वार हैं सख्यात वेष्टक है, सख्यात श्लोक हैं, सरयात निर्युक्तिया हैं, सरयात प्रतिपत्तियां हैं, इन वाक्यों का यहा ग्रहण हुआ है । इन सब का अर्थ पहले आचाराग के वर्णनमें सूत्र ४५ पैतालीसमें हो चुका है । इस तरह यह अगों की अपेक्षा चतुर्थ अग है । इसमें एक अध्ययन है, एक श्रुतस्कन्ध है, एक उद्देशनकाल है, और एक ही समुद्देशनकाल है । इसमें पदों की सख्या एक लाख चवालीस ४४ हजार है । हममें सख्यात अक्षर हैं । तथा अनन्त गम हैं, अनन्त पर्यायें हैं, असख्यात त्रस हैं, अनन्त स्यावर हैं । ये सब द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से शाश्वत है, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से कृत-अशाश्वत है, सूत्र में

नी छाया-"पर्ववाग्र" भानीने कथीं उ पञ्च जे तेनी छाया "पल्लवाग्र" थाय तो त्या अवयवोतु परिभाषु जेवो अर्थ थरो "

आ समवायाग सूत्रनी सख्यात वाचनाओ छे, यावत् शब्दथी सख्यात अनुयोगद्वार छे सख्यात वेष्टक छे, सख्यात श्लोक छे, सख्यात निर्युक्तियो छे, सख्यात प्रतिपत्तियो छे, जे वाक्योने अही वापर्या छे ते पधानो अर्थ आगण आचारागना वर्णनमा आपी देवामा आओ छे आ रीते ते अगोनी अपेक्षाओ योथु अग छे तेमा ओक अध्ययन छे, ओक श्रुतस्कन्ध छे, ओक उद्देशनकाल छे, अने ओक जे समुद्देशनकाल छे तेमा पदोनी सख्या ओक लाख च्वालीस हजार (१४४०००) छे तेमा सख्यात अक्षर छे तथा अनन्त गम छे अनन्त पर्यायो छे, असख्यात त्रस छे, अनन्त स्यावर छे ओ अधा द्रव्यार्थिक नयनी अपेक्षाओ शाश्वत छे, पर्यायार्थिक नयनी अपेक्षाओ

एक आदिर्येषां तेषाम्, तथा-एकोत्तरिकाणाम्=क्रमेणैकैव संख्यावृद्धया वृद्धिमुपगतानाम्, क्रियत्पर्यन्त वृद्धिमुपगतानाम्? इत्याह—स्थानशतवर्द्धितानाम्=स्थानत्रयवृद्धया वृद्धिमुपगतानां भाषानां=पदार्थानाम् प्रमपणा आख्यायते=क्रियते, उपलक्षणादनेकोत्तरिका वृद्धिरपि त्रिणेया । तत्र शतपर्यन्तमेकोत्तरिका वृद्धिस्तत ऊर्ध्वमनेकोत्तरिका वृद्धिः । तथा-द्वादशविधस्य=द्वादशमकारस्य गणिपिटकस्य पर्यवापः=पर्यायपरिमाणम्-अभिधेयादितद्वर्मसंख्यानम्, 'पल्लवापः' इतिच्छायापक्षे तु पल्लवा इव पल्लवा अवयवास्तेषा परिमाणम् समाश्रीयते=यथाऽत्रस्थितरूपेण निरू-

है। तथा यहा एकादिक-एकार्यं क्रितनेक जीवादिक पदार्थों की तथा गणिपिटकरूप द्वादशाग की एकोत्तरिक वृद्धि द्वारा पर्यायों के परिमाण का निरूपण किया गया है। तात्पर्य कहने का यह है कि यहा एक, दो, तीन, चार आदि से लेकर सौ तक तथा कोटी कोटी तक के किननेक जीवादिक पदार्थों की एक, दो, तीन, चार, पाच आदि पर्यायों का क्रमशः एक एक पर्यायकी वृद्धिपूर्वक, तथा अनेक पर्यायोंकी वृद्धिपूर्वक विचार किया गया है। एक, दो, तीन आदि से लेकर सौ तक तक के पदार्थों की पर्यायों का तो यहा क्रमशः एक २ पर्याय की वृद्धि करते हुए विचार किया गया है। तथा उनमें इससे आगे की पर्यायों का जो विचार किया गया है वह अनेक पर्यायों की वृद्धि करते हुए किया गया है। इसी तरह से गणिपिटक रूप द्वादशाग की पर्यायों के परिमाण के विषयमें भी जानना चाहिये। यह अर्थ "पल्लवगो" की छाया-पर्यवाप

थे। छे तथा अर्द्धी ऐकादिक-ऐकार्थं क डेटलाक एवादिक पदार्थोनी तथा गणिपिटकरूप द्वादशागनी ऐकोत्तरिक तथा अनेकोत्तरिक वृद्धि द्वारा पर्यायोना परिभाषणु निरूपणु करवामा आण्यु छे कडेवानु तात्पर्यं ऐ छे के अर्द्धी ऐक, जे, त्रणु, चार आदिथी भाडीने सो सुधी तथा कोटी कोटी सुधीना डेट लाक एवादिक पदार्थोनी ऐक, जे, त्रणु, चार, पाच अदि पर्यायोना क्रमश ऐक ऐक पर्यायोनी वृद्धिपूर्वक, तथा अनेक पर्यायोनी वृद्धिपूर्वक विचार करवामा आण्यो छे ऐक, जे, त्रणु आदिथी लधने सो अक सुधीना पदार्थोनी पर्यायोना तो अर्द्धी क्रमश ऐक ऐक पर्यायनी वृद्धि करता करता विचार करैल छे तथा तेमनामा तेथी आगणनी पर्यायोना जे विचार कराये छे ते अनेक पर्यायोनी वृद्धि करता करता कराये छे आ प्रकारे गणिपिटकरूप द्वादशागनी पर्यायोना परिभाषणु विषयमा पणु नालुवु जेथं ऐ आ अर्थ "पल्लवगो"

ઝાયા—અથ કા સા વ્યાખ્યા ? વ્યાખ્યાયાં સ્વલુ જીવા વ્યારયાયન્તે, અજીવા વ્યાખ્યાયન્તે, જીવાજીવા વ્યાખ્યાયન્તે, સ્વસમયો વ્યાખ્યાયતે, પરસમયો વ્યાખ્યાયતે, સ્વસમયપરસમય વ્યાખ્યાયતે, લોકો વ્યાખ્યાયતે, અલોકો વ્યાખ્યાયતે, લોકાલોક વ્યાખ્યાયતે । વ્યાખ્યાયાઃ સ્વલુ પરીતા વાચનાઃ, સ્વલ્યેયાનિ અનુયોગદ્વારાણિ, સ્વલ્યેયા વેષ્ટકાઃ, સ્વલ્યેયા શ્લોકાઃ, સ્વલ્યેયાઃ નિર્યુક્તયઃ, સ્વલ્યેયાઃ સગ્રહણ્યઃ, સ્વલ્યેયાઃ પ્રતિપત્તયઃ, સા સ્વલુ અર્ઘ્ય તયા પશ્ચમમઙ્ગમ્, એકઃ શ્રુતસ્કન્ધઃ, એકં સાતિરેકમધ્યયનશત, દશ ઉદ્દેશકસહસ્રાણિ, દશ સમુદ્દેશકસહસ્રાણિ, પટ્ટત્રિંશત્ વ્યાકરણસહસ્રાણિ, દ્વે લક્ષે અષ્ટાશીતિઃ પદસહસ્રાણિ પદાગ્રેણ, સ્વલ્યેયાનિ અક્ષરાણિ, અનન્તા ગમાઃ, અનન્તાઃ પર્યવાઃ, પરીતાસ્રસાઃ, અનન્તાઃ સ્વાવરાઃ, શાશ્વતકૃતનિપદ્ધનિકાચિતાઃ જિનપ્રજ્ઞતા ભાવા આખ્યાયન્તે, પ્રજ્ઞાપ્યન્તે, પ્રસ્પ્યન્તે, દર્શ્યન્તે નિદર્શ્યન્તે, ઉપદર્શ્યન્તે । સ એવમાત્મા, એવ જ્ઞાતા, એવ વિજ્ઞાતા, એવ ચરણકરણપ્રસ્પૃણા આખ્યાયતે । સૈવા વ્યાખ્યા ॥મુ૦૪૯॥

ટીકા—‘ સે કિં તં ૦ ’ ઇત્યાદિ ।

અથ કા સા વ્યાખ્યા ઇતિ પ્રશ્નઃ । ‘ ત્રિયાહે ’ ઇતિ પુલ્લિઙ્ગનિર્દેશઃ પ્રાકૃતત્વાત્ । વ્યાખ્યા=વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞાસિઃ, નામૈકદેશેન નામગ્રહણાત્ । ઉત્તરયતિ—વ્યાખ્યાયા—વ્યાખ્યાયન્તેઽર્થા યસ્યા સા વ્યાખ્યા તસ્યા વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞાપ્ત્યા=ભગવત્ત્યામિતિ યાવત્, સ્વલુ=નિશ્ચયેન જીવા વ્યાખ્યાયન્તે=સવિસ્તાર પ્રતિપાદ્યન્તે । અજીવા વ્યારયાયન્તે । જીવાજીવા વ્યાખ્યાયન્તે । સ્વસમયો વ્યાખ્યાયત । પરસમયો વ્યારયાયતે । સ્વસમયપરસમય વ્યાખ્યાયતે । લોકો વ્યાખ્યાયતે । અલોકો વ્યાખ્યાયતે । લોકાલોક

‘ સે કિં ત વિયાહે ૦ ’ ઇત્યાદિ ।

શિષ્ય પ્રશ્ન—હે ભદ્રન્ત ! વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞાસિ કા કયા સ્વરૂપ હૈ ? ઉત્તર—ઈસ વ્યાખ્યાપ્રજ્ઞાસિ મેં જીવ કા વ્યાખ્યાન કિયા ગયા હૈ, અજીવ કા વ્યાખ્યાન કિયા ગયા હૈ, એવ જીવ ઓર અજીવ, ઇન દોનો કા વ્યાખ્યાન કિયા ગયા હૈ । તથા સ્વસમય, પરસમય ઓર સ્વપરસમય કા, તથા લોક અલોક ઓર લોકાલોક કા ઓ વ્યાખ્યાન કિયા ગયા હૈ ।

“ સે કિં ત ત્રિયાહે ૦ ” ઇત્યાદિ—

શિષ્યનો પ્રશ્ન—હે ભદ્રન્ત ! ‘ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞાસિ ’ નું શું સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—આ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞાસિમા એવનું વ્યાખ્યાન કરાયું છે, અલેવનું વ્યાખ્યાન કરાયું છે અને એવ તથા અલેવ બન્નેનું વ્યાખ્યાન કરાયું છે તથા સ્વસમય, પરસમય અને સ્વપરસમયનું, તથા લોક, અલોક અને લોકાલોકનું પણ વ્યાખ્યાન કરાયું છે

अथ पञ्चमाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं विवाहे ? विवाहे णं जीवा वियाहिज्जति,
अजीवा वियाहिज्जति, जीवाजीवा वियाहिज्जति, ससमए वि
याहिज्जइ, परसमए वियाहिज्जइ, ससमयपरसमए वियाहिज्जइ,
लोए वियाहिज्जइ, अलोए वियाहिज्जइ, लोयालोए वियाहि
ज्जइ । विवाहस्स ण परित्ता वायणा, सखिज्जा अणुओगदारा,
सखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ,
सखिज्जाओ सगहणीओ, सखिज्जाओ पडिवत्तीओ । से णं
अगट्ठयाए पचमे अगे, एगे सुयम्बधे, एगे साइरेगे अज्झयण
सए, दस उद्देसगसहस्साइ दस समुद्देसगसहस्साइ, छत्तीसं
वागरणसहस्साइ, दो लक्खा अट्टासीइ पयसहस्साइं पयग्गेणं,
सखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणता पज्जवा, परित्ता तसा,
अणंता थावरा, सासयकडनिवद्धणिकाइया जिणपण्णत्ता भावा
आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जति दंसिज्जति निदसिज्जति
उवदसिज्जति । से एव आया, एव णाया, एव विण्णयाया ।
एव चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ । से त्त विवाहे ॥ सू० ४९ ॥

ग्रथित होने से निबद्ध है, निर्युक्ति हेतु उदाहरण आदि से प्रतिष्ठित होने से निकाचित है, ये सब यहाँ सामान्यरूप से कहे गये हैं । इन समस्त पदों का अर्थ आचाराग के वर्णन में वर्णित हो चुका है । इस तरह इस सूत्र में चरण करण की प्ररूपणा हुई है । यह समवायाङ्ग का वर्णन हुआ ॥ सू० ४८ ॥

अब पाचवे अग व्याख्याप्रज्ञप्ति का वर्णन किया जाता है—

कृत—अशाश्वत छे, सूत्रभा ग्रथित होवाथी निणद्ध छे, निर्युक्ति हेतु उदाहरण आदिथी प्रतिष्ठित होवाथी निजाचित छे, आ अथा अर्धी सामान्यरूपे कडेवायेल छे अे अथा पढोने अर्थ आचारागना वरुणनमा वरुणित थध गये छे आ रीते आ सूत्रभा अरखुकरणनी प्ररूपणा थध छे आ समवायाग सूत्रनु वरुणन थथु ॥ सू ४८ ॥
हुवे पाचमा अग व्याख्याप्रज्ञप्ति तु वरुणन करवामा आवे छे—

भवति, एव ज्ञाता भवति, एव विज्ञाता भवति । एवम्=उपर्युक्तप्रकारेण चरण-
करणप्ररूपणाऽत्र आख्यायते ६ । 'परीता वाचनाः' इत्यारभ्य 'चरण करणप्ररूपणा
आख्यायते' इत्यन्ताना पदाना व्याख्या आचाराङ्गस्वरूपनिरूपणावसरे कृता, ततो
ऽवसेया । प्रकृतमुपसहरन्नाह—'से च विवाहे' सौपा व्याख्या इति ॥ सू० ४९ ॥

अथ पष्ठाङ्गज्ञाताधर्मकथास्वरूपमाह—

मूलम्—से किं त नायाधम्मकहाओ ? नायाधम्मकहासु णं
नायाणं नगराइ १, उज्जाणाइ २, चेइयाइ ३, वणसडा ४, समो-
सरणाइ ५, रायाणां ६, अम्मापियरो ७, धम्मायरिया ८, धम्म-
कहाओ ९, इहलोइयपरलोइया इह्ढिविसेसा १०, भोगपरिच्चा-
या ११, पव्वज्जाओ १२, परिआया १३, सुयपरिग्गहा १४, तवोव-
हाणाइ १५, सलेहणाओ १६, भत्त पच्चक्खाणाइं १७, पाओवगम

तथा उपदर्शन हुआ है । जो व्यक्ति इस अग का अच्छी तरह से अध्य-
यन करता है वह प्राणी आत्मस्वरूप हो जाता है, ज्ञाता हो जाता है,
एव विज्ञाता हो जाता है । इस तरह से इस अगमें उपर्युक्त प्रकार से
चरण और करण की प्ररूपणा आख्यात हुई है प्रज्ञापित हुई है, प्ररूपित
हुई है, दर्शित हुई है निदर्शित हुई है, उपदर्शित हुई है । इस प्रकार यह
व्याख्याप्रज्ञप्ति अग का स्वरूप है ।—“परीता वाचनाः” इन पदों से लेकर
“चरण करण प्ररूपणा आख्यायते” यहाँ तक के ये जितने भी पद हैं
उन सब की व्याख्या आचारांग के स्वरूप निरूपण करते समय सूत्र
४५ में की जा चुकी है अतः वहाँ से जान लेना चाहिये ॥ सू० ४९ ॥

थयु छे जे व्यक्तित आ अगनु सारी रीते अध्ययन करे छे ते व्यक्तित आत्म
स्वरूप थध नथ छे, ज्ञाता थथ छे अने विज्ञाता थथ छे आ रीते आ अगमा
उपर प्रभावे अरथु अने करणनी प्ररूपणा थध छे, प्रज्ञापित थध छे, प्ररूपित
थध छे, दर्शित करार्थ छे, निदर्शित थध छे उपदर्शित थध छे आ प्रभावे आ
व्याख्या प्रज्ञप्ति अगनु स्वरूप छे “परितावाचना” जे पदोधी लर्धने “चरण
करण प्ररूपणा आख्यायते” सुधीना जेटला पद छे ते अधानी व्याख्या आया-
रागनु स्वरूप निरूपण करती वणते ४५मा सूत्रमा करी नाथेल छे, तो
त्याधी समथवेवी ॥ सू० ४६ ॥

વ્યાખ્યાયતે । વ્યાખ્યાયાઃ સ્વલુ પરીતાઃ=સંખ્યાતા વાચનાઃ, સર્ણુયેયાનિ અનુયો ગદ્વારાણિ, સર્ણુયેયા વેષ્ટકાઃ, સર્ણુયેયાઃ શ્લોકાઃ, સર્ણુયેયા નિર્ણુક્તયઃ, સર્ણુયેયાઃ સંગ્રહણ્યઃ, સર્ણુયેયાઃ પ્રતિપત્તયઃ । સા સ્વલુ અદ્વાર્થતયા પત્રમમત્રમ્ । અત્ર ઁકઃ શ્રુતસ્કથઃ, ઁક સાત્તિરેકમપ્યયનશતમ્—કિચિદધિકાનિ ઁકશતમપ્યયનાનિ, દશ ઉદેશકસહસ્રાણિ, દશ સમુદેશકસહસ્રાણિ, પટ્ટત્રિગદ્ વ્યાકરણસહસ્રાણિ=પટ્ટત્રિ શત્સહસ્રાણિ વ્યાકરણાનિ, દ્વે ઁકષે અષ્ટાશીતિઃ પદસહસ્રાણિ=અષ્ટાશીતિસહસ્રા ધિકૃદ્વિલક્ષપરિમિતાનિ પદાનિ પદાગ્રેગ=પદપરિમાણેન કથિતાનિ । તથાત્ર-સર્ણુયેયાનિ અક્ષરાણિ, અનન્તા ગમાઃ, અનન્તાઃ પર્યાયાઃ=પર્યાયાઃ, પરીતાઃ=અસ ળ્યાતાઃ ત્રસાઃ અનન્તાઃ સ્થાવરાથ સન્તિ । ઁતે ઉપરિનિર્દિષ્ટાઃ શાશ્વત-કૃત-નિબદ્ધ -નિકાચિતા જિનપ્રજ્ઞા ભાવા અત્ર આર્ણ્યાયન્તે, પ્રજ્ઞાપ્યન્તે, પ્રર્ણુપ્યન્તે, દર્શ્યન્તે, નિદર્શ્યન્તે, ઉપદર્શ્યન્તે । ય ઁતા વ્યાર્ણ્યા યથાપદધોતે, સ ઁમ્ આત્મસ્વરૂપો

હસ પચમ અગરૂપ વ્યાર્ણ્યાપ્રજ્ઞસિ કી વાચનાઁ સર્ણ્યાત હૈ । સર્ણ્યાત અનુયોય દ્વાર હૈ, સર્ણ્યાત વેષ્ટક હૈ । સર્ણ્યાત શ્લોક હૈ । સર્ણ્યાત નિર્ણુક્તિયા હૈ । સર્ણ્યાત સંગ્રહણિયા હૈ । સર્ણ્યાત પ્રતિપત્તિયા હૈ । યહ વ્યા ળ્યાપ્રજ્ઞસિ અગો કી અપેક્ષા પાચમા અગ હૈ । હસમેઁ ઁક શ્રુતસ્કથ હૈ । હસમેઁ કુહ અધિક ઁક સૌ અધ્યયન હૈ । દશહજાર ઉદેશક હૈ । છત્તીસ હજાર પ્રશ્નોત્તર હૈ । દો લાખ અઠાસી હજાર પદ હૈ । સર્ણ્યાત અક્ષર હૈ । અનત ગમ હૈ । અનત પર્યાયે હૈ । અસર્ણ્યાત ત્રસ હૈ । અનત સ્થાવર હૈ । યે ત્રસાદિ પદાર્થ જો ઉપર ઘતલાયે ગયે હૈ વે શાશ્વત, કૃત, નિબદ્ધ ઁવ નિકાચિત હૈ હસમેઁ જિનપ્રજ્ઞસ સમસ્ત ભાવો કા આર્ણ્યાન હુઆ હૈ, પ્રજ્ઞાપન હુઆ હૈ, પ્રર્ણુપણ હુઆ હૈ, દર્શન હુઆ હૈ, નિદર્શન હુઆ હૈ

આ પાચમા અગરૂપ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞસિની વાચનાઓ સખ્યાત છે સખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સખ્યાત વેષ્ટક છે, સખ્યાત શ્લોક છે સખ્યાત નિર્ણુક્તિઓ છે, સખ્યાત સંગ્રહણીઓ છે, સખ્યાત પ્રતિપત્તિઓ છે

આ વ્યાખ્યા પ્રજ્ઞસિ અગોની અપેક્ષાએ પાચમુ અગ છે તેમા એક શ્રુતસ્કથ છે તેમા એકસોથી થોડા વધારે અધ્યયન છે દશ હજાર ઉદેશક છે છત્તીસ હજાર પ્રશ્નોત્તર છે બે લાખ અઠ્યાસી હજાર પદ છે, સખ્યાત અક્ષર છે અનત ગમ છે અનત પર્યાયો છે અસખ્યાત ત્રસ છે અનત સ્થાવર છે તે ત્રસાદિ પદાર્થો બે ઉપર ઘતાવવામા આવ્યા છે તેઓ શાશ્વત, કૃત, નિબદ્ધ અને નિકાચિત છે તેમા જિનપ્રજ્ઞસ સમસ્ત ભાવોનુ આખ્યાન થયુ છે, પ્રજ્ઞાપન થયુ છે, પ્રર્ણુપણ થયુ છે, દર્શન કરાયુ છે, નિદર્શન કરાયુ છે

नानि १८, देवलोकगमनानि १९, सुकुलप्रत्यायातयः २०, पुनर्वीधिलाभाः २१, अन्तक्रियाश्च २२, आख्यायन्ते । दश धर्मकथाना वर्गाः तत्र खलु एकैकस्या धर्म-कथाया पञ्च पञ्च आख्यायिकाशतानि, एकैकस्याम् आख्यायिकाया पञ्च पञ्च उपा-ख्यायिकाशतानि, एकैकस्यामुपाख्यायिकाया पञ्च पञ्च आख्यायिकोपाख्यायिका-शतानि, एवमेव संपूर्णपरेण अर्धचतुर्था आख्यायिकाकोट्यो भवन्तीतिमाख्यातम् । ज्ञाताधर्मकथाना खलु परीता वाचनाः, सार्वेयानि अनुयोगद्वाराणि सार्वेयाः वेष्टकाः सार्वेयाः श्लोकाः सार्वेया निर्युक्तयः सार्वेयाः सग्रहण्यः, सार्वेयाः प्रतिपत्तयः । ताः खलु अद्वार्यतया षष्ठमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनविंशतिरध्य-यनानि, एकोनविंशतिरुद्देशनकालाः, एकोनविंशतिः समुद्देशनकालाः, सार्वेयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, सार्वेयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ता पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिप्रद्वनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भारा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । स एवम् आत्मा, एव ज्ञाता, एव विज्ञाता, एव चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता ज्ञाताधर्मकथाः ॥ सू० ५० ॥

टीका—‘से किं त०’ इत्यादि ।

अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथाः—प्रवचनस्य षष्ठमङ्ग ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र किंविधम् ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—ज्ञाताधर्मकथासु नातानि—उदाहरणानि, तत्प्रधाना धर्मकथाः, अथवा—प्रथमश्रुतस्कन्धो ज्ञाताभिधायकत्वात् ज्ञातानि, द्वितीयस्तु धर्मकथा, ज्ञातानि

‘से किं त णाया धम्मकहाओ ?’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त ! ज्ञाता धर्मकथा नामक छठवे अग का क्या स्वरूप है ? उत्तर—ज्ञाता धर्मकथा नाम के छठवे अग का स्वरूप इस प्रकार है—ज्ञात नाम उदाहरणों का है । जिसमें उदाहरण प्रधान धर्म-कथाएँ हैं वह ज्ञाताधर्म कथा है । अथवा—इसके दो श्रुतस्कंध हैं । इनमें प्रथम श्रुतस्कंध का नाम ज्ञाता है और दूसरे का नाम धर्मकथा है । इस

“से किं त णाया धम्मकहाओ ?” इत्यादि—

शिष्येनो प्रश्न—हे भदन्त ! ज्ञाता धर्मकथा नामना छठ्ठा अंगोतु शु-स्वरूप छे ?

उत्तर—ज्ञाताधर्मकथा नामना छठ्ठा अंगतु स्वरूप आ प्रमाणे छे—ज्ञाता नाम उदाहरणोतु छे जेभा उदाहरण प्रधान धर्मकथाओ छे ते ज्ञाताधर्मकथा छे अथवा तेना जे श्रुतस्कंध छे तेभना पडेला श्रुतस्कंधतु नाम ज्ञाता छे, अने जीलतु नाम धर्मकथा छे आ गीते जे अने भणवाथी

णाइ १८, देवलोगगमणाइं १९, सुकुलपञ्चायाईओ २०, पुणवो-
 हिलाभा २१, अंतकिरियाओ २२, य आघविज्जति । दस धम्मक-
 हाणं वग्गा, तत्थ ण एगमेगाए, धम्मकहाए पंच पंच अक्खा-
 इयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंचे पंच उवक्खाइयासयाइ,
 एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइय उवक्खाइया सयाइ,
 एवमेव सपुव्वावरेण अद्धुट्टाओ कहाणगकोडीओ हवतीति स म-
 क्खाय । नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा,
 सखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ,
 संखिज्जाओ सगहणीओ, सखिज्जाओ पडिवत्तीओ । से ण
 अगट्टयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणवीस अज्झयणा,
 एगूणवीस उद्देसणकाला, एगूणवीस समुद्देसणकाला, सखेज्जाइ
 पयसहस्साइ पयग्गेण, सखेज्जा अक्खरा, अणता गमा, अणंता,
 पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिवद्धनिकाइया
 जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जति, पण्णविज्जति, परूविज्जति, दंसि-
 ज्जति, णिदसिज्जति उवदसिज्जति, से एव आया, एव णाया,
 एव विण्णयाया, एव चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ । से तं
 नायाधम्मकहाओ ॥ सू० ५० ॥

छाया—अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथाः ? ज्ञाताधर्मकथासु खलु ज्ञाताना नग-
 राणि १, उद्यानानि २, चैत्यानि ३, वनपण्डाः ४, समवसरणानि ५, राजानः ६,
 मातापितरौ ७, धर्माचार्या ८, धर्मकथा ९, ऐहलौकिकरूपारलौकिका ऋद्धि-
 विशेषा १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्या १२, पर्याया १३, श्रुतपरिग्रहाः
 १४, तपउपधाननि १५, सलेखना १६, भक्तप्रत्याख्यानानि १ पादपोषणम-

सलेखनाः=शरीररूपायादिशोपणलक्षणाः १६, भक्तप्रत्याख्यानानि=मरणप्रशेषाः १७, पादपोपगमनानि-पादपस्येव=तरोरिव उपगमनानि निश्चलतयाऽवस्थानानि -यथापतितच्छिन्नतरुशाखावन्निश्चलाना चतुर्विधाहारपरित्यागपूर्वकमरणानीत्यर्थः १८, देवलोरुगमनानि १९, सुकुलप्रत्यायातयः=उत्तमकुलजन्मानि २०, पुनर्गोधि-
लाभाः=जिनप्रणीतधर्मप्राप्तिरूपाः २१, अन्तक्रियाः=सकलकर्मक्षयरूपलक्षणा-२२ श्रेति
आख्यायन्ते । तथा-‘दस धम्मकहाण उग्गा’ इति, धर्मकथाना=धर्मकथाख्ये द्वि-
तीये श्रुतस्कन्धे-अहिंसादिरूपधर्मकथाना दश=दशसङ्ख्यकाः उग्गाः=समूहाः सन्ति ।
अत्र हि-अर्थाधिकारसमूहात्मकानि अययनान्येव वर्गा विज्ञेयाः, तत्र खलु एकैक-
स्या धर्मकथाया पञ्च पञ्च आख्यायिकागतानि=कथाशतानि सन्ति । तथा एकैक-

नवीन दीक्षापर्याय का अथवा पूर्व अवस्था के त्यागपूर्वक उत्तर अवस्था
के ग्रहण करने रूप पर्याय का १५, सलेखना का-काय और कपायों को
कृश करने रूप सलेखना का १६, भक्त प्रत्याख्यान का १७, पादपोपगमन
सथारे का-जिसमे गिरे हुए वृक्ष की तरह प्राणी निश्चल रहता है और
चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर देता है ऐसे मरण का १८,
देवलोक मे उत्पन्न होने का १९, उत्तमकुल मे जन्म लेने का २०, जिन-
प्रणीत धर्म की प्राप्तिरूप बोधिलाभ का २१, तथा सकलकर्मक्षयरूप
अन्तक्रिया २२ का वर्णन किया गया है ।

यहां जो अन्त मे धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे अहिंसादि
रूप धर्मकथाओं के दस वर्ग, अर्थात् दस समूह है । अर्थाधिकार समूहरूप
अध्ययन ही वर्ग कहे जाते है । इन धर्मकथाओं के एक २ धर्मकथा मे
पाँचसौ पाँचसौ आख्यायिकाये-कथाये है एक २ आख्यायिका मे पाँचसौ
पाँचसौ उपाख्यायिकाये-अवान्तर कथाये है । एक एक उपाख्यायिका

अने कथायेनेो क्षय करवाइय सलेखनानु (१६), लक्ष्म प्रत्याख्याननु (१७),
पादपोपगमन सथारानु-जेभा पडेला वृक्षनी जेभ प्राणी निश्चल रहे छे अने
थारे प्रकारना आहारनेो परित्याग करी दे छे जेवा मरणनु (१८), देवलोक-
कभा उत्पन्न थवानु (१९), उत्तम कुलभा जन्म लेवानु (२०), जिन प्रणीत
धर्मनी प्राप्तिइय बोधिलाभनु (२१), तथा सर्वकर्मक्षयइय अन्तक्रियानु (२२),
“आख्यायन्ते” वणुन करायु छे

धर्मकथानभक्त भीज्ज श्रुतस्कधमा अहिंसादि इय धर्मकथायेना दश वर्गो
ओटले दश समूहो छे अर्थाधिकार समूहइय अध्ययनने ज वर्ग कडेवामा आवे
छे आ धर्मकथायेनी ओक ओक धर्मकथाभा पाचसो पाचसो आख्यायि-

च धर्मकथाश्च ज्ञाताधर्मकथाः, 'ज्ञाता' इत्यत्राकारागम आर्पत्वात्, तासु खलु ज्ञातानाम्=उदाहरणत्वेनोपन्यस्तानां मेघकुमारादीनां नगराणि १, उद्यानानि=परिवृतवस्त्राभरणाः गृहीतासनाहारा जना यत्र क्रीडार्थमुद्यान्ति=गच्छन्ति तानि उद्यानानि २, चैत्यानि=पद्मऋतुपुष्पफल्गुमृद्धानि वनानि ३, वनपट्टाः=एकजातीयवृक्षयुक्तानि उद्यानानि, नानाजातीयवृक्षसम्पन्नानि वा ४, समवसरणानि ५, राजानः ६, मातापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मकथाः ९, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धि विशेषाः=ऐहलौकिकपारलौकिकसपदः १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः=नवीनप्रव्रज्याप्रदानलक्षणाः पूर्वप्रस्थात्यागेनाप्रस्थान्तरगमनलक्षणा वा १३, श्रुतपरिग्रह=श्रुताध्ययनानि १४, तपउपधानानि=उत्कृष्टतपकरणानि १५,

तरह इन दोनों के मिलने से इसका "ज्ञाता धर्मकथा" यह नाम पड़ गया है। इस ज्ञाता धर्मकथा नामके ठठवे अग में उदाहरणरूप से उपन्यस्त हुए मेघकुमार आदि के नगरों का १, उद्यानों का-वस्त्र एवं आभरण आदि से सुसज्जित होकर तथा भोजन आदि सामग्री लेकर लोग जिसमें क्रीडा करने के लिये जाते हैं उस स्थान का नाम उद्यान है, २, वनोंका-अर्थात् जहाँ ऋतुओं में पुष्प एवं फल से समृद्ध हुए वनों का ३, वनपट्टों का-एक जातीय वृक्षों से युक्त, अथवा नाना जातीय वृक्षों के युक्त हुए घसीचों का ४, राजाओं का ५, मातापिता का ६, समवसरण का ७ धर्माचार्यों का ८, धर्मकथाओं का ९, ऐहलौकिक तथा पारलौकिक ऋद्धि विशेषों का १०, भागों के परित्याग का ११, प्रव्रज्या का १२, श्रुतपरिग्रह-श्रुताध्ययन का १३, उत्कृष्ट तप के विधानों का १४,

तेनु नाम "ज्ञाताधर्मकथा" पश्युं छे आ ज्ञाताधर्मकथा नामना छद्म अगमा उदाहरणत्वे उपन्यस्त थयेल मेघकुमार आदिना नगरानु (१), उद्यानानु-वस्त्र अने आभूषण आदिथी सुसज्जित थईने तथा लोगन आदि सामग्री लईने लोकें ल्या डीडा करवाने माटे लथ छे ते स्थाननु नाम उद्यान छे (२) चैत्यानु अटले के छये ऋतुअेना पुष्प अने इणथी समृद्ध वनेनु (३), वनपट्टानु अेक अ लतना वृक्षोवाणा, अथवा विविध लतना वृक्षोवाणा अगी आयेनु (४), राजानु (५), मातापितानु (६), समवसरणनु (७), धर्माचार्यानु (८) धर्मकथाअेनु (९), आ लोक तथा परलोकनी ऋद्धि विशेषानु (१०), भोगाना परित्यागनु (११), प्रव्रज्यानु (१२) श्रुतपरिग्रह-श्रुताध्ययननु (१३) उत्कृष्ट तपना विधानानु (१४), नवीन दीक्षा पर्यायनु अथवा पूर्व अवस्थाना त्यागपूर्वक उत्तर अवस्थाने अडणु करवाइय, पर्यायनु (१५), सलेपनानु अथ

सख्यामध्यात् नवज्ञातोक्ताऽऽर्यायिकादिसंख्याम् (१२१५००००००) अपकृष्य
पुनरुक्तिवर्जिता या आख्यायिकादयोऽवशिष्यन्ते तासां सख्या सार्द्धत्रिकोटिपरि-
मितैव (३५००००००) भवति । पुनरुक्तिवर्जिताऽऽख्यायिकादिसख्या
हृदिकृत्यैव भगवता-एवमेव सपुत्रावरेण अद्भुद्वाओ-कहाणगकोडीओ भवतीति
समकलाय' इत्युक्तम् । अतो नात्र कश्चिदोप इति । अत्र विषये गाथाद्वयमप्युक्तम् ।

“ पणनीस कोडिसय, एत्थ य समलखणाइया जम्हा ।

नननाययसम्भद्धा, अम्खाइयमाइया तेण ॥ १ ॥

ते सोहिज्जति फुड, इमाउ रासीउ वेग्गलाण तु ।

पुनरुत्तवज्जियाण, पमाणमेय विणिद्धिद्व ” ॥ २ ॥

छाया—पञ्चविंशं कोटि शतम्, अत्र च समलक्षणादिका यस्मात् ।

नव ज्ञातरु सम्भद्धा, आख्यायिकादिकास्तेन ॥ १ ॥

ता. शोध्यन्ते स्फुटम्, अस्माद् राशेर्विनिकाना तु ।

पुनरुत्तवर्जिताना, प्रमाणमेतद् विनिर्दिष्टम् ॥ २ ॥ इति ।

स्थापना चात्रेत्यम्—

कही गई है, उसी तरह की आख्यायिकादिक दस धर्मकथाओं में भी
कही गई हैं, इसलिये नवज्ञातों में कहे जाने के कारण दस धर्मकथाओं
में ये एक सौ साठे इक्कीस करोड़ आख्यायिकादिक पुनरुक्त होती हैं ।
इन पुनरुक्त आख्यायिकादिकों को छोड़कर अवशिष्ट आख्यायिकादिकों
की सख्या साठे तीन करोड़ (३५००००००) ही बचती है । इन अपुनरुक्त
आख्यायिकादिकों को मनमें रखकर ही भगवान ने 'एवमेव सपुत्रा-
वरेण अद्भुद्वाओ कहाणगकोडीओ भवतीतिमक्खाओ'-ऐसा कहा है ।
इसलिये यहाँ पर कोई दोष नहीं है ।

प्रकारनी सख्या आख्यायाऽऽदिक दस धर्मकथाओमा पणु कडेवाभा आवेल छे,
आ कारणे नवज्ञातोमा कडेवायाने ऽऽरणे दस धर्मकथाओमा अे अेकसो साडी
अेकवीस करेड आख्यायिका आदिक पुनरुक्त थाय छे अे पुनरुक्त आख्यायिका
आदिकेने छोडीने णाकी रहेती आख्यायिकाओानी सख्या साडा त्रणु करेड
(३५००००००) रहे छे अे पुनरुक्त आख्यायिकादिकेने मनमा राणीने व
लगवाने “ एवमेव सपुत्रावरेण अद्भुद्वाओ कहाणगकोडीओ भवतीति मक्खाओ ”
अेभ कडेव छे तेथी अही केध होष नथी

स्यामाग्यायिकाया पञ्च पञ्च उपाग्यायिका शतानि=अग्रान्तरकथाशतानि । एकै कस्यामुपाग्यायिकाया पञ्च पञ्च आग्यायिकोपाख्यायिकाशतानि मन्ति । एव मेव=अनेनप्रकारेण सपूर्णापरिण=पूर्णापरसंयोजनया अर्धनतुर्था स्थानकाकोट्यः= आग्यायिकाना सार्धत्रिकोट्यो (३५००००००) भवन्तीति समाग्यात भगवता महावीरेण ।

ननु धर्मकथासु आग्यायिकानाम् उपाग्यायिका नाम् आग्यायिकोपाख्यायिकाना च तिसृणा सरया सपादशतकोटिपरिमिता (१२५०००००००) भवति, तर्हि कथमत्र आग्यायिकादीनां सार्धत्रिकोटिसरयाऽभिदिता ? इति चेत्, आह, नवाना ज्ञातानां पञ्चाशल्लक्षाधिकैरुत्रिशतिकोट्यधिकैरुशतकोटिसख्यका (१२१५०००००००) या आग्यायिकादय उक्तास्तादृश्य एव आग्यायिकादयो दशसु धर्मकथास्वप्युक्ता, अतो दशधर्मकथोक्ताऽऽख्यायिकादि-(१२५०००००००)

पाँचसौ पाँचसौ आग्यायिका-उपाख्यायिकाये हे । इन सभी आख्यायिकायों को जोड़ने से इनकी सरया साढे तीन करोड (३५०००००००) होती है ऐसा भगवान् महावीर स्वामीने कहा है ।

यहा यह शका होती है कि- 'धर्मकथा में आई हुई आग्यायिका-उपाग्यायिका और आख्यायिकोपाख्यायिकाओं की सम्मिलित सख्या एकसौ पच्चीस करोड (१२५००००००००) होती है, तो फिर यहाँ पर उनकी सख्या साढेतीन करोड (३५०००००००) कैसे कही गई है ?' इसका समाधान इस प्रकार है-नव जातों में जो आख्यायिकादिकों की एक सौ साढे इक्कीस करोड (१२१५०००००००) सख्या टीका में उपर

काओ-कथाओ छे ओक ओक आख्यायिकाभा पायसे पायसे उपाख्यायिकाओ-अवान्तरकथाओ छे ओक ओक उपाख्यायिकाभा पायसे पायसे आख्यायिका-उपाख्यायिकाओ छे आ अर्धी आख्यायिकाओने भेगववाधी साडा त्रलु करेड (३५०००००००) थाय छे ओभ लगवान भडावीर स्वामीओ उलु छे

अही ओ शका थाय छे के " धर्मकथाओभा आवेल आख्यायिकाओ, उपाख्यायिकाओ अने आख्यायिकोपाख्यायिकाओनी कुल सख्या ओक से पचीस करेड (१२५००००००००) थाय छे तो पछी अही तेमनी सख्या साडा त्रलु करेड (३५००००००००) केवी रीते कडेवामा आवी छे ? " तेनु समाधान आ प्रभाओ करी शकथ-नवा ज्ञातोभा आख्यायिका आदिनी ओकसे साडी ओकवीस करेड (१२१५०००००००) नी सख्या टीकाभा उपर कडेवामा आवी छे, ओभ

ઉપલબ્ધાઽઽર્યાયિકાદીના સર્યા

૩૫૦૦૦૦૦૦

इत्थं ज्ञाताना धर्मकथाना च संकलिता आर्यायिकादि सख्या पञ्चाशलक्षाधिक पट्टत्वारिंशत्कोट्यधिकद्विशतकोटिप्रमाणा (२४६५९०००००) भवति । ततः पञ्चाशलक्षाधिकैकविंशति कोट्यधिकैकशतकोटि (१२१५००००००) प्रमाणपुनरुक्ताऽऽर्यायिकादि शोधनेन अपुनरुक्ताऽऽर्यायिकादि प्रमाण पञ्चविंशति कोट्यधिकैक शतकोटिपरिमित (१२५०००००००) ज्ञाताधर्मकथासु भवतीति । ज्ञाताधर्मकथाना खलु परीताः=सरयाता वाचनाः, सख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, सख्येया वेष्टकाः, सरयेयाः श्लोकाः, सख्येया निर्युक्तय, सख्येयाः सग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ताः खलु अद्भ्यर्थतया पष्टमद्गम् । अत्र-द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनविंशतिरध्ययनानि-प्रथमश्रुतस्कन्धे ।

वाकी रही हूँ आर्यायिकादिकों की संख्या—

३५००००००

इस प्रकार ज्ञाता और धर्मकथा की संकलित आख्यायिकादि सख्या दो अरब छयालीस करोड पचास लाख (२४६५००००००) होती है । से एक अरब साठे इक्कीस करोड (१२१५००००००) पुनरुक्त आख्यायिकादिकों को घटाने पर ज्ञाताधर्मकथाग मे अपुनरुक्त आख्यायिकादिकों का प्रमाण एक अरब पच्चीस करोड (१२५०००००००) होता है ।

इस ज्ञाता धर्मकथा नामके अगमें सख्यात वाचनाएँ हैं, सख्यात अनुयोग द्वार हैं, सख्यातवेष्टक हैं सख्यात श्लोक हैं, सख्यात निर्युक्तियाँ हैं, सख्यात सग्रहणियाँ हैं एवं सख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह अगोमे छठवाँ अंग है । इस छठवे अगमे दो श्रुत स्कंध हैं । प्रथम श्रुतस्कन्धमें उन्नीस अ धयन १९ उद्देशनकाल और उन्नीस १९ ही समुद्देशन काल हैं ।

બાકી રહેલ આખ્યાયિકાદિકોની સખ્યા

૩૫૦૦૦૦૦૦

આ ગીતે જ્ઞાતા અને ધર્મકથાની સંકલિત આખ્યાયિકાદિની સખ્યા બે અબજ, છેતાળીશ કરોડ પચાસ લાખ (૨૪૬૫૦૦૦૦૦૦) થાય છે તેમાથી એક અબજ સાડી એકવીસ કરોડ (૧૨૧૫૦૦૦૦૦૦) પુનરુક્ત આખ્યાયિકાદિકોને બાદ કરતા જ્ઞાતાધર્મકથાગમા અપુનરુક્ત આખ્યાયિકાદિકોનુ પ્રમાણ એક અબજ પચીસ કરોડ (૧૨૫૦૦૦૦૦૦૦) થાય છે

આ જ્ઞાતાધર્મકથા નામના અગમા સખ્યાત વાચનાઓ છે, સખ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, ગ્રાહ્યથી સખ્યાત વેષ્ટક છે સખ્યાત શ્લોક છે, સખ્યાત નિર્યુક્તિયો છે સખ્યાત સગ્રહણિયો છે, અને સખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે આ બધા અગોમાનુ છઠ્ઠું અંગ છે આ છઠ્ઠા અગમા બે શ્રુતસ્કંધ છે પહેલા શ્રુતસ્કંધમા ઓગણીસ અધ્યયન છે ઓગણીસ (૧૯) ઉદ્દેશનકાળ છે અને ઓગણીસ (૧૯) સમુદ્દેશનકાળ છે

धर्मकथास्थिताऽऽख्यायिकादि सख्या १२५०००००००
 शोध्याना ज्ञातास्थिताऽऽख्यायिकादीना सख्या १२१५०००००००

इस विषय में दो गाथायें हैं—

“पणवीसकोडिसय, एत्थयसमलक्खणाइया जम्हा ।

नवनाययसंनद्धा, अक्खाइयमाइया तेण ॥ १ ॥

ते सोहिज्जति फुड, इमा उरासी उ वेग्गलाण (विविक्ताना) तु ।

पुणरुत्त वज्जियाण, पमाणमेय विणिद्धि ” ॥ २ ॥ इति ।

इसका भाव यह है—धर्मकथा में आई हुई आख्यायिकादिकों की सख्या एक सौ पच्चीस करोड़ है। इनमें से नौ जातों में कही हुई समानलक्षणवाली—समानस्वरूपवाली एक सौ साठे एकीस करोड़ आख्यायिकादिकाएँ निकाल ली जाती हैं तब पूर्वोक्त राशि से बची हुई पुनरुक्तिवर्जित आख्यायिकादिकों की सख्या साठे तीन करोड़ होती है। यही साठे तीन करोड़ प्रमाणमूल में आख्यायिकादिकों का कहा है।

यह पर स्थापना इस प्रकार है—

धर्मकथा में आई हुई आख्यायिकादिकों की सख्या— १२५०००००००

शोधनीय ज्ञातास्थित आख्यायिकादिकों की सख्या— १२१५०००००००

आ विषयमा ये गाथाओ छे—

“पणवीस कोडिसय, एत्थय समलक्खणाइया जम्हा ।

नवनाययसंनद्धा, अक्खाइयमाइया तेण ॥ १ ॥

ते सोहिज्जति फुड, इमा उ रासी उ वेग्गलाण (विविक्ताना) तु ।

पुणरुत्त वज्जियाण, पमाणमेयं विणिद्धि ” ॥ २ ॥ इति ।

तेना भावार्थ आ प्रमाणे छे—धर्मकथाभा आवेल आख्यायिकादिकेनी सख्या अकसो पचीस करौड छे तयोभाथी नवज्ञातोभा कडेल समान लक्षणवाणी—समान स्वरूपवाणी अकसो साडी अकवीस करौड आख्यायिकादिकेने आठ करवाभा आवे तो पूर्वोक्त राशिथी अचेत पुनरुक्ति रहित आख्यायिकादिकेनी सख्या साडा त्रणु करौड थाय छे भूणभा अेन साडात्रणु करौड आख्यायिकादिकेनु प्रमाणे कडेल छे

अही आ प्रमाणे स्थापना छे—

धर्मकथाभा आवेल आख्यायिकादिकेनी सख्या १२५०००००००

शोधनीय ज्ञातास्थित आख्यायिकादिकेनी सख्या १२१५०००००००

सुकुलपञ्चायार्ईओ २३, पुणो वोहिलाभा २४, अतकिरियाओय,
 आघविज्जति । उवासयदसा णं परित्ता वायणा, सखेज्जाअणु-
 ओगदारा सखेज्जावेढा, सखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ निज्जु-
 त्तिओ सखेज्जाओ सगहणीओ सखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से
 णं अगट्टयाए सत्तमे अगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस
 उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, सखेज्जाइ पयसहस्साइ पय-
 ग्गेणं, सखेज्जा अक्खरा अणंतागमा, अणंता पज्जवा, परित्ता
 तसा, अणंता थावरा, सासय-कड-निवद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता
 भावा आघविज्जति, पण्णविज्जति परूविज्जति, दसिज्जति,
 निदसिज्जति, उवदसिज्जति । से एव आया, एव नाया, एवं
 विण्णयाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ । से त्त
 उवासगदसाओ ॥ सू० ५१ ॥

छाया—अथ कास्ता उपासकदशा ? उपासकदशासु खलु श्रमणोपासकानां
 नगराणि १, उद्यानानि २, चैत्यानि ३, वनपण्डाः ४, समप्रसरणानि ५, राजानः ६,
 अम्बापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मरूपाः ९, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धिवि-
 शेपाः १०, भोगपरित्यागाः ११, मत्रज्याः १२, पर्यायाः, १३, श्रुतपरिग्रहाः १४,
 तपउपधानानि १५, शीलव्रत विरमणगुणप्रत्याख्यानपोषधोपवासप्रतिपादनताः १६,
 प्रतिमाः १७, उपसर्गाः १८, सलेखना १९, भक्तप्रत्याख्यानानि २०, पादपोषग-
 मनानि २१, देवलोकगमनानि २२, सुकुलप्रत्यायातयः २३, पुनर्वीधिळाभा २४,
 अन्तक्रियाश्चआख्यायन्ते २५, उपासकदशाना परीतावाचनाः सख्येयानि अनुयोग-
 द्वाराणि, सख्येया वेष्टका, सख्येया. श्लोकाः, सख्येया निर्युक्तयः सख्येया
 सग्रहण्यः, सख्येयाः प्रत्तिपत्तयः । ताः खलु अज्ञार्थतया सप्तममङ्गम्, एकः श्रुतस्क-
 न० ७६

અત્ર-एकोनविंशतिरुद्देशनकथाः, एकोनविंशति समुद्देशनकालाः । सम्बन्धेयानि पदसहस्राणि=पट्टसप्तति सहस्राधिकपञ्चलक्षपदानि (५७६०००) पट्टाग्रेण=पद परिमाणेन प्रज्ञप्तानि । तथाऽत्र-सम्बन्धेयानि अक्षराणि सन्ति । अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यायाः, परीताम्रसाः, अनन्ताः स्थानराः, शाश्वत-कृत-निवृद्ध-निराचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते, निदर्शयन्ते, उपदर्शयन्ते । स एवमात्मा भवति, एवं ज्ञाता, एव चिन्ता भवति । इत्येव प्रकारेण अत्र चरणकरणप्ररूपणा आख्यायन्ते ६ । ता एता ज्ञाता धर्मकथाः ॥ सू० ५० ॥

अथ सप्तमाङ्गस्य उपासकदशाङ्गस्य स्वरूपमाह—

मूलम्—से कि तं उवासगदसाओ ? । उवासगदसासु णं समणोवासयाण नगराइ १, उज्जाणाइ २, चेइयाइं ३, वणसंडाइ ४, समोसरणाइ ५, रायाणो ६, अम्मापियरो ७, धम्मापियरो ८, धम्मकहाओ ९, इहलोइयपरलोइयाइइड्ढिविसेसा १०, भोगपरिच्चाया ११, पव्वजाओ १२, परियाया १३, सुयपरिग्गहा १४, तवोवहाणाइ १५, सीलव्वयवेरमणगुणपच्चक्खाणपोसहोववास-पडिवज्जणया १६, पडिमाओ १७, उवसग्गा १८, सलेहणाओ १९, भत्तपच्चक्खाणाइ २०, पाओवगमणाइ २१, देवलोगगमणाइ २२,

इसमें पाँच लाख छिहत्तर हजार ५७६००० पद है । इसमें सख्यात अक्षर है अनन्त गम है, अनन्त पर्याये है, असख्यात त्रस है, अनन्त स्थावर है—इत्यादि पदों की व्याख्या आचाराग सूत्रका स्वरूप निरूपण करते समय सूत्र ४५में कीया जा चुकी है । इस प्रकार यह ज्ञाताधर्मकथा अग का स्वरूप है ॥ सू० ५० ॥

આ અગમા પાચ લાખ છોતેર હજાર (૫૭૬૦૦૦) પદો છે એમા સખ્યાત અક્ષર છે અનન્ત ગમ છે, અનન્ત પર્યાયો છે, અસખ્યાત ત્રસ છે અનન્ત સ્થાવર છે, વગેરે પદોની વ્યાખ્યા આચારાગ સૂત્રનુ સ્વરૂપ-નિરૂપણ કરતી વખતે સૂત્ર ૪૫મા કરવામા આવી છે આ પ્રમાણે આ “જ્ઞાતાધર્મકથા” અગનુ સ્વરૂપ છે ॥ સૂ० ૫૦ ॥

ऐहलौकिकपारलौकिकऋद्धिविशेषाः १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः १३, श्रुतपरिग्रहाः=श्रुताध्ययनानि १४, तपउपधानानि=उग्रतपश्चरणानि १५, शीलव्रतविरमणगुणप्रत्याख्यानपोषधोपवासप्रतिपादनताः १६-तत्र-शीलव्रतानि=अणुव्रतानि, विरमणानि=रागादिविरतयः, गुणाः=गुणव्रतानि, प्रत्याख्यानानि=नमस्कार संहितादीनि, पोषधोपवासः पोष=पुष्टिं वत्ते यदाहारपरित्यागादिक कुशलानुष्ठान तत्पोषध, तेन सह उपवासः=अवस्थानम् अहोरात्रं यावदिति पोषधोपवासः, एतेषा द्वन्द्व, तेषा प्रतिपादनताः=प्रतिपत्तयः-स्वीकरणानि, प्रतिमाः=एकादश उपासकप्रतिमाः १७, उपसर्गाः=देवादिकृतोपद्रवाः १८, सलेखनाः=शरीर-

तया पारलौकिक ऋद्धिविशेषों का भोगपरित्याग का, प्रव्रज्या का, पर्याय का, श्रुतपरिग्रह का-श्रुताध्ययन का, तपउपधान का-तपश्चरण का भी कथन किया गया है। साथमें यह भी बतलाया गया कि शीलव्रत-अणुव्रत क्या है-इनका क्या स्वरूप है, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं विरमण-रागादिक भावोंसे विरक्ति क्या है और यह किस तरह धारण की जाती है तथा इसका स्वरूप क्या है-गुण-गुण-व्रत क्या तथा किन्ने है, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं ?

पच नमस्कार सहित प्रत्याख्यान क्या-कैसे होते हैं और ये कब कैसे धारण किये जाते हैं ? पोषधोपवास-पोष-पुष्टिको जो धारण करे-वह आहार-परित्याग आदि पोषध कहलाता है, उसके साथ जो अहोरात्र रहना वह पोषधोपवास है। तथा श्रावकों के ग्यारह ११ प्रकार की प्रतिमा, तथा देवादिकृत-उपद्रव रूप उपसर्ग, सलेखना-शरीर तथा कषाय आदि

परित्यागतु प्रव्रज्यानु, पर्यायनु, श्रुतपरिग्रहतु-श्रुताध्ययननु, तपउपधाननु-तपश्चरणनु पणु वर्षुन करायु छे वणी अे पणु भताण्यु छे के शीलव्रत-अणुव्रत शु छे ? तेभनु शु स्वइय छे ? अने ते डेवी रीते धारणु कराय छे ? विरमणु-रागादिऽ भावोथी विरक्ति शु छे ? अने ते डेवी रीते धारणु कराय छे ? तथा तेनु शु स्वइय छे, गुणु-गुणव्रत शु छे अने केटका छे, अने ते डेवी रीते धारणु कराय छे ? पच नमस्कार सहित प्रत्याख्यान डेवा डेवा छे अने तेभने ड्यारे अने डेवी रीते धारणु कराय छे ? पोषधोपवास पोष-पुष्टिने ने धारणु करे-आपे ते आहार परित्याग आदिने पोषध कडेवाय छे, तेनी साथे ने रातद्विपस रडेवु ते पोषधोपवास कडेवाय छे तथा श्रावकेना अगीथार प्रकारनी प्रतिमा, तथा देवादिकृत उपद्रवइय उपसर्ग, सलेखना-शरीर तथा कषाय

न्धः, दश अध्ययनानि, दश उद्देशनकालाः, दशममुद्देशनकालाः, संख्येयानि पद
सहस्राणि षट्पात्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यत्राः, परी
तास्त्रसाः, अनन्ताः स्यान्रा', शाश्वत-ऋत-निन्द-निराशिता जिनमज्ञा भावा
आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते, निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते । स एवात्मा,
एव ज्ञाता, एव विज्ञाता, एव चरणचरणमरूपणा आख्यायते ६ । ता एता
उपासकदशाः ॥ सू० ५१ ॥

अथ सप्तमाद्रस्वरूप कथयति—

टीका—‘से किं त०’ इत्यादि ।

अथ कास्ता उपासकदशाः ? उत्तरयति—उपासकदशासु=उपासकाः=श्रावकाः
तेषामुपासकत्व बोधिका दशाध्ययन प्रतिपन्नादशा=अवस्थाः—उपासकदशास्तासु
खलु उपासकाना=श्रावकाणा नगराणि १, उद्यानानि २, चैत्यानि ३, वनषण्डाः
४, समवसरणानि ५, राजान ६, अम्नापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मकथाः ९,

अथ सप्तम अग उपासक दशाग का स्वरूप कहते हैं—‘से किं त
‘उवासगदसाओ०’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—सातवा अग जो उपासकदशा है उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उपासकों-श्रावकों की उपासकत्व बोधक जो अवस्थाएँ
हैं, वे उपासक दशाग हैं दश अध्ययनों द्वारा इन दशाओं का प्रतिबोधक
जो अग है वह उपासकदशाग है । इस उपासकदशागमें श्रावकोंके नगरों
का कथन किया गया है, तथा उद्यानोंका, चैत्यो-व्यन्तरा यतनोंका, वन
षण्डोका, उन श्रावकोके समयके समवसरणोंका, उनके राजाओंका, उनके
मातापिताओंका, उनके धर्माचार्योंका, धर्मकथाओंका, उनकी ऐहलौकिक

हुवे सातवा अग-उपासक दशागनु स्वरूप कहे छे—“से किं त उवासग
दसाओ ?” इत्यादि—

शिष्यने प्रश्न—सातवु अग के उपासक दशा छे तेतु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—उपासको-श्रावकोनी उपासकत्व बोधक के अवस्थाओ छे ते
उपासक दशाओ छे दश अध्ययनो द्वारा ओ दशाओनु प्रतिबोधक के अग
ते “उपासक दशाग” छे आ उपासक दशागमा श्रावकोना नगरानु वषुन
करायु छे तथा उद्यानोनु चैत्यो-व्यन्तरायतनोनु, वनषण्डोनु, ते श्रावकोना
समयना समवसरणोनु, राजओनु, तेमना मातापिताओनु, तेमना धर्माचा
र्योनु, धर्मकथाओनु, तेमनी आलोक अने भरलोकनी

ऐहलौकिकरूपारलौकिकरुद्धिविशेषा १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः १३, श्रुतपरिग्रहाः=श्रुताध्ययनानि १४, तपउपधानानि=उग्रतपश्चरणानि १५, शीलव्रतविरमणगुणप्रत्याख्यानपोषधोपवासप्रतिपादनताः १६-तत्र-शीलव्रतानि=अणुव्रतानि, विरमणानि=रागादिविरतयः, गुणाः=गुणव्रतानि, प्रत्याख्यानानि=नमस्कार सहितादीनि, पोषधोपवासः पोष=पुष्टिं धत्ते यदाहारपरित्यागादिक कुशलानुष्ठानं तत्पोषध, तेन सह उपवासः=अवस्थानम् अहोरात्रं यावदिति पोषधोपवासः, एतेषा द्वन्द्व, तेषा प्रतिपादनताः=प्रतिपत्तयः-स्वीकरणानि, प्रतिमाः=एकादश उपासकप्रतिमाः १७, उपसर्गाः=देवादिकृतोपद्रवाः १८, सलेखनाः=शरीर-

तथा पारलौकिक ऋद्धिविशेषों का भोगपरित्याग का, प्रव्रज्या का, पर्याय का, श्रुतपरिग्रह का-श्रुताध्ययन का, तपउपधान का-तपश्चरण का भी कथन किया गया है। साथमें यह भी बतलाया गया कि शीलव्रत-अणुव्रत क्या है-इनका क्या स्वरूप है, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं विरमण-रागादिक भावोंसे विरक्ति क्या है और यह किस तरह धारण की जाती है तथा इसका स्वरूप क्या है-गुण-गुण-व्रत क्या तथा कितने हैं, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं?

पञ्च नमस्कार सहित प्रत्याख्यान क्या-कैसे होते हैं और ये कब कैसे धारण किये जाते हैं? पोषधोपवास-पोष-पुष्टिको जो धारण करे-वह आहार-परित्याग आदि पोषध कहलाता है, उसके साथ जो अहोरात्र रहना वह पोषधोपवास है। तथा श्रावकों के ग्यारह ११ प्रकार की प्रतिमा, तथा देवादिकृत-उपद्रव रूप उपसर्ग, सलेखना-शरीर तथा कषाय आदि

परित्यागानु प्रव्रज्यानु, पर्यायानु, श्रुतपरिग्रहानु-श्रुताध्ययनानु, तपउपधानानु-तपश्चरणानु पणु वर्धनं करायु छे वणी अये पणु अताव्यु छे के शीलव्रत-अणुव्रत शु छे? तेमनु शु स्वरूप छे? अने ते देवी रीते धारण कराय छे? विरमण-रागादिक भावोथी विरक्ति शु छे? अने ते देवी रीते धारण कराय छे? तथा तेनु शु स्वरूप छे, गुण-गुणव्रत शु छे अने डेटला छे, अने ते देवी रीते धारण कराय छे? पञ्च नमस्कार सहित प्रत्याख्यान केवा होय छे अने तेमने कथारे अने देवी रीते धारण कराय छे? पोषधोपवास पोष-पुष्टिने के धारण करे-आपे ते आहार परित्याग आदिने पोषध कडेवाय छे, तेनी साथे के रातदिवस रहेषु ते पोषधोपवास कडेवाय छे तथा श्रावकोना अगीयार प्रकारनी प्रतिमा, तथा देवादिकृत उपद्रव रूप उपसर्ग, सलेखना-शरीर तथा कषाय

न्धः, दश अध्ययनानि, दश उद्देशनकागः, दशममुद्देशनकालाः, संख्येयानि पद
सहस्राणि पदाश्रेण, संख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवा, परी
तास्त्रसा, अनन्ताः स्यामराः, शाश्वत-रुत-निमद्ग-निमचिता जिनप्रज्ञा मावा
आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते । म एवात्मा,
एव ज्ञाता, एव विज्ञाता, एव चरणकरणमरूपणा आख्यायते ६ । ता एता
उपासकदशाः ॥ सू० ५१ ॥

अथ सप्तमाङ्गस्वरूप कथयति—

टीका—‘से किं त०’ इत्यादि ।

अथ कास्ता उपासकदशाः ? उत्तरयति—उपासकदशामु=उपासकाः=श्रावकाः
तेषामुपासकत्वं बोधिका दशाध्ययन प्रतिपद्धादशाः=अवस्थाः—उपासकदशास्तासु
खलु उपासकानां=श्रावकाणां नगराणि १, उद्यानानि २, चैत्यानि ३, वनपण्डाः
४, समवसरणानि ५, राजानः ६, अम्नापितरौ ७, धर्माचार्याः ८, धर्मकथाः ९,

अथ सप्तम अग उपासक दशाग का स्वरूप कहते हैं—‘से किं त
‘उपासकदशाओ०’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—सातवां अग जो उपासकदशा है उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उपासकों—श्रावकों की उपासकत्व बोधक जो अवस्थाएँ
हैं, वे उपासक दशाएँ हैं दश अध्ययनों द्वारा इन दशाओं का प्रतिबोधक
जो अग है वह उपासकदशाग है । इस उपासकदशागमें श्रावकोंके नगरों
का कथन किया गया है, तथा उद्यानों का, चैत्यों—व्यन्तरा यतनों का, वन-
पण्डोका, उन श्रावकोंके समयके समवसरणोंका, उनके राजाओंका, उनके
मातापिताओं का, उनके धर्माचार्यों का, धर्मकथाओं का, उनकी ऐहलौकिक

इसे सातवां अग—उपासक दशागनु स्वरूप कहे छे—“से किं त उपासक
दशाओ ?” इत्यादि—

शिष्यने प्रश्न—सातवु अग ने उपासक दशा छे तेनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—उपासकों—श्रावकोंनी उपासकत्व बोधक ने अवस्थाओ छे ते
उपासक दशाओ छे दश अध्ययनो द्वारा ओ दशाओनु प्रतिबोधक ने अग
ते “उपासक दशाग” छे आ उपासक दशागमा श्रावकोंना नगरिनु वषु न
करायु छे तथा उद्यानोनु चैत्यो—व्यन्तरायतनोनु, वनपण्डोनु, ते श्रावकोंना
समयना समवसरणोनु, राजाओनु, तेमना मातापिताओनु, तेमना धर्माचा
र्योनु, धर्मकथाओनु, तेमनी आलोक अने परलोकनी विशेषेनु बोध

ऐहलौकिकरूपारलौकिकरुद्धिविशेषाः १०, भोगपरित्यागाः ११, प्रव्रज्याः १२, पर्यायाः १३, श्रुतपरिग्रहाः=श्रुताध्ययनानि १४, तपउपधानानि=उग्रतपश्चरणानि १५, शीलव्रतविरमणगुणप्रत्याख्यानपोषधोपवासप्रतिपादनताः १६-तत्र-शीलव्रतानि=अणुव्रतानि, विरमणानि=रागादिविरतयः, गुणाः=गुणव्रतानि, प्रत्याख्यानानि=नमस्कार सहितादीनि, पोषधोपवासः पोष=पुष्टिं वत्ते यदाहारपरित्यागादिक कुशलानुष्ठान तत्पोषध, तेन सह उपवासः=भ्रवस्थानम् अहोरात्रं यावदिति पोषधोपवासः, एतेषा द्वन्द्व, तेषा प्रतिपादनताः=प्रतिपत्तयः-स्वीकरणानि, प्रतिमाः=एकादश उपासकप्रतिमाः १७, उपसर्गाः=देवादिकृतोपद्रवाः १८, सलेखनाः=शरीर-

तथा पारलौकिक रुद्धिविशेषों का भोगपरित्याग का, प्रव्रज्या का, पर्याय का, श्रुतपरिग्रह का-श्रुताध्ययन का, तपउपधान का-तपश्चरण का भी कथन किया गया है। साथमे यह भी बतलाया गया कि शीलव्रत-अणुव्रत क्या है-इनका क्या स्वरूप है, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं विरमण-रागादिक भावोंसे विरक्ति क्या है और यह किस तरह धारण की जाती है तथा इसका स्वरूप क्या है-गुण-गुण-व्रत क्या तथा कितने है, और ये किस तरह धारण किये जाते हैं ?

पञ्च नमस्कार सहित प्रत्याख्यान क्या-कैसे होते हैं और ये कब कैसे धारण किये जाते हैं ? पोषधोपवास-पोष-पुष्टिको जो धारण करे-वह आहार-परित्याग आदि पोषध कहलाता है, उसके साथ जो अहोरात्र रहना वह पोषधोपवास है। तथा श्रावको के ग्यारह ११ प्रकार की प्रतिमा, तथा देवादिकृत-उपद्रव रूप उपसर्ग, सलेखना-शरीर तथा कषाय आदि

परित्यागनु प्रव्रज्यानु, पर्यायनु, श्रुतपरिग्रहनु-श्रुताध्ययननु, तपउपधाननु-तपश्चरणनु पञ्च वर्णन करायु छे वणी ओ पञ्च भताव्यु छे के शीलव्रत-अणुव्रत शु छे ? तेमनु शु स्वरूप छे ? अने ते देवी रीते धारण कराय छे ? विरमण-रागादिक लावेथी विरक्ति शु छे ? अने ते देवी रीते धारण कराय छे ? तथा तेनु शु स्वरूप छे, गुण-गुणव्रत शु छे अने डेटला छे, अने ते देवी रीते धारण कराय छे ? पञ्च नमस्कार सहित प्रत्याख्यान देवा डेवा छे अने तेमने कथारे अने देवी रीते धारण कराय छे ? पोषधोपवास पोष-पुष्टिने ने धारण करे-आपे ते आहार परित्याग आदिने पोषध उडेवाय छे, तेनी साथे ने रातदिवस रडेपु ते पोषधोपवास उडेवाय छे तथा श्रावकोना अगीयार प्रकारनी प्रतिमा, तथा देवादिकृत उपद्रव रूप उपसर्ग, सलेखना-शरीर तथा कषाय

કપાયાદિશોપણલક્ષણાઃ ૧૯, ભક્તપ્રત્યાઘ્યાનાનિ ૨૦, પાદપોપગમનાનિ ૨૧, દેવલોકગમનાનિ ૨૨, દેવલોકાત્ પુન સુકુલપ્રત્યાયાતયઃ સુકુલજમાનિ ૨૩, પુનર્બોધિલાભાઃ ૨૪, અન્તક્રિયાથ આગ્યાયન્તે ૨૫ ।

ઉપાસકદશાના પરીતા=સહ્યાતા વાચનાઃ સમ્યેયાનિ અનુયોગદ્વારાણિ, સહ્યેયા વેષ્ટકાઃ, સહ્યેયાઃ શ્લોકાઃ, મહ્યેયા નિર્યુક્તયઃ, સમ્યેયા' સમ્રહણ્ય, સમ્યેયાઃ પ્રતિપત્તયથ સન્તિ । એક' શ્રુતસ્કન્ધઃ દશ અધ્યયનાનિ, તા સ્વલુ અદ્વા ર્થતયા સપ્તમમઙ્ગમ્ દશ ઉદ્દેશનકાલાઃ, દશ સમુદ્દેશનકાલા', સહ્યેયાનિ— પદ સહસ્રાણિ=એકાદશલક્ષાણિ દ્વિપચ્ચાશ્લસહસ્રાણિ (૧૧૫૨૦૦૦) ચ પદાનિ પદાગ્રેણ=પદપરિમાણેન પ્રજ્ઞાનિ । તયાડત્ર સમ્યેયાનિ અક્ષરાણિ, અનન્તાઃ ગમાઃ, અનન્તાઃ પર્યવાઃ ત્સાઃ, અનન્તાઃ સ્થાવરાઃ, શાશ્વતકૃત નિવૃદ્ધ નિકાચિતા જિન કા શોપણ કરના, ભક્તપ્રત્યાઘ્યાન, પાદપોપગમન, દેવલોક ગમન વદ્વા સે ન્યવ કર ઉનકા સુકુલમે જન્મલાભ પુનઃબોધિની પ્રાપ્તિ તથા અન્તક્રિયા, ઇન સત્કા મ્હી ઇસમે અહ્યાન હુઆ હૈ ।

ઇસ અગમે સહ્યાત વાચનાઈ હૈ, સહ્યાત અનુયોગ દ્વાર હૈ, સહ્યાત વેષ્ટક હૈ, સહ્યાત શ્લોક હૈ, સહ્યાત નિર્યુક્તિયા હૈ, સહ્યાત સમ્રહ ગિયા હૈ તથા સહ્યાત પ્રતિપત્તિયા ઇન સત્કા અર્થ આચારાગ કે સ્વરૂપ નિરૂપણ કરતે મમય સૂત્ર ૪૫મે લિખા જા હુકા હૈ । યહ અગ સાતવા અગ હૈ । ઇસમે એક શ્રુતસ્કન્ધ ઓર દશ અધ્યયન હૈ । તયા દશ ઉદ્દેશન કાલ ઓર દશ હી સમુદ્દેશનકાલ હૈ । ઇસકે પદો કા પ્રમાણ ગ્યારહ લાલ વાવન હજાર (૧૧૫૨૦૦૦) હૈ । ઇસમે સહ્યાત અક્ષર હૈ, 'અનન્તા ગમા' યદ્વા સે લેકર "એવ વિજ્ઞાતા" તક કે પદો કા અર્થ આચારાંગ કે સ્વરૂપ

આદિતુ શોપણ કરતુ, ભક્તપ્રત્યાઘ્યાન, પાદપોપગમન, દેવલોકગમન, ત્યાથી આવીને તેમને સારા કુળમા જન્મલાભ, પુન બોધિની પ્રાપ્તિ તથા અન્તક્રિયા, એ બધાનુ પણ તેમા વર્ણન થયુ છે

આ અગમા સહ્યાત વાચનાઓ છે, સહ્યાત અનુયોગ દ્વાર છે, સહ્યાત વેષ્ટ છે, સહ્યાત શ્લોક છે, સહ્યાત નિર્યુક્તિયો છે, તથા સહ્યાત સમ્રહ ણીઓ છે, સહ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે એ બધાને અર્થ આચારાગનુ સ્વરૂપનિ રૂપણ કરતી વખતે સૂત્ર ૪૫મા લખાઈ ગયો છે આ અગ સાતમુ અગ છે તેમા એક શ્રુતસ્કન્ધ અને દસ અધ્યયન છે, તથા દસ ઉદ્દેશનકાળ અને દસ જ સમુદ્દેશનકાળ છે તેમા અગીયાર લાખ વાવન હજાર (૧૧૫૨૦૦૦) પદ છે તેમા સહ્યાત અક્ષર છે "અનન્તા ગમા" થી માડીને "એવ વિજ્ઞાતા"

प्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्शयन्ते निदर्शयन्ते उपदर्शयन्ते । स एवमात्मा, एव ज्ञाता, एव विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते । सख्ये-यानि अक्षराणि' इत्यादीनामर्थाः पूर्ववद्बोध्याः । उपसहरन्नाह—ता एता उपासकदशा इति ॥ सू० ५१ ॥

अष्टमाङ्गस्य स्वरूपमाह—

मूलम्—से कि तं अंतगडदसाओ ? अतगडदसासु णं अत-गडाण नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइ वणसडाइ समोसरणाइ रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहा इहलोइयपरलोइय-इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ परियाया सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइ सलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइ पाओवगमणाइ, अंतकिरियाओ आघविज्जति । अंतगडदसासु ण परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा संखेज्जा वेढा सखेज्जा सिलोगा सखेज्जाओ निज्जुत्तीओ सखेज्जाओ सगहणीओ सखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से ण अगट्टयाए अट्टमै अगे । एगे सुयक्खधे, अट्टवग्गा, अट्ट उद्देसणकाला, अट्ट समुद्देसणकाला, सखेज्जाइ

निरूपण करते समय सूत्र ४५में लिखा जा चुका है। इस प्रकार यहाँ यह चरण करण का आख्यान प्रज्ञापन आदि किया गया है। यहाँ “प्रज्ञाप्यन्ते” आदि पाच पदों का संग्रह समझ लेना चाहिये। इनका अर्थ पहले कहा जा चुका है। यह उपासकदशांग के स्वरूप का वर्णन हुआ ॥ सू० ५१ ॥

सुधीना पढेनो अर्थ आआरागतु स्वइपनिइपणु करती वपते लभाथ गये छे आ रीते तेभा अरथु वरथुतु आअयान, प्रज्ञापन आदि करायु छे अडी “प्रज्ञाप्यन्ते” आदि पाच पढेनो सअड समणु वेवे न्नेथअे तेभने अर्थ पडेवा कडेवाथ गये छे आ उपासक दशांगना स्वइपनु वरुन थयु ॥ सू ५१ ॥

पयसहस्साइ पयग्गेण, संखिज्जा अम्वरा । अणता गमा, अणंता,
पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिवद्धनिका-
इया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जति; पन्नविज्जति पव्विज्जति
दंसिज्जति निदसिज्जति उवदसिज्जति । से एव आया, एवं
नाया, एव विणगाया, एव चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ ।
से त्त अतगडदसाओ ॥ सू० ५२ ॥

छाया-अथ कास्ता अन्तकृतदशाः ? अन्तकृतदशासु खलु अन्तकृताना नगराणि
उद्यानानि चैत्यानि यनपण्डाः समप्रसरणानि राजानः अग्नापितरौ धर्माचार्याः धर्म
कथाः ऐहलौकिक पारलौकिक ऋद्धिनिशेषाः भोगपरित्यागाः प्रव्रज्याः पर्यायाः
श्रुतपरिग्रहाः तप उपधानानि सलेखनाः भक्तप्रत्याख्यानानि पादपोषगमनानि अन्त
क्रिया आख्यायन्ते । अन्तकृतदशासु खलु परीताः वाचनाः सख्येयानि अनुयोग
द्वाराणि यावत् सरयेया वेष्टका, सख्येयाः श्लोकाः, सख्येया निर्युक्तय, सख्येयाः
सग्रहण्यः, सख्येयाः प्रतिपत्तय । ताः खलु अद्गार्थतया अष्टममङ्गम्, एकः श्रुत
स्कन्धः, अष्ट वर्गाः, अष्ट उद्देशनकालाः, अष्ट समुद्देशनकालाः, सख्येयानि पदसह
स्राणि पदाग्रेण, सख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः
त्रसा, अनन्ता स्थावराः शाश्वतकृतनिवद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्या-
यन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । स एवम् आत्मा,
एव ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एव चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता
अन्तकृतदशाः ॥ सू० ५२ ॥

टीका—‘से किं त०’ इत्यादि ।

अथ कास्ता अन्तकृतदशाः ? इति प्रश्नः । उत्तरयति-अन्तकृतदशासु-अन्त =
कर्मणस्तत्फलस्य सासारस्य वाऽन्तसमये विनाशः कृतो यैस्ते-अन्तकृतास्तेषा दशाः

अथ अष्टम अग अन्तकृतदशांगका स्वरूप कहा जाता है-“से किं त
अंतगडदसाओ ?” इत्यादि ।

हुवे आठमा अ ग अ त कृतदशागतु स्वरूप कडेवाभा आवे छे—

“से किं त अतगडदसाओ ?” इत्यादि

=अवस्था'-तत्प्रतिपादका वर्गा यासु ताः, यद्वा-अन्तकृतवक्तव्यताप्रतिबद्धा दशाः=दशाध्ययनरूपा ग्रन्थपद्धतयोऽन्तकृतदशा' । इय व्युत्पत्तिः प्रथमवर्गे दशाध्ययनानि सन्ति-इत्युपलक्ष्य क्रियते, तासु=अन्तकृतदशासु अन्तकृताना मुनीना नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनपण्डा', समवसरणानि, राजानः, अम्वापितरौ, धर्माचार्याः, धर्मकथा', ऐहलौकिकपारलौकिक ऋद्धिविशेषा', भोगपरित्यागा', मन्त्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः=श्रुताध्ययनानि, तपउपधानानि, सलेखनाः, भक्तप्रत्यारयानानि, पादपोषणमनानि, उपधानानि, अन्तक्रिया आख्यायन्ते । अन्तकृतदशासु

प्रश्न-हे भदन्त ! आठवे अग अतकृतदशांग का क्या स्वरूप है ?

उत्तर-इसका स्वरूप इस प्रकार हैं-जिन्होंने कर्म का अथवा कर्म के फलभूत समार का अतसमयमें विनाश अभाव कर दिया है वे हैं अन्तकृत । इन अन्तकृतों की अवस्थाओं का प्रतिपादन करनेवाले वर्ग-अध्ययन जिसमें हैं वह अन्तकृतदशांग है । तात्पर्य यह है कि-इस अतकृतदशांगमें दश अध्ययन हैं, इनमें अन्तकृतों की अवस्थाओं का वर्णन किया गया है इसलिये, अथवा-अन्तकृतों की वक्तव्यता से प्रतिबद्ध इसमें दश अध्ययन रूप ग्रन्थपद्धतिया है इसलिये इसका नाम अन्तकृतदशांग हुआ है । यह व्युत्पत्ति प्रथमवर्गमें कथित दश अध्ययनों की अपेक्षा को लेकर की गई है । इस अगमें-अन्तकृत, मुनियों के नगरों का, उद्यानों का, चैत्यो-व्यन्तरायतनों का, वनपण्डों का, समवसरणों का, राजाओं का, मातापिता का, धर्माचार्यों का, धर्मकथाओं का ऐहलौकिक तथा परलौकिक ऋद्धिविशेषों का, भोगों के परित्याग का

प्रश्न-हे भदन्त ! आठवा अग अतकृतदशांगतु शु स्वरूप छे ?

उत्तर-तेतु स्वरूप आ प्रभाळु छे-जेमळु कर्मने अथवा कर्म इण्डरूप स सारने अत समये विनाश-अभाव करी नाथ्ये छे तेजो अन्तकृत कडेवाथ छे जे अन्तकृतोनी अवस्थाज्योतु प्रतिपादन करनार अध्ययने जेमा छे ते अतकृत दशांग छे तात्पर्य जे छे के-आ अतकृत दशांगमा इस अध्ययन छे, तेमा अतकृतोनी अवस्थाज्योतु वर्णन करवामा आवेल छे तेथी, अथवा अन्तकृतोनी वक्तव्यता वडे प्रतिबद्ध इस अध्ययनउप अथपद्धतिये तेमा छे ते कान्हे तेतु नाम अतकृत दशांग पडथु छे आ अगमा, अतकृत मुनियेना नगरोतु, उद्यानेतु, चैत्यो-व्यन्तरायतनेतु, वनपण्डोतु, समवसरणेतु, राजा-ज्योतु, माता-पितातु, धर्माचार्योतु, धर्मकथाज्योतु, आलोक तथा परलोकनी ऋद्धि

पयसहस्साइं पयग्गेण, सखिज्जा अमखरा । अणंता गमा; अणता,
पज्जवा, परित्ता तसा, अणता धावरा, सासयकडनिवड्ढनिका
इया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जति परूविज्जंति
दसिज्जति निदसिज्जति उवदसिज्जति । से एवं आया, एवं
नाया, एव विणगाया, एव चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ ।
से त्त अतगडदसाओ ॥ सू० ५२ ॥

छाया—अथ कास्ता अन्तकृतदशाः ? अन्तकृतदशासु खलु अन्तकृताना नगराणि
उद्यानानि चैत्यानि न्नपण्डाः समप्रसरणानि राजानः अग्रापितरौ धर्माचार्याः धर्म
कथाः ऐहलौकिक पारलौकिक ऋद्धिविशेषाः भोगपरित्यागा. प्रव्रज्याः पर्यायाः
श्रुतपरिग्रहाः तप उपधानानि सलेखनाः भक्तप्रत्याख्यानानि पादपोषणानि अन्त
क्रिया आरुपयन्ते । अन्तकृतदशासु खलु परीताः राचनाः सख्येयानि अनुयोग
द्वाराणि यावत् सख्येया घेष्टकाः, सख्येयाः श्लोकाः, सख्येया निर्युक्तय, सख्येयाः
सग्रहण्यः, सख्येयाः प्रतिपत्तयः । ताः खलु अद्धार्यतया अष्टममङ्गम्, एकः श्रुत
स्कन्धः, अष्ट वर्गाः, अष्ट उद्देशनकालाः, अष्ट समुद्देशनकालाः, सख्येयानि पदसह
स्राणि पदाग्रेण, सख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीताः
व्रसा, अनन्ता स्थावराः शाश्वतकृतनिवद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आरुपय-
यन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । स एवम् आत्मा,
एव ज्ञाता, एव विज्ञाता, एव चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता
अन्तकृतदशाः ॥ सू० ५२ ॥

टीका—‘से किं त०’ इत्यादि ।

अथ कास्ता अन्तकृतदशाः ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—अन्तकृतदशासु—अन्त =
कर्मणस्तत्फलस्य सासारस्य वाऽन्तसमये विनाश. कृतो यैस्ते—अन्तकृतास्तेषा दशाः

अब अष्टम अग अन्तकृतदशांगका स्वरूप कहा जाता है—“से किं त
अंतगडदसाओ ?” इत्यादि ।

हुवे आठमा अ ग अ त कृतदशांगनु स्वइप ढडेवाभा आवे छे—

“से किं त अतगडदसाओ ?” इत्यादि

नवमाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से किं त अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइ-
दयासु ण अणुत्तरोववाइयाणं नगराइ उज्जाणाइ चेइयाइं वण-
सडाइं समोसरणाइ रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मक-
हाओ इहलोगपरलोइया इइडिडिसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ
परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइ पडिमाओ उवसग्गा संले-
हणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइ, अणुत्तरोववाइयत्ते
उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुण वोहिलाभा, अंतकिरियाओ
आघविज्जंति । अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्तावायणा, सखेज्जा
अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ
निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ सगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।
से ण अगट्टयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिन्नि वग्गा,

यावरा, सासयकडनिवद्ध निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघतज्जति
पण्णविज्जति, पखविज्जति, दसिज्जति, निदसिज्जति, उवदसिज्जति से
एवआया, एवणाया, एव विण्णाया” इन समस्त पदो का अर्थ आचाराग
के स्वरूप का निरूपण करते समय कर दिया गया है । इस प्रकार इस
अगमे उपर्युक्त प्रकार से अन्तकृत मुनियों की चरणसत्तरी तथा करण
सत्तरी का आख्यान प्रज्ञापन आदि करनेमें आया है । इस तरह से अन्त-
कृतदशाङ्ग का यह स्वरूप जानना चाहिये ॥ सू० ५० ॥

निकाइया, जिणपण्णता भावा, आघविज्जति पण्णविज्जति पखविज्जति दसि
ज्जति, निदसिज्जति, उवदसिज्जति से एव आया एव णाया एव विण्णाया”
ये णधा पहोनेो अर्थ आचाराग सूत्रतु स्वइपनिइपथु उरती वपते आपी
रीयो छे आ रीते आ अगमा उपर उह्या प्रभाणु अतकृत मुनिओनी अरथ
सत्तरी तथा करणु सत्तरीतु आभ्यान, प्रज्ञापना आदि उरवामा आण्यु छे आ
रीते अतकृतदशागतु आ स्वइप समणु ॥ सू ५२ ॥

खलु परीताः=संगत्याता वाचनाः, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टकाः, सरयेया श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, तथा-संख्येया' सग्रहण्य', संख्येयाः प्रतिपत्तयः। ताः खलु अज्ञार्थतया अष्टममङ्गम्। अत्र-एक' श्रुतस्कधः, अष्टवर्गाः, अष्ट उद्देशनकालाः, अष्ट समुद्देशनकालाः। सरयेयानि पदसहस्राणि=त्रयोविंशति लक्षाणि चतु' सहस्राणि च पदानि पटाग्रेण=पदपरिमाणेन प्रज्ञप्तानि। सरयेयानि अक्षराणि अनन्ता गमाः, अनन्ता पर्यायाः, परीता'=अमरयाताः त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, एते उपरिनिर्दिष्टाः शाश्वत कृत निरुद्ध निरुचिता जिनप्रज्ञा भावा अत्र आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दृश्यन्ते, निदृश्यन्ते, उपदृश्यन्ते। स एवमात्मा भवति, स एव ज्ञाता, स एव विज्ञाता च भवति। एतम्=उपरिनिर्दिष्ट प्रकारेणात्र अन्तकृताना मुनीना चरणकरण प्ररूपणा आख्यायते। उपसहरति-'से त०' इत्यादि। ता एता अन्तकृतदशा' - अन्तकृतदशाङ्गस्वरूपमेव विज्ञेयमिति भावः ॥ सू० ५२ ॥

प्रव्रज्या का पर्यायों का, श्रुतों के अध्ययन का, तप उपधानों का, सलेखना का, भक्तप्रत्याख्यानो का पादपोषगमन का और अन्तक्रिया का वर्णन किया गया है।

इस अगमें सख्यात वाचनार्थ हैं, सख्यात अनुयोग द्वार हैं, सख्यात वेष्टक है, सख्यात श्लोक है, सख्यात निर्युक्तियाँ, सख्यात संग्रहणियाँ हैं एव सरयात प्रतिपत्तिया है। यह अगों की अपेक्षा आठमाँ अग है। इसमें एक श्रुतस्कध है। आठ वर्ग है। आठ उद्देशनकाल और आठ समुद्देशन काल है।

तेईस लाख चार हजार (२३४०००) इसमें पद है। सख्यात अक्षर है। इससे आगे "अणता गमा, अणता पज्जवा, परीता तसा, अणता

विशेषानु, लोगोना परित्यागनु प्रप्रन्यानु पर्याथानु, श्रुतोना अध्ययननु, तप उपधानानु, सलेखनानु, लक्षत प्रत्याख्यानानु, पादपोषगमननु अने अतक्रियानु वर्णन करवाभा आव्यु थे,

आ अगमा सख्यात वाचनाओ थे, सख्यात अनुयोग द्वार थे सख्यात वेष्टक थे, सख्यात श्लोक थे, सख्यात निर्युक्तियो, सख्यात संग्रहणियो अने सख्यात प्रतिपत्तियो थे अगोनी अपेक्षाओ आ आठसु अग थे तेमा ओक श्रुतस्कध थे आठ वर्ग थे आठ उद्देशनकाल अने आठ समुद्देशन काल थे तेमा तेवीस लाख चार हजार (२३४०००) पद थे, सख्यात अक्षर थे अही थी लखने

"अणता गमा, अणता पज्जवा, परीता तसा अणता

नवमाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से किं न अणुत्तरोववाडयदसाओ ? अणुत्तरोववाड-
 द्यासु णं अणुत्तरोववाडयाण नगराइ उजाणाड चेडयाइं वण-
 संडाइं समोसरणाड रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मक-
 हाओ इहलोगपरलोइया इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वजाओ
 परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइ पडिमाओ उवसग्गा सले-
 हणाओ भत्तपच्चक्खाणाइ, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाडयत्ते
 उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुण वोहिलाभा, अतकिरियाओ
 आघविज्जति । अणुत्तरोववाडयदसासु ण परित्तावायणा, सखेज्जा
 अणुओगदारा, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ
 निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ सगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।
 से ण अगट्टयाए नवमे अगे, एगे सुयक्खंधे, तिन्नि वग्गा,

यावरा, सासयकडनिवद्ध निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघतज्जति
 पण्णविज्जति, परुविज्जति, दमिज्जति, निदसिज्जति, उवदसिज्जति से
 एवआया, एवणाया, एव विण्णाया ” इन समस्त पदों का अर्थ आचाराग
 के स्वरूप का निरूपण करते समय कर दिया गया है । इस प्रकार इस
 अगमे उपर्युक्त प्रकार से अन्तकृत मुनियों की चरणमत्तरी तथा करण
 मत्तरी का आख्यान प्रज्ञापन आदि करनेमें आया है । नम तरह से अन्त-
 कृतदशाङ्ग का यह स्वरूप जानना चाहिये ॥ सू० ५२ ॥

निकाइया, जिणपण्णत्ता भावा, आघविज्जति पण्णविज्जति परुविज्जति दमि
 ज्जति, निदंसिज्जति, उवदसिज्जति से एव आया एव णाया एव विण्णाया ”
 ओ णथा पटोनेो अर्थ आचाराग सूत्रनु स्वइपनिइपणु उरती वधते आपी
 द्वीधो छे आ रीते आ अगमा उपर उह्या प्रमाळे अतकृत मुनिओानी अरणु
 मत्तरी तथा करणु मत्तरीनु आअ्यान, प्रज्ञापना आदि उरवाभा आओयु छे आ
 रीते अतकृतदशागनु आ स्वइप सभअपु ॥ सू. ५२ ॥
 न० ७७

तिद्धि उद्देशणकाला, तिद्धि समुद्देशणकाला, संवेजाडं पयसह-
स्साडं पयग्गेण, सखेज्जा अकररा, अणता गमा, अणंता पज्जवा,
परित्ता तसा, अणंता थावरा सासयकडनिवद्धनिकाइया जिण
पण्णत्ता भावा आघविज्जति, पण्णविज्जंति, परूविज्जति, दंसि
ज्जति, निदसिज्जंति उवदसिज्जति, से एव आया, एव नाया,
एव विण्णाया, एव चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ ६ ।
से त्तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ सू० ५३ ॥

छाया—अथ कास्ता अनुत्तरोपपातिकदशा ? अनुत्तरोपपातिकदशासु खलु
अनुत्तरोपपातिकाना नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनपण्डाः राजानः अम्बापितरौ
समवसरणानि धर्माचार्याः धर्मरूपाः ऐहलौकिक पाग्लौकिक क्रद्धिविशेषाः भोग
परित्यागाः प्रज्याः पर्यायाः श्रुतपरिग्रहाः तप उपधानानि प्रतिमा उपसर्गाः
सलेखनाः भक्तप्रत्यारयानानि पादपोषगमनानि अनुत्तरोपपातिकत्वे उपपातः,
सुकुलप्रत्यायातयः पुनर्बोधिलाभा अन्तक्रिया आख्यायन्ते अनुत्तरोपपातिकदशासु
खलु परीता वाचनाः, सख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, सख्येया वेष्टकाः, सख्येया-
श्लोकाः, सख्येया निर्धुक्तयः, सख्येयाः सग्रहण्यः, सरयेयाः प्रतिपत्तयः । ताः
खलु अज्ञार्थतया नममद्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः त्रयो वर्गाः, त्रय उद्देशनकालाः,
त्रयः समुद्देशनकाला, सख्येयानि पद सहस्राणि पदाग्रेण, सख्यातानि अक्षराणि,
अनन्ता गमाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ता स्थावराः, शाश्वतकृतनिम्बनिकाचिता
जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, परूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपद-
श्यन्ते, स एवमात्मा, एव ज्ञाता, एव विज्ञाता, एव चरणकरणपरूवणा आख्या
यते, ता एता अनुत्तरोपपातिकदशाः ॥ सू० ५३ ॥

टीका—‘से किं त०’ इत्यादि ।

अथ कास्ता अनुत्तरोपपातिकदशा ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—अनुत्तरोपपाति-
कदशासु—न विद्यते उत्तरः श्रेष्ठोऽस्मादित्यनुत्तरः उपपत्तनम्—उपपातः=जन्म, अनु-
त्तर उपपातो येषां तेऽनुत्तरोपपातास्त एव—अनुत्तरोपपातिकास्तेषां दशास्तासु
तथोक्तासु खलु अनुत्तरोपपातिकानां श्वनीना नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वन-

पण्डाः, राजानः, अम्बापितरः, समवसरणानि, धर्माचार्याः धर्मकथाः, इहलोक परलोक ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः=भोगपरिहाराः, प्रत्रज्याः, पर्यायाः, श्रुत-परिग्रहाः, तप उपधानानि, प्रतिमाः उपसर्गाः, सलेखनाः, भक्तप्रत्याग्यानानि, पाद-पोषगमनानि, अनुत्तरोपपातिकृत्वे=अनुत्तरोपपातिकविमानेषु=उपपत्ति=उपपातः, मुकुलप्रत्यायातयः=अनुत्तरविमानादायुः क्षयेण च्युताना तेषा शोभनेषु कुलेषु जन्मानि,

अब नौवें अगका स्वरूप कहते हैं—‘से किं त अणुत्तरोववाइय-दसाओ०’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त ! अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग का क्या स्वरूप है ? उत्तर—जिसकी अपेक्षा और कोई दूसरा जन्म श्रेष्ठ न हो उसका नाम अनुत्तरोपपात है । यह अनुत्तरोपपात जिनका होता है वे अनुत्तरोप-पातिक हैं । इनकी अवस्थाओं का जिसमें वर्णन है वह अनुत्तरोपपातिक-दशाङ्ग है । इस अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग में अनुत्तरोपपातिक मुनियों के नगरों का, उद्यानों का, चैत्योंव्यन्तरायतनों का, वनपंडों का, राजाओं का, मातापिता का, समवसरणों का, धर्माचार्यों का, धर्मकथाओं का, इस लोक सनधी तथा परलोक सनधी ऋद्धिविशेषों का, भागों के परित्याग का, दीक्षा का पर्यायों का, श्रुत के अध्ययन का दुष्करतपों का, विविध अवस्थाओं का, चारह भिक्षु प्रतिमाओं का, उपसर्गों का, भक्तप्रत्याख्यान नामके सथारे का, पादपोषगमन नामके सथारे का, अनुत्तरोपपात का-अनुत्तर विमानों में उत्पत्ति होने का, फिर वहां से आयु के अन्त में

हुवे नवमा अणुत्तरोववाइय-दसाओ०” इत्यादि—

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त ! अनुत्तरोपपातिक दशाङ्गनु शु स्वरूप छे ? उत्तर—जेना उरता थीने केई पणु जन्म श्रेष्ठ न होय तेनु नाम अनुत्तरोपपात छे जेने आ अनुत्तरोपपात थाय छे तेओ अनुत्तरोपपातिक कहेवाय छे आ अनुत्तरोपपातिक दशाङ्गमा अनुत्तरोपपातिक मुनियोना नगरोनु उधानोनु, चैत्यो-व्यन्तरायतनोनु, वनपंडोनु, राजओनु, मातापितानु, समवसरणोनु, धर्मोचार्योनु, धर्मकथाओनु, आदो तथा परलोकनी भास ऋद्धियोनु, लोकोना परित्यागनु, दीक्षानु, पर्यायोनु, श्रुतना अव्ययननु, दुष्करतपोनु, विविध अवस्था ओनु, चार लिखु प्रतिमाओनु, उपसर्गोनु, सलेखना भरणुनु, भक्त प्रत्याख्यान नामना सथारानु, पादपोषगमन नामना सथारानु, अनुत्तरोपपातनु-अनुत्तर वि-मानोना उत्पत्ति थवानु, वणी त्याथी आयुध्य पूर्व थता म्यवीने उत्तम कुणोमा

पुनर्गोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्च=मौलमात्रिलक्षणाश्च आख्यायन्ते । अनुत्तरोपपातिक
 दशासु खलु परीताः=मग्याता वाचनाः, मग्यानि अनुयोगद्वाराणि, मग्या
 वेष्टकाः, सरयेयाः श्लोकाः, मग्या निर्युक्तयः, मग्याः सग्रह्यः, सरयेयाः
 प्रतिपत्तयः । ताः खलु अर्थात्तया नवममङ्गम् । जत्र-एक श्रुतस्त्वः त्रयोवर्गाः,
 त्रय उद्देशनकाला, त्रयः समुद्देशनकालाः, सग्यानि पदसप्तमाणि=पट्वत्वारिंश
 छक्षाणि अष्टौ च सदस्याणि (४६०८०००) पदानि पदाग्रण=पदपरिमाणेन,
 सख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ता पर्यया, परीतास्रसाः, अनन्ता
 म्थावराः, शाश्वतकृतनिवृद्धनिराचिता जिनमात्रा भावा आख्यायन्ते, प्रत्याप्यन्ते,
 प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, ए एवमात्मा, एव ज्ञाता, एव विज्ञाता
 एव चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता अनुत्तरोपपातिकदशाः ।
 व्याख्या पूर्ववत् बोध्या ॥ सू० ५३ ॥

कथं कर उत्तम कुलो में उनके जन्म लेने का पुन गोधिप्राप्ति का
 तथा अन्त में मोक्ष प्राप्त करने का कथन किया हुआ है । इस
 अग में सख्यात वाचनाएँ हैं सख्यात अनुयोग द्वार हैं सरयात
 वेष्टक हैं, सख्यात श्लोक हैं, सरयात निर्युक्तियाँ हैं । सरयात सग्र
 णियाँ हैं और सख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह अग, अग की अपेक्षा नवमा
 अग है । इसमें एक श्रुतस्त्व है, तीन वर्ग हैं, तीन उद्देशनकाल हैं,
 तीन समुद्देशनकाल हैं । इसमें पदों का परिमाण त्र्यालीस लाख आठ
 हजार (४६०८०००) हैं । सख्यात अक्षर हैं । यहाँ भी “अनन्तागमाः”
 इत्यादि पाठ का अर्थ पहले की भाँति समझ लेना चाहिये । इस तरह
 इस अग में साधुओं के चरण और करण की प्ररूपणा हुई है । यह
 अनुत्तरोपपातिकदशा का स्वरूप है ॥ सू० ५३ ॥

तेभनो जन्म भवानु, पुन गोधि प्राप्तिनु तथा छेवटे मौल प्राप्तिनु वरुन उरवाभा
 आण्यु छे आ अगमा सख्यात वाचनाओ छे, सख्यात अनुयोग द्वार छे, सख्यात
 वेष्टक छे सख्यात श्लोक छे, सख्यात निर्युक्तियो छे, सख्यात सग्रहणियो
 छे, अने सख्यात प्रतिपत्तियो छे अगोनी अपेक्षाओ आ नवमु अग छे तेभा
 ओक श्रुतस्त्व छे, त्रयु वर्गो छे, त्रयु उद्देशनकाल तथा त्रयु समुद्देशनकाल छे तेभा
 उताणीश लाभ आठ हजार (४६०८०००) पद छे सख्यात अक्षर छे अर्द्धी
 पञ्च “अणता गमा” इत्यादि पाठनो अर्थ आगणनी जेम ममल देवो
 नेछये आ रीते आ अगमा साधुओना चरण अने करणनी प्ररूपणा थर्ध
 छे अनुत्तरोपपातिक दशातु आ स्वरूप छे ॥ सू० ५३ ॥

सम्प्रति प्रश्नव्याकरणनामक दशममङ्गमाह —

मृचम्—से कि त पणहावागरणाइ ? पणहावागरणेषु णं अट्टु-
त्तर पसिणसय अट्टुत्तर अपसिणसयं, अट्टुत्तर पसिणापसि-
णसय, त जहा—अगुट्टपसिणाइ, वाहुपसिणाइ, अदागपसिणाइ,
अन्ने वि विचित्ता विज्जाडसया, नागसुवन्नेहि, सद्धि दिव्वा
संवाया आघविज्जति । पणहावागराण परित्ता वायणा, सखेज्जा
अणुओगदारा, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ
निज्जुत्तीओ, सखेज्जाओ सगहणीओ, सखेज्जाओ पडिवत्तीओ ।
से ण अगट्टयाए दसमे अगे, एगे सुयक्खधे, पणयालीस अज्जयणा
पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, सखेज्जाइं
पयसहस्साय पयग्गेण, सखेज्जा अक्खरा, अणता गमा
अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा, सासयकडनिवद्ध-
निकाइया जिणपणत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति,
परुविज्जति, दसिज्जति, निदसिज्जति, उवदसिज्जति । से एव
आया, एव नाया, एव विण्णाया एव चरणकरणपरुवणा आघ-
विज्जइ ६ । से त्त पण्णावागरणाइ ॥ सू० ५४ ॥

उाया—अथ कानितानि प्रश्नव्याकरणानि ? प्रश्नव्याकरणेषु खलु अप्ठोत्तर
प्रश्नशतम्, अप्ठोत्तरम् अप्रश्नशतम्, अष्टोत्तर प्रश्नाप्रश्नशत विद्यातिशयाः, नागसु-
पर्णे. सार्द्धं दिव्यासवादा आख्यायन्ते, तद्यथा—अइ गुण्ठप्रश्नाः, वाहुप्रश्नाः, आद-
र्शप्रश्ना अन्येऽपि त्रिचिन्ना प्रश्नव्याकरणाना परीता राचनाः, सख्येयान्यनुयोग-
डाराणि, मरयेया वेष्टका. सख्येयाः २ ओकाः, सख्येया. निर्युक्तय, सख्येया
सगहण्यः, सख्येया प्रतिपत्तयः । तानि खलु अङ्गार्थतया दशममङ्गम्, एक श्रुत

पुनर्गोधिलाभा', अन्तक्रियाश्र=मोक्षप्राप्तिलक्षणाश्र आग्यायन्ते । अनुत्तरोपपातिक
 दशासु खलु परीताः=मग्याता वाचनाः, मग्येयानि अनुयोगद्रागणि, सख्येया
 वेष्टकाः, सख्येयाः श्लोकाः, मग्येया निर्युक्तयः, मग्येयाः सग्रहण्यः, संख्येयाः
 प्रतिपत्तयः । ताः खलु अद्गर्धतया नवममद्गम् । अत्र-एकः श्रुतस्कन्धः त्रयोवर्गाः,
 त्रय उद्देशनकाला, त्रयः समुद्देशनकालाः, मग्येयानि पदसहस्राणि=पदचत्वारिंश
 छक्षाणि अष्टौ च सहस्राणि (४६०८०००) पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन,
 सख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ता पर्यया, परीतास्रसाः, अनन्ता
 स्थावराः, शाश्वतकृतनिर्द्धनिकाचिता जिनप्रज्ञा भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते,
 प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते, निदर्शयन्ते, उपदर्शयन्ते, म एवमात्मा, एव ज्ञाता, एव विज्ञाता
 एव चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते ६ । ता एता अनुत्तरोपपातिकदशाः ।
 व्याख्या पूर्ववत् बोध्या ॥ सू० ५३ ॥

च्यव कर उत्तम कुलों में उनके जन्म लेने का पुन' रोधिप्राप्ति का
 तथा अन्त में मोक्ष प्राप्त करने का कथन किया हुआ है । इस
 अग में सख्यात वाचनाएँ हैं सख्यात अनुयोग द्वार हैं सख्यात
 वेष्टक है, सख्यात श्लोक है, सख्यात निर्युक्तियाँ हैं, सख्यात सग्रह
 णियाँ हैं और सख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह अग, अग की अपेक्षा नवमा
 अग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, तीन वर्ग है, तीन उद्देशनकाल है,
 तीन समुद्देशनकाल हैं । इसमें पदों का परिमाण छयालीस लाख आठ
 हजार (४६०८०००) है । सख्यात अक्षर है । यहा भी "अनन्तागमा"
 इत्यादि पाठ का अर्थ पहले की भाँति समझ लेना चाहिये । इस तरह
 इस अग में साधुओं के चरण और करण की प्ररूपणा हुई है । यह
 अनुत्तरोपपातिकदशा का स्वरूप है ॥ सू० ५३ ॥

तेमने जन्म थावतु, पुन रोधि प्राप्तिनु तथा छेवटे मोक्ष प्राप्तिनु वरुण करवामा
 आव्यु छे आ अगमा सख्यात वाचनायो छे, सख्यात अनुयोग द्वार छे, सख्यात
 वेष्टक छे सख्यात श्लोक छे, सख्यात निर्युक्तियो छे, सख्यात सग्रहणियो
 छे, अने सख्यात प्रतिपत्तियो छे अगोनी अपेक्षाये आ नवमु अग छे तेमा
 एक श्रुतस्कन्ध छे, त्रय वर्गो छे, त्रय उद्देशनकाल तथा त्रय समुद्देशनकाल छे तेमा
 उताणीश लाख आठ हजार (४६०८०००) पद छे सख्यात अक्षर छे अर्द्धा
 पञ्च "अणता गमा" इत्यादि पाठने अर्थ आगणनी जेम ममल देवो
 जेधये आ रीते आ अगमा साधुओना अरल्ल अने करल्लनी प्ररूपणा यध
 छे अनुत्तरोपपातिक दशातु आ स्वरूप छे ॥ सू० ५३ ॥

वेण अङ्गुष्ठवाह्यादयोऽपि पृष्ठाना विषयाणामुत्तर ददति ता मन्त्रविद्या अङ्गुष्ठवाहु-
प्रश्नादिका उच्यन्ते । ता एव इह प्रश्नशब्देन विवक्षिता इति । याः पुनर्विद्या मन्त्र-
विधिना जप्यमाना अपृष्ठा एव शुभाशुभ कथयन्ति ता अप्रश्नाः याः पुनर्विद्या
जङ्गुष्ठादि प्रश्नभाव तदभाव चाधिगम्य शुभाशुभ कथयन्ति ताः प्रश्नाप्रश्नाः ।
एते चतुर्विंशत्यधिरुत्रिशतसंख्यकाः प्रश्नाप्रश्न-प्रश्नाप्रश्नाः आख्यायन्ते । तानेवाह
-तद्यथा-अङ्गुष्ठप्रश्नाः, बाहुप्रश्नाः, आदर्शप्रश्नाः, तथा-इतोऽन्येऽपि विचित्राः=
अनेकविधाः । विद्यातिशयाः=स्तम्भनवशीकरणविद्वेषणोच्चाटनादयः, तथा-साध-
काना नागसुपर्णैः=उपलक्षणत्वाद् यक्षादिभिश्च सह दिव्याः=तात्त्रिका सवादाः=

वाहु आदि, पूछे हुए विषयों का उत्तर देते हैं वे मन्त्रविद्याए यहा प्रश्न शब्द
से गृहीत हुई हैं । जो विद्याएँ मन्त्रकी विधिके अनुसार जपी जाने पर
विना पूछे ही शुभ और अशुभको बतलाती हैं वे अप्रश्न शब्दसे यहाँ
गृहीत हुई हैं । तथा जो विद्याएँ अगुष्ठ आदिके प्रश्नभावको तथा इनके
अभावको लेकर शुभ और अशुभ को प्रकट करती हैं वे प्रश्नाप्रश्न हैं,
और इनका ग्रहण यहाँ प्रश्नाप्रश्न शब्दसे हुआ है । इन सबकी संख्या
योग करने पर तीससौ चौबीस ३२४ होती है । इन्हीं प्रश्न आदिको को
सूत्रकार 'त जहा' इत्यादिसे सूचित करते हैं, वे कहते हैं कि इस अङ्ग
में अङ्गुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न, आदर्शप्रश्नका वर्णन किया गया है, तथा
इनसे अतिरिक्त अनेक प्रकारके जो स्तम्भन, विद्वेषण, वशीकरण उच्चाटन
आदि ये विद्यातिशय हैं, तथा नागसुपर्णों के साथ एव उपलक्षणसे यक्ष

अगुष्ठ आहु आदि, पूछवामा आवेल विषयेनो उत्तर आपे छे ते मन्त्रविद्याओ
अही प्रश्न शब्दथी गृहीत थयेल छे जे विद्याओ मन्त्री विधि प्रभाषे जपी
जवा छता पक्ष विना पूछये न शुभ अने अशुभने भतावे छे ते अप्रश्न छे,
अने अमनु न अप्रश्न शब्दथी अही अक्षय थयेल छे तथा जे विद्याओ
अगुष्ठ आदिना प्रश्नभावने तथा तेमना अभावने लधने शुभ अने अशुभने
प्रकट करे छे तेओ प्रश्नाप्रश्न कहेवाय छे, अने अही प्रश्नाप्रश्न शब्द वडे
तेमनु अक्षय करायेल छे आ भधानो सरवाणो करता तेमनी कुल मथ्या त्रयुसो
चौबीस (३२४) थाय छे ते प्रश्न वगेरेने सूचित करवा भाटे सूत्रकारे 'त जहा'
इत्यादि पदो आप्या छे, तेओ कडे छे के आ अगमा अगुष्ठप्रश्न, आहुप्रश्न,
आदर्शप्रश्न वगेरेनु वर्णन करवामा आब्यु छे अने तेनाथी अतिरिक्त अनेक
प्रकारना जे स्तम्भन, विद्वेषण, वशीकरण, उच्चाटन आदि जे विद्यातिशय छे,
तथा नागसुपर्णोनी साथे अने उपलक्षणथी यक्ष आदिदेनी साथे साधकलोकेनी

स्कन्धः, पञ्चचत्वारिंशदध्ययनानि पञ्चचत्वारिंशद् उद्देगनकाला, पञ्चचत्वारिंशत् समुद्दे-
शनकालाः, सख्येयानि पदसहस्राणि पदोद्देश, सख्येयानि, अक्षराणि, अनन्तागमा-
अनन्ताः पर्यायाः, अनन्ताः पर्यायाः, परीतास्तसाः, अनन्ताः स्यावराः, शाश्वत
कृतनिबद्धनिकाचिताः जिनप्रज्ञा भावा आग्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते,
दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एव ज्ञाता, एव विज्ञाता, एव
चरणकरणप्ररूपणा आग्यायते तान्येतानि प्रश्नव्याकरणानि ॥ सू० ५४ ॥

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—

गणिपिटकस्य दशमाङ्गस्वरूपजिज्ञासया पृच्छति—अथ कानितानिप्रश्नव्याक-
रणानि—प्रश्ना = जिज्ञासाविषयीभूता. पदार्थाः, व्याकरणानि = तन्निर्वचनानि, एतेषां
योगादङ्गमपि प्रश्नव्याकरणानि, अथवा—प्रश्नव्याकरणानि च सन्ति येषु तानि-
प्रश्नव्याकरणानि ?, उत्तरयति — प्रश्नव्याकरणेषु खलु अष्टोत्तर प्रश्नशतम् =
अष्टोत्तरशतसंख्यका प्रश्नाः, अष्टोत्तरमप्रश्नशतम् — अष्टोत्तरशतसंख्यका
अप्रश्नाः, अष्टोत्तर प्रश्नाप्रश्न शतम् — अष्टोत्तरशतसंख्यकाः प्रश्नाप्रश्नाः,
तत्र—अङ्गुष्ठग्राह्यप्रश्नादिका मन्त्रविद्याः प्रश्नाः अथ भावः—यासा मन्त्रविद्याना प्रमा

अथ दशवे अग प्रश्नव्याकरणका स्वरूप उतलाया जाता है—

‘से किं त पण्हावागरणाइ०’ इत्यादि ।

शिष्य पूछता है—हे भदन्त ! दशवें अग प्रश्नव्याकरणका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जिज्ञासाके विषयभूत पदार्थ और उनका निर्वचन, इन दोनों के योग से यह अग भी ‘प्रश्नव्याकरण’ इस नामसे कहा गया है । अथवा प्रश्न और व्याकरण (उत्तर) ये दोनों जिस अगमे हैं वह प्रश्नव्याकरण है । इस प्रश्नव्याकरणमे एकसौ आठ १०८ प्रश्न, एकसौ आठ १०८ अप्रश्न तथा एकसौ आठ १०८ ही प्रश्नाप्रश्न हैं । जिन मन्त्रविद्याओके प्रभावसे अगुष्ठ

हवे दशमा अग “प्रश्नव्याकरणम्” तु स्वरूप जताववामा आवे छे—
“से किं त पण्हावागरणाइ०” इत्यादि

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! दशमा अग प्रश्नव्याकरणम् तु स्वरूप छे ?

उत्तर—जिज्ञासाना विषयभूत पदार्थी अने तेमनु निर्वचन, अने अनेना योगधी आ अग पण्हा “प्रश्नव्याकरणम्” ना नामे ओणपाय छे अथवा प्रश्न अने व्याकरण—(उत्तर) अने अनेनेने अगमा छे ते प्रश्नव्याकरण नामतु अग छे आ प्रश्नव्याकरणमा ओकसो आठ (१०८) प्रश्नी, ओकसो आठ (१०८) अप्रश्न अने ओकसो आठ (१०८) अ प्रश्नाप्रश्न छे, अने मन्त्रविद्याओना प्रभावध

एकादशाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से किं तं विवागसुयं ? विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं
 कम्माणं फलविवागो आघविज्जड । तत्थ णं दस दुहविवागा,
 दस सुहविवागा । से किं तं दुहविवागा ? दुहविवागेषु णं दुह-
 विवागाणं नगराइं उज्जाणाइ वणसडाइ चेइयाइ समोसरणाइं
 रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपर-
 लोइया इइढिविसेसा, निरयगमणाइं ससारभवपवंचा, दुहपरं-
 पराओ दुक्कुलपच्चायाईओ दुल्लहवोहियत्त आघविज्जति । से
 त्तं दुहविवागा । से किं तं सुहविवागा ? सुहविवागेषु णं सुह-
 विवागाणं नगराइं उज्जाणाइ वणसडाइं समोसरणाइ रायाणो
 अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइय
 इइढिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ परियागा सुयपरिग्ग-
 हातवोवहाणाइ सलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइ, पाओवगम-
 णाइ, देवलोगगमणाइं, सुहपरम्पराओ, सुक्कुलपच्चायाईओ,
 पुणवोहिलाहा, अत्तकिरियाओ आघविज्जति । विवागसुयस्सणं
 परित्ता वायणा, सखेज्जा अणुओगदारा, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा
 सिलोगा, सखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, सखिज्जाओ सगहणीओ
 सखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से ण अंगद्वयाए इक्कारसमे अगे,
 दो सुयक्खधा, वीसं अज्झयणा, वीस उद्देसणकाला, वीस समु-
 द्देसणकाला, सखेज्जाइ पयसहस्ताइ पयग्गेणं, सखेज्जा अक्खरा,
 अणता गमा, अणता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा,

સલાપશ્ચ આસ્વાયન્તે । તથા પ્રશ્નવ્યાકરણેષુ ચત્તુ પરીતાઃ=સર્ગ્યેયા વાચનાઃ, સર્ગ્યેયાનિ અનુયોગદ્વારાણિ, સર્ગ્યેયા વેષ્ટકા, સર્ગ્યેયાઃ શ્લોકાઃ, સર્ગ્યેયા નિર્યુક્તયઃ, સર્ગ્યેયાઃ સમ્પ્રદષ્ટ, સર્ગ્યેયાઃ પ્રતિપત્તયઃ તાનિ ચત્તુ અદ્યાર્થતયા દશ મમદ્ગમ્ । અત્ર-૫૧ઃ શ્રુતસ્કન્ધઃ, પદ્યચત્વાર્શિદુદ્દેશનકાલા, મહાપશ્ચવિગ્રામાનઃ પ્રશ્નવિદ્યાદિમતિપાદક પ્રશ્નવ્યાકરણાપેશ્યયા પદ્યચત્વાર્શિદુદ્દેશનકાલઃ ઉક્તાઃ, વદિ ચ્છિત્તયા સામ્પત દશાધ્યયનત્વેન દશૈયોદેશનકાલા લભ્યન્તે ઇતિ ચોષ્યમ્ । પશ્ચ ચત્વાર્શિશ્તસમુદેશનકાલા, સર્ગ્યેયાનિ પદમહત્માણિ=દ્વિનચતિલક્ષાણિ પોઢશમહત્માણિ (૧૨૧૬૦૦૦) ચ પદાનિ પદાગ્રેણ=પદપરિમાણેન, સર્ગ્યેયાનિ અક્ષરાણિ, અનન્તા ગમા, અનન્તાઃ પર્યયા, પરીતાહ્વામા, અનન્તા સ્વાયરાઃ, ઇત્યારમ્ય એવ ચરણકરણપ્રરૂપણાઆસ્વાયન્તે-ઇત્યન્ત પૂર્વપદન્યાગ્યેયમ્ । ઉપસદ્વાદ- 'સે ત્ત' ઇત્યાદિ તાન્યેતાનિ પ્રશ્નવ્યાકરણાનિ ॥ સૂ૦ ૫૪ ॥

આદિકોં કે સાચ જો સાધકુજનોં કા તાત્વિક મલાપ હોતા હૈ વહ દિવ્ય સવાદ હૈ । ઉનકા મી હસ અગમેં વર્ણન કિયા ગયા હૈ ।

હસ અગમેં સરયાત વાચનાં હૈ, સરયાત અનુયોગ દાર હૈ, સર્ગ્યાત વેષ્ટક હૈ, સર્ગ્યાત શ્લોક હૈ, સર્ગ્યાત નિર્યુક્તિયાં હૈ, સર્ગ્યાત સમ્પ્રહણિયા હૈ, સર્ગ્યાત પ્રતિપત્તિયા હૈ । યદ અગકી અપેક્ષા દસવાં અગ હૈ । હસમેં ૫૧ શ્રુતસ્કન્ધ હૈ । પૈતાલીસ ઉદ્દેશનકાલ ઓર પૈતાલીસ હી સમુદ્દેશન કાલ હૈ । પદપરિમાણસે હસમેં સરયાત-૧૨૧૬૦૦૦ વાનવે લાખ સોલહ હજાર પદ હૈ । સર્ગ્યાત અક્ષર હૈ, અનત ગમ હૈ ઇત્યાદિ સબ પીહે કહી ગઈ વાચના ચરણકરણપ્રરૂપણાપર્યન્ત યદા લગા લેની વ્હાહિયે । હસ પ્રકાર યદ પ્રશ્નવ્યાકરણ કા સ્વરૂપ હૈ ॥ સૂ૦ ૫૪ ॥

ને તાત્વિક સવાદ થાય છે તે દિવ્યસવાદ છે, તેઓનુ પણ આ અગમા વર્ણન કરવામા આવ્યુ છે આ અગમા સખ્યાત વાચનાઓ છે, સખ્યાત અનુયોગ દાર છે, સખ્યાત વેષ્ટક છે, સખ્યાત શ્લોક છે, સખ્યાત નિર્યુક્તિયો છે, સખ્યાત સમ્પ્રહણિઓ છે, તથા સખ્યાત પ્રતિપત્તિયો છે અગોની અપેક્ષાએ આ હસમુ અગ છે તેમા એક શ્રુતસ્કન્ધ છે પૈસ્તાળીશ ઉદ્દેશનકાળ અને પૈસ્તાળીશ જ સમુદ્દેશનકાળ છે તેમા સખ્યાત-આણુ લાખ સોળ હજાર (૧૨૧૬૦૦૦) પદ છે સખ્યાત અક્ષર છે અનત ગમ છે, વગેરે પહેલા કહેલ વાચના ચરણ કરણ પ્રહણા સુધી અહી સમજી લેવી આ પ્રકારનુ આ પ્રશ્નવ્યાકરણનુ સ્વરૂપ છે (સ. ૫૪)

एकादशाङ्गस्वरूपमाह—

मूलम्—से कि तं विवागसुयं ? विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं
 कम्माण फलविवागो आघविज्जड । तत्थ णं दस दुहविवागा,
 दस सुहविवागा । से कि त दुहविवागा ? दुहविवागेषु णं दुह-
 विवागाणं नगराइ उज्जाणाइं वणसडाइ चेइयाइ समोसरणाइं
 रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपर-
 लोइया इड्ढिविसेसा, निरयगमणाइं संसारभवपवंचा, दुहपरं-
 पराओ दुक्ककुलपच्चायाईओ दुल्लहवोहियत्त आघविज्जति । से
 त्तं दुहविवागा । से कि त सुहविवागा ? सुहविवागेषु ण सुह-
 विवागाणं नगराइ उज्जाणाइ वणसडाइं समोसरणाइ रायाणो
 अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइय
 इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ परियागा सुयपरिग्ग-
 हातवोवहाणाइ संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगम-
 णाइ, देवलोगगमणाइं, सुहपरम्पराओ, सुकुलपच्चायाईओ,
 पुणवोहिलाहा, अत्तकिरियाओ आघविज्जंति । विवागसुयस्सणं
 परित्ता वायणा, सखेज्जा अणुओगदारा, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा
 सिलोगा, सखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, सखिज्जाओ संगहणीओ
 सखेज्जाओ पडिवत्तीओ । से ण अंगट्टयाए इक्कारसमे अगे,
 दो सुयक्खंधा, वीस अज्झयणा, वीस उद्देसणकाला, वीसं समु-
 द्देसणकाला, सखेज्जाइ पयसहस्साइ पयग्गेण, सखेज्जा अक्खरा,
 अणता गमा, अणता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा,

सासयकडनिवृत्तिकाडया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति,
पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दसिज्जति निदसिज्जति, उवदं
सिज्जति । से एव आया, एव नाया, एव विण्णाया । एव चरण
करण परूवणा आघविज्जइ । से त्त विवागसुय ॥ सू० ५५ ॥

छाया—अथ किं तद् विपाकश्रुत ? विपाकश्रुते खलु सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां
फलविपाक आख्यायते । तत्र खलु दश दुःखविपाकाः दश सुखविपाका । अथ के
ते दुःखविपाकाः ? दुःखविपाकेषु खलु दुःखविपाकानां नगराणि उद्यानानि
वनपण्डाः चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः अम्बापितरः धर्माचार्याः धर्मकथाः
ऐहलौकिकरूपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, निरयगमनानि ससार भवप्रपञ्चाः, दुःख
परम्परा दुष्कृत्प्रत्यायातयः दुर्लभबोधिकत्वम् आख्यायते त एते दुःखविपाकाः ।
अथ के ते सुखविपाकाः ? सुखविपाकेषु खलु सुखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि,
वनपण्डाः, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः,
ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धि विशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रत्रय्याः, पर्यायाः,
श्रुतपरिग्रहाः, तप उपधानानि, सलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोषगमनानि,
देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकृत्प्रत्यायातयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रिया
आख्यायन्ते । विपाकश्रुतस्य खलु परीता वाचना सख्येयानि अनुयोगद्वाराणि,
संख्येया वेष्टका, सख्येया श्लोकाः, सख्येयाः निर्युक्तयः, सख्येयाः सग्रहण्यः,
संख्येयाः प्रतिपत्तयः तत् खलु अङ्गार्थतया एकादशमङ्गम्, विंशतिरध्ययनानि, विंश
तिरुद्देशनकालाः, विंशतिः समुद्देशनकालाः, सख्येयानि पद सहस्राणि, पदाग्रेण,
सख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसा, अनन्ताः
स्थावराः, शाश्वतकृतनिवृत्तिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते,
प्ररूप्यन्ते, दर्शयन्ते, निदर्शयन्ते, उपदर्शयन्ते । स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एव विज्ञाता,
एव चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते । तदेतद् विपाकश्रुतम् ॥ सू० ५५ ॥

टीका—‘ से किं त विवागसुय० ’ इत्यादि—

एकादशाङ्गजिज्ञासाया पृच्छति—अथ किं तद् विपाकश्रुतम् विपचन विपाकः—

अथ ग्यारहवे अग विपाकश्रुतका स्वरूप कहते हैं—‘ से किं त विवा
गसुय ? ’ इत्यादि । ग्यारहवे अग विपाकश्रुतके स्वरूपको जाननेकी इच्छा

हुवे अगीथारभा अग—विपाकश्रुतनु स्वइय वलुवे छे—“ से किं त विवाग
सुय ? ” इत्यादि अगीथारभा अग—विपाकश्रुतनु स्वइय शिख

શુભાશુભકર્મપરિણામસ્તત્પ્રતિપાદક શ્રુત વિપાકશ્રુતમ્, તત્કિસ્વરૂપમિતિ પ્રશ્નઃ ?
 ઉત્તરયતિ-વિપાકશ્રુતે સ્વલ્લ સુકૃતદુષ્કૃતાના કર્મણા ફલવિપાકઆરૂપ્યાયતે ।
 તત્ર=વિપાકે સ્વલ્લ દશ દુઃસ્વવિપાકાઃ=દુઃસ્વવિપાકપ્રદર્શકાનિ દશાધ્યયનાનિ સન્તિ,
 સુસ્વવિપાક પ્રદર્શકાનિ ચ દશાધ્યયનાનિ સન્તિ । દુઃસ્વવિપાક સ્વરૂપજિજ્ઞા-
 સાયા પૃચ્છતિ-અથ કે તે દુઃસ્વવિપાકાઃ ? इति । उत्तरयति-दुःस्वविपाकेषु स्वल्ल
 दुःस्वविपाकानाम्-दु स्वविपाकोऽस्त्येषामिति दुःस्वविपाकाः, मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः,
 तेषा तथोक्तानाम्-दुःस्वफलभोक्तृणा जीवाना नगराणि, उद्यानानि, वनषण्डाः,

સે શિષ્ય પૂછતા હૈ-હે ભદન્ત ! વિપાકશ્રુતકા સ્વરૂપ કયા હૈ ? ઉત્તર-શુભ
 ઓર અશુભ કર્મોંકે પરિપાકકા નામ વિપાક હૈ । ઇસ વિપાકકા પ્રતિ-
 પાદક જો શ્રુત હૈ વહ વિપાકશ્રુત હૈ । ઇસ અગમેં પુણ્ય ઓર પાપપ્રકૃતિ-
 વિપાક કા કથન કિયા ગયા હૈ । ઇસમેં દુઃસ્વવિપાક દશ હૈં તથા સુસ્વ
 વિપાક ભી દશ હૈં અર્થાત્-ઇસ વિપાકશ્રુતમે દુઃસ્વવિપાકપ્રદર્શક દશ
 અધ્યયન હૈં ઓર સુસ્વવિપાક પ્રદર્શક ભી દશ અધ્યયન હૈં, ઇસ તરહ
 યહ વિપાકશ્રુત વીસ અધ્યયનોવાલા હૈ । દુઃસ્વવિપાક પ્રદર્શક અધ્યયનોં
 કા નામ દુઃસ્વવિપાક ઓર સુસ્વવિપાકપ્રદર્શક અધ્યયનોં કા નામ
 સુસ્વવિપાક હૈ । અવ શિષ્ય દુઃસ્વવિપાક કે સ્વરૂપ કો જાનને કી ઇચ્છા
 સે પૂછતા હૈ-હે ભદન્ત ! વે દુઃસ્વવિપાક કયા હૈ ?

ઉત્તર-ઇન દુ સ્વવિપાકોંમે દુઃસ્વવિપાક કો ભોગનેવાલોંકે નગરોં
 કા, ઉદ્યાનોં કા, વનષણ્ડોં કા, ચૈત્યોં કા અર્થાત્ વ્યન્તરાયતનોં કા, સમ-

પૂછે છે-હે ભદન્ત ! વિપાકશ્રુતનુ શુ સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર-શુભ અને અશુભ કર્મોંના પરિપાકનુ નામ વિપાક છે આ વિપાકનુ
 પ્રતિપાદન કરનાર બે સૂત્ર છે તે સૂત્રનુ નામ વિપાકશ્રુત છે આ અગમા પુન્ય
 અને પાપપ્રકૃતિ રૂપ કર્મોંના ફળસ્વરૂપ વિપાકનુ વર્ણન કરાયુ છે આ વિપાક
 શ્રુતમા દુ ખવિપાક પ્રદર્શક ઇસ અધ્યયન છે અને સુખવિપાક પ્રદર્શક પણ ઇસ
 અધ્યયન છે, આ રીતે આ વિપાકશ્રુત વીસ અધ્યયનો વાળુ છે દુ ખવિપાક
 પ્રદર્શક અધ્યયનોનુ નામ દુ ખવિપાક અને સુખવિપાક પ્રદર્શક અધ્યયનોનુ નામ
 સુખવિપાક છે હવે શિષ્ય દુ ખવિપાકનુ સ્વરૂપ જાણવાને માટે પૂછે છે-હે
 ભદન્ત ! તે દુ ખવિપાક શુ છે ? ઉત્તર-એ દુ ખવિપાકોમા દુ ખવિપાક ભોગ
 નારાઓના નગરોનુ ઉદ્યાનોનુ, વનષણ્ડોનુ ચૈત્યોનુ એટલે કે વ્યન્તરાયતનોનુ,

सासयकडनिवद्धनिकाडया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जति, परुविज्जति, दसिज्जंति निदसिज्जंति, उवदंसिज्जंति । से एव आया, एव नाया, एव विण्णाया । एवं चरणकरण परूवणा आघविज्जइ । से त्त विवागसुयं ॥ सू० ५५ ॥

छाया—अथ किं तद् विपाकश्रुत ? विपाकश्रुते खलु मुकृतदुकृतानां कर्मणां फलविपाक आख्यायते । तत्र खलु दश दुःखविपाकाः दश सुखविपाका । अथ के ते दुःखविपाकाः ? दुःख विपाकेषु खलु दुःखविपाकानां नगराणि उद्यानानि वनपण्डाः चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः अम्बापितरः धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धि विशेषाः, निरयगमनानि ससार भवप्रपञ्चाः, दुःखपरम्परा दुक्कुलप्रत्यायातयः दुर्लभभोधिकत्वम् आख्यायते त एते दुःखविपाकाः । अथ के ते सुखविपाकाः ? सुखविपाकेषु खलु सुखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि, वनपण्डाः, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धि विशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रत्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तप उपधानानि, सलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोषगमनानि, देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकुलप्रत्यायातयः, पुनर्वोधिलाभाः, अन्तक्रिया आख्यायन्ते । विपाकश्रुतस्य खलु परीता वाचना सख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टका, सख्येया श्लोकाः, सख्येयाः निर्युक्तयः, सरयेयाः सग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः तत् खलु अङ्गार्थतया एकादशमङ्गम्, विंशतिरध्ययनानि, विंशतिरुद्देशनकालाः, विंशतिः समुद्देशनकालाः, सख्येयानि पद सहस्राणि, पदाग्रेण, सख्येयानि अक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्यावराः, शाश्वतकृतनिवद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते । स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एव विज्ञाता, एव चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते । तदेतद् विपाकश्रुतम् ॥ सू० ५५ ॥

टीका—‘ से किं त विवागसुय० ’ इत्यादि—

एकादशाङ्गजिज्ञासाया पृच्छति—अथ किं तद् विपाकश्रुतम् विपचन विपाकः=

अथ ग्यारहवे अग विपाकश्रुतका स्वरूप कहते हैं—‘ से किं त विवागसुय ? ’ इत्यादि । ग्यारहवें अग विपाकश्रुतके स्वरूपको जाननेकी इच्छा

इसे अगीथारभा अ ग—विपाकश्रुततु स्वरूप वषुवे छे—“ से किं त विवागसुय ? ” इत्यादि अगीथारभा अ ग—विपाकश्रुततु स्वरूप आटे शिष्य

नानन्तरं शोभनकुलेपूत्यत्तयः, पुनर्गोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते । विपाकश्रुतस्य खलु परीताः=सरयेया वाचना, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, यावत् सख्येया वेष्टकाः सख्येया श्लोकाः, सख्येया निर्युक्तयः, सख्येयाः सग्रहण्यः, सख्येया प्रतिपत्तयः । स=विपाकः खलु अङ्गार्थतया एकादशमङ्गम् । अत्र विंशतिरध्ययनानि, विंशतिरदेशनकालाः, त्रिंशति समुद्देशनकालाः । तथा-सख्येयानि पदसहस्राणि=एकाकोटिश्रुतुरशीतिलक्षणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि (१८४३२०००) च पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन, तथा-सख्येयानि अक्षराणि, अनन्तागमाः अनन्ताः पर्यवाः, 'परीतास्त्रसाः' इत्याधारभ्य 'एव विज्ञाता' इत्यन्तः पाठो बोध्यः । एवम्=उक्तप्रकारेणाग्राज्ञे साधूना चरणकरणरूपणा आख्यायते=रूढयते । तदेतद् विपाकश्रुतम् ॥ सू० ५५ ॥

सुखों की परम्परा का सुकुलोंमें जन्म धारण करने का, पुनर्गोधि की प्राप्ति होने का, तथा उनकी अन्तक्रिया का-मुक्तिमें पहुँचने का कथन करने में आया है ।

विपाकश्रुतमें सरयातवाचनाएँ हैं, सख्यात अनुयोग द्वार हैं' सख्यात वेष्टक हैं, सख्यात श्लोक हैं, सख्यात निर्युक्तिया हैं, सख्यात सग्रहणियाँ हैं, और सख्यात प्रतिपत्तिया हैं । यह विपाक श्रुत अग की अपेक्षा ग्यारहवाँ अग है, इसमें दो श्रुतस्कन्ध बीस अध्ययन हैं, बीस ही उद्देशन काल एव बीस ही समुद्देशनकाल हैं । इसके सरयातपद हैं अर्थात् पदों का प्रमाण एक करोड़ चौरासी लाख बत्तीस हजार (१८४३२०००) है । इसमें सरयात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, पर्याय भी अनन्त है, सख्यात त्रस हैं-यहाँ से लेकर 'इस प्रकार का विज्ञाता दो है'-यहाँ तक समझ-लेना चाहिये ।

अथने ते सुकुलोभा जन्म धारण करवानु, पुनर्गोधिनी प्राप्ति भवानु तथा तेभनी अन्तक्रियानु-भोक्षे पडोयवानु वर्णन करवानु आन्धु छे

विपाकश्रुतमा सख्यात वाचनाञ्चो छे सख्यात अनुयोग द्वार छे, सख्यात वेष्टक छे, सख्यात श्लोक छे, सख्यात निर्युक्तियो छे, सख्यात सग्रहणियो छे अने सख्यात प्रतिपत्तियो छे अगोनी अपेक्षाञ्चो आ विपाकश्रुत अगीयारमु अग छे तेमा जे श्रुतस्कंधो छे बीस अध्ययन छे, बीस उद्देशनकाल छे अने बीस जे समुद्देशनकाल छे तेमा सख्यात पद छे, अटके पडोनु प्रमाणे अक करोड चौरासी लाख बत्तीस हजार (१८४३२०००) छे तेमा सख्यात अक्षर छे अनन्त गम छे, पर्याय पणु अनन्त छे, सख्यात त्रस छे-अही थी वर्णने 'आ प्रकारनो विज्ञाता दोय छे'-अही सुधी समञ्ज वेवु जेधञ्चो

चैत्यानि, समवसरणानि राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, निरयगमनानि=नरकगमनानि, समारभयप्रपञ्चाः-ससारे=ससृष्टी भयाना=जन्मना प्रपञ्चाः=विस्ताराः, दुःखपरम्पराः, दुष्कूलप्रत्याया-तय दुष्कूलेषु जन्मानि, दुर्लभोधिता च आरप्यायते । त एते दुःख विपाकाः । सम्प्रति मुखविपाक जिज्ञासते-अथ के ते मुखविपाकाः ? इति । उत्तरयति-सुखविपाकेषु खलु मुखविपाकाना=मुखफलभोगनृणा नगराणि, उद्यानानि, वनपण्डाः, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक पारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्याया, श्रुतपरिग्रहाः, तप उपधानानि, सलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकूलप्रत्यायातयः=देवलोकच्यव-

वसरणो का, राजाओं का, उनके माता पिताओं का, धर्मचार्यों का, ऐहलौकिक पारलौकिक ऋद्धिविशेषों का नरक गमन का, ससारमें जन्म लेने की परम्परा का, दुष्कूलोंमें जन्म लेने का, और दुर्लभोधिता का कथन करनेमें आया है । ये दुःख विपाक कहे गये हैं । अब शिष्य सुख विपाक के स्वरूप को पूछता है-हे भदन्त ! सुखविपाक का स्वरूप क्या है ? उत्तर-सुखविपाकमें सुख रूप फल भोगनेवाले जीवों के नगरों का, उद्यानों का, वनपण्डों का, चैत्यो-व्यन्तरायतनों का, समवसरणों का, राजाओं का, उनके माता पिताओं का, धर्माचार्यों का धर्मकथाओं का उनकी इहलोक सबधी तथा परलोकसबधी ऋद्धियो का भोगों के परित्याग का प्रव्रज्या का पर्यायों का श्रुताध्ययनो का, प्रकृष्टतपो का, सलेखना के आराधन का, भक्तप्रत्याख्यान का, पादपोपगमन का, देवलोकप्राप्ति का,

समवसरणो, राज्ञो, तेमनु मातापिता, धर्माचार्यो, धर्मकथाञ्चो, ऐहलौकिक परलौकिक ऋद्धिविशेषो, नरकगमन, ससारमा जन्म लेवानी पर परातु दुष्कूलोमा जन्मलेवानु, अने दुर्लभ ओधितातु वर्धुन करवामा आन्धु छे ये दु जोने विपाक कडेवामा आन्धु छे हुवे शिष्य सुखविपाकतु स्वरूप पूछे छे-हे भदन्त ! सुखविपाकतु शु स्वरूप छे ? उत्तर-सुखविपाकोमा सुखरूप भोगवनार एवोना नगरोतु, उद्यानोतु, वनपण्डोतु, चैत्यो-व्यन्तरायतनोतु समवसरणोतु, राज्ञोतु, तेमना मातापितातु, धर्माचार्योतु, धर्मकथाञ्चोतु, तेमनी आलोक सबधी तथा परलोक सबधी ऋद्धियोतु, भोगोना परित्यागतु प्रमन्यातु, पर्यायोतु, श्रुताध्ययनोतु, प्रकृष्ट तपोतु, सलेखनाना आराधनतु, भक्त प्रत्याख्यानतु पादपोपगमनतु, देवलोक प्राप्ति, सुखोनी पर परातु त्यागी

नानन्तरं शोभनकुलेपूत्पत्तयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते । विपाकश्रुतस्य खलु परीताः=सरयेया राचना, संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि, यान्त् सख्येया वेष्टकाः सख्येया श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, सख्येयाः सग्रहण्यः, सख्येया प्रतिपत्तयः । स=विपाकः खलु अद्भ्यतया एकादशमङ्गम् । अत्र विंशतिरध्ययनानि, विंशतिरदेशनकालाः, विंशति समुद्देशनकालाः । तथा-सख्येयानि पदसहस्राणि=एकाकोटिश्रुतुरशीतिलक्षाणि द्वारिंशत्सहस्राणि (१८४३२०००) च पदानि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन, तथा-सख्येयानि अक्षराणि, अनन्तागमाः अनन्ताः पर्यवाः, 'परीताह्वसा' इत्याधारभ्य 'एव विज्ञाता' इत्यन्तः पाठो बोध्यः । एवम्=उक्तप्रकारेणात्राङ्गे साधूना चरणकरणरूपणा आख्यायते=रुच्यते । तदेतद् विपाकश्रुतम् ॥ सू० ५५ ॥

सुखों की परम्परा का सुकुलोंमें जन्म धारण करने का, पुनर्बोधिकी प्राप्ति होने का, तथा उनकी अन्तक्रिया का-मुक्तिमें पहुँचने का कथन करने में आया है ।

विपाकश्रुतमें सरयातवाचनाएँ हैं, सख्यात अनुयोग द्वार हैं' सख्यात वेष्टक हैं, सख्यात श्लोक हैं, सख्यात निर्युक्तिया हैं, सख्यात सग्रहणियाँ हैं, और सरयात प्रतिपत्तिया हैं । यह विपाक श्रुत अग की अपेक्षा ग्यारहवा अग है, इसमें दो श्रुतस्कन्ध बीस अध्ययन हैं, बीस ही उद्देशन काल एव बीस ही समुद्देशनकाल हैं । इसके सरयातपद हैं अर्थात् पदों का प्रमाण एक करोड चोरासी लाख बत्तीस हजार (१८४३२०००) है । इसमें सरयात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, पर्याय भी अनन्त है, सख्यात त्रस हैं-यहाँ से लेकर 'इस प्रकार का विज्ञाता दो है'-यहाँ तक समझ-लेना चाहिये ।

अथर्वीने ते सुकुलोभा जन्म धारण करवानु, पुनर्बोधिनी प्राप्ति थवानु तथा तेमनी अन्तक्रियानु-मोक्षे पहुँचाववानु वधुन सरवामा आब्यु छे

विपाकश्रुतमा सख्यात वाचनाओ छे सख्यात अनुयोग द्वार छे, सख्यात वेष्टक छे, सख्यात श्लोक छे, सख्यात निर्युक्तियो छे, सख्यात सग्रहणियो छे अने सख्यात प्रतिपत्तियो छे अगोनी अपेक्षाओ आ विपाकश्रुत अगीयारसु अज छे तेमा ये श्रुतस्कंधे छे बीस अध्ययन छे, बीसज उद्देशनकाल छे अने बीस ज समुद्देशनकाल छे तेमा सख्यात पद छे, ओटबे पहुँचनु प्रमाण ओक करोड चोरासी लाख बत्तीस हजार (१८४३२०००) छे तेमा सख्यात अक्षर छे अनन्त गम छे, पर्याय पणु अनन्त छे, सख्यात त्रस छे-अही थी लधने ' आ प्रकारनो विज्ञाता दोय छे'-अही सुधी समलु लेवु जोधओ

प्रवचनपुरुषस्य द्वादशमङ्गमाह—

मूलम्—से किं तं दिट्टिवाए? दिट्टिवाए ण सव्वभावप्ररूवणा
आघविज्जइ । से समासओ पचविहे पणत्ते, त जहा—परिकम्मे १,
सुत्ताइ २, पुव्वगयं ३, अणुओगो ४, चूलिया ५। से किं त परिकम्मे?
परिकम्मे सत्तविहे पणत्ते, तं जहा—सिद्धसेणिया परिकम्मे १,
मणुसेणियापरिकम्मे २, पुट्टसेणिया परिकम्मे ३, ओगाढसेणिया
परिकम्मे ४, उवसंपज्जणसेणिया परिकम्मे ५, विप्पजहणसेणिया
परिकम्मे ६, चुयाचुयसेणिया परिकम्मे ७,

छाया—अथ कोऽसौ दृष्टिवादः ? दृष्टिवादे खलु सर्वभाष्यप्ररूपणा आख्या
यते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३,
अनुयोगः ४, चूलिका ५, अथ किं तत्परिकर्म ? परिकर्म सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा
—सिद्धश्रेणिका परिकर्म १, मनुष्यश्रेणिका परिकर्म २, पृष्टश्रेणिका परिकर्म ३,
अवगाढश्रेणिका परिकर्म ४, उपसपादन श्रेणिका परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणिका परि-
कर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म ७ ।

टीका—‘से किं तं दिट्टिवाए०’ इत्यादि ।

सम्प्रति द्वादशस्य दृष्टिवादाङ्गस्य स्वरूपं पृच्छति—

अथ कोऽसौ दृष्टिवादः ? इति । उत्तरयति—दृष्टिवादे—दृष्टयो=दर्शनानि

इस तरह इस अंग में साधुओं की चरणसत्तरी और करणसत्तरी
प्ररूपित करनेमें आई है । यह विपाक श्रुतका स्वरूप है ॥ सू० ५५ ॥

अब सूत्रकार प्रवचन पुरुष के बारहवें अंग दृष्टिवाद का स्वरूप बत-
लाते हैं—‘से किं तं दिट्टिवाए०’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त ! दृष्टिवाद जो बारहवाँ अंग है उसका क्या

आ रीते आ अंगमा साधुओनी चरणसत्तरी अने करणसत्तरी प्ररूपित
करवामा आवी छे विपाकश्रुतनु आ स्वरूप छे ॥ सू० ५५ ॥

हुवे सूत्रकार प्रवचन पुरुषना आरमा अंग—दृष्टिवादनु स्वरूप अतावे छे

“से किं तं दिट्टिवाए०” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! दृष्टिवाद के के आरम्भ अंग छे तेन अ

से कि तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ? सिद्धसेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पणत्ते, तं जहा-माउगापयाइं १, एगट्टियपयाइं २, अट्टपयाइं ३, पाढोआगासपयाइ ४, केउभूय ५, रासिवद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं, केउभूयं १०, पडिग्गहो ११, संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, सिद्धावत्तं १४, सेत्त सिद्धसेणिया परिकम्मे ॥ १ ॥

छाया-अथ किं तत् सिद्धश्रेणिका परिकर्म ? सिद्धश्रेणिका परिकर्म चतुर्दशविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-मातृकापदानि १, एकार्थिकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाश-पदानि ४, केतुभूत ५, राशिवद्धम् ६, एकगुणम् ७, द्विगुण ८, त्रिगुण ९, केतु-भूत १०, प्रतिग्रहः ११, ससारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्तं १३, सिद्धावर्त्तम् १४, तदेतत्सिद्ध श्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

मतानि, वदन-वादः, दृष्टिना वादः=कथन यत्र स तस्मिन्, यद्वा-दृष्टीना=सर्वनय दृष्टीना वादः=कथन यत्र स तस्मिन्, सर्वभाव प्ररूपणा-सर्वे च ते भावाः-सर्व-भावाः-जीवादयः सकलपदार्थाः धर्मास्तिकायादयो वा, तेषां प्ररूपणा आख्या-यते । स दृष्टिवादः खलु समासतः=सक्षेपतः पञ्चविधः=पञ्चप्रकारः प्रज्ञप्तः=कथितः सर्वमिदं दृष्टिवादाद् प्रायो विच्छिन्न, तथापि यथोपलब्धं किञ्चिद्विख्यते, तद्यथा-परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५, चेति । पञ्चम-

स्वरूप है ? उत्तर—इसमें दर्शनों का अथवा सर्वनयों की दृष्टियों का कथन किया गया है, इसलिये इस का नाम दृष्टिवाद हुआ है । इस दृष्टिवाद अगमें समस्त जीवदिक पदार्थों की अथवा धर्मास्तिकायादिकों की प्ररूपणा करनेमें आई है । यह अग सक्षेप से पांच प्रकार का है, वह प्रकार यह हैं-परिकर्म १, सूत्र २, पूर्वगत ३, अनुयोग ४, एव चूलिका ५ । यद्यपि यह

स्वरूप है ? उत्तर—तेमा दृशनेनो अथवा सर्वनयेनी दृष्टिभ्योनु कथन करायु छे तेथी तेनु नाम दृष्टिवाद पठयु छे आ दृष्टिवाद अगमा समस्त जीवदिक पदार्थोनी अथवा धर्मास्तिकायादिकोनी प्ररूपणा करवाभा आवी छे आ अग सक्षिप्तमा पाय प्रकारनु छे ते प्रकारो आ प्रमाहो छे-(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग अने (५) चूलिका ने के आ आयु दृष्टिवाद अग

प्रवचनपुरुषस्य द्वादशमद्गमाह—

मूलम्—से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाए णं सव्वभावप्ररूवणा
आघविज्जइ । से समासओ पच्चविहे पणत्ते, तं जहा—परिकम्मे१,
सुत्ताइ२, पुव्वगयं३, अणुओगो ४, चूलिया ५। से किं त परिकम्मे?
परिकम्मे सत्तविहे पणत्ते, तं जहा—सिद्धसेणिया परिकम्मे १,
मणुसेणियापरिकम्मे २, पुट्टसेणिया परिकम्मे ३, ओगाढसेणिया
परिकम्मे ४, उवसंपज्जणसेणिया परिकम्मे ५, विप्पजहणसेणिया
परिकम्मे ६, चुयाचुयसेणिया परिकम्मे ७,

छाया—अथ कोऽसौ दृष्टिवादः ? दृष्टिवादे खलु सर्वमात्ररूपणा आख्या
यते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३,
अनुयोगः ४, चूलिका ५, अथ किं तत्परिकर्म ? परिकर्म सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा
—सिद्धश्रेणिका परिकर्म १, मनुष्यश्रेणिका परिकर्म २, पृष्टश्रेणिका परिकर्म ३,
अवगाढश्रेणिका परिकर्म ४, उपसपादन श्रेणिका परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणिका परि-
कर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म ७ ।

टीका—‘से किं तं दिट्ठिवाए०’ इत्यादि ।

सम्पत्ति द्वादशस्य दृष्टिवादाङ्गस्य स्वरूपं पृच्छति—

अथ कोऽसौ दृष्टिवादः ? इति । उत्तरयति—दृष्टिवादे—दृष्टयो=दर्शनानि

इस तरह इस अंग में साधुओं की चरणसत्तरी और करणसत्तरी
प्ररूपित करनेमें आई है । यह विपाक श्रुतका स्वरूप है ॥ सू० ५५ ॥

अब सूत्रकार प्रवचन पुरुष के बारहवें अंग दृष्टिवाद का स्वरूप बत-
लाते हैं—‘से किं तं दिट्ठिवाए०’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त ! दृष्टिवाद जो बारहवाँ अंग है उसका क्या

आ रीते आ अंगमा साधुओनी चरणसत्तरी अने करणसत्तरी प्ररूपित
करवामा आवी छे विपाकश्रुतनु आ स्वरूप छे ॥ सू० ५५ ॥

हुवे सूत्रकार प्रवचन पुरुषना आरमा अंग—दृष्टिवादनु स्वरूप अतावे छे

“से किं तं दिट्ठिवाए०” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! दृष्टिवाद के अंग आरमु अंग छे तेनु अ

से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ? सिद्धसेणियापरिकम्मे चउदसविहे पणत्ते, तं जहा-माउगापयाडं १, एगट्टियपयाइं २, अट्टपयाड ३, पाढोआगासपयाड ४, केउभूयं ५, रात्तिवद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुण ८, तिगुणं, केउभूयं १०, पडिग्गहो ११, संता-रपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, सिद्धावत्तं १४, सेत्तं सिद्धसेणिया परिकम्मे ॥ १ ॥

छाया-अथ किं तत् सिद्धश्रेणिका परिकर्म ? सिद्धश्रेणिका परिकर्म चतुर्दशविधं प्रकृतम्, तद्यथा-मातृशब्दानि १, एकार्थिकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकार-पदानि ४, केतुभूत ५, राशिवद्धम् ६, एकगुणम् ७, द्विगुण ८, त्रिगुण ९, केतु-भूत १०, प्रतिग्रहः ११, ममारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धार्थम् १४, तदेतन्सिद्ध श्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

मतानि, वदन-वादः, दृष्टिना वादः=कथन यत्र स तस्मिन्, यद्वा-क्षीनां-सर्वान्तर-दृष्टीना वादः=कथन यत्र स तस्मिन्, सर्वभाव प्ररूपणा-सर्वे च ते भावाः-सर्व-मात्राः-जीवादयः सकृदपदार्याः धर्मास्तिकायादयो वा, तेषां प्ररूपणा आख्या-यते । स दृष्टिवादः मूलममासतः=सक्षेपतः पञ्चविधः=पञ्चप्रकारः प्रकृतः=कथितः सर्वमिदं दृष्टिवादाद् प्रायो विच्छिन्न, तथापि यथोपलब्धं किञ्चिद्विद्यते, तद्यथा-परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५, चेति । पञ्चप-

स्वरूप है ? उत्तर—इसमें दर्शनों का अथवा सर्वनयों की दृष्टियों का कथन किया गया है, इसलिये इस का नाम दृष्टिवाद हुआ है। इस दृष्टिवाद अंगमें समस्त जीवदिक पदार्थों की अथवा धर्मास्तिकायादिकों की प्ररूपणा करनेमें आई है। यह अंग सक्षेप से पांच प्रकार का है, वह प्रकार यह हैं-परिकर्म १, सूत्र २, पूर्वगत ३, अनुयोग ४, एव चूलिका ५। यद्यपि यह

स्वरूप है ? उत्तर—तेमा दर्थेनेनु अथवा सर्वनयेनी दृष्टियेनु कथन प्रकृतं छे तेयी तेनु नाम दृष्टिवाद पठ्यु छे आ दृष्टिवाद अंगमा समस्त ज्ञानार्थी पदार्थोनी अथवा धर्मास्तिकायादिकोनी प्ररूपणा करवाभा आवी छे आ त्वंन अक्षिप्तमां पात्र प्रकृतं छे ते प्रकारे आ प्रभावे छे-(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग अने (५) चूलिका जे के आ आयु दृष्टिमां त्वंन

प्रवचनपुरुषस्य द्वादशमद्गमाह—

मूलम्—से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाए णं सव्वभावप्ररूवणा आघविज्जइ । से समासओ पंचविहे पणत्ते, तं जहा—परिकम्मे१, सुत्ताइ२, पुव्वगय३, अणुओगो ४, चूलिया ५। से किं तं परिकम्मे? परिकम्मे सत्तविहे पणत्ते, तं जहा—सिद्धसेणिया परिकम्मे १, मणुसेणियापरिकम्मे २, पुट्टसेणिया परिकम्मे ३, ओगाढसेणिया परिकम्मे ४, उवसपज्जणसेणिया परिकम्मे ५, विप्पजहणसेणिया परिकम्मे ६, चुयाचुयसेणिया परिकम्मे ७,

छाया—अथ कौञ्सी दृष्टिवादः ? दृष्टिवादे खलु सर्वभाष्यरूपणा आख्यायते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५, अथ किं तत्परिकर्म १, परिकर्मसप्तविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सिद्धश्रेणिका परिकर्म १, मनुष्यश्रेणिका परिकर्म २, पृष्ठश्रेणिका परिकर्म ३, अवगाढश्रेणिका परिकर्म ४, उपसपादन श्रेणिका परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म ७ ।

टीका—‘ से किं तं दिट्ठिवाए० ’ इत्यादि ।

सम्प्रति द्वादशस्य दृष्टिवादाङ्गस्य स्वरूप पृच्छति—

अथ कौञ्सी दृष्टिवादः ? इति । उत्तरयति—दृष्टिवादे—दृष्टयो=दर्शनानि

इस तरह इस अंग में साधुओं की चरणसत्तरी और करणसत्तरी प्ररूपित करनेमें आई है । यह विपाक श्रुतका स्वरूप है ॥ सू० ५५ ॥

अब सूत्रकार प्रवचन पुरुष के बारहवें अंग दृष्टिवाद का स्वरूप बतलाते हैं—‘ से किं तं दिट्ठिवाए० ’ इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—हे भदन्त ! दृष्टिवाद जो बारहवाँ अंग है उसका क्या

आ रीते आ अगमा साधुओनी अरक्षुसत्तरी अने करक्षुसत्तरी प्ररूपित करवामा आवी छे विपाकश्रुतनु आ स्वइय छे ॥ सू० ५५ ॥

हुवे सूत्रकार प्रवचन पुरुषना आरमा अग—दृष्टिवादानु स्वइय अतावे छे

“ से किं तं दिट्ठिवाए० ” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! दृष्टिवाद के अे आरभु अग छे तेनु अ

से कि तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ? सिद्धसेणियापरिकम्मे चउदसविहे पण्णत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्टियपयाइं २, अट्टपयाइं ३, पाढोआगासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिच्चद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुण ८, तिगुणं, केउभूय १०, पडिग्गहो ११, संसारपडिग्गहो १२, नदावत्तं १३, सिद्धावत्तं १४, से त्तं सिद्धसेणिया परिकम्मे ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धश्रेणिका परिकर्म ? सिद्धश्रेणिका परिकर्म चतुर्दशविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थिकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूत ५, राशिवद्धम् ६, एकगुणम् ७, द्विगुण ८, त्रिगुण ९, केतुभूत १०, प्रतिग्रहः ११, ससारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्तं १३, सिद्धावर्त्तम् १४, तदेतत्सिद्ध श्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

मतानि, वदन—वादः, दृष्टिना वादः=कथन यत्र स तस्मिन्, यद्वा—दृष्टीना=सर्वनय दृष्टीना वादः=कथन यत्र स तस्मिन्, सर्वभाव प्ररूपणा—सर्वे च ते भावाः—सर्वभावाः—जीवादयः सकलपदार्थाः धर्मास्तिकायादयो वा, तेषां प्ररूपणा आख्यायते । स दृष्टिवादः खलु समासतः=सक्षेपतः पञ्चविधः=पञ्चप्रकारः प्रज्ञप्तः=कथितः सर्वमिदं दृष्टिवादाङ्गं प्रायो विच्छिन्न, तथापि यथोपलब्धं किञ्चिद्विच्यते, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५, चेति । पञ्चप्र-

स्वरूप है ? उत्तर—इसमें दर्शनों का अथवा सर्वनयों की दृष्टियों का कथन किया गया है, इसलिये इस का नाम दृष्टिवाद हुआ है। इस दृष्टिवाद अगमें समस्त जीवदिक पदार्थों की अथवा धर्मास्तिकायादिकों की प्ररूपणा करनेमें आई है। यह अग सक्षेप से पांच प्रकार का है, वह प्रकार यह हैं—परिकर्म १, सूत्र २, पूर्वगत ३, अनुयोग ४, एव चूलिका ५। यद्यपि यह

स्वरूप है ? उत्तर—तेभा दशनेनो अथवा सर्वनयेनी दृष्टिओनु कथन करायु छे तेथी तेनु नाम दृष्टिवाद पडयु छे आ दृष्टिवाद अगमा अभस्त एवादिक् पदार्थोनी अथवा धर्मास्तिकायादिकोनी प्ररूपणा करवामा आवी छे आ अग सक्षिप्तमा पाच प्रकारनु छे ते प्रकारे आ प्रभावे छे—(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग अने (५) चूलिका जे के आ आयु दृष्टिवाद अग

કારેઽસ્મિન્ દષ્ટિવાદે પ્રથમઃ પ્રકારઃ કીદશઃ? इति पृच्छति—अथ किं तत् परिकर्म? इति । उत्तरयति—परिकर्म=ध्नादि ग्रहण-योग्यतासंपादनम् अवस्थितस्य वस्तुनो गुणाधान वा, तद्वेतुत्वात् शास्त्रमपि परिकर्मेत्युच्यते, तद्धि सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिका परिकर्म २, पृष्टश्रेणिका परिकर्म ३, अवगाहनश्रेणिका परिकर्म ४, उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म च ७ इति ।

अथ किं तत् सिद्धश्रेणिका परिकर्म ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—सिद्धश्रेणिका परिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थिकपदानि—एक=

समस्त दृष्टिवाद अग प्रायः विच्छिन्न हो चुका है फिर भी जो कुछ उपलब्ध हुआ है उस पर कुछ लिखा जाता है—

शिष्य पूछता है—हे भदन्त! परिकर्म का क्या स्वरूप है?

उत्तर—सूत्रादिकों के ग्रहण करने की योग्यता का संपादन करना, अथवा अवस्थित वस्तु का गुणाधान करना इसका नाम परिकर्म है। इस परिकर्म का हेतु होने से शास्त्र भी परिकर्म शब्द से व्यवहृत हो गया है। यह परिकर्म सात प्रकार का कहा है, जैसे—सिद्धश्रेणि का परिकर्म १, मनुष्यश्रेणि का परिकर्म २, पृष्टश्रेणि का परिकर्म ३, अवगाहश्रेणि का परिकर्म ४, उपसंपादनश्रेणि का परिकर्म ५, विप्रहाणश्रेणि का परिकर्म ६ तथा च्युताच्युतश्रेणि का परिकर्म ७। अब शिष्य पूछता है—हे भदन्त! सिद्धश्रेणिका परिकर्म का क्या स्वरूप है?

उत्तर—सिद्धश्रेणि का परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है, वे

विच्छिन्न થઈ ગયું છે તેો પણ જે કંઈ ઉપલબ્ધ થયું છે તે વિષે થોડું લખવામા આવે છે—

શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત પરિકર્મનું શુ સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—સૂત્રાદિકોને ગ્રહણ કરવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરવી અથવા અવસ્થિત વસ્તુના ગુણાધાન કરવા તેને પરિકર્મ કહે છે આ પરિકર્મનો હેતુ હોવાથી શાસ્ત્ર પણ પરિકર્મ શબ્દથી વ્યવહૃત થઈ ગયું છે એ પરિકર્મ સાત પ્રકારના જેવા કે—(૧) સિદ્ધશ્રેણિકાપરિકર્મ (૨) મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મ, (૩) પૃષ્ઠ શ્રેણિકાપરિકર્મ, (૪) અવગાહ શ્રેણિકાપરિકર્મ, (૫) ઉપસંપાદનશ્રેણિકા પરિકર્મ, (૬) વિપ્રહાણશ્રેણિકાપરિકર્મ, તથા (૭) ચ્યુતાચ્યુતશ્રેણિકાપરિકર્મ,

હવે શિષ્ય પૂછે છે—હે ભદન્ત! સિદ્ધ શ્રેણિકાપરિકર્મનું શુ સ્વરૂપ છે ?

ઉત્તર—સિદ્ધ શ્રેણિકા પરિકર્મ નીચે પ્રમાણે ચૌદ પ્રકારનું કહેલ છે—

से कि तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पणत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्टिय-पयाइं २, अट्टपयाइ ३, पाढोआगसपयाइ ४, केउभूय ५, रासिवद्ध ६, एगगुणं ७ दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूय १०, पडिग्ग-हो ११, संसारपडिग्गहो १२, नदावत्त १३, मणुस्सावत्त १४, से तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ॥ २ ॥

अथ किं तन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ? मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थिकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाश-पदानि ४, केतुभूत ५, राशिवद्धम् ६, एगगुण ७, द्विगुण ८, त्रिगुण ९, केतुभूत १०, प्रतिग्रहः ११, ससारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्त १३, मनुष्यावर्त्तम् १४, तदेतन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ॥ २ ॥

समानोऽर्थ एकार्थः, सोऽस्ति येषा तानि एकार्थिकानि, तानि च पदानि चेति कर्मधारयः २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूत ५, राशिवद्धम् ६, एगगुणम् ७, द्विगुण ८, त्रिगुण ९, केतुभूत १०, प्रतिग्रह ११, ससारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धावर्त्तम् १४ । तदेतत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

अथ किं तन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ? इति प्रश्नः । उत्तरयति—मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानीत्यादि । अत्र मातृकापदा-

प्रकार ये हैं—मातृकापद १, एकार्थिकपद २, अर्थपद ३, पृथगाकाशपद ४, केतुभूत ५, राशिवद्ध ६, एगगुण ७, द्विगुण ८, त्रिगुण ९, केतुभूत १०, प्रतिग्रह ११ ससारप्रतिग्रह १२, नन्दावर्त्त १३, और सिद्धावर्त्त १४ । इस प्रकार यह सिद्धश्रेणिका परिकर्म का स्वरूप है ॥१॥

शिष्यप्रश्न—मनुष्यश्रेणिका परिकर्म का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मनुष्यश्रेणिका परिकर्म भी चौदह प्रकार का है, वे प्रकार

(१) मातृकापद, (२) एकार्थिकपद, (३) अर्थपद, (४) पृथगाकाशपद (५) केतुभूत, (६) राशिवद्ध, (७) एगगुण, (८) द्विगुण, (९) त्रिगुण, (१०) केतुभूत, (११) प्रतिग्रह, (१२) ससारप्रतिग्रह (१३) नन्दावर्त्त अने (१४) सिद्धावर्त्त आ प्रकारनु आ सिद्धश्रेणिकापरिकर्मनु स्वरूप छे

शिष्य पूछे छे—मनुष्यश्रेणिकापरिकर्मनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म पद्य नीचे प्रमाणे थोड प्रकारनु छे—(१)

સે કિં ત પુટ્સેણિયાપરિકર્મ્મે ? પુટ્સેણિયાપરિકર્મ્મે ઇક્કારસવિહે પળ્લન્તે, ત જહા—પાઠોઆગાસપયાઙ્ ૧, કેડમ્બૂય ૨, રાસિવદ્ધ ૩, ઇગ્ગુણં ૪, દુગ્ગુણં ૫, તિગ્ગુણં ૬, કેડમ્બૂય ૭, પડિગ્ગહો ૮, સસારપડિગ્ગહો ૯, નંદાવત્તં ૧૦, પુટ્ટાવત્તં ૧૧, સે ત્ત પુટ્સેણિયા પરિકર્મ્મે ॥ ૩ ॥

અથ કિં ત્ત પુટ્સેણિકાપરિકર્મ્મ ૧, પુટ્સેણિકાપરિકર્મ્મ ઇકાદશવિધ મજ્જસમ્, તથથા—પૃથગાકાશપદાનિ ૧, કેતુભૂત ૨, રાસિવદ્ધમ્ ૩, ઇમ્મગુણ ૪, દ્વિગ્ગુણં ૫, ત્રિગ્ગુણ ૬, કેતુભૂત ૭, પ્રતિગ્રહઃ ૮, સસારમતિગ્રહઃ ૯, નન્દાવત્તં ૧૦, પુટ્ટાવત્તમ્ ૧૦, તદેતત્પુટ્સેણિકાપરિકર્મ્મ ॥ ૩ ॥

ન્યારમ્બ્ય નન્દાવત્તં યાવત્ પૂર્વોક્તાન્યેવ ત્રયોદશ પરિકર્માણિ, ચતુર્દશ તુ પરિકર્મ્મ મનુષ્યાવત્તમ્ । તદેત મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મ્મ ૧૪ । તદુભયોઃ સકલનેષ્ટાવિંશતિ-ભેદાઃ ૨૮ । અવશેષાણિ પરિકર્માણિ પૃષ્ઠાદિકાનિ = પુટ્સેણિકાપરિકર્મ્મીની ચ્યુતાચ્યુતશ્રેણિકાપરિકર્મ્માન્તાનિ પશ્ચવિધાન્યવશિષ્ટાણિ પરિકર્માણિ પ્રત્યેકમેકાદશ-વિધાનિ, તથાહિ—પુટ્સેણિકાપરિકર્મ્મ—પૃથગાકાશપદાન્યારમ્બ્ય પુટ્ટાવત્તપર્યન્તમેકા-યે હૈં—માતૃકાપદ ૧, ઇકાર્થિકપદ ૨, અર્થપદ ૩, આદિ તેરહ ભેદસિદ્ધ શ્રેણિકાપરિકર્મ્મ જૈસે હી હૈં કેવલ ચૌદહવે ભેદ કા નામ 'મનુષ્યાવત્ત' હૈ । યહ મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મ્મ કા સ્વરૂપ હૈ । ઇન દોનોં કૈ ભેદોં કો મિલાને સે અઢ્ઢાઈસ ભેદ હોતે હૈં ૨૮ । અવશિષ્ટ પુટ્સેણિકાપરિકર્મ્મ સે લેકર જો ચ્યુતાચ્યુતશ્રેણિકાપરિકર્મ્મ તક કૈ પાંચ ભેદ ઓર બચતે હૈં બે સબ ગ્યારહ ગ્યારહ પ્રકાર કૈ હૈં । ઇનમૈં પ્રત્યેક કૈ 'પૃથગાકાશપદ' સે લેકર દશ દશ ભેદ તો પૂર્વોક્ત હી હૈં, અન્તિમ ઇક ઇક ભેદ અપને

માતૃકાપદ, (૨) ઇકાર્થિકપદ, (૩) અર્થપદ આદિ તેર ભેદ સિદ્ધશ્રેણિકાપરિકર્મ્મ બેવા બ છે, ક્ષત્ત ચૌદમા ભેદતુ નામ મનુષ્યાવત્ત છે આ મનુષ્યશ્રેણિકાપરિકર્મ્મનું સ્વરૂપ છે આ બન્નેના ભેદનો સરવાળો કરતા કુલ અઢ્ઢાવીસ (૨૮) ભેદ થાય છે બાકીના પુટ્સેણિકાપરિકર્મ્મથી માડીને ચ્યુતાચ્યુતશ્રેણિકાપરિકર્મ્મ સુધીના બે પાય ભેદ રહે છે તે દરેક અગીયાર અગીયાર પ્રકારના છે, તે પ્રત્યેકમા 'પૃથગાકાશપદ' થી માડીને દશ દશ ભેદતો આગળ કહ્યા પ્રમાણે બ છે, અન્તિમ ઇક ઇક ભેદ પોત-પોતાના નામપ્રમાણે સ્વત્ર છે, તે બતાવવામા આવે છે—પૃથ-

से कि तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ? ओगाढसेणिया-परिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, त जहा—पाढोआगासपयाइं १, केउभूयं २, रासिवद्ध ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउ-भूय ७, पडिग्गहो, ८, ससारपडिग्गहो ९, नदावत्तं १०, ओगा-ढावत्त ११, ओगाढसेणियापरिकम्मे ॥ ४ ॥

से कि त उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणि-यापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तजहा—पाढोआगासपयाइं १, केउभूय २, रासिवद्ध ३, एगगुण ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउ-भूय ७, पडिग्गहो ८, संसारपडिग्गहो ९, नंदावत्त १०, उवसप-ज्जणावत्त ११, से त्त उवसपज्जणसेणियापरिकम्मे ॥ ५ ॥

अथ किं तत् अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ? अवगाढश्रेणिकापरिकर्म एकादशविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूत २, राशिवद्धम् ३, एरुगुणम् ४, द्विगुण ५, त्रिगुण ६, केतुभूत ७, प्रतिग्रहः ८, ससारपरिग्रहः ९, नन्दानर्त्तम् १०, अवगाढानर्त्तं ११, तदेतदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

अथ किं तत् उपसपादनश्रेणिका परिकर्म ? उपसपादनश्रेणिकापरिकर्म एका-दशविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूत २, राशिवद्धम् ३, एरु-गुण ४, द्विगुण ५, त्रिगुण ६, केतुभूत ७, प्रतिग्रहः ८, संसारप्रतिग्रहः ९, नन्दा-वर्त्तम् १०, उपसम्पादनावर्त्तम् ११, तदेतत् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

दशविधम् १ । अवगाढश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्यावगाढानर्त्तपर्यन्तमे-कादशविधम् २ । उपसपादनश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्योपसपादनाव-

अपने नाम से स्वतन्त्र हैं, उन्हें दिखलाते हैं—पृष्टश्रेणिकापरिकर्म के 'पृथ-गाकाशपद' से लेकर 'नन्दावर्त्त' तक दश और ग्यारहवा 'पृष्टावर्त्त' है । इसी प्रकार अवगाढश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारहवा भेद 'अवगाढावर्त्त' है । उपसपादनश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारहवा भेद 'उपसपादनावर्त्त' है,

श्रेणिकापरिकर्मना 'पृथगाकाशपद' थी भाडीने 'नन्दावर्त्त' सुधी इस अने अगीथारभो 'पृष्टावर्त्त' लेद छे अने प्रमाणे अवगाढश्रेणिकापरिकर्मना अगीथारभो लेद 'अवगाढावर्त्त' छे उपसपादनश्रेणिकापरिकर्मना अगीथा

से कि त पृष्टसेणियापरिकम्मे ? पृष्टसेणियापरिकम्मे इका-
रसविहे पणत्ते, त जहा—पाढोआगासपयाडं १, केउभूय २,
रासिवद्ध ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुणं ६, केउभूयं ७, पडि-
ग्गहो ८, संसारपडिग्गहो ९, नंटावत्तं १०, पुट्टावत्त ११, से त
पृष्टसेणिया परिकम्मे ॥ ३ ॥

अथ किं तत् पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ? पृष्टश्रेणिकापरिकर्म एकादशविध मन्त्र-
सम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूत २, राशिवद्धम् ३, एक्कगुण ४, द्विगुण
५, त्रिगुण ६, केतुभूत ७, प्रतिग्रहः ८, ससारप्रतिग्रहः ९, नन्दावत्तं १०, पृष्टा
वर्त्तम् १०, तदेतत्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ॥ ३ ॥

न्यारभ्य नन्दावर्त्तं यावत् पूर्वोक्तान्येव त्रयोदश परिकर्माणि, चतुर्दश तु परिकर्म
मनुष्यावर्त्तम् । तदेतन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म १४ । तदुभयोः सरुलनेऽष्टाविंशति-
भेदाः २८ । अवशेषाणि परिकर्माणि पृष्टादिकानि = पृष्टश्रेणिकापरिकर्मादीनि
च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्मान्तानि पञ्चविधान्यवशिष्टानि परिकर्माणि प्रत्येकमेकादश-
विधानि, तथाहि—पृष्टश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्य पृष्टावर्त्तपर्यन्तमेका-

ये हैं—मातृकापद १, एकार्थिकपद २, अर्थपद ३, आदि तेरह भेदसिद्ध
श्रेणिकापरिकर्म जैसे ही हैं केवल चौदहवे भेद का नाम 'मनुष्यावर्त्त'
है । यह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म का स्वरूप है । इन दोनों के भेदों को
मिलाने से अट्टाईस भेद होते हैं २८ । अवशिष्ट पृष्टश्रेणिकापरिकर्म से
लेकर जो च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म तक के पांच भेद और बचते हैं वे
सब ग्यारह ग्यारह प्रकार के हैं । इनमें प्रत्येक के 'पृथगाकाशपद' से
लेकर दश दश भेद तो पूर्वोक्त ही हैं, अन्तिम एक एक भेद अपने

मातृकापद, (२) ऐकार्थिकपद, (३) अर्थपद आदि तेर लेह सिद्धश्रेणिकापरिकर्म
जेवा ७ छे, इक्षत योहमा लेहनु नाम मनुष्यावर्त्त छे आ मनुष्यश्रेणिकापरिकर्मनु
स्वइप छे आ अन्नेना लेहनेा सरवाणेा करता कुल अट्टावीस (२८) लेह थाय छे
आकीना पृष्टश्रेणिकापरिकर्मथी माडीने च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म सुधीना जे
पाय लेह रडे छे ते इरेक अगीयार अगीयार प्रकारना छे, ते प्रत्येकमा 'पृथगा
काशपद' थी माडीने दश दश लेहतेा आगण कक्षा प्रभाछे ७ छे, अन्तिम ऐक
ऐक लेह पोत-पोताना नामप्रभाछे स्वतत्र छे, ते अताववाभा आवे छे—पृष्ट-

सप्तष्ट परिकर्मसु आदितः षट् परिकर्माणि चतुष्कनयिकानि-चत्वार एव चतुष्काः, ते च ते नयाश्चेति चतुष्कनयाः, ते सन्ति येषां तानि तथोक्तानि, सग्रह १-व्यग्रहार २-ऋजुसूत्र ३-शब्दादि ४-रूपचतुर्नययुक्तानि षट् परिकर्माणि स्वसामायिकानि ।

अयं भावः-नैगमनयः साग्राहिकाऽसाग्राहिकभेदेन द्विविधः, तत्र-साग्राहिकस्य सग्रहे समावेशः, असाग्राहिकस्य तु व्यवहारे समावेशः, शब्दसमभिरूढैवम्भूतास्त्रयो नयाः शब्दादिरूप एक एव नय, एव च सग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दादिरूपचतुर्नययुक्तानि षट् परिकर्माणि नयचिन्तया स्वसामायिकानीति । तथा सप्त परिकर्माणि त्रैरा-

प्रकारेण इन पाचों के सब भेद मिलाने से पचपन (५५) भेद हो जाते हैं । इस तरह १४-१४-११-११-११-११-११ सब मिलाकर परिकर्म के तिरासी (८३) भेद हो जाते हैं ।

परिकर्म के इन सात भेदोंमें आदि के जो छह भेद हैं वे, सग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र तथा शब्दादि इन चार नयों से युक्त होने के कारण चतुष्कनयिक हैं, अर्थात् स्वसामयिक हैं । तात्पर्य यह कि-नैगमनय-साग्राहिक और असाग्राहिक के भेद से दो प्रकार का है, उनमें साग्राहिकनय का सग्रहनयमें समावेश हो जाता है, और असाग्राहिकनय का व्यवहार नयमें समावेश होता है । शब्द, समभिरूढ और एवम्भूत, ये तीन नय 'शब्दादि' इस नामसे एक ही नय माने गये हैं । इस तरह सग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र और शब्दादिरूप चार नयों से युक्त छह परिकर्म नयविचार से स्वसामयिक हैं । तथा सात परिकर्म, समस्त वस्तुओं को व्यात्मक

स्थितावर्त' छे आ रीते अये पायेना लेहोना सरवाणे पचापन (५५) थाय आ रीते १४-१४-११-११-११-११-११ अये अथा मणीने परिकर्माना त्वासी (८३) लेह थाय छे

परिकर्माना अये सात लेहोमा आदिना अये छे लेह छे ते, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, तथा शब्दादि अये चार नयोथी युक्त होवाथी चतुष्कनयिक छे, अर्थात् स्वसामयिक छे तात्पर्य अये छे के नैगमनय-साग्राहिक अने असाग्राहिक लेहथी अये प्रकारने छे, तेमा साग्राहिकनयने सग्रहनयमा समावेश थय जय छे, अने असाग्राहिकनयने व्यवहारनयमा समावेश थाय छे शब्द, समभिरूढ अने एवम्भूत अये त्रयु नयने "शब्दादि" अये नामथी अयेक अये नय गलेल छे आ रीते सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र अने शब्दादिरूप चार नयोथी युक्त छे परिकर्म नयविचारथी स्वसामयिक छे तथा सात परिकर्म, समस्त वस्तुअने

से कि तं विष्पजहणसेणियापरिकम्मे ? विष्पजहणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, त जहा—पाढोआगासपयाइं १, केउभूय २, रासिवद्ध ३, एगगुणं ४, दुगुण ५, तिगुणं ६, केउभूयं ७, पडिग्गहो ८, ससारपडिग्गहो ९, नंदावत्तं १०, विष्पजहणावत्तं ११, से त्त विष्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

से कि त चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढो आगासपयाइं १, केउभूयं २, रासिवद्ध ३, एगगुणं ४, दुगुणं ५, तिगुण ६, केउभूयं ७, पडिग्गहो ८, ससारपरिग्गहो ९, नदावत्त १०, चुयाचुयवत्त ११, से त्त चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइ सत्त तेरासियाइ, से त्त परिकम्मे ॥ १ ॥

अथ किं तद् विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म ? विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म एकादशविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूत २, राशिवद्धम् ३, एकगुण ४, द्विगुणं ५, त्रिगुण ६, केतुभूत ४, प्रतिग्रहः ८, ससारप्रतिग्रह ९, नन्दावर्त्त १०, विप्रहाणावर्त्तम् ११, तदेतत् विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

अथ किं तत् च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ? च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १, केतुभूत २, राशिवद्धम् ३, एकगुण ४, द्विगुण ५, त्रिगुण ६, केतुभूत ७, प्रतिग्रहः ८, ससारप्रतिग्रह ९, नन्दावर्त्त १०, च्युताच्युतावर्त्तम् ११, तदेतच्च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥

र्त्तपर्यन्तमेकादशविधम् ३ । विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्य विप्रहाणावर्त्तपर्यन्तमेकादशविधम् ४ । च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म—पृथगाकाशपदान्यारभ्य च्युताच्युतावर्त्तपर्यन्तमेकादशविधम् ५ । इत्थमेते पञ्चपञ्चाशद्भेदा ५५ । एतेषु

विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारह्वा भेद 'विप्रहाणावर्त्त' है, तथा च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म का ग्यारह्वा भेद 'च्युताच्युतावर्त्त' है । इस

२भो लेद '७पस पाढनावर्त्त' छे, विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्मनो अगीयारभो लेद 'विप्रहाणावर्त्त' छे तथा च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्मनो अगीयारभो लेद 'च्युता-

सप्तसु परिकर्मसु आदितः षट् परिकर्माणि चतुष्कनयिकानि-चत्वार एव चतुष्काः, ते च ते नयाश्चेति चतुष्कनयाः, ते सन्ति येषां तानि तथोक्तानि, सग्रह १-व्यवहार २-ऋजुसूत्र ३-शब्दादि ४-रूपचतुर्नययुक्तानि षट् परिकर्माणि स्वसामायिकानि ।

अयं भावः-नैगमनयः साग्राहिकाऽसाग्राहिकभेदेन द्विविधः, तत्र-साग्राहिकस्य सग्रहे समावेशः, असाग्राहिकस्य तु व्यवहारे समावेशः, शब्दसमभिरूढैवम्भूतास्त्रयो नयाः शब्दादिरूप एक एव नयः, एव च सग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दादिरूपचतुर्नययुक्तानि षट् परिकर्माणि नयविन्तया स्वसामायिकानीति । तथा सप्त परिकर्माणि त्रैरा-

प्रकार इन् पाचों के सव भेद मिलाने से पचपन (५५) भेद हो जाते हैं । इस तरह १४-१४-११-११-११-११-११ सव मिलाकर परिकर्म के तिरासी (८३) भेद हो जाते हैं ।

परिकर्म के इन सात भेदोंमें आदि के जो छह भेद हैं वे, सग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र तथा शब्दादि इन चार नयों से युक्त होने के कारण चतुष्कनयिक हैं, अर्थात् स्वसामयिक हैं । तात्पर्य यह कि-नैगमनय-सांग्राहिक और असाग्राहिक के भेद से दो प्रकार का है, उनमें सांग्राहिकनय का सग्रहनयमें समावेश हो जाता है, और असाग्राहिकनय का व्यवहार नयमें समावेश होता है । शब्द, समभिरूढ और एवम्भूत, ये तीन नय 'शब्दादि' इस नाम से एक ही नय माने गये हैं । इस तरह सग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र और शब्दादिरूप चार नयों से युक्त छह परिकर्म नयविचार से स्वसामयिक हैं । तथा सात परिकर्म, समस्त वस्तुओं को व्यात्मक

व्युत्पावर्त' छे आ रीते ओ पायेना लेहोना सरवाणो पयावन (५५) थाय, आ रीते १४-१४-११-११-११-११-११ ओ षष्ठा भणीने परिकर्माणां त्रैरासी (८३) लेह थाय छे

परिकर्माणां ओ सात लेहोना आदिना ओ छे लेह छे ते, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, तथा शब्दादि ओ चार नयोथी युक्त होवाथी चतुष्कनयिक, अर्थात् स्वसामयिक छे तात्पर्य ओ छे ते नैगमनय-सांग्राहिक और असाग्राहिक भेदथी ओ प्रकारना छे, तेमा सांग्राहिकनयना सग्रहनयमा समावेश होवा छे, अने असाग्राहिकनयना व्यवहारनयमा समावेश होवा छे, अने एवम्भूत ओ त्रयु नयने "शब्दादि" ओ नामांती होवा छे । इस तरह आ रीते सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र अने शब्दादि नयोंसे युक्त छे परिकर्माणां नयविचारथी स्वसामयिक छे तथा सात परिकर्म, समस्त वस्तुओं को व्यात्मक

से कि त सुत्ताइं ? सुत्ताइं वावीस पन्नत्ताइ, तं जहा-उज्जु-
सुयं १, परिणयापरिणयं, २ बहुभंगियं ३, विजयचरियं ४, अणं-
तर ५, परंपरं ६, आसाण ७, सज्जूह ८, संभिण्ण ९, आहव्वाय १०,
पट्ट चतुष्कनयिकानि, सप्त त्रैराशिकानि तदेतत् परिकर्म ॥ १ ॥

अथ कानि तानि सूत्राणि ? सूत्राणि द्वारिगतिः प्रज्ञप्तानि, तथा-ऋजुकं १,
परिणतापरिणतम् २, बहुभङ्गिकम् ३, विजयचरितम् ४, अनन्तरम् ५, परम्परम् ६,
आसानम् ७, सयूथम् ८, संभिन्नम् ९, यथागदम् १०, सौवस्तिकावर्तम् ११,

शिकानि=त्रैराशिकाभिमतानि । आजीविका एव त्रैराशिका उच्यन्ते, यतस्ते सर्वे
व्यात्मकमिच्छन्ति । तन्मते जीवोऽजीवो जीनाजीवः, लोकोऽज्जोको लोकालोकः,
सत् असत् सदसत्-इत्येवमादि । तथा नयचिन्तायामपि त्रिविधं नयमिच्छन्ति,
तद्यथा-द्रव्यार्थिकनयः, पर्यायार्थिकनयः, उभयार्थिकनय इति । एतानि सप्त परि-
कर्माणि पूर्वापरसकलनया व्यतीतिविधानि भवन्तीति विज्ञेयम् । उपसहरनाह-
तदेतत् परिकर्मेति ॥ १ ॥

माननेवाले त्रैराशिकों द्वारा समत हैं त्रैराशिकमतवाले समस्त वस्तुओं
को व्यात्मक मानते हैं । उनके मतमें-जीव १, अजीव २, जीवाजीव ३,
लोक १ अलोक २, लोकालोक ३, सत् १, असत् २, सदसत् ३, इत्यादि-
रूप से पदार्थों का विभाग किया गया है । तथा जब नयों का विचार
किया गया है तब वहा भी ऐसा ही कहा हुआ है कि नय द्रव्यार्थिक १,
पर्यायार्थिक २, एव उभयार्थिक ३, भेद से तीन प्रकार का है । इस तरह
सात परिकर्मों के भेदों का सकलन करने से तिरासी (८३) भेद होते हैं ।
यह परिकर्म का स्वरूप है ॥१॥

व्यात्मक माननार त्रैराशिकों द्वारा समत छे त्रैराशिकमतवाणा समस्त वस्तु-
ओने व्यात्मक माने छे, तेना मतमा-(१) ज्व (२) अज्व (३) ज्वाज्व,
(१) लोक (२) अलोक (३) लोकालोक, (१) सत् (२) असत् (३) सदसत्-
इत्यादिइपथी पदार्थोना विभाग करवाभा आये छे तथा नयारे नयोना
विचार करयो छे तयारे पणु तेनी भाणतमा जेवु न कहेल छे के नय,
(१) द्रव्यार्थिक, (२) पर्यायार्थिक अने (३) उभयार्थिक जे बेदोथी त्रषु प्रकारने
छे आ रीते साते परिकर्मेना बेदो अकत्र करता कुल त्यासी बेद थाय छे
आ परिकर्मेनु स्वरूप छे (१)

सोवत्थियावत्त ११, नंदावत्तं १२, बहुलं १३, पुट्टापुट्टं १४, विया-
वित्तं १५, एवंभूय १६, दुयावत्तं १७, वत्तमाणपय १८, समभि-
रूढं १९, सव्वओभद्द २०, पस्सास २१, दुपडिग्गह २२, इच्चेइयाइ
वावीस सुत्ताइं छिन्नच्छेयनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चे-
इयाइ वावीस सुत्ताइ अच्छिन्नच्छेयनइयाइ आजीवियसुत्तपरि-
वाडीए, इच्चेइयाइ वावीस सुत्ताइ तिगणइयाइ तेरासियसुत्त-
परिवाडीए, इच्चेइयाइ वावीस सुत्ताइं चउक्कनइयाइं ससमय-
सुत्तपरिवाडीए । एवामेव सपुठ्ठावरेणं अट्टासीई सुत्ताइं भवत्तित्ति-
मक्खायाइं, से त्त सुत्ताइ ॥ २ ॥

नन्दावर्तम् १२, बहुलम् १३, पृष्ठापृष्ठम् १४, व्यावर्तम् १५, एवभूतम् १६, द्वि-
कार्तम् १७, वर्तमानपदम् १८, समभिरूढम् १९, सर्वतोभद्रम् २०, प्रशिष्यम् २१,
दुष्प्रतिग्रहम् २२, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयसूत्र-
परिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि आजीविकसूत्र-
परिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या,
इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या । एवमेव
सपूर्वापरेण अष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्तीत्याख्यातानि । तान्येतानि सूत्राणि ॥ २ ॥

अथ द्वितीय भेदमाह—अथ कानि तानि सूत्राणि? इति । उत्तरयति—सूत्राणि=
सर्वद्रव्यपर्यायनयाद्यर्थसूचनात् सूत्राणि द्वाविंशतिः=द्वाविंशतिसंख्यकानि प्रज्ञप्तानि,
तद्यथा—ऋजुसूत्रम् १, परिणतापरिणतम् २, बहुभङ्गिकम् ३, विजयचरितम् ४,
अनन्तरम् ५, परम्परम् ६, आसानम् ७, सयूथम् ८, सभिन्नम् ९, यथावादम् १०,

शिष्यप्रश्न—हे भदन्त ! दृष्टिवाद का जो द्वितीय भेद सूत्र है उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—सूत्र चाइस प्रकार का है, वे प्रकार ये हैं—ऋजुसूत्र १, परि-
तापरिणत २, बहुभङ्गिक ३, विजयचरित ४, अनन्तर ५, परम्पर ६,

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! दृष्टिवादेन के पीछे लेके 'सूत्र' छे तेतु शु-
स्वरूप छे ? उत्तर—सूत्र नीचे प्रमाणे आवीस (२२) प्रकारना छे—(१) ऋजुसूत्र,
(२) परिणतापरिणत, (३) बहुभङ्गिक, (४) विजयचरित, (५) अनन्तर,

सौवस्तिकावर्त्तम् ११, नन्दावर्त्तम् १२, बहल्लम् १३, पृष्ठापृष्ठम् १४, व्यावर्त्तम् १५, एवम्भूतम् १६, द्विकावर्त्तम् १७, वर्त्तमानपदम् १८, समभिरूढम् १९, सर्वतो-
भद्रम् २०, प्रशिष्यम् २१, दुष्प्रतिग्रहम् २२ । इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि
छिन्नच्छेदनयिकानि=त्रिन्न छेदेनेच्छति यो नयः स त्रिन्नच्छेदनयः, यथा—
'धम्मो मगलमुक्किह' इत्यादिश्लोक सूत्रार्थतः प्रत्येकच्छेदेन स्थितो न द्विती
यादिश्लोकमपेक्षते, इत्यत्र त्रिन्नच्छेदनयोऽस्ति येषां तानि त्रिन्नच्छेदनयिकानि
स्वसमयपरिपाट्या । अयं भावः—जिनसिद्धान्तानुसारेण ऋजुसूत्रादीनि द्वाविंशतिः
सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानीति । तथा आजीयिकसूत्रपरिपाट्या इत्येतानि द्वाविंशतिः

आसान ७, सयूथ ८, सभिन्न ९, यथावाद १०, सौवस्तिक ११, नन्दा-
वर्त्त १२, बहल्ल १३, पृष्ठापृष्ठ १४, व्यावर्त्त १५, एवम्भूत १६, द्विकावर्त्त १७,
वर्त्तमानपद १८, समभिरूढ १९, सर्वतोभद्र २०, प्रशिष्य २१, और दुष्प्र-
तिग्रह २२ । ये चाईस सूत्र जिनसिद्धान्त के अनुसार छिन्नच्छेदनयिक हैं ।
जो नय छेद से—पदच्छेद से त्रिन्न पदके—श्लोकगत भिन्न २ पदके अर्थ का
बोधक होता है वह त्रिन्नच्छेद नय है । जैसे—“धम्मो मगलमुक्किह” यह
श्लोक है । यह श्लोक सूत्रार्थ की अपेक्षा भिन्न २ पद वाला है । इसमें इसके
अर्थको समझने के लिये द्वितीयश्लोकगत पदों की अपेक्षा नहीं पडती है ।
तात्पर्य इसका यह है कि जिस श्लोक के अर्थ का बोध उसी श्लोकमें रहे
हुए भिन्न २ पदों द्वारा हो जाता है, इसके समझने के लिये अन्य श्लोक
गत पदों की अपेक्षा नहीं करनी पडती है और न दूसरे श्लोकों के पदों
की वहा आवृत्ति ही लेनी पडती है वे सब श्लोक छिन्नच्छेदनयिक हैं ।

(६) पर पर, (७) आसान, (८) सयूथ, (९) सभिन्न, (१०) यथावाद, (११) सौवस्तिक,
(१२) नन्दावर्त्त, (१३) बहल्ल, (१४) पृष्ठापृष्ठ, (१५) व्यावर्त्त, (१६) एवम्भूत,
(१७) द्विकावर्त्त, (१८) वर्त्तमानपद, (१९) समभिरूढ (२०) सर्वतोभद्र,
(२१) प्रशिष्य, अने (२२) दुष्प्रतिग्रह आ आवीस सूत्र जैनसिद्धान्तानुसार
छिन्नच्छेदनयिक छे ने नय छेदथी—पदच्छेदथी छिन्न पदना—श्लोकगत गुदा गुदा
पदना अर्थनो बोधक थाय छे ते छिन्नच्छेदनय छे नेभके “धम्मो मगलमुक्किह”
आ श्लोक छे आ श्लोक सूत्रार्थनी अपेक्षाये लिन्न लिन्न पदवाणो छे तेमा
तेना अर्थने समभववा भाटे द्वितीय श्लोकमा आवेल पढोनी न्दर पडती
नथी, तेनु तात्पर्य अे छे के ने श्लोकना अर्थनो बोध अेन श्लोकमा रडेल
भिन्न भिन्न पदो द्वारा थध न्दर छे, तेने समभववाने भाटे भीन श्लोकमा आवेल
पढोनी न्दर पडती नथी अने भीन श्लोकाना पढोनी त्या आवृत्ति न्दरेवी
पडती नथी अे अथा श्लोक यिक कडेवाय छे तथा अ

સૂત્રાણિ અચ્છિન્નચ્છેદનયિકાણિ, યો નયઃ સૂત્રમચ્છિન્નં છેદેનેચ્છતિ સોઽચ્છિન્નચ્છેદનયઃ, અત્ર નયે - ' ધમ્મો મગલમુક્કિદ્ધ ' ઇત્યાદિઃ પ્રથમઃ શ્લોકો દ્વિતીયાદિ શ્લોકમપેક્ષમાણસ્તિષ્ઠતિ દ્વિતીયાદિ શ્લોકોઽપિ પ્રથમ શ્લોકમ્ અપેક્ષમાણસ્તિષ્ઠતિ, અર્થાદન્યોઽન્યસાપેક્ષસ્તિષ્ઠતિ, સોઽસ્તિ યેષા તાણિ અચ્છિન્નચ્છેદનયિકાણિ । અયમભાવઃ-આજીવક્રમતે ઋજુકાદીનિદ્વાવિંશતિઃ સૂત્રાણિ પરસ્પરસાપેક્ષાણિ સન્તીતિ । તથા-ઇત્યેતાણિ દ્વાવિંશતિઃ સૂત્રાણિ ત્રિકુળનયિકાણિ ત્રૈરાશિકસૂત્રપરિપાટયા । અયમભાવઃ-ત્રૈરાશિકાના પરિપાટયા ઋજુ સૂત્રાદીનિ દ્વાવિંશતિઃ સૂત્રાણિ દ્રવ્યાર્થિકા પર્યાયાર્થિકોભયાર્થિકેતિ નયત્રિકવન્તિ સન્તીતિ । તથા ઇત્યેતાણિ દ્વાવિંશતિ સૂત્રાણિ ચતુષ્કુળનયિકાણિ સ્વસમયસૂત્રપરિપાટયા । અયમભાવઃ-જિનસિદ્ધાન્ત સૂત્ર

તથા આજીવિક મતાનુસાર યે વાઈસ સૂત્ર અચ્છિન્નચ્છેદનયિકા હૈં । તાત્પર્ય ઇસકા યદ્દ હૈ ક્વિ યે ઋજુસૂત્રાદિક વાઈસ સૂત્ર અપને ૨ અર્થ કા વોધ કરાને કે લિયે ઈક દુસરે કે પદોં કી અપેક્ષા રખતે હૈં । જૈસે-ધમ્મો મગલમુક્કિદ્ધ " યદ્દ શ્લોક ચ્છિન્નચ્છેદનયકી અપેક્ષા અપને અર્થ કા વોધ સ્વતત્ત્વરૂપ સે કરતા હૈ, પરન્તુ ઇસ અચ્છિન્નચ્છેદનય કી અપેક્ષા યદ્દ શ્લોક અપને અર્થ કા વોધ કરાને કે લિયે દ્વિતીયશ્લોક ગત પદોં કી અપેક્ષા રખતા હૈ, તથા દ્વિતીય શ્લોક અપને અર્થ કા વોધ કરાને કે લિયે પ્રથમ શ્લોક કી અપેક્ષા રખતા હૈ, ઈસી માન્યતા આજીવિકાસિદ્ધાન્ત માનને વાલોં કી હૈ । તથા યે ઋજુસૂત્રાદિક વાઈસ સૂત્ર દ્રવ્યાર્થિક, પર્યાયાર્થિક ઈવ ઉભયાર્થિક, ઇન ત્રીનોં નયોં કી અપેક્ષા વાલે હૈં, ઈસી માન્યતા ત્રૈરાશિક મતવાલોં કી હૈ । તથા યે ઋજુસૂત્રાદિક વાઈસ સૂત્ર ચતુષ્ક નય વાલે હૈં, ઈસી માન્યતા જિનસિદ્ધાન્ત કો માનનેવાલોં કી હૈ । સંગ્રહનય,

નુસાર ઐ ધાવીસ સૂત્ર અચ્છિન્નચ્છેદ નયિક છે તેનુ તાત્પર્ય ઐ છે કે તે ઋજુ-સૂત્રાદિક ધાવીસ સૂત્ર પોત-પોતાના અર્થના યોધક થવાને માટે ઐઽ ધીબના પદોની અપેક્ષા રાખે છે જેમકે " ધમ્મો મગલમુક્કિદ્ધ " આ શ્લોક ચ્છિન્નચ્છેદનયની અપેક્ષાએ પોતાના અર્થનો યોધ સ્વતત્ત્વરૂપે કરે છે પણ તે અચ્છિન્નચ્છેદ નયની અપેક્ષાએ આ શ્લોક પોતાના અર્થનો યોધ કરાવવાને માટે દ્વિતીય શ્લોકમા આવેલ પદોની અપેક્ષા રાખે છે, તથા દ્વિતીય શ્લોક પોતાના અર્થનો યોધ કરાવવાને માટે પ્રથમ શ્લોકની અપેક્ષા રાખે છે, ઐવી માન્યતા આજીવિકા સિદ્ધા તને માનનારાઓની છે તથા આ ઋજુસૂત્રાદિક ધાવીસ સૂત્ર દ્રવ્યાર્થિક, પર્યાયાર્થિક, અને ઉભયાર્થિક, એ ત્રણ નયોની અપેક્ષા વાળા છે, ઐવી માન્યતા ત્રૈરાશિક મતવાળાઓની છે તથા આ ઋજુસૂત્રાદિક ધાવીસ સૂત્ર ચતુષ્કનયવાળા છે ઐવી માન્યતા જિન સિદ્ધાન્ત-માનનારાઓની છે સંગ્રહનય, વ્યવહારનય, ઋજુસૂત્ર-
જા ૮૦

सौवस्तिकावर्तम् ११, नन्दावर्तम् १२, घहुलम् १३, पृष्ठापृष्ठम् १४, व्यावर्तम् १५, एवम्भूतम् १६, द्विकावर्तम् १७, वर्तमानपदम् १८, समभिरूढम् १९, सर्वतो-
भद्रम् २०, प्रशिष्यम् २१, दुष्प्रतिग्रहम् २२ । इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि
छिन्नच्छेदनयिकानि=छिन्न छेदनेच्छति यो नयः स छिन्नच्छेदनयः, यथा—
'धम्मो मगलमुक्किह' इत्यादिश्लोक सूत्रार्थतः प्रत्येकच्छेदेन स्थितो न द्विती-
यादिश्लोकमपेक्षते, इत्यत्र छिन्नच्छेदनयोऽस्ति येषां तानि छिन्नच्छेदनयिकानि
स्वसमयपरिपाट्या । अयं भागः—जिनसिद्धान्तानुसारेण ऋजुसूत्रादीनि द्वाविंशतिः
सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानीति । तथा आजीविकसूत्रपरिपाट्या इत्येतानि द्वाविंशतिः

आसान ७, सयूथ ८, सभिन्न ९, यथावाद १०, सौवस्तिक ११, नदा-
वर्त १२, घहुल १३, पृष्ठापृष्ठ १४, व्यावर्त १५, एवम्भूत १६, द्विकावर्त १७,
वर्तमानपद १८, समभिरूढ १९, सर्वतोभद्र २०, प्रशिष्य २१, और दुष्प्र-
तिग्रह २२ । ये वाईस सूत्र जिनसिद्धान्त के अनुसार छिन्नच्छेदनयिक हैं ।
जो नय छेद से—पदच्छेद से छिन्न पदके—श्लोकगत भिन्न २ पदके अर्थ का
बोधक होता है वह छिन्नच्छेद नय है । जैसे—“धम्मो मगलमुक्किह” यह
श्लोक है । यह श्लोक सूत्रार्थ की अपेक्षा भिन्न २ पद वाला है । इसमें इसके
अर्थको समझने के लिये द्वितीयश्लोकगत पदों की अपेक्षा नहीं पडती है ।
तात्पर्य इसका यह है कि जिस श्लोक के अर्थ का बोध उसी श्लोकमें रहे
हुए भिन्न २ पदों द्वारा हो जाता है, इसके समझने के लिये अन्य श्लोक
गत पदों की अपेक्षा नहीं करनी पडती है और न दूसरे श्लोकों के पदों
की वहा आवृत्ति ही लेनी पडती है वे सब श्लोक छिन्नच्छेदनयिक हैं ।

(६) पर पर, (७) आसान, (८) सयूथ, (९) सभिन्न, (१०) यथावाद, (११) सौवस्तिक,
(१२) नदावर्त, (१३) घहुल, (१४) पृष्ठापृष्ठ, (१५) व्यावर्त, (१६) एवम्भूत,
(१७) द्विकावर्त, (१८) वर्तमानपद, (१९) समभिरूढ (२०) सर्वतोभद्र,
(२१) प्रशिष्य, अने (२२) दुष्प्रतिग्रह आ आजीविसूत्र जिनसिद्धान्तानुसार
छिन्नच्छेदनयिक छे ने नय छेदथी—पदच्छेदथी छिन्न पदना—श्लोकगत बुद्धा बुद्धा
पदना अर्थना बोधक थाय छे ते छिन्नच्छेदनय छे नेभके “धम्मो मगलमुक्किह”
आ श्लोक छे आ श्लोक सूत्रार्थनी अपेक्षाये लिन्न लिन्न पदवाणे छे तेमा
तेना अर्थने समजववा भाटे द्वितीय श्लोकमा आवेल पदानी जर पडती
नथी, तेनु तात्पर्य अे छे के ने श्लोकना अर्थना बोध अेण श्लोकमा रडेल
भिन्न भिन्न पदो द्वारा थध नय छे, तेने समजवाने भाटे भीज श्लोकमा आवेल
पदानी जर पडती नथी अने भीज श्लोकाना पदानी ता आवृत्ति न लेवी
पडती नथी अे पथा श्लोक छिन्नच्छेदनयिक कडेवाय छे तथा आजीविकमा

अथ तृतीयभेदमाह—से किं तं पुञ्जगय 'अयं किं तत् पूर्वगतम् ? इति ।
उत्तरयति—पूर्वगत चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, अयं भाव-तीर्थकृतो हि तीर्थं प्रवर्तनकाले
गणधरेभ्यः सकलसूत्राधाररूत्वेन पूर्वं पूर्वगत सूत्रार्थमेव भाषन्ते, तदनुगणधराः
प्रथमं पूर्वगतमेव रचयन्ति, तत आचाराङ्गादिकम् । 'सर्वेसिं आयारोपढमो ' इति
तु क्रमन्यासमपेक्ष्य प्रोच्यते, अक्षररचनापेक्षया तु पूर्वगतश्रुतमेव प्रथमम् ।
तत्पूर्वगतश्रुतं चतुर्दशविधं कथितम् । तदेवाह—तद्यथा—प्रथमम् उत्पादपूर्वम्—
अत्र सर्वं द्रव्याणां सर्वपर्यायाणां चोत्पादभावमङ्गीकृत्य प्रज्ञापना कृता ।
अस्य पदपरिमाणमेका कोटिः । द्वितीयम्—अग्रायणीयम्—अत्र हि सर्वेषां

अत्र दृष्टिवाद के तीसरे भेद पूर्वगत का स्वरूप कहते हैं—'से किं
त पुञ्जगय०' इत्यादि ।

शिष्य प्रश्न—पूर्वगत जो दृष्टिवाद का तीसरा भेद है उसका क्या
स्वरूप है ?

उत्तर—पूर्वगत चौदह प्रकार का है । तीर्थंकर प्रभु तीर्थप्रवर्तन के
समय गणधरों के लिये सर्वप्रथम सकल सूत्रों का आधार भूत होने से
पूर्वगत सूत्रार्थ की ही प्ररूपणा करते हैं । बादमे गणधर भगवान सब से
पहिले पूर्वगत सूत्र ही रचते हैं, पश्चात् आचाराग आदि । "सर्वेसिं
आयारो पढमो " ऐसा जो कहा जाता है वह क्रमन्यास को अपेक्षा से
ही कहा गया जानना चाहिये । अक्षर रचना की अपेक्षा से तो पूर्वगत
श्रुत ही सर्वप्रथम है । बादमे और अग-आचारादिक हैं । पूर्वगत श्रुत के
चौदह प्रकार ये हैं—उत्पादपूर्व १, अग्रायणीयपूर्व २, वीर्यप्रवादपूर्व

इसे दृष्टिवादनान्नान्न लेह "पूर्वगत" तु स्वरूप वक्ष्ये छे—'से किं
त पुञ्जगय ?' इत्यादि

शिष्य पूछे छे—दृष्टिवादनो न्ने त्रीन्ने लेह 'पूर्वगत' छे तेनु शु स्वरूप छे ?
उत्तर—पूर्वगत चौदह प्रकारनु छे तीर्थंकर प्रभु तीर्थप्रवर्तनने समये
गणधराने भाटे सौथी पडेला सकल सूत्रानु आधारभूत होवाथी पूर्वगत सूत्रा
र्थनी न्ने प्ररूपणा करे छे, त्यार भाद गणधर भगवान सौथी पडेला पूर्वगत
सूत्र न्ने रचे छे त्यार पछी आचाराग आदि "सर्वेसिं आयारो पढमो " अर्थ न्ने
पडेवाभा आवे छे ते क्रमन्यासनी अपेक्षाये न्ने कडेल माननु न्नेछे अक्षर
रचनानी अपेक्षाये तो पूर्वगत श्रुत न्ने सौथी पडेलु छे पछी अनि अग-आचा-
राग आदि पूर्वगत श्रुतना चौदह प्रकार छे—(१) उत्पादपूर्व, (२) अग्रायणीय

प्रवादम्, अत्र मत्यादीना पञ्चाना ज्ञानाना भेदप्ररूपणा यस्मादस्ति तस्मादिदं पूर्वं ज्ञानप्रवादमुच्यते । अत्र पदपरिमाणमेकपदन्यूनैका कोटिः । पष्ठं सत्यप्रवादम्-सत्य=संयमः सत्यवचन वा, तद्यत्र सभेद सप्रतिपक्ष च वर्ण्यते तत्सत्यप्रवादम्, तस्य पदपरिमाणं पडधिकैककोटिः । सप्तमम्-आत्मप्रवादम्-यत्र नयदर्शनपूर्वरूमात्माऽनेकधा वर्ण्यते तत् । तस्य पदसंख्या पड्विंशतिकोटिप्रमाणा । अष्टम कर्मप्रवादम्-ज्ञानावरणीयादिकमष्टत्रिंशं कर्म यत्र प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभिर्भेदैरितरैश्चोत्तरोत्तर भेदैर्वर्ण्यते तत् । पदपरिमाणं चास्य एकाकोटिरशीतिश्च सहस्राणि । नवम-प्रत्याख्यानप्रवादम्-अत्र यतः सर्वप्रत्याख्यानस्वरूप वर्ण्यते तत इदं प्रत्याख्यानप्रवादमुच्यते । अत्र पद संख्या चतुरशीतिः । दशम-त्रिद्वानुप्रवा-

आदि पाच ज्ञान के भेदोंकी प्ररूपणा हुई है । इस के पदों का प्रमाण एक पद कम एक करोड है ५ । छठे-सत्यप्रवादपूर्वमें सत्य अर्थात्-संयम, अथवा मत्यवचन का भेद सहित, एव प्रतिपक्षसहित वर्णन हुआ है । इस के पदों का परिमाण छ ६ अधिक एक करोड है ६ । सातवे आत्मप्रवादपूर्व में नयों की मान्यतानुसार आत्मद्रव्य का अनेक प्रकार से वर्णन हुआ है । इस के पदों का परिमाण छब्बीस २६ करोड है ७ । आठवे-कर्मप्रवादपूर्व में ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मोंका प्रकृति स्थिति अनुभाग तथा प्रदेश आदि भेदों द्वारा, तथा और भी उत्तरोत्तर भेदों द्वारा वर्णन करने में आया है । इस के पदों का परिमाण एक १ कराड ८० अस्सी हजार है ८ । नौवे-प्रत्याख्यानप्रवादपूर्वमें समस्त प्रत्याख्यानों के स्वरूप का कथन किया गया है । इसके पदों का परिमाण

(५) पाचमा ज्ञानप्रवादपूर्वमा भतिज्ञान आदि पाच लेहोनी अइपणु थळ उ तेमा अेक करोडमा अेक न्यून पड छे (६) छठ्ठा सत्यप्रवादपूर्वमा सत्य अेटले सथम अथवा सत्यवचनना लेहसहित अने प्रतिपक्ष सहित वर्णुन थयु छे तेना पडोनु प्रमाळु अेक करोड अने छन्नु छे (७) सातमा आत्मप्रवाद पूर्वमा नयोनी मान्यता प्रमाळे आत्म द्रव्यनु अनेउ प्रकारे वर्णुन थयु छे तेना पडोनु प्रमाळु ७बीस (२६) करोड छे (८) आठमा कर्मप्रवादपूर्वमा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारना कर्मनु प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश आदि लेहो द्वारा अने जीव पणु उत्तरोत्तर लेहो द्वारा वर्णुन करायु छे तेना पडोनु प्रमाळु अेक करोड अेसी हजार छे (९) नवमा प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्वमा समस्त प्रत्याख्यानांना स्वरूपनु वर्णुन करवामा आयु छे तेना पडोनु

द्रव्याणा पर्यायाणा जीवविशेषाणां च अग्र=परिमाण वर्ण्यते इत्यत इदं पूर्वमग्रायणीयम् । अत्र पणवति लक्षाणि पदानि सन्ति । तृतीय-वीर्य=वीर्यप्रवादम्, अत्र कर्मसहिताना तद्रहिताना च जीवाजीवाना वीर्यं प्रोच्यते इत्यतो वीर्यप्रवादमेतदुच्यते । अस्य पदपरिमाण सप्ततिलक्षात्मकम् । चतुर्थम्-अस्ति नास्तिप्रवादम्-यद्यल्लोके यथाऽस्ति यथा वा नास्ति अथवा-स्याद्वादाभिप्रायेण ' तदेवास्ति तदेव नास्ति ' इत्येव प्रवदति यत्तत् । अत्र पदपरिमाण पष्टि लक्षात्मकम् । पञ्चमं ज्ञान

३, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व ४, ज्ञानप्रवादपूर्व ५, सत्यप्रवादपूर्व ६, आत्म-प्रवादपूर्व ७, कर्मप्रवादपूर्व ८, प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व ९, विद्यानुप्रवादपूर्व १०, अवन्ध्यपूर्व ११, प्राणायुपूर्व १२, क्रियाविशालपूर्व १३, तथा लोक-विन्दुसारपूर्व १४ । उत्पादपुर्वमें समस्तद्रव्यो एव उनकी पर्यायो की, उत्पादभाव को लेकर प्ररूपणा की गई है । इसके पदों का प्रमाण एक करोड है । १। अग्रायणीय नाम के द्वितीय पुर्वमें समस्त जीवादिक द्रव्यों का, उनकी पर्यायों का और जीवविशेषों का परिमाण वर्णित हुआ है । इसके पदों का परिमाण छयान्नवे ९६ लाख है । २। तीसरे-वीर्य प्रवाद पुर्वमें कर्म सहित एव कर्मरहित जीवों का तथा अजीवों का वर्णन हुआ है । इसके पदों का परिमाण सत्तर ७० लाख है । ३। चौथे-अस्तिनास्ति प्रवादपुर्वमें स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार यह बतलाया गया है कि लोकमें जो भी कुछ है वह किस अपेक्षा अस्तिरूप है और किस अपेक्षा नास्तिरूप है । इसके पदों का परिमाण ६० लाख है । पाचवे-ज्ञान प्रवाद पुर्वमें मतिज्ञान

पूर्व, (३) वीर्यप्रवादपूर्व, (४) अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, (५) ज्ञानप्रवादपूर्व, (६) सत्यप्रवादपूर्व, (७) आत्मप्रवादपूर्व, (८) कर्मप्रवादपूर्व, (९) प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, (१०) विद्यानुप्रवादपूर्व, (११) अवन्ध्यपूर्व, (१२) प्राणायु पूर्व, (१३) क्रियाविशालपूर्व, (१४) तथा लोकविन्दुसारपूर्व (१) उत्पादपूर्वमा समस्त द्रव्यो अने तेमनी पर्यायिनी उत्पाद लावने लईने प्रइयल्ला करेले छे तेना पढोनु प्रभाष्य ऐक करेले छे (२) अत्रायणीय नामना भील पुर्वमा समस्त लुचदिके द्रव्योनु, तेमनी पर्यायोनु, अने लुचविशेषोनु प्रभाष्य वल्लुंथु छे, तेमा छन्दु लाख (६६०००००) पढे छे (३) वीर्य प्रवाद पुर्वमा कर्म सहित अने कर्म रहित लुवोनु तथा अलुवोनु वल्लुंन थयु छे तेमा (७०) सीत्तर लाख पढे छे (४) योथा अस्तिनास्ति प्रवाद पुर्वमा स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार ये भतांथु छे के लोकमा ने कथं पल्लु छे ते कथं अपेक्षाये नास्तिरूप छे अने कथं अपेक्षाये अस्तिरूप छे तेमा साईके (६०) लाख पढे छे

उत्पायपुठ्वस्स ण दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पणत्ता १ । अ-
ग्गाणीयपुठ्वस्स चोदस वत्थू दुवालस चूलियावत्थू पणत्ता २ वांरि-
यपुठ्वस्स ण अट्टवत्थू अट्टचूलियावत्थू पणत्ता ३ । अत्थिणात्थिप्प-
खलु चतुर्दश वस्तूनि, द्वादश चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि २, वीर्यपूर्वस्य खलु अष्ट-
वस्तूनि, अष्ट चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ३ । अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य खलु अष्ट

उत्पादपूर्वस्य खलु वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, निश्चितार्थाधिकार-प्रतिबद्धोऽध्ययन-
सदृशो ग्रन्थविशेषो ऋतु प्रोच्यते । तथा चत्तारि चूलिका वस्तूनि=चूडा इव चूडाः,
इह दृष्टिनादे परिकर्मसूत्रपूर्वगतानुयोगेष्वनुक्तार्थानां संग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयश्चूडा-
शब्देनाभिधीयन्ते, चूडा एव चूलिका, उल्लयोरेकत्वस्मरणात् । तासां वस्तूनि
प्रज्ञप्तानि । अग्रायणीयस्य खलु पूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-द्वात्रिंश
चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि । वीर्य पूर्वस्य खलु अष्ट वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-अष्ट चूडि-

विन्दुसार है वह अक्षर पर विन्दु के समान, इस लोकमें अथवा श्रुतलोक
में सर्वोत्तम माना गया है । इस में सर्वाक्षरसनिपात लब्धि आदि लब्धियों
का वर्णन है, इस के पदों का परिमाण साठे बारह १२॥ करोड़ है १४।

निश्चित अर्थाधिकार से प्रतिबद्ध अध्ययन के जेसा जो ग्रन्थविशेष
होता है उसका नाम वस्तु है । उत्पाद पूर्व की दश वस्तुएँ हैं, तथा
चार चूलिका वस्तु हैं । दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत एव अनुयोग
इन चार भेदों में जो अर्थ नहीं कहा गया है उस अर्थ का संग्रह करने
वाली जो ग्रन्थपद्धति है वह 'चूडा' शब्द का वाच्यार्थ है । 'चूडा' के
समान जो हो वह चूलिका है । कहीं २ 'ड' और 'ल' में भेद नहीं माना
जाता है, अतः चूडिका या चूलिका एक ही है । इनकी वस्तु का नाम
चूलिका वस्तु है । दूसरे-अग्रायणीयपूर्व की चौदह वस्तुएँ, एव चारह

विन्दुना जेवा आलोकमा अथवा श्रुतलोकमा सर्वोत्तम भनायु छे तेमा सर्वा-
क्षर सनिपात लब्धि आदि लब्धिओतु वर्णन छे, तेमा साडा बार करेड पढे छे

निश्चित अर्थाधिकारथी प्रतिबद्ध अध्ययनना जेवा जे ग्रन्थविशेष डोय
छे तेनु नाम वस्तु छे उत्पाद पूर्वांनी दस वस्तु छे तथा चार चूलिका वस्तु छे
दृष्टिवादन परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अने अनुयोग जे चार लेहोमा जे अर्थ
कडेवायो न डोय ते अर्थना संग्रह करनारी जे ग्रन्थपद्धति छे ते चूडा शब्द नो
वाच्यार्थ छे चूडाना जेवी जे डोय ते चूलिका कडेवाय छे कयाक कयाक "ड"
अने "ल" भा लेह भनाते नथी, तेथी चूडिका के चूलिका जेक न छे तेमनी
वस्तुनु नाम चूलिका वस्तु छे (१) भीम अश्राणीय पूर्वनी चौद वस्तुओ तथा

दम्, विद्यानुप्रवादेऽनेके विद्यातिशया वर्णिताः । तस्य पदपरिमाणमेका कोटिर्दश
चलक्षणि । एकादशम्-अन्वयम्-अन्वय=निष्फलम्, न च यमन-य सफलमित्यर्थः,
अत्र हि सर्वे ज्ञानातपासंयमयोगाः शुभफलेन सफला वर्ण्यन्ते, अप्रशस्ताश्च प्रामा
दादिकाः सर्वेऽशुभफला वर्ण्यन्ते, अत इदमवन् यमुच्यते । अस्य पदपरिमाणं षड्विं-
शतिकोटिपरिमितम् । द्वादश-प्राणायुः-अत्र आयुषः प्राणस्य च वर्णन समेद्रुप-
दर्श्यते, तथा-अन्येऽपि च प्राणा उप दर्श्यन्ते । अस्य पदपरिमाणमेका-कोटिः षट्
पञ्चाशच्चलक्षणि । त्रयोदशं क्रियाविशाल=क्रिया=कायिकयादयः सयमक्रिया-
च्छन्दक्रियादयश्च ताभिर्विशाल=विस्तीर्णं यत् तत् । अस्य पदपरिमाणं नवकोटयः ।
चतुर्दश-लोकाविन्दुसारम्-इदं चास्मिन् लोके श्रुतं लोके वा विन्दुरिवातरस्य सर्वो-
त्तममिति सर्वाक्षरमन्निपातप्रतिष्ठितत्वेन लोकाविन्दुसारमुच्यते । अस्य पदपरिमा-
णमर्द्धत्रयोदशकोटयः ।

८४ चोरासी लाख है ९ । दसवे-विद्यानुप्रवादपूर्व में विद्याओं के अनेक
अतिशय वर्णित हुए हैं । इस के पदों का परिमाण १ एक करोड़ १० दस
लाख है १० । ग्यारहवे अवन्वयप्रवादपूर्व में ज्ञान, तप एव सयम तथा
शुभयोग ये सब सफल-शुभफल प्रदायक होते हैं तथा अप्रशस्त जितने
भी प्रमाद आदि हैं वे सब अशुभ फलवाले होते ह, यह विषय वर्णित
हुआ है । इस के पदों का परिमाण २६ छब्बीस करोड़ है ११ । बारहवे-
प्राणायुषपूर्व में आयु और प्राण का तथा अन्य और भी प्राणों का भेद
सहित वर्णन हुआ है । इस के पदों का प्रमाण १ एक करोड़ ५६ छप्पन लाख
है १२ । तेरहवें-क्रियाविशालपूर्व में कायिक आदि क्रियाओं के भेदों
का तथा सयमक्रियाओं के एव छद्मक्रियाओं के भेदों का वर्णन किया गया
है । इस के पदों का परिमाण ९ नौ करोड़ है १२ । चौदहवापूर्व जो लोक-

प्रमाण चोरासी (८४) लाख छे (१०) इसमा विद्यानुप्रवादपूर्वमा विद्याओंना
अनेक अतिशयतु वर्णन करायु छे, तेना पहोलु प्रमाण अेक करौड इस लाख
छे (११) अगीयारमा अन्वयप्रवादपूर्वमा ज्ञान, तप, अने सयम तथा
शुभयोग अे अथा शुभक्षण प्रदायक होय छे, तथा प्रमाद आदि ले अप्रशस्त
छे ते अशुभक्षण हेनार छे, आ विषयतु वर्णन करायु छे तेमा छवीस करौड
(२६०००००००) पहो छे, (१२) बारमा प्राणायुषपूर्वना आयु अने प्रणुना तथा
पील प्रणोलु लेदसडिन वर्णन थयु छे तेमा पहोलु प्रमाण अेक करौड
छप्पन लाख छे (१३) तेरमा क्रियाविशालपूर्वमा कायिक आदि क्रियाओंना
लेहोलु तथा सयम क्रियाओं अने छद्मक्रियाओंना लेहोलु वर्णन थयु छे तेमा
नव करौड पहो छे (१४) चौदस ले लोकविन्दुसारपूर्व छे ते

उत्पायपुव्वस्स ण दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पणत्ता १ । अ-
ग्गाणीयपुव्वस्स चोदस वत्थू दुवालस चूलियावत्थू पणत्ता २ । वारि-
यपुव्वस्स ण अट्टवत्थू अट्टचूलियावत्थू पणत्ता ३ । अत्थिणात्थिप्प-
खलु चतुर्दश वस्तूनि, द्वादश चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि २, त्रियपूर्वस्य खलु अष्ट-
वस्तूनि, अष्ट चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ३ । अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य खलु अष्ट

उत्पादपूर्वस्य खलु वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, निश्चिनार्थाधिकार-प्रतिबद्धोऽध्ययन-
सदृशो ग्रन्थविशेषो ऋतु प्रोच्यते । तथा चत्वारि चूलिका वस्तूनि=चूडा इव चूडाः,
इह दृष्टिवादे परिकर्मसूत्रपूर्वगतानुयोगेष्वनुक्तार्थानां सग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयश्चूडा-
शब्देनाभिधीयन्ते, चूडा एव चूलिका, इत्योरेऽन्वस्मरणात् । तासां वस्तूनि
प्रज्ञप्तानि । अग्रायणीयस्य खलु पूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-द्वादश
चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि । त्रिय पूर्वस्य खलु अष्ट वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-अष्ट चूळि-

पिन्दुसार है वह अक्षर पर बिन्दु के समान, इस लोकमें अथवा श्रुतलोक
में सर्वोत्तम माना गया है । इस में सर्वाक्षरसनिपात लब्धि आदि लब्धियों
का वर्णन है, इस के पदों का परिमाण साठे चारह १२॥ करोड़ है १४।

निश्चित अर्थाधिकार से प्रतिबद्ध अध्ययन के जेसा जाँ ग्रन्थविशेष
होता है उसका नाम वस्तु है । उत्पाद पूर्व की दश वस्तुएँ हैं, तथा
चार चूलिका वस्तु हैं । दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत एव अनुयोग
इन चार भेदों में जो अर्थ नहीं कहा गया है उस अर्थ का सग्रह करने
वाली जो ग्रन्थपद्धति है वह 'चूडा' शब्द का वाच्यार्थ है । 'चूडा' के
समान जो हो वह चूलिका है । कहीं २ 'ड' और 'ल' में भेद नहीं माना
जाता है, अतः चूडिका या चूलिका एक ही है । इनकी वस्तु का नाम
चूलिका वस्तु है । दूसरे-अग्रायणीयपूर्व की चौदह वस्तुएँ, एव चारह

पिन्दुना जेवा आलोकमा अथवा श्रुतलोकमा सर्वोत्तम मनायु छे तेमा सर्वा-
क्षर सनिपात लब्धि आदि लब्धियेवु वर्णन छे, तेमा साठ आठ करोड पढे छे

निश्चित अर्थाधिकारथी प्रतिबद्ध अध्ययनना जेवा जे ग्रन्थविशेष छेय
छे तेतु नाम वस्तु छे उत्पाद पूर्वनि दस वस्तु छे तथा चार चूलिका वस्तु छे
दृष्टिवादाना परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अने अनुयोग जे चार भेदोमा जे अर्थ
कडेवायो न छेय ते अर्थना सग्रह करनारी जे ग्रन्थपद्धति छे ते चूडा शब्दो
वाच्यार्थ छे चूडाना जेवा जे छेय ते चूलिका कडेवाय छे कथाड कथाड "ड"
अने "ल" मा भेद मनातो नथी, तेथी चूडिका के चूलिका जेक न छे तेमनी
वस्तुतु नाम चूलिका वस्तु छे (१) भील अशास्त्रीय पूर्वनी चौद वस्तुयो तथा

दम्, विद्यानुप्रवादेऽनेके विद्यातिशया वर्णिताः । तस्य पदपरिमाणमेका कोटिर्दश
च लक्षाणि । एकादशम्-अवन्ध्यम्-वन्ध्य=निष्फलम्, न वन् यमन्-य सफलमित्यर्थः,
अत्र हि सर्वे ज्ञानातपास्तयमयोगाः शुभफलेन सफला वर्ण्यन्ते, अप्रशस्ताश्च प्रामा
दादिकाः सर्वेऽशुभफला वर्ण्यन्ते, अत इदमवन्ध्यमुच्यते । अस्य पदपरिमाण पट्विं
शतिकोटिपरिमितम् । द्वादश-प्राणायुः-अत्र आयुपः प्राणस्य च वर्णन समेदम्पु-
दश्यते, तथा-अन्येऽपि च प्राणा उप दश्यन्ते । अस्य पदपरिमाणमेका-कोटिः पट्
पञ्चाशच्चलक्षाणि । त्रयोदशं क्रियाविशाल=क्रियाः=कायिकयादयः सयमक्रिया-
च्छन्दक्रियादयश्च ताभिर्विशाल=विस्तीर्णं यत् तत् । अस्य पदपरिमाण नवकोटयः ।
चतुर्दश-लोकावन्दुसारम्-इदं चास्मिन् लोके श्रुतं लोके वा त्रिन्दुरिवाक्षरस्य सर्वो-
त्तममिति, सर्वाक्षरमन्निपातमतिष्ठितत्वेन लोकावन्दुसारमुच्यते । अस्य पदपरिमा-
णमर्द्धत्रयोदशकोटयः ।

८४ चोरासी लाख है ९ । दसवे-विद्यानुप्रवादपूर्व में विद्याओं के अनेक
अतिशय वर्णित हुए हैं । इस के पदों का परिमाण १ एक करोड १० दस
लाख है १० । ग्यारहवे अवन्ध्यप्रवादपूर्व में ज्ञान, तप एव सयम तथा
शुभयोग ये सब सफल-शुभफल प्रदायक होते हैं तथा अप्रशस्त जितने
भी प्रमाद आदि हैं वे सब अशुभ फलवाले होते हैं, यह विषय वर्णित
हुआ है । इस के पदों का परिमाण २६ छत्तीस करोड है ११ । बारहवे-
प्राणायुपूर्व में आयु और प्राण का तथा अन्य और भी प्राणों का भेद
सहित वर्णन हुआ है । इस के पदों का प्रमाण १ एक करोड ५६ छप्पन लाख
है १२ । तेरहवें-क्रियाविशालपूर्व में कायिकी आदि क्रियाओं के भेदों
का तथा सयमक्रियाओं के एव छन्दक्रियाओं के भेदों का वर्णन किया गया
है । इस के पदों का परिमाण ९ नौ करोड है १३ । चौदहवापूर्व जो लोक-

प्रमाण चोरासी (८४) लाख छे (१०) इसमा विद्यानुप्रवादपूर्वमा विद्याओंना
अनेक अतिशयतु वर्णन करायु छे, तेना पढेतु प्रमाण अेक करोड इस लाख
छे (११) अगीथारमा अवन्ध्यप्रवादपूर्वमा ज्ञान, तप, अने सयम तथा
शुभयोग अे अथा शुभक्षण प्रदायक छेय छे, तथा प्रमाद आदि अे अप्रशस्त
छे ते अशुभक्षण हेनार छे, आ विषयतु वर्णन करायु छे तेमा छत्तीस करोड
(२६०००००००) पढे छे, (१२) बारमा प्राणायुपूर्वना आयु अने प्रणना तथा
भील प्राणेतु लेदसडि १ वर्णन थयु छे तेमा पढेतु प्रमाण अेक करोड
छप्पन लाख छे (१३) तेरमा क्रियाविशालपूर्वमा कायिकी आदि क्रियाओंना
लेदेतु तथा सयम क्रियाओं अने छन्दक्रियाओंना लेदेतु वर्णन थयु छे तेमा
नव करोड पढे छे (१४) चौदसु अे लोकविन्दुसारपूर्व छे ते ५२

उत्पायपुव्वस्स ण दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पणत्ता १ । अ-
ग्गाणीयपुव्वस्स चोद्दस वत्थू दुवालस चूलियावत्थू पणत्ता २ । वारि-
यपुव्वस्स ण अट्टवत्थू अट्टचूलियावत्थू पणत्ता ३ । अत्थिणात्थिप्प-
खलु चतुर्दश वस्तूनि, द्वादश चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि २, वीर्यपूर्वस्य खलु अष्ट-
वस्तूनि, अष्ट चूलिका वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ३ । अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य खलु अष्ट

उत्पादपूर्वस्य खलु वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, निश्चितार्थाधिकार-प्रतिबद्धोऽध्ययन-
सदृशो ग्रन्थविशेषो ऋतु प्रोच्यते । तथा चत्वारि चूलिका वस्तूनि=चूडा इव चूडाः,
इह दृष्टिवादे परिकर्मसूत्रपूर्वगतानुयोगेष्वनुक्तार्थानां संग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयश्चूडा-
शब्देनाभिधीयन्ते, चूडा एव चूलिका, डलयोरेऽन्वस्मरणात् । तासां वस्तूनि
प्रज्ञप्तानि । अग्रायणीयस्य खलु पूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-द्वादश
चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि । वीर्य पूर्वस्य खलु अष्ट वस्तूनि प्रज्ञप्तानि, तथा-अष्ट चूडि-

विन्दुसार है वह अक्षर पर विन्दु के समान, इस लोकमें अथवा श्रुतलोक
में सर्वोत्तम माना गया है । इसमें सर्वाक्षरसनिपात लब्धि आदि लब्धियों
का वर्णन है, इस के पदों का परिमाण साठे चारह १२॥ करोड़ है १४।

निश्चित अर्थाधिकार से प्रतिबद्ध अध्ययन के जेसा जाँ ग्रन्थविशेष
होता है उसका नाम वस्तु है । उत्पाद पूर्व की दश वस्तुएँ हैं, तथा
चार चूलिका वस्तु हैं । दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत एव अनुयोग
इन चार भेदों में जो अर्थ नहीं कहा गया है उस अर्थ का संग्रह करने
वाली जो ग्रन्थपद्धति है वह 'चूडा' शब्द का वाच्यार्थ है । 'चूडा' के
समान जो हो वह चूलिका है । कहीं २ 'ड' और 'ल' में भेद नहीं माना
जाता है, अतः चूडिका या चूलिका एक ही है । इनकी वस्तु का नाम
चूलिका वस्तु है । दूसरे-अग्रायणीयपूर्व की चौदह वस्तुएँ, एव चारह

विन्दुना जेवा आदोऽभा अथवा श्रुतयोऽभा सर्वोत्तम भनायु छे तेभा सर्वा-
क्षर सनिपात लब्धि आदि लब्धियोतु वर्णन छे, तेभा साडा आर डरोड पढो छे

निश्चित अर्थाधिकारथी प्रतिबद्ध अध्ययनना जेवो जे अर्थविशेष डोय
छे तेतु नाम वस्तु छे उत्पाद पूर्वांनी दस वस्तु छे तथा चार चूलिका वस्तु छे
दृष्टिवादन परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अने अनुयोग जे आर बेदोभा जे अर्थ
कडेवायो न डोय ते अर्थने संग्रह करनारी जे अर्थपद्धति छे ते चूडा शब्दो
वाच्यार्थ छे चूडाना जेवी जे डोय ते चूलिका कडेवाय छे कथाड कथाड "ड"
अने "ल" भा बेद भनातो नथी, तेथी चूडिका के चूलिका ओर न छे तेभनी
वस्तुतु नाम चूलिका वस्तु छे (१) भील अशाणीय पूर्वांनी चौद वस्तुओ तथा

वायपुवस्स णं अट्टारसवत्थू, दस चूलियावत्थू पणत्ता १। नाण-
 प्पवायपुवस्स ण वारसवत्थू पणत्ता ५, सच्चप्पवायपुवस्स
 ण दोणिवत्थू पणत्ता ६, आयप्पवायपुवस्स ण सोलसवत्थू
 पणत्ता ७, कम्मप्पवायपुवस्स णं तीसंवत्थू पणत्ता ८,
 पच्चक्खाणपुवस्स णं वीसवत्थू पणत्ता ९, विज्जाणुप्पवाय
 पुवस्स णं पन्नरसवत्थू पणत्ता १०, अवज्जपुवस्स णं वारस वत्थू
 दशवस्तुनि दश चूलिकावस्तुनि प्रज्ञप्तानि ४। ज्ञानप्रवादपूर्वस्य खलु द्वादशवस्तुनि
 प्रज्ञप्तानि ५। सत्यप्रवादपूर्वस्य खलु द्वे वस्तुनि प्रज्ञप्ते ६। आत्मप्रवादपूर्वस्य खलु
 षोडश वस्तुनि प्रज्ञप्तानि ७। कर्मप्रवादपूर्वस्य खलु त्रिंशद् वस्तुनि प्रज्ञप्तानि ८।
 प्रत्याख्यानपूर्वस्य खलु त्रिंशतिर्वस्तुनि प्रज्ञप्तानि ९। विद्यानुप्रवादपूर्वस्य खलु

कावस्तुनि प्रज्ञप्तानि। अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य खलु अष्टादश वस्तुनि प्रज्ञप्तानि,
 तथा-दश चूलिकावस्तुनि प्रज्ञप्तानि। ज्ञानप्रवाद पूर्वस्य खलु द्वादश वस्तुनि प्रज्ञ-
 प्तानि। सत्यप्रवाद पूर्वस्य खलु द्वे वस्तुनी प्रज्ञप्ते। आत्मप्रवाद पूर्वस्य खलु षोडश
 वस्तुनि प्रज्ञप्तानि। कर्मप्रवादपूर्वस्य खलु त्रिंशद् वस्तुनि प्रज्ञप्तानि। प्रत्याख्यान पूर्वस्य
 खलु त्रिंशतिर्वस्तुनि प्रज्ञप्तानि। विद्यानुप्रवाद पूर्वस्य खलु पञ्चदशवस्तुनि प्रज्ञप्तानि।

चूलिका वस्तुएँ हैं २। तीसरे-वीर्यप्रवादपूर्व की आठ वस्तुएँ, तथा आठ
 ही चूलिका वस्तुएँ हैं ३। चौथे-अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व की अठारह वस्तुएँ
 तथा दस चूलिका वस्तुएँ हैं ४। पाचवे-ज्ञानप्रवादपूर्व की बारह वस्तुएँ
 हैं ५। छठे-सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तुएँ हैं ६। सातवे-आत्मप्रवादपूर्व
 की सोलह वस्तुएँ हैं ७। आठवें-कर्मप्रवादपूर्व की तीस वस्तुएँ ८ हैं। नौवें-
 प्रत्याख्यानपूर्व की बीस वस्तुएँ हैं ९। दसवे-विद्यानुप्रवादपूर्व की पन्द्रह

५२ चूलिका वस्तुओं के (२) तीस वीर्यवाद पूर्वनी आठ वस्तुओं तथा आठ
 ५३ चूलिकावस्तुओं के (३) तथा अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्वनी अठार वस्तुओं
 तथा दस चूलिका वस्तुओं के (४) पाचमा ज्ञानप्रवाद पूर्वनी बार वस्तुओं के (५)
 (५) छठे सत्यप्रवादपूर्वनी दो वस्तुओं के (६) सातमा आत्मप्रवादपूर्वनी सोल
 वस्तुओं के (७) आठमा कर्मप्रवादपूर्वनी तीस वस्तुओं के (८) नवमा प्रत्या
 ख्यानपूर्वनी बीस वस्तुओं के (९) दसमा विद्यानुप्रवादपूर्वनी पंद्र वस्तुओं

पण्णत्ता ११, पाणाऊपुव्वस्स णं तेरस वत्थू पण्णत्ता १२, किरि-
याविसालपुव्वस णं तीस वत्थू पण्णत्ता १३, लोगविदुसार-
पुव्वस्स णं पण्णवीसंवत्थू पण्णत्ता १४ ।

गाहा—“दस १ चोद्दह २ अट्ट ३ द्वारसे ४ व, वारस ५
दुवे य वत्थूणि ।

सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९ पन्नरस अणुप्पवायम्मि ॥ १ ॥

पञ्चदशवस्तूनि प्रज्ञप्तानि १० । अग्रन्ध्यपूर्वस्य खलु द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ११ ।
प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १२ । क्रियाविशालपूर्वस्य खलु
त्रिंशद्भवस्तूनि प्रज्ञप्तानि १३ । लोफविन्दुसारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनि
प्रज्ञप्तानि १४ ।

गाहा—“दश चतुर्दशाष्टादशैव द्वादश द्वे च वस्तूनि ।

पडश त्रिंशद् विंशतिः पञ्चदशानु प्रवादे ॥ १ ॥

अग्रन्ध्यपूर्वस्य खलु द्वादशवस्तूनिप्रज्ञप्तानि । प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदश-
वस्तूनि प्रज्ञप्तानि । क्रियाविशालपूर्वस्य खलु त्रिंशद्भवस्तूनिप्रज्ञप्तानि । लोफविन्दु-
सारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनिप्रज्ञप्तानि । एतदेव सक्षेपेणाह—

“दश चोद्दस अट्टऽद्वारसेव, वारस दुवे य वत्थूणि ।

सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायम्मि ॥ १ ॥

वस्तुएँ हैं १० । ग्यारहवे—अवध्यपूर्व की वारह वस्तुएँ हैं ११ । वारहवें—
प्राणायुपूर्व की तेरह वस्तुएँ हैं १२ । तेरहवें—क्रियाविशालपूर्व की तीस
वस्तुएँ हैं १३ । चौदहवें लोकविन्दुसारपूर्व की पन्चीस वस्तुएँ हैं—ऐसा
जिनेन्द्र देव ने कहा है। यही विषय सक्षेप से “दस चोद्दस” इत्यादि
गाथाओं द्वारा स्पष्ट समझाया गया है। इस प्रकार यह पूर्वगत का
स्वरूप है। ३।

७ (१०) अगीधारमा अवध्यपूर्वनी आर वस्तुओ छे (११) आरमा प्राणायु
पूर्वनी तेर वस्तुओ छे (१२) तेरमा क्रियाविशालपूर्वनी तीस वस्तुओ
छे (१३) चौदहमा लोकविन्दुसारपूर्वनी पन्चीस वस्तुओ छे अथु जिनेन्द्र
देवे कडेव छे अथु विषय सक्षिप्तमा “दस चोद्दस” इत्यादि गाथाओ
द्वारा स्पष्ट समझाया छे आ प्रमाणे आ पूर्वगतनु स्वरूप छे (३)

વાયુપુસ્તક ણં અઘારસવત્થૂ, દસ ચૂલિયાવત્થૂ પળ્લતા ૫, નાણ-
 પ્પવાયુપુસ્તક ણ ઘારસવત્થૂ પળ્લતા ૫, સચ્ચપ્પવાયુપુસ્તક
 ણ દોણિણવત્થૂ પળ્લતા ૬, આયપ્પવાયુપુસ્તક ણ સોલસવત્થૂ
 પળ્લતા ૭, કમ્મપ્પવાયુપુસ્તક ણં તીસંવત્થૂ પળ્લતા ૮,
 પચ્ચક્ખાણુપુસ્તક ણં વીસવત્થૂ પળ્લતા ૯, વિજ્ઞાણુપ્પવાય
 પુસ્તક ણં પન્નરસવત્થૂ પળ્લતા ૧૦, અવંજ્ઞપુસ્તક ણં ઘારસ વત્થૂ
 દશવસ્તુની દશ ચૂલિકાવસ્તુની પ્રજ્ઞાની ૪ । જ્ઞાનપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચલુ દ્વાદશવસ્તુની
 પ્રજ્ઞાની ૫ । સત્યપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચલુ દ્વે વસ્તુની પ્રજ્ઞા ૬ । આત્મપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચલુ
 પોઢશ વસ્તુની પ્રજ્ઞાની ૭ । કર્મપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચલુ ત્રિંશદ્ વસ્તુની પ્રજ્ઞાની ૮ ।
 પ્રત્યાખ્યાનપૂર્વસ્ય ચલુ ત્રિંશતિર્વસ્તુની પ્રજ્ઞાની ૯ । વિદ્યાનુપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચલુ

કાવસ્તુની પ્રજ્ઞાની । અસ્તિનાસ્તિપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચલુ અષ્ટાદશ વસ્તુની પ્રજ્ઞાની,
 તથા-દશ ચૂલિકાવસ્તુની પ્રજ્ઞાની । જ્ઞાનપ્રવાદ પૂર્વસ્ય ચલુ દ્વાદશ વસ્તુની પ્રજ્ઞા-
 નાની । સત્યપ્રવાદ પૂર્વસ્ય ચલુ દ્વ વસ્તુની પ્રજ્ઞા ૬ । આત્મપ્રવાદ પૂર્વસ્ય ચલુ પોઢશ
 વસ્તુની પ્રજ્ઞાની । કર્મપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચલુ ત્રિંશદ્ વસ્તુની પ્રજ્ઞાની । પ્રત્યાખ્યાન પૂર્વસ્ય
 ચલુ ત્રિંશતિર્વસ્તુની પ્રજ્ઞાની । વિદ્યાનુપ્રવાદ પૂર્વસ્ય ચલુ પચ્ચદશવસ્તુની પ્રજ્ઞાની ।

ચૂલિકા વસ્તુએ હૈં ૨ । તીસરે-વીર્યપ્રવાદપૂર્વે કી આઠ વસ્તુએ, તથા આઠ
 હી ચૂલિકા વસ્તુએ હૈં ૩ । ચોથે-અસ્તિનાસ્તિ પ્રવાદપૂર્વે કી અઠારહ વસ્તુએ
 તથા દસ ચૂલિકા વસ્તુએ હૈં ૪ । પાચવે-જ્ઞાનપ્રવાદપૂર્વે કી બારહ વસ્તુએ
 હૈં ૫ । છઠે-સત્યપ્રવાદપૂર્વે કી દો વસ્તુએ હૈં ૬ । સાતવે-આત્મપ્રવાદપૂર્વે
 કી સોલહ વસ્તુએ હૈં ૭ । આઠવે-કર્મપ્રવાદપૂર્વે કી તીસ વસ્તુએ ૮ હૈં । નવે-
 પ્રત્યાખ્યાનપૂર્વે કી તીસ વસ્તુએ હૈં ૯ । દસવે-વિદ્યાનુપ્રવાદપૂર્વે કી પન્દર

બાર શૂલિકા વસ્તુઓ છે (૨) ત્રીજા વીર્યવાદ પૂર્વની આઠ વસ્તુઓ તથા આઠ
 જ શૂલિકાવસ્તુઓ છે (૩) ચેથા અસ્તિનાસ્તિ પ્રવાદ પૂર્વની અઠાર વસ્તુઓ
 તથા દસ શૂલિકા વસ્તુઓ છે (૪) પાચમા જ્ઞાનપ્રવાદ પૂર્વની બાર વસ્તુઓ છે (૫)
 (૫) છઠ્ઠા સત્યપ્રવાદપૂર્વની દો વસ્તુઓ છે (૬) સાતમા આત્મપ્રવાદપૂર્વની સોળ
 વસ્તુઓ છે (૭) આઠમા કર્મપ્રવાદપૂર્વની ત્રીસ વસ્તુઓ છે (૮) નવમા પ્રત્યા
 ખ્યાનપૂર્વની વીસ વસ્તુઓ છે (૯) દસમા વિદ્યાનુપ્રવાદપૂર્વની પદર વસ્તુઓ

पणत्ता ११, पाणाऊपुव्वस्स णं तेरस वत्थू पणत्ता १२, किरि-
याविसालपुव्वस णं तीसं वत्थू पणत्ता १३, लोक्खिन्दुसार-
पुव्वस्स णं पणवीसवत्थू पणत्ता १४ ।

गाहा—“दस १ चोदह २ अट्ट ३ द्वारसे ४ व, वारस ५
दुवे य वत्थूणि ।

सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९ पन्नरस अणुप्पवायम्मि ॥१॥

पञ्चदशवस्तूनि प्रज्ञप्तानि १० । अन्नध्यपूर्वस्य खलु द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ११ ।
प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १२ । क्रियाविशालपूर्वस्य खलु
त्रिंशद्द्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १३ । लोकविन्दुसारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनि
प्रज्ञप्तानि १४ ।

गाहा—“दश चतुर्दशाष्टादशैव द्वादश द्वे च वस्तूनि ।

षोडश त्रिंशद् विंशतिः पञ्चदशानु प्रवादे ॥ १ ॥

अन्नध्यपूर्वस्य खलु द्वादशवस्तूनिप्रज्ञप्तानि । प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदश-
वस्तूनि प्रज्ञप्तानि । क्रियाविशालपूर्वस्य खलु त्रिंशद्द्वस्तूनिप्रज्ञप्तानि । लोकविन्दु-
सारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनिप्रज्ञप्तानि । एतदेव सक्षेपेणाह—

“दश चोदस अट्टद्वारसेव, वारस दुवे य वत्थूणि ।

सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायम्मि ॥ १ ॥

वस्तुएँ हैं १० । ग्यारहवे—अवध्यपूर्वकी वारह वस्तुएँ हैं ११ । वारहवें—
प्राणायुपूर्व की तेरह वस्तुएँ हैं १२ । तेरहवें—क्रियाविशालपूर्व की तीस
वस्तुएँ हैं १३ । चौदहवें लोकविन्दुसारपूर्व की पच्चीस वस्तुएँ हैं—ऐसा
जिनेन्द्र देव ने कहा है। यही विषय सक्षेप से “दस चोदस” इत्यादि
गाथाओं द्वारा स्पष्ट समझाया गया है। इस प्रकार यह पूर्वगत का
स्वरूप है।३।

ॐ (१०) अगीयारमा अवध्यपूर्वनी षार वस्तुओ छे (११) षारमा प्राणायु
पूर्वनी तेर वस्तुओ छे (१२) तेरमा क्रियाविशालपूर्वनी तीस वस्तुओ
छे (१३) चौदमा लोकविन्दुसारपूर्वनी पचीस वस्तुओ छे ओषु जिनेन्द्र
देवे कडेल छे ओज विषय सक्षेपमा “दस चोदस” इत्यादि गाथाओ
द्वारा स्पष्ट समझओ छे आ प्रभाओ आ पूर्वगतनु स्वरूप छे (३)

पणत्ता ११, पाणाऊपुव्वस्स णं तेरस्स वत्थू पणत्ता १२, किरि-
याविसालपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पणत्ता १३, लोगविदुसार-
पुव्वस्स णं पणवीसंवत्थू पणत्ता १४ ।

गाहा—“दस १ चोदह २ अट्ट ३ द्वारसे ४ व, वारस ५
दुवे य वत्थूणि ।

सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९ पन्नरस अणुप्पवायम्मि ॥१॥

पञ्चदशवस्तूनि प्रज्ञप्तानि १० । अवध्यपूर्वस्य खलु द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि ११ ।
प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १२ । क्रियाविशालपूर्वस्य खलु
त्रिंशद्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि १३ । लोकरिन्दुसारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनि
प्रज्ञप्तानि १४ ।

गाहा—“दश चतुर्दशाष्टादशैव द्वादश द्वे च वस्तूनि ।

षोडश त्रिंशद् विंशतिः पञ्चदशानु प्रवादे ॥ १ ॥

अवध्यपूर्वस्य खलु द्वादशवस्तूनिप्रज्ञप्तानि । प्राणायुःपूर्वस्य खलु त्रयोदश-
वस्तूनि प्रज्ञप्तानि । क्रियाविशालपूर्वस्य खलु त्रिंशद्वस्तूनिप्रज्ञप्तानि । लोकरिन्दु-
सारपूर्वस्य खलु पञ्चविंशतिर्वस्तूनिप्रज्ञप्तानि । एतदेव सक्षेपेणाह—

“दश चोदस अट्टद्वारसेव, वारस दुवे य वत्थूणि ।

सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायम्मि ॥ १ ॥

वस्तुएँ हैं १० । ग्यारहवे—अवध्यपूर्वकी वारह वस्तुएँ हैं ११ । वारहवें-
प्राणायुपूर्व की तेरह वस्तुएँ हैं १२ । तेरहवें—क्रियाविशालपूर्व की तीस
वस्तुएँ हैं १३ । चौदहवें लोकरिन्दुसारपूर्व की पच्चीस वस्तुएँ हैं—ऐसा
जिनेन्द्र देव ने कहा है। यही विषय सक्षेप से “दस चोदस” इत्यादि
गाथाओं द्वारा स्पष्ट समझाया गया है। इस प्रकार यह पूर्वगत का
स्वरूप है।३।

छे (१०) अगीधारमा अवध्यपूर्वनी गार वस्तुओ छे (११) गारमा प्राणायु
पूर्वनी तेर वस्तुओ छे (१२) तेरमा क्रियाविशालपूर्वनी तीस वस्तुओ
छे (१३) चौदहमा लोकरिन्दुसारपूर्वनी पच्चीस वस्तुओ छे ओषु जिनेन्द्र
देवे कडेव छे ओषु विषय सक्षेपमा “दस चोदस” इत्यादि गाथाओ
द्वारा स्पष्ट समझाये छे आ प्रभाषे आ पूर्वगततु स्वरूप छे (३)

वारस एकारसमे ११, वारसमे तेरसेव १२ वत्थूणि ।

तीसा पुण तेरसमे १३, चोदसमे पन्नवीसाओ १४ ॥२॥

चत्तारि १ दुवालस २, अट्ट ३ चेव दस ४ चेव चूल्ल

वत्थूणि । आइल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलिया णत्थि ॥३॥

से त्त पुव्वगए ॥३॥

से किं त अणुओगे ?, अणुओगे दुविहे पणत्ते, त जहा-

मूलपढमाणुओगे य गडियाणुओगे य । से किं त, मूलपढमा-

द्वादशैकादशे द्वादशे त्रयोदशैव वस्तुनि ।

त्रिंशत् पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चत्रिंशति ॥ २ ॥

चत्वारि द्वादशाष्ट चैव दश चैव चूलिका वस्तुनि ।

आदिमानां चतुर्णां चूलिकाः शेषाणां चूलिका न सन्ति ॥ ३ ॥

तदेतत्पूर्वगतम् ॥ ३ ॥

अथ कोऽसावनुयोगः ? अनुयोगो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मूलप्रथमानुयोगो

गण्डिकानुयोगश्च । अथ कौऽसां मूल प्रथमानुयोगः ? मूलप्रथमानुयोगे खलु

वारस एकारसमे वारसमे तेरसेन वत्थूणि ।

तीसा पुण तेरसमे चउदसमे पण्णवीसाओ ॥ २ ॥

छया—दश चतुर्दशाष्टाष्टा दशैव द्वादश द्वे च वस्तुनि ।

पोडश त्रिंशद् त्रिंशतिः पञ्चदशानु प्रवादे ॥ १ ॥

द्वादशैकादशे द्वादशे त्रयोदशैव वस्तुनि ।

त्रिंशत्पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चत्रिंशतिः ॥ २ ॥

तथा—“ चत्तारि दुवालस अट्ट चेव दसचेव चूलवत्थूणि ।

आ ल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलियाणत्थि ॥ ३ ॥

छया—चत्वारि द्वादशाष्ट चैव दश चैव चूलिका वस्तुनि ।

आदिमाना चतुर्णां, शेषाणा चूलिका न सन्ति ॥ ३ ॥ इति ।

उपसहरन्नाह—तदेतत्पूर्वगतम् । इति ॥

अथ चतुर्थ भेदमाह—‘ से किं त अणुओगे०’ इत्यादि । ‘ अथ कोऽसावनु-
योगः’ इति । उत्तरयति—अनुयोगः=अनु-अनुकूलोऽनुरूपो वा योगः—सूत्रस्य

णुओगे ? मूलपदमाणुओगे णं अरहंताणं भगवताणं पुव्वभवा,
देवलोगगमणाइं, आउ, चवणाइं, जम्मणाणि, अभिसेया, राय-
वरसिरीओ, पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा केवलनाणुप्पायाओ,
तित्थपवत्तणाणि य, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा पवत्तणीओ,
अर्हता भगवता पूर्वभवा. देवलोकगमनानि आयुः, च्यवनानि, जन्मानि, अभिपेकाः
राजराश्रियः, प्रज्याः, तपासि च उग्राणि, केवलज्ञानोत्पादः, तीर्थ प्रवर्त्तनानि च,

स्वाभिधेयेन सह सन्धोऽनुयोगः, स द्वित्रिधः प्रवृत्तः, द्वैविध्यमेवाह—‘त जहा०’
इत्यादिना, तद्यथा—मूलप्रथमानुयोगः, गण्डिकाउयागश्च । तत्र पुन. पृच्छति—अथ
कोऽसौ मूल प्रथमानुयोगः ? इति । उत्तरयति—मूलप्रथमानुयोगे खलु अर्हता भग-
वता पूर्वभवाः=पूर्वजन्मानि, देवलोकगमनानि, आयुः च्यवनानि, जन्मानि
अभिपेका, राजराश्रय, प्रज्याः, उग्राणि=योराणि च तपासि, केवलज्ञानोत्पादाः,

अथ चौथे भेद अनुयोग का स्वरूप कहते हैं—‘से किं त अणुओगे०’
इत्यादि। शिष्य पुछता है—हे भदन्त । अनुयोग का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—सूत्र का जो अपने अभिधेय के साथ अनुकूल अथवा अनु-
रूप संबन्ध हो उस का नाम अनुयोग है। अर्थात्—सूत्र के अनुकूल अर्थ
करना अनुयोग है। यह अनुयोग दो प्रकार का है, वे प्रकार ये हैं—मूल-
प्रथमानुयाग और गण्डिकाउयोग ।

शिष्य प्रश्न—मूलप्रथमानुयोग का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मूलप्रथमानुयोग में अर्हन्त भगवान के पूर्वभवों का, देवलोक
में उन की उत्पत्ति होने का उन की आयु का, देवलोक से उन के च्यवन
का, उनके जन्म का, उनके अभिपेक का, उन की राजलक्ष्मी—विभूति का

इसे चौथा लेख—अनुयोगनु स्वरूप कहे छे—“से किं त अणुओगे” इत्यादि
शिष्य पूछे छे—हे भदन्त! अनुयोगनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—सूत्रने जे पोताना अभिधेयनी साथे अनुकूल अथवा अनुकूल
संबन्ध होय तेनु नाम अनुयोग छे ज्येठले छे सूत्रनी अनुकूल अर्थ करये तने
अनुयोग कहे छे आ अनुयोग जे प्रकारनी छे—मूलप्रथमानुयोग अने
गण्डिकाउयोग

शिष्य पूछे छे—मूलप्रथमानुयोगनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—मूलप्रथमानुयोगमा अर्हन्त भगवानना पूर्वभवोनु, देवलोकमा
तेमनी उत्पत्ति थवानु, तेमना आयुनु, देवलोकथी तेमना च्यवननु, तेमना
जन्मनु, तेमना अभिपेकनु, तेमनी राजलक्ष्मी—विभूतिनु, तेमनी प्रमन्यानु,

संघस्त चउव्विहस्त जं च परिमाणं, जिणमणपज्जव ओहिनाणी,
सम्मत्त सुय नाणिणो य चाई, अणुत्तरगई य, उत्तरवेउ विवणो
य मुणिणो, सिद्धिपहो जह देसिओ जच्चिरं च कालं, पाओव-
जत्तिया सिद्धा, गया जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं अणसणाए
शिष्याः, गणाः, गणधराः, आर्याः, प्रवर्त्तिन्य, सघस्य चतुर्विधस्य यच्च परिमाण
जिनमनः पर्यवावधि ज्ञानिनः, समस्त श्रुतज्ञानिनश्च, वादिनः, अनुत्तरगतयश्च, उ-
त्तरवैकुण्ठिणश्च मुनयो, यावन्तः सिद्धाः, सिद्धिपथो यथा देशितः, याचच्चिरं च काल
पादपोपगताः, ये यत्र यावन्ति भक्तानि उच्चिवा अन्तकृतो मुनिवरोत्तमास्तिमिरौ

तीर्थप्रवर्त्तनानि च, शिष्याः, गणाः, गणधराश्च, आर्याः, प्रवर्त्तिन्यः, सघस्य चतु-
र्विधस्य यच्च परिमाणम्, जिनमनः पर्यवावधिज्ञानिनः-तत्र-जिना इति=केवलिन,
मनः-पर्यवावधिज्ञाने येषां ते मनः पर्यवावधि ज्ञानिनः, जिनाश्च मनः पर्यवावधि
ज्ञानिनश्चेति द्वन्द्वः, तथा-समस्तश्रुतज्ञानिश्च, वादिनः, अनुत्तरगतयश्च, उत्तरवैकु-
ण्ठिणश्च, तथा यावन्तः सिद्धाः, यच्चिरं च काल पादपोपगताः-तथा-यो यत्र
यावन्ति भक्तानि छेद्यित्वा अन्तकृतो मुनिवरोत्तमः, तिमिरौघविप्रमुक्तः-तिमिरम्=
उनकी प्रव्रज्या का, उनकी घोर तपस्या का, उनके केवलज्ञान की उत्पत्ति
होने का, उनके तीर्थ प्रवर्तन का, उनके शिष्यों का, उनके गणों का उनके
गणधरों का, उनकी आर्यायों का और आर्यायों के गच्छ की प्रवर्तिनियों
का, उनके चतुर्विधसघ के परिमाण का, केवलज्ञानियों का, मनः पर्ययज्ञा
नियों का, अवधिज्ञानियों का समस्त श्रुतज्ञानियों का, वादियों का, अनु-
त्तर विमानों में उत्पत्ति होने का, उत्तर वैक्रियलब्धिधारियों का तथा
जितने सिद्ध हुए हैं उन का, तथा-जो जितने काल तक पादपोपगमन
किये उस काल का, तथा जहाँ जितने अनशन कर के अन्तकृत केवली

तेमनी घोर तपस्थानु, तेमने केवणज्ञान पेदा थयानु तेमना तीर्थप्रवर्त्तननु,
तेमना शिष्येणु, तेमना गण्णानु तेमना गणधरेणु, तेमनी आर्यायेणु, अने
आर्यायेणा गच्छनी प्रवर्त्तिनीयेणु, तेमना अतुर्विध सघना परिभाषणु, केवण
ज्ञानीयेणु, मन पर्यय ज्ञानीयेणु, अवधिज्ञानीयेणु, समस्त श्रुतज्ञानीयेणु,
वादीयेणु, अनुत्तर विमानेभा उत्पत्ति थयानु, उत्तरवैक्रिय लब्धिधारिणेणु, तथा
नेटवा सिद्ध थया छे तेमनु, तथा ने नेटवा ढाण सुधी पादपोपगमन कथा
ते ढाणनु, तथा नेये न्या नेटवा अनशन करीने अतपुत केवणी थया छे,

छेइत्ता अंतगडे, मुणिवरुत्तमे तिमिरओघविप्पमुक्के मुक्खसुह-
मणुत्तरं च पत्ते, एवमन्ने य एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे
कहिया, से त्तं मूलपढमाणुओगे ।

से किं तं गंडियाणुओगे? गंडियाणुओगे अणेगविहे पण्णत्ते,
तं जहा—कुलगरगंडियाओ, तित्थयरगंडियाओ, चक्कवट्टिगंडि-
याओ, दस्रार गंडियाओ वलदेवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ,
घविप्रमुक्ताः मोक्षसुखमनुत्तरं च प्राप्ताः, एवमन्ये च एवमादिभावा मूलप्रथमानु-
योगे कथिताः, स एष मूलप्रथमानुयोगः ।

अथ कोऽसौ गण्डिकानुयोगः ? गण्डिकानुयोगे कुलकरगण्डिकाः तीर्थकर-
गण्डिकाः, चक्रवर्त्तिगण्डिकाः, दशारगण्डिकाः, वलदेवगण्डिकाः, वासुदेवगण्डिकाः

अज्ञानम् बुद्धिमलिनकारकत्वात्, तस्य ओघः=समूहस्ततो विप्रमुक्तः=रहितः सन्,
मोक्षसुखम्, कीदृश मोक्षसुखम् ? इत्याह—अनुत्तरम्=प्रधान—पुनरागमन रहितत्वात्
प्राप्तः । एवम्=अनेन प्रकारेण अन्ये च अत इतरे च एवमादि भावाः=एव रूपा
जीवादि पदार्था मूलप्रथमानुयोगे कथिताः स एष मूलप्रथमानुयोगः ।

अथ कोऽसौ गण्डिकानुयोगः ? गण्डिकानुयोगे—एक वक्तव्यतार्थाऽधिकारा-
नुगतावाक्यपद्धतयो गण्डिकास्तासामनुयोगोऽर्थकथनविधिर्गण्डिकानुयोगः, तस्मिन्
—कुलकरगण्डिकाः, अत्र कुलकराणा विमल वाहनादीना पूर्वं जन्मादीन्यभि-

हूए हैं, जो कि मुनिवरोमे उत्तम है, जिन्होंने अज्ञान के समूह से रहित
होकर अनुत्तर मोक्ष सुख को प्राप्त किया है उनका वर्णन किया गया है।
तथा इन वर्णनों के अतिरिक्त और भी इसी तरह के जीवादिक पदार्थ
भी इसमें कहे गये हैं। इस प्रकार यह मूलप्रथमानुयोग का स्वरूप है।

फिर शिष्य पूछता है कि—हे भदन्त ! गण्डिकानुयोग क्या है ?

जेओ मुनिवरोमा उत्तम छे, जेओ अज्ञानना समूइथी रहित थईने अनुत्तर
मोक्षसुखने थाम्या छे, तेमनु वर्णुन थयु छे तथा आ वर्णुने उपरत थीका
पथु आन प्रकारना एवादिक पदार्थनु पथु तेमा वर्णुन ठरायु छे आ प्रकारनु
आ मूलप्रथमानुयोगनु स्वरूप छे

वणी शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! गण्डिकानुयोगनु शुं स्वरूप छे ?

गणधरगंडियाओ, भद्रवाहुगंडियाओ तत्रोकम्मगंडियाओ हरि-
 वसगंडियाओ, उत्सपिणीगंडियाओ, ओसपिणीगंडियाओ,
 चित्तंतरगंडियाओ, अमर-नर-तिरिय-निरय-गड-गमण-विविह-
 गणधरगण्डिकाः, भद्रवाहुगण्डिकाः, तपः कर्मगण्डिकाः, हरिवशगण्डिकाः,
 उत्सपिणीगण्डिकाः, असपिणी गण्डिकाः, चिान्तरगण्डिकाः, अमर-
 नर-तिर्यग् - निरय - तिर्यद् - निरयगति-गमन - विविध - परिवर्त्तनानुयोगेषु
 धोयन्ते, तीर्थकरगण्डिका, चक्रवर्तिगण्डिका, आसु गण्टिकासु तीर्थकर चक्रवर्तिना
 पूर्वजन्मादीन्यभिधीयन्ते; दशार्हगण्डिका-समुद्रविजयादि समुदेवान्तानामत्रपूर्व-
 जन्मादि वर्णनम् । एवमेवेतरगण्डिकास्वपि तत्तद् वर्णन विज्ञेयम् । उलदेव गण्डिकाः,
 वासुदेवगण्डिकाः, गणधरगण्डिका, भद्रवाहुगण्डिकाः, तपःकर्मगण्डिकाः, हरिवश
 गण्डिका, उत्सपिणीगण्डिका, असपिणीगण्डिका, चिान्तरगण्डिकाः-

उत्तर—गण्डिकानुयोगमे, अर्थात्-एक अर्थ के अधिकार वाली ग्रन्थ
 पद्धति को गण्डिका कहते हैं, उनके अनुयोग अर्थकथनविधि-को गण्डि-
 कानुयोग कहते हैं । उसमें कुलकरगण्डिका-इसमें विमलवाहन आदि कुल
 करों के पुर्वजन्म आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है । तीर्थकरगण्डि-
 का-इसमें तीर्थकर के पुर्वजन्म आदि विषयो पर विवेचन किया गया है ।

चक्रवर्तिगण्डिका-इसमें चक्रवर्तियों के जन्म आदि का, वर्णन
 किया गया है । दशार्हगण्डिका-इसमें समुद्र विजय से लेकर वासुदेव
 तक के यादववशियों के जन्म आदि का वर्णन किया गया है । इसी तरह
 से जो बलदेवगण्डिका, वासुदेवगण्डिका गणधरगण्डिका भद्रवाहुग
 ण्डिका, तप कर्मगण्डिका, हरिवशगण्डिका, उत्सपिणीगण्डिका, अव

उत्तर—गण्डिकानुयोगमा, अर्थात् एक अर्थना अधिकारवाणी ग्रन्थ पद्धतिने
 गण्डिका ठडे छे तेमना अनुयोग-अर्थकथन विधिने गण्डिकानुयोग ठडे छे, तेमा
 कुलकर गण्डिका-तेमा विमलवाहन आदि कुलकराना पूर्वजन्म आदि-विषयो पर-
 प्रकाश पाडवामा आब्ये छे, तीर्थकर गण्डिका-तेमा तीर्थकराना पूर्वजन्म
 आदि विषयो विवेचन क्युं छे चक्रवर्ति गण्डिका-तेमा चक्रवर्तिआना जन्म
 आदिनु, वर्णन क्युं छे दशार्ह गण्डिका-तेमा समुद्रविजयवा माडाने वासुदेव
 सुधीना यादव वशवाण्येना जन्म आदिनु वर्णन क्युं छे अज रीते के
 अणदेव गण्डिका, वासुदेव गण्डिका, गणधर गण्डिका, भद्रवाहु गण्डिका, तप कर्म

परियट्टणा-णुओगेसु एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जति,
पण्णाविज्जति ६ । से त्त गंडियाणुओगे, से त्तअणुओगे ॥ ४ ॥

एवमादिकाः गण्डिकाः आरुयायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते ६ । स एष गण्डिकानुयोगः ।
स एषोऽनुयोगः ॥ ४ ॥

अथ कास्ताश्वूलिकाः ? चूलिकाः—आदिमाना चतुर्णां पूर्वाणा चूलिकाः,
शेषाणि पूर्वाणि अचूलिकानि । ता एताश्वूलिकाः ॥ ५ ॥

चित्रा = अनेकार्थाः अन्तरे = क्ताभाजिततीर्थकृतोरन्तरे या गण्डिकास्ताश्चित्रान्तर-
गण्डिकाः, अयभाव.—रूपभाजितनाथयोरन्तरे ये शेषगतिगमनरहितास्तद्वशजा
नृपास्तेषां शिवगत्यनुत्तरोपपातप्राप्ति प्रतिपादिका गण्डिकाश्चित्रान्तरगण्डिका अभि-
धीयन्ते । तथा—अमरनरतिर्यङ् निरय गतिगमनविविध पर्यटनानुयोगेषु—अमर नर
तिर्यङ् निरयगतिषु यद् गमनानि तत्र त्रिविधानि यानि पर्यटनानि=परिभ्रमणानि
तेषामनुयोगाः=रुथनविधयस्तेषु एवमादिका = गण्डिका आरुयायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते ।
स एष गण्डिकानुयोगः ४ ।

सर्पिणीगण्डिका हैं, उनमें भी उस २ विषय का वर्णन किया गया है ।
चित्रान्तरगण्डिका—रूपभ और अजितनाथ के अन्तराल में उनके वशज
जो नृपति थे कि जिन की शिव पद प्राप्तिरूप गति के सिवाय और दूसरी
गति ही नहीं होती थी उन को इस शिवगति की प्राप्ति का वर्णन करने
वाली जो गण्डिका है उसका नाम चित्रान्तरगण्डिका है । तथा देवगति,
मनुष्यगति तिर्यङ्गगति और नरकगति में जीव के विविध प्रकार के परि-
भ्रमणों को प्रतिपादन करने वाली विधिका नाम अमरनरतिर्यङ्ग निरय-
गति गमन विविधपर्यटनानुयोग है । इसमें इस प्रकार की गण्डिकाये
सामान्य-विशेषरूप से कही गयी हैं । इस प्रकार यह गण्डिकानुयोग का
स्वरूप है ॥ ४ ॥

गण्डिका, हरिवश गण्डिका, उन्मर्षिणी गण्डिका छे तेभा ते ते विषयनु वर्णन
करेव छे चित्रान्तर गण्डिका—रूपभ अने अजितनाथना वयगाणाना समयभा
तेम्भना वशज जे नृपतिओ हुता के जेभनी भोक्षप्राप्तिरूप गति सिवाय पीछ
केछ गति न हुती तेभनी ते भोक्षगतिनी प्राप्तिनु वर्णन करनारी जे
गण्डिका छे तेनु नाम चित्रान्तर गण्डिका छे तथा देवगति, मनुष्यगति, तिर्यं य-
गति, अने नरक गतिमा लवना विविध प्रकारना परिभ्रमणोनू प्रतिपादन
करनारी विधिनु नाम “अमर नर तिर्यंग निरयगति गमन विविध पर्यटनानुयोग”
छे तेभा आ प्रकारनी गण्डिकाओ सामान्य-विशेषरूपे वर्णित थर्छ छे आ
प्रकारनी गण्डिकानुयोग छे (४)

से किं त चूलियाओ ? , चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं
पुव्वाणं चूलिया, सेसाइ पुव्वाइं अचूलियाइ । से त चूलियाओ ॥५॥

द्विष्टिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा,
सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ पडिवत्तीओ, सखे
द्विष्टिवादस्य खलु परीता वाचनाः, सरयेयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया
वेष्टका, संख्येयाः श्लोका, सरयेया प्रतिपत्तयः, सरयेया निर्युक्तयः
संख्येया संग्रहण्य, स खलु अद्धार्यतया द्वादशमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश
पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, सरयेयानि चूल वस्तूनि, सरयेयानि प्राभृतानि,

अथ पञ्चम भेदमाह—‘से किं त चूलियाओ०’ इत्यादि । अथ कास्ताश्रुलिकाः ?
उत्तरयति—यत्खलु आदिमाना चतुर्णां पूर्वाणाम्=उत्पादादिमारभ्यास्ति नास्ति
प्रवादान्ताना चतुर्णां पूर्वाणा चूलिका सन्ति ताश्रुलिका उच्यन्ते, तथा शेषाणि
पूर्वाणि अचूलिकानि सन्ति ता एताश्रुलिमाः ।

द्विष्टिवादस्य खलु परीताः=संख्येयाः वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि,
संख्येया वेष्टका, संख्येया श्लोकाः संख्येया प्रतिपत्तयः, संख्येया निर्युक्तयः,

अथ द्विष्टिवाद के पाचवे भेद को कहते हैं—‘से किं त चूलि
याओ०’ इत्यादि ।

शिष्य पुछना है—हे भदन्त ! चूलिकाओं का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवाद और अस्तिनास्ति
प्रवाद, इन चार पूर्वों की तो चूलिकाएँ हैं और बाकी के पूर्वों पर चूलिकाएँ
नहीं हैं । यह चूलिकाओं का स्वरूप है ॥५॥

इस द्विष्टिवाद अग की संख्यात वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोग द्वार
हैं । संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात प्रतिपत्तिया हैं,

इसे सूत्रकार द्विष्टिवादेना पाचमा वेदनु वर्णन करे छे—“से किं त
चूलियाओ ?” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! चूलिकाओंनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद पूर्व अने अस्तिनास्ति-
प्रवाद अे चार पूर्वोंनी तो चूलिकाओ छे, अने बाकीना पूर्वोंनी चूलिकाओ
नथी आ चूलिकाओ प छे (५)

द्विष्टिवाद = प्राथमाओ छे, संख्यात अनुयोग ... छे,

जाओ निज्जुत्तीओ, संखेजाओ संगहणीओ, से णं अंगट्टयाए
वारसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, चोदस पुव्वाइं संखेजा वत्थू, संखेजा
चूलवत्थू, संखेजा पाहुडा, संखेजा पाहुडापाहुडा, संखेजाओ
पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइं पय-
सहस्साइ पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता
संखेयानि प्राभृतप्राभृतानि, संखेयाः प्राभृतिका, संखेयाः प्राभृतप्राभृतिकाः,
संखेयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संखेयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ता

संखेयाः सग्रहण्यः । स खलु दृष्टिवादः अद्भ्यार्थतया द्वादशमङ्गम्, अत्र-एकः
श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश पूर्वाणि, संखेयानि वस्तूनि, संखेयानि चूलवस्तूनि, संखे-
यानि प्राभृतानि=ग्रन्थाशविशेषाः, संखेयानि प्राभृतप्राभृतानि-प्राभृतस्य-ग्रन्था-
शविशेषस्य प्राभृतानि=अशविशेषाः-प्राभृतप्राभृतानि, संखेयाः प्राभृतिका,
संखेयाः प्राभृतप्राभृतिकाः, संखेयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन
पज्ञप्तानि । तथात्र संखेयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यायाः,

सरयात निर्युक्तियां हैं, तथा संख्यात सग्रहणिया हैं । यह दृष्टिवाद अगो
की अपेक्षा वारहवां अंग है । इसमें एकश्रुतस्कन्ध है । चौदहपूर्व हैं । संख्यात
वस्तुएँ हैं । संख्यात चूल वस्तुएँ हैं । सरयात प्राभृत हैं । ग्रन्थाशविशेष
का नाम प्राभृत है । संख्यात प्राभृतप्राभृत हैं । ग्रन्थाशविशेष के जो और
अशविशेष हैं वे प्राभृतप्राभृत है । संख्यात प्राभृतिकाएँ हैं । संख्यात
प्राभृतप्राभृतिकाएँ हैं । तथा इसके पदों का प्रमाण भी संख्यात ही बत-
लाया गया है । संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम है, अनन्त पर्याये हैं, अस-

संख्यात वेष्टक छे, संख्यात श्लोड छे, संख्यात प्रतिपत्तिओ छे, संख्यात निर्युं
क्तिओ छे, संख्यात स अङ्गुलिओ छे, अ गौनी अपेक्षाओ आ दृष्टिवाद पारमु अ ग
छे तेमा ओक श्रुतस्स ध छे, चौद पूर्व छे, संख्यात वस्तुओ छे, संख्यात चूल वस्तुओ
छे, संख्यात प्राभृत छे प्रलून ओ (ग्रन्थाशविशेषतु नाम छे) संख्यात प्राभृत
प्राभृत छे अथाशविशेषना अश विशेषने प्राभृतप्राभृत छडे छे संख्यात प्राभृ
तिकाओ छे, संख्यात प्राभृत-प्राभृतिकाओ छे तेना पढेनु प्रमाण पणु संख्यात
पतावु छे संख्यात अक्षर छे, अनन्त गम छे, अनन्त पर्याये छे, असंख्य तस छे,
१० ८२

से कि तं चूलियाओ ? , चूलियाओ आइल्लाणं चउ०हं
पुव्वाणं चूलिया, संसाइ पुव्वाइ अचूलियाइ । से तं चूलियाओ ॥५॥

दिष्टिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा,
संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ पडिवत्ताओ, संखे
दृष्टिवादस्य खलु परीता वाचनाः, सरयेयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया
वेष्टका, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया प्रतिपत्तयः, सरयेया नियुक्तयः
संख्येयाः साग्रहण्यः, स खलु अद्गार्थतया द्वादशमद्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश
पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, सरयेयानि चूल यस्तूनि, सरयेयानि प्राशृतानि,

अथ पञ्चम भेदमाह—‘से किं तं चूलियाओ०’ इत्यादि । अयकास्ताश्चूलिकाः ?
उत्तरयति—यत्खलु आदिमाना चतुर्णां पूर्वाणाम्=उत्पादादिमारभ्यास्ति नास्ति
प्रवादान्ताना चतुर्णां पूर्वाणा चूलिकाः सन्ति ताश्चूलिका उच्यन्ते, तथा शेषाणि
पूर्वाणि अचूलिकानि सन्ति ता एताश्चूलिकाः ।

दृष्टिवादस्य खलु परीताः=संख्येयाः वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि,
संख्येया वेष्टका, संख्येयाः श्लोकाः संख्येया प्रतिपत्तयः, संख्येया नियुक्तयः,

अथ दृष्टिवाद के पाचवे भेद को कहते हैं—‘से किं तं चूलि-
याओ०’ इत्यादि ।

शिष्य पुछना है—हे भदन्त ! चूलिकाओं का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवाद और अस्तिनास्ति
प्रवाद, इन चार पूर्वों की तो चूलिकाएँ हैं और बाकी के पूर्वों पर चूलिकाएँ
नहीं हैं । यह चूलिकाओं का स्वरूप है ॥५॥

इस दृष्टिवाद अग की संख्यात वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोग द्वार
हैं । संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात प्रतिपत्तिया हैं,

इसे सूत्रकार दृष्टिवाहना पाथमा वेदनु वरुणुन करे छे—“से किं तं
चूलियाओ ?” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! चूलिकाओंनु शु स्वरूप छे ?

उत्तर—उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद पूर्व अने अस्तिनास्ति-
प्रवाद अने चार पूर्वोंनी तो चूलिकाओं छे, अने बाकीना पूर्वोंनी चूलिकाओं
नथी आ चूलिकाओंनु स्वरूप छे (५)

दृष्टिवाद अगनी संख्यात वाचनाओं छे, संख्यात अनुयोग द्वार छे,

जाओ निज्जुत्तीओ, संखेजाओ सगहणीओ, से णं अंगट्टयाए
 वारसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, चौदस पुव्वाइं संखेजा वत्थू, संखेजा
 चूलवत्थू, संखेजा पाहुडा, संखेजा पाहुडापाहुडा, संखेजाओ
 पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइ पय-
 सहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अर्णंता गमा, अर्णंता
 संखेयानि प्राभृतप्राभृतानि, संखेयाः प्राभृतिका, संखेयाः प्राभृतप्राभृतिकाः,
 संखेयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संखेयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ता

संखेयाः सग्रहण्यः । स खलु दृष्टिवादः अद्वैतार्थतया द्वादशमङ्गम्, अत्र-एकः
 श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश पूर्वाणि, संखेयानि वस्तूनि, संखेयानि चूलरस्तूनि, संखे-
 यानि प्राभृतानि=ग्रन्थाशविशेषाः, संखेयानि प्राभृतप्राभृतानि-प्राभृतस्य-ग्रन्था
 शविशेषस्य प्राभृतानि=अशविशेषाः-प्राभृतप्राभृतानि, संखेयाः प्राभृतिका,
 संखेयाः प्राभृतप्राभृतिकाः, संखेयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण=पदपरिमाणेन
 प्रज्ञप्तानि । तथात्र संखेयानि अक्षराणि, अनन्ताः गमाः, अनन्ताः पर्यवाः,

सख्यात निर्युक्तिया हैं, तथा सख्यात सग्रहणियां हैं। यह दृष्टिवाद अगो
 की अपेक्षा चारहवां अंग है। इसमें एकश्रुतस्कन्ध है। चौदहपूर्व हैं। सख्यात
 वस्तुएँ हैं। सख्यात चूल वस्तुएँ हैं। सख्यात प्राभृत हैं। ग्रन्थाशविशेष
 का नाम प्राभृत है। सख्यात प्राभृतप्राभृत है। ग्रन्थाशविशेष के जो और
 अशविशेष हैं वे प्राभृतप्राभृत है। सख्यात प्राभृतिकाएँ हैं। सख्यात
 प्राभृतप्राभृतिकाएँ हैं। तथा इसके पदों का प्रमाण भी सख्यात ही बत-
 लाया गया है। सख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याये है, अस-

स ख्यात वेष्टक छे, स ख्यात श्लोक छे, स ख्यात प्रतिपत्तियो छे, स ख्यात निर्यु
 क्तियो छे, स ख्यात स अङ्घ्रियो छे, अ गौनी अपेक्षाये आ दृष्टिवाद आरभु अ ग
 छे तेमा अेक श्रुतस्क ध छे, चौद पूर्व छे, स ख्यात वस्तुयो छे, स ख्यात चूल वस्तुयो
 छे, स ख्यात प्राभृत छे प्रलून अे (ग्रन्थाशविशेषतु नाम छे) स ख्यात प्राभृत
 प्राभृत छे अथाशविशेषना अश विशेषने प्राभृतप्राभृत छे छे स ख्यात प्राभृ
 तिकायो छे, स ख्यात प्राभृत-प्रभृतिजायो छे तेना पदोनुं प्रमाद्यु पद्यु स ख्यात
 पताव्यु छे स ख्यात अक्षर छे, अनन्त गम छे, अनन्त पर्याये छे, अस ख्य तस छे,
 न० ८२

से किं त चूलियाओं ? , चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिया, सेसाइ पुव्वाइ अचूलियाइ । से त चूलियाओ ॥५॥

दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ पडिवत्तीओ, सखे

दृष्टिवादस्य खलु परीता वाचनाः, सरयेयानि अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टका, संख्येयाः श्लोका, सरयेया प्रतिपत्तय, सरयेया निर्युक्तयः संख्येया साग्रहण्य, स खलु अद्गार्थतया द्वादशमङ्गम्, एरुः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, सरयेयानि चूल यस्तूनि, सरयेयानि प्राशृतानि,

अथ पञ्चम भेदमाह—‘से किं त चूलियाओ०’ इत्यादि । अथकास्ताशूलिकाः ? उत्तरयति—यत्खलु आदिमाना चतुर्णां पूर्वाणाम्=उत्पादादिमारभ्यास्ति नास्ति प्रवादान्ताना चतुर्णां पूर्वाणा चूलिकाः सन्ति ताशूलिका उच्यन्ते, तथा शेषाणि पूर्वाणि अचूलिकानि सन्ति ता एताशूलिकाः ।

दृष्टिवादस्य खलु परीताः=संख्येयाः वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेष्टका, संख्येया श्लोकाः संख्येया प्रतिपत्तयः, संख्येया निर्युक्तयः,

अब दृष्टिवाद के पाचवे भेद को कहते हैं—‘से किं त चूलियाओ०’ इत्यादि ।

शिष्य पुछना है—हे भदन्त ! चूलिकाओं का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवाद और अस्तिनास्ति प्रवाद, इन चार पूर्वों की तो चूलिकाएँ हैं और बाकी के पूर्वों पर चूलिकाएँ नहीं हैं । यह चूलिकाओं का स्वरूप है ॥५॥

इस दृष्टिवाद अग की सख्यात वाचनाएँ हैं, सख्यात अनुयोग द्वार हैं । सख्यात वेष्टक हैं, सख्यात श्लोक हैं, सख्यात प्रतिपत्तिया हैं,

इसे सूत्रकार दृष्टिवादाना पाचमा वेदनु वर्णन करे छे—“से किं त चूलियाओ ?” इत्यादि—

शिष्य पूछे छे—हे भदन्त ! चूलिकाओंनु शुं स्वरूप छे ?

उत्तर—उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद पूर्व अने अस्तिनास्ति-प्रवाद अे चार पूर्वोनी तो चूलिकाओ छे, अने बाकीना पूर्वोनी चूलिकाओ नधी आ चूलिकाओंनु स्वरूप छे (५)

दृष्टिवाद अगनी सख्यात वाचनाओ छे, सख्यात अनुयोग द्वार छे,

प्रस्तुतत्रिपयमुपसहरन्नाह—

मूलम्—इच्छेइयम्मि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा,
अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा,
अणता अकारणा, अणता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता
भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता
असिद्धा पणत्ता—

भावमभावाहेऊ—महेउकारणमकारणे चैव ।

जीवाजीवा भवियमभविया सिद्धा असिद्धा य ॥१॥

वा शिष्यमुद्धी निःशङ्क व्यवस्थाप्यन्ते । सप्रति दृष्टिवादाङ्गाऽयनफलमाह—‘ से ’
सः=दृष्टिवादाङ्गस्याध्यता एवमात्मा=अस्मिन् भावतः सम्यगधीते सति एवमात्मा
भवति, तदुक्ताक्रियापरिणामपरिणमनादात्मस्वरूपो भवतीत्यर्थः । एव ‘क्रियासार
मेव ज्ञानश्रेयस्कर’—मिति ख्यापयितु क्रियापरिणाममभिधाय साप्रत ज्ञानमधि
कृत्याह—एव ज्ञाता इति । अय भावः—इदमधीत्य सर्व पदार्थसार्थ ज्ञायको भवति ।
तथा—एव विज्ञाता—एवम्=अमुना प्रकारेण विज्ञाता=विविध ज्ञानवान् भवति ।
अनेन प्रकारेणात्र साधूना चरणकरण प्ररूपणा आर्यायते ६ । उपसहरन्नाह—स एव
दृष्टिवादः । स एव द्वादशाङ्गो गणिपिटकः—आचारादि दृष्टिवादान्त द्वादशाङ्ग युक्तः
गणिपिटकरूपः प्रवचन पुरुष एव एव विज्ञेय इति ॥ सू० ५६ ॥

आदि क्रिया पदो का अर्थ पहिले आचाराङ्ग के वर्णन के समय सू. ४५ में
स्पष्ट लिखा जा चुका है । “ स एवमात्मा ” आदि पदों से इस अग के
अध्ययन का फल तथा ज्ञान का फल प्रकट किया गया है । इस तरह
इस अग में साधुओं के चरण करण की प्ररूपणा कही गई है ६ । यह
दृष्टिवादअग का स्वरूप है । इस प्रकार आचाराग से लेकर दृष्टिवाद
तक का समस्त गणिपिटकरूप द्वादशाङ्ग है ॥ सू० ५६ ॥

“ आर्यायन्ते ” आदि क्रिय पदोना अर्थ पढेला आचारागना वर्णन वपते सू ४५
पिस्तालीसमा स्पष्ट ठराये छे “ स एवमात्मा ” अदि पदोथी आ अगना
अध्ययननु इण तथा ज्ञाननु इण प्रगट करेले छे आ शीते आ अगमा साधुओ ना
चरणकरणी प्ररूपणा करवामा आवी छे (६) आ दृष्टिवाद—अगतु स्वरूप छे
आ प्रभाषे आचारागथी लधने दृष्टिवाद सुधीना समस्त गणिपिटकरूप
द्वादशाङ्ग ॥ ६ ॥

પજ્જવા પરિત્તા, તસા, અણંતા થાવરા સાસય કડ નિવદ્ધ નિકા-
 હયા જિણપણત્તા ભાવા આઘવિજ્જંતિ, પળ્ણવિજ્જતિ,
 પરૂવિજ્જતિ, દસિજ્જંતિ, નિદસિજ્જતિ, ઉવદસિજ્જતિ, સે એવ
 આયા, એવં ણાયા, એવ ત્રિણ્ણાયા, એવ ચરણકરણ પ્રરૂવણા
 આઘવિજ્જહ ૬ । સે ત્ત દિઠ્ઠિવાણ ૧૨ ॥ સૂ૦ ૫૬ ॥

પર્યાયાઃ, પરીતાહ્લસાઃ, અનન્તાઃ સ્થાવરાશ્ચ શાશ્વત-કૃત-નિવદ્ધ-નિકાચિતાઃ
 જિનપ્રજ્ઞા ભાવાઃ આખ્યાયન્તે, પ્રજ્ઞાપ્યન્તે, પ્રરૂપ્યન્તે, દર્શ્યન્તે, નિદર્શ્યન્તે, ઉપદ-
 ર્શ્યન્તે । સ એવમાત્મા, એવ જ્ઞાતા, એવ પ્રિજ્ઞાતા । એવ ચરણકરણ પ્રરૂપણા આ-
 ખ્યાયતે ૬ । સ એવ દિઠ્ઠિવાદઃ ॥ સૂ૦ ૫૬ ॥

પરીતાઃ = અસખ્યાતાહ્લસા', અનન્તાઃ સ્થાવરાશ્ચ સન્તિ । ઉપરિનિર્દિષ્ટાઃ સર્વે
 જિનપ્રજ્ઞા ભાવાઃ શાશ્વતકૃતનિવદ્ધનિકાચિતાઃ-શાશ્વતાઃ = દ્રવ્યાર્થતયાઽવિચ્છેન
 પ્રવૃત્ત્યાનિત્યા' કૃતાઃ=પર્યાયાર્થતયા પ્રતિસમય મન્યથાત્વપ્રાપ્ત્યાકૃતાઃ નિવદ્ધા'=
 સૂત્ર એવ ગ્રથિતા', તથા - નિકાચિતાઃ - નિર્યુક્તિ સમગ્રહણી હેતુદાહરણાદિભિઃ
 પ્રતિષ્ઠિતાશ્ચ અત્ર આખ્યાયન્તે, પ્રજ્ઞાપ્યન્તે, પ્રરૂપ્યન્તે, = દર્શ્યન્તે ઉપમાનો
 પમેયભાષાદિભિઃ કથ્યન્તે, નિદર્શ્યન્તે = પરાનુકમ્પયામ્યવ્યજનકલ્યાણાપેક્ષયા
 વા નિશ્ચયેન પુનઃ પુનર્દર્શ્યન્તે ઉપદર્શ્યન્તે=ઉપનયનિગમનાભ્યા સ્વકલનયાભિપ્રાયતો

ખ્યાત ત્રસ હૈં, અનન સ્થાવર હૈં । એ સવ ઉપર્યુક્ત ત્રસાદિપદાર્થ જિનેન્દ્ર
 દ્વારા પ્રરૂપિત હુએ હૈ, તથા દ્રવ્યાર્થિકનય કી અપેક્ષા સે સન્તતિરૂપ સે
 અવિચ્છિન્ન હોને કે કારણ એ નિત્ય હૈં, પર્યાયાર્થિકનય કી અપેક્ષા સે પ્રતિ
 સમય પરિણમન શીલ હોને કે કારણ એ અનિત્ય હૈ, સૂત્ર મે હી ગ્રથિત
 હોને કે કારણ એ નિવદ્ધ હૈં, તથા નિર્યુક્તિ સમગ્રહણી હેતુ એવ ઉદાહરણ
 આદિ દ્વારા પ્રતિષ્ઠિત હોને કે કારણ એ નિકાચિત હૈં । હસ અગ મેં એ
 સવ પદાર્થ આખ્યાત હુએ હૈં, પ્રજ્ઞાપિત આદિ હુએ હૈ । “ આખ્યાયન્તે ”

અનત સ્થાવર છે એ બધા ઉપર્યુક્ત ત્રસાદિ પદાર્થ જિનેન્દ્ર દ્વારા પ્રરૂપિત
 થયા છે તથા દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ સન્તતિરૂપે અવિચ્છિન્ન હોવાને કા છે
 નિત્ય છે, તથા પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાએ પ્રતિસમય પરિણમનશીલ હોવાને
 કારણે અનિત્ય છે, સૂત્રમા જ ગ્રથિત હોવાને કારણે નિવદ્ધ છે, તથા-નિર્યુક્તિ,
 સમગ્રહણી, હેતુ અને ઉદાહરણ આદિ દ્વારા પ્રતિષ્ઠિત હોવાના કા છે નિકાચિત
 છે, આ અગમા એ બધા પદાર્થ આખ્યાત થયા છે, પ્રજ્ઞાપિત આદિ થયેલ છે

प्रस्तुतत्रिपयमुपसहरन्नाह—

मूलम्—इच्चेइयस्मि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा,
अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा,
अणंता अकारणा, अणता जीवा, अणता अजीवा, अणंता
भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता
असिद्धा पणत्ता—

भावमभावाहेऊ—महेउकारणमकारणे चेव ।

जीवाजीवा भवियमभविया सिद्धा असिद्धा य ॥१॥

वा शिष्ययुद्धी नि.शङ्क व्यवस्थाप्यन्ते । सप्रति दृष्टिवादाङ्गा 'ययनफलमाह—' से '
सः=दृष्टिवादाङ्गस्याध्येता एवमात्मा=अस्मिन् भावतः सम्यगधीते सति एवमात्मा
भवति, तदुक्ताक्रियापरिणामपरिणमनादात्मस्वरूपो भवतीत्यर्थः । एव 'क्रियासार
मेव ज्ञानश्रेयस्कर'—मिति ख्यापयितुं क्रियापरिणाममभिधाय साप्रत ज्ञानमधि
कृत्याह—एवं ज्ञाता इति । अय भावः—इदमधीत्य सर्वं पदार्थसार्थं ज्ञायको भवति ।
तथा—एव विज्ञाता—एवम्=अमुना प्रकारेण विज्ञाता=विविध ज्ञानवान् भवति ।
अनेन प्रकारेणात्र सायूना चरणकरण प्ररूपणा आर्यायते ६ । उपसहरन्नाह—स एव
दृष्टिवादः । स एव द्वादशाङ्गो गणिपिटकः—आचारादि दृष्टिवादान्त द्वादशाङ्ग युक्तः
गणिपिटकरूपः प्रवचन पुरुष एव एव त्रिज्ञेय इति ॥ सू० ५६ ॥

आदि क्रिया पदो का अर्थ पहिले आचाराङ्ग के वर्णन के समय सू. ४५ में
स्पष्ट लिखा जा चुका है । “स एवमात्मा” आदि पदों से इस अंग के
अध्ययन का फल तथा ज्ञान का फल प्रकट किया गया है । इस तरह
इस अंग में सायुओं के चरण करण की प्ररूपणा कही गई है ६ । यह
दृष्टिवादअंग का स्वरूप है । इस प्रकार आचाराङ्ग से लेकर दृष्टिवाद
तक का समस्त गणिपिटकरूप द्वादशाङ्ग है ॥ सू० ५६ ॥

“आर्यायन्ते” आदि क्रिय पदोना अर्थ पडेला आचाराङ्गना वर्णन वधते सू ४५
पिस्तालीसमा स्पष्ट कराये छे “स एवमात्मा” अदि पदोथी आ अर्गना
अध्ययननु इण तथा ज्ञाननु इण प्रगट करेव छे आ रीते आ अगमा साधुये ना
अरथुकरथुनी प्रथपथुा करवामा आथी छे (६) आ दृष्टिवाद—अगतु स्वरूप छे
आ प्रभाषे आचाराङ्गथी लधने दृष्टिवाद सुधीना समस्त गणिपिटकरूप
द्वादशाङ्ग छे ॥ सू० ५६ ॥

छाया—इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके अनन्ता भावाः, अनन्ता अभावाः, अनन्ता हेतवः, अनन्ता अहेतवः, अनन्तानि कारणानि, अनन्तानि अकारणानि, अनन्ता जीवाः, अनन्ता अजीवाः, अनन्ता भवसिद्धिकाः, अनन्ता अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः सिद्धाः, अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञप्ताः ।

भावाभावौ हेत्वहेतू कारणाकारणे चैव ।

जीवा अजीवा भविका अभविकाः सिद्धा असिद्धाश्च ॥ १ ॥

टीका—'इच्छेइयम्मि०' इत्यादि ।

इत्येतस्मिन्—इति=इत्थम्—अनेन प्रकारेण निर्दिष्टे अस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटके अनन्ता भावाः=जीवपुद्गलानामनन्तत्वात्, तथा अनन्ता अभावाः=अन्यभावरूपेणान्यभावस्यासत्त्वात् एव भावा अभावा भवन्ति, इत्यतोऽनन्ता अभावाः, तथा—अनन्ता हेतवः=हिन्वन्ति—गमयन्ति=बोधयन्ति जिज्ञासाविषयीभूत धर्मविशिष्टानर्थान् ये ते हेतवः, ते च वस्तुनोऽनन्तधर्मात्मकत्वात्, तत्प्रतिबद्धानन्तधर्मविशिष्टानन्तवस्तुगमकत्वाच्चानन्ताः, अतोऽनन्ता हेतवः । तथा—अनन्ता अहेतवः

द्वादशाङ्गी का स्वरूप वर्णन रूप विषय का उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'इच्छेइयम्मि०' इत्यादि ।

इस द्वादशाङ्गरूप गणिपिटकमें जीव और पुद्गलों के अनन्त भाव है, तथा अनन्त अभाव हैं—एक भाव—पदार्थ अन्य भावरूप से नहीं रहता, इस लिये सभी भाव परस्पर में एक दूसरे के रूप में अभावता को प्राप्त होते हैं, अतः अभावोंकी अनन्तता है, अनन्त हेतु हैं—जिज्ञासा के विषयीभूत धर्मविशिष्ट अर्थों को जो बोध कराता है वह हेतु है, वे हेतु वस्तुओं के अनन्त धर्मात्मक होने से, तथा हेतुयुक्त अनन्तधर्मविशिष्ट अनन्त वस्तुओंके बोधक होने से अनन्त हैं, अतः हेतु में अनन्तता है । तथा अनन्त अहेतु हैं—एक

द्वादशाङ्गीना स्वरूप वर्णन रूप विषयना उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे "इच्छेइयम्मि०" इत्यादि—

आ द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटकमा एव अने सुद्गले अनन्त होवाथी अनन्त भाव छे, तथा अनन्त अभाव छे—एक भाव—पदार्थ अन्य भावरूपे रहैतो नथी, ते कारणे सभस्य भाव परस्परमा एक थीलना रूपमा अभावताने 'पामे' छे तथी अभावोनी अनन्तता छे अनन्त हेतु छे—जिज्ञासाना विषयीभूत धर्मविशिष्ट अर्थना ने बोध करावे छे ते हेतु कहेवाय छे ते हेतुआ वस्तुआना अनन्त धर्मात्मक होवाथी, तथा हेतुयुक्त अनन्त धर्मविशिष्ट अनन्त वस्तुआना बोधक होवाथी अनन्त छे, तथी हेतुमा अनन्तता छे तथा अनन्त अहेतु छे—एक

प्रत्येकहेतुप्रतिबद्ध-प्रत्येकधर्मविशिष्टवस्तुगमकत्व परस्मिन्नास्तीत्यनन्ता अहेतवः, तथा-अनन्तानि कारणानि=मृत्पिण्डतन्त्वादीन्यनन्तानि घटपटादिनिर्वर्तकानि कारणानि, तथा-अनन्तान्यकारणानि=तन्तुर्न घटस्य कारणम्, मृत्पिण्ड न पटस्य कारणम्, इत्येवमनन्तानिअकारणानि, तथा-अनन्ता जीवाः, अनन्ता अजीवा द्व्यणुकादयः, अनन्ता भवसिद्धिकाः, अनन्ताः अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः सिद्धा, अनन्ता असिद्धाश्च प्रज्ञप्ताः ।

अमुमेवार्थं सूचयितुं गाथामाह—

‘ भावमभावा० ’ इत्यादि । गार्थार्थः स्पष्टः ॥

२ हेतुयुक्त एक २ धर्म विशिष्ट वस्तु की बोधकता दूसरे में नहीं होने से एक हेतु दूसरे के प्रति अहेतु हो जाता है इसलिये अनन्त अहेतु हैं, तथा अनन्त कारण हैं—तथा घटपटादि अनन्तकार्यों के निष्पादक मृत्पिण्ड-तन्तु आदि अनन्त कारण हैं। तथा-अनन्त अकारण हैं-तन्तु घट का कारण नहीं होता, मृत्पिण्ड पट का कारण नहीं होता, इस तरह एक की अन्य के प्रति कारणता नहीं होने से कारण में अनन्तता है । तथा-अनन्त जीव, अनन्त अजीव-द्व्यणुकादिक, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध, अनन्त असिद्ध, ये सब प्रज्ञप्त हुए हैं ।

इस पूर्वोक्त अर्थ को सूचित करनेवाली गाथा । सूत्रकार कहते हैं—‘ भावमभाव ’ इत्यादि ।

इस द्वादशाङ्ग में भाव, अभाव, हेतु, अहेतु, जीव, अजीव, भविक (भवसिद्धिक), अभविक (अभवसिद्धिक), सिद्ध और असिद्ध का प्ररूपण किया गया है ।

हेतु युक्त अेक अेक धर्मविशिष्ट वस्तुनी बोधकता भीलभा न डोवाथी अेक हेतु भीलनी प्रति अहेतु यथ लथ अे तेथी अनन्त अहेतु अे, तथा अनन्त कारण अे-घटपटादि अनन्त कारणोनि निष्पादक माटीनि पिंड-तन्तु आदि अनन्त कारण अे तथा अनन्त अकारण अे -तन्तु घट (घडा) तु कारण नथी डोतो, मृत्पिंड घटनु कारण नथी डोतो, आ रीते अेकनी अन्यना प्रति कारणता न डोवाथी कारणमा अनन्तता अे तथा अनन्त अणु, अनन्त अणुव-द्व्यणुकादिक, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभव सिद्धिक, अनन्त सिद्ध, अनन्त असिद्ध, अे अधानु वर्णनकरायु अे आपूवोक्त अर्थने सूचित करवावाणी गाथा सूत्रकार कडे अे - ‘ भावमभाव ’ इत्यादि

आ द्वादशांगमा भाव, अभाव, हेतु, अहेतु, अणु, अणुव, भविक (भव सिद्धिक), अभविक (अभवसिद्धिक), सिद्ध अने असिद्धतु प्रज्ञपणु करवाभा आण्यु अे

સામ્પતંદ્વાદશાઙ્ગવિરાધનાઽઽરાધનાજનિત મૈમલિક ફલપ્રુપદર્શયતિ—

મૂલમ્—ઇચ્છેઙ્ગ્ય દુવાલસંગ ગણિપિટક ગીએ કાલે અણંતા જીવા આણાએ વિરાહિત્તા ષાઽરંત સસારકતારં અણુપરિયટ્ટિંસુ । ઇચ્છેઙ્ગ્ય દુવાલસંગ ગણિપિટક પડુપ્પળકાલે પરિત્તા જીવા આણાએ વિરાહિત્તા ષાઽરંતં સસારંકંતારં અણુપરિયટ્ટતિ । ઇચ્છે- ઙ્ગ્ય દુવાલસંગં ગણિપિટકં અણાગએ કાલે અણંતા જીવા આણાએ વિરાહિત્તા ષાઽરંત સસારકંતાર અણુપરિયટ્ટિસ્સતિ ।

છાયા—ઇત્યેત દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટકમ્ અતીતકાલે અનન્તાઃ જીવાઃ આઙ્ગ્યા વિરાધ્ય ષાતુરન્ત સસારકાન્તારમ્ અનુપર્યટન્ । ઇત્યેતં દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટક પ્રત્યુત્પન્ને કાલે પરીતા જીવાઃ આઙ્ગ્યા વિરાધ્ય ષાતુરન્તસસારકાન્તારમ્ અનુપર્યટન્તિ । ઇત્યેત દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટક અનાગતેકાલે અનન્તા જીવાઃ આઙ્ગ્યા વિરાધ્ય ષાતુરન્તસસારકાતાર અનુપર્યટિપ્યન્તિ ।

ટીકા—‘ ઇચ્છેઙ્ગ્ય૦ ’ ઇત્યાદિ ।

ઇત્યેત દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટકમ્ અતીતકાલે અનન્તાઃ જીવાઃ આઙ્ગ્યા વિરાધ્ય = ષાતુરન્તસસારકાન્તાર = ચત્વારઃ = નરકતિર્યંદ્મનુષ્યદેવગતિપરિભ્રમણલક્ષણાઃ અન્તા = પરિણામા યસ્ય સ ચતુરન્ત, સ એવ ષાતુરન્ત, ષાતુરન્તશ્વાસો સસારશ્ચતિ કર્મધારયઃ, તતઃ ‘ કાન્તરશબ્દેનસહોપમિતસમાસ. ’ અનુપર્યટન્—જન્મમરણાદિક્લેશમન્વભવન્ । અય માતઃ—ઇમ દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટકમ્ અભિનિવેશવશાદન્યથા

અવ સૂત્રકાર ઇસ દ્વાદશાઙ્ગ કી આરાધના એવ વિરાધના સે ત્રેકાલિક ફલ કો કહતે હૈ—“ ઇચ્છેઙ્ગ્ય દુવાલસગ૦ ” ઇત્યાદિ ।

ઇસ દ્વાદશાઙ્ગરૂપ ગણિ પિટક કી ભૂતકાલમે આઙ્ગ્યાદ્વારા વિરાધના કર કે અનત જીવોં ને નરક, તિર્યંડ, મનુષ્ય, તથા દેવ, ઇન ચાર ગતિવાલે સસારરૂપ ગહન વન મે પરિભ્રમણ કિયા હૈ । તાત્પર્ય ઇસકા યહ હૈ—

હવે સૂત્રકાર આ દ્વાદશાઙ્ગની આરાધના અને વિરાધનાથી થવાવાળા ત્રેકાલિક ફલ કહે છે—‘ ઇચ્છેઙ્ગ્ય દુવાલસગ૦ ’ ઇત્યાદિ

આ દ્વાદશાઙ્ગરૂપ ગણિપિટકની ભૂતકાળમા વિરાધના કરીને અનત જીવોએ નરક, તિર્યંથ, મનુષ્ય, તથા દેવ એ ચાર ગતિવાળા સસારરૂપ ગહનવનમા પરિભ્રમણ કર્યું છે તેવુ તાત્પર્ય એ છે કે ભૂતકાળમા જમાલિના જેવા અનત

पाठादिलक्षणया सूत्राज्ञया विराध्य भूतमालेऽनन्ता जीवा नरकतिर्यङ्मनुजदेवगति-
गहना भ्रूतादवीं जमालिवत् अनुपर्यटन् । पुनरभिनिवेशवशात् अन्यथा प्ररूपणादि-
लक्षणया अर्थाज्ञया विराध्यजीवा गोप्रमाहिल-दण्डि-त्रयोदशपथधारि (तेरहपथी)
प्रभृतीवत् चतुरन्तसंसारकान्तारमनुपर्यटन् । सूत्रार्थेभयाज्ञया च विराध्याऽनन्ता
जीवाश्चतुर्गतिकसंसारकान्तारमनुपर्यटन् । इत्येत द्वादशाङ्ग गणिपिटक प्रत्युत्पन्ने-
काले=वर्तमानकाले परीता जीवाः=सख्याता जीवाः, यात्रपर्यटन्ति, एव भविष्य-
त्कालेऽपि जिनाज्ञा विराध्य पर्यटिष्यन्ति ।

मूलम्-इच्चेइयं दुवालसग गणिपिडग तीए काले अणंता
जीवा आणाए आराहिता चाउरत संसारकतार वीडवइसु ।
इच्चेइय दुवालसग गणिपिडग पडुप्पणकाले परिता जीवा

भूतकाल मे जमालि की तरह अनन्त जीव ऐसे हुए है कि जिन्होंने
दुरभिनिवेश वश अन्यथा प्ररूपणा आदि द्वारा सूत्राज्ञा की विराधना की
है। इस विराधना जन्म पाप का परिणाम उन्होंने चतुर्गतिरूप भयकर
संसार कान्तार में परिभ्रमण करने रूप में ही पाया है। तथा गोष्ठमा-
हिल, दडी, तेरहपथी आदि कितनेक ऐसे जीव हुए हैं जिन्होंने सूत्रार्थ की
आज्ञा का खोटे अभिप्रायवश अन्यथा प्ररूपण किया है। इस भयकर
विराधना जन्म पाप का परिणाम उन्हें भी यही भोगना पडा है। तथा
सूत्र अर्थ और उभय की आज्ञा की जिन्होंने विराधना की है ऐसे भी
अनेक जीव हुए हैं, और उन्हें भी इस विराधाजन्म पाप का परिणाम
यही भोगना पडा है। इसी तरह इस द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक की दुरभि-
निवेश वश अन्य या प्ररूपणा कर के इस वर्तमानकाल में भी कितनेक

એવા જીવો થયા છે કે જેમણે દુરભિનિવેશ વશ ખીજી રીતે પ્રરૂપણા આદિ દ્વારા
સૂત્રાજ્ઞાની વિરાધના કરી છે એ વિરાધના જન્ય પાપને પરિણામે તેમને ચતુ
ર્ગતિરૂપ ભયકર સંસારવનમ પરિભ્રમણ કરવું પડ્યું છે તથા ગોષ્ઠમાહિલ,
દડી તેરહપથી આદિ કેટલાક એવા જીવો થયા છે કે જેમણે સૂત્રાર્થની આજ્ઞાનું
ખોટા અભિપ્રાયને કાળે જુદી રીતે પ્રરૂપણ કર્યું છે એ ભયકર વિરાધના
જન્ય પાપનું પરિણામ તેમને પણ અહીં ભોગવવું પડ્યું છે તથા સૂત્ર અર્થ
અને ધર્મને ઉ આજ્ઞાની જેમણે વિરાધના કરી છે એવા પણ અનેક થયા છે અને
તેમને પણ આ વિરાધના જન્ય પાપોની એજ પરિણામ ભોગવવું પડ્યું છે એજ
પ્રકારે આ દ્વાદશાંગરૂપ ગણિપિટકની દુરભિનિવેશ વશ ખીજી રીતે પ્રરૂપણા
કરીને આ વર્તમાન કાળમાં પણ કેટલાક એવા જીવો છે કે જે ચતુર્ગતિવાળા

साम्प्रतंद्वादशाङ्गविराधनाऽऽराधनाजनित त्रैकालिक फलमुपदर्शयति—

मूलम्—इच्छेइय दुवालसंग गणिपिडग तीए काले अणता जीवा आणाए विराहिता चाउरंत ससारकतारं अणुपरियट्टिसु । इच्छेइयं दुवालसंगं गणिपिडग पडुप्पणकाले परिता जीवा आणाए विराहिता चाउरतं संसारकंतारं अणुपरियट्टति । इच्छेइयं दुवालसंगं गणिपिडग अणागए काले अणता जीवा आणाए विराहिता चाउरंत ससारकतार अणुपरियट्टिस्सति ।

छाया—इत्येत द्वादशाङ्ग गणिपिटकम् अतीतकाले अनन्ताः जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्त ससारकान्तारम् अनुपर्यटन् । इत्येतं द्वादशाङ्ग गणिपिटक प्रत्युत्पन्ने काले परीता जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्तससारकान्तारम् अनुपर्यटन्ति । इत्येत द्वादशाङ्ग गणिपिटक अनागतेकाले अनन्ता जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्तससारकातार अनुपर्यटिष्यन्ति ।

टीका—‘ इच्छेइय० ’ इत्यादि ।

इत्येतं द्वादशाङ्ग गणिपिटकम् अतीतकाले अनन्ताः जीवाः आज्ञया विराध्य = चातुरन्तससारकान्तार = चत्वारः = नरकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिपरिभ्रमणलक्षणाः अन्ताः=परिणामा यस्य स चातुरन्तः, स एव चातुरन्त, चातुरन्तश्चासौ ससारश्चति कर्मधारयः, ततः ‘ कान्तरशब्देनसहोपमितसमासः ’ अनुपर्यटन्—जन्ममरणादिक्लेशमन्वभवन् । अय भावः—इम द्वादशाङ्ग गणिपिटकम् अभिनिवेशवशादन्यथा

अब सूत्रकार इस द्वादशांग की आराधना एव विराधना से त्रैकालिक फल को कहते हैं—“ इच्छेइय दुवालसंग० ” इत्यादि ।

इस द्वादशांगरूप गणि पिटक की भूतकालमें आज्ञाद्वारा विराधना कर के अनंत जीवों ने नरक, तिर्यङ्, मनुष्य, तथा देव, इन चार गतिवाले ससाररूप गहन वन में परिभ्रमण किया है । ता पर्य इसका यह है—

इसे सूत्रकार आ द्वादशांगनी आराधना अने विराधनाथी थवावाणा त्रेका लिक्षण कडे छे—‘ इच्छेइय दुवालसंग० ’ इत्यादि

आ द्वादशांगरूप गणिपिटकनी भूतकालमा विराधना करीने अनंत लोकोये नरक, तिर्यं अ, मनुष्य, तथा देव अे चार गतिवाणा ससाररूप गहनवनमा परि भ्रमण कर्तुं छे तेनु तात्पर्य अे छे के भूतकालमा जमादिना जेवा अनंत

मूलम्—इच्चैइय दुवालसगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ न कयाइ न भविस्सइ, भुवि च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्टिए णिच्चे । से जहा णामए-पच अत्थिकाया न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुवि च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवा णिइया सासया अक्खया अव्वया अवट्टिया णिच्चा एवामेव दुवालसग गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुवि च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्टिए, निच्चे । से समासओ चउट्ठिवहे पणत्ते, त जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ । तत्थ दव्वओण सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइ जाणइ पासइ । खित्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ । कालओ ण सुयनाणी उवउत्ते सव्व काल जाणइ पासइ । भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्व भाव जाणइ पासइ ॥ सू० ५७ ॥

उपा—इत्येप द्वादशाङ्गः ग्वल्ल गणिपिटको न कदापि नासीत्, न कदापि भवति, न कदापि न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवः नियतः, शाश्वत' अक्षयः अव्ययः अवस्थितः नित्यः। तद्यथा नाम-पञ्चास्तिकायाः न कदापि नासन्, न कदापि न सन्ति, न कदापि न भविष्यन्ति, अभून्श्च, सन्ति च, भविष्यन्ति च, एता नियताः शाश्वता अक्षया' अव्यया' अवस्थिताः नित्याः, एवमेव द्वादशाङ्गो गणिपिटको न कदापि नासीत्, न कदापि नास्ति, न कदापि न भवि-

पार हो रहे हैं। इसी प्रकार भविष्यत्काल में भी अनन्त जीव इस द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक की आराधना कर के ससारकान्तार से पार होंगे ।

गहन मनने पार करी रह्या छे ओत्र रीते भविष्यत्कालमा पण्य अनन्त एव आ द्वादशाङ्गं गणिपिटकनी आराधना करीने ससारमनने ओणगी करी

આણાણ આરાહિત્તા ષાઁરંત સસારકંતારં વીરૂવયંતિ । ઇચ્છેઈયં
દુવાલસંગ ગણિપિટકં અણાગણ કાલે અણંતા જીવા આણાણ
આરાહિત્તા ષાઁરંત સંસારકંતારં વીરૂવઈસ્સંતિ ॥

છાયા—ઈત્યેતદ્ દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટકમ્ અતીતે કાલે અનન્તા જીવા આઙ્ગયા
આરાઘ્ય ચતુરન્ત સંસારકાંતાર વ્યત્યવ્રજન્ । ઈત્યેતદ્ દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટક પ્રત્યુ-
ત્પન્નકાલે પરીત્તા જીવા આઙ્ગયા આરાઘ્ય ચાતુરન્ત સસારકાન્તાર વ્યતિત્રજન્તિ ।
ઈત્યેતદ્ દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટકમ્ અનન્તા જીવા આઙ્ગયા આરાઘ્ય ચતુરન્ત સસારકા-
ન્તાર વ્યતિત્રજિષ્યન્તિ ॥

ટીકા—‘ ઇચ્છેઈયં ’ ઈત્યાદિ ।

ઈત્યેત દ્વાદશાઙ્ગ ગણિપિટકમ્ અતીતકાલે અનન્તા જીવા આઙ્ગયા=મૂઝાર્થ
તદુભયરૂપત્રિવિઘાઙ્ગયા આરાઘ્ય=સમ્યક્ પરિપાલ્ય ચાતુરન્તસંસારકાન્તાર વ્યત્યવ્ર-
જન્=પારજમ્મુઃ । અનેન પ્રકારેણૈવ પ્રત્યુત્પન્નેઽપિ=વર્તમાનેઽપિકાલે પરીતાઃ=સલ્લ્યેયા
જીવા વ્યતિત્રજન્તિ । ઇવમ્ અનાગતેઽપિ=ભવિષ્યત્પપિકાલે અનન્તા જીવા
વ્યતિત્રજિષ્યન્તિ ॥

જીવ ઇસે હૈં જો ઇસ ચતુર્ગતિવાલે સસારકાન્તાર મૈં પર્યટન કર રહે હૈં ।
ઈસી તરહ ભવિષ્યત્કાલ મૈં મી અનત જીવ ઇસે હૈંગે જો દુરભિનિવેશ-
વશ ઇસ દ્વાદશાઙ્ગ રૂપ ગણિપિટક કી આઙ્ગા કી વિરાઘના કર કે ઇસ
ચતુર્ગતિવાલે સસારરૂપ ગહનવન મૈં પરિભ્રમણ કરેગે ।

તથા—અતીતકાલ મે ઇસે મી અનત જીવ દુષ્ટ હૈં કિ જિન્હૈંને સૂત્ર,
અર્થ ઇવ ઉભય કી આઙ્ગા કી સમ્યક્ આરાઘના કી હૈં ઔર ઇસ તરહ
વે ઇસ ચતુર્ગતિરૂપ સસાર વન સે પાર હો ગયે હૈં । ઈસી તરહ વર્તમાન
કાલ મૈં મી ઇસે સલ્લ્યાત ભવ્ય પ્રાણી હૈં જો ઇસ દ્વાદશાઙ્ગ
ગણિપિટક કી સમ્યક્ આરાઘના કરકે ઇસ સસાર રૂપ ગહન વન સે

સસારકાનનમા પરિભ્રમણુ કરી રહ્યા છે એજ રીતે ભવિષ્ય કાળમા પણ અનત
જીવ એવા થશે કે જે દુરભિનિવેશ વશ આ દ્વાદશાઙ્ગરૂપ ગણિપિટકની વિરાઘના
કરીને આ ચતુર્ગતિવાળા સસારરૂપ ગહનવનમા પરિભ્રમણુ કરશે

તથા ભૂતકાળમા એવા પણ અનત જીવ થયા છે કે જેમણે સૂત્ર, અર્થ
અને ઉભયની સમ્યક્ આરાઘના કરી છે અને એ રીતે તેઓ ચતુર્ગતિરૂપ સસાર
વનને તરી ગયા છે એજ રીતે વર્તમાન કાળમા પણ એવા સખ્યાત ભવ્ય જીવો
છે કે જે દ્વાદશાઙ્ગરૂપ ગણિપિટકની સમ્યક્ આરાઘના કરીને આ સસારરૂપ

भविष्यति च । तस्माद् अयं द्वादशाङ्गो गणिपिटकः—ध्रुवः=स्थिरः मेरुपर्वतादिवत्, ध्रुवत्वाद् नियतः=निश्चितः पञ्चास्तिकायेषु लोकवचनवत्, नियतत्वादेव शाश्वतः=नित्य समयानलिकादिषु कालवचनवत्, शाश्वतत्वादेव-अक्षयः=सहस्रशो वाचनादि प्रदानेऽपि क्षयरहितत्वात्, गङ्गासिन्धुप्रवाहेऽपि पद्मद्ववत्, अक्षयत्वादेव-अव्ययः मानुषोत्तराद्वहिः समुद्रवत्, अव्ययत्वादेव अवस्थितः=स्वप्रमाणे जम्बूद्वीपादिवत्,

भी रहेगा, यही बात “अभूच्च, भवति च भविष्यति च” इन क्रियापदों द्वारा प्रदर्शित की गई है, इसलिये यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक कालवचनमे रहने के कारण (१) ध्रुव, (२) स्थिर, (३) नियत-निश्चित, (४) शाश्वत, अक्षय-क्षयरहित, (५) अव्यय, (६) अवस्थित, एवं (७) नित्य माना गया है। ये ध्रुव आदि शब्द हेतु हेतुमद्भावसे यहाँ व्याख्यात हुए हैं। यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक अचल होने के कारण ही यह सुमेरु पर्वत आदि की तरह ध्रुवरूपमें गया है। (१) पञ्चास्तिकायों में जैसे लोकवचन निश्चित है उसी तरह ध्रुव होने के कारण यह द्वादशाङ्ग भी नियतरूप वाला माना गया है। (२) समय, आवलिका आदि कों में जैसे कालव्यवहार शाश्वत माना जाता है उसी प्रकार यह भी नियत होने से शाश्वत माना गया है। हजारों (३) वाचनाएँ आदि देने पर भी इसका कभी भी क्षय नहीं होता है। जैसे गंगा सिन्धु आदि रूप प्रवाह के निकलते रहने पर भी पद्मद्व अक्षय है। (४) अक्षय होने के कारण यह अव्यय बतलाया गया है, जैसे मानुषोत्तर के चार समुद्र

पश्चिम, उत्तर, पूर्व, दक्षिण आदि चार भागों में बँटते हैं। (५) नित्य माना गया है। (६) अवस्थित होने के कारण यह द्वादशाङ्ग भी नियतरूप वाला माना गया है। (७) समय, आवलिका आदि कों में जैसे कालव्यवहार शाश्वत माना जाता है उसी प्रकार यह भी नियत होने से शाश्वत माना गया है। हजारों (३) वाचनाएँ आदि देने पर भी इसका कभी भी क्षय नहीं होता है। जैसे गंगा सिन्धु आदि रूप प्रवाह के निकलते रहने पर भी पद्मद्व अक्षय है। (४) अक्षय होने के कारण यह अव्यय बतलाया गया है, जैसे मानुषोत्तर के चार समुद्र

प्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवः नियतः शाश्वतः अयः अययः अवस्थितः नित्यः । स समासतश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तथा-द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः । तत्र द्रव्यतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति । क्षेत्रतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति । कालतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं कालं जानाति पश्यति । भावतः खलु श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सर्वं भावं जानाति पश्यति ॥ सू० ५७ ॥

टीका — 'इच्छेद्य दुवालसग' इत्यादि । साम्प्रतमस्य द्वादशाङ्गस्य गणिपिटकस्य त्रिकालावस्थायित्वं दर्शयति - इत्येष द्वादशाङ्ग खलुगणिपिटकः न कदापि नासीत्=कस्मिंश्चिदपि काले 'अयं नासीत्' इति नो शङ्कनीयम्, अपि तु अयं सर्वदाऽऽसीदेव अनादित्वात् । तथा न कदापि न भवति=कस्मिंश्चिदपि कालेऽस्य स्थितिर्नास्ति' इत्यपि नो शङ्कनीयम्, अपि तु अयं सर्वं दैवास्ति - सर्वदा सद्भावात् । तथा अयं न कदापि न भविष्यति-अर्थात्- 'अयं कस्मिंश्चिदपि काले न भविष्यति' इति नो शङ्कनीयम्, अपि तु-अयं सर्वं दैवं भविष्यति-अपर्यवसितत्वात् । अमुमेवार्थमाह-अयम्-अभूच्च, भवति च,

अब इस द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक की त्रैकालिक सत्ता को दिखलाते हैं—'इच्छेद्य दुवालसग०' इत्यादि—

यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक किसी समय में नहीं था ऐसी बात नहीं है कारण यह अनादि है, और अनादि होने के कारण ऐसा कोई भी समय नहीं था कि जिसमें इसका सद्भाव न रहा हो । तथा वर्तमान में भी ऐसा कोई समय नहीं है, कि जिस समय में इसका सद्भाव न पाया जाता हो, तथा भविष्यत्काल में भी ऐसा कोई समय नहीं आवेगा कि जिस में इसका अस्तित्व न बना रहेगा । तात्पर्य यह है कि यह द्वादशाङ्गरूप श्रुत भूतकाल में था, वर्तमानकाल में है और भविष्यत्काल में

इसे या द्वादशाङ्ग गणिपिटकनी त्रैकालिक सत्ताने सूत्रकार अतावे छे—
“इच्छेद्य दुवाल सग०” इत्यादि—

या द्वादशाङ्ग गणिपिटक कौं पणु समये न इतु अेवी वात नथी, करणु के ते अनादि छे अने अनादि होवाथी अेवा कौं पणु समय न इतो के अ्यारे तेनु अस्तित्व न होय तथा वर्तमानमा पणु अेवा कौं समय नथी के ने समये तेनु अस्तित्व न होय, तथा भविष्यकाणमा पणु अेवा कौं समय नही आवे के अ्यारे तेनु अस्तित्व नही होय, लावार्थ अे छे के या द्वादशाङ्ग गणिपिटक भूतकाणमा इतु, वर्तमानकाणमा छे, अने

लिकृत्व समर्थ्य विधिमुखेन तदेव समर्थयति-अभूच्च भवति च भविष्यति च। अत एवायम्-गुणो नियतः शाश्वतः अक्षयः अव्ययः अवस्थितो नित्यः। स द्वादशज्ञो गणिपिटकः समासतः=सक्षेपतः चतुर्विधः=चतुष्प्रकारकः प्रज्ञप्तः। तान् प्रकारानाह 'तद्यथा'-इत्यादि। व्याख्या सुगमा। नवरम्-उपयुक्तः-उपयोगवानिति॥मृ०५७॥

सम्पति सूत्रकार उपसहरन् सग्रहगाथाः प्राह—

मूलम्-अक्षर सण्णी सम्म, साडय खलु सपञ्जवसिय च।

गमिय अगपविट्ट, सत्त वि एए सपडिवक्खा ॥ १ ॥

नहीं हैं, किन्तु या, है और रहेगा। इसी लिये यह द्रुव आदि विशेषणों वाला होकर अवस्थित एव नित्य है। इस तरह सूत्रकार ने पहिले निषेधमुख से इस में त्रैकालिक सत्ता का समर्थन किया और अब वे "अभूच्च भवति च भविष्यति च" इन क्रियापदों द्वारा इसका विधिमुख से समर्थन किया है, अतः इस कथन में यहा पुनरुक्ति की आशंका नहीं हो सकती है।

यह द्वादशाह सक्षेप में चार प्रकार के कहे गये हैं। वे चार प्रकार द्रव्य से, काल से और भाव से जानने चाहिये। द्रव्य से उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त द्रव्यों को जानता है, देखता है। क्षेत्र से-उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त क्षेत्रों को जानता है, देखता है। कालसे-उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त कालको जानता है, देखता है। भाव से उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त भावों को जानता है, देखता है ॥मृ०५७॥

अने लविष्यमा नही रहे अेवी वात पणु नथी, परन्तु डंतु, छे, अने रहेशे ते कारणे ते अथल, ध्रुव आदि विशेषणोवाणु होवाथी अवस्थित अने नित्य छे आ रीते सूत्रकारे पडेला निषेधमुखे तेमा त्रैकालिक सत्तानु समर्थन क्युं अने डवे तेमणे "अभूच्च भवति च भविष्यति च" अे क्रियापदो द्वारा तेनु विधिमुखे समर्थन क्युं छे, तेथी आ कथनमा अही पुनरुक्तिनी आशंका करी शकती नथी

आ द्वादशाह सक्षेपमा चार प्रकारे छे ते चार प्रकारे, द्रव्यथी, क्षेत्रथी, काणथी अने लावथी नणुवा न्नेधये द्रव्यथी उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त द्रव्येने नणु छे, नुअे छे क्षेत्र थकी उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त क्षेत्रेने नणु छे नुअे छे काणथकी उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्तकाणने नणु छे, नुअे छे, लावथकी उपयोगवान श्रुतज्ञानी समस्त लावोने नणु छे, नुअे छे (स० ५७)

અવસ્થિતત્વાદેવ નિત્યઃ—આકાશવત્ । અસ્મિન્નેવાર્થે દૃષ્ટાન્તમાદૃ—તથથાનામ-
પચ્ચાસ્તિકાયાઃ=ધર્માસ્તિકાયાદયઃ ન કદાપિ નાસન , ન કદાપિ ન સન્તિ, ન કદાપિ
ન ભવિષ્યતિ । અર્થ માત્રઃ—ધર્માસ્તિકાયાદયઃ આસન્નેવ, મન્ત્યેવ, ભવિષ્યન્ત્યેવ ।
અમુમેવાર્થમાદૃ—અભૂવશ્ચ, સન્તિ ચ, મવિષ્યન્તિ, ચ ધર્માસ્તિકાયાદયઃ, । એતે
હિ—પ્રવાઃ, નિયતાઃ, શાશ્વતા, અક્ષયા, અન્યયાઃ, અવસ્થિતાઃ, નિત્યાઃ પ્રવાદી
નામર્થાઃ પૂર્વવત્ । એવમેવ=અનેન પ્રકારેણેવ દ્વાદશાદ્ગોણિપિટકઃ ન કદાપિ
નાસીત્, ન કદાપિ નાસ્તિ, ન કદાપિ ન ભવિષ્યતિ, નિપેઘ મુલેનાસ્ય ત્રૈકા-

અવ્યયરૂપ મેં હેં ડસી પ્રકાર યદ દ્વાદશાગ મી અક્ષય હોને કે કારણ
અવ્યયરૂપવાલા કહા ગયા હે ૫ । જિસ પ્રકાર અપને પ્રમાણ મેં જન્મ દ્વીપ
આદિ અવસ્થિત હેં ડસી તરહ યદ મી અવસ્થિત હે ૬ । ડસીલિયે યદ
આકાશ કી તરહ નિત્ય હે ૭ । ડસી વાત કો દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સૂત્રકાર સમ-
જ્ઞાતે હેં—જીવાસ્તિકાય ૧, પુદ્ગલાસ્તિકાય ૨, ધર્માસ્તિકાય ૩, અધર્મા-
સ્તિકાય ૪, ડસી આકાશાસ્તિકાય ૫, યે પાચ અસ્તિકાય દ્રવ્ય જૈસે
મૂતકાલ મે કમી નહી યે, વર્તમાનકાલ મેં નહી હેં તથા ભવિષ્યત્કાલ મેં
નહી હોગે, યેસી વાત નહી હો સકતી, અર્થાત્ યે મૂતકાલ મે યે, વર્તમાન
મેં હેં ડસી ભવિષ્યત્કાલ મે રહેગે, ડસીલિયે જૈસે યે ધ્રુવ, નિયત,
શાશ્વત, અક્ષય, અવ્યય, અવસ્થિત યવ નિત્ય માને ગયે હે ડસી તરહ યદ
દ્વાદશાગરૂપ ગણિપિટક કમી નહી યા યદ વાત નહી હે, વર્તમાન મેં નહી
હે યદ મી વાત નહી હે, યવ ભવિષ્યત્ કાલ મેં નહી રહેગા યદ મી વાત

ધોત્તરની બહાર સમુદ્ર અવ્યયરૂપે જ છે એજ પ્રકારે આ દ્વાદશાગ પણ અક્ષય
હોવાને કારણે અવ્યયરૂપવાળું કહેલ છે (૫) જેમ પોતાના પ્રમાણમા જ પૂદ્ગીપ
આદિ અવસ્થિત છે એજ પ્રમાણે આ દ્વાદશાગ પણ અવસ્થિત છે (૬) અને
તે કારણે તે આકાશની જેમ નિત્ય છે (૭) એજ વાતને સૂત્રકાર દૃષ્ટાત દ્વારા
સમજાવે છે—(૧) જીવાસ્તિકાય, (૨) પુદ્ગલાસ્તિકાય, (૩) ધર્માસ્તિકાય, (૪)
અધર્માસ્તિકાય અને (૫) આકાશાસ્તિકાય એ પાચ અસ્તિકાય દ્રવ્ય જેમ મૂત
કાળમા કહી ન હતા, વર્તમાનકાળમા નથી, તથા ભવિષ્યકાળમા હશે નહી, એવી
વાત અશક્ય છે એટલે કે તે મૂતકાળમા હતા, વર્તમાન કાળમા છે અને
ભવિષ્ય કાળમા રહેશે, તે કારણે તેઓને જેમ ધ્રુવ, નિયત, શાશ્વત, અક્ષય,
અવ્યય, અવસ્થિત અને નિત્ય માન્યા છે એજ પ્રમાણે આ દ્વાદશાગરૂપ ગણિ
પિટક પણ કહી ન હતા એવી વાત નથી, વર્તમાનમા નથી એવી પણ વાત નથી,

श्रुतम् २, सम्यक्=सम्यक्श्रुतम् ३, सादिक=सादिकश्रुतम्, यस्य श्रुतस्यादि-
विद्यते तत् सादिकश्रुतम् ४, तथा-सपर्यवसितम्=पर्यवसित-पर्यवसान विद्यते यस्य
तत् सपर्यवसितम् अन्तसहित श्रुतमित्यर्थः ५, गमिकम्=सदृशपाठयुक्त शास्त्रम् ६,
अङ्गप्रविष्टम्=द्वादशविव प्रमचनम्-आचारादिदृष्टिनादपर्यन्तम् ७ । एतानि सप्त
श्रुतज्ञानानि सप्रतिपक्षाणि=प्रतिपक्षसहितानि सन्ति । इह श्रुतज्ञानप्रकरणे एतच्छ-
ब्देन अक्षरसङ्गिभृतीन्येव श्रुतज्ञानानि गृह्यन्ते। 'एष सपडिक्खा' इति पुलिङ्ग-
निर्देशस्त्वार्षत्वात् । 'एते सप्तश्रुतज्ञानभेदाः सप्रतिपक्षाः' इति व्याख्याने मूले
पुलिङ्गनिर्देश संगच्छते । अन्ये तु पुलिङ्ग निर्देशानुरोधेन 'पक्षाः' इत्यध्याहारं
कुर्वन्ति, तत्र सम्यक् पक्षा इत्यस्य पूर्वानुक्तत्वात् ।

अयमर्थः—अक्षरश्रुतम् १, अनक्षरश्रुतम् २, सज्जिश्रुतम् ३, असज्जिश्रुतम् ४,
सम्यक्श्रुतम् ५, मिथ्याश्रुतम् ६, सादिकश्रुतम् ७, अनादिकश्रुतम् ८, सपर्यव-
सितश्रुतम् ९, अपर्यवसितश्रुतम् १०, गमिकश्रुतम् ११, अगमिकश्रुतम् १२, अङ्गप्र-
विष्टश्रुतम् १३, अनङ्गप्रविष्टश्रुतम् १४, इत्येव चतुर्दशभेदाः श्रुतज्ञानस्य भवन्तीति॥१॥

इदं श्रुतज्ञान सर्वोक्तृष्ट रत्नतुल्य प्रायोगुर्वधीन च, अत शिष्यानुग्रहार्थं श्रुत-
ज्ञानलाभं वर्णयति—

अक्षरश्रुत १, सज्जिश्रुत २, सम्यक्श्रुत ३, सादिकश्रुत ४, सपर्यव-
सितश्रुत ५, गमिकश्रुत ६, और अग प्रविष्टश्रुत ७ । ये श्रुत के सातों ही
भेद अपने २ प्रतिपक्ष सहित हैं । जैसे—अक्षरश्रुत का प्रतिपक्ष अनक्षर
श्रुत १, सज्जिश्रुत का प्रतिपक्ष असज्जिश्रुत २, सम्यक्श्रुत का प्रतिपक्ष
मिथ्याश्रुत ३, सादिकश्रुत का प्रतिपक्ष अनादिकश्रुत ४, सपर्यवसित का
प्रतिपक्ष अपर्यवसितश्रुत ५, गमिक का प्रतिपक्ष अगमिकश्रुत ६, तथा
अगप्रविष्ट का प्रतिपक्ष अनगप्रविष्ट ७ । इस तरह श्रुतज्ञान के ये १४ चौदे
भेद हैं । इनमे से जिस श्रुत की आदि है वह सादिकश्रुत है, जिसका
पर्यवसान-अन्त है वह सपर्यवसितश्रुत है । सदृशपाठ से युक्त श्रुत

(१) अक्षरश्रुत, (२) सज्जिश्रुत, (३) सम्यक्श्रुत, (४) सादिकश्रुत (५)
सपर्यवसितश्रुत, (६) गमिकश्रुत अने (७) अगप्रविष्टश्रुत ये श्रुतना साते लेह
पोत पोताना प्रतिपक्ष युक्त छे नेभके अक्षरश्रुतनु प्रतिपक्ष अनक्षरश्रुत, सज्जि
श्रुतनु प्रतिपक्ष असज्जिश्रुत, सम्यक् श्रुतनु प्रतिपक्ष मिथ्यात्वश्रुत, सादिकश्रुतनु
प्रतिपक्ष अनादिकश्रुत, सपर्यवसितनु प्रतिपक्ष अपर्यवसित श्रुत, गमिकनु प्रति-
पक्ष अगमिकश्रुत तथा अगप्रविष्टनु प्रतिपक्ष अनगप्रविष्ट, आ रीते श्रुत
ज्ञानना ते चौह (१४) लेह छे तेओभा ने श्रुतने! आदि छे ते सादिकश्रुत छे,
नेनु पर्यवसान-अन्त छे ते सपर्यवसित श्रुत छे सदृशपाठवाणु श्रुत गमिक

आगमसत्थग्गहणं, जं बुद्धिगुणहिं अट्टहिं दिट्ठ ।
 विति सुयनाण लभ, त पुव्वविसारया धीरा ॥ २ ॥
 सुस्सूसंइ पडिपुच्छेइ, सुणेइं गिण्हंइ य ईहपे यावि ।
 तत्तो अपोहंए वा, धारेइ करेइं वा सम्मं ॥ ३ ॥
 मूयं हुकार२ वा, वाढकार३ पडिपुच्छ४ वीमसा५ ।
 तत्तो पसगपारा—यणं६ च परिणिट्ठ७ सत्तमए ॥ ४ ॥
 सुत्तत्थो खलु पढमो, वीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।
 तइओ य निरव सेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥ ५ ॥
 से त्त अंगपविट्ठ । से त्त सुयनाण । से त्त परोक्खनाण ।

से त्त नाण ॥ सू०५८ ॥

॥ नदी समत्ता ॥

छाया—अक्षरसंज्ञि सम्यक्, सादिक खलु सपर्ययसित च ।
 गमिकमद्गमविष्ट, सप्ताऽप्येतानि सप्रतिपक्षाणि ॥ १ ॥
 आगमशास्त्रग्रहणं, यद्बुद्धिगुणैरष्टभिर्दृष्टम् ।
 ब्रुवते श्रुतज्ञानलाभ, तत्पूर्वविशारदा धीराः ॥ २ ॥
 श्रुश्रूपते प्रतिपृच्छति शृणोति गृह्णाति चेहते वाऽपि ।
 ततोऽपोहते वा धारयति करोति वा सम्यक् ॥ ३ ॥
 मूरुः हुङ्कारः वाढकारः, प्रतिपृच्छा विमर्श ।
 ततः प्रसङ्ग परायण च परिनिष्ठा सप्तमकः ॥ ४ ॥
 सूत्रार्थः खलु प्रथमः, द्वितीयो निर्युक्ति-मिश्रितो भणित ।
 तृतीयश्च निरववेप, एष विधिर्भवत्यनुयोगे ॥ ५ ॥
 तदेतद्गमविष्टम्, तदेतच्छ्रुतज्ञानम्, तदेतत् परोक्षज्ञानम् । तदेतज्ज्ञानम् ॥ सू०५८ ॥

॥ नन्दी समाप्ता ॥

टीका—‘अक्षरसञ्ज्ञी’ इत्यादि । अक्षरम्=अक्षरश्रुतम् १, सञ्ज्ञि=सञ्ज्ञि-

अव सूत्रकार शास्त्र का उपसंहार करते हुए सग्रह गाथाए कहते हैं—‘अक्षरसण्णी०’ इत्यादि—

इवे सूत्रकार शास्त्रेण उपसंहार कर्ता स ग्रह गाथाया कहे छे—“अक्षर सण्णी०” इत्यादि—

आगमश्चासौ शास्त्रं च, आगमशास्त्रं, तस्य ग्रहणम् । पण्डितन्त्रादि कुशास्त्रनिराकरणार्थ-
मागमग्रहणम् । पण्डितन्त्रादीनां यथावस्थितार्थप्रकाशनाऽभावादनगमत्वात्, शास्त्रतया
च रुढत्वात् । आगमरूपस्य यथावस्थितार्थानां प्ररूपरूपस्य शास्त्रस्य ग्रहणं=ज्ञानं भव-
तीति दृष्टं=तीर्थकरं गणधरादिभिरवलोकितम् । तत्-तदेव आगमशास्त्रज्ञानं पूर्ववि-
शारदाः-चतुर्दशपूर्वधराः, धीराः व्रतपालने दृढाः मुनयः श्रुतज्ञानलाभं मुवते=वदन्ति ।
जिनप्रणीतं प्रवचनार्थं परिज्ञानमेव परमार्थतः श्रुतज्ञानं नान्यदिति भावः ॥ २ ॥

मायुक्तान्मूर्खैः बुद्धिगुणान् प्राह—‘सुस्सुसइ०’ इत्यादि । शुश्रूपते-विनीतः
सन् गुरुवचनं श्रोतुं मिच्छति, शुश्रूपते=सेवते वा गुरुम् ? , प्रतिपृच्छति-सशये

जिसके द्वारा शिक्षा दी जावे वही शास्त्र होता है । ये तो प्रत्यक्षज्ञान है ।
शास्त्र-परोक्षज्ञान है । पण्डितन्त्र आदिकुशास्त्रों में आगमता का निषेध
करने के लिये शास्त्र के पहिले आगम पद रक्खा है । व्यवहार में
पण्डितन्त्रादिक शास्त्ररूप से माने जाते हैं, पर ये आगम नहीं हैं, अना-
गम हैं । इस तरह यथावस्थित अर्थों का प्ररूपक जो शास्त्र है उसका
ज्ञान ही आगमशास्त्र ज्ञान है । और यह आगमज्ञान जिस आत्मा में
हो गया है वही श्रुतज्ञानलाभ है । ऐसा कथन व्रतपालन में दृढ़ प्रतिज्ञा
हुए चतुर्दशपूर्वधारी मुनिराजों का है । तात्पर्य इसका यही है कि जिन-
प्रणीत प्रवचन के अर्थ का परिज्ञान ही परमार्थतः श्रुतज्ञान है, अन्य-
प्रणीत श्रुत का ज्ञान श्रुतज्ञान नहीं है ॥ २ ॥

अब बुद्धि के आठ गुणों को कहते हैं—‘सुस्सुसइ०’ इत्यादि ।
विनीत बनकर गुरु के वचन को सुनने की इच्छा रखना, अथवा गुरु की

अप्राप्यते शास्त्रं कडेवाय छे अये तो प्रत्यक्ष ज्ञान छे शास्त्र परोक्ष ज्ञान छे
पण्डितत्र आदि कुशास्त्रोभा आगमताने निषेध करवाने भाटे शास्त्रनी पडेला
आगम शब्द भूडथो छे व्यवहारमा पण्डितत्र आदि शास्त्ररूपे बनाय छे पण्डु
ते आगम नथी, अनागम छे आ रीते यथावस्थित अर्थोनु प्ररूपक जे शास्त्र
छे तेनु ज्ञान न आगमशास्त्र ज्ञान छे अने ते आगमज्ञान जे आत्मामा थर्छ
गयु छे अये न श्रुतज्ञान लाभ छे अयेनु कथन व्रतपालनमा दृढप्रतिज्ञा अयेवा योद
पूर्वधारी मुनिराजोनु छे तेनु तात्पर्य अये छे के जिनप्रणीत प्रवचनना अर्थोनु
परिज्ञान न परमार्थतः श्रुतज्ञान छे, अन्यप्रणीत श्रुतनु ज्ञान श्रुतज्ञान नथी ॥२॥

डवे बुद्धिना आठ गुणो भतावे छे—‘सुस्सुसइ०’ इत्यादि—

(१) विनीत थर्छने शुरुना वचनोने साधनवानी छिच्छा राखी, अथवा

‘આગમસત્યગ્રહણ૦’ ઇત્યાદિ । અષ્ટમિં વુદ્ધિર્ગુણઃ=અન્યવદિતોત્તર ગાયાયાં વક્ષમાણૈઃ શુશ્રૂપાદિમિઃ, યત્ આગમશાસ્ત્રગ્રહણ=આ-મર્યાદયા, યથાવસ્થિતપરૂપણા રૂપયાપરિચ્છિદ્યન્તે અર્થાયેન સ આગમઃ । સ ચોક્તવ્યુત્પત્ત્યાઽવધિકેવલાદિતાનરૂપોઽપિ મયતિ, અતસ્તન્નિરાકરણાર્થમિદ્ શાસ્ત્રપદ પ્રયુક્તમ્ । શામ્યતેઽનેનેતિ શાસ્ત્રમ્ ।

ગમિક શ્રુત હૈ । एव आचाराग आदि से लेकर दृष्टिवाद पर्यन्त ममस्त श्रुत अगप्रविष्ट है ॥ १ ॥

‘આગમસત્ય૦’ ઇત્યાદિ ।

વુદ્ધિ કે આઠ ગુણોં સે યુક્ત હોકર જો મનુષ્યોં દ્વારા આગમશાસ્ત્ર કા જ્ઞાન પ્રાપ્ત કિયા જાતા હૈ ડસી કા નામ શ્રુતજ્ઞાન લાભ હૈ, એમા ધીર વીર શ્રુત કેવલિયોં કા કથન હૈ । વુદ્ધિ કે આઠ ગુણ અમી નીચે કી ગાયા દ્વારા સૂત્રકાર સ્વય પ્રકટ કરેંગે-આ-યથાવસ્થિત પ્રરૂપણારૂપ મર્યાદાપૂર્વક-ગમ-જીવાદિક પદાર્થ જિસકે દ્વારા જાને જાતે હૈ ડસકા નામ આગમ હૈ । આગમ કી જન હસ પ્રકાર વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ અવધિજ્ઞાન મનઃ પર્યવજ્ઞાન તથા કેવલજ્ઞાન મે મી ઘટિક હો જાતા હૈ, કારણ ડનમેં મી યથાવસ્થિતપરૂપણારૂપ મર્યાદા રહી હુણ હૈ । ડસ તરહ ડસ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ મે અતિવ્યાપ્તિ દોષ કા પ્રસગ આતા હૈ સો યહ પ્રસગ યહા ઉપસ્થિત ન હો ડસકે લિયે આગમ કે સાથ સૂત્રકાર ને શાસ્ત્રપદ પ્રયુક્ત કિયા હૈ । અવધિજ્ઞાન આદિ જ્ઞાનશાસ્ત્ર નહી હૈ । “શાસ્યતેઽનેન ઇતિ શાસ્ત્રમ્”

શ્રુત છે અને આચારાગ આદિથી લઈને દૃષ્ટિવાદ સુધીના સમસ્ત શ્રુત અગ પ્રવિષ્ટ શ્રુત છે ॥ ૧ ॥

“આગમ સત્ય૦” ઇત્યાદિ

બુદ્ધિના આઠ ગુણોથી યુક્ત થઈને જે મનુષ્યો દ્વારા આગમશાસ્ત્રનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરાય છે એનું નામ શ્રુતજ્ઞાન લાભ છે, એવું ધીર, વીર શ્રુત કેવળીઓનું કથન છે બુદ્ધિના આઠ ગુણ નીચેની ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર પોતે હમણા જે પ્રગટ કરશે -આ- યથાવસ્થિત પ્રરૂપણા રૂપ મર્યાદા પૂર્વક -ગમ- જીવાદિક પદાર્થને જેના દ્વારા જાણવામા આવે છે તેને આગમ કહે છે આગમની જે

આ પ્રમાણે વ્યુત્પત્તિ કરવામા આવે તો તે વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ અવધિ જ્ઞાન મન પર્યવજ્ઞાન તથા કેવળજ્ઞાનમા પણ ઘટાવી શકાય છે, કારણ કે તેમનામા પણ યથાવસ્થિત પ્રરૂપણારૂપ મર્યાદા રહેલ છે આ રીતે આ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થમા અતિવ્યાપ્તિ દોષનો પ્રસગ આવે છે, તો આ પ્રસગ અહીં ઉપસ્થિત ન થાય તે માટે આગમની સાથે સૂત્રકારે શાસ્ત્રપદનો ઉપયોગ કર્યો છે અવધિ જ્ઞાન આદિ જ્ઞાનશાસ્ત્રો નથી “શાસ્યતેઽનેન ઇતિ શાસ્ત્રમ્” જેના દ્વારા શિક્ષા

अयं भावः—सयत्तगात्रः सन् मौनं करोतीति । १ । द्वितीयो गुणः—हंकारं करोति स्वीकारं सूचकं “ हा ” इत्यव्यक्तं ध्वनिं करोतीत्यर्थः । २ । तृतीयो गुणः—नादं करोति, नादम्—एवमेतत्, नान्यथेत्युक्त्वा स्वीकारं करोतीत्यर्थः । ३ । चतुर्थो गुणः—प्रतिपृच्छां करोति अयं भावः गृहीतं पूर्वापरं द्वयाभिप्रायवान् सशये सति किञ्चित् पृच्छति—‘ कथमेतत् ’ इति ४ । पञ्चमो गुणः—विमर्शं करोति—प्रमाणं जिज्ञासां करोतीति भावः ५ । ततः—प्रसङ्गपरायणं भवति । प्रसङ्गश्च परायणं चेति समाहारः । अयमर्थः—पूर्वोक्तं गुणयुक्तस्य श्रोतुः प्रसङ्गः=उत्तरगुणप्रसङ्गः, उत्तरगुणं प्रसङ्गो भवति परायणं=पारगमनं शास्त्रम्यचेति षष्ठो गुणो भवति ६ । ततः सप्तमको=सप्तमो गुणः—परिनिष्ठा—संपूर्णता भवति । अयमर्थः—असौ श्रोता गुरुवत् परिनिष्ठितो भवतीत्यर्थः । गुरुवद्गुणं भाषते एवेति भावः । ७ । अथवा—

शरीरं को सयत्तकरं मौनपूर्वकं सुनता है, अर्थात् बीच-बीच में बातचीत नहीं करता है १ । दूसरा गुण—हंकार करता है, अर्थात् स्वीकृति-सूचक ‘ हा ’ ऐसी अव्यक्त ध्वनि करता है २ । तृतीयगुण—नादंकार करता है, अर्थात्—‘तद्वत्ति-तथेति’ करता है ऐसा बोलता है कि—‘जैसा आप कहते हैं वही वैसा ही है अन्यथा नहीं है’ ऐसा कहकर शास्त्रोक्त विषय को मान्य करता है ३ । चतुर्थगुण—प्रतिपृच्छा करता है, अर्थात्—पूर्वापररूप से शास्त्र का अभिप्राय ग्रहणकर जब उसमें सशय उत्पन्न होता है तो ‘हे भद्रन्त ! यह बात कैसे है ?’ इस रूप से कुछ पूछता है ४ । पंचम-गुण—‘इसमें क्या प्रमाण है ?’ इस प्रकार का प्रमाण जिज्ञासारूप विमर्श करता है ५ । छठा गुण—फिर श्रोता उत्तरोत्तर गुणों की वृद्धि से शास्त्र का पारगामी होता है ६ । सातवाँ गुण—इस तरह श्रोता गुरु की तरह बोलनेवाला बन जाता है ७ । वास्तव में तो यह शास्त्रश्रवण में सात

शरीरने सयत्त करीने मौनपूर्वक भाषणे छे, ओटले डे वच्चे वच्चे वातो करतो नथी (२) भीजे शुष्-छात्र ढरे छे ओटले डे स्वीकृतिसूचक “ हा ” ओवे अव्यक्त ध्वनि ढरे छे (३) त्रीजे शुष्-आदकार करे छे—ओटले डे “तद्वत्ति-तथेति” छडे छे ओवु बोले छे डे, “आप जेम ठहो छो तेम न छे, अन्यथा नथी ” आभ ठहोने शास्त्रोक्त विषयने मान्य ढरे छे (४) चोथो शुष्-प्रतिपृच्छा करे छे, ओटले डे पूर्वापर इचे शास्त्रने अभिप्राय ग्रहण करीने जे तेमा सशय चेदा थाय तो “ हे भद्रन्त ! आ बात केवी रीते छे ? ” आ रीते ठहक पूछे छे (५) पाचमो शुष्—“आमा वयु प्रमाण छे ” आ प्रज्ञाने प्रमाणजिज्ञासा इप विमर्श ढरे छे (६) छठो शुष्-वणी श्रोता उत्तरोत्तर शुष्-नी वृद्धिथी शास्त्रने पारगामी थाय छे (७) सातमो शुष्—आ रीते श्रोता गुरुनी प्रमाणे

समुत्पन्ने विनयनम्रतया गुरुमनः प्रहाटयन पुनः पृच्छति २, शृणोति-पृष्टः सन् गुरुर्यत् कथयति, तत् सावधानो भूत्वा शृणोति ३, च-पुन गृह्णाति-ग्रहण करोति, शब्दतोऽर्थतश्च जानाति ४, अपि वा-ईदृते-ईदा करोति, पूर्वापरविरोधेन पर्या लोचयति, किञ्चित् स्वबुद्ध्या उत्प्रेक्षते इति भावः १७ । तत-तदनन्तरम् अपोहते =निर्णय करोति । ६ ॥ वा पुनः, धारयति=धारणा करोति ७ । सम्यक् करोति-धारणाऽनुरूपं कायं सम्यक् करोति, शास्त्रोक्तमनुष्ठानं सम्यगाचरतीत्यर्थः । यथोक्तानुष्ठानमपि श्रुतज्ञानं प्राप्ति हेतुरिति भावः ॥ ८ ॥ श्रुतज्ञानावरणमरणः क्षयोपशममाज्जायमानत्वादिमे बुद्धेरुणा इत्युक्तम् ॥ ३ ॥

शास्त्रश्रोतुः सप्तगुणानाह-'मूय०' इत्यादि । प्रथमो गुणः-मूक शृणोति,

सेवा करना १ । गुरु द्वारा पाठित पाठ में सशय के होने पर बड़ी नम्रता के साथ गुरुजन का मन हर्षित करते हुए सशय की निवृत्ति के निमित्त पुनः पूछना २ । पूछने पर गुरुजन क्या कहते हैं यह बड़ी सावधानी से सुनना ३ । पश्चात् पूछे गये विषय का शब्द और अर्थपूर्वक अवधारण करना ४ । पश्चात् पूर्वापर विरोध न आवे इस रूप से उसकी पर्यालोचना करना ५ । वाद में उसका निश्चय करना ६ । कालान्तर में भी वह विषय विस्मृत न हो इस रूप से उसको धारण करना ७ । फिर धारणा के अनुसार शास्त्रोक्त अनुष्ठान को अपने जीवन में उतारना ८ । ये बुद्धि के आठ गुण हैं । ये आठ गुण श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होते हैं, इसलिये इन्हे बुद्धि के गुणरूप में प्रगट किये हैं ॥३॥

अब शास्त्रकार शास्त्र सुननेवाले के सात गुण कहते हैं-'मूय०' इत्यादि । प्रथमगुण-श्रोता शास्त्र को जब सुने तब बड़ी नम्रता के साथ

शुनी सेवा करवी, (२) गुरु द्वारा पाठित पाठमा सशय आवता धृष्टी नम्रता पूर्वक शुरुजनतु मन हर्षित करता सशयतु निवारण करवा भाटे इरीथी पूछतु, (३) पूछता शुरुजन ने कहे ते सावधानीथी साबणतु, (४) पछी पूछल विषयतु शब्द अने अर्थपूर्वक अवधारण करतु, (५) पछी पूर्वापर विरोध न आवे ते रीते तेनी पर्यालोचना करवी, (६) पछी तेना निश्चय करवा, (७) कालान्तरे पछु ते विषय भूलाय नही ते रीते तेने धारण करवा, (८) अने धारणा प्रमाणे शास्त्रोक्त अनुष्ठानने पोताना जीवनमा उतारतु, अने बुद्धिना आठ गुण छे अने आठ गुण श्रुतज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमथी पैदा थाय छे तेथी तेभने बुद्धिना गुणरूपे प्रगट कथी छे ॥३॥

इसे शास्त्रकार शास्त्र साबणनारना सात गुण कहे छे-'मूय०' इत्यादि

(१) प्रथमगुण-श्रोता शास्त्रतु न्यारे अवणु करे त्यारे धृष्टी नम्रतापूर्वक

વિમર્શ:-પદાર્થના હેયોપાદેયત્વેન વિચારઃ પશ્ચમાઃ। પ્રસન્નપરાયણમ્-પ્રસન્નેન=ઉત્તરોત્તર ગુણવૃદ્ધ્યા પરે=ઉત્કૃષ્ટભાવે અયન=ગમનં પટ્ટઃ । ૬ । સપ્તમોવિધિ પરિનિષ્ઠા-પરિ =સમન્તાત્ નિષ્ઠા=શ્રદ્ધા પરિનિષ્ઠા-ત્રીતરાગ વચનેષ્વવિચલશ્રદ્ધા । ૭ । સૂત્રે 'મૂક' મિત્પાદૌ સૌત્રવાન્નપુસકત્વમ્ ॥ ૪ ॥

શ્રવણવિધિરુક્તઃ, અપુના વ્યાખ્યાન વિધિમાહ—'સુત્ત્યો૦' ઇત્યાદિ ।

उनसे उस विषय में पूछे ४ । पांचवी विधि-विमर्श करे, अर्थात्-पदार्थों के विषय में हेय और उपादेयरूप से जो विचार किया जाता है, अर्थात्-गुरु महाराज के वचनश्रवण के बाद जो श्रोता के अतरग में ऐसी विचारधारा उत्पन्न होती है कि- 'यह पदार्थ ग्रहण करने योग्य है तथा यह पदार्थ त्यागने योग्य है, एवं इस पदार्थ पर हमारी उपेक्षावृत्ति रहनी चाहिये' इत्यादि रूप से परामर्श करे ५ । छठी विधि-प्रसगपरायण होवे, अर्थात्-श्रोता के हृदय में सासारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति घटकर उनके प्रति विरक्ति बढे । इस तरह उत्तरोत्तर गुणों की वृद्धि से श्रोता का उनके त्यागने रूप उत्कृष्ट भाव में पहुचना ६ । सातवी विधि-परिनिष्ठा होवे, अर्थात्-श्रोता के चित्त में वीतराग प्रभु के वचनो में अविचल श्रद्धा का होना ७ ॥ ४ ॥

શ્રવણવિધિ કહતર અવ સૂત્રકાર વ્યાખ્યાન કી વિધિ પ્રકટ કરતે હૈ—'સુત્ત્યો૦' ઇત્યાદિ ।

પ્રશ્ન પૂછે (૪) પાચમી વિધિ-વિમર્શ કરે એટલે કે-પહોના વિષયમા હેય અને ઉપાદેય રૂપે જે વિચાર કરાય છે, એટલે કે ગુરુમહારાજના વચન સાંભળ્યા પછી શ્રોતાના અતરગમા જે એવી વિચારધારા ઉત્પન્ન થાય છે કે, “ આ પદાર્થ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે તથા આ પદાર્થ ત્યાગવા યોગ્ય છે, અને આ પદાર્થ પર અમારી ઉપેક્ષાવૃત્તિ રહેવી જોઈ એ ” ઇત્યાદિ રીતે પરામર્શ કરે (૫) છઠી વિધિ-પ્રસગ પરાયણ થાય-એટલે કે શ્રોતાના હૃદયમા સાસારિક પદાર્થો પ્રત્યે આસક્તિ ઘટીને તેમના તરફ વિરક્તિ વધે આ રીતે ઉત્તરોત્તર ગુણોની વૃદ્ધિથી શ્રોતાનુ તેમને ત્યાગવા રૂપ ઉત્કૃષ્ટ ભાવમા પહોંચવુ (૬) સાતમી વિધિ-પરિનિષ્ઠા થાય-એટલે કે શ્રોતાના ચિત્તમા વીતરાગ પ્રભુના વચનોમા અવિચલ શ્રદ્ધા થવી (૭) ॥ ૪ ॥

શ્રવણવિધિનુ વર્ણન કરીને હવે સૂત્રકાર વ્યાખ્યાનની વિધિ પ્રગટ કરે છે—“સુત્ત્યો૦” ઇત્યાદિ

શાસ્ત્રશ્રવણેડય સસવિધો વિધિર્ભવતિ: - મૂઠ્ઠુઃ - મૂઠ્ઠુમાય' - આચાર્યાદિવાક્યા પરિસમાપ્તૌ મૌનાવલમ્બનં પ્રથમઃ । ૧ । હુઠ્ઠુકારઃ - આચાર્યાદિવાક્યાવસાને તદનુમોદનાર્થ ' હા ' ઇત્યવ્યક્ત ઘનિકરણ દ્વિતીયઃ । ૨ । વાઠ્ઠુકારઃ - ' તથેતિ ભદન્ત ! ' ઇત્યાદિ યાચા ઉદગ્રોકરણ તૃતીયઃ । ૩ । પ્રતિપૃઠ્ઠા - સશયે મમુત્પન્ને સતિ તન્નિવારણાર્થં વાચ્યાવસાને સ વિનય પ્રચ્છનં ચતુર્થઃ । ૪ ।

પ્રકાર કી વિધિ હૈ, જૈસે-પ્રથમવિધિ-આચાર્ય આદિ ગુરુજન જય શાસ્ત્ર કા પ્રવચન કરે તત્ર શ્રોતા કા યહ કર્તવ્ય હૈ કિ વહ શાસ્ત્રીય પ્રવચન કો સુનને કે લિયે સર્વપ્રથમ મૌનાવલમ્બન કરે, વહા ઢધર-ઉધર કી વાતે ન કરે । ધ્યાનપૂર્વક આચાર્ય મહારાજ ય્યા પ્રતિપાઢન કર રહે હૈ ઇસકો સુને ૧ । ઢસરી વિધિ-જત્ર વે અપને વિષય કા પ્રતિપાઢન કર ચુકે તથ ડનકે ઢ્વારા કથિત વિષય કી અનુમોઢના કરને કે લિયે હુકાર શબ્ઢ કરે અર્થાત્ ' હા ' ઁસા વોલે ૨ । તૈસરી વિધિ-વાઢકાર કરે, અર્થાત્ ' તહત્તિ ' કહકર ડનકે વચનો કો સ્વીકાર કરે, ઔર યહ પ્રકાશિત કરે કિ-હે ભદન્ત ! આપને જો કુઠ્ઠ કહા હૈ વહ ઁસા હી હૈ ૩ । ચૌથી વિધિ-પ્રતિપૃઠ્ઠા કરે, અર્થાત્ શ્રોતાઔ કો જત્ર ગુરુ મહારાજ ઢ્વારા પ્રકાશિત અર્થ મે કિસી મી પ્રકાર કા સશય હો જાવે તો ડસકી નિવૃત્તિ કે લિયે જત્ર વે અપના વક્તવ્ય સમાસ કર ઢે તત્ર વઢી નમ્રતા કે સાથ

બોલનાર થઈ જાય છે વાસ્તવમાં તે શાસ્ત્રશ્રવણમાં આ સાત પ્રકારની વિધિ છે, જેમકે-પ્રથમ વિધિ આચાર્ય આદિ ગુરુજન જ્યારે શાસ્ત્રનું પ્રવચન કરે ત્યારે શ્રોતાની એ ફરજ છે કે તે શાસ્ત્રીય પ્રવચન સાંભળવા માટે સીધી પહેલા મૌન પાળે, ત્યાં અહીં તહીંની વાતો ન કરે ધ્યાનપૂર્વક આચાર્ય મહારાજ શુ પ્રતિપાઢન કરી રહ્યા છે તે સાંભળે (૧) બીજી વિધિ-જ્યારે તેઓ પોતાના વિષયનું પ્રતિપાઢન કરી રહે ત્યારે તેમના ઢ્વારા કથિત વિષયનું અનુમોઢન કરવા માટે હુકાર શબ્ઢ કરે અથવા " હા " એવું બોલે (૨) ત્રીજી વિધિ-બાઢકાર કરે, એટલે " તહત્તિ-તથેતિ " કહીને તેમના વચનોનો સ્વીકાર કરે, અને એ બાહર કરે કે, ' હે ભદન્ત ! આપે જે કંઈ કહ્યું તે બરાબર છે ' (૩) ચોથી વિધિ-પ્રતિપૃઠ્ઠા કરે-એટલે કે શ્રોતાઓને જે ગુરુમહારાજ ઢ્વારા પ્રકાશિત અર્થ વિષે કોઈ પણ પ્રકારનો સશય થાય તો તેના નિવારણ માટે જ્યારે તેઓ તેમનું વક્તવ્ય પૂરૂ કરે ત્યારે ઘણી નમ્રતાપૂર્વક તેમને તેવિષયમાં

અથ પર્વવિશતિતમ સૂત્રોક્તાનિ (પૃ૦ ૩૦૧) ઉદાહરણાનિ વર્ણ્યન્તે—

ઔત્પત્તિકીબુદ્ધિદૃષ્ટાન્તાઃ—

ઔત્પત્તિક્યા બુદ્ધેરુદાહરણાનિ—‘ મરહસિલ મિદકુસ્કુટ ’ ઇતિ ગાયાયા નામ માત્રતો નિર્દિષ્ટાનિ । અધુના ક્રમશઃસ્તાન્યુદાહરણાનિ પ્રદર્શ્યન્તે । તત ‘ મરતશિલા ’ ઇતિ પ્રથમો દૃષ્ટાન્તઃ । સ ચૈવમ્—

જ્ઞાન વર્ણિત હુઆ । તાત્પર્ય ઇસકા યદ્દૈ કિ, પશ્ચિલે શિષ્યને પૃઠા યા કિ, હે મદન્ત ! અગપ્રવિષ્ટ કા ક્યા સ્વરૂપ હૈ ? ઇસકે ઉત્તર મેં આચાર્ય મહારાજને યદ્દ કહા હૈ કિ “ તદેતદ્ અગપ્રવિષ્ટ વર્ણિતમ્ ” કિ આચારાંગ આદિ અગપ્રવિષ્ટકા સ્વરૂપ હૈ । જન આચારાંગ આદિકા વર્ણન મમાસ હો ચુકા તો ઇસ તરદ્ અગપ્રવિષ્ટ ઓર અનગપ્રવિષ્ટ આદિ કા વર્ણન હો ચુકને પર શ્રુતજ્ઞાન કા વર્ણન પૂર્ણરૂપ સે હો ચુકા હૈ તેમા જ્ઞાનના ચાહિયે । શ્રુતજ્ઞાન કે ઇસ પૂર્ણ વર્ણન મેં હી પરોક્ષજ્ઞાન કા પૂર્ણવર્ણન આ જાતા હૈ, અતઃ ‘ તદેતત્ પરોક્ષજ્ઞાન વર્ણિતમ્ ” તેમા આચાર્યને કહા હૈ ॥

॥ ઇતિ નદીસૂત્ર સપૂર્ણ ॥

અથ છઠ્ઠીસમે સૂત્ર (પૃ૦૩૦૧) મેં ઉક્ત ઉદાહરણોં કા વર્ણન ક્રિયા જાતા હૈ—

॥ ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિ કે દૃષ્ટાન્ત ॥

ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિ કે ઉપર જો ઉદાહરણ “ મરહસિલ મિદકુસ્કુટ ” ઇસ ગાયામેં નામ માત્ર રૂપસે સૂચિત ક્રિયે ગયે હૈં, યે અથ ક્રમશઃ પ્રદ-

તેતુ તાત્પર્ય એ ડે ડે, પહેલા ગિચે પ્રશ્નુ દતુ કે “ ભદન્ત ! અગપ્રવિષ્ટતુ શુ સ્વરૂપ છે ? ” તેના ઉત્તરમા આચાર્ય મહારાજને એ કહ્યુ છે ડે “ તદેતદ્ અગપ્રવિષ્ટ વર્ણિતમ્ ” આચારાંગ આદિ અગપ્રવિષ્ટ ડે અને એજ અગપ્રવિષ્ટતુ સ્વરૂપ છે—ત્યારે આચારાંગ આદિતુ વર્ણન મમાસ થઈ ગયુ ત્યારે આ રીતે અગપ્રવિષ્ટ અને અનગપ્રવિષ્ટ આદિતુ વર્ણન થઈ જતા શ્રુતજ્ઞાનતુ વર્ણન મ પૂર્ણ રીતે થઈ ગયુ છે એમ સમજતુ જોઈએ શ્રુતજ્ઞાનના આ પૂર્ણ વર્ણનમા જ પરોક્ષજ્ઞાનતુ પૂર્ણવર્ણન આવી જાય ડે, તેથી “ તદેતત્ પરોક્ષજ્ઞાન વર્ણિતમ્ ” એવુ આચાર્યે કહ્યુ ડે

॥ ઇતિ નદીસૂત્ર સપૂર્ણ ॥

હવે છઠ્ઠીસમા સૂત્ર (પૃ૦૩૦૧)મા ઠહેલા ઉદાહરણોંતુ વર્ણન કરવામા આવે છે—

“ ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિના દૃષ્ટાન્તો ”

ઔત્પત્તિકી બુદ્ધિના ઉપર જે ઉદાહરણ “ મરહસિલ મિદકુસ્કુટ ” આ ગાયામા નામ માત્રથી જ સૂચિત કરાયા છે તે હવે ક્રમશઃ યતાવવામા આવે

सूत्रार्थः—सूत्रार्थमाकथनरूप एव प्रथमोऽनुयोगः कार्यः । प्राथमिक शिष्याणां मोहो न भवेदित्येतदर्थं सूत्रार्थमात्रोपदेशः कर्तव्य इति भावः । उक्तं 'सत्तु' शब्दोऽवधारणार्थकः । द्वितीयोऽनुयोगः, निर्युक्तिमिश्रितः=सूत्रस्पर्शिक निर्युक्तिसहितः, भणितः=कथितः । तृतीयोऽनुयोगश्च निरवशेषः=प्रसंगानुसंगम प्रतिपादनपरः सूत्रार्थोभयनिर्युक्ति प्रभृतिपुरस्तर निरूपणरूप इत्यर्थं कथित । णपः—उक्तलक्षणः, विधिः प्रसारः, 'अणुशेषे' इति—सूत्रस्य स्वाभिप्रेयेन सह अनुकूलो योगोऽनुयोगः—सूत्रार्थ व्याख्यानम्, तस्मिन् अनुयोगे, सूत्रार्थ व्याख्याने भवति । तदेतद् अङ्गप्रविष्ट वर्णितम् तदेतच्छ्रुतज्ञान वर्णितम् । तदेतद् परोक्षज्ञान वर्णितम् ॥ सू० ५८ ॥

॥ इति नन्दीसूत्र सम्पूर्णम् ॥

प्रथमविधि—प्राथमिक शिष्यजनो को सदेह उत्पन्न न हो, इसके लिये आचार्य आदि गुरुजन उन्हें सूत्र के अर्थमात्र का उपदेश दें। यह 'सूत्रार्थ' नामका प्रथम अनुयोग है १ । सूत्र के अर्थ को स्पर्श करनेवाली निर्युक्ति होती है, इससे मिश्रित प्रवचन करना यह निर्युक्ति मिश्रित नामका द्वितीय अनुयोग है २ । सूत्र, अर्थ एव तदुभय (सूत्रार्थ) का तथा इनकी निर्युक्ति आदि का प्रवचन करना यह निरवशेष नामका तृतीय अनुयोग है ३ । अनुयोग शब्द का अर्थ सूत्र अर्थ आदिका व्याख्यान करना है । इस व्याख्यानरूप अनुयोग में सूत्र का अपने अभिधेय के साथ अनुकूल योग—सम्बन्ध होता है, इसीलिये इसको अनुयोग कहा है ॥ ५ ॥

इस तरह अग प्रविष्टका वर्णन हुआ । इसका वर्णन समाप्त होने पर श्रुतज्ञान का वर्णन समाप्त हुआ । श्रुतज्ञानके इस पूर्णवर्णन में परोक्ष-

पड़ेदी विधि—प्राथमिक शिष्यजनोने स देह न थाय, ते माटे व्याचार्य आदि गुरुजन तेमने सूत्रना अर्थमात्रने उपदेश आपे आ "सूत्रार्थ" नामने पड़ेदी अनुयोग छे (१) सूत्रना अर्थने स्पर्श करनारी निर्युक्ति होय छे, तेनाथी मिश्रित प्रवचन करवु ते "निर्युक्ति मिश्रित" नामने थीने अनुयोग छे (२) सूत्र, अर्थ तथा ते णपने (सूत्रार्थ) तु तथा तेमनी निर्युक्ति आदितु प्रवचन करवु ते "निरवशेष" नामने तीने अनुयोग छे (३) अनुयोग अर्थे सूत्र अर्थ आदितु व्याख्यान करवु आ व्याख्यानरूप अनुयोगमा सूत्रने पोताना अभिधेयनी साथे अनुकूल योग—सम्बन्ध होय छे, तेथी तेने अनुयोग कडे छे ॥ ५ ॥

आ रीते आ अगप्रविष्टनु वर्णन थयु तेनु वर्णन पूरे थता श्रुतज्ञाननु वर्णन समाप्त थयु श्रुतज्ञानना आ पूर्ण वर्णनमा परोक्षज्ञाननु वर्णन थयु

अथैन्द्रा रोहकस्तम्या द्वेषावेशेन निशि सहसा स्वपितरमाह-भो भो पितः । पलायमानोऽय कश्चित् पुरुषो गच्छति, तं पश्य । बालकस्य वचन श्रुत्वा नटः स्वभार्या प्रति शीलभङ्गगङ्क्या प्रीति रक्षितो जातः । ततो नटभार्या चिन्तयामास-नूनमेतच्चरित रोहकस्य, यन्मम पतिः प्रीत्या न सभापते । अन्यथा कथमकाण्ड एवाय मयि दोषाभावेऽपि पराङ्मुखो जातस्तस्माद् रोहक प्रसादयामि । एवं

एक दिनकी बात है कि रोहक ने सौतेली माता के द्वेष से प्रेरित होकर यों ही अपने पिता से रातमें कहा पिताजी ! देखिये, देखिये, अपने घर से निकलकर कोई यह पुरुष दौड़ा हुआ बाहर जा रहा है । रोहक के मुख से ऐसा सुनकर नट के चित्तमें अपनी भार्या के प्रति शीलभंग होने की आशका ने स्थान कर लिया । इस तरह वह उममें स्नेहरहित बन गया । अपने पति की इस वृत्तिसे उस सौतेली माता को बड़ा दुःख होने लगा । उसने सोचा-यह सब करामात रोहक पुत्र की है । देखो, पहिले मेरा पति मेरे प्रति कितना स्नेहालया ? अब तो यह मुझसे प्रीति-पूर्वक बोलता भी नहीं है । मैं जब अपने विषयमें विचारती हूँ, तो मुझमें कुछ भी दोष नजर नहीं आता है, फिर बिना कारण पति की अप्रीति का क्या कारण हो सकता है । ज्ञात होता है कि इस सबका मूल कारण एक रोहक ही है अतः उसको ही सबसे पहिले अब प्रसन्न कर लेना चाहिये, इसीमें मेरी भलाई है, इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होकर

त्यार भाद अेक दिवसे अपरमाताना द्वेषथी प्रेराधने शैडके अभस्तु न पोताना पिताने रात्रे उद्यु-“पिताल, लुवो-गुवो, आपषु धरभाथी नीडणीने डोर्ध पुरष होडतो होडतो अडार नय छे ” शैडकना मोडे अेवु साषणीने नटना मनभा पोतानी पत्नी आशित्रलष डोवानी शकअे स्थान नभांयु ते रीते ते तेनाभा न्नेडरडित अन्ये पोताना पतिनी आ वृत्तिथी ते अपरमाताने धषु डुभ थयु तेले विचारुं “आ अधी शैडकनी न करामत छे लुअे, पडेला मारा पति मारा प्रत्ये डेटला अधा स्नेडाण डता ! डवे तो तेअे मारी माथे प्रेमथी जोलता पषु नथी हुं ने मारी आअतमा विचारुं कड छु तो मने मारे डोर्ध पषु दोष देआतो नथी तो विना डारषु पतिनी अप्रीतिनु शु डारषु होर्ध शके ? अेवु लागे छे डे आ अधानु मूण डारषु अेक शैडक न छे, तो सौथी पडेला तेने न प्रसन्न करी देवेो लेध अे, तेभा न माड डित छे ” आ प्रकारनी विचारधाराथी प्रेराधने

आसीत् रुश्रिदुज्जयिनी नगर्याः समीपे नटानां ग्रामः । तत्र भरतो नाम नटः
प्रतिवसति । तस्य भार्या मृता । रोहक नामरुस्तत्पुत्रः आसीत् ।

अथ भार्याया मृताया भरतेन द्वितीया भार्या कृता । साच रोहक प्रति सम्यग्
न वर्तते, ततो रोहकेणोक्तम्—मातर्मया सह सम्यग् न वर्तसे, तदेतस्य फल
ज्ञास्यसि । ततस्तया कथितम्—अरे रोहक ! किं करिष्यसि ? रोहकोऽब्रवी—एव
करिष्यामि यथा मन्त्रणोपरि पतिष्यसि ।

शित क्रिये जाते हैं—उनमें “ भरतशिला ” यह प्रथम दृष्टान्त इस
प्रकार है—

उज्जयिनी नगरी के पास एक नटों का गाव था । उसमें “ भरत ”
इस नाम का नट रहता था । उसकी पत्नी मर चुकी थी । उससे उसको
एक पुत्र प्राप्त हुआ था, जिसका नाम रोहक था । पत्नी विना घर का काम
चलना बड़ा कठिन है ऐसा समझ कर उसने अपना दूसरा विवाह कर
लिया । सौतेली माता होने के कारण उसका व्यवहार रोहक के साथ ठीक
नहीं बैठता था । एक दिन सौतेली माताके दुर्व्यवहार से अप्रसन्न होकर
रोहक ने उससे कहा—हे माता ! ध्यान रखना, यदि तुम मेरे साथ ठीक
व्यवहार नहीं करोगी, तो इसका फल एक न एक दिन तुम्हें भोगना ही
पड़ेगा । रोहक की इस बात को सुनकर सौतेली माता को क्रोध बढ़ गया ।
वह बोली—अरे रोहक ! तू मेरा क्या करेगा ? रोहकने कहा क्या करेगा ?
वह करूँगा जिससे तू मेरे चरणों में पड़ेगी ।

छे तेभोभा “ भरतशिला ” आ पडेछु दधात आ प्रभाछे छे—

उज्जयिनी नगरी पास नटदोडोनु अेक गाम छेते तेभा “ भरत ”
नामने नट रहेते छेते तेनी पत्नी मरी गछ छेती तेनाथी तेने अेक पुत्रनी
प्राप्ति थछ छेती, जेते नाम रोहक छेते पत्नी विना घरनु काम बालबु धछु
भुरकेल छे अेम भानीने तेछे पोताने भीजे विवाड कर्ये अपरमात डोवाने
कारछे रोहकनी साथे तेनु वर्तन परापर छेते नडी अेक दिवस अपरमात
ना दुर्व्यवहारथी नाभुश थछने रोहके तेने छछु—“हे माता ! ध्यान राभे,
जे तमे मारी साथे थोअ्य वर्तन नडी राभे तो तेनु क्षण तमारै डेछ दिवसे
बडर लोगवबु पडथे ” रोहकनी आ बात सालणीने अपरमाताने धछे क्रोध
थथे ते भोली,—“अरे रोहक ! तू भने शु करी शकीश ? ” रोहके छछु—“ शु
करीश ? अेबु करीश के जेथी तू मारे पगे पडीश ”

गच्छति । ततः स्वपालकस्य उचन निगम्य भरतः परपुरुषप्रवेशशङ्कया ग्वङ्गमुद्यम्य धायमानो वदति-वद पुत्र ! कुतसौ पुरुषः । ततो रोहकः पितुरन्तिके बालभाव प्रकृत्यन् निजञ्छया प्रदर्शयन्नाह-एष पुरुषो गच्छतीति । ततो भरतो रोहक पृच्छति-पूर्वं त्वत्प्रदर्शितः पुरुषः कीदृश आसीत् ? , रोहकेणोक्तम्-सोऽयमेवास्ति । ततो भरतश्चिन्तयति-प्रिडमाम्, यदहं बालकप्रवचना दलीकसभाव्य दोषरहितायाः प्रियाया अप्रिय कृतवानिति, ततोऽसौ पश्चात्ताप कृत्वा तस्या सानुरागो जातः । रोहकोऽपि-‘ऋञ्चिदेवा पूर्वविप्रियकारिण मा त्रिपादिना मारयिष्यतीति’ विचिन्त्य पित्रा सहैव भुङ्क्ते, न तु केवलः ।

है । अपने पुत्र रोहक की इस बात को सुनकर भरत ने सहसा गृहमे पर-पुरुष के प्रवेश की आशंका से उसे मारने के लिये अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली, और आवेग से दौड़ कर कहने लगा-बेटा ! बतला वह पुरुष कहा है । रोहक ने पिता की इस सहसावृत्तिको देखकर पास में जाकर अपनी छाया बतलाते हुए कहा-पिताजी ! देखिये, यह रहा वह पुरुष । भरत ने रोहक की इस बालोचित लीला को देख कर आश्चर्य के नाय पूछा-तो क्या तूने जिस पुरुष के विषय में पहिले मुझसे कहा था वह भी ऐसा ही था ? हा ऐसा ही था । इस प्रकार रोहक का उत्तर सुन कर भरत ने विचार किया, मुझ मूर्खको धिक्कार है । व्यर्थ ही मैंने बालक के कहनेमें आकर निर्दोष अपनी पत्नी को दूषित मान कर कष्ट पहु-चाया । इस तरह अपनी पत्नी को निर्दोष जानकर अब भरत पहिले की तरह उसके साथ प्रेममय व्यवहार करने लगा । इधर रोहक ने यह विचार

आ बात साबधाने भरते सहसा धरमा परपुरुषना प्रवेशनी आशंकाथी तेने भारवाने माटे पोतानी तलवारने म्यानमाथी अडार डाढी, अने आवेगपूर्वक होइतो उडेवा लाग्यो, “ बेटा ! बताव, ते पुरुष क्या छे ? ” रोहके पिताउ आ साहस जेधने तेमनी पाने जेधने पोताने पडल्यो अतावीने कछु “पिताउ बुज्यो, आ रह्यो ते पुरुष । ” भरते रोहकनी ते आवेगयित लीला जेधने आश्चर्य आवे पूछ्यु, “ थु ते जे पुरुषने विषे पडेला भने उछु उतु ते पछु आवे जे उतो ? ” “ हा, जेवे जे उतो ” आ प्रभावे रोहकने जवाब साबधाने भरते विचार ज्यो, धिक्कार छे भने मूर्खने नजामी जे आणकनी बात माथी मानीने भारी निर्दोष पत्नीने दोषित मानीने तेने हु अ पडोआउछु ” आरीते पोतानी पत्नीने निर्दोष मानीने उवे जेधने पडेवानी जेभ तेनी माथे प्रेममय वर्तन राखवा

विचिन्त्य सा रोहकमाह-वत्स ! किमिदं त्वयाकृतम् । तत्र पिता मयि प्रतिश्लो
जातः । रोहकः प्राह-किमिति मयि भक्त्या सम्यग् न र्तितम् ? । तयोक्तम्-इत
ऊर्ध्वं तव विप्रिय नाचरिष्यामि । ततो रोहकः प्राह-भग्य तर्हि, तथा यतिष्ये यथा
मम पिता त्वयि सुप्रसन्नः स्यात् ।

अयान्यदा रोहको निशि चन्द्रिकाप्रकाशे निजच्छायामद्गुणयोगे दर्शयन् बाल
भावेन पितुः शङ्कामपनेतुं नाम' पितरमत्रवीत्-भो भो पितः ? पश्य एष पुरुषो
उसने रोहकसे कहा-पुत्र ! यह तूने क्या किया जो अपने पिताको मेरे
प्रति अप्रसन्न कर दिया ? । रोहक ने सुनकर कहा तुमने जैसा किया
उसका अब फल भोगो । क्यों नहीं तुम मेरे प्रति सद्व्यवहार करती
हो ? रोहक की बात ध्यान में रखकर सौतेली माना घोली-बेटा ! जो
कुछ हुआ सो हुआ, अब आगे ऐसा नहीं होगा, मैं तुम्हारा किसी भी
प्रकार का अनिष्ट नहीं करूँगी, और न अब तुमसे विरुद्ध होकर ही चलूँगी ।
सौतेली माता के मन्तव्य से सहमत होकर रोहकने उससे कहा-अच्छी
बात है, अब मैं इस प्रयत्नमें रहूँगा कि जिससे पिता का स्नेह तुम पर
पूर्ववत् हो जाय ।

अब एक समय की बात है कि रोहक चादनी रात में पिता की पास
बैठा हुआ था । उस समय पास में और कोई या नहीं, सहसा बालसु-
लभ चपलता से उस चादनी के प्रकाशमें अपनी छाया देखकर उसने
अगुली के इशारे से पिता से कहा-पिताजी ! देखिये, वह पुरुष यह जा रहा

तेल्ले रोहकने कहु, " जेटा ! ओवु ते शु क्युं छे के तारा पिता भारा तश्क
अप्रसन्न रहे छे ? " रोहके जवाब आध्या, " ते ने क्युं छे तेनु इण डवे
तु भोगव अरषु के तु भारा प्रत्ये अयोग्य व्यवहार करे छे " रोहकनी वात
साबणीने अपरमाताओ कहु, " जेटा । ने थयु ते थयु, डवे आगण ओवु
नही अने, हु ताइ केरि पळ रीते अनिष्ट नही करे, अने डवेथी तारी विइइ
यादीश नही " अपरमाताना मतव्य साथे सहमत थधने रोहके तेने कहु,
" धल्लु सरस, डवे हु ओवो प्रयत्न करीश के नेथी भारा पितानो तारी पर
पूर्ववत् प्रेम थर्ध जाय "

डवे ओक समयनी वात छे रोहक चादनी रात्रे पितानी साथे जेठे
हुते त्यारे तेमनी पासे भील्लु केरि न हुतु सहसा बालसुलभ चपलताथी
ते चादनीना प्रकाशमा पोताने पडजथे जेधने तेल्ले आगणीना इशाराथी पिताने
कहु, " पिताओ ! शुओ, आ ते पुरुष जर्ध रह्यो छे पोताना पुत्र रोहकनी

गच्छ । नृपेणोक्तम्-किं कारणम् ? । रोहकः प्राह-मया लिखितमिदं राजभवनं किं न पश्यसि । ततः स राजा कौतुकवशात् तल्लिखिता नगरीं विलोक्य पृच्छति-भो बालक ! अन्यदापि किं त्वया नगरीयं दृष्टा ? रोहकोवदति-पूर्वमियं नगरीं मया न दृष्टा, केवलमद्यैवग्रामादिहागतोऽस्मि । ततो नृपेण चिन्तितम्-अहो ! बालकस्य कीदृशः प्रज्ञातिशयः । अथ नृपः पृच्छति-भो बालक ! किं ते नाम, कुत्र च वासस्थानम् ? । बालकेनोक्तम्-रोहक इति मदीयं नाम, एतन्नगरीं समीपवर्तिनि नटानां ग्रामे निवसामि ।

राजन् ! इस मार्ग से होकर आप न जाइये । राजा ने न जाने का कारण ज्यों ही रोहक से पूछा तो वह कहने लगा-क्या आप नहीं देख रहे हैं कि यहाँ मेरे द्वारा बनाया हुआ यह राजभवन है जो आपके चलने से ग्वराव हो जायगा । राजा ने उसकी बात मान ली और बड़े कौतुक से उसके द्वारा चित्रित राजनगरी को देखकर पूछा-बालक ! क्या तुमने पहिले कभी यह नगरी देखी है ? राजा की बात सुनकर रोहक ने उत्तर दिया-महाराज ! इसके पहिले मैंने कभी भी इस नगरी को नहीं देखा है । मैं तो आज ही ग्राम से यहाँ आया हूँ । रोहक की बात से प्रसन्न होकर राजा ने विचार किया कि, अहो ! इस बालक की प्रज्ञा कितनी अतिशयवाली है ! अच्छा, अब इसका नाम-ठाम भी तो पूछें, राजा ने कहा-बालक ! तेरा नाम क्या है ? । कहाँ रहता है ? । बालक ने उत्तर दिया-मेरा नाम रोहक है, और आपकी इस नगरी के पास की-नदी को बसती में रहता हूँ ।

कछु, “हे राजन् । आ भार्गधी आप जशो नही ” राजन्ने न जवातु कारण जेवु शैडकने पूछ्यु के तेखे उछु “शु आप जेता नथी के अही मे जनावेल आ राजलवन छे जे आपना बालवार्थी जगडशे ” राजन्ने तेनी बात मानी लीधी अने सारे कौतुक साथे तेना वडे चित्रित राजनगरीने जेधने पूछ्यु, “भाण्ड ! ते पडेला उही आ नगरी जेध छे ? ” राजनी बात साल जीने शैडके जवाब आप्यो, “महाराज । आ अगाड मे कही पखु आ नगरी जेध नथी हु तो आजे ज गामडेथी अही आये छु ” शैडकनी बातथी खुशी यधने राजन्ने विचार कर्यो के “अहो । आ भाणकनी प्रज्ञा डेटली जधी विशाण छे ! ठीक, डवे तेनु नामठाम तो पूछु ” राजन्ने कछु हे भाणक ! तार नाम शु छे ? तु कथा रडे छे ? ” भाणके जवाब आप्यो, “भार नाम शैडक छे अने आपनी आ नगरी पासेना नटाना गामभा हु रहु छु ”

अथैकदा कार्यवशात् पित्रा सह रोहकः समीपवर्तिनीमुज्जयिनीं गतः, स देव नगरीमित्रोज्जयिनीं प्रिलोभयातीय दृष्टो जातः । ततः पित्रैव सह नगरीतो निष्क्रान्तः । पिता च तत्र नगर्यां ' किमपि निस्मृत '-मिति क्रुत्या रोहकः क्षिप्रा नदी तटेऽवस्थाप्य तदानेतुं पुनरपि नगरीं प्राविशत् । रोहकेणापि च तत्र क्षिप्रानदीतटोपरि बालभावेन सपूर्णोज्जयिनी नगरीं सिक्त्वाभिरालिखिता ।

इतश्च राजाऽध्वारूढः कथचिदेकाकी भूतस्तेन पथा गन्तुं प्रवृत्तः । तदा रोहकः स्वलिखितनगरीमध्यभागेन समागच्छन्त तत्र नृप उदति-राजन् ! अनेन पथा मा क्विया किं शायद् सौतेली माता कदाचित् पूर्वं विरोध के कारण मुझे विष आदि देकर न मार डाले, इसलिये वह इस विचार से प्रेरित हो अपने पिता भरतके ही साथ भोजन करने के लिये जाने लगा, अकेला नहीं।

एक दिनको बात है कि, पिता को उज्जयिनी में किसी कार्यवश जाना था, सो रोहक भी उसके साथ गया। देवनगरी के समान उज्जयिनी नगरी को देखकर रोहक के चित्त में बड़ा विस्मय हुआ। जब वह वहा से चला तो पिता चलते समय वहा अपनी कोई चीज भूल आया था इसलिये वह उसके लाने के लिये नगरी में वापिस आते समय रोहक को सिप्रा नदी के तट पर ठहरा दिया। रोहक ने वहा तट पर बालुका से सपूर्ण उज्जयिनी का चित्र अंकित कर दिया। इतने में वहा का राजा घोडे पर चढ़कर अकेला ही उस रास्ते से आ निकला। अपने द्वारा चित्रित उस बालुका की नगरी के मध्य भाग से निकलकर जाते हुए राजा को देखकर रोहक ने कहा-

लाज्ये हवे शोडठे अवे। विचार ठर्थे के कदाय आ अपरभाता आगणना विशोधने कारखे भने विष आदि आपीने भारी नाभशे तेथी ते अे विचारथी प्रेशधने पोताना पिता भरतनी साथे न भोजन करवा नवा लाज्ये, अेकद्वी नहीं।

अेक द्विसे तेना पिताने केध ठर्थे भाटे उज्जयिनी नवानुं थयु, ते शोडठे पथु तेनी साथे गये। देवनगरी नैवी उज्जयिनी नगरीने नेधने शोडठेना मनमा लारे नवार्धे थर्थे न्यारे त्याथी उपडया त्यारे पिता उपडती वभते पोतानी केध वस्तु नगरीमा भूली आव्ये। हुते तेथी ते शोडठेने सिप्रा नदीने किनारे अेसाडीने, तेने लाववा भाटे नगरीमा पाछे कर्थे शोडठे त्या काठा पर देतीनी महदथी आपी उज्जयिनी नगरीतुं चित्र दारुं अेवामा त्याने राजा घोडेस्वार थधने अेकद्वी न ते रस्तेथी नीकज्ये। पोते चित्रेव ते देतीनी नगरीना मध्य भागमाथी नीकणीने नता छता ते राजने नेधने शोडठे

गच्छ । नृपेणोक्तम्-किं कारणम् ? । रोहकः प्राह-मया लिखितमिदं राजभवनं किं न पश्यसि । ततः स राजा कौतुकवशात् तल्लिखिता नगरी विलोक्य पृच्छति-भो बालक ! अन्यदापि किं त्वया नगरीय दृष्टा ? रोहकोवदति-पूर्वमियं नगरी मया न दृष्टा, केवलमद्यैवग्रामादिहागतोऽस्मि । ततो नृपेण चिन्तितम्-अहो ! बालकस्य कीदृशः प्रज्ञातिशयः । अथ नृपः पृच्छति-भो बालक ! किं ते नाम, कुत्र च वासस्थानम् ? । बालकेनोक्तम्-रोहक इति मदीयं नाम, एतन्नगरी समीपवर्तिनि नटानां ग्रामे निवसामि ।

राजन् ! इस मार्ग से होकर आप न जाइये । राजा ने न जाने का कारण ज्यों ही रोहक से पूछा तो वह कहने लगा-क्या आप नहीं देख रहे हैं कि यहाँ मेरे द्वारा बनाया हुआ यह राजभवन है जो आपके चलने से खराब हो जायगा । राजा ने उसकी बात मान ली और बड़े कौतुक से उसके द्वारा चित्रित राजनगरी को देखकर पूछा-बालक ! क्या तुमने पहिले कभी यह नगरी देखी है ? राजा की बात सुनकर रोहक ने उत्तर दिया-महाराज ! इसके पहिले मैंने कभी भी इस नगरी को नहीं देखा है । मैं तो आज ही ग्राम से यहाँ आया हूँ । रोहक की बात से प्रसन्न होकर राजा ने विचार किया कि, अहो ! इस बालक की प्रज्ञा कितनी अतिशयवाली है ! अच्छा, अब इसका नाम-ठाम भी तो पूछ, राजा ने कहा-बालक ! तेरा नाम क्या है ? । कहा रहता है ? । बालक ने उत्तर दिया-मेरा नाम रोहक है, और आपकी इस नगरी के पास की-नटों की बसती में रहता हूँ ।

उल्लु, "हे राजन् ! आ भार्गवी आप जशो नहीं " राजन्ने न जवानु कारण्णु जेषु शैडकने पूछ्यु के तेषु उल्लु "शु आप जेता नहीं के अही मे भनावेद आ राजभवन छे जे आपना आलवारी भगइशे " राजन्ने तेनी बात भानी लीधी अने भारे कौतुक साथे तेना बडे चित्रित राजनगरीने जेधने पूछ्यु, "भाण्ड ! ते पडेवा उही आ नगरी जेध छे ?" राजनी बात साल जीने शैडके जवाब आये, "महाराज ! आ अगाड मे कही पणु आ नगरी जेध नहीं छु तो आजे ज गामडेथी अही आये छु " शैडकनी बातथी सुशी थधने राजन्ने विचार कर्यो के "अहो ! आ भाण्डनी प्रज्ञा केटली भधी विशाण छे ! ठीक, हवे तेनु नामठाम तो पूछु " राजन्ने उल्लु हे भाण्ड ! ताइ नाम शु छे ? तु क्या रडे छे ?" भाण्डके जवाब आये, "माइ नाम शैडक छे अने आपनी आ नगरी पासेना नटाना गामभा छु रहु छु "

अग्रान्तरे रोहकस्य पिता तत्रागत्य पुत्रेण गाम् स्वग्रामं प्रतिगच्छति । गजा च स्वस्थानमागत्य चिन्तयति—‘ममैतेनानिपक्षशतानिमन्त्रिणःमन्त्रि, यदि मन्त्रिमण्डले कश्चिदेते मदाप्रः परमो गन्ती भवेत् तदा मम राज्यं सुरेण वर्धते । बुद्धिबलं संपन्नो हि नृपः प्रायः सेनादिवलं नूनोऽपि शत्रुतः पराजयं न लभते’ एव चिन्तयित्वा स राजा रोहकबुद्धिं परीक्षार्थमुद्यतः अभूत् ।

एकदा स राजा तद्ग्रामनिवासिनः प्रधानपुरुषानादिष्टवान्—‘ग्रामद्वारास्य वहिरतीव महती शिला वर्धते, तामनुत्पाटय राजयोग्यमण्डपं कुरुत’ । ततस्तद्ग्राम

इतने में ही रोहक का पिता भी उज्जयिनी से लौटकर वापिस वहा आ गया और अपने पुत्र रोहक के साथ ग्राम की ओर चल दिया । राजा भी वहा से चला गया । अपने स्थानपर आकर राजा ने विचार किया—मेरे चारसौ निन्यानवे ४९९ मंत्री हैं । इस विशाल मंत्रीमंडल में कम से कम एक ऐसा महाप्रजाशाली मंत्री अवश्य होना चाहिये जो इस राज्य की अनायास वृद्धि करने में सहायक हो । यह बात प्रायः मानी हुई है कि, राजा भले ही सेनादिवल से न्यून हो पर यदि वह बुद्धि बल से युक्त है तो कभी भी शत्रु से पराजित नहीं किया जा सकता । इस विचार से प्रेरित होकर राजा ने रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया । राजा ने एक दिन नट ग्रामवासियों के प्रधान व्यक्तियों को बुलाकर कहा कि, आप लोगों के गांव के बाहिर एक बहुत बड़ी शिला है, सो तुम सब उसके बिना उखाड़े ही एक राज

खेटलाभा न रोहकना पिता पशु उज्जयिनी नद्ये त्वा पाछा आनी गया अने पोताना पुत्र रोहकनी साथे पोताना गाम तरङ्ग उपडया राण पशु त्याथी आलेयो गयो पोताना स्थाने नद्ये राणये विचार कर्यो ” मारा आरसे नवाणु (४६६) मंत्री छे आ विशाण मंत्रीमण्डला अेक अेवो महाप्रजाशाली मंत्री अवश्य होवो न्नेद्ये के ने आ राणयनी अनायास वृद्धि करवाभा सहायक थाय सामान्य रीते आ वातने अथा मान्य करे छे के राण पासे लवे मेनादि अण न्यून होय पशु ने ते बुद्धिअणथी युक्त होय तो शत्रु तेने कही पशु पराजित री शकतो नथी ” आ विचारथी प्रेराधने राणये रोहकनी बुद्धिनी कसेठी करवाना प्रयत्न शरु कर्यो राणये अेक दिवस नट ग्रामवासीअेना आगेवानेने बोलावीने कछु “आपना गाम अडार अेक धाणी न्नेठी शिला छे तो तरे अथा तेने उणाडया विना अेक मोटो राणमण्डप त्या तैयार करे ” राणनी ते आसा साबणीने ते अथा बोको चिन्तित अथने

वासिनो लोका राज्ञ आदेशं श्रुत्वा क्रथमेव मण्डपं कर्तुं पारयाम इति चिन्तया व्याकुलीभूता एकत्र कुत्रचिद् ग्रामस्य वृद्धिर्भागे समागत्य सर्भां क्रतवन्तः । तत्राय विचारः प्रस्तुतः—अस्माभिः किमिदानीं कर्तव्यम्, दुष्करोऽयं नृपादेशः, असपन्ने च नृपादेशे महाननर्थः समापतेदिति । एव चिन्तयता तेषाम-याहकालः—समागतः । तदा रोहकस्य पिता ग्रामसभायामासीदिति तेन विना रोहको न भुङ्क्ते । क्षुधया पीडितो रोहकः पितृ सन्निधौ समागत्याह—पितः ? क्षुधया पीडितोऽस्मि गच्छ गृहं भोजनाय । भरतः प्राह—यत्स ! सुखितोऽसि, किञ्चिदपि ग्रामरूपं न जानासि ।

योग्य मण्डप तयार करो । राजा की इस आज्ञाको सुनकर वे सब लोग चिन्तित होकर परस्पर में विचार करने लगे कि, कहे भाई ! यह काम कैसे हो सकेगा ? विचारविनिमय के लिये उन्होंने गाव के बाहिर एक सभा का आयोजन किया । अपनी २ विचारवारा सुनाने के बाद यह विचार बड़े जोर से बहा चलने लगा कि, भाई ! कहे, अब क्या करना चाहिये ? राजा की उक्त आज्ञा महान् दुष्कर है । यदि इसकी प्रति हम लोगों से नहीं हो सकी तो यह भूलने की बात नहीं है कि, राजा की तरफ से हम लोगों पर अनेक अनर्थों की वर्षा न हो इस प्रकार विचार चलते २ मध्याह्नकाल हो गया । खानेपीने की भी चिन्ता लोगों के चित्त से चली गई । सभा में रोहक के पिताजी भी सम्मिलित थे । डधर रोहकने घर पर विचार किया कि मैं विना पिता के कैसे भोजन करूँ ? भूख मुझे सता रही है, न मालूम वे क्रय घर आयेगे । इस लिये मैं स्वयं ही जाकर

परस्पर विचार करता लाग्या के छोड़ो बाध, आ काम केवी रीते थर्ध शकशे ? विचारविनिमय भाटे तेमणे गाभनी अहार अेक सभा पणु जेलावी पोत पोतानी विचारधारा सलजाव्या पछी विचार घणा जेरथी त्या थालवा लाग्ये के बाध ! छोडो डवे शु करवुं जेधये ? राजनी ते आज्ञातु थालन करवु धणु दुष्कर छे जे आपणे तेतु थालन नही करीये तो ये भूलवा जेवु नथी के राजनी तरक्षथी आपणु उपर अनेक महान अनर्थोनी वर्षा थशे आ प्रभाणे विचार करता करता मध्याह्नकाण थथे लोडोना थित्तभाथी भावापीवानी थिन्ता पणु थाली गर्ध सभाभा रोहकना पिता पणु डानर डता डवे घेर रोडके विचार कर्ये के “ पितालु विना हुं केवी रीते जेज्जन् कर ? क्षुधा भने सतावी रडी छे शी अणर तेज्जो क्यारे घेर पाछा आवणे ? तो हुं जते व त्या वधने तेभने जेलावी लावु ” आ प्रभाणे विचार करीने ते सभाभा पितानी पाणे गये ।

राजा घृणति—रुस्येय बुद्धिः ? । ग्रामवासिभिरुक्तम्—हे देव । भरतपुत्रस्य रोहरुस्येयं बुद्धिः ।

॥ इति प्रथमो भरतशिलादृष्टान्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयो मेघदृष्टान्तः—

ततो राजा रोहकबुद्धि परीक्षार्थं ग्राम्यपुरुषान् प्रतिमेघमेकं प्रेषितवान्, आदिष्टवाक् । एष यावत्पलममाणः समतिं वर्तते, पक्षति क्रमेऽपि तावत्—पलप्रमाण एव युष्माभिः समर्पणीयो न न्यूनो नाप्यधिक इति । ततस्तद्ग्रामनिवासिनः सर्वे पुरुषा राजादेशं श्रुत्वा व्याकुलीभूताः सहिः ममार्यां रोहकमाहूय सादरमुक्तवन्तः—

कराया तो राजा को घड़ा आश्चर्य हुआ । राजा ने कहा—इसमें किसकी बुद्धि ने काम किया है ? सच ने सच एक म्बर से कहा कि, महाराज ! भरत के पुत्र रोहक की बुद्धि ने ॥

॥ यह भरतशिला नामक प्रथम दृष्टान्त ॥ १ ॥

अथ इसी पर दूसरा मेघ दृष्टान्त कहते हैं—

पुनः रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने के भाव से प्रेरित होकर राजा ने उन ग्रामवासियों के पास एक मेंढ़ा भेजा, और साथ में यह भी कहला भेजा कि, देखो, इस मेंढ़े का जितना वजन है वह उतना ही रहना चाहिये, एक रत्तीभर भी घटना-बढना नहीं चाहिये । खाने को खूब घास आदि इसको मिलते रहे, इस व्यवस्था में कोई खामी न रहे । यह एक पक्ष तक ही तुम्हारे पास रखा जायगा । अधिक दिनों तक नहीं ।

अन्धो ते वातनी राजने भाडिती आपी त्वादे राजने धलु अथरव थयु राजन्ने कलु, “आमा डेानी बुद्धिजे काम कथुं छे ?” अधाजे अेकी अवाजे कलु, “डे महाराज ! भरतना पुत्र रोहकनी बुद्धिजे ”

॥ आ भरतशिला नामनु पडेले दृष्टान्त समाप्त ॥ १ ॥

हुवे तेना पर भीष्णु मेघदृष्टान्त कडे छे—

वणी रोहकनी बुद्धिनी कसेाटी करवानी वृत्तिथी प्रेरार्थने राजन्ने ते गामवासीजे पासजे अेक घेदु भोक्तयु, अने साथे अेम पलु कडेवरावु के “अुजे, आ घेगनु जेदु वजन छे अेटलु ज वजन रडेवु जेधजे, अेक रतीभार वधवु-घटवु न जेधजे तेने भावा माटे भूष घास आदि भणतु रडेवु जेधजे, ते व्यवस्थाभा केध पलु जाभी रडेवी जेधजे नडीं आ घेदु अेक पधवाडिया सुधी तमारी पासजे रडेथे, वधारे दिवसे सुधी नडीं — राजनी

वत्स । पूर्वं त्वया स्वबुद्धिवलेन वयं राजदण्डतो मोचिताः, अद्य पुनः स्वबुद्ध्या
ग्रामकष्टं निवारय । इत्युक्त्या ते दुष्कर नृपादेश रोहकाय निवेदयामासुः । ततो
रोहकः प्राह—पञ्जरस्थं व्याघ्रं प्रत्यासन्नं कृत्वा मेघमेन यत्सदानेन पोषय यवस
हि भुञ्जानः खल्वेप दुर्बलो न भविष्यति, व्याघ्रं च दृष्ट्वा न वृद्धिं प्राप्स्यति । ततो

राजा की इस अटपटी आज्ञा सुनकर सब लोग बड़े चिन्तित हुए,
पहिले की तरह ही उन सबने मिलकर गाँव के बाहर सभा एकत्रित
की । उसमें रोहक को आमत्रित किया । रोहक के आने पर बड़े आदर से
सब ने उससे कहा—भाई ! तुमने अपनी बुद्धि के बल से पहिले जिस
प्रकार उपाय बतलाकर हमारी रक्षा की और राजदण्ड से हमें बचाया,
उसी तरह आज भी हमें उपाय बतलाकर राजदण्ड से बचाओ । राजाने
इस प्रकार करने की आज्ञा दी है—सो समस्त ग्राम आज कष्ट में पडा
हुआ है, समझ में नहीं आता है कि इस विषय में क्या करना चाहिये ।
सब की दुःखभरी आवाज सुनकर रोहक ने मुसकुराते हुए कहाकि—इसमें
अपने को घबराना नहीं चाहिये, उपाय कोई बड़ा भारी कठिन नहीं है ।
सुनिये—एक व्याघ्र को पिंजरेमें बन्द कर मेढे के सामने कुछ थोड़ी दूर
पर बाध कर रखना चाहिये, और उसीके ठीक साम्हने एक दूसरी ओर
मेंढेको । इस तरह करने से मेंढा खा पीकर भी न घट सकेगा और न
बढ़ सकेगा । जितना उसका वजन होगा उतना ही रहेगा । रोहक की

आ अटपटी आज्ञा सासणीने अधा दोडो चिन्तित थया पडेलानी जेमज ते
अधाजे भणीने गामनी अडार सला उरी तेभा रोहकने आमत्रणु आप्थु
रोहक आपता अधाजे धणु आदरथी तेने उधु, “ लाध ! तमे तमारी बुद्धिना
प्रलावे पडेलो जे रीते उपाय अतावीने अमाइ रक्षणु कथुं अने राजदण्डी
अमने अथाव्या जेज रीते आजे पणु केध उपाय अतावीने, राजदण्डी
अमने अथावे। राजजे आ प्रमाणु करवानी आज्ञा करी छे तेथी आपु गाम
मुशेडेलीमा मूकाथु छे अमने तो समजतु नथी के आ आपतमा शुं करवु ? ”
अधानो हु अलथी अवाज सासणीने रोहके मलकाता मलकाता कधुं ” तमारे
गलरावानी केध जइर नथी तेना उपाय अहु मुशकेल नथी सासणो, जेक
बाधने पाजराभा पूरीने घेटीनी सामे थोडे हर राभवो जेध जे, अने तेनी
अराअर सामे थोडे अतरे घेटाने आधवु आ प्रमाणु करवाथी घेटु भावा
पीवा छता पण वजनमा वधशे—घटशे नडीं तेनु जेठु वजन इशे तेठु

ग्रामवासिभिः पुष्पैस्तथैव कृतम् । पक्षातिक्रमे च स मेपो राज्ञे समर्पित । राज्ञः समीपे तोलने कृते स मेपन्तावत्पलप्रमाण एव जातो न तु न्यूनप्रमाणो नाप्यधिक प्रमाण इति ।

॥ इति द्वितीयो मेपदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ कुक्कुटदृष्टान्तः—

अथैकदा पुनरसौ राजा रोहकबुद्धि परीक्षार्थं ग्रामवासिना समीपे कुक्कुटमेकं प्रेषितवान् आदिष्टमाश्रु । अन्यकुक्कुटमन्तरेण यथास्य कुक्कुटो युद्धकारी भवेत् तथा कृत्वा मम सनिधौ समानेतव्य इति । एव विध नृपादेशं श्रुत्वा पुनः सर्वे ग्रामवासिनः

इस सलाह सुनकर ग्रामवासियों ने ऐसा ही किया । जब पन्द्रह दिन निकल चुके तब उन्होंने इस मेंढे को ले जाकर राजा के पास अर्पण किया । राजा ने जब उसकी तौल कराई तो जितना उसका वजन पन्द्रह दिन पहिले था उतना ही वजन उस दिन भी निकला, न वह बढ़ा और न घटा ॥ २ ॥

॥ यह दूसरा मेप दृष्टान्त हुआ ॥ २ ॥

तीसरा कुक्कुट दृष्टान्त—

एक दिन पुनः राजाने रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए ग्रामवासियों के पास एक कुक्कुट भेजा और कहला भेजा कि बिना किसी दूसरे कुक्कुट के जिस तरह यह युद्ध करनेवाला बन जाय उस तरह इसे सिखलाकर मेरे पास वापिस भेज दिया जावे । इस प्रकार का राजा का

७ रहेशे ” शोडकनी आ सलाह सालाणीने ग्रामवासीओये ते प्रभाणे कथुं न्यारे पहर द्विवस प्रसार तथा त्यारे तेमणे ते घेदु लध ७ध ने रानने अर्पणु उथुं रानणे न्यारे तेनु वजन कराणु त्यारे पहर द्विवस पडेला तेनु नेटलु वजन હતુ તેટલુ ७ वजन त्यारे पणु थयु ते वधु पणु नही के घटयु पणु नही ॥ २ ॥

॥ आ भीणु घेरानु द्ध्यात समाप्त थयु ॥२॥

त्रीणु कूकडानु द्ध्यात—

એક દિવસ ક્રીથી શોડકની બુદ્ધિની પરીક્ષા કરવા માટે રાજાએ તે ગ્રામવાસીઓ પાસે એક કૂકડો મોકલ્યો, અને કહેવરાવ્યું કે “બીજા કોઈ કૂકડાની મદદ લીધા સિવાય આ કૂકડો યુદ્ધ કરનાર બને એવી રીતે તેને તાલીમ આપીને મારી પાસે પાછો મોકલો ” રાજાની તે પ્રકારની આજ્ઞા સાલણીને બધા

रोहकान्तिरुमागत्याद्युवन्-वत्स ! कुक्कुटान्तर विना कथमय राजकुक्कुटो युद्ध कर्तुमुत्सहेत, केनोपायेन नृपादेश कर्तुं पारयाम' ? पूर्ववत् स्वबुद्धिभलेन गमकष्ट निवारय' इति । ततो रोहकेणोक्तम्-एको निर्मलोमहादर्पणः समानीयताम् ।

अथ रोहकवचनाद् ग्रामवासिभिस्तथाकृते सति रोहकेण स महादर्पणस्तस्य कुक्कुटस्य समक्ष स्थापितः । तत्र दर्पणे स राजकुक्कुटः स्वप्रतिविम्बमवलोक्य द्वितीय स्वप्रतिपक्षं कुक्कुट मत्वा तेन सह योद्धु मृत्त. । तिर्यञ्चो हि जडबुद्धयो

आदेश पाकर समस्त ग्रामवासी पुरुष चिन्तित जैसे वन कर रोहकके पास आये, और राजा का आदेश सुनाकर कहने लगे-वत्स ! विना दूसरे कुक्कुट के यह राजाका कुक्कुट युद्धकारी कैसे बन सकता है ? जब तक यह बात पूरी नहीं हो सकती है राजाका आदेश तब तक पालित भी कैसे हो सकता है ? अतः जिस प्रकार तुमने पहिले हमें दो सकटों से उबारा है अब तीसरी बार भी हमें इस सकट से उबारने की युक्ति कहो ? ग्रामवासियों की इस सकटमय स्थितिको देखकर रोहक ने उनसे कहा- आप लोग इसकी जरा भी चिन्ता न करें, मैं जैसा कहूँ वैसा आप कीजिये । एक बड़ा भारी स्वच्छ दर्पण ले आईये । लोगोने ऐसा ही किया । जब दर्पण आया, तो रोहक ने उस दर्पण को राजकुक्कुट के समक्ष रख दिया । राजकुक्कुट ने उसमें ज्यों ही अपना प्रतिविम्ब झलकते देखा तो उसके चित्त मे यह बात जम गई कि यहा कोई दूसरा कुक्कुट है । इस तरह उन दोनों मे जमकर परस्पर युद्ध होना प्रारम्भ हो गया । उस

ग्रामवासी पुरुषो चिन्तित थछने रोहकनी पामे आव्या अने राजनी आशा तेने उछी सलणावीने उडेवा लाग्या, " जेटा ! भील्ल इउडानी मडड विना राजने आ इउडेो युद्ध करनार डेवी रीने भनी शडे ? न्या सुधी आ वत भने नछी त्या सुधी राजनी आशातु पालन पणु डेवी रीते थाय ? तो तमे आ पडेला जे रीते जे स उटोभाधा अभने उगारी लीधा छे तेम आ स उट-भाथी पणु उगारवानी युद्धि भतावे । " ग्रामवासीआनी आ म कटलरी स्थिति जेधने रोहके तेमने उछु, " आप तेनी जरी पणु चिन्ता करशो नछी हु कहु तेम आप करे जेउ मोटो स्पञ्ज अरीमा लावे । " डोडोअे ते प्रभाणु उरुं न्याअे अरीमा आव्यो त्यारे रोहके ते अरीसाने राजना इउडा पामे भूकथे राजना इउडाअे न्यारे ते दर्पणुमा तेतु प्रतिभिण जेथु त्यारे तेना मनमा अे वात हुड थछ गछ के अछी डेध भील्ल इउडेो जे आ रीते ते भने वञ्चे लथ कर युद्ध लभ्यु राजना ते इउडाने, पोते तिर्यञ्च डोवाने डारणु

भवन्ति । एतन्पक्वकुटामात्रेऽपि राजकुम्भट युष्यमानं तिलोत्थं ग्रामवासिनः
पुरुषाः साश्चर्यं रोहकस्य बुद्धिं प्रशंसन्ति स्म । ततस्तै रगौ राजकुम्भटो रात्रे मम
पितः । द्वितीयरहितस्यापि कुम्भटस्य पूर्वम् युद्धकरणं निरोक्ष्य राजा गुप्तसन्तो जातः
॥ इति तृतीयो कुम्भटदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

अथ तिलदृष्टान्तः—

अथान्यदा पुनरगौ नृपस्तद्ग्रामनिवासिनः पुरुषानादिष्टान्—ग्रामाक्रमेयस्ति-
लराशिरस्ति तत्र क्रियन्तस्तिला सन्तोति तिलान् गणयित्वा शीघ्रं ब्रूत । राज्ञैरमा-
दिष्टास्तद्ग्रामनिवासिनो ह्योकाश्चिन्तिता अभवन् । ततस्ते रोहकान्तिरुमागत्य राजा
राजकुम्भट को तिर्यंच होने के नाते इतना भान तो था ही नहीं कि, यह
मेरा ही प्रतिचिम्ब है । मैं किस के साथ झगड रहा हूं? कुम्भट को इस
तरह अन्य कुम्भट के अभाव में भी युद्ध करता देखकर ग्रामवासियों को
रोहककी बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य हुआ । सबोंने मिल कर उसकी बड़ी
सराहना की । कुछ दिनों बाद जब वह कुम्भट युद्धकारी बन गया तो
उन ग्रामवासियों ने उसे राजा के पास वापिस भेज दिया । राजा ने भी
जब कुम्भट की इस स्थिति का अवलोकन किया तो वह बड़ा ही सतुष्ट
हुआ ॥ ३ ॥

॥ यह तीसरा कुम्भट दृष्टान्त हुआ ॥ ३ ॥

चौथा तिल दृष्टान्त—

एक समय की बात है कि राजा ने उन ग्रामवासियों से ऐसा कहा कि
भाईयों! आप लोगों के समक्ष जो यह तिल की राशि पडी हुई है, सो

ओटलु भान तो न डतु के ते तेनु न प्रतिनिध छे, अने पोते डोनी साथे
लडी रह्यो छे, आ रीते भीजे डूकडे न डोवा छता पण प्रतिनिधने डूकडे
भानीने तेनी साथे राबना डूकडाने युद्ध करते भेछे गामना डोकोने डोडकनी
बुद्धि भाटे धलु अचरन थयु अथाये मणीने तेनी बुद्धिनी धली प्रशसा
करी डेटलाक दिवसे पछी ते डूकडे युद्धकणामा प्रवीण थर्ध गये, त्यारे गाम
वासीओये तेने राबनी पासे पाछे भोडली दीधे राबने पण नाने डूकडानी
ते स्थितिनु अवलोकन कथुं तो ते धलु सतोष पाभ्ये ॥३॥

॥ आ त्रीणु डूकडानु दृष्टात समाप्त ॥ ३ ॥

चौथु तलनु दृष्टात—

ओके समयनी आ बात छे राबने गामवासीओने ओपु डलु के,
“लाधओ, आपनी पासे आ ने तलने दगले पड्ये छे तेमा तलना डेटला

देगमवृचन् । रोहकेणोक्तम्-विमधुना राज्ञ उन्मादो जातः, एवं विधोऽपि प्रश्नः
सभवति किम् ? अस्तु । गच्छन्तु सर्वे वृचन्तु राजानम् । भो राजन् ! वय न
गणितज्ञाः, कथमस्माभिस्तिलसख्या वाच्या, तथापि भनदीयादेश शिरसि निधाय
तदुपमामप्रलयकथयाम'-ग्रामोपरिभागे नभसि यात्रत्यस्तारकाः सन्ति तावन्त-
स्तिला अत्र-तिलराशौ विद्यन्ते । ततो रोहक वचनात् सर्वैर्ग्रामवासिभिस्तथैव राज्ञः
समीपे कथितम् । राजा परितुष्टोऽभवत् ।

॥ इति चतुर्थस्तिलहृष्टान्तः ॥ ४ ॥

वतलावो कि इसमें कितने तिलकण हैं । राजाकी इस घातकों सुन कर
लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । साथमें राजाकी आज्ञा अनुल्लघ्य होती
है, इसकी भी उन्हें बड़ी चिन्ता लग गई । इसका कोई उपाय न देख-
कर वे रोहक के पास आये और राजाने जो आदेश दिया था वह यथा-
वत् कह सुनाया । सुनकर रोहक को भी बड़ा अचम्भा हुआ, उसने
कहा-क्या राजा को कोई उन्माद का रोग तो नहीं हो गया है जो ऐसी
असंभव वान को भी संभवित करने का प्रश्न कर रहा है ? खैर ! कोई
चिन्ता नहीं, अब आप लोग जायें और राजा से कहें महाराज ! हम
लोग कोई गणितज्ञ तो हैं नहीं जो तिलों को गिनकर उनकी सख्या
आप को बतला सकें, फिर भी आपका आदेश शिर पर रखकर इतना
कह सकते हैं कि इस ग्राम के ऊपर रहे हुए आकाश में जितने तारे हैं
उतने ही तिल इस तिलराशि में मौजूद हैं । रोहक की इस सझ से सब
ग्रामवासी बड़े ही प्रसन्न हुए । सब ने जाकर राजा से ऐसा ही कहा ।

झाण्डा छे ते भतावो " राजनी आ वात साभणीने लोडोने लारे अथरज
थर्ध वणी राजनी आसा अनुल्लघ्य छेय छे तेनी पणु तेभने मोटी विभा
सणु थर्ध पडी तेना डोड उपाय न सभलवाथी तेओ रोहकनी पासे गया
अने राजने ने आदेश आथेो डतो ते सपूष्ये रीते डडी सभणाव्यो ते
साभणीने रोहकने पणु धणुी नवाथी थर्ध तेथे डधु, "शु राजने डोड उन्मा
दने रोग तो नथी थथेने डे नेथी ते आवी अशक्य वातने पणु शक्य कर
वाने प्रश्न पूछी रहेल छे। भेर ! डोड चिता नही, डवे आप लोडो नव
अने गलने डडो डे भडाराज ! अने जेवा गणितज्ञ तो नथी डे तलने गणुीने
तेनी सप्या आपने भतावी शकीये, छता पणु आपनी आसा भाथे यडावीने
अटलु डडी शकीये छीये डे आ गामनी उपर रहेल आकाशमा नेटला तारा
छे, अटला न तल आ तलना डगलामा भोगूड छे " रोहकनी आ अखल
लेधने गामवासीओ धणुा भुशी थया अथाये नथने राजने जे प्रभाणे न

अथ बालुकादृष्टान्तः—

अथान्यदा पुनरसौ नृपो रोहकबुद्धिं परीभार्यं ग्राम्यं पुरुषान् प्रतिनिजादेशं प्रेषितवान्—युष्मद्ग्रामस्य समीपे रमणीया बालुका वर्तन्ते, तामिर्महृद्भूला रज्जुं कृत्वा शीघ्रं प्रेषयत । एवं नृपादेशं श्रुत्या ग्राम्यलोका रोहकान्तिकमागत्य नृपादेशं शमनुवन् । रोहकेणोक्तम्—यूयं राज्ञः समीपे एव ब्रूत—वयं नटाः स्मः, नृत्यमेव कर्तुं जानीमो न तु रज्जुम् । तथापि राज्ञ आदेशोऽपश्यवर्तन्त्य, तस्मादस्माकमियं

राजा भी इस उत्तर को सुनकर घटा प्रमुदित मन हुआ ॥

॥ यह चौथा तिलदृष्टान्त हुआ ॥ ४ ॥

पाचवा बालुकादृष्टान्त—

किसी एक समय राजा ने पुनः रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने के लिये ग्रामवासियों के पास ऐसा अपना आदेश भेजा, कि तुम्हारे इस ग्राम के बाहर जो रमणीय बालु है, उससे तुम लोग बहुत स्थूल रस्सी बनाकर शीघ्र ही भेजो । राजा के इस आदेश से उन ग्रामवासियों में खलबली मच गई । सबके सब एकट्ठे होकर रोहक के पास आये । आने का कारण पूछने पर रोहक को उन्होंने राजा का आदेश कह सुनाया । रोहक ने अपनी बुद्धि की चतुराई से उनके कष्ट को दूर करने का उन्हें आश्वासन दिया । इसमें उन्हें उसने समझाया कि तुम सब राजा के पास जाकर कहो कि महाराज ! हम लोग तो नट हैं, नटों का काम नाचने का है अतः हम नाचना ही जानते हैं रस्सी बनाना नहीं, फिर भी

कछु राज्ञ आ उत्तर साधनीने मनभा धव्वा पुश थये।

॥ आ योथु तल्लु द्धत्त समास ॥ ४ ॥

पाचसु र्दतीनु द्धत्त—

कोई एक दिवसे राजासे इरीथी रोहकनी बुद्धिनी परीक्षा करवा भाटे गाभवासीओने ओवी आशा आपी के, “तभारा आ गाभनी अडार वे सुद्धर र्दती छे, तेनु ओक अडु व लडु दोरडु अनावीने अलरी भारी पासे भोड्ढे” राजनी आ आशा साधनीने ते गाभवासीओभा अणलणाट भये, गाभना अथा लोको अेठठा भणीने रोहकनी पासे आव्या आपवानु वारणु पूछता तेभले रोहकने राजनी आशा कही अलणावी रोहके पोताना बुद्धिआतुर्थथी तेभना कछनु निवारणु करवानु तेभने आश्वासन दीधु तेले तेभने समज्जथु के, “तमे अथा राजनी पासे अर्थने कडो के छे भडारण । अमे लोको तो नट छीअे नटोनु काम तो नाचवानु छे तो अमे नाचवानु व लण्णीअे दोररा वण्णवत्त

प्रार्थना भवति-भवदीय राजकुल चिरन्तनमिति चिरन्तना रज्जुो वालुकामयाः कतिचिद्राजभवने भविष्यन्तीति तन्मध्यादेका काचित् पुरातना रज्जुः प्रेषणीया येन तदनुसारेण वयमपि वालुकामया रज्जु कुर्म इति । रोहकवचन श्रुत्वा ग्राम्यपुरुषैर्नृप-समीपे समागत्य तथैवोक्तम् । राजा ग्राम्यपुरुषाणा वचः श्रुत्वा सुप्रसन्नो जातः ।

॥ इति पञ्चमो वालुकादृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ हस्तिदृष्टान्तः—

अथान्यदा पुनरसौ नृपतिरेकं प्रत्यामन्नमृत्यु हस्तिन ग्राम्यपुरुषाणामन्तिके प्रेषितवान् एवमादिष्टवांश्च- 'गजोऽय गृह' इति न वाच्य, तथा तस्य वार्ता

आपका आदेश हमें प्रमाण है, अतः हमारी आप से यह प्रार्थना है कि यह आपका राजकुल बहुत अधिक पुराने समय से चला आ रहा है। इसमें उस-उस समय की पुरानी वालुकानिर्मित कितनीक रस्सिया होंगी ही, अतः जिस रस्सी को बनाने का आपने हमें आदेश दिया है, हमें समझाया जावे कि हम उसे किस रस्सी के अनुसार बनावे, इसलिये बड़ी दया होगी जो आप उन पुरानी वालुका की रस्सियोंमें से कुछ रस्सियां हमारे पास भेज दें तो। हम उन्हीं के अनुसार इस नवीन वालुकाकी रस्सी को बनाकर आप की सेवामें उपस्थित कर देंगे। इस प्रकार रोहक की सलाह मानकर उन ग्रामनिवासियों ने राजा की पास जाकर हमी तरह से कहा। राजा उनके इस प्रकार के वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ ॥

॥ यह पाचवाँ वालुकादृष्टान्त हुआ ॥ ५ ॥

नडी तो पण आपनी आज्ञा अमे माथे यडावीये छीये तो अमारी आपने ये विनति छे के आपनु आ राजकुण धण्डा न प्राचीन समयथी यात्यु आवे छे तेभा ते ते समयनी पुराणी, रतीमाथी अनावेला डेटलाक होरडा डशे न तो न होरडु अनाववाने आपे अमने आदेश आथे छे ते होरडु कया होरडा प्रमाणे अनाववु ते अमने समजववामा आवे अवी अमारी विनति छे तो दया करीने आप पुराणा होरडाअमाथी डेटलाक होरडाता नभूनाअे अमने भोडवी तो अमे ते नभूना प्रमाणे नवीन रतीना होरडा अनावीने आपनी सेवामा भोडवी आपशु " रोहकनी आ प्रकारनी मलाड मानीने ते आमवासीअे राननी पास न छे न अे प्रमाणे कहु रान तेमना ते प्रकारना वचन साक्षणीने धण्डा प्रसन्न थये।

॥ आ पाचमु रतीनु दृष्टात समाप्त ॥ ५ ॥

प्रत्यह निवेदनीया, अन्यथा तीव्रदण्डो भविष्यति । एव भूत नृपादेश श्रुत्वा सर्वे ग्राम्यलोकाश्चिन्तया व्याकुलीभूता रोहकान्तिके राजाऽऽज्ञामनुमन । गेहकेणोक्तम् - यवसोऽस्मै दीयताम् यत् पश्चात् भविष्यति, तस्योपायं कल्प्यामि । ततो रोहक-पचनाद् ग्राम्य पुरुषास्तस्मै हस्तिने धान्यादि यवस इत्तान्तस्तथाप्यसौ हस्ती तस्यामेव रात्रौ मृतः । ततो रोहकपचनाद् ग्राम्यपुरुषैर्नृपान्तिकमागत्य निवेदितम्

छद्म हस्तिदृष्टान्त—

एक दिन की बात है—राजाने उन ग्रामवासियों के पास एक ऐसे हाथी को भेजा जिसका मृत्युसमय बिलकुल नजदीक था। भेजकर यह कहलाया कि “हमारे पास ऐसा समाचार कि “यह हाथी मर गया है” इस रूपमें नहीं आना चाहिये, तथा हाथी की स्थिति कैसी क्या रहती है यह समाचार प्रतिदिन आते रहना चाहिये। इस कार्यमें यदि जरा भी प्रमाद या त्रुटि होगी तो तुम लोगों को इसका तीव्रदण्ड भुगतना पड़ेगा।” इस तरह का नृपादेश सुनकर वे सब के सब ग्रामनिवासीजन चिन्ता से आकुलव्याकुल बनकर रोहक के पास पहुँचे और उससे “राजा की ऐसी आज्ञा हुई है” यह सब समाचार कहे। रोहक ने कहा—घबराओ नहीं, मैं इसका उपाय कहता हूँ, इसको प्रतिदिन घास तो डालते ही रहो, इसके बाद जो कुछ होगा सो देख लिया जावेगा। उस के इस बतलाये हुए उपाय को सुनकर उन्होंने ऐसा ही किया। प्रतिदिन वे उसको घास आदि खाने को देने लगे फिर भी हाथी की स्थिति बिगड़ती ही चली गई,

छट्ठे हाथीनु दृष्टान्त—

एक निवसनी बात छे राज्ञे ते गाभवासीञ्जे पासे एक जेवो हाथी भोक्थे के जेने मृत्युसमय बिलकुल नजदीक छेतो, अने जेभ जेवराञ्छु के, “आ हाथी मरी गयो छे” जे उपे जेवा समाचार मारी पासे आववा जेधजे नडी, तथा हाथीनी स्थिति कैवी रहे छे ते समाचार दरराञ्च मने भगवा जेधजे आ कार्यमा सहेञ्च पञ्च प्रमाद जे भाभा रहेशे तो ते भाटे तमने आठरी सज थरे ” आ प्रकारनी राज्ञनी आज्ञा साबणीने ते गाभवा जधा बोकै चिन्ताथी आकुणव्याकुण थधने रोहकनी पासे आव्या अने तेने “राज्ञनी आ प्रभाञ्जे आज्ञा थध छे” ते जधा समाचार कथा रोहके कहु, “जलराशे नडी, हु तेने उपाय कहु छु आ हाथीने दरराञ्च घास तो नाथता रहे त्यार भाद शु थाय छे ते जेध जेवाथे” तेजे पतावेवा ते उपाय साब जीने तेभजे ते प्रभाञ्जे कथुं दरराञ्च तेने घास आदि भावा आभ्यु, तो पञ्च हाथीनी स्थिति भगउती ज गध अने ते तेञ्च रात्रे मरी गयो ते-” मनी

—हे देव ! अद्य हस्तीनोत्तिष्ठति नोपविशति न च खादति नापि मल मूत्र वा उत्सृजति, न चोन्मृशास निःश्वासो करोति, किं बहुना, हे देव ! कापि चेष्टा सचेतनस्य नास्ति । ततो राज्ञाकथितम्—अरे ! हस्ती मृतः किम् । ग्राम्यलोकैरुक्तम् हे देव ! भवन्त एव एव वदन्ति न तु वयमिति । ग्राम्यलोकैरेवमुक्तो राजा तूर्णानि स्थितः । राजा सुप्रसन्नो जात इति मत्वा ग्राम्यलोकाः सहर्षं ग्रामं प्रविष्टाः ।
॥ इति पष्ठो हस्तिदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

और वह उसी रात को मर गया । रोहक के पास जाकर उन्होंने ने जब इस समाचार से उसे अवगत कराया तो उसने उन से कहा कि तुम सब राजा के पास जाकर ऐसा कहो—“देव ! आज हाथी न तो उठता है और न बैठता है, न खाता है न पीता है, न मलमूत्र का ही त्याग करता है, उच्छ्वास-निःश्वास क्रिया भी उस की बध हो गई है, और अधिक क्या कहें जो सचेतन प्राणी की चेष्टा होती है उसकी ऐसी कोई भी चेष्टा नहीं हो रही है” । ग्रामनिवासीजनों ने राजा के पास जाकर ऐसा ही कहा तो उन की ऐसी बात सुनकर राजा ने कहा “तो क्या हाथी मर गया है ?” राजा की ऐसी बात सुनकर उन ग्रामनिवासियों ने कहा—महाराज ! आप ही ऐसा कह रहे हैं, हम तो ऐसा कुछ कहते नहीं हैं । ग्रामनिवासी पुरुषों की इस बात से राजा चूप हो गया और बड़ा प्रसन्न हुआ । वे सब के सब बादमें हर्षित होते हुए अपने २ घर पर वापिस लौट आये ॥

॥ यह छठा हस्ति दृष्टान्त हुआ ॥ ६ ॥

पासे जर्धने आ समाचार तेने आख्या त्यारे तेणे तेमने कळु के तमे जधा राजनी पासे जर्धने आ प्रभाणे कडे “ देव ! आणे हाथी उठतो नथी, जेसतो नथी, आतो नथी, पीतो नथी, मणमूत्रने त्याग पणु करतो नथी, तेनी उन्मृशास निःश्वासनी क्रिया पणु बध पडां गध छे, वधु शु कहीजे सचेतन प्राणीनी जे चेष्टा डोय छे जेवीं डोय पणु चेष्टा ते करतो नथी ” ग्रामवासींजो जे राजनी पासे जर्धने जे प्रभाणे जे कळु, ते तेमनी वात साबणीने राजजे कळु, “ तो शु हाथी मरी गयो छे ? ” राजनी जेवीं वात साबणीने ते ग्राम वासींजो जे कळु, “ महाराज ! आप जे जेवु कडे छे, जेमे तो जेवु कडे कडेता नथी ” ग्रामवासींजोनी जे वात साबणीने राज चूप गधे गयो जेने धणो प्रसन्न थयो ते जधा राज थता पोतपोताने घेर भाछा क्षर्था

॥ आ छठे हाथीवृ दृष्टान्त समाप्त ॥ ६ ॥

अथागडदृष्टान्तः—

अगडः=रूपः । एव तदुदाहरणम्—

अन्यथा पुनरसौ नृपतिर्ग्राम्यपुरुषान् समादिष्टान्-युष्मद्ग्रामे यः सुस्वा
दुजलपूर्णः कूपोजस्ति, स इह मत्सर प्रेषणीयः । एवमादिष्टा ग्राम्यपुरुषाश्रित्या
व्याकुलचित्ताः सन्तो रोहकाग्रे नृपादेशं निवेदितवन्तः । रोहकेणोक्तम्-युय नृपा
न्तिके गत्वा यदत-ग्रामीणः कूपं स्वभागतो भीरुर्भवति न च तस्य मजातीयं
पिनाऽयस्मिन् विश्वासो जायते अतः कश्चिदंको नागरिकः कूपः प्रेषणीयः, येन

सातवा अगड दृष्टान्त-

एक दिन राजा ने ग्रामवासी पुरुषों से ऐसा कहा कि तुम्हारे गाँवमें
जो सुस्वादुजल से पूर्ण कुआ है उसे यहाँ शीघ्र भेज दो । राजा की इस
अटपटी आज्ञा को सुनकर वे सब बड़े चकित हुए । उपाय कुछ जब
समझ में नहीं आया तो बेचारे वे रोहक के पास पहुँचे । रोहक ने आने
का कारण पूछा तो उन्होंने राजा की कुआ भेजने की जो बात थी वह
उसे सुना दी । रोहक ने शीघ्र ही उन्हें उपाय बतलाते हुए सचेतकर
कहा देखो तुम सब इसी समय राजा के पास जाओ और कहो-महाराज !
गाँव का कुआ स्वभावतः भीरु-डरपोक-होता है, जबतक उसे सजानीय
दूसरा कुआ न मिल जावे तबतक वह अन्य किसी दूसरे व्यक्ति में
विश्वास नहीं कर सकता है, इस लिये आप उसे बुलाने के लिये कोई
दूसरा नागरिक कुआ भेज दीजिये कि जिससे उम पर यह विश्वास कर
आपके नगरमें उसी के साथ २ आजावे । रोहक के इस उपाय से समत

सातमु अगड दृष्टान्त (कृवानु दृष्टान्त)-

એક દિવસ રાજાએ તે ગામના લોકોને કહ્યું કે, “ તમારા ગામમાં જે મીઠા
પાણીથી ભરેલો કુવો છે તેને જલદી અહીં મોકલી આપો ” રાજાની આ અટપટી
આજ્ઞા સાંભળીને બધાને ધણી જ નવાઈ થઈ ત્યારે કોઈ ઉપાય ન જાણ્યો
ત્યારે બિચારા તેઓ રોહકની પાસે આવ્યા રોહકે તેમના આગમનનું કારણ
પૂછ્યું ત્યારે તેમણે રાજાની કુવો મોકલવાની જે આજ્ઞા હતી તે તેને કહી સંભ
ળાવાં રોહકે તરત જ તેમને ઉપાય બતાવતા સચેત કરીને કહ્યું, “ તમે બધા
અત્યારે જ રાજાની પાસે જાઓ અને કહો “ મહારાજ ! ગામડાંના કુવો સ્વભાવે
ડરપોક હોય છે જ્યાં સુધી તેનો મજાતીય બીજો કુવો ન મળે ત્યાં સુધી તે
બીજા કોઈ પણ વ્યક્તિ પર વિશ્વાસ મૂકતો નથી તો આપ તેને બાલાવવા
માટે નગરના બીજા કોઈ કુવાને મોકલો કે જેથી તેના પર વિશ્વાસ મૂકીને

तस्मिन्नेप विश्वस्य तेन सह समागमिष्यति । ततो रोहक वचनाद् ग्राम्यपुरुषैर्नृपा-
न्तिक्रमागत्य तथैव निवेदितम् । राजा च स्वचेतसि रोहकस्य बुद्ध्यतिशय विभाव्य
मौनमवलम्ब्य स्थित । ग्राम्यलोका राजान सुप्रसन्न मत्वा हर्षेण स्वस्थानमागताः।
॥ इति सप्तमोऽगडदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथ वनखण्डदृष्टान्तः—

अथाऽन्यदा पुनर्नृपतिग्रामवासिनः पुरुषानादिष्टवान्—युष्माभिर्ग्रामस्य पूर्वस्या
दिशि वर्तमानो वनखण्ड, पश्चिमाया दिशि कर्तव्य इति । अस्मिन्नपि राज्ञ आदेशे
समागते रोहकवचनाद् ग्राम्यपुरुषानखण्डस्य पूर्वस्या दिशि व्यनस्थिताः । तथा
होकर वे सब के सब राजा के पास पहुँचे और पूर्वोक्त रूप से उनसे
निवेदन किया । राजाने इस तरह की उनकी बात सुनकर यह समझ
लिया कि यह सब रोहक की बुद्धिका ही प्रभाव है । इस प्रकार रोहक
की बुद्धि की अतिशय विशालता को जानकर राजा चूप हो गया । तथा
वे सब ग्रामनिवासी जन भी प्रसन्न होते हुए अपने २ घर पर लौट आये ॥

॥ यह सातवा अगड (कूप) दृष्टान्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवा वनखण्ड दृष्टान्त—

राजा ने एक दिन ग्रामवासियों से ऐसा कहा कि तुम्हारे इस ग्राम
की पूर्व दिशामें जो वनखण्ड है उसको तुम सब मिलकर पश्चिमदिशा में
कर दो । राजा के इस आदेश को सुनकर उन लोगों ने रोहक के पास
जाकर राजा का वह आदेश कह सुनाया । रोहक ने भी उन्हें इसका
उपाय बतला दिया । उसीके अनुसार वे सब के सब अब वनखण्ड की

तेनी आथे नगरमा आवे ” रोहकना आ उपाय साथे सभत थधने तेयो
अथाय राजनी पात्रे पडोऽन्या अने आगण कछा प्रभाषे तेभने विनति करी
गण्ठये तेभनी अे प्रजरनी वात मालणीने अेवु भान्थु के आ भयो रोहकनी
बुद्धिने अे प्रभाव छे आ रीते रोहकनी बुद्धिनी विशालता लोभने राज्ञ चूप
थध गयो तथा ते ग्रामवासी लोकें पणु प्रसन्न थधने चेतपोताने धेर
पाछा कथा

॥ आ सातवु अगड (कूप) दृष्टान्त समाप्त ॥ ७ ॥

आठवु वनखण्ड दृष्टान्त—

राज्जये अेक दिवस ग्रामवासीअेने कछु के, “ तमारा ग्रामनी पूर्व दिशाभा
ले वनखण्ड छे तेने तमो अथा भणीने पश्चिम दिशाभा करी नाथो राजने
आ आदेश मालणीने ते लोकेंअे रोहकनी पासे लोभने राजने ते आदेश
कही सलणायो रोहके पणु तेभने तेने उपाय अतायो ते प्रभाषे तेअे

सति वनखण्डो ग्रामस्य पग्निमायां दिशि सट्टतः । राग आदेशः पूर्णो जात इति निवेदित राज्ञः समीपे राजपुरुषैः ।

॥ इति वनखण्डनामोऽष्टमो दृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ पायसदृष्टान्तः—

पायस-परमान्न 'खीर' इति भाषा प्रसिद्धम् । पुनरन्यदा स नृपतिरादिष्ट-वान्-भो ग्रामवासिनः पुरुषा' ! यूय विनाऽग्नि संयोगेन पायसं कृत्वा प्रेषयत । ततस्तीः पुरुषैर्नृपादेशं श्रुत्वा रोहकान्तिके समागत्य नृपादेशः प्रोक्तः । रोहकेणोक्तम् -तण्डुलान् जले निसिप्य तण्डुलेषु प्रफुल्लितेषु पश्चात् 'परिपक्वचूर्णशर्करोपरि तण्डु-लपयोभृता मतला स्थालो निवेशयताम्, तदनु वाः परिपक्वचूर्णशर्करा मुहुर्मुहुर्जलैः

पूर्व दिशामें जाकर बस गये । इस तरह वह वनखण्ड स्वभावतः ग्राम की पश्चिम दिशामें हो गया । राजा का आदेश इस प्रकार पूर्ण हुआ जान कर उन लोगों ने इसकी खबर राजपुरुषों को दे दी । राजपुरुषों ने भी यह समाचार राजा के पास भेज दिया । सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥

॥ यह आठवाँ वनखण्ड दृष्टान्त हुआ ॥८॥

नौवा पायस दृष्टान्त—

एक दिन राजा ने ग्रामनिवासियों से ऐसा कहा कि-तुम लोग विना अग्नि पर पकाये खीर बना कर भेजो । लोगों ने इस आदेश की पूर्ति का उपाय रोहक से पूछा । रोहक ने कहा-तुम ऐसा करो-चाबलों की पानीमें डाल दो और जब वे फूल जावे तब उन्हें तथा दूध को एक पतली सी थाली भरकर रख लो, चादमें चूने के ककड़ों के ऊपर उस थाली को जमा-

गया ते वनखण्डनी पूर्वदिशामें जहाँने रोहका लाया था रीते ते भउ था लाविक रीते ज गामनी पश्चिम दिशाभा आवी गये । आ रीते राजाने आदेश पूर्ण थता तेमणे तेनी भपर राजपुरुषोंने आपी राजपुरुषोंमें ते समाचार राजाने भोक्त्या सालणीने राज धण्डा भुशी थये ।

॥ आ आठमो वनखण्ड दृष्टान्त समाप्त ॥८॥

नवमो पायस दृष्टान्त—

એક દિવસ રાજાએ ગામવાસીઓને એવી આજ્ઞા આપી કે, “તમે અગ્નિ પર પકાવ્યા વિના ખીર બનાવીને મોકલી આપો.” લોકોએ તે આદેશનું પાલન કરવાનો ઉપાય રોહકને પૂછ્યો. રોહકે કહ્યું, “તમે આ પ્રમાણે કરો—ચાખાને પાણીમાં નાખી રાખો. જ્યારે તે પલળીને કુલે ત્યારે તેને તથા દૂધને એક પાતળી એવી થાળીમાં ભરી રાખો. પછી ચૂનાના કાકરાઓ પર તે થાળીને મોકલીને

૧ પકે हुए चूनेके ककर ।

सेचनीया येन परमान्न सपद्यते । ततो रोहकवचनाद् ग्रामवासिभिस्तथैव कृते सति परमान्न सपन्नम् । तच्च राज्ञे तै निवेदितम् । राजासाश्रयं सुप्रसन्नो जातः ।

॥ इति नमः पायसदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

अथ अतिगदृष्टान्तः—

अतिगः—तीव्रबुद्धिमान् । अथान्यदा राजा रोहकस्य बुद्धयतिशयमवगत्य तमाकारधितुमादिष्टवान्—येन बालकेन स्वबुद्धिवशात् सर्वा अपि ममाज्ञाः सपादितास्तेन मम समीपे समागन्तव्यम् किं तु (१) न शुक्लपक्षे, न कृष्णपक्षे, (२) कर रख दो । धीरे २ उन ककडों को पानी की बिन्दुओं से सिञ्चित करते जाओ । इस तरह बहुत अच्छी खीर बनकर तैयार हो जावेगी । रोहक की इस युक्ति से सहमत होकर सबने ऐसा ही किया । बढिया सुन्दर खीर पककर तैयार हो गई । लोगों ने जाकर वह खीर राजा को दी । राजाने देवकर बडी प्रसन्नता प्रकट की ॥

॥ यह नौवा पायसदृष्टान्त हुआ ॥ ९ ॥

दसवां अतिगदृष्टान्त—

कुछ दिनों के बाद राजा जब इस तरह से वह रोहक की बुद्धि के अतिशय से परिचित हो गया तो उसको अपने पास बुलाने के लिये खबर भेजी, और साथमे यह भी कहला भेजा कि जिस बालक ने मेरी सब आज्ञाएँ सपन्न की उस बालक रोहक को हमारे पास इस तरह से आना चाहिये कि जिसमे (१) न शुक्लपक्ष हो, न कृष्णपक्ष हो, (२) न रात्रि

भूके धीरे धीरे ते डाकराओ पर पाणीना टीपा छाटता रहे आ रीते घण्टी सरस भीर धनीने तैयार थरे रोडकनी आ युक्ति साथे सम्मत थर्ने पध्याये ते प्रभाणे उर्युं घण्टी न सरस भीर रधाधने तैयार थर्न गध डोडोये नर्धने ते भीर रामने आपी रामये ते भीर जेधने घण्टी प्रमन्नता दर्शावी

॥ आ नवमु पायस दृष्टान्त समाप्त ॥

दसमु अतिग दृष्टान्त—

केटलाक द्विस पधी राम न्यारे आ प्रकारनी रोडकनी बुद्धिनी तीव्र ताथी परिचित थर्न गयो त्यारे तेणे तेने पोतानी पासे जे लाववाने भाटे अपर मोकट्या, अने साथे जे पणु कडेवरावु के “ने भाणक रोडके भारी पधी आना पूर्युं करी ते भाणक रोडके अभासी पासे आ रीते आववु न्यारे (१) न शुक्लपक्ष होय, न कृष्णपक्ष होय, (२) न रात्री होय न द्विस होय,

सति वनखण्डो ग्रामस्य पश्चिमायां दिशि सट्टतः । राज्ञ आदेशः पूर्णो जात इति निवेदितं राज्ञः समीपे राजपुरुषैः ।

॥ इति वनखण्डनामकोऽष्टमो दृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ पायसदृष्टान्तः—

पायस-परमान्न 'खीर' इति भाषा प्रसिद्धम् । पुनरन्यदा स नृपतिरादिष्ट-वान्-भो ग्रामवासिनः पुरुषाः ! यूयं विनाऽग्नि संयोगेन पायसं कृत्वा प्रेषयत । ततस्तैः पुरुषैर्नृपादेशं श्रुत्वा रोहकान्तिके समागत्य नृपादेशः प्रोक्तः । रोहकैणोक्तम् -तण्डुलान् जले निक्षिप्य तण्डुलेषु प्रफुलितेषु पश्चात् 'परिपक्वचूर्णशर्करोपरि तण्डु-लपयोभृता प्रतला स्यालो निवेशयताम्, तदनु ताः परिपक्वचूर्णशर्करा मुहुर्मुहुर्जलैः

पूर्व दिशामें जाकर बस गये । इस तरह वह वनखण्ड स्त्रभावतः ग्राम की पश्चिम दिशामें हो गया । राजा का आदेश इस प्रकार पूर्ण हुआ जान कर उन लोगों ने इसकी खबर राजपुरुषों को दे दी । राजपुरुषों ने भी यह समाचार राजा के पास भेज दिया । सुनकर राजा धड़ा प्रसन्न हुआ ॥

॥ यह आठवाँ वनखण्ड दृष्टान्त हुआ ॥८॥

नौवा पायस दृष्टान्त-

एक दिन राजा ने ग्रामनिवासियों से ऐसा कहा कि-तुम लोग विना अग्नि पर पकाये खीर बना कर भेजो । लोगों ने इस आदेश की पूर्ति का उपाय रोहक से पूछा । रोहक ने कहा-तुम ऐसा करो-चावलो को पानीमें डाल दो और जब वे फूल जावे तब उन्हें तथा दूध को एक पतली सी थाली भरकर रख लो, बादमें चूने के ककड़ों के ऊपर उस थाली को जमा-

अथा ते वनखण्डनी पूर्वदिशाञ्चै नृधने रडिवा लाग्या आ रीते ते षडस्वा लाविक रीते नृ गामनी पश्चिम दिशाभा आवी गये । आ रीते राजने आदेश पूर्ण थता तेमण्णे तेनी अथर राजपुरुषोने आपी राजपुरुषोञ्चै ते समाचार राजने भोक्त्या सालणीने राज धण्णे भुशी थये ।

॥ आ आठमु वनखण्ड दृष्टान्त समाप्त ॥८॥

नवमु पायस दृष्टान्त-

એક દિવસ રાજાએ ગામવાસીઓને એવી આજ્ઞા આપી કે, "તમે અગ્નિ પર પકાવ્યા વિના ખીર બનાવીને મોકલી આપો" લોકોએ તે આદેશનું પાલન કરવાનો ઉપાય રોહકને પૂછ્યો. રોહકે કહ્યું, "તમે આ પ્રમાણે કરો-ચાવળને પાણીમાં નાખી રાખો. જ્યારે તે પલળીને ફુલે ત્યારે તેને તથા દૂધને એક પાતળી એવી થાળીમાં ભરી રાખો. પછી ચૂનાના કાકરાઓ પર તે થાળીને ગોઠવીને

૧ પકે हुए चूनेके ककर ।

णोक्तम्—नाहं शुक्लपक्षे समागतोऽस्मि, नापि कृष्णपक्षे, किं त्वमावास्या प्रतिपत्सगमे समागतोऽस्मि, असौ समयो न शुक्लपक्षो न कृष्णपक्षः । (२-३) राजा पुनः पृच्छति—अरे रोहक ! रात्रौ त्वमागतोऽसि किं दिवसे, किं वा छायायाम्, अथवा-आतपे ? । रोहकेणोक्तम्—नाहं दिवसे समागतोऽस्मि, न रात्रौ न छायायाम्, नाप्यातपे, किं तु सायंकाले समागतोऽस्मि, असौ समयो न दिवसरूपो न रात्रिरूपः तथा न छायारूपो न चातपरूपः । (४) पुनः राजा पृच्छति—किं उत्रेण समागतोऽसि किमच्छ्रेण ? रोहकः प्राह—राजन् ! न उत्रेण न चाउत्रेण समागतोऽस्मि, शिरसश्चालनिक्रयाऽऽच्छादितत्वात्, (५) राजा पृच्छति—किं वाहनेन समागतोऽसि, किं वा चरणाभ्याम्—रोहकः प्राह—नाहं वाहनेन समागतोऽस्मि न

या कृष्णपक्षमें आया है ? रोहक ने उत्तर दिया न मैं शुक्लपक्षमें आया हूँ और न कृष्णपक्षमें आया हूँ किन्तु अमावास्या और प्रतिपदाके सगममें आया हूँ वह समय न शुक्लपक्ष का है न कृष्णपक्ष का । (२) राजाने फिर पूछा—रोहक ! तू रात्रिमें आया है या दिनमें ? (३) छायामें आया है या धूपमें ? रोहक ने कहा—राजन् ! न मैं रात्रिमें आया हूँ और न दिनमें, तथा न छायामें आया हूँ न धूपमें, किन्तु सायंकालमें आया हूँ क्यों कि यह समय न दिन का है न रात्रि का है तथा न धूप का है और न छाया का है । राजा ने फिर पूछा—(४) क्या तू उत्र सहित आया है ? या उत्र रहित ? रोहक ने कहा—राजन् ! न मैं उत्र सहित आया हूँ और न उत्र रहित ही, किन्तु शिर पर चालनी रखकर आया हूँ । (५) राजा ने फिर पूछा—क्या तू वाहन से आया है या पैरों से चलकर आया है ? रोहक

पक्षमा ? ” रोहके जवाब आये, “ हुं शुक्लपक्षमा आव्यो नथी अने कृष्णपक्षमा पणु आव्यो नथी पणु अमान अने प्रतिपदाना सगममा आव्यो छु, ते समय शुक्लपक्षेनो नथी कृष्णपक्षेनो पणु नथी ” (२) राजाने वणी पूछ्यु, “ रोहक ! तू रात्रे आव्यो छे के दिवसे ? (३) छायाडामा आव्यो छे ते तडडामा ? ” रोहके कहु, “ राजन् ! हुं रात्रे आव्यो नथी अने दिवसे पणु आव्यो नथी, तथा तडडे आव्यो नथी छे छायाडामा पणु आव्यो नथी, पणु सध्याडामे आव्यो छु कारणु के ते दिवसेनो समय नथी अने रात्रीनो पणु समय नथी, तडडानो समय नथी अने छायाडानो पणु समय नथी ” वणी राजाने पूछ्यु, (४) उत्र साथे आव्यो छे के उत्र वगर ? रोहके कहु हुं उत्र सहित पणु आव्यो नथी अने उत्ररहित पणु आव्यो नथी पणु माथे चारणी भूझीने आव्यो छु तेथी उत्र सहित पणु नथी अने उत्र वगर पणु न कडेवाय “ (५) शुं तु वाहनमा

न रात्रौ, न दिवसे, (३) न छायायां, न चातपे तेनागन्तव्यम् । (४) न छत्रेण, नचाछत्रेण, (५) न ग्राहनेन, न चरणाभ्यां, (६) न मार्गेण, नचाऽमार्गेण, (७) न स्नातेन, नचास्नातेन (८) न रिक्त हस्तेन नाप्यरिक्तहस्तेन समागन्तव्यम् । एव नृपेणादिष्टो रोहकः कण्ठदेश पर्यन्त शरीर जलेन प्रक्षाल्य शिरसि चाऽनिरुद्धत्वा पदपथेन—'पगदडी' इति भाषा प्रसिद्धेन मार्गेण मेपमास्त्य सायकालेऽमावास्या प्रतिपत्सगमे एक मृत्पण्ड हस्ते निधाय राज पात्रे ममागतः ।

(१) राजापृच्छति—किं शुक्लपक्षे समागतोऽसि, किं वा कृष्णपक्षे ? । रोहके-

हो, (३) न दिन हो, न धूप हो और न ग्राया ही हो । (४) न छत्र सहित हो न छत्र रहित हो साथमें इसका भी प्रया ध्यान रहना चाहिये कि वह आगमन (५) वाहन से न हो, पैरों से न हो, और (६) न मार्ग से हो और न अमार्ग से हो । तथा (७) न स्नान कर हो, न अस्नान कर हो, (८) न रिक्त हाथ हो और न अरिक्त हाथ हो । जब रोहकने अपने आनेमें इस नियमों से युक्त इस प्रकार की राजा की आज्ञा सुनी तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ । उसी समय उसने अपना शरीर कठतरु घोलिया और मेप पर चढ़ कर पगदडीवाले मार्ग से वह राजा के पास चल दिया । चलते समय सायकाल था अमावास्या और प्रतिपदा का सगम था । हाथमें उसने एक मिट्टी का डेला ले रक्खा था । राजा के पास ज्यों ही वह पहुँचा तो ।

(१) राजाने उससे पूछा—रोहक ! कह कि तू शुक्लपक्षमें आया है

(३) न तडके डोय न छायाडो डोय, (४) छत्रसहित न डोय तेम छत्ररहित पण्ड न डोय, वणी अणु पण्ड पूङ्गु ध्यान राण्यु के ते आगमन (५) वाहन वडे न थाय, पगपाणा न थाय, (६) मार्गथी न डोय अने अमार्गथी पण्ड न डोय तथा (७) स्नान करीने पण्ड न आवे, स्नान कर्या विना पण्ड न आवे, (८) भाडी हाथे न डोय, अर्या हाथे पण्ड न डोय ” न्याये शिडके पोताने त्या जवा भाटेनी आ नियमोथी युक्त राजनी आज्ञा सावणी त्यारे ते धण्डे पुश थये त्यारे ज तेणे कठ सुधी पोतानु शरीर घाघ नाप्यु अने घेरा पर असीने पगदडी वाणा मार्गे ते राजनी पासे जवा उपडये आलती वणते सध्याकाण हुतो, अमावास्या अने प्रतिपादानो सगम हुतो, तेणे हाथमा भाटीनु ओठ ठेकु राण्यु हुतु जेवे ते राजनी पासे पडोअये के तरत ज

(१) राजाअतेने पूछ्यु, “ शिडक ! कडेके तु शुक्लपक्षमा

कथमेतत् ? । रोहकः प्राह-मयान् पृथिवीपतिः, अतो मया पृथिवी समानीता तेन न रिक्त हस्तोऽहम्, मृत्वण्डस्य तुच्छरूपतयात्राप्यरिक्तहस्तोऽहम् । प्रथमदर्शनसमये रोहकस्य मद्गलवचः श्रुत्वा राजा परितुष्टोऽभवत् । ग्रामवासिनो लोका अपि ग्राम गतवन्तः ।

॥ इति दशमोऽतिगह्वरान्तः ॥ १० ॥

यद्वा—‘अइया’ इत्यस्य ‘अजिका’ इतिच्छाया । ‘अजा’ एव अजिका । तथा च-अजा ह्वरान्त इति बोध्यम् । स चैवम्—

अथ राजा परितुष्टः सन् रात्रौ रोहक स्वसमीपे शायितवान् । अन्येऽपि लोका इतस्ततस्तत्समीपे शायिताः । रजन्याः प्रथम-यामान्ते रोहक प्राह-रे रोहक !

कहा-यह कैसे ? रोहक ने उत्तर दिया-मिट्टी का ढेला हाथमे लेकर आया हु राजाने कहा यह कैसे ? रोहकने उत्तर दिया-आप पृथिवी पति हैं अतः मैं पृथिवी लेकर आया हू इस लिये मैं रिक्त हस्त-खाली हाथ नहीं आया हू, और मिट्टी का ढेला तुच्छ रूप होने से अरिक्त हस्त-भरे हाथ भी नहीं आया हू । इस तरह प्रथम दर्शनकालमे रोहक के इस प्रकार के मगलीक वचन सुनकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ । ग्रामवासी लोग अपने ग्राम की तरफ चले गये ॥

॥ यह दसवा अतिगह्वरान्त हुआ ॥ १० ॥

यद्वा मूलमें ‘अइया’ पद है उस की छाया ‘अजिका’ ऐसी भी होती है इसलिये फिर दसवा अजाह्वरान्त है—

तुष्ट हुए राजा ने रोहक को रात्रिमे अपने पास सुलाया, तथा और जो लोग थे उन्हें डवर उधर उसके पास सुलाया । रात्रि का जय प्रथम

पशु आये नथी ” रात्रिमे कछु, “ ये देवी रीते ? ” रोहके जवाब आये “ आप पृथ्वीपति छे तेयी हु पृथ्वी (माटी) लधने आये छु, तेयी हु पाली छथे आये नथी अने माटीनु ढेकु तुच्छ होवाथी लयाँ छथे पशु आये नथी ” आ रीते प्रथम दर्शनकाले रोहकना आ प्रदरना भागलिक वचन साबणीने रात्रि धरु सतोप पाभ्ये गाभवासी लोकै पोताने गाभ आल्या गया

॥ आ इससु अतिगह्वरान्त समाप्त ॥ १० ॥

अही मूलभा “अइया” पद छे तेनी छाया “अजिका” पशु थाय छे तेथी इरीथी इससु अजाह्वरान्त मूक्यु छे—

सन्तुष्ट थयेल रात्रिमे रोहकने रात्रे पोतानी पासे सुवाडयो, अने जीन ने लोकै छता तेभने अही तही तेनी पासे सुवाडया न्यारे रात्रिने पडेवै

चरणाभ्याम्, मेपारूढ समागतोऽस्मि । (६) राजा पृच्छति-रोहक! त्व मार्गेण समागतः उत अमार्गेण ? रोहकेणोक्तम्-न मार्गेण न चामार्गेण समागतोऽस्मि, हस्त्यश्वादि गमनागमनमार्गं विहाय पदपथेन 'पगदडी' इति प्रसिद्धेन मार्गेण समागमनात्, स तु न मार्गे न चामार्ग । (७) राजा पृच्छति-किं स्नातोऽसि, किं वा-अस्नातोऽसि ? रोहकेणोक्तम्-अण्डदेशपर्यन्त शरीरं प्रक्षाल्य समागतोऽस्मि तेन न स्नातोऽस्मि नाप्यस्नातोऽस्मि (८) नृपेणोक्तम्-रे रोहक ! किं रिक्तहस्तः किमरिक्तहस्तो वा समागतोऽसि ? । रोहको मृत्खण्ड नृपस्य पुरतः सस्थाप्य निगदति-राजन् ! न रिक्तहस्तो नाप्यरिक्तहस्तः समागतोऽस्मि । राजाऽऽह-

ने कहा-राजन् ! न मैं चाहन से आया हू न पैरों से चलकर, किन्तु भेष पर चढ़ कर आया हू । (६) राजा ने फिर पूछा-क्या तू मार्ग से होकर आया है या अमार्ग से ? रोहकने कहा-राजन् ! न मैं मार्ग से होकर आया हू और न अमार्ग से, किन्तु पगदडी से आया हू क्योंकि वह हाथी घोड़ों के गमनागमन से रहित होने से न मार्ग है और पगदडी होने से न अमार्ग है । (७) राजा ने फिर पूछा-तू स्नान करके आया है या बिना स्नान किये ? तब रोहक ने कहा-मैं नहीं तो स्नान करके आया हू और न बिना स्नान किये आया हू किन्तु कण्ठ तक शरीर धोकर आया हू । (८) राजा ने पुनः पूछा कि तू रिक्त हाथ आया है या अरिक्त हाथ ? इस पर रोहक ने मिट्टी के ढेले को सामने रखकर कहा-महाराज ! नहीं मैं रिक्त हाथ आया हू और न अरिक्त हाथ राजा ने

आव्ये छे के पगपाणा आव्ये छे ?" रोहके जवाब आव्ये, "राजन् ! हु वाहनमा आव्ये नथी अने पगे आलीने पण आव्ये नथी, पण घेटा पर भेसीने आव्ये छु (६) इरीथी राजन्ने पूछ्यु, "तु मार्गेथी आव्ये छे के अमार्गेथी ? रोहके जवाब आव्ये, "हु मार्ग परथी आव्ये नथी के अमार्ग परथी पण आव्ये नथी पण पगदडी परथी आव्ये छु, कारण के ते हाथी घोडानी अवरजवर विनानी होवाथी मार्ग न गणाय अने पगदडी होवाथी अमार्ग पण न गणाय" इरीथी राजन्ने पूछ्यु, "तु स्नान करीने आव्ये छे के स्नान कर्या विना आव्ये छे ?" त्थारे रोहके कछु, "हु स्नान करीने पण आव्ये नथी अने स्नान कर्या विना पण आव्ये नथी पण कठ सुधी शरीरने घाँघने आव्ये छु" इरीथी राजन्ने पूछ्यु, "तु आली हाथे आव्ये छे के लयाँ हाथे आव्ये छे ?" त्थारे रोहके भाटीना ठक्षाने सामे भूकीने कछु, "महाराज ! हु आली हाथे पण आव्ये नथी अने लयाँ हाथे

कथमेतत् ? रोहकः प्राह-भवान् पृथिवीपतिः, अतो मया पृथिवी समानीता तेन न रिक्त हस्तोऽहम्, मृत्वण्डस्य तुच्छरूपत्वान्नाप्यरिक्तहस्तोऽहम् । प्रथमदर्शनसमये रोहकस्य मद्गलवचः श्रुत्वा राजा परितुष्टोऽभवत् । ग्रामवासिनो लोका अपि ग्राम गतवन्तः ।

॥ इति दशमोऽतिगहष्टान्तः ॥ १० ॥

यद्वा—‘ अड्या ’ इत्यस्य ‘ अजिका ’ इतिच्छाया । ‘ अजा ’ एव अजिका ।

तथा च-अजा हष्टान्त इति बोध्यम् । स चैनम्—

अथ राजा परितुष्टः सन् रात्रौ रोहक स्वसमीपे शायितवान् । अन्येऽपि लोका इतस्ततस्तत्समीपे शायिताः । रजन्याः प्रथम-यामान्ते रोहक प्राह-रे रोहक !

कहा-यह कैसे ? रोहक ने उत्तर दिया-मिट्टी का ढेला हाथमे लेकर आया हू राजाने कहा यह कैसे ? रोहकने उत्तर दिया-आप पृथिवी पति हैं अतः मैं पृथिवी लेकर आया हू इस लिये मैं रिक्त हस्त-खाली हाथ नहीं आया हू, और मिट्टी का ढेला तुच्छ रूप होने से अरिक्त हस्त-भरे हाथ भी नहीं आया हू । इस तरह प्रथम दर्शनकालमे रोहक के इस प्रकार के मगलीक वचन सुनकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ । ग्रामवासी लोग अपने ग्राम की तरफ चले गये ॥

॥ यह दसवा अतिगहष्टान्त हुआ ॥ १० ॥

यहा मूलमे ‘ अड्या ’ पद है उस की छाया ‘ अजिका ’ ऐसी भी होती है इसलिये फिर दसवा अजाहष्टान्त है-

तुष्ट हुए राजाने रोहक को रात्रिमे अपने पास सुलाया, तथा और जो लोग थे उन्हें डबर उधर उसके पास सुलाया । रात्रि का जब प्रथम

पक्ष आये नथी ” रात्रिमे कहु, “ ये देवी राते ? ” रोहके जवाब आये। “ आप पृथ्वीपति छे। तेथी हु पृथ्वी (माटी) लधने आये छु, तेथी हु भाडी छथे आये नथी अने माटीनु ढेकु तुच्छ डोवाथी लया छथे पक्ष आये नथी ” आ राते प्रथम दर्शनकाले रोहकना आ प्रजरना मागलिक वचन साभणीने रात्रि धरु सतोष पाये। ग्रामवासी लोक पोताने ग्राम आया गया

॥ आ दसमु अतिगहष्टान्त समाप्त ॥ १० ॥

अही भूषमा “ अड्या ” पद छे तेनी छाया “ अजिका ” पक्ष थाय छे तेथी क्रीथी दसमु अजाहष्टान्त भूकथु छे-

अतुष्ट थयेल रात्रिमे रोहकने रात्रे पोतानी पासे सुवाडयो, अने पीनल ने लोक छे। तेभने अही तही तेनी पासे सुवाडया न्यादे रात्रिमे पडेवे।

चरणाभ्याम्, मेपारूढ समागतोऽस्मि । (६) राजा पृच्छति-रोहक! त्व मार्गेण समागतः उत अमार्गेण ? रोहकेणोक्तम्-न मार्गेण न चामार्गेण समागतोऽस्मि, हस्त्यश्वादि गमनागमनमार्गं विहाय पदपथेन 'पगदडी' इति प्रसिद्धेन मार्गेण समागमनात्, स तु न मार्गे न चामार्गः । (७) राजा पृच्छति-किं स्नातोऽसि, किं वा-अस्नातोऽसि ? रोहकेणोक्तम्-कण्ठदेशपर्यन्त शरीरं प्रक्षाल्य समागतोऽस्मि तेन न स्नातोऽस्मि नाप्यस्नातोऽस्मि (८) नृपेणोक्तम्-रे रोहक ! किं रिक्तहस्तः किमरिक्तहस्तो वा समागतोऽसि ? । रोहको मृत्वण्ड नृपस्य पुरतः सस्थाप्य निगदति-राजन् ! न रिक्तहस्तो नाप्यरिक्तहस्तः समागतोऽस्मि । राजाऽऽह-

ने कहा-राजन् ! न मैं वाहन से आया हूँ न पैरों से चलकर, किन्तु मेप पर चढ़ कर आया हूँ । (६) राजा ने फिर पूछा-क्या तू मार्ग से होकर आया है या अमार्ग से ? रोहकने कहा-राजन् ! न मैं मार्ग से होकर आया हूँ और न अमार्ग से, किन्तु पगदडी से आया हूँ क्योंकि वह हाथी घोड़ों के गमनागमन से रहित होने से न मार्ग है और पगदडी होने से न अमार्ग है । (७) राजा ने फिर पूछा-तू स्नान करके आया है या बिना स्नान किये ? तब रोहक ने कहा-मैं नहीं तो स्नान करके आया हूँ और न बिना स्नान किये आया हूँ किन्तु कण्ठ तक शरीर धोकर आया हूँ । (८) राजा ने पुनः पूछा कि तू रिक्त हाथ आया है या अरिक्त हाथ ? इस पर रोहक ने मिट्टी के ढेले को सामने रखकर कहा-महाराज ! नहीं मैं रिक्त हाथ आया हूँ और न अरिक्त हाथ राजा ने

आव्ये छे के पगपाणा आव्ये छे ?" रोहके जवाब आप्ये, "राजन् ! हुँ वाहनभा आव्ये नथी अने पगे आलीने पण आव्ये नथी, पण घेटा पर पेसीने आव्ये छु (६) इरीथी राज्जे पूछ्यु, "तु मार्गेथी आव्ये छे के अमार्गेथी ? रोहके जवाब आप्ये, "हुँ मार्ग परथा आव्ये नथी के अमार्ग परथी पण आव्ये नथी पण पगदडी परथी आव्ये छु, कारण के ते हाथी घोडानी अवरजवर विनानी होवाथी मार्ग न गण्ठाय अने पगदडी होवाथी अमार्ग पण न गण्ठाय" इरीथी राज्जे पूछ्यु, "तु स्नान करीने आव्ये छे के स्नान कर्या विना आव्ये छे ?" त्तारे रोहके उल्लु, "हुँ स्नान करीने पण आव्ये नथी अने स्नान कर्या विना पण आव्ये नथी पण कठ सुधी शरीरने धोअने आव्ये छु" इरीथी राज्जे पूछ्यु, "तु आली हाथे आव्ये छे के लया हाथे आव्ये छे ?" त्तारे रोहके माटीना ठेकने साने भूडीने कल्लु, "महाराज ! हुँ आली हाथे पण आव्ये नथी अने लया हाथे

कथमेतत् ? । रोहकः ग्राह-भ्रान् पृथिवीपतिः, अतो मया पृथिवी समानीता तेन न रिक्त हस्तोऽहम्, मृत्खण्डस्य तुच्छरूपत्वान्नाप्यरिक्तहस्तोऽहम् । प्रथमदर्शनसमये रोहकस्य मङ्गलवचः श्रुत्वा राजा परितुष्टोऽभवत् । ग्रामवासिनो लोका अपि ग्राम गतवन्तः ।

॥ इति दशमोऽतिगह्वरान्तः ॥ १० ॥

यद्वा— 'अइया' इत्यस्य 'अजिका' इतिच्छाया । 'अजा' एव अजिका ।

तथा च-अजा ह्वरान्त इति बोध्यम् । स चैवम्—

अथ राजा परितुष्टः सन् रात्रौ रोहक स्वसमीपे शायितवान् । अन्येऽपि लोका इतस्ततस्तत्समीपे शायिताः । रजन्याः प्रथम-यामान्ते रोहक ग्राह-रे रोहक !

कहा-यह कैसे ? रोहक ने उत्तर दिया-मिट्टी का ढेला हाथमे लेकर आया हू राजाने कहा यह कैसे ? रोहकने उत्तर दिया-आप पृथिवी पति हैं अतः मैं पृथिवी लेकर आया हू इस लिये मैं रिक्त हस्त-खाली हाथ नहीं आया हू, और मिट्टी का ढेला तुच्छ रूप होने से अरिक्त हस्त-भरे हाथ भी नहीं आया हू । इस तरह प्रथम दर्शनकालमें रोहक के इस प्रकार के मंगलीक वचन सुनकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ । ग्रामवासी लोग अपने ग्राम की तरफ चले गये ॥

॥ यह दसवा अतिगह्वरान्त हुआ ॥ १० ॥

यहा मूलमें 'अइया' पद है उम की छाया 'अजिका' ऐसी भी होती है इसलिये फिर दसवा अजाह्वरान्त है—

तुष्ट हुए राजा ने रोहक को रात्रिमे अपने पास सुलाया, तथा और जो लोग थे उन्हें डवर उधर उसके पास सुलाया । रात्रि का जय प्रथम

पशु आये। नहीं " राजाके कलु, " ये देवी रीते ? " रोहके जवाब आये। " आप पृथ्वीपति थे। तेथी हु पृथ्वी (माटी) लधने आये। छु, तेथी हु आली। हाथे आये। नहीं अने माटीतु डेकु तुच्छ होवाथी लया। हाथे पशु आये। नहीं " आ रीते प्रथम दर्शनकाणे रोहकना आ प्रजरना भागलित वचन सासणीने राजा धरु। सतोप पाये। ग्रामवासी लोके। पोताने ग्राम आल्या गया।

॥ आ दसमु अतिगह्वरान्त समाप्त ॥ १० ॥

अही भूगभा "अइया" पद छे तेनी छाया "अजिका" पशु थाय छे तेथी इरीथी दसमु अजाह्वरान्त भूकथु छे—

सतुष्ट थयेल राजाके रोहकने रात्रे पोतानी पाये सुवाडये, अने भील ने लोके। हुता तेभने अही तही तेनी पासे सुवाडया ल्याये रात्रिने। पडेथी।

जागर्षिं किं वा स्वपिपि ? । रोहक आह-महाराज ! जागर्षिं । राजा प्राह-रे रोहक ! तर्हि किं चिन्तयसि ? । रोहकः प्राह-राजन् ! अजाया उदरे यन्त्रोत्तीर्णा इव वर्तुलगुलिकाः कथं भवन्तीति चिन्तयामि । तत एवमुक्ते सति राजा तमेव पृष्टवान्-कथय रोहक ! कथमिति । रोहकेणोक्तम्-राजन् । सर्वर्तक नामकाद् वायु विशेषात् । एवमुक्त्वा रोहक सुप्तः ।

॥ इति अजादृष्टान्तः ॥ १० ॥

प्रहर पूरा हुआ तो राजाने रोहक से कहा-रोहक ! तू जग रहा है या सो रहा है ? रोहक ने सुनते ही झट से उत्तर दिया-महाराज जग रहा हूँ । सुनकर राजाने फिर उससे कहा-जगता हुआ क्या विचार कर रहा है ? रोहक ने कहा-महाराज ! क्या तल्लाऊँ-गडा अच्छा विचार कर रहा हूँ । वह यह है कि बकरी के पेटमें यत्र (मशीन) पर घड़ी गई के समान जो गोल २ गुलिका-लेंडी होती है वे कैसे होती हैं । रोहक की इस बात को सुनकर राजा ने कुछ भी उत्तर न देते हुए उससे ही पूछा कि रोहक ! तू ही इसका खुलासा उत्तर बतला । रोहक ने कहा-राजन् ! सुनो, बकरी के पेटमें एक सर्वर्तक वायु रहा करती है जिससे उस के उदरमे इस प्रकार की गोल २ लेंडिया बना करती है । इस उत्तर से राजा प्रसन्न हुआ । रोहक बादमे सो गया ॥

॥ यह दसवा दूसरा अजादृष्टान्त हुआ ॥ १० ॥

प्रहर पूरा थयो त्यारे राजान्ये रोहकने कहु, “ रोहक ! तु नगरे छे के सूध गये छे ? ” रोहके सालणता न तरत न्वाथ आथे “ महाराज ! नथु छु ” न्वाथ सालणीने राजान्ये इरी पूछथु, “ नगते नगते शे विचार करे छे ? ” रोहके कहु, “ महाराज ! शु भतावु ? धणे न सरस विचार करी रह्यो छु ते ये छे के भकरीना पेटमा यत्र वडे भना डोय तेवी ने गोज गोज गोजीओ दी डीओ डोय छे ते केवी रीते भनती डशे ? ” राजान्ये रोहकनी आ वात सालणीने कर्ध पञ्च न्वाथ न आपता तेने न पूछथु “ रोहक ! तु न तेना खुलासा वार न्वाथ आप ” रोहके कहु, “ राजन् ! सालणे भकरीना पेटमा येक सर्वर्तक वायु डोय छे नेथी तेना पेटमा आ प्रकारनी गोज गोज दी डीओ भन्या करे छे ” आ न्वाथथी राज प्रसन्न थयो पछी रोहक उधी गये

॥ आ भीछ पपत दसमु अजा दृष्टान्त समाप्त ॥ १० ॥

अथ पत्रदृष्टान्तः—

राज्ञः समीपे सुप्त रोहक रात्रौ यामद्वये व्यतीते सति राजा पुनरव्रवीत्—
अरे रोहक ! जागर्षि किं वा स्वपिषि ? । रोहक आह—राजन् ! जागर्षि । राज्ञा
प्रोक्तम्—तर्हि किं चिन्तयसि ? । रोहकेणोक्तम्—राजन् ! अश्वत्थ पत्रस्य किं दण्डो
महान् भवति, उत शिखारूपः—पत्राग्रभागः ? । एतमुक्ते राजा संशयमापन्नो वदति
—रोहक ! त्वया सम्यक् चिन्तितम् किं तु निर्णयः क इति वद । रोहकः प्राह—
यावत् पत्राग्रभागो न श्लुष्यति, तावद् द्वे अपि समे । ततो राज्ञा पार्श्ववर्तीलोकः पृष्टः

ग्यारहवा पत्रदृष्टान्त-

राजा के पासमें सोये हुए रोहक के जब रात्रि के दो प्रहर व्यतीत
हो चुके तो राजा ने उससे कहा—रोहक ! जग रहा है या सो रहा है ?
रोहक ने सभलकर उत्तर दिया—महाराज ! जग रहा हूँ । जगता २ क्या
विचार कर रहा है । इस प्रकार राजा के पूछने पर रोहक ने उत्तर दिया—
महाराज ! मैं विचार कर रहा हूँ कि अश्वत्थ—पीपल—के पत्ते का दण्ड
महान् होता है या उसका शिखारूप अग्रभाग महान् होता है ? रोहक
की इस विचारधारा से परिचित होने पर राजा स्वयं सशयापन्न होकर
कहने—लगा रोहक ! तू ने विचार तो अच्छा किया पर निर्णय इसका
क्या है सो तू ही कह मेरी तो समझमें कुछ भी नहीं आ रहा है । रोहक
ने राजा की बात सुनते ही उत्तर दिया—देखो, जब तक पत्राग्रभाग श्लुष्क
नहीं होता है तबतक दोनों ही समान माने जाते हैं ! रोहक की इस बात

अगीयारसु पत्र दृष्टान्त-

राजनी पाससे सूतेला रोहकने रात्रिना जे प्रहर पमार थता राज्ञे
कथ्ये, “ रोहक ! नगे छे के सूछ गये छे ? ” रोहके ते सालणीने जवाण
आथ्ये, “ महाराज ! नशु छु ” नगते नगते शे विचार ठरी रह्यो छे ? ”
ज्ये राजने प्रश्न सालणीने रोहके जवाण आथ्ये, “ महाराज ! हु ते विचार
कइ छु के पीपणाना पानने दउ महान् डोय छे के तेने शिणाइप अग्रभाग
महान् डोय छे ? ” रोहकनी आ विचार धाराथी परिचित थता राज्ञे पोतेज
सशययुक्त थर्धने कडेवा लाज्ये, “ रोहक ! ते विचार तो सरस कर्थे पणु तेने
शे निर्णय छे तेतुज कडे भने ते कर्थ पणु समन्दतु नथी ” रोहके राजनी
वात सालणताज जवाण आथ्ये, “ ज्ये, ज्ये सुधी पत्राग्रभाग सूकतो
नथी त्या सुधी भने समान ज भनाय छे ” रोहकनी आ वातने निर्णय

जागर्षिं किं वा स्वपिपि ? । रोहक आह-महाराज ! जागर्षि । गजाप्राह-रे रोहक ! तर्हि किं चिन्तयसि ? । रोहकः प्राह-राजन् ! अजाया उदरे यन्त्रोत्तीर्णा इव वर्तुलगुलिकाः कथं भवन्तीति चिन्तयामि । तत एवमुक्ते सति राजा तमेव पृष्टवान्-कथय रोहक ! कथमिति । रोहकेणोक्तम्—राजन् ! सर्वतक नाममाद् वायु विशेषात् । एवमुक्त्वा रोहक सुप्तः ।

॥ इति अजादृष्टान्तः ॥ १० ॥

प्रहर पूरा हुआ तो राजाने रोहक से कहा-रोहक ! तू जग रहा है या सो रहा है ? रोहक ने सुनते ही छट से उत्तर दिया-महाराज जग रहा हूँ। सुनकर राजाने फिर उससे कहा-जगता हुआ क्या विचार कर रहा है ? रोहक ने कहा-महाराज ! क्या त्रतलाऊँ-त्रडा अच्छा विचार कर रहा हूँ। वह यह है कि बकरी के पेटमें घघ्र (मशीन) पर घडी गई के समान जो गोल २ गुलिका-लेंडी होती हैं वे कैसे होती हैं। रोहक की इस बात को सुनकर राजा ने कुछ भी उत्तर न देते हुए उससे ही पूछा कि रोहक ! तू ही इसका खुलाशा उत्तर बतला। रोहक ने कहा-राजन् ! सुनो, बकरी के पेटमें एक सर्वतक वायु रहा करती है जिससे उस के उदरमें इस प्रकार की गोल २ लेंडिया बना करती हैं। इस उत्तर से राजा प्रसन्न हुआ। रोहक बादमें सो गया ॥

॥ यह दसवा दूसरा अजादृष्टान्त हुआ ॥ १० ॥

प्रहर पूरा थये त्तारे राजन्ने रोहकने कहु, “ रोहक ! तु जगे छे के सुध गये छे ? ” रोहके सालणता ज तरत जवाण आये “ महाराज ! जयु छु ” जवाण सालणीने राजन्ने इरी पूछयु, “ जगतो जगतो शे विचार करे छे ? ” रोहके कहु, “ महाराज ! शु भतावु ? घणो ज सरस विचार करी रह्यो छु ते जे छे के भकरीना पेटमा यत्र वडे जनी डोय तेवी जे गोण गोण गोणीजो ली डीजो डोय छे ते केवी रीते जनती डशे ? ” राजन्ने रोहकनी आ वात सालणीने कर्ध पणु जवाण न आपता तेने ज पूछयु “ रोहक ! तु ज तेना खुदासा वार जवाण आप ” रोहके कहु, “ राजन् ! सालणो भकरीना पेटमा जेक सवतक वायु डोय छे जेथी तेना पेटमा आ प्रकारनी गोण गोण ली डीजो जन्या करे छे ” आ जवाणथी राज प्रसन्न थये पछी रोहक उधी गये।

॥ आ भीछ वधत इसमु अजा दृष्टान्त समाप्त ॥ १० ॥

अथ पत्रदृष्टान्तः—

राज्ञः समीपे मृप्त रोहक राज्ञौ यामद्वये व्यतीते सति राजा पुनरब्रवीत्—
अरे रोहक ! जागर्षिं किं वा स्वपिपि ? । रोहक आह—राजन् ! जागर्षिं । राज्ञा
प्रोक्तम्—तर्हि किं चिन्तयसि ? । रोहकेणोक्तम्—राजन् ! अश्वत्थ पत्रस्य किं दण्डो
महान् भवति, उत शिखारूपः—पत्राग्रभागः ? । एतमुक्ते राजा संशयमापन्नो वदति
—रोहक ! त्वया सम्यक् चिन्तितम् किं तु निर्णयः क इति वद । रोहकः प्राह—
यावत् पत्राग्रभागो न श्लुप्यति, तावद् द्वे अपि समे । ततो राज्ञा पार्श्ववर्तीलोकः पृष्टः

ग्यारहवा पत्रदृष्टान्त-

राजा के पासमें सोये हुए रोहक के जब रात्रि के दो प्रहर व्यतीत
हो चुके तो राजा ने उससे कहा—रोहक ! जग रहा है या सो रहा है ?
रोहक ने सभलकर उत्तर दिया—महाराज ! जग रहा हूँ । जगता २ क्या
विचार कर रहा है । इस प्रकार राजा के पूछने पर रोहक ने उत्तर दिया—
महाराज ! मैं विचार कर रहा हूँ कि अश्वत्थ—पीपल—के पते का दण्ड
महान् होता है या उसका शिखारूप अग्रभाग महान् होता है ? रोहक
की इस विचारधारा से परिचित होने पर राजा स्वयं सशयापन्न होकर
कहने—लगा रोहक ! तू ने विचार तो अच्छा किया पर निर्णय इसका
क्या है सो तू ही कह मेरी तो समझमें कुछ भी नहीं आ रहा है । रोहक
ने राजा की बात सुनते ही उत्तर दिया—देखो, जब तक पत्राग्रभाग श्लुपक
नहीं होता है तबतक दोनों ही समान माने जाते हैं ! रोहक की इस बात

अगीयारसु पत्र दृष्टान्त-

राजानी पास स्रोतेवा रोहकने रात्रिना जे प्रहर पमार थता राजाये
ठह्यु, “ रोहक ! जागे छे के सुध गये ठे ? ” रोहके ते सासणीने जवाण
आप्ये, “ महाराज ! जायु छु ” जागते जागते शे विचार ठरी रह्यो छे ? ”
अयेवा राजाने प्रश्न सासणीने रोहके जवाण आप्ये, “ महाराज ! हु ते विचार
कइ छु के पीपणाना पानने दठ महान् डोय छे के तेने शिभाइप अश्रलाग
महान् डोय छे ? ” रोहकनी आ विचार धाराथी परिचित थता राजा पोतेज
सशययुक्त थर्धने कडेवा लाग्ये, “ रोहक ! ते विचार तो सरस कर्थे पणु तेने
शे निर्णय ठे ते तुज कडे भने ते कर्थ पणु समन्तु नथी ” रोहके राजनी
वात सासणीने जवाण आप्ये, “ बुज्यो, ज्या सुधी पत्राग्रभाग सूकतो
नथी त्या सुधी जन्ने समान ज बनाय छे ” रोहकनी आ वातने निर्णय

रोहकस्य कथन तन्व्यमतव्य चेति कथ्यताम् । लोकेनाप्युक्तम्-तन्व्यमेवैतत् । ततो रोहकः पुनरपि सुप्तः ॥

॥ इत्येकादशः पत्रदृष्टान्तः ॥ ११ ॥

अथ खाडहिलादृष्टान्तः—

खाडहिला—‘ खिसकोली ’ ‘ टाली ’ इति भाषा प्रसिद्धः पञ्चेन्द्रिय जीव विशेषः । रात्रौ तृतीया यामे व्यतीते राजा रोहक पुनः पृष्टवान्—रे रोहक ! किं जागर्षि किं या स्वपिपि ? । रोहकः प्राह—राजन् ! जागर्षि । राजा प्राह—अरे रोहक ! किं चिन्तयसि ? । रोहकेणोक्तम्—राजन् ! खाडहिला—जीवस्य यामन्मात्र शरीर

का निर्णय राजाने जय पाश्ववर्ती लोगों से पूछा कि रोहक का यह कथन सत्य रूप है या असत्य रूप है ? तो उन्होंने ने एक स्वर से कहा कि ठीक है, तब राजाने इस बात को मानली ॥

॥ यह ग्यारवा पत्रदृष्टान्त हुआ ॥११॥

बारहवा खाडहिलादृष्टान्त—

खाडहिला का अर्थ है खिसकोली—इसको हिन्दी भाषामें टाली या गिलहरी कहते हैं । यह पाचों इन्द्रियवाली होती है । रात्रिका जय तीसरा पहर व्यतीत हो गया, तब राजाने रोहक से पुन पूछा—कह भाई ! तू जग रहा है या सो रहा है ? सुनकर रोहक ने कहा । राजन् ! मैं जग रहा हूँ । तो क्या विचार कर रहा है । राजा की बात सुनकर रोहक ने उत्तर दिया—राजन् ! मैं इस समय यह विचार कर रहा हूँ कि खाडहिला

न्यारे राज्ञे पासे रडेला लोडाने पूछ्यो के रोहकनु आ कथन सत्य छे के असत्य छे ? तो तेभल्ले ओकी अवाजे कछु के तेनु कथन अराणर छे त्यारे राज्ञे ते वात मानी लीधी

॥ आ अगीयारमु पत्र दृष्टान्त समाप्त ॥ ११ ॥

बारमु खाडहिला (खिसकोली)नु दृष्टान्त—

(भाडडिलानो अर्थ खिसकोली थाय छे तेने हिन्दी भाषामा टाली के गिलहरी कहे छे ते पाचे इन्द्रियवाणी होय छे)

रात्रिनो त्रीजे पडोर न्यारे प्रसार थयो त्यारे राज्ञे रोहकने इरी पूछ्यु, “ कहे बाध ! तु जगे छे के उवे छे ? ” ते सालानीने रोहके कछु, “ राजन् ! हुँ जग्यु छु ” राज्ञे पूछ्यु, “ तो तु शेो विचार करी रह्यो छे ? ” रोहके अवाज आये, “ राजन् ! हुँ अत्यारे ते विचार कइ छु के

तावन्मात्रं पुच्छ किं वा न्यूनम् ? अधिकं वा ? इति चिन्तयामि । राजातन्निर्णयं कर्तुमशक्तस्तमेव पृष्टवान्—रे रोहक ! कोऽत्र निर्णयः ? । रोहकेणोक्तम्—राजन् ! द्वे अपि समे भवत । एव मुक्त्वा रोहकः सुप्तः ॥

॥ इति द्वादशः खाडहिलादृष्टान्तः ॥ १२ ॥

अथ पञ्चपितृकदृष्टान्तः—

इतश्च प्राभातिके माङ्गलिकवाद्यनिःस्वने प्रवृत्ते सति राजा प्रबुद्धः सन् रोहकमाह—अरे रोहक ! किं जागर्षि ? किं वा स्वपिपि ? । तदा रोहकमोगाह नाम का जो पचेन्द्रिय प्राणी होता है उसका जितना शरीर है उतनी ही उसकी पूछ होती है, अथवा उससे कुछ कम होती है या उससे अधिक होती है ? यदि इस विषय को आप जानते हों तो आप बतलाईये । राजा ने रोहक की बात सुनकर कहा—मैं स्वयं इस विषय का निर्णय नहीं कर सकता । तो तेरे को क्या बतलाऊँ ? तू ही कह । रोहकने झट जवाब दिया कि राजन् ! ये दोनों ही समान होते हैं । कमती बढ़ती नहीं होते । बस ऐसा कहकर रोहक सो गया ॥

॥ यह धारहवा खाडहिला का दृष्टान्त हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवा पंच पितृक का दृष्टान्त—

रात्रि समाप्त प्राय हो चुकी थी । इधर प्रभातकाल के सूचक वाद्यों की तुमुल ध्वनि मन को हरण कर रही थी । राजा ने जगकर सोते हुए

भिमकोशी नामनु ने पचेन्द्रिय प्राणी होय छे तेनु शरीर नेवडु छे ओवडी न पूछडी होय छे अथवा तेना करता टुडी होय छे, के तेना करता बाणी होय छे ? ने आ भावतभा आप भाडितगार हो तो भने ममन्वो ” गन्तये रोहकनी वात साभणीने कहु, “ ई चोते ते वातने निष्पुंय करी शकते नथी तो तारे न ते कडेपु पडथे ” रोहके तरत न नवाण आपथे, “ छे राजन् ! ये भन्ने समान न होय छे वधु के ओछा होता नथी ” भस ओम कडीने रोहके सूध गथे ।

॥ आ भारसु खाडहिला नु दृष्टान्त समाप्त ॥ १२ ॥

तेरसु पंचपितृक नु दृष्टान्त—

लगभग रात्रि पूरी थई इती त्या प्रभातकालना सूचक वाद्योने तुमुल ध्वनी मनने आकर्षी रह्यो इतो रान्तये नगणीने सुतेवा रोहकने नवाडवा

રોહકસ્ય ક્યન ત્યમતથ્ય વેતિ ક્યતામ્ । લોકેનાપ્યુક્તમ્-ત્યમેવૈત્ । તતો
રોહકઃ પુનરપિ સુતઃ ॥

॥ इत्येकादशः पत्रदृष्टान्तः ॥ ११ ॥

अथ खाडहिलादृष्टान्तः—

खाडहिला—‘ खिसकोली ’ ‘ टाली ’ इति भाषा प्रसिद्धः पञ्चेन्द्रिय जीव
विशेषः। रात्रौ तृतीया यामे व्यतीते राजा रोहक पुनः पृष्टवान्—रे रोहक ! किं जागर्षि
किं या स्वपिषि ? । रोहकः प्राह—राजन् ! जागर्षि । राजा प्राह—अरे रोहक ! किं
चिन्तयसि ? । रोहकेणोक्तम्—राजन् ! खाडहिला—जीवस्य यान्मात्र शरीर

का निर्णय राजाने जत्र पार्श्ववर्ती लोगों से पूछा कि रोहक का यह कथन
सत्य रूप है या असत्य रूप हैं ? तो उन्होंने ने एक स्वर से कहा कि ठीक
है, तब राजाने इस बात को मानली ॥

॥ यह ग्यारवा पत्रदृष्टान्त हुआ ॥११॥

चारहवा खाडहिलादृष्टान्त—

खाडहिला का अर्थ है खिसकोली—इसको हिन्दी भाषामें टाली या
गिलहरी कहते हैं। यह पाचों इन्द्रियवाली होती है। रात्रि का जब
तीमरा पहर व्यतीत हो गया, तब राजाने रोहक से पुन पूछा—कह भाई !
तू जग रहा है या सो रहा है ? सुनकर रोहक ने कहा । राजन् ! मैं जग
रहा हू । तो क्या विचार कर रहा है । राजा की बात सुनकर रोहक ने
उत्तर दिया—राजन् ! मैं इस समय यह विचार कर रहा हू कि खाडहिला

ન્યારે રાજાએ પાસે રહેલા લોકોને પૂછ્યો કે રોહકનું આ કથન સત્ય છે કે
અસત્ય છે ? તો તેમણે એકી અવાજે કહ્યું કે તેનું કથન બરાબર છે ત્યારે
રાજાએ તે વાત માની લીધી

॥ આ અગીયારમું પત્ર દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૧૧ ॥

બારમું ખાડહિલા (ખિસકોલી)નું દૃષ્ટાંત—

(ખાડહિલાનો અર્થ ખિસકોલી થાય છે તેને હિન્દી ભાષામાં ટાલી કે
ગિલહરી કહે છે તે પાંચે ઈન્દ્રિયવાળી હોય છે)

રાત્રિનો ત્રીજો પહોર ન્યારે પ્રસાર થયો ત્યારે રાજાએ રોહકને ફરી
પૂછ્યું, “ કહે ભાઈ ! તું બગે છે કે ઉઘે છે ? ” તે સાંભળીને રોહકે કહ્યું,
“ રાજન્ ! હું બગ્યું છું ” રાજાએ પૂછ્યું, “ તો તું શો વિચાર કરી રહ્યો
છે ? ” રોહકે જવાબ આપ્યો, “ રાજન્ ! હું અત્યારે તે વિચાર કરું છું કે

स्येव कोपदर्शनात् । तृतीयो रजक , यतो यथा रजको वस्त्र परिनिष्पीड्य तस्य सर्पं मलमपहरति तथाऽपराधिन सर्पस्वहरसि । चतुर्थो वृश्चिक , यन्मामपि बालकनिद्रामरुतं लीलाकङ्कितिकाग्रेण वृश्चिक इव निर्दय तुदसि । पञ्चमस्तु निजपितैव, येन यथावस्थित न्याय सम्यक् परिपालयसि । एष मुक्ते सति राजा तृष्णीमास्थाय प्राभातिक कृत्य जिनस्मरणादिक कृतवान् । ततो राजा मातु समीपमागत्य नमस्कृत्य

रोहक-सुनो, एक है आपका पिता वैश्रवण, क्यों कि वैश्रवण के समान आपमें दानशक्ति के दर्शन होते हैं १ दूसरा पिता है आप का चांडाल, क्यों कि शत्रुसमूह के प्रति आपमें चांडाल की तरह कोप दिखालाई देता है २, तीसरा पिता है आप का गोवी, घोवी जिस तरह बछ्छ को पछाडकर उसके मैल को हर लेता है उसी तरह आप भी अपराधी को पछाडकर उस के सर्वस्व रूप मैल का हरण कर लेते हो ३ । चौथा पिता है आपका वृश्चिक, वृश्चिक जिस तरह सोये हुए व्यक्ति को निर्दय होकर डक मार कर व्यथित कर देना है उसी प्रकार आपने भी अभी सोये हुए मुज बालक को कधी चुभो कर व्यथित कर दिया है ४ । पांचवा पिता है आपका वह कि जिसने आपको जन्म दिया है, कारण उसी के अनुसार आप अपनी प्रजा का न्यायनीति पूर्वक पालन कर रहे हो ५ । इस बात को सुनकर राजा चुपचाप हो गया और जिनस्मरण पूर्वक समस्त प्राभानिक कार्य समाप्त कर अपनी माता के पास चल दिया ।

कैषु कैषु छे ते अताव " शुक्रे ऽथु " मासगो, अेक आपना पिता वैश्रवणु छे, कारणु के आपनामा वैश्रवणु लेवी दान शक्तिना दर्शन थाय छे, (१) आपने भीने पिता चांडाल छे कारणु के शत्रुसमूह प्रत्ये आपनामा चांडाल लेवे होध नरुदे पडे छे (२) आपने भीने पिता गोवी छे कारणु के लेम घोवी वस्त्रने पछाडी पछाडीने तेना मैल हर करे छे तेम आप पणु अपराधीने पछाडी पछाडीने तेना सर्वस्वउप मैलतु हरणु करे छे (३) आपने चौथे पिता वी छे, लेम वी जी नृतेवी व्यक्तिने निर्दय थरुने उणु दधने व्यथित नरे छे तेम आपे पणु सूतेला अेवा भने-भाण्डने ठामडी लोडीने व्यथित कर्यो छे (४) आपना पाचमा पिता ते छे के लेमणु आपने जन्म आपयो छे, कारणु के तेमना प्रभाणु आप आपनी प्रजतु न्याय, नीतिपूर्वक पालन करी रह्या छे " (५) आ वात सासणीने राज रूप थरु गयो अने जिन स्मरणु पूर्वक समस्त प्रात कर्म पूरा करीने पोतानी मातानी पाये आये गयो त्या पडोथीने माताने नमन कर्युं

निद्रामुपगत' किंचिन्नोप्राच । ततो राजा लीलाम्प्रतिक्रिया रोहक मनाः स्पृशति । ततश्च रोहको निन्द्रः सजात' । राजा पृच्छति-अरे रोहकः । किं स्वपिपि ? । रोहकेणोक्तम्-राजन् ! जागर्मि । राजा प्राह-तर्हि किं चिन्तयसि ? । रोहकेणोक्तम्-राजन् ! एतच्चिन्तयामि-भवसः कतिपये पितरः सन्तीति । ततो राजा सत्ज्जः सन् मनाक् तूर्णोस्थित्वा प्राह-कथय-मम कति पितर सन्तीति । रोहकः प्राह-राजन् । पञ्च । राजा पुनः पृच्छति-कथय-ते च के । रोहकेणोक्तम्-प्रथमस्तावद् वैश्रवणः वैश्रवणस्येव भवतो दानशक्तेर्दर्शनात् । द्वितीयथाण्डाल, शत्रुसमूह प्रति चाण्डाल-

रोहक को जगाया पर वह नहीं जगा । इतनेमें राजाने सोते हुए उसके शरीरमें कधी के दोंतों का स्पर्श कराया तो वह निद्रारहित हो गया पर ज्यों का त्यों पडा रहा । इतनेमें राजा ने पुनः उससे पूछा-रोहक ! जग रहा है या सो रहा है । रोहकने उत्तर दिया महाराज ! जग रहा हू । राजा ने कहा-म्या विचार कर रहा है ? राजा के इस प्रश्न को सुनकर रोहकने कहा-क्या कहू ? राजाने कहा कुछ तो कह । रोहकने कहा-यदि कहूंगा तो आप नाराज हो जावेंगे, राजाने कहा-नाराज नहीं होऊंगा, कह । तब रोहकने कहा-सुनिये मैं इस समय यह विचार कर रहा हू कि आप के कितने पिता हैं ? राजा को इस रोहक के विचार पर कुछ लज्जा जैसी तो आई पर उसने यह उसके लिये प्रकट नहीं होने दी, थोड़ी ही देर चुप रहने के बाद राजा ने रोहक से कहा-मेरे कितने पिता हैं ? रोहक ने कहा-आपके पाच पिता हैं । राजा-वे कौन २ से हैं ? बतला ।

भाउथो पणु ते नान्यो नही अेवाभा रान्णये सूतेवा अेवा तेना शरीर पर डासकीना दाताअेनेो स्पर्श करान्यो ते निद्रा रहित थध गयो पणु त्याने त्या पउथो रह्यो, अेटले रान्णये तेने इरीथी पूछयु, “ रोहक ! तु नजे छे के उठे छे ? ” रोहके न्वाभ आअ्यो, “ महाराज ! नथु छु ” रान्णये पूछयु, “ शेो विचार करे छे ? ” रान्णनेो आ प्रश्न साभणीने रोहके कहु “ थु कहु ? ” रान्णये कहु, “ कथक तो कहे ” रोहके कहु “ नो कहीश तो तमे नाराज थशो ” रान्ण अे कहु “ कहे, नागज नही थाउ ” रोहके कहु, “ साभणो, अत्यारे हु ते विचार करी रह्यो छु के आपना पिता केटला छे ? ” रान्णने रोहकना आ विचार पर थोडी शरभ जेवु तो वाज्यु पणु तेखे ते तेनी पासे प्रगट थवा हीधी नही थोडीवार भौन रह्योने रान्णये रोहकने पूछयु “ मारे केटला पिता छे ? ” रोहके कहु “ आपना पाच पिता छे ” रान्णये पूछयु “ तेअो

वासस्थानमगमत् । रोहक च सर्वेषा मन्त्रिणा मुख्य मन्त्रिण कृतवान् ।

॥ इति त्रयोदशः पञ्चपितृकदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

औत्पत्तिकी बुद्धेर्वाचनान्तरेणोदाहरणानि प्रदर्शितानि । यथा—‘भरहसिल पणियरुक्खे०’ इत्यादि । तत्र—‘भरतशिलानामक. प्रथमो दृष्टान्तः पूर्वोक्तवद् बोध्यः।

अथ द्वितीयः पणितदृष्टान्त उच्यते—कश्चिद् ग्रामीण कृषीवल स्वग्रामा-
चिर्भिटिका आनीय विक्रेतु नगरद्वारे वर्तते, त प्रति धूर्तो नागरिकः प्राह—किमेको
मनुष्यस्तत्र सर्वाश्चिर्भिटिका भक्षयितु न प्रभवति ? । ग्रामीण प्राह—क एव समर्थ
स्यात्, य एताश्चिर्भिटिका भक्षयेत् । नागरिक आह—यद्यह भक्षयामि, तर्हि किं मे

के चित्तमें रोहक की बुद्धि के प्रति बडा अचभा हुआ और माता को
नमस्कार की इस चतुराई को देखकर राजा ने उसको अपने यहा प्रधान-
मन्त्री के पद पर रखलिया १३ ॥

यह तेरहवा पञ्चपितृकदृष्टान्त हुआ ॥ १३ ॥

औत्पत्तिकी बुद्धि के ऊपर अन्य वाचनाओं के अनुसार दृष्टान्त इस
प्रकार हैं—“ भर हसिल पणियरुक्खे० ” इत्यादि ।

इनमें भरतशिला नामका प्रथम उदाहरण जैसा पूर्वमें लिखा गया
है वैसा जानना चाहिये ? । पणित दृष्टान्त इस प्रकार है—

कोई एक ग्रामीण कृषीवल बहुत से चीमडों को भर कर बेचने के
लिये नगर के द्वार पर आया । यह देखकर एक नागरिक धूर्तने उसको
कहा—क्या एक मनुष्य तुम्हारे इन चीमडों को नहीं खा सकता है ? कृषी-

अथर ७ थर्ध अने भाताने नभन करिने ते पोताने स्थाने आयेथो गये
रोहकनी आ चतुरार्ध नेधने शलये तेने पोताने त्या वडा प्रधान पदे
राभी लीधे

॥ आ तेरमु पञ्चपितृक दृष्टान्त समाप्त ॥ १३ ॥

औत्पत्तिकी बुद्धिना विषयमा भील वाचनाओ प्रभाओ आ प्रकारना
दृष्टान्त छे—“ भर हसिल पणिय रुक्खे० ” इत्यादि—

तेमा भरतशिला नामतु पडेडु उदाहरण ने रीते पाछग लपेल छे
ते प्रभाओ ७ समल वेवानु छे (१) पणित दृष्टान्त आ प्रभाओ छे—

डोर्ध अेक गाभडाने ओडूत धणु थिलडा लर्धने वेचवाने भाटे नगरना
दरवाजा पासे आयेथे तेनेधने नगरना अेक धृताराये तेने कहु “ शु अेक
भाधुस तारा आ थिलडाओने आर्ध शकते नथी ? ” ओडूते कहु, “ हा, नथी

रहसि पृष्टवान्-मात ! कथय, अहं कतिभिर्जातोऽस्मि ? । जननी प्राह-वत्स !
 किमेतत् प्रष्टव्यम् निजपित्रा एव जातोऽसि । ततो राजा रोहक्योक्त वचः कथयित्वा
 जननीमिदमब्रवीत्-मातः ! स रोहकः प्रायोऽप्लीकं पुत्रिर्न भवतीति ततः कथय
 सत्यम् , एव पुनः पुनः पृष्टा माता राजानं प्राह-यदा मम कृषौ त्वं समवतरितः
 तत् प्रभाते तत्र पितुः समीपे वैश्रवणं सदृशः परमोदारो जिनदत्तनामा नगरश्रेष्ठी
 मया दृष्टः, तथा-तदा चाण्डालरजकवृश्चिक अपि तत्र दृष्टाः । एव स्वल्पिप्रादीनां
 पञ्चानां दर्शनेन तत्सस्कारयुक्तस्त्वमुत्पन्नः । अतस्त्वा निरीक्ष्य रोहकः प्रोक्तवान् ।
 तत एव मुक्ते सति राजा जननीं प्रणम्य रोहकचुद्धिं प्रति साश्चर्यचित्तः स्मृत्वा, स्वा-

पहुचते ही उसने माता को नमस्कार किया और एकान्त पाकर पृष्टा-हे
 माता ! मैं कितने धाप की सतान हूँ ? माने सुनकर कहा-बेटा !
 इसमें पूछने की बात ही कौनसी है ? तुम अपने पिता की ही सतान हो ।
 घादमें राजा ने अपनी माता को रोहककी बात से परिचित कराते हुए
 कहा, माता ! रोहक की बातें प्रायः सब सत्य निकलती हैं तो तुम सब
 र कहो, रोहकने हमको ऐसा क्यों कहा ? इस तरह माता से बारबार
 पूछने पर उसने अपने पुत्र से कहा-बेटा ! तुम जिस समय मेरी कुक्षि
 में अवतरित हुए थे उसी दिन प्रातः तुम्हारे पिता के पास मेने वैश्रवण
 जैसे परम उदार नगर श्रेष्ठ जिनदत्त श्रेष्ठी को देखा था ? । तथा उसी
 समय वह चाण्डाल, रजक एव वृश्चिक भी देखे थे । इस तरह इन पांचों
 के देखने से तुम इन के सस्कारों से युक्त उत्पन्न हुए हो । रोहक ने तुम्हें
 देखकर इसी लिये ऐसा कहा है । माता की इस बात को सुनकर राजा

अने एकान्त जेधने पूछ्यु-“ हे माता हे केटला पितानो पुत्र छु ? ” भाजे
 साबणीने कळु, “ तेभा पूछवा जेवु ज थु छे ? तु तारा पितानो ज पत्र छे ”
 त्थार भाद राजजे पोतानी माताने शैडकनी वातथी परिचित करवीने कळु,
 “ माता ! शैडकनी वातो सामान्य रीते साथी पडी छे तो तजे साथे साथु
 कडेा, शैडके भने जेवु शा भाटे कळु डशे ? ” आ प्रभाजे ते माताने वारवार
 पूछवाभा आवता तेभजे पोताना पुत्रने कळु “ हे जेटा ! जे सभजे भारी
 कुभे तारे जन्म थये ते ज दिवसे प्रात काये तारा पितानी पासे जे वैश्रवण
 जेवा परम उदार नगरशेठ जिनदत्त श्रेष्ठीने जेया डता तथा ते ज सभजे ते
 याडाल, घोभी अने वीछीने पणु जेया डता आ रीते ते पायेने जेवाथी
 तेभना ते ते सस्कार ताराभा उतर्या छे शैडके तने जेधने ते कारजे ज जेवु कळु
 छे ” मातानी आ वात साबणीने राजना भनभा शैडकनी अद्धि भाटे बारे

विश्वासमुत्पादयामि । तेनोक्तम्—विश्वासमुत्पादय । नागरिकेणोक्तम्—चिर्भिटिका
 विपणिवीथ्या विक्रयार्थं विस्तीर्य परीक्ष्यताम् । ग्रामीणेन तद् वचः स्वीकृतम् ।
 ततो द्वाभ्यामपि विपणिवीथ्या विक्रयार्थं चिर्भिटिका विस्तारिताः । ग्राहका समा-
 गताः । तैरुक्तम्—एताः सर्वा अपि चिर्भिटिका भक्षिता एव सन्ति एव मुक्ते सति
 नागरिकः ग्राह—लोकाना वाक्यैर्विश्वासः क्रियताम् । नागरिक वचन श्रुत्वा ग्रामीणः
 क्षुब्धो भूत्वा चिन्तयति—कथं मयाऽनेन द्वारेणाऽगम्यो महामोदकः प्रदेयः इति
 चिन्तया व्याकुलो भूतः स ग्रामीणस्तस्मान्नागरिकं घृतादात्मानं मोचयितुं भीतः
 सन्नेकं रूप्यकं दातुमुद्यतोऽभवत् किं तु तेन घूर्तेन रूप्यकं न गृहीतम् । अन्ते स

जात तुम्हें मजूर नहीं है तों तुम ऐसा करो इन्हें बेचने के लिये बाजारमें
 ले चलो फिर देखो तुम्हें यह विश्वास हो जावेगा कि मैंने तुम्हारे ये
 समस्त चीभड़े खाये हैं या नहीं । कृपीचल ने नागरिक घूर्त की इस बात
 को मान लिया । अब क्या या वे दोनों वहा से उन चीभड़ों को लेकर
 बाजारमें आये, और वहा उन्हें रख कर वे बेचने लगे । ग्राहकों ने वहा
 आकर ऐसा कहना प्रारम्भ कर दिया कि ये समस्त चीभड़े तो खाये हुए हैं ।
 ऐसा कहते ही नागरिक घूर्तने उस किसान से कहा देखो भाई
 ये सब लोग क्या कह रहे हैं ? अब तो तुम विश्वास करो । नागरिक के
 इन वचनों को सुनकर ग्रामीण कृपक क्षुब्ध हो उठा और सोचने लगा
 इतना बड़ा मोदक मैं इसे कहा से लाऊँ दूँ । इस प्रकार की चिन्ता
 से व्याकुल होकर उस कृपीचल ने उस घूर्त से अपना वचाव करने के

ये बात मजूर न होय तो तु तेने वेचना भाटे जनरमा लध ल पछी लेले
 तने भातरी थये के मे तारा आ भधा थिलडा भाधा छे के नही ? जेइते
 नागरिक घृतारानी ते वात भान्य ठरी डवे तेओ अन्ने ते थिलडाने लधने
 जनरमा आओ, अने त्या तेने भूङ्गीने वेचना लाग्या आड्डोअे त्या आवीने
 ओवु कडेवा भाड्यु के आ भधा थिलडा तो डोअेओ भाधेला छे ओवुं साल
 जाता ल ते घृताराअे ते जेइतने कधुं, “ले भाठी आ भधा बोडे शु कडे
 छे ? डवे तो तने भातरी थरने ?” घृतागना अे वचनेा सालणीने ते गाम-
 डीथे जेइत क्षोभ पाअेओ अने ते विचारवा लाग्ये “ओवडेा भोटो लाडवे
 हुं आ भाड्युअने व्याथी लावीने आयु ?” आ प्रजारनी चिन्ताथी व्याकुण
 थरने ने जेइते ते घृताराथी पोतानेा अचाव करवा भाटे कधुं, “भाध, तरे

प्रयच्छति । इदमसमम मत्वा ग्रामीण आह यदि भद्रयिष्यमि, तर्हि यादृशी मोद
कोऽनेन द्वारेण प्रविष्टो न स्यात् एव भूत मोदक तुभ्य पारितोषिक दास्यामि ।
तदा तातुभी कचित् साक्षिण कृत्वा प्रतिज्ञा कृतवन्तौ । ततोऽसौ नागरिकस्तस्य
सकलाधिभिर्भिटिका उन्निष्ठाः कृत्वा त्यजति । ततः पश्चान्नागमिो उदति-मया
सकलाधिभिर्भिटिका भक्षिताः, अतः स्वप्रतिज्ञाऽनुसारेण तथापिध महामोदक मद्य
प्रयच्छ । ग्रामीणः प्राह—त्वया मम चिर्भिटिका न भक्षिता, कथं ते महामोदक
दास्यामि । नागरिकः—मया सर्वाधिभिर्भिटिका भक्षिता इति न मन्यसे चेत् तर्हितव

घलने कहा—हा नहीं खा सकता है । नागरिक धूर्त ने कहा—यदि खा जाय
तो ? कृपीवल ने कहा कौन ऐसा समर्थ व्यक्ति है ? । नागरिक धूर्तने कहा
मैं हू । चोलो मैं यदि इन्हें खा जाऊ तो क्या इनाम दोगे । नागरिक के
इस कथन का असभव मानकर ग्रामीण ने कहा—यदि खाजाओ तो मैं
तुम्हें इनाममे इतना बड़ा लट्टट्ट टुगा जो इस दरवाजेमे नहीं घुस सकेगा
इस तरह उन दोनों ने किसी एक व्यक्ति को अपनी २ प्रतिज्ञा के विष
यमें साक्षीभूत बना लिया । अब उस नागरिक ने उस किसान के ब
समस्त चीभडे थोडा २ खाकर झुठे कर दिये और एक तरफ चीभडों
को खालिया है इसलिये तुम अपनी शर्त के अनुसार मुझे मोदक दो ।
ग्रामीण ने कहा—क्यो दू—तुमने समस्त चीभडे खाये कहा है । खाने पर
ही तो मोदक देने की शर्त है । नागरिक ने कहा वाह ! भाई ! वाह !
कौन कहता है कि मैंने तुम्हारे समस्त चीभडे नहीं खाये हैं । यदि यह

आध शकते । ” नगरना धृताराये कहु, जे आध नय तो ? ” जेइते कहु
“ जेभ दरवाने ममर्थ व्यञ्जित कोषु छे ? ” नागरीक धृतारे कहु, “ हु पोते
ज छु जे हु आ अधा थिलडा आध जठ तो मने शु धनाम आपीश ? ”
धृतारानी आ वातने असलवित मानीने गामडीयाये कहु, “ जे तमे आध
नये तो तमने हु धनामभा जेवडो मोटो लाडु आपीश जे आ दरवानभा
पेसी शकशे नहीं ” आ रीते ते जन्नेये कोषु जेक व्यञ्जितने पोत पोतानी
प्रतिज्ञाने साक्षी जनाये । हुवे ते धृताराये ते जेइतना अधा थिलडाने थोडा
थोडा आधने जेठा करी नाथ्या अने जेक तरङ्ग मुकी दीधा ते कडेवा लाग्ये,
“ जे जेइत ! मे तारा अधा थिलडा आध दीधा तेथी तु तारी शरत प्रभाषे
ने लाडु मने आप ” गामडीयाये कहु “ शा माटे आपु ? तमे अधा थिलडा
आधा नथी आधापछी तो लाडु आपवानी शरत छे ” धृताराये कहु, “ वाह !
लाध, वाह ! कोषु कडे छे के मे तारा अधा थिलडा आधा नथी ? जे तने

णोऽप्याकारिताः । ततो ग्रामीणेन साक्षिणा समक्षे स महामोदकः कस्मिंश्चिदिन्द्रकीलके
(नगरद्वारैकदेशे) स्थापितः कथितश्च रे मोदक ! गम्यताम्, गम्यताम् । ततोऽसौ
मोदको न चलति । ततस्तेन ग्रामीणेन साक्षिणा समीपे कथितम्—मया युष्मत्समीपे
एव प्रतिज्ञातम्, यद्यह पराजितो भविष्यामि, तदा नगर द्वारेण यो न निर्गच्छति
स महामोदको मया प्रदेयः, अयमपि मोदको न गच्छति, तस्मादह स्वप्रतिज्ञाव-
न्धान्मुक्तो जातः । एतच्च साक्षिभिरन्यैश्च नागरिकैः प्रतिपन्नमिति स प्रतिद्वन्द्वीधूर्तः
पराजितः इतीय नागरिकधूर्तस्यौत्पत्तिकीबुद्धिर्द्वितीयः पणितदृष्टान्तः ॥ २ ॥

इतिद्वितीयः पणितदृष्टान्तः

अथ तृतीयो वृक्षदृष्टान्त —

आम्रफलाभिलाषिणा पथिकाना क्वचिद्वने मर्कटा अन्तराय कृतवन्तः । ततः
पथिकास्तेषामाम्रफलानाप्राप्ते रूपाय विचिन्त्य तदुपरि पापाणखण्डैः प्रहार कृतवन्तः ।

मोदक को दरवाजे की एक ओर रखा दिया और कहना प्रारंभ किया
कि ओ मोदक ? जा-जा । परन्तु यह मोदक उस स्थान से चल विचल
नहीं हुआ । तब ग्रामीणने साक्षियों के सामने ऐसा कहा कि मैंने आप
लोगों के सामने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं हार जाऊंगा तो इस
नगर के द्वार से जो नहीं निकलेगा ऐसा बड़ा मोदक दूंगा । सो यह
मोदक यहाँ से नहीं चलता है अतः आप इसे ले लीजिये । अब मैं अपनी
प्रतिज्ञा से मुक्त होता हूँ । उसके इस कथन की सराहना साक्षियों ने
तथा अन्य नागरिकों ने भी की और उसकी बात को स्वीकार भी किया
इस तरह उस कृपीबल ने औत्पत्तिकी बुद्धि के प्रभाव से उस नागरिक
धूर्त को परास्तकर अपने घर गया ॥ २ ॥

यह दुसरा पणितदृष्टान्त हुआ ॥२॥

भूयैः अने डडेवा लाग्यो, “ हे लाडु ! न । न । पक्ष ते लाडु ते ज्ञ्यायेथी
अस्थे नही त्त्यारे गामडीयाये साक्षीओनी सामे अबुं कथुं दे “ मे आप
लोकोनी आगण येवी प्रतिज्ञा करी डती के जे हुं डारीश तो आ नगरना
दरवाणभाथी नही नीकणे तेवा मोटे लाडु आपीश, तो आ लाडु अही थी
यावतो नथी तो आप तेने लथं लो हुवे हुं भारी प्रतिज्ञाथी मुक्त थये।
धु ” तेना आ कथननी साक्षीओये तथा भीण नागरीकोये पक्ष प्रश सा करी
अने तेनी वातने मान्य पक्ष करी आ शीते ते जेइते औत्पत्तिकी बुद्धिना
प्रभावथी ते नागरीक धुतारने परास्त कथे अने ते पौताने घेर गये ॥ २ ॥
आ भीण पणित दृष्टान्त समाप्त ॥२॥

ग्रामीण शव रूपकाणि दातु प्रवृत्तः किंतु तदधिक लिप्युना तेन धूर्तेन श्रुत प्रवीर्यं न स्वीकृतम् ततोऽमी ग्रामीणश्चिन्तयति-इस्ती इस्तिनैवापनेयो भवति, अयं नागरिकः केनचिदन्येन नागरिकधूर्तेनैव समाप्रेयो भविष्यतीत्यनेन महकतिपयदिनानि व्ययस्था कृत्वा नागरिक धूर्तः सह मिलिष्यामि । इति निचिन्त्य तथैव कृतम् । केनचिदन्येन नागरिक धूर्तेन वस्मै ग्रामीणाय बुद्धिः प्रदत्ता । ततस्तद्बुद्धिबलेन पूषिकाऽऽपणत एक महामोदकमादाय ग्रामीणेन प्रतिद्वन्द्वी धूर्त आकारितः, साक्षि-

लिये कहा-भाई ! तुम मुझ से इसके बदलेमें एक रुपया ले लो । परन्तु उस धूर्त ने इस बात को कबूल नहीं किया । अन्तमें होते २ उस कृपक ने उसे सौ रुपये तक देने को कहा, परन्तु अधिक लेने की चाहना से उसने उन्हें लेना भी मजूर नहीं किया । “ग्रामीण ने विचारा ” बड़ी मुठिकल की बात है अब क्या किया जाय ? रैर-“हाथी हाथी से ही हठता है” ईस कहावत के अनुसार यह धूर्त किसी दूसरे नागरिक धूर्त से ही समझाया जा सकता है । ऐसा सोचकर उसने उस धूर्त से कहा कि भाई तुम कुछ समय तक अगठहर जाओ, जो तुम मागोगे सो दूंगा । ऐसा विचार कर वह किष्ठी और दूसरे नागरिक धूर्त के साथ मिल गया । अब क्या था-उस ग्रामीण कृपक के लिये दूसरे धूर्तने बुद्धि दी । उस बुद्धिबल से वह हलवाई की दुकान से एक बडासा मोदक ले आया, और उस प्रतिद्वन्द्वी धूर्त के पास आ पहुचा, तथा इस शर्तमें जो पहिले के साथी थे उन्हें भी बुला लिया । उन सब के सामने उसने उस

तेना षड्वाभा भारी पासेथी ओक इपीथी लो ” पण ते धृताराञ्जे तेनी ते वात मजूर न करी छेवटे वधता वधता ते जेइते तेने सो इपीथी आपवानु कहु पण वधारे भेणववानी धिञ्जावी तेणे ते रकम लेवानी ना पाडी “ गामडीयाञ्जे विचारुं ” लारे भुशकेली उली थछ छे डवे शु करे ? भेर ! “ हाथीने हाथी न असेडी शके छे ” आ कडेवत प्रभाणे आ धुताराने केध भीज नागरिक धुतारा वडे न समजवी शकाथे ” ओम विचाराने तेणे ते धुताराने कहु, “ तमे थोडी वार अही थेलो, तमे जे मागथो ते आपीश ” आवो विचार करीने ते शडेरना केध भीज धुताराने जेधने भज्यो डवे शु थयु ? ते गामडीया जेइतने भीज धुताराञ्जे बुद्धि आपी (युक्ति यतावी) ते बुद्धिअणे ते ओक क होधनी हुकानेथी भोटो जेवो लाडु लध आब्यो अने ते प्रतिद्वर्धि धुतारानी पासे आवी पडोअथे अने शरतने जे साक्षी हुतो तेने पण जालावी दीथो जे अधानी सामे तेणे लाडुने दरवाजनी ओक तरक

तस्य बहवः पुत्रा आसन् । तत्रैकः श्रेणिक एव राजलक्षणसम्पन्नः पुत्रस्तस्य समतः । अत एव राजा तस्मै न किञ्चिदपि ददाति, न च वचसाऽपि लालन वा क्रियते, तदाऽन्ये मम पुत्रा ईर्ष्यावशात् श्रेणिक हनिष्यन्तीति । इत्थं विचिन्त्य स मनसैव सावधानस्तद्रक्षणपरायण आसीत् ।

अथैकदा श्रेणिकः पितुः किञ्चिदप्यलभमानः सखेदः स्वभयनात् प्रस्थितः । स च पथिगच्छन् क्रमेण वेन्नातटनामके नगरे गतः । तत्रासौ श्रेणिकः धन्यनामकस्य श्रेष्ठिनो त्रिपणौ समुपनिष्टः तेन च श्रेष्ठिना तस्यामेव रात्रौ स्वप्ने सर्वगुण-

का राजा राजगृह नगरमें राज्य शासन करता था । उस के अनेक पुत्र थे । उनमें श्रेणिक नाम का पुत्र ही ऐसा था जो राजलक्षणों से सपन्न होने के कारण उसको अधिक प्रिय था परन्तु यह उसका प्रेम अन्य पुत्रों पर प्रकट नहीं हो पाता, कारण राजा न तो उसके लिये कुछ देता और न कभी प्रेमपूर्वक उससे बोलता ही था ऐसा भी वह इसलिये नहीं करता था कि ऐसा करने से अन्य पुत्रों के हृदयमें दाह होगी और इससे वे इसको मार डालेंगे । फिर भी मनमें यह ध्यान सदा रखता कि श्रेणिक की रक्षामें किसी भी प्रकार त्रुटि न रहे ।

एकदिन की बात है कि श्रेणिक अपने पिता के पास से कुछ भी जब नहीं पाया तो खेदखिन्न होकर वह अपने भवन से बाहर जानेके लिये निकल पड़ा । चलते २ वह वेन्नातट नाम के किसी एक नगरमें जा पहुँचा । वहाँ एक धन्य नाम के सेठ रहते थे । इनके यहाँ दुकानदारी का काम

राजगृह नगरमा राज्य करतो હતો તેને अनेક पुत्र હતા તે બધામા શ્રેષ્ઠિક નામનો પુત્ર જ એવો હતો કે જે રાજલક્ષણોથી યુક્ત હોવાને કારણે તેને વધારે પ્રિય હતો, પરન્તુ તેનો તે પ્રેમ બીજા પુત્રોના બળબામા આવતો નહી, કારણ કે રાજા તેને માટે કંઈ આવતો પણ નહી અને તેની સાથે પ્રેમથી બોલતો પણ નહી એવું પણ તે તેને માટે કરતો ન હતો કે એવું કરવાથી બીજા પુત્રોના મનમા ઈર્ષ્યા થાય અને તેઓ તેને મારી નાખે તો પણ તેના મનમા તે ચિન્તા હ મેશા રહેતી હતી કે શ્રેષ્ઠિકની રક્ષામા કોઈ ત્રુટિ રહેવી બેઈ એ નહી

એક દિવસની વાત છે કે શ્રેષ્ઠિકને પોતાના પિતા પાસેથી કંઈ પણ નહી મળવાથી તે ગમગીન થઈને પોતાના મહેલમાથી બહાર જવા નીકળી પડ્યો ચાલતો ચાલતો તે વેન્નાતટ નામના કોઈ એક નગરમા જઈ પહોચ્યો ત્યાં ધન્ય નામનો એક સેઠ રહેતો હતો તેની દુકાન ચાલતી હતી નગરમા

मर्कटा अपि क्रोधशक्त पथिका प्रतिदन्तुमात्रगृहोपरिसमाख्याम्रफलानि प्रोटयित्वा
पथिकोपरिप्रहरन्तिस्म । एव पथिकाना स्वाभीष्टसिद्धिरनायासतः सजाता ।

इति तृतीयो वृक्षदृष्टांतः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं क्षुल्लकदृष्टान्तं —

प्रायः सार्धमहस्रद्वय वर्षाणि पूर्वं राजगृहनगरे प्रसेनजित नामा नृप आसीत् ।

तीसरा वृक्ष दृष्टान्त—

एक वनमें अनेक आम के वृक्ष थे । वहीं पर बन्दर भी बहुत सँ
रहा करते थे । ऋतु के समय जब उन वृक्षोंमें फल लग आते तो वहा
से निकल ने वाले रास्तागिरों का मन उन फलों को तोड़कर खाने के
लिचे लालायित होने लगता, परन्तु करे क्या? क्यों कि उन पर बन्दर
रहते थे इसलिये रास्तागीर उन फलों को नहीं खा सकते थे । फिर अतमें
वे अपने बुद्धिबल से फल प्राप्त करने का उपाय सोचकर पत्थरों के डेलों
से बन्दरों की तरफ फेंकने लगे । तब वे बन्दर इस स्थितिमें उन वृक्षों
के फलो को तोड़ कर उन रास्तागिरों पर प्रहार करनेकी भावनासे
फल फेकने लगे इससे रास्ता गिरो को अनायास ही आम्रफल खानेको
मिल गये ॥ ३ ॥

॥ यह तीसरा वृक्षदृष्टान्त हुआ ॥ ३ ॥

चौथा क्षुल्लकदृष्टान्त—

प्रायः द्वाइहजार वर्ष पहिले की यह कथा है—जब कि प्रसेनजित नाम

त्रीणु वृक्षदृष्टात—

એક વનમાં આખાના અનેક વૃક્ષ હતા તેના ઉપર ઘણા વાનરા રહેતા
હતા ક્ષણ પાકવાની યોગ્યતા તે વૃક્ષો પર ક્ષણો લાગતા, તે તેમને જોઈને
ત્યાથી પ્રસાર થતા મુસાફરોનું મન તે ક્ષણોને તોડીને ખાવા માટે લલચાતું,
હતું, પણ કરે શું ? કારણ કે તે વૃક્ષો ઉપર વાનરા રહેતા હતા તેથી રાહગીરો
તે ક્ષણો ખાઈ શકતા નહીં પણ તેમણે પોતાની બુદ્ધિથી ક્ષણ મેળવવાની યુક્તિ
શોધી કાઢી તેઓ વાનરાઓને પથ્થર મારવા લાગ્યા, ત્યારે વાનરાઓ તેવૃક્ષોના
ક્ષણો તોડી તોડીને તે રાહગીરોને મારવાની ભાવનાથી ફેંકવા લાગ્યા આ રીતે
રાહગીરોને અનાયાસે જ કેરી ખાવાને મળી ગઈ

॥ આ ત્રીણુ વૃક્ષનું દૃષ્ટાંત સમાપ્ત ॥ ૩ ॥

ચોથું ક્ષુલ્લકદૃષ્ટાંત—

અહીં હજાર વર્ષ પહેલાની આ કથા છે, ત્યારે પ્રસેનજિત નામનો રાજા

श्रेणिक आह-भवतः । ततः श्रेष्ठी श्रेणिकचनश्रयणतो वर्षाऽऽहतकदम्बकुसुम-
मिव पुलकितसमस्तदेहः श्रेणिक सबहुमान स्वगृहं नीतवान् । भोजनादिक सुरु-
लमपि तदुचितं तस्मै प्रदत्तम् । तस्य पुण्यप्रभावात् प्रतिदिवस मम सपत्तिवर्धमाना-
ऽस्तीति मन्यानः स श्रेष्ठी कतिपयदिनातिक्रमे तस्मै नन्दा नाम्नी स्वदुहितर
प्रदत्तवान् । व्यतीतेषु कतिपयदिवसेषु नन्दा गर्भवती जाता ।

इतश्च प्रसेनजिन्वृष, स्वान्तसमयमुपागत त्रिचिन्त्य श्रेणिकस्य वार्ता जनपर-
म्परागतामधिगत्य तदाकारणार्थमुष्टवाहनात् पुरुषान् प्रेषयति । तैश्च श्रेणिकान्तिक

होकर कहा । आप किस के यहा महमान होकर के आये हुए हैं । सुनकर
कुमार ने प्रत्युत्तर दिया-आप के यहा । अब क्या था कुमार की इस
बात को सुनकर सेठ का समस्त शरीर ऐसा आनदोल्लास से पुलकित
हो उठा जैसा वर्षा के जल से कदम्ब का पुण्य विकसित हो उठता है ।
वह दुकान से शीघ्र उठा और बड़े आदर के साथ कुमार को अपने घर
ले गया । वहा उसने उचित भोजनादि सामग्री से कुमार का खूब
आदर सत्कार किया । कुमार जितने दिनों तक उसके घर रहा, उतने
दिनों तक सेठ को व्यापार में अच्छा लाभ होता रहा अतः उसको
अधिक पुण्यशाली मानकर सेठ ने कुछ दिनों के निकल जाने के बाद
अपनी पुत्री नन्दा का विवाह उस कुमार के साथ कर दिया । विवाह
हो जाने पर जब कितनेक दिन निकल चुके तो सेठ की पुत्री नन्दा
गर्भवती हो गई ।

इधर राजगृह नगर में श्रेणिक के निकल जाने के कारण बड़ी खल
बली मची । प्रसेनजित राजा ने उसी दिन से उसकी तलाश करवानी

“आप केने त्या अतिथि थाने आव्या छे ?” ते सालणीने कुमारे नवाव
आये, “आपने त्या” हवे शु थयु ? नेम वर्षाकाणे उदभन्नु कुल विकसे
छे तेम कुमारना आ वयने सालणीने शेठनु समस्त शरीर आन होवनासथी
पुलकित थयु तेओ तरतज दुकानेशी उला थयने कुमारने भानपूर्वक
पोताने घेर लथ गया त्या तेमणे योग्य लोअनादि सामग्री वडे कुमारने भूष
आदरसत्कार कथी, कुमार नेटला दिवस त्या रह्यो नेटला दिवसो सुधी शेठने
वेपारमा मारे लाल भणतो रह्यो तेथी तेने घण्यो पुन्यशाणी भानीने शेठ
डेटलाक दिवसो व्यतीत थया पजी पोतानी पुत्री नन्दाना लग्न तेनी साथे कथा
विवाह कथा पछी डेटलेक दिवसे शेठनी पुत्री नन्दा गर्भवती थय

हवे राजगृह नगरमा श्रेणिकना आल्या नवाथी लारे भणलणाट भये
प्रसेनजित राजाये ने न दिवसथी तेनी शोध कराववा माडी धीरे धीरे समा-

सम्पन्नः कुमारो निजदृष्टितर परिणयन दृष्टः । तस्य श्रेष्ठिनः श्रेणिकपुण्यप्रभावात्
 तस्मिन् दिने चिरसंचितप्रचुरद्वयप्रियेण महान् लाभो जातः । म्लेच्छहस्तात्
 महारत्नानि स्वल्पमूल्येन लब्धानि । ततः सोऽचिन्तयत्-अस्य ममान्तिकमुपागत
 स्यात् पुण्यप्रभावः, यन्मयाऽद्य महती संपत्तिः प्राप्ता । ततः स श्रेष्ठी श्रेणिकप्रियाकृति
 मतिमनोहरामालोक्य स्वचेतसि विचारयति-अयमेव कुमारः स्वप्ने मया रात्रौ दृष्टः ।
 ततोऽसौ श्रेष्ठी कृताञ्जली साष्टुः सप्रिय श्रेणिकप्रोक्तज्ञान-रस्य यूयं प्रापूर्णिकाः॥

होता था । नगरमें पहुँचते ही श्रेणिक इनकी दुकान पर जाकर बैठ गया ।
 इस सेठने उसी रात्रिमें एक ऐसा स्वप्न देखा था कि मेरी पुत्री का
 वैवाहिक सम्बन्ध किसी सर्वगुणसंपन्न कुमार के साथ हो गया है । श्रेणिक
 के पुण्य प्रभाव से उस दिन सेठ को बहुत दिनों का संचित सामान
 विक्रि जाने से बड़ा लाभ हुआ, तथा किसी म्लेच्छ के पास से उन्हें उसी
 दिन बहुमूल्य रत्न भी अल्पमूल्यमें मिल गये, इसलिये उसने विचारा
 कि-यह सब आज का लाभ मेरे पास आये हुए इस व्यक्ति के ही प्रभाव
 का फल है । जो लाभ इस दुकानमें आजतक मुझे नहीं प्राप्त हुआ वह
 इतना अधिक आज मुझे मिला है, इसमें इसके सिवाय और क्या
 कारण हो सकता है । इस तरह के विचार करने के साथ उसने यह
 भी विचार किया कि यह लडका आकृति से किनना अधिक सुन्दर
 है जो देखने वालों के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है । मालूम
 पड़ता है जिस सुन्दर कुमार को मैंने स्वप्नमें देखा है वह यही है । इस
 तरह अपनी विचार धारामें मग्न हुए श्रेष्ठीने कुमार को विनयावनत

पड़ोसीने श्रेष्ठिक तेमनी दुकाने जाँचने जैसी गये। ते शेठे ते ज रात्रे ओक
 ओवु स्वप्नु जेयु छतु के भारी पुत्रीने विवाह दोष सर्वगुणसंपन्न कुमारनी
 साथे थई गये। श्रेष्ठिकना पुण्यप्रभावे ते दिवसे शेठने धरुा दिवसथी सत्रह
 करैल भाव वेयाई गये, तथा केछ भेच्छनी पासेथी तेने धरु कीमती रत्न
 ओ ज दिवसे थोडी कीमतीमा भणी गयु, तेथी तेले भान्यु के आबने
 आ जधो लाल भारी पासे आवेल आ व्यक्तितना प्रभावे ज भज्यो छे आब
 सुधी आ दुकानमा जेटलेो लाल थयो नथी जेटलेो लाल आबे भने भज्यो
 छे, तेनु आ व्यक्ति सिवाय थीनु शु कारणु सलवी शके ? आ प्रभावे
 विचार करता करता तेने ओ पणु विचार थयो के आ टोकरो देखावमा डेटलेो
 जधो सुहर छे जे जोनारना मनने तेना तरह आकरो छे जे सुहर कुमार जे
 स्वप्नामा जेयो छतो ते आ कुमार जे होयो जेछओ ओम लागे छे आ
 प्रभावे विचारधारामा लीन थयेल ते शेठे ते कुमारने विनयपूर्वक पूछयु

नन्दायाः पिता तदोहद त्रिज्ञाय वेत्तातटनगराधीशस्य राज्ञोऽनुमतिमादाय दोहद
 पूरितवान् । कालक्रमेणप्रसवसमये समागते तस्याः प्रातः सूर्यमण्डलमिव दिशः
 प्रकाशयन् पुत्रः समुत्पन्नः । द्वादशे दिवसे धन्यश्रेष्ठिना दोहदानुसारेण 'अभयकुमार'
 इति तन्नामकृतम् । अभयकुमारोऽपि नन्दनपते कल्पतरुरिवसुखेन वर्धते । तेन यथा
 समय सकलाऽपि कला गृहीता ।

हुआ कि मैं हाथी के ऊपर बैठकर दीनजनों को प्रचुर द्रव्य दान करूँ,
 और अमारि घोपणा द्वारा जीवों को अभयदान दूँ । नदा के पिता ने
 अपनी पुत्री के इस दोहद को जानकर उसको पूर्ति की आज्ञा वेत्तातट
 नगर के राजा से लेकर दान पुण्यपूर्वक अमारि घोपणा द्वारा जीवों को
 अभयदान देकर अपनी पुत्री के दोहद की पूर्ति की । नदा का धीरे २
 गर्भ का समय व्यतीत होने लगा । कालक्रम से उसके नौ मास साढ़े
 सात रात्रि बीतने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले प्रातः
 कालिक सूर्यमण्डल के समान अपनी प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित
 करते हुए एक महातेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ । बारह दिन के बाद
 धन्य श्रेष्ठी ने दोहद के अनुसार अर्थात् गर्भ में अभयदानका
 भावना होनेसे उस नवीन बालक का नाम अभयकुमार रखा । नदनवन
 में जिस तरह कल्पवृक्ष वृद्धिगत होता है उसी प्रकार अभयकुमार भी
 अपने नाना के यहा सुखपूर्वक बढ़ने लगा । क्रमशः जैसा २ यह कुमार
 बढ़ता गया वैसे २ वह अनेकविध कलाएँ भी सीखता गया । इस तरह
 धीरे धीरे २ सकलकलाओं में वह पारगत हो गया ।

आपु अने अमारिघोषणा द्वारा लुबेने अलयदान आपु नदाना पिताअने
 पोतानी पुत्रीना आ दोहदने जाणीने ते पूरे उरवा माटे वेत्तातट नगरना
 राजनी आज्ञा लधने दान पुन्य सहित अमारिघोषणा द्वारा लुबेने अलयदान
 दधने पोतानी पुत्रीना दोहद पूरे कथे नदाना गलने समय धीमे धीमे
 व्यतीत थवा लाग्ये । कालक्रमे नव मास अने साडासात रात्रि पसार थता तेणे
 हसे दिशाअने प्रकाशित करनार प्रात काणना सूर्यमण्डल जेवा, पोताना तेजथी
 दिशाअने प्रकाशित करता अेक महातेजस्वी पुत्रना जन्म आय्ये । पार दिवस
 पछी धन्यशेठे अलयदानना दोहद अनुसार ते नवागत जाणकुनु नाम अलयकु
 भार रापु नदनवनमा जेम कल्पवृक्ष वधे उ तेम अलयकुमार पछु पोताना
 दादाने त्या सुखपूर्वक मोटो थवा लाग्ये, जेम जेम ते मोटो थता गये तेम
 तेम ते अनेक प्रकारनी कलाअे पछु सीखता गये आ रीते धीरे धीरे ते
 सधणी कलाअेमा पारगत थये ।

मागत्य शिक्षापितम्—कुमार ! शीघ्रमागम्यताम्, राजा सत्वरमाकारयति । ततः श्रेणिकः पितुर्वचनं शिरोधार्यं मत्वा सगर्भा नन्दा पृष्ट्वा राजपुरुषैः सह राजगृहं नगरं प्रस्थितः । तदा श्रेणिकेन स्वपरिचयप्रदानार्थं नन्दानिवासमग्नस्य भित्तीं स्वनाम ग्रामादिकं लिखितम् । निर्गते श्रेणिके मासत्रये व्यतीते सति नन्दायाश्च देवलोक-च्युतमहानुभावागर्भसत्त्व प्रभावादेव दोहदः समुत्पन्नः—अहं गजोपरि समासीना दीनेभ्यः प्रचुरं द्रव्यदानं ददामि, अमारिघोषणा कारयित्वा—चामयदानं ददामीति ।

प्रारभ कर दी । धीरे २ पता चला कि श्रेणिक वेदनाट नगर में घन्यश्रेणी के घर पर है । घड़े आनन्द के साथ वह उसका जामाता बनकर अपना समय व्यतीत कर रहा है । एक समय की बात है कि प्रसेनजित राजा को जब अपना अन्त समय आ चुका है ऐसा ज्ञान हुआ तो उसने श्रेणिक को बुलाने के लिये अपने यहां के उष्ट्रवाहकों को उसके पास भेजा । वे वहां पहुँचकर कहने लगे—कुमार ! आप शीघ्र घर चलिये, राजा ने आप को बहुत जल्दी बुलाया है । उन उष्ट्रवाहकों की इस बात को सुनकर एव पिता के आज्ञारूप वचनों को शिरोधार्य मानकर श्रेणिकने सगर्भा नदा को वहीं पर छोड़कर उन लोगों के साथ २ वहा से राजगृह की तरफ प्रस्थान कर दिया । श्रेणिक जिस समय वहा से प्रस्थित हुआ था उस समय उसने अपना ग्राम आदि का समय परिचय नदा के निवास भवन की भित्ति पर लिख दिया था । श्रेणिक को गये हुए जब तीन मास व्यतीत हो चुके तब देवलोक से च्युत होकर गर्भ में आये हुए महाप्रभावशाली बालक के प्रभाव से नदा को दोहद उत्पन्न

आर भल्या के श्रेणिक वेदनाट नगरमा घन्य श्रेणने घर रहे छे, अने तेभने। न्माथ थधने धष्ठा आनदमा पोताने। समय व्यतीत करे छे अेक द्विपक्षनी बात छे के न्यारे प्रसेनजित राजने पोताने। अन्तकाण नजिक छे तेम लाग्यु, त्यारे तेमणे श्रेणिकने गोलाववा भाटे पोताने त्याथी जे टवाडकेने तेनी पास मोकल्या तेमणे त्या न्धने कह्यु, “कुमार ! आप जलही घर आवे, राजअे आपने धष्ठा जलही गोलाव्या छे ” ते जे टवाडकेनी आ वात सालणीने अने पिताणी आज्ञाने साथे चडावीने, श्रेणिक सगर्भा नन्दाने त्या न् मूहीने ते बोकेनी साथे न् राजगृह जवा उपडये। श्रेणिक न्यारे त्याथी रवाना थये। त्यारे तेणे पोताना गाम आदिने। थये। परिचय नदाना निवासस्थानना द्विवाल पर लप्री दीये। हुते। न्यारे श्रेणिकने त्याथी गये त्रष्टु मास पत्तार थया। त्यारे देवलोक भाथी स्थवीने गर्भमा आवेल मडाप्रलावशाणी आणकने प्रलावे नदाने अवे। दोहद उत्पन्न थये के हु हाथी पर सवार थधने गरीष बोकेने पुष्कण हान

नन्दायाः पिता तदोहद विज्ञाय वेन्नातटनगराधीशस्य राज्ञोऽनुमतिमादाय दोहद पूरितवान् । कालक्रमेणप्रसवसमये समागते तस्याः प्रातः सूर्यमण्डलमिव दिशः प्रकाशयन् पुत्रः समुत्पन्नः । द्वादशे दिवसे धन्यश्रेष्ठिना दोहदानुसारेण 'अभयकुमार' इति तन्नामकृतम् । अभयकुमारोऽपि नन्दनवने कल्पतरुखिचसुखेन वर्धते । तेन यथा समय सकलाऽपि कला गृहीता ।

हुआ कि मैं हाथी के ऊपर बैठकर दीनजनों को प्रचुर द्रव्य दान करूँ, और अमारि घोपणा द्वारा जीवो को अभयदान दूँ । नदा के पिता ने अपनी पुत्री के इस दोहद को जानकर उसको पूर्ति की आज्ञा वेन्नातट नगर के राजा से लेकर दान पुण्यपूर्वक अमारि घोपणा द्वारा जीवो को अभयदान देकर अपनी पुत्री के दोहद की पूर्ति की । नदा का धीरे २ गर्भ का समय व्यतीत होने लगा । कालक्रम से उसके नौ मास साढे सात रात्रि वीतने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले प्रातः कालिक सूर्यमण्डल के समान अपनी प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए एक महातेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ । बारह दिन के बाद धन्य श्रेष्ठी ने दोहद के अनुसार अर्थात् गर्भ में अभयदानका भावना होनेसे उस नवीन बालक का नाम अभयकुमार रखा । नदनवन में जिस तरह कल्पवृक्ष वृद्धिगत होता है उसी प्रकार अभयकुमार भी अपने नाना के यहा सुखपूर्वक बढ़ने लगा । क्रमशः जैसा २ यह कुमार बढ़ता गया वैसे २ वह अनेकविध कलाएँ भी सीखता गया । इस तरह धीरे धीरे २ सकलकलाओ में वह पारगत हो गया ।

आपु अने अमारिघोषणा द्वारा लुवोने अलयदान आपु नदाना पिताये पोतानी पुत्रीना आ होइहने नखीने ते पूरे करवा भाटे वेन्नातट नगरना राजनी आज्ञा लधने दान पुन्य सहित अमारिघोषणा द्वारा लुवोने अलयदान हने पोतानी पुत्रीना होइह पूरे कर्यो नदाना गर्भने समय धीमे धीमे व्यतीत थवा लाग्यो । जालकमे नव मास अने आडासात रात्रि पमार थता तेहे हसे दिशायेने प्रकाशित करनार प्रात जाणना सूर्यमण्डल जेवा, पोताना तेजथी दिशायेने प्रकाशित करता अेक महातेजस्वी पुत्रने जन्म आय्यो । पार द्विस पधी धन्यश्रेठे अलयदानना होइह अनुसार ते नवागत पाणकनु नाम अलयकुमार रापु नदनवनमा जेम कल्पवृक्ष वधे छे तेम अलयकुमार पणु पोताना दाहने त्या सुभपूर्वक मोटो थवा लाग्यो, जेम जेम ते मोटो थतो गयो तेम तेम ते अनेक प्रकारनी कलाओ पणु शीभतो गयो आ रीते धीरे धीरे ते सधणी कलाओमा पारगत थयो ।

स चैकदा मातरं पृष्टवान्-मातः ! पिता मम कोऽस्ति? स च कुत्र वर्तते ?। अभयकुमारस्य त्रयः श्रुत्वा जननीं मूलतः समारभ्य सर्वं वृत्तं तस्मै कथयित्वा श्रेणिकं लिखितं परिचयं भित्तीं दर्शयतिस्मिन् । ततो मानुषं चनात् भित्तिर्लिखितं पठनाच्च पितुः परिचयं ज्ञात्वा स मातरमत्र गीत्-राजगृहेऽस्माभिर्गन्तव्यम् । एव विचार्य तौ धन्यश्रेष्ठिनमापृच्छय राजगृहनगरसमीपे समागतौ । अभयकुमारस्तत्र बहिर्द्वारेण मातरं निवेश्य पितुर्दर्शनार्थं राजगृहनगरं प्रविष्टः ।

तत्र पुरः प्रवेश एव निर्जलं कूपतटे समन्तादस्थितं लोकसमूहं दृष्टवान् ।

एक दिन की बात है कि अभयकुमार ने अपनी माता से पूछा कि माताजी-यह तो बताओ कि मेरा पिता कौन है और वे कहाँ रहते हैं । पुत्र की इस बात से प्रभावित होकर उसकी माता नदा ने उससे पिता का वृत्तान्त आद्योपान्त उसको सुना दिया, तथा उनका भित्तिपर लिखित पता भी उसको बतला दिया माता से कहने से तथा भित्तिपर लिखे हुए परिचय के देखने से अभयकुमार ने जय अपने पिता का परिचय पा लिया तो वह बाद में अपनी माता से कहने लगा-माता ! चलो-हम तुम दोनों राजगृहनगर चलो । विचार निश्चित हो चुकने के बाद वे दोनों धन्य श्रेष्ठी को पूछकर वहाँ से चले, और चलते २ राजगृह के पास आगये। अभयकुमार बाहिर के बगीचे में माता को रखकर स्वयं पितासे मिलने के लिये राजगृह नगर में जाने लगा । वहाँ उसने लोगों का एक समूह देखा जो निर्जल कुएँ को सब तरफ से घेर कर खड़ा था ।

એક દિવસ અભયકુમારે તેની માતાને પૂછ્યું “ માતાજી ! એ તો ખતાવો કે મારા પિતાજી કોણ છે અને કયા રહે છે ? ” પુત્રની આ વાતથી પ્રભાવિત થઈને તેની માતા નન્દાએ આદિથી અન્ત સુધીનું તેના પિતાનું વૃત્તાન્ત તેને સંભળાવ્યું, અને દિવાલ પર લખેલ તેમનું ઠેકાણું પણ તેને ખતાવ્યું માતાના કહેવાથી તથા દિવાલ પર લખેલ પરિચય જોઈને જ્યારે અભયકુમારને તેના પિતાને પરિચય મળ્યો ત્યારે તે તેની માને કહેવા લાગ્યો, “ માતા ! ચાલો, આપણે બંને રાજગૃહ નગરમાં જઈએ ” ચોક્કસ નિર્ણય થતા ધન્ય શ્રેષ્ઠીને પૂછીને તેઓ બંને રાજગૃહ જવાને ઊપડયા, અને ચાલતા ચાલતા રાજગૃહની પાસે આવી ગયા અભયકુમાર બહાર બગીચામાં માતાને મૂકીને પોતે પિતાને મળવા માટે રાજગૃહ નગરમાં જવા લાગ્યો ત્યાં તેણે ઢોંકોનું એક ટોણું જોયું જે એક નિર્જળ કુવાને ચારે તરફથી ઘેરીને

अभयकुमारस्तत्र गत्वा लोकान् पृच्छति—किमित्येप लोकसमूहः ? । जनैरुक्तम्—
अस्य मध्ये राज्ञोऽङ्गुलिमुद्रिकावर्तते, यः खलु तदस्थित एव स्वहस्तेन गृह्णाति, तस्मै
राजा महत् पारितोषिकं प्रदास्यति । ततोऽसौ कुमारो राजपुरुषान् पृच्छति किमित्येप
लोक समूहो वर्तते । राजपुरुषैरपि तथैव रुच्यते । अभयकुमारो राजपुरुषान् प्राह
—अहं रूपान् बहिः स्थित एव तदङ्गुल्याभरणं समुद्धरामि यदि राजा स्वप्रतिज्ञा
पालयेत् । राजपुरुषैरुक्तम्—हे भद्र ! उद्घ्रियता तदङ्गुलीयकम् राजा स्वप्रतिज्ञमवश्य
पालयिष्यति । अभयकुमारस्तदङ्गुलीयकं सम्यग्निरीक्ष्य तदुपरि अशुष्कं गोमय
पातयति । अशुष्कगोमयाऽऽहतं सत् तदङ्गुलीयकं तत्र सलग्नम् । ततस्तदुपरि

अभयकुमार शीघ्र ही वहाँ पहुँचा और लोगों से पूछने लगा
—यह लोगों का समुदाय यहाँ क्यों एकत्रित हुआ है। सुनकर
लोगों ने उत्तर दिया—इसमें राजा की अगूठी गिरगई है, जो व्यक्ति
उसको ऊपर खड़े २ ही अपने हाथ से निकाल देगा—उस को
राजा बड़ी भारी इनाम प्रदान करेगा। लोगों की इस बात का
सवाद पाने के लिये अभयकुमार ने वहाँ खड़े हुए राजपुरुषों से पूछा
तो वही पहिली वाली बात उन्होंने ने भी उस से कही। सुनकर अभय-
कुमार ने राजपुरुषों से कहा—मैं कुण से राजा की अगूठी को बाहिर खड़े
रह कर ही निकाल सकता हूँ, यदि वे अपनी प्रतिज्ञा के पक्के हों तो।
अभयकुमार की इस बात से प्रसन्न होकर उन्होंने ने कहा—भद्र ! आप तो
अपना काम कीजिये, राजा अपनी प्रतिज्ञा का पालन अवश्य करेगा।
इस बात को सुनकर अभयकुमार ने कुण में अगूठी किस ओर पड़ी है
यह अच्छी तरह देखा, पश्चात् उस के ऊपर उसने कही से लाकर गोबर

उल्लु इतु अलयकुमार तस्त न त्या पडोअथो, अने दोडोने पूछवा लाओये डे
दोडोने टोणु अही शा भाटे ओठु थयु छे ? दोडोने नवाण आथो,
“ आ कुवामा गजनी वी टी पडी गध छे ने व्यक्ति उपर उला उला न पोताना’
छथे तेने गडार डाढथे, तेने राजा मोटु धनम आपथे ” दोडोनी आ वातनी
भातरी करवा भाटे अलयकुमारे त्या उलेला राजपुरुषोने पूछयु तो तेमणे पथु
अे न प्रभाणे कळु, ते सालणीने अलयकुमारे राजपुरुषोने कळु, “ने राजा
पोतानी प्रतिज्ञामा दढ छेय तो हु कुवामाथी राजनी वी टी गडार उलो रहीने
न डाढे शकु तेम छु ” अलयकुमारनी आ वातधी प्रसन्न थधने तेमणे कळु,
“ लद्र ! आप आपनु काम पूर करे राजा पोतानी प्रतिज्ञानु अवश्य
पालन करथे ” आ वातने सालणीने अलयकुमारे कुवामा कथ पाणुअे वी टी
पडी छे ते ध्यानपूर्वक जेयु, मधी तेणे केध नआअेथी छायु लावीने तेना

शुष्कतृणानि पातितानि । अथ कथञ्चित् तत्राग्नि मयोमेकृते गोमयः शुष्को जातः॥
एव गोमये शुष्के सति कूपान्तरात् पानीयमानीय तेन कुमारेण म कूपः समृतः ।
जलपरिपूर्णस्य कूपस्योपरि तदद्दुग्लीयक संहितः शुष्कगोमयस्तरति । ततः कूप
तटस्थ एवाभयकुमारस्तदद्दुग्लीयकं गृहीतवान् । तदा लोका आनन्दकोलाहल कुर्वन्ति
राजपुरुषा राज्ञः समीपमागत्य निवेदयन्ति-स्वामिन् ! एकेन गालकेनाद्दुग्लीयक
कूपात् समुद्भूतम्, न चासौ बालकः कूपे म्रियतिः । ततो राज्ञा सोऽभयकुमारो
राजपुरुषैराकारितः । अभयकुमारस्तदद्दुग्लीयकं गृहीत्वा राज्ञः समीपमागत्य तद-
द्दुग्लीयकं राज्ञे समर्पितम् । राजा त पृच्छति - कस्त्वम् ? । अभयकुमारोक्तम्-

डाल दिया। गोबर में वह अगूठी चिपक गई। गदमें उसने उम गोबर के
ऊपर शुष्कतृणोंको डालकर किसी तरह वह अग्नि प्रज्वलित की। इस
तरह गोबर के सूक जाने पर दूसरे कुए से पानी लाकर उस कुए में भर
दिया गया। पानी भी इतना भरा गया कि वह कुए के कठ तक आगया
उसमें अगूठी युक्त वह शुष्क गोमय भी ऊपर तिर आया। अभयकु-
मार ने उसको कुए पर खड़े रहकर ही उठा लिया। इस तरह जब उसके
पास राजा की अगूठी आ गई तो लोगों ने यह देखकर बड़ा भारी आनन्द
कोलाहल करना प्रारंभ किया। राजा को जब राजापुरुषों ने जाकर यह
समाचार सुनाया तो उसने प्रसन्न होकर बालक अभयकुमार को अपने
पास बुलवाया। राजपुरुषों ने आकर अभयकुमार से कहा कि आप को
राजा साहेब बुला रहे हैं। अभयकुमार उनके साथ अगूठी को लेकर
राजा के समीप आया, और वह अगूठी बड़े आनन्द के साथ राजा को
दे दी। राजा ने हर्षित होते हुए उससे पूछा-तुम कौन हो। अभयकु-

ऊपर नाभ्यु, छाषुमा ते वीटी चोटी गध त्पार भाइ तेछे ते छाषु उपर सूड
धास नाभीने कोर्ध पषु रीते त्या अग्नि सणगाव्ये आ रीते छाषु सूडार्ध
जता भीज कुवाभाथी पाषी लावीने ते कुवाने पाषीथी लरी हीधो अेटलु पाषी
लथुं के ते कुयो काठ सुधी लराध गयो वीटी वाणु ते सूड छाषु पषु पाषी
पर तरवा लाज्य अलयकुमारने कुवा पर उला रक्षीने ज पोताना छाथे ते
उपाडी लीधु आ रीते न्यारे तेनी पासे राननी वीटी आवी त्यारे डोकाव्ये
ते नेधने आनदसूयक ध्वनि कथी रानने राजपुरुषोव्ये नेधने सभाथार
स लजाव्या त्यारे तेछे प्रसन्न थधने आलक अलयकुमारने पोतानी पासे जोलाव्ये
राजपुरुषोव्ये आवीने अलयकुमारने कछु के “आपने रान साडेण जोलावे छे”
अलयकुमार तेमनी साथे वीटी लधने राननी पासे गयो, अने ते वीटी धषु
आनद साथे रानने आपी रानव्ये थुशी थधने तेने पूछ्यु “तमे के ?”

स्वयमेव परीक्ष्यताम् । एवमुक्ते सति राज्ञा लक्षणादिनाऽसौ कुमारः स्वपुत्रत्वेन ज्ञातः । ततोऽसौ कुमारो राज्ञापुष्टः सन् प्राक्तनवृत्तान्तं कथितवान् । अभयकुमारस्य वच. श्रुत्वा राजा प्रमुदितो जातः । ततो राजा प्राह—वत्स ! तव जननी कुत्र वर्तते । अभयकुमारः प्राह—अस्य नगरस्य बहिरुद्याने, ततो राजा सपरिवारस्तस्याः संमुखे गतः । अभयकुमाश्चाग्रे गत्वा सर्वं वृत्तं मात्रे निवेदयति स्म । अत्रान्तरे राजा समागतः । तच्चरणयोर्नन्दा प्रणमति । ततो राजा भूषणादिप्रदानेन संमानिता सा सपुत्रा त्रिपुराद्वा नगरं प्रवेशिता । अभयकुमारश्चामात्यपदे स्थापितः ॥

॥ इति चतुर्थः ध्रुवकटदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

मार ने कहा आप इस की स्वयं जाच कीजिये। राजा ने उसके लक्षण आदि देखकर यह निश्चय कर लिया कि यह कुमार मेरा ही निजपुत्र है। राजा ने उम से सत्र पहिले की बातें पूछी तो उमने सब अपनी पहिले की बातें बतला दी। इस तरह अभयकुमार के बचनों को सुनकर राजा को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। उसने कहा वेदा! तुम्हारी माता कहा है। अभयकुमार ने कहा—इस नगर के बगीचे में है। सुनते ही राजा सपरिवार उस के समुख गया। अभयकुमार माता से उनके जाने से पहिले पहिले ही पहुँचकर सब समाचार कह रहा था कि इतने में राजा वहा सपरिवार आ पहुँचा। पति को आया हुआ देखकर नदा ने उनके चरणों में नमस्कार किया। राजा ने भूषण आदि प्रदान कर उसका बहुत अच्छा स्वागत सत्कार किया। बाद में बड़े ठाठ बाट के साथ उसका पुत्रसहित नगर में प्रवेश कराया गया। राजा अभयकुमार को प्रधान पद देकर

अभयकुमार के कहु, “आप जते ज तेनी तपास करे।” राजा जे तेना लक्षणे आदि जेईने जेवे निरुथ कथे के आ कुमार भारे पोताने ज पुत्र छे राजा जे पडेलानी जधी वाते तेने पूछी तो तेजे पोतानी पडेलानी जधी वाते जतावी दीधी आ प्रभाजे अभयकुमारना वथने साजणाने राजा धजे। सतोष पाभ्ये तेजे कहु, “जेग। तारी माता क्या छे ?” अभयकुमार के कहु, “आ नगरनी जडार आवेल जगीआभा छे” ते साजणता ज राजा सपरिवार तेनी पासे जथे तेभना त्या पडोयता पडेल ज अभयकुमार तेनी माताने जधा सभायार आपते। डते जेवामा राजा सपरिवार त्या आवी पडोयथा पतिने आवेल जेईने नदा जे तेभने यरजे पडीने नमन कथुं, राजा जे आभू पडो आदि आपीने तेनु धजे ज स्वागत कथुं पछी मोटा ठाठ माठथी पुत्र सहित तेना नगरमा प्रवेश कराववामा आये। राजा अभयकुमारने प्रधान पद

अथ पञ्चमः पट्टदृष्टान्तः—

उभौ पुरुषौ क्वचिज्जलाशये मदैव गत्वा स्नातुं प्रवृत्तौ । तत्र कस्योर्णामिय
 प्रावरणमासीत् द्वितीयस्य शरीरञ्च श्रद्धनयन्न कार्पासिकमूत्रमयम् । कम्बलरः
 पुरुषस्तदा स्नात्वा सत्वर मन्यस्य कार्पासिकमूत्रमय यस्मादाय चलितः । तदा
 द्वितीयस्तमाह्वयन् वदति—अयि ! इदं भवदीय वस्त्रमत्र चर्चते त्वया मम यन्न गृहीतम्
 अतस्तन्मे देहि इत्युक्तोऽसौ तद्वचनमशृण्वन्नेव गतः । ततो ग्रामे समागत्य विवद-
 मानौ तौ पुरुषौ न्यायार्थं राजकुल गतयन्तौ । तत्र न्यायाध्यक्ष निदेशेन कश्चिद्वा
 षडे उत्साह और हर्ष के साथ अपना समय व्यतीत करने लगा ४ ।

॥ यह चौथा क्षुल्लकदृष्टान्त हुआ ॥ ४ ॥

पांचवा पट्टदृष्टान्त—

एक समय की बात है कि कोई दो पुरुष किसी जलाशय में साथ २
 स्नान करने के लिये उतरे । एक के पास ऊनी कपडे थे और दूसरे के
 पास सूती । जिस के पास ऊनी कपडे थे वह जब स्नानकर जलाशय से
 बाहर निकला तो उसने दूसरे व्यक्ति के वे सूती कपडे उठा लिये और
 लेकर चला गया । उसने उसको पुकारा कि भाई । तुम्हारे ऊनी कपडे तो
 यहा रक्खे हैं मेरे सूती कपडे तुम ले जा रहे हो सो मुझे दे दो । परन्तु
 उस की बात उसने नहीं सुनी और आगे चला गया । वह भी नहा
 धोकर उसके साथ ही चला । परस्पर में दोनों की बातचीत होने लगी ।

आपीनि धष्ठा दुर्षं तथा उत्साहपूर्वकं चोतानो समय व्यतीत करवा लाग्ये

॥ आ योथु क्षुल्लकदृष्टान्त समाप्त ॥ ४ ॥

पाचमु पट्टदृष्टान्त—

એક સમયની વાત છે કેઈ બે પુરુષ કેઈ જળાશયમાં એકી સાથે સ્નાન
 કરવાને માટે ઉતર્યા એકની પાસે ગરમ કપડા હતા અને બીજાની પાસે સૂત
 રાઉ કપડા હતા બેની પાસે ગરમ કપડા હતા તે બંન્નારે જળાશયમાંથી સ્નાન
 કરીને બહાર નીકળ્યે ત્યારે તેણે બીજા માણસના સૂતરાઉ કપડા ઉપાડી
 લઈને ચાલતો થયો બીજા માણસે બંન્નારે આ બંન્થુ ત્યારે તેને માટા
 અવાજે કહ્યુ “ભાઈ! તમારા ગરમ કપડા તો અહી પડ્યા છે મારા સૂતરાઉ
 કપડા તમે લઈ બંન્ઓ છો તે મને તે આપી દો ” પણ તેણે તેની તે વાત
 સાંભળી જ નહી અને તે આગળ ચાલ્યો ગયો તે પણ નાહી ધોઈને તેની
 પાછળ પડ્યો, અને તેની સાથે થઈ ગયો બંન્ને વચ્ચે ચર્ચા થવા લાગી વાત

जपुरुषस्तयोर्द्वयोरपि गिर केशान् रुद्धतिरुया समार्जयति । केशाना समार्जने कृते सति ऊर्णामयपट स्वामिनः केशेभ्य ऊर्णावयवा विनिर्गताः, ततो ज्ञातम् अयमेव कम्पलस्य स्वामीति द्वितीयो निरुहीतः । स न्यायाध्यक्षेण समर्पितं स्वकीय सूत्र-मय वस्त्र गृहीत्वा प्रथमो गतः ।

॥ इति पञ्चमः पट्टद्वयान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं सरट्टद्वयान्तम्—

कश्चित् पुरुषः पुरीपोत्सर्गं कर्तुं वने प्रविष्टः । तत्र कश्चिद् विलमदृष्ट्वा तत्समीपे मलत्यागार्थमुपविष्टः तदा सरटो विले प्रविशन् स्वपुच्छेन तस्य गुद स्पृष्टवान् ।

घात करते करते घटा तक गत उन गई कि उन दोनों को अपना न्याय प्राप्त करने के लिये राजकल तक मे जाना पडा । न्यायाध्यक्ष ने इन दोनों की गते सुन कर अपने बुद्धिविल से कचहरी के किसी सिपाही को आदेश दिया कि तुम इन दोनों के केशों को कधी से उँगो । उसने वैसा ही किया । जिसके उनके वस्त्र थे उसके केशों में से उन के अवयव निकले । इससे यह वाते जानने मे देर नहीं लगी कि यह ऊनी वस्त्रों का मालिक है, सूती का नहीं । इस तरह न्याया यक्ष द्वारा अपने सूती वस्त्र प्राप्त कर वह चला गया ॥ ५ ॥

॥ यह पाचवा पट्टद्वयान्त हुआ ॥ ५ ॥

छद्वा सरट्टद्वयान्तम्—

कोई पुरुष मलत्याग करने के लिये जंगल मे गया । वहाँ वह पुरुष किसी स्थान पर मलत्याग करने के निमित्त बैठा । जहाँ वह बैठा था, उसी के समीप में गिरगिट की विल थी जिस को उस ने नहीं देखा । उसी

अटले सुधी आगण वधी के ते गन्नेने न्याय कशाववा भाटे राजसभाभाजु पु पड्यु न्यायाधीशे ते गन्नेनी वात सावणीने चोताना बुद्धिगणधी तेना निकाल कथ्ये तेमळे ज्येरीना अठ सिपाईने आसा करी के तु आ गन्ने भाषुसना वाणने कासकी वडे आण तेले ते प्रभाळे व कथ्युं तेधी जेना गरम वस्त्रो हुता तेना वाणभाधी उनना रेसा नीकल्या तेधी ते वात समजता वार न लागी के ते गरम वस्त्रोने भाळिठ छे, सूतराउने नही आ प्रभाळे न्यायाधीश द्वारा चोताना सूतराउ कथडां जेणवीने ते आह्यो गयो ॥ ५ ॥

॥ आ पाचमु पट्ट द्वात साभास ॥ ५ ॥

छद्दु सरट्ट द्वात-

कैध पुरुष आडे इरवा भाटे व गलभा गयो त्या कैध स्थाने ते आडे इरवा भाटे जेठे ते न्या जेठे हुता तेनी व पासे कासी डानु अक दर हुतुं,

पतात्रैव तस्यैव-शुद्धा समुत्पन्ना-गुदमार्गेण ममोन्त्रे मरुतः प्रविष्टः । ततो
 गृह गतोऽसौ तच्चित्तया रोगीय प्रतिदियस दुर्बलो जातः । नद्दृशश्चित्साकृता किंतु
 सर्वाऽपि निष्फलैव जाता । एकदा केनचिद् वैद्येन सम्यक् परीक्ष्य तर्कबुद्ध्या
 ज्ञातम् केवल भ्रमोऽस्य वर्तते अन्यत् किमपि नास्ति, इत्येव विदित्वा वैद्योऽप्रीत्-
 तव रोग निरर्तयिष्यामि किंतु शत रूप्यकाणि त्यक्तो ग्रहीष्यामि । ततो वैद्यवचन
 तेन स्वीकृतम् । ततोऽसौ वैद्यस्तस्मै विरेचकौषध दत्त्वा मृन्मयभाण्ड लाक्षारसेन

समय मिल में प्रवेश करते हुए गिरगिट की पूँछ का उस के गुद प्रदेश में
 स्पर्श हो गया । गिरगिट की पूँछ के स्पर्श हो जाने से उस पुरुष के
 मन में यह आशङ्का हुई कि यह गिरगिट गुद मार्ग से मेरे उदर में प्रविष्ट
 हो गइ है ऐसी आशङ्का से युक्त वह पुरुष अपने घर गया, परन्तु 'मेरे पेट
 में गिरगिट घुस गइ है' इस चिन्ता से वह रोगी के समान प्रतिदिन
 दुर्बल होने लगा । उसने अनेक प्रकार की चिकित्साये करायीं, किन्तु सभी
 निष्फल हो गयीं । एक समय एक वैद्यने उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर
 अपनी तर्क बुद्धि से उस के रोग के निदान को जान लिया और उस को
 यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयी कि इस को कोई रोग नहीं है,
 मात्र रौग का भ्रम है । फिर उस वैद्यने उस पुरुष से कहा-मैं तुम्हारा
 रोग दूर कर दूँगा, परन्तु तुम्हें सौ रुपये देने होंगे । वैद्य की बात उस
 पुरुष ने मान ली । तब वैद्य ने उस को विरेचक औषध (जुलाब) दिया
 और एक मिट्टा के पात्र को लाक्षा रस से भरकर उसमें एक मरी हुए गिर-

ने तेले जेथु न डंतु त्यारे दरमा प्रवेश करता कार्योडानी पूछडीने।
 तेनी शुद्धाना लागे स्पर्श थर्छ गथे। कार्योडानी पूछडीने स्पर्श थता ते
 पुरुषना मनमा जेयो स देह थयो के ते कार्योडा शुद्धा मार्गे मारा उदरमा
 पेसी गथे छे आ स देहवाणो ते पुरुष पोताने घेर गथे, पणु "मारा पेटमा
 कार्योडा पेसी गथे छे" आ चिन्ताने लीधे ते रोगीनी जेम हिवसे हिवसे
 दुभणो पडवा लाग्ये। तेले धणु प्रकारनी चिदित्सा करावी पणु ते अर्ध निष्कृण
 गध अेक हिवस अेक वैदे तेनी सारी रीते परीक्षा करीने पोतानी तर्कशक्तिथी
 तेना रोगनु निदान जण्णी लीधु, अने तेनी जे वात स्पष्ट रीते समज्जगध
 के तेने कोध रोग न थी, मात्र रोगने भ्रम न छे पछी ते वैदे तेने कछु,
 "हु तमारो रोग भटाडीश, पणु तमारो मन सो रूपीया आपवा पडशे" तेले
 वैदनी वातने स्वीकार कथे। त्यारे वैदे तेने जुलाब आपवा, अने अेक भाटीना
 ढामने राथथी लरीने तेमा अेक भरेवे। कार्योडा भूडीने तेने कछु के तमारो

भृत्वा तत्र-मृत सरट प्रक्षिप्य वदति त्वयाऽस्मिन् भाण्डे पुरीपोत्सर्गः कर्तव्यः । तेन तथाकृते सति वैग्रस्तद्भाण्डे सरट दर्शयन् प्राह—पश्य त्वदुदरादय सरटो निर्गतः । तदैव तस्य शङ्काऽपगता, अचिरेणैव स नीरोगः सजातः ।

॥ इति पष्ठः सरटदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ काकदृष्टान्तः—

वेन्नातटे नगरे रिपुमर्दननामको राजा धीरमतिनामकं सचिव बुद्धिपरीक्षार्थं पृष्ठवान्-अस्मिन् ग्रामे कियन्तः काकाः ? इति । एवं पृष्ठः स प्राह—पष्टि-सहस्राणि काका अत्र ग्रामे निवसन्ति । राज्ञा श्रोक्तम्-यदि त्वदुक्तसख्यातो न्यूना

गिट को डालकर उस से कहा-तुम इस मिट्टी के पात्रमे मल त्याग करना । उस पुरुष ने वैसा ही किया तब उस वैद्य ने उस पुरुष को उस पात्रमें मरे हुए गिरगट को दिखलाते हुए कहा-दखो, तुम्हारे पेट से यह गिरगिट निकला है । उस मरे हुए गिरगिट को देखकर उस पुरुष की आशङ्का दूर हो गयी । और बहुत शीघ्र ही नीरोग हो गया ॥ ६ ॥

॥ यह छद्म सरटदृष्टान्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवा काकदृष्टान्त-

वेन्नातट नाम का नगर था । यहा के राजा का नाम रिपुमर्दन था । इस का धीरमति नाम का एक मन्त्री था । एक दिन की बात है कि धीर-मति की परीक्षा करने के निमित्त राजाने उस से पूछा-इस ग्राम में कितने कौवे रहते हैं । सुनकर उसने शीघ्र ही राजा को उत्तर दिया-महाराज । इस ग्राम में साठ हजार कौवे रहते हैं । मन्त्री की बात सुनकर राजाने

आ माटीना वासणुमा ज आडे जवु ते पुरुषे ते प्रभाणु ज कथुं त्यारे ते वेद्वे ते पुरुषने ते पात्रमा भरेवो कायां डो अतावीने वल्लु, “ ज्यो, तमार पेट माथी आ कायां डो नीकज्यो छे ते भरेवो कायां डोने जेधने तेनी आशकावु निवारणु थर्क जयु अने ते घण्णी अडपथी नीरोगी अन्थे ।

॥ आ छड्डु सरट दृष्टान्त समाप्त ॥ ६ ॥

सातवु काक दृष्टान्त-

वेन्नातट नामे नगर હતુ ત્યા રિપુમર્દન નામનો રાજા હતો તેને ધીર મતિ નામનો એક મન્ત્રી હતો એક દિવસ ધીરમતિની પરીક્ષા કરવાને માટે તેને પૂછયુ, “ આ ગામમા કેટલા કાગડા રહે છે ? ” તે સાલજતા જ તેણે જવાબ આપ્યો, “ મહારાજ ! આ ગામમા સાઠ હજાર કાગડા રહે છે ” મન્ત્રીની આ વાત સાલજીને રાજાએ કહ્યુ કે “ જો તમારી વાત સાચી ન પડે તો કેટલા હડ

अधिका या भवेयुस्तर्हि दण्डनीयो भविष्यति । सचिवेनोक्तम्— यदि कदाचिदेव्य
काकेभ्यो न्यूनसंख्या भवेयुस्तदाकेचित् प्राघुणिकतया ग्रामान्तरं गता इत्यवसेयम् ।
यद्यधिकं सख्यका भवेयुस्तदा प्राघुणिका इहा गता इत्यवगन्तव्यम् । एव मन्त्रिव
चन श्रुत्वा राजा तुष्टो जातः ।

॥ इति सप्तमः कारुदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टम उच्चारदृष्टान्तः—

उच्चारो मलः । यत्रचित्रगरं रुधिरं ब्राह्मण आसीत् । एस्दा स ब्राह्मणः स्व-
भार्यया सह देशान्तरं गच्छति । तस्य पथि रुधिरं धूर्तं मिलित् । स धूर्तं ब्राह्म
कहा कि यदि यह घात ठीक नहीं निकली तो घौलो क्या दण्ड दोगे । मन्त्री
ने सुनते ही जराय दिया महाराज । दण्ड की क्या बात है—वे तो इतने ही
हैं, परन्तु मेरी संख्या से उनकी संख्या यदि रुदाचित् कुछ बढ़ जाय तो
समझ लेना चाहिये कि बाहर से कुछ कौचे इन कौवों के यहा पाहुनचारी
करने के लिये आये हुए हैं । यदि रुदाचित् घट जाय तो यह समझ लेना
चाहिये कि इन में से कुछ कौचे दुसरे गाँव पाहुनचारी के लिये गये हुए हैं ।
इस प्रकार मन्त्र के वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ ७ ॥

॥ यह सातवां कारुदृष्टान्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवा उच्चारदृष्टान्त—

किसी एक नगर में कोई एक ब्राह्मण रहता था । एक दिन की बात
है कि वह अपनी पत्नी के साथ देशान्तर चला । चलते २ उसको

लक्ष्मी ?” ते सालणता व मन्त्रीञ्चे वधाव आण्ये “ महाराज ! व डनी वात व
क्या छे ? मे कहा तेवला व ते तो छे, पणु जना मे कडेल सख्या करता
तेमनी सख्या उदाय वधावे थाय तो ज्येभ समजवु के उदारथी केवलाक कागडा
आ कागडाञ्चोने त्या मडेमान तरीके आण्ये छे, अने कदाय ते सख्या ज्योछी
थाय तो तेम समज वेवु पडे के तेमनाभाथी केवलाक कागडा भीजे गाभ मडे-
मान थडने गया छे ” मन्त्रीना आ प्रकारना वचन सालणीने राज मळो
भुरशी थये ।

॥ आ सातसु काकदृष्टांत समाप्त ॥ ७ ॥

आठसु उच्चारदृष्टांत—

कोई एक नगरमा कोई एक ब्राह्मण रहतेो डतेो ओक दिवस ते
घोतानी पत्नीनी साथे भीजे देश वधा नीकेज्ये । आलता आलता भार्गभा

परमार्थया सह वार्तालापमात्रेण ता प्रेमानुबद्धामकरोत् । ततः किञ्चिद्दूरं गत्वा धूर्तः
 प्राह—ममैषा भार्या । ब्राह्मणोऽवदत्-मैवम् । इयं मदीया धर्मपत्नी । एव विवद-
 मानौ तौ न्यायार्थं राजकुलं प्राप्तौ न्यायाधीशेन तावुभौ पृथक् पृथग्यत्र स्थाप-
 यित्वा पृष्टौ-गतं दिवसे त्वया किं भक्षितम् ? ब्राह्मणेनोक्तम्-मया भार्यया सह
 गतदिने तिलमोदका भक्षिताः धूर्तेनान्यत् किमप्युक्तम् । तदा विरेचनौषधं दत्त्वा
 धूर्तं ब्राह्मणयोः परीक्षा कृता । ब्राह्मणस्य भाषणं सत्यमभूत् । ततो न्यायाधीशेन सा
 ब्राह्मणाय समर्पिता धूर्तस्तु निगृहीतः ।

॥ इत्यष्टम उच्चारदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

मार्ग में एक धूर्त मिल गया । वह बड़ा चालाक था । उसने ब्राह्मण की
 स्त्री से बातचीत में ही अपना प्रेममय संबन्ध जोड़ लिया । कुछ दूर जाने
 पर ब्राह्मण से वह धूर्त कहने लगा कि-यह स्त्री मेरी है । धूर्त की बात से
 अप्रसन्न होकर ब्राह्मण बोला-भाई यह क्या कह रहे हो ? ऐसा मत कहो
 यह तो मेरी ही पत्नी है । इस तरह उन दोनों की परस्पर में अधिक
 से अधिक बातचीत बढ़ गई और न्याय प्राप्त करने के लिये उन दोनों को
 राजकुल के पास जाना पड़ा । राजकुल में पहुँचते ही न्यायाध्यक्ष ने उन
 दोनों को अलग-अलग बैठा दिया और पूछा कहो-कल तुमने क्या खाया
 था ? ब्राह्मण ने कहा-महाराज ! मैंने और मेरी पत्नी ने तिल के लड्डू
 खाये थे । धूर्त को बुलाकर पूछा तो उसने कोई दूसरी ही बात बतलाई ।
 इस तरह सत्य झूठ की परीक्षा के लिये न्यायाधीश ने अपने बुद्धि बल
 से उन दोनों को विरेचन की औषधि दी । इससे ब्राह्मण का कथन सत्य

तेने एक धूर्तसे भोज्ये ते धर्मे आलाज हुतो तेले ब्राह्मणनी पत्नी साथे
 बातचीतमा ज चेताने प्रेमसम्बन्ध भाधी दीधे थोडे दूर जाता ते धूर्तसे
 ब्राह्मणने कहुं, “आ भारी स्त्री छे” धूर्तारानी बातचीतमा धर्मे ब्राह्मणे कहुं,
 “बाई, आ तमे शु कहे छे ? जेवु भोज्ये मा आ ते भारी ज पत्नी
 छे” आ रीते ते भन्ने वच्चे परस्परमा वधाईमा वधाई वादविवाद थये
 छेवटे न्याय करवावने भाटे ते भन्ने राजकबेरीजे पडोआ न्यायाधीशे तेमनी
 बात साबणीने ते भन्नेने बुद्धि बुद्धि स्थाने भेसाठया, भन्ने पूछ्यु, “कहे,
 कहे तमे शु भाधु हुतु ?” ब्राह्मणे कहुं, “भाई ! मे तथा भारी पत्नीजे
 तलना लाहुं भाधा हुता,” धूर्तने भोज्येने जे ज प्रश्न पूछ्ये ते तेले भीछ
 कहे थीज भाधी हुती तेम भताव्यु हुवे न्यायाधीशे साथे-भोटानी परीक्षा
 भाटे चेतानी बुद्धिथी ते भन्नेने विरेचन औषधि आपी ते वटे ब्राह्मणु

अथ नरमो गजदृष्टान्तः—

वसन्तपुराधीशो नृपतिर्विशिष्ट बुद्धिसम्पन्न सचिव प्राप्ययं चतुष्पथे आलानस्तम्भे गजमेक बन्धयित्वा घोषणा कारयति इमं गजं यस्तोलयिष्यति, तस्मै राजा पारितोषिकतया वृत्तिं दास्यतीति । घोषणा श्रुत्वा कश्चिद् बुद्धिमान् पुरुषस्तं गजं तोलयितुं स्वीकृतवान् । ततोऽसौ कश्चिज्जलाशये नौकाया गजमारोहं नावं चालयति । गजभारेण नौकाया यागान् भागोजले निमग्नोऽभवत् तं रेखाङ्कितं कृत्वा निकला । तद्दमें द्राक्षणी उसको सोंपकर न्यायाधीश ने धूर्त को दण्डित किया ॥ ८ ॥

॥ यह आठवा उच्चारदृष्टान्त हुआ ॥ ८ ॥

नौवा गजदृष्टान्त—

वसन्तपुर नाम का एक पुर था । वहाँ के राजा ने विशिष्ट बुद्धि संपन्न मंत्री की प्राप्ति के लिये एक उपाय इस प्रकार किया—चौद्वे में एक आलानस्तम्भ में उसने एक हाथी बंधवा दिया, और इस प्रकार घोषणा करवाई कि जो कोई इस हाथी की तोल कर देगा उसको राजा पारितोषिक रूप में वृत्ति प्रदान करेगा । इस घोषणा को सुनकर किसी एक विशिष्ट बुद्धि संपन्न व्यक्ति ने हाथी को तोलने की शर्त मजूर करली । उसने फिर उसको इस प्रकार तोला—किसी जलाशय में जाकर उसने उस हाथी को एक नौका में चढ़ाया, बाद में उसको पानी में चलाया तो नौका का जितना भाग पानी में डूबा गया उस भाग में उसने एक

कथन साथे ठुं पछी द्राक्षणीने तेनी पत्नी सोपीने न्यायाधीशे धूर्तने सन्न करी ॥ ८ ॥

॥ आ आठम उच्चारदृष्टान्त समाप्त ॥ ८ ॥

नवम उच्चारदृष्टान्त—

वसन्तपुर नामे एक नगर छत्तु त्याना राजाये विशिष्ट बुद्धिवाणे मंत्री भेगववाने भाटे आ प्रमाणे एक उपाय कर्यो—आठमा हाथी बाधवाना जीवा साथे तेणे एक हाथी बाधव्यो, अने आ प्रमाणे घोषणा करावी के के कोर्छो आ हाथीनु वज्ज करी आपसे तेने धनाम रूपे लेव्यो होवो आपवामा आपसे आ घोषणा साबणीने कोर्छो एक विशिष्ट बुद्धिसंपन्न माणसे हाथीनु वज्ज करी आपवानी शरत मजूर करी पछी तेणे आ रीते तेने तोल्यो—कोर्छो नणा शयमा लई नधने तेणे ते हाथीने एक छोडीमा बंधव्यो, पछी ते नौका पाणीमा बंधावी तेने केटलो भाग पाणीमा डूणी गयो त भागमा एक

तेन नौकाया गजोऽवतारितः । ततोऽसौ नौका पापाणैस्तथा समृतो यथा
नौकायाः पूर्वे रेखाङ्कितो भागो जलमग्नः स्यात् । पश्चात् ते पापाणास्तोलिताः
तदनुसारेण गजस्य मान ज्ञातम् । राजा तस्य बुद्धिं प्रति प्रसन्नो जातः ।

॥ इति नवमो गजदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

अथ दशमो भण्डनदृष्टान्तः—

आसीत् कोऽपि पुरुषो राज्ञः प्रत्यासन्नवर्ती । तत्समीपे राजा भार्यायाः
प्रशसा करोति । एकदा राज्ञा कथितम्—मम राज्ञी चतुराऽस्ति निदेशकारिणी च ।
पुरुषेणोक्तम्—महाराज ! यदि तवाज्ञाकारिणी स्यात् तदा स्वार्थवशात् । मद्रचने
रेखा अकित कर दी। बाद में हाथी को नौका से उतार दिया, पश्चात् उस
में पापाणखड्ड इतने भरे कि जिन्हों के वजन से रेखाङ्कित वह नौका
का भाग पानी में डूब गया। बाद में वे समस्त पत्थर नौका से बाहर
निकाल कर तौले गये तो जितना उन का वजन हुआ वही हाथी का वजन
माना गया। इस तरह राजा उस की इस बुद्धि का वैभव देखकर बड़ा
अधिक प्रसन्न हुआ ॥ ९ ॥

॥ यह नौकां गजदृष्टान्त हुआ ॥ ९ ॥

दसवां भण्डनदृष्टान्त—

एक पुरुष राजा के पास सदैव रहता था। राजा उसके सामने अपनी
रानी की प्रशंसा खूब किया करता था। यह भी उस को बड़े चाव से
सुनता रहता। एक दिन जब राजा ने उस से ऐसा कहा कि मेरी रानी
यड़ी चतुर एवं आज्ञाकारिणी है तो उस ने इस के प्रत्युत्तर में कहा—ठीक

लीटी डोरी लीधी, पछी डोथीने डोडीभाथी डतारी नाच्यो, अने डोडीभा अटला
पथर लयो डे जेना वज्जन्थी लीटी करेला लाग सुधी डोडी पाणीभा रूथी
गध पछी अे णधा पथरने डोडीभाथी णडार डोडीने तेमनु वज्जन् डरुं तो
नेटकु तेमनु वज्जन् थयु ते डोथीनु वज्जन् भानी लीधु आ प्रडारनी तेनी
तीन बुद्धिथी राज्ज धणो प्रसन्न थयो ॥ ९ ॥

॥ आ नवमु गजदृष्टान्त समाप्त ॥ ९ ॥

दसमु लण्डनदृष्टान्त—

એક પુરુષ હ મેશા કોઈ એક રાજા પાસે રહેતો હતો રાજા તેની આગળ
પોતાની રાણીના ખૂબ વખાણુ કર્યા કરતો હતો તે પણ તેને ઘણા રસપૂર્વક
સાંભળતો હતો એક દિવસ જ્યારે રાજાએ તેને એવુ કહ્યુ કે મારી રાણી
ઘણી ચતુર અને આજ્ઞાકારિણી છે ત્યારે તેણે તેને જવાબ આપ્યો, “ સાહ, પણ

संशयोऽस्ति चेत् परीक्ष्य द्रष्टव्यम् । तस्या अग्रे षण्मुन्यताम्-अपरांकाचिद् भार्या
 कर्तुमिच्छामि, तत्पुत्राय राजपदं प्रदास्यामि । एतत् तत्रप्रिय चेद् भवेत् तर्हि
 मया एव कर्तव्यम् । एतमेव राज्ञा द्वितीये दिवसे कथितम् । राज्ञी प्रत्याह—
 राजन् ! यदि भवान् द्वितीया भार्यां कर्तुमिच्छति तर्हि करोतु किंतु राज्याधिकारः
 पूर्वोत्पन्नस्य ममैव पुत्रस्य स्याद् नान्यस्य । एतद्वचनं श्रुत्वा राजा स्मितं करोति ।

है यदि वह आप की प्रत्येक आज्ञा को मानती है तो इसमें उस का निज
 स्वार्थ भरा हुआ है । अपने स्वार्थ के वश से ही वह आप के प्रत्येक
 आदेश को स्वीकार कर लिया करती है । यदि मेरे इस कथन में आपको
 किसी भी तरह का संशय हो तो आप इस की परीक्षा कर सकते हो ।
 अच्छा ऐसा करो-आज उससे जाकर कहना कि मैं दूसरी रानी करना
 चाहता हूँ और उस से जो पुत्र उत्पन्न होगा उसे मैं राज्य देना चाहता
 हूँ । बोलो यह बात मेरी तुम्हें मान्य है कि नहीं? मान्य होने पर ही मैं
 अपनी इस विचारधारा को सफल करूँगा । उस पुरुष की इस
 सलाह के अनुसार राजाने अपनी यह पूर्वोक्त बात दूसरे दिन रानी
 से जाकर ज्यों की त्यों कह दी । रानी ने सुनकर जवाब दिया-महाराज !
 आप दूसरी स्त्री करना चाहते हैं तो खुशी से करिये, "इसमें हमें कोई
 आक्षेप नहीं है, परन्तु आपका जो ऐसा विचार है कि हम उसके ही
 लडके को राज्य देगे सो यह बात मुझे मान्य नहीं है । राज्य का अधि-
 कारी तो मेरा ही पुत्र होगा । रानी के इन वचनों से राजा को कुछ हँसी

ने ते तमारी षधी आशा पाणती डोय तो तेभा तेना पोतानो स्वार्थं रडेवो
 छे पोतानो स्वार्थं साधवा भाटे व ते आपनी प्रत्येक आशा स्वीकार्या करे छे
 ने भारा आ कथनभा तमने केरि पणु प्रकारेना संशय डोय तो आप तेनी
 कसोटी करी शके छे आ प्रभाणु करे-आने व तेनी पासे जधने कडे के
 हुं पीछे राणी करवा भाशु छु अने तेने ने पुत्र थशे तेने व हुं राज्य
 आपवा भाशु छु जेवो, भारी आ बात आपने भगुर छे के नही ? मान्य
 डोय तो व हुं भारी आ विचारधाराने सङ्गतातु इय आपीश " ते पुरुषनी
 आ सलाह प्रभाणु राज्ञे पीछे द्विस राणी पासे जधने पूर्वोक्त बात ते
 पुरुषे कथा प्रभाणु व कही हीधी ते साकणीने राणीजे ववाण आपी,
 " जेभा मने केरि वाधे नथी, यणु आपने ने जेवो विचार छे के आप
 तेना व पुत्रने राज्य सोपशे ते बात मने भगुर नथी भारे व पुत्र राज्यने
 अधिकारी थशे " राणीना आ वचनेथी राजने सडेव डसपु आपु राणीजे

राज्ञी स्मितस्य कारण पृच्छति । राज्ञा मौनमालम्बितम् । पुनः पुनस्तया पृष्टो राजा प्रत्यासन्नवर्तिपुरुषप्रोक्त वचः कथितवान् । राज्ञी क्रोधवशात् तस्य देशव-
हिंकारार्थमादेश कृतवती । ततोऽग्रा पुरुषश्चिन्तयति—किमधुना विधेयम्, अन्ततः
स स्वबुद्ध्या महान्तमुपानहा भार गिरसि गृहीत्वा राज्ञी प्रोक्तवान्—अधुना देशा-
न्तर गच्छामि । राज्ञी प्राह—किमर्थमुपानद्धार वहसि । स वदति—देवि ! इयती-
भिरुपानद्धार्यावन्ति देशान्तराणि गन्तुं शक्यामि तावत्सु देशान्तरेषु भवत्या
भण्डन (अकीर्ति) करिष्यामि । ततो रानी लोकापवादमयात् सत्वर पूर्वोक्त
निदेशं निवर्तयति स्म ।

॥ इति दशमो भण्डनदृष्टान्तः ॥ १० ॥

आगई । रानीने राजा से इस हँसी का कारण पूछा तो उसने जब कुछ
जवाब नहीं दिया तो पुनः उसने जानने का आग्रह किया, अन्त में राजा ने
जो बात जैसी ग्री वह उस से कह दी । रानी को उस पुरुष पर बड़ा क्रोध
आया और इसी आवेश में उस ने उस पुरुष को देश से बाहिर चले
जाने की आज्ञा जारी कर दी । रानी के इस आदेश से चिन्तित हो उस
पुरुष ने विचार किया—अब क्या उपाय करना चाहिये ? अन्त में उसको
एक बुद्धि सूझी और उसी के अनुसार उसने जूतों की एक बड़ी भारी
गठरी बाँधकर उस को माथे पर उठाली और रानी से बोला मैं अब
यहाँ से दूसरे देश को जा रहा हूँ । रानी ने पूछा—तो यह जूतों की गठरी
शिर पर क्यों रख छोड़ी हैं । उसने जवाब दिया कि इतने जूतों से जितने
देशों में जा सकूँगा उतने देशों में आप की अपकीर्ति करूँगा । रानी ने

राजने ते हास्थनु कारण पृच्छयु तो तेणे कर्ध जवाण आप्ये नही ल्यारे
श्रीथी तेणे कारण जणुवानो आभळ उर्यो छेवटे राजने ने वात भनी હતી
ते तेने કહી રાણીને તે પુરુષ પર ઘણે ક્રોધ થયો અને આવેશમા ને
આવેશમા તેણે તે પુરુષને દેશવટાની આજ્ઞા આપી દીધી રાણીના આ હુકમથી
ચિન્તાતુર થયેલ તે પુરુષે વિચાર કર્યો—“હવે શો ઉપાય કરવો ?” છેવટે
તેને એક યુક્તિ જડી અને તે યુક્તિ પ્રમાણે તેણે ભોડાનુ એક ઘણુ ભારે
પોટલુ બાંધીને તેને માથે ઉપાડી લીધુ, અને રાણીને કહ્યુ કે હું અહીંથી
બીજા દેશમા જઉ છું ” રાણીએ પૂછયુ, “તો આ ભોડાનુ પોટલુ શા માટે
માથે મૂકયુ છે ?” તેણે જવાબ આપ્યો, “આટલા ભોડાથી જેટલા દેશોમા

अथैकादशो गोलरुदष्टान्तः—

रूप्यचिद् बालरूपस्य नासा नलिकाया लाक्षागोल्कः कथंचित् मरिष्टः । तस्य पिता सुवर्णकारस्य समीपे च बालक नीतवान् । सुवर्णकारः प्रतप्ताग्रभागया लौहस्य लाक्या शनैः शनैर्यत्नतो लाक्षागोल्कं प्रताप्य शनैः शनैः समाकृष्टवान् ।

॥ इत्यैकादशो गोलरुदष्टान्तः ॥ ११ ॥

इस प्रकार के लोकापवाद के भय से देश बाहिर चले जाने का उसका वह अपना आदेश वापिस ले लिया ॥ १० ॥

॥ यह दसवा भण्डनदष्टान्त हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवा गोलरुदष्टान्त—

एक किसी बालक की नाक में लाग्न की एक गोली अन्दर चली गई थी। उसके पिता ने जब बालक को इस स्थिति को देखा तो वह शीघ्र ही उसको किमी सुनार के पास ले गया। सुनार ने उड़ी चतुराई के साथ उसे बाहर निकालने का प्रयत्न किया। सत्र से पहिले उसने एक लोहे की पतली सी शलाई ली। उस को आगी में गरम किया और धीरे-२ उस लाख की गोली पर उसे चिपकाया तो इस तरह कुछ देर तक करते रहने से वह लाख की गोली पिघलकर नाक से बाहर निकल आई। बाद में उसने फिर उसे माहर खेंच लिया ॥ ११ ॥

॥ यह ग्यारहवा गोलरुदष्टान्त हुआ ॥ ११ ॥

जर्ध शकीश अेटवा द्देशोभा आपनी अपकीर्ति करीश " राणीअे पोतानी अपकीर्तिना लयथी तेने देशवटो आपवानी पोतानी आसा पाछी जेची लीधी

॥ आ दशमु लडनदष्टात समाप्त ॥ १० ॥

अगियारमु गोलरुदष्टात—

डोर्ध अेक भाणकना नाकनी अदर लाभनी गोणी छी उतरी जर्ध न्यारे तेना पिताअे भाणकनी आ स्थिति जेर्ध त्यारे ते तस्तज तेने अेक सोनी पासे लर्ध गयो सोनीअे धणी अतुरार्धथी ते गोणीने अडार काठवानो प्रयत्न कुर्यो सौधी पडैला तेजे लोढानी अेक पातणी मणी लीधी तेने अगीडीमा गरम करी अने धीमे धीमे ते लाभनी गोणीमा तेने लोकी आ प्रभाजे थोडी वार करता रहेवाथी ते लाभनी गोणी अेगणीने नाकमाथी अडार नीकणी आवी पछी तेने अडार जेची लीधी ॥ ११ ॥

॥ आ अगियारमु गोलरुदष्टातसमाप्त ॥ ११ ॥

अथ द्वादशः स्तम्भदृष्टान्तः—

कश्चित् राजा योग्यसचिव प्राप्त्यर्थं नगरवर्तिनो महाविस्तरस्य जलाशयस्य मध्ये स्तम्भ स्थापितवान् एव घोषणा च कारितवान्—यस्तटे तिष्ठन् रज्ज्वास्तम्भ-मिम बध्नीयात् तस्मै लक्षं पारितोपिक राजा दास्यतीति । एव भूता घोषणा श्रुत्वा केनचिद् बुद्धिमता तथाकर्तुं स्वीकृतम् । ततोऽसौ जलाशयस्य तटे कीलकमेक स्थाप-यित्वा तत्र रज्जुबद्ध्वा चतुर्षु तटेषु ता नयन् समागतः । तेन स मन्व्यवर्ती स्तम्भो रज्जुबद्धो जातः । एव तद्बुद्धिं निरीक्ष्य परितुष्टो राजा त स्वसचिव कृतवान् ।

॥ इति द्वादशः स्तम्भदृष्टान्तः ॥ १२ ॥

चारहर्वा स्तम्भदृष्टान्त-

किसी राजा ने योग्य मन्त्री की प्राप्ति के लिये नगर के पास के विस्तृत तालाब के बीच में एक स्तम्भ गढ़वा कर इस प्रकार की घोषणा करवाई कि जो कोई व्यक्ति तट पर बैठा रस्सी से इस स्तम्भ को बाध देगा उस के लिये राजा एक लाख रुपये का पारितोपिक देगा । इस प्रकार की घोषणा कों सुनकर किसी बुद्धिमान् व्यक्ति ने इस प्रकार करना स्वीकार कर लिया । बाद में उसने जलाशय के एक तट पर एक लोहे की कील गाढ़ दी और उस में रस्सी बाधकर उस को तलाब के चारों कोनों पर उसने फिराया । इस तरह चारों कोनों पर रस्सी के फिराने से वह मध्यवर्ती खम्भा उस रस्सी द्वारा अनायास बच गया । उस व्यक्ति की ऐसी बुद्धि की चतुराई देखकर राजा ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते हुए

पारसु स्तम्भदृष्टान्त—

कोई एक राजा ने योग्य मन्त्री भेजवाने भाटे नगरनी पासना विशाल तलावनी वन्धे स्थल छोला करानीने ऐवी घोषणा करानी के ने कोई माणस तलावना कोठे छोटा छोटा होरडा वडे आ थालवाने भाधी देशे तेने राजा अके लाभ इपीयातु धनाम आपसे आ प्रकारनी घोषणा सालानीने कोई पुद्धि शाणी माणसे ते काम करवातु भाथे लीधु पछी जलाशयने अके कोठे तेले अके दोढाने भीदो जोडथे अने तेमा होरडु भाधीने ते होरडाने तलावनी आरे तरङ्ग तेले इरेव्यु आ प्रमाणे आरे भूषे होरडु इरी वणवाधी वन्धेने। ते स्थल ते होरडा द्वारा अनायास बधार्थ गथे ते माणसतु आ पुद्धि आतुथे नेधने राजा अके घड़ी प्रसन्नता प्रकट करीने तेने चोताना राजानु प्रधानपद सोभ्यु ॥ १२ ॥

॥ आ पारसु “स्तम्भदृष्टान्त” समाप्त ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशः सुहृग - क्षुल्लक (बालक) दृष्टान्तः—

काचित् परिव्राजिका राज्ञः समीपे प्रतिगा हृतप्रती-सर्वं कार्यं कर्तुं शक्नोमि, कलासु मां पराजितुं कोऽपि समर्थो नास्ति । राज्ञा घोषणा कारिता-यदि कश्चित् कलाकारः कलासु परिव्राजिका पराजयेत्, तदा तस्मै राज्ञा पारितोषिकं दास्यते । घोषणा श्रुत्वा कश्चिद् बालको राज्ञः समीपमागत्य उदति-राजन् ! अहं परिव्राजिका पराजेष्यामि किन्तु ममापराधः क्षन्तव्यः । राज्ञा तथैव स्वीकृतम् । परिव्राजिका

उस को अपने राज्य का मंत्री पद प्रदान कर दिया ॥१२॥

॥ यह चारहवाँ स्तम्भदृष्टान्त हुआ ॥१२॥

तेरहवाँ क्षुल्लक (बालक) दृष्टान्त—

किसी परिव्राजिका ने राजा के पास ऐसी प्रतिज्ञा कि मैं सब काम कर सकती हू । ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो कलाओं में मुझे पराजित कर सके । कारण मुझ से कोई भी कला अछूती नहीं बची है । मैं सब कलाओं में निपुण हू । उस की ऐसी बात सुनकर राजा ने घोषणा करवाई कि यदि कोई कलाकार कलाओं में परिव्राजिका को पराजित कर सके तो वह इस के समक्ष अपनी कलाभिज्ञता प्रकट करने के लिये आवे यदि वह इस के समक्ष विजय श्री पाने का अधिकारी प्रमाणित हो जायगा तो उस को मेरी ओरसे विशेष पारितोषिक दिया जायगा । इस घोषणा को सुनकर राजा के पास उसी समय एक बालक आया और आते ही उसने कहा-महाराज ! मैं परिव्राजिका को जीत सकता हू परन्तु मेरा एक अपराध क्षमा किया जावे तो । राजा ने उस को अभय देकर कहा

तेरहवु क्षुल्लक (बालक) दृष्टान्त—

कोई परिव्राजिकाએ રાજાની પાસે એવી પ્રતિજ્ઞા કરી કે “હું સઘળા કામ કરી શકું છું કળાઓમા મને પરાજિત કરી શકે તેવી કોઈ વ્યક્તિ નથી કારણ કે કોઈ પણ કળાને મને અનુભવ ન હોય તેવું નથી હું સઘળી કળાઓમા નિપુણ છું ” તેની એવી વાત સાંભળીને રાજાએ ઘોષણા કરાવી કે જો કોઈ કળાકાર કળાઓમા પરિવ્રાજિકાને પરાજિત કરી શકે તેમ હોય તો તે તેની પાસે પોતાની કળાનિપુણતા પ્રગટ કરવા માટે આવે, જો તે તેની સમક્ષ વિજય પ્રાપ્ત કરવાને અધિકારી સાબીત થશે તો તેને મારા તરફથી વધારાનું ધનમા પણ આપવામા આવશે આ ઘોષણા સાંભળીને એ જ વખતે રાજાની પાસે એક બાળક આવ્યો અને આવતા જ તેણે કહ્યું “ મહારાજ ! હું પરિવ્રાજિકાને હરાવી શકું તેમ છું પરન્તુ આપ મારો એક અપરાધ માફ કરો તો જ તેમ બની શકશે ” રાજાએ તેને અભય દઈને કહ્યું “ તારો અપરાધ

प्राह—लघुरयवाल्कः कथं मम पराजयं करिष्यति । ततो वालकः स्वकीयं कौपीनवस्त्रमपनीय नग्नमुद्रयानानाविधमासनं प्रदर्श्य परिव्राजिकामवदत्—परिव्राजिके ! एवमेव नग्नमुद्रया स्वकलाकौशलं प्रदर्शय । तदा एव कर्तुमसमर्थो परिव्राजिका स्वपराजयं मत्वा लज्जिता सती ततश्चलिता । लोकास्तस्य वालकस्य विजयं प्रोक्तवन्तः ॥

इति त्रयोदशः क्षुल्लकदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

तुम्हारा अपराध क्षमा है, वताओ अपनी कलाओं का कौशल । वालक को देखकर परिव्राजिका कहने लगी—महाराज ! यह नन्हासा वालक कलाओं में क्या कुशलता प्रकट कर सकेगा ? और कैसे मेरा पराजय कर सकेगा । इस तरह परिव्राजिका का आक्षेप सुनकर वालक ने उसी समय लगोटी खोलकर नगनावस्थामें ही अनेक प्रकार के आसनों का प्रदर्शन करना प्रारंभ किया । जब वह अपना काम पूर्णरूप से समाप्त कर चुका तो बादमें परिव्राजिका से बोला परिव्राजिके ! तुम भी इसी मुद्रामें होकर अपनी कलाकुशलता प्रतलाओ । वालक की इस बात से असहमत होकर वह अपनी कलाकुशलता प्रदर्शित करने में इस रूप में असमर्थ रही इसलिये वालक के समक्ष उसने अपना पराजय स्वीकार कर लिया और वहां से अनमनी होकर वह चली गई । लोगों ने वालक की खूब प्रशंसा की ॥१३॥

॥ यह तेरहवा क्षुल्लक (वालक) दृष्टान्त हुआ ॥१३॥

भा० करीश, ता० कणाकौशलं अताव " आण्डने जेठने परिव्राजिका कहेवा लागी, " आ नानकडे आणक उणाओभा शी कुशलता अगत करी शकवानो छे ? अने भाशे पराजय केवी शीते करी शकथे ? परिव्राजिकानो आ प्रकारनो आक्षेप साभणीने ते आणके त्यारे न लगोटी छोडी नाभीने नगनावस्थामा न अनेक प्रकारना आसने अताववानो प्रारंभ कथे न्यारे तेणे पूर्णरूपे पोतानु काम पूर्य कथुं त्यारे तेणे परिव्राजिकाने कहु, " परिव्राजिका ! तजे पण भाश प्रमा ह्येनी मुद्रामा तमाइ उणाकौशल अतावो " आणकनी आ वात साथे असहमत थधने ते पोतानु कणाकौशल्य ओ शीते अताववाने असमर्थ थध ते कारणे आणकनी पामे तेणे पोतानो पराजय स्वीकारी लीधे अने त्याथी नाराज थधने ते आली गध बोकेअे आणकनी पूज प्रशंसा करी ॥१३॥

.. आ तेरथु क्षुल्लक (आणक) दृष्टान्त समाप्त ॥ १३ ॥

पुरुषस्तथैव रथ चालयति । इतश्च सा रुदती आर्तनाद कुर्वती रथस्य पश्चाद्भागे
सलग्ना धावमाना समागच्छति । तस्याः आर्तनाद श्रुत्वा स पुरुषो मन्द मन्द
रथं चालयति । तदा सा मानुषी स्त्री विद्याधरी च मिथः कलह कुर्वती ग्रामे
समागत्य न्यायाधीशस्य पुरस्तादभियोग करोति । न्यायाधीशः पुरुष पृच्छति—कथय,
का त्वदीया भार्या । एव प्रष्टोऽसौ पुरुषः स्त्रिय निर्णेतुमसमर्थो जातः । ततो न्याया-
धीशः स्वनुद्धया पुरुष दूरे नीत्वा द्वे अपि स्त्रियावुक्तवान्—कथितवान् युवयोर्मध्ये या
पूर्वं स्वहस्ते नास्य स्पर्श करिष्यति—तस्या एव पतिरय भविष्यति । तदा विद्याधरी
दिव्यशक्त्या स्वहस्त विस्तृत कृत्वा पूर्वमेव त स्पृशति । न्यायाधीशो विद्याधरीं

रथ को शीघ्र यहा से ले चलिये । बनावटी स्त्री की ऐसी बात सुनकर
उमने वहां से रथ को आगे हाकना प्ररभ कर दिया । पहिली स्त्री ने यह
हालत देखी तो वह रथ के पीछे २ रोती हुई चलने लगी । युवाने जब
उसका आर्तनाद सुना तो उस को उस पर करुणा आगई और रथ की
चाल उमने कुछ ढीली कर दी । दोनों स्त्रिया परस्पर में लडने झगडने
लगी और इसी हालत में गाव में आपहुँची । वहां आते ही पहिली स्त्रीने
उस दुसरी स्त्री पर अभियोग लगाकर उसको कचहरी में न्यायाधीश के
समक्ष उपस्थित किया । न्यायाधीश ने पुरुष से पूछा—कहो इनमें तुम्हारी
स्त्री कौनसी है ? पुरुष ने कहा—महाराज ! मैं इसका निर्णय करने के लिये
असमर्थ हूँ । जब पुरुष की असमर्थता न्यायाधीश ने देखी तो उसने
उस को वहा से दूर कर के उन दोनों स्त्रियों से कहा—तुम दोनों में से
जो सब से पहिले अपने हाथ से यहा ही खडी २ इस पुरुषको स्पर्श करेगी
वही इस की पत्नी और उसी का यह पति माना जावेगा । न्यायाधीश

रथने अर्द्धीथी हंकारी भूडे । ” बनावटी स्त्रीने ऐसी बात सांलणीने तेहे रथने
त्याथी आगण हंकारवा भाडयो भरी पत्नीये न्यारे ते जेथु त्यारे ते शेती
शेती रथनी पाछण होडवा लागी युवाने न्यारे तेने आर्तनाद सांलणे त्यारे
तेने तेना पर दया आवी, अने तेहे रथनी गति थोडी घटाडी नाथी अन्ने
स्त्रीये पन्पर अगडे उरवा लागी अने जे जे हालतमा गाभभा आवी पडेथी
त्या आवता जे पडेली स्त्रीये थोळी स्त्री पर इरियाद करीने तेने कचेरीमा न्याया-
धीशनी आगण हांवर करी न्यायाधीशे पुरुषने पूछु, “ कडे आ जेमाथी
तमारी पत्नी कोळु छे ? ” पुरुषे कळु, “ साडेज, तेने निर्णय करवाने हु
असमर्थ छु ” न्यारे पुरुषनी असमर्थता न्यायाधीशे जेठ त्यारे तेमणे तेने
त्याथी इर मोडलीने ते अन्ने स्त्रीयेने कळु, “ तमारा अन्नेमाथी जे अडी
ठेठी ठेठी पोताना हाथथी सौथी पडेला तेने स्पर्श करशे जे जे तेनी पत्नी

अथ पौडशः पतिदृष्टान्तः—

एकस्य क्षेत्रस्य स्वामी कथित् कृपीयल आसीत् । त दुर्बल विज्ञाय कश्चिदपरो-
धूर्तः कृपीयलः प्राह—अरे अस्य क्षेत्रस्य पतिर्मा विना क्रोऽन्यो भ्रित्तुमर्हति । एव
विचदमानो तौ न्यायालय गतौ । न्यायाधीशः पृथक् पृथगुभौ रहसि नोत्वा प्राह—

दे दीजिये । मूलदेव की ऐसी करुणोत्पादक ध्यान सुनकर उसने अपनी
पत्नी को वहा जाने के लिये आदेश दे दिया । वह पति का आदेश
पाकर कण्ठीक के पास चली आई । परन्तु जब उसने स्त्री के बेप में
छिपे हुए पुरुष को जाना तो वह अपने शील की किसी तरह रक्षा करती
हुई वापिस अपने पति के पास लौट आई ॥ १५ ॥

॥ यह पन्द्रहवा स्त्रीदृष्टान्त हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवा पतिदृष्टान्त—

किसी एक खेत का स्वामी कोई किसान था । वह कमजोर था ।
उसको कमजोर देग्वकर किसी दूसरे धूर्त किसानने उससे कहा—भाई !
इस खेत के मालिक तुम नहीं हो, मैं हूँ, कारण मेरे सिवाय यहा खेत
का मालिक और कौन हो सकता है । इस तरह उन दोनों में उस खेत
को लेकर विवाद खडा हो गया । परस्पर में जब इसका निबटेरा नहीं
हुआ तो वे दोनों कचहरी पहुँचे । कचहरी में उन्हो ने अपना २ अभियोग
पेश किया । न्यायाधीश ने बडे ध्यान से उन दोनों की बातों को सुना ।
अन्त में वह अलग २ एकान्त में लेजाकर एक एक से पूछने लगा,

आपो " भूजदेवनी आवी करुणाजनक वात साभणीने तेणे पोतानी पत्नीने त्या
ज्वानी आशा करी ते पतिनी आशा थता क उरीक पासे आली आवी पणु
न्यारे तेणे स्त्रीना वेधमा छुपायेल पुरुषने ज्ञेयो त्यारे ते पोताना शियजनी
रक्षा करती कोण पणु शीते पोताना पति पासे पाछी करी ॥ १५ ॥

॥ आ पदरमु स्त्री दृष्टान्त समाप्त ॥ १५ ॥

सोणमु पतिदृष्टान्त—

कोई एक जेतरना मालीक एक जेडूत हुतो ते कमजेर हुतो तेने कमजेर
जेधने कोण जीन धूत जेडूते तेने कछु, " लार्ध । आ जेतरना मालीक तमे
नथी, हु छु, कारण के मारा सिवाय अही जीने कोण जेतरना मालिक न कोण
शके " आ शीते आ जेतर भाजतमा ते जन्ने वच्ये विवाह थयो आपस आप
समा तेने कोण निवेडा न आवता तेज्या क्येरोमा पडोव्या क्येरोमा तेमणे
पोतपोतानी हुकीकत रणु करी, न्यायाधीशे घण्टा ध्यानपूर्वक ते जन्नेनी वात
साभणी छेवटे तेमणे ते इरेकने अलग अलग ऐकान्तमा लध जधने पूछ्यु—

अतीतेषु द्वादशेषु वर्षेषु प्रतिवर्षं यानि धान्यानि त्वया समुत्पादितानि तानि क्रमशो ब्रूहि । एवमुक्तः क्षेत्रपतिः क्रमेण द्वादशेषु वर्षेषु तत्रोत्पादित धान्याना नामान्युक्तवान् । अपरेण धूर्तेन तु तद्विपरीतमेवोक्तम् । न्यायाधीशः पुनराह—स्वभाषिते प्रमाणपत्र प्रदर्शय । तदा क्षेत्र पतिना प्रतिवर्षीयं प्रमाणपत्र स्वगृहादानीय तस्मै प्रदर्शितम् । अपरो धूर्तस्तु प्रमाणपत्रमानेतुमसमर्थो जातः । ततस्तस्मै क्षेत्र स्वामिने न्यायाधीशेन क्षेत्र प्रदत्तम् ' अपरस्तु धूर्तो निगृहीतः ।

॥ इति षोडशः पतिदृष्टान्तः ॥ १६ ॥

पहिले क्षेत्रपति को पूछा कि-गत चारह वर्षों में प्रत्येक वर्ष में जितना अनाज इस खेत में उपजा है उन सब का हमें पृथग् २ नाम लेकर हिसाब समझाओ । इस तरह न्यायाधीश के कथन को सुनकर क्षेत्रपति ने चारह वर्ष में जो जो अनाज जितना पैदा किया था उस सबका नाम निदेश करते उसको हिसाब समझा दिया । फिर एकान्त में उस धूर्त से यही बात पूछी गई तो उसने उस पहिले कथन से अपना मन्तव्य विपरीत बतलाया । इस तरह उन दोनों की भिन्न २ बातें सुनकर न्यायाधीश ने पुनः उनसे कहा—भाई तुम अपना २ प्रमाण पत्र उपस्थित करो । क्षेत्रपति ने उसी समय घर से लाकर प्रत्येक वर्ष का प्रमाण पत्र न्यायाधीश को लेकर दे दिया । परन्तु जो धूर्त था वह इस बात में असमर्थ पाया गया । फिर न्यायाधीशने वह खेत खेत के मालिक को दिलाया और उस धूर्त को दंडित किया ॥ १६ ॥

॥ यह सोलहवा पतिदृष्टान्त हुआ ॥ १६ ॥

पडेला जेतरेना मालिकने पूछ्यु, “ गया बार वर्षोभा दरेक वर्ष जेटलु अनाज आ जेतरेभा पाक्यु डोय ते अधाने नाम वार भने हिसाब समज्जये ” आ प्रभाषे न्यायाधीशतु कथन सालगीने जेतरेना साथा मालिके बार वर्षभा जे जे अनाज जेटलु जेटलु पाक्यु डंतु ते अधाना नामना उद्वेष साथे तेने हिसाब समज्जवी द्दधे । पछी एकान्तभा धूर्तने पषु जे ज वात पूछवामा जेवी, तो तेजे पडेला जेतरेना कथन करता पोतानु विपरित मन्तव्य जताव्यु आ प्रभाषे ते जन्नेनी जुद्धी जुद्धी वात सालगीने न्यायाधीशे इरीथी तेभने कल्लु, “ भाधज्ये ! तमे पोतपोतानी साणीतिज्ये रज्जु करे । ” क्षेत्रपतिजे तरत जे धरे जधने प्रत्येक वर्षना पाक्यु प्रमाणपत्र लावीने न्यायाधीश आगण रज्जु कथुं पषु धूर्त तेम करवाने असमर्थ निवडये । पछी न्यायाधीशे ते जेतरे जेतरेना साथा मालिकने जपाव्यु अने धूर्तने शिक्षा ठरी ॥ १६ ॥

आ सोणमु पतिदृष्टान्त समाप्त ॥ १६ ॥

अथ पौडशः पतिदृष्टान्तः—

एकस्य क्षेत्रस्य स्वामी कथित् कृपीरल आसीत् । त दुर्बल पित्राय कश्चिदपरो-
धूर्तः कृपीरलः प्राह—अरे अस्य क्षेत्रस्य पतिर्मा विना फोऽन्यो मन्त्रितुमर्हति । एव
विवदमानो तौ न्यायालय गतौ । न्यायाधीशः पृथक् पृथग्भूो रहसि नोत्वा प्राह—

दे दीजिये । मूलदेव की ऐसी करुणोत्पादक यान सुनकर उसने अपनी
पत्नी को वहा जाने के लिये आदेश दे दिया । वह पति का आदेश
पाकर कण्डरीक के पास चली आई । परन्तु जब उमने स्त्री के वेष में
छिपे हुए पुरुष को जाना तो वह अपने शील की किसी तरह रक्षा करती
हुई वापिस अपने पति के पास लौट आई ॥ १५ ॥

॥ यह पन्द्रहवा स्त्रीदृष्टान्त हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवा पतिदृष्टान्त—

किसी एक खेत का स्वामी कोई किसान था । वह कमजोर था ।
उसको कमजोर देखकर किसी दूसरे दूर्त किसानने उससे कहा—भाई !
इस खेत के मालिक तुम नहीं हो, मैं हूँ, कारण मेरे सिवाय यहा खेत
का मालिक और कौन हो सकता है । इस तरह उन दोनों में उस खेत
को लेकर विवाद खडा हो गया । परस्पर में जब इसका निबटेरा नहीं
हुआ तो वे दोनों कचहरी पहुँचे । कचहरी में उन्होंने ने अपना २ अभियोग
पेश किया । न्यायाधीश ने बडे ध्यान से उन दोनों की बातों को सुना ।
अन्त में वह अलग २ एकान्त में लेजाकर एक एक से पूछने लगा,

आपो ” भूजदेवनी आवी करुणाजनक वात सालणीने तेणे पोतानी पत्नीने त्या
ज्वानी आशा करी ते पतिनी आशा थता कडरीक पासे आली आवी पण
न्याये तेणे श्रीना वेषमा छुपायेल पुरुषने जेथे त्यारे ते पोताना शिथणी
रक्षा करती केळ पणु रीते पोताना पति पासे पाळी करी ॥ १५ ॥

॥ आ पदरमु श्री दृष्टान्त समाप्त ॥ १५ ॥

सोणभु पतिदृष्टान्त—

कोई एक जेतारना मालीक एक जेडूत डतो ते कमजोर डतो तेने कमजोर
जेधने कोळ भीम धूर्त जेडूते तेने कणु, “लाई । आ जेतारना मालीक तमे
नथी, हु छु, कारण के मारा सिवाय अडी भीजे कोळ जेतारना मालिक न कोळ
शके ” आ रीते आ जेतार आमतमा ते अन्ने वच्ये विवाह थये आपस आप
समा तेने कोळ निवेडा न आवता तेआ क्येरोमा पडोव्या क्येरोमा तेमणे
पोतपोतानी डकीकत रणु करी, न्यायाधीशे घण्टा ध्यानपूर्वक ते अन्नेनी वात
सालणी छेवटे तेमणे ते इरेकने अलग अलग एकान्तमा लथ जधने पूछ्यु—

द्वौ भागौ कुरुत । एकैक भागमेकैस्स्यै समर्पयत । एतन्मन्त्रिवचन श्रुत्वा तस्य बालस्य जननी शिरसि कृतवज्रप्रहारेण परमव्याकुला सति मन्त्रिण प्राह-हे स्वामिन्! अयमेतस्या एव पुत्रोऽस्तु अहं तु पुत्रं नेच्छामि । पुत्रोऽयमस्या एव दीयताम्, किंत्वयं न हन्तव्यः वरमियं गृहस्वामिनी भवतु नास्ति मे किंचिदपि दुःखम् । अहं त्वन्यस्य कस्यचिद्दासीभूत्वा दूरस्थिताऽपि बालकं यदि जीवितं द्रक्ष्यामि, तावताऽपि मनसि मम सतोपः स्यात् । किं तु बालकमनालोक्य मया प्राणान्

बुद्धि से उन दोनों के विवाद का निर्णय किया और राजपुरुषों को आदेश दिया, कि इन दोनों का जितना द्रव्य है उसके दो विभाग करो, साथ में बालक के भी करोंत से चीर कर दो टुकड़े करो । एक एक टुकड़ा और द्रव्य का एक एक विभाग इन दोनों को दे दो । इस तरह मन्त्री के वचन सुनकर बालक की माता के हृदय में चोट पहुँची । वह वज्रके प्रहार से निहत होकर रोती हुई मन्त्री से कहने लगी-स्वामिन् । बालक के दो टुकड़े मत करवाइये । भले ही यह बालक इसका रहे । मुझे ऐसी अवस्था में बालक की चाहना नहीं है । पुत्र इसको ही दे दीजिये । कम से कम इसके पास रहने से यह जीवित तो रहेगा । मुझे घर की स्वामिनी बनने में ऐसी अवस्था में कोई सुख नहीं है । यही घर की स्वामिनी बने, मुझे इस बात का जरा भी दुःख नहीं है । मैं तो किसी दूसरे के घर का काम काज कर अपने दिन निकाल लूगी, परन्तु बालक तो सुरक्षित रहेगा और मैं वहीं से इसको देव कर आनदित

तेमना अगडाने। निर्णय कथे। अने राजपुरुषोने हुडम कथे। के आ अन्ने पाये
 ने धन छे तेना जे लाग पाडो अने आणकना पणु करवतथी श्रीगेने जे टुकडा
 कशे अेड अेक टुकडा तथा द्रवने। अेड अेक द्विस्रो आ अन्नेने आपे।
 मन्त्रीना अेवा वचने। सालजता ज आणकनी माताना हृदयमा आघात लाग्ये।
 तेना पर जल्ले वज्रने। प्रहार पड्ये। छाय तेम आघात पायेदी ते रडती
 रडती मन्त्रीने कडेवा लागी, “साडेण आणकना जे टुकडा न करवथे। लवे
 आ आणक तेनी पासे रडे भने आ हालतमा आणक लेवानी छ्दि। नथी
 पुत्र तेने ज आपी हो तेनी पासे रडेवाथी ते एवतो तो रडथे आ स्थितिमा
 घरनी मालिक अनवामा भने कर्छ सुख नहीं भये लवे ते ज घरनी मालिक
 अने, भने अे वातनु गिलकुल दुःख नथी हुं तो जीवत होडोना घरनु कामकाज
 करीने एहगिना आकीना द्विस्रो आपीथ, पणु आणक तो सुरक्षित रडेथे, अने

अथ सप्तदशः पुत्रदृष्टान्तः—

कस्यचिद् वणिजो द्वे भार्येस्तः । तत्रैका पुत्रवती, अपरात्वपुत्राऽऽसीत् । अपुत्रा भार्या त सपत्नीमालकं लालयति पालयति । अतः स वालकं न जानाति—इयं मम मातुः सपत्नी इति ।

एकदा स वणिक् स्वभार्यापुत्रसहितो देगान्तरं गतः । गतमात्र एवासीं मृतः । ततस्तयोः स्त्रियोः पुत्रार्थं फलहो जातः । एका रदति—अयं मम पुत्रस्ततोऽहं गृह-स्वामिनी । अपराप्राह—अयं मम पुत्रस्ततोऽहमेव गृहस्वामिनी ' इति । एव तयो-र्विवादे प्रवृत्ते सति द्वे अपि न्यायालयं गते । राजसचिवः स्वमुद्रया निर्णेतुं राज-पुरुषान् माह—अनयोः र्यां नन्ति धनानि सन्ति, तेषां द्विभागं कृत्वा मालकं करपत्रेण

सत्रहवा पुत्रदृष्टान्तः—

किसी वणिक् के दो स्त्रिया थीं । इनमें एक पुत्रवती थी और दूसरी पुत्र विना की थी । जिसके पुत्र नहीं था वह स्त्री अपनी सौत के पुत्र का लालन पालन बड़े चाव से किया करती थी, इसलिये उस बालक को यह नहीं मालूम हो पाया कि यह मेरी मा है और यह मेरी विमाता है । एक दिन की बात है कि वह वणिक् इन दोनों स्त्रियों के साथ बालक को लेकर परदेश गया, परन्तु दैवदुर्विपाक से वह जाते ही मर गया । उसके मरते ही उन दोनों स्त्रियों में उस लड़के के लिये परस्परमें विवाद खड़ा हो गया । एक ने कहा—यह मेरा लड़का है अतः मैं घर की स्वामिनी हूँ । दूसरीने कहा—यह मेरा लड़का है, अतः मैं ही घरकी स्वामिनी हूँ । इस प्रकार जब उन दोनों में विवाद बढ़ गया तो वे दोनों ही अन्त में न्यायालय की शरण में पहुँची । राजमन्त्री ने अपनी

सत्रहवा पुत्रदृष्टान्तः—

कहाँ एक वणिक् ने दो पत्नीं હતી તેમની એકને એક પુત્ર હતો બીજીને કંઈ સત્તાન ન હતું જેને સત્તાન ન હતું તે સ્ત્રી પોતાની શોક્યના પુત્રનું ઘણું પ્રેમથી લાલન પાલન કરતી હતી, તેથી તે બાળકને તે બધર પણ ન હતી કે તે તેની માતા છે કે અપરમાતા એક દિવસ તે શેઠ બંને પત્નીઓ તથા બાળકને લઈને પરદેશ ગયો, પણ દુર્ભાગ્યે તે ત્યાં પહોંચતા જ મરણ પામ્યો તેવું મૃત્યુ થતા જ તે બંને સ્ત્રીઓ વચ્ચે તે બાળકની બાબતમાં ઝગડો ઉભો થયો એકે કહ્યું—આ મારો પુત્ર છે મારે ધરની માલિક હું છું બીજી સ્ત્રીએ કહ્યું—આ તો મારો પુત્ર છે તેથી હું જ ધરની માલિક છું આ રીતે બંને વચ્ચે ઝગડો વધતાં તે બંને ન્યાયાલયમાં પહોંચી. રાજમન્ત્રીએ પોતાની પુદ્ધિથી

किं तु यदा धीवरा' स्वव्यवसायार्थं गृहाद् बहिर्गच्छन्ति, तदा तेषां पत्न्यः परतीरे गत्वा स्वस्वसम्बन्धिना गृहे गमनागमनं कुर्वन्ति ।

एकदा काचिद्धीवरी स्वगृहस्य समीपे कुञ्जे मधुच्छत्रं परतीराद् दृष्टवती । द्वितीयदिवसे तस्याः पतिर्मधुक्रयणार्थं प्रवृत्तः । तदा तस्य भार्या प्राह—मधु मा कृणीहि, आगच्छ तव स्वगृहसमीपे एव मधुच्छत्रं दर्शयामि ।—इत्युक्त्वा मधुच्छत्रं दर्शयितुं पत्या सह गतवती । किन्तु तया मधुच्छत्रं तत्र न दृष्टम् । ततः सा साश्चर्यं

इस लड़ाई झगड़े में विचारी स्त्रियों पर आपत्ति आती रहती, वे दूसरे तट पर कभी भी अपने सबधियों के यहां नहीं जा सकती थीं, परन्तु ये लोग अपने २ व्यापार के लिये घर से बाहर चले जाते थे उस समय वे स्त्रियां अपने २ सबधियों के घर पर आती जाती थीं । अब एक दिन की बात है किसी धीवरी ने दूसरे तट पर से अपने घर के पास कुज में एक मधुच्छत्र लगा हुआ देखा । दूसरे दिन ही उसके पति को मधु की आवश्यकता पड़ गई तो वह मधु लेने के लिये जब बाहर जाने लगा तो उसकी पत्नी ने मना करते हुए उससे कहा—बाहर मधु लेने को मत जाओ, तुम्हारे घर के पास ही मधुच्छत्र लगा हुआ है, चलो, हम तुम्हें बतलावें । ऐसा कहकर वह उस मधुच्छत्र को बताने के लिये पति के साथ गई, परन्तु वहा उसको मधुच्छत्र दिखलाई नहीं पड़ा । उसने आश्चर्य के साथ अपने पति से कहा—यहा से तो मधुच्छत्र दिखलाई

विचारी स्त्रीओ पर मुश्किली आवी पडती तेओ सामे ठठि रहेता पोताना सगा-सअधीओने भणवा जठि शकती नही, छता पषु तेओ ज्यारे पोत-पोताना धधाने माटे अडार जता ल्यारे ते स्त्रीओ पोत-पोताना सअधीओने त्या आवती-जती रहेती हुवे ओठ दिवस ओवु अन्धु के डोर्ध भाछेणे भीण काठेथी पोताना धरनी पासेनी वृक्षकुजमा ओक मधपूडे लागेवो जेथो भीजे दिवसे ज तेना पतिने मधनी जरूर पडी, तेथी ते मध लेवा माटे अडार जवा लाग्यो ल्यारे तेनी पत्नीओ तेने अडार जतो रेकीने कछु—“मध लेवा माटे अडार जथो मा तमारा धरनी पासे ज मधपूडे लागेवो छे, यावो ते हु तमने अतावु ” आभ कडीने ते मधपूडे अताववा माटे पतिनी साथे गर्ध, पषु त्या तेने मधपूडे देभायो नही तेछे आश्चर्य माथे पोताना पतिने उछु—“अही तो मधपूडे देभातो नथी, पषु पेवा किनारेथी ते स्पष्ट देभाय छे, तो यावो त्याथी अतावु” पत्नीनी ओवी वात सावणीने ते ते किनारा पर तेनी साथे जथो जे धरमा तेने आववा-जवानी मनार्ध करी छती, ओज धरनी पासे

धारयितुं न शक्यते । तदा तत्पत्नी तु न किञ्चित् प्रोक्तवती । ततः सचिवस्तां पुत्र शोकार्तां दृष्ट्वा जानाति—एषा बालकस्य माता, तस्मादियमेव गृहस्वामिनी भवितुमर्हति, इति । ततो मन्त्रिणा प्रोक्तम्—अयमेतस्याः पुत्रो नास्या इति, सैव च गृहस्वामिनी कृता, अन्या तु निगृहीता ॥

॥ इति सप्तदशः पुत्रदृष्टान्तः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशो मधुसिन्धुदृष्टान्तः—

मधुयुक्त सिन्धु—मधुसिन्धु मधुच्छत्रम् । कस्याश्चित् परतीय नद्या उभयतटे धीवरा निवसन्ति । उभयतटनिवासिना धीवराणां जातीय सम्यन्धे सत्यपि परस्पर वैमनस्यमासीत् । अतस्ते धीवरा स्व स्व भार्या परतीरगमने प्रतिषेधयन्ति स्म ।

होती रहूगी । बालक के मर जाने पर तो महाराज ! मैं किसी भी तरह जीवित नहीं रह सकती हूँ । जब बालक की माता ऐसा कह रही थी तब उस विमाताने ऐसा कुछ नहीं कहा । अतः मन्त्री ने यह जान लिया कि बालक की खास माता यही है और यह नहीं है । इसलिये यही गृहस्वामिनी के योग्य है । ऐसा जानकर वह पुत्र उसको सौंपा और गृहस्वामिनी का पद भी उसको ही दिया । दूसरी उस विमाता को दंडित किया ॥ १७ ॥

॥ यह सत्रहवां पुत्रदृष्टान्त हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवां मधुसिन्धु (मधुच्छत्र) दृष्टान्त—

एक नदी थी उसके दोनों तट पर धीवर लोग रहते थे । इनमें यद्यपि जातीय सबध था तो भी ये परस्पर में लड़ते झगड़ते रहते थे ।

हुँ त्याही ज तेने जेधने आनदित थती रडीश महाराज । आणक भरशे तो हुँ केधपणु रीते लुवी शकीश नही' न्यारे आणकनी माता आम कडेती डती त्यारे विमाता जे जेवु केधपणु न कछु तेथी मन्त्रीजे समलु लीधु के आणकनी साथी माता आ श्री ज छे पेही नथी तेथी तेज घरनी मालिक थवानी लकडार छे तेम समलुने तेमछे ते पुत्र तेने सोप्ये आने घरनी मालिके पणु तेने ज गनावी आने जीलु श्रीने—विमाताने सज करी ॥ १७ ॥

आ सत्तरमु पुत्रदृष्टांत समाप्त ॥ १७ ॥

अठारमु मधुसिन्धु (मधुच्छत्र) दृष्टान्त—

एक नदी डती तेना आने कडे मालीमारे रहेता डता तेजो वन्धे नतिव्यवहार होवा छता तेजो अदरे अदर जगडता डता आ जगडाने कारणे

स विदेशे वह्नि दिनानि स्थित्वा यदा स्मृष्टमागतस्तदा पुरोहित प्राह-हे पुरोहित ! मया त्वयि निहितो निक्षेपो मद्य दीयताम् । पुरोहितः प्राह-कस्त्वम् ? तव निक्षेपः कीदृशः? नाह जानामि तव निक्षेपम्-इति पुरोहित वचन श्रुत्वा स स्मनिक्षेपार्थं चिन्तानुरा जातः । द्वितीयदिवसे राजमन्त्री पथि गच्छस्तेन द्रमकेण दृष्टः । स राजमन्त्रिणमाह-महानुभान ! मया पुरोहितान्तिके सहस्ररूप्यकनिक्षेपो निहितः, स मद्य न दातुमिच्छति, कृपया दापयतु, महानुपकारो भविष्यति । सर्वं वृत्तं विज्ञाय मन्त्री तस्मिन्

वहा रहते २ उसको बहुत दिन निकल चुके । जब वह वापिस वहा से अपने घर पर आया तो उसने पुरोहित से कहा-पुरोहितजी ! मैंने आपके पास जो धरोहर रख छोडी है वह अब मुझे दे दीजिये । सुनते ही पुरोहित ने कहा-तुम कौन हो ? और कैसी तुम्हारी धरोहर है ? मुझे तो इस की खबर तक भी नहीं है । पुरोहित की इस बात से विचारे उस दरिद्र के चित्त मे बडी चिन्ता हुई और वह विशेष विचार में पड़ गया । दूसरे दिन की बात है कि जब राजमन्त्री वहा से होकर जा रहे थे तो उस दरिद्रने उन्हें देख लिया और देखते ही उनके पास जाकर कहने लगा-महाराज ! मैंने पुरोहितजी के पास एक हजार रुपया धरोहर के रूप मे रख छोडे थे अब वे उन्हें देते नहीं है, बडी कृपा होगी नाथ ! जो आप उन्हें दिला देवे । मुझ गरीब का बडा उपकार होगा । दरिद्र की ऐसी बात सुनकर मन्त्री को उसके ऊपर बडी दया आगई । जब मन्त्री ने सब बात अच्छी तरह समझ ली तो उसने जाकर यह वृत्तान्त राजा से भी कह दिया । राजाने उसी समय पुरोहितजी को बुलाया

त्या गढेता रडेता तेना धरुा समय व्यतीत थध गये। न्यारे तेत्याथी पाछे कुर्ये त्यारे तेबु पुरोहितने कहु-“मे तभारे त्या ने थापषु मूठी छे ते डवे भने पाछी आपो” ते सालणता न पुरोहिते कहु, “तमे केषु छे ? अने केवी तभारी थ पषु छे ? हु तो ते भावतमा कथ न लखुतो नथी” पुरोहितनी अे वातथी पिआरा दरिद्रता मनमा चिन्ता थध अने ते सु नवषुमा पडथे। भीने दिवसे न्यारे राजमन्त्री त्याथी जाता डता त्यारे ते दरिद्रे तेभने जेया अने तेभने जेता न तेमनी पाये जधने कहु-“महाराज ! मे अेक डनर इथीया पुरोहि तलु पासे थापषु इपे मूक्या डता डवे तेज्यो भने ते आपता नथी, आप ते भने आपाये। तो आपनी मोटी भडेरभानी भारा जेवा गरीब ऊपर मोटे। उपकार कर्ये गषुअे” दरिद्रनी जेवी वात सालगीने मन्त्रीने तेना पर दया आवी न्यारे मन्त्रीजे जधी विगत भराभर नमलु दीधी त्यारे तेबु राजा पासे जधने आपो। वृत्तान्त कडी दीषो। राजने अेव वधते पुरोहितने जेलाये।

बदति - परतीरतो मधुच्छत्रं स्पष्ट दृश्यते, गच्छ तत्र गत्वा पश्यामि । धीवरोऽपि
तया सह परतीरं गतः । तत्र सा प्रतिपिद्धगृहस्य समीपेण स्थित्वा मधुच्छत्र
प्रदर्शितवती । धीवरेण ज्ञातम्-इयमत्र प्रतिपिद्धे गृहे याति समायाति च । इति
धीवरस्योत्पत्तिकी बुद्धिः ।

इत्यष्टादशो मधुसिक्थदृष्टान्तः ॥ १८ ॥

अपैकोनविंशतितमो मुद्रिकादृष्टान्तः—

एकस्मिन्नगरे सत्यवादिनामकः पुरोहितो वर्तते । लोकस्यैव विश्वासो जातः—
अयं समयातिक्रमेऽपि केनचिद्धृत निक्षेप ददाति । एवं जातविश्वासः कश्चिद्
द्रमक (दरिद्रः)—स्तम्बान्तिके स्वनिक्षेप निधाय देशांतरं गतः ।

नहीं पड़ता है, परन्तु उम तट से देगने से यह स्पष्ट दिखलाई देता है,
इस लिये चलो वहा से दिम्बलाऊ । पत्नी की ऐसी बात सुनकर वह उस
तीर पर उसके साथ चला गया । जिस घर में उस स्त्री का आना जाना
निपिद्ध कर रखा था वह उसी घर के पास खड़ी होकर अपने पति को
मधुच्छत्र दिखाने लगी तो पतिने अपनी बुद्धि से जान लिया कि यह मेरे
निषेध किये हुए घर में प्रतिदिन आती जाती है ॥ १८ ॥

॥ यह अठारहवां मधुसिक्थ (मधुच्छत्र) दृष्टान्त हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवा मुद्रिकादृष्टान्त—

एक नगर में कोई सत्यवादी नाम का पुरोहित रहता था । उसके
ऊपर लोगों का ऐसा विश्वास जमा हुआ था कि यह अवधि निकल
जाने पर भी कभी भी किसी की धरोहर को हडप कर अपना नहीं करता
है—वापिस लौटा देता है । एक समय किसी दरिद्र ने उसके पास अपनी
कुछ धरोहर रखकर देशान्तर गया ।

उन्नीसवीने ते तेना पतिने मधुपूडा अताववा लागी त्याचे पतिने पोतानी
बुद्धिची समल्ल हीधु के आ मे ज्या जवानी मनाई करी छे ते घर दररोज
आवे अथ छे ॥ १८ ॥

आ अजीथारमु मधुपूडानु दृष्टान्त समाप्त ॥१८॥

आगणीसमु मुद्रिका दृष्टान्त—

एक नगरमा सत्यवादी नामनेा कोर्छेक पुरोहित रहितो हुतो तेना उपर
दोक्तेने जेणे विश्वास जेसी जये हुतो के मुदत प्रसार थर्छे जवा छता पञ्च
ते कोर्छनी अनामत (थापणु) पयावी पाडतो नथी जेक वअत कोर्छ दरिद्र
भाणुस तेनी पासे पोतानी अमुक थापणु भूडीने पञ्देशे जये ।

पुरोहितेन न ज्ञातम् । ततो राजा पुरोहिताद्द्वगुलिमुद्रिका कस्यचित् स्वरूपस्य दृष्टे
दत्त्वा प्रोक्तवान्—पुरोहितस्य गृहे गत्वा तद्भार्यामेव वद—अहं पुरोहितेन प्रेषितो-
ऽस्मि, इदं च नाममुद्राऽभिज्ञानम्, तस्मिन् दिने तस्या वेलया या निक्षेपस्य
नवलिका त्वत्समक्षममुकप्रदेशे स्थापिता तां शीघ्रं समर्पय' इति । नृपाज्ञया तेन
पुरुषेण तथैव कृतम्, साऽपि च पुरोहितस्य भार्या नाममुद्रा दृष्ट्वाऽभिज्ञानमिलनाच्च
'सत्यमेव पुरोहितेन प्रेषितः' इति विश्वासं कृतवती । ततः सा पुरोहितभार्या ता
द्रमकनिक्षेपनवलिकां समर्पितवती । राज्ञा चान्यासा नवलिकानां मध्ये सा द्रमक-

कर लिया—राजा ने अपनी अगूठी पुरोहित को पहिरा दी और पुरोहित
की अगूठी राजा ने पहिर ली—“यह ऐसा क्यों किया ?” यह बात
पुरोहित के ध्यानमें नहीं आई । राजाने पुरोहित की अगूठी किसी
राजपुरुष के हाथ में देते हुए कहा—जाओ पुरोहित के घर पर,
वहां उसकी पत्नी से ऐसा कहना—“मुझे पुरोहितजी ने भेजा है,
विश्वास न हो तो देखो उनके नाम की यह मुद्रिका है । और उन्होंने यह
कहला भेजा है कि उस दिन, उस समय में जो धरोहर की नवलिका
(पोटली)—तुम्हारे समक्ष अमुक स्थान पर मैंने रख दी थी वह इसको
शीघ्र ही दे दो ।” राजपुरुष ने पुरोहित के घर पर आकर ऐसा ही उनकी
धर्मपत्नी से कहा । धर्मपत्नी ने भी “इसको अपने नाम की मुद्रिका
देकर ही पुरोहित ने मेरे पास भेजा है ऐसा पूर्ण विश्वास उस मुद्रिका
को देखकर कर लिया । और जो धरोहर की नवलिका पुरोहित ने उसके
समक्ष जहा रखी थी उसको उठाकर उसने उस राजपुरुषको दे दी ।

अगूठी पुरोहितने पहिरावी हीथी, अने पुरोहितनी अगूठी पोते पहिरा
हीथी “आम केम कथुं ?” ते वात पुरोहितना ध्यानमा आवी नही राज्ञे
पुरोहितनी अगूठी केअ राजपुरुषना हाथमा आपीने कथु—“जयो, पुरोहि-
तने घर जधने तेमनी पत्नीने आ प्रभाषे कहेजे—“मने पुरोहितने
भोकथे छे विश्वास न आवे तो जूवो, जेमना नामनी आ मुद्रिका छे, अने
कहेवराव्यु छे के ते दिवसे, ते समये मे जे थापणुनी थेली तभारी इण्ड
अमुक स्थान मूठी छे ते आने तरत न आपी हेसो ” राजपुरुषे पुरोहितने
घर जधने तेमनी पत्नीने जे प्रभाषे कथु—तेमनी धर्मपत्नीजे पथु “आ माणुसने
पोतानी मुद्रिका आपीने पुरोहितने जे भारी पासे भोकथे छे ” जेवो
स पूरुं विश्वास ते मुद्रिकाने जेठने मूकथे अने जे थापणुनी थेली पुरोहि-
तने तेनी इण्डमा ज्यो मूठी डती त्याथी जधने ते राजपुरुषने आपी हीथी.

द्रमके दयावान् जातः । मन्त्रिणा राजे निवेदितम् । ततो राजा पुरोहितमाहूय
 वदति-अस्य द्रमकस्य निक्षेपस्त्वया धृतः स तस्मै दीयताम् । पुरोहितः प्राह-राजन् !
 अस्य किमपि मया न गृहीतम् , किं देयम् ? । पुरोहितवचन श्रुत्वा राजा तूर्णो
 नभूव । पुरोहिते गृह गते सति राजा त द्रमकं पृष्टवान्-सत्यं वद, कस्यान्तिके
 त्वया निक्षेपः स्यापितः । राजा पृष्टोऽग्रे द्रमको 'यदा यत्र यस्य समक्षे च निक्षेपः
 स्थापितः ' सर्वं राजे निवेदितवान् । ततो राजा तद्वचनं निर्णेतुमेतदा तेन पुरोहि
 तेन सह कंचित् क्रीडाविशेषं कर्तुं प्रवृत्तः । तदा नृपः क्रीडाक्रमेण स्वकीयाङ्गुलि-
 मुद्रिका पुरोहितस्य हस्ते दत्त्वा पुरोहितस्य मुद्रिका स्वयं गृहीतवान् । तद्वदत

और कहा-तुम्हारे पास जिस दरिद्र की धरोहर रखी हुई है वह उसको
 वापिस कर दो। राजा की बात सुनते ही पुरोहित ने कहा-महाराज !
 मेरे पास तो इसकी कोई भी 'धरोहर नहीं रखी हुई है मैं क्या दू ?
 पुरोहित की ऐसी बातें सुनकर राजा चुप हो गया। पुरोहित बहा से उठकर
 अपने घर चला आया। अब राजाने उस दरिद्र को बुलाकर पूछा-
 तुम सत्य २ कहना किसके पास तुमने धरोहर रखी है ?। राजा
 के पूछने पर उस दरिद्र ने जिस समय जहां जिसके समक्ष धरोहर रखी
 थी वह सब बात राजा से स्पष्ट कह दी। अब राजा ने इसका निर्णय
 करने के लिये अपनी बुद्धि से एक उपाय सोचा, जो इस प्रकार है-एक
 दिन राजा ने पुरोहित को बुलाकर उनसे कहा-पुरोहितजी ! आओ,
 आज हम लोग कोई विशेष खेल खेले। ऐसा ही हुआ। वे दोनों क्रीडा
 विशेष करने लगे। खेल खेल में अंगूठियों का उन दोनों ने परिवर्तन

अने कहु, "तमारी पाये जे दरिद्रनी थापणु पडेव छे ते तेने पाछी सोपो।"
 राजनी वात साभणता जे पुरोहिते कहु-"भडाराज ! मारे त्या तो तेणे
 भूकेली केळ थापणु नथी हु शु आपु ?" पुरोहितनी अेवी वात साभणीने
 राज थुप थध गये, पुरोहित त्याथी उडीने पोताने घेर आव्यो गये। हुवे
 राजने ते दरिद्रने जोलावीने पूछ्यु अने कहु, "तु साये सायु कडे, केनी
 पासे ते थापणु भूकी छे ?" त्यारे तेणे जे समये, न्या, जेनी समक्ष थापणु
 भूकी हुती ते अधी विगत राजने स्पष्ट उडी दीधी हुवे राजने तेने निरुध
 ' कश्वाने माटे पोतानी पुद्धिथी अेक युक्ति शोधी जे आ प्रभाणे हुती-अेक
 दिवस राजने पुरोहितने जोलावीने कहु-"पुरोहित ! आलो, आजे आपणे
 केळ रमत रमीने अेवु जे अन्थु ते अन्ने केळ भास रमत रमवा लाज्या
 रमता रमता ते अन्नेने पोतानी अजूहीने अहली लीधी राजने पोतानी

ततः कालान्तरे निक्षेपस्वामिना स्वनवलिका याचिता । श्रेष्ठी तस्मै नवलिकां दत्तवान् । यदा स नवलिकामुद्घाटय पश्यति तदा सर्वाणि कूटरूप्यकाणि दृष्ट्वा न्यायाधीशसमीपेऽभियाग कृतवान् । न्यायाधीशः पृच्छति - तव नवलिकायां कियन्ति रूप्यकाण्यासन् ? । निक्षेपस्वामी प्राह—सहस्रम् । न्यायाधीशेन परीक्षितम् “ यावान् भागो नवलिकायाश्चिन्न आसीत् तावन्त्येव रूप्यकाण्यवशिष्टानि, नवलिका तु परिपूर्णा जाता । किंतु यावान् भागोऽधस्ताच्छिन्नस्तावान न्यून इति

नीचे के भाग को काटकर रूपये निकाल लिये और खोटे रूपये उसमें भर दिये तथा फटे हुए भाग को सीकर उसको ज्यों का त्यों कर नौली को रख दी । कुछ दिनों के बाद जिसने वह नौली सेठ के पास रखी थी वह आया और उससे अपनी वह धरोहर की रखी हुई नौली मागी । सेठ ने मांगते ही उसको वह सौंप दी । उसको लेकर वह ज्यों ही खोलकर देखता है तो उसमें सब के सब रूपये खोटे खोटे उसको दिखलाई दिये । सेठ से कहा तो ‘ उलटा चोर कोतवाल को दंडे ’ वाली कहावत चरितार्थ हुई । चिचारा वहा से दौड़ा हुआ न्यायाधीश के पास आया । मुकद्दमा चालू हुआ । न्यायाधीश ने पूछा—भाई ! तुम्हारी नौली में कितने रूपये भरे जा सकते हैं ? तो उसने कहा—एक हजार । न्यायाधीश ने उस नौली में हजार रूपये भरकर परीक्षाकी । परन्तु उम्र नौली के नीचे का भाग जितना कटा था उतने ही रूपये वच गये, नौली भर गई । अवशिष्ट रूपये डाल देने पर वह नौली सीई नहीं जा सकती थी । इससे न्यायाधीश को पूर्ण विश्वास हो गया कि इस नौली के नीचेके

दीधा अने तेमा भोटा इपीया बरी दीधा, तथा कडेला भागने सीवीने तेने हुतो तेवे करीने थेदीने मूकी दीधी, डेटलाक दिवस पछी जेहे ते थेदी शेडने त्या मूकी हुती ते आये अने तेहे पोतानी थापळनी थेदी शेडनी पानेथी पाळी भागी, गेडे भागता ज ते तेने सोपी दीधी, तेने हाथमा लधने जेवी तेहे थोदीने जेध डे तरत ज अथा भोटा इपीया तेनी नजरे पडया तेहे शेडने कधु तो “ चार डेटवाणने उडे ” वाणी कडेवत जेवु थय, गियारे त्याथी होडते न्यायाधीशनी पासे गये डेस थालु थये न्यायाधीशे पूछयु, “ भाई ! तभारी थेदीमा डेटला उपीया सभाय छे ? तो तेहे कधु “ जेध हुनर ” न्यायाधीशे ते थेदीमा हुनर इपीया बरी जेधने तेनी भात्री करी पळु ते थेदीनी नीचेने जेटले भाग कपाये हुतो तेटला भागमा सभाय जेटला इपीया भाभी ग्हा छता थेदी लराध गध भाडीना इपीया तेमा लरवाथी ते थेदीने सीवी थकाती न हुती, तेथी न्यायाधीशने भातरी थध गध डे आ

नवलिका प्रक्षिप्ता । ततो राजा त द्रमकमाह्वय म्वनवलिकां स्पर्शयितुमादिष्टवान् । ततोऽसा द्रमकः नवलिकां परिज्ञाय हस्तेन स्पृष्टवान् । ततो राजा 'द्रमकोऽय सत्य व्रतीति'—इति मत्वा ता नवलिका ग्रहीतुमादिशति । पुरोहितं तु दण्डयति स्म ।

॥ इत्येकोनविंशतितमो मुद्रिकादृष्टान्तः ॥ १९ ॥

अथ विंशतितमोऽद्भुतदृष्टान्तः—

केनाऽपि पुरुषेण कस्यचित् श्रेष्ठिन समीपे सहस्रसर्पकरूप्यैः समृता नवलिका निक्षिप्ता । स श्रेष्ठि नवलिकाया अधोभागं लिप्त्वा ततो रूप्यकाणि निःसार्य कूटरूप्यैर्भृत्वा त्रिभुजा सीत्रित्वा यथास्वरूपां ता नवलिका स्थापितवान् ।

राजपुरुष ने लाकर वह राजा को दे दी । राजाने अन्य पोटलियों के साथ उसको मिलाकर बीच में रख दिया । पश्चात् दरिद्र को बुलाकर उस से कहा—देखो इन पोटलियों में जो तुम्हारी धरोहर की पोटली हो उसको तुम मुझे छूकरके घताओ । राजा की आज्ञा से उस दरिद्र ने वैसा ही किया । राजा ने तब जान लिया कि यह दरिद्री ठीक कहता है और यह इसकी ही धरोहर की पोटली है । उसे आदेश दिया कि तुम इसको ले लो । दरिद्र ने उसे ले लिया और बहुत प्रसन्न हुआ । राजाने इस कृत्य पर पुरोहित को दण्डित किया ॥ १९ ॥

॥ यह उन्नीसवा मुद्रिकादृष्टान्त हुआ ॥ १९ ॥

वीसवा अकदृष्टान्त—

किसी पुरुष ने किसी सेठ के पास एक हजार रूपयों से भरी हुई एक नौली निक्षेपरूप में रखी । सेठ चालाक था । उसने उस नौली के

राजपुरुषे लावीने ते राजने आधी राजये भीलु थेवीयो लेगी तेने पञ्च वयमा गोठनी पञ्च दरिद्रेने गोलावीने कहु, “ लुओ, आ थेवीयोभाथी ने तारी थापणुनी थेवी डोय तेने स्पर्शानि भने भताव ” राजनी आसाधी ते दरिद्रे ते प्रमाथे कथुं राज त्यारे समलु गथे के आ दरिद्रे आदमी साचु न कडे छे, अने आ तेनी न थापणुनी थेवी छे तेथी तेभथे तेने आदेशे आथे के तु आने लडले, दरिद्रे ते लड वीधी अने ते बथे। रालु थये राजये आ कृत्य भाटे पुरोहितने शिक्षा करी ॥ १८ ॥

आ ओगणीसमु मुद्रिका दृष्टात समाप्त ॥ १८ ॥

वीसमु अक दृष्टात—

कैथ पुरुषे एक शेठने त्या एक हल्लर इपीया लरेली थेवी थापणु तरीके भूठी शेठ आलाक हतो, तेथे ते थेवीनी नीचेनी भाग थापीने इपीया कादी

गत्वा स्वनवलिका याचितवान्। श्रेष्ठिना तस्मै नवलिका दत्ता। स नवलिका सम्यग् दृष्ट्वा—“सैवेयं मम नवलिका” इति जानाति। यदा तु गृहमागत्य ताम्बुद्धादितवान्, तदा तेन ज्ञातम्—अत्र सुवर्णमुद्रा मदीया न सन्ति, इमास्तु सर्वाः कूटमुद्राः सन्ति। स पुनरागत्य श्रेष्ठिनः समीपे वदति—या नवलिका त्वया दत्ता तत्र मदीया मुद्रा न सन्ति। श्रेष्ठी प्राह—त्वया या नवलिका मयि निक्षिप्ता सैव तुभ्य मया समर्पिता। ततो न्यायालये व्यवहारो जातः। न्यायाधीशो नवलिकाया

उसने अपनी नौली मागी। सेठ ने उसको उठाकर उसकी नौली दे दी। उसने उसको पहिचान कर ले ली। लेकर जब यह घर आया और खोलकर ज्यों ही उसने उसको देखा तो उसको मालूम होने लगा कि इसमें जो ये सुवर्णमुद्राएँ भरी हुई हैं वे मेरी नहीं हैं। ये तो उनके स्थान में कूट मुद्राएँ भर दी गई हैं। अब वह उसको लेकर वापिस सेठ के पास आया, कहने लगा—हे सेठ! जो नौली आपने मुझे दी है उसमें मेरी स्वर्णमुद्राएँ नहीं हैं। वणिक् की इस बात से सचेत होकर सेठ ने कहा—भाई! तुमने जो नौली मुझे रखने को दी थी वही तुम्हारे मांगने पर मैंने तुम्हें वापिस उठाकर दी है, अब मैं क्या जानू कि वह तुम्हारी नहीं है। तुमने लेते समय भी यह अच्छी तरह देख ही लिया था कि यही नवलिका हमारी है, अब ऐसा क्यों कहते हो? सेठ के इस प्रकार के व्यवहार से अमतुष्ट होकर वणिक् ने न्यायालय में उस पर अभियोग कर दिया। न्यायाधीश ने दोनों तर्फ की बातें सुनीं।

तेबू चोतानी थेवी भागी शेठे लावीने तेने तेनी थेवी आपी दीधी तेबू ज्यो-
भीने ते लई लीधी, लईने ज्यारे ते घेर ज्यो ज्यो अने तेने ज्योलीने जेठ
तो तेने ज्यो पडी के ज्यो ज्यो ज्यो सोनाभडोरो लरेली छे ते भारी नथी
ज्यो तो तेनी ज्यो ज्यो ज्योटी भडोरो लरेली छे डवे ते तेने लईने शेठनी
पासे पाछे इर्थे अने कहु “ छे शेठ! तमे जे थेवी भने आपी छे तेमा
भारी भडोरो नथी ” वणिक्नी ज्यो वातथी सावयेत जनीने शेठे कहु—“ लार्थ!
तमे जे थेवी भने सावववा आपी डती जेज थेवी तमे भागी त्यारे लावीने
मे तभने आपी छे, डवे हु केवी रीते भानु के ते तभारी थेवी नथी? तमे
ते देती वभते जराजर जेठ लीधु डतु के ते थेवी तभारी ज छे डवे ज्यो
प्रभाजे केभ कडो छे? ” शेठना ज्यो प्रकानना व्यवहारथी असतुष्ट थईने
वणिक्के कथेगीभा तेनी सामे इरियाद दाजल करी न्यायाधीशे जने पक्षनी डडीकत

तदुपरि सीधितु न शक्यते" इति । ततो न्यायाधीशेन निर्णीतम्-नृनमम्यापइतानि रूप्यकाणि । ततो निक्षेपकर्त्रे न्यायाधीशो रूप्यकसद्वत् दापयति स्म ।

इति विंशतितमोऽङ्कदृष्टान्तः ॥ २० ॥

अथैकविंशतितमो नाणकदृष्टान्तः—

एको वणिक् फस्यचित् श्रेष्ठिनोऽन्तिके सुवर्णमुद्रासभृतामेका नवलिकां निक्षिप्य देशान्तरं गतः । स श्रेष्ठी तस्या नवलिकाया उत्तमसुवर्णमुद्रा अपइत्य तावत्सख्यका अल्पमूल्याः सुवर्णमुद्रास्तत्र भृत्वा पूर्ववत् नवलिका सीव्यति स्म ।

अन्यदा नवलिकानिक्षेपको वणिक् विदेशात्समागतः । स श्रेष्ठिनः समीपं

भाग को काट कर रूपये निकाल लिये गये हैं । अत एव जितना भाग काट दिया गया है उतने भाग में आने वाले रूपये अवशिष्ट रह जाते हैं । इस प्रकार परीक्षा कर के यथार्थ निर्णय पर पहुँचे हुए उस न्यायाधीशने यही विधान किया कि इसके रूपये निकाल लिये गये हैं । तब उस न्यायाधीश ने उस नौली वाले को एक हजार रूपये उस सेठ से दिलवा दिये ॥

॥ यह बीसवां अंकदृष्टान्त हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवा नाणकदृष्टान्त—

कोई एक वणिक् किसी सेठ के पास सोने की मुहरों से भरी हुई एक नौली-थैली रखकर बाहर परदेश के लिये गया । सेठने उसमें से उत्तम सोने की मुहरों को निकाल कर उसमें उतनी ही और थोड़ी कीमत की मुहरें भर दी, और सीकर उसको रख दी । एक दिन की बात है कि वह वणिक् परदेश से लौटकर वापिस आ गया । सेठ के पास

थैलीने नीचेतो लाग डापीने इपीया डाढी लेवाभा आव्या छे, तेथी नेटढी लाग डापी लीधा छे तेटला लागभा लरी शकाय तेटला इपीया वधे छे, आ प्रभाळु परीक्षा करीने यथार्थ निर्णय पर आवेल ते न्यायाधीशे अवे निष्कर्ष कर्यो के तेना इपीया डाढी लेवाभा आव्या छे त्यारे ते न्यायाधीशे ते थापवणी थैली वाणाने शेठ पासैथी उठार इपीया अपाव्या ॥ २० ॥

॥ आ बीसभु अक दृष्टान्त समाप्त ॥ २० ॥

अेकबीसभु नाणक दृष्टान्त—

डोअ अेक वखिक डेअ अेक शेठने त्या सोनाभडोरोथी लरेली अेक थैली भूकीने परदेशे उषयथे शेठे तेभाथी उत्तम सोनानी भडोरो डाढी लरने तेभा अेटढी न पळु आधी कीमतनी थील भडोरो लरी दीधी, अने थैलीने सीवीने भूकी दीधी अेक दिवस ते वखिक परदेशेथी पाछे कर्यो शेठनी पासे आवीने

अथ द्वाविंशतितमो भिक्षुकदृष्टान्तः—

एको वणिक् स्वचिन्मठाधीशभिक्षुकस्य समीपे सुवर्णमुद्रासहस्र निक्षिप्तवान् । कालान्तरे यदा स भिक्षुकात् स्वनिक्षेपं याचते, तदा स भिक्षुकः—अद्य दास्यामि, इत्युक्तवान् । पुनस्तेन याचितः “ श्वस्तुभ्यं दास्यामि ” इत्युक्त्वा कालातिक्रम कृतवान् । स वणिक् तदनन्तर घृतकारिभिर्मंत्रां कृतवान् । ततो वणिग् ‘ भिक्षुकेण निक्षेपो गृहीतः ’ इति स्वमित्रेभ्यः कथयति । घृतकारिभिः प्रोक्तम्—तुभ्यं त्वदीयाः सर्वा सुवर्णमुद्रास्तस्माद् भिक्षुकात् प्रदापयिष्यामः । ततस्ते

वाइसवा भिक्षुकदृष्टान्त—

किसी एक वणिक् ने एक मठाधीश भिक्षुक के पास एक हजार सुवर्ण मुद्रिकाएँ धरोहर के रूप में रख दी थी । कालान्तर में जब उसने उससे वे मांगी तो भिक्षुक ने ‘ अभी देता हूँ ’ ऐसा कहकर उसको ढाल दिया । पुनः उसने जब वे उसको नहीं दी गईं तो कहा—महाराज । अब दे दीजिये—तब भिक्षुक ने कहा—‘ भाई कल दे दूंगा ’ । इस तरह से जब वहाना बनाकर वह मठाधीश भिक्षुक उसे उसका निक्षेप देने में ढालम-ढूल करने लगा तो वणिक् ने अपनी बुद्धि से एक युक्ति सोची, वह यह है—वह शीघ्र ही जुआरियों के पास आया और उनसे मित्रता कर कहने लगा—भाई ! मैं क्या कहूँ—देखो तो सही उस मठाधीश भिक्षुक ने मेरी एक हजार सुवर्णमुद्रिकाएँ जो मैंने उसके पास धरोहर के रूप में रख दी थीं पचाली हैं, मागने पर भी वह नहीं देता है, इसका कोई उपाय हो

जावीसमु भिक्षुकदृष्टान्त—

डेअर ऐक वषुके ऐक महाधीश भिक्षुक पासे ऐक उन्तर सेनामहोशे अनामत वरीके भूकी डती थोडा वषत पछी न्यारे तेणे ते तेनी पासे भागी तो भिक्षुके “ डमष्या आपु छु ” ऐम कडीने तेने रवाना कथा इरीथी पषु ते वषुके न्यारे ते भागी ल्यारे भिक्षुके कषु, “ लाई ! कावे आपी दधश ” आ रीते भाना कडीने न्यारे ते महाधीश भिक्षुक तेने तेनी थापषु आपवामा आटा इरा अवराववा लाग्ये ल्यारे ते वषुके पोवानी बुद्धिथी ऐक युक्ति थोधी काडी ते युक्ति आ प्रभावे डती—ते तरत ज जुगारीयो पासे आब्ये अने तेमनी साथे मित्रता भाधी पछी तेमने कषु “ लाई थु वात कइ ! तुवे तो भरा ! ते महाधीश भिक्षुके मारी ऐक उन्तर सेनामहोशे ने मे तेनी पासे थापषु रूपे भूकी डती ते पचावी पडी छे, भागवा छता पषु ते आपतो नथी, तो ते भेणववाने डेअर उपाय डोथ तो आप बोके अने अतावे । ” जुगा-

निक्षेपारं प्राह—कस्मिन् फाळे त्रया नमस्त्रिका मुक्ता । ततो राणिना यस्मिन् वर्षे
 यस्मिन् दिवसे नमस्त्रिका निक्षिप्ता सर्पं पृच न्यायाधीशस्य पुरतः प्रोक्तम् । न्या
 याधीशः सुवर्णमुद्रासु लिखित तन्निर्माणकालं पश्यति । निक्षेप कालान्तरसमुत्पन्ना
 एता मुद्राः सन्तीति विज्ञाय श्रेष्ठिनं प्रोक्तवान्—एता मुद्रा अस्य न सन्ति, यतो
 निक्षेपे कृते सति ततः पश्चादेता निर्मितास्तस्मादस्य मुद्रास्त्वयागृहीतास्ता अस्मै
 देहि । ततः श्रेष्ठिना तस्मै मुद्राः प्रदत्ताः ।

इत्येकविंशतितमो नाणकदृष्टान्तः ॥२१॥

पश्चात् अपनी बुद्धि से सोचकर न्यायाधीश ने वणिक् से कहा—तुमने
 किस समय इनके पास अपनी नौली रखी थी? न्यायाधीश के इस प्रश्न
 को सुनकर नौली वाले वणिक् ने जिस वर्ष में जिस दिन में वह नौली
 सेठ के यहां रखी थी वह सब बात यथावत् सुना दी । वणिक् की बात
 को सुनकर न्यायाधीश ने उन कूट सुवर्णमुद्राओं में उनके निर्माण का
 समय देखा तो उसको पता चला कि “ निक्षेपकाल के बाद ही ये कूट
 सुवर्णमुद्राएँ बनाई गई हैं ” । ऐसा जानकर फिर उसने सेठ से कहा—
 हे सेठ ! ये मुद्राएँ इसकी नहीं हैं । कारण, रखने के समय से ये पीठे की
 बनी हुई हैं । इसलिये यह निश्चित है कि इसकी मुद्राएँ तुमने ले ली
 हैं, अतः तुम वे इसको दे दो । सेठ ने न्यायाध्यक्ष के द्वारा प्रदत्त न्याय
 के अनुसार उसकी सब मुद्राएँ उसको दे दी ॥ २१ ॥

॥ यह इक्कीसवा नाणकदृष्टान्त हुआ ॥ २१ ॥

साबजी पछी पोतानी बुद्धिथी उपाय शेधीने तेले वळिकने पूछ्यु ” तसे
 क्या दिवसे ते शेठने त्या तमाशे थेली भूकी डती ? ” न्यायाधीशने ते प्रश्न
 साबजीने थेलीवाणा वळिके जे वर्षना जे दिवसे ते थेली शेठने त्या भूकी डती
 ते अर्धी विगत अराणर कही वळिकनी वात साबजीने न्यायाधीशे ते जोटी
 सोना भडोरोभा तेमना निर्माणने समय वाच्ये तो तेने अणर पडी के “ थापण
 भूक्या पछीने समये जे जे जोटी सोना भडोरो अनेली छे ” जेभ समजने
 तेमले इरीथी शेठने कळु—“ छे शेठ ! आ सोनाभडोरो तेनी नथी, कारण के
 तमाशे त्या तेनी थापण भूक्या पछीने समये ते अनेल छे तेथी ते वात
 जोडकस थाय छे के तसे तेनी सोनाभडोरो लख दीधी छे, तो तसे ते तेने
 आपी हो ” शेठे न्यायाधीशे आपेल युकादा प्रभावे तेनी अर्धी सोनाभडोरो
 तेने सोपी दीधी ॥२१॥

॥ आ जेकवीससु नाणक दृष्टान्त समाप्त ॥२१॥

मुद्रासहस्र प्रदत्तवान् । द्यूतकारिणः किञ्चिद् विमृश्य भिक्षुकं प्राहुः—‘महाराज !
अत्रैवानश्यकं किञ्चित् कार्यमुपस्थितम्, अतोऽधुनाऽस्माभिर्न गन्तव्यम्’ इत्युक्त्वा
भिक्षुकात् सुवर्णैकं गृहीत्वा द्यूतकारिणो गतवन्तः ।

इति द्वाविंशतितमो भिक्षुकदृष्टान्तः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशतितमः चेटकनिधानदृष्टान्त —

चेटकः—बालकः । निधान—प्रसिद्धम् ।

द्वौ पुरुषौ परस्पर मित्रभाव प्रतिपन्नौ । ताम्यामन्यदा क्वचित् प्रदेशे निधान
प्राप्तम् । तत्रैकः प्रथम कपटहृदयः । द्वितीयः सरलहृदयः । कपटहृदयो ब्रूते—आगा-

वे दे दीजिये । मठाधीश भिक्षुक ने सुवर्ण की ईंट के लोभ के वश में
आकर उसी समय उस को एक हजार सुवर्णमुद्रिकाएँ दे दी । उन द्यूत-
कारों ने जब यह देखा तो वे थोड़ी देर बाद उस मठाधीश भिक्षुक से
घोले—महाराज ! हमें यहाँ ही कुछ आवश्यक कार्य आगया है सो अब
अभी हम लोग नहीं जा सकेगे अतः वह ईंट वापिस कर दीजिये, जब
जावेगे तब पुनः आकर आप के पास रख जावेगे । ऐसा कह कर वे
उस से उस ईंट को वापिस लेकर वहाँ से खुशी खुशी होते हुए वापिस
अपने स्थान पर चले आये ॥ २२ ॥

॥ यह चाईसवा भिक्षुकदृष्टान्त हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवां चेटक (बालक) निधानदृष्टान्त—

किसी स्थान पर दो पुरुष रहते थे । परस्पर में उन की बड़ी मित्रता थी ।
एक समय की बात है कि इन्हें किसी स्थान पर एक निधान प्राप्त

आया ” मठाधीश भिक्षुकने सोनानी धटना लोभने वश धर्मने अज्ञ वप्यते तेनी
अक हुनक मोनामहोरे तेने आपी हीधी ते जुगारीअ्याअे न्यारे ते न्येथु
त्यारे थोडा समय पछी तेमछे ते भीमधीश भिक्षुकने कछु, “ महाराज ! अही
अ आभारे अेक आवश्यक कार्य आवी पडथु छे तो हुवे अत्यारे अमे नर्थ
शकीअे तेम नथी तो ते धट पाछी आपी हो, न्यारे जवातु थशे त्यारे
आवीने आपनी पासे ते मूडी नर्थथु आ प्रभाछे कहीने तेनी पासेथी ते
धट पाछी लधने तेअो खुशी थता त्यथी पोत पोताने स्थाने पाछा क्यो ॥२२॥

॥ आ आवीसमु भिक्षुकदृष्टान्त ॥ २२ ॥

तेवीसमु “ चेटक ” (बालक) “ निधान ” दृष्टान्त—

कैथ अेक ज्य्याअे जे पुरुषो रहेता हुता तेमनी वअे गाढ मैत्री हुती.
अेक वप्यत तेमछे कैथ अेक ज्य्याअे जमीनभा हाटेल अलने जेथे तेने

गैरिकरक्तवह्निः साधुवेष कृत्वा सुवर्णंष्टकां गृहीत्वा षण्णिजं तत्समये तत्रागमनाय संकेत कृत्वा भिक्षुकस्य समीपे समागत्य प्रोक्तवन्तः—यय तीर्थयात्रा कर्तुं गच्छामस्त्व तु परमविश्वासपात्रमसि, अतस्त्वत्समीपे सुवर्णंष्टकामिमा निक्षिपाम इति। तस्मिन्नेव काले पूर्वसकेतितः स षण्णिरु तत्रागत्य वदति—‘महाराज! मम निक्षेप देहि’ इति। तदा स मठाधीशो भिक्षुकः सुवर्णंष्टकालोभयशात् तदैव तस्मै सुवर्ण-

तो आप लोग घतलाओ। जुआरियो ने अपने इस नवीन मित्र की बात सुनकर उसको धैर्य घघाते हुए कहा—हे मित्र! इसकी क्या चिन्ता करते हो घघड़ावो नहीं, हम वे सबकी सत्र तुम्हें दिला देंगे। तुम एक उपाय करो—हम सत्र गैरिक-रक्तवह्न पत्निकर आज ही साधु के वेष में उस मठाधीश भिक्षुक के पास एक सोने की ईंट लेकर चलते हैं ज्यों ही हम वहा पहुँचे कि तुम भी उसके पास आ जाना। इस प्रकार का संकेत देकर ज्यों ही वे सब के सब गैरिक वस्त्रधारी भिक्षुक के वेष में उस मठाधीश भिक्षुक के पास पहुँचे कि यह भी उसी समय उस के पास जाने के लिये चला। इन गैरिक वस्त्रधारी भिक्षुकों ने उस मठाधीश भिक्षुक से कहा—महाराज! हम लोग तीर्थयात्रा करने जा रहे हैं, हमारे पास यह सोने की ईंट है। सुना है—आप बड़े विश्वासपात्र हैं अतः इस को हम आप के पास रखने आये हैं। वे सब ऐसा कह ही रहे थे कि इतने में यह षण्णिरु भी वहा आपहुँचता है। आते ही वह कहने लगा—महाराज! हमारी जो आप के पास एक हजार सुवर्ण मुद्रिकाएँ रखी हैं

रीञ्जो अये पोताना आ नवा मित्रनी वात सालणीने तेने आन्धासन आपता कछु, “हे मित्र, तेनी चिन्ता शा माटे करे छे गलशशा नडी अये ते अधी तमने अपावशु तमे अेक उपाय करे अये अधा लगवा वस्त्रधारी साधुना वेषमा आये ज ते मठाधीश लिक्षुकनी पासे अेक सोनानी धट लधने जधये छीये, जेवा अये त्या पडोच्ये के तशत ज तभारे पषु तेनी पासे आवी पडोच्यु आ प्रभाछे सकेत करीने ते अधा लगवा वस्त्रधारी लिक्षुकना वेषमा जेवा मीठाधीश लिक्षुकनी पासे पडोच्ये के तशत ज ते पषु तेनी पासे जवाने माटे नीकच्ये ते लगवा वस्त्रधारी लिक्षुकेअे ते मीठाधीश लिक्षुकने कछु, “महाराज! अये तीर्थयात्रा करवा जधये छीये, अभारी पासे सोनानी आ धट छे सालयु छे के आप घणु विश्वासपात्र छे तेथी अये आ सोनानी धट तभारी पासे भूकवा माटे आव्या छीये” तेअे आ प्रभाछे कडेता डता अेवाभा ते वषुिक पषु त्या आवी पडोच्ये आपता ज कडेवा लाग्ये, “महा राज! आपनी पासे मे जे अेक डनर सोनामडोरो भूकी छे ते मने पाछी

इत्थं सरलहृदयो द्वितीयस्तस्य मायाविनो मित्रस्य लेप्यमयी प्रतिकृति कृतवान्। केनचित् पालितौ द्वौ मर्कटावपि गृहीतवान्। तयोर्मर्कटयोर्भक्ष्य फलादिक्रु प्रतिकृतेषोत्सङ्गे हस्ते शिरसि स्क्रन्धेऽन्यत्र च यथायोग्य ददातिस्म। तौ च मर्कटौ क्षुधितौ तत्रागत्य प्रतिकृते रत्सद्गादौ निक्षिप्त भक्ष्यं भक्षितवन्तौ। एव च प्रति दिवस करणे तयोस्तादृशः स्वभाव एव सजातः।

बनावटी चाते बनारकर वह मित्र की ओर निहार ने लगा। उस निष्कपटी मित्र ने उस की बनावटी बातों को सुनकर अपनी बुद्धि से जान लिया कि 'यह कपटी है'। ऐसा जानकर उस समय उससे कुछ नहीं कहा, परन्तु अपने मन में जान ही लिया कि यह सब करामात भाग्य की नहीं किन्तु इसी कपटी मित्र की है। अपने भावों को बदलते हुए उस ने उस से कहा—मित्र चिन्ता मत करो, हम लोगों का ऐसा ही खोटा भाग्य है, चलो अब घर चलिये। इस तरह परस्पर में वे दोनों विचार करते हुए अपने २ घर पर आ गये ॥

कुछ दिनों के बाद उस निष्कपटी मित्र ने उस मायावी मित्र की एक लेप्यमयी आकृति तैयार की। जब वह अच्छी तरह बन चुकी तो उसने उसके गोद, हाथ, शिर, स्कन्ध, एव और भी जगह पर फल वगैरह रखना प्रारम्भ किया। दो पालतू बन्दरों को भी यह कही से ले आया। उन बंदरों ने जब इस आकृति के अग उपागों पर रखे हुए फलादिक देखे तो वे वहा आकर उन्हें खाने लगे। इस तरह करते २ उन बंदरों का

निहाणवा लाग्ये ते सरणहृदयी मित्रे तेने बनावटी चातो साकषीने पोतानी बुद्धिथी समल लीधु के "आ कपटी छे" अम समलने पणु त्यारे तेले तेने कर्ध पणु उल्लु नहा, पणु पोताना मनभा समल लीधु के आ अर्धी बनामत भाग्यनी नथी पणु आ कपटी मित्रनी न छे पोताना मनोभावने छुपावीने तेले मित्रने कल्लु, "मित्र! चिन्ता न करे, आपणु नसीअ न पराअ छे, आलो हवे घेर नर्ध अे आ प्रभाले परस्परभा विचार करता करता तेअे अन्ने घेर आव्या केरलाक दिवस पछी ते निष्कपटी मित्रे ते कपटी मित्रनी अेड भाटीनी भूर्नि बनाववा भाडी न्यारे ते पूरे पूरी अनी गर्ध त्यारे तेले तेनी गोट, हाथ, भस्तक, अला अने भील न्य्याअे पणु पणु कृण वगेरे भूकवा भाडया अे पाणेला वानराअेने पणु ते केर्ध स्थणेथी लर्ध आव्ये। ते वानराअे न्यारे ते भूर्तिना अग उपाग पर भूकेल कृणादि जेया त्यारे तेअे त्या आवीने तेने भावा लाग्या आ प्रभाले कन्ता करता ते वानराअे अेवी

मिदिरसे शुभे नक्षत्रे निधानमिदं ग्रहीष्यामः। द्वितीयः सरलचित्ततया तथैव स्वीकृतम्। ततस्तेन कूटमनस्केन तत्र रात्रावागत्य निधानमादाय तत्राद्धारका (कोयला) प्रसिप्ताः। ततो द्वितीयदिने द्वात्रिंशद् सद् भूत्वा तत्र गतौ। तौ तत्राद्धारकान् दृष्टवन्तौ।

ततः स मायात्री स्ववसस्ताडयन् क्रन्दितु मृत्तः सन् प्राह—“वयं भाग्यहीनाः, यतो दैवेन निधानस्थानेऽद्धारकाः प्रदर्शिताः। यथाऽस्माकमस्मि दत्त्वा दैवेन पुनस्तदपहृतम्” इति जानामि।—इत्युक्त्वा स मायात्री पुनः पुनः स्वमित्रं पश्यति। द्वितीयस्तस्य कपटचित्ततया सर्वं सत्यवृत्तं विज्ञाय भाग्यपरिवर्तनेन वदति—मित्र ! निधानार्थं मां चिन्तय, गच्छ; एवमेव भाग्यमस्माकम्। ततः शान्तचेतसा द्वावपि स्वस्वगृहं गतवन्तौ।

हो गया। उस को देखते ही एक के हृदय में कपट भाव जाग गया, उसने अपने मित्र से कि जिस का चित्त कपट से रहित था कहा-भाई ! यह निधान आज नहीं लेगे, कल लेंगे। चलो-अब यहाँ से घर पर चले। वे दोनों घर आ गये। अब कपट हृदयवाले मित्र ने सरल हृदय वाले मित्र को बिना खबर दिये ही रात्रि में आकर उस खजाने को वहाँ से निकाल कर उस के स्थान में कोयले भर दिये और निधान अपने घर ले गया। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही जब वे दोनों मिलकर वहाँ आये तो उन्होंने ने निधान के स्थान पर कोयले भरे हुए देखे। देखते ही वह मायावी व्यक्ति छाती को कूट र कर रोने लगा और कहने लगा “हाय हाय हम कितने भाग्य हीन हैं जो भाग्य ने निधान के स्थान पर हमें कोयले भरे हुए दिखलाये हैं।” भाग्य ने आखे देकर फिर फोड़ डाली है। यही युक्ति इस समय हमारे ऊपर चरितार्थ हो रही है। इस तरह

जेता जे अकेना हृदयमा कपटलाव पेदा थये तेणे पोतानो मित्र के जे निष्कपटी चित्तवाणो हुतो तेने कहु, “लाई आ भज्जानो आणे वेवो नथी, कावे लक्ष्णु आलो हुवे अहीथी घेर जईजे” तेणे जेने घेर आव्या हुवे कपटी मित्रे सरणहुदयी मित्रने भयर आध्या विना रात्रे जईने भज्जानो त्याथी काढीने तेनी जग्याजे कोलसा बरी दीधा अने भज्जानो पोताना घर वेजो कथो पीजे दिवसे प्रात काणे ते जेने भजीने त्या आव्या तो तेभजे भज्जानानी जग्याजे कोलसा बरेला लाज्या ते जेता जे ते कपटी माणुस छाती कूटी कूटीने रुडा लाज्यो अने कडेवा लाज्यो “हाय, हाय ! आपणे, केटला हुलांगी छीजे के नसीजे आपणुने भज्जानानी जग्याजे कायला बरेला अताव्या छे” “नसीजे आपो आपीने पाछी शेडी नाज्या जेवु क्युं छे” आज वात अत्यारे आपणुने भराभर लाशु पडे छे” आ प्रभाजे अनापटी वातो अनावीने ते मित्रनी तरडे

सरलहृदयेनोक्तम्-पश्य ! इमौ त्वयि पुत्रवत् प्रेम दर्शयतः । तत्पिता वदति-
मित्र ! मनुष्य किं क्षणमात्रेण मर्कटो भवितुमर्हति ? । सरलहृदयेनोक्तम्-हे
भ्रातः ! अस्माक स्वकर्मवशात् निधानं यथाऽङ्गाररूप जात तथैव त्वत्कर्मव-
शात् त्वत्पुत्रौ मर्कटौ सजातौ । ततस्तत्पिता चिन्तयति-अहो नूनमनेन मत्कृत
निधानापहरण विज्ञातम् । यद्युच्चै गब्द करिष्यामि, तर्हि राज्ञा निगृहीतो भविष्यामि,
पुत्रावपि न मे मिलिष्यतः । ततस्तेन मायात्रिमित्रेण सर्वं यथावस्थित वृत्त निवेदितम्,
दत्तश्चापहृते निधाने तस्य भागः । सरलहृदयेन मित्रेण च समर्पितौ तस्य पुत्रौ ।

॥ इति त्रयोविंशतितमश्चेदकनिधानदृष्टान्तः ॥ २३ ॥

ऐसा करते हुए देखकर सरलहृदयवाले मित्र ने उस से कहा-भाई देखो ये
कैसा तुम्हारे ऊपर पुत्र जैसा स्नेह प्रकट कर रहे हैं। पुत्रों के पिता ने कहा-
क्या मित्र ! मनुष्य भी क्षणमात्र में बदर बन सकता है। सुनते ही
सरलहृदय वाले मित्र ने उससे कहा-भाई ! जब हमारे कर्मों के वश
से निधान अगाररूप (कोयलेरूप) हो सकता है तो तुम्हारे पुत्र भी
कर्मों के अनुसार बदर बन सकते हैं। इसमें कहने सुनने जैसी बात ही
क्या हो सकती है। मित्र की ऐसी अनोखी बात सुनकर उस ने विचार
क्रिया-निश्चय से मेरा कपट इस को ज्ञात हो चुका है-इसको पता पड
गया है कि निधान मैं ने ही अपहृत किया है। अब यदि मैं इस विषय
में रोता पीटता हूँ और किसी से कुछ कहता हूँ तो इस बात का पता
राजा को भी कानों कान लग सकता है। ऐसी स्थिति में बड़ी भारी
आपत्ति में पड सकता हूँ। राजा द्वारा निगृहीत होकर मेरा घरबार सब

आ प्रभाषु करता जेधने सरण हृदयवाणा मित्रे कहु, “ बाध ! जुवे, तेजे
तमारा पर केवे पुत्रना जेवे प्रेम प्रगट करे ऐ ? ” पुत्रेना पिताजे कहु,
“ मित्र ! शु भाषुस पणु क्षणवारमा वानर जनी शकते हथे ? ” ते सालणता
ज सरणहृदयवाणा मित्रे कहु, “ बाध ! जे आपणा हुलांजे जलने अ गार
इय (कोयलाइय) जनी शके तो तमारा पुत्रे पणु हुलांजे वश वानरे जनी
शके ऐ तेमा कडेवा के सालणवा जेवी वात ज शी होध शके ? ” मित्रनी
आवी अनोणी वात सालणीने तेजे विचार कर्यो, “ थोऊंस माइ कपट आ
लाणी गयो छे-तेने जभर पडी गध छे के जलने मे ज लध लीधे छे हवे
जे आ जाअतमा हु रडु के माथु कडु, के केधने कध कहु तो आ वातनी
जभर रानने डाने पणु पडोयी जय आ परिस्थितिमा हु लारे मुश्केलीमा
भूकार्थ जडिश रानत द्वारा मने घरभाथी जडार पणु डाढी भूकाय जने मारा
घरमानु जधु नष्ट पणु करी शकाय पुत्रे पणु मजे नही तेथी माइ जलु

एकदा पर्वदिवसमुपलक्ष्य सरल हृदयेन मायाविमिश्रस्य द्वात्रिंशत् पुत्रौ भोजनार्थं निमन्त्रितौ, महताऽऽदरेण प्रेम्णा च तौ मित्रस्य पुत्रौ भोजयित्वा तत्रैव कुत्रचिद् गुप्तस्थाने सुखपूर्वकं सगोपितौ । द्वितीय दिवसेऽपि चाल्सी नागतौ, ततस्तत्पिता तयोर्न्येपणार्थं मित्रस्य समीपं गत्वा पृच्छति-मित्र ! वयं द्वौ बालकौ स्तः ? मित्रेणोक्तम्-मित्र ! महान् खेदोऽस्ति, तौ त्वपुत्रौ मर्कटौ मजातौ । ततोऽपि स्वमित्रस्य गृहं प्रविशति, तदा तेन सरलहृदयेन मित्रेण तौ पालितौ मर्कटौ बन्धनादुन्मोचिता । तौ किलकिञ्चिद् कुर्वन्तौ समागत्य तस्यान्नेषु सन्तौ, लीढमन्तौ च ।

ऐसा स्वभाव हो गया कि ज्यों ही यह उस पर फलादिकों को चढ़ाना तो वे आरकर उन्हें वहाँ से उठारकर खाने लग जाते । इस तरह बदर और वह परस्पर में खूब हिलमिल गये ।

एक दिन की बात है कि पर्व का दिन आया । उस समय सरल हृदय वाले मित्र ने कपटी हृदयवाले मित्र के दो बालकों को अपने घर पर आमंत्रित किया । बड़े आदर से उन दोनों बालकों को जिमाकर अन्त में उसने उन्हें किसी सुरक्षित गुप्त स्थान पर छुपा दिया । जब वे दोनों बालक अपने घर पर नहीं पहुँचे तो उनके पिताने उनके विषय में मित्र के घर आकर पूछा-भाई वे दोनों बालक कहाँ हैं । मित्र ने कहा-भाई क्या कहें, बड़े दुःख की बात है कि वे दोनों ही बालक बदर बन गये हैं । यह सुनते ही वह उस के घर में घुस गया तो उसने वे दोनों पालित बदर बधन से निर्मुक्त कर दिये । छूटते ही वे किल किलाहट करते हुए उसके भगो पर आकर चिपट गये उसको चाटने लगे बदरों को

देव पडी गर्ध के जेवो ते तेना पर झुणादिक भूकतो के तेजो आवी आवीने तेमने त्याथी उडावी उडावीने भावा भडी जता आ प्रभाणे वानरा अने ते परस्परमा भूष डणीभणी गया

એક દિવસની વાત છે કેઈ પર્વનેા દિવસ હતો તે દિવસે સરળ હૃદયી મિત્રે કપટી મિત્રના બે બાળકોને પોતાને ઘર આમ ત્રણ આખુ ઘણા ભાવથી અને બાળકોને જમાડીને છેવટે તેણે તેમને કોઈ સુરક્ષિત ગુપ્ત જગ્યાએ સતાડી દીધા જ્યારે તે બંને બાળકો પોતાને ઘર પહોચ્યા નહી ત્યારે તેમના પિતાએ મિત્રને ઘર આવીને પૂછ્યુ, “ભાઈ તે બંને બાળકો કયા છે ?” મિત્રે કહ્યુ “ભાઈ! શુ વાત કરે, ભારે દુ ખની વાત છે કે તે બંને બાળકો વાનરા બની ગયા છે” આ સાબળતા જ તે તેના ધરમા ઘૂસ્યો ત્યારે તેણે તે પાણેલા બંને વાનરાને બધનથી મુક્ત કર્યા છૂટતા જ કિલકિલાટ કરતા તેઓ તેના અંગે ઉપર આવીને ચોટી ગયા, અને તેમુ શરીર ચાટવા લાગ્યા વાનરાને

धन ग्रहीष्याम इति । कलाचार्येण कथंचिदिदं वृत्तं ज्ञातम् । ततोऽसावन्यस्मिन्
ग्रामेऽवस्थितान् स्यन्धून् विज्ञापयति—अहममुकस्या रात्रौ नद्या गोमयपिण्डान्
प्रेक्षेप्यामि, भवद्भिस्ते गाह्या इति । ततस्तद्वन्धुभिस्तयैव स्वीकृतम् ततः कला-
चार्यो गोमयपिण्डेषु द्रव्याणि निक्षिप्य तान् गोमयपिण्डान् सूर्यकिरणेषु शोषयति ।
ततः कलाचार्यो गालकान् व्रूते—एवमस्माकं कुलाचारः, मत्कुलोत्पन्ना अमुरुपवर्षणि
स्नानं कृत्वा नद्या गोमयपिण्डान् मन्त्रपूर्वकं पातयन्ति । गालकैरुक्तम्—शोभनम् ।
ततः कलाचार्यस्तैर्गालकैः सह तस्या रात्रौ नद्या गोमयपिण्डान् मन्त्रपूर्वकं प्रक्षिप्त-
वान् । इतश्च ते गोमयपिण्डाः कलाचार्यस्य वन्धुभिर्गृहीताः ।

घातं ज्ञातं हुई तो उसने विचार किया कि कलाचार्य ने हमारे बालकों से
प्रचुरद्रव्य लिया है तो हमें अब इस को पारिश्रमिक देने की क्या आव-
श्यकता है, तथा इसके पास जो हमारे बालकों द्वारा द्रव्य पहुँच चुका
है वह भी अपहृत कर लेना चाहिये । सेठ का जब यह विचार कलाचार्य
को किसी तरह विदित हो गया तो उसने अपनी बुद्धि से उपाय सोचा,
वह यह—अन्य ग्रामों में रहे हुए अपने बंधुओं को बुलाया और कहा
देखो मैं अमुक रात्रि में नदी में सूखे गोबर पिण्डों को डालूंगा सो तुम
सब उनको उठा लेना । इस प्रकार उन्हें अपने विचारों से सहमत करके
कलाचार्य ने गोबर पिण्डों में द्रव्य भरकर उन्हें धूप में सुकाना प्रारंभ
कर दिया । और गालकों से फिर वह कहने लगा कि हमारे कुल का
आचार चला आ रहा है जो हमारे वंशज अमुक पर्व में गोमय पिण्डों
को नदी में स्नान करके मंत्र जपते हुए फेंकते हैं । अतः मैं भी ऐसा ही

कथो कं कलाचार्ये अमारा भाण्डो पासेथी धलु धन वीधु छे तो हवे तेने
भडेनताळु आपवानी शी आवश्यकता छे ? तथा तेनी पासे अमारा भाण्डो
द्वारा जे धन पडोअ्यु छे ते पळु पडावी लेवु जेछेअे शेकने। आ विचार
न्यारे कौध पळु रीते कलाचार्ये लळी वीधे न्यारे तेखे पोतानी बुद्धिथी तेने।
उपाय शोधी कळये। ते विचार आ प्रभाळे हतो—तेखे जीन गाभेभा रडता
पोताना लाछेअेने जोलाव्या अने कळु, “जुवे, अमुठ रात्रे हु नदीभा सूका
छाळु नाभीश, तो तमे ते अधाने लठ देजे” आ प्रभाळेना पोताना विचार
साथे तेभने सभत करीने जणाचार्ये छाळुना पिंडोभा द्रव्य लगीने ते पिंडोने
तडकाभा सूकववा भाड्या पळी ते भाण्डोने कडेवा लाव्ये, “अमारा कुटु-
णभा अेवो रिवाज आख्ये आवे छे के अमारा कुटुणना लोडो अमुठ पर्वने
दिवसे नदीभा स्नान करीने मंत्र जपता जपता गायना छाळुना पिंडोने नदीभा
के छे तेथी हु पळु ते प्रभाळे करीश ” कलाचार्यनी ते वात साभजीने

अथ चतुर्विंशतितमः शिक्षादृष्टान्तः—

शिक्षा धनुर्वेदविषये । कोऽपि पुरुषो धनुर्वेद निपुणः परिभ्रमन् कस्मिंश्चि-
नगरे समागतः । स तत्र धनिकानां पुत्रान् शिक्षयित्वा प्रवृत्तः । अस्मिन् कलाचार्यं स्तेभ्यो
वालकैभ्यः प्रचुराणि धनानि प्राप्तवान् । एतद् विदित्वा श्रेष्ठिनश्चिन्तयन्ति—अस्मै
कलाचार्याय वालकैः प्रभूतं धनं दत्तम्, अतोऽस्य स्वगृहं प्रतिगन्तुमुग्रतस्य सर्वं
नष्टं हो सकता है । पुत्र भी नहीं मिल सकते हैं । अतः अब भलाई मेरी
इसी में है कि मैं, जो कुछ हुआ है वह सब यथार्थरूप से इस अपने
मित्र से निवेदित कर दूँ । ऐसा विचार कर उस ने जो कुछ निधान के
विषय में घटना घटित हुई थी वह सब मित्र से प्रकट कर दी और क्षमा
याचना की । इस के बाद सरल हृदय वाले मित्र ने उस से अपना आधा
भाग निधान का प्राप्त कर उस के दोनों पुत्रों को उसको समर्पित
कर दिया ॥ २३ ॥

॥ यह तेहसवा चेटकनिधानदृष्टान्त हुआ ॥ २३ ॥

चौईसवा शिक्षादृष्टान्त—

यह दृष्टान्त धनुर्विद्या के विषय में है, जो इस प्रकार है—एक धनु-
र्वेद विद्याविशारद मनुष्य उधर-उधर भ्रमण करता हुआ किसी नगर में
आ निकला । वहाँ के एक धनिक ने इस से अपने बालकों को धनुर्विद्या
में निपुण करने के लिये इस को सौंप दिया । अन्य और भी धनिकों के
बालक इस विद्या को सीखने के लिये इसके पास आने लगे । गुरुभक्ति
से प्रेरित होकर बालकों ने इसको प्रचुर द्रव्य दिया । जब सेठ को यह

એમા જ રહેલુ છે કે જે કંઈ બન્યુ છે તે સત્ય રીતે આ મારા મિત્ર આગળ
બહિર કરૂ ” એવો વિચાર કરીને બબના બાબતમા જે કંઈ બન્યુ હતુ તે મિત્ર
પાસે બહિર ક્યુ અને તેની ક્ષમા માગી ત્યાર બાદ સરળહૃદયી મિત્રે તેની પાસેથી
બબનાનો પોતાનો અર્ધો હિસ્સો મેળવીને તેના અને પુત્રો તેને સોપ્યા ॥૨૩॥

॥ આ તેવીસમુ ચેટકનિધાનદૃષ્ટાન્ત સમાપ્ત ॥ ૨૩ ॥

ચોવીસમુ શિક્ષાદૃષ્ટાન્ત—

આ દૃષ્ટાન્ત ધનુર્વિદ્યાના વિષયમા છે, જે આ પ્રમાણે છે—

એક ધનુર્વેદ વિદ્યાવિશારદ મનુષ્ય અહીં-તહીં ફરતો ફરતો કોઈ એક
નગરમા આવી પહોચ્યો ત્યાના એક ધનિકે પોતાના બાળકોને ધનુર્વિદ્યામા
નિપુણ કરવાને માટે તેને સોપ્યા બીજા ધનિકોના બાળકો પણ ધનુર્વિદ્યા
શીખવા માટે તેની પાસે આવવા લાગ્યા શુરુ ભક્તિથી પ્રેરાઈને તે બાળકોએ
તેને ઘણુ ધન આપ્યુ બન્યારે શેઠને તે વાતની ખબર પડી ત્યારે તેમણે વિચાર

अथ पण्डविंशतितमः इच्छामहद् दृष्टान्तः—

काऽपि श्रेष्ठिनः पत्नी स्वभर्तारि मृत्युमुपागते सति वृद्धयर्थं पूर्वप्रयुक्तं द्रव्यं लोकेभ्यो न लभते । ततः सा पतिमित्रं वदति—‘ममदापय लोकेभ्यो धनम्’ इति । तेनोक्तम्—यदि प्राप्तेषु द्रव्येषु किञ्चिन्मह्यं दास्यसि तर्हि लोकेभ्यस्तव धनं दापयामि । श्रेष्ठिभार्या प्राह यादृशी तवानुकम्पा स्यात् तथा मया विधेयम् । ततोऽसौ लोकेभ्यः सर्वं तद्धनं गृहीतम् , किंतु प्राप्तस्य तद्धनस्याल्पीयान् भागः श्रेष्ठि भार्यायै स्त्री का था कि जिसने रानी की बात कबूल नहीं की थी उसको वह दे दिया गया और वही गृहस्वामिनी घोषित की गई । इस प्रकार इन दोनों का अर्थ विषय कलह निवृत्त हुआ ॥ २५ ॥

॥ यह पच्चीसवां अर्थशास्त्रदृष्टान्त हुआ ॥ २५ ॥

छाईसवा इच्छामहद्दृष्टान्त-

कोई एक सेठ की पत्नी ने जब कि पति के मर जाने पर व्याज पर दिये गये अपने द्रव्य की वसूली होते नहीं देखी तो अपने पति के मित्र से कहा—व्याज पर दिये गये द्रव्य की उगाही नहीं हो रही है, अतः आप उन लोगों से कहकर द्रव्य की वसूली करवा दे तो बड़ी कृपा होगी । मित्र ने सुनते ही जवाब दिया—यदि मुझे प्राप्त द्रव्य मे से आप हिम्सा दे तो मैं लोगों को उधार दिया गया आप का द्रव्य वसूल करवा सकता हू । मित्र की इस बात को सुनकर सेठानी ने कहा—ठीक है, जैसी आप की आज्ञा होगी वैसा ही मैं करूंगी । सेठानी की इस बात से सहमत होकर मित्र ने सेठ का उधारी पर रहा हुआ समस्त धन लोगों

श्वीजारी नडी तेना ज ते षाणक छे ज्येभ समञ्जने राष्ठीजे ते षाणक तेने सोप्ये, अने तेने ज धरनी भाविक जडेर करी आ प्रभाषे ते जन्नेना अर्थ (द्रव्य) भाटेना जगडाने अत आये ॥ २५ ॥

॥ आ पचीससु अर्थशास्त्रदृष्टान्त समाप्त ॥ २५ ॥

छवीससु इच्छामहद्दृष्टान्त-

छाई एक शेठसु मृत्यु थता तेमनी पत्नीजे न्यारे पतिजे व्याजे धीरेव लेखु वसूल थवा न भाड्यु त्यारे पोताना पतिना मित्रने कखु, “व्याजे आपेल नाषुानी उधराष्ठी पतती नथी तो आप कृपा करीने ते हेखुदारे पासेथी ते नाषुा वसूल करी हो ” मित्रे जवाब आप्ये, “जे पतेवी उधरा राष्ठीभाथी भने डिस्सेो आपे तो बोडाने उछीना आपेल नाषुानी हु वसूलत करी शकु तेम छु ” मित्रनी आ वात सावणीने शेठाष्ठीजे कखु “ठीक, आप जेभ कडेशेो तेम हु करीश शेठाष्ठीनी आ वात साथे सकभत थधने शेठना मित्रे शेठनी उधराष्ठी पताववानु काम शङ्क क्यु उधराष्ठीनी जे रकभ आपती

यदा वृत्तमिदं जानाति स्म, तदा स्वपार्श्वेते उभेस्त्रियाराहूय उदति—किंविदिना-
नन्तरं मम पुत्रो भविष्यति, स च वर्धितोऽस्याशोकवृक्षस्याधस्तादृपमिष्टः सन् पुत्र-
योर्न्यायं करिष्यति, तावत्पर्यन्तमत्र युवा तिष्ठतम् । अथ च बालको ममाग्नीनस्ति
ष्ठु । न्याये जाते सति पश्चाद् यस्याः पुत्रो भविष्यति, तस्यै दास्यामि । इति
तद्वचः श्रुत्वा तदानीमपुत्रा भार्या मङ्गला देव्यावचनं सदर्पं स्वीकृतवती । तावत्तत्र
मङ्गलादेव्या विज्ञातम्—इयमेवापुत्राऽस्ति नाय बालकोऽस्याः पुत्र इति । ततस्तथा
पुत्रवत्यै भार्यायै पुत्रः समर्पितः, सैव च गृहस्यामिनी कृता । एतन्मुभयोरर्थं विषयः
कलहो निवृत्तः ।

॥ इति पञ्चविंशतितमोऽर्धशास्त्रदृष्टान्तः ॥ २५ ॥

न्यायप्राप्ति के लिये राजकुल में गई। वहाँ राजा की राना मंगला देवी
को जब उन के विवाद का पता चला तो उसने बुद्धि सोची और उन
दोनों स्त्रियों को अपने पास बुलाकर कहा—तुम दोनों यहीं पर ठहरो,
झगडा मत करो देवों मेरे यहाँ कुछ दिनों के बाद पुत्र होगा—जब वह
बडा हो जावेगा तब इस अशोकवृक्ष के नीचे बैठ कर तुम दोनों का न्याय
कर देगा, अतः जब—तक तुम्हारा न्याय नहीं हो है तबतक यह तुम्हारा
बालक मेरे पास ही रहेगा। न्यायप्राप्त होने पर यह बालक जिसका
प्रमाणित होगा उस को ही सौंप दिया जावेगा। इस तरह रानी मंगला-
वती देवी के वचनों को सुनकर वह अपुत्रवती स्त्री बडी खुश हुई और
उस ने रानी की बात मानली। अपनी बात स्वीकृत होते ही रानी ने यह
जान लिया कि यह बालक इसका नहीं है। इस तरह वह बालक जिस

उठेन न आये। त्पारे तेजो न्यायभेणववा भाटे राजदरभारे पडोथी त्या राजनी
राणी मगणादेवीने न्याये तेमना विवाहनी भणर पडी त्यारे तेमणे पोतानी
भुद्धिथी उपाय शोधी काढये, अने ते अन्ने स्त्रीजोने पोतानी पासे आलावीने
कथु “ तमे अन्ने अडी न रडो, अगडो करशे मा, जुवे, भारे त्या डेटकाड
दिवसे पडी पुत्र नभशे ते न्याये मोटे। थशे त्यारे आ अशोकवृक्ष नीचे
जेसीने तभारे अन्नेने न्याय करशे, तो न्या सुधी तभारे न्याय न थाय
त्या सुधी तभारे आ आणक भारी पासे न रडशे, न्याय भणता आ आणक
जेने साणीत थशे तेने न सोपी देवाशे राणी मगनावती देवीनी आ प्रकारनी
वात साळणीने ते अपुत्रवती स्त्री धणी भुश थर् अने तेणे राणीनी वात भणूर
करी तेना द्वारा पोतानी वातने स्वीकार थता न राणी समथ गर्ड डे आ
आणक तेने नथी भीण स्त्रीजे राणीनी वात स्वीकार नडी जेणे राणीनी वात

अथ पण्डविंशतितमः इच्छामहद् दृष्टान्तः—

काऽपि श्रेष्ठिनः पत्नी स्वभर्तारि मृत्युमुपागते सति वृद्धयर्थं पूर्वप्रयुक्त द्रव्य लोकेभ्यो न लभते । ततः सा पतिमित्र वदति—‘ ममदापय लोकेभ्यो धनम् ’ इति । तेनोक्तम्—यदि प्राप्तेषु द्रव्येषु किञ्चिन्मह्य दास्यसि तर्हि लोकेभ्यस्तत्र धन दापयामि । श्रेष्ठिभार्या प्राह यादृशी तवानुकम्पा स्यात् तथा मया मिथेयम् । ततोऽसौ लोकेभ्यः सर्वं तद्धन गृहीतम् , त्रिंशु प्राप्तस्य तद्धनस्याल्पीयान् भागः श्रेष्ठि भार्यायै

स्त्री का था कि जिसने रानी की बात कबूल नहीं की थी उसको वह दे दिया गया और वही गृहस्वामिनी घोपित की गई । इस प्रकार इन दोनों का अर्थ विषय कलह निवृत्त हुआ ॥ २५ ॥

॥ यह पञ्चोसवां अर्थशास्त्रदृष्टान्त हुआ ॥ २५ ॥

छाईसवा इच्छामहद्दृष्टान्त—

कोई एक सेठ की पत्नी ने जब कि पति के मर जाने पर व्याज पर दिये गये अपने द्रव्य की वसूली होते नहीं देखी तो अपने पति के मित्र से कहा—व्याज पर दिये गये द्रव्य की उगाही नहीं हो रही है, अतः आप उन लोगों से कहकर द्रव्य की वसूली करवा दे तो बड़ी कृपा होगी । मित्र ने सुनते ही जवाब दिया—यदि मुझे प्राप्त द्रव्य में से आप हिम्सा दे तो मैं लोगों को उधार दिया गया आप का द्रव्य वसूल करवा सकता हूँ । मित्र की इस बात को सुनकर सेठानी ने कहा—ठीक है, जैसी आप की आज्ञा होगी वैसा ही मैं कहूँगी । सेठानी की इस बात से सहमत होकर मित्र ने सेठ का उधारी पर रहा हुआ समस्त धन लोगों

स्वीकरी नहीं तेना ज ते भाणक छे जेभ समञ्जने राषीजे ते भाणक तेने सोप्ये, अने तेने ज धरनी भासिक जाडेर करी आ प्रभाञ्जे ते अन्नेना अर्थ (द्रव्य) भाटेना अगडाने अत आये ॥ २५ ॥

॥ आ पचीशसु अर्थशास्त्रदृष्टान्त समाप्त ॥ २५ ॥

छवीससु इच्छामहद् दृष्टान्त—

कोई जेक शेठनु मृत्यु थता तेमनी पत्नीजे ज्यारे पतिजे व्याजे धीरेल बेणु वसूल थवा न भाड्यु त्यारे पोताना पतिना मित्रने कहु, “व्याजे आपेल नाणानी उधराणी पतती नथी तो आप कृपा करीने ते हेबुदारे पासेथी ते नाणु वसूल करी हो ” मित्रे जवाब आप्ये, “जे पतेवी उधरा राणीभाथी भने डिस्से आपो तो बोडोने उछीना आपेल नाणानी हु वसूलत करी शकु तेम छु ” मित्रनी आ वात सालणीने शेठाणीजे कहु “ठीक, आप जेभ कडेशो तेम हु करीश शेठाणीनी आ वात साथे सहमत थधने शेठना मित्रे शेठनी उधराणी पताववानु काम शङ् क्यु उधराणीनी जे रकम आपती

दातु मिच्छति । श्रेष्ठिपत्नी अपरितुष्टा जाता । राजकुले व्यवहारो जातः । न्यायाधीशस्तद्गन द्विधा विभक्तं कृतवान् एकस्तत्र महान् भागः, द्वितीयस्तोकः कृतः । ततो न्यायाधीशः श्रेष्ठिमित्रं प्राह—अत्र कः भागः ग्रहीतुमिच्छामि ? । महान्तं भागं ग्रहीतुमिच्छामि । न्यायाधीशः स्वमनसि विचार्य प्रोक्तवान्—अस्या महान् भागोऽस्ति । द्वितीयस्तुतवास्ति ।

॥ इति पद्मविंशतितम इन्द्रमहद्दृष्टान्तः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशतितमः शतसहस्रदृष्टान्तः—

कस्यचित् परित्राजकस्य रजतमयं महत् खोरनाभिधं भाण्डमासीत् । तस्मिन्

से उगाना प्रारंभ कर दिया । जो द्रव्य उगाही में आता उस में से वह मित्र सेठानी के लिये बहुत कम देने की भावना रखने की वजह से कम देता । सेठानी इस कारण उस पर अप्रसन्न रहने लगी । होते होते राजकुल में इन दोनों की यह तकरार पहुँची तो वहाँ न्यायाधीशने अपनी बुद्धि लगा कर उस द्रव्य के दो विभाग किये । एक विभाग में अपार धनराशि रखी और दूसरे विभाग में थोड़ी सी । फिर उसने श्रेष्ठ मित्र से कहा इनमे से आप किस विभाग को लेना चाहते हो—तो झट से उसने कह दिया कि महाराज ! इस अपार धनराशिवाले विभाग को । सुनते ही न्यायाधीश ने अपने मन में सोच समझ कर उस से कहा—नहीं यह विभाग तो सेठानी का है तुम्हारा नहीं, तुम्हारा तो यह दूसरा विभाग है ॥ २६ ॥

॥ यह छाईसवा इन्द्रमहद्दृष्टान्त हुआ ॥ २६ ॥

तेभाथी ते मित्र शेठायीने भाटे धल्ले आणु आपवानी लावनाथी तेभने धणु थोडी रकम आपतो आ जारु शेठायी तेना पर नाराज रहेवा लागी छेवटे ते भन्नेनी आ तकरार राजनी कथेरीमा पडेथी त्यारे त्या न्यायाधीशे पोतानी बुद्धि चलावीने ते द्रव्यना जे विभाग कर्था अेक विभागमा अपार धनराशि भूडी अने बीजमा थोडु जे धन भूक्यु पछी तेभणे शेठना मित्रने कळु, “आ जे भाथी तमे कथे विभाग लेवा मागे छे त्यारे तेणे तुरत जे कळु, “महाराज ! आ अपार धनराशिवाणे ‘विभाग’ ते सालणता जे न्यायाधीशे पोताना मनमा विचार करीने तथा समजने तेने कळु, “ना आ विभाग तो शेठायीने छे, तभारे नथी, तभारे तो आ बीजे विभाग छे ॥२६॥

॥ आ छवीससु छिंछामहद्दृष्टान्त समाप्त ॥ २६ ॥

परित्राजके चैको विशिष्टो गुण आसीत्—यदसौ सकृत् शृणोति, तद् धारयति, अतस्तस्याहङ्कारः समुत्पन्नः । एवमसौ घोषणा कारयति—यः कश्चिन्मह्यं किञ्चिदश्रुतपूर्वं वृत्तं श्रावयेत्, तस्मै ददामीदं भाजनम्, इति । परं तु न कोऽप्यपूर्वं श्रावयितुं शक्नोति, स हि यत् किमपि शृणोति तत् सर्वमस्खलितं तथैवानुवदति । ततः केनापि सिद्धपुत्रेण वातप्रतिज्ञेन कथितम्—अपूर्वं श्रावयिष्यामि यदि परित्राजकः स्वप्रतिज्ञां पालयेत् । एतद् वृत्तं राजा विज्ञातम् । राजभवने बहुतरो लोको मिलितः । परित्राजकोऽपि समागतः । राज्ञः समक्षं सिद्धपुत्रं पठति—

सत्ताईसवा शतसहस्रदृष्टान्त—

किसी परित्राजक के पास एक चादी का बड़ा भाजन था । इसका नाम खोरक था । परित्राजक में एक विशिष्ट गुण यह था कि वह एक ही बार में सुनी गई बात को हृदय में धारण कर लेता था । इस से उसके मन में बड़ा भारी अपनी इस स्थिति का अहङ्कार था । वह जगह २ कहता फिरता था कि जो कोई मुझे अश्रुतपूर्व वात सुनावेगा वह भाजन का मालिक होवेगा । परन्तु कोई भी व्यक्ति उसको ऐसा नहीं मिला जो अश्रुतपूर्व वात उसको सुनावे । जो भी कुछ उसको सुनाया जाता वह झट से अस्खलित रूप में उसी तरह उसको कह देता, अतः सब लोग इससे बहुत तग आगये । यह बात धीरे २ किसी सिद्धपुत्र के पास पहुँची तो उसने कहा कि यदि परित्राजक अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहें तो मैं अवश्य ही उन्हें अश्रुतपूर्व वात सुना सकता हूँ । होते २ यह खबर राजा तक भी पहुँच गई । राजाने एक सभा एकत्रित की—वहाँ

सत्यापीसमु शतसहस्रदृष्टान्त—

कोई परित्राजकनी पास थादीनु अेक भोटु पात्र हुतु तेनु नाम थोरक हुतु परित्राजकभा अेक विशिष्ट गुण हुतो के ते अेक न वषत साल जेली वातने मनभा याद राणी शकतो हुतो तेथी पोतानी आ सिद्धिनु तेने धणु लारे अबिमान हुतु ते स्थणे स्थणे अेम उडेतो इशतो हुतो के जे कोर्ध भने अश्रुतपूर्व वात सलणावये ते आ पात्रने मालिक थये पणु तेने कोर्ध अेवी व्यक्तित न मणी के जे तेने अश्रुतपूर्व वात सलणावे तेने जे कर्ध सलणाववामा आवतु, ते अस्खलित रीते अने अेक प्रकारे ते थोवी जतो, ते डारणे जधा लोको तेनाथा जणे आवी गया आ वात धीरे धीरे कोर्ध सिद्धपुत्रनी पास पडोथी तो तेणे कणु के जे परित्राजक पोतानी प्रतिज्ञा पाणवामा भककम डोय तो हु तेने अश्रुतपूर्व वात सलणाववा तैथार धु धीरे, धीरे आ वात रालने काने पणु पडी रालने अेक सला जोलावी त्या परि-

“ तुङ्ग पिया मह पिउणो, धारेइ अण्णग सयसहस्र ।

जइ सुयपुत्र दिज्जउ, अह न सुय गोरय देसु ” ॥

छाया—तव पिता मम पितु धारयति अन्यूनक शतमहस्रम् ।

यदि श्रुतपूर्वं ददातु, अय न श्रुत गोरक देहि ॥ १ ॥

सिद्धपुत्रः परिव्राजकं पराजयति स्म । ततः परिव्राजकः स्वकीय खोरक रजत
भाजनं सिद्धपुत्राय दत्तवान् ।

इति सम्प्रविशतितमः शतसहस्रदृष्टान्तः ॥ २७ ॥

॥ इति—औत्पत्तिक्युद्धिर्णनम् ॥ १ ॥

अथ वैनयिक्युद्धिदृष्टान्ताः प्रदर्शयन्ते (पृष्ठ ३०९) । तत्र प्रथमो निमित्त
दृष्टान्त प्रोच्यते—

परिव्राजक भी बुलाये गये जब सब लोग यथास्थान बैठ चुके तब उस
सिद्धपुत्र ने एक गाथा पढ़ी जिसका भाव यह था कि महाराज ! तुम्हारे
पिता पर हमारे पिता का ठीक एक लाख का कर्जा है, यदि यह बात
आपके सुनने में आई है तो आप वह कर्जा चुकता कीजिये, नहीं तो
इस खोरक-भाजन को हमें दे दीजिये । सिद्धपुत्र की इस बात को
सुनकर वह परिव्राजक पराजित हो गया और अपना खोरक उसको
दे दिया ॥ २७ ॥

॥ यह सच्चाईसवा शतसहस्रदृष्टान्त हुआ ॥ २७ ॥

॥ यह औत्पत्तिकी बुद्धि का वर्णन हुआ ॥ १ ॥

अब वैनयिकी बुद्धि के उदाहरण कहे जाते हैं (पृष्ठ ३०९) जिसमें—
प्रथम निमित्तदृष्टान्त इस प्रकार है—

राजकने पणु भोलाववामा आन्था न्यारे भधा लोके पोत पोतानी न्याये
भेसी गया त्यारे ते सिद्धपुत्र अक गाथा भोट्यो, नेने लावार्थ आ प्रभाषे
इतो—“ महाराज ! तमारा पिता पासे मारा पितानु भराभर अक लाभनु देखु छे
ने ते वात तमारा साबणवामा आवी होय तो आप ते देखु भरपाई करी
हो नही तो आ जोरकपात्र भने आपी हो सिद्धपुत्रनी ते वात साबणीने
ते परिव्राजके डार कभूल करी लीधी अने पोतानु जोरक तेने आभ्यु ॥ २७ ॥

॥ आ सत्यावीससु शतसहस्रदृष्टान्त समाप्त ॥ २७ ॥

आ औत्पत्तिकीबुद्धिनु वर्णन थयु ॥ १ ॥

इये वैनयिक बुद्धिना उदाहरणो आपवामा आवे छे—(पृ० ३०६)

पडेहु निमित्तदृष्टान्तआ प्रभाषे छे—

कस्मिंश्चिन्नगरे सिद्धपुत्रः स्वकीयौ द्वौ शिष्यौ निमित्तशास्त्रं पाठयति स्म । तयोरेकौ विनयसम्पन्न आसीत् स गुरोरुपदेशं बहुमानपूर्वकं स्वीकरोति । यत्र सशयः समुत्पद्यते, तन्निराकरणार्थं गुरोरन्तिकं गत्वा सविनयं पृच्छति । एतमसौ विनय-विवेकपुरस्सरं शास्त्रमधीत्य तीव्रबुद्धिलब्धवान् । द्वितीयस्तु शिष्यो विनयादि गुण-रहितत्वात् केवलं शब्दज्ञानं प्राप्तवान् ।

एकदा तौ गुरुनिदेशेन समीपवर्तिनिग्रामे गच्छतः । मार्गं कस्य चिन्महा प्राणिनश्चरणचिह्नानि ताभ्यां दृष्टानि । विनयी शिष्यो द्वितीयं पृच्छति-इमे कस्य चरणाः ? द्वितीयः शिष्य आह-अत्र का पृच्छा ? इमानि हस्तिनश्चरणचिह्नानि

किसी नगर में कोई सिद्धपुत्र अपने दो शिष्यों को निमित्त शास्त्र पढ़ाया करता था । उनमें एक शिष्य बहुत विनयी था । वह अपने गुरु के उपदेश का बहुत भारी सम्मान करता और उसको मानता था । उसमें जब इसको कोई सशय जैसी बात मालूम पड़ती तो वह उसको दूर करने के लिये बड़ी विनयके साथ गुरु के पास जाकर पूछा करता । इस तरह विनय विवेक पुरस्सर शास्त्र का अध्ययन कर वह तीव्र बुद्धि वाला बन गया । दूसरा शिष्य ऐसा नहीं था वह विनयादि गुण से रिक्त था । इससे उसको मात्र शब्दज्ञान ही प्राप्त हो सका, अधिक कुछ नहीं ।

एक दिन की बात है कि ये दोनों शिष्य गुरु की आज्ञा से किसी समीपवर्ती ग्राम में गये । मार्ग में इन लोगोंने किसी महाप्राणी के चरणचिह्नो को देखा । विनीत शिष्य ने उस अविनीत शिष्य से पूछा-भाई ! ये चरण किसके हैं ? सुनते ही अविनीत शिष्य ने कहा-इसमें पूछने की क्या बात है-ये हाथी के पैर के चिह्न हैं यह क्या तुम नहीं

कैध अेऽ नगरमा कैध सिद्धपुत्र पोताना अे शिष्येऽने निमित्तशास्त्रं लघ्वावता इता तेमा अेक शिष्यं धत्ते अे विनयी इतो ते गुरुना उपदेशानु धत्ते सन्मानं करतो इतो अने तेने मानना इतो तेमा तेने कैध भावतमा सशयं थनो तो तेनु निवारणं करवा माटे ते विनयपूर्वकं गुरुनी पासे अेधने पूछतो इतो आ प्रभात्ते ते विनय विवेकपूर्वकं शास्त्रने अेव्यास करीने तीव्र बुद्धिवाणे मनी गथे आने शिष्य अेवो न इतो ते विनयादि गुणैऽधी रक्षित इतो तेथी तेने मात्र शब्दज्ञानं अे प्राप्तं थयु वधारे कर्धं नही

अेक दिवस ते अेन्ने शिष्ये गुरुनी आज्ञाधी पासेना गाममा गया रस्तामा तेमत्ते कैध मोटा प्राणुना पगला अेया विनीत शिष्ये ते अविनीत शिष्यने पूछथु, “लाठी आ केना पगला छे ?” तरत अे अविनीत शिष्ये क्खु, “आमा पूछवा अेवुं थु छे ? आ हाथीना पगला छे, ते थुं तु सभल

हृदयन्ते । विनीतो वदति-नेयम्, नेयम्, इमानि हस्तिनीचरणचिह्नानि । हस्तिनी
वामाक्ष्या काणा । तदुपरि महाकुलीना मय्या ' स्त्री समुपविष्टा गच्छति । अग्रशो
वा प्रसविष्यति । पुत्रश्च तस्या भविष्यति । एतद्युक्ते चाविनीतो व्रूते-कथमेतद्व
सीयते ? । विनीतः प्राह-प्रत्यायाद् व्यक्त भविष्यति । ततश्चौ ग्राम गतवन्तौ ।
तस्य ग्रामस्य ग्रहि' प्रदेशे महासरमः समीपे यत्रनिर्मित निजामस्थाने राज्ञी ताम्या
दष्टा । रामेन चक्षुषा काणा हस्तिनी च दृष्टा ।

अत्रान्तरे काचिद् दासचेटी हस्तिपक वदति-रामः पूजो जात इति राजानं
जय जयेत्यादिशब्देन उर्थापय । विनीतो द्वितीय प्रत्याह-दासचेटी वचन परि
जान सकतै हो ? विनीत-हा जान तो सरुना ह पर ये शशी के पैर के
चिह्न नहीं हें ये तो हस्तिनी के चरणचिह्न हें । तथा और देगो-यह
हथिनी वाम आरु से कानी हें । हमके ऊपर क्रोड महाकुलीन सघवा
स्त्री बैठी हुई गई है । जिसके आजकल में प्रसव होने वाला है । उस प्रसव
में उसके पुत्र का जन्म होगा । इस प्रकार विनीत शिष्य के कहने पर
अविनीत शिष्यने उससे कहा-यह सब तुम कैसे जाना । विनीत ने
उत्तर दिया-किस प्रकार की साधन सामग्री से यह पीछे मतलाजगा ।
इस तरह बातचीत करते हुए वे दोनों ही जिस ग्राम को जाना या उस
ग्राम की ओर चले । जाते २ ग्राम के बाहर उन्होंने देखा कि एक बड़ी
भारी तालाब के तट पर एक बड़ा तम्बू तना हुआ है । उसमें एक रानी
ठहरी है । पास में तबू की एक ओर एक चाये आगव से कानी हथिनी
भी बधी हुई है । इसी समय उन्होंने यह भी सुना कि एक चेटी महावान
से यह कह रही है कि जाओ और राजा को जय जय शब्द पूर्वक बधाई दो,

शकतो नथी ? " विनीत शिष्ये कथु, " हा समल तो शकु छु के आ हाथीना
पगला नथी पणु हाथलीना पगला छे वणी लुवे, आ हाथली हाथी आणे
काणी छे तेनी उपर काँठ महाकुलीन सगर्ला श्री केडेव छे, जेने आनकालमा
प्रसव थवानो छे तेने पुत्रनो प्रसव थवानो छे आ प्रभावे विनीत शिष्यकु
कथन सालणीने अनिनीत शिष्ये कथु, आ अथु तमे केवी रीते लणुयु विनीत
शिष्ये उल्लु, कथा प्रकारनी साधन नामग्रीथी ते पछी भतावीश " आ प्रभावे
वातचीत करता करता ते अन्ने जे गाम जवानु हुतु ते तरद' आख्या जता
जता गामनी अकार तेमणु जेयु के एक मोटा तणावने जडे एक मोटा
तथु तावेदो छे तेमा एक राणी उतरी छे पासे तथुनी एक तरद हाथी
आणे हाथी एक हाथली पणु भाषित्री छे जेज वधने तेमणु जे पणु सालणु
के एक हासी महावतने कडेती हती के लओ अने, राजाने जय जय शब्द

भाष्य । तेनोक्तम्-परिभाषितं मया सर्वं, तज्ज्ञान सत्यमेवास्ति । ततस्तौ तस्मिन् महामरसस्तटे करचरण प्रक्षाल्य वटवृक्षस्याधस्ताद् विश्रामार्थं स्थितौ । तदैका वृद्धा शिरसि जलपूर्णघटं धृत्वा गच्छति । सा वृद्धा तावुभौ आकृत्यादिना नैमित्तिको विज्ञाय पृच्छति-हे आर्य ! देशान्तरगतो मम पुत्रः कदा पुनरागमिष्यति । तदानीमेव तन्मस्तकाद् घटः पतितः खण्डशो भग्नः । अविनीतेनाविगृह्यैव तदा झटिति ऋयितम्-तत्र पुत्रो घट इव नष्टो जातः । तदा विनीतो विगृह्य द्रूते-नैवम् नैवम्, अस्याः पुत्रो गृहे समागतो वर्तते । हे मातर्गृह गच्छ, स्वपुत्रमुखमवलोक्य । ए-

कारण उनके यहा पुत्र रत्न का जन्म हुआ है । इस तरह दासी के वचन सुनकर विनीतशिष्य ने अविनीत से कहा-देखा सुना दासी क्या कह रही है ? अविनीत ने कहा-हा देख सुन लिया-भाई ! तुम्हारा ज्ञान विलकुल सच्चा है । इस तरह परस्पर में बातें करते हुए उन दोनों ने उस तालाब के तट पर अपने हाथ पैरों को धोया और वही पर के एक वटवृक्ष की छाया में विश्राम किया । इतने में ही वहा एक वृद्धा ने जो जल से भरे हुए घड़े को अपने माथे पर रखे हुईं जा रही थी इन्हें देखा । आकृति आदि से वह इन्हें ज्योतिषी जानकर पूछने लगी हे आर्य ! मेरा पुत्र देशान्तर गया हुआ है सो बतलाईये वह कब आवेगा ? इस प्रश्न के साथ ही उस विचारी का घड़ा माथे पर से नीचे गिर कर फूट गया । अविनीत शिष्य ने यह देखकर उस से कहा-माँ ! तेरा तो पुत्र इस घड़े की तरह समझले नष्ट हो गया है । अविनीत की इस बात को सुनकर विनीत ने कहा-भाई ! नहीं २ ऐसा मत कहो इसका पुत्र तो

पूर्वज वधाभङ्गी आपो के तेमने त्या पुत्रने जन्म थयो छे दासीना जेवा वचने सासलाने विनीत शिष्ये अविनीत शिष्यने उछु, “ सासलज्यु, दासी शु उडी रही छे ? ” अविनीत शिष्ये कछु, “ हा, ज्येथु अने सासलज्यु लाई । तभारी कटपना तदन साथी छे ” आ प्रभाञ्जे वातो करता करता ते अन्नेजे तणावने काठे पोताना हाथपग धोया अने त्या ज ओक वडनी नीचे छायाडामा विश्राम देवा लाया जेवामा माथे पाणीना घडो लधने जती ओक वृद्धाजे तेमने जेया मुष्कृति आदिथी तेमने ज्योतिषी भानीने पूछवा लागी, “ हे आर्य ! मेरो पुत्र परदेश गयो छे तो ते क्यारे आवथे ते भतावे ” आ प्रश्ननी साथे ज ते विचारीना घडो माथा उपरथी नीचे पडयो अने कुटी गयो अविनीत शिष्ये आ जेधने तेने कछु, “ मा ! आ घडानी जेम तभारे पुत्र नाश पाभ्ये छे जेम समञ्ज हो ” अविनीत शिष्यनी आ वात सासलाने विनीत शिष्ये उछु, “ ना, ना ज्येथु न कडे तेमने पुत्र तो क्यारनाथ घेर आवी गयो छे भा ।

मुक्ता सा तं विमृश्यकारिण विनीत शुभाशीर्षचनगतानि प्रयुञ्जाना स्पृष्ट गतवती ।
सा म्यपुत्र गृहमागत पश्यति । पुत्रो मातर प्रणमति । सा च निजपुत्राय शुभाशी-
र्षचन ददाति । नैमित्तिकेन विमृश्यकारिणा यथारुणितं पुत्राय तथा सर्वं निवेदि-
तम् । ततः सा वृद्धा पुत्र पृष्ठा तत्रागत्य तस्मै विमृश्यकारिणे रत्नयुगलं सुवर्णमुद्रा-
दिविभिषयस्तुजात च समर्पयति । अविमृश्यकारी तदा चिन्तयति—अहं गुरुणा न
सम्यक् पाठितः । अथमन्यथाऽहं न जानामि अथ तु जानाति ।

कभी का घर पर आ गया है। माँ ! तुम घर जाओ और अपने पुत्र के
मुख का अलोकन करो। इस प्रकार वह विनीत शिष्य के वचन सुन
उस को समझदार समझ अनेक शुभाशीर्षाद देती हुई अपने घर आ
पहुँची। वहाँ आते ही उस ने प्राणाधिक अपने प्रिय पुत्र को देखा।
उस को बड़ी प्रसन्नता हुई। पुत्र ने भी ज्यों ही अपनी माता को देखा
तो वह आकर उस के चरणों से लिपट गया। शुभाशीर्षाद देकर उस ने
पुत्र को उठा कर छाती से लगा लिया। उस माना ने पुत्र से जो कुछ
उस से उस नैमित्तिक ने कहा था सब यथावस्थित कह दिया। पश्चात् उस
ज्योतिषी के लिये उस ने अपने पुत्र से पूछकर एक धोती, एक दुपट्टा,
तथा सुवर्ण मुद्रा आदि अनेक कीमती वस्तुएँ प्रदान कीं। विमृश्यकारी
शिष्य की इस प्रतिष्ठा से प्रभावित होकर उस अविनीत शिष्य अपने
मन में विचार किया—मुझे गुरु ने अच्छी तरह नहीं पढाया है, इस को
ही अच्छी तरह पढाया है, नहीं तो ऐसा कैसे हो सकता था कि यह
तो वाते जान जावे और मैं न जान सकूँ।

तमे घेर नयेो अने तभारा पुत्रना मुष्णना दर्शन करे । ” आ प्रभाछे ते विनीत
शिष्यना वचन साधणीने, तने शुद्धिशाणी भानीने अनेक शुभ आशीर्षाद दधने
ते पोताने घेर पडोखी त्या आवता न तेछे पोताना प्राणुथी पणु प्रिय पुत्रने
नेथे ते धर्षी भुश थर्ध पुत्रे पणु नेवी पोतानी माने नेध के ते तेमना
थरछे पडथे शुभाशीर्षाद दधने ते पुत्रने लेटी पडी ते माताछे ते नैमित्तिके
ने कर्ध पोताने छु छतु तेनाथी पोताना पुत्रने स पूष्ण रीते वाकेर कर्यो पछी
पोताना पुत्रने पूछीने तेछे ते ज्योतिषीने भाटे अेठ धोता, अेक दुपट्टो, तथा
सोनाभडोर वगेरे धर्षी कीमती वस्तुओ लेट आपी विनीत शिष्यनी आ प्रतिष्ठाथी
प्रभावित थर्धने ते अविनीत शिष्ये पोताना मनभा विचार कर्यो, “ भने शुद्धे
सारा रीने लख्णुओ नथी, आने न सारी रीते लख्णुओ छे, नडां तो अेवु केभ
अने के ते ने वातो लख्णु शके ते हुं न लख्णु शकु ? ”

गुरुकार्ये सपन्ने सति द्वापि गुरोः पार्श्वे समागती । तत्र विमृश्यकारी शिष्यो
दर्शनमात्रे एव गिरो नमयित्वा कृताञ्जलिपुटः स उद्भुमान् हर्षाश्रुपूर्णलोचना गुरो-
श्चरणयोशिरोनिधाय प्रणामकृत्वा प्राप्त तत्सर्वं वस्तुजात गुरवे समर्पितवान् ।
द्वितीयस्तु शैलस्तम्भ इव मनागप्यनमित शरीरो द्वेषपूर्णं सन् गुरुसमीपेऽवतिष्ठते ।
तदा द्वितीय शिष्य प्रपत्ति गुरुराह — अरे ! किं कारणम् अद्य न प्रणमसि ? स
प्राह — यः सम्यक् पाठितः स एव चरणे पतिष्यति । गुरुराह — त्वमया न सम्यक्
पाठितोऽसि किम् ? ततोऽसौ सर्वं पूर्ववृत्तान्त निवेदितवान् ।

अब-जिस कार्य के लिये गुरु ने उन दोनों को ग्राम में भेजा था वह कार्य जब उनका समाप्त हो चुका तब वे दोनों वहाँ से वापिस गुरु के पास आ गये। इन में विनीतशिष्य ने आते ही गुरु के दर्शन से अपने आप को बड़ा भाग्यशाली मानते हुए उन्हें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तथा उद्भु मानपूर्वक उन के चरणों में अपना गिर रखकर बारबार उन्हें स्पर्श किया। एवं ग्राम में जो कुछ मिला था वह सब उन के समक्ष रख दिया। अविनीत शिष्य ने ऐसा कुछ नहीं किया-विद्वेष से भरा होकर वह तो गुरु के पास शैलस्तम्भ (पर्वतस्तम्भ) की तरह केवल अकड़कर ही खड़ा रहा। गुरु ने जब उस की ऐसी हालत देखी तो उससे कहा-तू ऐसा क्यों खड़ा हुआ है। क्यों तू आज मुझे प्रणामादि नहीं कर रहा है ? सुनते ही गुरु से उस ने कहा-महाराज ! क्या करूँ, जिस को आपने अच्छी तरह से विद्या में निष्णात बनाया है वही आप के चरणों में पड़े, मुझे तो आपने ऐसा कुछ नहीं किया। अविनीत की इस

हुवे तेमने ले कामे ते गामभा भोकल्या इता ते काम पूरू थता तेओ
जन्ने त्याथां गुरुनी पासे पाछा इथां तेओमाना विनीत शिष्ये आपता ज
गुरुना दर्शनथी पेताने धखे। बाग्यशाणी मानीने जन्ने हाथ जेडीने तेमने
प्रणाम कथां जने धखा मानपूर्वक तेमना चरणभा भस्त नभावीने बारबार
तेमने अरक्षस्पर्श कर्यो जने गामभाथी ले उध मज्यु इतु ते अधु तेमना अग्य
आगण धर्यु अविनीत शिष्ये ओखु उधन कथुं द्वेषथी लरेवे। ओवे ते गुरुना
पासे शैल स्त ल (पर्वतस्त ल) नी जेम अउउउ ज उवे। रथो गुरुजे न्यारे
तेनी ओवी हालत जेध त्यारे कछु, “ तु आजे आम डेम उवे। ? आजे तु मने
प्रणामादि डेम उरतो नथी ? ते सालगता ज तेणे गुरुने कछु — मडारज । शा
भाटे कइ ? आपे जेने सारी रीते विद्याभा निष्णात बनाओथे छे ते आपना
अरथोभा पडे, भाश उपर तो आपे ओवी कोध कृपा करी नवी ” अविनीत

ततो गरुर्विनयिन शिष्य प्रगति-वधय, तदग्रत स्वया क्य विदितम्। विप्र
 इयकारी शिष्यः प्राह-हे गुरुदेव ! मया भवचरणनिन्देन निर्मणं कर्तुमागच्छ-
 हस्तिचरणा दृश्यत एव किन्त्वत्र को विशेषः ? इति चिन्तयता मया मूत्र दग्नेन
 निर्णीतम्-एतेचरणा हस्तिया एव भरितुमर्हति। दक्षिणभागप्रतिवृत्तशाला भक्षिता,
 न तु वामभागस्थाः, इत्यनेन मया विदितम्-‘ इय रामेन चक्षुषा वाणा ’ इति।

घात से गुरु ने उस से कहा-तो क्या तू यह मान रहा है कि मैंने तुम्हें
 अच्छी तरह से नहीं पढ़ाया है ? हाँ मैं यही मान रहा हूँ। कारण-
 यही है कि आप के विनीत शिष्य ने विद्या के बल से आज ऐसा कर के
 बतलाया है। गुरु ने ज्यों ही अविनीत की यह बात सुनी तो उन्होंने
 विनीत शिष्य से प्रश्न-कहो शिष्य ! तुमने यह सब कैसे जानकर
 बतलाया है। विनीत ने कहा है गुरु महाराज ! मैंने जो कुछ बतलाया
 है वह आपके श्री चरणों का प्रताप है। ज्यों ही मैंने वहाँ उन चरणों
 का निरीक्षण किया जानने में देरी नहीं लगी कि ये चरण हाथी के ही हैं।
 क्योंकि वे तो स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे थे, परन्तु उन्हीं के पास जो
 मूत्र पड़ा था उससे मैंने यह निर्णय कर लिया कि ये चरणचिह्न हाथी
 के नहीं किन्तु हथिनी के हैं। वह जिस मार्ग से होकर निकली थी
 उसके दक्षिण भाग में जो वृक्ष खड़ा था उसकी शाखा उस ने खाई थी,
 वामभाग की नहीं। इससे मैंने यह जान लिया कि वह वामचक्षु से

शिष्यनी आ वात साक्षणीने शुरुअे तेने कहु, तो शु तु अेभ माने छे के
 मे तने सारी रीते लक्षणाये नथी ? ” “ हा, हु अेभ न मानु छु ” “ कारण ? ”
 कारण अेव छे के आपना विनीत शिष्ये आने विद्याना प्रभावे आपु आपु
 करी भताव्यु छे ” शुरुअे न्यारे अविनीत शिष्यनी आ वात साक्षणी त्यारे
 तेभण्णे विनीत शिष्यने पूछ्यु, “ कडो शिष्य, तमे आ भधु केवी रीते लक्षणीने
 भताव्यु ” विनीत शिष्ये कहु, “ शुरु महाराज ! मे ने कर्ध भताव्यु छे ते
 आपना श्री चरणेनो प्रताप छे जेवु मे ते पगलाओतु निरीक्षण कर्तु के ते
 लक्षुता वार न लागी के ते पगलाना निशान हाथीनीना न छे, कारण के ते तो
 स्पष्ट नजर पडता हुता, पण ते पगला पासे जे मूत्र पड्यु हुतु तेनी महकथी
 मे अेवो निर्णय ज्यो के ते पगला हाथीना नथी पण हाथणीना छे ते जे
 भागथी पसार थर्ध हुती तेनी नभण्णीणान्ण जे वृथा उगेला हुता तेनी अणियो
 तेण्णे जाधी हुती अणी णान्णना वृक्षोनी नही तेथी हु अेवा निर्णय पर
 आव्यो के ते हाथणी अणी आपे काण्णी छे साधारण व्यक्ति तो हाथणी पर

साधारणो जनो हस्तियानेन गन्तुं नार्हतीति कोऽपि राजकीयो जनोगतः, इति निश्चितम् । रक्तवस्त्रं तन्तु संलग्नं वृक्षे दृष्ट्वा मया विदितम्—सधवा राज्ञी गतवतीति। क्वचित् प्रदेशे हस्तिन्या अवतीर्य लघुशङ्का कृत्वा भूमौ हस्तं निवेश्य, उत्थितेति, तथा—त्रिधहस्तचिह्नं तत्र दृष्ट्वा मया निश्चितम्—इयं राज्ञी गर्भवती' इति । दक्षिणे चरणे हस्तेचाधिरुभारो जात इत्यनेन स्तोत्रएव समये पुत्रोत्पत्तिर्भविष्यतीति

कानी है ? साधारण व्यक्ति तो हस्तिनी पर बैठ कर चल फिर नहीं सकता इसलिये जो व्यक्ति इस पर बैठ कर यहा से निकला है वह कोई राजकीय व्यक्ति ही होना चाहिये। ज्यों ही मेरे चित्त में यह विचार आ रहा था कि इतने में ही मुझे पास के एक वृक्ष के ऊपर रक्तवस्त्र का तन्तु लगा हुआ दिखलाई पडा। मैं इससे इस निश्चय पर पहुँचा कि ऐसे वस्त्र को धारण करने वाली राजा की रानी ही हो सकती है, साधारण स्त्री नहीं। एवं जिसने यह वस्त्र पहिर रक्खा है वह विधवा नहीं सधवा है। तथा वहीं पास के किसी स्थान पर जो मुझे मूत्र दिखलाई दिया और वहीं पर हाथ की हथेली का जमीन पर चिह्न प्रतीत हुआ—एव पैर का चिह्न भी वहीं नजर पडा तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वह गर्भवती है। कारण पेशाब से निवट कर जब वह उठी है तो उस समय वह जमीन पर हाथ टेककर ही उठी है, इससे उसके शरीर में गर्भ का भार है यह मालूम पडा। तथा हथनी से जब वह पेशाब करने के लिये उतरी होगी तो उतरते समय उसके दक्षिण पैर पर शरीर का

प्रेसीने क्री शके नडी तेथी तेना पर सवार थधने त्याथी नीटणेले व्यक्ति कोर्ध
राजकीय व्यक्ति न होवा नोधये जेवे मे निष्कथ कथो जेवे भारा मनमा
आ विचार आये के तरत न पासेना जेक वृक्ष उपर लालवस्त्रने जेक तातणे।
लागेले भारी नजरे पडयो तेथी हु जेवा निष्कथ पर आये के आ प्रका
रनु वस्त्र धारण करनार राजनी राणी न होई शके, सामान्य स्त्री नडी,
अने जेणे ते वस्त्र पडेयुं छे ते विधवा नडी पण सधवा न छे तथा त्या न
पासेनी जेक नज्याजे जे मूत्र भारी नजरे पडयु अने त्या न जमीन पर
हाथनी हथेलीनु निशान देभायु, अने पगना निशान पण त्या नजरे पडया
त्यारे हु ते निष्कथ पर पडोये के ते स्त्री गर्भवती छे, कारण के पेशाब
करीने न्यारे ते उडी हथे त्यारे ते जमीन पर हाथने टेको दृष्टने उडी हथे,
तेथी तेना शरीरमा गर्भने भार छे ते जभर पडी तथा न्यारे ते हाथणी
उपरथी पेशाब करवा भाटे नीचे उतरी हथे त्यारे तेना नभषा पग उपर
न० १८

વિદિતમ્ । તથા-તસ્યાશૃદ્ધાયા' પ્રશ્નાનન્તર ઘટઃ પતિતો ભગ્નશ્ચ સ્વઙ્ગશ્ચ ઇતિ દૃષ્ટ્વા મયા વિમર્શઃ કૃતઃ-યત સરસતીરે ઘટમ્ મદ્દાગો મૃત્તિકાયાં જલભાગો જલે યયા મિલિતસ્તથા શૃદ્ધાયા અપિ પુત્રો મિલિપ્યતીતિ મંભાવ્યતે । યદ્વા-ઞ્પ ઘટો યત ઉત્પન્નસ્તત્ર મિલિતઃ, જલમપિસરસો ગૃહીત સમ્યેપમિલિત તથા પુત્રોઽપ્યસ્યા મિલિપ્યતિ ' ઇતિ નિશ્ચિતમ્ । વિનયયુક્તસ્ય તમ્ય વિમૃદ્યકારિણઃ શિષ્યસ્ય વચન

ભાર અધિક પહુને કે કારણ ઉમકી નિમાની જમીન મેં અધિક ગદી હુઈ નજર આરતી થી । ઓર ઇસી તરહ સે દાથ કી નિશાની ખી । ઇસ સે મેં ઇસ નિષ્કર્ષ પર પહુંચા કિ યહ આસન્નપ્રસવા હૈ, ઓર ઇસકે ગર્ભ મેં પુત્ર હૈ ઇસકે વિના દક્ષિણ દાથ ઓર દક્ષિણ પૈર કે સિહુ જમીન પર અધિકરૂપ મેં ગઢે હુણ નહીં હો સકતે હૈં ।

इसी तरह “शृद्धा के पुत्र का मिलाप घट्टा से होगा ऐसा जो मैंने विचार किया उसका कारण यह है-जब मैंने यह देखा कि शृद्धा के मस्तक से प्रश्न पूछते ही घट गिर कर भग्न हो गया है, तो मैंने ऐसी सभावना की कि जिस प्रकार तलाव के तट पर घट सबधी मृत्तिकाद्रव्य मृत्तिकाद्रव्य के साथ, जलभाग जल के साथ मिल गया है उसी प्रकार इस शृद्धा का भी पुत्र इसको मिल जायगा। अथवा-यह निश्चित है कि जिस तरह यह घडा जिस से उत्पन्न हुआ है उस से मिल गया, तथा तलाव से गृहीत हुआ जल तलाव में मिल गया है उसी तरह इस का पुत्र भी इस से मिलेगा। इस प्रकार अपने विनीत शिष्य के वचन सुनकर गुरु

શરીરનો વધારે ભાર પડવાને કારણે તે પગનું નિશાન જમીનમા વધારે ઊંડુ ઉતરેલું દેખાતું હતું, અને એજ પ્રમાણે હાથનું પણ તેથી હું એવા નિષ્કૃંથ પર આવ્યો કે તે સ્ત્રીનો પ્રસવકાળ નહક છે, અને તેના ગર્ભમા પુત્ર છે નહીંતો જમણા હાથ અને જમણા પગનું નિશાન જમીનમા વધારે ઊંડુ ઉતરેલું ન હોઈ શકે એજ પ્રમાણે “વૃદ્ધાને તેના પુત્રનો મેળાપ થશે એવો જે મેં નિષ્કૃંથ કર્યો તેનું કારણ આ પ્રમાણે છે-જ્યારે મેં જોયું કે પ્રશ્ન પૂછતા જ વૃદ્ધાના માથેથી ઘડો પડીને ફેટી ગયો, ત્યારે મેં એવી કલ્પના કરી કે જે રીતે તળાવના કાંઠા ઉપર ઘડામાનું મૃત્તિકા દ્રવ્ય (માટી) મૃત્તિકાદ્રવ્યની સાથે તથા જળભાગ પાણીની સાથે મળી ગયો છે તેમ આ વૃદ્ધાનો પુત્ર પણ તેને મળશે અથવા-એ ચોકકસ છે કે જેમ આ ઘડો જેમાથી ઉત્પન્ન થયો તેમા મળી ગયો તથા તળાવમાથી લીધેલું પાણી જેમ તળાવમા મળી ગયું એજ પ્રમાણે તેનો પુત્ર પણ તેને મળશે ” આ પ્રમાણે પોતાના વિનીત શિષ્યના વચન

निशम्य गुरुस्त प्रशसति स्म । अविमृश्य कारिण द्वितीयं शिष्य गुरुर्वदति-वत्स !
अत्र नास्ति मम दोष , किंतु तयाय दोषः, यद् विमर्शं न करोपीति, अस्माभिरु
भयोः सदृश पाठितमिति ।

॥ इति वैनयिकबुद्धेः प्रथमो निमित्तदृष्टान्तः ॥ १ ॥

अर्थशास्त्रनिपये कल्पकमन्त्रिदृष्टान्तः श्रूयते । स च वैनयिक्या बुद्धेर्द्वितीयो
दृष्टान्तो बोद्धव्यः ॥ २ ॥

लिपिज्ञान तृतीया वैनयिकबुद्धिः ॥ ३ ॥

गणितज्ञान चतुर्थी वैनयिकी बुद्धिरिति द्रष्टव्यम् ॥ ४ ॥

पञ्चमस्तु कूपदृष्टान्तः—कूप इत्यनेन भूमिविज्ञाने कुशल इत्यवगम्यते स चैवम्
-रुधिद् भूमिविज्ञानकुशल' पुरुषः कूपोत्तल प्राद-अत्र भूम्याभियति दूरे जलमस्ति ।

ने उस की बहुत अधिक प्रशंसा की। तथा अविनीत शिष्य को समझाते
हुए उससे कहा-वत्स ! इस में मेरा कुछ भी दोष नहीं है, दोष है तो
केवल तुम्हारा ही। जो तुम विनयादि गुणों से विवर्जित होकर मेरी कही
हुई बात पर कुछ भी विमर्श नहीं करते हो। यह विश्वास रखो-हमने
तो तुम दोनों को ही एकसाथ पढाया है ॥ १ ॥

॥ यह प्रथम निमित्तदृष्टान्त हुआ ॥ १ ॥

अर्थशास्त्र के ऊपर जो कल्पक मंत्री का दृष्टान्त है-वह वैनयिक
बुद्धि का द्वितीय दृष्टान्त है २। लिपिज्ञान, यह वैनयिक बुद्धि का तीसरा
दृष्टान्त है ३। गणितज्ञान यह वैनयिक बुद्धि का चौथा दृष्टान्त है ४।
कूप दृष्टान्त इस प्रकार है-

कोई एक व्यक्ति ऐसा था जो भूमिविज्ञान में विशेष कुशल था।
उसने किसी किसान से कहा कि-इस भूमि में इतनी दूरी पर जल है।

સાબળીને ગુરુએ તેની ઘણી જ પ્રશંસા કરી, તથા અવિનીત શિષ્યને સમજાવતા
વહુ “વત્સ! આમા મારો ડોષ દોષ નથી દોષ હોય તો ફક્ત તારો જ છે કે
તુ વિનયાદિ ગુણોથી રહિત બનીને મે કહેલી વાત પર ડોષ નિર્ણય જ કરતો
નથી એ વિશ્વાસ રાખ કે મે તો તમને બનને એક સરખુ જ શિષ્યુ છે

॥ આ પહેલું નિમિત્તદ્રષ્ટાન્ત સમાપ્ત ॥ ૧ ॥

અર્થશાસ્ત્ર ઉપર જે કલ્પકમંત્રીનું દ્રષ્ટાન્ત છે, તે વૈનયિકબુદ્ધિનું પીઠું
દ્રષ્ટાન્ત છે (૨) લિપિજ્ઞાન, એ વૈનયિક બુદ્ધિનું ત્રીજું દ્રષ્ટાન્ત છે (૩) ગણિતજ્ઞાન,
એ વૈનયિકબુદ્ધિનું ચોથું દ્રષ્ટાન્ત છે (૪) પાત્રમુ કૂપ દ્રષ્ટાન્ત આ પ્રમાણે છે-

तापत्या भूमेः खनने कृते सति जडंन निर्गतम् । ततः स ऋषीयज्ञः प्राह-तत्पार्श्वे
भागे स्तोत्रं पार्ष्णि (एडी) प्रहारं कुरु । एव कृते सति तदेव जडं तत्र समुच्छ्रितम् ।

॥ इति धैनयिण्या युद्धेः पञ्चमः कृपदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ पण्डोऽश्वदृष्टान्तः—

रहस्योऽश्वरणिजो द्वारवर्ती जग्मुः । तत्र मयं कुमागं स्थूयान् बृहत्श्वान्
गृह्णन्ति । वासुदेवेन तु दुर्जलो लभण सम्पन्नो लवीयानश्वः क्रीतः । स च कार्यनि
र्वाहकः प्रभूताश्वग्रेसरश्च जातः ।

॥ इति पण्डोऽश्वदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

किसान ने इस घात को सुनते ही भूमि खोदना प्रारंभ किया । जितनी
दूर तक जल घतलाया था वहाँ तक उस ने जमीन खोद डाली परन्तु जल
नहीं निकला । तब किसान ने उस से कहा-भाई ! जल तो नहीं निकला ।
तब उस ने कहा-देखो । उसके पार्श्वभाग में धीरे से गड्ढी का प्रहार करो
तो वहाँ जल निकलेगा । ऐसा करते ही वहाँ उसी समय जल उछल पड़ा ॥५॥

॥ यह पाचवा कृपदृष्टान्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा घोड़े का दृष्टान्त—

बहुत से घोड़े के व्यापारी एक समय द्वारिका नगरी में गये हुए थे ।
वहाँ समस्त यादव कुमारों ने उनके स्थूल काय बड़े २ घोड़े खरीद
लिये, परन्तु वासुदेव ने ऐसा नहीं किया । उसने तो कमजोर पतला
दुबला ही एक घोड़ा खरीदा । धीरे २ वही उन सब में ऐसा मजबूत

कैाँ अेऽ भाषुस भूमिविज्ञानभा विशेष कुशण इतो तेष्ु कैाँ जेइतने
कछु के आ भूमिभा आटवी उडार्थे पाषी छे जेइते ते वात सालणता अ
भूमि जेइवा भाडी जेटवी उडार्थे पाषी अताव्यु इतु तेटवी उडार्थ सुधी
तेष्ु जमीन जेइवी नाभी पषु पाषी नीकज्यु नही त्यारे जेइते तेने कछु
“ बाई ! पाषी तो न नीकज्यु ” त्यारे तेष्ु उहु, “ जुवो ! तेनी जणुना
लागभा धीमेधी वात भारो तो पाषी नीकज्ये ” अेम उरवाभा आवता त्याधी
अेज सभये पाषी नीकज्यु ॥ ५ ॥

॥ आ पाचसु कृपदृष्टात समाप्त ॥५॥

छट्ठु घोडानु दृष्टात—

अेक वअत धषु घोडाना वेपारी द्वारिका नगरीभा आव्या, त्याना अथा
यादवकुमारोअे तेमना स्थूण शरीरवाणा भोटा भोटा घोडा अरीही वीधा पषु
वासुदेवे तेम उरु नही तेष्ु तो दुणणो, पातणो अने कमजोर अेक अे घोडा
अरीधो धीरे धीरे अेज घोडो ते अथा घोडामा अेवो मज्जुत अने उपयोगी

अथ सप्तमो गर्दभदृष्टान्तः—

कोऽपि राजा यौवनप्रारम्भे राज्य प्राप्तवान् । अतस्तात्पर्यमेव सर्गकार्यक्षम रमणीय च मत्वा निजसैन्येषु तरुणानेव धारितवान्, वृद्धास्तु सर्गानपि प्रहिष्करोतिस्म । स चान्यदा सैन्येन सह गच्छन् क्वचिदटव्या गत, तत्र च समस्तोऽपि जनः पिपासया पीडितो जातः । तदा राजा किं कर्तव्यमूढोऽभवत् । ततो राज्ञः समीप-

और कार्यसधक निकला कि जिस के आगे वे सब घोड़े फीके एव कम-जोर सावित हुए इस तरह वासुदेव का वह घोड़ा सब घोड़े के बीच विशेष महत्व शाली प्रमाणित होने के कारण उन सब में अग्रेसर माना गया ॥ ६ ॥

॥ यह छठा घोड़े का दृष्टान्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवा गर्दभदृष्टान्त-

किसी राजा ने यौवन के प्रारंभ काल में ही राज्य प्राप्त कर लिया था, अतः उसके ध्यान में यह बात जम गई कि समस्त कार्यों की साधक एक मात्र यौवन अवस्था ही है, इसलिये उसने अपनी सेना में तरुण व्यक्तियों को ही भर्ती कर ने का आदेश जारी किया, तथा जो वृद्धजन पहिले से सेनाविभाग में काम करते आ रहे थे उन्हें निकालना प्रारंभ कर दिया । एक दिन की बात है—राजा अपनी सेना को साथ लेकर कहीं बाहर जा रहा था । चलते २ वह एक महान् अटवी में आपहुँचा, जिस में पानी आदि का बिलकुल अभाव था । वहाँ आते ही उस के सैनिक जन

नीवडथे के तेनी आगण भीज घोडा झीडा अने उभजेर साभित थया आरीते वासुदेवने घोडा ते भधा घोडाओभा वधारे भडत्वशाणी साभित थवाथी ते भधाने आगेवान गणुवा लाग्ये ॥ ६ ॥

॥ आ छहुं घोडातु दृष्टात समाप्त ॥६॥

सातसु गर्दभदृष्टात-

केई राज्ये युवावस्थाना प्रारंभकाले न राज्य मेगण्यु हुतु, तेथीतेना मनभा ज्येवा पाके निर्णय थये के सधणा कार्ये साधनारी जेक मात्र युवावस्था न छे तेथी तेथे पोताना सैन्यभा युवान भाषुमेनी न भरती करवाने आदेश आथ्या, तथा न वृद्ध भाषुसे पडेवेथी तेनी सेनाभा जम उरता हुता तेमने छुटा उरवा भाउया जेक दिवस राज्य पोतानी सेना साथे केईक स्थणे जते हुतो आलता आलता ते जेक मोटा न गलभा आवी पडेअथे, न्या पाणी आदिने तदन अभाव हुतो त्या आवता तेना सैनिके तृपाथी

मागत्यकृत् सेवको वदति-देव ! अयमापत्समुद्रः कथमम्यापत्समुद्रम्यपा
 गन्त्राम', वृद्ध पुरुषस्य युद्धिरिह नौरा भवेत् अतः यद्यपि वृद्धगवेषयन्तु भयनः ।
 ततो राज्ञा मर्शस्मिन्नपिकृष्टके घोषणाकारिता । तत्र चैवः पितृभक्तः सैनिक-
 म् उन्नतया स्वपितर समानीतवान् । ततन्तेनोक्तम्-राजन् ! मम पिता वृद्धोऽस्तीति ।
 ततो राजाज्ञया तेनासौ राज्ञः पार्श्वे नीतः । राजा मह्यमानपुरस्सरं पृच्छति-
 महापुरुष ! कथय, कथं मे वृष्टके जत्र मयिष्यति ? । तेनोक्तम्-राजन् रासमाः स्वै-

प्याम से आकूलित होकर व्याकूल हो उठे । राजा ने ज्यों ही अपने
 सैनिकों की यह हालत देखी तो वह घबड़ा उठा और कर्तव्य विमूढ
 बन गया । इतने में उस के पास एक सेवक ने आकर कहा-महाराज !
 यह एक बड़ा भारी आपत्तिरूप समुद्र साम्हने आगया है, इस का पार
 पाना बड़ा कठिनतर दिखलाई दे रहा है । हा ! यदि यहा कोई वृद्धजन
 सलाह देने वाला हो तो इस विपत्ति से छुटकारा मिल सकता है, इस
 लिये मेरी राय ऐसी है कि किसी वृद्धजन की आप गवेषणा करावें ।
 सेवक की इस बात से प्रभावित होकर राजा ने ऐसा ही किया । उस ने
 शीघ्र ही अपने समस्त कटकमें इसी तरह की घोषणा करवा दी । सेना
 में एक पितृभक्त सैनिक ने प्रच्छन्न रूप से अपने वृद्ध पिता को सेवा
 करने के लिये साथ में लाया या वह राजा के पास जाकर यह खबर दी
 कि महाराज ! मेरा पिता वृद्ध है यदि आपकी आज्ञा हो तो उसको
 आपके पास उपस्थित करूँ । राजा की स्वीकृति पाकर वह अपने वृद्ध

आकुण व्याकुण थया राज्ञे जेवी पोताना सैनिकेनी ते डालत जेध के ते
 गलराध गथे अने शु करवु तेनी उध सूळ पडी नडी जेवामा जेक सेवके
 तेनी पासे आवीने कछु, "महाराज ! आपनी समक्ष आ जेक मोटो आपत्ति
 रूप सागर आवी पडथे छे, तेना पार पामवो धखो कठिन लागे छे पणु
 सलाह देनार डोध वृद्ध माणुस भणी आवे तो आ मुश्केलीमाथी उगरी शकथ
 तेम छे तो भारी जेवी सलाह छे के आप डोध वृद्ध पुरुषनी शोध करावो ।"
 सेवकनी आ वातनी राजा पर सारी असर थता राज्ञे जे प्रमाणे कथुं
 तेखे तरत ज पोताना आभा सैन्यमा जे प्रठारनी घोषणा करावी हीधी सेना
 मानो जेक पितृभक्त सैनिक सेवा करवानी धखथी पोताना पिताने छुपावीने
 साथे लाग्यो डतो तेखे राजनी पासे जधने जपर आपी के महाराज ! भारा
 पिता वृद्ध छे जे आप आज्ञा आपो तो तेमने आपनी समक्ष डानर करे ।"
 राजनी भजूरी भणता ते तेना वृद्ध पिताने राजनी पासे लध गथो राज्ञे

मुच्यताम्, यत्र ते भूमिं घ्रास्यन्ति, तत्र जलमतिप्रत्यासन्नमविष्यति । राज्ञा तथैव कारितम् । जल च प्रादुर्भूतम् । समस्त कटक स्वस्थीभूतम् ।

इति स्थविरस्य वैनयिकी बुद्धिः ॥ इति सप्तमो गर्दभदृष्टान्तः ॥७॥

अथाष्टमो लक्षणदृष्टान्तः—

आसीत् पारसदेशीयः कश्चिदश्वाना स्वामी । स च कश्चित् योग्य पुरुषमश्वरक्षणां नियुक्तवान् । तदाऽश्व स्वामी तमश्वरक्षकं प्रोक्तवान्—एतावद्वर्षपयन्तं त्वं कर्म

पिता को राजा के पास ले गया। राजाने वहमान पुरस्सर उस वृद्ध से पृछा—महापुरुष ! मेरा समस्त कटक प्यास से आकुलित हो रहा है, यहां पास में कही पर भी जल का नाम दिखलाई नहीं पड रहा है, अतः आप कोई उपाय बतलाईये कि जिस से आपत्ति दूर हो जावे। राजा की बात सुनकर उस वृद्ध ने कहा महाराज ! अब आप ऐसा कीजिये कि गधो को अपनी डच्छानुसार छाड दीजिये, वे जहां पर जमीन को सूधे, समझलीजिये वही पर नीचे जल अतिनिकट है । राजा ने उस वृद्ध की सम्मति के अनुसार ऐसा ही किया तो उस को जल की प्राप्ति होगई और कटक का सकट टल गया । यह स्थविर की वैनयिक बुद्धि हुई ॥

॥ यह सातवां गर्दभदृष्टान्त हुआ ॥ ७ ॥

आठवा लक्षणदृष्टान्त—

पारसदेश का निवासी एक व्यक्ति था । जिसके यहां अनेक घोडे थे । उसने उन घोडो की सार सभाल करने के लिये एक योग्य पुरुष की नियुक्ति की । पारिश्रमिक उसका इस प्रकार निर्णीत किया गया

घण्टा मानपूर्वक तेने पूछ्यु, “महापुरुष ! भाइ समस्त सैन्य तृपाथी आकुण व्याकुण थर्ध गयु छे आटलाभा पासे कयाय पणु पाणी णिलकुल देणातु नथी तो आप जेवो केई उपाय जतावे के जेथी आ मुश्केली टणे ” राजनी वात साबणीने ने वृद्धे जलु “महाराज ! आप आ प्रभाणु जेरा—गधेडाजोने तेमनी धञ्छा प्रभाणु जवा हो तेजो जे जञ्ज्याजे जमीन सू धे, ते जमीननी नीचे थोडी ज उडाधजे पाणी भणशे तेम मानवु ” राजजे ते वृद्धनी सलाह प्रभाणु ज उर्यु, तो तेने पाणी भज्यु अने सैन्यनी मुश्केलीना पणु अत आव्यो आ वृद्धनी वैनयिकबुद्धि थर्ध

॥ आ मातसु गर्दभदृष्टात समाप्त ॥७॥

आठमु लक्षणदृष्टात—

धराननो निवासी जेक भाणुस हुतो तेने त्या अनेउ घोडा हुता तेणु ते घोडानी मलाण राभवा भाटे जेक भाणुसनी निभणु उ करी आ प्रजरे तेनु वेतन नउकी क्यु—तमे आटला वर्ष सुधी अही काम जरेथो तो तेना जदलाभा

परिप्यसि, तदाऽधरक्षणस्य पारित्रमिकं ज्ञाप्यो तुभ्य दाम्यामि । तेनापि स्वीकृतम् । सहनिःसतस्तस्याधरक्षणस्य तत्पुत्र्या तद् स्नेहानुबन्धः संजातः । एकदाऽप्यौ ता पृच्छति—सर्वेष्वधेषु कौ भव्यौ ? इति । तयोक्तम्—अमीषामभ्यानां विश्वस्तानां मध्ये यौ पापाणभृतकृतपाना वृक्षशिलरान्मुक्तानामपि शब्दमारुण्यं नो ब्रह्मयतस्ती भव्यौ । तेन तथैयतायश्चौ परीक्षितौ । ततोऽधरक्षणः स्य वेतनग्रहणममये स्वाभिनव्रूते—इमौ द्वावश्चौ मया देहि । स्वामी प्राह—अरे ! अन्ये ऋवोऽश्वाः सन्ति श्रोमनाः

किं यदि तुम इतने वर्षतक यहा काम करोगे तो इसके उपलक्ष में तुम्हें दो घोड़े दिये जावेंगे । मालिक की इस बात से वह सहमत हो गया और अपने काम में लग गया । मालिक की एक लड़की भी थी । रहते २ उसकी उससे जान पहिचान हो गई और धीरे २ उसके साथ उसका स्नेह भी बढ़ गया । एक दिन लड़की से उसने पूछा ! तुम्हारे इन समस्त घोड़ों में अच्छे कौन २ दो घोड़े माने जाते हैं । उत्तर में उसने कहा—देखो इन विश्वस्त समस्त घोड़ों के बीच में जो दो घोड़े वृक्ष के शिखर से गिराये गये पत्थर के टुकड़ों से भरे हुए कूड़ों (चमड़े के घी भरने के पात्रों) के शब्द को सुनकर भी नहीं डरे वे ही समझ लो अच्छे हैं । उसकी बात मानकर उसने उनकी परीक्षा की तो जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए वे उसने अपने ध्यानमें रखलिये । बाद में जब वेतन ग्रहण करने का समय आया तो उसने मालिक से वेतन में वे दोनों घोड़े मागे । मालिक ने कहा—अरे—इन घोड़ों के अतिरिक्त और भी बहुत से घोड़े बड़े अच्छे हैं उन्हें तुम ले लो इन्हें क्यों छेते हो ।

तमने जे घोडा आपवामा आवथे मालिकनी ते वात भजूर करीने ते पोताने कामे लागी गये । मालिकने जेक पुत्री पणु छती धीमे धीमे तेने तेनी साथे परिचय थये । अने ते परिचय वधता वधता तेनी साथेना प्रेमभा परिबुभ्ये । जेक द्विवस ते छेकरिने तेणे पूछ्यु, “तमारा आ जधा घोडामा ज्या कया घोडा साराभा सारा गणाय छे ?” तेणे जवाब आय्ये, “जुवे आ जधा विश्वास पात्र घोडामाना जे जे घोडा वृक्षनी टोच उपरथी नीचे हे केला पथ्य रना टुकडाओथी लरेला कुडा (घी लरवा भाटेना आमजाना पात्रे) नो जवाब सालणीने पणु डरे नही जेमने ज साराभा सारा समजु लेवा तेनी सलाह मानीने तेणे तेमनी कसोटी करी तो जे घोडा ते कसोटीभा सकण थया तेमने तेणे ध्यानभा राभी लीधा पछी ज्यारे वेतन लेवानो समय पाकथे त्यारे तेणे वेतन तरीके ते जे घोडा माज्या मालिके कछु “अरे ! आ घोडाओ करता तो जीन घणु घोडा वधारे सारा छे, तो आ घोडाने जहले तु जीन घोडा पसद

तान् गृहाण, आभ्यामलम्, इमौ न शोभनौ । एव मुक्तोऽसायश्चरक्षकः स्वामिषचन
नामन्यत । ततोऽश्वस्वामिनाचिन्तितम्-अयमश्वरक्षको मया गृहजामाताकर-
णीयः । अन्ययास्य तावश्चौ गृहीत्वा गमिष्यति । लक्षणसम्पन्नेनाश्वेन कुटुम्बस्य
वाऽश्वस्य वा वृद्धिर्भवति । एव विचिन्त्य स स्वपुत्र्या सह तस्य विवाह कारि-
तवान् । त च गृहजामातर विधाय द्वावपि लक्षणसम्पन्नावश्चौ स्वगृहे स्थापितवान् ।
इत्यश्व स्वामिनो विनयजा बुद्धिः ।

॥ इत्यष्टमो लक्षणदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ नमो ग्रन्थिदृष्टान्तः—

कदाचित् पाटलिपुत्र नाम्निनगरे मुष्ट नामको राजा राज्य वरोति । अन्य

ये तो अच्छे नहीं हैं । इस प्रकार स्वामी के वचन सुनकर उसने
कहा-महागज ! मैं तो इन्हें ही लूगा, दूसरों की चाहना मुझे नहीं है ।
अश्वमालिक ने इस तरह के जय उमके वचन सुने तो मन में उसने
विचार किया कि अब तो इसे परजमाई बनाने में ही लाभ है, नहीं तो
यह इन दोनों गोडों को लेकर यहा से अवश्य चला जायगा । इस
तरह विचार कर उसने अपनी पुत्री के साथ उसका विवाह कर दिया ।
और उसको घर जमाई रख लिया । तथा उन दोनों लक्षणसपन्न गोडों
को भी । इस प्रकार अश्वस्वामी ने वैनयिकीबुद्धि के प्रभाव से अपना
काम बना लिया ॥ ८ ॥

॥ यह आठवा लक्षणदृष्टान्त हुआ ॥ ८ ॥

नौवां ग्रन्थिदृष्टान्त—

किसी समय पाटलिपुत्र मे (पटना शहर में) मुरुण्ड नाम का राजा

उर आ घोडा शा भाटे ले डे ? ओ तो सारा नथी ” भाकिउना आ प्रजारना
वचने साबजीने तेले डहु “ शेठ साडेण । हु तो ओ घोडा व लधिश, पील
लेवानी मारी ध्यिष्य नथी ” घोडाना भाकिडे ज्यारे आ प्रजारना तेना शपुढे
आलज्या त्याडे तेले विचार्युं डे डये तो तेने घरवभाई भनाववामा व लाल
डे, नडी तो ते आ भन्ने घोडाने लधने अर्हीथी आटये जशे आवे विचार
करीने तेले पोतानी पुत्री साथे तेना लग्न करी नाथ्या अने तेने घरवभाई
तरीडे राष्ये, अने ते भन्ने लक्ष्णोयुक्त घोडा यष्य तेनी पासे व रहा आ
रीते अश्वना भाकिडे वैनयिकीबुद्धिना प्रभावे पोतानु ठाम पार पाडयु ॥ ८ ॥

॥ आ आठमु लक्षणदृष्टान्त समाप्त ॥ ८ ॥

नवमु ग्रन्थिदृष्टान्त—

डेाई सभये पाटलिपुत्रमा (पटना शहरमा) मुरुण्ड नामने राजा राज्य

રાષ્ટ્રસ્ય રાજા એકદા કૌતુકાર્થં તત્સમીપે પ્રીણિ યસ્મિન્નિ મેગિતવાન-ગૃહ સૂત્રમ્-
 ગુપ્તગ્રન્થિમત્ સૂત્રમ્ ૧, સમાયષ્ટિઃ-સમભાગ કાષ્ઠમ્ ૨, અન્ધશિતદ્વાર' સમુદ્રકો
 જતુના લિપ્તઃ ૩ । મુસ્પ્ઠસ્તાનિયસ્નૃનિ સ્વપૂરુવાનાહ્ય દર્શયતિ, ન ચ તાનિ
 કેનાપિ વિદિતાનિ તતો રાજા કલાચાર્યમાહ્ય પૃન્નૃતિ-હે આર્ય ! ભવાન્ અસ્ય
 ગ્રન્થિદ્વાર જાનાતિ ? આચાર્ય આહ-જાનામિ । ઇત્યુચતા તેન તદૈવ સૂત્રમુષ્ણજલે
 નિષ્ક્રિપ્તમ્, તતસ્તત્સૂત્રમુષ્ણજલમયોગેન નિર્મલ જાતમ્ મલાપગમે સતિ લઘ્વ. સૂત્ર-
 સ્યાન્તઃ, ગ્રન્થિભાગોઽપિ દૃષ્ટઃ । યષ્ટિરપિ જલે નિષ્ક્રિપ્તા । તતો ગુરુભાગો મૂલમિવિ
 વિજ્ઞાતમ્ । ગુરુભાગે એવ ગ્રન્થિર્ભવતિ । સમુદ્રકોઽપ્યુષ્ણોદકે લિપ્ત', તેન સર્વે જલ

રાજ્ય કરતા થા । ઉસકે પાસ કિસી દૂસરે રાષ્ટ્ર કે રાજા ને ક્રીડાનિમિત્ત
 તીન વસ્તુએ મેજી । ઉનમેં એક ગૃહસૂત્ર થા, જિસમેં ગાઠ ગુપ્ત યી ૧ । દૂસરી
 સમભાગવાલી યષ્ટિ યી જિસકા મૂલ ભાગ ગુપ્ત થા ૨ । તીસરા લાલ્લ સે
 અલક્ષિત દ્વારવાલા લિપ્ત થા ૩ । મુસ્પ્ઠ ને ઇન તીનોં ચીજોં કો અપને
 નિજી વ્યક્તિયોં કો ઘુલાકર દિસલાયા પરન્તુ કોઈ મી ઇન કે મેદ કો
 નહીં જાન સકા । ઘાદ મેં કલાચાર્ય કો ઘુલાકર રાજા ને ઉસ સે પૂછા-હે
 આર્ય ! આપ ઇસ સૂત્ર કે ગ્રન્થિદ્વાર કો જાનતે હે । કલાચાર્ય ને કહા-હા
 જાનતા હ । ફિર ઉસ કલાચાર્ય ને ગર્મજલ મગવાકર ઉસ સૂત્ર કો ઉસ
 ગરમજલ મેં ડાલ દિયા । ગરમજલ કે સવધ સે વહ નિર્મલ હો ગયા ।
 મલ રહિત હોતે હી સૂત્ર કા અત ઓર ગ્રન્થિભાગ યે દોનોં દિસલાઈ દેને
 લગે । ઘાદ મે ઉસ ને યષ્ટિ કો મી જલ મે ડાલ દિયા । ડાલતે હી યષ્ટિ
 કા જો મૂલભાગ થા વહ જલ મે ડૂબ ગયા । ડૂબતે હી ઉસકો ઇસ બાત કા

ઠરતો હતો કેઈ ખીજ રાજ્યના રાજાએ તેની પાસે ક્રીડાનિમિત્તે ત્રણ વસ્તુઓ
 મોકલી (૧) તેમા એક ગૃહસૂત્ર હતું, જેમા ગુપ્ત ગાઠ હતી (૨) ખીજ સરખા
 ભાગ વાળી લાકડી હતી જેનો મૂળ ભાગ ગુપ્ત હતો (૩) લાખથી અલક્ષિત
 દ્વારવાળો ડખ્ખો હતો મુસ્પ્ઠ તે ત્રણે યીજો પોતાના ખાસ માણસોને બોલાવીને
 બતાવી, પણ કેઈ પણ તેવું રહસ્ય સમજી શક્યું નહી ત્યાર બાદ કળાચાર્ય-
 યને બોલાવીને રાજાએ તેમને પૂછ્યું, “ હે આર્ય ! આપ આ સૂત્રના ગ્રન્થિ
 દ્વારને જાણો છો ? કલાચાર્યે કહ્યું, “ હા જાણુ છું ” પછી તે કળાચાર્યે ગરમ
 પાણી મગાવ્યું, અને તે સૂત્રને તે ગરમ પાણીમા મૂક્યું ગરમ પાણીના સસ
 ગંથી તે સ્વચ્છ થયું નિર્મળ થતા જ સૂત્રને અત તથા ગ્રન્થિભાગ એ બન્ને
 દેખાવા લાગ્યા પછી તેમણે લાકડીને પણ પાણીમા મૂકી મૂકતા જ લાકડીને
 જે મૂળ ભાગ હતો તે પાણીમા ડૂબી ગયો ડૂબતા જ તેમને તે વાત સમજાઈ

गलितम् । ततश्च तस्य द्वार प्रकटीभूतम् । ततो राजा तमाचार्यं प्राह-हे आर्य !
दुर्विज्ञेयकिमपिकौतुक भवानपि करोतु येन तत्र प्रेपयामि । आचार्येण काचित्
तुम्बी एकस्मिन् प्रदेशे खण्डमेकमपहाय रत्नैर्मृता । तत् खण्ड तथा मुद्रित यथा न
केनापि लक्ष्यते । ततो राजा ता तुम्बीं दत्त्वा स्वान् पुरुषान् तत्समीपे प्रेपयति
कथयति च-इमा तुम्बीमत्रोटयित्वा रत्नानि ग्रहीतव्यानीति । ते पुरुषास्ता तुम्बी-
मादाय तत्र गत्वा तस्मै ता समर्प्य तथैत्र न्युञ्जन्ति-तत्रस्था राजपुरुषा बहुशः प्रयत्ने
कृतेऽपि तथा रत्नमसमर्था अभूवन् । इयमाचार्यस्य विनयजा बुद्धिः ।

॥ इति नवमो ग्रन्थिदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

पता पड गया कि यष्टि का यह मूलभाग है । और इसी में गांठ है ।
इसी तरह समुद्रक-डिब्बे को भी गरमजल में डालकर कलाचार्य ने उसके
द्वार का पता लगा लिया । कारण गरमजल में डालते ही उसके ऊपर
लिस हुई लाख पिघलकर दूर हो गई थी । कलाचार्य की इस अभिज्ञता
से राजा बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने कलाचार्य से कहा-आर्य । तुम भी
दुर्विज्ञेय कुछ कौतुक करो कि जिस को हम भी उस राजा के पास भेज
सके । राजा की बात सुनकर कलाचार्य ने एक तुयी ली और उस का एक
टुकड़ा अलग कर उस में रत्न भर दिये और उस खड को इस प्रकार
चिपका दिया कि जिस से उसका सधिभाग किसी को भी ज्ञात न
हो सके । बाद में राजा ने इस तुयी को अपने कर्मचारियों को देकर उन से
कहा-यह तुयी उस राजा के पास ले जाओ और उन्हें दे कर कहना कि
इसको बिना तोड़े ही इस में से आप रत्न निकाल लो । राजा की आज्ञा-

गर्ध के लाकडीने आ भूषण लाग छे अने अेभाज गाठ छे अेज रीते उठ्याने
पषु गरम पाष्णीमा भूडीने कलाचार्ये तेनु द्वार पषु गोती काठयु कारषु डे
गरम पाष्णीमा नाभता ज तेना उपर जे लाण छती ते पीगणीने द्वर थर्ध
गर्ध कलाचार्यनी आ प्रारनी बुद्धिथी राज घण्णे पुथी थये तेले कलाचार्यने
कहु, “आर्य । तमे पषु अेषु उर्ध दुर्विज्ञेय कौतुक करे के अेने अमे पषु
ते राजा पासे भेकली शकीअे ” राजनी बात मालणीने उणाचार्ये अेक तुणडी
लीधी, अने तेना अेक टुकडा बुद्धे करीने तेमा रत्न लरी दीधा अने पषी
ते टुकडाने तेना पर अेवी रीते चोटाडी दीधा के तेना साधे केअेने पषु
जडी शके नडी पषी राजअे ते तुणडी चोताना मेवकेने आपीने कहु,
“आ तुणडी ते राजा पासे लर्ध नप, अने तेभने आ आपीने कडेअे के तेने
तोउया बिना तेनी अदरथी रत्ने काढी ले । राजनी आशानुसार ते भाषुसे ते

अथ दशमोऽगददृष्टान्तः—

कस्यचिद्वाह सैन्य शत्रुभूषेन विप्रप्रयोगेण मूर्च्छितं कृतम् । तादृशी स्वसैन्य-
स्थितिं त्रिलोक्य राजा वैद्यमाहूय वदति—प्रचुर मम सैन्य परचक्रेण विपाकान्तं
कृत तत्कथमेतत् प्रचुर मम सैन्य निर्दिप भवेत् ? । वैद्येनोक्तम्—सर्वं स्वल्पेनैव
कालेन नैरुज्य प्राप्स्यति । ततो वैद्यः स्तोत्रमोषप्रधानोय गजान दर्शयति । राजा
नुसार वै पुरुष उस तुघी को लेकर उस राजा के पास पहुँचे और जैसा
राजा ने उन से कहने को कहा था वसा ही उन्होंने ने कहा जाकर कहा।
उस राजा ने अपने राजपुरुषों को उस समय बुलाया और तुघी देकर
कहा—कि बिना फोड़े हम में से रत्नो को बाहर निकालो । राजपुरुषों ने
अनेक प्रकार के प्रयत्न किये परन्तु वे उसमें से रत्न नहीं निकाल सके।
यह आचार्य की चिनयजा बुद्धि का नौवा उदाहरण हुआ ॥९॥

दसवा अगददृष्टान्त—

किसी एक राजा की सेना को उस से किसी विपक्षी राजाने विप्रप्रयोग
द्वारा मूर्च्छित कर दिया था। अपनी सेना की इस स्थिति से चिन्तित होकर
राजा ने उसी समय वैद्य को बुलाकर कहा—वैद्यजी ! मेरा प्रचुर सैन्य परचक्र
ने (शत्रु की सेना ने) विप्रप्रयोग द्वारा मूर्च्छित कर दिया है तो अब आप
बतलाइये—यह कैसे सचेत हो सकता है। राजा की बात सुनकर वैद्य ने कहा
आप चिन्ता न कीजिये बहुत जल्दी आपका यह सैन्य ठीक हो जावेगा।
ऐसा कहकर उसने राजा को थोड़ी सी औषधी लाकरके दिखलाई।

तुभडी लडने ते राजा पासे पडोव्या, अने राजाये जे प्रमाणे उडेवानी
सूचना आपी हती ते प्रमाणे त्या लडने कहु ते राजाये तेज समये पोताना
राजपुरुषोने बोलाव्या अने तुभडी आपीने कहु के आने काव्या बिना तेमाधी
रत्नो पडार काडी हो राजपुरुषोये अनेउ प्रकारना प्रयत्नो कर्या पण तेजे
तेमाधी रत्नो काडी शक्या नही

॥ आ आचार्यानी वैनयिकीषुद्धितु नपमु उदाहरण ॥ ९ ॥

दसमु अगद (औषध) दृष्टान्त—

कोई एक राजनी सेनाने तेना दुश्मन राजाये विप्रप्रयोग द्वारा मूर्च्छित
करी नापी हती पोतानी सेनानी जे डालतथी चिन्तितुर थर्धने राजाये जेज
समये वैद्यने बोलावीने कहु, “ वैद्यज ! मारा आपा सैन्यने दुश्मननी सेनाये
विप्रप्रयोग द्वारा मूर्च्छित करी नाप्यु छे, तो आप भतावे के आ बोके केवी
रीते सचेत थये ? ” राजनी बात सावणीने वैद्य कहु, “ आप चिन्ता न करी
धणु जल्दी आपनु सैन्य साइ थर्ध जशे ” जेवु उडीने तेजे राजने बोडी

च स्तोकमौपध दृष्ट्वा तदुपरि कोप कृतवान् । वैद्यो वदति-महाराज ! इदं लक्षारो-
ग्यप्रदमौपधमस्ति, अल्प दृष्ट्वा भवान् कोपं मा करोतु । राजा पृच्छति-कथमेत-
न्निश्चेतव्यम् ? वैद्यः प्राह-राजन् ! आनाग्यता कोऽपि विपाक्रान्तः । राज्ञा तादृशो
हस्तीदर्शितः । ततो वैद्यो हस्तिनः पुच्छदेशे वालमेकमुत्पाद्य तदीयरन्त्रे तदौष्य
सचारितम् । तेन सहस्ती स्पस्थो जातः वैद्यो वदति-राजन् । हस्ती नैरुज्य प्राप्तः ।
एवमेतदौष्य लक्षारोग्यप्रदम् । हस्तिनि स्पस्थे जाते सति राजा शान्तचेतसा वैद्य
वदति-करोत्वैवम् वैद्येन तदौष्यप्रयोगः सैन्ये सचारितः । जात तत्प्रचुरमपि सैन्य
निर्निषम् । राजा वैद्य प्रति सतुष्टो जातः । इति वैद्यस्य विनयजा बुद्धिः ।

॥ इति दशमोऽगददृष्टान्तः ॥ १० ॥

योडी औपधी देखकर राजा को वैद्य के प्रति क्रोध का आवेग जग गया ।
वैद्य ने यह देखकर राजा से उसी समय कहा-महाराज ! इतनी मी यह
औपधी एक लाख आदमियों को आरोग्य प्रदान करने वाली है, आप
इसको योडी सी जानकर कोप न कीजिये । वैद्य की इस बात का विश्वास
न करते हुए राजा ने उससे कहा-इस बात का निश्चय कैसे किया जावे ?
वैद्य ने कहा महाराज ! आप किसी विपाक्रान्त प्राणी को मगवाईये ।
राजा ने वैसा ही किया-एक हाथी जो विष की वेदना से मूर्च्छित या
दिग्बलाया वैद्य ने उसी समय उसकी पूत्र का एक बाल निकाला और
उस स्थान में उस औपधि को खर दिया । योडी देर बाद वह हाथी
मूर्च्छा से रहित होकर स्वस्थ हो गया । वैद्य ने कहा-महाराज ! देग्विधे
इस औपधि का किनना प्रभाव है ? जो योडी ही देर में हस्ती मूर्च्छा
से रहित हो गया है । इमी तरह यह औपधी एक लाख प्राणियों को

सरभी दवा लावी अतावी थोडी दवा लेधने रानने वैद्य प्रत्ये जोधने आवेग
आवी गये, वैद्ये ते लेधने तेज वधते रानने कहु " आटवी न औपधि
लाभ भाषुसेने आरोग्य देनारी छे तेतु थोडु प्रभाषु लेधने आप गुरसे
न उरशे वैधनी आ वात पर विश्वास न भूकता रानये कहु, ' ये वातनी
भातरी डेवी रीते थाय ? ' वैद्ये उहु, " आप अरने लोग भनेल डोर्ध प्राणीने
अतावे " रानये अेषु न उर्यु -अक हाथी के ने विषनी वेदनाथी मूर्च्छित छते।
ते अताये वैद्ये तरत न तेनी पूठडीभाथी अक वाण जेथी डाढये अने ते
स्थाने ते औपधिने भूडी थोडी न वारभा ते हाथीनी मूर्छा वणी अने ते
स्वस्थ थध गये वैद्ये उहु, " महाराज ! तुवे आ औपधिने केटवे
प्रभाव छे, के थोडी न वारभा हाथी मूर्छाथी रहित थध गये अेन प्रभाषु आ
औपधि अेक लाख भाषुसेने आरोग्य अर्पा शके छे " रानये हाथीने स्वस्थ

रथिकदृष्टान्तो— गणिकादृष्टान्तश्च वैनयिकबुद्धेरेकादशो द्वादशश्च दृष्टान्तः क्रमेण बोध्यः । स्थूलभद्रकथानके रथिकम्प यत् महकारफलपुत्रोत्पन्नम्, यच्च गणिकायाः सर्पपराशेरुपरि नर्तन, ते द्वे अपि वैनयिणी बुद्धिकले ॥

अथ त्रयोदशः शाटिकादिदृष्टान्तः—

एक कलाचार्यो राजकुमारान् शिक्षयति । गजकुमारा अपि बहुमूल्यद्रव्यैः

आरोग्य प्रदान कर सकती है । राजा ने हम्नी को स्वस्थ देखकर ज्ञान् चित्त हो वैद्य से कला-अच्छ आप इस औषधि का प्रयोग सैन्यजनों को स्वस्थ करने के लिये कीजिये । मेरी तरफ से आपको आज्ञा है । राजा की आज्ञा पाते ही वैद्यने उस औषधि का प्रयोग सैन्य को स्वस्थ करने के लिये किया तो वह समस्त मूर्च्छित हुआ सैन्य स्वस्थ हो गया । राजा वैद्य की इस चिकित्सा से बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ १० ॥

॥ यह दसवा अगदृष्टान्त हुआ ॥ १० ॥

इसी तरह रथिक दृष्टान्त और गणिका का दृष्टान्त ये वैनयिक बुद्धि के ग्यारहवें एव बारहवें दृष्टान्त हैं । स्थूलभद्र की कथा में ये दोनों दृष्टान्त लिखे हुए हैं । रथिक ने जो आम्र के फल के गुच्छों को तोड़ा है, तथा सरसों की राशि के ऊपर जो वेद्या ने नृत्य किया है ये दोनों वाते वैनयिक बुद्धि के फल हैं ॥ ११-१२ ॥

॥ यह ग्यारवा रथिकदृष्टान्त, बारहवा वेद्यादृष्टान्त हुआ ॥ ११-१२ ॥

तेरहवा शाटिकादिदृष्टान्त—

एक कलाचार्य राजकुमारों को पढ़ाता था । राजकुमार भी उसका

थयेवो लोभने शात चित्त धर्धने ते वैधने कथु, “साइ, आप आ औषधिने उपयोग सैनिकोने स्वस्थ करवा भाटे करे आपने मारे ते आदेश छे” राजने आदेश भजता न वैधे ते औषधिने प्रयोग भूर्च्छित सैन्यने स्वस्थ करवा भाटे कर्यो त्यारे ते आपु भूर्च्छित थयेतु सैन्य स्वस्थ थयु राज वैधनी आ चिकित्साथी धखो भुशी थये ॥ १० ॥

॥ आ इसमु अगदृष्टात समाप्त ॥ १० ॥

अेव प्रभावे रथिकदृष्टात अने गणिकादृष्टात ते वैनयिक बुद्धिना अगीयारमा अने आरमा दृष्टात छे स्थूलभद्रनी कथाभा ते अने दृष्टातो लपेला छे रथिके ने आम्रक्षणना शुभ्रज्योने तोडया छे, तथा सरसवना दगला पर वेद्याअे ने नृत्य कर्यु छे ते अने वातो वैनयिकबुद्धितु दृण छे ॥ ११-१२ ॥

॥ आ अगीयारमु रथिकदृष्टात, अने आरमु वेद्यादृष्टात समाप्त ॥ ११-१२ ॥

तेरमु शाटिकादिदृष्टात—

अेक कलाचार्य राजकुमारोने लष्यावता हुता राजकुमारो पषु वधतो

समये समये कलाचार्यं सम्मानयति । कलाचार्यो मम पुत्रेभ्यो बहुमूल्यानि द्रव्यानि गृहीतवानिति ज्ञात्वा राजाक्रोपवशात् त कलाचार्यं हन्तुमिच्छति । राजकुमारैरिदं वृत्तं कथञ्चिद् ज्ञातम् । तैश्चिन्तितम्—आचार्योऽप्यस्माकं पिताऽस्ति । अतोऽस्माभिः केनाप्युपायेन स रक्षणीयः । तस्मिन्नेव आचार्यो भोजनार्थमागतः, स्नानं कृत्वा परिधानार्थं स्वशाटिकां याचते । राजकुमाराः—शुष्कां शाटिकां विदित्वाऽपि स्नानशाटिकां आर्द्रांस्तीत्युक्तवन्तः, तथा द्वारस्य समीपे लघुं तृणं स्थापयित्वा प्रोक्तवन्तः—तृणमिदं दीर्घमस्ति । एवमेव क्रौञ्चनामां शिष्यः पूर्वं कलाचार्यस्य दक्षिणतः प्रदक्षिणां कर्तुमर्हति, किं तु इदानीं स वामभागेन प्रदक्षिणां करोति । एव कुमाराणामार्द्रशाटिका

समय २ पर बहु मूल्य द्रव्यों से सत्कृत किया करते थे । राजा को जब यह बात ज्ञात हुई कि कलाचार्य मेरे पुत्रों से बहुमूल्य वस्तुओं को लेता रहता है तो राजा ने कलाचार्य को मारने का विचार किया । राजकुमारों को अपने पिता का यह कुविचार जब किसी तरह से मालूम पड गया तो उन्होंने सोचा—आचार्य भी तो हमारे पिता हैं अतः हमें उन की रक्षा किसी न किसी उपाय द्वारा अवश्य करनी चाहिये । वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि इतने में उसी समय कलाचार्य भी वहाँ भोजन करने के लिये आये । आते ही कलाचार्य स्नान कर के पहिरने के लिये राजकुमारों से धोती मागी तो उन राजकुमारों ने सूखी धोती को गीली बतलाया । तथा द्वार के पास लघु तृण रक्वकर उसको दीर्घ (बड़ा) बतलाया । तथा इन शिष्यों में जो क्रौंच नाम का शिष्य था कि जो पहिले इनकी प्रदक्षिणा दक्षिण भाग से किया करता था उसने वाम भाग से प्रदक्षिणा

प्राप्त अहु मूल्य द्रव्योधी तेमने सत्कार करता हुता राजने न्यारे आवातनी अथर पडी के कलाचार्य भारा पुत्रो पायेधी अहु मूल्य थीजे मेणवे छे, त्यारे राजये कलाचार्यने मारवाने विचार कयेँ राजकुभागेने पोताना पिताने ते कुविचार न्यारे केँध पणु रीते बलुवाभा आयेँ त्यारे तेमले विचार्यु—आचार्य पणु आपणु पिता समान छे, तेधी आपणु केँध पणु उपायेँ अवश्य तेमनु रक्षणु करवु नेँधयेँ तेओ आवे विचार करी रह्या हुता केँ येवामा कलाचार्य पणु खोजन करवा भाटे त्या आव्या आवता न कलाचार्ये स्नान करीने पड़ेरवा भाटे राजकुभारे पासे धोती मागी त्यारे ते राजकुभारेओ सूखी धोतीने बीनी अतावी, तथा द्वारनी पायेँ लघु तृणु राणीने तेने दीर्घ (भाटु) अताव्यु तथा ते शिष्येमा ने कौच नामने शिष्य हुतो केँ ने पड़ेला तेमनी प्रदक्षिणा नभणी आनुधी कयो उरते हुतो तेले दाभी आनुधी प्रदक्षिणा करवा भाडी आ प्रभाणेना कुभारेना आव्यरधुधी

पथनेन तणस्य दीर्घत्रयपथनेन क्रौञ्चस्य वामभ्रमणेन च कलाचार्यो ज्ञातवान-
सर्वे मम विरुद्धाः सन्ति, केवल कुमार एव भक्तिं विज्ञापयन्ति । एव त्रिकिन्त्य
कलाचार्यो नृपेणालक्षितः सन् नगरात्प्रहिर्गतवान् । इय मकेतगानेनाचार्यस्य,
सकेतद्वारा कलाचार्यस्य हित मपादनेन कृमागणा च प्रनयिकी वृद्धि । शाटिका
शब्देनात्र धीतयत्र गृहते ।

॥ इति त्रयोदशः शाटिकादिदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशो नीत्रोदकदृष्टान्तः—

नीत्रोदकम्—गृह-त्राटन प्रान्तपतित जलम् । काचिद् वणिजोभार्या चिर
श्रोपिते भर्तरि दास्यै निजभाष निवेदयति । आनय मपि पुरुषम् 'इति । ततस्तया
देना प्रारभ क्रिया । इस तरह कुमारों के इस आचरण से आचार्य ने
यह समझ लिया कि इस समय मुझ से सब विरुद्ध हैं, केवल कुमार
ही मुझ में अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं । इस तरह विचार कर वह
कलाचार्य राजा से अलक्षित होकर वहाँ से बाहर चला गया इस प्रकार
आचार्य ने सकेत द्वारा जो अपनी व अपने द्रव्य की रक्षा की वह वैन
यिकी वृद्धि का ही परिणाम है । तथा शिष्यों का जो कलाचार्य द्वारा
हित सपादन हुआ उस से जो उन में वृद्धि उदभूत हुई वह भी इसी वैन
यिकी वृद्धि का फल है ॥ १३ ॥

॥ यह तेरहवा शाटिकादिदृष्टान्त हुआ ॥ १३ ॥

चौदवा नीत्रोदकदृष्टान्त—

एक वणिक् या । वह अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर प्रायः परदेश
में ही रहता था । एक दिन की बात है कि उसकी पत्नी ने काम व्यथा
से व्यथित होकर अपनी दासी से कहा कि तू किसी पुरुष को ले आ ।

आचार्ये ते समञ्ज लीधु ते अत्यारे मथा भारी विद्महे, इदं कुमारो व भारी
उपरने तेमने लक्षितभाव प्रदर्शित करी रह्या छे आ प्रभाञ्जे विचार करीने
ते कलाचार्ये शालनी नञ्जे पड्या विना त्याथी अडार याट्या गया आ प्रभाञ्जे
आचार्ये सकेत द्वारा पोतानी तथा द्रव्यनी जे रक्षा करी ते वैनयिकीवृद्धि
व परिष्णाम उतु तथा शिष्येणु कलाचार्ये द्वारा जे हित सपादन थयु ते
कारञ्जे तेमनामा वृद्धि उत्पन्न थयु ते पण्जे वैनयिकीवृद्धि उ क्षण उतु ॥१॥

॥ आ तेरमु शाटिकादिदृष्टान्त समाप्त ॥ १३ ॥

चौदसु नीत्रोदकदृष्टान्त—

एक वणिक् उतो ते पोतानी पत्नीने घेर मुकी वधने सामान्य रीते
परदेशमा व वसतो उतो एक दिवसे तेनी पत्नीजे वामव्यथाथी व्याकुण थयने
पोतानी दासीने कहु के तु केध पण्जे पुरुषने मालावी लाव दासीजे

समानीतः । ततो नापितेन तस्य नखकृन्तनादिक तथा कृरितम् । रात्रौ च तौ
 द्वावपि समोगार्थं द्वितीयभूमिकामारुहवन्तौ । मेघश्च दृष्टिं कर्तुमारब्धवान् । तत-
 स्तेन पिपासाव्याकुलेन पुरुषेण नीत्रोदक पीतम् । ततश्च त्वग्विषभुजङ्गसस्पृष्ट
 तज्जलपानेन स मृतः । ततस्तया वणिग्भार्यया रात्रिपश्चिमयाम एव शून्य देवालये
 मोचितः । प्रभाते दण्डधराः पागधराश्च राजपुरुषास्त मृतक दृष्टवन्तः । तस्य नखा-
 दिकर्म दृष्ट्वा ते नापितान् पृष्टवन्तः, अस्यकेनेद नखकृन्तन क्षौरकर्म च कृतम् ।

दासी ने ऐसा ही किया । वह किसी पुरुष को ले आई । वणिक की पत्नी
 ने एक नाई को बुलवाकर उससे उनके नख केश कटवाना आदि कर-
 वाया । रात का जब समय आया तो वे दोनों मकान के ऊपर के भवन
 में गये । उस समय आकाश में मेघ घिरा हुआ था । धीरे २ पानी भरसाना
 प्रारंभ हुआ । उस पुरुष को प्यास लगी हुई थी अतः उस ने नीत्रोदक
 नेवा का जल-पी लिया । वह जल त्वग्विष जिम की चमड़ी में विष भरा
 हुआ था ऐसा गर्प के शरीर से हुआ हुआ आया था, इसलिये पीने के
 कुछ ही देर बाद उस की मृत्यु हो गई । उस को मरा हुआ देखकर
 वणिक भार्या को बड़ी चिन्ता हुई । उस ने रात्रि के पिछले पहर में उस
 मृतक शरीर को किसी शून्य देवालय में रखवा दिया । प्रभात होते ही
 राजपुरुषो ने इस मृतक शरीर को ज्यों ही देखा तो उस के ताजे नख-
 कृन्तन आदि चिह्नों को देखकर उन्होंने ने वहा के नाईयों को बुलवाकर
 पूछा कि कहो इस का नखकृन्तन तथा क्षौरकर्म तुम लोगों में से किस ने

प्रभाते ७ कथुं ते कोर्ध पुरुषने लर्ध आवी वणिक्नी पत्नीञ्च्ये ओऽ हन्मने
 षोलावीने तेना नष, वाण वगेरे ऽपाव्या रात्रि पडता तेञ्चो भन्ने भकानने
 उपरने भाणे गया त्यारे आकाशमा वादणा छवायेला हता धीरे धीरे वरसाह
 वरसवेा शऽ थये त्यारे ते पुरुषने तरस लागी हती तेथी तेले नीत्रोदक
 (नेवाभाथी पडतु पाष्ठी) पी लीधु ते पाष्ठी त्वग्विष-नेनी आभडीमा विष लरेले
 डोय जेवा सर्पना शरीरने स्पर्शाने आव्यु हर्तु, तेथी ते पीधा पडी थोडीव
 वारमा मृत्यु पाश्चे तेने मृत्यु पाभेल लोर्धने वणिक्नी पत्नीने लारे चिन्ता
 थध तेले रात्रिने पाछणे प्रहरे ते मूर्धने कोर्ध आवी देवालयमा भूडावी
 द्वीधु सवार पडता ७ गजपुरुषोञ्च्ये नेषु ते मूर्डं नेषु के तेना नष कपाव्या
 आदिना ताल निशान लोर्धने तेभले त्याना हन्मने षोलावीने पूछ्यु,
 “कडे आना नष कापवानु तथा वाण कापवानु काम तमारभाथी कैले

पथनेन तणम्य दीर्घतपयनेन क्रौञ्चम्य वामभ्रमणेन च कलाचार्यो ज्ञातवान्-
सर्वे मम विरुद्धाः सन्ति, केवल कुमार एव भक्तिं पित्रापयन्ति । एव विचिन्त्य
कलाचार्यो नृपेणालक्षितः सन् नगरद्वयहिर्गतवान् । इयं मकेतप्रानेनाचार्यस्य,
सकेतद्वारा कलाचार्यस्य हित सपादनेन कुमारणां च प्रनयित्री वृद्धि । शाटिका
शब्देनात्र धीतयस्य गृणते ।

॥ इति प्रयोदशः शाटिकादिदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशो नीत्रोदकदृष्टान्तः—

नीत्रोदसम्—गृह-श्रादन प्रान्तपतित जलम् । काचिद् वणिजोमार्यां चि
प्रोपिते भतरि दास्यै निजभाय निवेदयति । आनय क्वपि पुरुषम् 'इति । ततस्तथा
देना प्रारभ क्रिया । इस तरह कुमारों के इस आचरण से आचार्य ने
यह समझ लिया कि इस समय मुझ से मम विरुद्ध हैं, केवल कुमार
ही मुझ में अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं । इस तरह विचार कर वह
कलाचार्य राजा से अलक्षित होकर वहाँ से बाहर चला गया इस प्रकार
आचार्य ने सकेत द्वारा जो अपनी व अपने द्रव्य की रक्षा की वह वैत
यिकी वृद्धि का ही परिणाम है । तथा शिष्यो का जो कलाचार्य द्वारा
हित सपादन हुआ उस से जो उन में वृद्धि उदभूत हुई वह भी इसी वैत
यिकी वृद्धि का फल है ॥ १३ ॥

॥ यह तेरहवा शाटिकादिदृष्टान्त हुआ ॥ १३ ॥

चौदवा नीत्रोदकदृष्टान्त—

एक वणिक् था । वह अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर प्रायः परदेश
में ही रहता था । एक दिन की बात है कि उसकी पत्नी ने काम व्यथा
से व्यथित होकर अपनी दासी से कहा कि तू किसी पुरुष को ले आ ।

आचार्ये ते समष्टी वीधु दे अत्यारे अथा भारी विरुद्ध छे, इक्षत कुमारो व भारी
उपरने तेभनो लक्षितभाव प्रदर्शित करी रह्या छे आ प्रभाञ्जे विचार करीने
ते अथाचार्ये राजनी नञ्दे पडया विना त्याथी अहार यात्या गया आ प्रभाञ्जे
आचार्ये सकेत द्वारा पोतानी तथा द्रव्यनी ले रक्षा करी ते वैतयिकीवृद्धितु
व परिणाम इतु तथा शिष्येनु कलाचार्ये द्वारा ले हित सपादन थयु ते
दरञ्जे तेभनामा वृद्धि उत्पन्न थर्थ ते पञ्च अेव वैतयिकीवृद्धितु इण इतु ॥१४

॥ आ तेरसु शाटिकादिदृष्टान्त समाप्त ॥ १३ ॥

चौदसु नीत्रोदकदृष्टान्त—

एक वणिक् इतो ते पोतानी पत्नीने घर सुकी अर्थने सामान्य रीते
परदेशमा व वसतो इतो अेक दिवसे तेनी पत्नीअे नामव्यथाथी व्याकुण थर्थने
पोतानी दासीने उल्लु के तु केअ पञ्च पुरुषने आलावी लाव दासीअे

समानीतः । ततो नापितेन तस्य नखकृन्तनादिक तथा ऋरितम् । रात्रौ च तौ
 द्वावपि समोगार्थं द्वितीयभूमिकामारुढवन्तौ । मेघश्च दृष्टिं कर्तुमान्बध्वान् । तत-
 स्तेन पिपासाव्याकुलेन पुरुषेण नीब्रोदक पीतम् । ततश्च त्वग्विषभुजङ्गसस्पृष्ट
 तज्जलपानेन स मृतः । ततस्तया वणिग्भार्यया रात्रिपश्चिमयाम एव शून्य देवालये
 मोचितः । प्रभाते दण्डधराः पाशधराश्च राजपुरुषास्त मृतक दृष्टवन्तः । तस्य नखा-
 दिकर्म दृष्ट्वा ते नापितान् पृष्टवन्तः, अस्यकेनेद नखकृन्तन क्षौरकर्म च क्रतम् ।

दासी ने ऐसा ही किया । वह किसी पुरुष को ले आई । वणिक की पत्नी
 ने एक नाई को बुलवाकर उससे उनके नख केश कटवाना आदि कर-
 वाया । रात का जब समय आया तो वे दोनों मकान के ऊपर के भवन
 में गये । उस समय आकाश में मेघ घिरा हुआ था । धीरे २ पानी बरसाना
 प्रारंभ हुआ । उस पुरुष को प्यास लगी हुई थी अतः उस ने नीब्रोदक
 नेवा का जल-पी लिया । वह जल त्वग्विष जिम की चमड़ी में विष भरा
 हुआ था ऐसा सर्प के शरीर से हुआ हुआ आया था, इसलिये पीने के
 कुछ ही देर बाद उस की मृत्यु हो गई । उस को मरा हुआ देखकर
 वणिक भार्या को बड़ी चिन्ता हुई । उस ने रात्रि के पिछले पहर में उस
 मृतक शरीर को किसी शून्य देवालय में रखवा दिया । प्रभात होते ही
 राजपुरुषों ने इस मृतक शरीर को ज्यों ही देखा तो उस के ताजे नख-
 कृन्तन आदि चिह्नों को देखकर उन्होंने ने वहां के नाईयों को बुलवाकर
 पूछा कि कहां इस का नखकृन्तन तथा क्षौरकर्म तुम लोगों में से किस ने

प्रभाते न कथुं ते डोई पुरुषने लई आवी वणिकनी पत्नीजे जेह हुनभने
 जोलावीने तेना नष, वाण वगेरे ज्पाव्या रात्रि पडता तेजे। जन्ने मकानने
 उपरने भाजे गया त्यारे आडाशमा वाहणा छवायेला हुता धीरे धीरे वरसाह
 वरसये। शङ् थये। त्यारे ते पुरुषने तरस लागी हुती तेथी तेजे नीब्रोदक
 (नेवामाथी पडतु पाणी) पी लीधु ते पाणी त्वग्विष-जेनी आभडीमा विष लरेतु
 डोय जेवा सर्पना शरीरने स्पर्शाने आव्यु हुतु, तेथी ते पीधा पडी थोडीज
 वारमा मृत्यु पाभ्ये तेने मृत्यु पाभेल जेधने वणिकनी पत्नीने लारे चिन्ता
 थध तेजे रात्रिने पाछजे अडरे ते मूढाने डोई आवी देवालयमा भूकावी
 दीधु सवार पडताज रात्रपुरुषोजे जेधु ते मूढं जेधु डे तेना नष ज्पाव्या
 आदिना ताज निशान जेधने तेभजे त्याना हुनभने जोलावीने पूछथु,
 “कडेो आना नष डापवानु तथा वाण डापवानु काम तभाराभाथी डोखे

पथनेन तृणस्य दीर्घत्वपथनेन क्रीडस्य घामभ्रमणेन च कलाचार्यो ज्ञातवान्-
सर्वे मम विरुद्धाः सन्ति, केवल कुमारा एव भक्तिं विज्ञापयन्ति । एव विचिन्त्य
कलाचार्यो नृपेणालक्षितः सन् नगराद्ग्रहिर्गतमान । इय सकेतज्ञानेनाचार्यस्य,
सकेतद्वारा कलाचार्यस्य हित मपादनेन कुमागणां च धैर्यिनी वृद्धि । शाटिका
शब्देनात्र धौतस्य गृहते ।

॥ इति प्रयोदशः शाटिकादिदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशो नीत्रोदकदृष्टान्तः—

नीत्रोदकम्—गृह-ग्रादन प्रान्तपतित जलम् । काचिद् रणित्रोभार्या चिर
श्रोपिते भतरि दास्ये निजभाष निवेदयति । आनय क्वमपि पुरुषम् 'इति । ततस्तथा
देना प्रारभ क्रिया । इस तरह कुमारे के इस आचरण से आचार्य ने
यह समझ लिया कि इस समय मुझ से मत्र विरुद्ध हैं, केवल कुमार
ही मुझ में अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं । इस तरह विचार कर वह
कलाचार्य राजा से अलक्षित होकर वहा से चारि चला गया इस प्रकार
आचार्य ने सकेत द्वारा जो अपनी व अपने द्रव्य की रक्षा की वह वै
यिकी वृद्धि का ही परिणाम है । तथा शिष्यों का जो कलाचार्य द्वारा
हित सपादन हुआ उस से जो उन मे वृद्धि उद्भूत हुई वह भी इसी वै-
यिकी वृद्धि का फल है ॥ १३ ॥

॥ यह तेरहवा शाटिकादिदृष्टान्त हुआ ॥ १३ ॥

चौदवा नीत्रोदकदृष्टान्तः—

एक वणिक् था । वह अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर प्रायः परदेश
मे ही रहता था । एक दिन की बात है कि उसकी पत्नी ने काम व्यथा
से व्यथित होकर अपनी दासी से कहा कि तू किसी पुरुष को ले आ ।

आचार्ये ते सभञ्ज वीधु डे अत्यारे अधा भारी विरुद्ध छे, इकत कुमारो व भारी
उपरने तेमने लक्षितभाव प्रदर्शित करी रखा छे आ प्रभाञ्जे विचार करीने
ते उवाचार्ये राजनी नञ्जरे पडया विना त्याथी अहार यात्या गया आ प्रभाञ्जे
आचार्ये सकेत द्वारा पोतानी तथा द्रव्यनी ले रक्षा करी ते वैनयिकीवृद्धि
व परिष्ठाभ उतु तथा शिष्योतु कलाचार्ये द्वारा ले हित सपादन थयु ते
कारञ्जे तेमनाभा वृद्धि उत्पन्न थयु ते पञ्च अञ्जे वैनयिकीवृद्धिउ इण उतु ॥१॥

॥ आ तेरमु शाटिकादिदृष्टान्त समाप्त ॥ १३ ॥

चौदसु नीत्रोदकदृष्टान्तः—

एक वणिक् उतो ते पोतानी पत्नीने घर मुकी वरुने सामान्य रीते
परदेशमा व वसतो उतो एक दिवसे तेनी पत्नीञ्जे कामव्यथाथी व्याकुण थयुने
पोतानी दासीने उल्लु डे तु केरि पञ्च पुरुषने आवापी लाव दासीञ्जे

सुहृद् भुञ्जान आसीत्, अतोऽसौ वृषभस्य समीपे न गतः, किं तु वृषभ दृष्ट्वात्, अतः स दरिद्र पुरुषो मित्रमनुक्त्वा गृह गतः। स्वामिनोऽनग्रधानेन वृषभस्तदालयाद् वहिर्निर्गतः। त चौरा अपहत्य नीतन्तः।

वृषभस्वामी स्वालये वृषभमनालोक्ष्य दरिद्र पुरुषस्य गृह गत्वा तस्माद् याचते—यो मम वृषभस्त्वया समानीतस्त वृषभ देहि। चौरैरपहतत्वात् स वृषभस्तेन कथं देयः स्यात्। ततोऽसौ दरिद्र पुरुष न्यायालये नेतु प्रवृत्तः?।

गया था तो उस समय उस का मित्र भोजन कर रहा था, इसलिये उन बैलों के पास वह नहीं आसका, पर बैलों को उस ने आया हुआ अवश्य देख लिया था, अतः मित्र से वह दरिद्र व्यक्ति बिना कुछ कहे खुने ही अपने घर पर चला आया। वहा प्रैल अपने स्वामी की असावधानी से घर से बाहर निकल गये। अरक्षित स्थिति में उन बैलों को देखकर चौर न जाने उन्हें कहा ले गये। जब बैलों के मालिकने बैलो को ठाण मे नही देखा ता वह भगकर अपने दरिद्र मित्र के घर पहुँचा। वहाँ जाकर उसने उस दरिद्र मित्र से बैलों की माग की। कहा जो तुम प्रैल मेरे वहाँ से लाये थे वे दो। मित्र ने सुनकर कहा—बैल तुम्हारे घर पहुँचा दिये हैं। परन्तु मित्र ने उस की नही मानी और बैलों को ढूढकर लाने की बात उससे कही। उस ने बैलो की ग्वोज की तो वे उस को नही मिले, उन्हे तो चौर ले गये थे, इसलिये परस्पर मे इन दोनो मे झगडा हो गया। अन्त मे बैलों के मालिक ने उसको कचहरी मे न्याय प्राप्त करने की

मित्रने घर आये। न्यारे ते अे अणहोने लधने आये। त्यारे तेना मित्र लोअन करतो हुतो, तेथी ते अे अणहोनी पासे आवी शक्ये नही पणु तेणु अणहोने आवता अवश्न जेया हुता, तेथी ते गरीअ आहमी मित्रने उधपणु उद्धा विना पोताने घर आह्ये गये। हुवे अेषु अन्धु के ते अणहो पोताना मालिकनी अेअणुथी अहार आह्या गया ते अणहोने अरक्षित डालतमा लधने चोर तेमने काध अणुथे स्थणे लध गया न्यारे अणहना मालिके अणहोने गमाणु पासे न जेया त्यारे ते अउपथी तेना मित्रने घर पडोअये। त्या अधने तेणु ते गरीअ मित्र पासे पोताना अणहो माज्या तेणु कहु के तमे जे अणहो मारी पासेथी लध गया हुता ते मने पाछा आपो ते माल जता अ मित्रे उहु के अणहो तो तमारे घर पडोअ्याडी दीधा छे, पणु मित्रे तेनी वात मानी नही अने अणहो शेधी लाववानु तने कहु धर्षी शेध करवा छता पणु अणहो जड्या नही वारणु के तेमने चोर लध गये। हुतो ते कारणे ते अन्ने वन्ने अगडो पडये। छेवटे अणहना मालिके तेने न्याय भेणववा

तत एकेन नापितेनोक्तम्-अमृश्यणिग्भायां दाम्यादशेन मयाऽस्य नगरकृन्तनादिक
कृतम् । ततः सा, पृष्ठा साऽपि च पूरं न कथितवती । ततो गजपुरुषेस्ताड्यमाना
यथास्थितं पथयामास । इति राजपुरुषाणां वैनयिकबुद्धिः ।

॥ इति चतुर्दशो नीमोदकदृष्टान्तः (प्र० ३०९) ॥ १४ ॥

वृषभस्य हरणम्, अश्वस्य मरणम्, वृक्षात् पतन चेति पञ्चदशो दृष्टान्तः—

आसीदेकस्मिन् ग्रामे कथिन्द्ररिद्र प्रस्य । स स्वमित्राद् वृषभं याचित्वा
हलं चालयति स्म । मायं समये तं वृषभं मिश्राण्ये नीत्या त्यक्तवान् । तदा तस्य
क्रिया है ? । उनकी इस बात को सुनते ही एक नाई ने उत्तर में कहा कि
मैंने इस के नगरकृन्तन आदि क्रिये हैं । मुझे अमुरु सेठ की पत्नी की दासी
बुलाकर ले गई थी और उसने मुझ से ऐसा करने को कहा था । राज-
पुरुषों ने उसी समय उस दासी को बुलवाया । उससे पूछने पर जब
उसने कुछ नहीं बतलाया तो उन्होंने ने दानी को ताड़ना दी । मार खाते
ही उसने उसी समय जो कुछ घटना घटी थी वह सब याथार्थ्य कह दी ।
यह राजपुरुषों की वैनयिकी बुद्धि का उदाहरण है ॥ १४ ॥

यह चौदहवा नीमोदकदृष्टान्त हुआ ॥ १४ ॥

वृषभ का हरना, अश्व का मरना तथा वृक्ष से गिरना यह पन्द्रहवा
दृष्टान्त है—जो इस प्रकार है—

किसी ग्राम में एक दरिद्र रहता था । उसके पास खेती करने के
लिये बैल नहीं थे । अतः उसने अपने मित्र से बैल मागे और खेत में
हल चलाकर अनाज बो दिया । पश्चात् सायंकाल में यह उन बैलों को
अपने मित्र के घर पहुँचाने आया । जब यह उन बैलों को बहा पहुँचाने

कथुं हुतु ? ” तेमनी आ वात साभणीने अेक हुल्लभो कहु के मे तेना नभ
कापवा आदि कार्य कथा छे भने अमुक शेठनी दासी भोलावीने लर्ध गर्ध
हुती अने तेहे भने ते प्रभाणे करवानु कहु हुतु राजपुरुषोअे अेक समये
ते दासीने भोलावी तेने पूछवाभा आपता केरि नवाण न भणता तेमणे तेने
भारवा भाडी भार पडता न तेहे ने कर्ध अन्धु हुतु ते अधु साथे साथु
कही हीधु आ राजपुरुषोनी वैनयिकीबुद्धिनु उदाहरण छे ॥ १४ ॥

॥ आ चौदसु नीमोदकदृष्टान्त समाप्त ॥ १४ ॥

भणहनी शोरी, अश्वनु भरणु तथा वृक्षथी पडवानु आ पहरमु दृष्टान्त-
केरि अेक गाभभा अेक गरीण भाणस शडेता हुते तेनी पासे जेती
करवा भाटे भणह न हुता तेथी तेहे पोताना मित्रना भणह लावीने अने जेतर
जेडीने अनाज वावी हीधु पछी साणे ते अे भणहोने पाछा आपवा पोताना

सुहृद् भुञ्जान आसीत्, अतोऽसौ वृषभस्य समीपे न गतः, किं तु वृषभं दृष्ट्वात्,
अतः स दरिद्र पुरुषो मित्रमनुक्त्वा गृहं गतः। स्वामिनोऽनपधानेन वृषभस्तदालयाद्
वहिर्निर्गतः। त चौरा अपहृत्य नीतयन्तः।

वृषभस्वामी स्वालये वृषभमनालोभ्य दरिद्र पुरुषस्य गृहं गत्वा तस्माद् याचते
—यो मम वृषभस्त्वया समानीतस्त वृषभं देहि। चौरैरपहतत्वात् स वृषभस्तेन
कथं देयः स्यात्। ततोऽसौ दरिद्र पुरुषं न्यायालये नेतुं प्रवृत्तः?।

गया या तो उस समय उस का मित्र भोजन कर रहा था, इसलिये उन
वैलों के पास वह नहीं आसका, पर वैलों को उस ने आया हुआ अवश्य
देख लिया था, अतः मित्र से वह दरिद्र व्यक्ति बिना कुछ कहे सुने ही
अपने घर पर चला आया। वहाँ वैल अपने स्वामी की असावधानी से
घर से बाहर निकल गये। अरक्षित स्थिति में उन वैलों को देखकर चौर
न जाने उन्हें कहा ले गये। जब वैलों के मालिक ने वैलों को ठाण में नहीं
देखा तो वह भगकर अपने दरिद्र मित्र के घर पहुँचा। वहाँ जाकर
उसने उस दरिद्र मित्र से वैलों की माग की। कहा जो तुम वैल मेरे वहाँ
से लाये थे वे दो। मित्र ने सुनकर कहा—वैल तुम्हारे घर पहुँचा दिये हैं।
परन्तु मित्र ने उस की नहीं मानी और वैलों को दूढ़कर लाने की बात
उससे कही। उस ने वैलों की खोज की तो वे उस को नहीं मिले, उन्हें
तो चौर ले गये थे, इसलिये परस्पर में इन दोनों में झगडा हो गया।
अन्त में वैलों के मालिक ने उसको कचहरी में न्याय प्राप्त करने की

मित्रने घर आये। न्यारे ते अे भणहोने लईने आये। त्यारे तेना मित्र
लोअन उरते। हुते, तेथी ते अे भणहोनी पासे आवी शउये नही। पणु तेखे
भणहोने आवता अवश्य जेया हुता, तेथी ते गरीभ आहमी मित्रने उधपणु
उह्या विना पोताने घर आह्ये गये। हुये अेबु अन्यु के ते भणहो पोताना
मालिकनी अेकाणथी भडार आह्या गया ते भणहोने अरक्षित डालतभा
जेधने चार तेमने केअ अणहये स्थणे लध गया। न्यारे भणहना मालिके
भणहोने गभाणु पाने न जेया त्यारे ते अउपथी तेना मित्रने घर पडोअ्ये।
त्या जेधने तेखे ते गरीभ मित्र पाने पोताना भणहो भाज्या तेखे उह्यु के
तमे जे भणहो भारी पानेथी लध गया हुता ते मने पाछा आपे। ते साल
णता ज मित्रे उह्यु के भणहो तो तभारे घर पडोअ्याडी हीधा छे, पणु मित्रे
तेनी बात मानी नही अने भणहो शोधी लाववानु तने उह्यु धषी शोध कनवा
छता पणु भणहो जउया नही उरषु के तेमने चार लध गये। हुते ते
कारखे ते अन्ने वख्ये अगडे पउये। छेनटे भणहना मालिके तेने न्याय भेणववा

कश्चिदश्वासः पुरुषस्तस्याभिमुखमागच्छति । अत्रमाश्वो भीत्या ममुच्छ-
 लितस्तेन सोऽश्वात् पतितः, अभद्र पत्यागिष्ठः । दरिद्र पुरुषेण महामो वृषमन्वामी
 मार्गे तदभिमुखमागच्छति, तमायान्त दद्यादश्वम्यामी प्राह—पलायमानमश्वमहा
 रेणावसन्धि । ततोऽगो दरिद्रपुरुषस्तद्वचनं श्रुत्वाश्वस्य प्रहारं कृतवान् । स महा
 रस्तस्यमर्मणि सलग्नस्तेन गोऽश्वं प्रकृतिं क्रोमलन्यात् मृतं । ततोऽश्वं ग्रामी
 दरिद्रं पुरुषं वृष्टीत्या तदभियोगं ननु प्रवृत्तः । तेषु सर्वेषु नगरान्तिकमुपागतेषु सूर्यो
 ऽस्त गतः । रात्रौ तन्नगरो पान्ते र्हिः प्रदेशे ते सर्वे स्थिताः २ ।

आशा से छे जाने का आयोजन किया । जय यह कचहरी के लिये छे
 जाया जा रहा था तो इस के ऊपर देव दुर्गिपाक से मार्ग में दो घटनाएँ
 और घट गईं जो इस प्रकार हैं—एक व्यक्ति घोड़े पर चढ़ा हुआ उसकी
 तरफ आ रहा था । घोड़ा अचानक भय से ज्यों ही उठला कि वह व्यक्ति
 घोड़े पर से उठल कर नीचे आ गिरा, और घोड़ा भाग गया । भागते हुए
 अपने घोड़े को देखकर उस ने दरिद्र पुरुष से जो कचहरी की तरफ बैलों
 के मालिक के साथ जा रहा था कहा—भाई ! इस घोड़े को मारो और
 जैसे मैंने जैसे रोक लो । दरिद्रपुरुष ने वैसा ही किया । दरिद्रपुरुष ने घोड़े
 को जो मार मारा वह जाकर उसके मर्मस्थान में लगी, लगते ही घोड़ा
 स्वभावतः क्रोमल होनेसे उसी समय मर गया । घोड़े को मरा हुआ
 देखकर उसके मालिक ने उस पर हत्या का अभियोग लगा दिया, और
 इस तरह लड़ते झगड़ते ये सब के सब नगर के पास ज्यों ही आकर
 उपस्थित हुए कि इतने में सूर्य अस्त हो गया । रात्रि में नगर में न जाकर
 ये लोग बाहर ही कहीं ठहर गये । वहा वृक्ष के नीचे अनेक नट ठहरे

भाटे कचेरीमा लध जवने निरुध्य कथे न्यारे ते तेने कचेरीमा लध जतो
 छतो त्यारे मार्गमा तेने दुर्गाग्ये भीष्म जे दुर्घटनाओ नडी, जे आ प्रभाण्डे
 छे—एक व्यक्ति घोडे सगार यधने तेनी तरङ्ग आवती छती घोडो अथानक
 लयथी जेवो उछण्यो के ते सवार उछणीने नीचे पडयो, अने घोडो नासवा
 लाग्यो । पोताना घोडाने नासतो लोधने तेण्डे, जणहोना मालिक साथे कचेरीमा
 जाता ते दरिद्र आदमीने कछु—लाध आ घोडाने मारो, अने जे प्रकारे जनी
 शके ते प्रकारे तेने शोको दरिद्र आदमीओ ओषु ज क्युं दरिद्र पुरुषे घोडाने
 जे मार माथो ते तेने मर्मस्थाने वागवाथी, जेवो मार वाग्यो के स्वभावत
 ते घोडो कोमल होवाथी ओज सभये मरी गयो घोडाने मरी गयेलो लोधने
 घोडाना मालिके तेना उपर घोडानी छत्याने आगेप भूक्यो, अने आ प्रभाण्डे
 तेओ लडता अगडता जेवा नगरनी पासे पडोन्था के सूर्य अस्त यध गयो
 रात्रे नगरमा न जाता तेओ नगरनी अडार जे कोठ स्थणे थोभी गया त्या

तत्र वहवो नटावृक्षतले सुप्ता सन्ति । तदानी दरिद्र पुरुषश्चिन्तयति-अस्मादा-
पत्समुद्रान्मम निस्तारो नास्तीति वृक्षमारुह्य गले पाशं बद्ध्वा प्राणास्त्यजामि,
इति चिन्तयित्वा तथैव कर्तुमारब्धम् । जोर्णवस्त्रखण्डेन गले पाशोवद्धः । तच्चपन्न
खण्डमतिदुर्बलमिति तद्भाराक्रान्तं सत् त्रुटितम् । स दरिद्र पुरुषोऽधस्तात् सुप्तनट
मुख्यस्योपरि पतितः, येनाऽसौ नटो मृतः । नटा अपि त दरिद्र पुरुष गृहीतवन्तः३।

हुण थे । वे सब के सब उस समय सो रहे थे । इस विचारे दरिद्रपुरुष के
चित्त में वहा इन समस्त आपत्तियों से पीडित होने के कारण ऐसा विचार
उत्पन्न हुआ कि-इन आपत्तियों को भोगने की अपेक्षा अब तो मर
जाना ही कही अच्छा है । इस तरह विचार कर इसने वृक्षपर चढ़कर
गले में फासी लगाने की आयोजन किया । जिस वस्त्र की उसने फासी
बनाई थी वह पुराना एवं बहुत अधिक जीर्णशीर्ण था इसलिये ज्यों ही
यह गले में उस फासी को डालकर लटका तो वह उम के भार को सहन
नहीं कर सकने के कारण टूट पड़ी । जिस स्थान पर इसने फासी लगाई
हुई थी उस स्थान पर एक नट का मुखिया ठीक इस के नीचे सो रहा था,
जो रात्रि होने के कारण इसको दिखलाई नहीं दिया था । फासी के
टूटते ही यह उस नट के मुखिये पर आकर गिरा । इसके गिरते ही वह
नट मर गया । उस की चीख सुनकर सबनट जाग पड़े और उन्होंने इस
विचारे आपत्तिग्रस्त दरिद्रको पकड़ लिया । प्रातःकाल जब हुआ तो सब

कोई वृक्षनी नीचे अनेक नट पण्डितों इत्यादि आये सूता इत्यादि
हुये आ अधी आपत्तियोंकी व्याकुल अनेक ते दरिद्र आहमीना मनमा अवे
विचार आये के आ मुश्किलीये वेकवा करता तो मरी जयु वधारे सारु, आ
प्रभाणु विचार करीने तेणु वृक्ष पर चडीने गणे क्षमे भावानी येवना करी
ने वस्त्रने तेणु क्षमे अनाये इतो ते जूयु अने तइन लुर्षुशीर्षुं डोवाथी
वेवे ते गणामा क्षमे लगावीने लटकये के तेने लार सडन न करी शकवाने
कारणु क्षमा वाणु वस्त्र तूरी गयु ने स्थाने तेणु क्षमे भावा भाटे वस्त्र
लटकयु इतु ते स्थाननी बराबर नीचे न नटडोकेने अेड आगेवान सूतो
इतो, ते रात्रिना अधाराने लीधे ते ॥ नजर पडये न इतो क्षमे तूटता न
ते अे नटना आगेवान उपर आवीने पडये ते पडता न ते नट मरी गये
तेनी चीस सालणीने अधा नट जगी गया, अने तेमणु अे जियारा आप
त्तिमा मुकयेला दरिद्रने पकडी लीधे सवार पडता न तेओ अधा नगरमा

अथ प्रभाते दस्त्रिपुरुष गृहीत्वा सर्व राजकुल गताः । राजकुमारः सर्वथा भाषण श्रुत्वा दस्त्रिपुरुष वृन्वति-विभेतेषां भाषणं मत्स्यम् ? दस्त्रिपुरुष संद्वय द्यूते-महाराज ! यदेते यदन्ति-तत् मत्स्यमपि । ततो राजकुमारः दस्त्रिपुरुष प्रति जातानुरूपस्तस्य मित्रमत्रयीत्-ण्य तुभ्य वृषभौ दाम्प्यति किं तु त्वाग्निणी वत्या दयिष्यति, ण्य तदैवानृणो जात, यदाज्जेन मर्मर्पितौ वृषभौ त्वयाऽवशोक्तिता । यदि तु त्वया न दृष्टो स्याता, तदाऽयमपि स्वग्रह न गन्धेत् । अथ तु तवसमस्त वृषभो नीतयान्, अतोऽय निर्दोषः ? ।

के सत्र नगरमे जाकर अपना २ अभियोग इस पर चलाने के लिये कचहरी में उपस्थित हुए । वहाँ वहाँ के राजकुमार मुकुन्दमो का निपटेरा क्रिया करते थे । इन लोगों से जब राजकुमार ने कचहरी में आने का कारण पूछा तो सत्र ने अपना २ जो मामला या वह कह दिया । सत्र की वृथक २ रूप से बात सुनकर राजकुमार ने उस दरिद्रपुरुष से पूछा-कहो, इन सत्र का जो तुम्हारे विषय में ऐसा २ कहना है वह सत्य है क्या ? हाथ जोड़कर दरिद्रपुरुष ने उससे कहा हा महाराज ! जो कुछ ये कह रहे हैं वह सत्र सत्य है । इस प्रकार कह कर उसने जो २ घटनाएँ जिस २ रूप से घटित हुई थी वे सत्र उम राजकुमार को सुनादी । सुनकर राजकुमार के चित्त में उस के प्रति दयाका भाव जग उठा । राजकुमार ने उस के मित्र से कहा तुम्हारे दोनों बैलों को देने को तैयार है-परन्तु तुम्हें इसे अपनी दोनों आँखें उपाड़कर देनी पड़ेगी । कारण-यह तो उसी समय ऋण रहित हो गया-जब इसने तुम्हारे देखते २ दोनो बैलो को तुम्हारे

जधने ते दरिद्र पर पोत पोतानी इरियाह करवा भाटे कचेरीमा गया त्या त्यानाज राजकुमारो इरियाहो सालणी तेमने निकाल करता हुता न्यारे राज कुमारो आ बोकोने कचेरीमा आववानु करणु पूछ्यु त्यारे ते अधाये पोत पोतानी ने उकीकत हुती ते रण्य करी ते अधानी अलग अलग वात साल णीने राजकुमारो ते दरिद्रने पूछ्यु, “कडो, आ बोकोनी तारी सामे आ, आ प्रकारनी इरियाह छे, ते शु साथी छे ? दरिद्र आदमीये हाथ जोडीने तेमने कछु, “महाराज ! तेज्यो ने कछ कडे छे ते सत्य छे आ प्रभाणे उडीने तेबु ने ने घटनाये ने ने रीते अनी हुती ते अधी ते राजकुमारने कडी सलणावी ते सालणीने ते राजकुमारना मनमा तेने भाटे द्या उत्पन्न थछ राजकुमारो तेना मित्रने कछु, “ते तभारा अन्ने अणद आपवाने तैयार छे पछु तभारे तेने तभारी अन्ने आप्पो कडी आपवी पडरी, करणु के न्यारे तेबु तभारा देअता ज तभारा अन्ने अणहोने तभारे

तथा द्वितीयोऽश्वस्वामी शब्दितः । राजकुमारो वदति—तवाश्व दापयिष्यामः, किं तु त्वया स्वजिह्वा उडित्वाऽग्नौ दातव्या, यदा हि त्वया भापितम्—‘एनमश्व दण्डेन ताडयित्वा परावर्तय’ इति, तदाऽनेन दण्डेनाहतस्तवाश्वः । प्रथमोदोपस्तव जिह्वाया एव, अतोऽयं निर्दोषः २ ।

तथा नटान् प्रत्याह—पश्य, अस्य पार्श्वे किमपि नास्ति, किं दापयाम, घर पर छोड़ दिया। यदि तुम उन्हें नहीं देखते तो यह उस समय घर नहीं जाता। अतः इसमें इसका दोष नहीं है, तुम्हारी आंखों का दोष है। अतः उसकी मजा तुम्हारी आंखों को भ्रगतना चाहिये, न कि इसको। तुमने क्यों नहीं अपने बैलों को सभाला। इस तरह यह निर्दोष प्रमाणित कर दिया गया।

यह हुआ बैलों का हरण का दृष्टान्त ॥ १ ॥

अब अश्व के स्वामी से बलाकर राजकुमार ने कहा—मैं तुम्हारा घोड़ा इससे दिलवा दूंगा, पर तुम्हें इस के लिये अपनी जीभ काटकर देनी होगी। कारण—जिस समय तुम ने ऐसा कहा था कि “इस घोड़े को मारो और रोको” तभी तो इसने तुम्हारे घोड़े को डंडे से आहत किया। इसलिये सर्व प्रथम यह अपराध तुम्हारी जिह्वा का ही है, इसका नहीं, यह तो निरपराध है ॥

॥ यह हुआ घोड़े के मरण का दृष्टान्त ॥ २ ॥

अब नटों की धारी आई। जब राजकुमार ने नटों से कहा—देखो भाईयो। इस के पास तो ऐसी कोई चीज है नहीं जो तुम्हें दिलवा दी

या धटा भक्या त्पारथी न ते तमारा ऋषुथी मुक्त थर्ध गये। गण्णाय जे तमे ते भणहो जेया न होत तो ते, ते समये घेर गये न होत तेथी तेमा तेना दोष नथी, दोष तमारी आप्पेना न छे तो तेनी सण तमारी आप्पेजे लोगवपी जेध जे, तेजे नही तमे तमारा भणहोनी सलाण केम न लीधी ?” आ रीते तेने निर्दोष साणित उरवामा आवये।

आ भणहोना अपहरणुतु दृष्टात थयु (१) उवे अश्वना मालिकने जोलावीने राजकुमारि कथु, “हु आ माणुस पासेथी तमने घोडा अपावीश, पण ते भाटे तमारि तमारी लुल जापीने आपवी पडशे, कारणु के न्यारे तमे जेवु उधु के “आ घोडाने मारो अने रोको” त्यारे आ माणुसे तमारा घोडाने उडा मार्यो, तो तेमा अपराध तमारी लुलनो न छे, आ माणुसने नथी, ते तो निर्दोष छे आ घोडाना भरणुतु दृष्टात थयु (२)

उवे नटलोकेना वारे आव्यो राजकुमारि नटोने कथु, “जुवे। लुसनी पासे जेवी केध चीज नथी के जे तमने अपावी

यथाऽय गले पाश बद्ध्या वृक्षात् स्वत्स्वामिगरोरोपरिपतित, एवमेव युष्मासु
कश्चित् प्रधानः पुरुषस्तथैव वृक्षात् पततु अयमधस्तात् गुप्तस्तिष्ठतु । एव कुमारस्य
वचन श्रुत्या सर्वे तूर्णान्भाव ममाश्रिता । स दग्धि पुत्रस्तदभिषोगतो मुक्तः ।
इति राजकुमारस्य वैनयिकी बुद्धिः ।

॥ इति पञ्चदशो दृष्टान्तः ॥ १५ ॥

॥ इति वैनयिकबुद्धिर्णनम् (पृष्ठ ३०९) ॥ २ ॥

अथ कर्मजायानुद्धेदृष्टा ता मोच्यन्ते (पृ० ३१०) । तत्र प्रथमो हैरण्यकदृष्टान्तः
प्रदर्शयते ।

हैरण्यकः=सुवर्णकार । यः सुवर्णकारः सुवर्णादिविमान सम्यक् प्राप्तवान्,
स समय प्राप्य हस्तस्पर्शमात्रेण दर्शनमात्रेण यो सुवर्ण रजत वा यथार्थ जानाति ।
इति सुवर्णकारस्य कर्मजा बुद्धिः ।

॥ इति प्रथमो हैरण्यकदृष्टान्तः ॥ १ ॥

जावे-अतः तुम ऐसा करो-जिस प्रकार यह गले में फासी देकर वृक्ष से
तुम्हारे स्वामी के ऊपर गिरा है-वसी तरह तुम लोगों में से कोई एक
नट गले में फासी लगाकर वृक्षसे इसके ऊपर गिरो । हम इसे उस के
नीचे सुलाये देते हैं । इस प्रकार के राजकुमार के वचन सुनकर वे सब
नट बिलकुल चुपचाप हो गये । और वह विचारा दरिद्रपुरुष उनके अभि-
योग से मुक्त हो गया । यह हुआ वृक्ष से गिरने का दृष्टान्त ३ । यह
सब राजकुमार की वैनयिकीबुद्धि है ॥

॥ यह पन्द्रहवा दृष्टान्त हुआ (पृ० ३१०) ॥ १४ ॥

॥ यह वैनयिकीबुद्धि के उदाहरण हुए ॥ २ ॥

शकाय तो तमे आ प्रभाषे करे ७ प्रभाषे आ भाषुस गणामा क्षो
लगावीने तमारा आगेवान उपर पडयो, अण प्रभाषे तमाराभाथी कोर् अक
नट गणामा क्षो लगावीने वृक्ष उपरथी तेना पर पडे अमे तेने ते वृक्ष
नीचे सुवरावीअे छीअे ” आ प्रकारना ते राजकुमारना वचन सावणीने ते गधा
नट रूप थर्ष गया अने ते भिआरे दरिद्र आदमी तेना अपराधभाथी मुक्त
थर्ष गयो आ वृक्षनी नीचे पडवानु दृष्टात थयु आ गधा राजकुमारनी वैन
यिकी बुद्धिना दृष्टात छे

॥ आ पदरसु दृष्टात समाप्त ॥ १४ ॥

॥ आ वैनयिकी बुद्धिना उदाहरणो थया (पृ० ३१०) ॥ २ ॥

हुवे कर्मण बुद्धिना दृष्टातो कडे छे-पडेसु हैरण्यक दृष्टात-हैरण्यक अटवे
सोनी ते सुवर्ण के आदमीने जेधने के रूपशीने तेमा यथार्थत्व के अयथाथ
त्वने नष्ठी वे छे ते कर्मबुद्धिनु परिष्णाम छे ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः कर्मकदृष्टान्त —

कश्चिच्चौरौ रात्रौकस्यचिद्वणिजो गृहे पश्चात्कार खात खातवान् । प्रातःकाले बहवो लोकास्तत्र समागत्य चौरस्य खातकरण प्रशसन्ति स्म । गुप्तरूपेण तस्करोऽपि स्वप्रशसा शृणोति । तत्रैकः कर्मकोऽब्रवीत्-शिक्षितस्य किं दुष्करम्, येन यत् कार्य-मभ्यस्तम् स तस्मिन् कुशलो भवत्येव, अत्र किमाश्चर्यम् ? कर्मकस्य वचः श्रुत्वा चौरस्य क्रोधः समुत्पन्नः । स एक जन पृच्छति-कोऽयम्?, कुत्र निवसति च ?

अव कर्मजो बुद्धिके दृष्टान्त कहते हैं(पृ० ३१०)-प्रथम हैरण्यक दृष्टान्त ।

हैरण्यक नाम सोनी-सुनार का है । वह जो सुवर्ण या चादी आदि को देख कर या छू कर उनमें यथार्थत्व या अयथार्थत्व की पहिचान कर लिया करता है वह कर्मजा बुद्धि का परिणाम है ॥ १ ॥

॥ यह पहला हैरण्यकदृष्टान्त हुआ ॥ १ ॥

दूसरा कर्मकदृष्टान्त—

एक चोर ने किसी वणिक् के मकानमें रात्रिके समय कमलाकार खात दिया । जब प्रातःकाल हुआ तो लोगों ने इस खात को देख कर चोर की प्रशसा की । इन लोगों में चोर भी गुप्तरूप से सम्मिलित था । लोग जब ऐसा कह रहे थे कि धन्य है उस चोर को जिसने कमल के आकारवाला यह खात दिया है । तो वहां एक खड़े हुए किसान ने ऐसा कहा कि भाई ! शिक्षित को क्या दुष्कर होता है । जो जिस काम को सीखे हुए होता है वह उस में निपुण होता ही है । इसमें प्रशसा करने की बात ही कौन सी है ? इस तरह अपनी प्रशसा के निषेधक वचनों को सुनकर उस चोर को क्रोध जग गया । उसने पास में खड़े हुए एक

॥ आ पडेलु हैरण्यक दृष्टान्त थयु ॥ १ ॥

भीलु कर्मक दृष्टान्त—

એક ચોરે કોઈ એક વણિકના મકાનમાં રાત્રે કમળના આકારે ખાતર પાડ્યું ન્યારે પ્રભાત થયું ત્યારે લોકો તે ખાતરને જોઈને ચોરની કળાની પ્રશંસા કરવા લાગ્યા એ લોકોમાં ચોર પણ શ્રુત રીતે સામેલ હતો લોકો ન્યારે એણે કહેવા લાગ્યા કે ધન્ય છે એ ચોરને કે જેણે કમળના આકારનું આ ખાતર દીધું છે, ત્યારે ત્યાં ઉભેલા એક ખેડુતે કહ્યું, “ભાઈ! શિક્ષિતને માટે દુષ્કર શું છે? જેઓ જે કામ શીખ્યા હોય છે તેમાં તે નિપુણ હોય જ છે આમાં પ્રશંસા કરવા જેવી શી વાત છે?” આ પ્રમાણે ચોરના પ્રશંસાના વિરોધી વચનો સાંભળતા જ તે ચોરને ક્રોધ ચડ્યો તેણે પાસે ઉભેલ એક

इति । कस्पचिज्जनस्य यानात् तत्परिचयं ज्ञात्वा स चौरः किञ्चित् कालान्तरं कर्पकस्य समीपे क्षेत्रे छुरिगामाकृत्य गत । ततश्चौरो यदति-स्वामग्रहनिष्यामि । कर्पको द्यूते—केन कारणेन मा हनिष्यसि । चौरः प्राह—त्वया तदानीं मम स्वातन प्रशंसितमिति । कर्पको यदति—यो यस्मिन् कर्मणि सदैवाभ्यासपरः स तद्विषये प्रज्ञामर्कपूर्वान् भवत्येव, तत्राहमेव दृष्टान्तः । तथाहि—अमून् मुद्गान् हस्तगतान् यदि भणसि, तर्हि सर्गनिष्यधामुग्मान् पातयामि, यद्वा ऊर्ध्वमुग्मान् । अथवा—

આદમી સે પૂઠા—યહ કૌન હૈ—ઔર ફલા રહતા હૈ। ઉસને ઉસ કા પરિચય ઉસ કો દે દિયા । કુછ સમય યાદ જવ યહ કિસાન અપને સ્વેત પર ગયા હુઆ ધા તવ યહ ચૌર ખી ઉસ કે પીઠે ૨ ચલા ગયા ઔર વહા જા કર છુરી કો સ્વેચતે હુપ ઉસ સે કહને લગા—સમલ જાઓ—મૈં આજ તુમ્હારા સ્વૂન કરુગા । ચૌર કે હસ પ્રકાર વચન સુન કર કૃપક ને કહા મેરે સ્વૂન કરને કા કારણ કયા હૈ ? । ઉત્તર મૈં ચૌરને કહા યાદ કરો—જિસ દિન લોગ મેરે દિયે કમલાકાર સ્વાત કી મુક્ત કઠ સે પ્રશસા કર રહે થે ઉસ દિન તુમને મેરે કૃત્ય કી પ્રશસા નહીં કી હૈ । ચૌર કે હસ તરહ વચન સુન કર કૃપક ને કહા ખાઈ ! હસમેં પ્રશસા કરને કી વાત હી કૌન સી હૈ ? જો જિસ વિષય મૈં સદા અભ્યસ્તશીલ હોતા હૈ વહ ઉસ વિષય મૈં વિશેષ બુદ્ધિ પ્રકર્ષવાલા હોતા હૈ । હસમેં મૈં દૂસરે કી કયા વાત કહ્ અપની હી વાત કહતા હુ — સુનિયે મેરે હાથ મૈં યે મૃગ કે દાને હૈં । અવ આપ કહિયે મૈં ઇન્હે “ સવ કો નીચે મુસ રહે ” હસ રૂપ સે

માણસને પૂછ્યું, “ આ કેણુ છે અને કયા રહે છે ? ” તેણુ તેને તેનો પરિચય આપ્યો કેટલાક દિવસ પછી ન્યારે તે ખેડુત પોતાના ખેતરે જતો હતો ત્યારે તે ચૌર પશુ તેની પાછળ પાછળ ચાલી નીકળ્યો અને ત્યા જઈને છરી કાઢીને તેને કહેવા લાગ્યો, “ સાવધાન ! હું આજે તારૂં ખૂન કરી નાખીશ ચૌરના આ પ્રકારના વચનો સાલગીને ખેડુતે કહ્યું, “ મારૂં ખૂન કરવાનું શુ કારણુ છે ? ” તેના જવાબમા ચૌરે કહ્યું, યાદ કર, તે દિવસે લોકો મેં દીધેલ કમળાકાર ખાતરની ન્યારે પ્રશસા કરતા હતા ત્યારે તે મારા કાચની પ્રશસા કરી ન હતી ” ચૌરની આ પ્રકારની વાત સાલગીને ખેડુતે કહ્યું, “ ભાઈ ! તેમા પ્રશસા કરવા જેવી વાત જ શી છે ? જે વિષયનો જેને હું મેશનો અનુભવ હોય છે તે માણસ તે વિષયમા વિશેષ બુદ્ધિ પ્રકર્ષવાળો હોય છે તે ખાબતમા હું ખીજની શી વાત કરૂં મારી પોતાની જ વાત કરું છુ તે સાલળ મારા હાથમા આ મગના દાણુ છે તમે જ કહેા હું તેમને બધાનું અખ નીચે રહે તે પ્રમાણે

पार्श्वस्थितान्, इति । ततोऽसौ साश्चर्यमाह—सर्वानप्यधोमुखान् पातय, इति भूमौ पटो विस्तारितः । सर्वेऽप्यधोमुखामुद्रा पातिताः । महाश्चर्यं जातम् । चौरस्तस्य पुनः पुन प्रशंसा कृतवान्—‘अहो ! कर्पकस्य विज्ञानम् ?’, इति यद्येते मुद्रा अधो-मुखाः पातिता, नाभविष्यन्, तदा नियमेन त्वामहनिष्यम् । इति कर्पकस्य तस्कर-स्य च कर्मजा बुद्धिः ।

॥ इति द्वितीयः कर्पकदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः कौलिकदृष्टान्तः—

कौलिकस्तन्तुवायः । तन्तुवायो मुष्ट्या तन्तून् गृहीत्वा जानाति एतावद्भिः कण्डकैः पटो भविष्यति ॥ ३ ॥

गिराऊँ या “ ऊँचा मुख रहे ” इस रूप से गिराऊँ, या ‘ये सब तुम्हारे पास ही गिरें’ इस रूप से गिराऊँ ? जिस से एक भी दाना इधर उधर न गिरे किमान की ऐसी बात सुन कर आश्चर्यचकित हुए उस चोर ने उस से कहा—इन सब दानों को आप इस रूपमें गिरावें कि जिस से ये सब अधोमुख आ कर पड़े । किसान ने जल्दी से जमीन पर बख्र फैला दिया । उस पर उसने उन समस्त मृग के दानों को इस रूप से गिराया कि वे सब के सब उस पर अधोमुख हो कर गिरे । चोर को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ । किसान की उसने यार २ भूरि प्रशंसा की । बाद में बोला—यदि आज आप इन मृग के दानों को अधोमुख पतित न करते तो नियम से मैं आप का खून कर देता । इस प्रकार यह तस्कर और कृपक की कर्मजा बुद्धिका परिणाम है ।

॥ यह दूसरा कर्पकदृष्टान्त हुआ ॥ २ ॥

नाथु के ७३ मुण रहे ते प्रभाषे नाथु के अथा तमारी पासे न पडे अे रीते नाथु ? ” जेडुतनी अेवी वात मालणीने नवार्ध भामेला चोरे कहुँ, “ अे अथा दाषुने तमे अेवी रीते दे के के नेथी ते अथा अधोमुण पडे जेडुते नवही नगीन पर वन्न पाथरी दीधु तेना पर तेले अे अथा भगना दाषुने अेवी रीते दे कया के ते अथा अधोमुण थधने न पडया चोरने आ वातथी धलु आश्चर्य थयु तेले जेडुतनी वारवार धणी प्रशंसा करी पछी तेले कहुँ, ने आने तमे आ भगना दाषुने अधोमुण दे वया न होत तो नरर हु तमाइ भूत करत ” आ उकीकत ते जेडुत अने चोरनी ठर्मन पुद्धिउ दटात छे ॥ २ ॥

॥ आ भीनु उर्धकदृष्टात थयु ॥ २ ॥

अथ चतुर्थो दर्वीकारदृष्टान्तः ।

दर्वीकारो (लोहकारो) जानाति एतावदत्र मास्यतीति ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो मौक्तिकदृष्टान्तः—

मणिकारो (मणियारा) नमसि मौक्तिकं प्रक्षिप्य सूकरत्रालं तथा-धारयति यथा पतनो मौक्तिकस्य रन्ध्रे स प्रविशतीति पञ्चमो मौक्तिकदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो घृतदृष्टान्तः—

घृतविक्रयी स्वविज्ञानं प्रकल्पमाप्तो यदि रोचते, तर्हि शकटेऽपि स्थितोऽधस्तात् कुण्डिकानालेऽपि घृतं प्रक्षिपति ।

॥ इति षष्ठो घृतदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

तीसरा कौलिकदृष्टान्तः—

कौलिक नाम वस्त्रं वुननवाले का है । वह मुट्टी से डोरों को पकड़ कर यह जान लिया करता है कि इतने ऋणकों से निर्मित हो सकता है ॥ ३ ॥

चौथा दर्वीकार दृष्टान्त — लुहार का नाम दर्वीकार है । यह जानता है कि इसमें इतना मावेगा ॥ ४ ॥

पाचवा मौक्तिक दृष्टान्त—मणिहारा आकाशमें मोति को उछाल कर सूअर के बाल-केश को इस रूप से रखता है कि जिससे वह नीचे गिरते हुए उस मोती के छिद्र में स्वतः प्रविष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

छठा घृतदृष्टान्त—घृत का व्यापारी जब उसका विशिष्ट ज्ञानवाला घन जाता है तो वह गाड़ी में बैठ कर भी नीचे रखी हुई कुण्डिका के नाले में घी को डाल देता है ॥ ६ ॥

त्रीण्यु कौलिकदृष्टान्त-

कपडा पणुनारने कौलिक कडे छे ते सुट्टीमा डोराने पकडीने ते लक्ष्मी शके छे के आटला तारथी वस्त्र जनी शके तेम छे ॥ ३ ॥

चौथु दर्वीकारदृष्टान्त-लुहारने दर्वीकार कडे छे ते अने लक्ष्मी छे के आमा आटलु समाशे ॥ ४ ॥

पाचवु मौक्तिकदृष्टान्त-मणियार मोतीने जे अने उछालीने सूअरना वाजने अथी रीते राखे छे के ते नीचे पडता मोतीना छिद्रमा आपोआप पेसी जाय छे ॥ ५ ॥

छट्ठु घृतदृष्टान्त-घीने व्यापारी न्यारे तेना आस अनुभव वाणे थाय छे न्यारे ते गाडी पर जेभीने पणु नीचे राखेक उज्जाना नाणआमा घीने रेडी दे छे ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः प्लवकदृष्टान्त —

प्लवकः—ऋर्दकः पुरुषः । स चाकाशेऽनेक विधा क्रीडा प्रदर्शयति ।

॥ इति सप्तमः प्लवकदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टमः 'तुन्नवाय' इति तुन्नवायदृष्टान्तः—

तुन्नवायः—सीवनकर्मकारकः । स च स्वविज्ञान प्रकर्मप्राप्तस्तथा मीवति, यथा केनापि लक्षितो न भवति ॥

॥ इत्यष्टमस्तुन्नवायदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमोवर्धकिदृष्टान्तः—

वर्धकिः—रथकारः 'वढई' इति प्रसिद्धः । स च स्वविज्ञानप्रकर्मप्राप्तोमानमकृत्वापि रथादौ योजनीयकाष्ठस्य मान विजानाति ॥

॥ इति नवमोवर्धकिदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

अथ दशम आपूपिकदृष्टान्तः—

अपूपः—'मालपूआ' इति भाषाप्रसिद्धः । अपूपनिर्माणकुशलः आपूपिकः । स तन्मानमकृत्वाऽपि तन्मान जानाति, ग्राहको यथाऽऽदिशति—तथाऽपूपादिक वस्तु निर्माति ।

॥ इति दशम आपूपिकदृष्टान्तः ॥ १० ॥

सातवा प्लवक दृष्टान्त—जो नट होता है वह आकाश में अनेक प्रकार की क्रीडाओं का प्रदर्शन करता है ॥ ७ ॥

आठवा तुन्नवाय दृष्टान्त—तुन्नवाय शब्दका अर्थ सीने की कला में जो चतुर है । वह इस ढंग से सीता है कि वस्त्रमें उसकी सिलाई का पता भी नहीं पडता ॥ ८ ॥

नौवां वर्धकिदृष्टान्त—जब वढई अपने विषयका विशेष विज्ञाता बन जाता है तो वह बिना नाप किये ही रथ आदि में लगाने योग्य काष्ठका नाप अपने आप जान लेता है ॥ ९ ॥

सातवु प्लवकदृष्टान्त—नट आकाशमा अनेक प्रकारना खेल करी जातावे छे ॥७॥
आठवु तुन्नवायदृष्टान्त—सीववानी कणामा जे अतुर होय तने तुन्नवाय
जडे जे ते अेवी रीते मीवे छे के वस्त्रमा तेनी सिलाई पछु नजर
पडती नथी ॥ ८ ॥

नववु वर्धजदृष्टान्त—न्यारे सुथार पोताना धधाने भास लक्षुअर थाय
छे त्यारे ते भाप लीधा विना पछु रथ आदिमा नडवाना लाकडानु भाप
आपो आप लक्षी शके छे ॥ ९ ॥

અર્થેકાદશો ઘટકારદષ્ટાન્ત —

કુમ્ભકારઃ સ્વવિજ્ઞાનપર્યપાત્તઃ પ્રથમત પ્રમાણયુક્તા મૃદ શૃક્લાતિ ।

॥ इत्येकादशो घटकारदष्टान्तः ॥ ११ ॥

અથ દ્વાદશચિત્રકારદષ્ટાન્તઃ—

નિપુણચિત્રકાર ચિત્રસ્ય ભૂમિમમિત્યા ચિત્રપ્રમાણ જાનાતિ, વર્ણકુચ્ચિકાયા તાવન્માત્રમેવ વર્ણ શૃક્લાતિ, યાત્રન્માત્રસ્ય તસ્ય પ્રયોજનમ્ ।

॥ इति द्वादशचित्रकार दष्टान्तः ॥ १२ ॥

॥ इति कर्मजाया बुद्धेरुदाहरणानि ॥ १२ ॥

દસવા આપૂર્વિકદષ્ટાન્ત—જો ન્યક્તિ માલપુઆ કે નિર્માણ કાર્યમેં

નિષ્ણાત હોતા હૈ વહ ઉસકી તૌલ કિયે વિના હી ઉસકા પ્રમાણ કર લેતા હૈ ઓર ગ્રાહક જિતની તૌલ કા ઉસસે માગતા હૈ વહ વિના તૌલે હી ઠીક ઉતના હી ઉસકો દે દેતા હૈ ॥ ૧૦ ॥

ગ્યારહવા ઘટકાર દષ્ટાન્ત—ઘટ કાર્ય કે ઘનને મેં જો કુમ્ભકાર નિષ્ણાત હોતા હૈ વહ પહિલે સે હી જિતને પ્રમાણ કા ઘટ વનાના ચાહતા હૈ ઉતને પ્રમાણ કી મિટી લે લેતા હૈ ॥ ૧૧ ॥

વારહવા ચિત્રકારદષ્ટાન્ત—નિપુણ ચિત્રકાર ચિત્રકે સ્થાનકા નાપ કિયે વિના હી ઉસકે પ્રમાણ કો જાન લેતા હૈ । ઓર જિતના રગ ઉસકે નિર્માણ કાર્ય મેં સ્વર્ચ હોના હોતા હૈ ઉતના હી રગ વહ અપની કુચ્ચિકા મેં ભરતા હૈ ॥ ૧૨ ॥

॥ ये कर्मजायुद्धिके उदाहरण हुए ॥ ३ ॥

દસમુ આપૂર્વિકદષ્ટાન્ત—જે વ્યક્તિ માલપુઆ બનાવવામા નિષ્ણાત હોય છે, તે તેતુ વજન કર્યા વિના જ પ્રમાણુ નક્કી કરી શકે છે અને ગ્રાહક જેટલા વજનના માલપુઆ તેની પાસે માગે છે એટલા જ તે તોલ કર્યા વિના જ તેને આપે છે ॥ ૧૦ ॥

અગીયારમુ ઘટકારદષ્ટાન્ત—ઘડા બનાવવાના કામમા જે કુલાર નિપુણ હોય છે તે પહેલેથી જ જેવડા માપનો ઘડો બનાવવા માગતો હોય એટલા પ્રમાણુમા જ માટી લે છે ॥ ૧૧ ॥

બારમુ ચિત્રકાર દષ્ટાન્ત—નિપુણ ચિત્રકાર ચિત્રના સ્થાનતુ માપ લીધા વિના જ તેતુ પ્રમાણુ જાણી લે છે અને તે ચિત્ર નિર્માણુમા જેટલા રગની જરૂર પડે તેમ હોય તેટલો જ રગ તે પોતાની કુચ્ચિકામા ભરે છે ॥ ૧૨ ॥

॥ આ કર્મજાનુદ્ધિકા ઉદાહરણો થયા ॥ ૩ ॥

अथ पारिणामिक्या बुद्धेस्दाहरणानि प्रदर्शयन्ते (पृ० ३१४)। प्राया वयोविपाक-जन्योबुद्धिविशेषः पारिणामिकी बुद्धिः । तत्राभयकुमारदृष्टान्तः प्रथमः प्रोच्यते—
अभयकुमारेण यच्चण्डप्रद्योताद् वरचतुष्टय याचितम्, यच्चण्डप्रद्योत वद्ध्वा
नगरमध्येनाऽऽरटन्त नीतमानित्यादि ।

॥ इति प्रथम अभयकुमारदृष्टान्त ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः श्रेष्ठदृष्टान्तः—

कोऽपि श्रेष्ठी स्वभार्याया दुश्चारित्रमालोक्य दीक्षा गृहीतवान् । इतश्च तस्याः परपुरुषसमागमेन गर्भो जातः । तदनन्तर राजपुरुषैः सा राजान्तिक समानीता । तस्मिन्नेवकाले एक मुनिर्विहारक्रमेण तस्माद् ग्रामान्निर्गतः सा तमालोक्य राज-पुरुषाणा समक्ष ब्रूते—हे मुने ! अय गर्भस्तदीयोऽस्ति, त्वमेव विहाय ग्रामान्तर

अब यहाँ से पारिणामिक बुद्धिके उदाहरण कहते हैं पृ० ३१४—

जो बुद्धि प्रायः वय के विपाक से उत्पन्न होती है उसका नाम पारिणामिकी बुद्धि है । इस पर सर्व प्रथम अभयकुमार का दृष्टान्त है—
अभयकुमार ने चण्ड प्रद्योतन से चार वर मागे थे । फिर बाद में उसको उसने बाध लिया था, और बाध कर वह उसको नगरके बीचसे चिल्लाते हुए ले गया था । इत्यादि ॥ १ ॥

दूसरा श्रेष्ठ दृष्टान्त—किसी सेठ ने अपनी पत्नी का दुश्चारित्र देखकर दीक्षा लेली । इधर वह परपुरुष के साथ समागम करने से गर्भवती हो गई । राजपुरुषों ने जब इसकी यह हालत देखी तो वे उसको राजा के पास ले चले । जब वे उसको ले जा रहे थे कि इतने में उस ग्राम से विहार करते हुए कोई एक मुनिराज जा रहे थे । उन्हें देखकर उमने राजपुरुषोंके

हुवे ओही थी पारिणामिक बुद्धिना उदाहरणो आये छे—(पृ० ३१४)

जे बुद्धि सामान्य रीते वयना विपाकथी उत्पन्न थाय छे तेने पारिणामिकी बुद्धि कहे छे ते विषे पहुँचु अभयकुमारनु दृष्टात छे—

अभयकुमारे य उप्रद्योत पासेथी यार वयन भाग्या हुता पथी तेछु तेने भाधी लीधी हुतो, अने भाधीने ते तेने उडतो उडतो नगरनी वन्धेथी लध गथे हुतो इत्यादि ॥ १ ॥

धीनु श्रेष्ठदृष्टात—कोई सेठे पोतानी पत्नीनु दुश्चारित्र नेधने दीक्षा लध लीधी हुवे ते परपुरुष साथे समागम करवाथी गर्भवती थध राजपुरुष पोअे न्यारे तेनी ओवी हालत नेध त्यारे तेओ तेने राज पासे लध नवा लाग्या न्यारे तेओ तेने लधने नता हुता त्यारे न ते गामथी विहार करीने कोई ओक मुनिराज नता हुता तेमने नेधने ते ओओ राजपुरुषेानी साथे न

गच्छसि, कथमह भविष्यामि । एतद्वचनं श्रुत्वा मुनिभिन्तपति-अमत्यभाषणे नैवा
जिनशासनस्य सचरित्र सांपुना चाकीर्तिं करिष्यति, अतस्तन्निवारणं कर्तव्यम् ।
इत्येव विचिन्त्य मुनिना तस्यै शापः प्रदत्तः—यदि मत्कृतोऽयं गर्भमूर्तिर्हि पूर्णं समये
योनितो निःसरतु । यदि तु मत्कृतो नास्ति, तर्हि उदरं मित्वा निर्गन्तु । तत्र
स्तस्य शापप्रभावाद् गर्भस्तत्क्षणं गोदरं मित्वा निर्गन्तुं प्रवृत्तः, अतस्तस्या अतिकष्ट
समुत्पन्नम् । ततः सा राजपुरुषाणां समक्षं मुनिराजं प्रार्थयति—महाराज । अयं गर्भो
भवत्कृतो नास्ति, मया मित्वा प्रवादः कृतः । पुनरेव न कविष्यामि । तस्या असह्य

साम्प्रति ही उन मुनिराज से कहा—हे मुने! यह गर्भ आप का है । आप
इस को ग्रेडकर क्यों ग्रामान्तर जा रहे हैं । कहिये अब मेरा क्या होगा ।
इस प्रकार उसकी बात सुनकर मुनि ने मन में विचार किया—यह असत्य
भाषण कर के जिन शासन की तथा सचरित्र साधुओं की अकीर्ति कर
रही है, इसलिये इसका निवारण अवश्य करना चाहिये । ऐसा विचार
कर उन्होंने ने उसी समय ऐसा उसे शाप दिया कि यदि यह गर्भ मेरा है
तो पूर्ण समय में यह होवे, और यदि ऐसा नहीं है तो अभी ही यह तेरा
पेट फाड़कर बाहर निकले । इस के बाद मुनि के शाप के प्रभाव से उसी
समय गर्भ पेट फाड़कर बाहर निकलना चाहा, अतः उस को महान् कष्ट
होने लगा । तब पुनः उसने मुनिराज से उन्हीं राजपुरुषों के समक्ष ऐसा
कहा—महाराज ! यह गर्भ आपके द्वारा नहीं हुआ है मैंने व्यर्थ ही आपका
अपवाद किया है—अतः मैं इस के लिये आप से क्षमा चाहती हूँ, आगे

तेमने कहु, “हे मुनि ! आ गर्भ आपकी न रहल छे आप तेने छोडीने
पडारगाम शा भाटे न्ह रहल छे ? कडो, डवे भाइ शु धरो ? ” आ प्रकारनी
तेनी बात साबणीने मुनिअे मनमा विचार कर्यो, “आ श्री बुद्धे जोडीने जिन
शासननी तथा सचरित्र साधुओनी अपकीर्ति करी रहल छे, तो तेनु निवारण
अवश्य करवु न्ह लेछिये ” ओवो विचार करीने तेमले ओन समये तेने ओवो
शाप दीयो के आ गर्भ भारथी रहल छोय तो पूरा हडाडे तेने प्रसूति थाय,
अने ले ओवु न छोय तो ते ताइ पेट झडीने अत्यारेन पडार नीकजे ” त्यारआह
मुनिना शापना प्रभावे तेना गर्भ पेट झडीने पडार आववा लाग्यो तेथी
तेने लारे कष्ट थवा लाग्यु त्यारे तेले इरीथी ते मुनिराज समक्ष ओन
राजपुरुषोनी इणइ आ प्रभावे कहु, “ महाराज ! आपना द्वारा आ गर्भ
रह्यो नथी मे आपना उपर जोडु कलक चडाओनु छतु तो हु ते भाटे आपनी

कष्टमालोक्य स कारुणिको मुनिः म्वशाप प्रतिनिवर्त्य धर्मस्य मान त्विय गर्भं च रक्षितवान् ।

॥ इति द्वितीयः श्रेष्ठिदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः कुमारदृष्टान्तः—

कस्यचिद्राजकुमारस्य मिष्टान्न प्रियमासीत् । एकदाऽसौ पूर्णोदर यावद् मोदकान् भक्षितवान् । अतिभोजनेनाजीर्णरोगं सजातः । ततश्च सुखाद् दुर्गन्धो निर्गतः । दुःखी भूत्वा राजकुमारश्चिन्तयति—अनेनाशुचि शरीरेण सयोग प्राप्य मिष्टान्न रूप मनोहर वस्तु विकृत सजातम्, अस्य देहस्य सुखार्थं लोका अनेकविधं पाप कुर्वन्ति, इति विचिन्त्य स विरक्तो जातः । इति राजकुमारस्य पारिणामिकी बुद्धिः ।

॥ इति तृतीयः कुमारदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

ऐसा नहीं करूंगी । इस तरह उस की प्रार्थना सुनकर और असह्य उसका कष्ट देवकर उन कारुणिक मुनिराज ने अपने शाप को वापिस लौटाकर धर्म की प्रभावना एवं उस स्त्री के प्राणों की तथा गर्भकी रक्षा की ॥२॥

तीसरा कुमारदृष्टान्त—किसी एक राजकुमार को मिष्टान्न विशेष प्रिय था । एक दिन की बात है कि इस ने पेट भंग लड्डु खा लिये । वे पचे नहीं अतः इस को अजीर्ण रोग हो गया । इस के मुख से दुर्गंध निकलने लगी । दुःखित होकर उस राजकुमार ने मन में ऐसा विचार किया कि जिस अशुचि इस शरीर के सपर्क से यह मिष्टान्नरूप मनोहर वस्तु भी विकृत हो गई है उस शरीर को सुख पहुँचाने के लिये लोग अनेक प्रकार के पाप करते रहते हैं । इस तरह के विचार से उस को वैराग्य हो गया और वह ससार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया ॥ ३ ॥

क्षमा भाग्य छु, डवेथी कही पणु आणु नही कउ ” आ प्रभाणु तेनी विन ति सालणीने अने तेनु असह्य उष्ट जेठने ते दयाणु मुनिराजे पोताने शाप पाछे जे अथे अने जे रीते धर्माना प्रलावनी तथा ते स्त्रीना प्राणु तथा गर्भनी रक्षा करी ॥ २ ॥

तीणु कुमारदृष्टान्त—कौई अेक राजकुमारने मिष्टान्न वधारे प्रिय डतु अेक दिवस तेणु पेट भरने लाडु खाधा ते पन्था नही तेथी तेने अणुणुना रोग थयो तेना मोभाथी दुर्गंध नीकणवा लागी तेथी डुभी थयेत ते राजकुमारने विचार कर्यो “अशुचि अेवा आ शरीरना सपकथी आ मिष्टान्न इप मनोहर वस्तु पणु विकृत थर्ध गध छे, ते शरीरने सुख आपवा भाटे लोके अनेक प्रकारना पाप करे छे ” आ प्रकारने विचार आवता ज तेने वैराग्य उत्पन्न थयो अने ते ससार, शरीर अने लोकोथी विरक्त थर्धगयो ॥ ३ ॥

गच्छसि, कथमह भविष्यामि । एतद्वचनं श्रुत्वा मुनिभिन्तपति-अमत्यभाषणे नैपा जिनशासनस्य सचरित्र साधुना चाकीर्तिं करिष्यति, अतस्तन्निवारणं कर्तव्यम् । इत्येव विचिन्त्य मुनिना तस्यै शापः प्रदत्तः-यदि मत्कृतोऽयं गर्भस्तर्हि पूर्णं समये योनितो निःसरतु । यदि तु मत्कृतो नास्ति, तर्हि उदरं भिन्ना निर्गन्तु । ततस्तस्य शापप्रभावाद् गर्भस्तत्क्षणं पत्रोदरं भिन्ना निर्गन्तु प्रवृत्तः, अतस्तस्या अतिक्रष्टं समुत्पन्नम् । ततः सा राजपुरुषाणां समर्थं मुनिराजं प्रार्थयति-महाराज । अयं गर्भो भवत्कृतो नास्ति, मया भिन्नापवादः कृतः । पुनरेव न करिष्यामि । तस्या असह्य

साम्हने ही उन मुनिराज से कहा-हे मुने! यह गर्भ आप का है । आप इस को तोड़कर क्यों ग्रामान्तर जा रहे हैं । कलिये अयं मेरा क्या होगा । इस प्रकार उस की बात सुनकर मुनि ने मन में विचार किया-यह असत्य भाषण कर के जिन शासन की तथा सचरित्र साधुओं की अकीर्ति कर रही है, इसलिये इसका निवारण अवश्य करना चाहिये । ऐसा विचार कर उन्होंने ने उसी समय ऐसा उसे शाप दिया कि यदि यह गर्भ मेरा है तो पूर्ण समय में यह होवे, और यदि ऐसा नहीं है तो अभी ही यह तेरा पेट फाड़कर बाहर निकले । इसके बाद मुनि के शाप के प्रभाव से उसी समय गर्भ पेट फाड़ कर बाहर निकलना चाहा, अतः उस को महान् कष्ट होने लगा । तब पुनः उसने मुनिराज से उन्हीं राजपुरुषों के समक्ष ऐसा कहा-महाराज ! यह गर्भ आपके द्वारा नहीं हुआ है मैंने व्यर्थ ही आपका अपवाद किया है-अतः मैं इस के लिये आप से क्षमा चाहती हूँ, आगे

तेभने कहु, “हे मुनि । आ गर्भ आपथी न रडेव छे आप तेने छोडीने षडारगाम शा भाटे नछ रह्या छे ? कहे, डवे भाइ शु थथे ? ” आ प्रकारनी तेनी बात सालणीने मुनिअे मनमा विचार कर्ये, “आ श्री गुरु षोडीने जिन शासननी तथा सचरित्र साधुअेनी अपकीर्ति करी रही छे, तो तेनु निवारणु अवश्य करवु न जेछेअे ” अेवो ‘विचार करीने तेभले अेन समये तेने अेवो शाप दीधो के आ गर्भ भाराथी रडेव डोय तो पूरा दडाडे तेने प्रसूति थाय, अने जे अेपु न डोय तो ते ताइ पेट झडीने अत्यारेन षडार नीकजे ” त्यारभाह मुनिना शापना प्रभावे तेनो गर्भ पेट झडीने षडार आववा लाग्ये । तेथी तेने लारे कष्ट थवा लाग्यु त्यारे तेले इरीथी ते मुनिराज समक्ष अेन राजपुरुषेनी इभइ आ प्रभाले कहु, “महाराज ! आपना द्वारा आ गर्भ रह्यो नथी अे आपना उपर जोरु कलक थडांयु डेतु तो हुं ते भाटे आपनी

कष्टमालोक्य स कारुणिको मुनिः स्वशाप प्रतिनिवर्त्य धर्मस्य मानं स्त्रिय गर्भं च रक्षितवान् ।

॥ इति द्वितीयः श्रेष्ठिदृष्टान्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः कुमारदृष्टान्तः—

कस्यचिद्राजकुमारस्य मिष्टान्न प्रियमासीत् । एकदाऽसौ पूर्णोदरं यावद् मोद-
कान् भक्षितवान् । अतिभोजनेनाजीर्णरोगः संजातः । ततश्च सुखाद् दुर्गन्धो निर्गतः ।
दुःखी भूत्वा राजकुमारश्चिन्तयति—अनेनाशुचि शरीरेण संयोगं प्राप्य मिष्टान्न रूप
मनोहरं वस्तु विकृतं सजातम्, अस्य देहस्य सुखार्थं लोका अनेकविधं पापं कुर्वन्ति,
इति विचिन्त्य स विरक्तो जातः । इति राजकुमारस्य पारिणामिकी बुद्धिः ।

॥ इति तृतीयः कुमारदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

ऐसा नहीं करूंगी । इस तरह उस की प्रार्थना सुनकर और असह्य उसका
कष्ट देखकर उन कारुणिक मुनिराज ने अपने शाप को वापिस लौटाकर
धर्म की प्रभावना एवं उस स्त्री के प्राणों की तथा गर्भकी रक्षा की ॥२॥

तीसरा कुमारदृष्टान्त—किसी एक राजकुमार को मिष्टान्न विशेष
प्रिय था । एक दिन की बात है कि इस ने पेट भर लड्डु खा लिये । वे
पचे नहीं अतः इस को अजीर्ण रोग हो गया । इस के मुख से दुर्गन्ध
निकलने लगी । दुःखित होकर उस राजकुमार ने मन में ऐसा विचार
किया कि जिस अशुचि इस शरीर के सपर्क से यह मिष्टान्नरूप मनोहर
वस्तु भी विकृत हो गई है उस शरीर को सुख पहुँचाने के लिये लोग
अनेक प्रकार के पाप करते रहते हैं । इस तरह के विचार से उस को वैराग्य
हो गया और वह समाज, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया ॥ ३ ॥

क्षमा माशु छु, हवेथी कही पणु आपु नही करे ” आ प्रभाणु तेनी विनति
सावणीने अने तेनु असह्य कष्ट जेधने ते दयाणु मुनिराजे पोताने शाप
पाछे जेव्ये अने जे रीते धर्माना प्रभावनी तथा ते स्त्रीना प्राणु तथा
गर्भनी रक्षा करी ॥ २ ॥

त्रीणु कुमारदृष्टान्त—कैई जेठ राजकुमारने मिष्टान्न वधाये प्रिय हतु
जेठ द्विपस तेणु चेट भरिने लाडु खाधा ते पन्था नही तेथी तेने
अशुचिना रोग थये तेना मोभाथी दुर्गन्ध नीकणवा लागी तेथी दुभी थयेल
ते राजकुमारे विचार कर्यो “अशुचि जेवा आ शरीरना सपर्कथी आ मिष्टान्न
रूप मनोहर वस्तु पणु विकृत थई गई छे, ते शरीरने सुभ आपवा भाटे
लोके अनेक प्रकारना पाप करे छे ” आ प्रकारने विचार आपताज तेने
वैराग्य उत्पन्न थये अने ते समाज, शरीर अने भोगोथी विरक्त थईगये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थो देवीदृष्टान्तः—

पुष्पवती नाम काचित्स्त्री प्रव्रज्या परिपाल्य देवलोकं देवीत्वेन समुत्पन्ना । सा स्वपूर्वभगपुत्रपुत्रयोरनुचितमम्यन्धमालोमय चिन्तयति—इमां परस्पर निपयमूर्च्छितौ जातौ । अनयोरवश्यं दुर्गतिर्भविष्यति । तस्मादनयोः सन्मार्गं स्थापनं मम कर्तव्यमस्ति । इति मनसि निधाय सा देवी तयोः प्रथमदिने रजन्या स्वप्ने नरकनिगोद दुःख प्रदर्शनं कारितवती । ततस्तयोश्चिन्ता समुत्पन्ना नरकलोकदुःखेभ्यः कथं मुक्तां भविष्यात् इति । द्वितीये दिने तयोः स्वप्ने देवलोकमुत्तमं प्रदर्शितम् ।

चौथा देवी दृष्टान्त—पुष्पवती नाम की एक स्त्री थी, उसने ससार, शरीर एवं भोगों से विरक्त होकर भागवती दीक्षा धारण करली। जब आयु के अंत में वह मरी तो देवलोक में वह देवी की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहां उसने अवधिज्ञान से अपने पुत्र और पुत्री को अनुचित सवध जानकर विचार किया—देवो—ये दोनों कितने विषय सेवन की मूर्च्छा से मूर्च्छित हो रहे हैं जो यह भी नहीं समझ रहे हैं कि हम दोनों कौन हैं? और क्या कर रहे हैं? इन लोगों की अवश्य खोटी गति होगी। इसलिये इस अवस्था में इन दोनों को समझाना मेरा कर्तव्य है, ताकि ये सन्मार्ग में लग जावे। इस प्रकार विचार कर उसने उन दोनों के लिये स्वप्न में प्रथम रात्रि में नरक और निगोद के दुःखों का प्रदर्शन कराया। इन दुःखों को देखकर उन दोनों के चित्त में बड़ी भारी चिन्ता हुई। उन्होंने विचार किया—हम इन दुःखों से कैसे मुक्त हो सकेगे। दूसरे दिन उस देव ने स्वप्न में उन दोनों को स्वर्गलोक के सुखों का प्रदर्शन कराया। इन सुखों को देखकर वे मुग्ध हो गये, और धर्माचार्य

चौथा देवी दृष्टान्त—पुष्पवती नाम की एक स्त्री थी, उसने ससार, शरीर एवं भोगों से विरक्त होकर भागवती दीक्षा ली थी। वहां उसने अवधिज्ञान की चिन्ता की। अपने पुत्र और पुत्री को अनुचित सवध जानकर विचार किया—“आ दोनों विषय सेवन की मूर्च्छा में मूर्च्छित हो रहे हैं जो यह भी नहीं समझ रहे हैं कि हम दोनों कौन हैं? और क्या कर रहे हैं? इन लोगों की अवश्य खोटी गति होगी। इसलिये इस अवस्था में इन दोनों को समझाना मेरा कर्तव्य है, ताकि ये सन्मार्ग में लग जावे। इस प्रकार विचार कर उसने उन दोनों के लिये स्वप्न में प्रथम रात्रि में नरक और निगोद के दुःखों का प्रदर्शन कराया। इन दुःखों को देखकर उन दोनों के चित्त में बड़ी भारी चिन्ता हुई। उन्होंने विचार किया—हम इन दुःखों से कैसे मुक्त हो सकेगे। दूसरे दिन उस देव ने स्वप्न में उन दोनों को स्वर्गलोक के सुखों का प्रदर्शन कराया। इन सुखों को देखकर वे मुग्ध हो गये, और धर्माचार्य

तदनन्तरमाचार्यस्य पार्श्वे समागत्य तौ पृष्टवन्तौ-भगवन् ! येनोपायेन जीवस्य नरकगतिर्न भवेत्, देवगतिप्राप्तिश्च भवेत्, तमुपाय समादिशन्तु भवन्तः । आचार्यः स्वर्गप्राप्तिमार्गं प्रदर्शयन् धर्मोपदेशं कृतवान् । देव्याः पूर्वभवीयः पुत्रः पुत्री च तस्याचार्यस्य समीपे दीक्षां गृहीत्वा सकलदुःखात्यन्तविमोक्षरूपं मोक्षं प्राप्तवन्तौ ॥ इति देव्याः पारिणामिको बुद्धिः ॥ इति चतुर्थो देवीदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम उदितोदयदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

पुरिमताले नगरे उदितोदयनामको नृप आसीत् । तस्य भार्या च विशिष्ट-रूपवती श्रीकान्तानाम्नी । श्रीकान्तानिमित्तं वाराणसीनिवासिना कर्मरुचिनाम्ना राज्ञा सर्वत्रलेन समागत्य पुरिमतालनगरं वेष्टितम् । उदितोदयश्चिन्तयति-निष्कारणं

के पास पहुँचकर उन्होंने पूछा-भगवन् ! आप ऐसा उपाय बतलाईये कि जिससे जीव को नरकगति की प्राप्ति न होवे, और स्वर्गीय सुखों का लाभ होवे । आचार्य ने उनकी इस प्रकार जिज्ञासा जानकर स्वर्ग की प्राप्ति का मार्ग बतलाते हुए उन्हें धर्म का उपदेश दिया । अन्त में उन दोनों ने विषयादिक से विरक्त होकर उन्हीं आचार्य के पास जिन दीक्षा धारण कर सकल दुःखों से सर्वथा रहित ऐसे मोक्ष को प्राप्त किया ॥४॥

पाचवा उदितोदय दृष्टान्त-पुरिमताल नाम के नगर मे उदितोदय नामका एक राजा रहता था । उस की रानी का नाम श्रीकान्ता था । यह विशिष्ट रूपवती थी । इस के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर वाराणसी नगर के रहनेवाले कर्मरुचि नाम के राजा ने सैन्य को लेकर पुरिमताल नगर को चारों ओर से घेर लिया । नगर को घिरा देखकर उदितोदय ने

धर्मोपाय की प्राप्ति के लिये उनसे पूछा, "भगवन् ! आप ऐसे उपाय बतलाईये कि जिससे जीव को नरक गति प्राप्त न होवे, और स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति होवे" आचार्य ने उनकी इस प्रकार जिज्ञासा जानकर स्वर्ग की प्राप्ति का मार्ग बतलाते हुए उन्हें धर्म का उपदेश दिया । अन्त में उन दोनों ने विषयादिक से विरक्त होकर उन्हीं आचार्य की प्राप्ति के लिये उनसे पूछा, "भगवन् ! आप ऐसे उपाय बतलाईये कि जिससे जीव को नरक गति प्राप्त न होवे, और स्वर्गीय सुखों का लाभ होवे" आचार्य ने उनकी इस प्रकार जिज्ञासा जानकर स्वर्ग की प्राप्ति का मार्ग बतलाते हुए उन्हें धर्म का उपदेश दिया । अन्त में उन दोनों ने विषयादिक से विरक्त होकर उन्हीं आचार्य के पास जिन दीक्षा धारण कर सकल दुःखों से सर्वथा रहित ऐसे मोक्ष को प्राप्त किया ॥४॥

पाचवा उदितोदय दृष्टान्त-पुरिमताल नामका नगर मे उदितोदय नामका राजा रहता था । उस की रानी का नाम श्रीकान्ता था । यह विशिष्ट रूपवती थी । इस के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर वाराणसी नगर के रहनेवाले कर्मरुचि नाम के राजा ने सैन्य को लेकर पुरिमताल नगर को चारों ओर से घेर लिया । नगर को घिरा देखकर उदितोदय ने

प्रभूतजनानां परिक्षयोभमिष्यतीति । एष विचिन्त्य म उपवास कृत्वा तपोबलेन
वैश्रवणदेव मावाहयति । स देवो कर्मरुचिं नीत्वा धाराणस्यामेव स्थापितवान् ।
इत्येवमुदितोदयनृपः स्वात्मानमजाजनचरसितवान् । इति राक्षसपारिणामिकीमुद्दिः ॥

इति पञ्चम उदितोदयदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

भगवतो महावीरस्वामिनः समवसरणे कश्चित् साधुश्चित्तचाञ्चल्यवशात् साधु-
त्रतं परिहातुमिच्छति स्म । तदा प्रभुवन्दनार्थं राजकुमारो नन्दिपेणः स्वान्तःपुरेण
सह समागतः । तस्यान्तःपुररूपलावण्येनाप्सरोत्पन्द जयति, तथापि प्रमोरुप-
देशेन नन्दिपेणो विरक्तो भूत्वा सर्वमन्तःपुरपरित्यजति । इदं दृष्ट्वा स साधुरपि

विचार किया एक जीव की रक्षा के निमित्त व्यर्थ ही सग्राम में अनेक
जीवों का वध करना उचित नहीं । ऐसा विचार कर वह उपवास धारण
कर बैठ गया । इस के तपोबल के प्रभाव से वैश्रवण नाम के देव ने
आकर उस कर्मरुचि राजा को वहा से उठाकर उसी के नगर में रख दिया ।
इस तरह उदितोदय ने अपनी और अपने प्रजाजनों की रक्षा की ॥ ५ ॥

उहा साधु नन्दिपेण का दृष्टान्त—किसी साधु ने महावीर स्वामी के
समवसरण में चित्त की चंचलता के वश होकर मुनित्रत छोड़ने का विचार
किया । इतने में वहा प्रभु की वदना करने के लिये नदिपेण नाम का
एक राजकुमार आपहुँचा । उस के साथ उस का अन्तःपुर था । अन्तःपुर
का रूप लावण्य इतना अधिक था कि उसके सामने अप्सराओ का
समुदाय भी न कुछ था । नदिपेण प्रभु का उपदेश सुनकर उसी समय
उस साधु के देखते २ अन्तःपुर का परित्याग कर विरक्त हो गया । साधु

अनेक लोवानी हत्या करवी ते योअ्य नथी अयेवा विचार करीने ते उपवास करीने
येसी गये तेना तपोअणने प्रभावे वैश्रवणु नामना देवे आवाने ते कर्मइच्छि
राजने त्याथी उपाडीने तेना नगरमा भूकी हीधो आ रीते उदितोदये पोटानी
तथा पोटानी प्रबन्नी रक्षा करी ॥ ५ ॥

छट्टु साधु नन्दिपेणु दृष्टान्त—कोई साधुने महावीर स्वामीना समवसर-
णमा चित्तनी चंचलताने कारणे मुनित्रत छोडवाने विचार कथी अयेवामा त्या
प्रभुने वदणु करवा माटे नदिपेणु नामने अेक राजकुमार आवी पडोअये तेनी
साथे तेनु अन्त पुर हुतु अन्त पुरनु इय लावण्य अेटलु अधु हुतु ते तेमनी
आगण अभसराओने समूहु पणु कोर विसातमा न हुते । नदिपेणु प्रभुने
उपदेश सालणीने अेण समये ते साधुनी नजर समक्ष अन्त

सम्यक् सयमाराधनतत्परो जातः ॥ इति साधोः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ इति षष्ठः
साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमो धनदत्तदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

चम्पानगर्या धनदत्तो नाम श्रेष्ठी निवसति । तस्य पुण्यप्रभावेण विपुल धन
विपुलः परिवारो विपुला ऋद्धिरासीत् । स च विपुलसत्कारसम्मानसपन्नः सर्वसुख
समन्वितः समृद्धिसमृद्धः केनाऽप्यपरिभूतश्चाभूत् । एकस्मिन् दिने तस्य श्रेष्ठिनः
सुपात्रदानकरुणादानाभयदानादिविषये बुद्धिविपर्यासः सजातः । ततः स चिन्तयति-
कथमद्य मम बुद्धिविपर्यासः संजात इति । तत स्तेन शुभकर्मोदयवशात् तत्क्षणमेव

ने जब यह देखा तो अपने विचार की निन्दा की और उसी समय
समल कर अपने त्रुतों की रक्षा की ॥ ६ ॥

सातवा धनदत्त का दृष्टान्त-चपानगरी में धनदत्त नाम का एक
सेठ रहता था । उस के यहा पुण्योदय से विपुल धन, विपुल परिवार
और विपुल ऋद्धि थी । लोग उसका सब से अधिक आदर सत्कार एव
सन्मान किया करते थे । सासारिक किसी भी सुख की उसके यहा कमी
नही थी । तिरस्कार कैसा होता है यह वह स्वप्न में भी नहीं जानता
था । एक दिन की बात है कि इस सेठ के सुपात्रदान, करुणादान, तथा
अभयदान आदि के विषय में बुद्धि की विपर्यासता हो गई । इस विप-
र्यासता के आने का कारण क्या है इस बात का जब उसने ज्ञानदृष्टि से
विचार किया तो शुभ कर्मोंके उदय से उसके अन्तःकरण में ससार की
असारताका भान होने लगा, उसने 'शुभस्य शीघ्रम्' की उक्तिको चारिनार्थ

करीने विरक्त थर्ध गये साधुये न्यारे ते ज्येष्ठु त्यारे तेने पोताना विचार भाटे
पस्तावे थये अने तेज समथथी सावधानीपूर्वक ते पोताना त्तोतु रक्षणु
करवा लाग्ये ॥ ६ ॥

मातसु धनदत्तु दृष्टान्त-यथा नगरीमा धनदत्त नामना अेक शेठ रहेता
हुता तेमने त्या पुन्योदयने कारणु विपुल धन, विपुल परिवार अने विपुल
ऋद्धि हुती देखे सौथी वधारे तेमने आदर सत्कार करता हुता केध पणु
प्रकारना सासारिक सुधनी तेमने त्या उणुप न हुती तिरस्कार अेटले शु अे
तो तेमणु स्वप्नमा पणु अनुलणु न हुतु अेक दिवस जेवु जणु के सुपात्र
दान, करुणादान, अलयदान आदिना विषयमा ते शेठनी बुद्धिना अश्रद्धा थर्ध
गर्ध आ अश्रद्धा आववानु शु कारणु छे तेने न्यारे तेमणु ज्ञानदृष्टिथी विचार कथे
त्यारे शुभ कर्मना उदयथा तेमना अत करणुमा ससारनी असारतानु लान थवा

प्रभूतजनानां परिश्रयोभविष्यतीति । एष विचिन्त्य स उपवास कृत्वा तपोबलेन
वैश्रवणदेव मायाह्वयति । स देवो कर्मरुचिं नीत्वा धाराणस्यामेव म्यापितवान् ।
इत्येषमुदितोदयनृप स्वात्मान प्रजाजन च रक्षितवान् । इति राज्ञ पारिणामिकीशुद्धिः ॥

इति पञ्चम उदितोदयदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

भगवतो महावीरस्वामिनः समरमरणे कथित् साधुश्चित्तचाञ्चल्यवशात् साधु-
त्रत परिहातुमिच्छति स्म । तदा प्रभुवन्दनार्थं राजकुमारेण नन्दिपेण स्वान्तपुरेण
सह समागतः । तस्यान्तःपुर रूपलावण्येनाप्सरोत्तन्द जयति, तथापि प्रमोरुप-
देशेन नन्दिपेणो विरक्तो भूत्वा सर्वमन्तःपुर परित्यजति । इदं दृष्ट्वा स साधुरपि

विचार किया एक जीव की रक्षा के निमित्त व्यर्थ ही सग्राम में अनेक
जीवों का वध करना उचित नहीं । ऐसा विचार कर वह उपवास धारण
कर बैठ गया । इस के तपोबल के प्रभाव से वैश्रवण नाम के देव ने
आकर उस कर्मरुचि राजा को वहा से उठाकर उन्ही के नगर में रखदिया ।
इस तरह उदितोदय ने अपनी और अपने प्रजाजनों की रक्षा की ॥ ५ ॥

छठा साधु नन्दिपेण का दृष्टान्त—किसी साधु ने महावीर स्वामी के
समवसरण में चित्त की चञ्चलता के वश होकर मुनित्रत छोडने का विचार
किया । इतने में वहा प्रभु की वदना करने के लिये नदिपेण नाम का
एक राजकुमार आपहुँचा । उस के साथ उस का अन्तःपुर था । अन्तःपुर
का रूप लावण्य इतना अधिक था कि उसके सामने अप्सराओं का
समुदाय भी न कुछ था । नदिपेण प्रभु का उपदेश सुनकर उसी समय
उस साधु के देखते २ अन्तःपुर का परित्याग कर विरक्त हो गया । साधु

अनेक लुवोनी हत्या करवी ते योग्य नथी अयेवा विचार करीने ते उपवास करीने
असी गये। तेना तपोबलने प्रभावे वैश्रवणु नामना हेवे आवीने ते कर्मरुचि
राजने त्वाथी उपाडीने तेना नगरमा भूकी हीधो आ रीते उदितोदये चोतानी
तथा चोतानी प्रलनी रक्षा करी ॥ ५ ॥

छठ्ठ साधु नन्दिपेणुत दृष्टान्त—कोई साधुअये महावीर स्वामीना समवसर-
णमा चित्तनी चञ्चलताने कारेणु मुनित्रत छोडवाने विचार करी अयेवा त्वा
प्रभुने वदणु करवा भाटे नदिपेणु नामने अेक राजकुमार आवी पडोअये। तेनी
साथे तेनु अन्त पुर हंतु अन्त पुरनु रूप लावण्य अेटलु अधु हंतु के तेमनी
आगण अप्सराअेनो समूह पणु कोई विसातमा न हंतो। नदिपेणु प्रभुने
उपदेश सालणीने अेणु समथे ते साधुनी नगर समक्ष अन्त परने परित्याग

सम्यक् समयमाराधनतत्परो जातः ॥ इति साधोः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ इति षष्ठः
साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमो धनदत्तदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

चम्पानगर्या धनदत्तो नाम श्रेष्ठी निवसति । तस्य पुण्यप्रभावेण विपुल धन
विपुलः परिवारो विपुला ऋद्धिरासीत् । स च विपुलसत्कारसम्मानसपन्नः सर्वसुख
समन्वितः समृद्धिसमृद्धः केनाऽप्यपरिभूतश्चाभूत् । एकस्मिन् दिने तस्य श्रेष्ठिनः
सुपात्रदानकरुणादानाभयदानादिविषये बुद्धिविपर्यासः सजातः । ततः स चिन्तयति-
कथमद्य मम बुद्धिविपर्यासः संजात इति । तत स्तेन शुभकर्मोदयवशात् तत्क्षणमेव

ने जब यह देखा तो अपने विचार की निन्दा की और उसी समय
समल कर अपने प्रती की रक्षा की ॥ ६ ॥

सातवा धनदत्त का दृष्टान्त-चम्पानगरी में धनदत्त नाम का एक
सेठ रहता था । उसके यहां पुण्योदय से विपुल धन, विपुल परिवार
और विपुल ऋद्धि थी । लोग उसका सब से अधिक आदर सत्कार एवं
सन्मान किया करते थे । सासारिक किसी भी सुख की उसके यहां कमी
नहीं थी । तिरस्कार कैसा होता है वह वह स्वप्न में भी नहीं जानता
था । एक दिन की बात है कि इस सेठ के सुपात्रदान, करुणादान, तथा
अभयदान आदि के विषय में बुद्धि की विपर्यासता हो गई । इस विप-
र्यासता के आने का कारण क्या है इस बात का जब उसने ज्ञानदृष्टि से
विचार किया तो शुभ कर्मोंके उदय से उसके अन्तःकरण में सासारिकी
असारताका भान होने लगा, उसने 'शुभस्य शीघ्रम्' की उक्तिको चारिन्तार्थ

करीने विरक्त थई गये । साधुये न्यारे ते जेथु त्यारे तेने पोताना विचार माटे
पस्तावे थये । अने तेज् समयथी सावधानीपूर्वक ते पोताना प्रत्तोतु रक्षथु
करवा लाग्ये ॥ ६ ॥

मातसु धनदत्तसु दृष्टान्त-यथा नगरीमा धनदत्तनामना अेक शेठ रहेता
हता तेमने त्या पुन्योदयने कारणे विपुल धन, विपुल परिवार अने विपुल
ऋद्धि हुती । लोकौ सौथी वधारे तेमने आदर सत्कार करता हुता । कोथ पथु
प्रकारना सासारिक सुधनी तेमने त्या उषुप न हुती तिरस्कार अेटली शु अे
तो तेमणे स्वप्नमा पथु अनुभव्यु न हुतु अेक दिवस अेवु भन्यु के सुपात्र
दान, करुणादान, अलभदान आदिना विषयमा ते शेठनी बुद्धिना अश्रद्धा थई
गई आ अश्रद्धा आववानु शु कारथु छे तेने न्यारे तेमणे ज्ञानदृष्टिथी विचार कथे
त्यारे शुभ कर्मना उदयथा तेमना अत करथुमा सासारनी असारतानु भान थवा

प्रभूतजनानां परिक्षयोभविष्यतीति । एष विचिन्त्य स उपवास कृत्वा तपोबलेन
वैश्रवणदेव माताह्वयति । स देवो कर्मरुचिं नीत्वा गाराणस्यामेव म्यापितवान् ।
इत्येवमुदितोदयनृप स्यात्मान प्रजाजन च रक्षितवान् । इति रात्र पारिणामिकीबुद्धिः ॥

इति पञ्चम उदितोदयदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

भगवतो महावीरस्वामिनः समयमरणे कथित् साधुश्रितचाञ्चल्यवशात् साधु-
त्रतं परिहातुमिच्छति स्म । तदा प्रभुमन्दनाथं राजकुमारो नन्दिपेणः स्वान्तःपुरेण
सह समागतः । तस्यान्तःपुर रूपलावण्येनाप्सरोदृन्द जयति, तथापि प्रभोरुप-
देशेन नन्दिपेणो विरक्तो भूत्वा सर्वमन्तःपुर परित्यजति । इदं दृष्ट्वा स साधुरपि

विचार किया एक जीव की रक्षा के निमित्त व्यर्थ ही सग्रास में अनेक
जीवों का वध करना उचित नहीं । ऐसा विचार कर वह उपवास धारण
कर बैठ गया । इस के तपोबल के प्रभाव से वैश्रवण नाम के देव ने
आकर उस कर्मरुचि राजा को वहा से उठाकर उसी के नगर में रख दिया ।
इस तरह उदितोदय ने अपनी और अपने प्रजाजनों की रक्षा की ॥ ५ ॥

छठा साधु नन्दिपेण का दृष्टान्त—किसी साधु ने महावीर स्वामी के
समवसरण में चित्त की चञ्चलता के वश होकर मुनित्रत छोड़ने का विचार
किया । इतने में वहा प्रभु की वदना करने के लिये नदिपेण नाम का
एक राजकुमार आपहुँचा । उस के साथ उस का अन्तःपुर था । अन्तःपुर
का रूप लावण्य इतना अधिक था कि उसके सामने अप्सराओं का
समुदाय भी न कुछ था । नदिपेण प्रभु का उपदेश सुनकर उसी समय
उस साधु के देखते २ अन्तःपुर का परित्याग कर विरक्त हो गया । साधु

अनेक लुपेानी हत्या करवी ते योग्य नथी जेवो विचार करीने ते उपवास करीने
जेसी गथे तेना तपोबलने प्रभावे वैश्रवणु नामना देवे आवीने ते कर्मरुचि
राजने त्याथी उपाडीने तेना नगरभा भूकी हीधो आ रीते उदितोदये पोतानी
तथा पोतानी प्रजनी रक्षी करी ॥ ५ ॥

छठुं साधु नन्दिपेणु दृष्टान्त—कोई साधुने महावीर स्वामीना समवसर-
णुभा चित्तनी चञ्चलताने कारणे मुनित्रत छोडवाने विचार करी जेवामा त्या
प्रभुने वदणु करवा माटे नदिपेणु नामने अक राजकुमार आवी पडोवथे तेनी
साथे तेनु अन्त पुर हतु अन्त पुरनु इप लावण्य अटलु भुनु हतु तेमनी
आगण अप्सराओने समूह पणु कोई विसातभा न हते । नदिपेणु प्रभुने
उपदेश सावणीने जेणु समये ते साधुनी नगर समक्ष न अन्त पुरने परित्याग

सम्यक् सयमाराधनतत्परो जातः ॥ इति साधोः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ इति षष्ठः
साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमो धनदत्तदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

चम्पानगर्या धनदत्तो नाम श्रेष्ठी निवसति । तस्य पुण्यप्रभावेण विपुल धन
विपुलः परिवारो विपुला ऋद्धिरासीत् । स च विपुलसत्कारसम्मानसपन्नः सर्वसुख
समन्वितः समृद्धिसमृद्धः केनाऽप्यपरिभूतश्चाभूत् । एकस्मिन् दिने तस्य श्रेष्ठिनः
सुपात्रदानकरुणादानाभयदानादिविषये बुद्धिविपर्यासः सजातः । ततः स चिन्तयति-
कथमद्य मम बुद्धिविपर्यासः संजात इति । तत स्तेन शुभकर्मोदयवशात् तत्क्षणमेव

ने जब यह देखा तो अपने विचार की निन्दा की और उसी समय
समल कर अपने प्रती की रक्षा की ॥ ६ ॥

सातवा धनदत्त का दृष्टान्त-चम्पानगरी में धनदत्त नाम का एक
सेठ रहता था । उसके यहा पुण्योदय से विपुल धन, विपुल परिवार
और विपुल ऋद्धि थी । लोग उसका सब से अधिक आदर सत्कार एव
सन्मान किया करते थे । सासारिक किसी भी सुख की उसके यहा कमी
नही थी । तिरस्कार कैसा होता है यह वह स्वप्न में भी नहीं जानता
था । एक दिन की बात है कि इस सेठ के सुपात्रदान, करुणादान, तथा
अभयदान आदि के विषय में बुद्धि की विपर्यासता हो गई । इस विप-
र्यासता के आने का कारण क्या है इस बात का जब उसने ज्ञानदृष्टि से
विचार किया तो शुभ कर्मोके उदय से उसके अन्तःकरण में सासार की
असारताका भान होने लगा, उसने 'शुभस्य शीघ्रम्' की उक्तिको चारिन्तार्थ

करीने विरक्त थई गये । साधुये न्यारे ते ज्ये तु त्यारे तेने पोताना विचार माटे
पस्तावे थये अने तेज समथथी सावधानीपूर्वक ते पोताना प्रत्तोतु रक्षयु
करवा लाग्ये ॥ ६ ॥

सातवु धनदत्तु दृष्टान्त-यथा नगरीमा धनदत्त नामना एक शेठ रहेता
हता तेमने त्या पुन्योदयने कारणे विपुल धन, विपुल परिवार अने विपुल
ऋद्धि हती बोको सौथी वधारे तेमने आदर सत्कार करता हता कोध पणु
प्रकारना सासारिक सुपनी तेमने त्या उल्लुप न हती तिरस्कार अटवी शु अ
तो तेमणु स्वप्नमा पणु अनुभव्यु न हतु एक दिवस अंतु भन्यु के सुपात्र
दान, करुणादान, अलभदान आदिना विषयमा ते शेठनी बुद्धिना अश्रद्धा थई
गई आ अश्रद्धा आववानु शु कारणु छे तेने न्यारे तेमणु ज्ञानदृष्टिथी विचार कर्यो
त्यारे शुभ कर्मना उदयथा तेमना अत करणुमा सासारनी असारतानु भान थवा

प्रभूतजनानां परिधयोभविष्यतीति । एष विचिन्त्य स उपवास कृत्वा तपोबलेन
वैश्रवणदेव माताह्वयति । स देवो कर्मरुचिं नीत्वा धाराणस्यामेव स्थापितवान् ।
इत्येवमुदितोदयनृप स्यात्मानप्रजाजनचरक्षितवान् । इति रात्र पारिणामिकीबुद्धिः ॥

इति पञ्चम उदितोदयदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

भगवतो महावीरस्वामिनः समयसरणे कथित् साधुश्चित्तचाञ्चल्यवशात् साधु-
त्रत परिहातुमिच्छति स्म । तदा प्रभुवन्दनार्थं राजकुमारो नन्दिपेणः स्वान्तःपुरेण
सह समागतः । तस्यान्तःपुर रूपलावण्येनाप्सरोमृन्द जयति, तथापि प्रभोरुप-
देशेन नन्दिपेणो विरक्तो भूत्वा सर्वमन्तःपुर परित्यजति । इदं दृष्ट्वा स साधुरपि

विचार किया एक जीव की रक्षा के निमित्त व्यर्थ ही सग्राम में अनेक
जीवों का वध करना उचित नहीं । ऐसा विचार कर वह उपवास धारण
कर बैठ गया । इस के तपोबल के प्रभाव से वैश्रवण नाम के देव ने
आकर उस कर्मरुचि राजा को वहा से उठाकर उम्मी के नगर में रखदिया ।
इस तरह उदितोदय ने अपनी और अपने प्रजाजनों की रक्षा की ॥ ५ ॥

उद्धा साधु नन्दिपेण का दृष्टान्त—किसी साधु ने महावीर स्वामी के
समवसरण में चित्त की चचलता के वश होकर मुनित्रत छोड़ने का विचार
किया । इतने में वहा प्रभु की वदना करने के लिये नदिपेण नाम का
एक राजकुमार आपहुँचा । उस के साथ उस का अन्तःपुर था । अन्तःपुर
का रूप लावण्य इतना अधिक था कि उसके सामने अप्सराओं का
समुदाय भी न कुछ था । नदिपेण प्रभु का उपदेश सुनकर उसी समय
उस साधु के देखते २ अन्तःपुर का परित्याग कर विरक्त हो गया । साधु

अनेक लोभोनी हत्या करवी ते योग्य नहीं ऐवो विचार करीने ते उपवास करीने
ऐसी गयो तेना तपोभजने प्रलावे वैश्रवण नामना देवे आवीने ते कर्मरुचि
राजने त्यागी उपाडीने तेना नगरमा भूकी हीधो आ रीते उदितोदये चोतानी
तथा चोतानी प्रजानी रक्षा करी ॥ ५ ॥

उद्ध साधु नन्दिपेणुत दृष्टान्त—कोई साधुने महावीर स्वामीना समवसर-
णमा चित्तनी चचलताने कारणे मुनित्रत छोड़वाने विचार कयो ऐवामा त्या
प्रभुने वदण करवा भाटे नदिपेणु नामने एक राजकुमार आवी पडोव्ये तेनी
साथे तेनु अन्त पुर हुतु अन्त पुरतु ३५ लावण्य ऐतलु भु हुतु तेमनी
आजण अप्सराओने समूह पणु कोर्ष विसातमा न हुते नदिपेणु प्रभुने
उपदेश सालणीने ऐणु समये ते साधुनी नजर समक्षेण अन्त पुरने परित्याग

सम्यक् सयमाराधनतत्परो जातः ॥ इति साधोः पारिणामिकी बुद्धिः ॥ इति पष्ठः
साधुनन्दिपेणदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमो धनदत्तदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

चम्पानगर्या नदत्तो नाम श्रेष्ठी निवसति । तस्य पुण्यप्रभावेण विपुल धन
विपुलः परिवारो विपुला ऋद्धिरासीत् । स च विपुलसत्कारसम्मानसपन्नः सर्वसुख
समन्वितः समृद्धिसमृद्धः केनाऽप्यपरिभूतश्चाभूत् । एकस्मिन् दिने तस्य श्रेष्ठिनः
सुपात्रदानकरुणादानाभयदानादिविषये बुद्धिविपर्यासः सजातः । ततः स चिन्तयति-
कथमद्य मम बुद्धिविपर्यासः सजात इति । तत स्तेन शुभकर्मोदयवशात् तत्क्षणमेव

ने जब यह देखा तो अपने विचार की निन्दा की और उसी समय
समल कर अपने त्रुटों की रक्षा की ॥ ६ ॥

सातवा धनदत्त का दृष्टान्त-चम्पानगरी में धनदत्त नाम का एक
सेठ रहता था । उस के यहां पुण्योदय से विपुल धन, विपुल परिवार
और विपुल ऋद्धि थी । लोग उसका सब से अधिक आदर सत्कार एवं
सन्मान किया करते थे । सासारिक किसी भी सुख की उसके यहां कमी
नहीं थी । तिरस्कार कैसा होता है यह वह स्वप्न में भी नहीं जानता
था । एक दिन की बात है कि इस सेठ के सुपात्रदान, करुणादान, तथा
अभयदान आदि के विषय में बुद्धि की विपर्यासता हो गई । इस विप-
र्यासता के आने का कारण क्या है इस बात का जब उसने ज्ञानदृष्टि से
विचार किया तो शुभ कर्मोंके उदय से उसके अन्तःकरण में ससार की
असारताका भान होने लगा, उसने 'शुभस्य शीघ्रम्' की उक्तिको चारिनार्थ

करीने विरक्त थर्छ गथे साधुअे न्यारे ते जेथु त्यारे तेने पोताना विचार भाटे
पस्तावे थये अने तेज समथी सावधानीपूर्वक ते पोताना प्रतोतु रक्षथु
करवा लाग्ये ॥ ६ ॥

सातवु धनदत्तु दृष्टान्त-यथा नगरीमा धनदत्त नामना अेक शेठ रहेता
हुता तेमने त्या पुन्योदयने कारणे विपुल धन, विपुल परिवार अने विपुल
ऋद्धि हुती लोकै सौथी वधारे तेमने आदर सत्कार करता हुता कोछ पथु
प्रकारना सासारिक सुखनी तेमने त्या उषुप न हुती तिरस्कार अेटथे शु अे
तो तेमणे स्वप्नमा पथु अनुभवु न हुतु अेक दिवस अेतुं पन्थु के सुपात्र
दान, करुणादान, अलयदान आदिना विषयमा ते शेठनी बुद्धिना अश्रद्धा थर्छ
गर्छ आ अश्रद्धा आववातु शु कारण छे तेना न्यारे तेमणे ज्ञानदृष्टिथी विचार कथे
त्यारे शुभ कर्मना उदयथा तेमना अत करणुमा ससारनी असारतानु भान थवा

दिनेऽल्पाहारमानीय गुरवे प्रदर्शितवान् । गुण्णा दृष्ट्वा तत्यात्रे भृशकृतम् । ततोऽप्यी
 स्वात्मनिन्दां वक्तुं प्रवृत्तः—‘धिगस्तु मा यत् सांख्यगिष्यपराराधनेऽप्यसमर्थोऽस्मी’-ति ।
 एवमात्मानं निन्दयन् शुभेन परिणामेन, प्रशस्ता यममायेन तदावरणीयाना कर्मणां
 क्षयेण केवलज्ञान प्राप्तवान् । इय तस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥ इति दशमः अक्षर-
 दृष्टान्त ॥ १० ॥

अथैकादशोऽमात्यपुत्रदृष्टान्तः ॥ ११ ॥

दीर्घपृष्ठराजा वरधनुर्नामकममात्यपुत्र ब्रह्मदत्तविषयेऽनेक प्रश्नान् पृच्छति स्म ।
 तेषामुत्तरं वरधनुस्तथा दत्तवान् येन दीर्घपृष्ठवृषो न जानाति—‘अयं मम प्रतिबुद्ध-
 वर्ती’-ति । तथा—वरधनुर्ब्रह्मदत्तस्यापि रक्षा कृतवान् । इय तस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥
 ॥ इत्येकादशोऽमात्यपुत्रदृष्टान्तः ॥ ११ ॥

था । इसलिये सांख्यमरिक् के दिन में भी इस से आहार का परिस्थान
 करते नहीं बन सका, अतः वह आहार लेने चला गया । आहार में जो
 कुछ यह लाया था वह सब इमने अपने गुरु को बतलाया—तो गुरुदेव ने
 देवकर उस के पात्र में थूक दिया । इस से अपनी बड़ी भारी निंदा की
 और सोचने लगा—देवों में कितने धिक्कार का पात्र हूँ, जो आज सांख्य
 त्सरीकपर्व की आराधना करने में भी असमर्थ हो रहा हूँ । इस प्रकार
 आत्मनिंदा करते हुए उस को शुभाध्यवसाय के प्रभाव से तदावरणीय
 कर्मों का क्षय हो जाने के कारण केवलज्ञान प्राप्त हो गया । यह उस की
 पारिणामिकी बुद्धि का फल है ॥ १० ॥

ग्यारहवा अमात्यपुत्र का दृष्टान्त—दीर्घपृष्ठ राजा ने वरधनु नामक
 अमात्यपुत्र से ब्रह्मदत्त के विषय में अनेक प्रश्नों को पूछा था । उन का
 उत्तर उस वरधनु ने इस प्रकार से दिया कि जिस से दीर्घपृष्ठ यह नहीं

तेथी स वत्सरीने द्विवसे पषु ते आहारने त्याग करी शक्यो नही तेथी
 गोचरीमा ने कथं भयु ते भधु तेणे पोताना गुरुने भताब्धु त्यागे गुरुदेव
 ते नेधने तेना पात्रमा थूक्या तेथी तेने पोतानी जतने धषी निदी अने
 विचार कर्यो, “हुं डेटवो भयो धिक्कारने पात्र छु डे नेथी आणे स वत्सरी
 पर्वनी आराधना करवाने पषु असमर्थ निवड्यो छु ” आ प्रभाणे आत्म
 निंदा करता, तेने शुभाध्यवसायने प्रभावे तेनु आवरणु करता कर्मेनि क्षय
 थवाथी केवलज्ञान प्राप्त थयु आ तेनी पारिणामिकी बुद्धिनु कण्डतु ॥ १० ॥

अगीथारमु अमात्यपुत्रनु दृष्टात—दीर्घपृष्ठ राजने वरधनु नामना अमा
 त्यपुत्रने, ब्रह्मदत्तना विषयमा अनेक प्रश्नो पूछ्या डता ते प्रश्नोना जवाप ते
 वरधनुने अरीते आप्यो डे नेथी दीर्घपृष्ठ ते वात समलु शक्यो नही डे

॥ अथ द्वादशथाणक्यदृष्टान्तः ॥

चाणक्येनोद्धोषणा कारिता-‘यद् दिवसैकमात्रजातानामश्वाना महिषाणां वृषभाणां कुक्कुराणां च प्रत्येक सपादपञ्चगतक्रमेण पूर्वाह्न एव समानयन्तु, नो चेत् प्रतिगृहेण मुद्रायत दण्डो देयः’ इति । एव भाण्डागार पूर्ण कृतवान् । इय चाणक्यस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥

॥ इति द्वादशथाणक्यदृष्टान्तः ॥ १२ ॥

॥ अथ त्रयोदशः स्थूलभद्रदृष्टान्तः ॥

स्थूलभद्रस्य पितरि हते सति नन्दो मन्त्रिपदपरिपालनार्थं स्थूलभद्रं प्रार्थयति स्म । किं तु स्थूलभद्रः सत्सार सम्पन्ध दुःखकर विज्ञाय प्रत्रय्या गृहीतवान् । इय तस्य पारिणामिकी बुद्धिः ॥

॥ इति त्रयोदशः स्थूलभद्रदृष्टान्तः ॥ १३ ॥

जान सका कि अमात्य पुत्र मेरे प्रतिकूल है । इस तरह चरघनुने अपनी पारिणामिकी बुद्धि के प्रभाव से ब्रह्मदत्त की रक्षा की ॥ ११ ॥

चारहवा चाणक्य दृष्टान्त-चाणक्य ने इस प्रकार की घोषणा की कि हर एक प्रजाजन एक ही दिन में उत्पन्न हुए पांच सौ पचीस ५२५ घोड़ों को पाचसौ पचीस ५२५, भैसों को पाचसौ पचीस ५२५ बैलों को और पाचसौ पचीस ५२५ कुत्तों को आजपूर्वाह्न में लाकर उपस्थित करे नहीं तो प्रत्येक घर को सौ सौ मुहरों का जुर्माना देना पड़ेगा । इस तरह की आज्ञा से उसने अपने भाण्डार को द्रव्य से खूब भर दिया । यह उस की पारिणामिकी बुद्धि का प्रभाव है ॥ १२ ॥

तेरहवा स्थूलभद्र दृष्टान्त-स्थूलभद्र का पिता जब मार दिया गया तो नन्द ने स्थूलभद्र से अपने पिता के स्थान को ग्रहण करने की प्रार्थना की

अमात्यपुत्र भारी विरुद्ध छे आ शीते वरधनुञ्जे पोतानी पारिष्ठाभिडी युद्धिथी प्रहृष्टतनु रक्षषु ऽयुं ॥ ११ ॥

भारतु थाषुञ्चयदृष्टात-थाषुक्ये आ प्रकाग्नी घोषषु ऽरावी डे हरेठ प्रण ञन ओक ञ द्विसे ञन्मेल पायसे पथीश (परप) घोडा, पायसे पथीश (परप) ले सेा, पायसे पथीश (परप) अणहो अने पायसे पथीश (परप) कृतशओ आणे मध्नाह पडेला लावीने डावर करे, नडी तो हरेकने सेा सेा सेानामडोशेने ढड भरवेा पडशे आ प्रठारनी आजाथी तेष्णे पोताना भाडागारने द्रव्यथी लरी दीषा आ तेनी पारिष्ठाभिडी युद्धिनेा प्रभाव छे ॥ १२ ॥

तेरतु स्थूलभद्र दृष्टात-न्यारे स्थूलभद्रना पितानी इत्या ऽरवाभा आवा त्यारे नन्दे स्थूलभद्रने तेना पितातु स्थान अडषु ऽरवा विनति करी, पषु स्थू

अथ नासिक्यसुन्दरीनन्ददृष्टान्तः—

नासिक्यपुरे नन्दनामको भूपतिरामीव । तस्य महिषी सुन्दरी नाम्नी । भूपते-
भ्राता धर्मप्रियनामकः । स सीमन्ताचार्यसमीपे देशनां श्रुत्या प्रव्रजितः । विविध
कठिनतपश्चरणेन विविधलब्धिमपन्नो जातः । स चैन्द्रा राजान राज्ञीं च लब्धि
प्रभावेण देवदेवीदर्शनं कारितवान् । तदनु तावुमौ प्रव्रजितौ । साधोरिय पारिणा
मिकी बुद्धिः ॥

इति चतुर्दशो नासिक्यसुन्दरीनन्ददृष्टान्तः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशो वज्रदृष्टान्तः ॥

आसीदवन्तीदेशे उज्जयिनीनगर्यां कश्चिदिन्ध्रपुत्रो धनगिरिनामकः । तस्य माता
पितरौ धनपालपुत्र्या सुनन्दा नाम्ना सह तस्य पाणिग्रहणं कारितवन्तौ । धनगिरिश्च

परन्तु स्थूलभद्र ने ससार के सायध को दुःखकर जानकर जो दीक्षा धारण
कर ली यह उनकी पारिणामिकीबुद्धि का प्रभाव था ॥ १३ ॥

चौदहवा नासिक्य सुन्दरीनन्द दृष्टान्त-नासिक्यपुर में एक नन्द
नाम का राजा था । उस की स्त्री का नाम सुन्दरी था । राजा का जो भाई
था उसका नाम धर्मप्रिय था । धर्मप्रिय ने सीमन्ताचार्य के पास धर्मदे-
शना सुनकर भागवती दीक्षा धारण करली । अनेक प्रकार के तपश्चरणों
के प्रभाव से उसको उसके अनेक प्रकार की लब्धिया सिद्ध हो गई । उसने
राजा और रानी को लब्धि के प्रभाव से देव और देवी के दर्शन करवाये ।
दर्शन कर वे दोनों दीक्षित हो गये । साधु की यह पारिणामिकी बुद्धि
का प्रभाव है ॥ १४ ॥

पन्द्रहवा वज्र दृष्टान्त-अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी में कोई
एक धनगिरि नामका धनिक पुत्र रहता था । उस के माता पिता ने

भद्रे ससारना सभ घोने दु भकर भानीने हीक्षा अजीकार करी आ तेनी
पारिष्ठाभिकीबुद्धिने प्रभाव डतो ॥ १३ ॥

चौदसु नासिक्यसुन्दरीनन्ददृष्टान्त-नासिक्यपुरमा नन्द नामने अक
राज डतो तेनी स्त्रीनु नाम सुदरी डतु राजना भाईतु नाम धर्म प्रिय डतु
धर्मप्रिये सीमन्ताचार्य पासे धर्मदेशना सावणीने लगवती हीक्षा अजीकार करी
अनेक प्रकारनी तपस्थाने प्रभावे तेने अनेक प्रकारनी लब्धिये प्राप्त थथ तेले लब्धिना
प्रभावे राज अने राष्ठीने देव अने देवीना दर्शन कराव्या दर्शन करीने ते अन्नेअ
हीक्षा लई लीधी आ साधुनी पारिष्ठाभिकी बुद्धिने प्रभाव थथे ॥ १४ ॥

पंद्रसु वज्रदृष्टान्त-अवन्ती देशनी उज्जयिनी नगरीमा धनगिरि नामने
कैथ अक धनिक पुत्र रहेतो डतो तेना माता पिताअे तेना विवाड धनपालनी

ससारासारता बुद्ध्या गर्भवत्या सुनन्दाभार्याया प्रतिबद्धोऽपि सिंहगिरिसमीपे प्रव्र-
जित । तदनु प्रसूतिसमये सा नन्दा पुत्र जनितवती । तस्य वज्रवदेह दृष्ट्वा-‘वज्र’
इति नाम कृतम् । एकदा स्त्रीभिः परस्परमुक्तम्-अयं धनगिरेः पुत्रः पुण्यशाली
वर्त्तते । यद्यस्य पिता दीक्षा नाग्रहीष्यत् तदाऽस्यापूर्वो महोत्सवोऽभिमण्यत् । तासा
मेतद्वचन श्रुत्वा स बालः पालनस्थ एव जातिस्मृतिं प्राप्तवान् । तेन स्वपूर्वभव प्रव्र-
जित पितर च ज्ञात्वा तथा रोदितुमारंभे यथा माता तं प्रति निर्वेद प्राप्नुयात् ।

उसका विवाह धनपाल की पुत्री सुनदा के साथ कर दिया । धनगिरि ने
धीरे २ गृहस्थ जीवन बीताते हुए अपना समय शांति के साथ व्यतीत
किया । काल लब्धि के प्रभाव से धनगिरि को ससार की असारता का
उद्यो ही भान हुआ तो उसने अपनी गर्भवती सुनदा भार्या द्वारा सम-
झाये जाने पर भी सिंहगिरि के समीप जाकर जिनदीक्षा धारण करली ।
सुनदा का जब प्रसूति का समय आया तो उसके एक पुत्र हुआ जिस का
नाम वज्र था । इसकी देह वज्र जैसी थी । एक समय की बात है कि
कुछ स्त्रियों ने मिलकर परस्पर ऐसी बातचीत की कि-यह धनगिरि का
पुत्र वज्र बड़ा भाग्यशाली है । यदि इसके पिता जिन दीक्षा धारण न
करते तो वे इस के जन्म के समय का उत्सव बड़े ठाटबाट से मनाते ।
जिस समय यह बातचीत उन स्त्रियों में चल रही थी-उस समय वह
बालक पालने में सोया हुआ था । उन की इस बात को सुनते ही उस
बालक को अपने पूर्वभव की याद आगई । जब उसने अपने पूर्वभव एवं
दीक्षित हुए पिता को जाना तो ऐसा रोना प्रारंभ किया कि जिस से

पुत्री सुनदा साथे उद्यो धनगिरिसे गृहस्थ जीवन व्यतीत करता करता
पोताने समय शान्तिथी पमार उद्यो काललब्धिना प्रभावधी धनगिरिने जेवु
मसारनी असारतानु भान थयु के तस्त न पोतानी गर्भवती पत्नी सुनदासे
समभव्या छता पण सिंहगिरि समक्ष न्छने जिनदीक्षा ग्रहण करी सुनदाने
प्रसूतिने समय आवता अेक पुत्र न्छये जेवु नाम वज्र राभ्यु तेवु शरीर
वज्र जेवु हुतु अेठ दिवस अेवु न्छयु के केटलीठ आओलेगी थछने आपस
आपसमा वातचीत करवा लागी के आ धनगिरिने पुत्र वज्र धरुो न भाग्यशाली
छे, जे तेना पिताने जिन दीक्षा अगीठार न करी छेत तो तेओ तेना जेमेत्सव
भारे ठाठभाठथो उजवत न्यारे ते ओओ वच्चे आ प्रभाओ वातचीत आलती
हुती, त्यारे ते भाणक पारणुमा सूतो हुते तेमनी आ वात सालणता न तेने
पोताने पूर्व लव याद आओये न्यारे तेओ पोताने पूर्वलव तथा दीक्षित
थयेव पितानी आ वात लखी त्यारे तेओ अेवु रडवा माड्यु के जेथी तेनी भाताने

एव पणमासाः व्यतीताः । एषदा तत्र सिंहगिरिाचार्यः धनगिर्यादिशिष्यपरि
 वारेण सह समागतः । धनगिरिणा भिक्षापर्यायं गन्तु पृष्ट आचार्यः प्राह-हे
 धनगिरे ! अद्य तत्र पात्रे यद्विकृष्टितसचित्तमचित्त या पतेत् तद्ब्राम्हमेवेति । ततो
 धनगिरिररुस्मात् सुनन्दाग्रहे भिक्षार्थं प्रारिणत् । सा च स्वपतिमुनिं विज्ञोक्योक्त
 वती-इयन्ति दिनानि तत्रार्भको मया ययाकथञ्चित् पात्रिनः, संपति गृह्णात नित्य
 रुदन्त नालम् । अहमस्मिन् नालके निःस्पृहाऽस्मीति कृत्वा सा त मुनिपात्रे ससा
 क्षिक न्यस्तवती । धनगिरिमुनिश्च तमानीय गुरोग्रे म्यापितवान् । गुरणा स

उस की माता को उमकी तरफ से चिरक्ति हो गई । इस तरह उह मास
 व्यतीत हो चुके । एक समय की घान है कि यहा सिंहगिरि आचार्य
 अपने धनगिरि आदि शिष्य परिवारों के साथ विहार करते हुए आये ।
 धनगिरि ने आचार्य महाराज से गोचरी जाने के लिये आज्ञा मागी तो
 आचार्य महाराजने कहा-आज तुम्हारे पात्र में जो भी वस्तु आज्ञावे
 चाहे वह सचित्त हो या अचित्त, सभी ले आना । आचार्य महाराज की
 इस प्रकार आज्ञा पाते ही धनगिरि यहाँ से गोचरी के लिये निकले ।
 अकस्मात् सब से पहिले वे सुनदा के घर पहुँचे, सुनदाने जब यह देखा
 कि ये हमारे पति हैं तो उसने उनसे कहा-मैंने इतने दिनों तक जैसे
 भी बना वैसे आप के बालक का पालन पोषण किया है अब आप इसको
 ले जाइये, यह रात दिन रोता रहता है । मैं तो इस के इस रोने से बहुत
 अधिक परेशान रहती हू, इसीलिये अब इस बालक के प्रति मेरी कोई
 ममता नहीं रही है । ऐसा कह कर उसने उस बालक को मुनि के पात्र
 में लोगो को साक्षि बना कर डाल दिया । धनगिरि मुनि ने उस को

तेना तरङ्ग विरङ्कित थछ गछ आ रीते छ भास व्यतीत थछ गया अेक समय
 अेषु अन्यु के सिंहगिरि आचार्य पोताना धनगिरि आदि शिष्य परिवार
 सहित विहार करता करता त्या आब्या धनगिरिअे आचार्य महाराज पासे
 गोचरी भाटे ज्वानी आशा भागी त्यारे आचार्य महाराज्ने कछु-आजे तभारा
 पात्रमा जे केछि वस्तु अवे ते लक्षे सचित्त होय के अचित्त होय पणु ते अधी
 लेता आवजे " आचार्य महाराजनी आ प्रकारनी आशा भणता ज धनगिरि
 त्याथी गोचरी भाटे उपड्या अकस्मात् तेअे सौथी पलेला सुनदाने घेर पछेअ्या
 सुनदाअे जेअु के आ मारा पति छे त्यारे तेजे तेभने कछु, माराथी अनी
 शक्यु ते रीते आटला द्विवसी सुधी आपना आलकतु पालन पोषणु कथुं, उवे
 आप तेने लछ जवे ते तो रातदिवस उड्या ज करे छे तेना इहनथी हु तो
 गजे आवी गछ छु ते धारणे आ आण्ड प्रत्ये भने केछि भमता नथी " आभ
 कहीने तेजे ते आण्डने मुनिना पात्रमा लोकेने साक्षि अनावीने भूझीथी धनगिरि

सघाय समर्पितः । संघेन स पालितोऽष्टवर्षीयो जातः । तदनु तन्माता स्वपुत्र
ग्रहीतु सघस्य समीपे समागता । संघेन एकतो विविधालकार वैभवादिका अनेके
पदार्थाः स्थापिताः, एकतश्च सदोरकमुखवस्त्रिका-रजोहरणपात्रादीन्युपकरणानि
स्थापितानि । कथित च-यदस्मै बालकाय रोचते तदय गृह्णातु, अयमेवात्र न्यायः ।
एतन्निगम्य स बालकः शीघ्रमुत्थाय सदोरका मुखवस्त्रिका मुखे बद्ध्वा रजोहरण-
पात्राणि गृहीतवान् । इय वज्रस्वामिनः पारिणामिकी बुद्धिः ॥

॥ इति पञ्चदशो वज्रदृष्टान्तः ॥ १५ ॥

अथ चरणाहतदृष्टान्तः—

वसन्तपुरे रिपुमर्दनो नाम नृपतिरासीत् । एकदा तरुणाः सेवका राजानमद्युग्-

लाकर आचार्य महाराज के समक्ष रख दिया । गुरुमहाराज ने वह बालक
श्रीसंघ को सौंप दिया । सघ ने उसका लालन पालन बड़े प्रेमके
साथ किया । जब वह बालक आठ वर्षका हो गया तो माता सुनदा
बालक वज्र को वापिस लेने के लिये श्रीसंघ के पास आई । संघ ने उस
समय एक तरफ विविध अलंकार तथा वैभव का पुज एकत्रित कर रख
दिया और दूसरी तरफ सदोरकमुखवस्त्रिका, रजोहरण, तथा पात्र
आदि उपकरण रख दिये, और ऐसा कहा-जो इन में से इस बालकको
रुचे वही यह ले लेंगे, हमे इसमें कोई विवाद नहीं है । इस प्रकार का
न्याय सुनकर उस बालक ने शीघ्र ही उठकर सदोरकमुखवस्त्रिका को
अपनी मुख पर बाध लिया और रजो हरण तथा पात्रों को अपने हाथ ले
लिया । इस तरह यह वज्रस्वामी की पारिणामिकीबुद्धि का दृष्टान्त है ॥१५॥

सौलहवा चरणाहत दृष्टान्त—वसन्तपुरमे रिपुमर्दन नामका राजा

मुनिअे तेने लावीने आचार्य महाराज समक्ष भूकी दीधे । गुरुमहाराजे ते
बालक श्री मघने सौपी दीधे । सघे घणु । प्रेमपूर्वक तेनु लालनपालन कथुं
न्याये ते बालक आठ वर्षने थये । त्यारे तेनी माता सुनदा बालक वज्रने
पाछे लेवा भाटे श्री सघनी पासे आवी । सघे ते समये अेठ तरङ्ग विविध
अलंकार तथा वैभवने पुज अेकत्र करीने भूकथे । अने भीलु तरङ्ग दोरा सायेनी
मुडपत्ती, रजोहरण, तथा पात्र आदि उपकरण भूकथे । अने अेवु उल्लु के आभाथी
आ बालकने जे अमे ते ते लई ले, तेमां अमने डोळ वावे नथी । आ प्रका
रने न्याय साक्षाता ज ते बालक नरत ज उठीने दोरा सखितनी मुडपत्तीने
घोताना मुथ पर भाधी लीधी, तथा रजोहरण अने पात्राने घोताना । हाथमा
लई लीधा आ रीतनु आ वज्र स्वामीनी पारिणामिकी बुद्धितु दृष्टातु ठे ॥ ५ ॥
सौलहवा अरणाहतदृष्टात-वसन्तपुरमा रिपुमर्दन नामने राजा राज्य करतो

सघाय समर्पितः । संघेन स पालितोऽष्टवर्षीयो जातः । तदनु तन्माता स्वपुत्र
ग्रहीतु सघस्य समीपे समागता । संघेन एकतो विविधालकार वैभवाटिका अनेके
पदार्थाः स्थापिताः, एकतश्च सदोरकमुखवस्त्रिका-रजोहरणपात्रादीन्युपकरणानि
स्थापितानि । कथित च-यदस्मै बालकाय रोचते तदय गृह्णातु, अयमेवात्र न्यायः ।
एतन्निश्चय्य स बालकः शीघ्रमुत्थाय सदोरका मुखवस्त्रिका मुखे वद्ध्वा रजोहरण-
पात्राणि गृहीतवान् । इय वज्रस्वामिनः पारिणामिकी बुद्धिः ॥

॥ इति पञ्चदशो वज्रदृष्टान्तः ॥ १५ ॥

अथ चरणाहतदृष्टान्तः—

वसन्तपुरे रिपुमर्दनो नाम नृपतिरासीत् । एकदा तरुणाः सेवका राजानमद्युम्-

लारु आचार्य महाराज के समक्ष रख दिया । गुरुमहाराज ने वह बालक
श्रीसंघ को मौप दिया । सघ ने उसका लालन पालन बड़े प्रेमके
साथ किया । जब वह बालक आठ वर्षका हो गया तो माता सुनदा
बालक वज्र को वापिस लेने के लिये श्रीसंघ के पास आई । संघ ने उस
समय एक तरफ विविध अलकार तथा वैभव का पुज एकत्रित कर रख
दिया और दूसरी तरफ सदोरकमुखवस्त्रिका, रजोहरण, तथा पात्र
आदि उपकरण रख दिये, और ऐसा कहा-जो इनमें से इस बालक को
रुचे वही यह ले लेवे, हमे इसमें कोई विवाद नहीं है । इस प्रकार का
न्याय सुनकर उस बालक ने शीघ्र ही उठकर सदोरकमुखवस्त्रिका को
अपनी मुख पर धात्र लिया और रजो हरण तथा पात्रों को अपने हाथ ले
लिया । इस तरह यह वज्रस्वामी की पारिणामिकीबुद्धि का दृष्टान्त है ॥१५॥

सोलहवा चरणाहत दृष्टान्त—वसन्तपुरमे रिपुमर्दन नामका राजा

मुनिञ्चे तेने लावाने आचार्य महाराज समक्ष भूकी दीधी गुरुमहाराजे ते
बालक श्री मधने मोपी दीधी मधे धरुा प्रेमपूर्वक तेनु लालनपालन कथुं
न्याये ते बालक आठ वर्षना थये त्याये तेनी माता सुनदा बालक वज्रने
पाछे लेवा भाटे श्री सघनी पास आवी सघे ते मभये ओक तरक्ष विविध
अलकार तथा वैभवने पुज ओकत्र करीने भूथये अने भीलु तरक्ष होरा सायेनी
मुडपत्ती, रजोहरण, तथा पात्र आदि उपकरण भूकथा अने ओवु उल्लु के आभाथी
आ बालकने जे गभे ते ते लई दे, तेभां अभने केई वावो नथी आ प्रका
रने न्याय भागता ज ते भागक नरत ज उडीने होरा सखितनी मुडपत्तीने
पोताना मुभ पर भाधी लीधी, तथा रजोहरण अने पात्राने पोताना हावभा
लई लीधी आ रीतनु आ वज्र स्वामीनी पारिणामिकी बुद्धितु दृष्टात छे ॥ प ॥
भागसु अरुणाहृतदृष्टात-वसन्तपुरमा रिपुमर्दन नामने राजा राभ्य करतो

एव पणमासाः व्यतीताः । एतदा तत्र सिंहगिरिराचार्यः धनगिर्यादिशिष्यपरि
 वारेण सह समागतः । धनगिरिणा भिक्षाचर्यार्थं गन्तुं पृष्ट्वा आचार्यः प्राह—हे
 धनगिरे ! अद्य तत्र पात्रे यदिकृश्रितसचित्तमचित्तं या पतेत् तद्ग्राह्यमेवेति । ततो
 धनगिरिरकस्मात् सुनन्दागृहे भिक्षार्थं प्राप्तिगत् । सा च स्वपतिमुनिं विशेषोक्त
 वतो—इयन्ति दिनानि तमारभको मया ययाकथञ्चित् पात्रितः, सप्रति गृहाणेत नित्य
 रुदन्तं गालम् । अहमस्मिन् गालके निःस्पृहाऽस्मीति क्रुत्या सा तं मुनिपात्रे ससा
 क्षिकं न्यस्तवती । धनगिरिमुनिश्च तमानीय गुरोग्रे म्यापितवान् । गुरुणा स

उस की माता को उमकी तरफ से विरक्ति हो गई। इस तरह छ मास
 व्यतीत हो चुके। एक समय की घात है कि वहा सिंहगिरि आचार्य
 अपने धनगिरि आदि शिष्य परिवारों के साथ विहार करते हुए आये।
 धनगिरि ने आचार्य महाराज से गोचरी जाने के लिये आज्ञा मागी तो
 आचार्य महाराज ने कहा—आज तुम्हारे पात्र में जो भी वस्तु आजावे
 चाहे वह सचित्त हो या अचित्त, सभी ले आना। आचार्य महाराज की
 इस प्रकार आज्ञा पाते ही धनगिरि वहां से गोचरी के लिये निकले।
 अकस्मात् सब से पहिले वे सुनदा के घर पहुँचे, सुनदाने जब यह देखा
 कि ये हमारे पति हैं तो उसने उनसे कहा—मैंने इतने दिनों तक जैसे
 भी बना वैसे आप के बालक का पालन पोषण किया है अब आप इसको
 ले जाइये, यह रात दिन रोता रहता है। मैं तो इस के इस रोने से बहुत
 अधिक परेशान रहती हूँ, इसीलिये अब इस बालक के प्रति मेरी कोई
 ममता नहीं रही है। ऐसा कह कर उसने उस बालक को मुनि के पात्र
 में लोगो को साक्षि बना कर डाल दिया। धनगिरि मुनि ने उस को

तेना तश्च विरक्तिं यथं गच्छंतीति छ मास व्यतीतं यथं गया अथ सभ्य
 एषु अन्यु के सिंहगिरि आचार्यं चोताना धनगिरि आदि शिष्य परिवार
 सहित विहार करता करता त्या आव्या धनगिरिभ्ये आचार्यं महाराज पासे
 गोचरी माटे ज्वानी आज्ञा मागी त्तारे आचार्यं महाराज्जे कछु—आजे तभारा
 पात्रमा जे केछं वस्तु आवे ते लक्षे सचित्त होय के अचित्त होय पणु ते यधी
 होता आवजे “आचार्यं महाराज्जनी आ प्रकारनी आज्ञा भणता ज धनगिरि
 त्थाथी गोचरी माटे उपडया अकरमात् तेज्जे सौथी पडेल्ला सुनदाने घेर पडोअ्या
 सुनदाभ्ये जेथु के आ भारा पति छे त्तारे तेज्जे तेभने कछु, भाराथी जनी
 शक्यु ते रीते आटला द्विसो सुधी आपना जालकतु पालन पोषणु कथुं, डवे
 आप तेने लथं जवो ते तो रातद्विस रडया ज करे छे तेना इहनथी हुं ते
 जजे आवी गछं छु ते कारण्जे आ भाणक अत्ये भने केछं ममता नथी.” अथ
 कहीने तेज्जे ते भाणकने मुनिना पात्रमा लोकेने साक्षि जनावीने भूझीदीधो धनगिरि

राज्ञः शिरसि चरणेन प्रहार कर्तुं शक्नोति ? सा राज्ञी तु विशेषसम्मानयोग्या भवति, इति विचिन्त्य राज्ञ समीपमागत्य वृद्धा ऊचुः—राजन् ! शिरसि चरण-प्रहारकरणे विशिष्टसत्कारः करणीय । वृद्धाना वचः श्रुत्वा तद् बुद्धिं प्रति राजा परितुष्टो जातः । ततश्चासौ वृद्धानेव स्वपार्श्वे स्थापयामास । इयं राज्ञस्तथा वृद्धाना घ पारिणामिकी बुद्धिः ।

॥ इति षोडशचरणाहतदृष्टान्तः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदश आमड-कृत्रिमामलकदृष्टान्तः—

कश्चित् कुम्भकारः कस्मैचित् कृत्रिमामलकं दत्तवान् । वर्णतः स्वरूपतश्चामल-कमादृश्यसद्भावेऽप्यतिकठिनस्पर्शरत्नात्, तदुत्पत्तिकालाभावाच्च नेद वास्तविकमा-मलकं किन्तु कृत्रिममिति तेन ज्ञातम् । तस्यामलकरूपरीक्षणरूपेय पारिणामिकी बुद्धिः ।

॥ इति सप्तदश आमड-कृत्रिमामलकदृष्टान्तः ॥ १७ ॥

प्रहार देने की मामूर्ख्य और किस में हो सकती है । फिर भी वह विशेष सम्मान के ही योग्य मानी जाती है । ऐसा विचार कर चुकने पर वे पीछे राजा के पास आकर कहने लगे—राजन् ! आपके शिर पर चरण प्रहार करने वाला व्यक्ति विशेष सत्कार का पात्र होता है । इस प्रकार उनके वचन सुनकर राजा उनके बुद्धिवैभव पर बड़ा प्रसन्न हुआ, और उन्हें ही उसने अपने पास रखा । इस तरह यह राजा और वृद्धों की पारिणा-मिकी बुद्धि का दृष्टान्त है ॥ १६ ॥

सत्रहवा आमड-कृत्रिमामलक दृष्टान्त—किसी एक कुम्भारने किसी दूसरे व्यक्ति के लिये बनावटी आवला दिया । जो रूप तथा रंग में त्रिलकुल सच्चे आवले के समान था, परन्तु उसने उसे कठिन स्पर्श होनेके कारण तथा वह समय उसकी उत्पत्ति का न होने के कारण यह

भीला केनाभा सलवी शके ? छता यक्ष ते विशेष सम्मानने योग्य मनाय छे आ प्रभाषे विचार करीने तेओ राजा पासे पाछा इथी अने तेमणे राजने कहु, “ महाराज ! आपना शिर पर चरण प्रहार करनार व्यक्ति तो विशेष सत्कारने पात्र होय छे ” आ प्रभाषे तेमना वचन सालणीने राजा तेमने बुद्धिवैभव जेठ ने धखो पुश थयो अने तेमने ज तेणे पोतानी सेवाभा राभी दीधा आ प्रभाषे आ राजा अने वृद्धोनी पारिणामिकी बुद्धिनु दृष्टात छे ॥ १६ ॥

सत्तरवु आमड-कृत्रिमामलक दृष्टात-कोई एक कुम्भारे कोई एक व्यक्तिने माटे बनावटी आवणु दीधु ते रूप अने रंगमा साथ आवणु जेवु ज छतु यक्ष तेणे तेना स्पर्श करता कछु लागवाथी तथा ते तेनी उत्पत्तिने समय न

स्वामिन् ! जीर्णशरीरान् परमकेशान् वृद्धान् सेवमानपनीय भरता तरुणा एव
सेवका नियुज्यन्ताम् । त एव सर्वाणि कार्याणि सम्यक् गाभयिष्यन्ति । एकदा
राजा परीक्षार्थं तान् पृच्छति—यदि कश्चिन्मम शिरसि चरणप्रहार कुर्यात् तर्हि
कीदृशो दण्डो देयः ? तरुणा उत्तुः—महाराज ! स्पष्ट खण्डं कृत्वा स हन्तव्यः ।
राजा पुनरिमं प्रश्नं वृद्धानपि पृच्छन् । वृद्धैरुक्तम्—स्वामिन् ! विचार्य त्रययिष्यामः ।
इत्युपत्वा ते निर्जनस्थानं गताः, तत्र गत्वा ते विचारयन्ति—राज्ञीमन्तरणं कोऽप्यो

राज्यं करता धा । एक समय कुछ तरुण सेवको ने मिल कर राजा से
कहा—महाराज ! जीर्ण शरीर हुए, तथा धवलिन केश हुए, ऐसे वृद्ध
पुरुषों को आप राज्यकार्य से मुक्त कर तरुण सेवको को रखिये, कारण
बुढ़ों से कुछ काम नहीं हो सकता है । तरुण ऐसे होते हैं कि वे समस्त
कार्य अच्छी तरह से करते हैं, और कर सकते हैं । उनकी इस बात को
सुनकर राजा ने एक दिन उन की परीक्षा लेने के अभिप्राय से ऐसा
पूछा—यताओ यदि कोई मेरे मस्तक पर चरण का प्रहार करे तो उसको
क्या दंड देना चाहिये । राजा की इस बात को सुनकर उन तरुणों ने
कहा—महाराज ! इस में पूछने की क्या बात है, यह तो स्पष्ट है कि ऐसे
व्यक्ति को तिल २ बराबर खड २ कर के मार देना चाहिये । उनकी इस
बात को सुनकर राजा ने यही बात वृद्धजनों से पूछी तो उन्होंने कहा—
स्वामिन् ! हम इसका उत्तर विचार कर कहेंगे । ऐसा कहकर वे एक
निर्जन स्थान में जाकर विचार करने लगे, विचार करते २ यह बात
उन की समझ में आई कि रानी के सिवाय राजा के मस्तक पर चरण

होता एक वधत डेटलाक युवान सेवकोअे भणीने राजने उछु, “ महाराज !
लुधुशीर्षु शरीरवाणा तथा धाणा वाणवाणा पुरुषोने आप राजन्या कार्यभाधी
वृटा करीने युवान सेवकोने राजे, कारणु के वृद्धोधी कर्ष काम थर्ष शक्तु नथी
युवानो अेवा डोय छे के ते समस्त कायने सारी रीते करे छे, अने वरी शक
छे तेमनी अे वात सालणीने राजने अेक द्विस तेमनी कसोटी करवा माटे
तेमने अेवु पूछयु के कडो, कौर्ष भाग मस्तक पर लात भारे तो तेने शे
दड आपवेा जेर्ष अे राजनी अे वात सालणीने ते युवानोअे कछु “ महाराज !
तेमा पूछवानी वात न शी छे ? अे तो स्पष्ट छे के अेवी व्यक्तितता तो राध
राध जेवा दुकडा करीने तेने भारी नाभवी जेर्ष अे ” तेमनी आ वात साल
णीने तेमले अेवा वात वृद्धोने पूछी त्यारे तेमले कछु, “ महाराज ! विचार
करीने अेमे तेने नवाण आपशु ” आ प्रमाळे उडीने अेकान्तमा नधने तेअे
विचार करवा लाग्या विचार उरता उरता अे वात तेमना समजवामा आवी
गर्ष के राणीना सिवाय राजना मस्तक पर लात भारवात सामर्थ्य के डिभत

अथैकोनविंशतितमः सर्पदृष्टान्तः—

भगवतो महावीरस्यालौकिकरक्तमास्वाद्य चण्डकौशिकसर्पे ज्ञान प्राप्तवान् ।
इयं तस्य पारिणामिकी बुद्धिः ।

इत्येकोनविंशतितमः सर्पदृष्टान्तः ॥ १९ ॥

अथ विंशतितमः खड्गिदृष्टान्तः—

खड्गी—'गंडा' इति प्रसिद्धोऽरण्यपशुविशेषः । कोऽपि श्रावको यौवनमदेन
व्रतातिचाराणामालोचनामकृत्वा मृतः । ततोऽसौ वने खड्गिपशुभव प्राप्य तस्मिन्
वने आगन्तुकान् मनुष्यान् निहत्य भक्षयति । एकदा तेन मार्गेण गच्छन्तो बद्धा
सदोरकमुखवस्त्रिकाः सायवस्तेन दृष्टाः । स खड्गी पशुस्तान् साधूनाक्रामति, किन्तु

जब उस को मणि का निश्चय हो गया तो उसने वृक्ष पर चढ़ कर उस
मणि को ले लिया । इस प्रकार यह उस की पारिणामिकी बुद्धि का
उदाहरण है ॥ १८ ॥

उन्नीसवां सर्प दृष्टान्त—चण्डकौशिक सर्पने महावीर स्वामी के
अलौकिक रक्त का आस्वादन करने के जो ज्ञान प्राप्त किया वह उसकी
पारिणामिकी बुद्धिका फल है ॥ १९ ॥

वीसवा खड्गि दृष्टान्त—कोई श्रावक यौवन के मद में आ कर
व्रतों में लगे हुए दोषों की आलोचना नहीं कर के मरा तो वह गंडाकी
पर्याय से उत्पन्न हुआ । वह इतना नृशंस था कि वन में जो भी कोई
मनुष्य आता उस को यह मार कर खा जाता । एक समय इसने मार्ग
में जाते हुए मुख पर सदोरकमुखवस्त्रिका बाधे हुए अनेक मुनियों को
देखा । देखते ही यह उन पर आक्रमण करने के लिये झपटा, परन्तु

यहीने ते भङ्गि लथ दीधे आ प्रभाष्टे आ तेनी पारिष्णामिकी बुद्धिनु
उद्गाहरणु थयु ॥ १८ ॥

आगष्ठीसमु सर्प दृष्टान्त—य उकौशिक नामे महावीर स्वामीना अलौकिक
रक्तने आभीने जे ज्ञान प्राप्त कथुं ते तेनी पारिष्णामिकी बुद्धिनु क्षण डंतु ॥१९॥

वीसमु खड्गि दृष्टान्त—कैध अेक श्रावक यौवनना मदमा आवीने व्रतोमा
आवेव होधोनी आलोचना कथ्या विना भरवाथी गे उाश्चे उत्पन्न थये ते अेटवे
अधे निर्दय डंतो के वनमा जे कैध मनुष्य आवतो तेने भारीने पाई जेतो
अेक दिवस तेहे मार्ग परथी जता मुअपर होरी सहितनी मुडपतीवाणा अनेक
मुनियोने जेथा तेमने जेतो ज ते तेमना पर आकभणु करवा माटे कूधो

अथाष्टादशोमणिदृष्टान्तः—

कश्चित् सर्पों वृक्षमारुग पक्षिगारकान् नित्य ग्राहति । एकदा म सर्पों वृक्षाद् विच्युतोऽधः पतितः । तस्य मणिस्तस्य वृक्षस्य यत्रचिन् प्रदेशे स्थित आसीत् । मणिप्रकाशे भ्रमणशीलोऽसौ सर्पस्तत्प्रकाशामावात्तद्वृक्षाग्रस्तग्रन्थितरूपे पतितो मृतः । वृक्षशाखावस्थितमणिकिरणच्छायाया तस्य कूपस्य सकलजल रक्तवर्णं सम दृश्यत । ततः रुधिराङ्गस्तत्र क्रीडन्निद साथर्यमपश्यत् । ततन्तेन बालकेन पितुः समीपे समागत्य तद्वृत्तं निगदितम् । वृद्धस्तत्पिताऽपि तत्रागत्य सम्पक् पश्यति, ततः पश्चादसौ मणिं निश्चित्य वृक्षमारुग त गृहीतवान् । तस्येय पारिणामिकी बुद्धिः।

॥ इत्यष्टादशो मणिदृष्टान्तः ॥ १८ ॥

ममद्वाने में देर नहीं की कि यह वास्तविक नहीं है किन्तु बनावटी ही है । यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि का फल है ॥ १७ ॥

अठारहवा मणि दृष्टान्त—एक सर्प कि जिस की फणा में मणि था । वृक्ष पर चढ़ कर पक्षियों के बच्चों को प्रतिदिन खा जाता था । एक दिन की बात है कि वह सर्प वृक्ष से चूक कर नीचे गिर पड़ा । उसका मणि उस वृक्ष के एक कोने में रखा हुआ था । इस से उस का प्रकाश दूसरी शाखा पर न पड़ने से वह ज्यों ही गिरा तो कुए में जा कर पड़ गया और मर गया । कुए का जल वृक्ष की शाखा पर रखे हुए मणि की किरणों की छाया से रक्तवर्ण का दिखलाई देता था । वहा एक बालक खेल रहा था । उसने ज्यों ही इस द्रव्य को देखा तो उस को बड़ा आश्चर्य हुआ । पिता के पास आ कर उसने यह सब बात उनसे कह दी । वह शीघ्र ही वहा गया और अच्छी तरह देखभाल की ।

छेवाथी तेने सभल ज्वामा वार न लागी के ते सायु आभणु नथी पक्ष बनावटी ठे आ तेनी पारिणामिकी बुद्धिनु क्षण हुतु ॥ १७ ॥

अठारहवा मणि दृष्टान्त—एक सर्प के जेनी श्रेष्ठमा भण्डि हुतो ते दरदो वृक्ष पर यडीने पक्षीजोना भन्थाने आध जतो हुतो अेक दिवस अेलु भन्थु के ते सर्प वृक्ष परथी चूकवाथी नीचे पडी गयो तेना भण्डि ते वृक्षना अेक पूछे भूकेडो हुतो तेथी तेना प्रकाश भीलु डाणी पर न पडवाथी ते जेवो पडयो के नीचे हुवामा जधने पडयो अने मरी गयो हुवानु पाणी वृक्षनी डाणी पर पडेवा ते भण्डिना किरणोनी छायाथी लालरगनु देभातु हुतु त्या अेक आणक रभतो हुतो तेले जेवु ते दृश्य जेथु के तेने लारे आश्चर्य थयु पितानी पाने जधने तेले ते अधी बात तेभने कही ते तस्त ज त्या आव्यो अने अरापर निरीक्षणु कथुं ज्यारे तेने भण्डि विषे भातरी थर्थ गध त्यारे तेले वृक्ष पर

विसम्पन्नः सुसयतनामानगारः समागतः । स्तूपोत्पाटनविषयकं वृत्तं विज्ञाय स्वसमीपे दर्शनार्थमागताय नवनीतभूपाय कथयति-हे राजन् ! अस्योत्पाटने विविधमाणिना संहारः सुरकोपेण देशविप्लव राज्यविप्लवादिर्महाननर्थो भविष्यतीति नोत्पाटनीयोऽयं स्तूपेन्द्रः ।

॥ इत्येकविंशतितमं स्तूपेन्द्रदृष्टान्तः ॥ २१ ॥

॥ इत्यश्रुतनिश्चितमतिज्ञानदृष्टान्तभागः सपूर्णः ॥

को जब कि यह जीर्णशीर्ण हो चुका उखाडने का अपने भृत्यवर्ग को आदेश दे दिया । इसी समय वहाँ विविधलविसंपन्न सुसंयत नामके मुनिराज विहार करते हुए आये । जब उन्हें इस कीर्तिस्तम्भ को उखाड़े जाने का पता पडा तो उन्होंने नवनीत राजा से जो वदना करने के लिये आया हुआ था कहा-राजन् ! इस कीर्तिस्तम्भ को उखाडने से अनेक प्राणियों का सहार, देव प्रकोप से देश में उपद्रव, राज्य में विप्लव आदि अनेक होंगे, इसलिये इस को आप मत उखडवाईये । इस प्रकार यह सुसयत मुनिराज की पारिणामिकी बुद्धि का प्रभव है जो वह विशालकीर्तिस्तम्भ नहीं उखाडा गया ॥ २१ ॥

इस तरह ये सब दृष्टान्त अश्रुत निश्चित मतिज्ञान के हुए ॥

॥ नदीसूत्र का हिन्दी अनुवाद सपूर्ण ॥



थयेल जेधने, तेणे पोताना सेवकेने ते पाडी नाभवानो आदेश आये। जेव
वभते विविध लविसंपन्न सुसयत नामना मुनिराज विहार करता करता त्या
पधार्था न्यारे तेमने आ कीर्तिस्तम्भने पाडी नाभवानो छे जेवी जभर पडी
त्यारे नवनीत राजा के जे त्या तेमने वदना करता आये। हते। तेने कहु,
“ राजन् ! आ कीर्तिस्तम्भने पाडी नाभवानी अनेक प्राणीजोने सहार थये,
देव, देवप्रकोपथी देशमा उपद्रव, राज्यमा विप्लव आदि अनेक मुश्किलीजो आवी
पडथे तो आप तेने पडावथो नही ” आ प्रकारनी सुसयत मुनिनी पारिणा-
मिकीबुद्धिने प्रभावे ते विशाल कीर्तिस्तम्भने पाडवामा आये। नही ॥ २१ ॥

आ रीते आ जधा अश्रुत निश्चित मतिज्ञानना दृष्टाते पूरा थया ॥

॥ नदीसूत्रने शुभशती अनुवाद सपूर्ण ॥

तेषा तपःप्रभावात् तथा कर्तुमसमर्थो जातः । 'कथमयमो जातोऽस्मी'ति पुनः पुनर्विचिन्तनेन तेन पूर्वभयस्मरणात्मकं ज्ञानं प्राप्तम्, तथाऽयन कृत्वा देवलोकं गतः । तस्येय पारिणामिकी बुद्धिः ॥ २० ॥

॥ इति विंगतितमः खड्गिदृष्टान्तः ॥

अथैकविंशतितमः स्तूपेन्द्रदृष्टान्तः—

अजितस्वामिशासने तद्वशे समाराधितदेशः समरनामा भूप आसीत् । स देवसाहाय्येन देशरक्षार्थं राज्यरक्षार्थं कुलधनवैभवादिस्वार्थं च स्तूपेन्द्र विशाल कीर्तिस्तम्भ-समारोपितवान् असीं स्तूपेन्द्रोऽनेकेषां प्राणिनामाश्रयभूतो जातः । तद्वशे चिरेण नीतिरहितो नवनीतनामा भूपो बभूव । स चेकदा जीर्णशीर्णं विविधप्राणिनिवासारूपदं त कीर्तिरत्नभण्डुत्पाटयित्वा भृत्यवर्गमादिष्टवान् । तदा तत्र विविधल-

तपके प्रभाव से यह उन पर आक्रमण नहीं कर सका । मेरा आक्रमण इन पर खाली क्यों गया? इसका धार २ विचार करते हुए उसको जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया इससे वह अनशन कर मरा और देवलोकमें जाकर उत्पन्न हुआ । इस प्रकार यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि का दृष्टान्त है ॥ २० ॥

इकीसवा स्तूपेन्द्र दृष्टान्त-अजितनाथ स्वामी का जब शासन चल रहा था उस समय उन के वश में समर नामका एक राजा हुआ । यह दोनों की विशेषरूप से आराधना किया करता था । इसने देवकी सहायता से देश की रक्षा, राज्य की रक्षा, तथा कुल वैभव आदि की रक्षा के लिये एक विशालकीर्तिस्तम्भ बनवाया । इसमें अनेक प्राणियों को निवास करने रूप आश्रय मिलता था । समर के वशमें एक नवनीत नाम का राजा हुआ जो न्यायनीति से रहित था । इसने इस विशाल कीर्तिस्तम्भ

पथु तेभना तपना प्रभावे ते तेभना पर आकंभणु करी शक्यो नडी आ लोके परतु भाइ आकंभणु शा कारणे निष्कृण गयु तेनो वारवार विचार करता तेने अतिस्मरणु ज्ञान उत्पन्न थयु तेथी ते अनशन करीने भयीं अने देवलोकमा उत्पन्न थयो आ प्रभाणे आ तेनी पारिणामिकीबुद्धितु दृष्टात थयु ॥ २० ॥

अेकवीसमु स्तूपेन्द्र दृष्टात-न्याये अजितनाथ स्वामीनु शासन आलतु हुतु त्यारे तेभना वशमा समर नामे अेक राज् थयो ते विशेषरूपे देवोनी आराधना करतो हुतो तेणे देवनी सहायताथी देश, राज्य तथा कुणवैभव आदिनी रक्षा भाटे अेक विशाल कीर्तिस्थल अनावराव्यो तेमा अनेक प्राणी अेने रहेवा भाटे आश्रय भणतो हुतो समरना वशमा अेक नवनीत नामने राज् थयो अे न्यायनीतिथी रहित हुतो ते विशालकीर्तिस्तम्भने अुर्धुशीर्षु

वधिसम्पन्नः सुसयतनामानगारः समागतः । स्तूपोत्पाटनविषयक वृत्तं विज्ञाय स्वसमीपे दर्शनार्थमागताय नवनीतभूषाय कथयति-हे राजन् ! अस्योत्पाटने विविधप्राणिना संहारः सुरकोपेण देशविप्लव राज्यविप्लवादिर्महाननर्थो भविष्यतीति नोत्पाटनीयोऽयं स्तूपेन्द्रः ।

॥ इत्येकप्रशतितम स्तूपेन्द्रदृष्टान्तः ॥ २१ ॥

॥ इत्यश्रुतनिश्चितमतिज्ञानदृष्टान्तभागः सपूर्णः ॥

को जब कि यह जीर्णशीर्ण होचुका उखाडने का अपने भृत्यवर्ग को आदेश दे दिया। इसी समय वहा विविधलवधिसपन्न सुसयत नामके मुनिराज विहार करते हुए आये। जब उन्हें इस कीर्तिस्तम्भ को उखाडे जाने का पता पडा तो उन्होंने ने नवनीत राजा से जो वदना करने के लिये आया हुआ था कहा-राजन् ! इस कीर्तिस्तम्भ को उखाडने से अनेक प्राणियों का सहार, देव प्रकोप से देश मे उपद्रव, राज्य मे विप्लव आदि अनेक होंगे, इसलिये इस को आप मत उखडवाईये। इस प्रकार यह सुसंयत मुनिराज की पारिणामिकी बुद्धि का प्रभव है जो वह विशालकीर्तिस्तम्भ नहीं उखाड़ा गया ॥ २१ ॥

इस तरह ये सब दृष्टान्त अश्रुत निश्चित मतिज्ञान के हुए ॥

॥ नदीसूत्र का हिन्दी अनुवाद सपूर्ण ॥



थयेव लोभने, तेष्ते पोताना सेवकेने ते पाडी नाभवानो आदेश आभ्ये। ज्येव वभते विविध लवधिसपन्न सुसयत नामना मुनिराज विहार करता करता त्या पधार्था न्यारे तेभने आ कीर्तिस्तम्भने पाडी नाभवानो छे ज्येवी भभर पडी त्यारे नवनीत राज के जे त्या तेभने वदछा करता आभ्ये। उते तेने कछु, “ राजन् ! आ कीर्तिस्तम्भने पाडी नाभवार्थी अनेक प्राणीज्योने। सहार थये, देव, देवप्रकोपथी देशमा उपद्रव, राज्यमा विप्लव आदि अनेक मुश्किलीज्यो आवी पडथे तो आप तेने पडावथे नही ” आ प्रकारनी सुसयत मुनिनी पारिष्ठा-मित्रीभुद्धिने प्रभावे ते विशाल कीर्तिस्तम्भने पाडवामा आभ्ये नही ॥ २१ ॥

आ रीते आ पधा अश्रुत निश्चित मतिज्ञानना दृष्टातो पूरा थया ॥

॥ नदीसूत्रने शुभराती अनुवाद सपूर्ण ॥

अथ शास्त्रप्रशस्तिः ।

सम्यक्त्वधारी जनतोपकारी,
निचारकारी जिनधर्मचारी ।
कन्धारगोत्रः खलु “वल्लभो”ऽभूत्,
श्रेष्ठी समापन्नविपन्निहन्ता ॥ १ ॥

(२)

तस्यात्मजन्मा क्षपिताऽघर्मा,
संप्राप्तधर्माऽवितधर्ममर्मा ।
“श्रीनेमिचन्द्रो” गुरुभक्त्यतन्द्रो,
जिनेन्द्रधर्मे परमानुरक्तः ॥ २ ॥

(३)

पत्नी “समर्था” पतिसेवनार्था,
जिनोक्तधर्माचरणे समर्था ।
तस्यातिशुद्धा सुकृतप्रजुद्धा,
चेतोऽनुकूला सदया सुशीला ॥ ३ ॥

(४)

तस्या शुभस्वप्नवशेन जातः,
“श्रीचाडिलाल”-स्तनयोऽस्ति धीमान् ।
श्रीसङ्हराज्यादिषु मुख्य एष,
सर्वोपकारी किल प्राड्विवाकः (वकील) ॥ ४ ॥

(५)

शीलं दधाना महिलाप्रधाना,
“रम्भा”ऽभिधाना सरलस्वभावा ।
स्वाम्येकभक्ता सुकृताऽनुरक्ता,
छायेव तस्याऽनुचरा प्रियाऽस्ति ॥ ५ ॥

(६)

पुत्री शुशीला शुभनाललीला,

“ श्रीसुन्दरी ” नाम विराजतेऽस्य ।

स्मेरानना पङ्कजिनीव कल्पे,

तथे-“ न्दुमत्य ”-न्यमनोहराऽऽख्या ॥ ६ ॥

(७)

श्री वाडिलालस्य कनिष्ठवन्धु,-

“ मर्नोहरो ” नाम मनोहराङ्गः ।

तस्याऽस्ति भार्या क्लि “ मञ्जुला ”-ख्या,

धर्मानुरक्ता सरलस्वभावा ॥ ७ ॥

योग-शीताशु-शून्या-क्षि,-(२०१३) मिते वैक्रमनत्सरे ।

वैशाखस्य सिधे पक्षे, तृतीयाया गुरोर्दिने ॥ ८ ॥

पुरे “ वीरमगामे ”ऽस्मिन्, “ गुर्जरा ”-न्तर्गते गतः ।

“ नन्दीसूत्रस्य ” सम्पूर्णां, टीका तत्प्रार्थितो व्यधाम् ॥ ९ ॥

॥ इति शास्त्रप्रशस्तिः सम्पूर्णा ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-

पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-प्रवि-

शुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-

श्रीशाहूऽत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-

‘ जैनशास्त्राचार्य ’-पदभूषित-कोल्हापुर-

राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-

जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-

व्रातविरचिता नन्दीसूत्रस्य-

ज्ञानचन्द्रिका टीका सम्पूर्णा ।

॥ शुभ भूयात् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥



દાતાઓની નામાવલી

આદ્યસુરબ્ધીશ્રી, સુરબ્ધીશ્રી, સહાયક મેમ્બરો
તથા મેમ્બરોની યાદી

*

ગામવાર કુક્કાવારી લીબ્

*

તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા. ૨૦-૫-૫૮ સુધીમાં
દાખલ થએલ મેમ્બરો,

*

(રૂા ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમા સામેલ કરી નથી)

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવારોડ - ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ

આદ્યમુખ્યશ્રીઓ-૪

(ઓછામા ઓછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મગજદારભાઈ જ્ઞાણીતા મીલમાલીક અમદાવાદ		૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા શેઠ લાલચંદભાઈ જેચંદભાઈ, નગીનભાઈ, ધૃવલાલભાઈ તથા વજ્રલાલભાઈ	ભાણુવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરામજ હા હરગોવિંદભાઈ જેચંદભાઈ રાજકોટ		૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	મોલાપુર	૫૦૦૧

મુરખ્યશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામા ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હ કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ	૩૨૮૬૧૧૧૧
૪	સ્વ પિતાશ્રી જીગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર લોગીલાલ જીગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ દહેરચંદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચંદ દહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ જીગનલાલ હેમચંદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	સુબઈ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દલપતરામભાઈ	જામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૫	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	જામનગર	૧૦૦૨
૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણુજીભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચાદ્રસિંહજી મહેતા (રેલવે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧

૧૯	મહેતા સોમચંદ નેણુસીભાઈ (કરાચીવાલા)	મોરખી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખલાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રગીલદાસ હરખચંદભાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૪૧

(ઓછામાં ઓછી રૂ ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ જી જાભાઈ વેલસીભાઈ વઠવાણ શહેર		૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	બાટવીયા ગીરધર પ્રમાણુદ હા અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીયા	૫૨૭
૭	મોરખીવાળા અઘવી દેવચંદ નેણુશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ મણીબાઈ તરફથી હ મુળચંદ દેવચંદ (કરાચીવાલા) મલાડ		૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ સૌ ચ પાબેન ગોસલીયા અમદાવાદ		૫૦૨
૧૦	પ્રેમચંદ માલોકચંદ તથા અ સૌ સમરતબેન(રાજસીતાપુર)અમદાવાદ		૫૦૨
૧૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માલોકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીમડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૧
૧૬	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ પિતાશ્રી નદાજીના સ્મરણાર્થે હા વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જામજોધવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	ઔરગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ શેઠ અનરાજજી લાલચંદજી		

૧૨૫ ધુકઠચંદલ રૂપચંદલ

૧૦૦ હગડુંમલલ આઠમલલ

૫૦૦

૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાધવલ હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભલભાઈ ધ્રાક્ષ	૭૫૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોત્તમ હા ઈન્દુકુમાર	ચોરવાડ ૫૦૦
૨૫	શેઠ કેસરીમલલ વસંતીમલલ ગુગલીયા	રાણાવાસ ૫૦૧
૨૬	સ્થા જૈનસઘ હા બાટવીઆ અમીચંદ ગીરધરભાઈ ખાખીબળીઆ	૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમલભાઈ બાવાભાઈ હા કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	સુભઈ ૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ઠગલી હા મુળલભાઈ મણીલાલ	સુભઈ ૫૦૧
૨૯	સ્વ કાલીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા શેઠ બાલચંદ માકરચંદ	સુભઈ ૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભલ (જેતપુરવાળા)	સુભઈ ૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ ૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ ૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાખચંદ ભુદરભાઈ	ખારશેઠ ૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુવર ચુનીલાલ મહેતા	ભાણુવડ ૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ	ધ્રાક્ષ ૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ ૫૦૧
૩૭	શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી તથા અ સૌ નદકુવરબેન તરફથી જામનગર	૫૦૩
૩૮	શેઠ દેવચંદ અમરશી (બેન ધીરજકુવરની દિક્ષા પ્રસંગે લેટ)	ભાણુવડ ૫૦૧
૩૯	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ (બેન ધીરજકુવરની દિક્ષા પ્રસંગે લેટ)	ભાણુવડ ૫૦૧
૪૦	વકીલ વાડીલાલ નેમચંદ શાહ	વીરમગામ ૫૦૧
૪૧	મહેતા શાંતિલાલ મણીલાલ હા કમળાબેન મહેતા	અમદાવાદ ૫૫૬

૩૩૫ મેરખરોતુ ગામવાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરચો

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હા ફકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

૬	શ્રેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ વાહીલાલ	૨૫૧
૮	શ્રેઠ લાલભાઈ મ ગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ અમૃતલાલ દેશાઈ	
	હા કાનજીભાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈન ઉપાશ્રય	
	હા વહીવટ કર્તા શ્રેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી ધીપાપોળદરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈન સઘ હા ચંદુલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ ખાલાભાઈ C/o શાહ ખાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ ભાઈલાલ ઉજ્જમશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી સુખલાલ ડી શેઠ હા ડો કુ સરસ્વતીબહેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી મૌરાખૂ સ્થા જૈન સઘ હા શાહ કાન્તીલાલ જીવણલાલ	૨૫૧
૧૯	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી છકોટી સ્થા જૈન સઘ હા પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	શ્રેઠ પોપટલાલ હ સરાજના સ્મરણાર્થે હા શેઠ ખાબુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન ખાપોદરાવાળા	
	હા ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	સઘવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા જૈન)	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધ્રાગધ્રાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ સૌ જૈન રતનભાઈ નાદેચા હા શાહ ધુલાજી ચ પાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈન ઉપાશ્રય	
	હા ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	૨૫૧

૩૪	શેઠ પુખરાજી સમતીરામજી ગાદડીવાળા	૨૫૧
૩૫	શેઠ લાલચંદ મીશ્રીલાલ	૨૫૧
૩૬	સ્વ. પિતાશ્રી જ્વાહીરલાલજી તથા પૂત્ર્ય ચાચાજી હનગીમવજી ખારડીયાના સ્મરણાર્થે હા મૃગચંદ જ્વાહરલાલ	૨૫૧
૩૭	સ્વ ભાવસાર ગળાભાઈ (મગળદાસ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્ની પુરીબેન	૨૫૧
૩૮	સ્વ પિતાશ્રી સ્વજીભાઈ તથા સ્વ માતૃશ્રી મૂળીભાઈના સ્મરણાર્થે હા કકલભાઈ ઠોઠારી	૩૦૧
૩૯	ભાવસાર દેશવલાલ મગનલાલ	૨૫૧
૪૦	શાહ દેશવલાલ નાનચંદ જખડાવાળા હા પાર્વતીબેન	૨૫૧
૪૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીવાલ માણેકચંદ રાજમીતાપુરવાળા(સાબરમતી)	૨૫૧
૪૨	શ્રી સ્થા જૈન સઘ (સાબરમતી)	૨૫૦
૪૩	બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાત ચુનીલાલ ગોપાણી (રાણપુરવાળા)	૩૦૧
૪૪	ભાવસાર છોટાલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૪૫	ભાવસાર સકરાભાઈ છગનલાલ	૨૫૧
૪૬	અ સૌ જીવીબેન રતીલાલ હા ભાવસાર રતીલાલ હરગોવિંદદાસ	૨૫૧
૪૭	સઘવી ખાલુભાઈ કમળશી તથા તેમના ધર્મપત્નિઓ અ સૌ ચપાબેન તથા વસંતબેન તરફથી	૨૫૧
૪૮	અ સૌ વિદ્યાબેન વનેચંદ દેશાઈ હા ભૂપેન્દ્રકુમાર વનેચંદ દેશાઈ	૨૫૧
૪૯	સ્વ પારેખ નાનચંદ ગોવિંદજી મોરખીવાળાના સ્મરણાર્થે હા રતીલાલ નાનચંદ પારેખ	૩૦૧

અમલનેર

૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા શાહ ગાડાલાલ બીખાલાલ	૨૫૧

આણુદ

૧	શેઠ રમણીકલાલ એ કપાસી હ મનસુખલાલભાઈ	૨૫૧
---	------------------------------------	-----

આસનસોલ

૧	ખાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ મણીભાઈ તરફથી હા રસીકલાલ, અનીલકાત, વિનોદરાય	૨૫૧
---	--	-----

આટકોટ

૧	શાહ ચુનીલાલ નારણજી	૩૦૧
---	--------------------	-----

ઉદેપુર

૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ	૨૫૧
---	--------------------------------	-----

- ૨ શેઠ મગનલાલજી ખાગરેયા ૨૫૧
- ૩ અ સૌ ષહેન ચદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરના
ધર્મપત્ની હા શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ ૨૫૧
- ૪ સ્વ શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ૨૫૧
- ૫ સ્વ શેઠ પ્રતાપભલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે
હા પ્રાણલાલ હીરાલાલ સાખલા ૨૫૧
- ૬ પૂજ્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મહેતાના સ્મરણાર્થે
હા રણજીતલાલજી મોતીલાલજી મહેતા ૨૫૧
- ૭ શેઠ છગનલાલ ખાગરેયા ૨૫૧

ઉમરગાવરોડ

- ૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧

ઉપલેટા

- ૧ શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ ૨૫૧
- ૨ સ્વ બેન સતોકબેન ડચરા હા, ઝોગમચદભાઈ,
છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કટયાણુવાળા) ૨૫૧
- ૩ શેઠ ખુશાલચંદ કાનજીભાઈ હા શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧
- ૪ સઘાણી મૂળચકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના પુત્રો જ્ય તીલાલભાઈ તથા રમણીકલાલ ૨૫૧
- ૫ દોશી વિઠ્ઠલજી હરખચંદ (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧

એડન ક્રેમ્પ

- ૧ શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી ૨૫૧

કલોલ

- ૧ શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે હા શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૨ ડા માયાચંદ મગનલાલ શેઠ હા ડા રતનચંદ માયાચંદ ૨૫૧
- ૩ સ્વ નાથાલાલ ભિમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે હા મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧

કડી

- ૧ શ્રી સ્થા દરીયાપુરી બૈન સઘ હા ભાવસાર દામોદરદાસ ઇન્ધિરભાઈ ૨૫૧

કાનપુર

- ૧ શાહ રમણીકલાલ ગ્રેમચંદ (આગળના રૂા ૧૫૦ મળીને) ૩૦૦

કુદણી - (આટકોટ)

- ૧ દોશી રતીલાલ ટોકરશી ૨૫૧

કોલકી

- ૧ પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧
- ૨ પટેલ ખીમજી જોઠાભાઈ વાઘણી(તેમના સ્વ સુપુત્ર રામજીભાઈ સ્મરણાર્થે) ૩૦૨
આખીજીવણીયા
- ૧ ખાટવીયા ગુલાબચંદ દલીલાધર (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧
ખીચન
- ૧ શેઠ દીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ૩૫૨
ખલાત
- ૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા પટેલ કાન્તીલાલ અબાલાલ ૨૫૧
- ૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧
- ગુંદા
- ૧ સ્વ મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્ની દીવાળીબેન દલીલાધર ૨૫૧
- ગોડલ
- ૧ સ્વ ખાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્ની કમળબાઈ તરફથી
હા માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ ૨૫૧
- ૨ પીપળીઆ દલીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના ખીજ વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧
- ગોધરા
- ૧ શાહ ત્રીલોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧
ઘટકણ
- ૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧
- ઘોલવાડ (યાણા)
- ૧ મહેતા ગુલાબચંદજી ગભીરલાલજી ૩૦૦
- ચુડા (ઝાલાવાડ)
- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧
જલેસર (બાલાસોર)
- ૧ સઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ યાનગઢવાળા ૨૫૧
જામજોધપુર
- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ ૩૮૭

૨	શાહ ત્રીલોવનદાસ લગવાનજી પાનેલીવાળા	૨૫૧
૩	દોશી માણેકચંદ ભવાન (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને)	૨૫૧
૪	પટેલ લાલજી જીઠાભાઈ (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને)	૨૫૧
૫	શેઠ બાવનજી જેઠાભાઈ (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને)	૨૫૧

ભામનગર

૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	૨૫૧
૨	વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ	૨૫૧

ભામખ ભાળીઆ

૧	શેઠ વસનજી નારણજી	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા મહેતા રણુછોડદાસ પરમાનંદ	૨૫૧
૩	સઘવી પ્રાણુલાલ લવજીભાઈ	૨૫૧

ભુનાગઢ

૧	શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા)	૨૫૧
---	--	-----

ભુનારદેવ (મધ્ય પ્રાત)

૧	ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

જેતપુર

૧	શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરભોરામ (જસાપુરવાળા)	૨૫૧
૨	દોશી છોટાલાલ વનેચંદ	૨૫૧
૩	કોઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ	૨૫૧

જેતલસર

૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ	૨૫૧
૨	કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા શાન્તીલાલભાઈ ગોઠલવાળા	૨૫૧

ડભાસ

૧	સ્વ તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા જયતીભાઈ	૨૫૧
---	--	-----

ડોડાઈચિા

૧	શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શેઠ ચપાલાલજી મારવે	૨૫૦
---	--	-----

ધાનગઢ

૧	શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી	૨૫૧
૨	શેઠ જેઠાલાલ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૩	શાહ ધારશી પાશવીર હા સુખલાલભાઈ	૨૫૧

દોલકી

- ૧ પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧
- ૨ પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાપણી(તેમના સ્વ. સુપુત્ર રામજીભાઈ સ્મરણાર્થે) ૩૦૨
આખીલળીયા
- ૧ ખાટવીયા ગુલાબચંદ દીલાધર (આગળના રૂા. ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧
ખીચન
- ૧ શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ૩૫૨
ખલાલ
- ૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા પટેલ કાન્તીલાલ અખાલાલ ૨૫૧
- ૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧
- ગુંદા
- ૧ સ્વ મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧
- ગોહલ
- ૧ સ્વ ખાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી
હ માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ ૨૫૧
- ૨ ખીપળીઆ લીલાધર કામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના ખીન વરસીતપત્ની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧
- ગોધરા
- ૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧
- ઘટકણ
- ૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧
- ઘોલવાડ (યાણા)
- ૧ મહેતા ગુલાબચંદજી ગલીરલાલજી ૩૦૦
- ચુડા (બાલાવાડ)
- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧
- જલેસર (બાલાસોર)
- ૧ સઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ યાનગઢવાળા ૨૫૧
- જમજેધપુર
- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ ૩૮૭

૨	શાહ ત્રીલોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા	૨૫૧
૩	દોશી માણેકચંદ ભવાન (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને)	૨૫૧
૪	પટેલ લાલજી જીઠાભાઈ (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને)	૨૫૧
૫	શેઠ ખાવનજી જેઠાભાઈ (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને)	૨૫૧

જામનગર

૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	૨૫૧
૨	વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ	૨૫૧

જામખ ભાળીઆ

૧	શેઠ વસનજી નારજી	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા મહેતા રણછોડદાસ પરમાનંદ	૨૫૧
૩	સઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ	૨૫૧

જીનાગઢ

૧	શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા)	૨૫૧
---	--	-----

જીનારદેવ (મધ્ય પ્રાત)

૧	ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

જેતપુર

૧	શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરભોરામ (જસાપુરવાળા)	૨૫૧
૨	દોશી છોટાલાલ વનેચંદ	૨૫૧
૩	કેઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ	૨૫૧

જેતલસર

૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ	૨૫૧
૨	કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા શાન્તીલાલભાઈ ગોડલવાળા	૨૫૧

ડભાસ

૧	સ્વ તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા જયતીબાઈ	૨૫૧
---	--	-----

ડોડાઈઆ

૧	શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શેઠ ચપાલાલજી મારવે	૨૫૦
---	--	-----

થાનગઢ

૧	શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી	૨૫૧
૨	શેઠ જેઠાલાલ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૩	શાહ ધારશી પાશવીર હા સુખલાલભાઈ	૨૫૧

દહાણુ ગેઠ (ધાણુ)

૧ શાહ હરણવનદાસ ઝોઘડ ખંધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧
દિલ્હી

૧ લાલા પૂર્ણચંદ્ર જૈન (મિન્ડ્રૂલ જે કવાળા) ૩૫૧
ધાર (મધ્યપ્રાત)

૧ શેઠ સાગરમલ્લ પનાલાલ ૨૫૧
ધાંગધા

૧ શ્રી સ્થા જૈન મોટા સઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ ૨૫૧

૨ સઘવી નાગજીદાસ વખતચંદ ૩૦૧

૩ ઠક્કર નારણદાસ હરગોવિંદદાસ ૨૫૧

ધોરાણ

૧ મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ ૩૫૧

૨ સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાલાઈના સ્મરણાર્થે
હા પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી ૨૫૧

૩ અ સૌ ળચીબેન ળાણુભાઈ ૨૫૧

૪ ધી નવસૌરાષ્ટ્ર ઝોઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ ૨૫૧

૫ સ્વ રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચંદ ૩૦૧

૬ ગાધી પોપટલાલ જેચંદ ૨૫૦

૭ દેશાઈ જગનલાલ ડાહ્યાભાઈ લાઠવાળાના ધર્મપત્ની દિવાળીબેન
તરફથી હા કુમારી હસુમતી ૨૫૧

ધ ધુકા

૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ૨૫૧

૨ શેઠ પોપટલાલ ધારશી ૨૫૧

૩ સ્વ શુભાબચંદલાઈના સ્મરણાર્થે હા વોરા પોપટલાલ નાનચંદ ૨૫૧

૪ વસાણી ચત્રજી વાઘજીભાઈ ૨૫૧

ન દુરખાર

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા શેઠ ત્રેમચંદ ભગવાનલાલ ૨૫૦

પાણુસણા

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ ૨૫૧

પાલણુપુર

૧ લક્ષ્મીબેન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧

૨ શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય ૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧
	બરવાળા (ઘેલશા)	
૨	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧
	બગસરા (ભાયાણી)	
૧	સ્વ પૂજ્ય માતુશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે હા દેશાઈ મજલાલ કાળીદાસ	૨૫૧
૨	શેઠ ષોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ	૨૫૧
	બેરાળ (કચ્છ)	
૧	શેઠ ગાગજી કેશવજી (જ્ઞાનલડાર માટે)	૨૫૧
	બેગલોર	
૧	બાપવીયા વનેચંદ અમીચંદ મહાવીર ટેક્ષટાઇલ સ્ટોર તરફથી ભાઈ ચંદ્રકાંતની લગ્નની ખુશાલીમા	૨૫૨
	બોટાદ	
૧	સ્વ વસાણી હરગોવિંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્નિ છબલબેન	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ (૨૫૦ બાકી)	૨૫૧
	બોડેલી	
૧	શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસીદાસ (સાણુદવાળા)	૨૫૧
૨	શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ	૨૫૧
	ભાણુવડ	
૧	શેઠ જ્યેષ્ઠભાઈ માણેકચંદ	૩૫૧
૨	સઘવી માણેકચંદ માધવજી	૨૫૧
૩	શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા)	૨૫૧
૪	શેઠ રામજી જીણાભાઈ	૨૫૧
૫	શેઠ પદમશી ભીમજી ફાફરીઆ	૨૫૧
૬	ફાફરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઈ હા અ સૌ શાતાબેન વસનજી	૨૫૧
૭	વકીલ મણીલાલ બેગારભાઈ પૂનાતર	૨૫૧
	ભોજાય (કચ્છ)	
૧	જ્ઞાન મંદિરના સેક્રેટરી શાહ કુવરજી જીવરાજ	૨૫૧

દહાણુ ગ્રેડ (યાજ્ઞા)

૧ શાહ હરજીવનદાસ ઝોઘડ ખ ધાગ (કરાચીવાળા) ૨૫૧
દિગ્દી

૧ લાલા પૂર્ણચંદ્ર જૈન (મિન્ડ્રલ બેઠવાળા) ૩૫૧
ધાર (મધ્યપ્રાત)

૧ શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧
ધાગધા

૧ શ્રી સ્થા જૈન મોટા સઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ ૨૫૧

૨ સઘવી નારણદાસ વખતચંદ ૩૦૧

૩ ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદાસ ૨૫૧

ધોરાજી

૧ મહેતા પ્રભુદાસ મૃગજીભાઈ ૩૫૧

૨ સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
હા પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી

૩ અ સૌ બચીબેન બાબુભાઈ ૨૫૧

૪ ધી નવસૌરાષ્ટ્ર ઝોઘલ મીલ પ્રા લીમીટેડ ૨૫૧

૫ સ્વ રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચંદ ૩૦૧

૬ ગાધી પોપટલાલ જેચંદ ૨૫૦

૭ દેશાઈ છગનલાલ ડાહ્યાભાઈ લાઠવાળાના ધર્મપત્ની દિવાળીબેન ૨૫૧
તરફથી હા કુમારી હસુમતી

ધ ધુકા

૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ૨૫૧

૨ શેઠ પોપટલાલ ધારશી ૨૫૧

૩ સ્વ શુભાબચંદ ભાઈના સ્મરણાર્થે હા વોરા પોપટલાલ નાનચંદ ૨૫૧

૪ વસાણી ચત્રબુજ વાઘજીભાઈ ૨૫૧

ન દુરખાર

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા શેઠ પ્રમચંદ ભગવાનલાલ ૨૫૦

પાણુસણા

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ ૨૫૧

પાલણુપુર

૧ લક્ષ્મીબેન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧

૨ શ્રી લોકાગરજી સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય ૨૫૧

૨૦	શાહ રામજી કરશનજી યાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કટ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચંદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ જટાશકર દેવજી દોશીના સ્મરણાયે હા રણુછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ ગોડા વણારશી ત્રીલોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાયે હા જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ ત્રીલોવનદાસ વ્રજપાળ વીંધીયાવાળાના સ્મરણાયે હા હરગોવિંદદાસ ત્રીલોવનદાસ અજમેરા	૨૫૧
૨૬	સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાયે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જયતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૨૭	શેઠ ખુશાલભાઈ ખે ગારભાઈ	૨૫૦
૨૮	શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર (મલાડ)	૨૫૧
૨૯	સ્વ પિતાશ્રી પતુભાઈ મૈનાલાઇના સ્મરણાયે હા શાહ કાનજી પતુભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૩૦	શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ સ્વ નાનબાઈના સ્મરણાયે	૩૦૧
૩૧	સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાયે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ)	૩૦૧
૩૨	શેઠ ત્રબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અજરામર શાસ્ત્રલઠાર લીંબડી માટે (માટુગા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ પિતાશ્રી ભીમજી ઠેરશી તથા માતૃશ્રી ખાલાબાઈના સ્મરણાયે હા શાહ ઉમરશીભાઈ ભીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ)	૩૦૧
૩૪	શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	શાહ વૃળગભાઈ શીવજી (મલાડ)	૨૫૧
૩૬	રતીલાલ ભાઈચંદ મહેતા	૨૫૧
૩૭	શાહ ખીમજી મૂળજી પૂજા (મલાડ)	૨૫૧
૩૮	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૩૯	ચેલાણી વલભજી નરભેરામ હા. નરસીભાઈ વલભજી	૨૫૧
૩૦	અ. સૌ સમતાએન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજ્જવશી શાહ(મલાડ)	૨૫૧
૪૧	તેલણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	૨૫૧

મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવચંદજી ૨૫૧
 મનોર (યાજ્ઞા)
- ૧ શાહ શેરમજી દેનીચંદજી જસવંતગઢવાળા
 હા પૂનમચંદજી શેરમજી બોલ્યા
 માનકુવા (કચ્છ) ૨૫૧
- ૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
 હા. તેમના ધર્મપત્નિ કુવરબાઈ હરખચંદ
 (માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે)
 સુબાઈ તથા પરચિા ૨૫૧
- ૧ શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ ૨૫૧
- ૨ શાહ હરજીવન કેશવજી ૨૫૧
- ૩ ઘેલાણી પ્રબુલાલ ત્રીકમજી (બારીવતી) ૨૫૨
- ૪ શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા ૨૫૧
- ૫ શ્રી વર્ધમાન સ્થા જૈન સંઘ હા કેસરીમલજી
 અનોપચંદજી ગુગળીયા (મલાડ) ૨૫૧
- ૬ શેઠ ડુગરશી હ સરાજ વીસરીયા ૨૫૧
- ૭ શાહ રમણીકલાલ ઠાળીદાસ તથા અ સૌ, ઠાન્તાબેન રમણીકલાલ ૨૫૧
- ૮ શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ ૨૫૧
- ૯ શાહ રતનશી મોણુશીની ક પની ૨૫૧
- ૧૦ શાહ શીવજી માણેક (કચ્છ બેરાળવાળા) ૨૫૧
- ૧૧ વોદા પાનાચંદ સંઘવીના સ્મરણાર્થે
 હા ત્રબકલાલ પાનાચંદ એન્ડ બ્રધર્સ ૨૫૧
- ૧૨ સ્વ પૂ પિતાશ્રી વીરચંદ જેસી ગભાઈ લખતરવાળાના
 સ્મરણાર્થે હા કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ ૨૫૧
- ૧૩ શા કુવરજી હ સરાજ ૨૫૧
- ૧૪ સ્વ માતુશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે
 હા શેઠ વલભદાસ નાનજી (પારખદરવાળા) ૩૦૧
- ૧૫ શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાહડીવાળા ૨૫૧
- ૧૬ એક સદ્ગૃહસ્થ હા શેઠ મુદરલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
- ૧૭ અ સૌ પાનબાઈ હા શેઠ પદમશી નરસિંહભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
- ૧૮ શ્રીચુત અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા દલીચંદ અમૃતલાલ ૨૫૧
- ૧૯ સ્વ શાહ નાગશી સેજપાળ ગુદાળાવાળાના સ્મરણાર્થે
 હા. રામજી નાગશી (મલાડ) ૩૦૧

૨૦	શાહ રામજી કરશનજી યાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કટયાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચંદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ જટાશકર દેવજી દોશીના સ્મરણાથે હા રણુછોડદાસ (ખાખુલાલ) જટાશકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ ગોડા વણારશી ત્રીભોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાથે હા જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ ત્રીભોવનદાસ મજપાળ વીંધીયાવાળાના સ્મરણાથે હા હરગોવિંદદાસ ત્રીભોવનદાસ અજમેરા	૨૫૧
૨૬	સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાથે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જયતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૨૭	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેગારભાઈ	૨૫૦
૨૮	શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર (મલાડ)	૨૫૧
૨૯	સ્વ પિતાશ્રી પતુભાઈ મેનાલાઇના સ્મરણાથે હા શાહ કાનજી પતુભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૩૦	શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ સ્વ નાનબાઈના સ્મરણાથે	૩૦૧
૩૧	સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાથે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ)	૩૦૧
૩૨	શેઠ ત્રબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અજરામર શાસ્ત્રલદાર લીંબડી માટે (માઠુગા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ પિતાશ્રી ભીમજી કૌરશી તથા માતૃશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાથે હા શાહ ઉમરશીભાઈ ભીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ)	૩૦૧
૩૪	શેઠ ગુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	શાહ વૃજગભાઈ શીવજી (મલાડ)	૨૫૧
૩૬	સ્તીલાલ ભાઈચંદ મહેના	૨૫૧
૩૭	શાહ ખીમજી મૂળજી પૂજા (મલાડ)	૨૫૧
૩૮	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા શેઠ માલુકલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૩૯	થેલાણી વલભજી નરભેરામ હા. નરસીભાઈ વલભજી	૨૫૧
૩૦	અ. સૌ સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજમશી શાહ(મલાડ)	૨૫૧
૪૧	તેળણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	૨૫૧

મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવચંદ્રજી
અને (પાણી) ૨૫૧
- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદ્રજી જયવતગદવાળા
હા પૂનમચંદ્રજી શેરમલજી બોદ્યા
માનકુવા (કચ્છ) ૨૫૧
- ૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે)
સુબાઈ તથા પરચો ૨૫૧
- ૧ શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ ૨૫૧
- ૨ શાહ હરજીવન કેશવજી ૨૫૧
- ૩ ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી (ભારીવડી) ૨૫૨
- ૪ શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા ૨૫૧
- ૫ શ્રી વર્ધમાન સ્વા જૈન સંઘ હા કેસરીમલજી
અનોપચંદ્રજી ગુગળીયા (મલાડ) ૨૫૧
- ૬ શેઠ ડુગરશી હસરાજ વીસરીયા ૨૫૧
- ૭ શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ સૌ કાન્તાબેન રમણીકલાલ ૨૫૧
- ૮ શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ ૨૫૧
- ૯ શાહ રતનશી મોણીશીની કપની ૨૫૧
- ૧૦ શાહ શીવજી માણેક (કચ્છ બેરાળવાળા) ૨૫૧
- ૧૧ વોદા પાનાચંદ સંઘવીના સ્મરણાર્થે
હા ત્રણકલાલ પાનાચંદ એન્ડ બ્રધર્સ ૨૫૧
- ૧૨ સ્વ પૂ પિતાશ્રી વીરચંદ જેસીગભાઈ લખતરવાળાના
સ્મરણાર્થે હા કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ ૨૫૧
- ૧૩ શા કુવરજી હસરાજ ૨૫૧
- ૧૪ સ્વ માતુશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે
હા શેઠ વલ્લભદાસ નાનજી (પારખદરવાળા) ૩૦૧
- ૧૫ શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાહડીવાળા ૨૫૧
- ૧૬ એક સદ્ગૃહસ્થ હા શેઠ મુદરલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
- ૧૭ અ સૌ પાનબાઈ હા શેઠ પદમશી નરસિંહલાઈ (મલાડ) ૨૫૧
- ૧૮ શ્રીચુત અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા દલીચંદ અમૃતલાલ ૨૫૧
- ૧૯ સ્વ શાહ નાગશી સેજપાળ ગુદાળાવાળાનાં સ્મરણાર્થે
હા, નરામજી નાગશી (મલાડ) ૩૦૧

૬૬	પિતાશ્રી કુદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા મોતીલાલ જીવનમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭	શ્રી વર્ધમાન પ્રવેતામ્બર સ્થા જૈન સઘ હા શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ ઝામદાર (અ ધેરી)	૨૫૧
૬૮	અ સૌ કમળાબેન કામદાર હા રૂપચંદ શીવલાલ (અ ધેરી)	૨૫૧
૬૯	ધી મરીના મોઠર્ન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફ ડ હા શાહ મણીલાલ ઠાકરશી	૨૫૧
૭૦	સ્વ માતૃશ્રી જીવીમાઈના સ્મરણાર્થે હા શામજી શીવજી ડમ્જી શુદ્ધાબાવાળા (ગોરેગાવ)	૨૫૧
૭૧	શાહ રાવજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની ક પની (કાદીવલી)	૨૫૧
૭૨	અ સૌ લાહુબેન હા રવજી શામજી (કાદીવલી)	૨૫૧
૭૩	અ સૌ બેન કુદનગૌરી મનહરલાલ સ ધવી (ખારરોડ)	૨૫૧
૭૪	શાહ કરશન લઘુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫	અ સૌ. રજનગૌરી ચ દુલાલ શાહ C/o ચ દુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માડુ ગા)	૨૫૧
૭૬	મહેતા મોટર સ્ટોર્સ હ અનોપચંદ ડી મહેતા (ચુબઈ)	૨૫૧
૭૭	શેઠ મનુભાઈ માણેકચંદ હા ઝાટકીયા નરભેરામ મોરારજી (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૭૮	ખેતાણી મણીલાલ કેશવજી (વડીયાવાળા) ઘાટકોપર	૨૫૧
૭૯	સ્વ કસ્તુરચંદ અમરશીના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્નિ ઝવેરબેન મગનલાલની વતી-જય તીલાલ કસ્તુરચંદ મસ્કારીયા (ચુડાવાળા)	૨૫૧

માડવી (કમ્જ)

૧	શ્રી સ્થા ઠોટી જૈન સઘ હા મહેતા ચુનિલાલ વેલજી મૈસાણા	૨૭૭
૧	શાહ પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા ગીવલાલ પદમસી વીરમગામવાળા	૨૫૧

મોખાસા

૧	શાહ દેવરાજ પેથરાજ	૨૫૦
૨	શ્રીચુત નાથલાલ ડી મહેતા	૨૫૧

યાદગીરી

૧	શેઠ બાદરમલજી સૂરજમલજી બેન્કર્સ રાણપુર (બાલાવાડ)	૨૫૦
૧	શ્રીમતી માતૃશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા ઠો નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ	૨૫૧

- ૪૨ ; ઠપાસાં મોહનલાલ શીવલાલ ૨૫૧
- ૪૩ સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે
સુરજબેન તરફથી હા તનમુખવાવણાઈ (મલાડ) ૨૫૧
- ૪૪ દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૫ શેઠ ચરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા) ૨૫૧
- ૪૬ દોશી ચત્રબુજ સુંદરજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૭ દોશી જીગલદીયોર ચત્રબુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૮ ' દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રબુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૯ શાહ ત્રીજોવનદાસ માનસિંગ દોડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા શાહ હરખચંદ ત્રીજોવનદાસ ૨૫૧
- ૫૦ શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાગધાવાળા હા શાહ વાડીવાલ જેઠાલાલ ૨૫૦
- ૫૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧
- ૫૨ સ્વ પિતાશ્રી શામળજી કદયાણજી ગોડવવાળાના સ્મરણાર્થે
તેમના પુત્રો તરફથી હા વૃજલાલ શામળજી બાવીશી ૩૦૧
- ૫૩ શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા ૨૫૧
- ૫૪ સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે
હા લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ ૩૦૧
- ૫૫ સ્વ પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે
હા દેવશી હંસરાજ કમ્બ ખીડાલાવાળા (મલાડ) ૨૫૧
- ૫૬ સ્વ માતૃશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ ૨૫૧
- ૫૭ શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ બલાતવાળા હા ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
- ૫૮ સ્વ પિતાશ્રી શાહ અબાલાલ પરસોતમ પાણુશણુવાળાના
સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા બાપાલાલભાઈ ૨૫૧
- ૫૯ બેન કેશરબાઈ ચંદુલાલ જેસી ગલાલ શાહ ૨૫૧
- ૬૦ દડીયા જેસી ગલાલ ત્રીકમજી ૨૫૧
- ૬૧ શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૬૨ કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર) ૨૫૧
- ૬૩ સ્વ માતૃશ્રી કડવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા તેમના પૌત્ર
હંકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાઠીવલી) ૨૫૧
- ૬૪ શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ ૨૫૧
- ૬૫ શાહ કેરશોભાઈ હીરજીભાઈ ૩૦૧

- ૨ શેઠ મુળચંદ યોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસી ગલાલભાઈ ૨૫૧
લાખેરી (રાજસ્થાન)
- ૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ ૨૫૧
(સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ)
લીમડી (પચમહાલ)
- ૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
- ૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧
લોનાવાલા
- ૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧
વઢવાણુ શહેર
- ૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રબકલાલ શાહ ૨૫૧
- ૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
- ૩ સઘવી મુળચંદ જેચરભાઈ હા ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
- ૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
- ૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧
- ૬ વોરા ચત્રબુજ મગનલાલ ૨૫૧
- ૭ સઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ ૨૫૧
- ૮ શાહ દેવશી દેવકરજી ૨૫૧
- ૯ વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા જૈન સઘ હા વોરા નાનચંદ શીવલાલ ૨૫૧
- ૧૦ વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા જૈન સઘ હા વોરા પાનાચંદ ગોકળદાસ ૨૫૧
- ૧૧ દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા દોશી નાનચંદ ઉજમશી ૨૫૧
- ૧૨ સ્વ વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા વોરા ચત્રબુજ મગનલાલ ૨૫૧
વટામણુ
- ૧ શ્રી વટામણુ સ્થા જૈન સઘ હા શ્રી ડાઘાભાઈ હલુભાઈ પટેલ ૨૫૧
વલસાડ
- ૧ શાહ ખીમચંદ મૂળજીભાઈ ૨૫૧
વણી
- ૧ મહેતા નાનાલાલ છગનલાલના ધર્મપત્નિ સ્વ ચચળબેન તથા ૨૫૧
પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ
- વડોદરા
- ૧ કામદાર કેશવલાલ હિમતરામ પ્રોફેસર સાહેબ (ગોડલવાળા) ૨૫૧
- ૨ વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ ૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાઠ)

૧ શેઠ જ્વાનમલ્લ નેમીચદ્દલ હા બાબુ રીખખચંદ્દલ ૩૦૧

રાજકોટ

- ૧ ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કઁગ ૪૦૦
- ૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલય ૨૫૧
- ૩ બાબુ પરશુરામ હગનલાલ શેઠ (ઉદ્દેપુરવાળા) ૨૫૦
- ૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચદ્દ (એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧
- ૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચદ્દ તેમના ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે ૨૫૧
- ૬ ઉઢાણી ન્યાલય ૬ હાકેમચદ્દ વકીલ ૨૫૧
- ૭ શેઠ પ્રભરામ વીઠ્ઠલ ૨૫૧
- ૮ શેઠ હકમીચદ્દ દીપચદ્દ (ગોડલવાળા) ષ્ટેશન માસ્તર ૨૫૧
- ૯ બહેન સચુંબાળા નૌતમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુશાલી) ૨૫૧
- ૧૦ મોઢી સૌભાગ્યચદ્દ મોતીચદ્દ ૨૫૧
- ૧૧ બઢાણી બીમલ વેલલ તરકૂચી તેમના ધર્મપત્નિ
અ સૌ સમરતબેનના વરસીતપની ખુશાલી ૨૫૧
- ૧૨ ઢોશી મોતીચદ્દ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧
- ૧૩ કામઢાર ચદ્દલાલ જવરાજ ૨૫૦
- ૧૪ હેમાણી ઘેલુભાઈ સવચદ્દ ૨૫૧

રગુન

- ૧ કામઢાર ગોરધનઢાસ મગનલાલના ધર્મપત્નિ અ સૌ કમબાબેન, ૨૫૧
- લાખતર
- ૧ શાહ રાયચદ્દ ઠાકરશીના સ્મરણાયે હા શાહ શાન્તીલાલ રાયચદ્દ ૨૫૧
 - ૨ ભાવસાર હરજીવનઢાસ પ્રલુઢાસના સ્મરણાયે
હા ભાઈ ત્રીભોવનઢાસ હરજીવનઢાસ ૨૫૧
 - ૩ શાહ તલકશી હીરાચદ્દના સ્મરણાયે હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
 - ૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચદ્દ ૨૫૧
 - ૫ શાહ બઢવલ એાઘઠભાઈ સઢાઢવાળાના સ્મરણાયે
હા ભાઈ શાન્તીલાલ બઢવલ ૨૫૧
 - ૬ ઢોશી ઠાકરશી ગુલાબચદ્દના સ્મરણાયે તેમના ધર્મપત્નિ સમરતબેન
વૃજલાલ તરકૂચી હા જયતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાલપુર

૧ શેઠ નેમચદ્દ સવજીભાઈ મોઢી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧

- ૧૫ શાહ મૂળચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા શાહ નાગરદાસ ઐઘડભાઈ ૨૫૧
- ૧૬ શેઠ મોહનલાલ પીતાબરદાસ હા ભાઈ કેશવલાલ તથા મનમુખવાલભાઈ ૨૫૧
- ૧૭ શ્રીમતી હીરાબેન નાથુભાઈના વરસીતપ નિમિત્તે
હા નાથુભાઈ નાનચંદ શાહ ૩૦૧
- ૧૮ સ્વ મણીયાર પરસોતમદાસ સુદરજીના સ્મરણાર્થે
હા શેઠ આકરચંદ પરસોતમદાસ ૨૫૧
- ૧૯ શેઠ મણીલાલ શીવલાલ
વેરાવલ ૨૫૧
- ૧ શાહ કેશવલાલ જ્યેષ્ઠભાઈ ૨૫૧
- ૨ શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ વસનજી ૨૫૧
- સતારા
- ૧ સ્વ મદનલાલજી કુદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે
હા તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧
- સાલબની (બગાળ)
- ૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરખીવાળા ૨૫૦
- સાણુદ
- ૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
- ૨ અ સૌ ચ પાબેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
- ૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
- ૪ શાહ સાકરચંદ ગાનજીભાઈ ૨૫૧
- ૫ પુરીબેન ચીમનલાલ ડલ્યાણજી સઘવી લી મડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
- ૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
- ૭ સઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ જય તીલાલ નારણદાસ ૨૫૧
- સુરત
- ૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧
- સુવર્ધ (કચ્છ)
- ૧ સાવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાન દી જૈન મુનિશ્રી છોટાલાલ મહારાજના ઉપદેશથી સુવર્ધ સ્થા જૈન સઘ જ્ઞાનભ ઠારને લેટ ૨૫૧
- સુરેન્દ્રનગર
- ૧ શેઠ ચાપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧
- ૨ ભાવનાર ચનીલાલ પ્રેમચંદ ૨૫૧

- ૩ સ્વ પિતાશ્રી શાહ કૃષ્ણચંદ્ર યુવભાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ સમજલાલ કૃષ્ણચંદ્ર ૨૫૧

વડીયા

- ૧ પચ્ચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળા) ૨૫૧

વાકાનેર

- ૧ માસ્તર કાન્તીલાલ ત્રણકલાલ ખં ઠેરીયા ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા જૈન સઘ (રૂા ૨૫૦ બાકી) ૨૫૧
૩ હક્તરી ચુનીલાલ પોપટભાઈ મોરળીવાળા હા.ભાઈ પ્રાણલાલ ચુનીલાલ ૨૫૧

વીંછીયા

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈન સઘ હા અજમેરા રાયચંદ વૃજપાળ ૨૫૧

વીરમગામ

- ૧ શાહ વીઠ્ઠલભાઈ મોઢી માસ્તર ૨૫૧
૨ શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ ૨૫૧
૩ શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ અમુલખ(ખચુભાઈ)નાગરદાસના ધર્મપત્નિ અ સૌ જૈન લીલાવતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમાં હા.ભાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૩૦૦
૫ સ્વ શેઠ ઉજ્જવશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી
હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ ૨૫૧
૬ સ્વ શેઠ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી
હા ખીમચંદભાઈ (ખારાઘોડાવાળા) ૨૫૧
૭ સ્વ શેઠ હીરાલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ ૨૫૧
૮ સઘવી જ્યેષ્ઠભાઈ નારણદાસ ૨૫૧
૯ સ્વ શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદભાઈના સ્મરણાર્થે
હા ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા) ૨૫૧
૧૦ પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી (મોટીજેનના સ્મરણાર્થે) ૨૫૧
૧૧ શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈના ધર્મપત્નિ અ સૌ નારગીજેનના વરસીતપ નિમીત્તે હા શાન્તીભાઈ ૨૫૧
૧૨ સ્વ છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ કમળાજેન તરફથી હા મણુલાકુમારી ૨૫૧
૧૩ શ્રી સ્થા જૈન શ્રાવિકા સઘ હા પ્રમુખ અ સૌ રલાજેન વાડીલાલ ૨૫૧
૧૪ સ્વ ત્રીલોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ અ સૌ ચચળજેનના સ્મરણાર્થે હા ડો હિમતલાલ સુખલાલ ૨૫૧

- ૩ સ્વ દેગવતાવ મૂળજીભાઈના ધર્મ પત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ ભાઈતાવ દેશવતાવ (ધાનગદવાળા) ૨૫૧
- ૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧
- ૫ શાહ વાડીલાવ હરખચંદ ૨૫૧
- મળેલી (પચમવાવ)**
- ૧ શાહ લુણાજી શુલાળચંદ ૨૫૧
- ૨ શ્રી યા. લૈન મધ હા ગ્રેહ પ્રેમચંદ દલીચંદ ૨૫૧
- હાટીનામાળીયા**
- ૧ ગ્રેહ ગોપાલજી મીકાભાઈ ૨૫૦
- હારીજ**
- ૧ શાહ અમુલખભાઈ મુળજી હા પ્રકાશચંદ અમુલખ ૩૦૧
- ૨ સ્વ બેન ચંદ્રકાન્તાના સ્મરણાર્થે હા અમુલખ મુળજીભાઈ ૩૦૧
- હુબલી**
- ૧ હીગચંદ વનેચંદજી કટારીઆ ૨૫૧
- કુલ્લે મેમ્બરોની મ પ્યા તા ૨૦-૫-૫૮ સુધી**
- ૪ આઘ સુરખીશ્રીઓ ૩૩ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
- ૨૨ સુરખીશ્રીઓ ૭૭ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
- ૪૧ સહાયક મેમ્બરો ૪૭૯ કુલ્લ મેમ્બરો
- (બીજા વર્ગને મદતર બધ કરવામા આવેલ છે)
- રાજકોટ, તા ૨૦-૫-૫૮ સાકરચંદ ભાઈચંદ શેઠ
મત્રી
- શ્રી યા. ભા. ઋવે સ્થા લૈન શા. મ
તા ૭-૬-૫૮ સુધીમા નીચેની રકમો મળી છે
- અમદાવાદ**
- ૧ ભાવસાર છગનલાલ શામળદામના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી
હ લોગીલાલ છગનલાલ ભાવસાર અગાઉ રૂા. ૩૦૦૦૭ મળેલ
છે, તેમા બે હજાર વધારે મોકલાવ્યા છે, તેઓશ્રી સુરખી
પદમાથી આઘ સુરખીમા દાખલ થાય છે ૨૦૦૦
- ૨ શાહ નટવરલાલ ગોકળદાસ ૨૫૧
- ૩ શાહ શામળભાઈ અમરશીભાઈ ૨૫૧
- માદુગા**
- ૧ શાહ નટવારલાલ દીપચંદ તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ
શુશીલાબેનના વરસીતપની ખુશાલીમા ૨૫૧
- રાજકોટ**
- ૧ દક્તરી પ્રભુલાલ ન્યાલચંદ

